पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

मरणोत्तर जीवन: तथ्य एवं सत्य

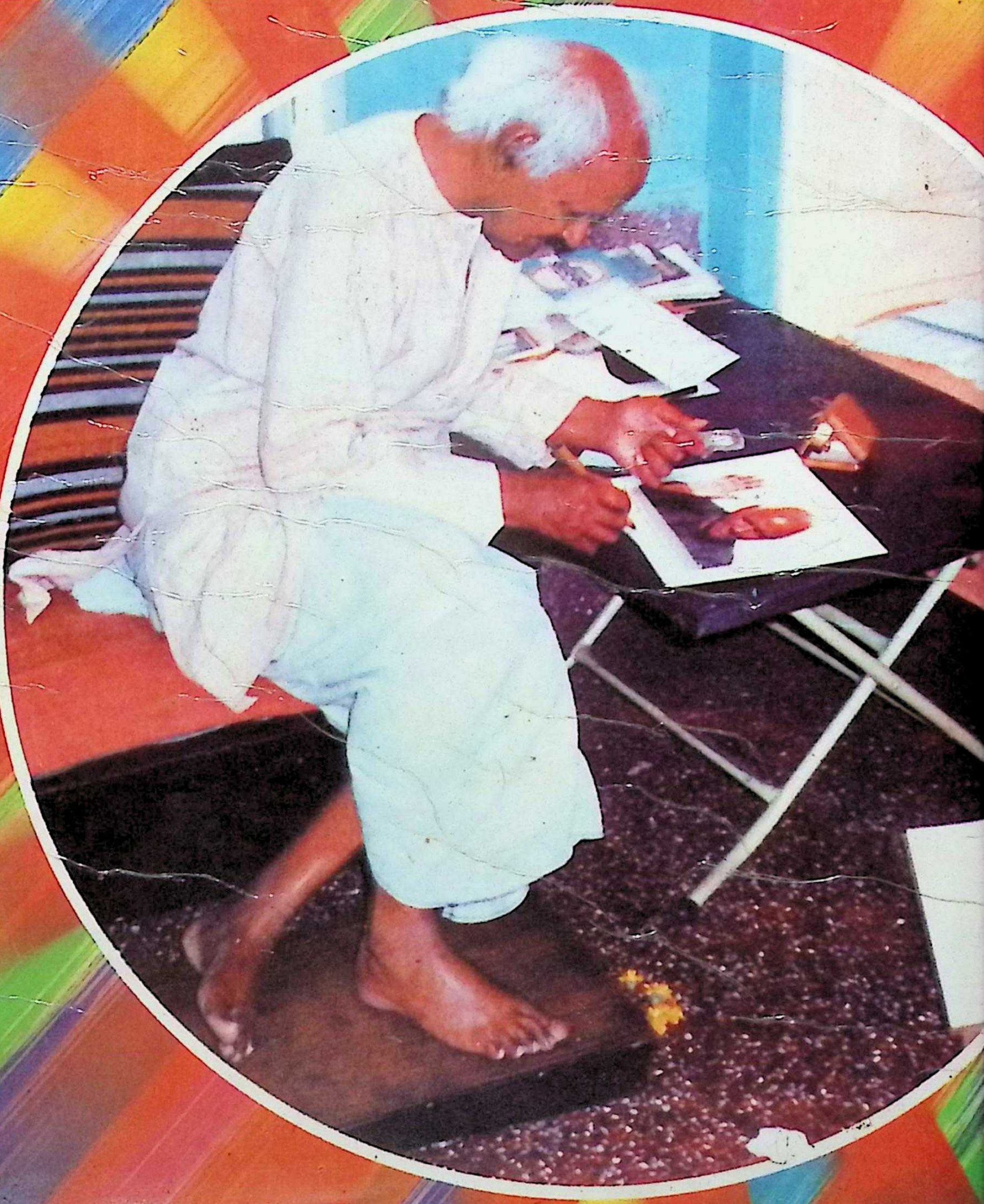

कुछ शब्द वाङ्मय के विषय में

प्रस्तुत वाङ्मय एक प्रयास है, इस युग के व्यास परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य के जीवन-दर्शन को जन-जन तक पहुँचाने का। आगरा के आँवलखेड़ा ग्राम में जन्मे वेदमूर्ति तपोनिष्ठ की उपाधि प्राप्त भारतीय संस्कृति के उन्नयन को समर्पित एवं सच्चे अर्थों में ब्राह्मणत्व को जीवन में उतारने वाले ये राष्ट्र-संत अपने अस्सी वर्ष के आयुष्य में (१९११ से १९९०) आठ सौ वर्ष से अधिक का कार्य कर गए। सादगी की प्रतिमूर्ति, ममत्व, स्नेह से लबालब अंतःकरण एवं समाज की हर पीड़ा जिनकी निज की पीड़ा थी, ऐसा जीवन जीने वाले युगद्रष्टा ने जीवन भर जो लिखा, अपनी वाणी से कहा, औरों को प्रेरित कर उनसे जो संपन्न करा लिया, उस सबको विषयानुसार इस वाङ्मय के खंडों में बाँधना एक नितांत असंभव कार्य है। यदि यह सफल बन पड़ा है तो मात्र उस गुरुसत्ता के आशीष से ही, जिनकी हर श्वास गायत्री यज्ञमय थी एवं समिधा की तरह जिनने अपने को सुसंस्कृति-यज्ञ में होम कर डाला।

उनकी जीवन समाधि के अस्सी वर्षों में से प्रारंभिक तीस वर्ष जन्मस्थली आँवलखेड़ा, आगरा जनपद एवं नगर में एक साधक, समाज-सुधारक, प्रखर स्वतंत्रता संग्राम सेनानी की तरह बीते। इसके बाद के तीस वर्ष मथुरा में एक विलक्षण कर्मयोगी, संगठन निर्माता, भविष्यद्रष्टा, सारी मानव-जाति को एक सूत्र में पिरोकर युग निर्माण सत्संकल्प के रूप में मिशन का 'मैनिफेस्टो' सतयुगी समाज का आधार बताकर प्रस्तुत करते दृष्टिगोचर होते हैं। इस पूरी अवधि में एवं आयुष्य के अंतिम बीस वर्षों में परम

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

मरणोत्तर जीवन: तथ्य एवं सत्य

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

❐

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

❐

© सर्वाधिकार सुरक्षित

❐

द्वितीय संस्करण १९९८

❐

मूल्य : 150/-

❐

मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

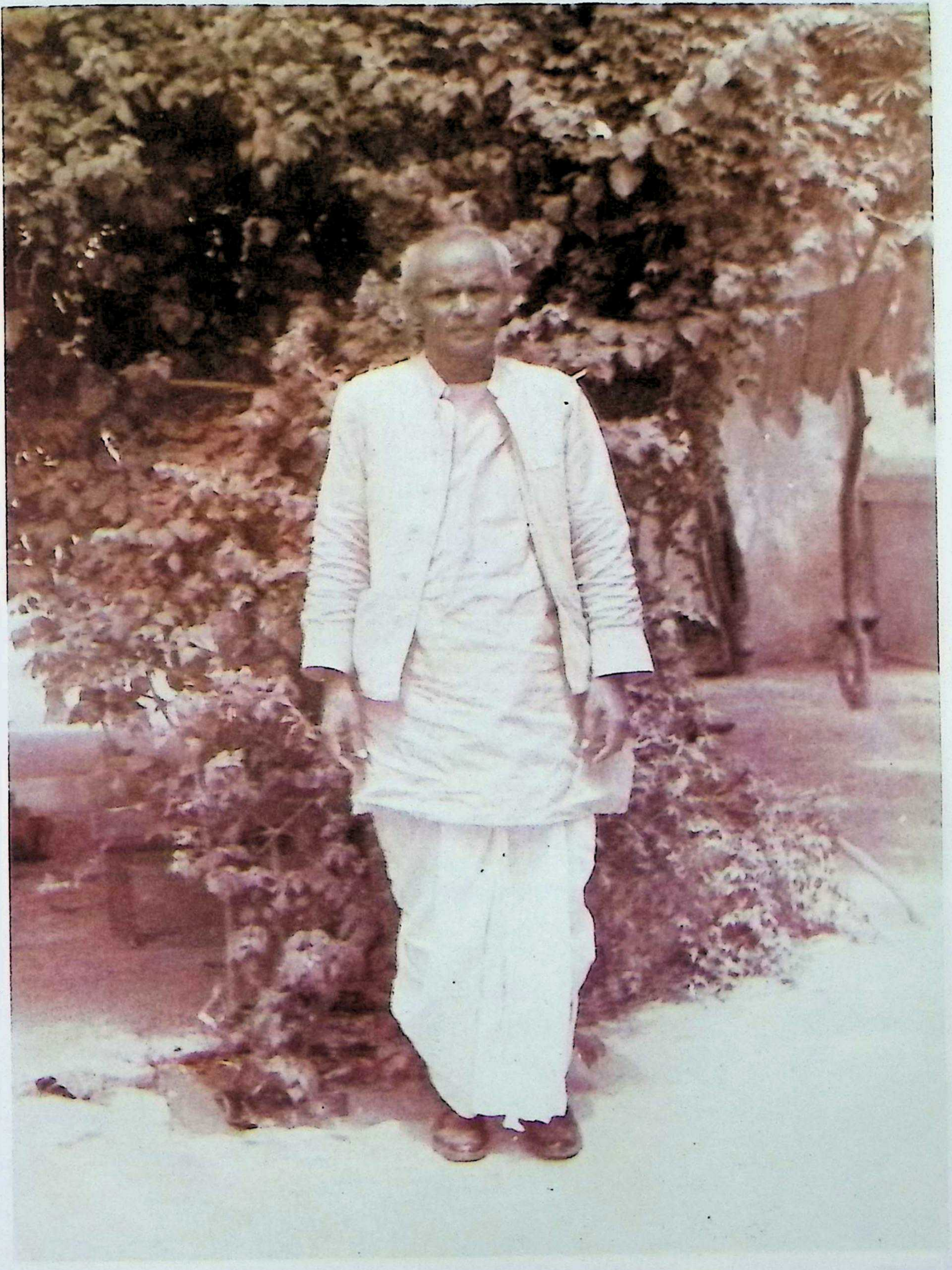

धरित्री जिनको पाकर धन्य हो गयी, ऐसी अवतारी सत्ता—पूज्य गुरुदेव

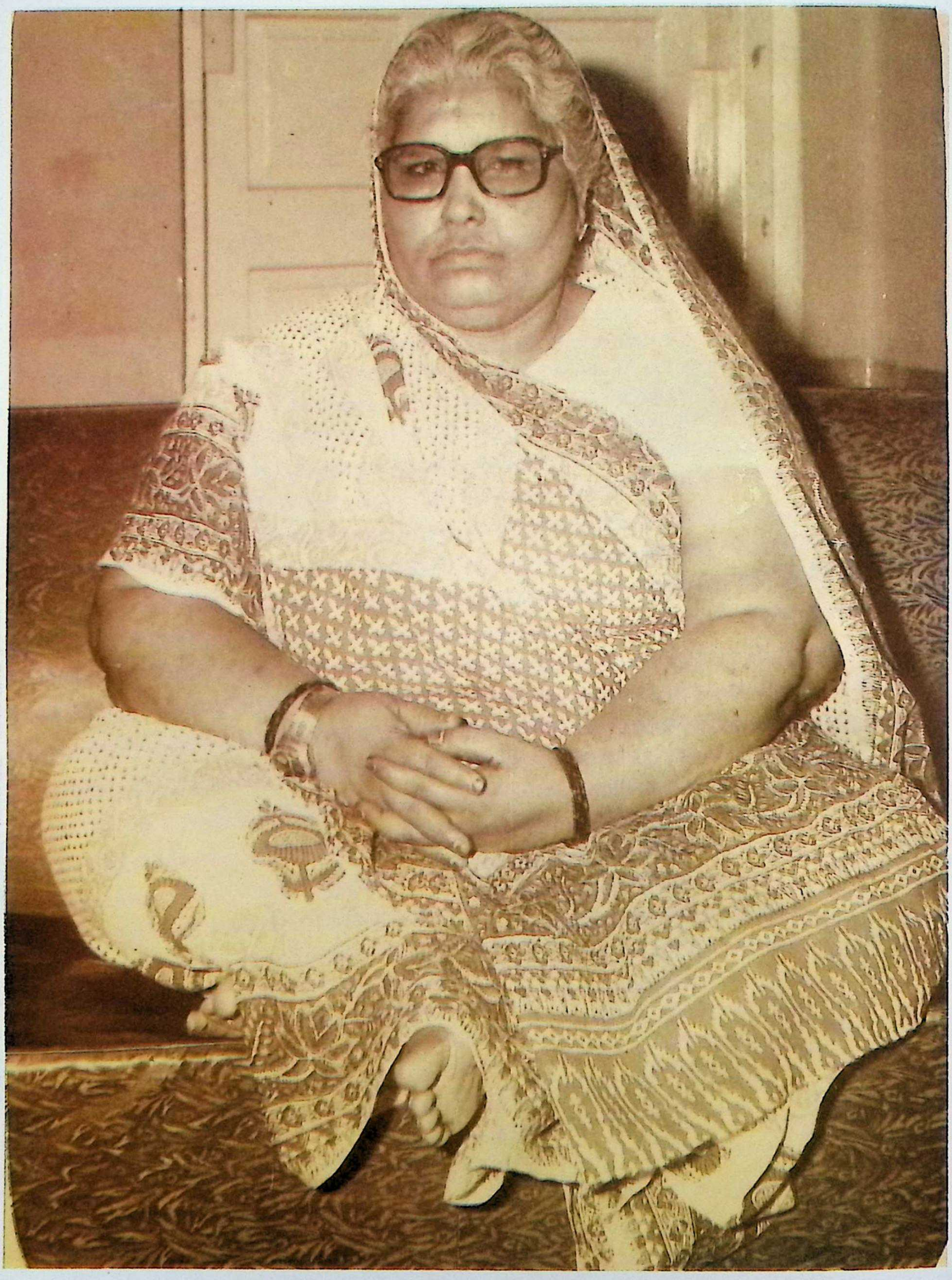

सबके मन की पीर जिनकी अंतर्वेदना बन गयी—ऐसी मातृसत्ता

समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ॥

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ॥

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ॥

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ त्रर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्‌बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्‌भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा ।

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ । नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था ।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं । औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है । हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी । वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया ।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में । उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं । चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था । २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना ।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया । पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ । दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धत: परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी । वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया । सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा ।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी । उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं । इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था । १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतः स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी । उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं । यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी ।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ । गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी । धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है । १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है । १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्त्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया । कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं । संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था । तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं । हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया । परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं ।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ । तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तपःपूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज़ डाला गया था । तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए । स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये । एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी । ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये ।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे । इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक । इसके

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेघ महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

भूमिका

भारतीय संस्कृति में मानवी काया को एक सराय की एवं आत्मा को एक पथिक की उपमा दी गयी है। यह पंचतत्त्वों से बनी काया तो क्षणभंगुर है, एक दिन इसे नष्ट होना ही है किन्तु आत्मा नश्वर है। यह कभी नष्ट नहीं होती। गीताकार ने बड़ा स्पष्ट इस सम्बन्ध में लिखते हुए जन-जन का मार्गदर्शन किया है-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। -२/२०

अर्थात् ''यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।''

वस्तुतः मृत्यु का दर्शन, मरणोत्तर जीवन सम्बन्धी तत्त्वचिन्तन एवं कर्मफल-प्रायश्चित्त से लेकर मृत्यु के बाद पुनर्जन्म के तथ्य प्रमाण सम्मत प्रतिपादन यह सब मिलकर हमारी भारतीय संस्कृति को सुदृढ़ आधार प्रदान करते हैं। हमारा शास्त्रकार कहता चला आया है व हम सदियों से सुनते चले आए हैं कि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है। वाङ्मय के इस खण्ड में इस प्रतिपादन की अनेकानेक साक्षियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। यह बताया गया है कि मृत्यु वस्तुतः क्या है ? भूत-प्रेत क्या कोई विशेष योनि हैं व मनुष्य सूक्ष्मलोक में उस स्थिति में कैसे पहुँच जाता है ? भूतों की प्रताड़ना, प्रेत-बाधा आदि सम्बन्धी भ्रान्तियाँ बड़े विवेक सम्मत प्रतिपादनों के साथ इस वाङ्मय में प्रस्तुत की गयी हैं।

परमपूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि अतृप्त आकांक्षाओं का उद्वेग मरने के बाद भी प्राणी को चैन लेने नहीं देता और वह सूक्ष्म शरीरधारी होते हुए भी किसी न किसी को माध्यम बना कर अपनी वासनाओं-आकांक्षाओं की पूर्त्ति का प्रयास करते हैं। केवल दुर्बल मनःस्थिति वाले ही प्रेतों की सवारी बन सकते हैं। मनस्वी लोगों की तीक्ष्ण इच्छाशक्ति, दृढ़ मनोबल इनका आधिपत्य नहीं स्वीकार करने देते। ऐसे ढेरों घटना क्रम भारत-वर्ष व पूरे विश्वभर के हैं जो इस खण्ड में दिये गये हैं। प्रेतात्माओं सम्बन्धी शोध का निष्कर्ष इस प्रकार पूज्यवर ने प्रस्तुत किया है कि विज्ञान सम्मत दृष्टि वाले को किसी प्रकार का संशय नहीं रह जाता। एक बात और स्पष्ट करते हुए पूज्यवर ने लिखा है कि विक्षुब्ध व शंकालु मनःस्थिति भी जीते-जागते प्रेत की भूमिका निभा सकती है। यह दैनन्दिन जीवन के व्यावहारिक अध्यात्म का वह पक्ष है जो हर किसी की समझ में आता है।

पितर रूपी स्नेही मृतात्माओं द्वारा अपने प्रियपात्रों के मार्गदर्शन और सहायता-अनुदान की छोटी-बड़ी घटनाएँ यदा-कदा प्रकाश में आती रहती हैं। सूक्ष्म शरीरधारी ये आत्माएँ कभी पूर्वाभास, कभी स्वप्न, कभी किसी और रूप में अपनी सत्ता के अस्तित्व का दिग्दर्शन कराती रहती हैं। हर व्यक्ति उपद्रवी भूत बने-यह जरूरी नहीं। वह पितर रूप में दयालु-पथप्रदर्शक और उदारदानी भी बन सकता है। हमारे पूर्वजों, ऋषियों की आत्माएँ अदृश्य हलकों के रूप में हमें अनुदान देने को सतत तत्पर रहती हैं। बादलों की तरह वे हर प्यासी भूमि पर पानी बरसाने को सदा दौड़ती रहती हैं। परन्तु वे मदद कर सकें, इसके लिए भावनात्मक अनुकूलता तो चाहिए ही। अतः पितरों को जानना, उनके प्रतिश्रद्धा-कृतज्ञता का भाव रखना अनिवार्य ही नहीं लाभप्रद भी है, यह प्रमाणों के साथ परम पूज्यगुरुदेव ने विज्ञान-अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादन की अपनी शैली में इसमें बताया है।

मरणोत्तर जीवन व उसके बाद की योनियों में क्या होता है, इसके अतिरिक्त एक और सिद्धान्त ध्रुव सत्य की तरह इस प्रक्रिया में जुड़ा है वह है इसी जीवन में व्यक्ति के कर्मों का फल उसे मिल कर रहता है

और यह जन्म-जन्मान्तरों से चली आ रही प्रक्रिया है । प्रारब्ध संचित व क्रियमाण के रूप में कर्मफल व्यवस्था हमारे जीवन क्रम को सर्वाङ्गपूर्ण रूप में प्रभावित करती है । यह एक शाश्वत सिद्धान्त है कि जैसा बोता है, वैसा ही काटता भी है । हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है । पेण्डुलम एक ओर चलता है तो उसे लौटकर फिर वापस अपनी जगह आना पड़ता है । कर्मफल समयसाध्य किन्तु एक सुनिश्चित प्रक्रिया है । यदि तत्काल फल मिल जाया करते तो किसी के भले-बुरे का निर्णय करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती । मनुष्य अपने कर्म से ज्ञानार्जन से-तपश्चर्या से आराधना से अपने प्रारब्धों को काटते हुए अपने किये दुष्कर्मों का प्रायश्चित् करते हुए उनके फलितार्थ को बदल सकता है । ईश्वर ने इसीलिए मनुष्य को निजी विवेक और कर्म स्वातंत्र्य को कार्यान्वित रखने के लिए कर्म और फल के बीच अन्तर रखा है । **''कर्मणा गहनोगतिः''** कहकर भगवान कृष्ण ने बता दिया है कि कर्म की गति जान पाना संभव नहीं है थाह पाना सम्भव नहीं है, इसलिए वर्तमान पर ध्यान केन्द्रित रख अपने हर कर्म पर एक न्यायाधीश की दृष्टि रख सतत सत्कर्म में निरत रहने का प्रयास मनुष्य द्वारा किया जाना चाहिए । एक बात स्पष्ट करते हैं-शास्त्र, कि शारीरिक संक्षोभ-मानसिक विक्षोभ आधिव्याधियों का मूलकारण भी हमारे अपने दुष्कर्म ही हैं, भले ही हमें उनकी जानकारी ही न हो । ऋषिगणों ने इसीलिए प्रायश्यित्त कर्म हेमाद्रि स्नान व संकल्प तथा अपनी खोदी खाई को पाटने की प्रक्रिया को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बताया है ।

परमपूज्य गुरुदेव ने प्रायश्चित्त प्रक्रिया के चार चरण बताये हैं (१) जीवन भर के दुष्कर्मों की सूची बना कर उनके द्वारा दूसरों को पहुँची हानि का स्वरूप समझना (२) दुष्कर्मों का चिन्तन कर आत्म विश्लेषण करना, उन्हें न दोहराने का संकल्प एवं विज्ञजनों के समक्ष उनका प्रकटीकरण करते हुए प्रायश्चित्त का संकल्प (३) प्रायश्चित्त के प्रतीक के रूप में व्रत, उपवास, जप, अनुष्ठान आदि प्रायश्चित्त कृत्य करना (४) व्यक्ति अथवा समाज को जो हानि पहुँची हो उसकी क्षति पूर्त्ति करने के लिए यथासम्भव अधिकतम प्रयास सेवा, आराधना समाज के बहुमुखी विकास के रूप में आरम्भ करना । श्राद्ध-तर्पण श्रद्धा एवं पितरों की तृप्ति आदि उपक्रम का भी इसी संदर्भ में विस्तार से विवेचन इसमें तर्क सम्मत शैली में पाठक पढ़ सकेंगे ।

पुनर्जन्म-प्राण प्रत्यावर्त्तन एवं पर काया प्रवेश आत्मा की अक्षुण्णता-नश्वरता एवं मानव की सूक्ष्मतम गुह्य जटिलताओं का स्पष्ट करने वाले ऐसे विषय हैं जिन्हें उदाहरणों के साथ परमपूज्य गुरुदेव ने विस्तार से समझाया है । भारतीय दर्शन पुनर्जन्म को सृष्टि विधान का एक स्वाभाविक क्रम मानता है । अन्य धर्म सम्प्रदायों ने भी प्रकारान्तर से मनुष्य के मरणोत्तर अस्तित्त्व को स्वीकारा है तथा संसार के सभी विचारशील वैज्ञानिक दार्शनिक अब यह स्वीकारने लगे हैं कि तृष्णा वासना के मोह बन्धन के रहते मनुष्य को लौट-लौटकर इसी संसार-चक्र में आना पड़ता है । ऐसे अगणित उदाहरण भारतवर्ष,तुर्की,अमेरिका (डॉ० स्टीवेन्सन के माध्यम से) अरब देशों के हैं जिनका अध्ययन करने के बाद निष्कर्ष यही निकलता है कि पुनर्जन्म कोरी कल्पना नहीं एक सुनिश्चित सत्य है जिसे स्वीकार किया जाना चाहिए ।

वाङ्मय का यह खण्ड विज्ञान सम्मत अध्यात्म का वह पक्ष है जिसे गुह्य विज्ञान की परिधि में माना जाता रहा है किन्तु है अति मनोरंजक, ज्ञानवर्धक एवं शिक्षा प्रदान करने वाला । जिस शैली में उदाहरणों के साथ प्रतिपादन दिये गये हैं, उससे परमपूज्य गुरुदेव की लेखनी का कौशल प्रमाणित होता है ।

—ब्रह्मवर्चस

विषय सूची

विषय पृष्ठ
अध्याय-१
भूत प्रेत १.१
मरण सृजन का अभिनव पर्व १.१
मृत्यु से भयभीत क्यों १.४
मरण: एक उच्च कोटि का दार्शनिक १.७
मृत्यु को सुखद बनायें १.९
जीवन और मरण की अविच्छिन्न शृंखला १.१२
मृत्यु का विस्मरण एक असाधारण प्रमाद १.१७
मृत्यु हमारे जीवन की अनिवार्य अतिथि १.१८
मरणकाल की व्यथा १.२०
मृत्यु का सदा स्मरण रखें १.२४
मृत्यु का सहर्ष आलिंगन करें १.२७
मरने से डरना क्या ? १.३०
मृत्यु और जीवन का अन्तर पुनर्जीवन का प्रश्न १.३४
अमर होना सम्भव है क्या १.३८
जीवन का अर्थ है चेतना १.४२
चेतना की अविच्छिन्नता एक सर्वस्वीकृत तथ्य १.४५
प्राण चेतना की झलक-झाँकी मृत शरीरों में १.४७
चेतना जगत की सुलझती गुत्थियाँ १.४८
मरणोत्तर जीवन को नकारा नहीं जा सकता १.५१
मृत्यु का स्वरूप १.५४
मृत्यु की तैयारी १.५६
मृत्यु से वापस लौटने वालों के अनुभव १.५८
मृत्यु उतनी भयानक नहीं जितनी सोचते हैं १.६४
विक्षुब्ध जीवात्मा की दयनीय स्थिति प्रेत-दशा १.६८
न स्वयं विक्षुब्ध हों न औरों को विक्षुब्ध करें १.७२
अनीति का प्रतिशोध १:७४
विक्षुब्ध आत्मा का अभिशाप १.७५
अत्यधिक मोह के कष्टकर परिणाम १.७६
विषय पृष्ठ
नगाड़े की चोट और पैसे की थाप १.७८
सम्पत्ति का मोह सदा विपत्तियाँ लाता है १.७९
कुकृत्यों से वस्तुएँ भी अभिशप्त होती हैं १.८१
अनीति त्रास ही त्रास देती है १.८४
अभिशप्त स्वर्ण सम्पदाओं से जुड़े दुर्योग १.८८
अभिशप्त यान एवं भवन १.८९
जलयान भी दुर्भाग्यपूर्ण होते हैं १.९२
क्या वास्तव में मिस्र के पिरामिड अभिशप्त हैं १.९५
अवांछनीय संग्रह का दुर्भाग्यपूर्ण अन्त १.९५
परोक्ष जगत के अस्तित्व को स्वीकारना ही पड़ेगा १.९८
जीवनकाल की मन:स्थिति मरने के उपरान्त भी १.१०२
साक्षी देने वाली छाया मूर्ति १.१०३
यही तो वह स्थान है १.१०४
मरणोत्तर जीवन तक सचाई: एक तथ्य १.१०६
मृत्यु के बाद जीवन १.१०७
जीवितों के भी भूत होते हैं १.१०९
मरणोत्तर जीवन में सूक्ष्म शरीर की गतिविधियाँ १.११०
आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण भूत १.११३
ह्वाइट हाउस में मरणोत्तर जीवन १.११६
भूत बड़े-बड़ों ने देखा १.११७
जड़ वस्तुओं के भी प्रेत १.११८
परकाया प्रवेश की शक्ति सामर्थ्य १.१२१
प्राण-परिवर्तन की अद्भुत घटना १.१२४
स्वजनों, सुहृदों से सम्बन्ध के इच्छुक भूत १.१२७
शाही परिवार के लोगों का भूत सम्पर्क १.१३०
आइये ! आपका प्रेतों से साक्षात्कार करायें १.१३१
भटकती प्रेतात्मा का प्रतिशोध १.१३५
प्रेतों का अस्तित्व और स्वभाव १.१३७
पाल ब्रन्टन का मृतात्माओं से सम्पर्क १.१३८
चर्च के पादरी भी प्रेत बाधा की चपेट में १.१४०
भूत एक भ्रम भी, एक वास्तविकता भी १.१४२

विषय पृष्ठ

प्रेतबाधा एक चिकित्सा योग्य मनोरोग १.१४४
प्रवाह में बहकर मनुष्य प्रेत-पिशाच १.१४६
भी हो सकता है १.१४८
भूत से डरें नहीं वह तो बस भूत है १.१४९
शंका डायन मनसा भूत १.१५५
भूतबाधा और उसका निवारण

अध्याय-२

पितर २.१
उच्च स्वभाव-संस्कार वाली अशरीरी आत्माएँ-पितर २.१
सामान्य स्थिति में आकर्षण २.३
जीवन के अदृश्य रहस्य २.४
पितर-सम्पर्क से लाभ ही लाभ २.५
आत्मीयों को पितरों के अनुग्रह-अनुदान २.१०
भयानक आकृति प्रेतात्मा ने भला किया २.१२
अनसुनी चेतावनी २.१२
ममता भरा मार्गदर्शन २.१३
प्रगतिमार्ग के पथ-प्रदर्शक पितर २.१४
संगीत शिक्षक आत्मीय पितर २.१६
रणभूमि में प्रत्यक्ष सहायता-मार्गदर्शन २.१८
वह गरीब देखते-देखते लखपति बन गया २.१९
अविज्ञात की अनुकम्पा के प्रति अकृतज्ञ न हों २.२१
लूट-खसौट, अनीति-अन्याय की अवरोधक पितर-सत्ताएँ २.२३
सूक्ष्म-शक्तियों के उभार के विलक्षण परिणाम २.२५
ये अप्रत्याशित घटनाएँ क्यों ? २.२६
मारने वाला बड़ा कि बचाने वाला २.३१
पितरः अदृश्य सहायक २.३३
मात्र संयोग ही नहीं २.३४
उदार दैवी अनुदानों के कुछ प्रसंग २.३६
प्रत्यक्ष एवं परोक्ष के मध्य सघन सम्पर्क स्थापित हो २.३९

विषय पृष्ठ

मरने के बाद भी आत्माएँ धरतीवासियों से सम्बन्ध रखे रहती हैं २.४१
हमारे अदृश्य किन्तु शुभचिन्तक सहायक २.४४
पितर आत्माएँ डराती नहीं सत्प्रेरणाएँ उभारती हैं २.४६
अन्ध विश्वास कहकर अवहेलना न करें, श्रद्धा-कृतज्ञता भी जीवित रखें २.५०
पितरों को श्रद्धा दें, वे शक्ति देंगे २.५१
सर्वपितृ अमावस्या २.५५
पितृ ऋण और श्राद्ध तर्पण २.५७
श्राद्ध तर्पण का प्रयोजन २.५९

अध्याय-३

कर्मफल ३.१
संसार कर्मफल व्यवस्था के आधार पर चल रहा है ३.१
देर है, अन्धेर नहीं ३.४
कर्मफल व्यवस्था के प्रति अनास्था ही नास्तिकता ३.५
क्या स्वर्ग एवं मुक्ति इतने सुगम व सस्ते हैं ३.९
गहना कर्मणो गतिः ३.१०
चित्रगुप्त का परिचय ३.१३
पाप-पुण्य की स्वसंचालित प्रक्रिया ३.१७
आकस्मिक सुख-दुःख ३.१९
तीन दुःख और उनका कारण ३.२०
कर्मो की तीन श्रेणियाँ ३.२२
कर्मफल और उसके परित्याग सिद्धान्त की अपूर्णता ३.२५
कर्मों का फल ईश्वर के अर्पण कीजिए ३.२७
कर्म-फल और उसकी सुनिश्चितता ३.२८
विलम्ब को विधान की असफलता न माना जाय ३.३१
जाति, आयु और भोग-त्रिविध कर्मविपाक ३.३४

विषय	पृष्ठ
सत्कर्म ही स्वर्ग है, दुष्कर्म अपवर्ग है	३.३७
कर्म सिद्धान्त को समझा जाय	३.३९
अपनी दुनिया के स्वयं निर्माता	३.४२
दुःख का कारण पाप नहीं है	३.४४
भाग्यवाद की भ्रान्त धारणा और प्रारब्ध का यथार्थ	३.४८
प्रारब्ध न तो अन्धविश्वास है और न अकारण	३.५१
स्वर्ग-नरक की स्वसंचालित प्रक्रिया	३.५३
परलोक कहाँ है ?	३.५८
परलोक जीवन और स्वर्ग-नरक	३.६६
स्वर्ग-नरक की मान्यता गलत नहीं है	३.७३
कलुषित अन्तःकरण स्वयं दण्ड भोगता है	३.७७
पुनर्जन्म की तैयारी	३.७९
कुसंस्कार धोएँ भूल सुधारें	३.८१
कुसंस्कारों का परिपाक कष्टों के रूप में	३.८३
संचित पाप कर्मः संकटों के कारण	३.८७
प्रायश्चित प्रक्रिया से भागिये मत	३.९०
प्रायश्चित प्रक्रिया के चार चरण	३.९४
अभिवर्धन से पूर्व परिशोधन आवश्यक	३.९८
चान्द्रायण का सामान्य व्रत विधान	३.१०१
पाप पर से पर्दा हटाया जाय	३.१०१
चान्द्रायण से शक्ति-अभिवर्धन	३.१०२
इष्टापूर्ति एवं तीर्थयात्रा	३.१०३
धर्मप्रचार की पदयात्रा-तीर्थयात्रा	३.१०५
अध्याय-४	
पुनर्जन्म	**४.१**
मरणोत्तर जीवन और उसकी सच्चाई	४.१
मन ही सब कुछ नहीं	४.३
लोकोत्तर जीवन की विज्ञान द्वारा स्वीकृति	४.४
जन्म-मृत्यु मात्र स्थूल जगत की घटनाएँ	४.६
कालातीत चेतना प्रवाह	४.१२
जीवन सत्ता का चैतन्य स्वरूप	४.१४
अणु-अणु में संव्याप्त विराट चेतना	४.१७
कोशिका की सत्ता का मूल स्वरूप क्या है	४.१८
खोज चेतन आत्मा की जड़ उपकरणों के माध्यम से	४.१९
पुनर्जन्म का सिद्धान्त और विज्ञान	४.२२
पुनर्जन्म सिद्धान्त को भली भाँति समझा जाय	४.२५
नया जन्म कैसे मिलता है ?	४.३२
मरण के उपरान्त पुनर्जन्म सुनिश्चित है	४.३३
मृत्यु जीवन का अन्त नहीं	४.४०
नेहरूजी के जन्म का गुप्त रहस्य	४.४२
अन्यान्य धर्म भी देते हैं पुनर्जन्म की साक्षी	४.४३
विदेशों में पुनर्जन्म की घटनाएँ एवं मान्यताएँ	४.४५
जन्म-मृत्यु का अविराम क्रम	४.५०
पुनर्जन्म का पूर्वाभास	४.५५
जन्मान्तर प्रगति या पतन के आधार-आत्मसत्ता के संकल्प एवं कर्म	४.५७
चक्कर चौरासी लाख योनियों का	४.५७
अज-रहस्य	४.६०
आत्मसत्ता द्वारा स्वयं को शाप और वरदान	४.६२
लिंग परिवर्तन भी भावसत्ता के ही अनुसार	४.६३
पुनर्जन्म पुनरावर्तन नहीं, यात्रा का अगला चरण	४.६४
अन्तराल में प्रतिष्ठित प्रतिभा क्षेत्र	४.६८
प्रतिभायें पुनर्जन्म का संचित ज्ञान	४.७०
ज्ञान का भी पुनर्जन्म होता है	४.७२
संस्कार भी चेतना के साथ चलते हैं	४.७८
आत्मा का अस्तित्व-अमान्य न किया जाय	४.८२
संस्कार और अमुक्त वासना	४.८४

भूत-प्रेत

मरण सृजन का अभिनव पर्व

जिसने जन्म लिया है, उसका मरण सुनिश्चित है । सृष्टि का क्रम ही जन्म-मरण की धुरी पर घूम रहा है । जो जन्मा है सो मरेगा ही । जीवनेच्छा कितनी ही प्रबल क्यों न हो मरण से बचा नहीं जा सकता । मृत्यु की चलती चक्की में अन्न के दानों की तरह हमें आज नहीं, कल पिसकर ही रहना है। इस तथ्य को न तो झुठलाया जा सकता है और न उसका सामना करने से बचा जा सकता है । मरण को एक ध्रुव सत्य ही मानकर चलना चाहिए । अनिच्छा, भय-भीरुता अथवा कृपण-कातरता कुछ भी मन में क्यों न हो, प्रकृति का सुनिश्चित क्रम रुकेगा नहीं; हमारा परमप्रिय लगने वाला आज का सुनिश्चित अस्तित्व कल महान् शून्य में विलीन होकर रहेगा। आज की यथार्थता कल विस्मृति के गर्त में गिरकर सदा के लिए अविज्ञात अन्तरिक्ष में बिखर जायेगी ।

मरण से भयभीत होकर आतुर लोग ऐसा सोचते हैं कि इन्हीं क्षणों जितना अधिक आनन्द उठा लिया जाय उतना ही उत्तम है । वे इन्द्रिय लिप्सा एवं मनोविनोद के लिए अधिकाधिक साधनं जुटाते हैं और उसके लिए जो भी उचित-अनुचित करना पड़े, उसे करने में नहीं चूकते । यह उपभोग की आतुरता कई बार तो इतनी बढ़ी-चढ़ी और इतनी अदूरदर्शी होती है कि उपभोग का आरम्भ होते-होते विपत्ति का वज्र सिर पर टूट पड़ता है। अपराधियों और कुकर्मियों की दुर्गति होती आये दिन देखी जाती है । कइयों को तुरन्त ही प्रतिरोध या प्रतिशोध का सामना नहीं करना पड़ता । सामयिक सफलता भी मिल जाती है, पर ईश्वरीय कानून तो उल्टे नहीं जा सकते । कर्मफल की सच्चाई न केवल अध्यात्म-दर्शन के आधार पर वरन् भौतिक मनोविज्ञान के सिद्धान्तों से भी सुनिश्चित है । कुकर्मी को इस तरह न सही, तो उस तरह दुर्गति का सामना करना ही पड़ता है ।

जब तक जीना तब तक मौज से जीना, ऋण करके मद्य पीने वाली नास्तिकतावादी नीति, मरण की भयंकरता के अनुरूप जीवन को भी भयानक बना लेने की मूर्खता करना है । असीम उपभोग चाहा गया और अप्रत्याशित संकट उभरा यह कहाँ की समझदारी हुई । उच्छृंखल भोगलिप्सा मन में उठने से लेकर तृप्ति का अवसर आने तक हर घड़ी आशंका, व्यग्रता, जुगुत्सा, चिन्ता की इतनी भयानक अपने साथ जोड़े रखती है कि उपभोग की तृप्ति बहुत भारी पड़ती है । सच तो यह है कि अभाव सहने की अपेक्षा उसका कहीं अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है।

यह तो मृत्युभय को और भी अनेक गुना बढ़ा देने वाली बात हुई । सोचा यह गया है कि मरने तक जितना अधिक आनन्द उठाया जा सकता हो, उतना उठा लिया जाय और नीति-अनीति का विचार न करके, इस समय से जितनी अधिक तृप्ति सम्भव हो उतनी प्राप्त कर ली जाय । इसलिए अचिन्त्य-चिन्तन और अकर्म कर्म को अपनाने का दुस्साहस भी किया गया, पर सृष्टि व्यवस्था ने उसे भी कहाँ पूरा होने दिया । तृप्ति के क्षण आने से पहले इतनी आत्म-प्रताड़ना सहनी पड़ी कि उपभोग की सारी सरलता ही नष्ट होकर रह गई । जो मिला वह इतना अधिक दुष्परिणाम साथ लाया कि कामना पूर्ति के सुख की अपेक्षा व्यथा, वेदना भरा पश्चात्ताप अपेक्षाकृत कष्टसाध्य ही सिद्ध हुआ ।

इस आतुरता से कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा । एक दिन मरने की अपेक्षा आत्म-प्रताड़ना का, आत्म-हत्या का कष्ट पग-पग पर सहन करना कहाँ की बुद्धिमत्ता है । एक दिन तो सभी को मरना पड़ेगा, पर आतुर उपभोग की ललक में कुकर्मों पर उतारू मनुष्य हर कदम पर मृत्यु जैसी झुलसी व्यथा को सहन करता है । मरणोत्तर जीवन पर अविश्वास करने वाले नास्तिक प्रकृति के मनुष्य निश्चित रूप से उनकी अपेक्षा अधिक घाटे में रहते हैं, जो अध्यात्म दर्शन के आधार पर मृत्यु को एक वस्त्र परिवर्तन जैसी सहज सामान्य प्रक्रिया मानते हैं और आत्मा का मरणोत्तर जीवन बना रहने की बात पर विश्वास करते हैं।

मृत्यु वस्तुतः उतनी भयानक है नहीं, जितनी कि समझी जाती है । आत्मा का अस्तित्व अब एक सुनिश्चित तथ्य मान लिया गया है । वे दिन लद गये जब नौसिखिये, अत्युत्साही बुद्धिवादी मनुष्य को एक जड़ उत्पादन कहा करते थे और शरीर की मृत्यु के साथ ही आत्मा का अस्तित्व न रहने का प्रतिपादन करते थे । पुनर्जन्म के अतिरिक्त सूक्ष्म शरीर धारण किये रहने तक के अब तक इतने सुदृढ़ प्रमाण मिल चुके हैं कि उनकी यथार्थता से इन्कार करने का कोई साहस नहीं कर सकता। जन्म-जात विशेषताओं का बहुत पहले वंश परम्परा के साथ सम्बन्ध जोड़ा जाता था, अब यह मान लिया गया है कि वंश

परम्परा से सर्वथा भिन्न प्रकार की जो असाधारण विशेषताएँ मनुष्यों में जन्म-जात रूप से पाई जाती हैं, उनका कारण प्राणी के पूर्व जन्म के संचित संस्कार ही हो सकते हैं । विज्ञान और वुद्धिवाद ने पिछली शताब्दियों में जो प्रगति की है, उसके आधार पर मरणोत्तर जीवन की प्रामाणिकता में सन्देह करने का कोई कारण शेष नहीं रहा है । पैरा साइकोलाजी- मैटर फिजिक्स एवं आकाल्ट साइंस के क्षेत्र में एक के बाद एक ऐसे तथ्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जो मरणोत्तर जीवन की यथार्थता को एक सुनिश्चित तथ्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं ।

बुद्धिमत्ता अब यह नहीं कहती कि मरने के बाद अस्तित्व नहीं रहेगा, इसलिए अधिकाधिक उपभोग के लिए अनीति स्तर तक बढ़ा जाय । यह सोचना दोनों ही दृष्टि से गलत है । एक तो मरणोत्तर जीवन और कर्मफल के पुराने सिद्धान्त अब नई कसौटियों पर भी तथ्यपूर्ण सिद्ध हो रहे हैं । दूसरे अनियन्त्रित उपभोग के प्रयत्नों में और उपभोग के उपरान्त उत्पन्न हुए संकटों में जो कष्टकर स्थिति जुड़ी रहती है, वह उस क्षणिक एवं स्वल्प उपभोग की तुलना में कहीं अधिक महँगी पड़ती है ।

मृत्यु से डरने की अपेक्षा यही उत्तम है कि उसे एक सुनिश्चित तथ्य मानकर जीवन की सहचरी मानकर चला जाय और अनन्त जीवन प्रवाह में मरण को एक छोटा विश्राम मात्र समझा जाय । जीवन भी सृष्टि प्रवाह और परमेश्वर की तरह ही अनादि और अनंत है । रात्रि में जिस प्रकार हर रोज सोया जाता है और दूसरे दिन सवेरे ही उठकर फिर नया कार्यक्रम चलाया जाता है; उसी प्रकार मरण का विश्राम लेकर हर बार नया जीवन नये दिन की तरह आरम्भ होता है । अगले दिनों की, भविष्य की, चिन्ता व्यवस्था में हम सर्वदा संलग्न रहते हैं। रात्रि को सोना पड़ेगा और अगले दिन उठना होगा ऐसा जो सोचेगा वह सनकी कहलायेगा । मरने के बाद भी जन्म लेना पड़ेगा अथवा सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व रहेगा । दोनों ही अवसरों पर सुखद परिस्थितियों की आवश्यकता पड़ेगी और वे साधन आज के सत्प्रयत्नों से ही उपयुक्त समय के लिये संचित किये जा सकते हैं । अस्तु मरण का तथ्य ध्यान में रखते हुए हमें मरणोत्तर जीवन के समय के लिए उपयोगी साधन, सामग्री जुटाने के लिए निरत रहना चाहिए । यह प्रयोजन सत्कर्म साधना से ही सम्भव हो सकता है । अस्तु उसे जीवन काल में परिपूर्ण तत्परता के साथ ही करते रहना उचित है ।

पुराने कपड़े उतारकर नये कपड़े बदलने में हमें तनिक भी बुरा नहीं लगता वरन् प्रसन्नता होती है । आज के बोझिल जीवन की अपेक्षा भविष्य में अधिक कोमल, हल्का और प्रफुल्ल अवसर बालकपन के रूप में मिलेगा तो इसमें खिन्न होने की क्या बात है ? आज शरीर और परिवार की छोटी-सी परिधि में कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटने की भारवाही स्थिति से आगे बढ़कर कुछ समय उन्मुक्त अन्तरिक्ष में विचरण करने का अवसर मिलेगा और ईश्वर की अदृश्य गतिविधियों के सम्पर्क में रहना पड़ेगा तो उस कौतूहल पूर्ण स्थिति में रस लेने में भय क्यों माना जाय ? यात्राओं का, प्रवास पर्यटन का आनंद उठाने की इच्छा सभी को रहती है । उन दिनों घर छोड़ना पड़ता है और ढर्रे का जीवन क्रम सम्भव नहीं रहता । तो भी अजनवी और अनोखी वस्तुएँ देखने, नयों के सम्पर्क में आने की प्रसन्नता सन्तोष देती है । यही बात मरणोत्तर जीवन के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। उसे सुखद यात्रा प्रसंग गिना जा सकता है ।

मृत्यु का भय उन्हें ही भयभीत करता है, जिन्होंने मरणोत्तर जीवन के लिये सुखद स्थिति प्राप्त करने की कोई पूर्व तैयारी नहीं की है । अनिश्चित अन्धकार में प्रवेश करना ही भयानकता की आशंका बनकर मनुष्य को डराता है । विशेषतया यह डर तब और अधिक बढ़ जाता है, जब अगले दिनों अधिक गहरी विपत्ति सामने प्रस्तुत होने की आशंका रहती हो । जिसने संकीर्ण, स्वार्थपरता और अनैतिकता का आश्रय लेकर जिन्दगी के दिन काटे हैं, उसकी अन्तरात्मा को अदृश्य चेतना आगाह करती रहती है कि इन आज की दुष्प्रवृत्तियों का परिणाम कल भयानक विपत्ति के रूप में ही सामने आ रहा है । यह आगाह ही मृत्यु भय को सघन बनाता है और मरने का नाम सुनते ही कँपकपी आती है ।

मृत्यु के उपरान्त जीव के कर्मों का लेखा-जोखा परमेश्वर के सामने होता है और न्याय-तुला पर तौलकर दण्ड, पुरस्कार का विधान बनता है । अपराधी मनःस्थिति यह जानती है सर्वान्तरयामी न्यायाधीश से कुछ छिपा नहीं है, वह कर्म और उसके उद्देश्य को भली प्रकार जानता है और बिना किसी पक्षपात अथवा दया-निर्दयता का आश्रय लिये परिणाम भुगतने के लिये प्राणी को वाध्य करता है । इस परीक्षा की घड़ी में अपना खोटापन-अपने लिए कितने विघातक परिणाम प्रस्तुत करेगा यह नंगा तथ्य जब अचेतन मन की आँखों के सामने घूमता है, तो उसकी बेचैनी का ठिकाना नहीं रहता । वध-स्थल पर ले जाये जाने वाले भयभीत बलि-पशु की तरह मृत्यु का भय सामने आते ही अपनी चेतना भी उसी प्रकार काँपती है ।

जिन्होंने सत्कर्म किये हैं और जीवन की विभूतियों का सदुपयोग किया है, उन्हें निश्चिन्तता रहती है कि अपना भविष्य

उज्ज्वल है । ऊँचे पद पर स्थानान्तर होने वाले कर्मचारी खिन्न नहीं प्रसन्न होते हैं। वे जानते हैं कि जहाँ जा रहे हैं वहाँ अधिक सम्मान और सुविधा साधन मिलेंगे । ऐसे लोग पुराना स्थान छोड़ते हुए दुखी नहीं, प्रसन्न होते हैं । दुख होता भी है तो वह विदाई विछोह जैसा क्षणिक होता है । ऐसे तो कन्या भी ससुराल जाते समय अपनी सखी-सहेलियों से विछुड़ते हुए दुखी होती है, पर वह दुख क्षणिक होता है । विदाई के तुरन्त बाद उसे सुसराल के सुहागरात के सुखद सपने आने लगते हैं और वियोग के हल्के से भार को भी कुछ ही क्षणों में भुला देती है । सुकृतकर्मी लोग मरने के समय स्वजन सम्बन्धियों से विछुड़ते समय कुछ खिन्न भी हो सकते हैं, पर सुखद भविष्य की निश्चिन्तता के कारण वह कष्ट उन्हें न तो भारी पड़ता है, और न देर तक ठहरता है । उनके लिए मृत्यु एक पदोन्नति सहित होने वाले सुखद स्थानांतरण जैसी प्रसन्नता और निश्चिन्तता लिये हुए ही आती है ।

सत्कर्म और सदुद्देश्य लेकर ही जीना उचित है । इस राह पर चलते हुए यदि अभाव, अवरोध अथवा संकट का सामना करना पड़े और वह मृत्यु जैसा कष्ट लेकर सामने आ उपस्थिति हो, तो भी विचलित होने की आवश्यकता नहीं। मरना तो एक दिन निश्चित है । वह घड़ी कब आ पहुँचे, इसका भी ठिकाना नहीं । जब सामान्य रीति से कभी भी मरना हो सकता है तो सदुद्देश्य की रक्षा में मृत्यु के उपस्थित होने पर ही क्यों भीरुता प्रकट की जाय । सामान्य मौत से मरने की अपेक्षा सदुद्देश्य के लिए मरना आत्म-सन्तोष देता है, अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करता है और शूर, साहसी महामानवों की श्रेणी में अपने को बिठाता है । इतने लाभ जिस मृत्यु के साथ जुड़े हुए हैं, वस्तुतः वह चारपाई पर मरने वालों की तुलना में कहीं अधिक श्रेयस्कर एवं सौभाग्यशालिनी है ।

मौत-जिन्दगी की सहचरी है । दोनों जुड़वाँ बहिनें हैं । एक जहाँ रहेगी वहाँ दूसरी देर-सवेर में आ ही पहुँचेगी । एक के बिना दूसरी अपूर्ण है । हमें इन दोनों का ही सम्मान करना चाहिए और दोनों का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए योजनावद्ध जीवन पद्धति का निर्धारण करना चाहिए।

आश्चर्य इस बात का है, कि जीवन के साथ गुथी हुई इस गहरी सच्चाई को लोग गम्भीरता से नहीं देखते और उस महायज्ञ की पूर्व तैयारी इस प्रकार नहीं करते, जैसी कि उन्हें करनी चाहिए ।

समझा जाता है कि अन्य लोग ही मरेंगे । हमारे सामने यह भयंकर समस्या कभी भी न आयेगी, जिसमें शरीर छोड़ना पड़े, संसार से विछुड़ना पड़े और अनिश्चितता के धरातल पर हवा में तैरते रहना पड़े, उपेक्षाएँ सभी बुरी होती हैं। विस्मरण को भारी कमी माना जाता है, पर मृत्यु को भूल जाने का तो ऐसा दुष्परिणाम सामने आता है, जिसकी क्षतिपूर्ति आगे चलकर भी कभी पूरी नहीं हो सकती ।

जीवन एक अनुपम सुयोग है । अन्य प्राणियों में से किसी की भी शारीरिक सरंचना और मानसिक संगठन ऐसी उच्चकोटि का नहीं है, जिसे देखकर देवताओं का भी मन ललचाए और वे इसी के साथ जुड़े रहने में प्रसन्नता अनुभव करें । इस काया को सुरदुर्लभ होने की मान-प्रतिष्ठा मिले ।

ऐसा शरीर खाने-पीने के ही कोल्हू में पिलते हुए समाप्त हो जाय । कुछ महत्वपूर्ण न बन पड़े, तो समझना चाहिए कि जन्म व्यर्थ ही चला गया । पेट और प्रजनन के लिए जीवित रहने वाले प्राणियों में तो मनुष्य की स्थिति सर्वोत्तम है और इस योग्य है कि महान उपलब्धि के अनुरूप अपनी कृतियों को भी ऐसी बना सके, जिसे अभिनन्दनीय कहा जा सके, जिसे देखकर लोग अनुकरणीय और अभिनन्दनीय कहें, उससे प्रेरणा प्राप्त करने का प्रयत्न करें । किन्तु ऐसा होता नहीं । मौत की चर्चा करने पर बुरा माना जाता है । इस प्रकार के कथन को अशुभ कहा जाता है । किसी के सम्मुख उसके मरण की कामना भर कर देना गाली देने से भी बुरा माना जाता है । रात के सपने में अपनी या अपने किसी प्रियजन की मृत्य का दृश्य दीख पड़े तो उदासी छा जाती है, किसी अनिष्ट की आशंका से दिल धड़कने लगता है।

मृत्यु हर घड़ी सिर पर सवार रहे, यह बुरा है। पर यह उससे भी अधिक बुरा है, कि उसे एक प्रकार से विस्मृत ही कर दिया जाय । भुला देने पर मनुष्य अहंकारी हो जाता है। उद्दण्डता और दुष्टता करने लगता है । कर्मफल की-ईश्वर के दरबार में पेश किए जाने की ओर कर्मों के अनुसार दण्ड मिलने की यथार्थता इतनी धुंधली हो जाती है, कि उसका अस्तित्व ही एक प्रकार से आँखों से ओझल हो जाता है ।

सुन्द-उपसुन्द, वृत्रासुर, रावण, हिरण्यकश्यपु आदि ने स्वेच्छामरण का वरदान प्राप्त कर लिया था । इस मान्यता के मन में बसते ही वे दुष्कर्मों पर उतारू हो गए । जब मरना ही नहीं है, तो फिर डर किस बात का ? संसार वालों को डरा या फुसलाकर अपने वशवर्ती बना लेने की योग्यता तो अपने में है ही, फिर अनीति अपनाकर मन चाहे लाभ तत्काल प्राप्त कर लेने के अवसरों को हाथ से क्यों जाने दिया जाय? निरंकुश निर्भय और निश्चिन्त व्यक्ति यदि उद्धत स्तर के हैं तो अपनी उद्दण्डता

को चरम सीमा तक पहुँचाए बिना रहते नहीं । संसार के आताताइयों का इतिहास पढ़ने से विदित होता है, कि उनकी कोई आवश्यकता नहीं अड़ी हुई थी, जिसके कारण वे अत्याचार एवम् अपराधों के पहाड़ जमाकर लेने की बात सोचने पर प्रवृत्त होते । मौत को भुला देने से मनुष्य इस बात को भूल जाता है कि यह जीवन ही सब कुछ नहीं है । इसकी तुलना में कहीं अधिक लम्बे समय तक आत्मा को ऐसी स्थिति में रहना पड़ता है, जहाँ सत्कर्मों के अतिरिक्त और कोई भी सहायक नहीं होता, ईश्वर भी नहीं। क्योंकि वह कर्मों के आधार पर ही किसी का मान या तिरस्कार करता है ।

मृत्यु को न भूलना इससे कम भयंकर नहीं है । उससे सिर पर एक ऐसा भय समा जाता है, जो काल्पनिक नहीं वास्तविक होता है । फिर मौत का कोई ठिकाना नहीं, वह बालक, युवक, प्रौढ़ या वृद्ध का अन्तर नहीं करती और न उसके आगमन का कोई निश्चित समय ही मानती है । ऐसी दशा में भावुक या यथार्थवादी किसी भी समय मौत के आगमन की सम्भावना देखते रहते हैं। ऐसी दशा में उनका जीवन ही नीरस और भारभूत हो जाता है । हर घड़ी व्याकुलता बनी रहती है । स्वजन सम्बन्धी भी विराने और बिछुड़ने वाले लगते हैं । उत्साहपूर्वक काम करने का भी मन नहीं करता । क्योंकि जब मेले के यात्री जैसी अपनी स्थिति है, तो फिर किसी प्रयोजन में व्यर्थ सिर खपाना किस काम आएगा ? ऐसी ही उदासीनता के वातावरण में राजा परीक्षित ने अपने राज-पाट का काम छोड़ दिया था और कथा श्रवण करके सद्गति के एकाकी प्रयास में जुट गए थे। किन्तु यह तो सही तरीका नहीं ?

घर पर डकुओं का आक्रमण होने के समाचार से दिल दहल जाता है । उनकी सूचना गलत भी हो सकती है और उनका आक्रमण निष्फल भी बन सकता है । किन्तु मृत्यु के बारे में तो कुछ नहीं कहा जा सकता, कि उसका आक्रमण कब चढ़ दौड़े और देखते-देखते गर्दन मरोड़कर स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन कर दे । गम्भीरतापूर्वक यदि कोई मृत्यु की उपस्थिति निकटवर्ती अनुभव करने लगे, तो उसकी स्थिति विक्षिप्त जैसी हो जाएगी । उससे कुछ भी करते धरते न बन पड़ेगा ।

जब मृत्यु का स्मरण और विस्मरण दोनों ही विपन्नता उत्पन्न करते हैं, तो उसके सम्बन्ध में क्या दृष्टिकोण अपनाया जाय जिससे सामान्य, स्वाभाविक और सही स्थिति बनी रहे।

इस संदर्भ में गीताकार ने एक सही दृष्टिकोण दिया है कि आत्मा को अमर माना जाय और मरण को नए कपड़ा बदलने जैसा अनुभव किया जाय । मृत्यु को अपनी सत्ता का अन्त न माना जाय, वरन् लम्बी यात्रा के बीच-बीच पड़ने वाली धर्मशाला की तरह अपनी स्थिति का अनुभव किया जाय । इसके फलस्वरूप दूरदर्शिता का उदय होता है । पिछले जन्मों में भुगती गई भ्रान्तियों की कठिनाइयाँ तथा परिस्थितियाँ याद आती हैं और जो सोचता है कि उन बुरे दिनों की पुनरावृत्ति न होनी चाहिए, जिसके कारण हेय परिस्थितियों में फिर से पिसना-पिलना पड़े । यह भय कर्त्तव्य पालन की प्रेरणा देता है, ताकि उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाओं के विनिर्मित होते चलने की सम्भावना स्पष्ट होती रहे ।

मृत्यु के समय इस पंच भौतिक शरीर का ही अन्त होता है, किन्तु इसके बाद भी सूक्ष्म शरीर की सत्ता बनी रहती है। सूक्ष्म शरीर के साथ योग्यताएँ, क्षमताएँ, आदतें एवम् धारणाएँ साथ जाती हैं और उन्हीं के साथ उलझ-सुलझकर जीवधारी स्वर्ग-नरक का सुखद-दुखद अनुभव करता रहता है । इसलिए सत्प्रयत्नों को निरंतर अन्तिम समय तक जारी रखा जाय ताकि अगले जन्म में भी वह संचित सुसंस्कारिता साथ रहे और जन्म के साथ ही वे संस्कार एवम् सुविधा-साधन उपलब्ध हो सकें। जो सामान्यतया बहुत प्रयत्न करने पर बहुत दिन में हस्तगत होते हैं ।

मरण के सम्बन्ध में यही सन्तुलित दृष्टिकोण यही है कि शरीर बदलते हैं, आत्मा नहीं मरती । साथ ही वह पिछला आत्मिक उपार्जन भी साथ लेकर प्रयाण करती है । इस आधार पर हर कोई अपने इस लोक के साथ परलोक को भी समुज्ज्वल बना सकता है । इसकी प्रेरणा आत्मा की अमरता लोक सिद्धान्त से ही मिलती है और वही सदा संतुलन भी बनाए रहती है ।

मृत्यु से भयभीत क्यों ?

मृत्यु के समय अधिकतर लोग बहुत व्यथित और उद्विग्न पाये जाते हैं । इसका कारण शारीरिक नहीं, मानसिक है । एक तो मनुष्य मोह ममता के बन्धन में बेतरह जकड़ जाता है और उन्हें तोड़ते हुए कष्ट होता है । ढीली हथकड़ी-बेड़ी आसानी से कट जाती है, यदि वे शरीर में बहुत कस कर बँधी हों तो काटने में कष्ट होगा । मेरा पैसा, मेरा घर, मेरा कुटम्ब यह 'मेरा' जितना गहरा और कड़ा होगा, उसका टूटना मानसिक दृष्टि से उतना ही भारी पड़ेगा । यदि पहले से ही मनुष्य यह सोचता रहे कि धन सम्पदा, समाज या परमेश्वर की है । मैं उसको कार्यो में प्रयुक्त करने वाला कर्मचारी भर हूँ । स्वामित्व मेरा किसी पर नहीं, तो उसे वस्तुओं से मोह

न बढ़ेगा और वे छूटते समय कष्ट न देंगी । इसी प्रकार सब जीवों को ईश्वर का अंश और पुत्र समझ कर स्वतन्त्र इकाई माना जाय । परिवार रूपी उद्यान का अपने को माली भर समझा जाय तो फिर कुटुम्बियों से ममता न बढ़ेगी । स्नेह, सद्भाव के निर्वाह और कर्त्तव्य पालन भर में संतोष और आनन्द होता रहेगा । उनके वियोग में वैसी पीड़ा न होगी, जैसी आमतौर से अज्ञानग्रस्त लोगों को होती है ।

बहुत से लोग अपने बाद की स्थिति पर विचार करते-करते मृत्यु से भयभीत होने लगते हैं । मेरे बाद न जाने क्या होगा ? मेरे मर जाने पर बीबी बच्चे क्या करेंगे ? कहाँ किसका आश्रय लेंगे ? पता नहीं उन्हें क्या-क्या कष्ट उठाने पड़ेंगे ? इस प्रकार की कल्पनायें निरर्थक हैं । ऐसे लोग अपने को ही बीबी बच्चों का विधाता समझते हैं, कि जब तक वे जिन्दा हैं, बीबी बच्चों के लिये स्वर्ग संचय कर रहे हैं । उनके न रहने के बाद वे यातनापूर्ण नरक में गिर जायेंगे । मानो उन सबकी जीवन गाड़ी उनकी जिन्दगी से चल रही है, जिसके खत्म होते ही सबका खेल खत्म हो जायेगा । दूसरों के लिये अपने को सब कुछ समझना दम्भ है । जब हम नहीं थे, संसार का सारा काम चल रहा था और जब नहीं रहेंगे तब भी सब काम चलता रहेगा । संसार का कोई काम किसी के न रहने से रुकता नहीं । यह बात सही है कि हमारा जीवन आश्रितों के लिए आवश्यक है । किन्तु इस आवश्यकता का यह अर्थ कदापि नहीं है, कि हम अपने न रहने की कल्पना के साथ उनका जीवन जोड़कर कायरों की तरह मृत्यु भय से रोते, कलपते रहें । अपने बाद की कल्पना के भयावह चित्र बनाने के बदले हमारी बुद्धिमानी इसी में है, कि हम मरने से पूर्व ईमानदारी के साथ अपने आश्रितों की बहबूदी के लिए जो कुछ कर सकें, करें । ऐसा करने से ही अपने बाद की चिन्ता की सार्थकता है, केवल कल्पना करते रहना मूर्खता ही होगी । मृत्यु को भय का कारण बनाने की अपेक्षा, उसे अपने कर्मों का सजग प्रहरी बताकर चलने वाले सदाशयी व्यक्ति यशस्वी जीवन के अधिकारी बनते हैं ।

मृत्यु उतनी कष्टप्रद नहीं है, जितनी कि समझी जाती है । बीमारी आदि के कारण मरने से पूर्व कितना ही कष्ट क्यों न रहा हो, मरने का ठीक समय आने से पूर्व बेहोशी आने लगती है और पीड़ा के समस्त लक्षण विदा हो जाते हैं । मरने पर मनुष्य अनन्त शून्य में विलीन हो जाता है । जहाँ उसके सुखद स्वागत की तैयारी पहले से ही रहती है । आमतौर से बूढ़े लोग शान्ति और सन्तोषपूर्वक मरते हैं और जवानी में अधिक बेचैनी होती है । यह उद्विग्नता उनकी महत्वाकांक्षाओं की अतृप्ति के कारण होती है । जिनके सपने अधूरे रहते हैं वे मरते समय उतने ही बेचैन पाये जाते हैं । मौत का डर भी कई बार मरने वालों को व्यथित करता है ।

मृत्यु का भय अधिकतर सताता उन्हीं लोगों का है, जो इस मानव जीवन का महत्व नहीं समझते और इसकी लम्बी अवधि को आलस्य, विलास एवम् प्रमाद में बिता देते हैं और अपने आवश्यक कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों के प्रति ईमानदार नहीं रहते । कामों को अधूरा छोड़कर ढेर लगा लेने वाले जब देखते हैं, कि उनकी जीवन अवधि की समाप्ति निकट आ गई है और उनके काम अधूरे पड़े हैं, तब वे मृत्यु के भय से काँप उठते हैं । सोचते हैं मेरी जिन्दगी बढ़ जाती, मृत्यु का निरन्तर बढ़ा चला आ रहा अभियान रुक जाता तो मैं अपने काम पूरे कर लेता । किन्तु उनकी यह कामना पूरी नहीं हो पाती । मृत्यु आती है और अकर्मण्यता के फलस्वरूप उनकी चोटी पकड़ कर ले जाती है ।

इसके विपरीत जिसने अपने कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों को रुचि एवम् तत्परता से पूरा किया है, जीवन भर करने योग्य कार्यों की उपेक्षा नहीं की है, आयु के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग किया है, उसे मृत्यु से डरने का कोई कारण ही नहीं रह जाता। वह मृत्यु आने पर हँसता मुसकाता हुआ उसका स्वागत करता है और मृत्यु उससे सन्तुष्ट माता की तरह प्यार से गोद में उठाकर ले जाती और उन दिव्य स्थानों में पहुँचा देती है, जहाँ उसके कर्त्तव्य के पुरस्कार उसकी प्रतीक्षा कर रहे होते हैं । अकर्त्तव्यता एवं अकर्मण्यता दोनों ही ऐसे दोष हैं, जो मृत्यु का भय न केवल जागृत ही रखते हैं, बल्कि बढ़ाकर भयानक से भयानकतर बना देते हैं । मृत्यु का भय कायर की वृत्ति है कर्मवीर तो उसे मित्र तथा माता मानकर किसी समय भी उसका स्वागत करने को तैयार रहा करते हैं ।

यदि मृत्यु से भयभीत होने का स्वभाव स्थायी हो गया है और वह किसी प्रकार भी बदलते नहीं बनता, तो भी उसका लाभ उठाया जा सकता है । जिस प्रकार शत्रु का भय सदैव सतर्क एवम् सजग बना देता है, सुरक्षा के प्रबन्धों तथा व्यवस्था के लिए सक्रिय रखता है, उसी प्रकार मृत्यु को एक आकस्मिक आपत्ति समझकर सतर्क एवम् सावधान हुआ जा सकता है । यह बात सत्य है कि मनुष्य शरीर छोड़ने से उतना नहीं डरता जितना 'मृत्यु के बाद न जाने क्या गति होगी ? इस विचार से भयभीत होता है । उसे आशंका रहती है कि मृत्यु के बाद उसे भयानक तथा अँधेरे लोकों में भटकना होगा । कीट-पंतगों

की निकृष्ट योनियों में जाना होगा । बैल, भैंस, ऊँट, घोड़ा, गधा आदि बनकर वह सब दण्ड भोगना होगा। यह सब यातना सहनी होगी, जिसे हम आज अपनी आँखों से उन्हें भोगते देख रहे हैं ।

यदि यह आशंका मृत्यु भय को जन्म देती है, तब क्यों न ऐसे कर्मों, ऐसी गतिविधियों में संलग्न हो जाया जाये, जिससे कि अँधेरे लोकों तथा अधम योनियों की आशंका ही दूर हो जाये । अधिक से अधिक जितना प्रकाश, जितना आलोक और जितना उजाला हम इकट्ठा कर सकें, क्यों न कर लें । जिससे कि परगति में अपनी आत्मा के प्रकाश से अपना पथ प्रकाशित कर लें । इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं, कि उजाले की प्राप्ति उज्ज्वल एवम् आदर्श कर्मों से ही होती है । पुण्य, परमार्थ, परोपकार, परसेवा और पावन जीवन पद्धति से आत्मा में अक्षय प्रकाश के भण्डार भर जाते हैं । इससे पूर्व कि मृत्यु आये और अपमानपूर्वक चोटी पकड़ कर घसीट ले जाये । क्यों न सतपथ पर अग्रसर होकर प्रकाश का प्रबन्ध कर लिया जाये। क्यों न उस पुण्य प्रधान संबल को एकत्र कर लिया जाये जो हमारा, हमारी आत्मा के अनन्त एवं अगत पथ में सहायक बने ।

मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों में भय की गणना भी की गई है । किन्तु वह भय कायरता का नहीं । सतर्कता का लक्षण है । यों तो कोई मरना नहीं चाहता । मृत्यु से बचने का हर सम्भव उपाय किया करता है । सड़क पार चलते मोटर से बचना, नदी में नहाते समय डूबने से सावधान रहना, मृत्यु भय नहीं है । हिंस्र जन्तुओं, रोगों तथा शत्रुओं से जीवन रक्षा करने में यथासम्भव उपायों का करना स्वाभाविक है । निरर्थक एवं निरुद्देश्य मर जाना कोई वीरता नहीं, मूर्खता है । 'हाय मैं मर जाऊँगा' की भावना ही मृत्यु का वह भय है, जो कायरता की कोटि में आता है । मनुष्य को "हाय मर जाऊँगा" की हीन भावना के वशीभूत होकर कायरता का परिचय नहीं देना चाहिये।

'हाय मर जाऊँगा' की भावना में रो-तड़पकर मृत्यु से बचा तो जा ही नहीं सकता । उल्टे यह भावना जीवन को बोझिल एवं भयावह बना देती है । मृत्यु से निरपेक्ष रहकर जीवन रक्षा का हर संभव उपाय करते हुए आ जाने पर साहस पूर्वक उसका सहर्ष आलिंगन करने में ही पुरुषार्थ की शोभा है । महान मृत्यु के अवसर पर जीवन का मोह एक अश्रेयस्कर दुर्बलता है ।

मृत्यु का भय उत्पन्न करने में परलोक की चिन्ता का बहुत बड़ा हाथ है । वस्तुतः लोगों का यह सोचते रहना कि मर जाने के बाद न जाने हमारा क्या होगा ? हम कहाँ, किस लोक अथवा योनि में भ्रमण करेंगे ? न जाने हमारी सद्गति होगी अथवा अगति, मृत्यु भय को एक बड़ी सीमा तक बढ़ा देता है ? परलोक की चिन्ता ठीक है । वह करनी भी चाहिये। किन्तु इस शुभ चिन्ता से मृत्यु का अशुभ भय का पैदा होना बड़ी ही असंगत तथा अस्वाभाविक बात है । फिर भी परलोक की चिन्ता से लोगों में मृत्यु का भय उत्पन्न होता है । इसका एकमात्र कारण इस लोक को बिगाड़ कर चलना है। परलोक का कोई स्वतन्त्र आस्तित्व नहीं है । परलोक इस लोक की ही परिणति है । जिस प्रकार का हमारा यह लोक होगा, हमारे लिये उसी प्रकार के परलोक की रचना होगी । यदि हमने अपने आलस्य, अकर्म, अकर्त्तव्य अथवा अनीति, अत्याचार से अपने लोक को दग्ध कर लिया है और ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, काम, क्रोध, मोह आदि विकारों तथा वासनाओं से विषैला बना लिया है, तो निश्चय ही उसी के अनुसार हमें चलते हुए लोकों को साकार करने पर विवश होना ही होगा । यदि हम जानते हुये भी अपने कर्मों से पतित परलोकों की रचना के लिये इस लोक में नींव रख रहे हैं तो मृत्यु का भय हमें सतायेगा ही, क्योंकि हम जानते हैं कि जो कुछ हम कर रहे हैं, मृत्यु के उपरान्त उसका दण्ड भोगना ही है और इसीलिये मृत्यु की कल्पना आते ही भय से सिहर उठते हैं ।

इसके विपरीत यदि हम लोक को परलोक का आधार मानकर उसे सजाने, सँवारने और सुन्दर बनाने के शुभ प्रयत्नों को ईमानदारी से करते रहे, तो मृत्यु कल्पना हमें विभोर करती रहे, क्योंकि हम जानते हैं कि हम जो कुछ शिव तथा सुन्दर कर रहे हैं । वह हमारे लिये मंगलमय परलोक की रचना कर रहा है, जिसको हम मृत्यु के उपरान्त पुरस्कार के रूप में पायेंगे।

मनुष्य का विचार सान्निध्य भी मृत्यु के विषय में भय अभय का कारण होता है । जिसकी चिन्तनधारा जितनी अधिक जीवन के समीप रहेगी वह उतना ही कम मृत्यु से डरेगा और जिसके विचार जितना अधिक मृत्यु का चिन्तन करेंगे, वह उतना ही उससे भयभीत रहेगा । मृत्यु का चिन्तन क्या करना ? वह अपने समय पर आयेगी, आती रहेगी । उसका विचार छोड़कर मनुष्य को जीवन की आराधना में लगा रहना चाहिये । चिन्तन का विषय जीवन है, मृत्यु नहीं । मृत्यु का चिन्तन करने से जो जीवनी-शक्ति का ह्रास होता है, जिससे मृत्यु का भय स्थायी रूप से सूक्ष्म में बस जाया करता है । ऐसी भयपूर्ण स्थिति में कर्त्तव्यों का पालन यथाविधि नहीं हो पाता, जो स्वयं एक बड़ा दुःखद प्रसंग होता है । मनुष्य जब ठीक प्रकार से अपने कर्त्तव्यों में लगा रहता है, मृत्यु का भय उसके पास नहीं फटकने

पाता । कर्त्तव्यों की अपूर्ति इस विचार के साथ मृत्यु का भय लाती है कि यह नहीं कर पाया, वह करने को रह गया है। सारा जीवन बेकार जा रहा है । यों ही दिन गुजर जायेंगे और एक दिन मृत्यु के मुख में चला जाना होगा । मनुष्य अपनी स्थिति के अनुसार अपने कर्त्तव्यों का पालन तत्परता से करता रहे तो भी मृत्यु का भय उसे नहीं सताने पायेगा फिर वह कर्त्तव्य छोटे हों अथवा बड़े, साधारण हों अथवा असाधारण। कर्त्तव्यहीन, अकर्मण्यता तो साक्षात मृत्यु ही कही गई है । ऐसी मृत्यु से तो सार्थक जीवन जीकर बन्धन्मुक्त होना एक सौभाग्य समझना चाहिए ।

मृत्यु हमारा सबसे अधिक प्रिय पात्र और शुभ चिन्तक अतिथि है । उसके आगमन पर डरने, घबराने जैसी कोई बात है नहीं । शरीर जब आयु की अधिकता से जीर्ण-शीर्ण हो जाता है, अवयव अपना कर्त्तव्य निवाहने में असमर्थ बन जाते हैं, मरम्मत की चिन्दियाँ भी जब काम नहीं करतीं तब नया यन्त्र लगाने की जरूरत पड़ती है । इसी परिवर्तन का नाम मृत्यु है ।

कारखानेदार पुरानी मशीनें हटाते रहते हैं, पुरानी मोटरें बेचते रहते हैं और उनके स्थान पर नयी मशीन नयी मोटर लगाते हैं । इससे कुछ असुविधा नहीं होती, सुविधा ही बढ़ती है । पुरानी मशीन आये दिन गड़बड़ी फैलाती थी। पुरानी मोटर धीमे-धीमे और रुक-रुककर चलती थी । नयी लग जाने से वह पुरानी अड़चनें दूर हो गईं, नयी के द्वारा बढ़िया काम होने लगा । जीर्णता के साथ कुरूपता बढ़ती है और नवीनता में सौन्दर्य रहता है। पुराने पत्ते रूखे, शुष्क और कठोर हो जाते हैं जब कि नयी कोंपलें कोमल और सुन्दर लगती हैं । पुराने पत्ते झड़ने पर, पुरानी मशीन उखाड़ने पर-पुरानी मोटर बिकने पर कोई इसलिए रञ्ज नहीं मानता कि अगले ही दिन नवीन की स्थापना सुनिश्चित है ।

आत्मा अनादि और अनन्त है । वह, ईश्वर जितना ही पुरातन है और कभी नष्ट न होने वाला सनातन है । उसकी मृत्यु सम्भव नहीं । शरीर का परिवर्तन स्वाभाविक ही नहीं, आवश्यक भी है । हर पदार्थ का एक क्रम है- जन्मना- बढ़ना और नष्ट होना । नष्ट होना एक स्वरूप का दूसरे स्वरूप में बदलना भर है । यदि यह परिवर्तन रुक जाय तो मरण तो बन्द हो सकता है, पर जन्म की भी फिर कोई सम्भावना न रहेगी । यदि जन्म का उल्लास मनाने की उत्कण्ठा है, तो मरण का वियोग भी सहना ही होगा । वधू अपने माँ-बाप से बिछुड़ कर सास श्वसुर पाती है, सहेलियों को छोड़कर पति को सहचर बनाती है । यदि मैका छोड़ने की इच्छा न हो, तो फिर सुसराल की नवीनता कैसे मिलेगी ?

पीतल के पुराने बर्तन टूट जाते हैं तब उस धातु को भट्टी में गलाकर नया बर्तन ढाल देते हैं । वह सुन्दर भी लगता है और सुदृढ़ भी होता है । पुराने टूटे, चूते-रिसते, छेद, गड्डे और दरारे वाले शरीर बर्तन को चिता की भट्टी में गलाया जाता तो हमें दीखता है, पर उसकी ढलाई की फैक्टरी कुछ दूर होने से दीख नहीं पड़ती है । सोचते हैं पुराना बर्तन चला गया । खोज करने से विदित हो जायगा कि वह गया कहीं भी नहीं जहाँ का तहाँ है सिर्फ शक्ल बदली है ।

पुराने मकान टूट फूट जाते हैं, उन्हें गिराकर नया बनाना सुरक्षा और सुविधा की दृष्टि में आवश्यक है । नया बनाने के लिए जब पुराना गिराया जा रहा होता है, तो कोई रोता कलपता नहीं । शरीर के मरने पर फिर दुःखी होने का क्या कारण है ?

बहुत दिन साथ रहने पर बिछुड़ने का कष्ट उन्हें होता है, जिनकी ममता छोटी है । कुछ ही चीजें जिन्हें अपनी लगती हैं- कुछ ही व्यक्ति जिन्हें अपने लगते हैं। वे प्रियजनों के विछोह की बात सोचकर अपनी संकीर्णता का ही रोना रोते हैं । वस्तुतः कोई किसी से कभी बिछुड़ने वाला नहीं है, समुद्र में उठने वाली लहरें जन्मती और मरती भर दीखती हैं, पर यथार्थ में समुद्र जहाँ का तहाँ है । कोई लहर कहीं जाती नहीं- सागर का समग्र जल जहाँ का तहाँ परिपूर्ण रहता है। कुछ समय के लिए बादल बनकर उड़ भी जाय तो नदियों के माध्यम से फिर अगले क्षण उसी महाजलाशय में आकर कल्लोल करता है । मरने के बाद भी कोई किसी से नहीं बिछुड़ता । सूर्य की किरणों की तरह हम सब एक ही केन्द्र में बँधे हुए हैं । कुछेक प्राणी ही हमारे, अन्य सब बिराने। इस सीमा बद्धता से ही शोक है ।

मृत्यु का अर्थ है कुरूपता का सौन्दर्य में परिवर्तन । अनुपयोगिता के स्थान पर उपयोगिता का आरोपण । इससे डरने का न कोई कारण है और न रुदन करने का ।

मरणः एक उच्च कोटि का दार्शनिक

परमात्मा सत-चित-आनन्दस्वरूप है। अनादि और अनन्त है । न कभी उसका जन्म हुआ न कभी मरने वाला है। उसी ज्वालामान की छोटी चिंगारी आत्मा है। जो गुण अंशधर में

होते हैं वही अंशी में भी पाये जाते हैं। समुन्द्र के जल में जो विशेषताएँ हैं, वही उसकी एक बूँद मे भी पाई जाती हैं ।

ब्रह्माण्डीय चेतना परब्रह्म है । पिण्ड की परिधि में जो काम करती है, वही सत्ता आत्मा है । फिर उसकी विशेषताएँ उसमें क्यों नहीं होनी चाहिए ? परमात्मा अमर है, तो उसके अंशधर का मरण कैसे हो सकता है ?

मरण की विवेचना हम जिस रूप में करते हैं, वह सही नहीं है । शरीर के बदल जाने की प्रक्रिया को हम मौत मान लेते हैं । यह मौत हो भी सकती है, पर वह आत्मा की नहीं, शरीर मात्र की है । जीवन भर में मनुष्य सैकड़ों बार कपडे बदलता है । वे वस्त्र अनेकों रंगों और डिजायनों के भी होते हैं । पर उस बदलाव के कारण कोई यह नहीं कहता कि व्यक्ति बदल गया । यह परिवर्तन की दृष्टि क्षेत्र तक ही सीमित है । उसका प्रभाव आत्मा तक नहीं पहुँच सकता । शरीर के मरने पर आत्मा नहीं मरती । वह तो यथावत बनी रहती है। अन्तर केवल इतना ही आता है कि जो स्थूल था, वह सूक्ष्म हो जाता है । शरीर सूक्ष्म हो जाने से उसकी आकृति स्थूल आँखों से दीख नहीं पड़ती । इस परिवर्तन को सूक्ष्मीकरण भी कह सकते हैं ।

पदार्थों का सूक्ष्मीकरण होता रहता है । उनकी आकृति में अन्तर आता रहता है, पर मूल सत्ता यथावत् बनी रहती है । पानी ठोस होकर बर्फ बन जाता है । प्रवाही होता है तो जल कहलाता है । भाप बनकर वह वायु रूप होता और अदृश्य बन जाता है । यह प्रत्यक्ष परिवर्तन होते रहने पर भी उसकी मूल सत्ता में कोई अन्तर नहीं आता । जल का अस्तित्व पृथ्वी के जन्म काल से ही है और वह अन्य पंच तत्त्वों की तरह अपनी सत्ता बनाये रहेगा ।

जीव न मरता है और न मर सकता है । मात्र उसका कलेवर ही अपने समय पर बदल जाता है । यह परिवर्त्तन एक चक्र है । शुक्र, भ्रूण, शिशु, बालक, किशोर, तरुण, प्रौढ़, वृद्ध, मरण और फिर उसी निर्धारित चक्र की पुनरावृत्ति । मरने के बाद वह शुक्र डिम्ब के रूप में जहाँ-तहाँ होते हुए पहुँच जाता है और फिर पुरानी आवृत्ति को आरम्भ करता है ।

कुछ मध्य काल ऐसा अवश्य है, जिसमें सूक्ष्म शरीर धारी को स्वच्छन्द विचरण करने का अवसर मिल जाता है। इस अवधि में वह विश्राम भी ले लेता है और पिछले दिनों की संग्रहित गंदगी की धुलाई करके इस योग्य बन लेता है, कि नये जन्म में पुराने जन्म के संस्कार अधिक बाधा न पहुँचायें । कर्मफल तो साथ रहते हैं और उन्हीं दिनों यह भी अनुभव हो जाता है कि पाप कर्मों की परिणति क्या है ? और पुण्य-कर्मों की क्या ? इस प्रकार कुछ महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त करने का और थकान मिटाने का अवसर मिल जाता है । थका हुआ व्यक्ति रात को गहरी नींद सो लेता है, तो दूसरे दिन सबेरे से ही उसे स्फूर्ति के साथ काम में जुटने का मन होता है।

प्रत्येक जीव स्वतंत्र है । उसकी अपनी एक स्वतंत्र इकाई है । वह अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है । न कोई साथ आया, न कोई साथ जाता है ।

सृष्टि की व्यवस्था ऐसी है कि मनुष्य मिल-जुलकर रहे और एक दूसरे की सहायता करते हुए आदान प्रदान का लाभ ले । इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत परिवार बन जाता है । स्वजन, सम्बन्धी, मित्र, परिचितों का सिलसिला जुट जाता है और अनुभव होता है कि वे परस्पर सघनतापूर्वक बँधे हुए हैं। एक दूसरे के ऊपर निर्भर है । यह ममता जितनी घनिष्ठ होती है, उसी अनुपात में मरण पर होने वाले बिछोह का दुःख होता है । कई बार एक दूसरे पर निर्भरता भी होती है । विशेष- तया बच्चों की परवरिश अभिभावक करते हैं । उनके न रहने पर वे दूसरों की दया के सहारे भी पल तो जाते हैं । पर उतने निश्चिन्त और प्रमुदित नहीं रहते, जैसे कि पहले रहा करते थे । माँ-बेटे के बीच, पति-पत्नी के बीच भी कई बार ऐसी सघनता होती है । उसी अनुपात में उन्हें वियोग-दुःख भी सताता है, किन्तु क्या वस्तुतः एक दूसरे के साथ वे इतनी ही घनिष्ठता के साथ बँधे हुए हैं । इसका उत्तर 'न' में ही देना पड़ता है । प्रियजनों की मृत्यु का दुःख कुछ काल सताता है, फिर वह झीना पड़ने लगता है । कुछ समय उपरान्त तो उस विलगाव की धुंधली स्मृति ही शेष रह जाती है ।

पुरानी निर्भरता भी दूसरों पर बँट जाती है, कोई स्वजन सम्बन्धी सहायता करने लगते हैं या फिर स्वावलम्बन उभरता है और गाड़ी अपने ढर्रे पर लुढ़कने लगती है ।

वशिष्ठ ने शोक-विह्वल दशरथ और उसकी रानियों को समझाया था कि जिस प्रकार नदी में बहते हुए कुछ लठ्ठे इकट्ठे हो जाते हैं और फिर लहरों का दबाव पड़ने पर बिछुड़ जाते हैं। बिछुड़ी हुई लकड़ियाँ जिस-तिस के साथ अपनी संगति बिठा लेती हैं और फिर एक बजरे के रूप में बहने लगती हैं । जो लकड़ी पहले जिनके साथ थी, उनसे अलग होकर वह दूसरों के साथ सट जाती है और फिर बहाव के साथ चलने लगती है । संसार की नियति ऐसी ही है । प्राणी जन्मते, मरते और मिलते-बिछुड़ते रहते हैं । जो कुछ आश्चर्य और असमंजस होता है, शोक में विलाप करना पड़ता है, वह ममता के बन्धन जुड़ने और टूटने से होता है । अन्यथा ढेरों व्यक्ति

हर दिन जन्मते और मरते रहते हैं । जलती हुई चिताओं को देखकर कौतूहल मात्र प्रतीत होता है । वैसा व्यथित नहीं होना पड़ता, जैसे कि उसके कुटुम्बी होते हैं । बात स्वाभाविक भी है । जन्म-मरण के आधार पर चल रहे इस संसार में कौन, किसके लिए खुशी मनाये और क्यों कोई किसी के लिये विलाप करे ? जो हर किसी की भवितव्यता है, उसके लिए उपेक्षा भाव रखने से ही काम चलता है ।

मरण एक उच्चकोटि का अध्यापक, धर्म एवं दार्शनिक है, जो बताता है कि निर्धारित कर्त्तव्यों का परिपालन करते हुए सुखपूर्वक रहो और साथियों को रहने दो । जो जीवन के स्वरूप, उद्देश्य और उपभोग को समझता और पालता है, उसके लिए मृत्यु न तो कष्टकारक होती है और न भयप्रद ।

मरते समय शारीरिक पीड़ा प्रायः नहीं के बराबर होती है । बीमारी में जितना कष्ट सहना पड़ता है; मरते समय उतना भी नहीं होता । इसलिए मरने से इस आधार पर डरने की जरूरत नहीं है, कि उस समय अधिक कष्ट होगा ।

दाँत में कीड़ा लगने या उखड़ने के दिनों बहुत दर्द होता रहता है । पर जब कुशल डाक्टर उसे निकालता है, तो सुई लगाकर उसे सुन्न कर देता है और यह पता भी नहीं चलता कि कब उखड़ गया । अस्पताल में किसी चोट या व्रण का आपरेशन कराने के लिए भर्ती होना पड़ता है । चोट या दर्द में बहुत दर्द होता रहता है, पर जब डाक्टर आपरेशन करता है तो वेहोशी की दवा सुँघा देता या सुई लगाकर सुन्न कर देता है । रोगी के साथ डाक्टर की सद्भावना रहती है, सो वह बिना कष्ट पहुँचाये ही अपना प्रयोजन पूरा कर देता है।

मृत्यु का समय आने से पूर्व कुछ दिन बीमार रहना पड़ता है । बीमारी में स्नायु मण्डल और नाड़ी मण्डल दुर्बल हो जाता है और अनुभूति की क्षमता शिथिल पड़ जाती है। जैसे-जैसे मरने का समय निकट आता जाता है, वैसे-वैसे यह शिथिलता और बढ़ती जाती है । मस्तिष्क अपना काम समाप्त करता जाता है । प्रायः मरने से पूर्व हर व्यक्ति अचेत हो जाता है। उसकी चेतना लुप्त हो जाती है । कुटुम्बियों तक को पहचानने की शक्ति नहीं रहती । जीभ बोलना बन्द कर देती है और कान, आँख आदि खुले रहने पर भी अपना काम नहीं करते। अनुभव करने की शक्ति धीरे-धीरे अधिकाधिक शिथिल होती चली जाती है और मरने की घड़ी आने से पूर्व ही वह अचेतन अवस्था इतनी घनी हो जाती है, कि प्राण त्यागने के समय प्राणी को किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं होता ।

मृत्यु के समय अधिकतर लोग बहुत व्यथित और उद्विग्न पाये जाते हैं । इसका कारण शारीरिक नहीं मानसिक है। एक तो मनुष्य मोह, ममता के बन्धन में बेतरह जकड़ जाता है और उन्हें तोड़ते हुए कष्ट होता है । ढीली हथकड़ी बेड़ी आसानी से कट जाती हैं पर यदि वे शरीर में बहुत कस कर बँधी हों तो काटने में कष्ट होगा । पैसा मेरा-घर मेरा-कुटुम्ब मेरा, यह 'मेरा' जितना गहरा और कड़ा होगा उसका टूटना मानसिक दृष्टि से उतना ही भारी पड़ेगा । यदि पहले से ही मनुष्य यह सोचता रहे कि धन सम्पदा समाज या परमेश्वर की है मैं उसके कार्यों में प्रयुक्त करने वाला कर्मचारी भर हूँ । स्वामित्व मेरा किसी पर नहीं । तो उसे वस्तुओं से मोह न बढ़ेगा और वे छूटते समय कष्ट न देंगी । इसी प्रकार सब जीवों को ईश्वर का अंश और पुत्र समझ कर स्वतन्त्र इकाई माना जाय । उनके साथ रास्ता चलते पथिक जैसा संयोग माना जाय । परिवार रूपी उद्यान का अपने को माली भर समझा जाय, तो फिर कुटम्बियों से ममता न बढेगी । स्नेह, सद्भाव के निर्वाह और कर्त्तव्य पालन भर में सन्तोष और आनन्द होता रहेगा । उनके वियोग में वैसी पीड़ा न होगी जैसी आमतौर से अज्ञानग्रस्त लोगों को होती है ।

मरने के समय दूसरा कष्टदायक कारण है जीवन को निरर्थक एवं अनर्थ जैसे कार्यों में बर्बाद कर देना । पाप की गठरी सिर पर लादकर ले चलना और भविष्य में कुकर्मों के फलस्वरूप दुखद परिस्थितियों में पड़ने की सम्भावना का आँखों के सामने मूर्तिमान होना । उस समय पश्चात्ताप की आग बेतरह जलाती है और कर्मफल के दण्ड का भय लगता है । यह कष्ट वास्तविक है । पर होता उन्हीं को है, जिसने सुर दुर्लभ मानव शरीर के बहूमूल्य क्षण निरर्थक गँवाये । जीवनोद्देश्य को नहीं समझा । धर्म और कर्त्तव्य से विमुख रहे और आत्म-कल्याण तथा लोक-कल्याण के लिये भी कुछ करना है, इस बात को भूले रहे । मृत्यु की अनिवार्यता हमें ध्यान में रखनी चाहिए । उस समय शरीरगत कष्ट से तो डरने की आवश्यकता नहीं है । पर मानसिक पश्चाताप और मोह ममता के कारण व्यथित न होना पड़े, इसलिये अपना दृष्टिकोण और कर्त्तृत्व ऐसा बनाना चाहिए, जिससे मृत्यु को शान्ति, धैर्य और साहसपूर्वक स्वीकार किया जा सके ।

मृत्यु को सुखद बनायें

यों कहने को तो सभी कहते हैं कि जो जन्मा है सो मरेगा । इसलिए किसी की मृत्यु का दुःख मनाते हुए भी यह

नहीं कहा जाता है कि यह कोई अनहोनी घटना घट गई । देर-सवेर में आगे-पीछे मरना तो सभी को है । यह मान्यता रहने के कारण रोते-धोते अन्ततः सन्तोष कर ही लेते हैं । जब सभी को मरना है तो अपने स्वजन सम्बन्धी ही उस काल चक्र से कैसे बच सकते हैं ?

लोक मान्यताओं की बात दूसरी है, पर विज्ञान के लिए यह प्रश्न काफी जटिल है । परमाणुओं की तरह जीवाणु भी अमरता के सन्निकट ही माने जाते हैं । जीवाणुओं की संरचना ऐसी है, जो अपना प्रजनन और परिवर्तन क्रम चलाते हुए मूल सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रहती है । जब मूल इकाई अमर है तो उसका समुदाय शरीर क्यों मर जाता है ? उलट-पुलटकर वह जीवित स्थिति में ही क्यों नहीं बना रहता ? उनके बीच जब परस्पर सघनता बनाये रहने वाली चुम्बकीय क्षमता का अविरल स्रोत विद्यमान है, तो कोशाओं के विसंगठित होने और विखरने का क्या कारण है ? थकान से गहरी नींद आने और नींद पूरी होने पर फिर जग पड़ने की तरह ही मरना और मरने के बाद फिर जी उठना, क्यों सम्भव नहीं हो सकता ?

वैक्टीरिया से लेकर अमीबा तक के दृश्यमान और जीवधारी अपने ही शरीर की उत्क्रान्ति करते हुए अपनी ही परिधि में जन्म-मरण का चक्र चलाते हुए प्रत्यक्षतः अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये रहते हैं । फिर बड़े प्राणी ही क्यों मरते हैं ? मनुष्य को ही क्यों मौत के मुँह में जाने के लिए विवश होना पड़ता है ? इस प्रश्न के उत्तर में जर्मनी के जीव विज्ञानी आगस्ट बीजमान का कथन है कि जीव विकास की प्रगति श्रृंखला में प्राणियों का मरण तब से प्रारम्भ हुआ है, जब उनमें मेरुदण्ड और मस्तिष्क का विकास, विस्तार आरम्भ होने लगा । मेरुदण्ड भी वस्तुतः मस्तिष्क का ही एक पूँछ जैसा भाग है। मरण को कभी नाड़ी या हृदय की धड़कन के साथ जोड़ा जाता था, पर अब जीवन सत्ता में प्रधानता मस्तिष्क की ही मानी जाती है । हृदय समेत अन्य अवयव उसी के आज्ञानुवर्ती माने जाते हैं । अन्य अवयवों के निःचेष्ट हो जाने पर भी यदि मस्तिष्क में किसी प्रकार की हलचल विद्यमान है, तो प्रत्यक्षतः उसे मृतक घोषित किये जाने पर भी उसमें जीवन का अस्तित्व माना जाता है और पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया जाता है । मरने वालों में से बहुत घोषित मृत्यु के दस मिनट पश्चात तक मस्तिष्कीय दृष्टि में जीवित पाये गये हैं और कृत्रिम धड़कन एवं श्वास-प्रश्वास की व्यवस्था करके प्राण लौटाने के लिए प्रयत्न किये गये हैं । इनमें से कितनों को ही जीवित करने में सफलता भी मिल गई है ।

मृत्यु भी प्रगति क्रम की एक सीढ़ी कही जा सकती है। जड़ता में स्वायित्व है । परमाणु और तरंगों की सत्ता में ऊर्जा और हलचल तो है, पर मरण नहीं है । आरम्भिक स्तर के जीवधारियों में भी मरण संकट नहीं है । जीवाणुओं से लेकर एकेन्द्रिय जीवों तक अपनी सत्ता बनाये रहते हैं, यों मरण-जीवन का क्रम तो चलता रहता है, पर इससे उनके अस्तित्व के लिए चुनौती उत्पन्न नहीं होती । वे बिना टकराये और बिना किसी महत्वाकांक्षा के प्रकृति के प्रवाह क्रम में बहते रहते हैं । महत्वाकांक्षाएँ जहाँ प्रगति में सहायक हैं, वहाँ उनमें यह खतरा भी मौजूद है कि प्रकृति ऐसे प्राणियों को अपनी सुव्यवस्था में बाधक समझे और उन्हें जल्दी ही अपना विस्तर गोल करने के लिए रास्ता साफ करती है । मनुष्य के लिए मृत्यु संकट सम्भवतः इसीलिए अन्य प्राणियों की तुलना में अधिक जटिल और कष्टकर बन गया है ।

बीमारियों से मनुष्य का घिरा रहना भी उसका प्रकृति को चुनौती देने का ही दण्ड दुष्परिणाम है । उपभोग की मर्यादाओं का उल्लंघन शरीर संरचना के अनुरूप आचार संहिता न अपनाने से स्वास्थ्य संकट उत्पन्न होता है और उसकी दुःखद प्रतिक्रिया आये दिन बीमार रहने के रूप में भुगतनी पड़ती है । जितना सरल, सौम्य, हल्का और आवेश, उत्तेजनाओं से रहित जीवन जिया जायगा उतना ही मृत्यु का भय और कष्ट हल्का होता जायगा ।

मौत भयानक या अवांछनीय ही हो, ऐसी बात नहीं । कई बार तो यह जीवन से भी अधिक मूल्यवान, सुखद और सत्परिणाम उत्पन्न करने वाली होती है । देश की सुरक्षा के लिए युद्ध क्षेत्र में जाने वालों में से कितनों को ही अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है और वे उच्च आदर्शों के लिए इस प्रकार प्राण गँवाते हुए गर्व-गौरव का अनुभव करते हैं । उनकी इस वीरगति के लिए लोक श्रद्धा भी बरसती है । लोकहित के लिए प्रयत्नशील महामानवों में से कितनों को ही कठिनाइयों से जूझते हुए अकाल मृत्यु का ग्रास होना पड़ता है, कितने ही ईसा, सुकरात, गान्धी आदि की तरह प्रतिपक्षियों द्वारा मौत के घाट उतार दिये जाते हैं । गीता कहती है कि ऐसा मरण भाग्यवानों को ही उपलब्ध होता है । क्षत्रिय धर्म में अनीति से संघर्ष करते हुए मिलने वाले मरण को यश और स्वर्ग देने वाला कहा गया है । मौत यदि बुरी ही होती तो उसे हर कोई कष्टकर ही अनुभव करता । तब गोली और फाँसी के सामने दौड़ते हुए चले जाने के लिए कोई तैयार ही न होता और वीर बलिदानियों की परम्परा ही समाप्त हो जाती ।

कई बार तो जीवन और मौत के बीच कौन सुखद है यह चुनने में मनुष्य को मौत के पक्ष में अपना निर्णय देना पड़ता है । आत्महत्याएँ उसी प्रकार के निर्णय का परिणाम होती हैं । समाज उसे किस दृष्टि से देखता है और कानून उसे कितना अवांछनीय दण्डनीय मानता है यह दूसरी बात है, पर जो इस प्रकार के भयानक निर्णय करते हैं और जिन्दगी से मौत को वरिष्ठ मान बैठते हैं, उनके अपने भी तो कुछ तर्क होने ही चाहिए । भले ही उन्हें जन विवेक मान्यता न देता हो ।

मनोविज्ञान शास्त्र को सुव्यवस्थित बनाने वाले डा० सिंग फ्रायड का नाम विश्वविख्यात है । उनकी समझदारी पर कोई अविश्वास नहीं कर सकता । जीवन के अन्तिम दिनों में उन्हें जबड़े का कैन्सर हो गया था । यह लगातार १६ वर्ष तक चला । इतने समय में उस फोड़े का ३३ बार आपरेशन हुआ। फिर भी वे उस असह्य पीड़ा से छुटकारा न पा सके । फलतः उन्होंने मार्फीन की सुई लगा ली और ८३ वर्ष की आयु में स्वेच्छामरण को गौरवास्पद मानते हुए विदा हो गये।

इसी प्रकार एक असह्य पीड़ा से छटपटाते हुए असाध्य रोगी की दया भिक्षा स्वीकार करते हुए, डा० विन्सेट मान्ट मेरिनो ने स्वेच्छामरण में सहायता करने वाली औषधि उपलब्ध करा दी थी, रोगी को पाँच मिनट के भीतर ही चिरशान्ति का लाभ मिल गया । पर कानून ने इसे अपराध ही माना और चिकित्सक को न्यायालय का निर्धारित दण्ड भुगतना पड़ा । महात्मा गाँधी ने भी सावरमती आश्रम में एक मृत्यु से छटपटाते हुए बछड़े को मरण की सुई लगाने की आज्ञा दे दी थी और उन्हें तीखे जन-विरोध का सामना करना पड़ा था ।

यहाँ स्वेच्छामरण के कानूनी और औचित्य पथ पर चर्चा नहीं हो रही है । देखा यह जा रहा है कि क्या कोई ऐसा भी समय आ सकता है, जब जीवन से मरण को अधिक उपयुक्त माना जाय ? मृत्यु दण्ड के अपराधियों के लिए भी न्याय परम्परा यही निर्धारण करती है, कि उनके जीवित रहने की अपेक्षा मरण ही श्रेयस्कर है ।

प्रसंग जीवन और मरण में से वरिष्ठता किसे दी जाय, यह निर्णय करने का है । यहाँ सब कुछ सापेक्ष ही ठहरता है । उपयोगिता ही प्रधान है । न जीवन ही सदा सर्वदा उत्तम समझा जा सकता है और न मृत्यु को ही सर्वथा हेय ठहराया जा सकता है । दोनों ही अपने-अपने स्थान पर गुण-दोष की कसौटी पर कसे जाने के उपरान्त श्रेष्ठ समझे जा सकते हैं।

प्राणियों की इस मनःस्थिति पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए महाभारत में महर्षि व्यास कहते हैं–

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यम मन्दिरम् ।
अन्येस्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्य मतः परम् ।।

अर्थात्-प्राणियों को निरन्तर मृत्यु मुख में जाते हुए आँखों से देखते हुए भी लोग अपनी स्थिरता का ही विश्वास किये बैठ रहते हैं, यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है ।

आत्मा की पुकार है- ''**मृत्योर्माऽमृतं गमय**'' है परमेश्वर-मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चल ।'' मरण कितना अवांछनीय और जीवन कितना अभीष्ट है, इसका आभास इस पुकार में मिलता है । अन्तरात्मा की प्रबल कामना है-जिजीविषा। वह जीना चाहता है । यह सभी जानते हैं कि शरीरगत मृत्यु अपराजित है । वह प्रकृति पदार्थों को परिवर्तित करने के लिए अनिवार्य रूप से आती है। किन्तु निश्चय ही उसका भय जीता जा सकता है । मौत अपने आप में डरावनी नहीं है । परिवर्तन में विनोद है और उत्साह भी । स्थिरता में नीरसता रहती है । गति और सरसता बनाये रहने के लिए परिवर्तन आवश्यक है । यह स्वाभाविक सरल प्रक्रिया ही मरण कहलाती है, जिसे काय-कलेवर का परिवर्तन ही कह सकते हैं । इसमें न तो कुछ अप्रिय है न अनुचित और न कष्टकर। कष्टकारक तो मृत्यु का भय है । यदि उससे निर्वृत्ति मिल सके तो समझना चाहिए कि मृत्यु से छुटकारा पाने और अमरता का लाभ लेने जैसा आनन्द मिल गया ।

मृत्यु कोई विभीषिका नहीं एक सुनिश्चित संभावना है, उसे एक समस्या का रूप दिया जा सकता है । उसका हल इतना ही खोजा जा सकता है कि सुखद, संतोषजनक और सराहनीय मृत्यु का वरण किस प्रकार सम्भव हो ? इसका उत्तर एक ही है कि जीवन का सदुपयोग इस प्रकार किया जाय कि जन्मोत्सव की तरह ही मरणोत्सव भी देह छोड़ने वाले प्राणी को सरल प्रतीत हो सके । सुखद मृत्यु जीवन देवता की आराधना का वरदान है । जो इस साधना को कर सके उसके लिए मरण का दिन पश्चात्ताप का नहीं, वरन् अधिक सखद परिस्थितियों के लिए विनोद यात्रा पर निकलने की तरह उत्साहवर्धक ही बनकर आता है ।

भगवान बुद्ध जब मरने लगे तो रोते हुए अपने प्रिय शिष्य आनन्द को दुलारते हुए उन्होंने कहा- 'आनन्द, रोओ मत, यह रोने का अवसर नहीं है । स्वयं अपने लिए दीपक बनो । निर्वाण तो नितान्त स्वाभाविक है । उसके लिए तो पहले से ही तैयार रहना है ।' बिल्सन ने मृत्यु की बेला में मुस्कराते हुए किसी अज्ञात से कहा ''मैं तो बिल्कुल तैयार हूँ'' और उन्होंने आँखें मूँद लीं । वाल्टेयर ने उपस्थित लोगों से मरते समय कहा- 'आप लोग, गड़बड़ न करें शान्ति से बैठें और मुझे शान्ति

'से मरने दें ।' 'गेटे ने मरण की उपस्थिति को प्रकाश के रूप में देखा और वे बड़े उत्साह से चिल्लाये प्रकाश-प्रकाश-अनन्त प्रकाश । इतनी अनुभूति व्यक्त करके उनकी वाणी मौन हो गई । स्वामी दयानन्द ने सन्तोष भरी लम्बी साँस खींची और कहा-हे ! दयामय तेरी इच्छा पूर्ण हो ।' गान्धी जी के मुख से अन्तिम शब्द निकला- 'हे राम' और वे राम में ही समा गये ।

जीवन का सदुपयोग ही मौत को सरल बनाने की पूर्व तैयारी है, जो उसे कर सके उनके लिए जीवन और मरण दोनों अभिन्न मित्रों की तरह सुखद और सहयोगी प्रतीत होते हैं ।

जीवन और मरण की अविच्छिन्न शृंखला

सुकरात को जहर दिए जाने की तैयारी चल रही थी। शिष्य, मित्र, सहयोगी, सम्बन्धी सभी के नेत्र सजल हो उठे। प्राणों से प्रिय अपने मार्गदर्शक के विछुड़ने की वेदना असह्य हो रही थी । पर सुकरात पर इसका कोई प्रभाव नहीं था । उल्टे उस दिन अन्य दिनों की अपेक्षा प्रसन्नता, प्रफुल्लता मुख मण्डल पर और भी अधिक परिलक्षित हो रही थी, मृत्यु को गले लगाने की आतुरता सुकरात की देखते बनती थी । ऐसा लगता था कि किसी प्रिय जन से मिलने की उत्सुकता हो । मित्रों ने, शिष्यों ने इस आतुरता का कारण रोते हुए पूछा । सुकरात ने कहा 'मैं मृत्यु का साक्षात्कार करना चाहता हूँ तथा यह जानना चाहता हूँ कि मृत्यु के बाद हमारा अस्तित्व रहता है या नहीं । मृत्यु जीवन का अन्त है अथवा एक सामान्य परिवर्तन क्रम ।'

सुकरात को निर्धारित समय पर विष दे दिया गया । सभी आत्मीय उन्हें घेरे हुए बैठे थे- नेत्रों से अश्रु की अविरल धारा बह रही थी । सुकरात ने कहा- "मेरे घुटने तक विष चढ़ गया है- पैरों ने काम करना बन्द कर दिया- वे मर चुके किन्तु मैं फिर भी जीवित हूँ । मेरे अस्तित्व में थोड़ा भी अन्तर नहीं आया, मैं पूर्ण हूँ । देखो ! मेरे हाथों ने, कमर ने, नेत्रों ने काम करना बन्द कर दिया- निर्जीव हो गये किन्तु मैं ठीक पहले जैसा हूँ ।" उपस्थिति स्नेही, सहयोगी फूट-फूटकर रोने लगे । सुकरात की वास्तविकता को समझने का एक अलभ्य अवसर मिला है । एक व्यक्ति मृत्यु की अवधि से गुजर रहा है, तथा तुम सबको सन्देश दे रहा है कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं एक अविरल प्रवाह है । जीवन की सत्ता मरणोपरान्त भी बनी रहती है ।

रूस के प्रसिद्ध गणितज्ञ डा०पी.टी. आस्पेंस्की की रुग्णता इस सीमा तक बढ़ी कि चिकित्सकों ने बिस्तर से भी उठने को मना कर दिया । तीन माह के भीतर चिकित्सकों ने उनके मरने की घोषणा कर दी । आस्पेंस्की ने सोचा कि जब मरना ही है तो बिस्तर पर क्यों मरा जाय ? मृत्यु का साक्षात्कार क्यों न किया जाय ? वह उठा और चल पड़ा । निरन्तर चलता रहा । मित्रों ने अस्वस्थता की याद दिलायी तथा विश्राम के लिए सलाह दी । उसने कहा मैं अचेतन अवस्था में नहीं मरना चाहता। पूर्ण चेतना के साथ मृत्यु को देखना चाहता हूँ । विस्तर पर मरने की अपेक्षा चलते-चलते मृत्यु को गले लगाना चाहता हूँ । वह चलते-चलते मरा । अन्तिम पग रखने से पूर्व उसने कहा- 'अब यह शरीर गिरने वाला है । तुम सब यह देखोगे, किन्तु मैं तो बहुत समय पूर्व से देख रहा हूँ कि 'शरीर ने साथ छोड़ दिया है, पर मेरी सत्ता पर कोई प्रभाव नहीं है, मैं यथावत हूँ । अन्तिम घड़ियों में उपस्थिति प्रत्यक्षदर्शियों ने कहा कि 'आस्पेंस्की की आँखों में जो चमक, चेहरे पर शान्ति देखी गई, वह उसके जीवन के पहले कभी नहीं दिखाई पड़ी थी ।

जीवन शाश्वत है- एक सतत चलने वाला अविरल प्रवाह है, यह अनुभव उन व्यक्तियों का है, जिन्होंने मृत्यु को जानने एवं साक्षात्कार करने का प्रयत्न किया । अविछित्र प्रवाह के एक ओर जीवन के साथ तथा दूसरे ओर मृत्यु को एक सहज, स्वाभाविक घटनाक्रम मान लिया जाय तो मृत्यु के सम्बन्ध में व्याप्त अनावश्यक भय एवं भ्रान्तियों से सहज ही बचा जा सकता है । कठिनाई अनभिज्ञता की पड़ती है । परिचित स्थानों एवं व्यक्तियों से डर नहीं लगता । अनजान व्यक्तियों एवं स्थानों से मिलने एवं जानने में भय लगता है । किन्तु वे परिचित हो जाने पर स्वाभाविक लगते तथा अनुभव होता है कि भय अकारण था । अन्धकार इसलिए डरावना नहीं लगता कि वस्तुतः वह डरावना है, वरन् अनजान होने के कारण प्रतीत होता है। अन्धकार में भूत-प्रेत रहते तथा मनुष्य को त्राण देते हैं, यह मानसिक कल्पना उसी समय तक बनी रहती है, जब तक कि अंधेरे में प्रवेश न किया जाय । मानसिक भ्रान्तियों का निवारण तो अन्धकार के साक्षात्कार से होता है ।

मृत्यु के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की भ्रान्तियाँ फैली हैं । उसे कष्टकारक एवं जीवन का अन्त कर देने वाला मान लिया जाता है । अपने अस्तित्व के अन्त होने की कुकल्पना मनुष्य को जीवनपर्यन्त व्यग्र बनाये रहती तथा उतना कष्ट देती है, जितना कि मृत्यु की अवधि में भी नहीं होता ।

१.१३ मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवम् सत्य

मृत्यु जीवन की विश्राम स्थली है, जहाँ जीवात्मा अपनी थकान दूर करती, नये जीवन के लिए शक्ति प्राप्त करती है। थकान दूर करने के लिए विश्राम तो नित्य ही करते हैं । पुनः नई शक्ति एवं स्फूर्ति से दैनिक कार्यों में जुट जाते हैं विश्रामावधि में जाने में न तो डर लगता, न ही किसी प्रकार की कठिनाई अनुभव होती है । विश्राम के अभाव में तो व्यय हुई शक्ति की आपूर्ति नहीं हो पाती । काया कमजोर तथा श्रम के अयोग्य हो जाती है । जीवन भर की थकान को मिटाने के लिए भावी जीवन के लिए शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से मृत्यु रूपी विश्राम अवधि भी उतनी ही आवश्यक है । काय-परिवर्तन इसलिए आवश्यक हो जाता है कि लम्बी अवधि तक श्रम करने के कारण वह इस योग्य नहीं रहती कि कठोर श्रम कर सके । पुराने फटे वस्त्रों को बदलकर, नये पहन लिए जाते हैं जर्जर हो गई मशीनें को पूर्ण रूपेण परिवर्तित कर देना ही उचित होता है । इन परिवर्तनों में न तो किसी प्रकार का दुराग्रह होता है न आसक्ति और न ही किसी प्रकार का भय । नये के प्रति, परिवर्तन के प्रति भयभीत हो जाने अथवा पुरातन के प्रति आसक्ति बने रहने से उन लाभों से बंचित रह जाना पड़ता है, जो नये वस्त्रों एवं वस्तुओं से मिलता है । मृत्यु के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है ।

मृत्यु इसलिए भी आवश्यक एवं उपयोगी है कि जीव नये जीवन का, परिवर्तन का आनन्द ले सके । मृत्यु का क्रम रुक जाय, उस स्थिति की कल्पना की जाय तो पता चलता है कि जीवन कितना नीरस, एवं उभरा होगा । लम्बी आयु, अमर काया, जर्जर, अशक्त बनी लाश ढोने के समान होगी, बुढ़ापा वैसे ही कितना नीरस भार भरा प्रतीत होता है । उस पर भी यदि, उसके साथ अमरता का वरदान जुड़ जाय तो कितनी कठिनाई होगी । निश्चित ही कोई विचारशील, कायारूपी अमरता को स्वीकार न करना चाहेगा । असमर्थ, अशक्त, जराजीर्ण काया की गठरी के बोझ को कौन सदा ढोना चाहेगा ?

फिर मृत्यु से डर क्यों लगता है ? शरीर के प्रति आसक्ति क्यों बनी रहती है ? इन कारणों पर विचार करने पर पता चलता है, कि मृत्यु एवं जीवन के स्वरूप की वास्तविक जानकारी न होने के कारण ही भय लगता है । हमारी सत्ता शरीर से अलग है- शाश्वत, अविनाशी एवं अमर है, यह बोध बना रहे तो मृत्यु की आशंका से भयभीत होने का कोई कारण नहीं दीख पड़ता । शरीर सत्ता को ही सब कुछ मान लेने, मृत्यु के साथ जीवन का अन्त समझ लेने से डर लगता है। शास्त्र इसीलिए निर्देश देते हैं कि अपनी सत्ता को जानो और पहचानो ।

आत्मा शरीर के साथ उत्पन्न होती है और उसी के साथ मर जाती है । यह मान्यता पिछले दिनों पदार्थ विज्ञानियों की रही है वे प्राणी को एक चलने-फिरने और सोचने-बोलने वाला समर्थ पौधा मानते रहे हैं । पौधे के जन्म और मरण के साथ ही उसके अस्तित्व का उदय और अन्त ज्ञानी और विज्ञानी एक समान मानते हैं ।

प्रश्न प्राणियों के विशेषतया मनुष्य के सम्बन्ध में उपस्थित होता है, क्योंकि उसके समाधान से हमारा सीधा सम्बन्ध है। क्योंकि तब सोचना पड़ेगा यदि जीवन शरीर के बाद भी बना रहता है तो शरीर त्याग के बाद उसे किस स्थिति का सामना करना पड़ता है । स्वर्ग, नरक, परलोक के प्रसंग इसी सन्दर्भ में सामने आते हैं । यदि पुनर्जन्म होता है, तो पिछले जन्म की स्थिति का इस जन्म पर और इस जन्म का अगले जन्म पर क्या प्रभाव पड़ता है ? इतना ही नहीं इस सम्बन्ध में जो निष्कर्ष निकलता है उससे वर्तमान जीवन का उपयोग करने के सम्बन्ध में नीति निर्धारित करने की बात भी सामने आ खड़ी होती है ।

सामान्यतया हम भूतकाल से बहुत कुछ सीखते हैं । याद रखते हैं और भावनापूर्वक उस सब का स्मरण रखते हैं जो हमने खोया या पाया है । वर्तमान में जो कुछ हम हैं वह भूतकाल में रोपे गये वृक्ष के ही फल-फूल हैं । भविष्य में कुछ बनना है वह आज के क्रिया-कलाप का प्रतिफल ही होगा । इन दिनों जो कुछ करते हैं उसका लाभ तत्काल तो मिलता नहीं कुछ समय उपरान्त ही उसके परिणाम सामने आते हैं । इस प्रकार हमारी समस्त गतिविधियाँ प्रायः भविष्य निर्माण में ही नियोजित रहती हैं । फिर यदि जीवन मरने के बाद भी बना रहता है तो स्वभावतः उसकी भी चिन्ता करनी पड़ेगी और भविष्य के लिए सुखद अवसर प्राप्त करने की तैयारी को भी महत्व देना होगा । यदि जीवन शरीर के साथ ही समाप्त होता है, तो मरणोत्तर जीवन के बारे में चिन्ता या तैयारी नहीं करनी पड़ेगी, तब वर्तमान शरीर के वर्तमान और भविष्य को ही सब कुछ मानकर तद्नुरूप जीवनयापन की नीति निर्धारित करनी होगी । दोनों परिस्थितियों में दृष्टिकोण अपनाने और कार्यक्रम निर्धारित करने में भारी अन्तर होगा । आस्तिकों को मरणोत्तर भविष्य निर्माण करने के लिए स्वर्ग मुक्ति-शान्ति, सद्गति की बात सोचनी पड़ती है और इस जीवन में तप, संयम, दान, परमार्थ जैसे धर्मानुष्ठानों को महत्व देना पड़ता है भले ही प्रत्यक्षतः उसमें आर्थिक हानि एवं शारीरिक असुविधाएँ ही सहन क्यों न करनी पड़ती हों । इसके विपरीत नास्तिक तात्कालिक

आमोद-प्रमोद एवं सुख-साधनों को ही महत्व देते हैं । जब देह भस्मी भूत ही ठहरा और पुनरागमन की सम्भावना नहीं रही तो 'ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्' की नीति अपनाने में कोई अनौचित्य नहीं कहा जा सकता । जीवन का आदि अन्त शरीर तक ही सीमित है या उसके पश्चात् भी उसका अस्तित्व है, यह मात्र दार्शनिक पहेली नहीं है । उसका आज की गतिविधियों से सीधा सम्बन्ध है । एक निश्चय के उपरान्त एक दिशा में चलना पड़ता है और दूसरा निश्चय होने पर दूसरी दिशा में चलने की आवश्यकता अनुभव की जायगी ।

क्या मृत्यु की अनुभूति कभी हो सकती है ? इसका उत्तर नकारात्मक ही हो सकता है । मैं मरने वाला हूँ, मर रहा हूँ, जैसे शब्दों का उच्चारण करते हुए भी कहने वाला अपने को जीवित ही अनुभव करता है । सपने में अपनी मृत्यु का दृश्य देखा जा सकता है । शरीर अचेतन पड़ा हुआ और स्वजन सम्बन्धी रोते कलपते दिखाई पड़ते हैं । इतने पर भी अपनी सत्ता बनी ही दीखती है । मरण का अनुभव अपने को ही होता रहता है । इससे स्पष्ट है कि अपना मरण स्वीकार करना आत्मा का स्वभाव ही नहीं है ।

जिसका जो स्वभाव है, वह उसे पसन्द होता है और उसकी पूर्ति में प्रसन्न होता है । मछली का जल जीवन स्वभाव है, मच्छर गन्दगी पसन्द करते हैं और खटमल रक्त पीते हैं। इसमें उन्हें घृणा नहीं प्रसन्नता होती है । आत्मा यदि मरण धर्मी होता तो उसे मरने से तनिक भी डर न लगता । चूँकि वह मरना नहीं चाहता, मृत्यु संकट आने पर उससे बचने का हर सम्भव उपाय करता है । मरने से डरना यह बताता है कि मृत्यु अस्वाभाविक है । जीवात्मा उस स्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं । यों शरीर मरता है, आत्मा की मृत्यु नहीं होती तो भी उसे न केवल अपनी, वरन् अपनी शरीर और स्वजनों तक की मृत्यु अनुपयुक्त, अप्रिय लगती है । जीवन ही आत्मा का धर्म है । अपना मरण तो होती नहीं है । शरीरों पर उसकी प्रतिकूल प्रतिक्रिया होती है । यह सब लक्षण इस बात के हैं, कि मानवी सत्ता मरणशील नहीं न उसे मरण से कोई सहानुभूति है ।

स्वास्थ्य स्वाभाविक है और रोग अस्वाभाविक । सदैव स्वस्थ बने रहने में भी किसी को कोई आपत्ति नहीं । अस्वस्थता थोड़े दिन की भी असहनीय होती है । किसी प्रियजन के रोगी होने से चिन्ता होती है, उसकी स्थिति तथा बजह पूछने जानने के लिए आतुरता व्यक्त की जाती है, किन्तु स्वस्थ रहने पर कोई उसके लिए चिन्ता नहीं करता और न यह पूछता कि आप स्वस्थ क्यों हैं ? इससे स्वाभाविक और अस्वाभाविक होने का परिचय मिलता है । मृत्यु और जीवन के सम्बन्ध में भी यही बात है । मृत्यु का समाचार पाकर या उसकी सम्भावना विदित होने पर चिन्ता, सम्वेदना प्रकट की जाने लगती है, पर जीवित रहने पर ऐसी कोई व्यग्रता कहीं से भी नहीं होती । इससे जीवन की स्वाभाविकता सिद्ध है । अस्वाभाविक तो मरण ही है । जब शरीर तक के मरण में अस्वाभाविकता मानी जाती है तब आत्मा की चेतन सत्ता का मरण स्वीकार करने की बात तो किसी के गले उतरती ही नहीं ।

इस संसार में जितना पदार्थ सृष्टि के आरम्भ में था, उतनी ही अन्त तक रहेगा । उसमें न्यूनाधिकता नहीं होती । वस्तुओं के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है । ठोस, तरल और वायुभूत इन स्थितियों में वस्तुएँ बदलती रहती हैं । पानी तरल है, ठण्डक पड़ने पर बर्फ बन जाता है । गर्मी पड़ने पर भाप बनकर आकाश में उड़ जाता है फिर बादल या ओस बनकर तरल रूप में दिखाई पड़ता है । यही अदला-बदली वस्तुओं की उत्पत्ति और मृत्यु के रूप में प्रकट-अप्रकट होती रहती है, वस्तुतः कोई वस्तु कभी नष्ट नहीं होती । इस सिद्धान्त को रसायन शास्त्र के विद्यार्थी भली प्रकार जानते हैं । भौतिक विज्ञान में इसी सिद्धान्त को 'तत्व का अनुत्पत्तित्व'--तत्व का अतिनासित्व-शक्ति का परिवर्तन नाम से प्रतिपादित किया गया है । अध्यात्म शास्त्र में पदार्थ और प्राणी दोनों पर ही इसी तथ्य का समान रूप से कार्यान्वियन प्रतिपादित किया गया है। गीता कहती है **'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः ।''** अर्थात् जो नहीं था वह पैदा नहीं होता और जो है, उसका नाश नहीं हो सकता । इस प्रतिपादन में पदार्थ की तरह आत्मा की अमरता भी सन्निहित है ।

किसी से पूछा जाय कि आप का अस्तित्व इस समय है या नहीं, वह यही है, मैं ही उत्तर दे सकता है । यदि यह 'मैं' इस समय विद्यमान है, तो वह पहले भी था और आगे भी बना ही रहेगा । हाँ, नाम, रूप और स्थान का परिवर्तन प्रकृति के स्वाभाविक क्रम के अनुसार अवश्य होता रहता है। यदि स्थानान्तरण को मृत्यु समझा जाय तब तो बात दूसरी है पर यदि विनाश या समाप्ति के रूप में मरण की व्याख्या की जाती हो वह भौतिक शास्त्र और दर्शन शास्त्र दोनों ही दृष्टियों से गलत है । आत्मा का अस्तित्व शरीर की मृत्यु होने के उपरान्त भी बना रहता है । इस तथ्य से वे धर्म भी इनकार

नहीं करते, जो पुनर्जन्म को नहीं मानते । उस परलोक का अस्तित्व तो उन्हें भी मान्य है, जिसमें मरने के बाद भी आत्मा किसी न किसी स्थिति में निवास करती रहती है ।

साधारणतया जन्म शब्द का अर्थ पैदा होना और मृत्यु का नष्ट एवं समाप्त हो जाना है । यह दो घटनाएँ समझी जाती हैं । संस्कृत भाषा में 'जन्म' और 'मृत्यु' शब्दों की व्याख्या व्युत्पत्ति में तथ्य को पूरी तरह स्पष्ट किया गया है । उसमें जन्म का अर्थ प्रकट होना और मृत्यु का देखने योग्य न रहना भर है । इन शब्दों में स्थिति के परिवर्तन भर का संकेत है किसी नवीन उत्पादन या आत्यांतिक विकास का प्रतिपादन नहीं है ।

संस्कृत की 'जन-प्रादुर्भावे' धातु से जन्म शब्द बना है। प्रादुर्भाव का अर्थ है प्रकटीकरण-आकिजिन । प्रकट होने का तात्पर्य है जो छिपा था, उसका सामने आ जाना 'जन्म' शब्द का दूसरा पर्यायवाचक है। उत्पत्ति यह शब्द उद्-पद् से मिलकर बना है । जिनका अर्थ है ऊपर आना । इस व्याख्या में भी स्थिति के बदलने भर का संकेत है । जन्म के पर्यायवाचकों में एक और शब्द है 'सृष्टि' क्रिएशन । यह शब्द (सृज-विसर्गे) धातु से बना है । जिसका तात्पर्य भी लगभग वैसा ही है, जैसा कि जन्म एवं उत्पत्ति का । सृष्टि को बाहर आना-प्रत्यक्ष होना कह सकते हैं । हमारी इन्द्रियों में सब कुछ देखने की सामर्थ्य नहीं है। वे पंच तत्वों से बनी होने के कारण मात्र किन्हीं वस्तुओं की स्थूल स्थिति को ही देख सकती हैं । कितनी ही वस्तुओं का अस्तित्व सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से, रेडियो टेलिस्कोपों से एवं अन्यान्य साधनों से जाना जा सकता है । आँखें एवं इन्द्रियाँ तो वायुभूत पदार्थों तक को नहीं देख पातीं, जबकि अन्य इन्द्रियाँ उनकी उपस्थिति का अनुभव करती हैं। आग पर मिर्च जला देने से वे हवा में उड़ जाती हैं तब उस वायुभूत मिर्च को आँखें नहीं देखतीं किन्तु नाक गन्ध रूप में उसकी उपस्थिति अनुभव करती है । इसके आगे सूक्ष्मता आने पर वे इन्द्रियों की पकड़ से बाहर हो जाती हैं तो भी उनका अप्रकट अस्तित्व बना रहता है। पदार्थ और आत्मा दोनों के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त एक समान लागू होता है। जन्म का अर्थ नवीन उत्पत्ति नहीं किन्तु अप्रकट का प्रकट भर हो जाना है।

'मृत्यु' शब्द का संस्कृत भाषा में जो अर्थ है उससे भी वस्तुस्थिति पर भली प्रकार प्रकाश पड़ता है । मृत्यु के लिए 'नाश' शब्द का प्रयोग होता है, जिसका तात्पर्य है देखने योग्य न रहना । इसमें अस्तित्व के अभाव की बात नहीं कही गई है, मात्र इतना ही संकेत है कि वह पदार्थ दृष्टि पथ से ओझल हो गया । ऐसा तो बच्चे 'आँख मिचौनी' खेल में भी करते रहते हैं । बादलों की छाया सूर्य, चन्द्र तक को गुप्त प्रकट होने तक के लिए विवश करती रहती है । धूप-छाँव की स्थिति को सूर्य चन्द्र की उत्पत्ति या समाप्ति तो नहीं कह सकते । ठीक इसी प्रकार आत्मा के शरीर धारण करने और चोला उतार देने की स्थिति के सम्बन्ध में समझा जाना चाहिए । इसमें अस्तित्व तो बना ही रहता है । उसकी अमरता में कोई अन्तर नहीं आता ।

मौत से न डरने की जरूरत है और न उसके लिए उतावले होने की । शरीर ही बदलते हैं, आत्मा के अस्तित्व पर मौत का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । कपड़े बार-बार बदलने पड़ते हैं पर शरीर वही बना रहता है। शरीर भी कपड़े की तरह बदलते रहते हैं । जीव ईश्वर के समान ही अनादि और अनन्त है । कोई सत्कर्म किया है तो उसका फल अगले दिन-अगले जन्म में मिल सकता है उसमें अधीरता की आवश्यकता नहीं है । वृद्ध हो गये मरने के दिन आ गये । अब पढ़कर क्या करेंगे ? अब के आरम्भों का अपने को क्या प्रतिफल मिलेगा, इस तरह नहीं सोचा जाना चाहिए । जीवन अनन्त है । भविष्य सुविस्तृत है । रात्रि में विश्राम करना पड़ता है और काम में व्यवधान पड़ता है यह सोचकर बहुत दिनों में पूरी होने वाली योजना बनाने में कोई संकोच नहीं करता । फिर हमी ही अनन्त जीवन में क्रमिक गति से आत्मोत्कर्ष की-सद्गुणों की-सद्ज्ञान की सम्पदा एकत्रित करने में कटिबद्ध क्यों न रहें ?

इस संसार का प्रत्येक पदार्थ अनादि और अनन्त है । प्रकृति के घटक अणु परमाणु अपनी-अपनी धुरी और कक्षा में भ्रमण करते आ रहे हैं और प्रलय काल तक उनका वही क्रम बना रहेगा । सूर्य उदय और अस्त होता दीखता है, पर वस्तुतः वैसा होता नहीं । वह अपने स्थान पर यथाक्रम गतिशील है । पृथ्वी घूमती हुई जिस क्षेत्र में पीठ फेर लेने जैसी स्थिति में आ जाती है तब उसके दूसरे पक्ष पर अँधेरा छा जाता है । यही रात्रि है। रात्रि होने पर भी सूर्य का अन्त नहीं हो जाता, पर हमारा प्रत्यक्षवाद यही कहता है कि जब वह दीखता ही नहीं तो उसका अन्त ही हुआ होगा । इस हिसाब से सूर्य नित्य प्रातःकाल जन्म लेता है और संध्या होते-होते मृत्यु के मुख में चला जाता है । यह दृश्य बुद्धि है । इसे वास्तविकता नहीं कह सकते । सूर्य तो अनादि काल से था और अनन्त काल तक बना ही रहेगा । सृष्टि का अन्त होने और नया सृजन बन पड़ने पर भी प्रकृति का यह परिवर्तन क्रम चालू ही रहेगा । उसको बनाना, बढ़ाना और बदलना अपनी क्रिया पद्धति का अविछित्र अंग है । उसे कोई न इच्छा पूर्वक बदल सकता है और न अनिच्छा से किसी प्रकार प्रतिबन्ध

लगा सकता है। जो अनिवार्य है, उसके लिए हमें ही वस्तुस्थिति को समझने पर जन्मने का हर्ष और मरण का शोक अनायास ही धीमा पड़ जाता है । वह सरल, सहज और स्वाभाविक प्रतीत होता है ।

मानवी सहज प्रकृति परिस्थितियों से प्रभावित होती है । उस पर मौसम अपने-अपने ऐसे प्रभाव डालते हैं जो एक दूसरे से भिन्न होते हैं । सर्दी और गर्मी की परिस्थितियों में भारी अन्तर है । वर्षा और बसन्त के दृश्य एक दूसरे से भिन्न होते हैं । इस विचित्रता को देखते हुए भी व्यक्ति का सन्तुलन बना रहता है । ऋतुएँ जो अपना परिवर्तन क्रम नहीं छोड़तीं पर व्यक्ति उनकी प्रतिकूलता से अपने को बचाने के उपकरण खोज निकलता है । छाता, जूता, अँगीठी, पंखे आदि इन्हीं आधारों का नाम है । जिनके सहारे ऋतु प्रतिकूलता से निपटने का बहुत हद तक अवसर मिल जाता है ।

पर्दा खुलने पर कौतुक भरे दृश्य दीखते हैं और पटाक्षेप होने पर उस हलचल का अन्त हो जाता है। इतने पर भी नाटक के दर्शकों में कोई बड़ी खलबली नहीं मचती । सहज रीति से उस परिवर्तन से चित्रविचित्र सा अनुभव करते रहते हैं। यही रीति उचित भी है और आवश्यक भी, अन्यथा दृश्य परिवर्तन होने पर नाटक के सभी दर्शक उत्तेजित हो उठेंगे और आवेशग्रस्त होकर भली-बुरी प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगेंगे । नाट्य व्यवस्था के समूचे संरजाम का मजा किरकिरा कर देंगे ।

उपलब्धि से प्रसन्नता और हानि से क्षोभ यह मनुष्य की स्वाभाविक मनोदशा है । इस आधार पर पुत्र जन्म पर कोई खुशी मनाये और प्रियजन की मृत्यु पर आँसू बहाये तो इसे स्वाभाविक ही कहा जायेगा । पर उनका आवेश में बदल जाना और अत्यधिक प्रभावित होना बुरा है । न तो लाभ का प्रतिफल अहंकारी उन्माद होना चाहिए और न हानि का दृश्य सामने आते ही रुदन, विलाप की स्थिति बना देनी चाहिए, न कातर होना चाहिए और न अव्यवस्थित असन्तुलित होने की आवश्यकता है । परिवर्तन को सहज स्वाभाविक रीति से समझना, देखना और सहन करना चाहिए । सन्तुलन हर दृष्टि से लाभदायक है । विवेक अपनाकर ही व्यक्ति अपने को यथास्थान बनाये और यथावत् चलाये रह सकता है । समुद्र की बीच गढ़े हुए प्रकाश स्तम्भ ही उस क्षेत्र से गुजरने वाली नावों का मार्गदर्शन कर सकते हैं । स्वयं तो अपनी स्थिरता एवं प्रामाणिकता उपयोगिता बनाये ही रह सकते हैं, अपने को स्थिर रख सकने वाले ही दूसरों को स्थिरता प्रदान कर सकने में समर्थ होते हैं । धैर्यवान ही धैर्य देते हैं । विवेकवानों से ही दूसरों को विवेक मिलता है । आतुर, विह्वल, कातर अथवा हर्षोन्मत्त होने से वातावरण बिगड़ता है और समीपवर्ती लोग भी वैसा ही करने लगते हैं ।

जो जन्मा है सो बढ़ेगा जो बढ़ रहा है वह झुकेगा, झुकने के उपरान्त मरण निश्चित है । इस गति चक्र से उलझना किसी के भी वश की बात नहीं ! अच्छा यही है कि प्रवाह की गतिशीलता को स्वीकार करें और जिस तिस को दोष देने की अपेक्षा भवितव्यता को स्वीकार करें । परिवर्तन जन्य परिस्थितियों के साथ ताल-मेल बिठायें और असंतुलन को संतुलन में बदलें । इसी में बुद्धिमानी है और इसी में भलाई ।

हर्ष शोक के जंजाल में उलझने की अपेक्षा यह अधिक उत्तम है कि बदलती परिस्थितियों के साथ बदलते उत्तरदायित्वों और बदलते कर्तव्यों को समझें, उनका परिपालन करें। घर में यदि नवजात शिशु जन्मा है, तो उचित यही है कि उसके भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, स्वावलम्बन, सुसंस्कारिता आदि प्रगतिशीलता के आधारों का समुचित निर्वाह करने की बात सोचें । उस दिशा में कदम बढ़ायें और जब तक सामर्थ्य है तब तक उस प्रक्रिया को पूरी करते रहने के लिए सन्निद्ध रहें ।

अपने जीवन का मूल्य महत्व समझें, उसका अन्त मृत्यु के रूप में समझें । साथ ही यह भी ध्यान में रखें कि उस प्रकार का पटाक्षेप कभी भी हो सकता है । मृत्यु का कोई दिन नहीं, कोई मुहूर्त नहीं । वह कभी भी आ सकती और कभी भी अपना चबेना झोले में से समेट कर दाँतों तले कुचल सकती है ।

इस संदर्भ में प्रमुख समस्या एक ही है कि जो समय शेष जीवन जीने के लिए उपलब्ध है, उसका श्रेष्ठतम उपयोग किस प्रकार किया जाय ? मानवी काया सृष्टि के अन्य प्राणियों की तुलना में अगणित विशेषता युक्त तो है ही उसका मनःक्षेत्र भाव संस्थान और भी अधिक अद्‌भुत है । उस खान में एक से एक अधिक मूल्यवान मणि मुक्तकों का भाण्डागार भरा पड़ा है, उसे यदि खोज निकाला जाय और महत्वपूर्ण प्रयोजनों में नियोजित किया जा सके तो समझना चाहिए कि सौभाग्य सुयोग की, वरदान स्तर की देव अनुकम्पा बरस पड़ी । जीवन का कितना समय शेष है यह कहा नहीं जा सकता । इसलिए हर क्षण को बहुमूल्य समझकर उसका श्रेष्ठतम उपयोग करने की योजना बनानी चहिए । इसी में जन्म और मरण की सार्थकता है ।

मरने से पूर्व इस बात की तैयारी की जाय कि पापों के गट्‌ठर पीठ पर लादकर परलोक के मार्ग को विपन्न न करें। साथ ही यह भी देखा जाना चाहिए कि पुण्य-परमार्थ

की कमाई इतनी हो रही है या नहीं जो जीवित रहने के शेष दिनों और मरणोपरान्त भी सुख शान्ति का, उज्ज्वल भविष्य का सुयोग बन सके ।

अपने मरण की चिन्ता करने जैसी कोई बात नहीं है । जो अवश्यम्भावी है, उससे भयभीत होने की क्या आवश्यकता ? परलोक भी इस लोक से कम सुहावना नहीं है । जीव इसी भू-मण्डल की परिधि में घुमड़ता रहता है । अन्य सम्बन्धी कुटुम्बियों को देखता और उनकी गतिविधियों में सहायता करता रहता है । इतने पर भी हर जीवधारी की सत्ता स्वतंत्र है, उनमें से कितने ही सम्बन्धों में बँधते और बिछुड़ते रहते हैं । ऐसी दशा में शोक क्यों, किसके लिए, कितने दिन तक करें ?

मृत्यु का विस्मरण एक असाधारण प्रमाद

बैंक से कर्ज जमानत पर मिलता है और उसे समयानुसार ब्याज समेत वापस लौटाना पड़ता है । मिली हुई राशि धरोहर है । उसे ठीक तरह लौटा देने और जितने दिन वह पास में रहे, उससे कुछ उत्पादन कर के पूँजी बना लेना ही बुद्धिमत्ता है, ताकि बार-बार कर्ज लेने का झंझट न रहे । अपनी ही पूँजी में गुजारा होता रहे ।

मूर्खता यह कि जिस-तिस प्रकार तिकड़म भिड़ाकर बैंक से कर्ज तो प्राप्त कर लिया जाय पर उसे वापस चुकाना भी है, यह स्मरण ही न रहे । जो पाया उसे शौक मौज में, दुर्व्यसनों में उड़ाया । ऐसे लोग कर्जे की राशि को जेब में आते समय तो बड़े प्रसन्न होते हैं और समझते हैं कि भाग्य खुला । मुट्ठी गर्म होते ही उद्देश्य की याद नहीं रहती कि यह किस प्रयोजन का वचन देकर, किस की जमानतें दिला कर यह सम्पदा हस्तगत की गई थी । उस काम को भी करना है, यह भुला दिया जाता है और उस से रंगरेलियाँ मनाई जाती हैं । फलतः कुछ ही समय में पूँजी निबट जाती है ।

मनुष्य जीवन ऐसी ही एक धरोहर है- बैंक से लिया हुआ कर्ज । यह हर किसी को नहीं मिलता । प्राप्त वे ही कर पाते हैं जो देने वाले तन्त्र को यह दुहरा विश्वास दिला देते हैं कि उसका सदुपयोग करके अपना उद्यम खड़ा कर लिया जाएगा और साथ ही एक मुश्त अथवा किस्तों में अमानत को लौटाते रहा जायगा । उपलब्धि के उद्देश्य को भुला देने वाले अपनी पिछली सम्पदा को भी गँवा बैठते हैं और नए न चुकाने पर मिलने वाली प्रताड़ना को सहन करते हैं ।

मनुष्य जीवन विशुद्ध धरोहर है, जिसे अभिभावकों, गुरुजनों की जमानत पर इसलिए दिया गया है, कि इस धरोहर का दुरुपयोग नहीं होने दिया जाएगा और वापसी का प्रबन्ध ठीक समय पर बन पड़े, इस के लिए नियन्त्रण रखा जायगा। किन्तु जमानतदार भी जब दुरुपयोग को टुकुर-टुकुर देखते रहते हैं इतना ही नहीं उलटे मौज मजा करने की, उसे उड़ा देने की सलाह देते हैं, तो फिर समझना चाहिए कि दुर्भाग्य भरी दुर्घटना होने जा रही है । वापसी का विस्मरण इतना बड़ा प्रमाद है कि उसका प्रतिफल चिरकाल तक जन्म-जन्मान्तरों तक भुगतना पड़ता है ।

जीवन का दुर्भाग्य भरा दुरुपयोग तब होता है, जब मृत्यु को भुला दिया जाय । भगवान का स्मरण आवश्यक माना जाता है । उसके कितने ही लाभ गिनाये जाते हैं । पर उससे भी आवश्यक यह है कि मृत्यु को हर घड़ी स्मरण रखा जाय । समझा जाय कि यह एक अग्नि परीक्षा का अवसर है । उसे बरबाद नहीं करना है, अन्यथा उस विस्मरण का समय गुजर जाने पर इतना पश्चाताप होता है, इतना प्रायश्चित लदता है, जिसकी याद करने भर से जी दहल जाय ।

जीवन की घड़ियाँ देखते देखते निकलती हैं । पेट-प्रजनन ये दो शरीरगत कार्य ऐसे हैं, जिनमें व्यस्त रहते हुए यह पता ही नहीं चलता कि ३६० दिन वाले कितने वर्ष एक-एक करके गुजर गए । बचपन, किशोरावस्था, तरुणाई, प्रौढ़ता के उपरान्त वृद्धावस्था आ धमकती है । यह मृत्यु का पूर्व स्वरूप है । वैभव तथा अधिकार सब तरुण उत्तराधिकारियों द्वारा इच्छा या अनिच्छा रहते छीन लिए जाते हैं । अपने शरीर का ठीक प्रकार संचालन अपने बलबूते नहीं हो पाता । इसके निमित्त भी दूसरों का आसरा तकना पड़ता है । शैशव में जिस प्रकार बड़ों के अनुग्रह से शरीर यात्रा चलती थी, उसी प्रकार बुढ़ापे में छोटों की अनुकम्पा पर आश्रित रहना पड़ता है । देने वाले एहसान जताते हैं और लेने वाले को सिर नीचा रखना पड़ता है, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गिड़गिड़ाते रहना भी ।

बचपन और बुढ़ापा दोनों ही अपंगावस्था से हैं । किशोर आयु में जोश तो बहुत रहता है पर होश नहीं । मात्र तरुणाई और प्रौढ़ता ही ऐसी अवधि है, जिसमें दूरदर्शिता सजग-सक्षम रखी जा सकती है । शेष आयुष्य तो खिलवाड़ में ही चली जाती है । रहा बचा समय यार-दोस्त, लोभ, मोह, अहंकार प्रदर्शन खा जाते हैं । महत्वाकांक्षाओं की ललक इतनी बढ़ी चढ़ी रहती है, कि मात्र यही सूझता है कि बड़प्पन जितना अधिक बटोरा जा सके बटोर लिया जाय । दर्प-अहंकार प्रदर्शन जितना भी सँजोया जा सके उसे सँजोकर लोगों की आँखों में

चकाचौंध उत्पन्न किया जाय, किन्तु वास्तविकता यह है, कि हर व्यक्ति अपनी निज की समस्याओं में उलझा है कि उसे किसी दूसरे के सौन्दर्य, बल, वैभव, उत्थान पतन से किसी प्रकार का सरोकार नहीं है, न रस, न गम्भीरता । अधिक शोर मचाने पर विवशता की स्थिति में आँख उठाकर देख लेने और उस हुड़दंग पर मुस्करा भर देना पर्याप्त समझा जाता है । इस से अधिक किसी को किसी के सम्बन्ध में ध्यान देने, प्रभावित होने, यश गाने की फुरसत ही नहीं मिलती । जबकि इसी वहम में लोग निरर्थक उछल कूद करते हुए, अपनी बहुमूल्य जीवन सम्पदा को चिथड़े बनाकर बेकार करते और फेंकते रहते हैं ।

जीवन में वास्तविक ज्ञान प्रदान करने का समय वह है जिसमें जीवात्मा शरीर को त्यागकर ईश्वर के दरबार में पेश होने के लिए प्रयाण करती है । कमाया हुआ वैभव और यश शरीर के साथ जुड़ा था । जब शरीर ही धूल चाटने वाला है तो फिर उसके साथ जुड़े हुए वैभव को साथ क्या चलना ? खाली हाथ विदाई लेते समय रहस्यमयी पर्तें खुलती हैं । प्रतीत होता है कि लोभ की ललक ने जितनी अभिरुचि कमाने में उत्पन्न की, वह आवेश बनकर छाई रही और निरन्तर अनीति ही बन पड़ती रही । सम्पदा निष्ठुरता धारण किए बिना अधिक मात्रा में कमाई ही नहीं जा सकती । उसके लिए छल-प्रपंच और अपराधों के अस्त्र-शस्त्र सँजोने पड़ते हैं । इसके अतिरिक्त दूसरा मोह जाल है, जो भ्रम होते हुए भी वास्तविकता जैसा प्रतीत होता है । स्वजन, परिजन, सम्बन्धी, कुटुम्बी, परिचित-अपरिचित समुदाय के साथ मोह जुड़ जाता है । उसके वशीभूत होकर अपने पराये का भेदभाव उपजता है । अपनों को प्रसन्न रखने के लिए उनकी मर्जी पर चलना पड़ता है । मर्जी की कोई सीमा नहीं । वह क्रमशः बढ़ती ही रहती है और व्यक्ति उसकी प्रसन्नता के लिए अपनी शान्ति, सद्‌गति और जिम्मेदारी प्रायः पूरी तरह खो बैठता है । इतने पर भी इन्हें छोड़कर रोते, रुलाते अन्त समय अकेले ही चलना पड़ता है। जन्म लेते समय तो शरीर तब भी साथ था, पर मरण की बेला में वह भी साथ छोड़ देता है और आत्मा को अकेले ही जाना पड़ता है ।

जो देव जीवन किसी अन्य प्राणी को नहीं मिला वह मनुष्य को किसी आशा, उदारता और परीक्षा के रूप में इसलिए दिया गया है कि उसमें अपनी पात्रता बढ़ाई जाय और विश्व-उद्यान को सींचने में कौशल प्रदर्शित किया जाय पर जब उन दोनों में से एक भी कर्तव्य नहीं निभता और उल्टे पाप का पोटला लादकर न्यायाधीश की कचहरी में पहुँचना पड़ता है तब कहीं चूक का पता चलता है । उस प्रमाद का भारी दण्ड भी भुगतना पड़ता है । अच्छा होता, मौत का हर घड़ी स्मरण बना रहता और जो इन बहुमूल्य क्षणों का श्रेष्ठतम उपयोग करने की प्रेरणा देती रहती ।

मृत्यु हमारे जीवन की अनिवार्य अतिथि

संसार के सबसे बड़े आश्चर्य-सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर देते हुए धर्मराज युधिष्ठर ने कहा था "संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि नित्य प्रति दूसरों को मरते देखकर भी मनुष्य अपनी मृत्यु में विश्वास करने को तैयार नहीं होता । वह समझता है कि और कोई भले ही मरे पर वह सदा सर्वदा धरती पर बना रहेगा ।"

निःसन्देह यह एक बहुत बड़ा आश्चर्य है कि नित्य प्रति अनेकों को मृत्यु-मुख में जाते देखकर हम अपने सम्बन्ध में मृत्यु को अवश्यम्भावी मानने को तैयार नहीं होते । हर मनुष्य अपने पूर्व पुरुषों की एक लम्बी परम्परा में चला आ रहा है और यह जानता है कि उसके पूर्व पुरुष उसी तरह इस पृथ्वी पर वर्तमान थे, पर आज उनमें से कोई भी नहीं है । सब ही मृत्यु के मुख में समाकर इस धराधाम से नाता तोड़ गये । पूर्व पुरुषों की इतनी लम्बी श्रृंखला जब मिटती चली आती है तब हममें ही ऐसी कौन सी विशेषता है कि मृत्यु पूर्व पुरुषों की तरह, एक दिन, हमको भी अपना मेहमान न बना लेगी । हर मनुष्य को एक दिन मृत्यु का मेहमान बनना ही होगा । परमात्मा का यह अटल नियम किसी के लिये भी अपवाद नहीं बन सकता ।

सोचने की बात है कि यदि मनुष्य के लिये, परमात्मा ने मृत्यु का अनिवार्य प्रतिबन्ध न लगाया होता तो क्या आज तक पृथ्वी पर इतनी जनसंख्या न हो जाती कि इस धरती पर तिल रखने को भी जगह न रहती । तब कहाँ तो मनुष्य रहता, कहाँ खेती करता, और कहाँ जीविका के अन्य साधन स्थापित करता ? वह अनन्ततम् जनसंख्या क्या खाती, क्या पीती और क्या पहनती ? आज जब मृत्यु का अनिवार्य प्रतिबंध लगा हुआ है, हजारों-लाखों मनुष्य नित्य संसार खाली करते जा रहे हैं तब तो जन संकुलता की वृद्धि ने मानव समाज के सामने भोजन, वस्त्र तथा निवास की समस्या विकट रूप से खड़ी कर दी है । यदि मृत्यु का प्रतिबन्ध न रहा होता तो इस संसार, इस मानव समाज की क्या दशा हो जाती, इसकी कल्पना भी

नहीं की जा सकती और यदि आज भी यह प्रतिबंध उठा लिया जाय तो कुछ ही समय में हम सब की क्या दुर्दशा हो जाये, क्या इसका अनुमान कोई कर सकता है ?

जब मरने का भय हर समय सिर पर सवार रहता है, साथ ही किस समय मृत्यु आ सकती है, इसका भी पता नहीं तब तो मनुष्य अपने लिये न जाने कितना संग्रह करता रहता। वह सब उसे किसी समय भी छोड़ देना पड़ सकता है। दिन-रात चोरी, मक्कारी, ठगी, छीना-झपटी, शोषण आदि कुकृत्यों द्वारा दूसरों को, दिन-रात रिक्त करने में जुटा रहता है । यदि उसे अमरता का आश्वासन मिल जाये तो लिप्सालु मनुष्य कितना प्रचण्ड पिशाच बन जाये यह कह सकना कठिन है ।

मृत्यु की अनिवार्यता की स्थिति में तो मदोन्मत्त व्यक्ति नित्य नये ध्वंस रचता एक दूसरे को खा जाने की कोशिश करता रहता है। सदाजीवी होने पर उसकी उद्धतता न जाने क्या कर डलती ! संसार में हर ओर हर समय केवल रक्तपात ही होता दिखाती देता । न कहीं कोई मनुष्य शांतिपूर्वक सृजन करता दिखाई देता और न भजन करता ।

यदि मृत्यु न होती तो पुराने स्थान छोड़ते नहीं और नये उन्हें पाना चाहते इस स्थिति में हर समय नये पुराने का संग्राम छिड़ा रहता । पिता-पुत्र को और पुत्र अपने पुत्र को अपना स्थान अथवा उत्तराधिकारी देने को तैयार न होता । लोग अपने अनन्त जीवनयापन की आवश्यक वस्तुओं में से एक कण तक अपने आश्रितों अथवा सन्तानों को देने में झिझकते। आत्मयापन की चिन्ता एवं आवश्यकता के दबाव में लोग कितने स्वार्थी एवं कितने संग्राहक और कितने कृपण हो जाते । क्या, किसी प्रकार इसका अनुमान लगाया जा सकता है ? चिरस्थायी, जीवन पाकर मनुष्यों में एक दूसरे के प्रति त्याग, सहानुभूति, सौहार्द्र, सहयोग, सहायता, स्नेह, सौजन्य एवं आत्मीयता का कोई भाव रहता, ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

संसार में जो नवलता एवं नवीनता के दर्शन होते हैं, जिस सरसता एवं सुन्दरता की अनुभूति होती है, वह सब पूर्वापूर्व के गमनागमन की प्रकिया के कारण ही दिखाई देते हैं । यदि इस पावन प्रकिया का प्रभाव न रहा होता तो पट परिवर्तन के अभाव में विश्व रंगमंच पर चलने वाला यह जीवन-नाटक एकरसता, एक-रूपता एवं एक दृश्यता के कारण और कितना अरुचिकर, कितना अप्रिय, कितना बोझिल और कितना असह्य हो जाता, इसका उत्तर, मनुष्य अपनी नव-रुचि एवं परिवर्तन-प्रिय वृत्ति से पूछ सकता है ।

जीवन के किंचित समय में ही मनुष्य न जाने कितनी बार, कितनी तरह की आधि-व्याधि,ईति-भीति, दुःख-दारिद्रय एवं शोक-संतापों का शिकार बनता रहता है और कष्ट-क्लेशों से घबराकर मृत्यु माँगने लगता है यदि उसे समापन शून्य निर्विराम जीवन मिल जाये तब उसकी यातनायें कितनी दीर्घ जीविनी हो सकती हैं। क्या मृत्यु से द्वेष मानने वाले मनुष्य कभी इस पर विचार करते हैं ? संसार में हर मनुष्य अपनी वारी में जो कुछ सुख-शान्ति, साधन-सुविधा अथवा रसानुभूति पा रहे हैं, अथवा जो अपनी वारी में पा चुके हैं और जो आगे पायेंगे वह सब मृत्यु के अनिवार्य प्रतिबंध के कारण ही सम्भव हुआ है, और होगा । यदि यह प्रतिबन्ध न रहा होता या आज उठ जाये तो हमारा यह संसार रौरव नरक से भी भयानक, बन जाये। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है । मृत्यु मनुष्य के लिये एक मैत्रीपूर्ण वरदान है । इसे परमात्मा की असीम अनुकम्पा समझकर उसे बार-बार धन्यवाद देकर कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए ।

मृत्यु से भयभीत होने वाले लोगों में अधिकतर वे ही लोग होते हैं जो जीवन को उस प्रकार नहीं जीते, जिस प्रकार एक मनुष्य को जीना चाहिये । अकरणीय एवं दण्डनीय कर्मों की गठरी तैयार कर लेने वाला स्वभावतः भयभीत होगा ही। क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि उसने ऐसे-ऐसे कार्य किये हैं जो माफ नहीं किये जा सकते और इसके लिये उसे परलोक में सजा पानी है । जीवन रहने तक वे उस यातना से बचे रह सकते हैं इसीलिये मृत्यु की कल्पना तक से काँप उठते हैं ।

यद्यपि कुकर्मों का कुफल मनुष्य को विविध प्रकार के रोग, शोक और अपयश, अपवाद के रूप में जीवन काल में भी भोगने पड़ते हैं और कभी-कभी कानून के शिकंजे में फँस कर भी दण्ड भोगना पड़ता है, किन्तु मनुष्य के कुकृत्यों का भोग यहाँ ही पूरा नहीं हो जाता । उन सबको पूरी तरह से परलोक में ही भुगतना पड़ता है । बहुत से कुकृत्य इस प्रकार के होते हैं, जो मनुष्य अपनी चतुराई से समाज अथवा कानून से छिपाये रहता है और बहुतों के दण्ड से, परिस्थिति अथवा संयोगवश बच जाया करता है । किन्तु जीवन के पश्चात् परलोक में क्या प्रत्यक्ष और क्या अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के कर्मों का पूरा-पूरा लेखा-जोखा चुका लिया जाता है ।

जिसने इस प्रकार का कुप्रबन्ध कर रखा है उसे तो मृत्यु से डर लगेगा ही । पर उसे मृत्यु से भला डर क्यों लगने लगा जिसने मन-वचन-कर्म से अपने जीवन को यथासाध्य ईमानदारी से पवित्र एवं निष्कलंक रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है और यदि संयोग प्रारब्ध, परवशता अथवा परिस्थितिवश जाने-अनजाने कोई अकृत्य कर भी गया है, तो उसके लिये

उसके हृदय में खेद, पश्चाताप तथा आत्मग्लानि हुई है और आगे के लिये और भी सावधान हो गया है । ऐसे सावधान सुकृती को मृत्यु से कभी भय नहीं लगता । क्योंकि वह जानता है कि उसने ऐसा कोई काम नहीं किया, जिसके लिये उसे परलोक में दण्ड पाना होगा ।

मृत्यु से भयभीत होने वालों में कुछ वैसे लोग भी होते हैं जो जीवन की लम्बी अवधि को आलस्य, विलास अथवा प्रमाद में गँवा देते हैं। यहाँ तक कि अपने सामान्य कर्तव्यों तथा आवश्यक उत्तरदायित्व को भी ठीक से नहीं निभाते । जब ऐसे लोगों को मृत्यु की याद आती है, तब वे शोक करते हुये सोचने लगते हैं कि मैंने अति दुर्लभ मानव जीवन को यों ही व्यर्थ में गँवा दिया है । यदि इसका ठीक ठीक मूल्यांकन किया होता तो न जाने कितना क्या कर सकता था । अब मृत्यु का झोंका आकर मुझे ले जायेगा और हाथ मलते हुए इस संसार से जाना होगा । इस प्रकार के आलसी एवं असावधान व्यक्ति पश्चाताप की आग में जलते हुए अमृत्यु मनाया करते हैं और चाहते हैं कि यदि उनको दीर्घ जीवन की गारण्टी मिल जाये तो वे अब भी कुछ कर डालें । किन्तु खेद है कि उनको इस प्रकार की कोई गारण्टी नहीं मिल सकती । पर इससे भी ज्यादा खेद एवं आश्चर्य की बात यह होती है कि वे पश्चाताप में जलते हुये मृत्यु-चिन्ता से भयभीत तो होते रहते हैं, किन्तु शेष जीवन को पूरी तरह से करणीय कार्यों में नहीं डुबा देते, जिससे जो कुछ थोड़ा बहुत-लोक परलोक बन सके, वही सही। यदि आज भी वे, जितनी चिन्ता मृत्यु की और जितनी कामना अधिक जीवन की किया करते हैं । यदि उतनी चिन्ता अपने कर्तव्यों के लिये करें और पूरक गति से काम में जुट जावें तो सम्भव है, उनकी तन्मयता एवं तीव्रता विगत जीवन की क्षति पूर्ति कर दे । किन्तु दुर्भाग्य है कि दिन-दिन आलस्य, विलास एवं प्रमाद का अभ्यासी मृत्यु की चिन्ता करने के अतिरिक्त कुछ करना नहीं चाहता ।

धोखे से आना तो दूर यदि कहकर भी आये तब भी मृत्यु उन कर्मवीरों को भयभीत नहीं कर सकती जिनका अणु-क्षण अपने पावन कर्त्तव्यों में आत्मविभोर होकर निमग्न रहता है । उन्हें जब अपने काम के सम्मुख दीन-दुनियाँ की खबर ही नहीं रहती तब भला मृत्यु जैसे निरर्थक विषय पर विचार करने के लिये न तो उनके पास फालतू समय ही होता है और न मस्तिष्क ही । कर्त्तव्यवान व्यक्ति दिन-रात जिन्दगी के मुखर मार्गों में ही विचरण किया करता है, मृत्यु की सुनसान दरीचियों की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता । अकर्मण्यता, निष्क्रियता एवं अकर्त्तव्यशीलता मृत्यु की सबसे बड़ी स्मारिकायें हैं । इनको समीप न आने देने वाला कर्मवीर मृत्यु से डरना तो दूर उसकी याद तक नहीं करता ।

धर्मवीर तो मृत्यु के नाम से पुलकित हो उठता है । जिसने सत्कर्मों द्वारा सुकृत की पूँजी जमाकर रखी है, धर्म धन का सम्बल संचय कर लिया है, उसके लिये मृत्यु तो परलोक का निमंत्रण होता है, जहाँ उसके सत्कर्मों के पुरस्कार प्रतीक्षा किया करते हैं । जिसने अपने जीवन में परमार्थ पुण्य का पथ-प्रशस्त किया है, अध्यात्म का चिन्तन एवं परमात्मा का स्मरण किया है, उसकी आत्मा तो स्वयं ही शरीर बंधन से मुक्त होने के लिये व्यग्र रहती है । वह सोचती है कि कब उसकी शरीर यात्रा समाप्त हो और कब पिंजड़े से छूटे पक्षी की तरह मोक्ष की ओर उड़ान भरे ।

अडिग, अनिवार्य एवं आवश्यक सत्य मृत्यु से डरना क्या? बल्कि उसकी कल्पना से तो मनुष्य को अधिकाधिक सक्रिय होकर अपने लोक-परलोक को बनाने के लिये तीव्रता से तत्पर हो जाना चाहिये । उसे अपने सुकृत कार्यों को यह सोचकर बढ़ा देना चाहिये कि न जाने अतिथि, आहूत एवं अपूर्वज्ञात मृत्यु किस समय आ जाये । उसके आने से पूर्व वह सब कुछ कर ही डालना चाहिये, जो कि हमें करना है और हमारे करने योग्य है ।

मरणकाल की व्यथा

शरीर जन्म से लेकर मरणपर्यन्त निरन्तर साथ रहता है। उसी की सहायता से इच्छानुकूल कार्य बन पड़ते हैं । उसी की इन्द्रियाँ हैं जिनके माध्यम से विविध प्रकार के रसास्वादन करने का अवसर मिलता है । उसका एक अवयव मस्तिष्क, बुद्धिमत्ता के भाण्डगार की भूमिका निभाता है । सौन्दर्य, आकर्षण, स्वभाव आदि शरीर की ही विशेषताएँ हैं, जिनसे अनेक लोग प्रभावित होते और मित्र सहयोगी बनते हैं । शरीर की सेवा-साधना, वफादारी और स्वामिभक्ति को देखते हुए उसके साथ अत्यधिक घनिष्ठतम भाव रखना स्वाभाविक है । इस शरीर को जो कोई मान सहयोग देता है, वह भी प्रिय लगने लगता है ।

ऐसी दशा में उसकी शोभा, सज्जा, सुविधा बढ़ाने के लिए भी हर व्यक्ति सामर्थ्य भर प्रयत्न करता है । शरीर को कभी क्षति पहुँचती है, व्यथा होती है, तो अन्तस् भी तिलमिला जाता है । जो सम्भव है वह उपचार करता है । शरीर से सुखों एवं समझौता करने के लिए मानस सदा ताना-बाना बुनता

रहता है । यह घनिष्ठता-आत्मीयता बढ़कर एकात्म भाव तक विकसित हो जाती है कि "स्व" की कल्पना करने पर शरीर की ही कल्पना सामने आती है, आमतौर से मनुष्य अपनी मूल सत्ता शरीर को ही मानता है और उसी के सुख-दुःखों से प्रभावित खिन्न या प्रसन्न रहता है ।

आत्मा का अस्तित्व शरीर से भिन्न मानने की चर्चा जब तक जानकारी क्षेत्र तक ही सीमित रहती है, उसकी सघन अनुभूति कदाचित ही किसी को कभी होती होगी । यदि हुई होती तो आत्म ज्ञान, गौरव, स्वरूप और लक्ष्य भी उभरा होता, और इस प्रयोजन के लिए कुछ न कुछ ऐसा किया होता, जिसे देखकर उसकी आन्तरिक बोधगम्यता का पता चलता । आत्मानुभूति का अर्थ ही शरीर के लिए लगाव में कभी आना है । शरीर जब विराना लगने लगता है, तब यह सूझ भी सूझती है कि यह किसका है और क्यों है ? इन प्रश्नों का उत्तर धर्मशास्त्र और तत्व दर्शन एक ही देते हैं कि काया माया भगवान की है । उसे जीवात्मा के पास इसलिए छोड़ा गया है कि वह लक्ष्य प्राप्ति की लम्बी यात्रा को इस वाहन पर बैठकर सरलतापूर्वक पूरी कर सके । यह एक धरोहर है जिसे ब्याज समेत वापस किया जाना है । कोषाध्यक्ष की तिजोरी में धन भरा रहता है, पर वह उसके निजी प्रयोग के लिए नहीं होता । उसे तो गिने गाँठे वेतन से ही गुजारा करना पड़ता है । जमा राशि तो सरकारी प्रयोजन के लिए अथवा शासकीय कर्मचारियों के वेतन भत्ते आदि के लिए होती है । मनुष्य शरीर की क्षमता गुजारे की परिधि से बाहर है । पशु-पक्षी, कीट-पतंग अपने शरीर से निजी गुजारा भर ही कर पाते हैं । पर मनुष्य तो विशालकाय जलयान की तरह है, जिस पर ढेरों यात्री बिठाये जा सकते हैं और टनों माल ढोया जा सकता है । इसका तात्पर्य इतना ही है कि निजी चरित्रचर्या और विचारणा में उच्चस्तरीय द्रष्टिकोण का समावेश हो । अपूर्णता के जितने छिद्र बाकी हैं, उन्हें भरा जाय । इसके अतिरिक्त विश्व उद्यान को सुविकसित, सुरम्य बनाने के लिए अपने समूचे कौशल का नियोजन किया जाय ।

उद्देश्य का ध्यान आते ही आत्मा का स्वरूप और हित सूझ पड़ता है, तब व्यक्ति के लिए आत्मपरिष्कार और लोक कल्याण का आधार हेतु सत्यपूर्ति सम्वर्धन ध्यान में लगता है । तराजू के जिस पलड़े में वजन ज्यादा होता है वह नीचा हो जाता है और हल्के को ऊपर उठा रहना पड़ता है । जब आत्मा की सत्ता गरिमापूर्ण हो तो उसी के हित साधन को प्राथमिकता देनी होगी । उच्चस्तरीय जीवनचर्या का ताना-बाना बुनना पड़ेगा । ऐसी दशा में शरीर की उतनी ही उपयोगिता समझ में आती है, जितनी की वस्तुतः वह है । तब आत्मा को वरीयता देनी पड़ती है और यह प्रयत्न करना होता है कि इस प्रतिद्वन्द्वता में आत्मा के कलेवरों को अपना न जाने पाये। साथ ही शरीर की निर्वाह प्रक्रिया में भी कमी न पड़े । उचित आवश्यकता का पैमाना यही है कि औसत नागरिक जिन साधनों में गुजारा चलाता है, उतने में ही अपना काम चलाया जाय। इसका तात्पर्य यह होता है कि पुण्य-परमार्थ के लिए पर्याप्त अवसर अवकाश निकल आता है । तब मनुष्य देखने में सामान्य होते हुए भी असामान्य स्तर का देवोपम जीवन जीने लगता है । परमार्थ का पलड़ा भारी पड़ता है और स्वार्थ उसकी तुलना में उधर टँगा हुआ रहने लगता है ।

जब जीवनचर्या में इस प्रकार का हेर-फेर हो तो समझना चाहिए कि तत्त्व दर्शन मात्र जानकारी का, कथा प्रवचन का विषय न रहकर यथार्थ भरी अनुभूति बन गया । तब आत्मा के अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व ही प्रधान दीखते हैं । उन्हीं में आसक्ति केन्द्रीभूत हो जाती है । शरीर के लिए अनासक्ति होती है । उसे भगवान का उद्यान, देवालय समझकर उसी सीमा तक सद्व्यवहार किया जाना है, जितना कि माली बगीचे के प्रति और खजानची तिजोरी भरी राशि के प्रति जागरूक और कर्त्तव्यपरायण रहता है । उन्हें अपनी निज की सम्पत्ति नहीं मानता ।

पुजारी का एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर में, माली का एक बगीचे से दूसरे बगीचे में स्थान्तरण कर दिया जाय तो इससे उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती । सैनिक को इस मोर्चे से हटाकर दूसरे मोर्चे पर बदल दिया जाय, तो उसे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है ?

शरीर परिवर्तन को भी ऐसा ही एक प्रसंग जो लोग मानते हैं, उन्हें मरण काल का न तो भय लगता है और न शरीर त्यागते समय कष्ट होता है । मृत्यु प्रायः यकायक नहीं आती। दुर्घटना से तो कभी-कभी ही कोई मरते हैं । आमतौर से बीमारियाँ बुढ़ापे के रूप में शक्तियों की कमी बनकर आती हैं । जब आत्मा का बोझ धारण किये रहना शरीर के लिए कठिन पड़ता है, तो ही टूटा मकान बदलने जैसी स्थिति आती है और वह कार्य बिना झंझट या असुविधा के पूरा हो जाता है । शरीर और आत्मा दोनों ही एक दूसरे की समुचित सेवा करने योग्य नहीं रह जाते, तो झंझट मिटाने के लिए दोनों का पृथकता के लिए समझौता हो जाता है । यही मृत्यु है । सांसारिक दृष्टि से इसे पति-पत्नी के बीच आये दिन झंझट होने का निपटारा,

तलाक के रूप में सम्पन्न हुआ समझा जा सकता है । इसमें दोनों पक्षों को स्वतंत्रता भी मिलती है और राहत भी ।

कष्टकर मृत्यु उन्हीं की होती है जो शरीर को, परिवार को अपनी ममता से इस प्रकार जकड़ लेते हैं, जिनको पृथक करना कठिन बन पड़ता है । मरने के समय धड़कन बन्द होना उतना कष्टकर नहीं होता, जितना कि मजबूत कसे हुए भवबंधन का तोड़ना । जो मेरा है उसे मेरे साथ चलना चाहिए और नहीं तो मुझे उसके साथ सदा-सर्वदा के लिए जुड़ा रहना चाहिए । इस मान्यता को, अभिलाषा को सृष्टिक्रम का समर्थन नहीं मिलता । परम्परा यही है कि जंग लगे लोहे को भट्टी में तपाकर गलाया जाय । पीछे उसका नया उपकरण ढाला जाय । इस सतत् परम्परा को अमान्य करने वाले ही प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष छेड़ते और उससे हारते हैं । यही है मरण काल की व्यथा, जिसमें कष्टकर कारण एक ही होता है, दृष्टिकोण का अवांछनीय ढाँचे में ढला होना । भगवान की धरोहर को अपनी सम्पदा मानना और कायर माने जाने पर झंझट खड़ा करना । यदि वस्तुस्थिति की जानकारी मात्र न रहने देकर यथार्थता की अनुभूति तक उतार लिया जाय तो मरण रंगमंच का पर्दा बदलने जैसा लगे और उस कौतूहल को देखते हुए किसी को भी त्रास न सहना पडे ।

देशबन्धु दास ने मृत्यु के समय एक कविता लिखी थी जिसके भाव हैं "मेरे ज्ञानभिमान की गठरी मेरे सिर से उतार ले । मेरी पुस्तकों की गठरी मेरे कन्धों से नीचे उतार ले । इस बोझ को उठाते-उठाते मैं अब बहुत जीर्ण-शीर्ण हो गया हूँ । मुझमें जान नहीं है । मैं बहुत थक चुका । मेरे बोझों को उतार ले, प्रभो ।"

"अब वेद की आवश्यकता है न वेदान्त की । अब तो सब कुछ भूल जाने दो प्रभु । अब मुझे आपका वह राज्य दिखाई दे रहा है । प्रभो ! मैं तुम्हारे कुंज के द्वार पर खड़ा हूँ । अपने निर्वाणोंन्मुख दीपक को प्रज्ज्वलित करने के लिए तेरे द्वार पर आया हूँ, भगवान् ।"

जो मृत्यु का मर्म जानते हैं वे इसी तरह मृत्यु को देख कर कविता रचने लगते हैं, जैसे वसन्त की बहार को, बरसात की रिमझिम को, पक्षियों के कलरव को देख सुनकर । प्रिय के धाम में प्रवेश पाने का अवसर है, मृत्यु । पीहर में, माँ की ममतामयी अंक में मोद मनाने आह्लाद प्राप्त करने की मंगलवेला है-मृत्यु । इसीलिए तो सुकरात मरते समय अमृततत्व का आस्वादन कर रहा था, अपने शिष्यों को हँसी-खुशी में मोत का अर्थ समझा रहा था । सन्त तुकाराम कीर्तन करते-करते मौत की गोदी में सो गये । गेटे "अधिक प्रकाश ! अधिक प्रकाश !!" की चकाचौंध में ही लीन हो गये । लोकमान्य ने "यदा यदाहि धर्मस्य" वाला श्लोक बोलते-बोलते आँखें मूँद लीं । दयानन्द "प्रभु-इच्छा की पूर्ति" का स्मरण करते हुए अनन्त में विलीन हो गये । महात्मा बुद्ध "आत्मा-दीप का अर्थ" बताते हुए चल बसे, बापू "हे राम, हे राम" कह रहे थे । स्वतन्त्रता संग्राम के असंख्यों सेनानी 'अहलेवतन की याद में मस्ती भरे तराने गाते हुए मौत की गोद में कूद पड़े । हँसी-खुशी के साथ मौत का आलिंगन करने वाले अमर लोगों की गाथाओं से इतिहास भरा पड़ा है ।

मौत से डरने वाले ही जन्म-मरण को बन्धन समझते हैं, उससे पीछा छुड़ाने के लिए नाना प्रयत्न करते हैं, लेकिन जो मृत्यु का रहस्य जानते हैं, उनके लिए जीवन-मरण एक खेल हैं । महात्मा बुद्ध ने कहा था "मुझे निर्वाण - मोक्ष नहीं चाहिए । मैं तो बार-बार जन्म लेता रहूँ, दीन-दुःखी लोगों की सेवा के लिए ।" हमारे सन्त-ऋषि-महर्षियों के लिए मृत्यु आनन्द का पर्व है । शान्ति के अपार सागर में छलाँग लगाने की शुभ वेला है । चैतन्य महाप्रभु आनन्द की मस्ती में मतवाले होकर सागर में कूद पड़े थे । स्वामी रामतीर्थ के लिए मृत्यु भागीरथी की धारा में अपनी गोद फैलाये बैठी थी । माँ की सुखकर गोद को देखते ही स्वामी जी मचल उठे और कूद पड़े । उनके लिए दीपावली का पर्व बनकर आयी थी, मृत्यु ।

मृत्यु के क्षण ही जीवन की परीक्षा का समय होता है। इसी समय पर मालूम पड़ता है कि व्यक्ति ने पिछला जीवन कैसा बिताया । जो मरते समय रोयेगा । हाथ-पैर फेंकेगा, छटपटायेगा तो समझा जायगा कि इस मनुष्य ने सारा जीवन रोते-कलपते, इधर-उधर मृग मरीचिका की तरह भाग-दौड़ करते बिताया है । जो मृत्यु के समय हँसेगा, जिसके चेहरे पर शान्ति, प्रसन्नता, आनन्द की रेखायें फूट पड़ेंगी उसका जीवन सफल माना जायगा । महापुरुषों की मृत्यु भी अलौकिक होती है । उन क्षणों में एक अपूर्व पर्व जैसा वातावरण बन जाता है । धरती पर दो आत्मीय व्यक्तियों के मिलने का अवसर कितना सुखद बन जाता है । लेकिन मृत्यु के अवसर पर तो आत्मा परमात्मा के दरवाजे पर पैर रखती है । प्रेमी अपने प्रियतम से मिलता है । भक्त अपने भगवान से । पुत्र अपनी माता से । इसलिए मृत्यु के समय भी आनन्द का, उल्लास का वातावरण होना ही चाहिए । मृत्यु एक पर्व है, जन्म जैसा ही ।

मृत्यु के अवसर पर मनुष्य की स्मृति बहुत साफ हो जाती है । समय और पक्ष-विपक्ष की धूल हट जाती है ।

उस समय जीवन भर के कर्म-घटनायें, सिनेमा की दृश्यावली की तरह एक-एक करके स्मृति पटल पर आने लगती है । जिसने जीवन का सही-सही उपयोग किया होता है, उसे मौत के समय शान्ति मिलती है । सन्तोष होता है । जिन्होंने व्यर्थ ही अपने जीवन धन को लुटा दिया, दुरुपयोग किया, उन्हें घोर पश्चाताप, असन्तोष की आग में जलना पड़ता है और देखा जाता है, कि इस तरह के लोग मरते समय बड़ी मानसिक यन्त्रणा, कष्ट-सा अनुभव करते हैं । मरने में बड़ा लम्बा समय लेते हैं । इसी तरह जो लोग पहले से ही अपने आपको मृत्यु के लिए तैयार न करके वस्तु पदार्थों के गोरखधन्धे, संग्रह आदि में ही लगे रहते हैं, उन्हें अपना सब कुछ जुटाया हुआ सामान जब छोड़ना पड़ता है, खाली हाथ जाना पड़ता है तो बड़ा मानसिक कष्ट होने लगता है । संसार और यहाँ के वस्तु पदार्थों में उनकी आसक्ति उन्हें बड़ा कष्ट देती है ।

जीवन एक कहानी है, मृत्यु उसका परिणाम । जीवन एक प्रश्न है तो मृत्यु उसका उत्तर । जीवन एक यात्रा है तो मृत्यु साँस । दोनों का अनन्य साथ है । लेकिन गौरवपूर्ण मृत्यु प्राप्त करना जीवन की सफलता का प्रमाण है और यह जीवन भर तैयारी करने पर ही निर्भर करती है । हमारा जीवन मृत्यु की तैयारी का अवसर है । आवश्यकता इस बात की है कि मृत्यु को याद रखते हुए हम अपने कार्यक्रम निर्धारित करें, योजनायें बनायें । यह भी निर्विवाद सत्य है कि मृत्यु का गौरवपूर्ण सुखद-शान्तिमय स्पर्श तभी प्राप्त होता है, जब हम स्वः को भूलकर परमार्थ के लिए जीवन लगा देते हैं । किसी महान् सत्य की साधना में, जनसेवा में, परमार्थ में, जीवन लगा देने पर ही मौत के आनन्दमयी क्षण प्राप्त होते हैं, मनुष्य को मृत्यु के दर्शन की और स्पष्टता से समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि ग्रहणाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।
(गीता २/२२)

जिस प्रकार कोई मनुष्य पुराने वस्त्र को त्यागकर नये वस्त्र ग्रहण करता है । उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर प्राप्त करती है । पुराने वस्त्र को छोड़ कर नये वस्त्र पहनने वाले व्यक्ति के शरीर में कोई परिवर्तन नहीं होता वैसे ही पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर ग्रहण करने वाली आत्मा भी वही रहती है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता ।

मृत्यु की इतनी स्पष्ट मीमांसा कदाचित ही किसी अन्य स्थान पर मिलती हो और भगवद् गीता का जितना अध्ययन या पाठ किया जाता है, शायद ही किसी अन्य हिन्दू ग्रन्थ का पाठ किया जाता हो, फिर भी लोग मृत्यु से इतने भयभीत रहते हैं कि लगता है शायद ही किसी ने इस तथ्यों को गंभीरतापूर्वक लिया हो । सत्य को गंभीरता से समझा जाय अथवा उथले मन से देखा जाय उसका निश्चित प्रभाव पड़ता है । उदाहरण के लिये आग को छूने पर जल जाने की वास्तविकता किसी भी ढंग से समझी जाय, गंभीरता से या अगंभीरता से। एक बार समझ लेने पर छोटा बच्चा भी आग से सतर्क रहता है फिर क्या कारण है कि आत्मा की अमरता और मरणधर्मी शरीर की वास्तविकता जानने-मानने के बाद भी लोग मृत्यु से भय खाते हैं ! उत्तर एक ही है मोहाविष्ट मनःस्थिति । जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त साथ रहने वाले शरीर में सुख-दुख, कष्ट-सुविधा और हर्ष-शोक की अनुभूतियाँ होती हैं। यह अनुभूतियाँ शरीर और मन के तल पर ही होती हैं । इसलिये बहुत गहराई में अब चेतन मन में यह धारणा बैठ जाती है, कि अपना अस्तित्व शरीर तक ही सीमित है । कहने सुनने को लोग भले ही तत्वज्ञान, आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म की बातें करते हों पर यह विचार मान्यता या आस्थाओं का स्थान नहीं ले पातीं ।

सूरज की उपस्थिति भी बादलों में छुप जाती है । चन्द्रमा पृथ्वी की ओट में आ जाने पर होते हुये भी न होने जैसा लगता है । उसी प्रकार सर्वाधिक निकट और सबसे समीप होने के कारण शरीर की ओट में यह तत्वज्ञान छिप जाता है। शास्त्रकारों ने इसी का नाम शरीराभ्यास कहा है । लेकिन यह सर्वविदित है कि शरीर मरणधर्मा है । कितनी ही आसक्ति होने पर फिर मरने से भय कैसा ? मकान को गिरते या जलते देख कर लोग अच्छे से अच्छे और कीमती से कीमती भवन को छोड़कर भागते हैं । यह जानकर कि मकान गिर रहा है या गिरने वाला है । फिर मृत्यु को निश्चित जान कर अधिकांश लोग मरते समय रोते कलपते क्यों हैं ? क्यों यह चेष्टा करते हैं कि किसी प्रकार मृत्यु को टाल दिया जाय ।

प्रसिद्ध राजनेता और विचारक लेखक ने मृत्यु भय का कारण जिजीविषा बताते हुये कहा है कि जिजीविषा इतनी प्रबल है कि देहनाश स्वीकार ने के बाद भी मनुष्य को यशः काय से जीवित रहना चाहिए। इस तथ्य को भुलाकर कि जब हम ही न रहे तो रहेगा मजार क्या वह पिरामिड मकबरे आदि अपने जीवन काल में ही बनवा डालता है, यदि किसी में फटे पुराने

कपड़े त्याग कर नये कपड़े बनवाने की सामर्थ्य है, परन्तु फटो को नहीं उतारता तो वह समाज में हास्यास्पद बन जाता है। अति जिजीविषा का भी परिणाम यही होता है । शरीर जरा-जीर्ण हो गया, अनेक बीमारियाँ घेरे हैं, परन्तु जिजीविषा वाध्य करती है कि इसी फटे-पुराने को चलाओ परन्तु यह जीना नहीं है, देहरूपी बोझ का ढोना मात्र है । इस दुखद स्थिति से उबारने वाली मृत्यु को सबसे श्रेष्ठ सखा बताते हुए उन्होंने लिखा है, अनेक लोग मृत्यु को मनुष्य के लिए निकृष्ट दशा मानते हैं। मुझे वृद्धावस्था बदतर प्रतीत होती है । मृत्यु सर्वोत्तम मित्र है जो बुढ़ापा रूपी शत्रु द्वारा जनित सभी कष्टों से उबार लेती हैं । किसी महा मेधावी का जराजीर्ण होकर सठियाई बकवास करते देखा जाना, किसी देवोपम सौन्दर्यशाली शरीर का घृणित होकर लकुटी के सहारे चलते देखा जाना और सदा उन्नत मस्तक का दैहिक एवं मानसिक दोनों दृष्टियों से झुका देखना एक ऐसी त्रासदी है, जिस पर जितने ही आँसू बहाये जाय थोड़े ही होंगे ।

जिजीविषा के अतिरिक्त मृत्यु भय का एक और कारण है वह है भविष्य के प्रति अनिश्चय । यह सोचकर कि अगले जन्म में न जाने किन परिस्थितियों में रहना पड़े । इस जन्म में यदि परिस्थितियाँ सुखद हैं, साधन सुविधायें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, तो यह आशंका सताने लगती है कि पता नहीं अगले जन्म में भी वैसी ही साधन सुविधायें मिलेंगी अथवा नहीं । यदि कोई मनुष्य दुखद परिस्थितियों में रह रहा है तो सोचता है कि क्या मालुम अगले जीवन में इस से भी बुरी स्थिति में रहना पड़े, यद्यपि कर्म फल का सिद्धान्त अपने स्थान पर अटल और ध्रुवसत्य है। फिर भी लोग इस बात का निर्णय नहीं कर पाते कि कौन से कर्म का अच्छा फल मिलेगा और कौन से कर्म का बुरा फल मिलेगा । इसलिये मृत्यु के बाद का यह संशय मनुष्य को मरणोत्तर जीवन के प्रति तरह-तरह की शंका-कुशकाओं से भयभीत करता रहता है।

जो भी हो मृत्यु के प्रति भय न उचित है और न अनावश्यक, किसी स्थिति का निराकरण कर पाना वास्तव में यदि सम्भव है, तो उसकी चिन्ता की भी जानी चाहिये, मृत्यु से किसी प्रकार छुटकारा नहीं है तो उसकी चिन्ता करना भी व्यर्थ है और उससे भयभीत रहना भी व्यर्थ है । मृत्यु परमसखा है । क्योंकि वह जराजीर्ण काया के कारण होने वाले संत्रास से छुटकारा दिलाती है। बच्चों के वस्त्र तैयार कराते और पुराने फटे वस्त्रों को उतरवाकर नये कपड़े पहनाते हैं । प्राणिमात्र के अभिभावक करुणा वरुणालय परमात्मा ने भी जीवों के लिये इसी प्रकार की व्यवस्था कर अपनी करुणा का परिचय दिया है ।

बच्चे भी पुराने वस्त्र उतारकर नये वस्त्र पहनते समय उल्लास से भर उठते हैं, तो क्या मनुष्य का बौद्धिक और मानसिक स्तर बच्चों से भी पिछड़ा हुआ है, जो मृत्यु की वास्तविकता को जानकर उसे नये जीवन की तैयारी का सूत्रपात समझकर भी दुखद घटना के रूप में लेता है और आजीवन उससे बचने की निष्फल चेष्टा करता है । मृत्यु की अनिवार्यता के साथ जुड़ा हुआ पुनर्जन्म का तथ्य एक ऐसा स्वर्णिम सिद्धान्त है, जिसे सोने में सुहागा ही कहना चाहिए ।

मृत्यु का सदा स्मरण रखें

मृत्यु की चिन्ता न करने वालों में वे ही बोधवान सत्पुरुष, होते हैं, जो उसके सम्मुख उपस्थित होने की तैयारी करते रहते हैं । इस अनायास आने वाली घटना का स्मरण रखने वाले व्यक्ति अपने जीवन का एक क्षण भी बर्बाद नहीं करते । अपने जीवन के प्रत्येक कर्त्तव्य को तत्परता से पूरा करने में लगे हुए, इस बात का प्रयत्न किया करते हैं कि वे मृत्यु आने से पूर्व ही अपने सारे कर्तव्यों को पूरा कर डाले, जिससे कि उस समय किसी कर्त्तव्य का उत्तरदायित्व आपूर्ति की दशा में दबाव न डाल सके ।

जिस प्रकार कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति जीवन में असत्कर्मों से बचा रहता है, उसी प्रकार कर्त्तव्यहीन व्यक्ति अकर्मों में ही लगा रहता है । असत्कर्मों द्वारा पाप का संचय करते रहने वाले व्यक्ति का मृत्यु से भयभीत होना स्वाभाविक ही है । वह जानता है, कि जिस समय मृत्यु आकर उपस्थित होगी, उस समय जीवन भर किये पापों के चित्र सामने आ जायेंगे, जिससे पश्चाताप की भयानक अग्नि में जलना होगा । एक असहनीय यंत्रणा के बीच शरीर का अन्त होगा । तब ऐसा कोई अवकाश शेष न रह जायेगा जिसमें उन असत्कर्मों का ताप सत्कर्मों से कम किया जा सके । यंत्रणा के बीच गर्हित अन्त होने से शरीरोपरान्त प्राप्त होने वाली गति भी गर्हित होगी, जिसे पता नहीं कितने युगों तक भोगना पड़े । इस भयानक सम्भावना से अकर्त्तव्यवान का भयभीत होना स्वाभाविक ही है ।

मनुष्य जीवन का एक-एक क्षण अमूल्य है । यह धर्म अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरुषार्थों को प्राप्त कर लेने का सुअवसर है । केवल मनुष्य शरीर ही ऐसा साधन है, जिससे भगवत्-प्राप्ति का उपाय किया जा सकता है । अन्य सारी योनियाँ भोग

योनियाँ है । उनमें भगवत्-प्राप्ति का उपाय नहीं किया जा सकता । इसको प्रमादवश नाना प्रकार के नरकदायक भोगों में नष्ट कर देना बहुत बड़ी हानि है ।

जीवन-काल में जिन कार्यों, संस्कारों तथा वृत्तियों को अभ्यास द्वारा प्रमुख बनाया जाता है, वही मृत्यु के समय चलचित्र की तरह मनुष्य के सम्मुख चक्कर लगाया करते हैं । उस समय मनुष्य उस स्मरण की भीड़भाड़ में अपने सत्कर्मों को ढूँढ़ने का प्रयत्न किया करता है । यदि उसने सुकृत किये रहे होते हैं तो वे उसके स्मृति-पटल पर आकर मित्र की तरह उसे सहारा दिया करते हैं । जिससे अनन्त पथ के यात्री को बड़ी सान्त्वना मिलती है और वह सुख-शान्तिपूर्वक शरीर त्यागकर सदाचार के अनुसार सुन्दर लोक की प्राप्ति करता है।

इसके विपरीत जीवन के खाते में जिसने सत्कर्मों का संचय किया ही नहीं, बड़े चाव से असत्कर्मों में ही लगा रहा है, खोजने पर उस असहाय काल में उसे कोई सहारा किस प्रकार मिल सकता ? उसे अपने चारों ओर अपने असत्कर्म ही प्रेत-पिशाचों की तरह विकराल रूप रखकर नाचते और अट्ठहास करते हुए दिखाई देंगे । उसे ऐसा लगेगा मानो उसके असत्कर्म उस पर व्यंग करते हुए कह रहे हैं- हे ! मूर्ख मनुष्य तूने हमको सुखदायी समझकर जो जीवन भर पाला है, अपनी उस मूर्खता का परिणाम देख ले और युग-युगान्तरों के लिए जाकर नरक की यातना भोग ।'' निःसन्देह असत्कर्मों के लिए वह याम कितना भयानक रहा होता है । इसीलिए सावधान पुरुष अपने जीवन के खाते में सत्कर्मों का ही संचय करने का ही प्रयास किया करते हैं, जिससे अन्तिम काल में उन्हें भय-यातना से मुक्ति मिली रहे ।

मृत्यु के भय से बचने का एक सीधा सरल-सा उपाय हैं, सत्कर्मों का संचय करना । शास्त्रोक्त एवं लोकोक्त अपने निर्धारित कर्तव्यों का पालन करना ही सुकृत्य माने गये हैं । इनका ज्ञान मनुष्य को सहज ही हो जाता है । किसी को दुःख न देककर यथासम्भव सुख देना संसार के सभी सत्कर्मों का मूलाधार है । इसका अभ्यास करते रहने से जीवन के खाते में सत्कर्मों की पूँजी इकट्ठी होती रहती है, जो कि उस कठिनकाल में एक विशाल सम्बल बनकर मनुष्य का निस्तार किया करती है ।

सामान्यतः सुख समझकर जो अबोध व्यक्ति भोग परायण बने रहते हैं । वे बड़ी भूल करते हैं । मनुष्य जीवन की विशेषता है भगवच्चिन्तन परायण रहना । भोगों के चिन्तन अथवा उनको प्राप्त करने के उपायों में लगा हुआ मनुष्य अपनी वृत्तियों को दूषित कर देता है, संस्कार बिगाड़ लेता है, जिससे उसका चित्त सत्कर्मों की ओर उन्मुख नहीं होता । जो व्यक्ति भगवच्चिन्तन अथवा सत्कर्मपरायण न रहकर भोगों में ही निरत रहता है वह शरीर से मनुष्य होता हुआ भी गुण, कर्म, स्वभाव से पशु ही होता है । मनुष्य की भोगपरक पशु प्रवृत्तियाँ उसके पतन एवं विनाश का कारण बनती हैं । भोग प्रवृत्तियों के पोषण से मनुष्य मृत्यु के उपरान्त निकृष्ट योनियों में भ्रमण करता हुआ, नारकीय यातना पाया करता है । जिस पुण्य पूँजी से वह मनुष्य शरीर का अधिकारी बना होता है वह नष्ट हो जाती है फलतः वह निकृष्ट गतियों में जा गिरता है ।

मनुष्येतर योनियों के जीव कर्म के अधिकारी नहीं होते । उन्हें हठात् उन योनियों का भोग करना पड़ता है । कर्म का अधिकारी न होने से उसे किसी प्रकार का कर्म दोष लगने का प्रश्न ही नहीं उठता । अस्तु वह स्वभावतः एक योनि से दूसरी योनि के उस अन्तिम अवसर में आ पाता है, जिसमें वह कर्मों का अधिकारी होकर अपनी मुक्ति का प्रयास कर सकता है । इसी सुविधा के कारण वह अन्य पशु-पक्षियों की तरह कर्मफल से मुक्त नहीं होता । अब यह मनुष्य के अपने हाथ की बात है कि व सुकर्मों द्वारा अपनी मुक्ति का प्रयत्न करे अथवा कुकर्मों में पड़कर पुनः चौरासी लाख के चक्कर में लौट जाये । इस प्रकार मानवेतर योनियों का भ्रमण जीव की प्रगति का सूचक है, जिसकी कि पराकाष्ठा मानव-योनि की प्राप्ति है । जबकि मानव की मृत्यु उसकी मुक्ति अथवा अधम योनियों में पुनर्पतन का हेतु होती है, तो मनुष्य योनि में आकर जीव या तो अपने सत्कर्मों द्वारा भगवान को प्राप्त कर मुक्त हो सकेगा अथवा असत् कर्मों द्वारा गिरकर फिर अधोगति में चला जायेगा । इस प्रकार मनुष्येतर प्राणियों की मृत्यु साधारण प्रगति मात्र होती है और मनुष्य की मृत्यु या तो उसके चर्मोत्थान का हेतु बनेगी अथवा परमपतन की ।

मृत्यु से डरना एक लज्जाजनक कायरता है । इस कायरता का समावेश होता उन्हीं में है, जो इस दुर्लभ मानव-जीवन का सदुपयोग नहीं करते, इसे अकर्त्तव्य कर्मों तथा भोग लिप्सा में नष्ट किया करते हैं । जो बोधवान व्यक्ति मानव-जीवन की दुर्लभता तथा उसके मूल्य महत्व को समझते हुए सत्कर्मों में इसका सदुपयोग किया करते हैं, उन्हें मृत्यु का स्मरण आनन्द दायक होता है । उन्हें अपने सत्कर्मों के बल पर यह विश्वास रहा करता है, कि जिस पुण्य-पूँजी को उन्होंने संचित किया है यह भवसागर की उतराई के लिये पर्याप्त है । अपने पुण्यों

के बल पर वे इस भवसिन्धु को पार-कर अपने अन्तिम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति कर लेंगे और यदि इस पुण्य-पूँजी में कुछ कमी रह गई है तो पुराना वस्त्र छोड़कर नये वस्त्र धारण करेंगे और आज से अधिक उन्नत एवं परिष्कृत । अपने अगले शरीर के अवसर पर वे और अधिक साधना करके अपने लक्ष्य को अवश्य पा लेंगे । इस प्रकार पुण्यात्मा पुरुष को मृत्यु की कल्पना से भय तो क्या एक आनन्द पुलक की ही प्राप्ति होती है ।

मृत्यु अवश्यम्भावी है । सत्कर्मों का सहारा लेकर ही इसके त्रास से बचा जा सकता है, यह क्षण भंगुर मानव जीवन प्रतिपल मृत्यु के प्रवाह में बहता चला जा रहा है । मनुष्य जिस क्षण से जन्म लेता है उसी क्षण से मृत्यु की ओर बढ़ने लगता है । जीवन की बढ़ोत्तरी तथा आयु की वृद्धि मृत्यु की निकटता ही है । पता नहीं किस समय वह अवश्यम्भावी अन्तिम घड़ी आ जाये । इसलिये मनुष्य को प्रतिक्षण सावधान रहकर अपने जीवन का अणु-क्षण सत्कर्मों में ही लगाते रहना चाहिये।

प्रथम तो मृत्यु का भय एक अनुचित त्रास है । तब भी यदि उसका भय सताता ही है तो बुद्धिमत्तापूर्वक उसका लाभ भी उठाया जा सकता है । जैसे अपने अधिकारी से डरने वाला व्यक्ति अपने को अधिक से अधिक अनुशासित, आज्ञापालक तथा कार्यदक्ष बनाने का प्रयत्न किया करता है, उसी प्रकार से भयभीत व्यक्ति यदि चाहे तो भय के कारण भूत दुष्कर्मों को छोड़कर सत्कर्मों में संलग्न हो सकता है । लोग मृत्यु से डरते तो हैं, लेकिन सच पूछा जाए तो वे सच्चाई के साथ उससे नहीं डरते । यदि उनके हृदय में मृत्यु के प्रति सच्चा भय रहे तो निश्चय ही पाप-कर्मों की ओर से विमुख होकर पुण्य-कर्मों की ओर अग्रसर हो उठेंगे ।

जिसे लोग प्रायः मृत्यु का भय कहते हैं, वह वास्तव में भोगों के छूट जाने की चिन्ता ही होती है, दुनियाँ छूट जाने का मोह ही होता है, लोग वास्तव में यह सोचकर दुखी होते हैं कि जब हम मर जायेंगे तो हमारी यह पत्नी, यह बच्चे और यह धन दौलत सब छूट जायेगी और हम एकाकी न जाने कहाँ-कहाँ भटकते रहेंगे । यह सब हमारे प्रियजन तथा धन सम्पत्ति हमें फिर कहाँ मिलेगी ? अच्छा होता मृत्यु न आती और हम सदा सर्वदा इनके सम्पर्क का सुख उठा सकते । इस प्रकार की मोह भावना ही बहुधा मृत्यु का भय बनकर सामने आया करती है। ऐसे व्यक्ति कम ही होते हैं जिन्हें मृत्यु का भय अपनी अज्ञात दशा की चिन्ता के कारण सताता हो ।

निःसन्देह मृत्यु का मोहजन्य भय बड़ी ही निकृष्ट भावना है । यह अकारण ही आत्मा के बन्धन कड़े कर दिया करता है, संसार तो सभी को एक दिन छोड़ना पड़ता है । सम्पत्ति एवं प्रियजन सबके ही छूटते हैं । इस भवितव्यता में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं पड़ सकता । इस अवश्यम्भाव्य के प्रति निरर्थक मोह करना सबसे बड़ी मूर्खता है ।

जो व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम आदि की प्राप्ति के लिये पुण्यपूर्वक प्रयत्न किया करता है, उसको इनके प्रति निकृष्ट मोह भी नहीं होता है, वह इन सब की प्राप्ति भोग सुख के लिये नहीं केवल मानव कर्त्तव्य समझकर ही करता है । जिस प्रकार कर्त्तव्य पूरा हो जाने पर मनुष्य को कार्य के प्रति मोह न रहकर आत्म सन्तोष होता है, उसी प्रकार कर्त्तव्यपूर्वक लौकिक उपलब्धियों को पाकर मनुष्य को केवल कर्त्तव्यपालन का सुख ही रहता है उसके प्रति मोह नहीं । जिस प्रकार वह उन्हें पुण्य पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त करता है, उसी प्रकार साहसपूर्वक छोड़ भी देता है ।

यदि हमें रात दिन मृत्यु का स्मरण बना रहे तो संसार में हम से होने वाले ये पाप-पाखण्ड, दुराचार-अनाचार, ईर्ष्या-द्वेष हमेशा के लिये विदा हो जायें । किन्तु ऐसा बहुत कम देखा गया है, उसका कारण यह है कि मनुष्य इस मायावी संसार में बुरी तरह फँसा हुआ है, उसमें से निकलने के लिये उसे ज्ञान रूपी प्रकाश की आवश्यकता है । उपरोक्त कथन के प्रसंग में सन्त विनोवा द्वारा कहा हुआ एक उदाहरण देना यहाँ समीचीन होगा-

"एक बार संत नामदेव से किसी व्यक्ति ने पूछा 'महात्मा जी आपका जीवन कितना सादा है, आप कितने उच्च्व विचार रखते हैं, आपका जीवन कितना शान्त एवं सुखप्रद है ।' उक्त सज्जन नामदेव से बात कर ही रहे थे कि उन्होंने कहा 'भाई, अन्य बातें छोड़ो, मुझे अभी-अभी तुम्हारे बारे में एक बात मालूम हुई है, वह यह कि आज से ठीक सातवें दिन तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी ? नामदेव की यह बात सुनकर उक्त व्यक्ति घबरा गया, मृत्यु की बात सुन फिर वह भी केवल १६८ घन्टे में और भला नामदेव की बाणी झूठी कैसे हो सकती थी । वह व्यक्ति तुरन्त घर आया और अपने घर वालों से नामदेव की उक्त बात कही, सुनकर सभी बड़े व्याकुल हुये । उस व्यक्ति ने बिस्तर पकड़ लिया और जैसे-जैसे एक-एक दिन बीतता उसे मृत्यु निकट आती हुई दृष्टिगोचर होने लगी, अन्त में सातवें दिन नामदेव उस आदमी से मिलने आये । उन्होंने पूछा- "कैसी

तबियत है ?'' वह बोला- 'अब तो कुछ ही घण्टों का मेहमान हूँ ।' नामदेव बोले- 'इन सात दिनों में कितना पाप कमाया वह बोला- पाप करने की कौन कहे, पाप करने के विचार तक मेरे हृदय में न आये' नामदेव शान्ति से बोले- 'बस हमारा जीवन भी इसी प्रकार है ।'

उपरोक्त कथन का तात्पर्य यह है कि यदि हम मरण को सदैव स्मरण करें तो पाप कर्मों की ओर हमारी चित्तवृत्ति नहीं बढ़ेगी । इस प्रकार इस मृत्यु रूपी अंकुश के लगे रहने से हम दिनों-दिन अच्छे कार्यों की ओर बढ़ते रहते हैं । यह वह लगाम है, जिसकी याद रखने से कुमार्ग पर जाने से रोक लगती है ।

कई संत एवं भक्तों ने अपने मृत्यु के अन्तिम क्षणों में परमात्मा को स्मरण किया तथा परमपद के अधिकारी हुये हैं। किन्तु जीवन में अविरल हरिभजन किये बिना उस अन्तिम बेला में ईश्वर को याद कर लेना आसान नहीं है । कुछ लोगों का मत है कि 'मृत्यु के समय में राम नाम लेने में एवं परमात्मा को स्मरण करने में आपत्ति ही क्या हो सकती है ?' उनका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार नामदेव, रामदेव, शवरी, अजामिल, प्रह्लाद आदि भक्तों ने अपनी मृत्यु के समय में भी परमात्मा के स्मरण को अटल बनाये रखा, वैसा हम भी कर सकेंगे, तो यह उनकी महान् भूल है । यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जिस बात को हमने अपने जीवन में अधिक स्मरण किया है, जिस कार्य का जीवन में हर बार अनुभव किया है, वहीं हमें अन्त समय में भी याद रहेगा । यही कारण है कि मनुष्य जब अपने बिस्तर पर पड़ा-पड़ा मृत्यु की अन्तिम घड़ियाँ गिनने लगता है, तब उसे अपनी पत्नी की, प्यारे पुत्रों की, माँ-बहिनों की तथा अपने भाईयों, परिवार वालों एवं न जाने कितने ही इष्ट मित्रों की स्मृति तो ताजी हो आती है, किन्तु विश्व प्रणोता परमेश्वर के नाम के दो शब्द भी उसकी जबान पर नहीं आते ।

अजामिल जैसे भक्तों का अपने मृत्यु के अन्तिम समय में ''नारायण नारायण'' शब्द का उच्चारण कर लेने में उनके जन्म-जन्मान्तरों की भक्ति की अविरल धारा ही प्रवाहित होती रही थी, जो अपने इस जन्म में आकर परमात्मा के मोक्ष रूपी समुद्र में मिल सकी ।

अतः मृत्यु का सामना करने के लिए तथा अन्त समय तक परमात्मा का स्मरण बना रहे- इसके लिये हमें अपने जीवन में प्रारम्भ से ही तैयारी करनी होगी । अपने जीवन को आध्यात्मिकता की ओर लगाना होगा । हरि-कथा, हरिचर्चा, जप-तप, संध्या पूजा को जीवन में स्थान देना होगा । अधिक नहीं तो कम से कम प्रतिदिन परमात्मा के नामों का स्मरण करते रहना ही पर्याप्त हो सकेगा, ताकि परमेश्वर की दिव्य मूर्ति हमारे हृदय में बसी रहेगी, हम मृत्यु का मुकाबला कर सकेंगे, उसके भयानक रूप से डरेंगे नहीं, किन्तु हँसते-हँसते परमात्मा का सुमिरन करते हुए इस भौतिक देह को त्याग सकेंगे। भगवन् श्री कृष्णा, ईसा, मूसा, सुकरात तथा गाँधी आदि महान् आत्माओं ने भी मृत्यु का मुकाबला हँसते-हँसते आनन्दपूर्वक किया था । प्रभु का नाम ही उनका वह अन्तिम अस्त्र था, जिसके द्वारा उन्होंने मृत्यु का सामना किया ।

हमें अपने जीवन में प्रारम्भ से ही राग-द्वेष आदि बुराइयों को निकाल बाहर करना होगा तथा उसके स्थान पर सदाचार, सद्विचार, परोपकार जैसे सुन्दर एवं सुफल पौधे को लगाना होगा, तभी तो परमेश्वर की दिव्य मूर्ति हमारे मानस-मंदिर में प्रतिष्ठित हो सकेगी । महात्मा गाँधी ने अपने आखिरी उपवास के समय कहा था- ''मृत्यु से कोई बच नहीं सकता । वास्तव में मृत्यु तो एक मित्र है, जो यातना से मुक्ति दिलाती है । फिर उससे डरना क्या ?'' ऐसे वीर पुरुष इस धरा-धाम पर अवतीर्ण हुए हैं जिन्होंने मृत्यु के साथ खिलवाड़ किया है। राजस्थान में वीर योद्धा जब देश और धर्म की रक्षा के लिए अपने को न्यौछावर कर देता था तो यहाँ मरण-महोत्सव मनाया जाता था । राजस्थान के इस मरण-त्यौहार की कल्पना तो एक दम रोमांच जान पड़ती है । 'भारतीय आत्मा' में तो 'मरण त्यौहार' पर सुन्दर कविता भी लिखी है । अंग्रेजी साहित्य के दार्शनिक कवि ब्राउनिंग ने अपनी स्त्री की मृत्यु के बाद एक कविता लिखी थी । जिसमें मृत्यु को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था, हे मृत्यु जब कभी तू आये, मेरे सामने से आना ताकि मैं तुमसे लोहा ले सकूँ, तुम्हारी विभीषिकाओं से खेल सकूँ, मेरा जीवन तो संघर्ष का जीवन रहा है, मृत्यु के रूप में एक संघर्ष और सही !

मृत्यु का संहर्ष आलिंगन करें

ऐसे दार्शनिक इस दुनिया में हुए हैं जो मृत्यु के समय भी विचलित नहीं हुए । महात्मा सुकरात को इस बात का पता था कि दूसरे दिन उसको विष का प्याला दे दिया जाएगा किन्तु फिर भी उसे गहरी नींद में सोते देखकर उसके मित्र क्राइस्टो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा था । 'अनलहक अनलहक' की रट गाने वाला मंसूर खलीफा द्वारा फाँसी पर चढ़ा दिया गया था । जब उसे फाँसी पर चढ़ाया गया तो हजारों लोग इस दृश्य को देखने के लिये इकट्ठे हुए । दर्शकों में

से किसी ने पूछा- मंसूर, प्रेम क्या है ? मंसूर ने उत्तर दिया। 'आज देखोगे, कल देखोगे ।' उसका अभिप्राय यह था कि आज मुझे फाँसी पर चढ़ा दिया जाएगा, कल मेरा शरीर भस्म कर दिया जायेगा, परसों कोई चिन्ह भी बाकी नहीं रहेगा । कुछ दुष्ट मनुष्यों ने मंसूर की ओर पत्थर भी फैंके, किन्तु फिर भी वह शान्ति धारण किये रहा, झुब्ध या उत्तेजित न हुआ। जब उसके हाथ काटे जाने लगे तब उसने हँसते हुए कहा- मेरे भौतिक हाथों का काट डालना सहज है, किन्तु किसमें शक्ति है तो मेरे आध्यात्मिक हाथों को काट सके ? जब उसके पैर काट जाने लगे तो वह बोल उठा- इन पैरों से तो मैंने पृथ्वी पर भ्रमण किया है, किन्तु मेरे आध्यात्मिक पैर भी हैं जिनके द्वारा मैं स्वर्गलोक में भ्रमण करूँगा । किसी में सामर्थ्य हो तो वह आकर मेरे आध्यात्मिक पैरों को काटे ।

जब मंसूर की आंखें निकाल ली गई तो बहुत से मनुष्यों का हृदय द्रवीभूत हो उठा, हृदय-स्रोत नेत्रों के द्वारा अश्रुओं के रूप में उमड़ पड़ा । जब उनकी जीभ काटी जाने लगी तो मंसूर ने कहा- कुछ क्षणों तक धैर्य धारण करो, मैं दो शब्द निवेदन करना चाहता हूँ । तब अपने मुँह को ऊँचा कर उसने कहा- हे परमेश्वर ! इन लोगों ने जितनी यन्त्रणायें मुझे दी हैं, उनके लिये इन्हें दण्ड न देना, इन्हें सुखों से वंचित न करना । इस प्रकार हँसते-हँसते यह सूफी सन्त मृत्यु के प्रेमा-लिंगन में आबद्ध हो गया था ।

कानपुर के साम्प्रदायिक दंगे में जिस समय श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, शान्ति का प्रयास करते हुए, मारे गये उस समय गाँधी जी ने इस मृत्यु को महाबलिदान की संज्ञा देते हुए कहा था कि काश मुझे भी इस प्रकार की मृत्यु का सौभाग्य प्राप्त होता। और उनकी इच्छा भी भगवान ने पूर्ण की। उनकी मृत्यु के पूर्व ऐसी अनेक घटनायें घटित हो चुकी थीं, जिनसे यह विदित हो गया था कि गाँधी जी की हत्या का प्रयत्न किया जा रहा है । गाँधी जी भी स्वयं यह बात जानते थे फिर भी, ईश्वर को उनके इस शरीर से काम लेना है, तब तक उनका बाल बाँका नहीं हो सकता और जिस दिन इसकी आवश्यकता न रह जायगी इस जीवन को कोई बचा न सकेगा । उनकी यह निर्भयता, यह आत्मा एवं परमात्म विश्वास, यह सेवा भावना, जीव कल्याण में अनुरक्ति आदि सम्पूर्ण भावों का प्राकट्य उनके प्रार्थना सभा में जाते समय 'हे राम' शब्द से युक्त मृत्यु से प्रकट हो मृत्यु के तख्ते पर झूल गये । कवि 'गंग' को जब मृत्यु दण्ड दिया गया और उन्हें पैरों तले कुचल डालने को खूनी हाथी छोड़ गया तो वे प्रसन्नता से फूल उठे, उन्होंने कल्पना की कि देवताओं की सभा में कोई छेद बनाने वाले की आवश्यकता हुई है, इसलिए मुझे कवि गंग को लेने के लिए हाथी रूपी गणेश आये हैं ।

संसार के सभी व्यक्ति अपने-अपने विश्वासों के अनुसार मृत्यु काल की घटनाओं का विवेचन किया करते हैं । महर्षि दयानन्द की मृत्यु उनकी निर्भीकता एवं सत्यवादिता के कारण विषदान द्वारा हुई । जिस समय उनका मरण काल समीप आया वे मृत्यु शैया पर उठकर बैठ गये । अत्यन्त निर्बल होते हुए भी उनमें उठकर बैठ जाने का बल आ गया । उन्होंने ईश्वर की प्रार्थना में कुछ वेद मन्त्र कहे और यह कहते हुए प्राण त्याग दिये कि हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो । उनकी मृत्यु के इस दृश्य ने गुरुदत्त विद्यार्थी सदृश शिक्षित नास्तिक को आस्तिक बना दिया । उनकी इस मुद्रा में उनके जीवन का तप, त्याग ब्रह्मचर्य, निर्भीकता, ईश्वर निष्ठा एवं साहस प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है ।

देश की स्वतंत्रता के लिये दीवाने, अनेक शहीदों का इतिहास उनकी मृत्यु काल में जाज्वल्यमान हो उठा है । भगतसिंह फाँसी के तख्ते पर हँसते-हँसते चढ़ गये । उनके शरीर का वजन पहले से बढ़ गया था । यह जानते हुए कि उन्हें शूली पर चढ़ना है, उनका देश प्रेम उन्हें वह मस्ती प्रदान किये हुए था, जो तपस्वियों की निधि होती है । फिर भला वे चिन्तित क्यों होते और उनका वजन क्यों न बढ़ता ? यही हाल रामप्रसाद विस्मिल का था । उनके देश प्रेम का गान फाँसी के तख्ते पर भी गूँज उठा था और चन्द्रशेखर आजाद की मस्ती, उनकी दीवानगी आज भी प्रयाग के एलफ्रेड पार्क में पहुँचते ही स्मरण हो जाती है ।

गाँवों में चौपाल पर बैठकर, जाड़े के दिनों में अलाव के आस-पास जब कभी किसी सौभाग्यशाली की मृत्यु की महत्वपूर्ण एवं प्रभावशालिनी चर्चा चल पड़ती है, तब एक के बाद एक विलक्षण मृत्युओं की गाथा गाई जाने लगती है। किसी तेरहवीं, श्राद्ध अथवा प्रायः श्मशान घाट पर इस प्रकार की चर्चायें स्वाभाविक ही हैं । मृत्यु के समय साहस की जितनी प्रशंसा होती है, उतनी अन्य बातों की नहीं । क्यों न हो मृत्यु भी तो एक महान युद्ध है, जिसमें विजय पाना साहस के बिना असम्भव है । यह वह विदाई है, जिसके बाद पुनर्मिलन असम्भव है । यह वह यात्रा है जिसका आरम्भ सर्वस्व त्याग पर होता है । सब माया, सब मोह, सब कामनायें समाप्त करने पर इस यात्रा का सुखद शुभारम्भ होता है । ऐसे समय में जब परिवार छूट रहा हो, धन सम्पत्ति, यश, वैभव सब से अलग हो जाता

हो, तब परिवार के छोटे- बड़े सब की आँखों में अश्रु, मुख पर उदासी, वाणी में चीत्कार, हृदय में हाहाकार देख, सुन एवं समझकर भी होठों पर मुस्कान रहे । मृत्यु काल के सहस्त्र बिच्छुओं के डंक से भी अधिक पीड़ा को सहता हुआ भी मुँह से आह न निकले तो फिर भला ऐसी अलौकिक वीरता एवं साहस की सराहना कौन न करेगा ?

किन्तु यह सब मृत्यु काल में ही करने से हो जायगा, ऐसा सम्भव नहीं । इसके लिये तो सम्पूर्ण जीवन की साधना भी प्रायः अपर्याप्त हो जाती है । कुछ थोडे से भाग्यशाली व्यक्ति ही जीवन भर साधना करके सफल हो पाते हैं और इसीलिये विश्व के इतिहास में इनी गिनी ही ऐसी मृत्युयें हैं, जिनकी सराहना सदियों की चर्चा का विषय बन जाती है । हमारा इतिहास तो ऐसे उदाहरणों का ही इतिहास है । राजस्थान का जौहर, जब कि राजपूतों के युद्ध में चले जाने पर उनके घर की नारियाँ विजय की ओर से निराश हो जाने पर जलती ज्वाला में कूद पड़ती थीं, मृत्यु का एक ऐसा अद्वितीय उदाहरण है, जिसकी जोड़ का विश्व के इतिहास में कोई वृत्तान्त नहीं है । हमारे पड़ौसी देश जापान ने प्रागेतिहासिक काल में युद्ध के समय खाई पाटने के लिये अपने सहस्त्रों नवयुवकों को स्वेच्छा से उस खाई में जीवित डालकर विश्व को अपनी वीरता एवं त्याग से चमत्कृत कर दिया था । उसको अभी विश्व भूल भी न पाया था कि इस द्वितीय महायुद्ध में पुनः वहाँ के नवयुवक एवं नवयुवतियों ने अपने अद्वितीय बलिदान का उदाहरण उपस्थित किया । अपने प्राणों की भेंट चढ़ाकर भी, यह जानते हुए भी, कि हमें इस टारपिडो, इस प्लेन अथवा इस गोले के साथ मरना निश्चित है फिर भी उन्होंने मृत्यु का हँसते-हँसते आलिंगन किया और विश्व को चमत्कृत कर दिया । हमारे देश के विभाजन के समय हमारे पंजाब की नारियों ने अपनी सतीत्व रक्षा में जिस बलिदान की झाँकी उपस्थित की उसकी तुलना राजस्थान के जौहर से की जा सकती है । विश्व में अन्यत्र उसकी समता का इतिहास अप्राप्य है । जब एक ओर सतीत्व की रक्षा का प्रश्न था और दूसरी ओर मृत्यु का आलिंगन, तब हँसते-हँसते मृत्यु को गले लगा लेना जीवन के किस महान त्याग की भूमिका है यह समझकर धर्म प्रेम की महान भावना से हृदय गद्‌गद् हो जाता है । वह उन मूक बलिदानों का इतिहास है जिनका नाम व्यक्तिगत रूप से विदित न होकर सामूहिक रूप से अनन्त काल तक प्रेरणा प्रदान करता रहेगा और जिनके अदृश्य चरणों में शीश झुकाकर मानव अनन्त काल तक परम शान्ति प्राप्त करेगा ।

यह सब घटनायें थोड़े समय के लिये रुककर विचार करने के लिये हमें वाध्य करती हैं । हमें यह सोचने के लिये प्रेरित करती हैं कि हम इनमें से किस प्रकार की मृत्यु को अपनाने की लालसा करें । यद्यपि यह कहना उनके लिये कैसे प्रिय हो सकता है जो मृत्यु को भुलाकर खाने-पीने और मौज करने में लीन हैं, चाहे मृत्यु उनके द्वार पर ही क्यों न आ पहुँची हो, किन्तु प्रिय हो अथवा अप्रिय यह तो सत्य है, यथार्थ है और अवश्यम्भावी है । जो वेखबर रहेंगे मृत्यु उन्हें अनायास ही आकार दबा लेगी और वे यही सोचते रह जायेंगे कि हाय, हमें तो यह मालूम ही न था । हम तो अभी इसके लिये तैयार ही न थे । किन्तु जो उसके लिये तैयारी किये रहेंगे उनके सारे जीवन में संयम, दृढ़ता, लगन और सत्य का समागम तो रहेगा ही साथ ही जब मृत्यु आयेगी, तो वे मुसकरा कर उसका स्वागत करेंगे और कहेंगे-आओ चलें मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा में ही अपने सम्पूर्ण कार्य निबटाये बैठा था । मृत्यु उनके लिये एक खेल हो जायगी और मरण समय में भी उनके अधरों पर मुस्कान जिह्वा पर भगवान और चेहरे पर गंभीरता विराजेगी। सम्पूर्ण जीवन का उज्ज्वल इतिहास मानो स्वर्णिम अक्षरों में लिख गया हो उसी से चेहरा देदीप्यमान हो उठा है ।

कई व्यक्ति सोचते हैं कि मरते समय भारी कष्ट होता है, इसलिए उस कष्ट की पीड़ा से डरते हैं । वह भी मृत्यु समय की वस्तुस्थिति से जानकारी न होने के कारण है । आमतौर से लोग मृत्यु से कुछ समय पूर्व बीमार रहते हैं । बीमारी में जीवनी शक्ति घटती जाती है और इन्द्रियों की चेतना शिथिल पड़ती जाती है। इस शिथिलता के साथ साथ ज्ञान तन्तु संज्ञा शून्य होते जाते हैं फलस्वरूप दुख की अनुभूति भी पूरी तरह नहीं हो पाती । प्रसूता स्त्रियाँ या लंघन के रोगी गर्मी की ऋतु में रात को भी अक्सर बंद घरों में सोते हैं, पर उन्हें गर्मी का वैसा कष्ट नहीं होता जैसा कि स्वस्थ मनुष्य को होता है । स्वस्थ मनुष्य गर्मी में रात को बन्द कमरे में नहीं सो सकता पर रोगी सो जाता है । कारण यह है कि रोगी के ज्ञान तन्तु शिथिल हो जाने कारण गर्मी अनुभव करने का शक्ति मन्द पड़ जाती है, रोगियों को स्वाद का भी ठीक अनुभव नहीं होता, स्वादिष्ट चीजें भी कड़ुई लगती हैं, क्योंकि जिव्हा के ज्ञान तंतु निर्बलता पड़ जाते हैं । रोग जन्य निर्बलता धीरे-धीरे इतनी बढ़ जाती है कि मृत्यु से कुछ समय पूर्व मनुष्य संज्ञा शून्य हो जाता है और बिना किसी कष्ट के उसके प्राण निकल जाते हैं । जो कुछ कष्ट मिलना होता है, रोग काल में ही मिल लेता है । डाक्टर लोग जब कोई बड़ा आपरेशन

करते हैं तो रोगी को क्लोरोफार्म सुँघाकर बेहोश कर देते हैं, ताकि उसे कष्ट न हो । दयालु परमात्मा भी आत्मा से शरीर को अलग करने का आपरेशन करते समय संज्ञा शून्यता का क्लोरोफार्म सुँघा देता है, ताकि हमें मृत्यु का कष्ट न हो ।

यह सभी जानते हैं कि कोई रोगी जब मरने को होता है तो मृत्यु से कुछ समय पूर्व उसकी बीमारी कम हो जाती है । कष्ट घट जाता है । तब अनुभवी चिकित्सक समझ जाते हैं कि अब रोगी का अन्त समय आ गया । कारण यह है कि बीमारी के कारण रोगी की जीवनी-शक्ति चुक जाती है और ज्ञान तन्तु रोग को प्रकट करने एवं कष्ट अनुभव करने में असमर्थ हो जाते हैं । यह मान्यता भ्रम पूर्ण है कि गर्भ, काल में, माता के उदर में और मृत्यु के समय प्राणों को अधिक कष्ट होता है । दोनों ही दशाओं में मस्तिष्क अचेतन अवस्था में और ज्ञान तन्तु संज्ञा शून्य अवस्था में रहने के कारण प्राणों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता । ऐसी दशा में मृत्यु के कष्ट से डरने का कोई कारण नहीं रह जाता ।

बहुत से दार्शनिकों की दृष्टि में तो मृत्यु विभु का वरदान है । जो वस्तु इतनी प्राकृतिक हो, इतनी सार्वभौम और इतनी सार्वजनिक हो, वह कभी अनिष्टकारिणी हो ही नहीं सकती। कालीदास कह गये हैं :--'**मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवन मुच्त्ते बुधैः**' और फिर इस मृत्यु में समानता भी कितनी है ! कहते हैं, कि एक बार डाइवोगेनेस नाम का दार्शनिक किसी मृत दास की हड्डियों को बड़े गौर से देख रहा था, सिकन्दर ने पूछा- दार्शनिक, इन हड्डियों से तुम क्या ढूँढ़ रहे हो ? दार्शनिक ने उत्तर दिया तुम्हारे पिता की हड्डियों और इस दास की हड्डियों में मुझे कोई अन्तर नहीं मिल रहा ! उसी की तलाश में था ! जिसने मृत्यु सम्बन्धी इस दर्शन को समझ लिया, उसे अन्तकाल में मृत्यु भय नहीं हो सकता, ऐसा मूर्धन्यों का मत है ।

अन्त समय, मृत्यु काल, देहान्त आदि की चर्चा अक्सर जीवन के सम्बन्ध में होती रहती है, इसका तात्पर्य भी यहाँ समझ लेना चाहिए । इसका प्रचलित अर्थ मृत्यु ही है । परन्तु यह मृत्यु भी किस श्रेणी की समझनी चाहिये ? क्योंकि क्षणिक मृत्यु, दैनिक मृत्यु, (निद्रा) अवस्थान्तर की मृत्यु, (बाल्य से तारुण्य आदि), अज्ञानान्त की मृत्यु (उपनयन, द्विज संस्कारादि) देहान्तर की मृत्यु (महामृत्यु), आदि अनेक मृत्यु हैं । इनमें से यहाँ कौन सी मृत्यु अपेक्षित है ? वस्तुतः सब ही मृत्यु (अन्त) यहाँ विचारणीय हैं ।

हर प्रकार के अन्त के समय परमात्मा का स्मरण करना चाहिये, कोई इसका यह आशय समझेगा तो इसका यही तात्पर्य होगा कि प्रतिक्षण परमात्मा का स्मरण करना चाहिये, क्योंकि मनुष्य की मृत्यु प्रतिक्षण हो रही है । यदि देह त्याग ही मृत्यु है तो इस देह का कुछ न कुछ भाग प्रतिक्षण त्यागा ही जा रहा है । शरीर शास्त्री मानते हैं कि प्रत्येक शरीर सात वर्षों में पूर्णतया नवीन हो जाता है अर्थात् पहले के अणु बिगड़ कर उनका स्थान नये अणु लेते रहते हैं । यह परिवर्तन शनैः-शनैः प्रतिक्षण होता रहता है । यदि किसी शरीर का भार दो मन है तो सप्तवर्षीय परिवर्तन के अनुसार प्रतिदिन ढाई तोले शरीराणु नष्ट होकर उतने ही नये आ जाने चाहिये । इस तरह इतने परमाणुओं की मृत्यु मानव शरीर में प्रतिदिन होती रहती है । उपवास के समय यह परिवर्तन शीघ्रता से होता है। प्रथम आयु में परमाणुओं की मृत्यु की अपेक्षा, सम्वर्धन अधिक होता है अतः शरीर बढ़ता है और उत्तर आयु में मरने वाले परमाणुओं की संख्या अधिक होने से शारीरिक क्षीणता स्पष्ट ही है ।

प्रतिदिन ढाई तोले परमाणुओं की मृत्यु होती है तो प्रतिक्षण कितनी मृत्यु होती है ? इसका अनुपात स्पष्ट है । यह क्षणिक मृत्यु ही दैनिक मृत्यु है । देह को इतना त्याग प्रतिक्षण प्रतिदिन करना पड़ता है । गीताकार ने जिस अन्त समय में परमात्मा का स्मरण सुझाया है, उसका यही रहस्य है कि जीवन का प्रतिक्षण ही देह त्याग का अन्त समय है, अतः किसी विशेष समय की प्रतीक्षा न करके श्वास-प्रश्वास के साथ भगवान के नाम जप का सहज अभ्यास कर शरीर समाप्ति वाले अन्त समय में नामास्मरण हो जाये तो सद्गति में कोई संशय नहीं रह जाता। कहा भी गया है-

''अन्त काले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
वः प्रयाति स मद्भावं याति नाश्त्यत्र संशयः ।।

अर्थात् अन्त समय में परमेश्वर का स्मरण करने वाला मनुष्य परमेश्वर भाव को प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है ।''

मरने से डरना क्या?

जो इस संसार में आता है, उसे एक-न-एक दिन जाना ही पड़ता है । उसकी मृत्यु निश्चित रूप से होती है, पर कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो आनन्द और संतोषपूर्वक जीते और उसी

उत्साह से मृत्यु को गले लगाते हैं, जबकि अधिकांश उसका नाम सुनकर ही भयभीत हो उठते व उससे बचने की अपनी प्रबल इच्छा व्यक्त करते हैं ।

देखा जाय तो इन दो प्रकार के लोगों में मूलभूत अंतर उनकी अपनी जीवन शैली के कारण होता है । एक जो समाज के लिए जीना और उसी के लिए मरना चाहता है, जो अपने "स्व" को गलाकर "पर" में मिला लेता है और जिसकी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ पूर्णतः समाप्त हो गई हैं, उसके लिए मृत्यु भी वैसी ही संतोषप्रद होती है जैसी जिदंगी, पर जो लोग कूपमण्डूक बन कर स्वार्थपरायण जीवन जीते हैं, उनकी व्यक्तिगत इच्छाएँ अनंत-अपूर्ण होने के कारण जब तक जीते हैं, तब तक तो दुःख-तकलीफ उठते ही रहते हैं, मरते समय भी इनसे मुक्त नहीं रह पाते और मौत को दुःखद बना लेते हैं ।

मनोवैज्ञानिकों ने मृत्यु-भय के दो कारण बताये हैं- एक अनभ्यास दूसरा आकांक्षा । प्रायः देखा जाता है कि जिस अवस्था कार्य का हमें अभ्यास या अनुभव नहीं होता, उससे डर लगने लगता है । जिस व्यक्ति को अँधेरे का अभ्यास नहीं है, उसे इससे भय लगता है । वह अकेले अँधेरे में नहीं रह सकता। जो व्यक्ति कभी किसी सुनसान स्थान अथवा जंगल में नहीं रहा हो, उसका ऐसे अवसर आने पर दिल धड़कने लगता है। यही बात मौत के साथ भी लागू होती है । इसका जीवन में पहले किसी ने एहसास किया हो, ऐसा किसी को याद नहीं आता, तब तो उसका अभ्यास ही कैसे सम्भव हो ? भले ही शरीरान्त अकष्टकर और पीड़ाहीन हो, फिर भी उसका भय प्रथम बार पानी में तैरने अथवा हवाबाजी करने की तरह सतत् बना रहता है ।

पर भय का इससे भी महत्वपूर्ण कारण मरने वाले की अतृप्त इच्छाएँ हैं । जब तक व्यक्ति को ऐसा महसूस होता रहे कि अभी उसे बहुत कुछ जानना, करना और भोगना शेष है और इसी बीच उसका जीवन-रथ अवरुद्ध होता दिखाई पड़े, तो तब तक, वह चाहे ज्ञानी-अज्ञानी, नास्तिक-आस्तिक कोई हो, उसकी जिजीविषा समाप्त नहीं हो सकती । यदि यात्रा के दौरान गाड़ी खराब हो जाय, और गंतव्य अभी दूर हो, तो यात्रीगण निराश हुए बिना नहीं रहते, किन्तु यात्रा पूरी होने के उपरांत गाड़ी का कुछ भी हो जाय, इसकी चिन्ता उन्हें नहीं होती ।

जीवन में ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब व्यक्ति की कामना और शरीर के बीच परस्पर सामंजस्य नहीं होता। व्यक्ति की तृष्णा अपूर्ण होती है और शरीर अपनी आयु पूर्ण करने को होता है, तो व्यक्ति शोकाकुल हो उठता है । फिर उसे जीवन की इस अन्तिम घड़ी के स्मरण से ही डर लगने लगता है । दूसरी ओर ऐसे भी उदाहरण देखने को मिलते हैं, जिसमें मृत्यु का आलिंगन खुशी-खुशी कर लिया जाता है । भगतसिंह, विवेकानन्द, शंकराचार्य आदि ऐसे पुरुष हुए हैं, जिन्हें मरने का भय तनिक भी नहीं रहा ।

आखिर व्यक्ति अपने अंतिम समय में अभय क्यों नहीं रह पाता ? क्यों उसे मौत की पीड़ा सताती रहती है । क्यों कुछ लोग इसके प्रति साहस सँजो लेते हैं ? जबकि अधिकांश असंतुष्ट व भयभीत बने रहते हैं ? गम्भीरतापूर्वक विचार करने से इसका एक ही कारण समझ में आता है, वह है व्यक्ति की स्वार्थ और परमार्थपरक, व्यक्ति और समाजपरक गतिविधियाँ।

वस्तुतः जब व्यक्ति का जीवनोद्देश्य महान् हो, वह समय अथवा समाज की किसी ऐसी समस्या के समाधान में निरत हो, जो समय साध्य हो एवं जिसके हल के लिए किसी एक व्यक्ति का प्रयत्न-पुरुषार्थ काफी न हो, वरन् समाज के एक बहुत बड़े समुदाय के समग्र जीवन एवं लम्बा समय अभीष्ट हो, तो ऐसा उच्च्व प्रयोजन अपने साथ ओत-प्रोत होने वाले व्यक्ति को शांति और संतोषपूर्वक शरीर त्यागने की शक्ति प्रदान करता है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिस प्रयोजन में लोकमंगल की, समाज कल्याण की कामना निहित हो, उसकी गणना श्रेष्ठ कार्यों में होती है । ऐसे कार्य करने वाले व्यक्ति को मरते समय यह संतोष रहता है, कि उसने अपने मानवोचित कर्त्तव्यों का पालन करते रहकर समय और समाज की आजीवन अमूल्य सेवा की और जीवन को धन्य बनाया । मृत्यु भय ऐसे लोगों को नहीं होता । वास्तविकता तो यह है कि इनकी अंतिम साँसें अत्यन्त चैन और शांतिपूर्वक निकलती हैं । उनमें लक्ष्य पूर्ति के लिए जीने का भी उत्साह बना रहता है और यदि इसके लिए जीवनोत्सर्ग आवश्यक हुआ, तो उससे भी पीछे नहीं हटते ।

इसके विपरीत यदि जीवन ध्येय घर-परिवार के छोटे दायरे तक ही सीमित" संकुचित रहा और व्यक्ति सदा अपनी ही उन्नति प्रगति की बात सोचता एवं योजनाएँ बनाता रहा, तो न तो जीते जी उसे शांति मिल सकेगी, न मरणोपरान्त । मृत्यु के दौरान भी उसका ध्यान उसी ओर लगा रहेगा । ऐसी स्थिति में व्यक्ति द्वारा लंबे जीवन की कामना करना स्वाभाविक है और यदि इसी बीच मौत की घड़ी अकस्मात् उपस्थित हो गई, तो उसकी घबराहट और चिंता का बढ़ जाना अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि उसकी इच्छाएँ अपूर्ण रहती हैं, जिसे वह हर हालत में पूर्ण होता देखना चाहता है, पर वह हो कैसे ? इच्छायें

सीमित हों, तब तो यह संभव भी हैं, किंतु "इच्छाएँ अनंत होती हैं"- अर्थशास्त्र का यह प्रसिद्ध सिद्धांत चरितार्थ होता हो, वहाँ किसी की समस्त इच्छाएँ सदा पूरी कैसे होती रह सकती हैं ? ऐसे व्यक्ति में उसकी एक इच्छा पूर्ण हुई नहीं कि दूसरी आ धमकती है और दूसरी के बाद तीसरी; जीवन इन्हीं के पूर्ति-प्रयास में लगा रह जाता है एवं इसी मध्य मौत के क्षण आ जाते हैं । इस समय तक भी जब वह अपनी कामनाएँ अधूरी पाता है, तो परेशान हो उठता है एवं महाप्रयाण से कतराने लगता है ।

तात्पर्य यह कि जब तक जीवन लक्ष्य में समूह और समुदाय की कल्याण-भावना समाहित न हो, तब तक मृत्यु सुखद-संतोषप्रद नहीं हो सकती । जब व्यक्ति ऐसे कार्य में अपना श्रेय-सम्मान समझ कर जीवन में उसे महत्व देता एवं आवश्यकतानुसार समय, श्रेय, और सम्पदा नियोजित करता है, तब उसका सत्परिणाम जीवन में स्वर्ग-मुक्ति का आनन्द-लाभ के रूप में सामने आता और अंतकाल में तृप्ति-तुष्टि प्रदान करता है । फिर ऐसे लोगों के लिए मौत कष्टकारक नहीं रह जाती । चूँकि इनका एकमेव लक्ष्य समाज परक होता है, अस्तु आजीवन इसके सुधार, निर्माण, उत्थान की बात सोचते रहने से व्यक्तिगत इच्छा-आकांक्षाएँ जाग्रत हो ही नहीं पातीं । फलतः उनकी पूरी अधूरी होने का विचार भी मन में नहीं उठता । अतः तत्संबंधी कोई चिन्ता भी नहीं सताती । इसके अतिरिक्त सार्वजनिक उत्थान के लिए अनेकों के समय और श्रम अपेक्षित होते हैं, साथ ही इसकी सिद्धि भी लंबे काल में हो पाती है, न तो किसी एक व्यक्ति का पराक्रम ऐसे कार्य को पूरा कर सकता है, न ही स्वल्प अवधि में इसके पूर्ण होने की गुंजाइश रहती है, अतः प्रयोजन अधूरा रहने पर भी इसमें संतोषपूर्वक जीने और मरने की पूरी-पूरी संभावना रहती है । मृत्यु को जीतने और उसे भयमुक्त बनाने का निस्संदेह यही सरल-सुनिश्चित मार्ग है ।

वस्तुतः मानवी जीवन अपने उद्‌गम स्रोत से निकलकर समुद्र की ओर प्रवाहमान होने वाली गंगा के समान है । उसकी एक-एक बूँद एक-एक व्यक्ति के समान है । यदि यह बूँदें अपना पृथक् अस्तित्व बनाकर रहना चाहें और अपनी आकांक्षा पूर्ति के लिए मनमर्जी ढंग से उधर-उधर बहना चाहें, तो क्या वह प्रवाहमान रह पायेंगी ? अपने अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर पायेंगी ? संभवतः नहीं । इसके लिए उन्हें अपना व्यक्तिगत अस्तित्व त्यागना पड़ेगा और नदी-जल की विशाल जल-राशि बनकर चलना पड़ेगा, तभी उसकी गति-प्रगति है, अन्यथा अकेली बूँद तो कुछ ही देर में गर्मी से भाप बन जायेगी, अथवा जमीन द्वारा सोख ली जायेगी, या वृक्ष-वनस्पतियों जीव-जन्तुओं द्वारा उदरस्थ हो जायगी । इस प्रकार उसका दुःखद अन्त हो जायगा और समुद्र से मिलने की उसकी चाहें धरी की धरी रह जायेंगी । अस्तु बूँद समुद्र से मिल सके, इसके लिए आवश्यक है कि वह नदी जल से एकाकार होकर आगे बढ़े । इसी में उसकी स्वयं की सार्थकता और उसका सुखद अंत सन्निहित है ।

मनुष्य भी अपना स्वार्थ त्यागकर समाज से एकाकार हो सके, अपनी व्यक्तिगत अभिलाषाओं को समाज की उन्नति-प्रगति में विसर्जित कर सके और पृथक् अस्तित्व बनाये रहने का उसका कोई आग्रह न हो, तो निश्चय ही उसके जीवन मृत्यु के बीच का भेद मिट सकता है । फिर इस स्थिति में जीवन में वह जिस आनंद की अनुभूति करता है, मरते समय भी उसे ऐसी ही शांति का एहसास होगा

कहा भी गया–

ततोवैनिष्पत्तिः स भुविमतिमान् पण्डितवरः ।
विजानन् गुह्यं जीवन मरणयोयस्तुनिखिलम् ।।
अनन्ते संसारे विचरति भयासक्ति रहितः ।
तथा निर्माणं वै निजगति विधीनां प्रकुरुते ।।

गायत्री गीता के उपरोक्त श्लोक में गायत्री मन्त्र के प्रथम पद 'तत्' की विवेचना करते हुए बताया है कि "इस संसार में वही बुद्धिमान है जो जीवन और मरण के रहस्य को जानता है । भय एवं आसक्ति रहित होकर जीता है और उसी आधार पर अपनी गतिविधियों का निर्माण करता है ।"

देखा जाता है कि लोग जीवन से बहुत अधिक प्यार करते हैं और मृत्यु से बहुत डरते हैं । फाँसी घर की कोठरियों में रहने वाले कैदियों और असाध्य रोगों के निराश रोगियों से मिलते रहने के हमें अनेक अवसर प्राप्त होते हैं। उनके अन्तस्तल की दशा की वेदना को समझ सकने के कारण हम यह जानते हैं कि लोग मृत्यु से कितना डरते हैं । कभी खतरे की सम्भावना सामने आवे, सिंह, व्याघ्र, सर्प, चोर, डाकू, भूत, अन्धकार आदि का भय सामने आने पर प्राण संकट का अनुभव करके लोग थरथर काँपने लगते हैं, होश हवा उड़ जाते हैं, मृत्यु चाहे प्रत्यक्ष रूप के सामने न हो पर उसकी कल्पना मात्र से इतना भय मालूम होता है जो मृत्यु के की वास्तविक कष्ट से किसी प्रकार कम नहीं होता ।

प्राणों का भय सामने उपस्थित होने पर अधिकांश लोग अपने कर्तव्यों, उत्तरदायित्व, धर्म-आचार आत्म-गौरव आदि की तिलांजलि देने में नहीं झिझकते । हम ऐसे धर्म प्राण बनने वाले व्यक्तियों को जानते हैं, जिन्होंने डाक्टर द्वारा रोग को प्राण घातक बता देने पर शरीर जाने के भय से माँस, अण्डे, मछली

का तेल, मद्य आदि का सेवन किया । हमने ऐसी घटना देखी है कि घर में अग्नि लगने पर अन्य साथियों की रक्षा की बात सोचे बिना केवल अपनी प्राण रक्षा के लिए समर्थ लोग भाग निकले और असहाय, निर्बल, वाल वृद्ध उसमें जल गये । पिछले भारत विभाजन के समय धर्मोन्माद से उन्मत्त लोगों द्वारा जो पैशाचिकताऐं बरती गईं, उनका सबको पता है, उन घटनाओं के जो लोग समीप रहे हैं, उन्हें मालूम है कि अत्याचारियों के चंगुल में फँसने पर कितनो ने ही अपना आत्म गौरव, धर्म कर्तव्य, उत्तरदायित्व आदि को छोड़कर बड़े से बड़ा अत्याचार अपनी आँख से देखते हुए भी प्राण भिक्षा के लिए

गिड़गिड़ाते हुए आत्मार्पण किया । प्राण संकट के समय लोग धर्म, कर्तव्य आदि की बात तो दूर रही अपने स्त्री बच्चों तक को दुर्दशायुक्त मृत्यु पाते देखते रहते हैं और अपने प्राण ले भागते हैं ।

मृत्यु का भय साधारण भय नहीं है । अविकसित, क्षुद्र हृदय व्यक्ति तो उससे भयभीत रहते ही हैं, पर वे लोग जो अपने को सिद्धान्तवादी, वीर, कर्त्तव्य परायण और धर्मप्रेमी समझते हैं, परीक्षा का समय आने पर विचलित हो जाते हैं। जब एक ओर आदर्श दूसरी ओर प्राण संकट की तुलना हो रही हो तो विरले ही मनुष्य ऐसे निकलते हैं तो खरे उतरें। महात्मा ईसामसीह ईश्वर से प्रार्थना किया करते थे कि "हे प्रभु, हमें बुराइयों से बचा, पर परीक्षा में न डाल" क्योंकि वे जानते थे कि मनुष्य बड़ा डरपोक है । उसे शरीर से इतना अधिक मोह है, कि प्राण त्याग तो दूर थोड़ा सा शारीरिक कष्ट, आर्थिक क्षति या इच्छा पूर्ति में प्रतिरोध दिखाई पड़ता हो, तो भी यह विचलित हो जाता है ।

जीवन का निर्माण इस प्रकार हुआ है कि निरन्तर खतरे उपस्थित होते रहते हैं । निर्माण और विनाश दोनों ही एक दूसरे से प्रगाढ़ रूप से सम्बद्ध हैं । बीज गले बिना वृक्ष नहीं होता और फल टूटे बिना बीज नहीं बनता । नया जीवन धारण तब होता है जब किसी की मृत्यु होती है और मृत्यु तब होती है, जब कोई जीवन नष्ट होता है । एक को धन तब मिलता है जब किसी के हाथ से वह धन निकलता है । जब समुद्र सूखता है, तब बादल बनते हैं और जब बादल गलते हैं तो समुद्र भरता है । एक की हानि ही दूसरे का लाभ है । इस प्रकार के ज्वार भाटे ही जीवन सौन्दर्य के प्रतीक हैं । रात्रि और दिन की भाँति, सुख-दुख का हानि-लाभ का भी जोड़ा जैसे सुख, शान्ति-लाभ, भोग, ऐश्वर्य प्राप्ति के अवसर आते रहते हैं वैसे ही कर्म भार्गो के अनुसार एवं परिस्थितियों के अनुसार रोग, हानि, संकट, क्लेश और मृत्यु के अवसर आना भी स्वाभाविक है । किन्तु देखा जाता है कि लोग सुखकर अवसरों का तो प्रसन्नतापूर्वक उपभोग कर लेते हैं पर जब दुख का अवसर आता है तो बेतरह रोते, चिल्लाते, डरते, काँपते, भयभीत होते रहते हैं ।

विनाशात्मक परिस्थितियाँ हर एक के जीवन में आती रहती हैं क्योंकि वे आवश्यक, स्वाभाविक सृष्टिक्रम के अनुकूल, एवं अनिवार्य हैं । परन्तु लोग उनसे बुरी तरह डरते हैं । विपत्ति आने पर तो डरते ही हैं, पर अनेक वार विपत्ति की आशंका, सम्भावना, कल्पना मात्र से भयभीत होते रहते हैं, इस प्रकार जीवन का अधिकांश भाग भय-चिन्ता, आशंका, घबराहट और दुख में व्यतीत होता है । यहाँ यह आश्चर्य होता है, कि विनाश जब जीवन का एक स्वाभाविक एवं अनिवार्य अंग है, तो लोग उससे इस प्रकार डरते क्यों हैं कि धनी और निर्धन, सम्पन्न और विपन्न सभी का जीवन असंतोष, अतृप्ति, खिन्नता, चिन्ता, निराशा आदि से भरा रहता है । पूर्ण सुखी मनुष्य ढूँढ़ निकालना आज असंभव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है ।

विघटनात्मक, विनाशात्मक स्थितियों से डरने, घबराने का कारण मनुष्य की एक आध्यात्मिक भूल है । वह भूल यह है कि-वह शरीर को ही "मैं" मान बैठता है । अपने आपको शरीर समझने के फलस्वरूप आत्मलाभ, आत्मानन्द, आत्मरक्षा, आत्म-परायणता, आत्म प्रतिष्ठा जैसी वृत्तियाँ दूसरे ही रूप में परिवर्तित हो जाती हैं । उनका स्वरूप शरीर लाभ, शारीरिक आनन्द, शरीर रक्षा, शरीर परायणता, शरीर प्रतिष्ठा बन जाता है । चूँकि आत्मलाभ अन्तःकरण का ईश्वर प्रदत्त गुण है, इस ओर जीव की स्वाभाविक रुचि होती है, इसी में उसे आनन्द आता है और इसमें विक्षेप पड़ने से दुःख होता है । संत, महात्मा, ब्रह्मवेत्ता, ऋषि, मुनि, सज्जन, लोकसेवी, सत्पुरुष इसी मार्ग पर चलते हैं और जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करते हुए सदा आनन्द निमग्न रहते हैं । परन्तु जब आत्म लाभ की परिभाषा- शरीर लाभ हो जाती है, जब आत्म रक्षा का तात्पर्य शरीर रक्षा समझा जाता है तो वहाँ अज्ञान सम्भव परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें आज जन साधारण ग्रस्त हो रहा है ।

स्वार्थ मनुष्य की सर्वप्रिय वस्तु है । 'अपनापन' सबको प्यारा है । संसार का जो भी पदार्थ प्रिय लगता है, वह अपनेपन की भावना के कारण ही प्रिय लगता है । शत्रु की सुन्दर से सुन्दर चीजें भी आँखों में कांटे की तरह चुभती हैं । जब शरीर को 'स्व' मान लिया गया तो उसके नष्ट होने का भय

आत्मानाश के समान लगना ही चाहिए जब शरीर ही 'स्व' है तो शारीरिक इन्द्रियों के भोग विलासों को आत्मानन्द समझा ही जाना चाहिए। शरीर की सुन्दरता, आकर्षण, मोहकता, वैसी ही प्रिय मालूम होनी चाहिए । जैसी कि आत्म प्रतिष्ठा प्रिय होती है । आत्मानन्द के लिये बड़ी से बड़ी वस्तु का त्याग करना बड़े से बड़ा कष्ट सहना, आत्म परायण पुरुषों के लिए शारीरिक सांसारिक, धन ऐश्वर्य द्वारा सुख पाने के लिए धर्म, कर्त्तव्य आदि का छोड़ देना और हत्या, डकैती और खतरे से भरे हुए दुस्साहसी कार्य कर डालना साधारण बात होती है। यदि कोई आदमी शरीर को ही ''मैं'' मानता है उससे ही ''स्व'' अनुभव करता है तो उसके लिए यह उचित ही है कि शरीर को सुखी करने वाली वस्तुओं और परिस्थितियों में सुखी रहे, उनके लिए प्रयत्न करे और इस मार्ग में जो वाधा उपस्थित हों, उसमें दुखी एवं भयभीत हो । इस स्थित में मृत्यु और हानि का भय यदि बुरी तरह संत्रस्त बनाये रहे तो उसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं हैं ।

परमात्मा को सत्-चित-आनन्द्, सच्चिदानन्द कहते हैं। उसका अंश आत्मा-स्वभावतः आनन्दमय है । उसमें आनन्द की कोई कमी नहीं, यह संसार परमात्मा की पुण्य कृति है। आनन्द रूप परमात्मा के हाथ से बना हुआ संसार आनन्द रहित नहीं हो सकता । जीवन का अर्थ है-जीव और प्रकृति के सम्मिलन, की आलिंगन की पुण्य बेला । इन क्षणों में आनन्द मय आत्मा और आनन्द कृति संसार के उभयपक्षीय आनन्दों का मिलन होने से अपार आनन्द उमड़ पड़ना चाहिए । स्त्री और पुरुष के समागम का आनन्द बडा आकर्षक है, आत्मा और प्रकृति के समन्वय का नाम ही जीवन है । जीवन इतना आनन्दमय, इतना आर्कषक, इतना उल्लासमय, इतना सरस है कि उसका आस्वादन करने के लिए जीव संसार में बार बार आता है, बार-बार जन्म लेता है । यदि ऐसी बात न होती, यदि वस्तुतः जीवन का मूल रूप दुख, भय, चिन्ता और क्लेशमय होता तो निश्चय ही परमात्मा का अमर युवराज आत्मा, उसे ग्रहण करने को कदापि तैयार न होता ।

आनन्द का रसास्वादन करने के लिए प्राप्त हुआ जीवन आज कितने कम लोगों के लिए आनन्दमय रह गया है, यह आश्चर्य की बात है । इसी प्रकार यह बात हैरत में डलने वाली है कि कितने आधिक लोग अपनी जिन्दगी के दिन असंतोष, भय, निराशा और उदासीनता के साथ व्यतीत कर रहे हैं । यह भूल भूलैया यह माया बन्धन, आत्मा के लिए कितना उलझन भरा है, कितना मर्मभेदी है. इस तथ्य को समझ कर हमारा शास्त्र हमें इस खतरे से आगाह कर देता है ।

गायत्री मन्त्र के प्रथम पद् में 'तत्' शब्द में इसी अन्धकार मय विभीषिका पर प्रकाश डला है, इसी पर्दे को उठा कर सच्चाई के दर्शन कराये गये हैं । गायत्री गीता के अनुसार ''तत्'' शब्द हमें बताता है कि जीवन और मरण के रहस्य को समझो, भय और आसक्ति रहित होकर जियो और वास्तविकता के सुदृढ़ आधार पर अपनी गतिविधियों का निर्माण करो ।

मृत्यु और जीवन का अन्तर

पुनर्जीवन का प्रश्न

अध्यात्म क्षेत्र में यह असमंजस बहुत पहले से ही छाया हुआ था कि मृतक किसे कहा जाय और जीवित किसे ? जिसकी आशा मर गई, जिसका लक्ष्य छूट गया, जिसका प्रकाश बुझ गया वह मृतक है, भले ही वह साँस ले रहा हो- यह प्रतिपादन दर्शन क्षेत्र में सदा ही किया जाता रहा है भले ही वह मृत्यु अलंकारिक रही हो पर कहा यही गया है कि आदर्श विहीन-निरुद्देश्य, भारभूत जिन्दगी से वे मृतक अच्छे हैं, जिनने धरती का अन्न-जल नहीं बिगाड़ा और मल-मूत्र से वायुमंडल को गन्दा करना बन्द कर दिया ।

यह अलंकारिक प्रतिपादन अब नये ढंग से वैज्ञानिक असमंजस के रूप में सामने आ खड़ा हुआ है । जिन्हें मृतक समझकर गाढ़ा या जलाया या बहाया जाता रहा है, वे जीवित थे या मृत ? उनकी अन्त्येष्टि जीवित अवस्था में ही कर दी गई थी या मरने के बाद ? इस प्रश्न पर नये सिरे से विचार किया जा रहा है । आमतौर से जिन्हें मृतक मान लिया जाता है क्या वे सचमुच ही मर चुके होते हैं ? अथवा अधमरे होते ही उनके मूर्छित शरीर से पिण्ड छुड़ाने की तैयारी कर ली जाती है । मृत्यु की व्याख्या क्या होनी चाहिए ? जीवित और मृतक का अन्तर किस आधार पर किया जाना चाहिए, यह एक विचित्र किन्तु महत्वपूर्ण प्रश्न शरीर-विज्ञानियों के सामने उभरकर आया है ।

मृत्यु की जो व्याख्याएँ अब तक की जाती रही हैं, वे सभी अपूर्ण हैं । कौन मर चुका, कौन मर रहा है, कौन मरने जा रहा है, इसका गम्भीर पर्यवेक्षण होना चाहिए अन्यथा जीवितों के साथ मृतकों जैसा व्यवहार करने की भयंकर भूल चलती ही रहेगी । इस सन्दर्भ में फ्रांस के प्रसिद्ध क्लिनीशियन प्रो० मोलोरेट ने राष्ट्र संघ के स्वास्थ्य संगठन को एक गम्भीर चेतावनी दी है कि मृत्यु की व्याख्या के आधार पर नये सिरे से विचार किया जाना चाहिए और मृत्यु को परम्परांगत ढर्रे के आधार

पर नहीं, वरन् तथ्य आधार पर घोषित किया जाना चाहिए । एक का हृदय दूसरे के लगाते समय यह धर्म संकट उत्पन्न होता है कि जिस व्यक्ति को मृत घोषित करके उसका हृदय निकाला गया था, क्या वह वस्तुतः मर ही गया था ? अथवा जीवित रहते हुए भी मृतक मानकर उसका वह महत्वपूर्ण अंग काट लिया गया था । यदि वह मृतक नहीं था तो उसकी या उसके घरवालों की, वसीयत के विरुद्ध निश्चय ही यह विश्वासघात का अथवा हत्या कर डालने का मामला बन जाता है, भले ही वह हत्या डक्टरों द्वारा सदुद्देश्य के लिए ही क्यों न की गई हो ।

अब मृत्यु की सुनिश्चित घोषणा सम्बन्धी व्याख्या का प्रश्न पहले की अपेक्षा कहीं अधिक जटिल और विवादास्पद हो गया है । शास्त्रीय मृत्यु, 'क्लिनिकल डेथ' पहले होती है और जीवन का अन्त, 'वायोलाजिकल डेथ' की स्थिति उसके बाद में आती है । दोनों के बीच कितने समय का अन्तर रहता है इसका कोई निश्चित नियम नहीं है । वह अन्तर छोटा भी हो सकता है और बढ़ा भी ।

प्रख्यात मृत्यु संशोधनकर्त्ता प्रो० नेगोस्की ने मृत्यु को चार चरणों में विभाजित किया है । पहला चरण वह है, जिसमें श्वँास की गति और हृदय की धड़कन मंद होती जाती है और अन्ततः बन्द हो जाती है । फिर भी मस्तिष्कीय चेतना किसी रूप में जीवित रहती है । इलेक्ट्रो एन्सेफलोग्राफ (ई.ई.जी.) यन्त्र से पता लगाया जा सकता है कि मस्तिष्क पूर्णतया मरा नहीं है वह मन्द गति से कई देह-घटकों को सन्देश भेज रहा है।

मृत्यु का दूसरा चरण वह है, जिसे सेरिव्रल डेथ कहते हैं । इसमें मस्तिष्क शरीरगत अवयवों को अपने संदेश देना बन्द कर देता है । इसलिए शरीर की हलचलें रुक जाती हैं, फिर भी चेतना का पूर्ण अन्त नहीं होता । मस्तिष्क अपनी सत्ता में केन्द्रित रहता है और शरीर के जीवाणु मस्तिष्क के साथ सम्बन्ध विच्छेद हो जाने पर भी अत्यन्त मंदगति से अपनी हरकतें करते रहते हैं । शरीर का कोई अंग कट जाने पर वह कुछ समय तक उछलता रहता है । यह स्थानीय जीवाणुओं की वैसी ही हरकत है, जैसे धक्का मार देने पर पहिया कुछ समय तक अपने आप लुढ़कता चला जाता है । सेरिव्रल डेथ हो जाने के उपरान्त भी शरीर में कई घण्टों तक जीवन के चिन्ह पाये गये हैं ।

तीसरा चरण है– क्लिनिकल डेथ (शास्त्रीय मृत्यु) । इसमें नाड़ी की गति, हृदय की धड़कन, श्वँास क्रिया रुक जाती है और मस्तिष्क गहरी अचेतना में डूब जाता है । इस स्थिति में भी शरीर विश्लेषण करने पर पता चलता है, कि किन्हीं अवयवों में मंदगति से स्थानीय हलचलें चल रही हैं । इस स्थिति में उच्चस्तरीय उपचार से पुनः जीवन को लौटाया जाना सम्भव हो सकता है ।

चौथा चरण वह है जिसमें जीवन की समस्त सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं । पूर्ण मृत्यु का साम्राज्य छा जाता है और जीवाणुओं का सड़ना, विगठित होना आरम्भ हो जाता है । यह वायोलाजिकल डेथ है ।

मूर्छा शास्त्र (अनेस्थेटिक्स) का नवीनतम शोध मान्यताओं के अनुसार केन्द्रीय मज्ज--तन्तु व्यवस्था (सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम) से कार्यान्वित होने वाले सभी जीवन सिद्ध करने वाली क्रियाएँ बन्द हो जाने पर भी पूर्ण मृत्यु घोषित नहीं की जा सकती। इन अन्वेषणों के अनुसार हृदय की धड़कन का रुकना, रक्त-संचार बन्द होना, श्वँास रुकना, नाड़ी चलना बन्द होना, चमड़ी सफेद पड़ जाना, पुतली पथरा जाना, जैसे मृत्यु के प्रख्यात लक्षण वस्तुतः जीवाणुओं की पारस्परिक संघटन का क्षय मात्र है । उसे क्षय चिकित्सा के आधार पर तत्काल रोका जा सकता है । मृतकों को पुनर्जीवित करने में मिली सफलताओं का कीर्तिमान यह है कि मस्तिष्क की क्रियाशक्ति समाप्त हो जाने के तीन दिन उपरान्त तक, श्वसन क्रिया बन्द होने के चौबीस घण्टे बाद तक रोगियों में जीवन के चिन्ह पाये गये और उन्हें फिर सजीव किया जा सका । जर्मनी के जिन दो वैज्ञानिकों ने ऐसे मृतकों को पुनर्जीवित करने में ख्याति प्राप्त की है, उनके नाम हैं- डा० बुर्शट और डा० रिट्मेजर । इनने यह घोषणा की है कि-सेरिव्रल डेथ-मस्तिष्कीय मृत्यु हो जाने पर भी केन्द्रीय मज्जा-तन्तु संस्थान बहुत समय तक अपना काम करता पाया गया है ।

निष्कर्ष यह निकला है कि हृदय प्रभृति महत्वपूर्ण अंगों का निष्क्रिय हो जाना-श्वँास-प्रश्वँास, आकुंचन-प्रकुंचन, रक्ताभिषरण क्रियाओं का बन्द हो जाना पूर्ण मृत्यु नहीं है । असल में शरीर पर पूरा कब्जा मस्तिष्क का है । यदि यहाँ के किन्हीं कोशों में तनिक भी जीवन चिन्ह मौजूद हैं, तो उसे जीवित ही कहा जा सकता है और यह आशा की जा सकती है कि चेतना का पुनः प्रस्फुरण करके निष्क्रिय हुए अंग अवयवों को तब तक पुनर्जीवित होने की आशा की जा सकती है, जब तक कि वे सड़ने नहीं लगे हों ।

जीवन का अन्त चेतना के अन्त के साथ होता है । सोचने-विचारने या अनुभव न करने की चेतना तो क्लोरोफार्म

जैसी औषधियों से ही उत्पन्न की जा सकती है । उस स्थिति को मृत्यु तो नहीं कहा जाता । ठीक इसी प्रकार मृत्यु समय में गहरी मूर्छा होने के कारण यदि अवयवों ने काम करना बन्द कर दिया है तो इसे कारखानों की तालाबंदी के समय मजदूरों की छुट्टी भर कहा जायगा-मृत्यु नहीं । मृत्यु की परख तो चेतना के सभी लक्षण समाप्त हो जाने से ही की जा सकती है क्योंकि जीवन और चेतना वस्तुतः एक ही बात है ।

रूस के एक मूर्धन्य वैज्ञानकि थे प्रो० लेव्हलैडो । अणु विघटन के शोध कार्य पर उन्हें १९६२ में नोवल पुरस्कार मिला था । उसी वर्ष वे मोटर दुर्घटना में बुरी तरह घायल हुए शरीर का प्रायः हर अवयव क्षत-विक्षत हो गया, उन्हें बचाने के लिये संसार भर के चिकित्सा शास्त्रियों ने प्राण-प्रण से प्रयत्न किये। तीन महीने वे वेहोश रहे । इस अवधि में चार बार उनके हृदय की गति बन्द रही और कई-कई घण्टों बन्द रही । चारों बार शास्त्रीय मृत्यु घोषित कर दी गई । इतने पर भी यह अनुभव किया जाता रहा कि जीवन को फिर वापस लौटाया जा सकता है ।

दिमाग में खून की गाँठ बन गई है, इसलिए यह वेहोशी रहती है, इस निष्कर्ष के उपरान्त कनाडा के न्यूरोसर्जन पेनफील्ड ने दिमाग के आपरेशन की तैयारी की । अन्तिम दर्शन की इच्छा से उनकी पत्नी भेंट के लिए पहुँची । उसने सिर पर हाथ फिराते हुए कहा- "प्रियतम-क्या तुम मुझे पहचानते नहीं हो ? तुम सुन तो सकते हो पर इस अवस्था में बोल नहीं पा रहे हो । यदि तुम सुन सकते हो तो चार बार पलक झपकाओ मैं समझ लूँगी तुम मुझे पहचानते हो और होश में हो ।" मूर्छित पड़े हुए रोगी ने चार बार पलकें झपकार्यी डक्टरों की टीम ने एक स्वर से माना कि वे होश में हैं और आपरेशन की व्यवस्था रद्द कर दी गई । उनके अन्य उपचार उत्साहपूर्वक किये जाते रहे । वे अच्छे हो गये और छै वर्ष तक भली प्रकार जीवित रहे ।

मस्तिष्क की मृत्यु ही अन्तिम सत्य है, यह चिर पुरातन अध्यात्म प्रतिपादन है । कहा गया है कि मस्तिष्क एक प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष है । जीवन की सक्रियता एवं स्फूर्ति मस्तिष्क की क्रियाशीलता पर निर्भर है । व्यक्तित्व का सारा कलेवर यहीं विनिर्मित होता है । यही वह पावर हाउस है, जहाँ से शारीरिक इन्द्रियाँ शक्ति प्राप्त करती हैं। स्थूल गतिविधियाँ ही नहीं, विचारों, भावनाओं का नियंत्रण, नियमन भी यहीं होता है ।

विचार यदि जीवित हैं, तो मस्तिष्क भी जीवित है । जो व्यक्ति जीवित रहते हुए अपनी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग कर लेता है, वह स्वयं का तो विकास करता ही है, समाज का सम्मान भी पाता है । वही मस्तिष्क जब विचार शून्य हो जाता है, उसकी सोचने - समझने की क्षमता नष्ट हो जाती है अथवा कोई भी स्वतन्त्र निर्णय लेने में मनुष्य स्वयं को असमर्थ ही पाता है तो उसे मृतवत् ही कहा जाना चाहिये ।

बालक की विकास अवस्था में प्रारम्भिक वर्षों में (तीन से बारह वर्ष तक) सर्वाधिक वृद्धि स्थूल दृष्टि से उसके मस्तिष्क की होती है । उसके मस्तिष्क का व्यास बढ़ जाता है । स्थूल दृष्टि से विकास की गति तीव्र होते हुए भी हर दृष्टि से यह बालक परावलम्बित ही होता है । विचारों की दृष्टि से वह परिपक्व नहीं होता, तब तक स्वतन्त्र निर्णय बुद्धि उसमें नहीं विकसित होती । स्नायु विज्ञानी बताते हैं कि इस आयु के बाद मस्तिष्क का स्थूल विकास तो रुक जाता है, पर उसमें सूक्ष्म क्षमताएँ विकसित होने लगती हैं । भावपरक संवेदनाएँ, अपने पराये का ज्ञान, विपरीत लिंग के प्रति सहज आकर्षण, जीवनोद्देश्य इन सब का उसे भान होने लगता है । उत्साह, स्फूर्ति, उमंग, बुद्धि हर दृष्टि से युवा सम्पन्न होता है । पर इस उपलब्धि को बनाये रखने के लिए उसे अपना मस्तिष्क सतत् क्रियाशील, जीवन्त बनाये रखना होता है । स्थूल तरंगों का मापन कुछ भी निर्णय दे, समग्र विकसित मस्तिष्क ही किसी के सही अर्थों में जीवित होने का प्रमाण देता है ।

परन्तु इन सबके मूल में जो सूक्ष्म सत्य अन्तर्निहित है, वह विशिष्ट ही है । जीवित व्यक्ति में मृत्यु की विभीषिका अनेकानेक परिस्थितियों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । 'सिफिलिस' नामक यौन रोग की अन्तिम अवस्था में मस्तिष्क के बुद्धि, सामाजिक व्यवहार, संवेदना वाले केन्द्र मृतप्रायः हो जाते हैं। स्वस्थ दीखते हुए भी वह व्यक्ति मृतक के समान ही होता है। इसी तरह 'सठियाना' रोग नहीं, एक स्थिति है । जब व्यक्ति की चिंतन क्षमता समाप्त हो जाये । नागरिक कर्त्तव्यों की छोटी-छोटी बातों का उसे ध्यान न रहे, उसकी स्थिति गयी बीती हो जाती है । जीवित होते हुए भी मृतवत् वह अपनी लाश ढोता है । डिप्रेशन, न्यूरोसिस, साइकोसिस ऐसे रोग हैं, जिनमें शारीरिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ होते हुए भी मनुष्य का अस्तित्व नहीं के बराबर होता है । एक बेचारा, जो सारा दोष परिस्थितियों को देता रहता है । किसी तरह अपनी जीवन की गाड़ी चलाता रहता है, वह दार्शनिक दृष्टि से मृत्यु की ओर अग्रसर होता माना जाता है ।

हमारे मस्तिष्क की संरचना लगभग उसी स्तर की है, जैसी कि पृथ्वी के ध्रुव प्रदेशों की । इसके सामान्य से दीखने वाले कण वस्तुतः अनोखे चुम्बकत्व से भरे पड़े हैं । उत्सर्जित विद्युतीय उर्जा को यों तो ई० ई० जी० द्वारा मापा जा सकता

है । परन्तु वह उस पूरी शक्ति सम्पदा का मात्र कुछ हिस्सा ही है । शेष ऊर्जा तो चेतना स्तर की होने के कारण यान्त्रिक पकड़ एवं परख से बहुत आगे की है । अनेकों जर्मन एवं स्विस वैज्ञानिकों ने वर्षों तक असाधारण प्रतिभा वाले व्यक्तियों का अध्ययन कर मात्र यह पाया है, कि मस्तिष्क के दोनों हिस्सों की कार्टेक्स संरचना में कुछ अन्तर होता है । वैसे भी यह विभिन्नता अलग-अलग व्यक्तियों में सामान्यतः देखने में आती ही है । वस्तुतः मानसिक क्षमता, चारित्रिक दृढ़ता, संवेदनाऐं, उत्कृष्ट चिन्तन एवं आदर्श कार्यों को करने की जीवट आदि विषय स्थूल मस्तिष्क के नहीं है । चेतना की परिधि में आने वाली इन विशिष्टताओं का विशद अध्ययन परा मनोवैज्ञानिक कर रहे हैं । इन सबके निष्कर्ष यही हैं कि प्रसुप्त शक्तियों का जागरण एवं मानसिक क्षमताओं का पूर्ण उपयोग ही जीवन की समस्त सफलताओं का मूल है । यही जीवन है । इससे विपरीत अवस्था मौत है ।

मृत्यु का आक्रमण अकस्मात् बिजली टूट पड़ने की तरह नहीं होता उसकी प्रकिया धीरे-धीरे सम्पन्न होती है । वृद्धावस्था और रुग्णता वस्तुतः मृत्यु के मंद गति से प्राणी की ओर बढ़ते हुए चरण ही हैं । शस्त्र आघात, विषपान, हत्या-आत्महत्या, दुर्घटना जैसे अंगों में अपेक्षाकृत जल्दी मौत होती है, तो भी वह अकस्मात नहीं होती है, उसमें भी क्रमिक गति ही काम करते हैं । भले ही वह तीव्रता के साथ अपना काम जल्दी ही पूरा कर लेती हो ।

सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ा । मरते समय के अनुभव वे इस प्रकार बताते रहे कि पैरों और हाथों की ओर से उनकी जान निकल रही है और मृत्यु क्रमशः मस्तिष्क की ओर बढ़ती आ रही है । वे अपने शिष्यों के साथ तब तक वार्तालाप करते रहे जब तक कि अन्य अंग शिथिल होते-होते मस्तिष्क के शिथिल होने की बारी नहीं आ गई ।

अपनी मृत्यु की पूर्व घोषणा करने वालों की अनुभूतियाँ भी इसी प्रकार की होती हैं वे अनुभव करते हैं कि उनके अंग विलक्षण प्रकार से निर्जीव हो रहे हैं । उनकी स्वाभाविक और सम्मिलित शक्ति का विचित्र रीति से क्षरण हो रहा है। अन्तः चेतना इस मृत्यु सन्देश को यदि ठीक तरह अनुभव कर सके, तो क्रमिक मृत्यु की स्थिति में आवेश रहित व्यक्ति सहज ही मृत्यु का पूर्वाभास पा सकता है और कई बार तो मृत्यु-समय की अवधि तक घोषित कर सकता । ऐसी भविष्यवाणियाँ कितनों ने की भी हैं और वे सत्य भी निकली हैं । यह कोई जादू नहीं है, वरन् अपनी आन्तरिक स्थिति का सही विश्लेषण या निदान मात्र है । ऐसा कर सकना आवेश रहित सन्तुलित व्यक्ति के लिए ही सम्भव होता है । हड़बड़ाने वालों को तो अनेक तरह के आवेश ही बुरी तरह आ घेरते हैं और वे डरने, घबराने, रोने, पीटने के अतिरिक्त और कुछ कर, समझ नहीं पाते ।

इन तथ्यों पर दार्शनिक दृष्टि से विचार करने से यह प्रतीत होता है कि जिसकी चेतना जितनी मंद पड़ रही होगी वह उतने ही अंशों में मृतक हो चुका होगा । स्फूर्ति, उत्साह, परिश्रम जैसे शारीरिक और जागरूकता, व्यवस्था, सूक्ष्मदर्शिता जैसी बौद्धिक प्रखरताएँ जिनमें सही ढंग से सही मात्रा में काम कर रही हों उन्हीं को पूर्ण जीवित माना जायगा । आलसी, प्रमाद, अकर्मण्य, अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित लोग एक विशेष प्रकार से मृतक ही हैं, अस्तु इन्हें जीवन के हर क्षेत्र में असफल ही रहना पड़ता है ।

शिथिल मृत्यु जो क्रमशः पके हुए फल की तरह होती है, कठिनाई से ही टलती है । सक्रियता खोते-खोते जीवाणु पहले ही से दम तोड़ते चले जाते हैं, उन्हें कुछ समय गरम रखा जा सके तो भी सशक्तता का वापस लौट सकना सम्भव नहीं होता । किन्तु दुर्घटनाओं से ग्रसित मरणासन्न व्यक्तियों के बारे में ऐसी बात नहीं है । उनके जीवकोष सक्षम कोशिकाएँ पुनर्जीवन धारण करने के लिए आसानी से तत्पर हो जाती हैं। पानी में डूबने वाले, ठण्ड लगने, बिजली का झटका खाने वाले, सर्प के काटे, दुर्घटनाग्रसित, हार्ट फेल होने वाले लोगों की मृत्यु को पुनर्जीवन में वापस लौट सकना इसी आधार पर अधिक सम्भव रहता है ।

सामान्यतया मरण का क्रम इस प्रकार चलता है कि मनुष्य का तापमान गिरता है । ९८.४० फारने हाइट से गिरते-गिरते वह १.५० पर उतर आता है । त्वचा में खून जमने लगता है । स्नायु पहले तो ढीले पड़ते हैं, पर फिर अकड़ने शुरू हो जाते हैं । इसके बाद वे फिर ढीले होने लगते हैं । इन सब परिवर्तनों में प्रायः दो दिन लग जाते हैं । मृत्यु निकट आती चली जा रही है, इसका आभास सामान्य स्थिति में, दो दिन पूर्व ही प्राप्त किया जा सकता है; किन्तु विशेष घटनाओं में यह सब बहुत तेजी से भी होता है और कुछ ही घण्टों में सारी प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है ।

यह तथ्य हमें इस निर्णय पर पहुँचाते हैं कि किसी की दीर्घ सूत्रता, अकर्मण्यता और मनस्विता कितनी ही शिथिल क्यों न हो गई हो उसके पुनर्जागरण की आशा की जा सकती है। परिस्थितियों की प्रखरता के सम्पर्क में आकर, तेजस्वी साधनों को अपनाकर निष्क्रिय लोगों को सक्रिय और तथाकथित मृतकों को जीवित किया जा सकता है । जब एक छोटी सी चिनगारी

दावानल के रूप में प्रचण्ड हो सकती है, तो कोई कारण नहीं कि मंद चेतना को समग्र जागरूकता के रूप में विकसित परिणत ने किया जा सके ।

मृत्यु को भारी थकान और गहरी मूर्छा का परिणाम माना जाता है । शरीर की थकान स्थिर नहीं, निद्रा के उपरान्त उसकी क्षति-पूर्ति हो जाती है । आत्म-चिन्तन और प्रखर प्रोत्साहन से अन्तः चेतना पर चढ़ी हुई मंदता का भी निराकरण-निवारण हो सकता है । जो जिस अनुपात में इसे सम्पादित कर लेते हैं, उनके बारे में यही कहा जाता है कि वे उतने ही जीवन्त और जागृत हैं ।

अमर होना संभव है क्या?

अमरत्व को समझने के लिये सर्वप्रथम मृत्यु के स्वरूप पर विचार करना आवश्यक है । साधारण लोगों की दृष्टि में आत्मा का इस स्थूल शरीर से अलग हो जाना ही मृत्यु है। यद्यपि बातचीत में अथवा ज्ञान चर्चा के अवसर पर आत्मा को अविनाशी कहकर मृत्यु को एक रूपान्तर मात्र मान लेते हैं पर व्यवहार में इससे उल्टी ही बात दिखाई पड़ती है । वे लोग इस दृश्यमान शरीर को ही सत्य मानते हैं और आत्मा के विलग हो जाने पर जब यह शरीर नष्ट हो जाता है तो उसी को मनुष्य का अन्त समझ कर शोक और विलाप करते हैं ।

पर शास्त्रों का मत इससे सर्वथा भिन्न है । उपनिषद् में नचिकेता ने यमराज से यह प्रश्न किया था, कि जब मनुष्य मर जाता है, तब उसकी क्या दशा होती है ? कोई कहते हैं कि उसका सर्वथा नाश हो जाता है और दूसरों के मत से उसका नाश नहीं होता । अब बताइये इन दोनों में से कौन सा मत सत्य है ?'' इस प्रश्न का उत्तर देते हुये यमराज ने कहा-

''न सांपराय प्रति भाति पाल प्रमाद्यन्तं वित्त मोहन मूढ़म।
अयंलोको नास्तिः पर हतिमानी पुनः पुनर्वशमापद्यते में ।।''

अर्थात् ''अविवेकी मनुष्य के मन में परलोक की कोई कल्पना ही नहीं होती, क्योंकि वह अपने स्वरूप को नहीं जानता और सम्पत्ति के मद से सदा मूढ़ बना रहता है । ऐसा मनुष्य यह कहता है कि इसी जगत में सब कुछ है, अन्य लोक कोई चीज नहीं, ऐसी अवस्था में वह मनुष्य मेरे अधीन होकर बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्कर में गोते खाता है ।''

यदि इस कथन को ध्यान में रखकर आत्मा और देह के यथार्थ स्वरूप पर विचार करें तो यही विदित होता है कि आत्मा नित्य, सत्य, शाश्वत है तथा देह अनित्य, असत्य, अशाश्वत है । अतएव जो अमरत्व अथवा आत्म-लाभ की इच्छा करेगा वह अशाश्वत वस्तुओं का मोह त्यागकर शाश्वत विषयों की ओर ही ध्यान देगा । बुद्धिमान व्यक्ति कभी इस बात को पसन्द नहीं कर सकता कि संसार की अधिक से अधिक सम्पत्ति के लिये भी आत्मा का नाश किया जाय । यदि कोई यह चाहे कि सांसारिक वस्तुओं को पूर्णतः प्राप्त करके उनमें लिप्त रहते हुये भी मैं आत्म लाभ भी कर लूँ, तो यह एक असम्भव बात है । इसलिये जो व्यक्ति सांसारिक विषयों की तरफ से ध्यान हटाकर आत्मिक विषयों पर हृदय से ध्यान देगा वही अमरत्व की ओर अग्रसर हो सकता है । इस सम्बन्ध में ''कठवाल्ली'' में लिखा है--

''न जायते मृयते वा विपरिचन्नीयं कुत्तरिचन्न वभूव कश्चित।
अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हम्यते हन्यमाने शरीरे ।।
हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हत-श्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीता नायं हन्ति न हन्यते ।।''

(कठवाल्ली)

अर्थात् ''ज्ञान सम्पन्न आत्मा न कभी उत्पन्न होती है न कभी मरती है । न आत्मा किसी से उत्पन्न होती है और न उसी से कोई वस्तु उत्पन्न होती है । आत्मा अज (जन्म रहित), नित्य, शाश्वत और पुराण है । शरीर के नाश से आत्मा का नाश नहीं होता । यदि कोई वध करने वाला मनुष्य यह कहे कि मैंने इसका बध किया अथवा जिसको मारा गया वह कहे कि मेरा बध किया गया-तो समझना चाहिये कि दोनों कुछ नहीं जानते । क्योंकि आत्मा न किसी को मारती है और न किसी से मारा जाता है ।''

इसी प्रकर्ण में आगे चलकर जीवात्मा का रूप इस प्रकार बताया है-

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शाञ्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किसत्र परिशिष्यते ।।
स्वप्नान्तं जागरिन्तान्तं चोमौ ये नानु पश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरोनु शोचति ।।

अर्थात् ''आत्मा उसे कहते हैं, जिसके कारण रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श आदि विषयों का और इनके अतिरिक्त जो शेष रहे उन सब का ज्ञान होता है । जो यह जानता है कि जागृत और निद्रा नामक दोनों अवस्थाओं में जिसके कारण सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त होता है, वह सर्वव्यापक सूक्ष्म आत्मा मैं ही हूँ वह बुद्धिमान मनुष्य शोक से अलिप्त रहता है ।''

इस प्रकार जब मनुष्य आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझ लेता है, तब ''अमरत्व'' का रहस्य उसे सहज में ज्ञात

हो सकता है । इस का मूल आशय यही है कि अन्तर्दृष्टि तथा अध्यात्म योग द्वारा आत्म रूप वस्तु का साक्षात्कार किया जा सकता है । इसके लिये पहले यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि यद्यपि ज्ञान की प्राप्ति इन्द्रियों के द्वारा होती है अर्थात् वे इस कार्य में साधन रूप होती हैं पर उनको आत्मा का दर्शन नहीं हो सकता । इसके लिये उपनिषद् में स्पष्ट कहा है-

पराश्चिखानि व्यतृणात्स्वययंमू स्मात्पराङ पश्यति नान्तरात्मम्।
कर्श्चिद्धीर, प्रत्यागात्मानमैक्षुदावृत्त चक्षुरमृतत्व मिच्छान्।।

अर्थात्- "ईश्वर ने इन्द्रियाँ केवल बाह्य विषय को ग्रहण करने के लिये उत्पन्न की हैं, इसलिये वे सदा बर्हिमुख ही रहती हैं । हजारों में से ऐसा एकाध मनुष्य उत्पन्न होता है जो अमरत्व की इच्छा करके अपनी इन्द्रियों को अर्न्तमुख करने का प्रयत्न करता है और आत्मा के साक्षात्कार का अनुभव प्राप्त करता है ।"

इन्द्रियाणाम् पृथम्मावहुद यास्तमयौच यत्।
पृथगुत्पदामाना नाम् मत्त्व धीसे न शोचति ।।

अर्थात् "जब इन्द्रियाँ अन्तर्मुख हो जाती हैं तब यह जानने से कि "जागृत अवस्था में वे कैसे होती हैं और निद्रावस्था में उनका रूप कैसे हो जाता है" आत्म-स्वरूप से उनकी भिन्नता और विलक्षणता प्रतीत होती है ।"

ईसलिये जिस मनुष्य को अमरत्त्व का रहस्य जानना हो उसे अध्यात्म योग का आश्रय लेना चाहिये । इस योग की सिद्धिं से संसार-दुख और विषय-सुख की निवृत्ति हो जाती है। आत्मा के बन्धन और मोक्ष का कारण केवल अन्तःकरण है। जब वह विषय में आसक्त हो जाता है, तब सांसारिक सुख दुःखादि में बँध जाता है । पर जब वह परमात्मा के स्वरूप में रम जाता है, तब उसको मोक्ष अर्थात् अमरत्व की प्राप्ति होती है। उसे स्वानुभव द्वारा यह ज्ञात हो जाता है, कि जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध छाया से सत्य रूपी धूप का ज्ञान होता है वैसे ही जीवात्मा से परमात्मा का अनुभव किया जाता है और इस बात की प्रतीति होती है कि परमात्मा की तरह उसका अंश हमारी जीवात्मा भी अमर है ।

अमरत्व की इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए अगर कोई शारीरिक क्रिया विशेष रूप से सहायक होती है तो योगशास्त्रानुसार वह शुक्र अथवा वीर्य की पूर्ण रूप से रक्षा है। इस स्बन्ध में हठयोग प्रदीपिका में कहा है-

चित्तायतं नृणां शुक्रं शुक्रायन्तं च जीवितम् ।
तस्मात् शुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः ।।
वानःस्थैर्यं स्थिरो वायुस्ततो विन्दुः स्थिरो ।
विन्दुस्थैर्ये सदा सत्वं रिंडप्धैर्थम प्रजीयेताभिवेत् ।।
सुगधो योगिनो देहे जायते विन्दु धारणात् ।
यावद् बिन्दुः स्थिरो देहे तावत्कालं भयंकुतः ।।
एवं संरक्षयेद बिन्दुम् मृत्युं जयति योगवित ।
मरणं विन्दुपातेन जीवनं बिन्दु धारणान् ।।

अर्थात्- मनुष्यों का शुक्र(वीर्य) केवल मन के अधीन रहता है, इसलिए हर प्रयत्न से शुक्र और मन की रक्षा करनी चाहिए । मन की स्थिरता से बिन्दु की स्थिरता हो जाती है। जब बिन्दु स्थिर हो जाता है तो शरीर के अन्दर एक अनुपम शक्ति आ जाती है और मनुष्य को किसी प्रकार का भय नहीं रहता । सारांश यही है कि बिन्दुपात ही मृत्यु है और बिन्दु की स्थिरता ही 'अमरत्व' है ।

यह अमरता की दार्शनिक चर्चा हुई । भौतिक पहलू से भी वह असंभव प्रतीत नहीं होती । इस दृष्टि से जब हम अमरत्व के विषय में विचार करते हैं, तो उन कट्टर भाग्यवादियों की बात एक प्रकार की हठधर्मी या अंध विश्वास ही जान पड़ता है जो यह कहते हैं, मनुष्य की आयु सर्वथा पहले से निश्चित है और उसमें एक दिन की घटा बढ़ी हो सकना असम्भव है- "राई घटै न तिल बढ़ै रह रे जीव निशंक ।" हमारी समझ में इस प्रकार की धारणा अज्ञान की ही परिचायक है । समझदार आदमी अब भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि रहन-सहन, आचरण, संयम और प्रयत्न करने से उम्र अवश्य घट या बढ़ सकती है । आज कल के लोगों की बात छोड़ दीजिये। वेद, शास्त्र, पुराण आदि सभी के प्रमाणों से इस बात को सिद्ध किया जा सकता है कि आयु को दीर्घ बनाना असम्भव नहीं है । उदाहरणार्थ शुक्र यजुर्वेद के मन्त्र २३-२४ में कहा गया है-

"मनुष्य के स्थूल, शरीर की कम से कम आयु १०० वर्ष की है और उसे योगाभ्यास द्वारा बढ़ाया जा सकता है ।" इसी वेद में अथवा (मंत्र ३.६०) में लिखा है कि "मनुष्य की आयु कहाँ तक बढ़ाई जा सकती है इसकी कोई सीमा नहीं, वह अमर भी हो सकता है ।"

आयुर्वेद के सबसे माननीय अंश चरक संहिता में ऐसे कितने ही प्रयोग दिये गये हैं जिनके सेवन करने से १००० साल तक आयु होना संभव माना है । सुश्रुत संहिता में स्पष्ट रूप से लिखा है कि यदि उसकी बताई विधि के अनुसार सवामन शिलाजीत का सेवन कर लिया जाय तो मनुष्य अवश्य ही एक हजार वर्ष तक जीवित रह सकता है । (सुश्रुत संहिता का चिकित्सा स्थान पृष्ठ ७१८)

"योगदर्शन" में प्राणायाम और समाधि की जो क्रियाएँ बतलाई गई हैं उनका एक उद्देश्य शरीर को चिरस्थायी बनाना और मृत्यु पर विजय प्राप्त करना भी है । योगशास्त्र में जगह-जगह ऐसी सिद्धियों का वर्णन है, जिनके द्वारा योगी अपने शरीर को पर्वत के समान भारी या रूई के समान हल्का कर सकता है, पानी पर चल सकता है, आकाश में उड़ सकता है, आग में नहीं जल सकता और कोई रोग या पीड़ा उस पर असर नहीं डाल सकती । योगी तो आजकल भी देखने में आते हैं जो कि-कई सप्ताह तक साँस बन्द करके जमीन में गड़ जाते हैं, तेज जहर, काँच और लोहे की कीलें खा लेते हैं, शरीर को हथौड़ों से पिटवाते हैं, तो भी उन पर कोई असर नहीं पड़ता, योग की इन्हीं शक्तियों को और सिद्धियों को ध्यान में रखकर स्वामी विवेकानन्द ने विज्ञान का गर्व रखने वाले अमरीकनों के सामने स्पष्ट शब्द में कह दिया था-

"योग शास्त्र वर्णित प्राणायाम के सिद्ध होने पर मानो अनन्त शक्ति का द्वार खुल जाता है, मान लो किसी व्यक्ति ने प्राणायाम के विषय को पूर्ण रूप से समझ लिया और उसे जीतने में भी सफलता प्राप्त कर ली तो फिर संसार में ऐसी कौन सी शक्ति है जो उसे प्राप्त नहीं ? उसकी आज्ञा से चन्द्र सूर्य भी हट सकते हैं, छोटे से छोटे परमाणु से लेकर बड़े से बड़े सूर्य तक पर उसका अधिकार रहता है । क्योंकि उसने प्राण पर विजय प्राप्त कर ली है । प्राणायाम का लक्ष्य उस शक्ति को प्राप्त करना ही है, जिससे प्रकृति वशीभूत हो सकती है। जब योगी सिद्ध हो जाता है तो प्रकृति में ऐसी कोई वस्तु नहीं रहती जो उसके वश में न हो जाय । अगर वह देवताओं को बुलायेगा तो वे उसकी आज्ञा पाते ही हाजिर हो जायेंगे । अगर वह किसी मरे हुए व्यक्ति को आज्ञा देगा, तो वह भी तुरन्त सामने उपस्थित होगा । प्रकृति की सभी शक्तियाँ उसकी आज्ञानुसार दास की भाँति कार्य करती हैं ।"

श्वेताश्वेतर उपनिषद् के दूसरे अध्याय में भी योग की ऐसी महिमा लिखी है-

लघुत्वप्रारोग्यम वर्ण प्रसादा स्वरसोवष्ढञ्च ।
गंधः स्तम्भो सूत्र पुरीषमल्यं योग प्रवित्त प्रथमा वदन्ति ।।१।।
पृथ्व्याप्ते जोहानिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योग गुणे युवत्ते ।
न तस्य रोगो नाजरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरं ।।२।।

अर्थात् शरीर का हल्कापन, स्वास्थ्य, निर्लोभता, सुन्दर वर्ण, मीठा स्वर, मल-मूत्र की अल्पता और शरीर में से एक प्रकार की मनोहर सुगन्ध ये सब लक्षण योग आरम्भ करते ही दिखाई पड़ने लगते हैं ।।१।।

जब पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँचों तत्वों के योग की अनुभूति उत्पन्न होती हैं तब समझना चाहिए कि योग आरम्भ हो गया । जिसने इस प्रकार योग-अग्नि से युक्त शरीर प्राप्त कर लिया है, उस पर रोग, बुढ़ापा, मृत्यु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।।२।।

वास्तव में विचारपूर्वक देखा जाय तो यह मनुष्य का शरीर यन्त्र या मशीन की तरह है । जिस प्रकार कोई मशीन एक होशियार कारीगर के हाथ में रहकर पचास वर्ष चल सकती है और वही एक अनाड़ी के हाथ में पड़ जाने से पाँच वर्ष में ही बेकार हो जाती है, उसी प्रकार मनुष्य शरीर भी ढंग से रहने और पूर्ण देखभाल करने से सौ-डेढ़ सौ या अधिक समय तक काम दे सकता है, पर लापरवाह और असंयमी आदमी उसे पच्चीस-पचास वर्ष में ही खत्म कर डालता है । जिस प्रकार कोई मशीन पच्चीस वर्ष की गारंटी होने पर भी समय-समय पर मरम्मत करने और पुर्जों के बदलने से पचास, साठ वर्ष तक भी काम दे सकती है, उसी प्रकार जो मनुष्य संयम, रसायन प्रयोग, काया कल्प, अथवा योग साधन का सहारा लेकर शरीर को विकारों से मुक्त रखते हैं, वे उसे कई सौ वर्ष तक भी कायम रख सकें, तो उससे अविश्वास की कोई बात नहीं है । यही शरीर से अमर होना कहा जा सकता है ।

वैज्ञानिक अब इसी सम्भावना पर विचार कर रहे हैं कि मृत व्यक्ति को दीर्घकाल तक विश्राम करने दिया जाए । उसके बाद उसे पुनः जीवित करने का प्रयास किया जाये । इस बीच श्रम से शिथिल और क्षरित शरीर कोशिकाएँ, विश्राम से नवस्फूर्ति पा जायेंगी । मृत्यु के बाद देह स्थित जीवाणुओं में विघटन प्रारम्भ हो जाता है, जिसका परिणाम होता है, सड़न । शरीर को वायु और गर्मी से सुरक्षित रखते हुए शून्य से नीचे के तापमान पर रखने पर उसमें विकृति नहीं आती । अमेरिका में मनोविज्ञान के प्राध्यापक डा० जेम्स वेडफोर्ड ने अपनी वसीयत में ही यह इच्छा व्यक्त की थी कि उनके शरीर पर यह प्रयोग किया जाए। इस हेतु उन्होंने पर्याप्त धनराशि भी छोड़ी थी। तदनुसार यह व्यवस्था की गई है । जनवरी ६७ में मृत्यु के बाद उनकी देह सुरक्षित रख दी गई। ११ अन्य अमरीकियों के शव भी इसी भाँति रखे गये हैं । इन शरीरों से मलादि निकालकर उन पर चाँदी की पतली पर्त लपेटी गई है और फिर दो पर्त वाले ताबूत में भीतरी पर्त में उन्हें बन्दकर वहाँ हवा न पहुँच पाए, ऐसी व्यवस्था की गई है । बाहरी पर्त में पर्याप्त नाइट्रोजन द्रव भरा गया है, ताकि आवश्यक शीतलता का तापक्रम बना रहे । यह द्रव हर छः महीने बाद पलट दिया जाता है । न केवल बेडफोर्ड महोदय ने वरन्

उनकी देखा-देखी अन्य ११ अमेरिकिनों ने भी अपने शव इसी प्रकार सुरक्षित रखवाये हैं । ताकि जब भी मृतकों को जीवन देने वाला वैज्ञानिक अमृत बरसे तो लाभ उठाने वालों में उन्हें ही अग्रिम स्थान प्राप्त हो । उक्त प्रयोग सफल हो सका, तो इसी देह में पुनर्जन्म सम्भव हो सकेगा ।

इस सम्भावना को आशामय दृष्टि से इसलिए देखा जा रहा है कि जीवन के समय वैसे तो विघटन एवं निर्माण की दोनों प्रक्रियाएँ होती रहती हैं । किन्तु मृत्यु के समय निर्माण प्रक्रिया प्रायः बन्द होने को होती है और विघटन प्रक्रिया अधिक तीव्रगति से प्रारम्भ हो जाती है । यदि मृत्यु के पूर्व ही निर्माण प्रक्रिया का बन्द होना रोका जा सके, तो जीवित रहना सम्भव है । वैज्ञानिकों का विश्वास है कि यदि एनाबोलिज्म (कोशों का पुनर्रचना) तथा मेटाबोलिज्म (रसप्रक्रिया) का क्रम निरन्तर रखा जा सके तो २१वीं सदी के पूर्व या २०वीं सदी के अन्त तक मृतक को कुछ समय विश्राम देकर उसे पुनर्जीवित किया जा सकेगा ।

आहार-विहार, रहन-सहन, संयम, मानसिक सन्तुलन, दिनचर्या जैसी छोटी समझी जाने वाली बातों पर यदि सतर्कतापूर्वक ध्यान रखा जा सके और अवांछनीय गतिविधियों को रोका जा सके तो सहज ही दुर्बलता और रुग्णता की समस्या का समाधान निकल सकता है ।

मृत्यु एक दिन तो सभी की होनी है । जन्मने वाले को मरना पड़ता है, इस शाश्वत सत्य को झुठला सकने का दावा किसी के लिए भी कर सकना सम्भव नहीं, पर इसमें सन्देह नहीं कि मृत्यु को काफी पीछे धकेला जा सकता है। जितने दिन जीने की सम्भावना दीखती थी, उसकी तुलना में काफी अधिक समय तक जीवन का आनन्द लिया जा सकता है । शर्त एक ही है कि शक्तियों के क्षरण करने वाली उन भूलों को तत्परतापूर्वक सुधार लिया जाय जो हमारे स्वभाव का अंग बन गई हैं और आये दिन होती ही रहती हैं ।

अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन तथा जेरियाट्रिक्स सोसायटी के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० एडवर्ड का निष्कर्ष है, कि आचार-व्यवहार में सामान्य सतर्कता बरतने से ही मनुष्य सौ वर्ष तक सहजता से जी सकता है । अल्पायु में निधन का कारण ७ त्रृटियाँ हैं- (१)आहार में लापरवाही (२) अस्त-व्यस्त दिनचर्या (३) बहुत अधिक या बहुत कम परिश्रम (४) कामवासना की अति (५) नशेबाजी (६) अनावश्यक मानसिक तनाव (७) स्वच्छता के नियमों का पालन न करना । इनसे बचे रहने पर स्वस्थ शतवर्षीय जीवन सहज सम्भव है ।

रूस के शरीर शास्त्रविद् मेचनिकोव एवं ए० बीगोपीलेत्स की खोजों के अनुसार मानव शरीर की सहज संरचना ही ऐसी है कि १२५-१५० वर्षों तक सरलता से जिया जा सकता है। रूस के १६२ वर्षीय वृद्ध युवा शेराली और उनकी ९४ वर्षीया पत्नी अपने आदि-व्याधि रहित दीर्घायुष्य का रहस्य मात्र निश्चिन्त मनः स्थित व सरल दिनचर्या बताते हैं ।

इसी दृष्टि से अमेरिका में एक छोटी बालिका का पालन-पोषण वैज्ञानिक ढंग से किया जा रहा है, जिससे पता लगाया जा सके कि क्या अमरत्व या दीर्घ जीवन को प्राप्त किया प्राप्त किया जाना सम्भव है या नहीं । बुरे बुचार एवं असंयम ही बीमारियों के प्रधान कारण हैं । इनसे मुक्त रहने पर रोग मुक्ति सहज सम्भव है । इसी आधार पर उस लड़की का पालन-पोषण किया जा रहा है । उसे अच्छी जलवायु वाले लाज नामक टापू में एक भव्य भवन में रखा जा रहा है । वहाँ जीवन से सम्बन्धित सारी सुविधाएँ उपलब्ध कराई गई हैं । इस प्रयोग में 'रायल फ्रेटरनिटी ऑफ मास्टर मेटाफिजिशियन्स' ले रहे हैं। उस लड़की की शारीरिक, मानसिक स्थितियों एवं व्यवस्था की देख-रेख के लिए एक हजार विशेषज्ञों का दल नियुक्त किया गया है ।

दीर्घ जीवन के दो प्रमुख आधार हैं- श्वाँस धीरे-धीरे लेना और शीत वातावरण में रहना । इसीलिए योगी लोग प्राणायाम क्रिया करते और हिमालय की कन्दराओं में रहते हैं । शीत ऋतु में रीछ, सर्प, कछुए, मेंढ़क आदि अपने आपको इसलिए सिकोड़कर बैठ जाते हैं कि ताप की तीव्रता के कारण शक्ति का जो क्षरण हुआ है, वह बचाया जा सके ।

रेफ्रिजरेटरों में रखकर फलों को अधिक दिनों तक ताजे रखा जाता है । बर्फ में दबी लाशें कई दिनों बाद निकालने पर भी ज्यों की त्यों निकलती हैं । इसी प्रकार दूरवर्ती ग्रहों पर मनुष्यों को कृत्रिम शीत वातावरण में रखकर ही भेजा जा सकेगा । वहाँ पहुँचने पर पृथ्वी के नियन्त्रण कक्ष से ही धीरे-धीरे गरम वातावरण देकर मनुष्य को सक्रिय कर लिया जावेगा। क्योंकि उन ग्रहों पर पहुँचने के लिए हजार वर्ष तक लग सकते हैं । मनुष्य को फ्रिजक्रर देने पर उसकी शक्ति का क्षरण बन्द हो जावेगा । गरम होने पर वे पुनः उसी शक्ति एवं आयु के साथ जीवित हो जावेंगे ।

औसत आयु में वृद्धि होने का कारण संक्रामक रोगों पर अधिकार पाना भी है । हैजा, प्लेग, इन्फ्ल्यूऐन्जा, मलेरिया आदि के टीके लगाकर पूर्व में ही हजारों लोगों को इन बीमारियों से बचा लिया जाता है । लोगों का रहन-सहन ऊँचा उठाने

हेतु भी रूस में अधिक प्रयत्न हुए हैं । लाखों नये घर बनाकर लोगों को सुविधाजनक एवं स्वास्थ्यप्रद परिस्थितियों में रखा गया है ।

रूस में १०० वर्ष पूर्व मनुष्यों की मृत्यु प्रायः ४०-५० वर्ष की उम्र में हो जाती थी, किन्तु अब मृत्यु ७०-८० वर्ष की उम्र में होती है । वहाँ ६० से ७० वर्ष तक व्यक्ति को अधिक क्रियाशील माना जाता है । अध्यात्मवादी भी जानते हैं कि चेतना का एक अंश भी शेष हो, तो नवजीवन का संचार सम्भव है । मूर्च्छा जितनी गहरी हो उपचार भी उतना ही प्रखर आवश्यक है । मन पर पड़ने वाले आघात मस्तिष्क और हृदय की जागृति पर प्रहार करते हैं और व्यक्ति में स्फूर्तिहीनता, नैराश्य आदि की भावना बढ़ती है । गलत जीवन यापन से भी अन्तःज्योति मन्द पड़ती है । जीवन का सही दृष्टिकोण अपनाकर प्रबल पुरुषार्थ करने पर शरीर, मन, मस्तिष्क की शक्तियाँ क्रमशः विकसित होती जाती हैं । जिनकी ये शक्तियाँ शिथिल हैं, वे शारीरिक दृष्टि से जीवित रहते हुए भी गहरी मूर्छा में पड़े हुए हैं और मुर्दों जैसे ही हैं । आत्मबोध, आत्मचिंतन तथा प्रखर प्रोत्साहन से यह मूर्च्छा हट सकती है और तेजस्विता बढ़ सकती है । मन्द चेतना क्रमशः समग्र जागरूकता के रूप में विकसित हो सकती है ।

भार-भूत जीवन जीने वाले साँस चलते रहने पर भी मृतक ही कहे जायेंगे । इसके विपरीत जो शरीर से मर गये पर अपना यश शरीर धरती पर छोड़ गये हैं, उन्हें सदा अमर रहने वाले देवताओं की श्रेणी में ही गिना जा सकता है । वैज्ञानिक मृत्यु की परिभाषा अब शारीरिक अवयवों के निष्क्रिय हो जाने पर घोषित करते हैं । वस्तुतः शरीर नहीं मन ही प्रधान है । मन को जीवन्त रखकर हमारी प्रस्तुत आयुष्य भी बड़ी सुखद बन सकती है । उतने भर में ही हम असाधारण लाभ ले सकते हैं, किन्तु यदि थका हारा, टूटा, निराश, नीरस रहते हुए दिन गुजारे जायँ, लक्ष्यविहीन गतिविधियाँ अपनाये रहकर नर-पशुओं जैसा समय गुजारा जाय तो समझना चाहिए कि जीवित समझे जाते रहने पर भी मृतकों की श्रेणी में रहकर किसी प्रकार जिन्दगी की लाश ढोते रहा गया है ।

मृतक कौन ? जीवित कौन ? किस स्तर तक मूर्छित हुए व्यक्ति के पुनर्जीवन की आशा की जा सकती है? यह प्रश्न शरीर विज्ञानियों के सामने एक गुत्थी के रूप में प्रस्तुत है । पर अध्यात्म विज्ञान का दृष्टिकोण बिल्कुल साफ है । जो स्वयं जीवन प्राप्त करने के लिए आतुर है और जिसने प्राणप्रद प्रेरणाओं के साथ सम्पर्क बना लिया, उसे मंदता की मूर्छना से उवरने का अवसर निश्चित रूप से मिलेगा । वह अर्द्ध मृतक की स्थिति त्यागकर, अवश्य ही पूर्ण जीवितों की पंक्ति में खड़ा होगा ।

जीवन का अर्थ है चेतना

जीवित कौन है और मृत कौन ? इसके अलग-अलग दृष्टिकोण से अलग-अलग उत्तर दिये जाते रहे हैं । परन्तु सबका सारांश यही है कि जिसमें चेतना और क्रियाशीलता है, वही जीवित है ।

गीता में अर्जुन से श्रीकृष्ण ने कहा कि **''सम्भावितस्य चाऽकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते''** अर्थात् सम्भ्रान्त व्यक्ति के लिये अपकीर्ति मृत्यु से भी बढ़कर है ।

अन्यत्र श्री वेदव्यास ने लिखा है- **''ये पराधीन जन्मानस्ते चेज्जीवन्ति के मृताः''** अर्थात् जो पराधीन है; वे यदि जीवित हैं, तो फिर मृत कौन हैं ? यानी पराधीन होना ही मृत्यु है।

एक अन्य संस्कृत-कवि ने लिखा है- कि जो अपना और अपने परिवार का भली-भाँति भरण-पोषण नहीं कर पाता, ज्ञानार्जन में जिसकी रुचि नहीं है, श्रेष्ठ विचार जिसे व्यर्थ लगते हैं, जिसकी कीर्ति का प्रसार नहीं हुआ है और दूसरों के लिये जिसने कभी कुछ उत्सर्ग नहीं किया, वह स्वकेन्द्रित जड़ लाश की तरह है ।

सामान्य-रीति से भी, जब कोई आन्दोलन या संस्था प्राणवान और गतिशील लोगों से रहित हो जाती है, तो लोग कहते हैं- 'अमुक आन्दोलन मर गया' । यद्यपि तब भी उसके हजारों-लाखों सदस्य होते हैं । जब कोई व्यक्ति उत्साहहीन, शिथिल रहा आता है तो कहा जाता है- ''क्या मुर्दा हो गये हो ?'' किसी अति दुर्बल या अप्रभावी व्यक्ति को देखकर कहते हैं- ''अब इसमें जान नहीं है ।'' किसी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध व्यक्ति का सौन्दर्य जब धूमिल पड़ जाता है, तो भी कहते हैं- ''अब तो जान रही नहीं इसमें ।'' किसी मूर्ति, चित्र या साहित्यिक-कृति में यदि रस-संचार करने की सामर्थ्य न हो तो उसे निष्प्राण कहा जाता है ।

आत्मिक-दृष्टि से, जिसमें आन्तरिक- जागरूकता और गतिशीलता नहीं है, उसे मृत कहा जाता है । शारीरिक दृष्टि से भी जिसमें चेतना नहीं है, उसे ही मृत कहा जाता है ।

जब तक चेतना विद्यमान है, जीवन की सम्भावना विद्यमान है । उस स्थिति में भले ही कुछ समय के लिये व्यक्ति निष्क्रिय, निढाल हो गया हो, उसे मृत नहीं कहा जाता । चेतना का अभाव ही मृत्यु कहलाता है ।

श्वसन-क्रिया और हृदय-गति का अवरोध, नाड़ी की गति रुकना, रक्त-संचार समाप्त दिखना, में सब जीवाणुओं के आन्तरिक-क्षण के लक्षण हैं । मृत्यु की सम्भावना के द्योतक हैं । किन्तु तो भी ऊर्ध्वगामी बन सकने की सम्भावनाएँ उस स्थिति में भी बनी रहती हैं।

इसीलिये अब शरीर शास्त्री किसी व्यक्ति की "सेण्ट्रल नर्वस-सिस्टम" से संचालित समस्त जीवन-क्रियाएँ बन्द होने पर भी उसे तब तक मृत नहीं मानते, जब तक मस्तिष्क में चेतना की विद्युत-तरंगें ही नहीं समाप्त हो जातीं । ऐसे अनेक प्रमाण भी अब तक सामने आ चुके हैं कि "सेरिब्रल डेथ" यानी शारीरिक गतिविधियों को समाप्ति के बाद भी, व्यक्ति पुनः जीवित हो उठे, क्योंकि उनके मस्तिष्क में चेतन-विद्युत अवशिष्ट थी।

सन् १९३६ का १५ नवम्बर पुलिस, न्यूयार्क के सेंट विन्सेण्ट चिकित्सालय में हैरिस दायले नामक व्यक्ति को पोस्टमार्टम के लिये ले गयी क्योंकि उसकी मृत्यु का कारण अज्ञात था ।

डाक्टर ग्लैडिस पोस्टमार्टम कक्ष में पहुँचे । वहाँ नर्सों व सहायकों ने सारी तैयारी कर रखी थी । ग्लैडिस ने पोस्टमार्टम शुरू किया । पहला चीरा लगते ही हैरिस हड़बड़ाकर उठ बैठा और डाक्टर की गर्दन धर दबोची । चपरासी और अन्य उस प्रत्यक्ष भूत को देखते ही सर पर पैर रखकर भागे। डाक्टर की घिग्घी बँध गई । उसकी जीभ तालू से चिपक गई । हृदय का धड़कना बन्द हो गया और आँखें भाव-शून्य हो गईं । वह भय की अधिकता से मर गया था । हैरिस पोस्टमार्टम-कक्ष के बाहर आया । बाद में उसके चीरे के घाव की मरहम पट्टी की गई और एक सप्ताह में वह शहर में पूर्ववत् जीवन बिताने लगा ।

ऐसी ही एक घटना एडिनबरा में घटी । वहाँ एक महिला कर्मचारियों के सामूहिक-आवास में रहती थी, जोर्जियाना । वह बीमार पड़ी । फिर मर गई । लोग दफनाने की तैयारी करने लगे । पर वहाँ की संरक्षिका श्रीमती रेमण्ड एक जागरूक और नई-नई जानकारियों से सम्पन्न महिला थी । उन्होंने "क्लीनिकल डेथ" और "सेल्यूलर डेथ" का अन्तर पढ़ रखा था । वे बोली- "लाश अभी यहीं रहेगी । जब तक सड़ नहीं जाती ।"

जोर्जियाना का शरीर दस दिन तक यों ही पड़ा रहा। इसके बाद उसमें हलचल हुई । वह उठ बैठी । उसकी मालिश वगैरह की गई । भोजन दिया गया । वह सामान्य जीवन जीने लगी ।

भारत में भी गोवा में एक पादरी मृत्यु के बाद इसी प्रकार जी उठा । उसे दफनाने की तैयारी पूरी हो गई थी । उसका प्रिय भजन गाया जा रहा था । तभी उस मृतक के भी होंठ हिलने लगे । भक्तों ने इसे ईश्वरीय कृपा से मिला नव-जीवन समझा और चमत्कृत हो उठे ।

ये तो हुए वे सौभाग्यशाली मुर्दे, जो जिन्दा-भूत बनने का सुअवसर पा सके । पर सभी को यह स्वर्णिम सुयोग नहीं मिलता और तब उन्हें कब्र या ताबूत में ही तड़प-तड़पकर मर जाना पड़ता है ।

२० अप्रैल, १८९६ के दिन कलकत्ता में अँग्रेज डाक्टर अर्नेस्ट के घर में एक प्रीतिभोज का आयोजन किया गया। एक युवक-अफसर फ्रैङ्क लेजली भी उसमें सम्मिलित हुआ। सहसा अपनी कुर्सी पर भोजन करते-करते ही उसकी गर्दन एक ओर झुक गई, उसने दम तोड़ दिया था । उसे कब्रिस्तान में दफना दिया गया । परन्तु उसके सम्बन्धियों का आग्रह था कि उसे ऊटकमण्ड में उस गिरजाघर के अहाते में दफनाया जाय, जहाँ फैङ्क के माँ-बाप की कब्र है । लिखा-पढ़ी में समय लग गया । अन्ततः अनुमति मिल गई ।

ठीक १ माह बाद, २० मई १८९६ के दिन उसका ताबूत खोदकर बाहर निकाला गया । शव वही है, इसकी पुष्टि करने के लिये ताबूत खोला गया तो लोग चौंक पड़े । था तो शव फ्रैङ्क का ही, पर उसे लिटाया गया था चित्त, वह लेटा था औंधा । कपड़े पहनाये गये थे नये । अब उसके कपड़ें कई स्थानों से फटे थे । हाथ छाती पर क्रॉस बनाकर रखे गये थे, पर एक हाथ की अँगुलियाँ चबाई हुई थीं, दूसरा हाथ यों ही टेड़ा पड़ा था ।

स्थिति स्पष्ट थी । ताबूत में बन्द वह युवक दफनाने के बाद जिन्दा हो गया था । वहाँ उसने जाने कब तक हाथ-पैर मारे होंगे । असह्य छटपटाहट और क्रोध से अपना ही हाथ चबा डाला । अन्ततः वहीं तड़पकर मर गया ।

यही स्थिति कुस्तुन्तुनिया की एक कब्र में गढ़े मुर्दे के साथ देखी गई । कब्र में दरारें पड़ गईं थी । आशंकित हो उसे खोदा गया । तब पता चला कि बेचारा मृतक जीवित हो उठा । उसने हाथ-पैर मारे, जिससे चोटें आ गईं । खून बहने लगा । कब्र तोड़ने की भी उसने पूरी कोशिश की । अन्ततः तड़पकर मर गया ।

एक अन्य व्यक्ति अपने वफादार कुत्ते के कारण जिन्दा दफनाये जाने से बच गया । बात मैक्सिको की है । सम्बन्धी तो व्यक्ति को मृत समझ दफनाने की तैयारी करने लगे, पर कुत्ता लाश को उठाने ही न देता था । इस पर कुत्ते को बाँध दिया गया । वह रस्सी तुड़ाने की जी-तोड़ कोशिश करता रहा। इधर लोग ताबूत लेकर चले, उधर कुत्ता रस्सी तोड़ने में सफल हो गया । क्रोध से वह स्वामी को यों ही ले जा रहे लोगों पर टूट पड़ा आकस्मिक आक्रमण से ताबूत लोगों के हाथ से गिर पड़ा और टूट गया । उसे पूरी तरह अलग किया गया, ताकि नये ताबूत में बन्द किया जा सके । तब तक मृतक जीवित हो चुका था और कुत्ता खुशी से उछल रहा था ।

इटली में मान्टुआ नगर के समीप मजोला ग्राम में भी ऐसी ही घटना घटी । लावरीनिया मेर्ली नामक एक गर्भवती महिला की मृत्यु-मृगी का विकट दौरा आने के कारण हो गई। लाश को ताबूत में बन्द कर दिया गया । उसके कुटुम्बियों के आने के इन्तजार में दो दिन लाश बिना दफनाये रखी रहने दी गई । जब वे आये और अन्तिम दर्शन के लिए ताबूत खोला तो देखा गया कि मृतक ने बाहर निकलने के लिए भारी प्रयत्न किया है, इसमें उसका शव क्षत-विक्षत हुआ है । इतना ही नहीं, उसने सात महीने के गर्भ को जन्म भी दिया है । जच्चा-बच्चा दोनों ही दम घुटने से मरे । हालांकि मृत्यु की घोषणा कुशल डाक्टर की परीक्षा के बाद की गई थी, तो भी इस घटना में मृत्यु के बाद फिर से जीवन लौट आने की बात सिद्ध हुई । यह घटना ३ जुलाई सन् १८९० की है ।

ऐसी ही एक घटना पादरी श्वार्त्स की है । भारत के एक देहाती मिशन में काम करते हुए उसकी मृत्यु हुई । कुटुम्बियों के इकट्ठे होने तक लाश को रखा रहने दिया गया और तीसरे दिन अन्त्येष्टि की व्यवस्था बनी । जब परिवार के लोग रस्म के अनुसार प्रार्थना के भजन गा रहे थे, तो देखा गया कि मृतक के भी होठ हिलने लगे और वह भी मन्द स्वर से उस भजन को गाने में साथ देने लगा । यह जीवन चिन्ह देर तक नहीं रहे उसकी फिर मृत्यु हो गई, पर इसमें सन्देह नहीं कि वह एक बार मृत्यु के मुख से फिर वापस लौट आया था ।

इन्हीं सब अनुभवों के आधार पर अब चिकित्सकों वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि जब तक मानव-मस्तिष्क में पूर्ण निस्तब्धता न आ जाये; उसे पूरी तरह मृत नहीं कहा जा सकता । भले ही उसके हृदय की धड़कन बन्द हो गई हो, किन्तु यदि मस्तिष्क से विद्युत तरंगें उठ रही हैं, तो मृत्यु नहीं मानी जा सकती ।

मूर्च्छा से मृत व्यक्तियों में जीवन की सम्भावना प्रायः बनी रहती है । चिकित्सक मृतकों का ई०ई०जी० (इलेक्ट्रो एन्सफालो ग्राम) लेते हैं, यानी मस्तिष्क की विद्युत-तरंगों का परीक्षण करते हैं । यदि ई० ई० जी० की रीडिंग फ्लैट यानी 'सीधी रेखा' में न आये तो इसका अर्थ है कि मस्तिष्क में विद्युत-तरंगें उठ रही हैं और वह व्यक्ति जीवित है । जब तक मस्तिष्क में विद्युत-तरेंगें विद्यमान हैं, शरीर में सड़न नहीं पैदा होती । भले ही साँस या हृदय की धड़कनें बन्द दिख रहीं है । कोशाओं को प्राणवायु न मिलने से उनमें मूर्च्छा तो आ जाती हैं, परन्तु सजीवता विद्यमान रहती है ।

इस प्रकार मृत्यु की परम्परागत मान्यताएँ अब रद्द हो चली हैं । जीवन का मूल सम्बन्ध नाड़ी, साँस, हृदय की गति से नहीं, मस्तिष्क में चेतना की उपस्थिति से है । मस्तिष्क ही मनुष्य के समस्त सम्वेदनों का भी केन्द्र है और हलचलों का भी । जब तक मस्तिष्क सक्रिय है, तब तक मनुष्य जीवित है ।

तो क्या मस्तिष्क ही जीवन का केन्द्र है ? उत्तर स्पष्ट है । मस्तिष्क नहीं, उसमें क्रियाशील चेतना ही जीवन का स्रोत है । मस्तिष्क तो मुर्दे में भी रहता है । पर चेतना के अक्षय स्रोत से जब उसका सम्बन्ध टूट जाता है, तब फिर जीवन की कोई भी सम्भावना नहीं बचती । जब तक उस चेतना-समुद्र से सम्बन्ध कायम है, तभी तक जीवन है ।

यह सम्बन्ध सिर्फ शरीर के तल पर नहीं, अन्तःकरण के तल पर भी जागृत रहे, जीवन का लक्ष्य सामने रहे और उसके अनुरूप गतिविधियाँ अपनायी जाती रहें, तभी सचमुच जीवित कहा जाना चाहिए । लक्ष्यविहीन, पापपूर्ण गतिविधियों में घिसट रही जिन्दगी तो लाश ढोने का ही पर्याय है ।

ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि सत्कर्मों के पुण्य फल से अवगत होते हुए भी अधिकांश व्यक्ति उनसे विरत क्यों होते हैं या क्यों टालते रहते हैं ? इसका एक ही उत्तर है कि मृत्यु को या तो भुला दिया गया है, अथवा भूलने की चेष्टा की जाती रहती है । रोज अनेकों व्यक्ति अपनी आँखों के सामने मरते रहें, चलते फिरते कितनों को ही अकस्मात् मृत्यु के मुख में गिरते देखा जाता रहे, फिर भी यह विचार अपने भीतर बना रहता है कि अपने साथ ऐसा कुछ नहीं होने वाला है । क्षण भर को दूसरा विचार लहर की भाँति उठता है और उस विचार को नष्ट करता हुआ चला जाता है ।

यदि इस तथ्य को स्मरण रखा जाय कि मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है, अगले ही क्षण आ सकती है तो उस स्थिति में सुर-दुर्लभ इस शरीर और उसके साथ मिली विभूतियों के सदुपयोग की प्रेरणा मन में उठती, उमंगती रह सकती हैं। यदि मृत्यु को स्मरण रखा जाता तो निश्चित ही यह प्रश्न भी मन में उठता रहता कि प्राप्त विभूतियों के साथ जो जिम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं, उन्हें पूरा करने के लिए कुछ किया जा रहा है या नहीं ।

मृत्यु एक ऐसा अनागत अतिथि है, जो किसी भी क्षण सामने आकर खड़ा हो सकता है और उस स्थिति में यह नग्न यथार्थता प्रस्तुत होती है कि पेट और प्रजनन के लिए अब तब जो कुछ किया जाता रहा उसकी कोई अर्थपूर्ण नहीं सिद्ध हुई । अस्तु अपनी दिनचर्या में उपासना की तरह एक ऐसा समय भी निश्चित रखना चाहिए, जिसमें मृत्यु का स्मरण किया जाय और इस बात का विश्लेषण किया जाय कि जो क्रम चल रहा है वह अर्थपूर्ण है, या निरुद्देश्य पेट प्रजनन के लिए ही चलाया जा रहा है ।

इस चिन्तन स्मरण के साथ ही वह दृष्टि भी विकसित होगी जिसके आधार पर प्रस्तुत जीवन का सदुपयोग हो सके। सृष्टि के अन्य जीवों की आँख से देखा जाय तो मनुष्य असीम सुविधा-साधनों से सम्पन्न अवतारी सत्ता ही है । उसी अंश अवतार जैसी सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन और दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन की भूमिका में मनुष्य को भी संलग्न रहना चाहिए पर यह इसलिए विस्मृत हो जाता है कि हम मृत्यु को भुला बैठते हैं और यह सोचते तक नहीं कि मरण निकट है । इसी कारण यह भी भुला दिया जाता है कि उपलब्ध अवसर को नष्ट किये बिना पूरी सजगता के साथ उस ईश्वरीय प्रयोजन की पूर्ति में लगना चाहिए, जिसके लिए कि यह जीवन मिला है ।

जिन्हें मरण के उपरान्त आने वाली समस्याओं का ज्ञान हैं, जो उन्हें सुलझाने में निरत हैं । उनके लिए मृत्यु का स्वरूप अगली कक्षा की तैयारी जैसी हैं विद्यार्थी अगली कक्षा में पहुँचने के लिए जिस प्रकार दिन रात श्रम करते हैं, व्यस्त रहते हैं उसी प्रकार उन व्यक्तियों को भी व्यस्त देखा जा सकता है जो मृत्यु को स्मरण रखे रहते हैं । भगवान् शंकर को इसी से मृत्युंजय, कहा जाता है कि वे मरघट में निवास करते हैं, श्मशान भस्म शरीर में लगाते हैं और गले में मुण्डमाला पहनते हैं । इन प्रतीकों का अर्थ मृत्यु की प्रतिमा को सामने रख कर चलने को प्रेरणा ही है । निश्चित ही वे व्यक्ति मृत्युत्यूंज, होते हैं जो मरण को सामने रखकर चलते हैं और अपना जीवन क्रम इस तरह का श्रेयष्कर बनाते हैं, जिससे अपने जीवन में भी शान्ति रहे और समाज तथा भावी पीढ़ी को भी प्रकाश मिले।

चेतना की अविच्छिन्नता एक सर्वस्वीकृत तथ्य

जीव की मरणोत्तर सत्ता का सिद्धान्त भारतीय दर्शन में तो प्रधानता प्राप्त है ही, अन्यान्य धर्म-दर्शन भी उस विषय में विरत नहीं है ।

वैदिक धर्म के पश्चात् पारसी धर्म का क्रम है । उसमें भी जीवात्मा की मरणोत्तर सत्ता एवं कर्मफल पर आस्थाव्यक्त की गयी हैं । पारसियों का मानना यह है कि कर्मानुसार स्वर्ग-नर्क तो प्राप्त होता है और यह द्वन्द चलता रहता है, किन्तु अन्ततः सत्शक्तियों के देवता 'अरमुज्द' की असत प्रवृत्तियों के प्रेरक 'अहर्मन' पर विजय होती है और व्यक्ति सत्ता परमात्म सत्ता का सामीप्य प्राप्त करने में समर्थ होती है ।

प्राचीनता की दृष्टि से पारसियों के बाद बौद्धों का क्रम है । वे भी प्रारम्भ से ही मरणोत्तर जीवन को पूर्णतः स्वीकार करते हैं । परवर्तीकाल में तो बौद्धों में अनेकानेक स्वर्गों-नरकों की मान्यता प्रतिष्ठित हो गयी ।

यहूदियों का विश्वास है कि जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् किसी दिन उठेगा और ईश्वर-कृपा से उसका उद्धार होगा । कयामत के दिन की कल्पना का मूल आधार यह यहूदी मान्यता ही है ।

ईसाइयों की आस्था है कि यीशु मसीह मरकर तीसरे दिन उठ बैठे । इसे 'रिसरेक्शन' कहते हैं । कर्म फल पर ईसाइयों की जो भी आस्था है । हाँ, साथ ही वे ये मानते हैं कि जो कोई प्रभु पुत्र यीशु पर आस्था रखता है, उसके पक्ष में यीशु अभिमत व्यक्त करेंगे, और वे लोग स्वर्ग के अधिकारी होंगे ।

वरभिगंम के विशप डा० अर्नेस्ट विलियम बर्नेस ने अपनी लुस्तक 'द वर्ड डिस्क्राइब्ड वाय सायन्स एण्ड इट्स स्प्रिचुअल इन्टरप्रिटेशन, (पृष्ठ ६३७) में लिखा है कि 'रसायन शास्त्र की आधुनिक शोधों से यह स्पष्ट हो गया है कि हमारे भौतिक शरीर के आधारभूत प्राकृतिक परमाणु मृत्यु के बाद छिन्न-भिन्न हो जाते हैं । अतः शरीरों के पुनः उठने का जो विवरण बाइबिल में है, उसका अभिप्राय मात्र जीव की मरणोत्तर सत्ता से है।

मुसलमानों में कयामत सम्बन्धी मान्यता का विवरण विस्तार के साथ प्रचलित है । जिसके अनुसार किसी एक विशेष तारीख को तमाम आत्माएँ उठेंगी, और ईश्वर उनका न्याय

करेगा। हजरत मुहम्मद को मानने वालों को हजरत जन्नत में प्रवेश करा देंगे ।

श्री एफ. वी. जीन्स ने अपनी पुस्तक "एन इन्ट्रोडक्शन टु द हिस्टरी आफ रिलीजन्स" में सभी धर्मों के विवरण देकर स्पष्ट किया है कि मरणोत्तर सत्ता पर सभी का विश्वास है।

दार्शनिक मार्टिन ने जीव की मरणोत्तर सत्ता के पक्ष में तीन प्रधान तर्क दिए हैं (१) बौद्धिक विकास का तर्क (२) चेतनात्मक विकास का तर्क (३) अभुक्त कर्मों का तर्क।

जन्म से ही लोगों में बुद्धि एवं आन्तरिक चेतना भिन्न-भिन्न स्तर पाये जाते हैं, कोई अद्‌भुत स्मरण शक्ति का धनी है तो कोई बिना पढ़े अनेक बातें जानता है, किसी में अन्तः प्रज्ञा अधिक विकसित है, तो किसी में कोई विशेष अतीन्द्रिय क्षमता है । इसी प्रकार कुछ लोग अपने कर्मों के उचित परिणाम इस जीवन कुछ लोग अपने कर्मों के उचित परिणाम इस जीवन में नहीं पाते देखे जाते । बुद्धि चेतना एवं कर्म फल की ये विषमताएँ मरणोत्तर जीवन की सम्भावना को पुष्ट करती हैं, यानी बुद्धि या चेतना का निरन्तर विकास होता रहता है और अभुक्त कर्मफल अगले जीवन में भोगना पड़ता है ।

'द वेल्यू एण्ड डेस्टिनी' ग्रन्थ के लेखक बी. बोसान्के ने लिखा है आगामी जीवन एक तथ्य है, क्योंकि हमारा यह जीवन किसी अविच्छिन्न श्रृंखला की ही अभिव्यक्ति है । इसी प्रकार प्लूरलिज्म एण्ड थीइज्म ऑर द रील्म आफ आन्क्स' में लेखक जेन्स ने भी यही लिखा है कि "विश्व में जीवन की व्यवस्था एवं प्राकृतिक नियमों को देखते हुए मृत्यु, व्यक्ति एवं जाति की उन्नति के अगले सोपान की ओर बढ़ने का साधन सिद्ध होती है ।"

मनुष्यों के बीच जन्मना विद्यमान विषमता के पीछे वंशानुगत कारणों (इनहेरिटिस) के साथ ही 'एक्शन्स आफ प्रीवियस लाइफ' पूर्व जन्म के कर्मों की बात अब पाश्चात्य जगत में भी माने जाने लगी है ।

पुनर्जन्म के अनेक तथ्यों की परामनोवैज्ञानिकों ने खोज की है और उनका संकलन किया है । इससे भी मरणोत्तर जीवन की सत्यता प्रकट होती हैं । अब तक उपलब्ध साक्षियाँ इतनी अधिक एवं इतनी प्रामाणिक हैं कि उन्हें अविश्वस्त ठहरा पाना असम्भव है ।

आत्मा की मरणधर्मिता प्रेरणा से भी सिद्ध नहीं होती। क्योंकि मृत्यु यदि आत्मा का स्वभाव होती तो वह उसे इसी भाँति प्रिय लगती, जिस प्रकार खटमलों को खून, मच्छरों को मलिन स्थल, मछलियों को पानी और पक्षियों को नभ प्रिय है। किन्तु कोई भी आत्मा मृत्यु को पसन्द नहीं करती ।

मरण भय स्वयं में जन्मान्तर या पूर्वजन्म का प्रमाण है। क्योंकि चित्त में स्मृति मात्र उसी विषय की रहती है, जिसका पूर्वानुभव हो । तभी वह अनुभूति चित्त में अधिष्ठित रहती है और उसका पुनःबोध ही स्मृति कहलाता है । कोई भी व्यक्ति इस जन्म में प्रत्यक्षतः मरण को नहीं भोगता, अतः उसमें मरणभय की स्मृति कहाँ से आई ? अतः वह पूर्व जन्म की ही स्मृति प्रतीत होती है । स्वयं की विद्यमान सत्ता के प्रति जो अभिनिवेश होता है, वह पूर्व जन्म की ही अनुभूति का परिणाम है ।

कुछ लोग मरण स्मृति को स्वाभाविक कहते हैं, किन्तु कोई भी स्मृति स्वतः नहीं उत्पन्न होती, वह निमित्त से ही पैदा होती है । पूर्व अनुभव ही वह निमित्त है ।

यदि यह कहा जाय कि दूसरों को मरते देखकर स्वयं का मरण भय संस्कारारूढ़ होता है, तो देखा यह जाता है कि व्यक्ति जिस समय सामान्य मनःस्थिति में नहीं रहता तथा उसे चेतन मस्तिष्क द्वारा गृहीत अन्य विषय, जिस मनःस्थिति में नहीं याद रहते, उस समय भी उसमें प्रगाढ़ मरण भय होता है । अतः यह गहराई में अंकित अनुभूति है । बिना प्रत्यक्ष भोग के इतनी गहरी अनुभूति सम्भव नहीं ।

मरण भय को अशिक्षित क्रिया क्षमता (अनटाट एविलिटी) या सहज वृत्ति (इन्स्टिन्क्ट) भी कहा जाता है । किन्तु 'इन्स्टिन्क्ट' क्यों होती हैं ? इसके दो ही उत्तर हैं- (१) वह ईश्वर कृत है- (२) वह अज्ञेय है । 'इन्स्टिन्क्ट को ईश्वरकृत कहना गोलमटोल उत्तर है । क्योंकि ईश्वर प्रत्यक्षतः कर्त्ता नहीं है और जिस अभिप्राय से उसे कर्त्ता कहा जाता है, उस दृष्टि से तो सब कुछ का कर्त्ता वही है । मात्र 'इन्स्टिन्कट' का कर्त्तव्य उस पर क्यों थोपा जाय ?

'इन्स्टिन्क्ट' को अज्ञेय कहना अपनी सीमा की स्वीकृति की दृष्टि से तो ठीक है । किन्तु ऐसे में उसके पूर्व अनुभूत स्मृति न होने के बात का खण्डन कैसे सम्भव है ?

तात्पर्य यह है कि मृत्यु को जीवन का अन्त मानना एक दुराग्रह भर ही हों सकता है । जीवन अनन्त है । भविष्य सुविस्तृत है और पुनर्जन्म वास्तविकता है । अतः क्रमिक गति से धैर्यपूर्वक आत्मोत्कर्ष की ओर अग्रसर रहना ही हमारा कर्त्तव्य है । शरीर की मृत्यु तो निश्चित है, किन्तु मानवीय चेतना अविनाशी है और उसकी प्रगति-धारा अविच्छिन्न है । स्थूल जगत में अदर्शन ही मृत्यु है । सूक्ष्म जगत में सभी जीवित हैं । मरणोत्तर जीवन की सत्यता को हम समझें तथा उससे प्रेरणा प्राप्त कर योजनाबद्ध, प्रगतिशील जीवन क्रम निर्धारित कर उस पर प्रसन्नतापूर्वक चलते रहें, इसी में बुद्धिमत्ता है ।

प्राण-चेतना की झलक-झाँकी मृत शरीरों में

आमतौर से शरीर मृत्यु के उपरान्त तेजी से सड़ने लगता है और स्वयमेव बिखर जाने के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं । भीतर से कृमि कीटक उत्पन्न होते हैं और वे उसे खा-पीकर समाप्त कर देते हैं । यह कार्य और भी जल्दी हो इसके लिए प्रकृति ने कुछ ऐसे प्राणी उत्पन्न किये हैं, जो मृत शरीरों की तलाश करते रहते हैं और जहाँ कहीं वे मिलते हैं रुचिपूर्वक उन्हें समाप्त कर देने के कार्य में जुट जाते हैं । पक्षियों में गिद्ध और चील इसी वर्ग के हैं । सियार और कुत्तों को भी किसी मृतक पशु की काया का अस्तित्व समाप्त करने को जल्दी पड़ती है और वे गन्ध पाते ही दौड़कर वहाँ जा पहुँचते हैं । कुटुम्बी लोग अपने ढंग से इस कार्य को पूरा करते हैं प्रचलनों के अनुसार उन्हें जलाया, गाढ़ा या बहाया जाता है।

यह प्रकृति व्यवस्था की बात हुई । मृत शरीर को सुरक्षित रखने का प्रयास मनुष्य भी करता रहा है । मिस्र के पिरामिडों में मसाले से लपटे हुए ऐसे शरीर पाये गये हैं, जो हजारों वर्ष बीत जाने पर भी पूरी तरह नष्ट नहीं हुए और पहचाने जाने योग्य स्थिति में बने रहे । इस सन्दर्भ में रूसी वैज्ञानिकों का वह प्रयास भी अनुपम है, जिस के अनुसार लैनिन के शरीर को उसी रूप में सुरक्षित रखने का प्रयत्न हुआ है । इस मृत काया को देखने के लिए अभी भी सुदूर देशों के लोग पहुँचते हैं और इस मानवी कौशल पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं ।

प्रकृतिगत और मनुष्यकृत उपरोक्त उपाय उपचारों के अतिरिक्त इस सन्दर्भ में कभी-कभी प्रकट करते हुए देखा गया है । ऐसी घटनाएँ सामने आती रही हैं, जिनमें लम्बे समय तक मृत शरीरों का अस्तित्व इस रूप में बना रहा, जिससे उनमें किसी ऐसी प्राण चेतना की सम्भावना पाई गई, जिसने उन्हें सड़ने नहीं दिया । सामान्य कब्र में दबे रहने पर भी जब उन शरीरों का पुनर्निरीक्षण किया गया तो पता चला कि वे इस तरह नष्ट नहीं हुए जैसे कि सामान्य तथा मृत शरीर सड़-गल कर नष्ट हो जाते हैं । यों उनमें प्रत्यक्ष जीवन नहीं पाया गया। फिर भी आरोगी विशेषता का कोई अंश अवश्य बना रहा जिसने वैसी स्थिति उत्पन्न नहीं होने दी जैसी कि सभी मृत शरीरों की होती हैं । ऐसी घटनाओं में सन्त स्तर के शरीरों की ही प्रमुखता रही है । इनमें गोआ के सन्त फ्राँसिस का उदाहरण प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है जहाँ लाखों क्रिश्चियन नर-नारी उनके दर्शन करने पहुँचते हैं । एक निश्चित दिन ही दर्शन हेतु सबके लिए चर्च खोला जाता है ।

अनाया, लेबनान के सेंट मेरोन मठ के मठाधीश चार्बेल मेकोफ की १८९८ ई० में मृत्यु हो गई । मठ के नियमानुसार अन्य मठाधीश की तरह उन्हें भी एक कब्र में दफना दिया गया । उनकी कब्र के चारों तरफ एक विशेष प्रकार का दुर्गन्धमय वातावरण कई सप्ताह तक बना रहा । एक दिन तीव्र मूसलाधार वर्षा के कारण चार्बेल का शव उफनता हुआ कब्र से बाहर आगया । शरीर पर सड़ने गलने के नामोनिशान तक नहीं पाये गये । शव को धोकर साफ किया गया और लकड़ी के एक ताबूत में बन्द करके मठ से प्रार्थनालय में सुरक्षित रख दिया गया । कुछ दिनों बाद उस शरीर से एक विलक्षण तैलीय तरल पदार्थ बाहर निकलने लगा और इससे रक्त और मीठे की सम्मिश्रित सुगन्ध निकलकर वातावरण में चारों ओर फैलने लगी । इस तरल पदार्थ से शरीर पर ढँके कपड़े भीग जाते थे, जिससे एक सप्ताह में उन्हें दो बार बदलकर पहनाया जाने लगा ।

सन् १९२७ में चार्वेल की मृत्यु के २९ वर्ष बाद उनके शरीर का चिकित्सकों द्वारा निरीक्षण किया गया और उसे निर्दोष पाया । चिकित्सकों की रिपोर्ट और उपस्थित जन-समुदाय के साक्षात्कार को लिपिबद्ध करके जिन्क के एक ट्यूब में बन्द करके ताबूत को सामने वाली दीवाल में रखकर ईंटों से चिनाई करा दी गयी ।

सन् १९५० में रक्षकों ने सूचित किया कि ताबूत के सामने मठ की दीवाल से एक विचित्र सा तरल द्रव बाहर निकल रहा है । कब्र को तोड़कर ताबूत को बाहर निकाला गया और पादरी तथा चिकित्सा अधिकारियों के सामने शरीर का निरीक्षण परीक्षण किया गया । चार्बेल के शरीर को देखने पर लगता था जैसे चार्बेल गहन निद्रा में सो रहे हों । शरीर पर ढके कपड़े फट गये थे और विशेष प्रकार के एक तैलीय द्रव में भीगे हुए थे । ताबूत में तीन इन्च मोटी तैलिय परत जम गई थी । जिसे निकालकर ताबूत की सफाई की गई । ताबूत के पास दफन की गई जिंक की ट्यूब को खोला गया, जिसमें वर्णित पूर्व घटना की तुलना वर्तमान घटना से की गई तो दोनों में समानता ही मिली । चार्बेल के शव को फिर से ताबूत में बन्द करके पुनः वहीं दफना दिया गया ।

ईसाई महिला मारिया अंत्रा का शरीर उसकी मृत्यु के १०७ वर्ष बाद सन् १७३१ में एक खुदाई में प्राप्त हुआ । मूर्धन्य चिकित्सकों और सर्जनों की ग्यारह सदस्यीय टीम ने मारिया के मृतक शरीर का परीक्षण किया । शरीर पर कहीं सड़ने गलने के नामोनिशान तक नहीं थे । सम्पूर्ण शरीर कोमल, सुरम्य, ओज से परिपूर्ण एवं एक विशेष प्रकार की खुशबू से

सुवासित था । शरीर के वाह्य अंगों एवं अंतरंगों में एक प्रकार की चिकनाई लगी हुई थी ।

अनुसंधान की कड़ी में कुछ नया पाने के लालच में चिकित्सकों ने शरीर का शवोच्छेदन किया । कोई नई कड़ी तो उनके हाथ नहीं लगी, परन्तु विशेष प्रकार की खुशबू से उनके हाथ कई दिनों तक सुगन्धित बने रहे । सुगन्ध के गायब हो जाने के भय से डाक्टरों ने कई दिनों तक अपने हाथ तक नहीं धोये ।

पोलैण्ड के जेसुइट सन्त एण्ड्यु बोबोला रूस में रूढ़िवादियों के मध्य अपने मिशन का प्रचार-प्रसार बड़ी सफलतापूर्वक कर रहे थे । अपने, इस कार्य के लिए वे प्रतिष्ठित हो चुके थे । सर्वत्र उनके कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की जा रही थी। सन् १६५७ में ६७ वर्ष की अवस्था में छापामार कोसैक्स ने सन्त की नृशंसतापूर्वक हत्या कर दी और क्षतिविक्षत शरीर को पिंरुक के जेसूइट चर्च के पास गोबर के ढेर में दफना दिया।

हत्या के ४४ वर्ष बाद जेसूइट कालेज के प्राचार्य को स्वप्न में एक आदेश मिला जिसके अनुसार फादर बोबोला का शरीर गोबर के ढेर से खोदकर निकाला गया । सन्त का शरीर बेदाग बिना सड़े हुए ताजा, मुलायम लोचयुक्त उसी हालत में मिला, जिस स्थिति में उनके शरीर को दफनाया गया था। देखने पर जीवितों जैसा प्रतीत हो रहा था ।

मृत्यु के ७३ वर्ष बाद ६ पादरियों और ५ मेडिकल विशेषज्ञों के एक दल ने फादर बोवोला के शरीर का निरीक्षण किया और इस प्रकार के शरीर के सुरक्षित रहने को अप्राकृतिक परीक्षण की संज्ञा दी । इस तथ्य की पुष्टि के लिए बहुत से व्यक्तियों ने उस स्थान का सूक्ष्म निरीक्षण किया और पाया कि अन्य किसी व्यक्ति या जीवधारी का शरीर गोबर के इस ढेर में सुरक्षित नहीं रह सकता था । यह विलक्षणता मात्र उस शरीर के ही कारण थी, यह निष्कर्ष निकाला गया ।

पैडुआ के सन्त एन्थनी (११९५-१२३१) १२वीं सदी में फ्रांस के गणमान्य ब्रह्मविज्ञानी एवं धर्मोपदेशक माने जाते थे। वे न केवल अपनी पवित्रता वरन् अपनी वाक्पटुता और विद्वता के लिए भी विख्यात थे । मृत्यु के एक वर्ष बाद सन् १२३२ में इन्हें सन्त की पदवी प्रदान की गयी। मृत्यु के ४०० वर्ष बाद कब्र से उनकी ताबूत खोदकर बाहर निकाली गई और उसे खोलकर अवलोकन करने पर भूरे रंग की धूल में सन्त एन्थनी के शरीर के अवशेष यथावत् पाये गये । उसी धूल में एक किनारे सन्त की कोमल, गुलाबी, ताजी जीवित जिह्वा भी मिली, जिसे देखकर लोग अचम्भित रह गये ।

चेतना जगत की सुलझती गुत्थियाँ

मरणोत्तर स्थिति के सम्बन्ध में अनुसंधानकर्त्ताओं का कथन है कि जीव चेतना जिस प्रकार जीवित स्थिति में अपने अनेकानेक आवश्यकताओं की तथा समस्याओं की पूर्ति करती रहती है । उसी प्रकार वह स्वसंचालित पद्धति से मरणोत्तर स्थिति में भी स्थिति के अनुरूप तालमेल बिठा लेती है ।

ग्रहण विसर्जन के उपक्रम आये दिन चलते रहते हैं । उनमें से कोई भी कष्टकारक नहीं होता है । अन्न, जल और श्वास को ग्रहण करने का क्रम निरन्तर चलता रहता है । इसी प्रकार मल विसर्जन का कार्य अनेक छिद्रों द्वारा स्वतः सम्पन्न होता रहता है । करवट लेने और कपड़ा बदलने में कोई कष्ट नहीं होता । एक घर से दूसरे घर में प्रवेश करने, एक सड़क छोड़कर दूसरी पर चलने में जब कोई कष्ट नहीं होता और सामान्य अभ्यास ही उन कार्यों को निपटा लेता है तो फिर शरीर त्याग के समय कष्ट होने की बात समझ में नहीं आती।

जरा-जीर्ण होने पर अंगों की गतिशीलता में व्यवधान आने पर होने वाला कष्ट अलग बात है । चोट लगने या बीमार पड़ने की व्यथा का अपना ढंग और स्वरूप है या उसे मरण के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए । मरण से पूर्व रुग्णता एवं जीर्णताजन्य कष्ट होते हैं उन्हें जीवन में आते रहने वाले उतार-चढ़ावों में ही सम्मिलित रखना चाहिए । मरणकाल की स्थिति और रुग्णता की व्यथा को एक-दूसरे से सर्वथा पृथक् समझना ही उचित है ।

मरण के समय मस्तिष्क समेत सभी अवयव काम बन्द कर देते हैं । ऐसी दशा में कष्ट की अनुभूति की भी कोई तुक नहीं । यह कार्य उसी प्रकार का है, जैसा कि ईंधन के अभाव में आग का बुझ जाना । ऐसी दशा में मरण काल का कष्ट पीड़ा परक नहीं हो सकता है । मोह के कारण विछोह से तिलमिलाहट होना तो बात दूसरी है ।

मरने के बाद स्वभावतः दूसरे स्तर का जीवनयापन करने की व्यवस्था होनी चाहिए । प्रकृति ने हर जीवधारी के शरीर, मन और साधनों का ऐसा सन्तुलन बिठाया है, कि वह उस परिधि में रहकर बिना खिन्नता अनुभव किये अपनी जीवनचर्या चलाता रहा । यदि ऐसा न होता तो एक भी प्राणी न स्वयं चैन से रहता न दूसरों को रहने देता । देखा जाता है कि सभी जीवधारी अपनी-अपनी परिस्थितियों में सुखपूर्वक निर्वाह करते हैं । शरीर छोड़ने के लिए सहमत नहीं होते । वरन्

ऐसा कुछ सामने होने पर उससे बचने का प्रयास करते हैं, ताकि उपलब्ध सुख-सुविधा से विरत न होना पड़े । मरणोत्तर काल में भी चेतना के लिए नियति ने ऐसी ही व्यवस्था बना रखी होगी जिसमें वह जब तक उस स्थिति में रहे तब तक बिना किसी कठिनाई के समय गुजार सके ।

जन्म और मरण की मध्यवर्ती अवधि को चेतना विज्ञानी विश्राम की अवधि मानते हैं । बहिरंग मस्तिष्क को तो नींद लेकर थकान मिटाने का अवसर मिल जाता है, पर शरीर यात्रा के लिए मूलतः उत्तरदायी अचेतन मन को कभी भी चैन नहीं मिलता । निद्रा काल में भी अचेतन मन के क्रिया-कलाप जारी रहते हैं। स्वप्नलोक में वह विचरण करता रहता है और समूचे शरीर को, समस्त क्रिया-कलापों को अनवरत रूप से सम्भालता रहता है । रक्तसंचार, श्वास-प्रश्वास, निमेष, उन्मत्त आकुंचन-प्रकुंचन आदि में अचेतन मन में निद्रावस्था में भी उतना ही सक्रिय रहना पड़ता है जितना कि जागृत स्थिति में । ऐसी दशा में यही कहा जा सकता है कि चेतना को समुचित विश्राम का अवसर जीवनकाल में कभी मिलता ही नहीं । उसके लिए मरणोत्तर काल का अवसर ही एक मात्र सुयोग है । ऐसी दशा में जीवात्मा को इन दिनों इतनी सुविधा मिलनी चाहिए जिसमें वह बिना किसी विक्षेप से थकान मिटा सके और भविष्य के लिए नई स्फूर्ति अर्जित कर सके ।

इस सन्दर्भ में कई मनोविज्ञानियों डाक्टरों ने गहरी खोज की है । उनने मरणासन्न रोगियों की मनोदशा, शारीरिक, वार्त्ता तथा संकेतों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि उन पर क्या बीत रही है । वे परिवर्तन से कैसा अनुभव कर रहे हैं।

वर्जिनिया मेडीकल कालेज के प्रोफेसर डा० इयान स्टीवेन्सन का निष्कर्ष है कि मृत्यु अनचाही अतिथि है । तो भी वह डरावनी नहीं है । वह एक परिवर्तन भर है, जिन्हें प्रवास के आनन्द की स्मृति है, उन्हें यह भी जानना चाहिए कि मरणोत्तर जीवन में आत्म सत्ता बनी रहती है और वह विश्रान्ति के लिए नियति व्यवस्था के अनुरूप ऐसी परिस्थितयाँ मिलती हैं, जिसमें थकान उतर सके और भविष्य के लिए स्फूर्ति मिल सके ।

यह सामान्य स्थिति की बात हुई । पर असामान्य स्थिति में मरने वाले लोगों की मनःस्थिति जब विपन्न होती है तो उन्हें मरने के समय विछोह, पश्चाताप के अतिरिक्त अपनी विवशता पर भी खेद होता है और आँखों से आँसू बहाते हुए बिलखते हुए मरते हैं । ऐसे अनुभव उन पादरियों के मुँह से सुने गये हैं । जिनके पास मरणासन्न स्थिति में निर्धारित धर्म कृत्य कराने के लिए जाना पड़ता रहा है । उनमें से सन्तुलित मनःस्थिति वाले तो प्रसन्नचित्त रहे किन्तु विक्षुब्ध प्रकृति वालों को व्याधिजन्य कष्ट की अनुभूति न होते हुए भी मृत्यु के क्षणों घबराने और रुदन करते पाये गया ।

प्रेतों के सम्बन्ध में किये गये परा मनोविज्ञान अनुसंधानों से भी ऐसा ही पता चला है कि उद्दीप्त मनःस्थिति ही मरणोत्तर समय पर मनुष्य को आक्रोशग्रस्त रखती है । एक जैसा जीवन व्यतीत करते रहे लोगों के बीच भी प्रेत जीवन में पाई गई भारी भिन्नता का कारण यह समझा गया है कि किसी दण्ड पुरस्कार के अन्तर्गत नहीं वरन् उन्हें अपने ही स्वभाव संस्कार के आधार पर उन दिनों सुख-दुःख का अनुभव होता रहता है । अस्तु प्राणी की निजी मनःस्थिति को ही परलोक में उपलब्ध होने वाली भली-बुरी परिस्थितियों का निमित्त कारण माना जा सकता है । आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी इस तथ्य को अब स्वीकार ने लगे हैं, जबकि पौवील अध्यात्म दर्शन तो प्रारम्भ से ही इस मान्यता का पक्षधर रहा है ।

ऐसे प्रसंग भी देखने में आए हैं, जिनमें हजारों वर्ष पुरानी आत्माएँ अपनी सूक्ष्म देह द्वारा अशरीरी अस्तित्व बनाये रहती हैं शोधों के दौरान इनके दो ही कारण पाये गये हैं- किसी वस्तु विशेष से मृतात्मा की आसक्ति अथवा किसी अन्यायी के प्रति तीव्र प्रतिशोध की भावना । इन तथ्यों के प्रकाश में आने पर प्रेत विद्या में विश्वास रखने वाले उन लोगों को भी आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता है, जो प्रेत योनि को अल्पकालीन मानते हैं । उन्हें भी इस वर्ग के प्रेतों का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ रहा है तथा यह मानना पड़ रहा है कि आत्मा की शक्ति की कोई सीमा रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती। वह अपनी प्रचण्ड शक्ति का परिचय बिना शरीर धारण किये भी अनिश्चित काल तक देती रह सकती है ।

सन् १९३२ में लन्दन की यूनिवर्सल न्यूज एजेन्सी ने लार्ड वेस्टवुरी का समाचार एक विस्तृत टिप्पणी के साथ प्रकाशित कराया । इस टिप्पणी में लिखा गया था कि अब यह बात अक्षरशः सत्य सिद्ध हो चुकी है कि कोई फराओ, बादशाहों की कब्र खोदकर ममी के अंग अथवा उसकी अन्य कोई चीज निकालने की चेष्टा करेगा, उसकी भयावह दुर्गति होगी। उस क्षेत्र में बने हुए पिरामिडों में मिस्र के प्राचीन राजपुरुषों के मृत शरीर ऐसे मसालों से पोत कर रख गये हैं कि वे हजारों वर्षों तक सुरक्षित रह सकें । प्राचीन काल में इन पिरामिडों में सुरक्षित दफनाए गये राजाओं अथवा श्रीमन्त सरदारों के शव के साथ उनके उपयोग की प्रिय वस्तुएँ भी गाढ़ दी जाती थीं।

इन प्रिय वस्तुओं में न केवल बहुमूल्य वर्तन, वस्त्र, शस्त्र आदि चीजें होती थी वरन् स्त्रियों को भी शव के साथ जीवित ही गाढ़ दिया जाता था ।

लार्ड वेस्टबुरी ने पिरामिडों के इन कौतूहल पूर्ण कृत्यों पर अधिक प्रकाश डालने के उद्देश्य से मिस्र जाकर पिरामिडों की खुदाई करने का निश्चय किया । इस खुदाई का एक उद्देश्य ऐतिहासिक सामग्री और उस समय की सभ्यता संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करना भी था । लार्ड वेस्टबुरी के साथ उनके अन्य कई सहयोगी भी इस खोज यात्रा में शामिल हुए । टुर अंख अमेन' की एक कब्र खोदी गई तो उसमें से वांछित सामग्री बड़ी मात्रा में निकली । इससे खोजियों का उत्साह बढ़ा और वे अन्य कब्रों की खुदाई के लिए भी प्रोत्साहित हुए । इंग्लैण्ड के एक विख्यात धनपति लार्ड कारनारावान ने इस अभियान का सारा खर्च स्वयं उठाने की पेशकश की । लार्ड रिचार्ड वेथल ने भी इस कार्य में गहन अभिरुचि दर्शायी और जितनी कब्रें खोदी गईं उनमें से प्रायः प्रत्येक में से बड़ी मात्रा में ऐसी वस्तुएँ प्राप्त हुईं, जिनके आधार पर पिरामिडों के निर्माण सम्बन्धी रहस्यों पर प्रकाश डालना संभव हो सका । ब्रिटेन के अधिकांश समाचारों ने इस अभियान की प्रगति और उपलब्धियों के समाचार प्रकाशित किये तथा पत्र-पत्रिकाओं ने शोध सामिग्री के आधार पर पिरामिड कालीन मान्यताओं पर विस्तृत लेख छापे एवं इतिहास के उन अज्ञात पृष्ठों पर प्रकाश डालने वाले प्रयासों के लिए खुदाई करने वालों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की ।

लेकिन इस अभियान का एक दुखद पहलू भी है । वह यह कि अभियान में भाग लेने वाले अधिकांश व्यक्तियों को अपना शेष जीवन बड़ी कष्टकर तथा भयंकर परिस्थितियों में व्यतीत करना पड़ा । उन्हें एक से एक भयंकर घटनाओं का इस तरह सामना करना पड़ा कि उन्हें किसी अदृश्य शक्ति की कोपलीला ही कहा जा सकता है । कुछ की रहस्यमय परिस्थितियों में बड़े विचित्र ढंग से मृत्यु हुई, कुछ ने आत्महत्याएँ कीं, कुछ लोग दुर्घटनाओं के शिकार होकर अकाल मृत्यु के ग्रास बने । लार्ड वेस्टवुरी, जो इस अभियान का नेतृत्व कर रहे थे, एक दिन सैंट जेम्स पेलेस के सात तल्ले पर चढ़कर कूद गये और उन्होंने आत्महत्या कर ली । इस आत्महत्या की पृष्ठभूमि में ऐसा कोई कारण नहीं था जिससे मन मस्तिष्क पर कोई बहुत बड़ा आघात तो क्या हल्की सी ठेस भी पहुँचे ।

खुदाई अभियान में लगे अन्य लोग भी इसी प्रकार मरे थे । जीवन भर दुखी रहे । कुछ यह अनुभव करते रहे कि उन्हें कोई प्रेतात्मा आकर डराती तथा हैरान करती है । कितनों को प्राणघातक विपत्तियों का सामना, करना पड़ा और मरते-मरते बचे । कुछ डर के मारे विक्षिप्त स्थिति तक जा पहुँचे, दुर्दशा ग्रस्त होकर मरे । लार्ड वेस्टवुरी ने जब सेंट जेम्स पेलेस के सातवें तल्ले से छलाँग लगाकर आत्महत्या कर ली तो उनकी मृत्यु का समाचार जिस टिप्पणी के साथ छपा था, उसमें इन दुर्घटनाओं का संक्षिप्त किन्तु दिल दहला देने वाला वर्णन था। स्मरणीय है कि मिस्र के पिरामिडों का निर्माण ईसा से कई शताब्दियों पूर्व हुआ था । उस समय के प्रेत हजारों वर्ष तक कैसे जीवित हैं, यह अचम्भे की बात है ।

प्रतिशोध के लिए एक हजार वर्ष तक प्रेत योनि में रहकर अपने शत्रु की प्रतीक्षा करने वाले एक मुसलमान पीर सुलेमान का विवरण कल्याण के १९६९ के वार्षिक अंक में छपा था। वह प्रेत ईरान के रहने वाले एक मुसलमान का था जो नादिरशाह अब्दाली के साथ लूट-खसोट के लिए भारत आया था । नादिरशाह तो लूटकर अपने मुल्क वापस चला गया पर सुलेमान यहीं रह गया । सहारनपुर के पास मुगल खेड़ा गाँव में उसने शादी भी कर ली और इस शादी से उसके चार बच्चे हुए । इनमें से दो लड़के थे और दो लड़कियाँ । जिस स्थान पर सुलेमान रहता था, उसके पास ही एक ढोंगी तपस्वी भी रहा करता था । वह गंड़े, ताबीज, तन्त्र-मन्त्र झाड़ फूँक आदि का काम किया करता था । उस तपस्वी ने सुलेमान की जवान लड़की से अवैध संवन्ध स्थापित कर लिया । इसका पता चलने पर सुलेमान ने तपस्वी को काफी समझाया बुझाया, सरकारी अधिकारियों से भी हस्तक्षेप करने का आग्रह किया पर उसे कोई सफलता नहीं मिली । सुलेमान की लड़की और उस तपस्वी में अवैध यौनाचार यथावत जारी रहा । इससे सुलेमान को काफी ठेस पहुँची और वह इसी गम में घुल-घुलकर मर गया । दुखी रहने और मर जाने की बात सोचते-सोचते सुलेमान मन में यह भी विचार रहा कि चाहे जो हो, वह इसका बदला जरूर लेगा ।

मरने के बाद वह प्रेत बनकर उसी गाँव में उसी स्थान पर एक पेड़ के ऊपर रहने लगा जहाँ कि उसे दफनाया गया था । कालान्तर में लोगों ने उसकी कब्र को मजार का रूप दे दिया और पूजा करने तथा मनौती मानने के लिए आने लगे। पीर सुलेमान आने वाले सब लोगों को देखता था पर उनमें वह व्यक्ति सैंकड़ों साल बीत जाने पर भी नहीं दिखाई दिया, जिससे उसको प्रतिशोध लेना था । करीब एक हजार वर्ष पूरे होने के बाद वह तपस्वी दिखाई दिया । जिसने पीर सुलेमान की लड़की से अनुचित सम्बन्ध स्थापित किया था । वह एक सिख परिवार में जन्मा था और युवक ही था । पीर सुलेमान ने उस की आत्मा को पहचान लिया और सात वर्षों तक उसे

खूब सताया । बाद में एक सन्त ने उस युवक को पीर सुलेमान से छुटकारा दिलाया तथा पीर सुलेमान को भी प्रेत योनि से मुक्ति दिलायी ।

इस तरह की सैकड़ों घटनाएँ हैं जिसमें मनुष्य का अशरीरी अस्तित्व हजारों वर्षों तक बने रहने के प्रमाण मिलते हैं। इस प्रकार की सूक्ष्म सत्ताओं के प्रमाण जहाँ भी मिलते हैं, वहाँ इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि मनुष्य को संकल्प शक्ति और प्राणशक्ति में आत्मा नहीं बल्कि उसकी किरणें मात्र हैं । पर उनमें भी इतनी सामर्थ्य होती है कि वे अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व खड़ाकर के मूल आत्मा की प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती रहें ।

जो भी हो इस बात के पर्याप्त प्रमाण है कि अस्तित्व के रूप में प्रतिभासित होने वाली वस्तुओं का केवल उतना ही स्वरूप नहीं होता जितना कि वह दिखाई देता है, बल्कि उसका सूक्ष्म और कारण अस्तित्व भी होता है । भारतीय मनीषियों ने प्रत्येक प्राणी तथा पदार्थ के तीन स्तर माने हैं, स्थूल सूक्ष्म और कारण । स्थूल वह स्तर है जो दृश्यमान होता है, सूक्ष्म में उसकी शक्ति निहित रहती है जो उसे जीवित और सक्रिय बनाये रहती है तथा कारण स्तर जड़ या बीज के समान होता है । चेतना अविनाशी है, और इसी कारण जड़ वस्तुएँ भी नष्ट हो जाने के बाद कभी कभी अपने सूक्ष्म स्वरूप का परिचय देती हैं, तो इसे असम्भव नहीं मानना चाहिए । स्थूल के नष्ट हो जाने पर भी प्राणी या पदार्थ का सूक्ष्म अस्तित्व बना रहता है । यह तथ्य सिद्ध करता है कि जो दिखाई देता है वही सच नहीं है, अपितु उससे भी बड़ी एक दुनिया अविज्ञात और रहस्यमय है । यदि इस दिशा में गहन अन्वेषण किया जा सके तो ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में एक नयी किन्तु अति महत्वपूर्ण कड़ी जुड़ सकती है ।

मरणोत्तर जीवन को नकारा नहीं जा सकता

एक समय था जब नव विकसित विज्ञान ने मनुष्य को भी पेड़-पौधों की तरह उगने और मरने वाला कहा था । उसने पुनर्जन्म की वैसी मान्यता को झुठलाया था । जैसी कि धर्मग्रन्थों में व्यक्त की गई थी । बीज में पेड़, पेड़ से बीज-वाले सिद्धान्त को ही पदार्थ विज्ञानी मान्यता देते थे और कहते थे कि यदि पुनर्जन्म होता है तो वह वंश जो रूप में ही होना चाहिए । आत्मा का अलग अस्तित्व मानने और मृत्यु के उपरान्त भी उसकी कोई सत्ता बनी रहने से वे इनकार करते थे ।

यह प्रतिपादन कुछेक दार्शनिकों को भी भाया और उनमें से चार्वाक जैसों ने कहा इस देह का भस्मीभूत होने पर अन्त हो जाता है, दुबारा जन्म नहीं होता । पर यह मान्यताएं नये उत्साह के उभार में ही पनपी थीं । पीछे इस सन्दर्भ में जब गहराई के साथ दार्शनिक आधार पर विचार किया गया और विज्ञान ने अपनी विकास पृष्ठभूमि पर विचार करना आरम्भ किया तो माना कि आरम्भिक अति उत्साह में कही गई जानकारी पर नये सिरे से विचार की आवश्यकता है । उन्हें ऐसे अनेकों प्रमाण मिले जो मरने के बाद भी जीवन का अस्तित्व बने रहने की पुष्टि करते थे ।

जन्मजात रूप से पशु-पक्षियों और कीट पतंगों से प्रायः एक जैसी आदतें होती हैं । किन्तु मनुष्य में ऐसी विलक्षणताएँ बहुत बार पाई गई हैं, जिनका अंश परम्परा एवं विशेष प्रशिक्षण के साथ कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता । पड़ौसियों से, साथियों से अनुकरण का अवसर मिला होगा ऐसा भी कोई प्रमाण नहीं मिलता ।

साम्प्रदायिक मान्यताओं के अनुसार यह तो मतभेद है कि मरने के बाद कितने दिन बाद, किस कारण, किस रूप में नया जन्म होता है ? पर सभी धर्म यह मानते हैं कि मरने के बाद दूसरा जन्म भी होता है और उसमें भले-बुरे कर्मों का फल भुगतना पड़ता है । भले- बुरे कर्म क्या हैं ? इसमें भी मतभेद हैं । कई मान्यताओं में उसके लिए स्वर्ग-नरक में रहना पड़ता है और वहाँ सुविधाओं तथा असुविधाओं का उपयोग करना पड़ता है ।

कुछ मान्यताएँ यह बताती हैं कि मरने के बाद पशु-पक्षियों की योनि में जाना पड़ता है और असुविधाजन्य त्रास भुगतना पड़ता है । दूसरी मान्यताएँ यह हैं कि मनुष्य को दूसरा जन्म भी मनुष्य रूप में ही मिलता है । सुख-दुःख इस शरीर में भी कम नहीं हैं । मनुष्यों में से कितने ही बहुत सुखी होते हैं और कितने ही रोग आदि के कारण कष्ट भी बहुत सहते हैं ।

पिछले जन्म की स्मृति गाथा सुनाने वालों में से कितनी ही घटनाएँ अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करती हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि मनुष्य को दूसरी बार भी मनुष्य जन्म ही मिला । एक जन्म का अन्त होने पर दूसरा कितने दिन में मिला और वह मध्यवर्ती समय कहाँ व्यतीत हुआ । इस पर थोड़ा प्रकाश परा मनोविज्ञान को आधुनिक शोधों के अनुसार मिला है ।

पूर्व जन्म की स्मृति सुनाने वालों के पुराने और नये जन्म के बीच का वर्षों का अन्तर रहा है । इससे प्रतीत होता

है कि उस अन्तर वाले समय में स्वर्ग नरक आदि में निवास करना पड़ा होगा।

कितनी ही घटनाएँ भूत-प्रेतों की भी इस रूप में सामने आई हैं जिनसे प्रतीत होता है कि मध्यवर्ती समय सम्भवतः इस प्रकार सूक्ष्म शरीर में रहते हुए व्यतीत करना पड़ता होगा ।

पाश्चात्य देशों में पुरानी मान्यता प्रलय के बाद नया जन्म मिलने की रही है । मध्ययुग के दार्शनिकों ने इस शास्त्र प्रतिपादन का खण्डन किया है । पैथागोरस- प्लेटो, प्लाटीनस, केल, प्रिटन के अतिरिक्त यहूदी एवं हिम्पू धर्माचार्यों ने भी अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर यह कहा है कि पुराने और नये जन्म के बीच दस वर्ष से अधिक का अन्तर होना चाहिए ।

ईसाई और इस्लाम धर्म की मान्यता के अनुसार प्रलय काल तक नये जन्म पाने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है । हिन्दू धर्म के अनुसार प्रेतात्मा एक वर्ष तक अपने कुटुम्बियों के साथ सम्बन्ध बनाये रहती है और इसके बाद प्रेत लोक में स्वर्ग नरक की अनुभूतियों के लिए चली जाती है । पुनर्जन्म होता है यह तो कहा गया है पर यह नहीं बताया गया कि इसमें कितना समय लगता है ।

वंशानुक्रम वाद की मान्यता भी निर्विवाद नहीं है, क्योंकि कितने ही बच्चों की आकृति तथा प्रकृति ऐसी पायी जाती है जो माता-पिता की कई पीढ़ियों तक नहीं पायी गई । चमड़ी का रंग, बाल जैसी मोटी पहचान ही वंश परम्परा में चलती है । इनमें वर्ण भेद उदाहरणों में दोनों के सम्मिश्रित लक्षण पाये जाते हैं । अफ्रीकी काले तथा योरोपियन गोरों के सम्पर्क से उत्पन्न हुई सन्तान के बारे में जब मिश्रित चिन्ह पाये जायें तो उसे किसका वंशज कहा जाय? मिश्रित होने पर आत्मा के पुनर्जन्म का सिद्धान्त कटता है ।

हैक्सले, मैलस्का, आर्थर, थामसन, डार्विन जैसे विकासवादी कहते हैं कि वंश परम्परा में विकासवाद के सिद्धान्त भी जुड़ते हैं और सन्तानें अपने जन्म-दाताओं की अपेक्षा अधिक समर्थ एवं सुयोग्य होती है ।

डा०डंकन मैकडानल्ड ने मरणासन्न कि रोगियों को काँच के बक्से में रखकर तौला तो मालूम हुआ कि जीवन और मरण के मध्य एक औंस वजन घट गया । इस आधार पर वे आत्मा को कोई भौतिक पदार्थ मानते हैं, जो मृत्यु के उपरान्त अन्तरिक्ष में चला जाता है ।

'अमेरिकन सोसाइटी फार साइकिक रिसर्च' के अन्वेषण का निष्कर्ष यह है, कि जीवन एक पदार्थ है, जिसका आकार भी है और वजन भी । शरीर के इर्द-गिर्द जो तेजोवलय पाया जाता है वह बाहर ही नहीं भीतर भी होता है। यही आत्मा का रूप है। जीवन और मरण के बीच जो वजन घटता है, वह उसका वजन है । इस प्रकार जीवात्मा भी एक खास प्रकार का पदार्थ ही होना चाहिए ।

वरनार्ड जानसन फाउण्डेशन के डा० वाटर्स ने भी काँच के चैम्बर में प्राणियों को रखकर उनके जीवन और मरण के अन्तर को देखा । एक चूहे का प्राण चैम्बर के भीतर ऊपर हवा में तैरता पाया गया । इस आधार पर वे प्राणी के सूक्ष्म शरीर की कल्पना करते हैं और सोचते हैं कि मृतक का अस्तित्व भाप जैसा होना चाहिए ।

इसी स्वर में स्वर मिलाते प्रख्यात् मस्तिष्क विज्ञानी डा० एक्लीस कहते हैं कि भौतिक पदार्थों से बने शरीर का अवसान तो देखा-सुना जाता है, पर सूक्ष्म शक्ति के रूप में क्रियारत् उसकी अपदार्थ सत्ता के नाश की बात किसी प्रकार समझ में नहीं आती । भौतिक विज्ञान भी इसका समर्थन करते हुए कहता है कि ऊर्जा का न तो नाश होता है, न निर्माण ही। एक रूप से दूसरे में उसका रूपान्तरण अवश्य होता है, पर किसी न किसी रूप में उसका अस्तित्व जरूर बना रहता है। इस आधार पर मस्तिष्क विज्ञानियों में पदार्थवादी प्रस्तावना का वे जोरदार शब्दों में खण्डन करते हुए कहते हैं कि विज्ञानियों की यंह मान्यता है कि चेतना मस्तिष्क में हो रही विभिन्न प्रकार की भौतिक-रसायनिक क्रियाओं का सह उत्पाद (बाई प्रोडक्ट) है, अस्तु मस्तिष्क की मृत्यु के साथ ही चेतना का भी अस्तित्व समाप्त हो जाता है, यह किसी प्रकार गले नहीं उतरता ।

विचारणीय प्रश्न तो यह है कि कोई अपदार्थ सत्ता किसी भौतिक प्रक्रिया का गौणफल कैसे हो सकती है ? यदि ऐसी बात होती, तो इन क्रियाओं में व्यतिक्रम (रोग आदि की स्थिति में) आने पर चेतना प्रभावित होनी चाहिए, पर व्यावहारिक जीवन में, चेतना क्षेत्र में कोई ऐसी कठिनाई आती नहीं दिखाई पड़ती। इससे यह कहा जा सकता है कि उनकी मान्यताओं में सत्य का रंच मात्र भी नहीं है । "ड्यूएलिस्ट इण्टरएक्शनिज्म" नामक अपने प्रसिद्ध सिद्धान्त में उपरोक्त मत को अमान्य करते हुए श्री एक्लीस कहते हैं कि चेतना का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है । यह किसी शरीर-क्रिया का परिणाम नहीं, वरन् शरीर की चेतना की परिणति कहा जा सकता है । अतः शरीर जब मरतां है, तब भी इसका अस्तित्व शेष रहना चाहिए । अपने इस सिद्धान्त में उन्होंने मस्तिष्क को प्रभावित करने वाली अभौतिक सत्ता के रूप में चेतना का उल्लेख किया है । इस प्रकार इसके द्वारा प्रकारान्तर में उन्होंने मरणोत्तर जीवन का ही समर्थन किया है ।

१.५३ मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवम् सत्य

श्री एक्लीस की इस परिकल्पना के आधार पर मृत्यु के बाद के जीवन के स्वरूप की व्याख्या-विवेचना तो नहीं की जा सकती, पर आये दिन घटते वाली तत्संबंधी घटनाओं और मृत्यु के मुँह से वापस लौटे लोगों के कथनों का निष्कर्ष उपस्थित डाक्टरों ने इस प्रकार निकाला है-

मृत्यु के बाद मृतक स्वयं को अपने भौतिक शरीर से पृथक् हवा में उठा हुआ पाता है और अपने सगे-संबंधियों को इसका शोक मनाते, रोते-कलपते स्पष्ट देखता है । इतना ही नहीं, वह उनकी आवाजें भी सुनता है । उन्हें मनाने, चुप करने की कोशिश करता है, पर यह देखकर निराश हो जाता है कि उसकी आवाज ही उन तक नहीं पहुँचती । अब उसे अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता का आभास होता है एवं अपने पार्थिव शरीर की अन्त्येष्टि होते हुए देखता है । अन्ततः एक अन्धेरी सुरंग में होकर जाते हुए की अनुभूति होती है । फिर स्वयं को एक प्रकाश लोक में पाता है । यहाँ उसके मित्र, परिवार के सभी दिवंगत आत्माएं उससे मिलतीं और उसकी सहायता करती हैं। इस दिव्य लोक में उसे असीम आनन्द, प्रेम व सुख की प्राप्ति होती है, जिससे इस सुखमय संसार से वह पुनः पृथ्वी लोक और भौतिक शरीर में जाना नहीं चाहता, परन्तु किसी अज्ञात प्रेरणा के कारण उसे फिर आना पड़ता है ।

आस्ट्रेलिया के मनोवैज्ञानिक डा० स्कून भेकर भी २८ वर्षों के श्रमसाध्य शोध-सर्वेक्षण के उपरान्त लगभग इसी स्तर के निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मृत्यु के समय शांति व आनन्द का अनुभव होता है, आरंभ में गहन अन्धकार के लम्बे रास्ते को पार करने के उपरान्त मृतात्मा दिव्य प्रकाश लोक में पहुँचती है ।

इन निष्कर्षों पर पहुँचने के पूर्व डा० भेकर ने शताधिक ऐसे लोगों से साक्षात्कार किया, जिनके बारे में कहा जाता था कि मरण के पश्चात् उनकी चेतना वापस लौट आयी । ऐसी अनेकानेक घटनाओं का संकल उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "दि अदर साइड आफ दि लाइफ" में किया है । एक घटना अमेरिका की है । १२ अप्रैल, १९७५ को प्रातः न्यूजर्सी की कुमारी मार्था ईगन को दिल का दौरा पड़ा और उनकी मृत्यु हो गई । उसने अपने को शरीर से बाहर पाया और देखा कि डाक्टरों का एक दल उसके हृदय को पुनः सक्रिय करने में संलग्न है । यह देखकर मार्था के मन में विचार आया कि जब मरना ही है, तो क्यों न इसकी खबर अपनी माँ को स्वयं दे दूँ । यह स्फुरणा आते ही वह बारमोट सिटी अपनी माँ के पास अविलम्ब पहुँच गई । उसकी माँ उस वक्त उपन्यास पढ़ने में तल्लीन थी। निकट जाकर उसने कहा- "माँ दिल का दौरा पड़ने के कारण मेरी मृत्यु हो गई है । देखो, अब मैं तुम्हारे पास हूँ" । पर माँ ने जैसे उसकी बातें सुनी न हों। उसने बार-बार अपनी बात दोहरायी मगर वह अप्राभावित रही। माँ को अपनी ओर कैसे आकृष्ट करूँ ? अभी वह इस बारे में सोच ही रही थी कि मार्था को ऐसा आभास हुआ, जैसे वह अपने स्थूल शरीर में वापस लौट आयी हो । इसके उपरान्त ही उसे यह ज्ञात हो सका कि जिस समय वह माँ से अपनी बात कर रही थी, उस वक्त उसकी माँ के मन में बार-बार उसके बारे में विचार आ रहे थे ।

एक घटना सन् १९७१ की ही है । प्रसिद्ध पुरातत्वविद् और लेखक 'डॉ० रोज' दो कटी हुई खोपड़ियों का अध्ययन कर रहे थे, जो एक पुराने खण्ड्हर की खुदाई करते समय मिली थीं । जब वे इन खोपड़ियों को लेकर अपनी प्रयोगशाला में लौट रहे थे, तो उन्होंने रात्रि को करीब दो बजे अचानक ठण्ड बढ़ गई है, ऐसा अनुभव किया । उस समय डॉ० रोज सो रहे थे । ठण्ड बढ़ जाने के कारण उनकी नींद खुल गई और उन्होंने अपने आस-पास एक छाया मँडराती हुई देखी, उस छाया को उन्होंने बिस्तर से उठकर देखना चाहा तो वह बाहर निकल गई । डॉ० रोज ने उसका पीछा किया, तो वह छाया कारीडोर को पार करती हुई बाहर निकल गई । जब तक उनके पास वे कटी हुई खोपड़ियाँ रही, तब तक उन्होंने छाया को अपने आस-पास मँडराते हुए देखा । जब उन्होंने खोपड़ियों का अच्छी तरह विश्लेषण कर लिया और उसे वापस विश्वविद्यालय के पुरातत्व संग्रहालय में पहुँचा दिया तब छाया का दिखाई देना स्वतः बन्द हो गया । इस प्रकार अब यह निर्विवाद रूप से सत्य सिद्ध हो चुका है कि मृत्युपरान्त भी हमारी सूक्ष्म सत्ता अक्षुण्ण बनी रहती है । आये दिन घटने वाली पुनर्जन्म की घटनाओं से भी इसकी सत्यता प्रमाणित हो जाती है, जिसमें बालक अपने पूर्व जन्म के माँ-बाप, भाई-बहन, सगे-सम्बन्धी सभी को पहचान कर लोगों को आश्चर्य में डाल देता है । यदि वस्तुतः आत्मा और चेतना की मृत्यु होती, तो फिर उसके जन्मने का प्रश्न ही नहीं उठता और पुनर्जन्म की घटनाएँ ही नहीं घटतीं । मृत्यु दरअसल शरीर की होती है । उसके जरा-जीर्ण पड़ जाने के कारण ही चेतना को बार-बार कलेवर परिवर्तित करना पड़ता है । सम्मोहन विद्या के विशेषज्ञों ने भी इसका समर्थन किया है । उन्होंने अगणित लोगों को सम्मोहन के माध्यम से पूर्व जन्म की स्थिति में भेजकर उस जन्म से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारियाँ हस्तगत करने में सफलता पायी हैं ।

डा० क्रूकल अपनी प्रख्यात पुस्तक ''सुप्रीम एडवेन्चर'' में लिखते हैं कि प्रत्येक प्राणी का एक सूक्ष्म शरीर होता है। मरण के उपरान्त वह इस शरीर से सूक्ष्म लोकों में गमन करता है । वहाँ कुछ समय बिताने के बाद कालान्तर में वह पुनः शरीर धारण करता है । रूस के परा मनोविज्ञानी डा० विलियोन ने इसके अनेक चित्र भी लिए हैं । भारतीय गुह्य विद्या विशारदों ने तेजवलयव व्यक्तित्व के अध्ययन के आधार पर सूक्ष्म शरीर के रंगों का निर्धारण किया है । इसके अनुसार कपटी लोगों का भूरा चमकीला, क्रोधी का लाल, धोखेबाजों का हरा, मृदुभाषियों का गुलाबी, बुद्धिमान का पीला, और महापुरुषों का श्वेत होता है । इन निर्धारणों के माध्यम से प्रकारान्तर से उन्होंने चेतना की अविनाशिता की ही पुष्टि की है । गीताकार ने तो **''नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः''** कहकर आत्मा की अमरता का स्पष्ट उद्घोष किया है ।

कुछ भी हो अब चेतना-आत्मा के मात्र अदृश्य होने के आधार पर उसकी अनश्वरता को नहीं झुठलाया जा सकता है । हमारे इर्द-गिर्द असंख्यों सूक्ष्म जीवधारी मँडराते रहते हैं, पर उन्हें भी हम कहाँ देख पाते हैं ? इतने पर भी उनके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता । यही बात चेतना के साथ भी है । जीवित अवस्था में यह अपनी हलचलें शरीर के विभिन्न अंग-अवयवों के माध्यम से प्रकट करती रहती है, किन्तु देह के मर जाने पर माध्यम के अभाव में वह ऐसा नहीं कर पाती और सूक्ष्म स्थिति में चली जाती है। वही वह अवस्था है, जब भले-बुरे कर्मों के आधार पर जीवात्मा'' की सद्गति अथवा दुर्गति होती है । भारतीय दर्शन में इसे ही स्वर्ग, मुक्ति, नरक की संज्ञा दी गयी है ।

मृत्यु का स्वरूप

जीवन का प्रवाह अनन्त है । हम अगणित वर्षों से जीवित हैं, आगे अगणित वर्षों तक जीवित रहेंगे । भ्रमवश मनुष्य यह समझ बैठा है कि जिस दिन बच्चा माता के पेट में आता है या गर्भ से उत्पन्न होता है, उसी समय से जीवन आरम्भ होता है और जब हृदय की गति बन्द हो जाने पर शरीर निर्जीव हो जाता है, तो मृत्यु हो जाती है । यह बहुत ही छोटा, अधूरा और अज्ञान मूलक विश्वास है । आधुनिक भौतिक विज्ञान यह कहता है कि जीव की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं, शरीर ही जीव है । शरीर की मृत्यु के बाद हमारा कोई अस्तित्व नहीं रहता, परन्तु बेचारा भौतिक विज्ञान स्वयं अभी बाल्यावस्था में है । विद्युत की गति के सम्बन्ध में अब तक करीब तीन दर्जन सिद्धान्तों का प्रतिपादन हो चुका है । हर सिद्धांत अपने से पहले मतों का खण्डन करता है। बेशक उन्होंने बिजली चलाई। दरअसल में अब तक ठीक-ठीक यह नहीं जाना जा सका, कि वह किस प्रकार चलती है ? नित नई सम्मति बदलने वाले जड़ विज्ञान का भौतिक जगत में स्वागत हो सकता है, पर यदि उसे ही आध्यात्मिक विषय में प्रधानता मिली तो सचमुच हमारी बड़ी दुर्गति होगी । एक वैज्ञानिक कहता है कि शरीर ही जीव है । दूसरा मृतात्मा आश्चर्यजनक करतबों को पूरी तरह चुनौती देता है और अपने पक्ष को प्रमाणित करके विरोधियों का मुख बन्द कर देता है । तीसरे वैज्ञानिक के पास ऐसे अटूट प्रमाण मौजूद हैं जिनमें छोटे छोटे अबोध बच्चों ने अपने पूर्वजन्मों के स्थानों को और सम्बन्धियों को इस प्रकार पहचाना है कि उसमें पुनर्जन्म के विषय में किसी प्रकार का सन्देह की गुन्जायश ही नहीं रहती । बालक जन्म लेते ही दूध पीने लगता है, यदि पूर्व स्मृति न होती तो वह बिना सिखाये किस प्रकार यह सब सीख जाता, बहुत से बालकों में अत्यल्प अवस्था में ऐसे अद्भुत गुण देखे जाते हैं, जो प्रकट करते हैं कि यह ज्ञान इस जन्म का नहीं वरन् पूर्वजन्म का है ।

जीवन और शरीर एक वस्तु नहीं है । जैसे कपड़ों को हम यथा समय बदलते रहते हैं, उसी प्रकार जीव को भी शरीर बदलने पड़ते हैं । तमाम जीवन भर एक कपड़ा पहना नहीं जा सकता, उसी प्रकार अनन्त जीवन तक एक शरीर नहीं ठहर सकता । अतएव उसे बार-बार बदलने की आवश्यकता पड़ती है । स्वभावतः तो कपड़ा पुराना जीर्ण-शीर्ण होने पर ही अलग किया जाता है, पर कभी-कभी जल जाने, किसी चीज में उलझकर फट जाने, चूहों को काट देने या अन्य कारणों से वह थोड़े ही दिनों में बदल देना पड़ता है । शरीर साधारणतः वृद्धावस्था में जीर्ण होने पर नष्ट होता है, परन्तु यदि बीच में ही कोई आकस्मिक कारण उपस्थित हो जावे तो अल्पायु में भी शरीर त्यागना पड़ता है ।

मृत्यु किस प्रकार होती है ? इस सम्बन्ध में तत्वदर्शी योगियों का मत है कि मृत्यु से कुछ समय पूर्व मनुष्य को बड़ी बेचैनी, पीड़ा और छटपटाहट होती है, क्योंकि सब नाड़ियों में से प्राण खिंचकर एक जगह एकत्रित होता है, किन्तु पुराने अभ्यास के कारण वह फिर नाड़ियों में खिसक जाता है, जिससे एक प्रकार का आघात लगता है, यही पीड़ा का कारण है। रोग, आघात या अन्य जिस कारण से मृत्यु हो रही हो तो उससे भी कष्ट उत्पन्न होता है । मरने से पूर्व प्राणी कष्ट पाता है चाहे वह जवान से उसे प्रकट कर सके या न कर सके। लेकिन जब प्राण निकलने का समय बिल्कुल पास आ जाता

है तो एक प्रकार की मूर्छा आ जाती है और उस अचेतनावस्था में प्राण शरीर से बाहर निकल जाते हैं । जब मनुष्य मरने को होता है, तो उसकी समस्त बाह्य शक्तियाँ एकत्रित होकर अन्तर्मुखी हो जाती हैं और फिर स्थूल शरीर से बाहर निकल पड़ती हैं । पाश्चात्य योगियों का मत है कि जीव का सूक्ष्म शरीर बैंगनी रंग की छाया लिए शरीर से बाहर निकलता है। भारतीय योगी इसका रंग शुभ्र ज्योति स्वरूप सफेद मानते हैं। जीवन में जो बातें भूलकर मस्तिष्क के सूक्ष्म कोष्ठकों में सुषुप्त अवस्था में पड़ी रहती हैं वे सब एकत्रित होकर एक साथं निकलने के कारण जागृत एवं सजीव हो जाती हैं । इसीलिए कुछ ही क्षण के अन्दर अपने समस्त जीवन की घटनाओं को फिल्म की तरह देखा जाता है । इस समय मन की आश्चर्यजनक शक्ति का पता लगता है । उनमें से आधी भी घटनाओं के मानसिक चित्रों को देखने के लिए जीवित समय में बहुत समय की आवश्यकता होती, पर इन क्षणों में वह बिल्कुल ही स्वल्प समय में पूरी-पूरी तरह मानव पटल पर घूम जाती हैं । इस सबका जो सम्मिलित निष्कर्ष निकलता है वह सार रूप में संस्कार बनकर मृतात्मा के साथ हो लेता है । कहते हैं कि यह घड़ी अत्यन्त ही पीड़ा की होती है। एक साथ हजार बिच्छुओं के दंश का कष्ट होता है। कोई मनुष्य भूल से अपने पुत्र पर तलवार चला दे और वह अधकटी अवस्था में पड़ा छटपटा रहा हो तो उस दृश्य को देखकर एक सहृदय पिता के हृदय में अपनी भूल के कारण प्रिय पुत्र के लिए ऐसा भयंकर काण्ड उपस्थित करने पर जो दारुण व्यथा उपजती है, ठीक वैसी ही पीड़ा उस समय प्राण अनुभव करता है क्योंकि बहुमूल्य जीवन का अक्सर उसने वैसा सदुपयोग नहीं किया, जैसा कि करना चाहिए था । जीव जैसी बहुमूल्य वस्तु का दुरुपयोग करने पर उसे उस समय मर्मान्तक मानसिक वेदना होती है । पुत्र के मरने पर पिता को शारीरिक नहीं, मानसिक कष्ट होता है, उसी प्रकार मृत्यु के ठीक समय पर प्राणी की शारीरिक चेतनाएँ तो शून्य हो जाती हैं, पर मानसिक कष्ट बहुत भारी होता है । रोग आदि शारीरिक पीड़ा तो कुछ क्षण पूर्व ही, जबकि इन्द्रियों की शक्ति अन्तर्मुखी होने लगती हैं, तब ही बन्द हो जाती है । मृत्यु से पूर्व शरीर अपना कष्ट सह चुकता है । बीमारी से या किसी आघात से शरीर और जीव के बन्धन टूटने आरम्भ हो जाते हैं । डाली पर से फल उस समय टूटता है, जब उसका डण्ठल असमर्थ हो जाता है, उसी प्रकार मृत्यु उस समय होती है, जब शारीरिक शिथिलता और अचेतना आ जाती है । ऊर्ध्व रन्ध्रों में से अक्सर प्राण निकलता है । मुख, आँख, कान, नाक प्रमुख मार्ग हैं । दुष्ट वृत्ति के लोगों का प्राण मल-मूत्र मार्गों से निकलता देखा जाता है । योगी ब्रह्मरन्ध्र से प्राण त्याग करता है ।

शरीर से जीव निकल जाने के बाद वह एक विचित्र अवस्था में पड़ जाता है । घोर परिश्रम से थका हुआ आदमी जिस प्रकार कोमल शय्या प्राप्त करते ही निद्रा में पड़ जाता है, उसी प्रकार मृतात्मा को जीवन भर का सारा श्रम उतारने के लिए एक निद्रा की आवश्यकता होती है । इस नींद से जीव को बड़ी शान्ति मिलती है और आगे का काम करने के लिए शक्ति प्राप्त कर लेता है । मरते ही नींद नहीं आ जाती, वरन् इसमें कुछ देर लगती है । प्रायः एक महीना तक लग जाता है । कारण यह है कि प्राणान्त के बाद कुछ समय तक जीवन की वासनाऐं प्रौढ़ रहती हैं और वे धीरे-धीरे ही निर्बल पड़ती हैं । कड़ा परिश्रम करके आने पर हमारे शरीर का रक्त संचार बहुत तीव्र होता रहता है और पलंग मिल जाने पर भी उतने समय तक जागते रहते हैं, जब तक फिर रक्त की गति धीमी न पड़ जाय । मृतात्मा स्थूल शरीर से अलग होने पर सूक्ष्म शरीर में प्रस्फुटित हो जाती है, यह सूक्ष्म शरीर ठीक स्थूल शरीर की ही बनावट का होता है । मृतक को बड़ा आश्चर्य लगता है कि मेरा शरीर कितना हल्का हो गया है, वह हवा में पक्षियों की तरह उड़ सकता है और इच्छा मात्र से चाहे जहाँ आ-जा सकता है । स्थूल शरीर के आस पास प्रियजनों को रोता बिलखता देखकर वह उनसे कुछ कहना चाहता है या वापिस पुराने शरीर में लौटना चाहता है, पर उसमें वह कृत्कार्य नहीं होता । एक प्रेतात्मा ने बताया है कि "मैं मरने के बाद बड़ी अजीब स्थिति में पड़ गया । स्थूल शरीर में और प्रियजनों में मोह होने के कारण मैं उसके सम्पर्क में आना चाहता था पर लाचार था । मैं सबको देखता था पर मुझे कोई नही देख सकता था, मैं सबकी वाणी सुनता था पर मैं जो बड़े जोर-जोर से कहता था उसे कोई भी नहीं सुनता था । इन सब बातों से कुछ तो कष्ट होता था । कुछ अपने जीवन शरीर के बारे में खुशी भी थी कि मैं कितना हल्का हो गया हूँ और कितनी तेजी से चारों ओर उड़ सकता हूँ । जीवित अवस्था में मैं मौत से डरा करता था, यहाँ मुझे डरने लायक कुछ भी बात मालूम नहीं हुई । सूक्ष्म शरीर में प्रस्फुटित होने के कारण पुराने शरीर से कुछ विशेष ममता न रही, क्योंकि नया शरीर पुराने की अपेक्षा हर दृष्टि से अच्छा था । मैं अपना अस्तित्व वैसा ही अनुभव करता था जैसा कि जीवित दशा में। कई बार मैंने अपने हाथ-पावों को हिलाया-डुलाया और अपने

अंग-प्रत्यंगों को देखा पर मुझे ऐसा नहीं लगा मानो मर गया हूँ । तब मैंने समझा कि मृत्यु में कुछ डरने की बात नहीं है, वह शरीर परिवर्तन की एक मामूली सुख साध्य क्रिया है।''

जब तक मृत शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया होती है, तब तक जीव बार-बार उसके आस-पास मँडराता रहता है । जला देने पर वह उसी समय उससे निराश होकर दूसरी ओर मन को लौटा लेता है, किन्तु गाढ़ देने पर वह उस प्रिय वस्तु का मोह करता है और बहुत दिनों तक उसके इधर-उधर फिरा करता है । अधिक अज्ञान और माया-मोह के बन्धन में अधिक दृढ़ता से बँधे हुए मृतक प्रायः श्मशानों में बहुत दिन तक चक्कर काटते रहते हैं । शरीर की ममता बार-बार उधर खींचती है और वे अपने को सम्भालने में असमर्थ होने के कारण उसी के आस-पास रुदन करते हैं । कई ऐसे होते हैं जो शरीर की अपेक्षा प्रियजनों से अधिक मोह करते हैं । वे मरघटों की बजाय, प्रिय व्यक्तियों के निकट रहने का प्रयत्न करते हैं। बुड्ढे मनुष्यों की वासनाऐं स्वभावतः ढीली पड़ जाती हैं, इसलिए वे मृत्यु के बाद बहुत जल्दी निद्राग्रस्त हो जाते हैं, किन्तु वे तरुण जिनकी वासनाऐं प्रबल होती हैं, बहुत काल तक विलाप करते फिरते हैं, खासतौर से वे लोग जो अकाल मृत्यु, अपघात या आत्महत्या से मरे होते हैं । अचानक और उग्र वेदना के साथ मृत्यु, कुछ स्थूल, कुछ सूक्ष्म सा रहता है । ऐसी आत्माऐं प्रेत रूप से प्रत्यक्ष सी दिखाई देती हैं और अदृश्य भी हो जाती हैं । साधारण मृत्यु से मरे हुओं के लिए यह नहीं है कि वह तुरन्त ही प्रकट हो जावें, उन्हें उसके लिए बड़ा प्रयत्र करना पड़ता है कि वह तुरन्त ही प्रकट हो जावें, उन्हें उसके लिए बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है और विशेष प्रकार का तप करना पड़ता है, किन्तु अपघात से मरे हुए जीव सत्ताधारी प्रेत के रूप में विद्यमान रहते हैं और उनकी विषम मानसिक स्थिति नींद भी नहीं लेने देती । वे बदला लेने की इच्छा से या इन्द्रिय वासनाओं को तृप्त करने के लिए किसी पीपल के पुराने पेड़ की गुफा, खण्ड्हर या जलाशय के आस-पास पड़े रहते हैं और जब अवसर देखते हैं, अपने अस्तित्व प्रकट करने या बदला लेने की इच्छा से प्रकट हो जाते हैं । इन्हीं प्रेतों को कई तांत्रिक शव साधन करके या मरघट जगाकर अपने बस में कर लेते हैं और उनसे गुलाम की तरह काम लेते हैं, इस प्रकार बाँधे हुए प्रेत इस तांत्रिक से प्रसन्न नहीं रहते वरन् मन ही मन बड़ा क्रोध करते हैं और यदि मौका मिल जाय तो उन्हें मार भी डालते हैं । बंधन सभी को बुरा लगता है, प्रेत लोग छूटने में असमर्थ होने के कारण अपने मालिक का हुक्म बजाते हैं, पर सरकस के शेर की तरह उन्हें इससे दुख रहता है । आबद्ध प्रेत प्रायः एक ही स्थान पर रहते हैं और बिना कारण जल्दी-जल्दी स्थान परिवर्तन नहीं करते ।

साधारण वासनाओं वाले प्रबुद्धचित्त और धार्मिक वृत्ति वाले मृतक अन्त्येष्टि क्रिया के बाद फिर पुराने सम्बन्धी से रिश्ता तोड़ देते हैं और मन को समझाकर उदासीनता धारण करते हैं । उदासीनता आते ही उन्हें निद्रा आ जाती है और आराम करके नई शक्ति प्राप्ति के लिए निद्राग्रस्त हो जाते हैं। यह नींद तन्द्रा कितने समय तक रहती है, इसका कुछ निश्चित नियम नहीं है । यह जीव की योग्यता के ऊपर निर्भर है । बालकों और मेहनत करने वालों को अधिक नींद चाहिए, किन्तु बुड्ढे और आराम तलब लोगों का काम थोड़ी देर सोने से ही चल जाता है । आमतौर से तीन वर्ष की निद्रा काफी होती है । इसमें से एक वर्ष तक बड़ी गहरी निद्रा आती है, जिससे कि पुरानी थकान मिट जाय और सूक्ष्म इन्द्रियाँ सम्वेदनाओं का अनुभव करने के योग्य हो जावें । दूसरे वर्ष उसकी तन्द्रा भंग होती है और पुरानी गलतियों के सुधार तथा आगामी योग्यता के सम्पादन का प्रयत्न करता है । तीसरे वर्ष नवीन जन्म धारण करने की खोज में लग जाता है । यह अवधि एक मोटा हिसाब है । कई विशिष्ट व्यक्ति छः महीने में ही नवीन गर्भ में आ गये हैं, कई को पाँच वर्ष तक लगे हैं । प्रेतों की आयु अधिक से अधिक बारह वर्ष समझी जाती है । इस प्रकार दो जन्मों के बीच का अन्तर अधिक से अधिक बारह वर्ष हो सकता है ।

मृत्यु की तैयारी

यह निर्विवाद है कि जो पैदा हुआ है, उसे मरना पड़ेगा। हमें भी मृत्यु की गोद में जाना है । उस महान यात्रा की तैयारी यदि अभी से की जाय तो इस समय जो भय और दुख होता है, वह न होगा ''मृत्यु के अभी बहुत दिन हैं, या तब की बात तब देखी जायगी'', ऐसा सोचकर उस महत्वपूर्ण समस्या को आगे के लिए टालते जाना अन्त में बड़ा दुखदायक होता है । मनुष्य-जीवन एक महान् उद्देश्य के लिए मिलता है, लाखों करोड़ों योनियाँ पार करके बडे समय और श्रम के बाद हमने उसे पाया है, ऐसे अमूल्य रत्न का सदुपयोग न करके यों ही व्यर्थ गवाँ देना, भला इससे बढ़कर और क्या मूर्खता हो सकती है ।

जीवन का महान उद्देश्य है कि हम ईश्वर का साक्षात्कार करें, परम पद को पावें । किन्तु कितने हैं, जो इस ओर ध्यान देते हैं ? किसी को तृष्णा से छुटकारा नहीं है। कोई इन्द्रिय भोगों में मस्त है, कोई अहंकार में इठा जा रहा है, तो कोई भ्रम-जंजालों में ही मस्त है । इन विडम्बनाओं को उलझाते-सुलझाते यह स्वर्ण अवसर बड़ी तीव्र गति से व्यतीत होता जा रहा है, किन्तु हमारा भुसी फटकने का कार्यक्रम उसी

गति से चलता जाता है । मृत्यु सिर के ऊपर नाच रही है, पल का भरोसा नहीं, न जाने किस घड़ी गला दबा दे, आज क्या-क्या मनसूबे बाँध रहे हैं, हो सकता है कि कल यह सब धरे के धरे रह जावें और हमारा डेरा किसी दूसरे देश में ही जा गढ़े। ऐसी विषम बेला में अचेत रहना बड़े दुर्भाग्य की बात है । पाठको! अब तक भूले, पर अब मत भूलो ! आँखें खोलो, सचेत होओ, जीवन क्या है ? हम क्या हैं? हमारा उद्देश्य क्या है ? इन प्रश्नों को उतना ही महत्वपूर्ण समझो, जितना कि रोटी को समझते हो । निरन्तर इन प्रश्नों पर विचार करने से आप उस मार्ग पर चल पड़ेंगे, जिसे मृत्यु की तैयारी कहते हैं । जो काम कल करना है, उसका बन्धन आज से सोचना होगा, आपकी मृत्यु का समय निर्धारित नहीं है, इसलिए उसकी तैयारी आज से, इसी क्षण से आरम्भ करनी चाहिए।

अनासक्ति कर्मयोग के तत्व ज्ञान को समझकर हृदयंगम कर लेना मृत्यु की सबसे उत्तम तैयारी है । माया के बन्धन हमें इसलिए बाँध देते हैं, कि हम उनमें लिपट जाते हैं, तन्मय हो जाते हैं । आप नित्य "मैं क्या हूँ" पुस्तक में बताये हुए सांधनों की क्रिया कीजिए और मन में यह धारणा दृढ़ करके प्रतिक्षण प्रयत्न करते रहिए कि "मैं अविनाशी, निर्विकार सच्चिदानन्द आत्मा हूँ । संसार एक क्रीड़ा-क्षेत्र है, मेरी सम्पत्ति नहीं", यह विश्वास जितने-जितने सुदृढ़ होते जाते हैं, मनुष्य के ज्ञान-नेत्र उतने ही खुलते जाते हैं । स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, परिवार का बड़े प्रेमपूर्वक पालन कीजिए, उन्हें अपनी सम्पत्ति नहीं, पूजा का आधार बनाइए । सम्पत्ति उपार्जन कीजिए, न कि शहद की मक्खियों की तरह कष्ट सहने के लिए । सब काम उसी प्रकार कीजिए, जैसे संसारी लोग करते हैं, पर अपना दृष्टिकोण दूसरा रखिए । गिरह बाँध लीजिए, बार-बार हृदयंगम कर लीजिए, कि "संसार की वस्तुएँ आपकी वस्तु नहीं है । दूसरी आत्माएँ आपकी गुलाम नहीं हैं । या तो सब कुछ आपका है या कुछ भी आपका नहीं है । या तो 'मैं' कहिए । या 'तू' कहिए । 'मेरा"तेरा' दोनों एक साथ नहीं रह सकते । बस, माया की सारी गाँठ इतनी ही है । योग का सार ज्ञान इसी गाँठ को सुलझाने के लिए है ।" पाप कर्म हम इसलिए करते हैं कि हमारा 'अहंभाव' बहुत ही संकुचित होता है । आप अपनी महानता को विस्तृत कीजिए, दूसरों को अपना ही समझिये, पराया कोई नहीं, सब अपने ही हैं । यह अपनापन ऊँचे दर्जे का होना चाहिए, जैसा माता का अबोध पुत्र के प्रति होता है । वैसा नहीं, जैसा चोर का दूसरों की तिजोरी पर होता है । सांसारिक जीवों में प्रभु की मूर्ति विराजमान देखिये और उनकी पूजा के लिए अपना हृदय बिछा दीजिए । स्त्री को आप दासी नहीं देवी मानिए, वैसी, जैसी मंन्दिरों में विराजमान रहती है । पुत्र को आप वैसा ही महान समझिये जैसा गणेशजी को मानते हैं । सांसारिक व्यवहार के अनुसार उनके प्रति अपने उत्तरदायित्वों का पालन कीजिए। स्त्री की आवश्यकताएँ पूरी कीजिए और पुत्र की शिक्षा-दीक्षा में दत्तचित्त रहिए, पर खबरदार! होशियार ! सावधान ! उन्हें अपनी जायदाद न मानाना । नहीं तो बुरी तरह मारे जाओगे, बड़ा भारी धोखा खाओगे और ऐसी मुसीबत में फँस जाओगे कि बस, मामला सुलझाने से नहीं सुलझेगा । संसार के समस्त दुःखों का बाप है- 'मोह' जब आप कहते हैं कि मेरी जायदाद इतनी है तो प्रकृति गाल पर तमाचा मारती है और कहती है कि मूर्ख ! तू तीन दिन से आकर इस पर अधिकार जमाता है, यह प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है । सोना-चाँदी तेरा नहीं है, यह प्रकृति का है, जिसे तू स्त्री समझता है, यह असंख्यों बार तेरी माँ हो चुकी होगी । आत्माएँ स्वतन्त्र हैं, कोई किसी का गुलाम नहीं। अज्ञानी मनुष्य कहता है- 'यह तो सब मेरा है, इसे तो अपने पास रखूँगा।' तत्वज्ञान की आत्मा चिल्लाती है- 'अज्ञानी बालको! विश्व का कण कण बड़ी द्रुतगति से नाच रहा है। कोई वस्तु स्थिर नहीं है, पानी बह रहा है, हवा चल रही है, पृथ्वी दौड़ रही है, तेरे शरीर में से पुराने कण भाग रहे हैं और नये आ रहे हैं, तू एक तिनके पर भी अधिकार नहीं कर सकता।

इस प्रकार बहती हुई नदी का आनन्द देखना है तो देख, रोकने खड़ा होगा तो लात मारकर एक ओर हटा दिया जायेगा।'

दुख, विपत्ति, व्यथा और पीड़ा का कारण अज्ञान है । मृत्यु के समय दुख प्राप्त करने का, नरक की ज्वाला में जलने का, भूत-प्रेतों में भटकने का, जन्म मरण की फाँसी पर लटकने का एक ही कारण है-अज्ञान, केवल अज्ञान । हे पाठको ! अन्धकार से प्रकाश की ओर चलो, मृत्यु से अमृत की ओर चलो । ईश्वर प्रेम रूप है, प्रेम की उपासना करो । स्वर्ग, पैसे से नहीं खरीदा जा सकता, खुशामद से मुक्ति नहीं मिल सकती, मजहबी कर्मकाण्ड आत्मा का कल्याण नहीं कर सकते। दूसरों की ओर मत ताकिए कि कोई हमें पार कर देगा, क्योंकि वास्तव में किसी भी दूसरे में ऐसी शक्ति नहीं है । **"उद्धरेत आत्मनात्मानम्"** आत्मा का आत्मा से ही उद्धार कीजिए, अपना कल्याण आप ही करिए । अपने हृदय को विशाल, उदार, उच्च और महान् बना दीजिए । अहंभाव का प्रसार करके सबको आत्म दृष्टि से देखिये, अपनी अन्तरात्मा को प्रेम में सराबोर

कर लीजिए और उस प्रेम का अमृत समस्त संसार पर बिना भेद भाव के छिड़किए, अपना कर्त्तव्य धर्मनिष्ठा पूर्वक पालन कीजिए, व्यवहार कर्मों में रत्ती भर भी शिथिलता मत आने दीजिए, पर रहिए "कमल पत्रवत्" । राजा जनक की तरह कर्मयोगी बनिए, अनासक्त रहिए, सर्वत्र आत्मीयता की दृष्टि से देखिए, अपनी महानता का अनुभव कीजिए और गर्व के साथ सिर ऊँचा उठा कर कहिए 'सोऽहम्', वह मैं हूँ ।

आत्म-ज्ञान द्वारा आप परलोक को परिपूर्ण आनन्दमय बना सकते हैं, मृत्यु फिर आपको दुख न देगी, वरन् एक खेल प्रतीत होगी, आप ऊँचे उठेंगे और महान् उद्देश्य को प्राप्त कर लेंगे। मृत्यु की तैयारी के लिए आज से ही आत्मा के विशुद्ध स्वरूप का चिन्तन आरम्भ कर देना चाहिए । अपनी महानता का ज्ञान होते ही माया-मोह के सारे बन्धन टूटकर गिर पड़ेंगे और आनन्ददायक दृष्टि प्राप्त हो जायगी । अपने तुच्छ और स्वार्थपूर्ण विचार को त्यागकर अपनी महान् आत्मा के दरवाजे पर सिंहनाद कीजिए -"सोऽहम्", वह मैं हूँ।

मृत्यु से वापस लौटने वालों के अनुभव

पुराने शरीर का अन्त और नवीन का आरम्भ होने के मध्य क्या स्थिति रहती है, इसका परिचय दो आधारों पर प्राप्त किया जा सकता है । एक घोषित मृत्यु के बाद फिर पुराने शरीर में वापस लौट आने वालों द्वारा उस थोड़ी अवधि में प्राप्त हुए अनुभवों से, दूसरा प्रेत स्तर पर अपने अस्तित्व का प्रमाण देने वाली आत्माओं की हलचलों से ।

यह दोनों ही संयोग हर मरने वाले को प्राप्त नहीं होते। न तो हर मरने वाला वापस लौटता है और न हर किसी का भूत-प्रेत बनना आवश्यक है । फिर भी जब-तब, जिस-तिस को इस स्थिति में पाया जाय और उसके कथन तथा हलचलों को नोट किया जाय । यदि ऐसे संयोग बैठ जाते हैं तो उन साक्षियों के आधार पर जो दो जन्मों की मध्यवर्ती अवधि में प्राणी को किन परिस्थितियों में गुजरना पड़ता है, इसका आभास मिल जाता है । ऐसे कुछ प्रामाणिक प्रसंग उपलब्ध भी हैं ।

विज्ञान की एक नयी शाखा विकसित हो रही है, जो मरणासन्न व्यक्तियों का अध्ययन करती है । इस विधा में यह जानने का प्रयास करते हैं कि क्या इन व्यक्तियों को मृत्यु का भय होता है ? निकटतम आ रही मृत्यों के बारे में बोध होने पर इन व्यक्तियों को कैसी अनुभूति होती है ? मृत्यु सम्बन्धी ऐसे तथ्यों का अध्ययन करने वाले इस विज्ञान को 'थेनेटालॉजी' कहते हैं । 'थेनेटॉस' (ग्रीक शब्द) का अर्थ है मृत्यु ।

पश्चिमी जर्मनी के एक डॉक्टर लोतर विट्जल ने मरणासन्न मरीजों से उनकी मृत्यु के २४ घण्टे पूर्व बातचीत की । उन्होंने पाया कि जैसे-जैसे मृत्यु आती है, मरणासन्न व्यक्ति मे उसका भय मिटता जाता है-बीमारी की वृद्धि के साथ-साथ ऐसे व्यक्तियों की धार्मिक आस्था दृढ़ होती चली जाती है और चिन्ताएँ कम होती जाती हैं ।

'मैसाचुसेट्स मेडीकल सोसायटी' बोस्टन निवासी डा० मूर रसेल फ्लेचर ने लगभग पच्चीस वर्षों तक गहन अध्ययन करने के पश्चात् इन तथ्यों को "ट्रिटाइज ऑन सस्पेण्डेड-एनीमेशन" नामक ग्रन्थ में लिपिबद्ध किया है, जिसमें मरने के उपरान्त फिर से जी उठे लोगों के अनुभव हैं । डॉ० फ्लैचर ने अपनी इसी पुस्तक में गार्नाइट शहर निवासी श्रीमती जान डी०ब्लेक के बयान के अनुसार लिखा है कि वे तीन-दिन तक मृतावस्था में पड़ी रहीं थी । डाक्टरों ने उन्हें मृत घोषित कर दिया, किन्तु घर वालों ने शरीर गर्म देखते हुए नहीं दफनाया । तीन दिन बाद वे जी उठीं । पूछने पर उन्होंने बताया कि वे ऐसे लोक में जा पहुँची थीं जिसे सचमुच उन्हें प्रत्यक्ष प्रसन्न उड़ती दिखाई दीं, जिनमें उनकी कुछ मृत सहेलियाँ भी थीं। ऐसे कई प्रसंग पिछले दिनों शोधकर्त्ताओं की जानकारी में आए हैं, जिनसे मरने के बाद जी उठने वाले व्यक्तियों ने अपनी सुखद-दुःखद अनुभूतियों को व्यक्त कर एक अदृश्य लोक पर पड़े पर्दे को उठाने में मदद मिली है ।

दस वर्षीया बालिका डेजी ड्राइडन की मृत्यु दस वर्ष की आयु में टाइफाइड के बिगड़ जाने के कारण हुई । मरने से दो-तीन दिन पूर्व उसे परलोक के दृश्य प्रत्यक्ष दीखने लगे । उसने जो बताया, उसके आधार पर 'जीवन के उस पार' नाम से अनुभव प्रकाशित हुए हैं । डेजी के कथनानुसार अपनी इसी दुनियाँ की तरह एक-दूसरी दुनिया भी है, जिसमें मृतात्माएँ और देवात्माएँ उसी प्रकार निवास-निर्वाह करती हैं, जैसे कि अपने इस लोक के निवासी ।

मृतक समझे गये रोगियों को पुनर्जीवित करने के लिए किये गये प्रयासों का विशिष्ट अध्ययन मनोविज्ञानी स्टेनिस्लाब ग्रोफ और जॉनहेलिफाक्स ग्रीफ ने किया है । इन्होंने अपने शोध प्रकाशनों में ऐसे कई रोगियों के मध्यवर्ती अनुभव बता सकने में समर्थ हुए । कैन्सर से मरे डीन गिवसन नामक एक रोगी ने पुनर्जीवित होने पर बताया कि पहले वह गहरे अन्धकार

में डूबा, इसके बाद उसे प्रकाश दीखा और उस पर फिल्म के पर्दे की तरह जीवन में किये गये भले-बुरे कामों की तस्वीरें फिल्म की तरह दिखाई पड़ीं । उसे लगा कि यह किसी न्यायाधीश का काम है । जो दण्ड-पुरष्कार देने से पहले यह दृश्य साक्षियाँ प्रस्तुत कर रहा है ।

हृदय रोग से मृत महिला ने शोधकर्त्ताओं को बताया कि वह रूई के रेशों की तरह हल्की बनकर अस्पताल की छत तक उड़ी चली जा रही थी । डक्टर नर्स आदि यथास्थान दीख रहे थे । दूसरी महिला को 'मृत्यु का क्षण' दुःखद नहीं प्रतीत हुआ अपितु मृतक सम्बन्धियों की समीपता, जो कि उसके स्वागत के लिए खड़े थे, सुखद ही लग रही थी । अधिकांश मृत व्यक्तियों को प्रकाश ज्योति के दर्शन हुए, जिसमें स्नेह और सहयोग का अनुदान झरते हुये अनुभव हुआ ।

सत्य की शोध में चेतना के सिद्धान्त का कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है । इस निष्कर्ष पर पहुँचे सर आलिवर लॉज एवं विलियम क्रुक्स जैसे भौतिकीविदों ने इस तथ्य को मुक्त कण्ठ से स्वीकारा है । उनका मत है चेतना, पदार्थों के संघात का प्रतिफल मात्र नहीं अपितु उससे भिन्न तथा स्वतन्त्र है, जो शरीर के विनष्ट हो जाने पर भी विद्यमान रहती है । इस तथ्य के प्रमाण में उन्होंने कई मृतात्माओं का सहयोगपरक आह्वान किया, जिसके फलस्वरूप आत्माओं ने उसे स्वीकारा और उन्हें सहयोग भी प्रदान किया था । 'केरी ऑन टार्किग' पुस्तक में कई प्रेतात्माओं के विज्ञानिकों द्वारा टेप किये गये सन्देशों का वर्णन है । इससे अदृश्य जगत के अस्तित्व की पुष्टि ही होती।

मृत्यु के समय अलग-अलग लोगों को इस लोक में भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभव होते हैं । इसका वर्णन करते हुए लेखक खेरेण्ड सीड्ट्रन टॉमस ने अपनी पुस्तक "इन दी डन्नृ वियाण्ड ऑफ" में एक व्यक्ति के मृत्यु के समय के अनुभवों को इन शब्दों में व्यक्त किया है- "मेरा हृदय बैठा जा रहा था । दिन का प्रकाश समाप्त होता जा रहा था । एकदम अँधेरा छा गया- फिर वायुमण्डल में कुछ ज्वाला दिखाई दी । मेरे पिता, मेरे भाई तथा अनेक सम्बन्धी जो मुझसे पहले मर चुके थे उनकी आवाजें साफ सुनाई दे रही थीं, वे सब मेरे पास ही उपस्थित थे।"

"फ्रन्टियर्स आप द आफ्टर लाइफ" के लेखक एडवर्ड सी० रेण्डेल ने ऐसी ही एक दिवंगत आत्मा के अनुभवों को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है- "मरने के बाद मैंने स्वयं को चारों ओर से स्वजन सम्बन्धियों से घिरा हुआ पाया । पहले पहल अपने आपको ऊपर उठते हुए देखा फिर धीरे-धीरे नीचे आ गया । एक शरीर बिस्तर पर पड़ा था तो दूसरा मैं खड़ा था । शारीरिक वेदनायें समाप्त हो गई थीं । जो आत्मायें मुझे लेने आयी थीं, उन्होंने मुझसे चलने को कहा । उन्होंने मुझे आश्वस्त किया कि मैं मर चुका हूँ । संयोगवश मेरा पुनर्जीवन हुआ लेकिन स्मृति उन क्षणों की भी रही ।

मूर्धन्य मनोविज्ञानी कार्लजुंग ने अपने निजी मरणोत्तर जीवन का रोचक वृत्तान्त स्वलिखित "मेमोरीज ऑफ ड्रीम्सरिफ्लेक्शंस' में लिखा है । सन् १९४४ में उन्हें भयानक दिल का दौरा पड़ा । डक्टर उन्हें मरणासन्न स्थिति में अनुभव कर रहे थे और आक्सीजन के सहारे बचाने का प्रयत्न कर रहे थे । इसी समय जुंग ने अनुभव किया वे हजारों मील ऊपर उड़ गये और अधर में लटके हुए हैं । इतने हल्के हैं कि किसी भी दिशा में इच्छानुसार जा सकते हैं । ऊपर से ही उन्होंने येरूशलम नगर का दृश्य तथा और भी बहुत-सी चीजें देखीं । उन्हें लगा वे अब पहले की अपेक्षा बहुत बदल गये हैं । बहुत देर इसी स्थिति में रहने के बाद उन्हें अपने पुराने शरीर में पुनः लौटना पड़ा और शरीरगत जीवन पुनः प्रारम्भ हो गया । जुँग ने लिखा है "मरणोत्तर जीवन की इस अलौकिक अनुभूति ने मेरे समस्त संशय समाप्त कर दिये और यह समझा दिया कि मरने के बाद क्या होता है ?" इसी प्रकार सुप्रसिद्ध परामनोवैज्ञानिक डा०किंग हेलर" ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "दी इम्मार्टल सोल" में ऐसी अनेकों घटनाओं को संकलित कर मृत्यु से वापस लौटे व्यक्तियों की अनुभूतियों का वर्णन उसमें किया है ।

ओटोरियो (कनाडा) कोस्टल क्षेत्र के एक एन्थ्यापॉलाजीस्ट डा० हव ग्रिफिन को सन् १९७४ में तीन बार हृदय के दौरे पड़े । हर बार उन्हें डक्टरों द्वारा मृतक घोषित कर दिया गया । पर आश्चर्य कि वे दौरे के कुछ मिनटों बाद ही जीवित हो उठते थे । मृत्यु के उपरान्त उन्हें जो अनुभूतियाँ होती थीं, वे लगभग समान थीं । ग्रिफिन का कहना है कि-प्रत्येक मृत्यु के उपरान्त के अनुभव में मैंने अपने को तेज प्रकाश से घिरा पाया वह प्रकाश मेरी ओर बढ़ रहा था । साथ ही आवाज हुई- 'आ जाओ-सब ठीक है ।' अचानक मेरे सीने पर तेज आघात हुआ; आवाज भी सुनाई दी- 'क्या मैं बिजली के झटके दूँ ? दूसरी ओर से आवाज आई- "नहीं अभी नहीं । ऐसा लगता है कि जीवन अभी शेष है स्वयं यह श्वाँस लेने लगेगा।' इसके बाद मैं अस्पताल में पड़े अपने शरीर में वापस पहुँच गया । जहाँ मेरे दोनों ओर दो चिकित्सक खड़े थे । एक के पास डिफिलब्रिलेटर (शॉक देने वाली मशीन) व दूसरे पास निदान के उपकरण थे ।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान् अगस्त सन् १९४४ को एक फौजी अफसर से सम्बन्धित एक घटना 'मित्र राष्ट्र गजेटियर'

में प्रकाशित हुई थी । आफीसर स्काउट कार द्वारा जा रहा था तभी जर्मन टैंकों ने उस पर सीधा प्रहार किया । उसकी कार में भी विस्फोटक पदार्थ भरा था । उसमें तुरन्त आग लग गयी । गजेटियर में लिखा है- ''जैसे ही विस्फोट हुआ, मैं २० फुट दूर जा गिरा । ऐसा लगा मानो मैं दो भागों में विभक्त हो गया हूँ । मेरा एक शरीर नीचे जमीन में पड़ा तड़प रहा है, उसके कपड़ों में आग लगी है दूसरा ऊपर आकाश में हवा की तरह तैर रहा है । वहाँ से सड़क पार की, वही युद्ध का दृश्य, झाड़ियाँ, जलती कार आदि सब कुछ मैं देख रहा था । तभी अन्तःप्रेरणा उठी कि तड़फड़ाने से कुछ लाभ नहीं, शरीर को मिट्टी से रगड़ दो ताकि आग बुझ जाये । शरीर ने ऐसा ही किया । वह लुढ़क कर बगल की नम घासयुक्त खाई में जा गिरा, आग बुझ गयी । फिर मैं वापस उसी शरीर में आ गया । अब शरीर की पीड़ा का आभास हुआ जो असहनीय थी । जबकि थोड़ी देर पूर्व ही मैंने इस दृश्य को देखा था ।

कुछ वर्ष पूर्व इसी प्रकार की एक घटना हरदोई जिले के पनहइया गाँव में घटित हुई । सखावक्श सिंह गाँव के मुखिया थे । उनका ट्रक ड्राइवर एक दोपहर घर के आँगन में विश्राम कर रहा था, कि इतने में उसकी आँखें लग गईं । थोड़ी देर बाद वह कराहते हुए उठ बैठा और अपने सीने पर हाथ फेरने लगा । उसकी छाती में जले का निशान उभर आया था । सम्बन्धियों के पूछने पर उसने बताया- ''जब मैं सो रहा था, तो एक यमदूत आया और मेरे प्रतिरोध के बावजूद मुझे उठा ले गया । जहाँ वह मुझे ले गया, वहाँ का वातावरण अद्‌भुत था। चारों ओर नीले रंग का एक दिव्य प्रकाश फैला हुआ था बड़े-बड़े गगन-चुम्बी महल थे, सभी सफेद संगमरमर के बने थे । सामने ही सफेद दाढ़ियों वाला एक दिव्य पुरुष बैठा था । उसके समस्त शरीर से अलौकिक तेज निकल रहा था। मुझे देखते ही उसने उस सिंहानीनुमा दूत से कहा- ''इतनी जल्दी इसे क्यों ले आये ? वापस ले जाओ ।'' तत्पश्चात् दूत ने मुझे लौट चलने को कहा, किन्तु तब तक मैं वहाँ इतना रम चुका था, कि लौटने से इन्कार कर दिया । इस पर एक तप्त सलाख से उसने मुझे दागा और जमीन पर पटक दिया । इतने में मेरी नींद खुल गई ।'' आज भी उसके सीने पर वह निशान बना हुआ है ।

एक ऐसी ही घटना न्यूयॉर्क, अमरीका की है । निल्सन नामक एक बाइस वर्षीय युवक कार में एक मित्र के साथ घूमने जा रहा था । पास ही सड़क पर एक भयंकर मोड़ था। कार तेज गति से जा रही थी । मोड़ में वह गाड़ी को सम्भाल न सका और सामने से आती एक बस से कार जा टकरायी। एक तीव्र चीत्कार के साथ नेल्सन बेहोश हो गया । उसके मित्र को कोई विशेष चोट नहीं आयी । वह तुरन्त नेल्सन को पास के अस्पताल में ले गया । डॉक्टरों के अथक प्रयास के बाद ही वह खतरे से बाहर हो सका । कुछ दिन पश्चात् जब नेल्सन स्वस्थ हुआ, तो बेहोशी के बाद का सारा वृत्तान्त हूबहू दुहराकर लोगों को सकते में डाल दिया । उसने जो कुछ सुनाया वह इस प्रकार है- ''बस से जब कार टकरायी, तो मेरे सिर पर तीव्र आघात हुआ । एक असह्य पीड़ा से मैं छटपटा उठा। फिर मुझे ऐसा आभास हुआ मानो मैं तृणवत् हल्का हो गया हूँ और ऊपर उठ रहा हूँ । मुझे मेरा शरीर गाड़ी के अन्दर क्षत-विक्षत दिखाई पड़ा । मित्र एक ओर पड़ा था । देखते-देखते वहाँ काफी भीड़ इकट्ठी हो गई । मेरे दोस्त ने दो अन्य व्यक्तियों की सहायता से मेरे घायल शरीर को कार से बाहर निकाला और एक अन्य कार से हास्पीटल ले आया । यहाँ कुछ समय बाद मैं पुनः अपने शरीर में प्रविष्ट कर गया ।'' इस बीच उपस्थित लोगों के मध्य जो भी वार्ता हुई थी; उसने शब्दशः उसे सुना डाला ।

बोस्टन में इसी प्रकार की एक घटना तब घटित हुई जब ३२ वर्षीय मॉम लाउरा स्पिटलर अपने हृदय रोग के इलाज के लिए वहाँ के एक स्थानीय अस्पताल में भर्ती हुईं । आरम्भिक परीक्षण के बाद डॅक्टरों ने हृदय का ऑपरेशन करने का निश्चय किया । आपरेशन प्रारम्भ हुआ, किन्तु बीच में ही किसी कारणवश उसकी हृदय गति रुक गई । डॅक्टरों के लाख प्रयत्न के बावजूद भी धड़कन चालू न हो सकी । ऑपरेशन पूरा हो चुका था । डॅक्टर इस कारण और भी परेशान थे, क्योंकि महिला गर्भवती थी । हृदय गति बन्द होने से गर्भस्थ शिशु को भी खतरा हो सकता था । इस सम्बन्ध में अभी वे बच्चे को आपरेशन द्वारा बाहर निकालने पर विचार कर ही रहे थे, कि अचानक धड़कन फिर आरम्भ हो गई । धीरे-धीरे स्पिटलर होश में आयीं और इस बीच के सारे अनुभव को कह सुनाया- ''एकाएक मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं अपने शरीर से बाहर निकल आयी हूँ । डॅक्टरों से घिरे बिस्तर पर मुझे अपना शरीर स्पष्ट दीख रहा था और मैं यह भी देख रही थी, कि डॅक्टर मेरे मामले से परेशान हैं । उनके बीच जो कुछ बात-चीत हो रही थी, सब मुझे स्पष्ट सुनाई पड़ रहा था । इस वक्त स्वयं को मैं बिल्कुल भारहीन महसूस कर रही थी तथा हवा में इधर

उधर तैर सकती थी ।'' इस प्रकार के घटनाक्रम ओ०बी०ई० (आउट ऑफ बाडी एक्सपीरियन्स) नाम से जाने जाते हैं । ऐसे अनेकों अनुभवों का संकलन परा मनोवैज्ञानिकों ने किया है ।

मरणोपरान्त जिन्दा होने की एक अन्य घटना इंग्लैण्ड की है । वारविकशायर में विल्सन ट्रैपर नामक एक व्यापारी अपने परिवार सहित रहता था । एक बार वह गम्भीर रूप से बीमार पड़ा । स्थिति नाजुक देखकर उसे दूरवर्ती अस्पताल ले जाने की बजाय पड़ौस के डॅक्टर को उपचार के लिए बुलाना उत्तम समझा गया । डॉक्टर आया, किन्तु तब तक ट्रैपर शान्त हो चुका था । फिर भी परिवार वालों के सन्तोष के लिए उसने उसकी शारीरिक जाँच की और ड्रैपर को मृत घोषित कर दिया। सभी रोने-चीखने लगे पर आश्चर्य, आधे घण्टे बाद ही पुनः उसके शरीर में हलचल दिखाई दी । डॉक्टर को फिर बुलाया गया । चेकअप के बाद उसे जीवित पाया और अविलम्ब अस्पताल ले जाने की सलाह दी । उपचार के बाद ट्रैपर स्वस्थ हो गया और अपना मरणोत्तर अनुभव सुनाते हुए कहता- 'मेरी मृत्यु पर सभी विलाप कर रहे थे । मैं उन्हें स्पष्ट देख-सुन रहा था । मगर मुझ पर किसी की दृष्टि पड़ती ही नहीं थी । चिल्ला-चिल्ला कर मैं कह रहा था, कि मुझे कुछ नहीं हुआ है, मैं बिल्कुल ठीक हूँ, पर मेरी कोई सुनता ही नहीं था । कुछ समय पश्चात् यकायक यह अनुभूति समाप्त हो गयी, सारे दृश्य ओझल हो गये और मैं वापस अपने शरीर में आ गया ।

अनेक बार ऐसा भी होता देखा गया है कि व्यक्ति मृत्यु-शैया पर पड़ा हो और मृत्यु से पूर्व सूक्ष्म लोक के उसे सारे दृश्य दिखाई पड़े हों । इसमें उस लोक का दिव्य वातावरण तथा वर्षों पूर्व मरे उसके सगे-सम्बन्धी भी सम्मिलित होते हैं । यदा-कदा दृश्य में ऐसे सम्बन्धी भी दिखाई पड़ जाते हैं, जिनकी मृत्यु की सूचना मरणासन्न व्यक्ति को होती ही नहीं ।

ऐसी ही एक घटना का उल्लेख सर विलियम बैरेट ने अपनी पुस्तक ''द बुक ऑफ लिविंग डेड'' में किया है । बोन शहर में एक महिला की तवियत प्रसव उपरान्त अचानक खराब हो गई । तुरन्त महिला डॅक्टर को बुलाया गया । स्थिति में सुधार न होते देख डॅक्टर कुछ परेशान-सी दीखने लगी । इस पर महिला ने कहा- 'डॅक्टर, परेशान मत हो । मुझे उस संसार में चली जाने दो । कितना सुन्दर दृश्य है वहाँ, कितने अच्छे वहाँ के लोग हैं, कितने दिव्य प्रकाश से वहाँ का वातावरण आलोकित हो रहा है, इतने में एक ओर इशारा करते हुए अपने मृत पिता से बात करने लगी, मानो सचमुच ही रक्त-माँस का उनका शरीर वहाँ उपस्थित हो । वह कहने लगी- ''पिताजी, मैं जल्द ही आ रही हूँ । देखिये न ये मुझे आने ही नहीं देते ।'' इसी बीच वह एक ओर मुड़ी और विस्फारित नेत्रों से शून्य में कुछ घूरने लगी । तभी उसकी बूढ़ी माँ उस कमरे में पहुँची । उसने माँ की ओर देखते हुए आश्चर्य प्रकट किया- 'माँ ! यह जेनी पिताजी के साथ कैसे हैं ? यह तो हैमवर्ग में पढ़ रही है ?' जैनी उस महिला की छोटी बहन थी । एक सप्ताह पूर्व किसी दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गई थी, जिसकी खबर जानबूझकर उससे छुपायी गई थी । दो दिन पश्चात् उस महिला की मृत्यु हो गई ।

न्यू साउथ वेल्स की एक घटना है । डेविड और हेरी दो भाई थे । हैरी बड़ा था और न्यू साउथ वेल्स से १५ मील दूर एक अन्य शहर में नौकरी करता था । कमरे में आग लग जाने से उसका आकस्मिक निधन हो गया । इसकी सूचना डेविड को नहीं थी । वह बीमार था । बड़े भाई की मृत्यु के पाँच दिन बाद उसका भी देहान्त हो गया । निधन से एक घण्टा पूर्व वह एकदम बिस्तर पर उठ बैठा और पैताने की ओर इंगित करते हुए बोला-- 'पिताजी, वहाँ हैरी खड़ा मुझे बुला रहा है ।' उसकी यह बात कमरे में खड़ी उसकी माँ और नर्स ने भी स्पष्ट सुनी ।

इस विषय पर शोध कार्य में डॉ. रेमण्ड मूडी का नाम शीर्ष स्थान पर लिया जाता है । ऐसे ही प्रयोगों के पश्चात् उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी - ''लाइफ आफ्टर लाइफ'' । कैथोलिक चर्च की मान्यता के पक्षधर इस चिकित्सक द्वारा लिखी पुस्तक की प्रामाणिकता में इसलिए सन्देह की गुंजाइश नहीं है, कि एक तो लेखक का व्यक्तित्व ज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है । साथ ही उसने कई विश्वविद्यालयों से चिकित्सा विज्ञान की उच्चस्तरीय डिग्रीयाँ प्राप्त की हैं और लम्बे समय तक उनमें प्राध्यापक रहे हैं । विज्ञान की कितनी ही उच्च संस्थाओं के सम्माननीय सक्रिय सदस्य रहे हैं । इसके अतिरिक्त इस शोध को उन्होंने किम्बदन्तियों और जन-श्रुतियों के आधार पर नहीं चलने दिया है, वरन् जो भी घटना इस प्रकार की उनकी जानकारी में आई है, उसका प्रत्यक्ष पता लगाने वे स्वयं पहुँचे हैं । साथ ही यह भी प्रयत्न करते रहे हैं कि चयनकर्त्ता कहीं किसी भ्रान्ति का शिकार तो नहीं हुआ है । कहीं अपने को चर्चा का विषय बनाने के लिए वह अत्युक्तियों का आश्रय तो नहीं ले रहा है ?

एकत्रित अनुभवों से ज्ञात होता है कि लगभग सभी की यह अनुभूति रही है कि उनका शरीर मृत शरीर से अलग हुआ

था, वह अत्यन्त ही हल्का और अदृश्य स्थिति में था । वह दूसरों को देखता है पर दूसरे उसे देख नहीं पाते । वह कुछ कहना भी चाहता है, पर वाणी इतनी अस्पष्ट होती है कि किसी के कान में उसकी भनक तक नहीं हो पाती । आँखों के आगे से पूरी तरह अदृश्य रहने पर भी उससे स्वयं यह अनुभव है कि वह शरीर धारण किये हुए है । ठीक वैसा ही जैसा कि मृत शरीर धारण किये हुए है । अन्तर केवल इतना ही है कि मृत शरीर रोगी, विकृत, कुरूप आकृति का है । वस्त्र पहने या ओढ़े हुए है । जबकि मृतात्मा को रोग काल जैसी कोई पीड़ा होती नहीं, न ही काया से दूर रहने पर किसी प्रकार की कोई अड़च की अनुभूति ही नहीं होती है । यह ज्ञान बना रहता है कि बिस्तर पर पड़ा शरीर उसका अपना है । इसे मित्र सम्बन्धियों ने घेर रखा है और उसका अंतिम संस्कार करने की तैयारी में लगे हैं । मृतक के सम्बन्ध में कई प्रकार की चर्चाएँ होती हैं । उन्हें वह सुनता तो है, पर किसी बात का उत्तर देने की स्थिति में नहीं होता । पुराने शरीर के साथ जो अपनापन था, पुराने सम्बन्धियों के साथ जो ममत्व था, वह घटने लगता है । क्योंकि नये सूक्ष्म शरीर में कोई ऐसी असुविधा नहीं होती, जिससे किसी बड़ी हानि का अनुभव करना पड़े । ठीक उसी तरह के विचार, स्वभाव एवं आकृति-प्रकृति का नया शरीर मिल जाने पर सुविधाएँ अधिक प्राप्त होती हैं। उसे किसी बाहरी उपकरण या आच्छादन की आवश्यकता नहीं होती । नया शरीर इतना हल्का और ऋतु प्रभावों से सुरक्षित होता है कि नये शरीर के मिल जाने पर पुराने में लौटने की एक हल्की इच्छा नहीं होती तो भी नये सूक्ष्म शरीर की स्थिति ऐसी होती है कि उसमें रहते हुए काम मजे में चलता रहता है ।

प्राणों के निकलते समय रोगी को घुटन आदि का कष्ट होता है । पर जब प्राण शरीर छोड़ देता है तो इस विच्छेद के समय एक विचित्र अनुभव होता है । लगता है किसी गुफा के इस पार से उस पार जाया जा रहा है । गुफा के प्रारम्भिक कोने पर अँधेरा होता है जिसमें प्रवेश करते समय यह अनुभव होता है कि न जाने आगे क्या होगा ? पर वह स्थिति ज्यादा देर तक नहीं रहती । दूसरा सिरा आता है और प्रकाश भर जाता है । आस-पास की सभी वस्तुएँ दीखने लगती हैं ।

जब तक शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया नहीं हो जाती या धरती में सुला नहीं दिया जाता, तब तक आत्मा उसके इर्द-गिर्द ही मँडराती रहती है । सम्बन्धियों, कुटुम्बियों को देखती रहती है । उसकी व्यथा वेदना का भी अनुभव होता रहता है, पर वापस शरीर में प्रवेश करने की ताकत नहीं रहती । उसे यह भी स्मरण नहीं रहता कि शरीर के इतने बड़े कलेवर में वह कहाँ से निकला गया था और कहाँ होते हुए प्रवेश किया जाता है '?

इस तरह की घटनाओं के सैकड़ों विवरण डा० रावर्ट कूकल की पुस्तक ''टेकनीक्स आफ एल्ट्रल प्रोजेक्शन, एन्थोनी बैगिया, की पुस्तक ''मोर एबाउट लाइफ इन दी वर्ल्ड अनसीन'', डा० जेम्स पाइक की पुस्तक ''दि अदर साइड'', डब्ल्यू टी स्टेड की पुस्तक ''आफ्टर डेथ'' एदं ''बियाण्ड दि हीराइंजन'' ''पोस्टमार्टम जनरल,'' लाइफ वर्थ लिविंग'' तथा ''सुप्रीम एंडवेयर'' जिन्हें क्रमशः ग्रेस रोशर (प्रकाशन जेम्स क्लार्क एण्ड कं०) मिसेज जैन शेरवुड (प्रकाशक मेसर्स नेबिल्ले स्पेयर मैन ११२ ह्वाइट फील्ड स्ट्रीट लन्दन) मिसेज हैस कोप (प्रकाशक मैसर्स चार्ल्स टेलर, बुक हाउस लन्ददन) तथा जियोलाजिकल सर्वे लन्दन के तत्कालीन प्रधानाचार्य और भूगर्भ विज्ञानवेत्ता आर० हेस्टिंग्स ने लिखी है । इस तरह के विख्यात व्यक्तियों की अनुभूतियों को वो यों ठुकराया जाना मानवी आस्था के लिये घातक नहीं तो अशोभनीय अवश्य कहा जायेगा । इन पुस्तकों के कुछ उद्धहरण-

लॉरेंस आफ अरेबिया- जिन्हें लोग स्काट कहकर बुलाया करते थे, ने अपने अनुभव इन शब्दों में व्यक्त किये हैं यह एक ऐसी दुनियाँ है जहाँ न प्रकाश है और न अन्धकार है धूमिल वातावरण जान पड़ता है, ऐसा लग रहा है कि दीपक बुझ रहा है और मुझे निद्रा घेरती चली आ रही है, इस समय मेरी इच्छायें - नींद में न जाने के लिये झगड़ती और मचलती सी लगती है किन्तु..... !

''वियान्ड दि होराइजन'' में गोर्डन का अनुभव --मेरी चेतना शरीर से बाहर आ गई, मैंने इतना हल्कापन अनुभव किया मानो सारे शरीर से की थकावट विश्राम में बदल गई हो, पर मेरे मन में बार-बार पत्नी रोशर का स्नेह उमड़ता था अतएव वहाँ से हटने का मन नहीं कर रहा था । पत्नी की आँखों में आँसू थे, उनकी रोने की आवाज और वह जो भी कहती थी, उन्हे मैंने स्पष्ट सुना । उन्होंने यह शब्द कहे मैंने उनको समझाने, उनके आँसू पोंछने का प्रयास भी किया पर न तो मुझ से आँसू धुले न किसी ने मेरी आवाज सुनी, तब

मैंने अनुभव किया कि यह शरीर छूट जाने की अवस्था हैं। उसे समय मुझे बहुत दुख हुआ मैंने सारी शक्ति लगाकर अपने शरीर में घुसने का प्रयास किया, पीछे क्या हुआ ? कैसे हुआ ? याद नहीं आता ।

आफ्टर डेथ में प्रकाशित जूलिया का संस्मरण और भी मार्मिक है । यह पुस्तक १८९७ में प्रकाशित हुई और अब तक उसके लगभग बीस संस्करण छप चुके हैं । जर्मन स्विस फ्रेन्च, डेंनिस रशियन तथा इटैलियन भाषा में उसके अनुवाद भी छप चुके हैं । जुलिया एक बहुत रङ्गीन स्वभाव की लड़की थी । सुन्दर होने के कारण उसके अनेक मित्र थे । अपने मित्रों से वह प्रायः कहा करती थी कि यदि मेरी मृत्यु हुई तो मिलती अवश्य रहूँगी । संयोगवश १२ दिसम्बर १८९१ में उसकी मृत्यु हो गई । मृत्यु के बाद उसके कई मित्रों ने तो उसके प्रेत को मँडराते हुए देखा ही, कुछ अजनबी आत्माओं को उसके संदेश भी मिले, जिसमें उन लोगों को न केवल वह सन्देश प्राप्त हुए जिन्हें जूलिया के अत्यधिक निकट सम्बन्धी ही जानते थे । ऐसे लोगों में वह भी थे जिन्होंने उसे कभी देखा ही न था, पर जब सैकड़ों फोटो उनके सामने रखे गये तो उन्होंने जूलिया का फोटो ग्राफ पहचान कर बता दिया उन लोगों ने बताया कि जूलिया की आत्मा अपने मित्रों के लिये भटकती रहती है, वह उन्हें देखती है पर स्वयं न देखे जाने या स्पर्शजन्य अनुभूति का आनन्द न प्राप्त कर सकने के कारण वह आतंकित और पीड़ित रहती है ।

डा० रावर्ट कूकल ने स्वीकार किया है मृत्यु के बाद मनुष्य अपने सूक्ष्म अणुओं के शरीर से बना रहता है उसके मन की चंचलता, इच्छाएँ और वासनाएँ बनी रहती हैं, यदि वे अतृप्त रहे या जहाँ आसक्ति होती है जीव वहीं मँडराता रहता है ।

डेट्रायर (अमरीका) के एक अखबार में कुछ समय पूर्व 'उस पार' शीर्षक से एक लेखमाला छपी थी । उसमें उन लोगों के अनुभव संस्मरण शैली में प्रकाशित हुए थे, जो मरने के बाद पुनः जीवित हो गये थे । इन संस्मरणों में एक अनुभव मियानी निवासी लिनमेलबिन का भी था, जिन्होंने बताया कि,

मृत्यु से पूर्व उन्हें तीव्र ज्वर के कारण मस्तिष्क में भारी जलन हो रही थी कि अचानक सब कुछ शान्त हो गया और मैं शक्ति, शान्ति, स्वतन्त्रता तथा शीतलता का अनुभव करते हुए हवा में तैरने लगा । अपने चारों ओर का वातावरण मुझे बेहद रंगीन और सुहावना लगा । इस आश्चर्यपूर्ण स्थिति का पहले तो कोई कारण समझ में नहीं आया, पर पीछे लगा कि मैं मर गया हूँ और आत्मा के रूप में स्वच्छन्द विचरण कर रहा हूँ । यह स्थिति भी देर तक नहीं बनी रही किसी ने मुझे पुनः शरीर में धकेल दिया और मैं जीवित हो उठा । देखा तो पाया कि मेरे मृत शरीर को दफनाने के लिए परिवार के लोग आवश्यक तैयारी करने में लगे हुए थे । मरने के बाद वापस जी उठने पर उन लोगों ने भी प्रसन्नता अनुभव की, खासतौर से मेरी छोटी लड़की ने ।

इस विषय पर तमाम पुस्तकें भी लिखी गई हैं जिसमें एक है-''जौन वेस्ट'' जिस के रचयिता हैं-एस०एस०वार्ड उन्होंने अपने शोध अध्ययन का आधार उन व्यक्तियों को चुना है जो थोडे समय के लिए मरे थे । घटनाओं की इसी शृंखला में एक व्यक्ति की घटना को उसी के शब्दों में वर्णन करते हुए कहा है- मृत्यु के आगमन पर मुझे एक बोझ सा अनुभव होने लगा । धीरे-धीरे ऐसा लगा कि बोझ खिसकता जा रहा है । कुछ ऐसी अनुभूति थी, जैसे हाथ को दस्ताने से खींचा जा रहा हो । अंधकार जो पहले गहन था, बाद में समाप्त हो गया । अब मैं बिल्कुल मुक्त था और अपने शरीर को विस्तर पर पड़े देख रहा था । उस समय का संस्मरण याद है जब किसी ने कहा अब यह चला गया । बाद में कमरा एवं अन्य वस्तुएँ लुप्त होती गईं और तब मैं खूबसूरत दुनिया में था ।

ऐसी ही घटनाओं का अध्ययन डेथ एन इन्टरेस्टिंग जर्नी नामक पुस्तक में शो एन्विन ने किया है । उन्होंने व्यापक छान-बीन एवं जाँच पड़ताल के आधार पर इस पुस्तक की रचना की है। इस में उन्होंने स्पष्ट किया है कि मृत्यु के समय घटना बहुत तेज घटती है एवं जीवात्मा एक ऐसी दुनियाँ में प्रवेश करता है जहाँ बहुत तेज कम्पत्र होते हैं । मृत्यु के समय होने वाले अनुभवों का आधार अपना अपना विश्वास होता है किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जीवात्मा की चेतना, शरीर चेतना, बोध शक्ति से बहुत सूक्ष्म एवं आगे होती है । इसलिए वह पुराने मकान को छोड़ने के लिए पहले से ही तैयार रहती है । यहाँ तक कि दुर्घटना घटने की स्थिति में जीवात्मा पहले ही शरीर को छोड़ देती है । इसी कारण इस तरह मरने वाले व्यक्तियों को अपने शरीर के चोट का टूटफूट का न तो भान होता है और नहीं किसी प्रकार की पीड़ा होती है ।

उक्त पुस्तक में वर्णित एक अन्य विवरण के अनुसार स्विट्जरलैंड निवासी जैसोन हरमन एक बार बर्फीले तूफान में भटक गये । वहाँ उनकी प्राणांत जैसी स्थिति हो गयी । जब उन्हें ढूँढ़ा गया और चिकित्सा उपचार से वह सौभाग्य से पुनर्जीवित हो गये तो उन्होंने बताया कि मैं मार्ग की तलाश में कई घण्टों

तक भटकता रहा जब मार्ग नहीं मिला तो थक कर गिर पड़ा इसके बाद होश नहीं रहा । केवल इतना याद है कि मैं उस अवस्था में बहुत सुख एवं आनंद अनुभव कर रहा था ।

दुर्घटना में मृत घोषित कर दिये गये, परन्तु बाद में जीवित हो उठे व्यक्तियों से संपर्क कर उनके अनुभवों का अध्ययन करने के बाद डा० एम० बेनफोर्ड ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की है । उन्होंने लिखा है कि दुर्घटनाओं के कारण घटित होने वाली मृत्यु की घटना बड़ी गति से घटती है और जीव को शरीर से विलग हो जाने का अनुभव भी नहीं होता । ये आकस्मिक दुर्घटनायें बडी भीषण और दर्दनाक होती हैं । परन्तु जो मर जाते हैं, उनके लिए मृत्यु बड़ी विस्मयपूर्ण घटना होती है ।

'थेनेटॉलाजी' विज्ञान के इस पक्ष पर अब वैज्ञानिक बड़ी गहराई से ध्यान दे रहे हैं । मरण प्रक्रिया के मनो-सामाजिक पक्षों का अध्ययन ही इसका केन्द्र बिन्दु है । कई घटनाओं के विश्लेषण एवं किसी भी प्रकार के फ्राड का खण्डन कर वैज्ञानिक अब क्रमशः इसी निष्कर्ष पर पहुँचते जा रहे हैं कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है । चेतना शाश्वत है व आत्मा शरीर क्षय के बाद भी बनी रहती है । एक नहीं, सहस्रों ऐसे उदाहरणों ने इस पूर्वात्त दर्शन के सिद्धान्त की पुष्टि भी की है । वैज्ञानिकों ने भी अपना दुराग्रह छोड़ा है और तथ्यों को अंगीकार किया है ।

इस प्रकार की जितनी भी घटनाओं के विवरण देश विदेश के थेनेटालाजिस्टों ने संकलित किये हैं, उनसे भारतीय दर्शन की यही मान्यता पुष्ट होती है कि मृत्यु कोई अस्वाभाविक दुखद और पीड़ादायी घटना नहीं है । उन विवरणों से शरीर चेतना की भिन्नता तो सिद्ध होती ही है, यह भी सिद्ध होता है कि शरीर इस चेतनाशक्ति के कारण ही स्पर्श, ग्रहण, सम्वेदन, स्पंदन और क्रिया-शीलता अपनाता है, अर्थात् शरीर अपनी सार्थकता के लिए आत्म तत्व पर निर्भर है, जबकि आत्मचेतना शरीर की शक्ति सामर्थ्य या स्थिति पर रत्ती भर भी निर्भर नहीं है । फटे हुए वस्त्र को व्यर्थ और निरुपयोगी जान कर जिस प्रकार उतारकर रख दिया जाता है उसी प्रकार जीवात्मा भी जीर्ण अशक्त शरीर को अपने रहने योग्य न समझकर उसका परित्याग कर देती है ।

मृत्यु उतनी भयानक नहीं जितनी सोचते हैं

पुराने कपड़े उतारकर नये कपड़े पहनने में किसी को क्या कष्ट होता है ? यह प्रश्न ही हास्यास्पद लगता है लगभग इसी तरह का प्रश्न मृत्यु के सम्बन्ध में पूछा जाय तो उसका उत्तर गम्भीरता से ही दिया जाता है । कारण कि लोगों की मान्यता है, मृत्यु एक दुखदायी, कष्टप्रद और दारुण वेदना देने वाली प्रक्रिया है । मृत्यु कष्टप्रद और दुखदायी प्रक्रिया लगती तो है परन्तु वास्तव में वह है नहीं । बचपन से किशोरावस्था में, कैशोर्य से यौवन में और यौवन से प्रौढ़ परिपक्व स्थिति में विकसित होने तक जो आनन्द और उल्लास अनुभव होता है या कोई विशेष परिवर्तन होता दिखाई नहीं देता, इसलिए इस विकास की स्थिति में किसी को कष्ट अनुभव नहीं होता। मृत्यु इसलिए कष्टप्रद अनुभव होती या प्रतीत होती है कि मरने वाला व्यक्ति दारुण वेदना भोग रहा है कि उसके साथ ही ऐहिक जीवन का अन्त हो जाता है और जिसके जीवन का अन्त हो जाता है, वह लौटकर बता नहीं सकता कि उसे कैसा अनुभव हुआ ?

मृत्यु के सम्बन्ध में अज्ञान ही मनुष्य को उसके प्रति तरह-तरह की धारणाओं को जन्म देता है । मृत्यु वास्तव में है क्या ? यह घटना घटते समय लोगों को कैसा अनुभव होता है ? वैज्ञानिकों के लिए यह भी शोध का एक विषय रहा है । इसके लिए कई वैज्ञानिकों ने उन व्यक्तियों के अनुभव एकत्रित किये हैं-जो मरने के बाद जीवित हो उठे या डॉक्टरों ने जिन्हें मृत घोषित कर दिया था, परन्तु वास्तव में वे जीवित थे और पुनः स्वस्थ होकर सामान्य जीवनक्रम व्यतीत करने लगे।

इस तरह का अनुसन्धान करने वालों में अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ कुवलर रास का नाम अग्रणी है । उन्होंने तीन सौ से भी अधिक व्यक्तियों से भेंट की । ये सभी लोग ऐसे थे जो मरने के बाद पुनः जीवित हो उठे थे । इन व्यक्तियों ने अपने अनुभव जिस रूप में व्यक्त किए उनसे सिद्ध होता है कि मृत्यु कोई दुखदायी घटना नहीं है । मरने के पूर्व तक लगता अवश्य है कि कोई बहुत बड़ी यन्त्रणादायी घटना घटने जा रही है किन्तु वास्तव में ऐसा कुछ नहीं होता । एक महिला ने जो अचानक बीमार पड़ गई थी और इसी बीमारी में वह मृत्यु तक पहुँच गई थी। अपना अनुभव बताते हुए कहा ''अचानक बीमार पड़ जाने के बाद मुझे लगने लगा कि मैं मरने ही वाली हूँ । अस्पताल में मेरे साथ जो मरीज थे, उनके सभी रोग मेरे ऊपर इकट्ठे हुए जा रहे हैं और मैं किसी की सहायता चाहती थी, जो मुझे इस मानसिक यन्त्रणा से निकाल सके या इनसे छुटकारा दिला सके । मैं सहायता के लिए किसी को पुकारना चाहती ही थी कि मुझे किसी का शांत गम्भीर धीर उत्साह बढ़ाने वाला स्वर सुनाई दिया, जो कह रहा था, साहस करो । आगे बढ़ो ।

जैसे ही मैंने साहस वटोरा मेरा सारा दर्द दूर हो गया। तभी मेरे सामने एक प्रकाशपूर्ण आकृति आयी । उसके साथ उसी जैसा आलोक लिए कमल का फूल दिखाई दिया । मुझे अनुभव हुआ कि मेरा साँस रोग और रोग की पीड़ा तिरोहित हो गए हैं । उस समय मुझे भी अपना पूरा शरीर प्रकाश पुंज सा दिखाई दे रहा था । कि मैं बहुत हल्की हो गई हूँ । उस समय विस्तर पर पड़े अपने शरीर को अच्छी तरह देख सकती थी । थोड़ी देर बाद मैं अपने शरीर में वापस आ गई । मेरी चेतना जब वापस लौटी तो सम्बन्धियों से मुझे ज्ञात हुआ कि चिकित्सकों ने मुझे मृत घोषित कर दिया था ।

एक और महिला ने मृत्यु का अनुभव इस प्रकार बताया, "बीमारी की हालत में अचानक मेरी हृदय गति रुक गई । तब मेरे चिकित्सक ने अपने एक सहयोगी डॉक्टर से कहा, डॉक्टर यह तो मर गई । मैं कहना चाहती थी कि मैं मरी नहीं हूँ, परन्तु चाह कर भी मेरे होंठ खुल नहीं रहे थे । डॉक्टरों ने आदेश दिया कि मेरे शव को अस्पताल के वार्ड से बाहर निकाला जाए । मैं यह सब देख और सुन रही थी, परन्तु कुछ कह नहीं सकती थी ।"

जिन लोगों की अचानक या किसी दुर्घटना में मृत्यु हो जाती हैं, उन्हें कैसा अनुभव होता है ? इस सम्बन्ध में भी रोचक और दिलचस्प बातें जानने को मिलीं । एक व्यक्ति ने, जिसकी मृत्यु सिर में चोट लगने से हो गई थी तथा जो मरने के बाद पुनः जीवित हो उठा था,कहा-थोडी देर के लिए मेरा सारा दर्द दूर हो गया और मेरी पीड़ा पूरी तरह समाप्त हो गई। मैं बड़े ही सुख का अनुभव कर रहा था । अचानक एक झटका-सा लगा और मुझे अपने शरीर में कष्ट अनुभव होने लगा ।" एक महिला, जिसकी मृत्यु अत्यधिक रक्तस्राव के कारण हो गई थी, ने पुनः जीवित होने के बाद बताया-"मैं अत्यन्त मधुर और दिव्य संगीत सुन रही थी और मेरा सारा दुःख दूर हो गया था ।"

कुछ लोगों को तो मृत्यु में इतना अधिक आनन्द का अनुभव होता है कि उनके अनुसार जीवन में वे इतने अधिक आनन्दित कभी नहीं हुए । घटना लन्दन की अलर्सगेट स्ट्रीट की है । वहाँ के एक मकान में आग लग गई और फायर ब्रिगेड के कर्मचारी आग बुझाने के काम में लगे । इन कर्मचारियों में जेम्स बर्टन नाम का एक कर्मचारी भी था । आग के बीच में घुसकर जब वह आग बुझाने का प्रयास कर रहा था । एक जलता हुआ शहतीर उसके ऊपर आ गिरा । वह आठ घण्टे तक उस मलवे के नीचे दबा रहा । निकाले जाने के बाद लम्बे समय तक चिकित्सा करने पर वह ठीक हुआ । उसने अपना अनुभव बताते हुए कहा, एक क्षण के लिए मुझे अपनी पत्नी की याद अवश्य आई थी, लेकिन उसके बाद मैं किसी अज्ञात दिशा से आने वाली मधुर संगीत लहरियों को सुनते-सुनते जैसे खो सा गया । मैं अपने शरीर को चाह कर भी हिला-डुला नहीं सकता था, लेकिन मैं सोच जरूर सकता था और अनुभव भी करता था । मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे मैं फूलों की सेज पर सोया हुआ हूँ तथा स्वर्ग में रह रहा हूँ ।'

इसी से मिलती-जुलती घटना बेली कैमरान की भी है जो मृत्यु के बाद भी जीवात्मा के बने रहने तथा अपने पूर्व संस्कारों के अनुरूप अनुभूतियाँ करने के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती हैं । नित्य की भाँति जुलाई १९७७ को वैली कैमरान टौरैंटो (कनाडा) से रिहर्सल से वापस घर लौटे । वे घर की चाभी स्टूडियों में ही भूल आये थे । ऊपरी मंजिल की खिड़की तक पहुँचने के लिए उन्होंने पाइप का सहारा लिया । पर चढ़ते ही पैर फिसल जाने के कारण गिर पड़े । खोपड़ी में चार फ्रेक्चर हो गये । गिरते ही अचेत हो गये । पड़ौसियों ने टोरंटों के एक अस्पताल की इंटेसिव केयर यूनिट में भर्ती कराया । भर्ती होने के बाद डाक्टरों ने बीस मिनट तक हृदय को रुका पाया । डाक्टरों ने तो मरा घोषित कर दिया था पर पुनः हृदय की धड़कन आरम्भ हो जाने से उन्हें अपनी मान्यता बदलनी पड़ी । शरीर से अलग होने पर उन्हें विचित्र अनुभव हुए । वैली कैमरान ने अपनी अनुभूतियों का उल्लेख करते हुए कहा कि, "दुर्घटना के कुछ क्षणों बाद हमने अपने को शरीर से अलग पाया । मेरे लिए संसार की सर्वाधिक आश्चर्यजनक घटना थी । मेरा शरीर निर्जीव मेरे सामने पड़ा था तथा स्वयं को मैं बहुत हल्का अनुभव कर रहा था । मुझे लगा कि प्रयत्न करने पर उड़ भी सकता हूँ । देखते ही देखते छत की दीवार पर जा पहुँचा । इतने में एक प्रकाश पुंज दिखायी पड़ा । न जाने उसमें क्या आकर्षण था कि मैं उसके साथ खिंचता चला गया । लम्बे समय तक प्रकाश पुंज के पीछे चलता रहा । एक स्थान पर जाकर प्रकाश पुंज रुक गया । दौड़कर आगे बढ़ा । प्रकाश की आभा में एक सुनहरा विशाल महल दिखायी पड़ा । जिसमें बड़ा सा फाटक लगा था । मैंने उसे धकेल कर खोलने की कोशिश की जो आसानी से खुल गया । भीतर एक बड़े आलीशान सजे कमरे में मेरे पिताजी खड़े थे जो दो वर्ष पूर्व मर चुके थे । पर आश्चर्य, कि वे युवक जैसे दिखायी पड़ रहे थे, जब कि वृद्धावस्था में मरे थे । उस स्थान पर अनेकों

व्यक्तियों के बातचीत की आवाज सुनाई दे रही थी, पर कोई अन्य व्यक्ति दिखायी नहीं पड़ रहा था । मुझे साथ लेकर दूसरे कमरे में पिताजी बैठ गये । सामने एक दर्पण सा स्वच्छ पर्दा लगा था । उसमें मेरे जीवन की सभी घटनाएँ क्रमबद्ध रूप से उभरने लगीं । की गई गल्तियों के लिए मैं चित्रों को देखकर मन ही मन ग्लानि करने लगा । साथ ही सोचता भी जाता था कि ये सब घटनाएँ तो मात्र मुझे मालूम थीं । यहाँ कैसे मालूम हुईं ? पर कोई उत्तर न मिल सका। घटनाओं के अन्त के साथ पुनः वही प्रकाश पुंज प्रगट हुआ। उसका आदेश मिला तुम्हारी आयु अभी बाकी है । कुछ ही क्षणों में अपने शरीर में वापस पहुँचा गया ।''

ऐसी ही एक घटना अर्नाल्ड सिग्रोट की है । अर्नाल्ड सिग्रोट और उसके चार मित्रों ने, जिनमें दो प्रेस रिपोर्टर थे तथा दो फोटोग्राफर थे, आलप्स पर्वत की चोटी पर चढ़ने का निश्चय किया । चोटी दो हजार फुट से अधिक ऊँची थी और उसके नीचे बहुत गहरा तथा संकरा खड्ढ या । इस अभियान में अर्नाल्ड सिग्रोट सबसे आगे चल रहे थे । थक जाने पर थोड़ा सुस्ताने के लिए वे एक चोटी के किनारे बैठ गए, लेकिन दुर्भाग्यवश वह हिस्सा उनका बजन सह नहीं पाया और टूट कर गिर पड़ा । अर्नाल्ड भी उस टुकड़े के साथ नीचे लुढ़कने लगे ।

जब उन्हें खड्ढ़ से बाहर निकाला गया तो वे अर्ध मृतक की-सी स्थिति में थे । जीवन के कुछ ही चिन्ह शेष थे, इसलिए उन्हें बचाने की भरसक चेष्टा की गई और उपचार सफल रहा। वे बच गए यानि कि मृत्यु के मुख में प्रवेश कर वापस लौट आए । चिकित्सा के उपरान्त ठीक होने पर उन्होंने अपना रोमांचक अनुभव इन शब्दों में व्यक्ति किया मेरा मस्तिष्क बड़ी तेजी से काम कर रहा था । समय का मुझे भी ज्ञान नहीं रहा गया था और रह-रहकर मुझे अपने पत्नी बच्चों का ख्याल आ रहा था । इसके बाद मुझे अपने शरीर का कोई आभास नहीं रहा, मैं उसे लुढ़कते, छिलते और उसमें से खून को रिसते हुआ देखा रहा मेरे साथी मुझे खोजते हुए आए । उनका अनुमान था कि मैं निश्चित रूप से मर चुका हूँ । उन्होंने मेरे शरीर को एक गर्म बिछावन पर लिटा दिया । मैं धीरे-धीरे साँस ले रहा था । साँस लेना भी कुछ देर के बाद बन्द हो गया और मेरे शरीर में जीवन का कोई चिन्ह शेष नहीं रहा, परन्तु मैं ही मैं था और आनन्द मैं था। मेरे एक परिचित डॉक्टर ने मेरे जीवन के प्रति निराशा व्यक्त की। मैं अपने परिवार के लोगों को रोते हुए देख रहा था। मैं चाहता था कि उन्हें बताऊँ मैं कितना आनन्दित हूँ और उनके चीखने रोने से दुख हो रहा है । उन्हें चुप कराने और रोने से मना करने के लिए मैंने चीख-चीखकर कहना चाहा किन्तु मेरी आवाज़ शायद उनके कानों तक नहीं पहुँच पा रही थी । फिर मैंने सोचा कि मैं अपने इस शरीर में प्रवेश कर जाऊँ तो ये लोग प्रसन्न होंगे । इतनी इच्छा करने मात्र से मैं वापस अपने शरीर में प्रविष्ट हो गया । हालांकि उस समय मुझे अपने शरीर पर लगी चोटों तथा आये घावों की पीड़ा अनुभव होने लगी थी, परन्तु मैं प्रसन्न था कि वे लोग सन्तुष्ट हैं ।''

'फ्रण्टियर्स आफ द आफ्टर लाइफ' के लेखक और प्रकाशक एल्फ्रेड ए० नैफा ने दुर्घटना में मरने के बाद पुनः जीवित हो उठने वाले व्यक्तियों के अनुभव संकलित करते हुए एक व्यक्ति का अनुभव इस प्रकार लिखा है, ''मैं एक मूर्च्छा के बाद जागा । मैंने देखा कि मेरा शरीर अलग-अलग पड़ा हुआ है । भौचक्का-सा खड़ा होकर मैं देख रहा था और जब मैंने नीचे की ओर देखा तो पाया कि मेरा शरीर लड़ाई में मारे गए और लोगों के साथ पड़ा हुआ है । मुझे लडाई की बात याद आ गई तथा यह भी याद आ गया कि मैं युद्ध में ही गोली लगने के कारण मारा गया हूँ । मैंने कब शरीर छोड़ा इसका मुझे जरा भी स्मरण नहीं था, परन्तु मृत्यु मेरे लिऐ एक आनन्ददायक और पीड़ा रहित घटना थी ।''

'सायकिकल फिनोसिना एण्ड दि बार' पुस्तक के लेखक डॉ० हायर वार्ड केरिंगटन ने ऐसा ही अनुभव लिखते हुए बताया ''मैं अचानक अपने शरीर से बाहर फेंक दिया गया था । मैंने कोई पीड़ा अनुभव नहीं की ।''

मरणकाल की इन घटनाओं पर यदि गहन चिन्तन किया जाय और यह विचारा जाय कि जब मृत्यु कष्टकारक नहीं है, तो फिर मौत क्यों डरावनी लगती है ? इसका एक ही उत्तर है उसके सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी का अभाव । यदि जीवन और मरण का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध समझा जा सके तो विदित होगा कि फल से बीज और बीज से फल की तरह दोनों एक दूसरे के सघन सहयोगी हैं । ग्रहण और विसर्जन का क्रम ही इस सृष्टि का आधारभूत कारण है । शरीर आहार ग्रहण करता है और मल विसर्जन । जीवन को भी नवीन का ग्रहण आवश्यक है । उसके लिए पुरातन का विसर्जन किये बिना कोई गति नहीं ।

स्थिरता और जड़ता एक ही बात है । मनुष्य चेतन है इसलिए उसका एक स्थिति में बने रहना सम्भव नहीं । यहाँ सब कुछ बदलता चलता है, तो जीवन यात्रा में गतिशीलता

क्यों नहीं रहेगी ? यात्रा क्रम के इन पड़ावों को ही जन्म और मरण कहते हैं । इसमें न तो कुछ अप्रत्याशित है और न आश्चर्यजनक । फिर मरण में भय किस बात का ?

प्रियजनों का विछोह एवं सम्पत्ति का व्यामोह भी मरण भय का एक कारण है । यदि साथियों और साधनों को आरम्भ से ही ईश्वर की सम्पदा समझा जाय और उनके साथ सेवा साधना एवं कर्त्तव्य परायणता के अभ्यास का क्रम जारी रखा जाय तो व्यामोह की उतनी जटिलता उत्पन्न नही होने पावेगी। जिसमें मरण की घड़ी असह्य वेदना उत्पन्न करे । स्वागत और विदाई के अपने-अपने खट्टे मिट्ठे स्वाद हैं, जो आये दिन इच्छा या अनिच्छा से चखने पड़ते हैं । सम्पत्ति साधनों के प्रति बैंक के खजान्ची जैसी और प्रियजनों के प्रति हर्षोत्सव में एकत्रित होने वाले मित्रों जैसी दृष्टि रखी जा सके तो विदाई में व्यथा नहीं, नवीनता भर की अनुभूति होगी ।

मृत्यु के सम्बन्ध में आमतौर से लोग विचार नहीं करते । उसकी जिम्मेदारी एवं तैयारी के संदर्भ में उपेक्षा बरतते रहते हैं । फलतः समय आने पर मरण अविज्ञात रहस्य के रूप में सामने आता है और भयानक एवं त्रासदायक लगता है ।

अज्ञात डरावना होता है और कौतूहलपूर्ण भी । मनुष्य की मानसिक बनावट भी कुछ ऐसी है कि वह अनजान की ओर बढ़ने एवं रहस्यों को समझने में झिझकता है । पर इतने पर भी यह तथ्य अपने स्थान पर यथावत् बना है कि अज्ञात की ओर बढ़ने का साहस जुटा पाने वाले ही महत्वपूर्ण सफलताएँ अर्जित करते हैं । इतिहास उन व्यक्तियों, महापुरुषों से बना है, जिन्होंने जब प्रवाह से विपरीत अज्ञात दिशा में बढ़ने कुछ करने का साहस भरा पुरुषार्थ किया । उपलब्धियाँ चाहे भौतिक हो अथवा आध्यात्मिक दोनों में ही यह साहस भरा पुरुषार्थ ही झाँकता दिखायी देता है । जिन्होंने प्रयत्न किया, उन्हें अनुभव हुए, अनजान क्षेत्रों को जितना डरावना, कठिनाइयों से भरा समझा गया था, वस्तुतः वे उतने नहीं हैं, वरन् अनुभव तो कुछ विपरीत ही तथ्यों का प्रतिपादन करते हैं ।

ऋषियों ने जीवन को सतत् अविराम गति से चलने वाला प्रवाह बताया है । यह मात्र विचारणा नहीं, वरन् उनके अनुभव के सत्यों पर आधारित है। शरीर क्षेत्र से पार जाकर उन्होंने जीवन-मृत्यु की गुत्थियों को सुलझाया और बताया कि मृत्यु जीवन का एक पड़ाव मात्र है । जहाँ जीवात्मा रुक कर नयी शक्ति, नयी स्फुरणा प्राप्त करती है । तत्पश्चात अगले जीवन की ओर प्रवेश करती है । साधना पुरुषार्थ द्वारा किये गये अनुभबो के आधार पर ऋषियों ने मृत्यु को भी एक सामान्य घटना के रूप में प्रतिपादित किया है । डरने, अनजान काल्पनिक पीड़ा से घबड़ाने जैसी बातें मृत्यु की अवधि अथवा उसके बाद नहीं होतीं । मृत्योपरान्त जीवन के अस्तित्व को अपनी योग साधनाओं के माध्यम से देखकर आत्मा के अजर-अमर होने की घोषणा की । इसी तथ्य की पुष्टि अब परा मनोविज्ञान की नवीन शोधों द्वारा हो रही है ।

मरण काल में अनुभूतियों के सम्बन्ध में जो संकलन किये गये हैं, उनसे पता चलता है कि यह घड़ी न कौतुक कौतूहल जैसी होती है, न कोई ऐसा कष्ट मिलता है जिसे असह्य कहा जा सके । सब कुछ उतनी ही सरलतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है, जितना कि रात्रि को सोते समय वस्त्रों का उतारना। बढ़े हुए नाखून या बाल काट कर शरीर से अलग किये जाते रहते हैं । न्यूनाधिक मात्रा में मरण का परिवर्तन भी प्राय वैसा ही होता है ।

इससे संबंधित एक अनुभूति डॉ० बर्ण्ट की निम्न है एडिनवरा में बर्फ पर स्केटिंग करते समय में एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया जहाँ नीचे की बर्फ बहुत पिघल गई थी और ऊपर बर्फ की हल्की-सी पर्त ही रह गई थी । मैं उसमें धँसने लगा । अपने आपको बचाने का काफी प्रयत्न किया, किन्तु कुछ नहीं हो सका । मैं एक बड़े छिद्र में घुसा जा रहा था। मैं उस अध जमे पानी के अन्दर समा गया और जब ऊपर उठ सका तो अपने आपको बर्फ की सतह के नीचे पाया । मेरी शक्ति जवाब दे रही थी । मैं संज्ञा शून्य हुआ जा रहा था, यहाँ तक कि मेरा बोलना भी बन्द हो गया था । मेरे पेट और फेफड़ों में पानी भर गया । इसके बाद मैंने अपनी रक्षा के लिए प्रयत्न करना बन्द कर दिया और जब मैंने प्रयत्न बन्द किये तो मुझे बड़ा आनन्द आने लगा ।''

"मैं जानता था कि मैं मर रहा हूँ और उस समय यह जानते हुए भी मुझे बड़ा आनन्द आ रहा था । मुझे न ठण्ड लग रही थी और न ही मेरा दम घुट रहा था । ऐसा लग रहा था जैसे मैं एक नर्म कोच पर लेटा होऊँ और मेरे चारों ओर एक मधुर संगीत बज रहा है । मैंने अपने चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश संव्याप्त देखा । वह प्रकाश अलौकिक सा प्रतीत होता था । संगीत की ध्वनि मन्द पड़ने लगी थी । किसी चलचित्र की भाँति मेरे विगत जीवन की सारी घटनाएँ मेरी आँखों के सामने नाचने लगीं । आश्चर्य की बात तो यह थी कि मुझे वही घटनाएँ दिखाई देती थीं, जिनमें मैंने आनन्द ही आनन्द अनुभव किया था, या जिनसे मैं आनन्दित हुआ था ।''

"व्हेयर टू वर्ल्ड्स मीट'' में लिखा है कि मरण शैया पर लेटे व्यक्ति को अपने विगत जीवन की पूरी फिल्म दिखाई देने लगती है । इसके साथ ही वह एक ऐसे सूक्ष्म लोक में

प्रवेश करता है, जो हर प्रकार से सुखद, सुन्दर और शान्तिपूर्ण होता है । पुस्तक में इस प्रकार की लगभग १३०० घटनाएँ संकलित हैं । सबका एक ही निष्कर्ष है- मृत्यु जीवन का अन्त नहीं, प्रगति का अगला चरण है । उसको जीवन का अन्तिम अतिथि मानकर उसके स्वागत की पूर्व तैयारी की जाती रहे, उसके साथ सुखद प्रयासों के लिए आवश्यक साधन जुटाने में तत्परता बरती जाती रहे, तो मरण वैसा ही उत्साहवर्धक एवं आनन्ददायक हो सकता है, जैसा कि सुरम्य पर्यवेक्षण के लिए नियोजित किया गया पर्यटन ।

विक्षुब्ध जीवात्मा की दयनीय स्थिति प्रेत-दशा

जीव चेतना का शरीर-मरण के साथ ही अन्त नहीं हो जाता, वरन् उसका अस्तित्व पीछे भी बना रहता है, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण भी बहुधा मिलते रहते हैं । पिछले दिनों यह तथ्य परम्परागत मान्यताओं एवं कथा-पुराणों के प्रतिपादनों पर ही निर्भर था कि मरणोत्तर काल में भी जीवात्मा का अस्तित्व बना रहता है । उसे परलोक में रहना पड़ता है । स्वर्ग-नरक भुगतना पड़ता है एवं पुनर्जन्म के चक्र में भ्रमण करना पड़ता है ।

इस सन्दर्भ में अब तक के अन्वेषणों ने कई अनोखे तथ्य प्रतिपादित किये हैं । मरने के उपरान्त अनेकों को शान्ति मिलती है और वे प्रत्यक्ष जीवन में अहर्निश श्रम करने की थकान को दूर करने के लिए परलोक की गुफा में विश्राम लेने लगते हैं । इसी निद्राकाल में स्वर्ग-नरक जैसे स्वप्न दिखाई देते रहते होंगे । थकान उतरने पर जीव पुनः क्षमता सम्पन्न बनता है और अपने संग्रहीत संस्कारों के खिंचाव से रुचिकर परिस्थितियों के इर्द-गिर्द मँडराने लगता है । वहीं किसी के घर उसका जन्म हो जाता है ।

कभी-कभी कोई मनुष्य प्रेत योनि प्राप्त करते हैं । यह न जीवित स्थिति कही जा सकती है और न पूर्ण मृतक ही । जीवित इसलिए नहीं कि स्थूल शरीर न होने के कारण वे कोई वैसा कर्म तथा उपभोग नहीं कर सकते जो इन्द्रियों की सहायता से ही सम्भव हो सकते हैं । मृतक उन्हें इसलिए नहीं कह सकते कि वासनाओं और आवेशों से अत्यधिक ग्रसित होने के कारण उनका सूक्ष्म शरीर काम करने लगता है । अस्तु वे अपने अस्तित्व का परिचय यत्र-तत्र देते फिरते हैं । इस विचित्र स्थिति में पड़े होने के कारण वे किसी का लाभ एवं सहयोग तो कदाचित ही कर सकते हैं, हाँ, डराने या हानि पहुँचाने का कार्य वे सरलतापूर्वक सम्पन्न कर सकते हैं । इसी कारण आमतौर से लोग प्रेतों से डरते हैं और उनका अस्तित्व अपने समीप अनुभव करते ही उन्हें भगाने का प्रयत्न करते हैं । प्रेतों के प्रति किसी का आकर्षण नहीं होता, वरन उससे भयभीत रहते और बचते ही रहते हैं । वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से - वस्तुस्थिति जानने एवं कौतूहल-निवारण की दृष्टि से कोई उस क्षेत्र में प्रवेश करके तथ्यों की जानकारी के लिए प्रयत्न करे, तो यह दूसरी बात है ।

प्रेतात्माओं द्वारा अपने अस्तित्व का परिचय दिये जाने तथा अमुक व्यक्तियों को अपना माध्यम बनाकर त्रास देने की घटनाओं का वर्णन करना इन पंक्तियों में अभीष्ट नहीं । जन-श्रुतियों से लेकर सरकारी रिकार्ड में दर्ज और परामनोविज्ञान के अन्वेषकों द्वारा मान्यता प्राप्त ऐसी असंख्यों घटनाएँ सामने आती रहती हैं, जिनसे प्रेतात्माओं के अस्तित्व की पुष्टि होती है । यहाँ तो चर्चा यह की जानी है कि प्रेत-योनि में सभी को जाना पड़ता है, अथवा किसी विशेष स्थिति के व्यक्ति ही उसमें प्रवेश करते हैं । उत्तर स्पष्ट है उद्विग्न, विक्षुब्ध, आतुर, अशान्त, क्रुद्ध, कामनाग्रस्त, अतृप्त लोगों को ही प्रायः प्रेत बनना पड़ता है । शान्त-चित्त, सौम्य एवं सज्जन प्रकृति के लोग सीधी-सादी जन्म-मरण की प्रक्रिया पूरी करते रहते हैं ।

प्रेत-योनि की प्राप्ति के दो मुख्य कारण होते हैं, पहला, प्रबल आकांक्षाओं की अतृप्ति । दूसरा तृष्णा एवं वासनाओं की तीव्रता । प्रबल आकांक्षा की व्यक्ति-चित्त में प्रचण्ड प्रतिक्रिया होती है । दैनिक जीवन में भी यह देखा जाता है कि जब कोई नवीन योजना दिमाग में होती है, तो उसकी सुनिश्चित रूपरेखा बनने तक मन-मस्तिष्क चैन से नहीं बैठ पाता, न हीं नींद आती है । ऐसी आकांक्षा खंडित हो जाने पर कई-कई रातों तक लोगों की नींद उड़ जाया करती है । यही बात तृष्णाओं के बारे में है । तृष्णा से व्याकुल लोग न शान्त रह पाते न आराम कर पाते, न सो पाते हैं। जब तक तीव्र तृष्णा की कुछ पूर्ति नहीं होती, वे उद्विग्न ही बने रहते हैं । प्रेत-योनि भी ऐसी ही उद्विग्नता और अशान्ति से भरी जीव-दशा का नाम है, जो मरणोत्तर अवधि में होती है ।

हम भारतीयों की यह जो मान्यता है कि धन, पुत्र, वासना आदि पर आसक्त रहते यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसे कई बार मृत्यु के बाद बहुत समय तक किसी भूत-प्रेत की योनि में रहना पड़ता है । इसीलिये भारतीय संस्कृति में सदैव ही अनासक्त जीवन जीने की प्रेरणा दी गई है । चार आश्रम-(१) ब्रह्मचर्य (विद्याध्ययन) (२) गृहस्थ, (३) वानप्रस्थ, और (४) संन्यास; अन्तिम दो की अधिकांश शिक्षाएँ और

कर्तव्य ऐसे हैं, जिनमें प्रत्येक व्यक्ति को धीरे-धीरे परिवार धन सम्पत्ति का मोह हटाकर अपना मन परमार्थ-साधना में लगाना पड़ता था । संन्यास-दीक्षा के बाद तो वह सब कुछ त्यागकर अपने आप को उस तरह अनुभव करता था, जैसे मकड़ी अपने बने बनाये जाले को स्वयं खाकर सन्तोष अनुभव करती है । तब जिसके पीछे बेटे होते थे, वह उनकी आवश्यकता की सम्पति उन्हें देकर शेष लोक-कल्याण में लगाकर घर छोड़ देते थे और आत्म-कल्याण की साधना में जुट जाते थे ।

मोहान्ध व्यक्तियों के प्रेत-योनि में जाने का कोई वैज्ञानिक आधार तो अभी समझ में नहीं आता किन्तु बौद्धिक और प्रामाणिक आधार अवश्य हैं । हम में से अनेकों को भूत का सामना करना पड़ जाता है पर यदि सामान्य लोगों की बात को भ्रम या अन्धविश्वास मानें जैसा कि अनेक लोग किसी स्वार्थवश या किसी को धोखा देने के लिये भी भूत-प्रेत की बात कहकर डरा देते हैं तो भी संसार में कई ऐसी घटनाएँ घटी हैं जिनमें इस विश्वास को विचारशील लोगों का भी समर्थन मिला है ।

यह घटना ऐसी ही है और उसे स्वयं श्री जे० डी० विलयम्स ने स्वीकार भी किया है । दुल्ली स्ट्रीट के अनेक लोगों ने इस घटना को अपनी आँखों से देखा । श्री विलियम्स महोदय ने इस घटना को ३ नवम्बर, १९६८ के इन्दौर से छपने वाले दैनिक अखबार नई दुनियाँ में छपाया भी, उनका यह लेख विश्व के अनेक अखबारों में छपा और बहुत समय तक लोगों की चर्चा का विषय भी बना रहा ।

मैनचेस्टर की दुल्ली स्ट्रीट पर स्थित छोटे से मकान के पास जैसे ही प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री डा०जे०डी० विलयम्स पहुँचे, घर के लोगों ने उनका स्वागत किया । इस घर में पति-पत्नी और उनके दो बच्चे, कुल चार ही व्यक्ति रहते थे । चारों तब घर में ही उपस्थिति थे ।

घर की स्त्री श्री विलियम्स को एक अलमारी के पास ले गई । यहीं पर वह भूत था, जो दिखाई तो नहीं दे रहा था पर पूछे गये किसी प्रश्न और अपनी उपस्थिति का प्रमाण एक विशेष प्रकार की खटपट के द्वारा दे रहा था । उसके संकेत बड़े ही शिक्षित व्यक्तियों जैसे थे । अँग्रेजी वर्णमाला के प्रथम अक्षर "ए" के लिए वह एक बार (खट्) की आवाज करता था और "बी" के लिये दो बार (खट् खट्) की आवाज करता था । इसके आगे जो अक्षर जितने नम्बर पर पड़ता है, उस अक्षर के लिये उतने ही बार बिना रुके खट्-खट्-खट् का उसने संकेत बना लिया था, उसी के माध्यम से वह पूछे गये प्रश्नों के उत्तर भी देता था ।

यह खेल सारे दिन चलता रहा । घर के दूसरी ओर ऐसी कोई वस्तु नहीं थी कि वहाँ से खट्-खट् की आवाज आ रही होती । लोगों ने सारी सम्भावनाएँ पहले ही छानबीन ली थीं । श्री विलियम्स को तो बहुत देर के बाद बुलाया गया था । उनकी पराविद्या में रुचि होने के कारण ही उन्हें सूचना दी गई थी । उन्होने सब जाँच-पड़ताल कर ली पर उन्हें कोई भौतिक कारण न मिला, जिससे खट्-खट् का सूत्र समझ में आता ।

स्त्री ने सर्वप्रथम श्री विलियम्स का परिचय कराया फिर पूछा-क्या तुम यहाँ उपस्थित हो तो भूत ने उत्तर में सर्वप्रथम बिना रुके २४ बार खट्-खट् की (इससे अँग्रेजी के वाई अक्षर की सूचना मिलती है) फिर थोड़ा रुककर ५ बार(ई) फिर रुककर १९ बार (एस) खट्-खट् की, इस तरह उसने अँग्रेजी में "यस" कहकर अपने वहाँ होने की सूचना दी ।

इसके बाद श्री विलियम्स ने उससे अनेक प्रश्न पूछे-भूत ने उनमें से अनेक प्रश्नों के उत्तर दिये । पर ऐसे किसी भी प्रश्न से सहमति प्रकट नहीं की, न उनके उत्तर ही बताये जो मनुष्य जाति के लिये हितकर नहीं होते । उदाहरण के लिये जुये, सट्टे, शराब सम्बन्धी प्रश्न उसने नहीं बताये । भूत का कहना था जिन बातों से वह स्वयं दुखी है, वह बात नहीं बतायेगा । पर इससे एक बात स्पष्ट हो गई कि मनुष्य को मृत्यु के बाद जीवन की अनेक घटनाओं की ही नहीं, भाषा आदि की भी जानकारी रहती है और उसमें भविष्य को भी जानने की क्षमता आ जाती है जो आत्मा के गुण का ही परिचायक है ।

एकाएक श्री विलियम्स ने पूछा-"आप कौन हैं, क्यों उपस्थित हुए हैं" इस प्रश्न के उत्तर में उसी खट्-खट् वाली विधि से उसने बताया-मैं इसी मकान में रहता था, जब मैं वृद्ध था तभी मैने अपने घर वालों से कह दिया था कि मुझे अमुक कब्रिस्तान में दफनाया जाये पर मेरी इच्छा के अनुसार मुझे नहीं दफनाया गया । "

इसके बाद मैंने लोगों से पूछ कर उस मकान में रहने वाले पहले किरायेदारों का पता लगाया तो उनसे मालूम हुआ कि सचमुच उनके पिता ने मृत्यु से पूर्व इस तरह की इच्छा व्यक्त की थी ।

एक और विलक्षण बात थी कि यह भूत तभी तक यह खट्-खट् की आवाज करता था, जब तक घर में सबसे छोटा वाला लड़का उपस्थित रहता था । पहले कई दिन जब-जब स्कूल या घर से बाहर रहा, भूत ने उपस्थिति नहीं दर्शायी । उस दिन श्री विलियम्स और अधिक खोज-बीन के लिये एक

मनोवैज्ञानिक और एक पादरी को भी लाये । इनकी उपस्थिति में भूत एक दो बातों के ही सामान्य उत्तर दे सका था कि लड़का जो आज कई दिन से छिपा-छिपा रहा था, इतना भयभीत हो गया कि उसे तीव्र ज्वर हो आया । उसे अस्पताल ले जाना पड़ा । इसके बाद उसके माता-पिता को भी बच्चे की ओर से बड़ी चिन्ता हो गई और उन्होंने दूसरा मकान ढूँढ़ कर उस मकान को ही बदल लिया ।

श्री विलियम्स ने भूत सम्बन्धी जिन तथ्यों का पता लगाया उनमें से कई जानकारी की दृष्टि से बड़े उपयोगी हो सकते हैं । भूत किसी का अहित नहीं कर सकता, यदि कर सकता है तो वह कोमल और भीरू मस्तिष्क वालों को ही डरा सकता है यथा शरीर पर किसी तरह का नियन्त्रण कर सकता है । दूसरे, भूत को जिस वस्तु में इच्छा होती है, वह केवल उतना ही सोचता रहता और उसी का दुख करता रहता है । जब तक उस अवस्था में भी उसकी यह इच्छा शिथिल नहीं पड़ जाती, तब तक मृत्यु वाली निद्रा नहीं आती, जीवात्मा दूसरे जन्म की तैयारी नही कर पाता ।

लंदन में एक अँग्रेज दम्पति थे । पति पत्नी दोनों शराबी। पत्नी की मृत्यु के बाद पति ने मकान का कुछ हिस्सा मार्टिन को किराये में दे दिया । एक दिन मार्टिन की स्त्री ने घर में एक काले वस्त्र धारण किये हुए स्त्री को देखा, उन्होंने समझा यह मेरी माँ है, जैसे ही वह उससे मिलने के लिए आगे बढ़ी कि वह स्त्री सीढ़ियों से ऊपर चढ़ गई और ऊपर के कमरे में जल रही मोमबत्ती बुझा दी । फिर उसके बाद कोई दिखाई न दिया। इसके कई दिन बाद वैसी ही छाया फिर दिखाई दी, पर प्रयत्न करने पर भी न तो उससे कोई बात-चीत की जा सकी, न उससे मिला ही जा सका । आगे बढ़ते ही वह छाया अदृश्य हो जाती । इस घटना को बाद में पड़ौसियों ने भी देखा और यह माना कि यह पूर्व अँग्रेज स्त्री की भटकती हुई आत्मा है । आत्माओं के इस तरह के क्रिया-कलापों की घटनाऐं भारतवर्ष में बहुतायत से होती हैं ।

प्रसिद्ध साहित्यकार लार्ड ब्रोह्म के जीवन की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना आत्मा के अस्तित्व पर प्रकाश डालती है । उनके एक मित्र थे, उन्हें आत्माओं के अस्तित्व के सम्बन्ध में जानने का बड़ा चाव रहता था । वे दोनों ऐसे लेख जिनमें कोई ऐसी जानकारी होती थी, ढूँढ़-ढूँढ़कर पढ़ते थे । उन्होंने सुना था कि भारतवर्ष में कुछ ऐसे योगी हैं । जो मृतात्माओं के साथ साक्षात्कार कराते हैं । एक दिन इस पर दोनों मित्रों ने निश्चित किया- हम में से जिसकी मृत्यु हो, वह दूसरे से मिलने अवश्य आये । यह बात मस्तिष्क में गहराई तक बैठ जाये, इसके लिये उन्होंने उँगली काटकर एक कागज में हस्ताक्षर भी किये ।

कुछ दिन बाद मित्र सर्विस के लिये भारतवर्ष चला आया । इसके बाद १९ दिसम्बर, १७९९ की बात है, लार्ड ब्रोह्म अपने स्नानगार पहुँचे, कपड़े उतारकर कुर्सी पर रखे और दरवाजा बन्द करके टब में स्नान करने लगे । ब्राह्म साहब लिखते हैं-"जैसे ही मैंने टब से अपना सिर बाहर निकाला कि देखता हूँ, मेरे मित्र महोदय सामने कुर्सी पर बैठ हैं । दरवाजे बिल्कुल बन्द थे, मैं घबरा गया कि वह कोई प्रेत तो नहीं है और इसके बाद मुझे जब होश आया तो कुर्सी पर कोई नहीं था, दरवाजे पहले की तरह बन्द थे । उसके ८-१० दिन बाद भारत से आया एक पत्र मिला, जिसमें यह लिखा था कि १९ दिसम्बर के दिन मित्र की मृत्यु हो गई है । इस घटना से मुझे पूरा विश्वास हो गया कि मृत्यु के बाद भी आत्मा रहती है और जागृत जीवन की उसमें तमाम स्मृतियाँ भी रहती हैं। "

ये घटनाऐं यही प्रकट करती हैं कि तीव्र आकांक्षा और राग-आसक्ति के बंधन जीवात्मा को मृत्यु के उपरान्त भी खींचते और तद्नुकूल हलचल के लिए बाध्य करते रहते हैं । इसी लिए जीवन में मोहासक्ति के बंधन ढीले कर रखने की शिक्षा प्राचीन भारत में दी जाती थी तथा उसी के अनुरूप आश्रम-व्यवस्था भी की गई थी । वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रम मोहासक्ति की समाप्ति के लिए तथा चेतना के विस्तार द्वारा आत्मविकास के पथ पर निरन्तर अग्रसर होने के लिए ही रखे गये थे ।

मृत्यु के समय, मरणशील व्यक्ति से दान कराने की व्यवस्था भी इसी कारण थी कि व्यक्ति के सब मोह मिट जायें, आसक्ति के बंधन छूट जायें । अन्तिम समय व्यक्ति के भीतर वे ही संस्कार तथा वे ही आकांक्षाएँ प्रबल होकर उभर आती हैं, जो जीवन भर आस्था के क्षेत्र में, व्यक्तित्व का मूल बनी फैलती और घुली-मिली रहती हैं । अन्त समय में उभरी भावनायें ही मरणोत्तर जीवन में भी सक्रिय रहती हैं । श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा है-

"यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव- भावितः ।।"

अर्थात् हे अर्जुन ! जो अन्त समय में जिन भावों का स्मरण करता हुआ देह छोड़ता है, उन्हीं भावों से अनुप्राणित होकर वैसा ही नया शरीर, नया व्यक्तित्व प्राप्त करता है ।

संन्यासी से इसीलिए संन्यास लेते समय उसके श्राद्ध-संस्कार भी उसी के द्वारा करा लिए जाते हैं कि उसकी कोई भी आकांक्षा-आसक्ति सूक्ष्म रूप में भी शेष न रहे ।

जो मनुष्य जितनी अधिक वासनाएँ-आकांक्षाएँ साथ लेकर मरता है, उसके भूत होने की सम्भावना उतनी ही अधिक रहती है । अतः इस दुर्दशा से मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय ऐसी जीवन दृष्टि-चिन्तन-पद्धति तथा आचरण, अभ्यास को विकसित करना है, जो वासनाओं-तृष्णाओं और आकांक्षाओं से निर्लिप्तता का भाव दृढ़ करे ।

मनु संहिता में कहा है-

वान्ताश्यल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात् स्वकाच्युतः ।
अमेध्य कुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः ।।
मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् ।
चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्म्मात् स्वकाच्युत्ः ।।

अर्थात् ब्राह्मण कर्तव्य भ्रष्ट होने से दर्दिभक्षक ज्वालामुख प्रेत होता है । क्षत्रिय ऐसा होने से शव एवं विष्ठाभक्षक कटपूतन नामक प्रेत होता है । वैश्य कर्मभ्रष्ट होने से पूयभक्षक मैत्राक्ष ज्योतिक नामक प्रेत होता है एवं शूद्र ऐसा होने से चैलाशक नामक प्रेत होता है ।

तात्पर्य यही कि कर्तव्य-भ्रष्टता और विवेक-भ्रष्टता ही मरणोत्तर जीवन में प्रेतावस्था का कारण बनती हैं । साधारण मनुष्य के सूक्ष्म शरीर की स्थूल शरीर एवं इन्द्रियों के साथ विशेष आसक्ति होने से मनुष्य इच्छानुसार स्थूल शरीर धारण नहीं कर सकता । योगियों का सूक्ष्म शरीर वासना द्वारा आबद्ध नहीं होने से वे अपनी इच्छानुसार शरीर-धारण कर सकते हैं । प्रेतों का स्थूल शरीर होता ही नहीं, केवल सूक्ष्म शरीर होता है । सूक्ष्म शरीर में असीम बल है, इस कारण प्रेत-वासना के वेग को प्रबल बनाकर आवश्यकतानुसार स्थूल शरीर धारण कर सकता है । किन्तु योगी के स्थूल शरीर धारण एवं प्रेत के स्थूल शरीर धारण में अनेक अन्तर हैं । योगी का अन्तःकरण वासना रहित होने से वह योगसिद्धि की सहायता से अपनी इच्छानुकूल नाना प्रकार का शरीर धारण कर सकता है । प्रेत ऐसा नहीं कर सकता, वह केवल अपनी किसी तीव्र प्रबल वासना के अनुसार थोड़े समय के लिए स्थूल शरीर बना सकता है ।

उदाहरणार्थ, यदि किसी माता का चित्त अपने पुत्र में आसक्त हो, वह उसी का ध्यान करते हुए शरीर त्याग करे एवं इसी कारण उसको प्रेत योनि की प्राप्ति हो तो, वह उस वासना के तीव्र वेग से अपने पूर्व स्थूल शरीर के अनुरूप ही स्थूल शरीर बनाकर पुत्र के निकट आ सकती है । ऐसे ही स्त्री पति के निकट या पति स्त्री के निकट आ सकता है । प्रेतों का शरीर सब समय एक जैसा नहीं होता, सूक्ष्म पंचतत्वों पर आधिपत्य होने से प्रेत आवश्यकतानुसार किसी न किसी तत्व का आकर्षण करके उसी के अनुसार शरीर-धारण कर सकता है, यदि वह शक्तिशाली प्रेत हो । वायु-तत्व का आकर्षण करके वह प्रबल आँधी का रूप धारण कर किसी को भयभीत कर सकता है । किसी समय अग्नितत्व की सहायता से भयानक आग्नेयरूप धारण करके मनुष्य को डरा सकता है कभी छायारूप धारण करके मनुष्य के सामने आ सकता है एवं बातचीत भी कर सकता है। प्रेतों के छाया शरीर की ये बातें कान से नहीं सुनी जा सकतीं । प्रेत जिससे अपनी बात कहना चाहता है, उसके हृदय में ऐसी प्रेरणा उत्पन्न करता है, जिससे वह मनुष्य अपने मन में प्रेत की बात सुन सकता है एवं उसके साथ वार्त्तालाप भी कर सकता है । कुछ प्राणियों को ऐसी स्वाभाविक दृष्टि भी होती है कि वे प्रेत देख सकते हैं । ऐसे मनुष्य प्रेत की छाया, प्रेत की मूर्ति या प्रेत ने किसी व्यक्ति पर आवेश किया हो तो उस व्यक्ति के अन्दर प्रेत को देख सकते हैं । इस सामर्थ्य को ही 'साइकिक साइट' कहते हैं ।

स्वभाव के अनुसार प्रेत भी अच्छे-बुरे नाना प्रकार के हुआ करते हैं । सच्चरित्र निरीह व्यक्ति मोहादि के कारण प्रेतयोनि प्राप्त करके भी किसी का अनिष्ट अथवा हानि नहीं करते हैं, किन्तु जो मनुष्य स्त्री या पुरुष जीवित अवस्था में ही दुष्ट प्रकृति के होते हैं, वे मृत्यु के अनन्तर प्रेतयोनि प्राप्त करने पर अपनी दुष्टता से बाज नहीं आते हैं । इसी श्रेणी के प्रेत मनुष्य को भय दिखाते हैं, अत्याचार करते हैं, दूसरों पर आक्रमण करते हैं और नाना प्रकार के उपद्रव करते हैं । परन्तु ये सब उपद्रव दुर्बल हृदय मनुष्यों के ऊपर ही प्रभाव डाला करते हैं । आत्मबल सम्पन्न, उन्नत मन के सदाचारी एवं पवित्र स्त्री-पुरुषों को प्रेत कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकता है । प्रायः स्त्री या बालक पर ही प्रेतों का आक्रमण देखा-सुना जाता है क्योंकि इन दोनों में मानसिक भावनाओं की स्वभावतः प्रधानता हुआ करती है, ज्ञान की प्रधानता नहीं रहती । नीच प्रकृति के दुष्ट प्रेत जिस पर आक्रमण करते हैं, उसको आत्महत्या करके प्राण त्याग करने वाले प्रेतों में आत्महत्या करने की अन्तिम प्रवृति प्रबल रूप में रहती है, इस कारण वह दूसरों को भी उसी के लिए प्रेरित करता है । विक्षुब्ध, अशान्त, उद्विग्न जीव अपने विक्षोभ और उद्विग्नता के ही विस्तार की धुन में रहते हैं । विक्षोभ

प्रेरित प्रेतों का जीवन बड़ा ही दुखमय होता है, क्योंकि जिन वासनाओं के कारण प्रेतयोनि की प्राप्ति होती है, प्रेतयोनि में उनकी कमी नहीं होती, किन्तु वे और भी प्रबल हो उठती हैं। अतः प्रेत अपनी उन वासनाओं की आधार वस्तुओं को पाने एवं भोग करने के लिए सदा लालायित रहता है । परन्तु उस योनि में उन वस्तुओं का वह यथेष्ट भोग नहीं कर सकता, इस कारण निराशा की अग्नि में वह दिन-रात जला करता है। मोह-मुग्ध प्रेत सदा पत्नी-संन्तति आदि के साथ मिलकर जीवित अवस्था की तरह रहना चाहता है, यह सुविधा न मिलने से वह बड़ी यन्त्रणा भोगा करता है । कभी-कभी प्रेत अपने प्रियपात्र उन व्यक्तियों को मारकर अपनी योनि में लाना चाहता है, एवं इसके लिये चेष्टा करता है । उस चेष्टा में कृतकार्य न होने से भी वह हताश होकर बड़ा दुख पाता है । कभी कोई पुरुष अपनी प्रथम पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरा विवाह करता है, ऐसी दशा में यदि उसकी प्रथम पत्नी को प्रेतत्व हुआ हो एवं उस मृत स्त्री की आसक्ति अपने जीवित पति पर हो जैसा होना स्वाभविक है, तो वह अपनी सौत की ईर्ष्या में दिन-रात जला करती है और वह अपने पति के पास स्वयं आना चाहती एवं सौत के साथ पति का विच्छेद कराने की यथासाध्य चेष्टा भी करती है । जिस घर में दम्पत्ति रहते हैं, उसी में वह प्रेतयोनि प्राप्त स्त्री भी रहने की चेष्टा करती है । इसी प्रकार आजीवन धन्य संचय करके जो कृपण धन के मोह से प्रेत होते हैं, वे भी घर के जिस स्थान में उनका धन रहता है, वहीं सदा रहने की चेष्टा करते हैं, वह धन ले जाने का भी प्रयत्न करते हैं एवं उस प्रयत्न में कृतकार्य न होने पर हताश होकर बड़ी वेदना भोगते हैं । ऐसे ही व्यभिचारी पुरुष प्रेतयोनि में जाकर अपनी व्यभिचार वासना का परित्याग नहीं कर सकते, इस काररण ऐसे प्रेत पर स्त्री या ऐसी प्रेतिनी पर पुरुष के साथ अपनी नीच वासना चरितार्थ करने की चेष्टा करती है । प्रेतों की इस प्रकार की कामासक्ति के अंनेक प्रत्यक्ष प्रमाण सुने गये हैं । प्रेत जिस पुरुष या स्त्री पर कामासक्त होता है, बहुत समय उसे मार डलने का भी प्रयत्न करता है और प्रेत निवारक मन्त्र-औषधि आदि के द्वारा परास्त एवं निराश होकर दुख से मर्माहत होता है । प्रेत योनि अज्ञानमय होने के कारण बहुत समय प्रेत यह समझ भी नहीं पाता कि उसके अन्तःकरण में क्यों इतना दुख का दावातुषानल जल रहा है और क्यों उसका दुःख शान्त नहीं होता । अज्ञान से विमोहित चित्त प्रेत यों ही दुख से व्याकुल होकर पागल की तरह इधर-उधर दौड़ता रहता है । हृदय क्या चाहता है, यह भी वह नहीं समझ पाता, अन्तःकरण में इतनी अशान्ति क्यों है, यह भी वह निर्णय नहीं कर सकता, फिर भी दिन-रात उसका हृदय दुख-दावानल से भस्मीभूत हुआ करता है । इस प्रकार प्रेतों की दशा बड़ी ही दुःखमय होती है । जो उनके जीवनकाल की अशान्ति, अविवेक और अनाचारमय जीवन की ही प्रतिध्वनि होती है ।

न स्वयं विक्षुब्ध हों न औरों को विक्षुब्ध करें

अब से कोई २० वर्ष पूर्व इंगलैंड में ऐसी घटना प्रकाश में आई, जिसने एक प्रकार से तहलका ही मचा दिया ।

पोर्टस साउथ रोड इशर कस्बे के पास से गुजरती है, इस घने जंगलों से घिरे हुए क्षेत्र में लगातार ऐसी घटनाऐं होने लगी कि कोई मोटर उधर से गुजरती तो बन्दूक की गोली की तरह सनसनाती हुई चीज आती और मोटर के किसी शीशे, छत या दरवाजे से टकराकर उसमें छेद कर देती । छेद एक इन्च का इतना साफ, सीधा, गोल और व्यवस्थित होता मानो किसी बहुत होशियार मिस्त्री ने सधी परखी हुई मशीन से किया है अन्यथा काँच भी किसी चीज की टक्कर से टूट सकता है, उसके टुकड़े विखर सकते हैं पर चिकने किनारे वाला सही छेद होना तो सचमुच एक बड़े अचम्भे की बात है ।

घटनाऐं लगातार होने लगीं । उधर से गुजरने वाली मोटरों को उस दुर्घटना का अक्सर सामना करना पड़ता । मोटर रुकती, आस-पास का क्षेत्र खोजा, छाना जाता, पर आक्रमण कहाँ से होता है, कौन करता है, इसका कुछ भी पता न चलता ।

पुलिस ने भारी माथा-पच्ची की पर कुछ पता न चला । गुप्तचर विभाग के स्काटलैंड यार्ड ने आहत मोटरों को वैज्ञानिक जाँच के लिए प्रस्तुत किया पर वहाँ भी सुराग न मिला । इशर कस्बे की नगरपालिका ने तो पुलिस के खिलाफ एक प्रस्ताव ही पास कर डाला कि वह इस क्षेत्र को आतंकित करने वाली इन वारदातों को न रोक पाती है न खोज करती है । पुलिस वाले लाचार थे, कुछ समझ ही काम नहीं करती थी कि किस आधार पर खोज आगे बढ़ाई जाय । कितने ही पत्रकार वस्तु-स्थित पर प्रकाश डलने के लिए उधर पहुँचे । मोटरों पर अदृश्य आक्रमण होने, केवल शीशे टूटने, गोल और सही छेद होने, कोई जन हानि न होने मोटर के इंजनों को कोई आघात न लगने की बात एक साथ मन पर बिठाने से ऐसा चित्र बन जाता था जिसका हल सूझ ही न पड़े । सुरक्षा के सारे प्रयत्न बेकार हो गये । घटनायें रुक नहीं रही थीं । कौतूहल और आतंक बढ़ने से उस क्षेत्र का आवागमन रुकने भी लगा था और हर तरह परेशानी अनुभव की जा रही थी ।

कोई कहते थे कि इस घने जंगल में कोई मृत्यु-किरण जैसा परीक्षण हो रहा है और वे किरणें छिटककर ऐसा छेद करती हैं । इन किम्वदन्तियों का विज्ञान विभाग ने स्पष्ट खण्डन किया । फिर कारण क्या हो सकता है, यह रहस्य बीस वर्ष बाद भी अभी जहाँ का तहाँ बना हुआ है । कुछ समय बाद दुर्घटनाऐं बन्द हो गई पर गुप्तचर विभाग के खोज कार्यों मे वह तथ्य अभी भी जहाँ का तहाँ मौजूद है ।

परोक्ष जीवन और अदृश्य जगत पर विश्वास करने वाले इस घटनाक्रम का सम्बन्ध दो भूतकालीन तथ्यों के साथ जोड़ते हैं, इनमें से एक तथ्य यह है कि यह क्लेयर माउण्ड स्टेट पहले एक जागीरदार ड्यूक आफ न्यू कान्सिल के पास थी । उसने इस क्षेत्र में एक सुन्दर झील बनवाई । विलयम केन्ट नामक ठेकेदार ने इसे बहुत दिलचस्पी और खूबसूरती के साथ बनवाया । झील तैयार हो गयी तो ड्यूक ने उसका पैसा दबा लिया और अपने नौकरों से उसे उसी झील में फिकवा दिया। बेचारा किसी प्रकार निकल तो आया पर दो दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई । सुना जाता है कि उसकी क्षुब्ध आत्मा को मोटर स्वामी ड्यूक के प्रति द्वेष अभी भी विद्यमान होगा और वह डयूक के साथ-साथ मोटरों से भी घृणा करने लगी होगी और अब डयूक के न रहने पर उन्हीं से बदला लेती होगी।

दूसरी एक और घटना भी इस स्टेट से सम्बन्धित है और उस आधार पर भी उद्विग्न मृतात्मा द्वारा इस प्रकार उपद्रव की बात सोची जाती है । लार्ड क्लाइव ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से हिन्दुस्तान गया । वहाँ उसने छल-बल से जहाँ अँग्रेजी राज्य बढ़ाया, वहाँ अपना व्यक्तिगत स्वार्थ-साधन भी खूब किया। वह करोड़ों रुपये की पूँजी बनाकर ले गया और जागीरी शान से रहने के लिए उसने क्लेयर माउण्ट का इलाका खरीद लिया। नवाबी ठाठ और वैसी ही विलासिता के साथ वहाँ रहने लगा। इंग्लैण्ड भर में उसके दुष्ट दुराचरण की चर्चा थी । हर कोई उससे घृणा करता था । कहीं उसे न सम्मान मिलता था, न स्वागत न सहयोग । इस जंगल में महल बनाकर वह बहुत से खानसामा, रसोइया, नौकर, वेश्याएँ साथ लेकर रहा करता था। किसी को वह सुहाता न था न उसे कोई। सुनसान जंगलों में मरघट के प्रेत की तरह विचरण करके वह अपना जी बहलाता था, अपने पुराने कुकृत्यों की याद करके वह जीवन के अन्तिम दिनों में अर्द्ध-विक्षिप्त की तरह रहने लगा था । खूँख्वारों जैसी इसकी प्रकृति हो गई थी, मोटरों की आवाज उसे बहुत ही नापसन्द थी । उसने एक दिन सनक में आकर पास वाली सड़क को बन्द करा दिया, और मोटरों के लिए बारह मील दूर रास्ता बना दिया ताकि उसके कान में उसकी द्वेष केन्द्र मोटर की न आवाज आये न उसकी सूरत दीखे ।

क्लाइव भारत में किये गये अपने द्वारा कुकर्मों की लम्बी गाथा के पृष्ठ खोलता, कोई दूसरा सुनने वाला न होता तो अपने आप से ही बातें करता । एक दिन इसी असह्य मानसिक तड़पन में आत्महत्या कर ली और घिनौने कुत्ते की तरह ऐसे ही उधर कहीं दफना दिया गया ।

क्लाइव की आत्मा संभव है, अपना मोटर द्वेष अभी भी धारण किये हुए हो और सम्भव है, इसी क्षेत्र में उनका आवागमन उसे सहन न होता हो और आक्रमण का ऐसा अनौखा शस्त्र उसी के द्वारा प्रयुक्त किया जाता है ।

मरने के बाद मनुष्य की काया ही नष्ट होती है । अन्तःकरण चतुष्टय मरने का बाद भी यथावत् बना रहता है । यदि मन आत्मग्लानि, आक्रोश आदि भावों से भरा रहे तो उससे न केवल इस जीवन में भी वह मनःस्थिति बहुत अंशों में ज्यों की त्यों बनी रहती है और विश्राम के लिये मिले हुए उस अवकाश में भी प्राणी को चैन नहीं लेने देती ।

इस तथ्य पर उपरोक्त घटनाओं से प्रकाश पड़ता है । इस प्रकार का यही एक प्रमाण नहीं, वरन् समय-२ पर ऐसी ही अनेक घटनायें घटित होती रहती हैं पर इन्हें महत्व नहीं मिलता । उपहास और अविश्वास के गर्त में वे घटनाऐं भी उपेक्षित हो जाती हैं जो वस्तुतः बहुत प्रामाणिक थीं यदि उनका गहराई से विश्लेषण होता तो उस प्रत्यक्ष के आधार पर परोक्ष पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता था ।

उपरोक्त इशर कस्बे के समीप वाले जंगल की घटना को इसलिए महत्त्व मिला कि पुलिस पत्रकार आदि लोगों ने उसमें दिलचस्पी ली । यदि वे लोग उस खोजबीन में भाग न लेते तो मोटर वालों की ही सनक या शरारत कहकर उसे उपेक्षित कर दिया गया होता । यह ठीक है कि कितनी ही मनगढन्त ऊल-जलूल बातें भी होती रहती हैं पर उनमें से कुछ ऐसी भी होती हैं जिनकी खोज-बीन करने से उन तथ्यों पर प्रकाश पड़ सकता है, जो अभी तक एक प्रकार से पूर्ण उपेक्षित और अविश्वस्त ही बने हुए हैं ।

इस घटना में ठेकेदार की आत्मा का प्रकोप सिद्ध नहीं होता । क्योंकि एक व्यक्ति के दुर्व्यवहार का क्षोभ प्रायः एक तक ही सीमित रहता है । दूसरी बात यह है कि अन्याय पीडित व्यक्ति की अन्तरात्मा कलुषित नहीं होती, इसलिए वह उग्र स्तर के ऐसे विग्रह नहीं करती जो अन्य निर्दोष लोगों को कष्ट पहुँचाए ।

जिसका जीवन स्वयं में कलुषित रहा हो, जिसने अनेकों को कष्ट पहुँचाने में रस लिया हो, स्वार्थ-सिद्धि के लिए कितनों के साथ ही अनाचार, विश्वासघात किया हो । ऐसे ही लोगों की आत्माएँ इतनी हिंस्र हो सकती हैं, जो अनायास लोगों को कष्ट पहुँचाकर अपनी पूर्व आकांक्षाओं की तृप्ति करें । इस दृष्टि से क्लाइव की आत्मा के द्वारा यह उपद्रव होता हो तो आश्चर्य की बात नहीं है ।

घटना इस तथ्य पर प्रकाश डालती है कि एक शरीर छोड़ने और दूसरा प्राप्त करने के मध्यान्तर में आत्मा को सूक्ष्म शरीर धारण करके अन्तरिक्ष में विचरण करना पड़ता है । यह इसलिए भी होता होगा कि शरीर रहते किये हुए दुष्कृत्यों के परिणामों को वह अधिक विस्तारपूर्वक देख-समझ सके और भविष्य के लिए उस अवांछनीय नीति की अनुपयुक्तता को स्वीकार कर सके ।

दूसरा तथ्य यह प्रकट होता है कि सूक्ष्म शरीर बिलकुल असमर्थ नहीं हो जाता, उसमें न केवल भावनात्मक क्षमता रहती है, वरन् भौतिक वस्तुओं को प्रभावित करने जैसी सामर्थ्य भी रहती है । यदि ऐसा न होता तो मोटर के शीशों में ठीक गोल छेद करना कैसे बन पड़ता ? उस क्षमता को प्रेत-जीवन में भी भले और बुरे प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त करके पुण्य और पाप की मात्रा बढ़ाई जा सकती है ।

मरणोत्तर जीवन में संस्कार क्षेत्र प्रौढ़ रहता है, विचार तन्त्र सो जाता है । जिस प्रकार के विचारों और कार्यों में मनुष्य जीवन भर रहता है, वहीं अन्तः चेतना मरणोत्तर स्थिति में प्रबल रहती है और अनायास ही उसी स्तर की गतिविधियों का क्रम चलता रहता है ।

मरणोत्तर जीवन शान्त, सुखी, परोपकारी स्थिति का रहे इसके लिए इसी जन्म में तैयारी करनी पड़ती है । उच्च विचार और शुद्ध जीवन रखकर जहाँ इहलौकिक जीवन सराहनीय और सम्मानित स्तर का रखा जा सकता है वहाँ उसका परिणाम मरणोत्तर काल में देवोपम हो सकता है । दुष्ट और दुरात्म जीवन-क्रम न इस लोक में सराहा जाता है, न परलोक में शान्ति मिलने देता है । विक्षुब्ध, दुष्कर्म निरत लोग न इस लोक में शान्ति पाते हैं, न ही परलोक में ।

अनीति का प्रतिशोध

जापान की जनश्रुतियों में सत्रहवीं सदी के महाप्रेत सोगोरो की कथा एक ऐतिहासिक तथ्य की तरह सम्मिलित हो गई है और अनाचार बरतने वालों को अक्सर वह घटना-क्रम इसलिए सुनाया जाता रहता है कि वे अनीति से बाज आयें ।

जापान उन दिनों सामन्ती जागीरों में बँटा हुआ था । राजधानी तो यदो नगरी थी पर जागीरदार अपने-अपने छोटे ठिकानों से राज-काज चलाते थे । ऐसा ही एक ठिकाना था शिमोसा प्रान्त का साकूरागढ़ । इसका एक सामन्त था-कोत्सुके । उसने प्रजा पर अत्यधिक कर लगाये और किसानों पर इतने जुल्म ढाये कि वे त्राहि-त्राहि कर उठे । अन्ततः १३६ गाँवों के किसानों ने मिलकर अपना दुखड़ा जार्गीरदार के कानों तक पहुँचाने का निश्चय किया । वे सोचते थे, शायद छोटे कर्मचारी उन्हें सताते हैं । सामन्त को बात मालूम पड़ेगी तो वह उनकी पुकार सुनेगा । इस विचार से वे उनके प्रतिनिधि साकूरा चल पड़े । उनका जत्थेदार था ४८ वर्षीय सोगोरो । उन लोगों ने एक लम्बी अर्जी लिखी और प्रयत्न किया कि उसे जागीरदार को दें । अधिकारियों ने उन्हें भेंट करने की इजाजत नहीं दी और अर्जी को पढ़कर वापिस लौटा दिया । इतने पर भी उनने हिम्मत नहीं छोड़ी और जब सामन्त अपने गढ़ में प्रवेश कर रहा था तो उसकी बग्घी रोककर अर्जी हाथ में थमा ही दी । वहाँ भी उसे रद्द कर दिया गया । अन्य किसानों को तो वापिस लौटा दिया गया पर सोगोरो एक सराय में ठहरा ही रहा और उसने जापान सम्राट तक किसानों की दुख गाथा पहुँचाने का निश्चय किया । संयोगवश सम्राट् अपने पूर्वजों की समाधि पर पूजा करने के लिए वहाँ आने वाले थे। कृषक मुखिया ने यह अच्छा अवसर समझा और उस अर्जी की नकल सम्राट का भी रास्ता रोककर उनके हाथ में थमा दी ।

परिणाम तो कुछ नहीं निकला पर सामन्त ने सोगोरो को गिरफ्तार करा लिया । उस पर शासकों के विरुद्ध धृष्टता बरतने और षड़यन्त्र करने का मुकदमा चलाया गया । दण्ड में न केवल उसे, वरन् उसके सारे परिवार को कत्ल कर देने का आदेश सुनाया गया । जनसमूह की उपस्थिति में ४८ वर्षीय सोगोरो उसकी ३८ वर्षीय पत्नी मिन, १३ वर्षीय पुत्र जेन्नोसूके, १० वर्षीय पुत्र सोहैयी, ७ वर्षीय पुत्र किहावी का सिर धड़ से उड़ा दिया गया । दर्शक कलेजा थामकर इस कुकृत्य को देखते रहे गये ।

लाशें दफना दी गई पर वातावरण में न जाने कैसा भयंकर उभार आया कि सर्वत्र एक आग और घुटन अनुभव की जाने लगी । शासकों को विचित्र भयानकता ने घेर लिया । तीसरे ही दिन सुधार-घोषणाएँ हुईं । किसानों पर अत्याचार की जाँच आरम्भ हुई और साकूरागढ़ के समस्त सलाहकार, चार जिलों के शासनाध्यक्ष, बाईस अफसर, सात न्यायाधीश, तीन लेखा

परीक्षक बर्खास्त कर दिये गये और किसानों पर से समस्त बढ़े हुए कर तथा लगे हुए प्रतिबन्ध उठा लिये गये ।

ऐसा विचित्र परिवर्तन कैसे हुआ ? सामन्त यकायक कैसे बदल गया ? यह सब आश्चर्य का विषय था पर जानने वाले कहते थे, सोगोरो का प्रेत इस बुरी तरह राज्य परिवार के पीछे पड़ा है कि अब उन्हें किसी प्रकार अपनी खैर दिखाई नहीं पड़ती । सामन्त कोत्सुके नोसूके और उसकी पत्नी सोते-जागते भयंकर प्रेत-छाया को अपने चारों ओर अट्टाहास करते हुए देखते और अनुभव करते, उन्हें अब तो मृत्यु का ग्रास बनना ही पड़ेगा । नंगी तलवार का पहरा बिठाया गया, ओझा-तान्त्रिक बुलाये गये पर किसी से कुछ रोकथाम न हुई । सामन्त की पत्नी बीमार पड़ी और चारपाई पर से उसकी लाश ही उठी। वह स्वयं विक्षिप्त सा रहने लगा । एक अवसर पर राजधानी याहीशी में सभी सामन्त सम्राट को वार्षिक भेंट देने के लिए उपस्थित हुए थे । इनमें से साकेयी के साथ कोत्सुके की झड़प हो गई उसने आवगिना न ताव झट तलवार चला दी और उसकी हत्या कर दी । इसके बाद वह जान बचा कर भागा और अपनी गढ़ी में आ छिपा । सम्राट ने पाँच हज़ार सैनिक भेजकर उसकी गढ़ी पर कब्जा कर लिया और कबूतर पकड़ने जैसे जाल में बँधवा कर राजधानी बुलाया । जहाँ उसका सिर उसी तरह उड़ाया गया जैसा कि सोगोरो का उड़ाया गया था ।

अनीतिपूर्वक सताने वालों को इस घटनाक्रम को सुनाकर यह शिक्षा दी जाती है कि दुर्बल को सताने वाला यह न समझे कि वह सर्व समर्थ है । अन्याय के प्रति विद्रोह की आग इतनी प्रचण्ड होती है कि प्रेत बनकर भी प्रतिशोध ले सकती है और अत्याचारी को उसके कुकृत्य का मजा चखा सकती है । दुर्बलों का विक्षोभ भी प्रबल प्रचण्ड बनकर आततायी पर टूट पड़ सकता है ।

विक्षुब्ध आत्मा का अभिशाप

ऐसी ही एक और घटना है । अफ्रीका के नाइजीरिया देश में एक समय अँग्रेजों का उपनिवेश था । अब यों वहाँ आजादी है, पर प्रभुत्व वहाँ स्थायी रूप से बसे हुए गोरों का ही है ।

उस क्षेत्र के एक अँग्रेज अफसर फ्रेंक हाइब्स ने नाइजीरिया में आँखों देखा प्रेत-विवरण प्रकाशित कराया था । वह अफसर किसी काम से 'इसुइंगु' गया । वहाँ एक पुराना टूटा-फूटा डाक बँगला था । उसने उसी में ठहरने का निश्चय किया । उस क्षेत्र के रहने वाले इसुओरगु कवीले के आदिवासी उसे समझाते रहे कि इस डाक बँगले में प्रेत रहते हैं, इसलिए वह वहाँ न रहे । उन्हीं के घरों में ठहर जाय ।

अफसर उनकी अन्धमान्यताओं पर हँसता रहा और कहता रहा-"उनके गन्दे घरों की अपेक्षा प्रेत के साथ खुले डाक बँगले में रहना अच्छा है ।" मजदूरों ने उस खण्डहर की सफाई कर दी, खाने-ठहरने का साधन जुटा दिये, पर रात को वहाँ रहने के लिए कोई तैयार न हुआ । निदान उसे अकेले ही उसमें रहकर रात बितानी पड़ी ।

रात को बारह बजे तक वह सोता रहा किन्तु अर्धरात्रि होते ही किसी ने उसकी मच्छरदानी खींची । उठकर देखा तो कोई नजर नहीं आया किन्तु बदबू इतनी तेज फैल रही थी कि वहाँ ठहरना मुश्किल हो गया । इतने में एक तेज हवा के झोंके ने बँगले की खिड़कियाँ जोरों से खड़काना शुरू कर दीं और मेज पर रखी चाय की प्लेट जमीन पर पटक दीं । साथ ही किन्हीं भारी पैरों की आवाज उसे इस तरह सुनाई पड़ने लगी, मानो कोई बड़ी आकृति का प्राणी इधर टहल रहा हो, भरी पिस्तौल हाथ में लेकर हाइव्स बाहर निकला तो देखा कि अँधेरे में कोई छाया जैसी आकृति बरामदे में टहल रही है । अफसर ने आवाज दी, पर कोई उत्तर न मिला तो उसने दो गोलियाँ दाग दीं । पर इसका कोई प्रभाव उस आकृति पर न पड़ा । आकृति समीप बढ़ती आई और उसकी शक्ला आसानी से दीख पड़ने लगी । भयंकर चेहरा, नाक बैठी हुई, होठ खुले हुए, गंजा सिर, स्थिर पुतली, गड्ढों और झुर्रियों से भरे गाल, वह बड़ा भयानक लग रहा था । अफसर मूर्तिवत् सुन्न खड़ा रहा । वह सोच न सका कि यह कौन है और क्या कर रहा है । धीरे-धीरे आकृति पीछे हटी और खम्भे पर चढ़ने लगी । अफसर ने उसे निशाना बनाकर दो गोलियाँ और चलाईं, पर वह लगी किसी को नहीं । छाया भी गायब हो गई । डरा हुआ हाइव्स बेतहाशा भागा और कुछ दूर एक चीख के साथ बेहोश हो गया । आदिवासी यह जानने के लिए इर्द-गिर्द ही घूम रहे थे कि देखें, क्या घटना घटित होती है । वे लोग चीख सुनकर दौड़े आये और अफसर को उठाकर अपनी चौपाल पर ले गये । जहाँ उसे कई घण्टे बाद होश आया ।

दूसरे दिन अफसर ने आदिवासियों को बुलाकर उनके परिचित प्रेत की बावत पूछ-ताछ की तो इसुओरगु लोगों ने बताया कि जिस जगह डाक बँगला बना है, पहले उस जगह एक टीला था, जिस पर जूजू देवता की पूजा होती थी और जानवरों तथा मनुष्यों की बलि दी जाती थी । अँग्रेज जब आये तो उन्होंने उस स्थान की अनगढ़ मूर्तियों को उठवाकर एक

ओर फिकवा दिया-नरबलि बन्द करा दी और डाक बँगला बनवा दिया। इस पर उस क्षेत्र का देव पुरोहित बहुत बिगड़ा और अँग्रेजों के चले जाने पर गाँव वालों को इकट्ठा करके बोला-डाक बँगले को जला दो और वहाँ फिर से देवता की पूजा आरम्भ करो । भयभीत ग्रामवासी इसके लिय तैयार नहीं हुए । निराश पुरोहित क्रोध में उन्मत्त स्थिति में पागलों की तरह बड़बड़ाता और मंत्र पढ़ता हुआ उस डाक बँगले के चारों ओर चक्कर लगाता रहा और अन्त में एक रस्सी से उसी के बरामदे में फाँसी लगाकर मर गया, तब से अब तक उसी पुरोहित का प्रेत डाक बँगले में रहता है । कोई उधर जाने की हिम्मत नहीं करता । इससे पहले भी कोई अँग्रेज अफसर आया है और उसमें ठहरा है तो उसे भी प्रेत ने रहने नहीं दिया है।

उस बँगले में ठहरने वाले यह अनुभव करते रहे हैं कि विचित्र प्रकार की दुर्गन्ध उस बँगले के कमरों से आती है । उस भीषण उष्ण क्षेत्र में जहाँ रात को भी लोग हाँफते रहते हैं । इस बँगले मे कँपाने वाली ठण्डक रहती है । बाहर हवा बिलकुल ही बन्द क्यों न हो किन्तु भीतर आँधी-तूफ़ान उठते रहते हैं ।

फेंक हाइव्स ने इन सब बातों की जानकारी विस्तार पूर्वक प्राप्त की और जब उसे डाक बँगले के भुतहे होने का विश्वास हो गया तो भविष्य में किसी अफसर पर संकट न आये, यह ध्यान में रखते हुए उसमें अपने सामने आग लगवा दी और वह जलकर धराशायी हो गया । कितने आश्चर्य की बात है कि इस अग्निकाण्ड के साथ भविष्यवाणी भी सिद्ध हुई । पुरोहित जब आदिवासियों को डाक बँगला जलाने के लिए तैयार न कर सका तो उसने इतना ही कहा "अच्छा तुम मत जलाओ पर देखना एक दिन वह किसी न किसी के द्वारा जलकर ही नष्ट होगा ।" सचमुच उस डाक बँगले का अन्त वैसा ही हुआ । विक्षोभ जब अन्तःकरण में आँधी की तरह बहता है तो यह मृत्यु के बाद भी सक्रिय रहता है ।

इसीलिए विक्षोभ, उद्वेग की मनस्थिति से बचकर रहने का शिक्षण-परामर्श विवेकशील मनीषी सदैव देते रहें हैं । धार्मिक शिक्षण का प्रयोजन ही व्यक्ति को सुख-शान्ति की जननी सुविकसित मनोभूमि का निर्माण स्वयं करने की प्रेरणा देना है। आक्रोश-आवेश की अधिकता सामाजिक और पारिवारिक जीवन को ही नहीं अस्त-व्यस्त कर देती, अपितु व्यक्ति-चेतना में संस्कार रूप में घुसकर उसका पारलौकिक जीवन तक कष्टकारक बना डालती है । घृणा और रोष की स्थिति में मरने वाले अक्सर प्रतिपक्षी को कष्ट देते हैं ऊपर की घटना में पुरोहित प्रेतलीला हटाने के कारण रुष्ट हुआ और उस आक्रोश में आत्महत्या कर बैठा । मरने के बाद भी वह शान्त नहीं हुआ और उद्विग्न आत्मा उस टीले की जगह घने डाक बँगले को अपनी प्रतिहिंसा का केन्द्र बनाये रही । ऐसे ही विक्षुब्ध प्रेतों का वर्णन लन्दन के प्रसिद्ध टावर के सन्दर्भ में आता है ।

सन् १८६४ की ठण्ड की रात्रि की एक घटना है । राजा की शाही रायफल कोर्प्स का एक संतरी विलियम पहरा दे रहा था । उसने टावर के बन्द दरवाज़े के मध्य से धुँधलके के मध्य एक सफेद आकृति को अपनी ओर आते देखा । उसने चेतावनी दी-"हाल्ट"। दो बार दोहराने पर भी वह रुकी नहीं और उसकी रायफ़ल का वेयोनेट उस छाया के मध्य से निकल गया । यहीं विलियम बेहोश हो गया । जहाँ वह गिरा, यह वही स्थान था, जहाँ रानी 'एने बोलेन' को हेनरी-७ के समय में फाँसी दी गयी थी, कुछ दिनों बाद उस पहरेदार की मृत्यु हो गई ।

हेनरी-८ भी उसी महल में रहे थे एवं यहीं पास में उन्हें दफनाया गया था । उनकी भयंकर आकृति अक्सर टावर में वहाँ के अधिकारियों ने घूमती देखी । इस समय ३० लाख पर्यटक हर वर्ष इस ऐतिहासिक टावर को देखने आते हैं । सन् १०७८ ईसवीं से कई राजाओं व उनके परिवार का इतिहास इसी टावर से जुड़ा है । राजगद्दी के झगड़ों में इनमें से कई ने हत्यायें की व कुछ ने आत्महत्या । इन सभी के प्रेत यदाकदा किसी न किसी ने वहाँ देखे ही हैं । इन प्रेतों की शान्ति हेतु एक पादरी ने सन् १८५४ में एक ईसाई कर्मकांड भी किया, जिसके बाद घटनाओं में कुछ कमी तो आई, पर सिलसिला अभी जारी है ।

भारतीय दर्शन की इस मान्यता के समर्थन में ऐसी अनगिनत घटनाऐं हैं, जो स्पष्ट करती हैं कि मनुष्य को इस जीवन में अपने आपको आकांक्षाओं-वासनाओं के अतिरेकी आवेग से मुक्त करने का प्रयत्न करना ही चाहिए, अन्यथा मरणोत्तर अवधि में भी ये कुसंस्कार और कुप्रवृत्तियाँ जीवन को भारभूत, निरानन्द बनाए रखेंगी तथा व्यर्थ के भटकाव का कारण बनेंगी ।

अत्यधिक मोह के कष्टकर परिणाम

भूत-प्रेतों के अस्तित्व सम्बन्धी प्रचलित कथा-गाथाओं के सन्दर्भ में एक तथ्य सदा ही सामने आया है कि जिन व्यक्तियों को मरते समय अत्यधिक आवेश रहे हैं, उन्होंने उसी मनःस्थिति

का परिचय अपने प्रेत-कलेवर में दिया है । जैसे धन या मकान से अत्यधिक प्यार करने वाले मरते समय उन वस्तुओं से अत्यधिक मोह प्रकट करते हुए विलग हुए हैं तो उनका प्रेत उन्हीं स्थानों के इर्द-गिर्द मँडराता रहेगा । जमीन में गढ़े हुए धन की उन्होंने चौकीदारी की है और यदि किसी ने उसे निकाल भगाया है तो उसको तरह-तरह के त्रास दिये हैं । वस्तुओं का मोह उन्हें मरणोत्तर जीवन में कष्टकारक पहरेदारी के लिए विवश कर कैदी जैसा बनाए रखता है और उन वस्तुओं से मोह करने वाले अन्य देहधारी लोगों को भी इन अशरीरी प्रेमियों का कोप-भाजन बनाना पड़ता है ।

प्राण चेतना अपनी सम्बन्धित वस्तुओं के साथ चिरकाल तक जुड़ी रहती है और उसका मोह उन पर छाया रहता है इसका प्रमाण मिश्र के पिरामिड़ों एवं कब्रों की उखाड़-पछाड़ करने वालों पर बीती घटनाओं से मिलता है । अध्यात्म विज्ञान के अनुसार प्राणी के अन्यत्र जन्म लेने या अन्य लोक को चले जाने पर भी उसी विद्युत शक्ति उन वस्तुओं का घेरा डालकर चिरकाल तक अपना आधिपत्य जमाये रहती है, जिनके साथ उसका मोह अहंकार जुड़ा हो । भूत-प्रेतों का आस्तित्व प्रायः इसी स्तर का होता है । जीव के जन्म ले लेने के बाद भी लम्बे समय उसकी छाया का प्रेत रूप में बने रहना सम्भव है ।

अठारहवीं शताब्दी में अफ्रीका के बहुत बड़े भाग पर योरोपियन लोगों का अधिकार था । उन देशों के पुरातत्व वेत्ता इस बात के बहुत उत्सुक थे कि मिश्र के पिरामिड़ों तथा दूसरे मृतक-स्मारकों के पीछे छिपे रहस्यों पर से पर्दा उठाया जाय। इसलिए उन्होंने इस सन्दर्भ में काफी ढूँढ़-कुरेद की, खुदाई की और कितनी ही पुरानी कब्रों को उखाड़ा।

इस कार्य में शोध-कर्त्ताओं का एक उत्साही दल डा० ब्रेस्टेड के नेतृत्व में काम कर रहा था, उनके सहायक हार्वर्ड काटर-आर्थर बीगल लार्ड कारनवर्ग आदि कितने ही मूर्धन्य पुरातत्ववेत्ता अपने-अपने ढंग से काम कर रहे थे । इन लोगों ने बहुत धन खर्च करके प्राचीन काल के अवशेषों को प्राप्त किया था और उस आधार पर प्राचीनकाल की परिस्थितियों तथा मान्यताओं का पता लगाया था ।

इसी सन्दर्भ में सन् १९२२ में तूतन खांमेन नामक स्थान से एक ऐसे वृद्ध फकीर की कब्र खोंदी गई, जिसके सम्बन्ध में कितनी ही चमत्कारी दन्त-कथाएँ प्रचलित थीं । खुदाई का एक उद्देश्य उस क्षेत्र में फैले हुए अन्धविश्वासों का निरस्त करना भी था ।

कब्र खोद ली गई और उसके अवशेष भी प्राप्त कर लिए गये । अब उनका रासायनिक विश्लेषण होना आरम्भ हुआ । इस बीच एक से एक बढ़कर आश्चर्यजनक और भयानक घटनाएँ घटित होना आरम्भ हो गयीं । डा० ब्रेस्टेड अपनी प्रयोगशाला में अवशेषों, लकड़ी के टुकड़े का विश्लेषण करने के लिए एक बर्तन में कुछ रासायनिक पदार्थों के साथ उबाल रहे थे कि इतना भयंकर विस्फोट हुआ कि प्रयोगशाला की छत उड़ गई और दीवारें हिल गईं । इसी बीच एक काला सर्प शोधकर्त्ता कार्टर के घर जा धमका, वे स्वयं तो किसी प्रकार बच गये पर उनकी पत्नी को उसने डस ही लिया और वह देखते-देखते मर गई । एक महीना बीता होगा कि लार्ड कारनवर्ग को नन्हे से मच्छर ने काटा और दो दिन के भीतर ही वे मर गये। मच्छर काटने का स्थान बिलकुल साँप के काटने जैसी स्थिति का बन गया था । इतना ही नहीं, कारनवर्ग महोदय का हट्टा-कट्टा भाई भी उन्हीं दिनों दो दिन की मामूली बीमारी से चल बसा ।

दल के प्रमुख ब्रेस्टेड कब्र खुदाने के दो सप्ताह के भीतर ही मर गये । अपनी पत्नी को गँवा कर भी कार्टर साहस पूर्वक अन्धविश्वासों का खण्डन करते रहते ध, और शोध-कार्य को शिथिल नहीं पड़ने दिया था, पर न जाने क्या कुयोग उत्पन्न हुआ कि वे एक छोटी सी तलैया में जा फँसे और उस कीचड़ में ही फँसे हुए असहाय स्थिति में मरे पाये गये, इस प्रकार वह पूरा शोधकर्त्ता दल ही समाप्त हो गया ।

यह घटनाएँ मरणोत्तर जीवन के ठोस प्रमाण प्रस्तुत करती हैं और उनके लिए चुनौती देती हैं, जो शरीर के साथ ही जीवन का अन्त होने की बात करते रहते हैं । साथ ही वस्तुओं से अत्यधिक मोह होने पर मृत्यु के बाद भी जीवात्मा के उन्हीं जड़ वस्तुओं के इर्द-गिर्द मोहाविष्ट होकर मंडराते रहने की दयनीय स्थिति को भी स्पष्ट करती हैं ।

अमेरिका और अँग्रेज मिलकर मिश्र की समाधियों की खोज कर रहे थे, उस खोज के पीछे मात्र पुरातत्व विषयक रहस्यों का जानना ही नहीं था, वरन् उनमें दबी हुई विपुल स्वर्ण सम्पदा एवं रत्न राशि से लाभान्वित होना भी था । इसके अतिरिक्त एक और भी बात थी-उन किम्वदन्तियों की वास्तविकता जानना, जिनमें कहा जाता था कि इन समाधियों की रक्षा प्रेतात्मा करती हैं जो उन्हें छेडेगा वह खतरा उठायेगा । एक समाधि पर तो स्पष्ट शब्दों में शिलालेख लगा था-"जो फराऊनी कब्रों को छेड़छाड़ कर मृतात्माओं की शान्ति भंग करेगा उसे अकाल मृत्यु खा जायेगी ।"

कब्रों की खुदाई का काम सबसे पहले लार्ड कार्नार्वल ने अपने हाथ में लिया था । उनका परिवार भी उस कार्य में दिलचस्पी ले रहा था और सहयोग दे रहा था । इसका भयंकर परिणाम सामने आया । एक-एक करके उस अभियान से सम्बन्धित बाईस व्यक्त कुछ ही समय को अन्दर काल के गाल में बड़े विचित्र घटना-क्रम के साथ चले गये । लार्ड वेस्टवरी अनायास ही छत पर से कूद पड़े और मर गये । उनका बेटा जो खुदाई का इंचार्ज था । रात को अच्छा खासा सोया, सुबह मरा हुआ पड़ा मिला । डा० अर्चिवाल्ड डगलस रीड एक ममी का एक्सरे कर रहे थे कि उनका हार्टफेल हो गया । आर्थर बाइगाल को मामूली सा बुखार ही खा गया । आव्रेहर्वटन सहसा पगला गये और आत्महत्या कर बैठे । लार्ड कार्नार्वल की पत्नी लेडी एलिजावेथ एक तुच्छ से कीड़े के काटने के बहाने से ही ढेर हो गई । इस प्रकार उनका पूरा कुटुम्ब ही नहीं, सहकारी मण्डल भी देखते-देखते अकाल मृत्यु का ग्रास हो गया ।

यह प्रख्यात था कि नील नदी की घाटी में अवस्थित तूतन-खामेन की समाधि सबसे अधिक रहस्यमय, साथ ही सर्वाधिक सम्पत्ति से भरी-पूरी है । इसका लोभ खोजी लोग छोड़ नहीं पा रहे थे । यों इतनी मौतें देखते-देखते हो जाने के कारण सारे इंग्लैण्ड में आतंक छाया हुआ था और प्रेतात्माओं की बात का मखौल उड़ाने वाले लोग भी आश्चर्यचकित होकर इस प्रकार मृत्युएँ होने की बात को संयोग मात्र नहीं कह पा रहे थे ।

वे भी इच्छा न रहते हुए भी उन किम्वदन्तियों के आगे सिर झुका रहे थे, जिनमें समाधियों के साथ छेड़खानी करने वालों को जोखिम उठाने की चेतावनी दी जाती रही थी ।

यह खुदाई मिश्र में पुरातत्ववेत्ता विभाग सम्भालने वाले विद्वान हावर्ड कारटर ने इंग्लैण्ड के उत्साही धनपति लार्ड कार्निविन की साझेदारी में आरम्भ कराई थी । इसका परिणाम कुछ अच्छा नहीं निकला । दोनों ही साझीदारी समान रूप से क्षतिग्रस्त हुए, कारटर को भी जानमाल की भारी क्षति उठानी पड़ी ।

नगाड़े की चोट और पैसे की थाप

रायल सोसाइटी के फैलो जोसफ ग्लैनविल इंगलैण्ड के प्रामाणिक और सम्मानित नागरिक थे । उनने अपने संस्मरणों में सन् १६६२ में घटित हुई एक प्रेत-अस्तित्व की घटना का उल्लेख किया है । उनके कथानुसार इंगलैण्ड के विल्ट शायर स्थान में नियुक्त एक न्यायाधीश की अदालत में आये एक विचित्र केस का वर्णन है । एक अर्ध विक्षिप्त सा व्यक्ति कहीं से पुराना नगाड़ा खरीद लाया । वह उसे सड़क पर खड़ा होकर विचित्र ढंग से बजाता-भीडी इकट्ठी करता और पैसे बटोरता । पुलिस ने उसे रास्ता रोकने और अवांछनीय भीड़ जमा करने के अपराध में पकड़कर नगाड़े समेत अदालत में पेश किया । अदालत ने उसे चेतावनी देकर छोड़ दिया और नगाड़े को जब्त करने का हुक्म दिया । कुछ दिन बाद बेकार पड़े नगाड़े को पुलिस ने उस मजिस्ट्रेट के घर ही पहुँचा दिया । वहाँ उसे घर के एक कौने में पटक दिया गया ।

जिस दिन से नगाड़ा उनके घर में पहुँचा, उसी दिन से वहाँ प्रेतों के उपद्रव शुरू हो गये । किवाड़ों को खटखटाने की, छप्पर पर धमा-चौकड़ी और आँगन में उछल-कूद होने की घटनाएँ निरन्तर होने लगीं । बहुत तलाश करने पर भी कोई दिखाई न पड़ता था, पर घटनाएँ बराबर होती थीं । स्वयं प्रयत्न करने और नौकरों,पड़ौसियों की सहायता लेने के बाद भी जब उस उपद्रव का समाधान न हो सका तो पुलिस की सहायता ली गई, पर वे लोग भी देखते, सुनते,समझते हुए भी कुछ कर न सके । जो दिखाई ही नहीं देता उसको रोका या पकड़ा कैसे जाय ?

एक दिन मजिस्ट्रेट ने देखा कि किसी मजबूत आदमी ने जोर का धक्का देकर किवाड़ें खोल लीं, चटखनी टूट गई और वह व्यक्ति ओवरकोट पहने हुए घर में भीतर घुसता चला आया और आँगन में होता हुआ जीने के रास्ते छत पर चढ़ गया । आश्चर्य यह था कि ओवरकोट तो आँखों से दीख रहा था, पर पहनने वाले के हाथ-पैर,चेहरा आदि सभी नदारद था । लगता था, अकेला कोट ही यह सब हरकतें कर रहा है । इस घटना के बाद तो एक प्रकार से इन उपद्रवों को प्रेतात्मा की करतूत ही मान लिया गया ।

अब यह तलाश किया जाना था कि आखिर थोड़े ही दिनों से यह उपद्रव क्यों खड़े हुए, इससे पहले क्यों नहीं थे ? घर में कुछ अजनबीपन तो नहीं हुआ । इस ढूँढ़-खोज में जब्त किया गया गया वह नगाड़ा ही नजर आया, जो एक पगले से छीना गया था और उसने भी किसी कबाड़खाने से खरीदा था । नगाड़ा हटाया गया, साथ ही उन उपद्रवों का भी अन्त हो गया । इतना ही नहीं उस पगले का भी पता लगाया गया तो पता चला कि वह सदा से ही विक्षिप्त नहीं था । सस्ता माल देखकर कबाड़खाने से उस नगाड़े को ले आया तभी से वह पगला गया और शोर मचाने, भीड़ इकट्ठा करने की करतूतें करने लगा । जिस दिन से नगाड़ा जब्त हुआ उसी दिन से वह सामान्य स्वाभाविक स्थिति

में पहुँच गया । जिस दिन नगाड़ा हटाया गया उसी दिन से मोक्सन के घर शान्ति आ गई। इस घटना से यह समझा गया कि उस नगाड़े के असली मालिक की प्रेतात्मा अपनी प्रिय वस्तु के साथ चिपकी रही है और वह वस्तु जहाँ कहीं भी पहुँची है, वहीं उस आत्मा ने भी प्रवेश-पदार्पण किया है ।

सत्रहवीं सदी के पादरी जेरेन्सी टेलर ने अपनी स्मरण पुस्तक मे एक प्रेतात्मा का आँखों देखा विवरण लिखा है । जब पादरी घोड़े पर सवार होकर वेटफास्ट से डिल्सगेरो जा रहा था तो कोई अजनबी व्यक्ति सहसा उसके पीछे घोड़े की पीठ पर सवार हो गया । चकित पादरी ने उसका परिचय एवं उद्देश्य पूछा तो उसने अपना नाम हैडकजेम्स बताया और कहा आप मेरी विधवा पत्नी तक यह सन्देश पहुँचा दें कि उसका नया पति जल्दी ही उसके साथ धोखा करने वाला है । वह बचे। पादरी ने बताये हुए नाम पते पर वह सन्देश पहुँचा दिया । पर स्त्री ने उस बात पर न तो ध्यान दिया और न विश्वास किया ।

कुछ दिनों बाद उस स्त्री का खून हो गया । हत्या का मुकदमा कैरिकफोरेन्स की अदालत में चला । पुलिस को सन्देह था कि यह हत्या उसके नये पति ने पत्नी की सम्पत्ति हड़पने के लिए की है, इस सन्दर्भ मे पादरी जेरेंसी टेलर ने भी अपनी प्रेत-वार्ता की साक्षी प्रस्तुत की ।

पादरी की गवाही प्रामाणिक नहीं समझी गई और अदालत द्वारा कहा गया कि यदि ऐसा है तो मृतात्मा को अदालत में उपस्थित होकर अपनी बात कहनी चाहिए । सर्वत्र सन्नाटा था । अचानक जोर से बिजली कड़कने जैसी आवाज हुई । अदृश्य से एक हाथ निकला और उसने अदालत की मेज पर तीन बार जोर-जोर से थपकी दी । इस दृश्य को देखकर न्यायाधीश एवं सभी आतंकित हो गये । अदालत ने दूसरे पति डेवीज को अपराधी घोषित करते हुए उसे समुचित दण्ड दिया ।

मृतात्मा के प्रिय पदार्थों को दान कर देने अथवा अन्यत्र कहीं स्थानान्तरित कर देने का प्रचलन इसी दृष्टि से है कि उसे अन्यत्र जन्म लेने या विकास-क्रम के अनुरूप आगे बढ़ने में अड़चन न पड़े । प्रिय वस्तुओं में उलझा रहने के कारण आत्मा अशान्त और उद्विग्न ही रह सकता है जिस प्रकार घर के सम्बन्धी मृतक का अभाव अनुभव करके दुखी रहते हैं उसी प्रकार वह जीव भी बार-बार अपनी प्रिय वस्तुओं एवं परिस्थितियों के इर्द-गिर्द मँडराता रहकर दुखी हो सकता है । वहीं डेरा डालकर बैठा रह सकता है और उस उपस्थिति से घर-परिवार के लोगों को असुविधा अनुभव हो सकती है । इसलिए अच्छा यही समझा गया कि उन वस्तुओं को अन्यत्र स्थानान्तरित कर दिया जाय । दान में देकर आत्मा को यह विश्वास दिला दिया जाय कि वे पदार्थ अब परिवार के आधिपत्य में नहीं रहे, वरन् किसी धर्म सत्ता के अधिकार में चले जाने के कारण पराये हो गये । मृतक की वस्तुओं का दान करने का एक कारण यह भी है कि घर के लोग उन्हें देख-देखकर शोक-सन्तप्त रहने की कठिनाई से बच जायँ और विस्मृति अपनाकर अपना मन जल्दी हलका कर सकें ।

जो हो, इतना निश्चित है कि शरीर के साथ आत्मा का अन्त नहीं हो जाता । यदि आत्मा अधिक भावुक या मोहग्रस्त है तो उसे प्रेतात्माओं के रूप में सम्बन्धित पदार्थों तथा व्यक्तियों से मोह बना रह सकता है । यह मोह मृतात्मा की प्रगति और कुटुम्बियों की सुविधा की दृष्टि से अवांछनीय है । इसलिए अन्त्येष्टि संस्कार के साथ इस प्रकार के धर्मोपचार जोड़े गये हैं, जिससे आत्मा का मोह एवं शोक शान्त हो सके, उसे अन्यत्र जन्म लेने का अवसर मिल सके ।

संपत्ति का मोह सदा विपत्तियाँ लाता है

सम्पत्ति संचय का व्यसन सबसे बुरे और सबसे घिनौने किस्म का है । कुछ सनकी लोग यह सोचते हैं कि उनके पास जितनी अधिक सम्पदा संग्रहीत होगी, उसी हिसाब से उनका गौरव और वर्चस्व बढ़ेगा । लोग उनके भाग्य और पुरुषार्थ का लोहा मानेंगे और बड़प्पन का गौरव प्रदान करेंगे । इसी सनक ने अनेकों को बढ़-चढ़कर बहुमूल्य सम्पदा का स्वामी बनने के लिए प्रोत्साहन दिया। वे उस संचय का उद्धत प्रदर्शन करके लोगों की आँखों को चौंधियाने का प्रयास करते भी रहे । सम्भव है, उनके आस-पास घिरे चापलूसों ने इस सनक का समर्थन भी किया हो और प्रशंसा के पुल भी बाँधे हों, पर अन्ततः इसका क्या परिणाम हो सकता है, इसे वे न देख सके और न समझ सके ।

सम्पत्ति का उद्धत प्रदर्शन ईर्ष्या को जन्म देता है । उसे अपने अधिकार में करने के लिए अनेकों के मुँह में से लार टपकती है और जैसे भी बने, वैसे उसे हथियाने के दावघातों में से हर एक का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के आक्रमणों को आमन्त्रित करने का श्रेय या दोष उस अनावश्यक सम्पत्ति के संग्रह और उसके उद्धत प्रदर्शन को ही दिया जा सकता है ।

कोहनूर हीरे का इतिहास इसी प्रकार का है । वह जहाँ भी गया, जहाँ भी रहा अपने साथ विपत्ति भी लेकर गया और उसे रखने वाले के लिए प्राणघात की विपत्ति सँजोये रहा । शाहजहाँ ने तख्त ताऊस इसलिए बनवाया था कि वह संसार के सबसे वैभवशाली लोगों में गिना जा सके । उसकी पीढ़ियाँ उस पर बैठकर पुरखों के पुरुषार्थ के गीत गाते रहें, पर वैसा हो न सका, जैसा कि चाहा गया था । वैभव का सम्पादन करने वालों की दुर्भाग्य से एक आँख कानी होती है । वे एक पक्षी-एकाकी विचार कर पाते हैं, यह नहीं देख सोच पाते कि सम्पत्ति संग्रह का एक विपरीत पक्ष भी है और वह इतना घातक है कि महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति को अत्यन्त कष्टकारक परिस्थितियों में बदल देता है ।

कोहनूर हीरे का इतिहास भी बड़ा विचित्र ओर विलक्षण है । भागवत पुराण में उसका उल्लेख स्यमंतक मणि के रूप में मिलता है । द्वारिका के एक नागरिक सत्राजित के पास वह था । कृष्ण ने उससे कहा, यह मणि राजा के योग्य है । उसे महाराज उग्रसेन के पास पहुँचाना चाहिये । सत्राजित इस पर तैयार न हुआ तो घटना-क्रम ने दूसरा ही मोड़ ले लिया। सत्राजित का भाई प्रसेनजित उसे सदा छाती से लगाये फिरता था । एक दिन सिंह ने प्रसेनजित को मार कर वह मणि छीनी, सिंह को रीछ ने मारकर उस पर कब्जा जमाया । रीछ की भी खैर नहीं रही । श्रीकृष्ण ने रीछ को परास्त किया उसने न केवल मणि को, वरन् उसकी बेटी को भी हथिया लिया । श्रीकृष्ण भी उसे पाकर चैन से न बैठ सके और बहेलिए के हाथों मारे गये । इसके बाद वह पाण्डुवंशियों के पास पहुँचा । परीक्षित, जन्मेजय, चन्द्रगुप्त मौर्य, बिम्बसार,अशोक, ब्रहद्रथ,पुष्य-मित्र-एक के बाद एक के पास पहुँचने की कथाएँ भी बड़ी कष्टकर हैं । उसका हस्तान्तरण शान्ति और सद्भावना पूर्ण नहीं हुआ, वरन् दुरभि संधियाँ और हत्याएँ ही उसे इधर-उधर लिये फिरीं ।

कनिष्क, चन्द्रगुप्त, हर्षवर्धन के बाद वह माल्व नरेश यशोवर्मा के पास पहुँचा । उनके वंशज राजा राम पर अलाउद्दीन खिलजी ने आक्रमण किया और मालव देश को पद-दलित करके उस हीरे को हथिया लिया । इसके बाद दिल्ली के बादशाहों के अधिकार में वह देर तक बना रहा । इब्राहिम लोदी की पराजय के बाद उसकी बेगम दिल्ली छोड़कर आगरा आ गई थी । उस पर हुमायूँ ने हमला कर दिया । इज्जत बचाने के लिए बेगम को हीरा हुमायूँ की भेंट करना पड़ा ।

हुमायूँ की मौत सीढ़ी पर से फिसलने के कारण हो गई, वह कई पीढियों तक उसके वंशजों के पास बना रहा । मुहम्मदशाह पर ईरानी लुटेरे नादिरशाह ने हमला कर दिया और उसकी पगड़ी में छिपा हीरा झटककर अपने कब्जे में कर लिया। नादिरशाह के मुँह से उसे देखते ही शब्द निकला-कोह-ए-नूर-अर्थात् प्रकाश का पर्वत । इसे लेकर प्रचुर सम्पदा के साथ वह वापिस लौटा तो रास्ते में भयानक तूफान में उसकी सेना तथा सम्पदा का बड़ा भाग नष्ट हो गया । नादिरशाह चैन से न बैठ सका । उसके भतीजे अलीकुली खाँ ने ही उसका काम तमाम कर दिया । उसका यह लाभ अफगान सेनापति अहमदशाह अब्दाली से न देखा गया, उसने अलीकुली खाँ को मौत के घाट उतारा और कोहनूर अपने कब्जे में कर लिया ।

अहमद शाह अब्दाली के बाद उसका पुत्र तैमूर शाह इस हीरे का अधिकारी बना । वह जब मरा तो अपने पीछे २३ बेटे छोड़ गया । उनमें सत्ता के लिए तुमुल युद्ध हुआ । उसमें जमान शाह जीता । उससे हीरा छीनने के लिए उसके विश्वासी भाई महमूदशाह ने ही उसे कैद में डाल दिया और यन्त्रणा देकर आँखें निकल वालीं । महमूद को कुचल कर शाहशुजा ने उसे पाया । शाहशुजा कैद में पड़ा हुआ था । उसने अपनी मुक्ति के लिए पंजाब के महाराज रणजीतसिह से अपनी बेगम के द्वारा प्रार्थना कराई और बदले में कोहनूर देने का वायदा किया । महाराज ने काबुल के वजीर फतह खाँ को साथ लेकर शाहशुजा को छुड़ाया । शाहशुजा ने छूटने पर हीरा देने में आनाकानी की तो उसे महाराज ने यन्त्रणा देकर विवश कर दिया । उसे देना तो पड़ा पर वह अन्य हीरों के साथ भाग खड़ा हुआ और अँग्रेजों से जा मिला ।

महाराज रणजीत सिंह के मरने के बाद उनका राज्य अँग्रेजों के हाथों में चला गया और साथ ही वह बहुमूल्य हीरा भी महारानी विक्टोरिया के ताज में उसे और भी खूबसूरत बनाकर जड़ा गया । इसे तराशने और चमकाने में योरोप के कुशलतम रत्न-शिल्पी ३८ दिन तक लगे रहे और उसे पहले की अपेक्षा अधिक सुन्दर बनाया ।

कोहेनूर प्रख्यात है, बड़ा है, इसलिए उसकी चर्चा भी बड़ी है । छोटी-मोटी रत्न राशियाँ भी ऐसी ही विपत्ति सँजोये हुए मिलेंगी । चूँकि छोटी सम्पदाएँ छोटे लोगों के पास होती हैं और उनकी प्रतिक्रिया एवं विपत्ति भी ऐसी होती हैं जो सम्बद्ध

लोगों को तो पूरी तरह संत्रस्त करे पर ऐतिहासिक घटनाओं में अपना स्थान न पा सके । हस्र छोटे और बड़े अनावश्यक संग्रह का प्रायः एक जैसा ही होता है ।

ऐसी ही दुर्गति शाहजहाँ के उन अरमानों की हुई, जिनमें वह विपुल सम्पदा का स्वामी बनकर गौरवशाली बनने के स्वप्न देखता रहता था । तख्त ताऊस (मयूर सिंहासन) शाहजहाँ ने बनवाया था, उसमें १२ करोड़ रुपये के रत्न जड़े थे उसके निर्माण में सात वर्ष लगे और तत्कालीन श्रेष्ठतम रत्न शिल्पियों ने उसे बनाने में अपना पूरा श्रम समय एवं मनोयोग लगाया। इसमें पन्ने से बने पाँच खम्भों पर मीनाकारी का छत्र बना हुआ था । पाये ठोस सोने के बने थे । खम्भों पर दो-दो मोर नृत्य करते हुए बनाये गये थे । प्रत्येक जोड़े के बीच में हरे-लाल, मोती,पन्ने आदि रत्नों से जड़ा एक-एक पेड़ था । बैठने के स्थान तक पहुँचने के लिए तीन रत्न जटित सीढ़ियाँ थीं । उसमें कुल मिलाकर ग्यारह चौखटें थीं । मीनाकारी का स्वर्ण छत्र देखते ही बनता था । तख्त ताऊस को अपने समय की अद्भुत और बहुमूल्य कलाकृति माना जाता था ।

जिन अरमानों के साथ शाहजहाँ ने उसे बनाया था वे पूरे न हुए । वह कुछ ही दिन उस पर बैठ पाया था कि उसके बेटे औरंगजेब के बाद मुगल साम्राज्य का पतन आरम्भ हुआ । मुहम्मद शाह राज्याधिकारी था । उस पर ईरान का नादिरशाह चढ़ दौड़ा और भारी लूट-खसोट के अतिरिक्त तख्त ताऊस भी फारस उठा ले गया । उसी के कुटुम्बी कुर्दा ने नादिरशाह की हत्या कर दी और उसका सारा माल असवाब छीन लिया और जिसमें यह मयूर जड़ित सिंहासन भी सम्मिलित था । लुटेरों ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और उन्हें आपस में बाँट दिया। बँटवारे में उस शानदार शामयाने का भी कतरब्योंत कर लिया जो उस सिंहासन के ऊपर ताना जाता था और रत्नों की झिलमिलाहट से आकाश में चमकने वाले सितारों की बहार देता था ।

इसके कुछ समय बाद ईरान की सत्ता आगा मुहम्मद शाह ने सँभाली । उसने नादिरशाह के लुटेरे वंशजों को पकड़ कर भारी यातनाएँ दीं और लूट का सारा माल उगलवा लिया । इस वापिसी में तख्त ताऊस के टुकड़े भी शामिल थे । जौहरियों ने उन टुकड़ों को जोड़-तोड़कर एक नया तख्त ताऊस बनाया । इसके बाद भी वहाँ अराजकता और गृह युद्ध का सिलसिला चलता रहा और उसे फिर लूट लिया गया । रत्नों को उखाड़ लिया और कीमती पत्थरों को भविष्य में फिर कभी काम में लाने की दृष्टि से समुद्र में किसी खास जगह छिपा दिया गया । छिपाने वाले उस स्थान को बता नहीं सके और वे अवशेष अभी भी ईरान के समुद्र तट के निकट उथली जल राशि में छिपे पड़े हैं । ढूँढ़-खोज से अभी तक उनका पता नहीं चल सका ।

अहंकारी मनुष्य न जाने कब तक सम्पत्तिवान होने पर बड़ा आदमी बनने की साध सँजोये रहेगा । रावण, हिरण्यकश्यप से लेकर नेपोलियन, सिकन्दर तक इसी मूर्खता में अपनी प्रतिभा को नष्ट कर चुके और दुखदायी अन्त देख चुके । हमारी आँखें यदि उन अनुभवों से खुल सकें और संग्रह की अपेक्षा सदुपयोग के लिए अपना उपार्जन प्रयुक्त कर सकें, तो कितना अच्छा हो ।

कुकृत्यों से वस्तुएं भी अभिशप्त होती हैं

सत्कर्मों एवं दुष्कर्मों का प्रभाव न केवल मनुष्य के ऊपर पड़ता है, वरन् वस्तुओं एवं समीपवर्ती वातावरण पर भी पड़ता है । कर्मों के सूक्ष्म संसार वातावरण में बने रहते और सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों पर असाधारण प्रभाव डालते देखे गये हैं । चिन्तन एवं कृत्य किस प्रकार स्थान एवं वातावरण पर असर डालते हैं, इसकी परीक्षा की जा सकती है । मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर में जाते अथवा निकट से होकर गुजरने पर मन को विशेष शान्ति मिलती है । बाजार, मेला, भीड़-भाड़ के कोलाहल में पहुँचने पर मन उद्विग्नता एवं अशान्ति से भर उठता हैं । कसाई खाने में पहुँचने पर हृदय उद्वेलित हो उठता है । घृणा उत्पन्न होती है । शीघ्रता से उस स्थान से निकल चलें, ऐसा मन करता है । नदी-सरोवर के निकट बैठने पर मन प्रसन्नता से भर उठता है । तीर्थ स्थानों पर जाने से मन से श्रेष्ठ कार्यों-परमार्थ के प्रति उमंग उठने लगती है । यह उन स्थानों में विद्यमान ऋषियों के तप के फलस्वरूप सूक्ष्म संस्कारों की ही प्रतिक्रिया है, जो वातावरण में अदृश्य रूप से मौजूद रहते तथा समीप में आने वालों को सत्कार्यों की ओर प्रेरित करते रहते हैं ।

संत, महात्मा, महापुरुष जहाँ रहते हैं वह स्थान भी प्रेरणा का केन्द्र बिन्दु बनता है । उनकी वस्तु श्रद्धा की पात्र बनती तथा जीवित व्यक्तियों जैसी सूक्ष्म प्रेरणा एवं प्रकाश देने में समर्थ होती है । सद्विचारों एवं सत्कर्मों से संस्कारित वस्तुएँ अदृश्य प्रभाव डालती हैं तथा कल्याणकारी सिद्ध होती हैं । यह सत्पुरुषों

के सत्कर्मों एवं सद्विचारों की ही परिणति है, जो उस वातावरण पर सुसंस्कारों के रूप में छाई रहती तथा अदृश्य प्रेरणाएँ प्रेषित करती रहती है । फलतः अनेकों व्यक्ति लाभान्वित होते हैं ।

दुष्कर्मों का प्रभाव भी कालान्तर तक बना रहता है । वातावरण में विक्षोभकारी तत्व अधिक रहते हैं । वस्तुएँ अभिशप्त होती तथा संकट का कारण बनती हैं । शास्त्रों की मान्यता है कि श्रेष्ठ आत्माएँ अपने भौतिक जीवन के उपरान्त भी समीपवर्ती वातावरण में उपस्थित होकर प्रेरणा एवं प्रकाश देती रहती हैं । दुरात्माएं जीवनकाल में न तो स्वयं सन्तुष्ट रहती हैं, न ही दूसरों को शान्त बैठने देती हैं । मरणोपरान्त भी वह उसी प्रकार संकट उत्पन्न करती हैं जिस प्रकार जीवित बने रहकर । इसे वातावरण का प्रभाव माना जाय अथवा श्रेष्ठ या दुष्ट मृतात्माओं का आशीर्वाद-प्रकोप । इस विवादास्पद चर्चा में न भी उलझा जाय तो एक तथ्य सभी को मान्य है कि उक्त वातावरण में भले-बुरे कृत्यों का प्रभाव निरन्तर बना रहता है । सत्कर्मों का समर्थन एवं दुष्कर्मों से विरत रहने की आप्त प्रेरणाओं में, यही रहस्य सन्निहित है ।

दुष्कर्मों के फलस्वरूप अभिशिप्त बनी वस्तुएँ एवं सम्पदाएँ किस प्रकार विक्षोभ उत्पन्न करती तथा संकट का कारण बनती हैं, इसका प्रमाण समय-समय पर मिलता है । ब्रिटिश म्यूजियम में रखी एक ममी अपने साथ ऐसी ही कहानी जोड़े हुए है । सन् १८६४ में अरब देश की एक खुदाई में उपरोक्त दुर्भाग्यशाली ममी मिली । आकर्षण से प्रभावित होकर 'बाब सिसरो' नामक एक पूँजीपति में उसे खरीद लिया । दो माह के भीतर उसे व्यापार में इतना बड़ा घाटा हुआ कि वह अपने को सन्तुलित न रख सका । हृदय की धड़कन रुक जाने से वह मर गया। ममी की देख-रेख करने वाले दो नौकर भी बिना किसी रोग के बिस्तर पर सोये हुए मृत पाये गये । पूँजीपति का एक मात्र लड़का एक ट्रक दुर्घटना में घायल हो गया । उसके दोनों पैर काटने पड़े । अभिशिप्त जानकर घर वालों ने बिना कोई मूल्य लिए ममी को एक फोटोग्राफर को दे दिया । फोटोग्राफर जे०एस० सैम्सन ने अधिक कीमत प्राप्त करने के उद्देश्य से ममी का फोटो लेना चाहा जिससे विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशन के लिए दे सके । फोटो को साफ करने पर वह देखकर विस्मित रह गया कि मिश्र की अधेड़ महिला का स्पष्ट चित्र आ गया है । चित्र लेने के दूसरे दिन ही वह पागल हो गया तथा कुछ ही दिनों में मर गया । उसकी पत्नी ने परेशान होकर लन्दन स्थित ब्रिटिश म्यूजियम को 'ममी' को वापस सौंप दिया । 'ममी' को म्यूजियम में पहुँचाने वाले दो मजदूरों में से एक तो एक सप्ताह के भीतर ही मर गया, दूसरा कार दुर्घटना में हाथ-पैर गँवा बैठा ।

म्यूजियम में पहुँचने के बाद भी अभिशप्त ममी का प्रकोप कम नहीं हुआ । शहर की मशहूर फोटोग्राफर कम्पनी मैसर्स डब्ल्यू ए० मैनसल ने इस ममी का चित्र लेने का प्रयास किया। उक्त कम्पनी मालिक का लड़का फोटोग्राफर को लेकर ममी का निरीक्षण करने आया । निरीक्षण के उपरान्त वापिस लौटते समय कार दुर्घटना में उसका एक हाथ टूट गया । उधर फोटोग्राफर लड़का घर में खिड़की के पास बैठा था । इतने में खिड़की में लगा काँच अपने आप निकलकर उसके ऊपर गिर पड़ा । फलस्वरूप वह बुरी तरह घायल हो गया । फोटोग्राफर इन संकेतों को न समझ सका । दूसरे दिन म्यूजियम से उक्त ताबूत का चित्र खींचकर वह लौट ही रहा था कि कहीं दूर से एक काँच का टुकड़ा उसकी नाक से आकर टकराया। उसकी नाक कट गई । उक्त संकटों को देखर म्यूजियम अधिकारियों ने उसका चित्र लेना ही वर्जित कर दिया ।

इन घटनाओं को देखकर म्यूजियम के अधिकारियों ने 'ममी' के इतिहास का पता लगाने का कार्य पुरातत्ववेत्ताओं को सौंपा । पर्यवेक्षण करने पर मालूम हुआ कि ताबूत मिस्र की एक ऐसी महिला का है जिसने अथाह सम्पत्ति एकत्रित कर ली थी । जीवन के अन्तिम दिनों में कुछ व्यक्तियों ने उसके साथ षडयन्त्र करके सम्पत्ति हड़प ली । वह विक्षिप्तावस्था में मरी । विशिष्ट सूत्रों द्वारा जानकारी मिली कि वह ताबूत पहले भी अनेकों व्यक्तियों की मृत्यु का कारण बन चुका है। उसकी आत्मा निरन्तर ताबूत के साथ बनी रही । जो भी उसे छूता अथवा छेड़छाड़ करने का प्रयत्न करता, उसके कोप का भाजन होता ।

ब्रिटेन के ही एक अपराधी के घर से एक ऐसा चित्र बरामद हुआ जो बिल्ली का था तथा नीले पेपर पर काले चाक से बनाया हुआ था । ध्यान से देखने पर इस अस्पष्ट चित्र में खूंख्वार जानवर की आँखें चमकती दिखाई पड़ती थीं । सर्वप्रथम वन विभाग के एक अधिकारी ने उसे प्राप्त किया । उसे अपने शयन कक्ष में उसने लगाया । अभी कुछ ही दिन बीते होंगे कि उस वन अधिकारी ने आत्म-हत्या कर ली । चित्र आकर्षक था पर उसे दुर्भाग्यशाली जानकर पत्नी ने काउन्ट अलेक्जेन्डर नामक व्यक्ति के हाथों बेच दिया । जिसे उसने अपने ड्रेसिंग रूम में सजाया । काउन्ट अलेक्जेन्डर जब भी

ध्यान से चित्र को देखता, उसे दो हिंसात्मक आँखें घूरती दिखाई पड़ती थीं । एक दिन विक्षिप्तावस्था में उसने स्वयं को गोली मार ली ।

तीसरा शिकार बना काउन्ट अलेक्जेन्डर का युवा लड़का । दुर्लभ वस्तुओं को एकत्रित करने का शौक होने के कारण उस चित्र को वह अपने घर ले आया । चित्र को एक दिन वह ध्यान से देख रहा था । अचानक डरने लगा कि किसी व्यक्ति की खूनी आँखें उसे घूर रही हैं । असन्तुलन की स्थिति में उसने भी आत्म-हत्या कर ली । चौथा शिकार उस युवक का एक रिश्तेदार बना, जो कुशल चित्रकार था । चित्र की पेन्टिंग बनाने के लिए वह उसे अपने घर ले आया । दूसरे दिन प्रातःकाल वह विस्तर पर मरा पाया गया । इसके साथ ही वह रहस्यमय चित्र भी गायब हो गया ।

जिस अपराधी के घर से उक्त चित्र बरामद हुआ, उसकी विस्तृत जानकारी एकत्रित करने पर कई रोचक तथ्य सामने आए हैं, इन्टेलीजेन्स डिपार्टमेन्ट के विवरण में वर्णन था कि वह रहस्यमय चित्र एक अपराधी गिरोह का कोई संकेत था । जिस घर से प्राप्त हुआ, उसका मालिक उक्त गिरोह का सरदार था । वह चित्र उसे अत्यधिक प्रिय था तथा सदा अपने पास रखता था । उसके ऊपर अनेकों हत्याओं एवं अपराधों का आरोप दर्ज था ।

ऐसी ही एक अभिशप्त प्रतिमा अटलांटिक महासागर से प्राप्त हुई, जिसने अब तक अनेकों व्यक्तियों की जानें ले ली हैं । इटली का एक जहाज द्वितीय विश्वयुद्ध के समय उक्त सागर से होकर जा रहा था । नाविक ने सागर की तरंगों के साथ कोई वस्तु बहती हुई देखी । जाल डालकर खींचने पर वह काठ की एक आदमकद युवती की प्रतिमा निकली । प्रतिमा के जहाज पर आते ही नाविक एवं यात्री चारों ओर एकत्रित होकर देखने लगे । नारी सौन्दर्य की इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति उस काष्ठ मूर्ति में हुई थी कि सभी मंत्रमुग्ध बने देखते रहे । प्रतिमा की लकड़ी की चौकी पर नाम अंकित था 'एटलांश'। प्रतिमा पर आसक्त दो नाविक अपना सन्तुलन गँवा बैठ । उन्होंने अथाह समुद्र में छलाँग लगा दी ! नाव के कप्तान ने इस आकस्मिक घटना के फलस्वरूप प्रतिमा को केबिन में मजबूत ताले के भीतर बन्द कर दिया । इटली बन्दरगाह पर पहुँचकर जहाज के कप्तान ने प्रतिमा को निकटवर्ती अजायबघर को सौंप दिया । प्रतिमा में आकर्षण इतना अधिक था कि वहाँ भी दर्शकों की भीड़ जमा हो गई । कितने ही व्यक्ति तो देखकर पागल हो गये । जर्मन सेना के एक लेफ्टीनेन्ट ने १३ अक्टूबर, १९४४ को प्रतिमा के समक्ष सीने में गोली मारकर आत्म-हत्या कर ली । एक अन्य व्यक्ति ने भी इसी प्रकार गोली मार ली । अजायबघर के अधिकारियों ने यह स्थिति देखकर विचार किया कि उस प्रतिमा को हटा देना चाहिए पर दुर्लभ एवं अनौखी कलाकृति होने के कारण उसे हटाया न जा सका । हाँ, अधिकारियों ने उसके प्रदर्शन पर रोक अवश्य लगा दी । प्रतिमा के कलाकार का नाम पता तो नहीं मालूम हो सका पर ऐसा अनुमान लगाया गया कि प्रतिमा किसी द्वीप के राजकुमारी की है जो अपने समय की अद्वितीय सुन्दरी थी एवं यौवनकाल में ही राजकीय दुष्चक्रों के कारण उसकी मृत्यु हो गयी थी ।

'लायल वैमिस्टर' द्वारा लिखी गई पुस्तक ''स्ट्रैन्ज हैपनिंग'' में एक ऐसी ही घटना का उल्लेख मिलता है । यार्कशायर इंग्लैण्ड में स्थित एक शराब-गृह की कुर्सी, मृत्यु की कुर्सी के नाम से जानी जाती है । इस कुर्सी पर अब तक बैठने वाले अनेकों व्यक्ति अपनी जान गँवा चुके हैं। कुर्सी के विषय में किम्वदन्ती इस प्रकार है ।

'बसबी' नाम का एक प्रख्यात अपराधी था । वह उसी शराबखाने में नित्य शराब पीने आता था । अपने आतंक से उसने शराब खाने में आने वाले व्यक्तियों एवं मालिक को भयभीत कर रखा था । शराब गृह में उसकी एक सुरक्षित कुर्सी रखी रहती थी, जिस पर उसके अतिरिक्त कोई नहीं बैठता था । एक रात वह शराब खाने में अपने ससुर के साथ आया और खूब शराब पी । शराब के आवेश में ही उसने अपने ससुर की हत्या कर दी । उसे फाँसी की सजा हुई । संयोगवश फाँसी का मंच भी शराब गृह के ठीक सामने बनाया गया । जिस समय उसकी फाँसी हुई, वह अत्यधिक उत्तेजित था । उसने कहा कि-''मेरी कुर्सी पर जो भी बैठगा, उसे मैं जिन्दा नहीं छोड़ूँगा ।''

कहते हैं कि उसके मरने के बाद उक्त कुर्सी अभिशप्त हो गई । शराब गृह के मालिक अर्नशो ने यह स्वीकार किया कि उस कुर्सी के साथ किसी दुष्ट आत्मा का प्रकोप जुड़ा हुआ है । उसने जब से शराब गृह खरीदा है, उस कुर्सी पर बैठने वाले अनेकों व्यक्ति जान से हाथ धो चुके हैं । आगन्तुकों को सतर्क करने की दृष्टि से मालिक ''अर्नशो'' ने अभिशप्त कुर्सी के इतिहास को छपाकर शराब गृह में टाँग रखा है ताकि आने वालों को कुर्सी से जुड़े प्रकोपों का सामना न करना पड़े ।

एक बार वायु सेना के दो सैनिक शराब पीने आये । शराब गृह में टँगी लिखित चेतावनी को पढ़कर वे व्यंग तथा अन्ध विश्वास मानकर मालिक की हँसी उड़ाने लगे । मालिक के मना करने पर भी उन दोनों ने कुर्सी पर बैठकर शराब पी । शराब पीने के बाद वे कार में बैठकर चल पड़े । अभी दो तीन मील ही चले होंगे कि इतने में गाड़ी एक वृक्ष से जाकर टकरा गई और दोनों को अकस्मात् अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा । दूसरा शिकार बना एक मेजर । कुर्सी एवं उससे जुडी कहानी की सत्यता का परीक्षण करने के लिए मेजर ने दुस्साहस किया । लम्बे-चौड़े, हट्टे-कट्टे मेजर ने कुर्सी पर बैठकर शराब पी । दूसरे ही दिन इस दुस्साहस की बुरी परिणित हुई । बिना किसी रोग के अचानक मेजर की मृत्यु हो गई ।

एक दिन अनजाने में एक मजदूर उस कुर्सी पर आकर बैठ गया । उसकी आयु मात्र सत्तरह वर्ष थी । ठीक दो घण्टे बाद वह एक मकान की छत से ऐसे उछला, जैसे कि किसी ने उठाकर फेंक दिया हो । नीचे गिरते ही उसने दम तोड़ दिया । शराब गृह के मालिक अर्नशो के समक्ष अब भारी असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो गई । एक बार तो उसने सोचा कि कुर्सी को आग लगाकर जला दूँ । किन्तु यह सोचकर कि विक्षुब्ध दुरात्मा के कोप का भाजन कहीं उसे स्वयं भी न बनना पड़े, उसने अपना इरादा बदल दिया । अन्य किसी को आगे शिकार न बनना पड़े अतएव कुछ न कुछ तो करना ही चाहिए, यह सोचकर उसने कुर्सी को एक कमरे में बन्द कर दिया । अब तक कुर्सी की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी । एक दिन उसका एक मित्र जिसका नाम हैरी था, मिलने आया । उसे कुर्सी की पूरी कहानी मालूम हुई । कौतूहल बढ़ा और अर्नशो को कुर्सी दिखाने के लिए वह बारम्बार आग्रह करने लगा । हैरी के साथ उसका एक मित्र और भी साथ में था । इस शर्त पर कि कोई कुर्सी पर बैठेगा नहीं 'अर्नशो' कुर्सी दिखाने के लिए सहमत हुआ । तीनों कुर्सी को देखने के लिए तहखाने में पहुँचे । कुर्सी के निकट पहुँचते ही अचानक बाहर से अर्नशो का बुलाबा आया । उन दोनों को कुर्सी पर न बैठने की चेतावनी देकर अर्नशो तहखाने के बाहर आया। वापिस तहखाने में लौटा तो वह यह देखकर विस्मित रह गया कि उसका मित्र 'हैरी' कुर्सी पर बैठा हँस रहा है । अर्नशो को घबड़ाया हुआ देखकर वह बोला कि डरने की आवश्यकता नहीं है । पुरानी कहानी मात्र एक बकवास और अन्ध विश्वास है उसमें थोड़ा भी सार नहीं है । हैरी ने अपने साथ आये दूसरे मित्र को भी कुर्सी पर बैठने के लिए प्रेरित किया । मित्र के दबाव के कारण वह कुर्सी पर बैठा तो मन ही मन बुरी आशंकाओं से भयभीत रहा । दोनों थोड़ी देर बाद अपने घर वापिस चले गये । इधर शराब गृह का मालिक अर्नशो भीतर ही भीतर डर रहा था कि कहीं पुरानी घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो ।

उसकी आशंका निराधार न थी, पिछले अनुभव साथ में जुड़े हुए थे । कुछ ही समय बाद सन्देह सिद्ध हुआ । हैरी की मृत्यु ठीक ४८ घण्टे बाद बिना किसी शारीरिक बीमारी के हो गई । दूसरे मित्र ने आत्म-हत्या कर ली । उसका निर्जीव शरीर दूसरे दिन प्रातः 'रीवन मार्केट' के समीप एक सड़क पर पाया गया । यह समाचार अर्नशो को भी मिला । उसने उसी दिन से कुर्सी को कभी भी किसी को भी न दिखाने का निश्चय कर लिया ।

सत्कर्म और दुष्कर्म अपने-अपने अनुरूप प्रभाव डालते हैं। इससे व्यक्ति ही नहीं वातावरण और वस्तुएँ भी प्रभावित होती हैं । मरणोपरान्त भी दुरात्माएँ उन वस्तुओं के इर्द-गिर्द मँडराया करती हैं । वस्तुएँ अभिशप्त बनती हैं तथा समीप आने वाले व्यक्तियों अथवा प्रयोगकर्ताओं पर प्रहार करती हैं। उपरोक्त घटनाएं इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं । दुराचारी स्वयं विक्षिप्त बना जीवन पर्यन्त अपने कुकृत्यों की आग में जलता रहता है और मरणोपरान्त भी विक्षोभ उत्पन्न करता है । जिसका परिचय इस प्रकार की घटनाओं के रूप में मिलता है । सत्कर्म की परिणति इस जीवन में सुख-समृद्धि, शान्ति और सन्तोष के रूप में होती है । लोकोत्तर जीवन भी शान्ति और सन्तोष से भरा होता है । अपने जीवन काल में तथा उसके बाद असंख्यों व्यक्ति प्रेरणा-प्रकाश ग्रहण करते हैं, जबकि अनाचारी, दुराचारी जीवित रहते हुए तो विक्षोभ उत्पन्न करते ही हैं । मरने के बाद भी शान्त नहीं बैठते और संकट उत्पन्न करते देखे जाते हैं । उनके प्रभाव से वस्तुएँ तक अभिशप्त हो जाती हैं तथा उपरोक्त प्रकार के संकट खडे करती देखी जाती हैं ।

अनीति त्रास ही त्रास देती है

धन-सम्पदा का अपना महत्व है । हर व्यक्ति जीवन में सुख-समृद्धि, वैभव देखना चाहता है, किन्तु जब यह लालसा अति की सीमा को पार कर जाती है तो येन-केन-प्रकारेण उसे पूरा करने का प्रयास किया जाता है । पुरातत्व विज्ञान एवं नृतत्व विज्ञान की शोधों से ऐसे कई घटनाक्रम, प्रकाश में आये

हैं, जिनसे पता चलता है कि अगणित व्यक्तियों ने सम्पदा जुटाने हेतु किस प्रकार प्रयास किए एवं कैसे उनसे जुड़े अभिशापों से उन्हें दण्डित भी होना पड़ा ? प्रकृति की यह व्यवस्था स्वयं में अदभुत है कि आतंक व अनीति की कीमत पर प्राप्त की गई वस्तु जिस किसी के पास जाती है, उसे सुख नहीं, कष्ट-ही-कष्ट देती है । होप डायमण्ड पर यह तथ्य अक्षरशः लागू होता है ।

नीली प्रकाश किरणों वाला यह हीरा देखने में जितना आकर्षक व सुन्दर है, वह उतना ही खतरनाक भी है । अब तक यह जिस-जिस के पास गया, उसे चैन से नहीं रहने दिया। कइयों ने इसे पाकर आत्महत्या कर ली, कई पागल हो गये, काल के गाल में समा गये, जबकि कुछ के घरों में ऐसी तबाही मचायी कि उन्हें राजा से रंक की स्थिति में ही लाकर छोड़ा। तात्पर्य यह कि हर किसी को, जिसने इसका स्वामित्व प्राप्त किया, किसी-न-किसी प्रकार की हानि अवश्य उठानी पड़ी । ढूँढ़ने से ऐसा एक भी प्रसंग प्रकाश में नहीं आया, जिसमें व्यक्ति इसके अभिशाप से बिल्कुल अछूता रह सका हो । आखिर यह अभिशाप इसके साथ जुड़ा कैसे ? इसे जानने के लिए इसके पिछले इतिहास का अवलोकन करना पड़ेगा ।

आज से करीब साढ़े ५ सौ वर्ष पूर्व इस हीरे को दक्षिण भारत में कृष्णा नदी के तटवर्ती क्षेत्र से निकाला गया था । इसके बाद इसे भगवान वैंकटेश्वर की प्रतिमा में जड़ दिया गया । मंदिर के पुजारी ने जब इस मनमोहक हीरे को देखा, तो अपना लोभ-संवरण नहीं कर सका और दिन-रात इसे प्राप्त करने के ताने-बाने बुनता रहा एवं एक दिन इसे मुकुट से निकाल ही लिया तथा चोरी-छिपे बेचकर रातों-रात लाखों की सम्पत्ति का मालिक बन बैठा । जब इस चोरी की जानकारी भक्तजनों को हुई, तो पुजारी की धूर्त्तता उनसे छिपी न रही और एक विशाल भीड़ ने उस पर आक्रमण कर उसकी हत्या कर डाली । यह हीरा एक ऐसे जौहरी के हाथ लगा, जिसने उसे तत्काल एक फ्रांसीसी तस्कर जीन वापती से के हाथों बेच दिया । यहीं से हीरे के प्रतिकार की कहानी शुरू होती है । जिस जौहरी ने उसे फ्रांसीसी तस्कर को बेचा था, उसे अपनी जान एक सड़क दुर्घटना में गँवानी पड़ी ।

वापती ने हीरे को फ्रांस के राजा लुई चतुर्दश को बेचकर अच्छी खासी धनराशि अर्जित कर ली । लेकिन दूसरी बार जब वह भारत आया तो कालीकट के निकट जंगल में शिकार खेलते समय जंगली कुत्तों का आहार बन गया ।

लुई चौदहवें के एक दरबारी नीकोलस ने हीरे को अपनी शान-शौकत का प्रतीक समझा और किसी राजकीय भोज में उसे राजा से माँगकर सम्मिलित हुआ । कुछ समय पश्चात् नीकोलस को हिसाब में गड़बड़ी के आरोप में बन्दी बनाया गया और वहीं कारावास में उसने दम तोड़ दिया । हीरा लुई के पास पुनः वापस लौटा । लोगों का कहना है कि लुई की मृत्यु एक कुत्ते के समान हुई । साथ ही उसके राज घराने के तीन सदस्यों को भी असामयिक रूप से काल का ग्रास बनना पड़ा । हीरे को गले में पहनने वाली राजकुमारी डी. लैम्बाले की हत्या भी किन्हीं अज्ञात लोगों द्वारा कर दी गयी ।

अब बारी आती है फ्रांस के राजा लुई-सोलहवें की । हीरे को विरासत में प्राप्त करते ही गृह युद्ध की स्थिति उसके शासन काल में पैदा हो गयी । हत्यारों ने राजा और रानी को ही गिलोटिन से काटकर निर्मम हत्या कर दी ।

अभिशप्त हीरा १७९२ में फ्रांस के जैकस कैलोट जौहरी के पास आया । जौहरी हीरे की सुन्दरता को देखते-देखते पागल जैसा हो गया और अन्ततोगत्वा आत्महत्या कर बैठा । इस हीरे को अब पेरिस में बसे एक रूसी राजकुमार इवान ने खरीद लिया और अपनी प्रेयसी को उपहार स्वरूप भेंट किया । न जाने क्यों इवान को अपनी प्रेयसी के चरित्र पर आशंका हुई और उस बेचारी की हत्या करवा दी । तदुपरान्त स्वयं इवान भी दरबारियों के चंगुल में फँसकर मारा गया ।

रूस की महारानी कैथरीन ने जब यह अभिशप्त ''होपडायमण्ड'' गले में पहना, तो कुछ ही दिनों में दमे रोग की शिकार बनकर अपनी जीवन-लीला पूरी कर गयीं । सन् १८६० में जब वही हीरा एक अन्य जौहरी के यहाँ पहुँचा, तो जौहरी का सौतेला लड़का उस हीरे को तिजोरी से निकाल कर चलता बना । जौहरी इस आघात को सहन न कर सका । अन्ततः उसने दम तोड़ दिया । उसका लड़का भी एक नदी में डूबा पाया गया ।

सन् १८७६ में आयरलैंड के एक सुप्रसिद्ध बैंक मालिक हैनरी थामस होप के हाथों यह हीरा नियति के विधानानुसार ३० हजार पौंड में क्रय किया गया । हैनरी ने हीरे का नाम ''होपडायमंड'' रखा । दो साल पूरे हुये भी न थे कि बैंक दिवालिया घोषित हो गयी और हेनरी की तीन पीढ़ियों ने गरीबी से संत्रस्त होकर अपनी जीवन लीला समाप्त करदी ।

वर्ष १९०८ में हीरे को ४० हजार पौंड में क्रय करने वाले तुर्की सुल्तान हमीद थे । भाग्य की विडम्बना ही कहनी

चाहिए कि लिया तो बेगम को उपहार स्वरूप भेंट करने हेतु, पर आपस में तालमेल न बैठ पाने के कारण सुल्तान ने बेगम की गोली मारकर हत्या कर दी। सन् १९०९ में विरोधी सेनाओं ने सुल्तान को भी गोलियों से भून डला ।

सन् १९११ में इस अभागे हीरे को अमेरिका के नेड मेकलीन ने १ लाख ५४ हजार में ले लिया । कुछ दिनों में उसका जवान बेटा विन सैंट कार से कुचल कर मृत्यु को प्राप्त हुआ । इधर पुत्र वियोग का दुःख, दूसरी तरफ व्यापार में घाटा होने से मैकलीन विष-पान करके आत्म-हत्या कर बैठा । उसकी पत्नी भी थोड़े ही दिनों में चल बसी ।

इस प्रकार इसके रक्तरंजित इतिहास को देखते हुए अन्ततः इसे वाशिंगटन के स्मिथ सोनियन संग्रहालय को दानस्वरूप भेंट कर दिया गया, जो आज भी वहाँ सुरक्षित पड़ा है, जिसे देखने के लिए अब भी लोग दूर-दूर से आते रहते हैं ।

कई बार कोई विशेष दिन,तिथि, और समय भी अभिशप्त देखे गये हैं । एक घटना ३० मई, १८८७ की है । इटली के टोरियो ठिकाने की राजकुमारी का विवाह इटली के राजकुमार ड्यूक डिआडस्टा के साथ हुआ । किन्तु उस अभागे विवाह दिन की जितनी भर्त्सना की जाय कम है, जिसने वर-बधू के अनेकों सम्बद्ध व्यक्तियों को काल के गाल में झोंक दिया । राजकुमारी की निजी नौकरानी द्वारा फाँसी लगा लेना, द्वारपाल द्वारा अपना गला काट लेना, बारात का नेतृत्व करने वाले की लू लगने से मृत्यु, सुहागरात मनाने के लिए जाने वाली ट्रेन से स्टेशन मास्टर को कुचल कर मर जाना, राजा के व्यक्तिगत सहायक का घोड़े से सिर के बल गिरकर मर जाना, विवाह के विशिष्ट प्रबन्धक वेस्टमैन का अर्धविक्षिप्त होकर प्राण गँवा देना आदि घटनाएँ उस दर्दनाक क्षणों की याद दिलाकर अभिशप्त विवाह दिन को विस्मृत नहीं होने देतीं ।

कुछ व्यक्ति भी अभिशप्त स्थिति में होते हैं, जिनके सम्पर्क में आने वालों को दुर्गतिपूर्ण दिन देखने पड़ते हैं । रोम के राजा क्लाउडियस कीं अद्वितीय सुन्दरी बेटी एन्टोनिया से शादी करने के अनेकों प्रस्ताव अनेकों लोगों के आते थे, परन्तु उसे सदैव असफल ही रहना पड़ा ।

दो बार उसने विवाह किया, परन्तु दोनों बार उसके पति किसी न किसी आरोप में फँसकर मृत्यु-दण्ड के शिकार बने । तीसरी बार सम्राट नीरो ने शादी का प्रस्ताव भेजा, परन्तु प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाने से वे इस अपमान को सहन न कर सके और अपनी हत्या स्वयं ही कर ली ।

अभिशप्त वस्तुओं का बुरा परिणाम किस प्रकार उसके स्वामी को भुगतना पड़ता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत घटना में मिल जाता है । ५ मार्च, १७८४ को लेडन नगर के शस्त्रागार रक्षक डेनियल को लुटेरों ने दो गोली दागकर मार डला, जिसके कीमती कोट को उसके छोटे भाई ने पहनना शुरू कर दिया । वह भी उसी विभाग में नौकरी करता था । एक दिन लुटेरों ने उसकी भी दो गोली दागकर उसी प्रकार हत्या कर दी जैसे उसके बड़े भाई की हुई थी । आश्चर्य तो इसमें था कि बड़े भाई को जहाँ गोली लगी थी, कोट के उसी छेद से गोली जाकर छोटे भाई को लगी और वह भी मारा गया ।

अनीति मार्ग से उपार्जित वस्तुएँ भी अभिशप्त बन जाती हैं । आस्ट्रेलिया के युवराज आर्क ड्यूक फ्राज फार्डिनेंड की खरीदी हुयी आलीशान कार एक ऐसे ही दुर्भाग्य की कहानी है जिसमें अनेकों व्यक्तियों की जानें गयीं । २८ जून, १९१४ में वह अपनी पत्नी को 'बोस्तिया' के गवर्नर के यहाँ निमन्त्रण में ले जा रहा था कि बम का सनसनाता गोला आ फूटा जिससे चार अंगरक्षक बुरी तरह घायल हो गये और थोड़ा आगे चलते ही पति-पत्नी दोनों को ही गोली का शिकार सेराजेलो नगर में बनना पड़ा । सेराजेलो के एक सेनापति जनरल पोत्येरेक ने इस कार पर अपना आधिपत्य जमाया । इसका दुष्परिणाम यह निकला कि २१वें दिन युद्ध में उसकी पराजय हुयी और देहावसान भी । पोत्येरेक की मृत्यु के बाद उसकी सेना के एक कप्तान ने इस कार का इस्तेमाल किया तो तीन व्यक्तियों की जान ले बैठी । आकर्षण युक्त कार को गवर्नर के पास भेजा गया । मरम्मत कराने के दो माह बाद पाँच दुर्घटनाएँ हुईं । गवर्नर को अपने दाहिने बाजू से हाथ धोना पड़ा ।

स्विट्जरलैण्ड के एक रेस ड्रायवर ने प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए कार को खरीदा तो उसकी भी जीवन-लीला समाप्त हो गयी । फिर से कार 'जेराजेलो' में ही एक किसान के यहाँ आ पहुँची । किसान कार को अपनी गाड़ी से बाँधकर चला रहा तो अचानक ही दौड़ पड़ी और उसे तो मारा ही साथ ही साथ गाड़ी-बैलों का भी चकनाचूर कर दिया । कार हर्शफील्ड नामक व्यक्ति के पास आई तो उसके चार मित्रों की जानें चली गयीं। उपर्युक्त दुर्घटनाओं की जानकारी जब आस्ट्रेलिया सरकार को हुई तो उसे मुर्दा घर को सौंप दिया । द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया । मुर्दा घर में एक साथ कई गोले फट पडे । कार तो ध्वस्त हुई पर साथ ही अनेकों व्यक्तियों को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया ।

द्वितीय विश्व युद्ध का एक प्रसंग है । इटली का तानाशाह मुसोलिनी नाजीवाद की पराजय के साथ अपने देश में उभरी क्रान्ति के परिणामस्वरूप जान बचाकर भागा । मिलान से वह स्विट्जरलैण्ड अपनी प्रेयसी क्लारा पैट्सी के साथ एक ट्रक में जा रहा था । गुप्त रूप से बनी इस योजना की जानकारी किसी को भी नहीं थी । अरबों रुपये की बहुमूल्य सम्पत्ति, सोने की छड़े, हीरे-जवाहरात जो उसके द्वारा नृशंसतापूर्वक शासन करते हुए कमाये गये थे तथा विदेशी मुद्रा जो खरबों डलर्स के मूल्य की थी, उसके पास थी । उसका पलायन सफल नहीं हुआ । वह रास्ते में ही पकड़ा गया व कम्यूनिष्टों द्वारा गोली से उड़ा दिया गया । दोनों की लाशों का सार्वजनिक प्रदर्शन किया गया । खजाना कब्जे में लिया गया ।

आश्चर्य यह हुआ कि वह विपुल सम्पदा रहस्यमय ढंग से कहीं गायब हो गयी । गुप्तचर विभाग की सारी शक्ति उस धन को तलाश करने पर केन्द्रित कर दी गई । इसी बीच एक घटना और घटित हो गई कि गुप्तचर विभाग की जिन दो सुन्दरियों ने मुसोलिनी को पकड़वाने में सहायता की थी, वे भी मरी पाई गई ।

इसी प्रकार जिन लोगों को खजाने के बारे में कुछ जानकारी हो सकती थी, ऐसे ७५ व्यक्ति एक-एक करके कुछ ही दिनों के भीतर मृत्यु के मुख में चले गये । जिस ट्रक में मुसोलिनी भाग रहा था, उसके ड्राइवर गौरेवी की लाश क्षत-विक्षत स्थिति में एक सड़क पर पड़ी पाई गई, उसके पास मुसोलिनी का फोटो मौजूद था ।

खजाने से भी अधिक रहस्यमय यह था कि उस प्रसंग से सम्बन्ध रखने वाले सभी व्यक्ति एक-एक करके मरते चले जा रहे थे । सन्देह यह किया जा रहा था कि कोई संगठित गिरोह यह कार्य कर रहा होगा, पर यह बात इसलिए सही नहीं बैठ रही कि मरने वाले एकाध दिन पूर्व ही बेतरह आतंकित होते थे और मुसोलिनी की आत्मा द्वारा उन्हें चुनौती, चेतावनी दिये जाने की बात कहते थे । खोज-बीन में संलग्न एक अधिकारी भी उस खजाने वाली झील के पास मरा पाया गया । दूसरे अधिकारी मौस्कोवी की लाश उसके स्नानागार में ही मिली, जिसका सिर गायब था । लाश के पास ही एक पर्चा मिला जिस पर लिका था-'मुसोलिनी का शरीर मर गया पर उसकी आत्मा प्रतिशोध लेने के लिए मौजूद है ।'

इस कार्य के लिए अतिरिक्त रूप से नियुक्त वरिष्ठ खुफिया पुलिस के अधिकारी बूचर और स्मिथ नियुक्त किये गये । उनने खजाने का पता लगाने का बीड़ा उठाया । यह स्पष्ट था कि वह धन कोमो झील के आस-पास ही होना चाहिए, क्योंकि वहीं मुसोलिनी पकड़ा गया था । पकड़े जाते समय उसके पास वह खजाना था । गायब तो वह इसके बाद ही हुआ । इसलिए उसका वहीं कहीं छिपा होना सम्भव है । कम्युनिष्टों ने भी उसे वहीं कब्जे में ले लिया था और एक के बाद एक उनके बड़े अफसर भी जल्दी ही एकत्रित हो गये थे, इतने समूह द्वारा चुरा लिये जाने की बात भी सम्भव नहीं थी । फिर वे पकड़ने वाले कम्युनिष्ट भी तो उसी कुचक्र में मर रहे थे ।

अपने खोज कार्य में बूचर और स्मिथ अपने दल सहित कोमो झील के समीप ही डेरा डाले पड़े थे । अचानक एक रात उनने मुसोलिनी को सामने खड़ा देखा । उसका पीछा करने के लिए वे दौड़े पर तब तक वह गायब हो चुका था। हाँ, उसके पैरों के ताजा निशान ज्यों के त्यों धूल पर अंकित थे। गुप्तचर विभाग ने प्रमाणित किया, वे निशान सचमुच मुसोलिनी के पद चिन्हों से पूरी तरह मिलते हुए थे । वे दोनों ही अधिकारी दूसरे दिन से गायब हो गये और फिर उनका कहीं पता न चला । अब भी उस खजाने को अभिशप्त की संज्ञा प्राप्त है । अभी तक पचास वर्ष बाद भी उसे पाया नहीं जा सका है व जिसने भी यह प्रयास किया है, उसे मौत के मुँह में जाना पड़ा है । यह हश्र हर उस व्यक्ति का होता है जो ऐसी संपदा के लालच में अपनी दुर्गति स्वयं कराने को तत्पर हो उठता है । इतना सब होते हुए भी सम्पत्ति बटोरने वालों को यह नहीं सूझ पड़ता कि यह अन्याय की कमाई है, इससे बचा जाना चाहिए पर दुर्बुद्धि के आगे उनका विवेक मारा जाता है । वे आनन-फानन में जैसे भी बन पड़ता है, लूट-खसोट कर धन कुबेर बनने की अभिलाषा पूरी करने की कोशिश करते हैं, मगर जब उनकी महत्वाकांक्षा पूरी नहीं होती और लाभ के स्थान पर उल्टे नुकसान होता है, तो उनकी समझ में आता है कि शेखचिल्लियों का सा सपना पालना कितना खतरनाक है, किन्तु तब तक काफी देर हो चुकी होती है । वे भँवर में इस बुरी तरह फँस चुके होते हैं कि उससे आसानी से उबर पाना उनके लिए संभव नहीं होता और प्राण तक गँवाने की स्थिति बन पड़ती है ।

वस्तुतः इस प्रकार के प्रकरण यही सिद्ध करते हैं कि अनीति-अत्याचार की कमाई कभी फलती नहीं, वह व्यक्ति को हर प्रकार से हैरान-परेशान ही करती है । यदि इसे दुष्कर्मों का प्रत्यक्ष फल माना जाय और भगवान की विधि-व्यवस्था की संज्ञा दी जाये, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी ।

अभिशप्त स्वर्ण सम्पदाओं से जुड़े दुर्योग

सुख-साधनों के उपभोग,अधिक और अधिक धन पाने की लिप्सा मनुष्य की कभी शान्त नहीं हुई । उचित या अनुचित किसी न किसी तरीके से वह अपनी यह इच्छा पूरी करने की, क्षण मात्र में धन-कुबेर बनने की पूरी कोशिश करता है । इसी ललक-लिप्सा से रँगे हुए इतिहास के पन्ने बताते हैं कि कर्म का विधान ही धरित्री पर विद्यमान रहेगा । रातों-रात धनपति बनने का कोई शार्टकट विधाता की व्यवस्था में नहीं है । जो धन अनीति से उपार्जित होता भी है, वह वैसे ही नष्ट भी हो जाता है, उस व्यक्ति के जीवन को भी अभिशप्त बना जाता है । सौभाग्यों व दुर्भाग्यों का सूत्र-संचालन किस केन्द्र से होता है, यह तो अभी तक पता नहीं चल पाया पर स्थानों व व्यक्तियों से जुड़ी कई घटनाएँ बताती हैं कि अभिशप्त वस्तु को पाने का प्रयास ऐसे दुर्योगों को जन्म देता है, जिनका कोई अन्त नहीं है ।

"द सर्च फॉर गोल्ड-एल्डोरेडो, लैण्ड ऑफ गोल्ड" (ए बेलेण्टाइन बुक पब्लिकेशन) नामक पुस्तकों में इंका स्वर्ण साम्राज्य से जुड़े घटनाक्रमों का बड़ा लोमहर्षक विवरण है । १३ मई १५३२ को फ्राँसिस्को पिजारो नामक एक स्पेनश व्यक्ति ने इंका की तत्कालीन राजधानी काजामारका की ओर प्रयाण किया । वैसे तो स्पेन,पुर्त्तगाल का इतिहास ही लुटेरों की गाथाओं से भरा पड़ा है । पूरा दक्षिणी अमेरिका वेस्टइंडीज, हाइटी, अमेरीका के पूर्वी तट उनके हमलों का सतत् शिकार होते रहे । पर फ्रांसिस्को एक लक्ष्य को लेकर चला था, किसी तरह इंका की राजधानी काजामारका तक पहुँचकर वहाँ चल रहे गृहयुद्ध का लाभ उठाकर बहुमूल्य स्वर्ण को हासिल करना । इसके लिये उसने खूँख्वार जलदस्यु साथ लिये व अपने गिरोह को लेकर दक्षिण अमेरिका के घनघोर जंगल में प्रवेश कर गया । उसे भनक लग चुकी थी कि अभी जो इंका राज्य का अधिपति है वह वहाँ के ग्यारहवें सम्राट एनाविल्हा की रखैल क्विटो से पैदा हुआ पुत्र अताहुअल्हा है एवं उसमें तथा वास्तविक उत्तराधिकारी होईस्कर में घनघोर लड़ाई चल रही है । अताहुअल्या ने षडयंत्र से न केवल होईस्कर के पुत्रों-पत्नियों व अन्य रिश्तेदारों को मरवा डाला, बल्कि उसका पक्ष लेने वाले सभी दरबारियों को खत्म करवा दिया था । इस तरह एक अनैतिक राजशाही का वहाँ अंकुश था । इसे एक सही मौका मानते हुए राज्य की सीमा पर पहुँचकर फ्रांसिस्को ने कूटनीति का आश्रय लेते हुए अपने भाई हरमाण्डें को राजा को आमंत्रित करने भेजा । हरमाण्डे ने बहुमूल्य भेंटें प्रस्तुत करते हुए राजा से बार-बार उनके ठहरे हुए स्थान पर भोज के लिए चलने का नम्र निवेदन किया । भेंटों से प्रसन्न व खुफिया सैनिकों से यह जानकारी पाकर कि विदेशियों की संख्या अधिक नहीं है, राजा ने सहर्ष अनुमति देदी व अगले दिन वह कुछ सैनिकों को साथ लेकर आया । फ्रांसिस्कों ने आस-पास अपने डाकू सहयोगियों को छिपा रखा था । स्वयं निःशस्त्र बाहर आते हुए उसने राजा से भी बिना अंगरक्षकों व शस्त्रों के मैत्री भाव से अन्दर आने की प्रार्थना की । भोज के तुरंत बाद तेवर बदलते हुए उसने राजा से ईसाई धर्म स्वीकार करने को कहा, नहीं तो बन्दी बना लेने की धमकी दी । राजा ने कहा "हमारा सूर्य भगवान जिन्दा है, हम ईसाई धर्म स्वीकार नहीं कर सकते ।" इतना कहकर उसने अपने सैनिकों को आवाज दी, पर तब तक तो उनकी मुश्कें बाँध दी गयी थीं व अंगरक्षकों का वध कर दिया गया था । सम्राट की मुक्ति के लिये शर्त रखी गयी-उस २२ फुट लम्बे, २० फुट चौड़े व १५ फीट ऊँचे कमरे में जितना स्वर्ण समा जाय, उतना मिलने पर सम्राट को आजाद कर दिया जायेगा । इंकावासियों ने स्वर्ण इकट्ठा कर पहुँचाया तो राजा को मृत पाया एवं उन्हें धमकी दी गयी कि जितना भी स्वर्ण उनके पास है, वह लाकर दें । नहीं तो पूरे साम्राज्य को नष्ट कर दिया जाएगा ।

राजा तो अवैध उत्तराधिकारी था ही, अपनी मौत को वैसे ही प्राप्त भी हुआ । इंकावासियों ने भी अकर्मण्य बने रह विरोध न कर सारा स्वर्ण लाकर दे दिया व उधर गिने-चुने स्पेनी लुटेरे उनके साम्राज्य को लूटते रहे आग लगाते रहे। जब वे लौटकर आए तो अपने सरदार को सारा सोना लदवाकर भागते हुए देखा । सभी लुटेरे आपस में लड़कर वहीं मर गए, जिनमें फ्रान्सिस्को भी था । एक ही व्यक्ति इसमें से जीवित बचा, जो किसी तरह बचकर बिना कुछ लिए सब कुछ गँवाकर इंका साम्राज्य को धूल धूसरित व सारे साथियों को खोकर वापस स्पेन लौटकर आया व यह सारी जानकारी दी ।

इस घटना से अन्दाज लगाया जा सकता है कि स्वर्ण मरीचिका किस प्रकार विनाश लाती है । कहते हैं कि इस सोने को आज तक कोई नहीं पा सका । आज उस स्वर्ण का मूल्य खरबों डालर होगा पर वह अविज्ञात खण्डहरों में घनघोर जंगलों में लुप्त है एवं पंद्रहवी सदी से लेकर अब तक अगणित व्यक्ति उसकी खोज में अपनी जान गँवा चुके हैं । इनका ही नहीं, ऐसे अवैध धन को हस्तगत करने का जिन-जिन ने प्रयास

किया है, उन्हें काल का ग्रास बनना पड़ा है । दक्षिण अमेरिका में जो संस्कृति से बहुत मेल खाती है । उनका रहन-सहन, पहनाव, उढ़ाव, मंदिर, महलों की बनावट को देखकर लगता है कि मय दानव का कभी यह क्षेत्र रहा होगा व यहीं भारत वर्ष से आकर बसे व्यक्तियों ने समृद्धि-राज्य विकसित किया होगा । सोलहवीं सदी का एक प्रसंग है । इक्वेड़ोर जो पेरु से उत्तर में दक्षिण अमेरीका के पश्चिमी तट पर स्थिति है, के स्पेनिश सरदार को जानकारी मिली कि पूर्व की ओर २००० मील की दूरी पर एक राज्य है, जिसका राजा सुवर्ण की रेत से सतत आवृत रहता है । यह रेत उस राज्य के मध्य से बहने वाली नदी के किनारे है, जो सरोवर में समाप्त हो जाती है । सुवर्ण पुरुष को स्पेनिश भाषा में एल्डोरेडो कहते हैं । इस राजा को जिस पर रत्न निछावर होते हों देखने तथा समृद्ध प्रजा को लूटने गोन्मोलो क्वेस्डा नामक एक यूरोपियन डाकू को साथ लेकर इम्बेडोर का वह स्पेनिश सरदार चल पड़ा । उन्होंने घाटी में पहाड़ काटकर, चट्टानें नदी में डालकर, राज्य व सरोवर के बीच का मार्ग बन्द करने का प्रयास किया ही था कि चारों ओर से चट्टानें गिरने लगीं व सभी लुटेरे उस स्वर्ण रेत में ही मृत्यु को प्राप्त हुए ।

वह रक्त-रंजित इतिहास दक्षिण अमेरिका के इस अपार स्वर्ण-साम्राज्य से जुड़ा है, जिसमें से बहुत सा अभी तक अविज्ञात है । जो व्यक्ति लूटने की दृष्टि से गया, वह कभी लौटकर नहीं आया । पिछली एक शताब्दी में जो नृतत्वविज्ञानी, पुरातत्ववेत्ता सभ्यता की खोज में गए हैं, उन्हें स्वर्ण पात्र भी मिले हैं वे विनष्ट सभ्यता के अवशेष ही हैं । परन्तु वे अक्षय स्वर्ण भण्डार तक अभी तक नहीं पहुँच पाये । इन्हीं से प्राप्त जानकारियों व संग्रहालयों में एकत्र स्वर्णपात्रों, आभूषणों से अनुमान लगाया जा सकता है कि कभी कोई अति समृद्ध संस्कृति वहाँ रही होगी ।

समुद्रमंथन से चौदह रत्न प्राप्त हुए थे, यह सभी जानते हैं । इसमें सर्वप्रथम था कालकूट जहर जिसे नीलकण्ठ महादेव ने पिया था, फिर अन्यान रत्न मिले थे । जो भी व्यक्ति रत्नों, हीरे के भण्डागारों-सुवर्ण सम्पदाओं को बिना पात्रता के लूटने-खसोटने का कार्य करता है, उसका वही हाल होता है जो दक्षिणी अमेरीका में सोने की खोज में गए व्यक्तियों का हुआ। यह एक सनातन सत्य है व हमेशा रहेगा कि लोकहित के लिए ही किसी धन-सम्पदा को प्राप्त किया जा सकना संभव है व वह प्रताप, भामाशाह परम्परा की तरह सदैव मिलती ही रहेगी । छत्रसाल को महाप्रभु प्राणनाथ ने पन्ना में हीरों से भरा भण्डार अनुदान रूप में प्रदत्त किया था, ताकि वे यवनों से लड़ने हेतु सेना जुटा सकें । उन्होंने वही किया व वे इतिहास में अमर बन गए । अनीति से अर्जित व अभिशप्त सम्पदा कष्टकर मृत्यु लाती है एवं इस ललक-लिप्सा में न जाने कितनों को अपनी गोदी में हमेशा के लिए सुला देती है । इस सनातन तथ्य को जानते हुए भी न जाने क्यों मनुष्य सही मार्ग पर नहीं चल पाता एवं अनीति का मार्ग ही खोजता है?

अभिशप्त यान एवं भवन

अनेक व्यक्तियों की और विशेषकर मल्लाहों की ऐसी मान्यता है कि कुछ वस्तुएँ, जिनमें जहाज भी सम्मिलित है, किन्हीं घटनाक्रमों के कारण प्रारम्भ से ही अभिशप्त हो जाते हैं । ऐसा ही एक जहाज का जलावतरण अक्टूबर १९३६ में किया गया था जिसे कि "नाझी जर्मनी के गौरव" की संज्ञा दी गई थी । स्कार्नहॉस्ट नामक यह युद्धपोत २६ हजार टन का था जिसके विषय में एक सफल भविष्य की कामना सँजोई गई थी, किन्तु हुआ इसके ठीक विपरीत । इसके निर्माण के समय से ही अनेक बाधाएँ आती रहीं, जिससे यह लगता था कि कुछ अनुपेक्षित हो रहा है । इस जहाज का निर्माण अभी तक आधा भी नहीं हो पाया था कि यह एक ओर लुढ़क गया जिससे ६० कर्मचारी कुचलकर मर गये और सौ से अधिक घायल हो गये । इसे फिर से अपनी पूर्व स्थिति में खड़ा करने में तीन माह का समय लगा । उसके निर्माण-कार्य को पुनः आरम्भ करने के लिये कारीगरों की भर्ती करने में कठिनाइयाँ आईं, क्योंकि तब तक सब ओर यह अफवाह फैल चुकी थी कि यह निर्माणाधीन जहाज अभिशप्त हो चुका है जिसकी बाद की घटनाओं से पुष्टि हुई ।

जब उसके जलावतरण का वह महत्वपूर्ण पर्व आया, उस अवसर पर प्रमुख नाझी, जिनमें हिटलर, गोरिंग, हिटलर आदि मुख्य रूप से उपस्थित होने वाले थे, उस पर्व की पूर्व रात्रि को ही वह जहाज स्वयं ही अपने आप अपने स्थान से चल पड़ा और उसने दो नौकाओं को किनारे पर उछालते हुए जलमार्ग को भी क्षति पहुँचाई ।

स्कार्न हॉर्स्ट में लगी हुई विशिष्ट रूप से शक्तिशाली दूर तक प्रहार करने वाली तोपों का सर्वप्रथम प्रयोग १९३९ में डान्जिव पर आक्रमण के अवसर पर किया गया, जिसके परिणाम बड़े विपरीत व दुर्भाग्यशाली निकले । आक्रमण के समय ही एक तोप में विस्फोट होने से नौ सैनिकों की मृत्यु हो गई और आन्तरिक भाग में शुद्ध वायु का मार्ग अवरुद्ध हो जाने से १२ तोपचियों का दम घुटने से प्राणांत हो गया । एक वर्ष पश्चात्

ओसलो पर आक्रमण के समय यह जहाज सबसे अधिक क्षतिग्रस्त हुआ । इस में ३० विभिन्न स्थानों पर आग लग गई, जिससे इसे शीघ्र ही बन्दरगाह से दूर भेज दिया गया, ताकि यह बड़वानल दूसरे जहाजों को क्षति पहुँचा न सके । इसे फिर दुश्मन के हवाई हमलों से बचाकर किसी प्रकार एल्ब नदी तक पहुँचा दिया गया जो कि एक सुरक्षित क्षेत्र था और इसकी मरम्मत के लिये उचित स्थान भी था, किन्तु दुर्भाग्य ने वहाँ भी उसे नहीं छोड़ा । एस०एस० ब्रेग्रेन नामक एक अन्य जहाज वहाँ पहिले से ही लंगर डाले पड़ा जिसे स्कार्न हार्स्ट से नहीं देखा जा सका और कुछ ही सैकन्ड में उससे जा टकराया परिणामतः ब्रेग्रेन वहीं कीचड़ में धँस गया जिसे ब्रिटिश हवाई जहाजों ने बम गिराकर पूर्णतः नष्ट कर दिया ।

स्कार्न हार्स्ट की मरम्मत हो जाने के पश्चात् सन् १९४३ में इसे नार्वे के समुद्र तट पर सोवियत रूस को जाने वाली रक्षा-सामग्री के मार्ग को अवरुद्ध करने के लिये भेजा गया । उसी समय एक ब्रिटिश गश्ती नौका ने इसे देख लिया और तुरन्त ही इस जहाज की उपस्थिति की सूचना वायरलेश के द्वारा अपने युद्धपोतों को दी, जो शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये । उस युद्धपोत को उन्होंने देख भी लिया किन्तु नाजी जर्मनी के गौरव, इस जहाज की गति ब्रिटिश पोतों से अधिक तेज थी। फिर भी ब्रिटिश कमान्डर ने १६ हजार गज की दूरी से ही स्कार्न हार्स्ट पर एक बार फायर करने का निश्चय किया, अन्यथा वह उनकी तोपों की मार से दूर चला जाता । ब्रिटिश तोपची का निशाना एकदम सही बैठा और उस जहाज पर चारों ओर ज्वालाऐं निकलने लगी और कुछ ही क्षणों में अनेक विस्फोट हुए और वह अभिशप्त नाझियों का गौरव समुद्र के बर्फीले धरातल में समा गया । इस पर नियुक्त कुल १९०० सैनिकों में से केवल ३६ सैनिक ही जीवित बचे । इस प्रकार मल्लाहों की धारणा के अनुसार इस अभिशप्त जहाज ने कभी भी सफलता का मुँह नहीं देखा, अनेकों को अकाल मृत्यु की गोद में सुला दिया ।

लाकहीड कान्सटेलेशन ए०एम०ई०एम०-४ नामक एक वायुयान के भी अभिशप्त होने सम्बन्धी लोगों की मान्यता है । आरम्भ से ही ९ जुलाई, १९४५ में एक मेकेनिक इसके एक प्रोपेलर में गिरकर मर गया । इसके ठीक एक वर्ष के अन्तराल में ही ९ जुलाई, १९४६ को जब यह जहाज अटलाण्टिक महासागर पर उड़ रहा था, कैप्टिन आर्थर लेविस अपने नियन्त्रण कक्ष में ही अचानक चल बसा। इस घटना के ठीक एक वर्ष पश्चात् ९ जुलाई, १९४७ को जैसे ही इस वायुयान ने उड़ान भरी ही थी कि इसके एक नये स्थापित इंजन में अचानक आग लग गई । राबर्ट नार्मन नामक इसके कैप्टिन ने उस पर फायर एस्टिंग विशर के द्वारा नियन्त्रण पाने में सफलता प्राप्त की ही थी कि अचानक उसने देखा कि उसके मार्ग में एक गगनचुम्बी भवन है और उसने वायुयान को ऊपर उठाकर इस कठिनाई को भी किसी प्रकार पार करने में सफलता पाई। किन्तु जहाज तो स्वयं ही ऊपर उठ ही जा रहा था । जहाज सामान्य रूप से उड़ भी नहीं पा रहा था क्योंकि ऊपर उठने वाला नियन्त्रक फिर अपनी स्वाभाविक सामान्य स्थिति पर लौट नहीं रहा था। नारमन और उसके सहयोगी पायलट ने अपने समुचित बल का उपयोग करके उसे सामान्य स्थिति में लाने में सफलता अर्जित की । इस प्रकार इस यात्रा में किसी प्रकार की अनहोनी के बगैर ही वे उतरने में सफल हो गये । ९ जुलाई, १९४८ में कोई विशेष घटना नही घटी किन्तु १० जुलाई, १९४९ को यह वायुयान शिकागो के पास ध्वस्त हो गया और केप्टिन नारमन सहित समस्त यात्री मारे गये। इस प्रकार इस ए०एच०ई०एम-४ नामक अभिशप्त वायुयान का अन्त हुआ ।

परीलोक सा कल्पित अत्यन्त सुन्दर और रमणीय राजमहल भी क्या अभिशप्त हो सकता है? तो हमें इसका उत्तर'न' में ही मिलेगा, किन्तु जब ट्रिस्टे नदी के तट पर स्थित मिरामर नामक अति रमणीय महल और उसमें निवास करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित कहानियों को सुनेंगे, जिन्हें घोर विपत्तियों का सामना करना पड़ा, तब आप भौचक्के ही रह जावेंगे । मिरामर का अत्यन्त ही सुन्दर व रमणीय राजमहल १९वीं शतावदी के मध्य में आस्ट्रिया-हंगरी के सम्राट फ्रांस जोसेफ के अनुज आर्चड्यूक मेक्समिलियन के द्वारा निर्मित कराया गया था । एक बार एक छोटी नौका में मेक्स मिलियन घूम रहा था तूफान से उसकी नौका उलट गई और वह बहता हुआ इस स्थान पर पहुँचा जहाँ कि कुछ मछुओं ने उससे बचा लिया। मेक्स मिलियन के मन को उस स्थान के सौन्दर्य ने मोह लिया और उसने वहाँ अपने निवास के लिये एक सुन्दर महल बनवाने का निश्चय किया । कुछ वर्षों के पश्चात् ही वहाँ उसने एक स्वेत महल का निर्माण करवाया जिसमें बहुमूल्य सामग्री का उपयोग किया गया । इसकी वास्तुकला इसके उद्यान, वृक्ष और मनोहर पुष्पों का दृश्य देखते ही बनता है । इसके बुर्ज बड़े ही उत्कृष्ट लगते हैं, इसके छज्जों में ग्रेनाइट लगा है, इसके सोपान में संगमरमर का उपयोग किया गया है, नीचे उतरते समय सीढ़ियों को आसपास सिंह के मुँहों द्वारा सजाया गया है । जो भी आगन्तुक इसे देखता है वह विस्मय से देखता

ही रह जाता है और इसे पृथ्वी के अभूतपूर्व सौन्दर्यवान महल की संज्ञा दिये बिना नहीं रहता । मिरामर प्रासाद का प्रथम स्वामी जैसे ही उसमें निवास करने आया उसके दुर्भाग्य भी उसके साथ वहाँ पहुँचे गये । इस महल में उसे कभी शान्ति नहीं मिली । इसी बीच उसे मेक्सिको की राजगद्दी पर बैठने का अवसर मिला जहाँ पर तीन वर्ष में ही मेक्सिकन सैनिकों द्वारा उसकी हत्या कर दी गई । उसकी पत्नी, जिसकी आयु २६ वर्ष ही थी, इस सदमे को सहन नहीं कर सकी और पागल हो गई ।

फ्रान्स जोसेफ की धर्म पत्नी महारानी एलिजावेथ इस महल में निवास करने अपने पुत्र रुडेल्फ के साथ आई। रुडेल्फ ने अपनी प्रेमिका के साथ सन् १८८९ में आत्म-हत्या कर ली । महारानी एलिजाबेथ की एक अराजकतावादी इटेलियन ने १८९८ में इसलिये हत्या कर दी, क्योंकि उसके विचार में आस्ट्रिया से इटली को मुक्त करवाने का यही मार्ग था । इसके पश्चात् इस महल में रुडेल्फ का चचेरा भाई आर्टड्यूक फर्डिनेन्ड निवास करने आया, जो कि राजसिंहासन का उत्तराधिकारी भी था । उसकी अपनी पत्नी के साथ एक कार में हत्या कर दी गई । प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात जब ट्रिस्टे इटली को सौंपा गया, तब इटली नरेश के चचेरे भाई ड्यूक ऑफ ओस्टा इस महल में निवास करने आये जिनकी केन्या के एक युद्धबन्दी शिविर में द्वितीय विश्व युद्ध की अवधि में मृत्यु हो गई । इसके पश्चात् दो ब्रिटिश मेजर जनरल इस महल में निवास करने आये और उन दोनों की भी मृत्यु हृदय-गति के रुक जाने से हो गई । तब से यह वीरान पड़ा हुआ है ।

ऐसा ही एक अन्य महल शिकागो, अमेरिका में था। उसका नाम था दि सिलवर ओक । वह अतीव सुन्दर था, इसलिए जिनको भी मकान की आवश्यकता होती, इतना सुन्दर और सस्ता मकान देखकर वे ललचा जाते और बिना बहुत ढूँढ़-खोज किये उसे खरीद लेते । सब पर न्यूनाधिक एक जैसी मुसीबत बनती और सभी को जान से हाथ धोना पड़ता । वह मकान अपने जीवन काल में ५२ व्यक्तियों को निगल चुका था । अलबर्ट दम्पत्ति ५३वें थे ।

यह इमारत सन् १८८० में बनी थी । शिकागो की इस बिस्कुटी रंग से रंगी इमारत का डिजाइन किसी ने बड़े कलात्मक ढंग से बनाया था और लागत का ख्याल किये बिना जी खोलकर उसमें पैसा लगाया था । ईंट सीमेंट ही नहीं, उसमें चाकलेटी पत्थर भी बहुत लगा था । इसे उस समय के माने हुए नक्षत्र विद्या विशेषज्ञ अलेक्जेन्डर वेयरिंग ने बड़ी तबीयत से बनवाया। नक्शा नवीस, कारीगर, रंगसाज उन्होंने ढूँढ़-ढूँढ़कर इसमें लगाये थे । उसे सर्वांग सुन्दर बनाने में पैसा पानी की तरह बहाया था । लेकिन वे ज्यादा दिन इस कोठी में रह नहीं पाये । अक्टूबर १८८७ को वे अपने इस घर में मरे हुए पाये गये । आधी रात उनके नौकरों ने सुना कि अपने शयनकक्ष में भीतर ही भीतर वे कुछ बुदबुदा रहे हैं । आवाज दी, पर कोई जबाब न मिला । इस पर वे उनके परिचितों को बुलाकर लाये । दरवाजा खटखटाने पर कोई जवाब न मिला, तो किवाड़ें तोड़ी गईं और मालूम पड़ा कि वे मरे पड़े थे ।

उनके मरने के कई वर्ष बाद तक मकान बन्द पड़ा रहा । मौत की घटना लोग भूल गये । ऐसे अच्छे-खासे और बिल्कुल नये मकान को देखकर ग्राहकों के आने का सिलसिला शुरू हुआ । इसे सन् १८९७ में एक धनी युवती मेथिल्डी ने बड़े चाव से खरीद लिया । उन्हें अपने नाना की अपार सम्पत्ति उत्तराधिकार में मिली थी । ऐसे ही शौक-मौज में दिन गुजारती थीं । एकान्त उन्हें पसन्द था सो मकान को उन्होंने अपने अनुरूप पाया और सस्ते मोल मिलते देखकर सहज ही उनने खरीद लिया । उसके नाना काल्विन सोने की खदानों के व्यापारी थे सो विरासत में अपनी इस इकलौती धेवती के लिए अकूत सम्पत्ति छोड़कर मरे थे । मेथिल्डी के साथ उसका प्रेमी वेलिन्यूव भी रहने लगा । वे लोग शादी करना चाहते थे, पर इसके लिए उन्हें जल्दी न थी ।

सफाई करते समय सिलवर ओक में एक कुँआ मिला । उसमें एक नर कंकाल, जंग लगी बन्दूक और कुछ ऐसे निशान मिले, जो उसका समय अमेरिका के गृह युद्ध के दिनों का बताते थे । मालिकों ने इसका पता लगाने के बजाय इसको बन्द करा देना ज्यादा अच्छा समझा । उनने कुएँ के निशान पूरी तरह मिटा दिए ।

वेलिन्यूव भी सोने की खदानों का कारोबार करता था । कुछ सौदे निपटाने के लिए उसे एक सप्ताह बाहर रहना पड़ा । लौटा तो उसकी प्रेमिका उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी । वह घर की देहली में घुसा ही था कि उन्मादियों जैसी हरकतें करने लगा । उसने कमर में से छुरा निकाला और प्रेमिका के सीने में भोंक दिया । वह मरणासन्न स्थिति में जमीन पर गिर ही पाई थी कि छुरे का दूसरा बार उसने अपनी छाती में किया और आत्महत्या करके अपना भी अन्त कर लिया ।

घटना आई-गई हो गई । लोगों ने इसे साधारण प्रेम विग्रह समझा । मकान की मालिकीयत अब प्रख्यात 'शिकागो ट्रिब्यून' पत्र के सम्पादक जान सिमिल्टन के हाथों आ गई ।

यह खरीद सन् १९०९ में हुई । ११ जनवरी, १९१० को उनके यहाँ एक पारिवारिक उत्सव था । किसी बच्चे का जन्म-दिन मनाया जा रहा था । कुल मिलाकर छोटे वड़े ३८ मेहमान एकत्रित थे । प्रीतिभोज हुआ । भोज के बाद दरवाजा तो खुला था पर मालूम पड़ा कि ३८ व्यक्ति मरे हुए पड़े हैं । कारण तलाश करने पर इतना ही कहा जा सका कि जहरीला खाना खाने से यह मौतें हुईं ।

इसके बाद सन् १९१५ में यह मकान सैक्युअल ओची नामक व्यक्ति ने खरीदा । वह शोधकर्मी था, साथ ही दिलेर भी । इन दिनों मिस्र के पिरामिड़ों सम्बन्धी कुछ दस्तावेजों की खोज कर रहा था । उसे कई रातों से बरामदों में कुछ परछाइयाँ टहलती और चीख-पुकार करती सुनाई पड़ी । यह सब उसने देखा-सुना तो सही पर घबराया नहीं । दूसरे दिन अपने जैसे कुछ और दिलेर मित्रों को बुलाकर लाया कि माजरा क्या है ? कई दिन यह डरावनी बातें देखकर उसने निश्चय किया कि वह इस मकान को छोड़ देगा । रात को ही उसने अपनी डायरी में लिखा--"दो डरावनी आँखें मुझे हर समय घूरती रहती हैं। इस मकान में रहते हुए खतरा है । मकान छोड़ देने का मेरा पक्का इरादा है ।"

सन् १९२० में एक सौदागर थॉमसन प्रेयरी ने यह इमारत खरीदी । उस परिवार को रहते एक सप्ताह भी न बीतने पाया था कि चमड़े की बेल्ट से किसी ने उन सबका गला घोंट दिया ।

सन् १९२२ में वह मकान दो विधवा महिलाओं ने मिलकर खरीदा । इनमें से एक का नाम था, एलिजाबेथ दूसरी का जैकसिन । वे जिस दिन से इस मकान में आईं, उसी दिन से जीने में किन्हीं के चढ़ने-उतरने की, हँसने-रोने की आवाज सुनने लगीं । पूछने पर कोई जबाब न मिलता । वे दस दिन में ही सूखकर काँटा हो गईं । उस बस्ती के नगरपालिका अध्यक्ष श्री अलबर्टो शिष्टाचार के नाते इन नये निवासियों की कुशल-क्षेम पूछने आये तो उनसे कहा गया कि आरम्भ के दिन से ही कोई दुष्टात्मा उन्हें बुरी तरह डरा रही है और जान से मार देने की धमकी दे रही है ।

अध्यक्ष ने अधिक विवरण पूछा तो उनने बताने से इनकार कर दिया और कहा-"हमें कहा गया है कि कुछ भी बताने पर उनकी जान ले ली जाएगी ।"

बातें करते-करते कुछ देर हो गई । काल्विन विदाई लेते हुए बाहर खड़ी अपनी गाडी तक आये तो लगा कि उन्हें किसी ने जकड़ लिया है । वे हाथ फड़फड़ाकर उस जकड़न से छूटने की कोशिश करने लगे पर उलटे किसी जाल में कसते जाने का अनुभव करने लगे । फिर वे बेहोश हो गये । होश आया तो उनकी स्थिति पागलों जैसी हो चुकी थी । उन्हें अस्पताल में भर्ती किया गया । जिस रात वे अस्पताल में थे, उसी रात उन दोनों विधवाओं की घर में ही मृत्यु हो गई । दोनों की लाशें रेशमी रस्सी से बँधी हुई छत पर लटक रहीं थीं । तब से पचपन वर्ष तक अर्थात् सन् १९७९ तक वह मकान खाली ही पड़ा रहा । किसी की हिम्मत इसे लेने की नहीं हुई ।

सबसे आखिरी किरायेदार थे एड्वर्ड और सूसन । उनका भी अन्त ऐसी ही दुर्दशा में हो चुका था । इस तरह कुल मिलाकर ५२ मृत्यु इस अवधि में हो चुकी थीं । बाद में शिकागो प्रशासन ने इस मकान को अभिशप्त घोषित कर सन् १९८० में उसे जमींदोज करा दिया ।

ये उदाहरण बताते हैं कि मनुष्य की इच्छा-शक्ति किसी धातु या काष्ठ से बने पदार्थ के साथ भी इतनी घनीभूत हो सकती है कि वह उसके संकल्पों का अनुसरण करने लगे और ऐसा प्रतीत हो कि इस निर्जीव में कोई सजीवता काम कर रही है ।

जलयान भी दुर्भाग्यपूर्ण होते हैं

उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन में विनिर्मित दो कुख्यात जलपोतों को अभिशप्त होने की घटनाओं को नाविकों द्वारा यथार्थ माने जाने के कारण बड़ा महत्त्व मिला । इनमें "हिनेमोआ" जो कि २००० टन इस्पात से विनिर्मित किया गया था, ने अपनी प्रथम जलयात्रा सन् १८९२ में लन्दन के एक प्राचीन कब्रिस्तान से गिट्टी और मलवे की खेप भरकर आरम्भ की थी । अपनी प्रथम यात्रा की अवधि में ही उसके चार शिक्षार्थी नाविकों की टाइफाइड ज्वर से मृत्यु हो गई । इसके पश्चात् यह क्रम चलता रहा । उसका प्रथम कैप्टन पागल हो गया, दूसरा अपराधी बना, तीसरे को अपने पद से इसलिये च्युत कर दिया गया क्योंकि वह सदैव नशे में धुत रहने लगा था । चौथा कैप्टन अपने केबिन में मृत पाया गया । पाँचवें ने अपनी जीवन लीला को स्वयं ही अपने आपको गोली मारकर समाप्त कर लिया । छठे कैप्टन के नियन्त्रण में पहुँचने पर यह जलपोत एक दुर्घटना में उलट ही गया । इस दुर्भाग्यशाली जलपोत, हिनेमोआ का अन्त सन् १९०८ में एक तूफान में हो गया । कुछ दिनों के बाद जब यह जलपोत बरबाद होकर स्काटलैण्ड के पश्चिमी तट पर बहते हुए पहुँचा तो लोगों ने देखा कि वह पूर्ण रूप से नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था । उस पर कुछ भी उपयोगी सामान नहीं बचा था ।

''ग्रेट इस्टर्न'' नामक एक अन्य जहाज का इसामबर्ड किंगडम ब्रुनेल नामक एक विख्यात ब्रिटिश इन्जीनियर द्वारा १८५४ में निर्माण आरम्भ किया गया था । यह अपने समय के एक विशालतम जलपोतों में से था किन्तु यह बड़ा ही दुर्भाग्यशाली सिद्ध हुआ । इसका निर्माण एक महान सागरीय आश्चर्य व तैरने वाले एक राजमहल के रूप में किया गया था, जिसमें चार हजार व्यक्तियों को पूर्ण सुख-सुविधा, आमोद-प्रमोद सहित सम्पूर्ण विश्व का भ्रमण करवाने की पूर्ण व्यवस्था थी । इसमें छः मस्तूल और पाँच चिमनियाँ धुएँ के निकास के लिये लगी थीं, जो कि किसी भी जहाज पर उन दिनों प्रथम बार ही देखी गई थीं ।

''ग्रेट इस्टर्न'' में भारी इस्पात की चादरें बड़ी मजबूती से लगाई गई थीं । इतना ही नहीं उसमें ३ फीट के अन्तर से दूसरी उतनी ही मजबूत स्पात की चादर और लगाई गई थी इनको जोड़ने के लिये एक इंच मोटे स्पात के रिबिटों का प्रयोग किया गया था । दो चादरों के बीच में १६ कम्पार्टमेन्ट बनाये गये थे जो कि पूर्णतः जलरोधी थे । इसकी रूप-रेखा बनाते समय इस बात पर विशेष रूप से बल दिया गया था कि यह जलपोत किसी भी स्थिति में न डूबने पावे और अन्तिम समय तक यह देखा गया कि यह जहाज डूबा नहीं यद्यपि विभिन्न कारणों से यह दुर्भाग्यशाली जहाज नितान्त निकम्मा ही सिद्ध हुआ ।

इसके निर्माण में एक इंच मोटे ३० लाख रिविट हथोड़ों की चोटों के द्वारा लगाये गये थे, जिसके लिये एक हजार दिनों तक २०० रिविट दस्तों को कार्य करना पड़ा था । इसके निर्माण की अवधि में होने वाली दुर्घटनाओं में एक दर्शक और चार मजदूरों ने प्राण गँवाये । इसके अतिरिक्त एक रिविट करने वाला और एक एप्रेन्टिस कार्य करने वाला लुप्त हो गया था । कुछ लोगों का मत था कि वे किसी कम्पार्टमेन्ट में फँसकर रह गये होंगे और उनकी सहायता के लिये की गई पुकार हथौड़ों की आवाज में डूब गयी होगी ।

इसी बीच स्पात की प्लेटों के भाव में वृद्धि होने से आर्थिक कठिनाइयाँ आईं और कुछ दिनों के लिये निर्माण कार्य को स्थगित करना पड़ा, किन्तु ब्रुनेल ने शीघ्र ही और अधिक द्रव्य जुटा लिया । निर्माण का एक चरण पूर्ण होने पर इस महान व सबसे भारी जलपोत को थेम्स नदी के जल तक पहुँचने के लिए ३३० फीट के अन्तर को तय करना था जो कि एक बड़ी चुनौती बनकर सामने आया । इस साधारण सी लगने वाली दूरी को तय करने में पूरे तीन महीने का चौंका देने वाला समय लगा । इस विशालतम ढाँचे को एक एक इंच खिसकाने में अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ा । अनेक बार जंजीर टूटी । अनेक नौकाएँ डूब गईं व अनेकानेक हाइड्रोलिक रेम्स फट गये तब कहीं यह थेम्स नदी के जल में पहुँचा । सन् १८५८ की ३१ जनवरी को यह जहाज पाँच सौ आदमियों यात्रा के योग्य बना तब तक इस पर १० लाख से अधिक व्यय किया जा चुका था । अब आगे की यात्रा के लिये और धन की आवश्यकता थी अतः डायरेक्टरों के नये बोर्ड का गठन किया गया, जिन्होंने इस जलपोत से जल्दी ही लाभ कमाने की बात सोची और उसे भारत और आस्ट्रेलिया की ओर न भेजकर उसे अमेरिका की ओर भेजने का निश्चय किया । अभी तक उसमें केवल पहिले दर्जे के केबिन ही बन पाये थे । दूसरे और तीसरे दर्जे के प्रवासियों के लिये निर्माण कार्य को अगले कुछ वर्षों के लिये रोक दिया गया । इस महान जलपोत की यात्रा आरम्भ होने से एक दिन पूर्व ५३ वर्षीय ब्रुनेल उसका अन्तिम निरीक्षण करने आया । उसने अपने कुछ विशिष्ट साथियों के साथ फोटो खिंचवाया ही था कि अचानक वह लड़खड़ाया, एक झटका खाया और गिरते ही उसके प्राणान्त हो गये । ब्रुनेल की मृत्यु को एक सप्ताह ही बीता था कि एस समाचार मिला कि ग्रेट इस्टर्न की एक चिमनी में भयंकर विस्फोट हो गया है, जिसके फलस्वरूप पाँच कर्मचारी जलकर और एक कर्मचारी पैडल व्हील में फँसकर मर गये हैं । विस्फोट के कारण उसका दीवानखाना जिसमें चारों ओर आयने जुड़े हुए थे'' वह बड़े ही सुन्दर ढंग से सँवारा गया था, पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था । विस्फोट का कारण था एक भाप के बाल्व का असावधानी से बन्द की स्थिति में ही रह जाना ।

अब इस स्थिति में उसकी मरम्मत अनिवार्यतः होनी थी, जिसमें अपेक्षा से अधिक समय लगा, अतः संयुक्त राज्य अमेरिका को यात्रा को रद्द कर दिया गया और डायरेक्टरों ने इस कुख्यात जलपोत से कुछ अर्थलाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से उसे वेल्स की एक धार्मिक यात्रा के लिए दर्शनार्थियों को रवाना करने का निश्चय किया । इसी बीच एक जोर की आँधी ने उसके समस्त बंधन और लंगरों को तोड़कर इस जलपोत को बीच समुद्र में पहुँचा दिया, जहाँ कि यह १८ घण्टे तक तूफान से जूझता रहा जब कि आस-पास के सारे जहाज डूब चुके थे । इसकी सर्वोत्तम बनाबट उसका दीवानखाना फिर से पूर्णतः क्षतिग्रस्त हो चुका था । इससे तीन माह पश्चात् ग्रेट इस्टर्न के कैप्टन, उसके कर्णधार व उनके खजाँची का एक ९

वर्षीय पुत्र किनारे पर एक नौका द्वारा जाते हुए डूबकर मर गये ।

किसी भी जहाज की प्रारम्भिक यात्रा के समय उसके कैप्टन की मृत्यु होना एक बड़ा ही अशुभ चिन्ह माना जाता है । जैसे ही लन्दन में यह समाचार पहुँचा ग्रेट इस्टर्न के मैनेजिंग डायरेक्टरों ने अपना इस्तीफा दे दिया । दूसरे बोर्ड का गठन होने पर उन्होंने उसकी यात्रा की तिथि ९ जून, १८६० निश्चित की किन्तु जो ३०० टिकिट बेचे जा चुके थे, उनमें से केवल ३५ प्रवासी ही शेष बचे थे क्योंकि अन्य यात्री प्रतीक्षा करते-करते थक चुके थे और वे अन्य जहाज से रवाना हो चुके थे । अन्त में इन ३५ यात्रियों को ही लेकर यह जहाज १६ जून, १८६० को अपनी यात्रा पर रवाना हुआ । भये कैप्टन की सहायता के लिये ४१८ कर्मचारियों का एक बड़ा दल था ।

न्यूयार्क पहुँचने पर इस जहाज का भव्य स्वागत किया गया । न्यूयार्क में इस जहाज पर दो दिन के भ्रमण का विज्ञापन किया गया । २००० टिकिट बिके, किन्तु जहाज पर केवल ३०० व्यक्तियों के विश्रामार्थ ही विस्तर थे । लोगों ने बड़ी परेशोनी में रात्रि व्यतीत की । इसी बीच भण्डारगृह में एक पाइप के फट जाने से पूरा खाद्यान्न भीगकर बेकार हो गया । खाने योग्य केवल थोड़ा-सा बेक्ड बीफ और सख्त बिस्कुट ही थे जिन्हें बड़ी ऊँची कीमत पर बेचा गया । भूखे-प्यासे जल्दी ही किनारा आने पर उतर जाना चाहते थे किन्तु रात्रि में मल्लाहों की गलती के कारण इस जहाज ने मार्ग छोड़ दिया था और यह १०० मील दूर समुद्र में पहुँच चुका था । जहाज को उचित दिशा में घुमाया गया किन्तु यात्रियों को जब किनारा मिला तब वे भूख और प्यास के कारण बुरी तरह थक चुके थे । भ्रमण की एक और यात्रा का प्रयत्न असफल ही रहा । न्यूयार्कवासियों को अब इस विशालकाय जलपोत में कोई रुचि नहीं रह गई थी ।

जब यह जलपोत रात्रि में चुपचाप न्यूयार्क से रवाना हुआ तो उस पर केवल ९० यात्री ही थे । अभी अटलांटिक महासागर को आधा ही पार किया था कि उसकी एक स्क्रू-शाफ्ट निकल गई । मिलफोर्ड ह्वेन में एक छोटी नौका को छूने भर से उसके दो यात्री डूबकर मर गये । आगे चलकर ब्लेन हेम नामक एक जहाज को इसने टक्कर मारकर क्षतिग्रस्त कर दिया ।

तीसरे कैप्टन को लाया गया किन्तु बोर्ड द्वारा कर्मीदल के एक तिहाई व्यक्तियों को कम कर देने से उसने अपना पद छोड़ दिया । अब चौथे कैप्टन को लाया गया, जो केवल १०० यात्रियों को लेकर ही रवाना हुआ ।

सन् १८६१ के सितम्बर में ग्रेट इस्टर्न एक बडे तूफान में फँस गया, जिसमें किसी अन्य जहाज का बचना दूभर ही होता। इस तूफान के कारण उसके दोनों ओर के पैडल क्षतिग्रस्त हो गये, समस्त बचाव नौकाएँ टूट-टूटकर बह गईं । उसका पतवार टूट गया और उसके स्क्रू को क्षति पहुँचाने लगा । इसकी मरम्मत में ६० हजार पौण्ड का व्यय हुआ । अगले वर्ष जब यह जलपोत आयलैण्ड साउण्ड के पास से यात्रा कर रहा था । एक नुकीली चट्टान से वह टकरा गया जिसने बाह्यआवरण को लम्बाई में ८३ फीट और चौड़ाई में ९ फीट तक चीर दिया । यात्रा चार्ट में इस चट्टान का कोई उल्लेख नहीं था । इस बार मरम्मत पर ७० हजार पौण्ड व्यय करना पड़ा ।

इस दुर्भाग्यशाली जहाज से परेशान होकर डायरेक्टरों ने इसे बैंचना उचित समझा और सन् १८६४ में यह जहाज केवल २५००० पौण्ड के मूल्य पर बिका । अब इस जहाज का उपयोग समुद्र से केबिल बिछाने के लिए किया गया । किन्तु दुर्भाग्य ने उसे वहाँ भी नहीं छोड़ा। जब वे आयरलैण्ड से न्यू फाउण्डलैण्ड की ओर ११८६ मील पर पहुँचे ही थे कि केबिल का अन्तिम छोर उनके पास से खिसककर समुद्र में तीन मील गहरा चला गया । उसकी शोध की गई किन्तु जब कोई उपयोग होता नहीं दीखा तो जहाज को इंग्लैण्ड वापस लौटना पड़ा । सन् १८६६ में एक प्रयास और दूसरे जहाज से किया गया जिसके सफल होने पर यूरोप और उत्तरी अमेरिका के बीच प्रथम सन्देश २७ जुलाई को भेज पाना सम्भव हो सका । बाद में सन् १८६९ में इस जहाज ने लंदन और भारत के बीच केबिल बिछाने में सफलता प्राप्त की ।

सन् १८७४ में इस जहाज ने केबिल डालने का कार्य पूर्ण किया और इसे मिलफोर्ड ह्वेन में लाकर रखा गया जहाँ कि यह पन्द्रह वर्षों तक उसी स्थिति में जंग खाता खड़ा रहा । इसकी कोई उपयोगिता न मानकर इसे उसके दूसरे मालिकों ने सन् १८८६ में २० हजार पौण्ड में बेच दिया । कुछ दिनों तक इस तैरते हुए राजमहल से विज्ञापन प्रसारण का कार्य लिया गया । इस पर विज्ञापन लिखे जाते थे । अन्त में इसे लोहे व अन्य धातुओं के व्यापारी को बेच दिया गया ।

प्रस्तुत घटनाक्रम बताते हैं कि कोई भी वस्तु चाहे कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, यदि वे शापग्रस्त हों अथवा निरीहों की आहें इनसे जुड़ी हों, अन्ततः वे हानिकारक ही सिद्ध होती हैं । मिस्र के पिरामिड़ों से लेकर कोहिनूर के हीरे तक के प्रसंग यही तथ्य प्रामाणित करते हैं ।

क्या वास्तव में मिस्र के पिरामिड अभिशप्त हैं

मिस्र के पिरामिडों के बारे में अनेक जन-मान्यताएँ प्रचलित हैं । एक आम धारणा यह भी है कि प्राचीन मिस्र वासियों ने मृतकों के शवों को चिरकाल तक सुरक्षित रखने के लिए तत्कालीन ज्ञान और विज्ञान के अपने अनुसंधान के आधार पर इन संरचनाओं को खड़ा किया था । परन्तु इससे आगे सैकड़ों मील क्षेत्र में फैले इन विशाल पिरामिडों की वास्तविक उपयोगिता क्या थी, आज तक अबूझ पहेली बनी हुई है । इतिहासकार भी इस सम्बन्ध में मौन हैं । आरम्भ काल में इसकी उपयोगिता चाहे कुछ भी रही हो, अब तो यह भुतही जगह मात्र है । प्रेत-पिशाच स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करते देखे जा सकते हैं । जो भी व्यक्ति इनमें ठहरने और जानकारी हासिल करने का प्रयत्न करता है, वे उसका विनाश करके छोड़ते हैं ।

विश्वविख्यात पत्रकार फिलिप बैडन वर्ग ने "कर्स ऑफ फराओज" नामक अपनी बहुचर्चित पुस्तक में ऐसी अनेकानेक घटनाओं का उल्लेख किया है जो भौतिक विज्ञान की सीमाओं से परे है । उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग फराओ के मकबरे और ममियों के मध्य व्यतीत किया है । उनके अनुसार पिरामिडों में कुछ स्थान इतने अभिशप्त हैं । जिनमें पहुँचते-पहुँचते लोग काल का ग्रास बन जाते हैं । तूतन खामन का मकबरा उनमें से एक है । इसमें जड़ी हुई शाप सूचक तख्ती की इबारत आज के वैज्ञानिकों के अनुसंधान का विषय बनी हुई है । इसमें प्रवेश करने वाले कितने ही व्यक्तियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा है । १७ फरवरी, १९२३ को लार्ड कैनरिवान और हावर्ड कार्टर ने राजा तूतन के मकबरे में प्रवेश किया था परन्तु वे सकुशल वापस नहीं आ सके। तभी से ३० की संख्या में उच्चस्तरीय मूर्धन्य वैज्ञानिकों पुरातत्ववेत्ताओं तथा अन्य क्षेत्रों के विशेषज्ञों की इसमें दर्दनाक मौत हो चुकी है ।

सन् १९६२ में काहिरा विश्वविद्यालय के मूर्धन्य वैज्ञानिक डा० इज्जेहीन ताहा जो वरदान-अभिशाप जैसी बातों पर तनिक भी विश्वास नहीं करते थे, के साथ एक विचित्र घटना घटित हुई । उनकी मान्यता थी कि पिरामिडों में पाई जाने वाली काई के कारण ही उसमें प्रवेश करने वालों को श्वास और त्वचा की बीमारी हो जाती है जो अन्ततः जानलेवा सिद्ध होती है । उन्होंने काई को समाप्त करने की योजना बनाई ही थी कि अचानक कारों की भिड़न्त में उनकी काहिरा में ही मृत्यु हो गई ।

बैंडनवर्ग के अनुसार सन् १९२९ तक तूतन खामेन के मकबरे को खोलने और उसकी जानकारी प्राप्त करने वाले २२ लोग काल कबलित हो चुके हैं । कई लोग तरह-तरह की आधि-व्याधियों से पीड़ित हैं और अनेकों को अर्धविक्षिप्तों जैसी स्थिति में जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है । वैज्ञानिक कहते हैं कि यह मात्र काई से होने वाली व्याधियाँ नहीं हैं ।

विश्वप्रसिद्ध गीजा के महान पिरामिड के सम्बन्ध में भी यही कहा जाता है कि वह अभिशप्त है । रात्रि में जो कोई भी व्यक्ति इसमें रुकने का प्रयत्न करता है, फराओ की प्रेतात्मा उसे मार डालती है ।

प्राचीन मिस्र पर पिरामिडों पर अनुसंधान कर रहे मूर्धन्य वैज्ञानिकों के अनुसार मिस्र के प्राचीन निवासियों ने अपने मकबरे की सुरक्षा हेतु विषैले प्रूसिक अम्ल का प्रयोग किया था । वे इसे नाशपाती के बीजों से बनाते थे और ममियों को उसी अम्ल में भिगोकर रखते थे जिससे वे सुरक्षित भी रहें व उन्हें कोई चुरा न सके । इस अम्ल को एक प्रकार का तीव्र स्नायु विष कहा जा सकता है । उनने मानसिक तनाव फैलाने वाले एक और विष की खोज की थी, जिसे क्विक सिल्वर के विषैले गंधहीन वाष्पकणों से बनाया जाता था । मकबरे की खुदाई के समय डा० एवचिन व्हाइट इसी विषाक्त प्रभाव के कारण मृत्यु की गोद में चले गये थे ।

कुछ वैज्ञानिकों ने फराओ के शाप को रेडियोएक्टिव जैसी कोई करामात माना है, जिससे शारीरिक और मानसिक कमजोरी तथा अंग-प्रत्यंग में शिथिलता का अनुभव वहाँ पहुँचने पर लोगों को तुरन्त होने लगता है । क्योंकि उस समय मिस्र के लोगों को परमाणु विज्ञान की भी पूर्ण जानकारी थी । सम्भवतः वे सौर किरणों के साथ आने वाली कास्मिक किरणों को संग्रह कर सड़ सकने वाले शवों को पूर्णत विज्ञान सम्मत ढंग से बने पिरामिडों में सुरक्षित रखते थे । कृत्रिम ढंग से बनाये गये पिरामिडों की उत्तर-दक्षिण धुरी पर विभिन्न सामग्री रखकर देखा गया है कि यह सही है । पिरामिड बने भी भूचुम्बकीय धाराओं के समुच्चय के बीच हैं । पिरामिडॉलाजी आज एक भली भाँति विकसित विधा है । केवल अभिशप्त स्थान न कहकर इस संबंध में विशद अनुसंधान की आवश्यकता है ।

अवांछनीय संग्रह का दुर्भाग्यपूर्ण अंत

पृथ्वी उतनी ही सम्पत्ति उत्पन्न करती है, जितनी उसके पुत्रों के निर्वाह के लिए नितान्त आवश्यक है । इस अनुदान को सभी लोग सहोदर भाइयों की तरह मिल बाँटकर खायें तो

सबकी जीवन यात्रा सुखपूर्वक चलती रह सकती है और बचा हुआ समय मानव-जीवन के महान् उद्देश्यों की पूर्ति में लग सकता है । सुख-शान्ति का वातावरण इसी नीति को अपनाये रहने में बना रह सकता है ।

बुद्धि विपर्यय से ग्रस्त मनुष्य अमीर बनने का प्रयत्न करता है । इधर-उधर से समेटकर सम्पत्ति अपने नीचे जमा करता है । इसके दो परिणाम होते हैं, एक तो संग्रहकर्त्ता का परिवार अमीरी के अंहकार में उद्धत आचरण करने पर उतारू होता है, विलासिता में डूबता है और अनेक व्यसनों तथा दोष, दुर्गुणों का शिकार होता है । दूसरी ओर निर्धनों का शोषण होता है और असमानताजन्य ईर्ष्या जगती है । ऊँची दीवार उठाने के लिए कहीं न कहीं गड्ढा करके ही मिट्टी निकालनी पड़ती है । दूसरों को गरीब बनाये बिना कोई अमीर नहीं बन सकता । कानूनी या गैर कानूनी तरीके अपनाकर उसे शोषण करने एवं निष्ठुरता अपनाने के मार्ग पर ही चलना पड़ेगा । अन्यथा धन संग्रह न हो सकेगा । अधिक उपार्जनकर्त्ता को अधिक उदार भी होना चाहिए और अपनी विशेष प्रतिभा का विशेष लाभ समाज को देना चाहिए । इस प्रकार अधिक उत्पादन का कौशल उसे सम्मान एवं सन्तोष देकर फिर उदार कार्यों द्वारा वितरित हो जाता है । लिप्सा और निष्ठुरता धारण किये बिना किसी के लिए भी अमीरी सम्भव नहीं ।

तत्वदर्शियों ने परिग्रह को सर्वप्रधान पाँच प्रमुख पातकों में से एक माना है और सौ हाथों से कमाने के साथ-साथ हजार हाथों से दान करने का, सत्कार्यों के लिए समाज को लौटा देने का निर्देश किया है । किन्तु लालची मनुष्य धनी बनने की ललक में अमीरी जमा करता जाता है । निश्चित रूप से यह विश्व-व्यवस्था के प्रति विद्रोह है । इस संग्रह पाप का दुष्परिणाम न केवल संग्रहकर्त्ता को, वरन् समस्त समाज को भुगतना पड़ता है ।

अमीरी जहाँ भी संग्रहीत हुई है, वहीं विपत्ति आई है और उस सम्पदा का दुर्दशाग्रस्त दुखद अन्त हुआ है । संग्रहीत खजाने जहाँ-तहाँ फिर भूमिसात् हुए हैं या समुद्र में डूबे हैं और उनके संग्रहकर्त्ता रोते-कलपते संसार से विदा हुए हैं ।

इटली फ्रांस और अलजीरिया के बीच एक छोटा सा टापू है-कौरसिया । इस पर फ्रांस का आधिपत्य है । यहाँ की सभ्यता को इटली और फ्रांस का संमिश्रण कहा जा सकता है । इसी के समीप वास्तिया खाड़ी के उथले समुद्र मे जर्मन सेनापति रोमेल द्वारा अफ्रीका से लूटा हुआ खजाना डूबा पड़ा है । इसकी कीमत सत्रह अरब डलर आँकी जाती है ।

द्वितीय महायुद्ध में जर्मनी ने जब अफ्रीका पर हमला बोला तो वह पहली बार तो वह आँधी-तूफान की तरह बढ़ता चला गया और हजारों मील बढ़ता चला गया । किन्तु जब मित्र राष्ट्रों ने डटकर मुकाबला किया तो उसके पैर उखड़ गये। इस बीच उसने अपने अधिकृत क्षेत्र के सभी धनी लोगों को पकड़-पकड़कर उनके पास जो कुछ था सभी लूट लिया था । इस लूटे धन को वह बराबर जर्मनी भेजता रहा था । पर जब रोमेल को वापिस लौटना पड़ रहा था तब तो उसने लूट को अत्यन्त तीव्र कर दिया और जल्दी-जल्दी धन राशि इकट्ठी करके उसे अपने देश पहुँचाने में जुट गया । एक बड़ा स्टीमर भरकर रातों रात विपुल धन उसने जर्मनी भेजा । यह १७ सितम्बर, १९४३ की बात है । सब सामान लोहे के मजबूत बक्सों में बन्द कर दिया गया और तहखानों के ताले लगाकर सील कर दिया गया ।

समुद्र में भी दोनों पक्ष के युद्ध-पोत और पनडुब्बियाँ चक्कर लगा रहे थे, इसलिए इस स्टीमर को चक्करदार रास्ते से भेजा गया । रास्ते में जंहाजी, कर्मचारियों की नीयत बिगड़ी और वे खजाने को लूट ले जाने पर आमादा हो गये । कप्तान के साथ हील-हुज्जत के सिलसिले में स्टीमर खतरे में पड़ रहा था, दूसरी ओर विपक्ष की पनडुब्बियों को जर्मन नौका जाने का सुराग लग गया । उसे पकड़ने की मोर्चाबन्दी बन गई । ऐसी दशा में स्टीमर के कप्तान ने यही उचित समझा कि खजाना समुद्र में डुबो दिया जाय और कर्मचारियों से पूछताछ करने पर कुछ भेद न मिल सके इसलिए स्टीमर के कप्तान ने यही उचित समझा कि शत्रु पक्ष के हाथों पड़ने की अपेक्षा आत्म-हत्या कर लेना उपयुक्त है । अस्तु, जर्मनी ने अपने ही बमों से उसे उड़ा दिया और स्टीमर धज्जी-धज्जी होकर उड़ गया। पीछे यह पता भी लग गया कि इसी में रोमेल के भेजे हुए धन का बहुत बड़ा भाग भरा हुआ था ।

तब से लेकर अब तक कितनी ही बार उस खजाने को समुद्र में ढूँढ़ने और निकालने के प्रयत्न हुए हैं, पर यह प्रयास का दुखद अन्त हुआ है । गोताखोरी के लिए निकली हुई टीमें किसी न किसी दैवी विपत्ति में फँसकर अपने प्राण गँवाती रही हैं । सफलता का कोई सूत्र किसी के भी हाथ नहीं लगा । इन दुर्घटनाओं की श्रृंखला के पीछे अनुमान लगाया जाता है कि स्टीमर के जर्मन कप्तान का प्रेत उसकी चौकीदारी करता है और जो उसे निकालने का प्रयत्न करता है, उसकी जान लेकर छोड़ता है ।

न्यूयार्क के स्टैनले पब्लिकेशन की पत्रिका मेन्स लाइफ के सितम्बर १९६६ के अंक में मारिटन ब्रेन्स्टन द्वारा बंगाल

की खाड़ी से करोड़ों रुपये की भूमिगत रत्न राशि खोद निकालने का विस्तृत विवरण छपा है ।

मार्टिन ने सुन रखा था कि बंगाल की खाड़ी में समुद्री डाका मारने वाले गिरोह का सरगना'बस्तुम' था । उसने अपना एक मजबूत जहाजी बेड़ा बना रखा था और कितने ही डाका मारने की कला में प्रवीण डाकू अपने गिरोह में भर्ती किये थे । दस वर्ष तक उसने उस क्षेत्र में पूरा आतंक फैला रखा था । व्यापारिक जहाज कहीं जाते तो यह समझकर लंगर खोलते कि उन्हें वस्तुम से आत्म-रक्षा करनी पड़ेगी । इस प्रयोजन लिए वे अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित एवं कुशल तैराक योद्धा भी साथ लेकर चलते थे । तो जहाँ भी दाव लगता, वह डाकू अपना आतंक प्रस्तुत कर देता और बहुमूल्य वस्तुएँ लूटकर ले जाता। इस प्रकार उसने करोड़ों रुपये की सम्पत्ति जमा की । उसे रखा कहाँ जाय ? इस प्रश्न का समाधान उसे बंगाल की खाड़ी में छितराये हुए छोटे-छोटे द्वीपों में मिला । उसे अपनी योजनाएँ बनाने और जहाजों की मरम्मत, भोजन व्यवस्था, दवादारू आदि की जरूरत पड़ती, इसलिए उसे अपना अड्डा अदल-बदल कर इन द्वीपों में ही रखना पड़ता था ।

यह बात नौवीं सदी के अन्तिम वर्षों की है । उन दिनों उत्तर भारत में राजा भोज का शासन था । भोज के बेटे महेन्द्रपाल ने अपना राज्य बढ़ाया और उसे बंगाल की खाड़ी तक पहुँचा दिया । खाड़ी का बन्दरगाह विदेशों से व्यापार बढ़ाने का अच्छा साधन था । महेन्द्रपाल का पूरा ध्यान इस ओर था, पर डाकू वस्तुम के आतंक ने वह मार्ग एक प्रकार से अवरुद्ध ही कर रखा था । इसलिए यह आवश्यक हो गया था कि समुद्र को डाकुओं के खतरे से मुक्त किया जाय । उड़ीसा के राजकुमार की सहायता से वस्तुम को किसी बड़े प्रलोभन का लालच देकर महेन्द्रपाल ने पकड़वा लिया, इसके बाद उसके जहाज भी जब्त कर लिए गये और साथी डाकुओं को जेल में डाल दिया गया।

वस्तुम को तरह-तरह की यातनायें दी गई कि वह अपने अब तक के छिपे खजाने का भेद बताये । किन्तु वह भी ऐसी मिट्टी का बना था कि टस से मस नही हुआ और यन्त्रणाएँ सहते-सहते अपने प्राण गँवा बैठा ।

तब से लेकर पिछले दिनों तक वस्तुम के खजाने की बहुतों ने खोज की, पर किसी के हाथ कुछ न लगा । अँग्रेजी शासन काल में मारिटन ब्रेन्सटन ने उस खजाने की अति गम्भीरतापूर्वक खोज की । खाड़ी में छोटे-बड़े ८१ द्वीप हैं । इनमें जो इस काम के थे कि उनमें डाकुओं के ठहरने की सुविधा हो सकती है, उनकी संख्या १०-१२ निकली । इनमें से भी अधिक उपयुक्त केवल एक निकला ।

इसी की खोज करने का निश्चय किया गया । मारटिन अपने साथ कलकत्ते की एक नर्तकी लावी को अपना दुभाषिया लेकर वहाँ गया । उस द्वीप पर एक मुसलमान राजा राज्य करता था । काजी का उस पर असर था । काजी को मिलाकर मार्टिन ने खुदाई की स्वीकृति प्राप्त करली । खुदाई का उद्देश्य खजाना है, यह तो नहीं बताया पर वहाँ कोई बड़ी खान निकलने की सम्भावना बताकर उन्हें सन्तुष्ट कर दिया।

खुदाई उन्होंने कई जगह की तो एक जगह उन्हें सचमुच ही सोने और रत्नों से भरा सन्दूक मिल गया, जिसे किसी तरह छुपाकर अपनी नाव में पहुँचाने में सफल हो गये और उस द्वीप वालों के सहयोग की सराहना करते-अपने दुर्भाग्य पर रोना रोते वे लोग वापिस लौट आये । वे लोग ४० करोड़ डालर की सम्पत्ति में से सिर्फ कुछ लाख पा सके, पर पीछे आपसी फूट पड़ जाने से उपभोग करने के स्थान पर जान ही गँवा बैठ ।

द्वितीय महायुद्ध के दिनों जब जापानियों ने अमेरिका के पर्ल हार्वर पर हमला किया तो सर्वत्र आतंक छा गया । जापान उन दिनों सचमुच इतना समर्थ बन चुका था कि यह अणुबम आड़े न आता तो वह अपने प्रभाव क्षेत्र में उसी प्रकार पैर फैला लेता, जिस तरह कि योरोप में जर्मनी ने फैलाये थे ।

प्रशान्त सागर के फिलीपाइन द्वीप समूहों में अमेरिका की प्रचुर सम्पत्ति जमा थी । यह कहीं जापानियों के हाथ न पड़ जाय, इस आशंका से अमेरिका उसे नष्ट करने पर तुला हुआ था । लगभग एक करोड़ रुपये के सरकारी खजाने के नोट आग लगाकर नष्ट कर दिये गये । एक पनडुब्बी भरकर सोना, चाँदी तथा दूसरी चीजें अमेरिका भेजी जा चुकी थीं । फिर भी कई करोड़ के चाँदी के सिक्के जमा थे, उन्हें हटाने का अवसर भी निकल चुका था । अस्तु, यही निश्चय किया गया कि उसे लोहे के बक्सों में बन्द करके समुद्र में डुबो दिया जाय । सैनिक फैसले के अनुसार ६ मई १९४२ को फिलीपाइन की कवैली खाड़ी में उन सन्दूकों को डुबो दिया गया । इसके तुरन्त बाद जापानी सेना ने उस सारे क्षेत्र पर अपना कब्जा कर लिया ।

खजाना डुबोने का सुराग जापानियों को लग गया । उन्होंने पकड़े हुए अमेरिकी गोताखोरों को लालच और भय दिखाकर इस बात के लिए रजामंद कर लिया कि डूबे हुए खजाने को

निकालने में सहायता करें । उन्हें वैसा ही करना पड़ा । कुछ सन्दूक ज्यों के त्यों निकाल भी लिये गये । पीछे अमेरिकी गोताखोरों ने सोचा यह अमेरिकी धन उन्हीं के देशवासियों के विरुद्ध गोलाबारूद बनाने में काम लाया जायगा । इसलिए कोई तरकीब निकालनी चाहिए । उन्होंने कुछ बक्से साबुत निकाल देने और कुछ के पेंदे ढीले करके सिक्के समुद्र में बिखर जाने का रास्ता निकाल लिया । कुछ खाली कुछ भरे बक्से निकलते रहे । जापानी भरे बक्सों पर प्रसन्न थे और खाली देखकर इसे पेटियों की कमजोरी से उत्पन्न दुर्भाग्य मानकर सन्तोष करते रहे । कहते हैं कि जितना धन निकाला गया उससे कई गुनी सम्पत्ति समुद्र की अथाह जल राशि में छितरा दी गई और अब उसे ढूँढ़ निकालने की कोई सम्भावना नहीं है ।

अमेरिका की बीहड़ भूमि पर जब गोरों ने अधिकार जमाया तो उन्हें लुप्तमय संस्कृति के अवशेषों के साथ-साथ उन लोगों के संचित स्वर्ण भण्डार भी जहाँ-तहाँ जामीन में दबे हुए मिले । इसके अतिरिक्त वह भूमि वैसे भी स्वर्ण गर्भा रही है । अनेक स्थानों पर छोटी-बड़ी खदानें हैं, जिनमें सोना पाया और निकाला जाता रहा है ।

सन् १८७० की बात है । कैलीफोर्निया के इंडियन वैल्स नामक कस्बे में एक ऐसे खूसट गोरे का दिनदहाड़े कत्ल हुआ जिसने प्रचुर परिमाण में सोने और चाँदी के बक्से भर जमा किये थे, पर उन्हे वह किसी काम में खर्च नहीं करता था । लुटेरों ने उस पर हाथ साफ किया । पूछने पर जब उसने दोलत का पता नहीं दिया तो उसे काट डाला गया । पर दौलत लुटेरों के हाथ भी नहीं लगी वह जहाँ-तहाँ जमीन में ही गढ़ी रही।

प्रथम महायुद्ध के सात वर्ष बाद जमीन में युद्ध प्रयोजनों में बिखरी हुई धातुएँ ढूँढ़ने वाले विभाग का एक इन्जीनियर अपने काम का एक उपयोगी यन्त्र बना चुका था । कुछ दिन उसका प्रयोग करने के बाद उस इन्जीनियर के मन में यह विचार आया कि क्यों न वह इस यन्त्र की सहायता से अमेरिका में दबे हुए छिपे खजानों को ढूँढ़ निकाले । इस विचार से उसकी आँखें चमक गईं और अपने उपकरण लेकर अमेरिका चल पड़ा । उसका नाम था-फ्रेंकफिश ।

फ्रेंकफिश ने इण्डियन वेल्स में हुई एक धनी की हत्या और उसी जमीन में दबी सम्पत्ति की चर्चा सुनी, तो अपना पहला प्रयोग वहीं करने का निश्चय किया । भाग्य ने साथ दिया और उसने वह खजाना ढूँढ़ ही निकाला । ६७०० चाँदी के सिक्के, ३००० सोने की मुहरों के अतिरिक्त एक छोटे बक्से में हीरों के आभूषण भी उसे मिले ।

जिस बुड्ढे की हत्या हुई थी, वह उन स्पेनी डाकुओं में से एक था जिसके दल के पास ८० हजार स्वर्ण मुद्राएँ जमा हो गई थीं, किन्तु दल में फूट पड़ जाने के कारण कुछ तो आपस में ही लड़ मरकर समाप्त हो गये थे और कुछ जितना हाथ पड़ा, उतना लेकर भाग खड़े हुए थे । वह भी दौलत को छिपाने के चक्कर में ही सारी जिन्दगी गँवा बैठा। इसी के ताने-बाने दिन-रात बुनता रहा और अन्ततः उसी में उलझ कर मर गया ।

उस खजाने को निकालते समय जो अनुभव हुए उसकी विस्तृत गाथा फ्रेंकफिश ने प्रकाशित कराई है और बताया है कि किस तरह उसे खजाने की रखवाली पर बैठी हुई मृतात्मा का डरावना चेहरा और आँखों से निकलता आक्रोश देखने को मिला । फिर भी वह बिना डरे अपने काम पर लगा ही रहा।

फ्रेंकफिश ने शेष जीवन में खुदाई का काम जारी रखा और कई खजाने तथा पुरातत्व की दृष्टि से मूल्यवान अवशेष ढूँढ़ निकाले । उन सबका उसने एक संग्रहालय बना दिया है और धन ऐसे कामों में लगा दिया है जिससे सार्वजनिक हित साधन हो सके । वह कहता रहा कि बिना परिश्रम का धन किसी के लिए भी उपयोग के लायक नहीं हो सकता ।

फ्रेंकफिश अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमान निकला । उसने खजाना डुबाने वाले और निकालने वालों में कुछ अन्तर प्रस्तुत किया है । उसने ख्याति प्राप्त करने में सन्तोष कर लिया और हराम की कमाई को हजम करने के लालच में अपनी आँतें न फाड़ लेने की बुद्धिमत्ता दिखाई । उसे जो मिला है उसे उसने अमेरिका के पुरातत्व विभाग का सौंप दिया. है ।

अधिक अमीर बनने- संग्रह करके सौ पीढ़ियों के लिए मौज उड़ाने की व्यवस्था करने वाले लोग पाते कम और खोते जादा हैं । यह तथ्य खजानों के दुखद अन्त की उपरोक्त घटनाओं से समझा जा सकता है । छोटे रूप में तो यही प्रयास हममें से हर कोई करता रहता है । यही ललक जब तक छूटेगी नहीं तब तक विश्व व्यवस्था के प्रति किया गया विद्रोह- अनावश्यक धन संग्रह केवल विपत्ति ही उत्पन्न करता रहेगा

परोक्ष जगत् के अस्तित्व को स्वीकारना ही पड़ेगा

बुद्धिवाद कहता है कि जो दृश्यमान नहीं है, काल्पनिक है, परम्परावादी मान्यताओं पर आधारित है, उस पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए । प्रत्यक्षवादी हर उस धारणा क़ो तर्क, तथ्य, प्रमाणों की कसौटी पर कसना चाहता है जो किसी समुदाय

में फैली या प्रचलन में मान्यता प्राप्त कर चुकी है। यह सब सही होने पर भी परोक्ष जगत एक क्षेत्र ऐसा है, जिसने प्रत्यक्ष प्रमाण न मिलने पर भी विज्ञान जगत को दबी जुबान से यह मानने पर विवश होना पड़ा है कि मरणोत्तर जीवन एक अकाट्य सत्य है । परामनोविज्ञानी रहस्यवादी या एक ही शब्द में ऑकल्टिस्ट्स की यह मान्यता है कि मृत्यु ही जीवन का अंतिम पड़ाव नहीं है । वरन् इसके बाद भी जीवन की अनन्तता, सतत् चलायमान यात्रा आरम्भ रहती है । मरण तो इस प्रत्यक्ष नजर आने वाली काया का होता है, जीवात्मा का नहीं । चेतना अजर-अमर है । गीताकार की नैनंछिन्दन्ति शस्त्राणि, के प्रतिपादन का सत्यापन करते हुए वे वैज्ञानिकों को बताते हैं कि इस जगत से परे एक अदृश्य परोक्ष जगत् का भी अस्तित्व है । इसी जगत् में ऐसे सूक्ष्मजीवी विचरण करते रहते हैं जिनको यदा कदा प्रकट होते अथवा जिनके द्वारा सम्पन्न क्रिया-कलापों को देखा गया है । जिनने उनहें प्रत्यक्ष देखा है, सम्पर्क साधा है, उन्होंने दिवास्वप्न नहीं देखा, अपितु एक सच्चाई का सत्यापन किया है ।

गुह्यविज्ञानी कहते हैं कि प्रत्यक्ष दिखाई न देने पर भी ऐसी सूक्ष्म आत्माओं के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता । कई आत्माएँ स्वतः ही बिना किसी प्रयास के अनपेक्षित तरीके से लोगों को दिखाई देने लगती हैं । उच्च श्रेणी की सदाशय पितर आत्माएँ तो संस्कारवान शरीरधारियों से सम्पर्क स्थापित कर उनकी सहायता, उनका मार्गदर्शन करती पायी गयी हैं । ये घटनाक्रम जिनके साथ भी घटे हैं, उन व्यक्तियों की प्रमाणिकता पर संदेह नहीं व्यक्त किया जा सकता ।

बहुधा ऐसी चर्चा करने वालों अथवा इनका प्रतिपादन करने वालों पर रूढ़िवादी होने का आरोप लगाया जाता रहा है । पर अब जब विज्ञान की साक्षियाँ भी समानान्तर परोक्ष जगत् के अस्तित्व के पक्ष में प्रस्तुत होने लगी हैं, आरोपों का सिलसिला टूट सा गया है ।

इंग्लैण्ड के प्रख्यात परामनोविज्ञानी एण्ड्रयूगीन के अनुसार समय-समय पर ऐसी अनेक प्रामाणिक घटनाएँ सामने आती रहती हैं, जिनसे प्रेतात्माओं के अस्तित्व की पुष्टि होती है । उनका कहना है कि उद्विग्न, अशांत, आतुर, विक्षुब्ध, क्रुद्ध, कामनाग्रस्त, अतृप्त लोगों को ही प्रायः प्रेत बनना पड़ता है । शांतचित्त, सौम्य एवं सज्जन प्रकृति के लोग सीधी-सादी जन्म-मरण की प्रक्रिया पूरी करते व मुक्ति से पूर्व पितर बनकर सहायता करते रहते हैं ।

विश्व के मूर्धन्य परामनोविज्ञानियों द्वारा किये गये प्रयोग-परीक्षणों से अब यह सिद्ध हो गया है कि ऐसी आत्माओं का अस्तित्व प्रेत योनि में काफी लम्बे समय तक बना रहता है, जिन्हें बरबस प्रतिबंधित करके बहुत दिनों तक बंदी बनाकर रखा और प्रताड़ित किया गया हो । ऐथेन्स की एक ऐसी ही प्रख्यात घटना है, जो मरणोत्तर जीवन की सच्चाई को प्रकट करती है । ईसा से एक शताब्दी पूर्व की बात है कि इसी नगर के एक महल में एक वृद्ध पुरुष को देखा जाता था, जिसके दोनों हाथ और पैर लोहे की जंजीरों से जकड़े रहते थे । समय-समय पर उस जंजीर के खड़खड़ाहट की ध्वनि भी आसपास के वातावरण में प्रतिध्वनित होती रहती थी । उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार उस व्यक्ति को उक्त भवन में कैद करके रखा गया था तथा भयाक्रान्त स्थिति में ही उसकी वहाँ हत्या कर दी गई थी । तब से उसने उस महल को अपना निवास स्थान बना लिया । बिना किराये के भी तब से उसमें कोई भी रहना पसंद नहीं करता था ।

प्रसिद्ध दार्शनिक ऐथनोडोरस ने उक्त घटना के रहस्य को समझने के लिए शोधकार्य आरंभ किया । जैसे ही उन्होंने उस भवन में प्रवेश किया तो उस प्रेतात्मा का उन्हें भी सामना करना पड़ा । एक बार तो वे बुरी तरह भयभीत भी हो गये, पर धैर्य नहीं खोया । आखिर में भूत ने महल के आँगन में गड्ढा खोदा और उसी में विलुप्त हो गया । जब इस घटना की जानकारी जिलाधिकारी को दी गई तो उन्होंने उस स्थान की खुदाई के आदेश दिये । खोदने पर उस स्थान से जंजीर के जीवाश्म निकले, जिन्हें समीपवर्ती संग्रहालय में सुरक्षित रख उस विक्षुब्ध आत्मा का धर्माचार्यों द्वारा यथाविधि अंतिम संस्कार कर दिया गया । तब से वह भवन रहने योग्य हो गया । अब पर्यटक वहाँ यह देखने जाते हैं कि कैसे कोई स्थान, भवन किसी विक्षुब्ध आत्मा के रहने से अभिशप्त हो जाता है ? हमारे देश की बात छोड़ दें, इंग्लैण्ड व अमेरिका में ही ऐसे कितने भवन हैं, जिन्हें अभिशप्त अभी भी माना जाता है, जिनमें प्रेतात्माओं का निवास है, यह वहीं समीप रहे वाले शपथपूर्वक कहते हैं तथा जहाँ रहस्यवादियों ने भी जाँच-पड़ताल कर यही निष्कर्ष निकाला है । यूरोप में सामंतों व राजाओं के ऐसे अनेकों किले निर्जन पड़े हुए हैं जिनमें कभी क्रूर शासक निवास किया करते थे, इतिहास जिनका साक्षी है । यह उन देशों का प्रसंग है, जिन्हें विकसित, प्रगतिशील कहा जाता है तथा जो विज्ञान व साधनों की दृष्टि से भी प्रगति के चरम शिखर पर हैं । फिर

वे कैसे गुह्य विद्या को अप्रामाणिक ठहराते हैं । वस्तुतः वे चेतना के अस्तित्व को, उसकी नश्वरता को जान-बूझकर स्वीकार नहीं करना चाहते, क्योंकि इससे उनकी भोगवादी जीवन पद्धति पर, चार्वाक वादी दर्शन शैली पर सीधा प्रहार पहुँचता हैं । पर आँखें बन्द कर लेने से यह तो प्रमाणित नहीं हो जाता कि सूर्य का अस्तित्व ही नहीं है ।

ऐरिक मैपल को भूत-प्रेत विद्या का विशेषज्ञ समझा जाता है । अपनी इन विशेषताओं के कारण उन्होंने इंग्लैण्ड में विशेष ख्याति अर्जित की है । ऐसैक्स के समीपवर्ती रैक्युल्वर गाँव में घटी एक घटना के संबंध में जब उन्होंने वहाँ की जनता से पूछताछ की तो लोगों ने बताया कि एक पेड़ के नीचे कुछ नवजात शिशुओं के रोने की आवाज सुनाई देती है । उनकी करुण चिल्लाहट ऐसी होती है कि गाँव वालों को रात्रि के समय ठीक तरह से सोने नहीं देती । मैपल ने इस दुखद संवेदना भरी ध्वनि को कई बार सुना, तो सन् १९६० में भू गर्भ विज्ञानियों की सहायता से उस स्थान की खुदाई करवाई । खुदाई में अनेक मासूम बच्चों की खोपड़ियाँ तथा शरीर के अन्य अंगों के अस्थि पंजर भी पाये गये । वैज्ञानिकों ने परीक्षण करने पर पाया है कि बच्चों के ये अस्थि पंजर कम से कम १५०० वर्ष पुराने हैं । एक बच्चे का कंकाल तो बिना किसी क्षति के भी उपलब्ध हुआ है । विशेषज्ञों का कहना है कि इन बच्चों की हत्या तत्कालीन सैनिकों द्वारा धार्मिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिए की गयी थी । देवताओं की प्रसन्नता हेतु नरबलि की घिनौनी परम्परा का प्रचलन यूरोप में ईसा से पूर्व बहुत अधिक था ।

इसी तरह इंग्लैण्ड के नौरफाक नगर की एक आश्चर्यजनक घटना लोगों के कौतूहल का विषय बनी हुई है। प्रतिवर्ष ३१ मई को अर्धरात्रि के समय रथ पर सवार एक व्यक्ति की छाया बैस्टविक गाँव से गुजरती है । उसमें प्रज्ज्वलित अग्नि वहाँ के दर्शकों को स्पष्ट रूप से दिखाई देती है । लोगों का कहना है कि सन् १७४१ में सर मॉड्फ्रे हैजलिट नामक व्यक्ति का विवाह बैस्टविक में ही बड़ी धूमधाम से सम्पन्न होने जा रहा था कि विद्वेषियों ने उन्हें रास्ते में ही रथ समेत जला डाला। बाद में उन्हें बैस्टविक हाल में दफना दिया गया । तभी से उनकी मृतात्मा प्रतिवर्ष रात्रि में उसी निश्चित समय पर उस रास्ते पर इस तरह दिखाई देती है ।

परामनोविज्ञानी एण्ड्र्यूत्रीन ने भूत-प्रेतों के ८ किस्मों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है । उनका कहना है कि दो प्रतिशत भूत-प्रेत ऐसे हैं जिनकी अद्भुत अलौकिकता का रहस्य अभी तक नहीं समझा जा सकता है । ''दी रोमियो एरर'' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में लायल वाटसन द्वारा वर्णित न्यूयार्क की एक घटना ऐसी ही है, जिसे सबसे अधिक प्रामाणिक एवं अद्भुत समझा जाता है । सन् १९६४ में न्यूयार्क के एक अस्पताल में चिकित्सक ने एक ऐसे व्यक्ति का शव-परीक्षण किया, जिसकी असामयिक मृत्यु हो गयी थी । विच्छेदन के समय कई चिकित्सकों द्वारा मृत्यु हुई प्रमाणित उस शव ने उछलना-फुदकना आरंभ कर दिया और सहयोगियों के देखते-देखते सर्जन का गला घोंट डाला । सर्जन की मृत्यु में देर नहीं लगी । विक्षुब्ध मनःस्थिति की मृतात्मा द्वारा अपने स्थूल शरीर के माध्यम से किया वह कृत्य बड़ा ही आश्चर्यजनक उदाहरण है । बाद में पाया गया कि सर्जन की मृत्यु के बाद शव भी ठण्डा हो गया । दोनों का अंतिम संस्कार साथ-साथ किया गया ।

अकाल मृत्यु के सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रयोग-परीक्षण करने वालों में एडगर एलनपो का नाम सबसे अग्रणी है । उन्होंने ऐसी अनेकों घटनाओं का वर्णन किया है जिनसे मरणोत्तर जीवन एवं भूत-प्रेतों के अस्तित्व की सच्चाई प्रकट होती है । ''दी फाल आफ हाउस आफ यूशर'' नामक पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि गृह स्वामी रौड्रिक यूशर को अपनी मृत बहन लेडी मैडेलीन की छाया बहुत ही डरावने आकार में दिखाई देती थी, जिसके वस्त्रों पर रक्त के धब्बे थे । उसकी मृत्यु अपहरण के बाद बड़े ही नृशंस तरीके से किसी गुम्बज में दम घोंटकर की गई थी । इस दृश्य को उपस्थिति जन-समुदाय ने भी नजदीक से देखा था ।

एडगर एलन के अनुसार सामान्यतया जो महिला अथवा पुरुष हत्या या आत्महत्या का शिकार बनते हैं अथवा प्रतिशोध की भावना से कुंठित होकर शरीर त्याग कर बैठते हैं, वे ही विचित्र तरह की स्थिति में अपने स्वरूप प्रकट करते हैं ।

पश्चिम जर्मनी में गुप्तचर विभाग के भूतपूर्व संचालक फ्रैडरिक हर्जेनरिथ ने प्रेतात्माओं की स्मृतियों को १९३० को अपने प्रकाशन में सचित्र वर्णन किया है । उनका कहना है कि कुछ मृतात्माएँ व्यक्ति के मार्गदर्शन में पूरी तरह सहायक होती हैं, तो कुछ स्थूल सहायताएँ भी पहुँचाती हैं ।

घटना लगभग ७० वर्ष पुरानी है । राजस्थान के मेवाड़ कस्बे में मंडेरा गाँव के दर्जी परिवार के एक महिला की मृत्यु प्रसव के तुरन्त बाद हो गई थी । पर अतृप्त अभिलाषाओं के कारण उसकी मृतात्मा रात्रि के समय अपने नवजात शिशु के पास आती और उसकी देखभाल करती । प्रातःकाल होते ही उसे स्नानादि कराकर वापस अदृश्य हो जाती । इसी अवधि में वह सास-ससुर एवं अपने पति की भी सेवा-सुश्रूषा करती रही ।

पिछले दिनों राजस्थान के ही चित्तौड़ जिले के अकोला गाँव में भी इसी तरह की एक घटना प्रकाश में आई है । एक जमींदार की पत्नी की प्रेतात्मा अपने बच्चे की परवरिश पूर्व की ही भाँति करती रही । लोगों द्वारा जब उसे भागने को विवश किया गया तो अदृश्य होने से पूर्व उसने अपने पति को एक गुप्त खजाने का रहस्य बताया और साथ ही यह भी कहा कि ''इसका सदुपयोग मात्र बच्चे के विकास में ही करें। अन्यथा वे अपने स्वयं के धन से भी हाथ धो बैंठगे ।''

''ह्यूमन परसनालिटी एण्ड इट्स सरवाइवल आफ बाडिली डेथ'' नामक प्रसिद्ध पुस्तक के मूर्धन्य लेखकर एफ० डब्ल्यू० एच० मायर्स का अभिमत है कि मृतात्माएँ मनुष्य की उस शक्ति की परछाई हैं जिनका सतत्-प्रवाह मरणोपरान्त भी बना रहता है । इनसे सम्पर्क स्थापित करके मनुष्य लाभान्वित भी हो सकता है । प्रेतात्माओं की मुक्ति हेतु श्राद्ध-तर्पण का विधान इसी कारण भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है ।

मृत्यु के बाद पुनः जन्म लेने की अवधि के बीच जीवात्मा को कुछ समय विश्राम के लिए मिलता है । आमतौर पर इस अवधि में आत्माएँ जीवनकाल में किये गए श्रम की थकान उतारती हैं और गहरी निद्रा में सोई पड़ी रहती हैं, जिस प्रकार दिन भर काम करने के बाद रात्रि में सो लेने से प्रातःकाल ताजगी आती है और उठकर नई शक्ति के साथ नये सिरे से उत्साहपूर्ण मनःस्थिति में काम करना सम्भव हो जाता है । उसी प्रकार इस मध्यवर्ती विश्राम के बाद मृतात्मा नया जन्म धारण करके नये सिरे से, पुनर्जन्म धारण करती है और अपने क्रिया-कलाप आरम्भ करती हैं । इस मध्यवर्ती काल को ही प्रेत योनि कहा गया है ।

देखा गया है कि दिन में कोई भारी चिन्ता परेशान किये होतो है तो रात को नींद नहीं आती है और नींद आती भी है तो रह-रहकर उचट जाती है, उसी प्रकार मरने के बाद सुषुप्तावस्था या प्रेत योनि में पड़े जीव को विश्राम नहीं मिल पाता । जीवनकाल में वह जिन उद्दात वासनाओं और तृष्णाओं से पीड़ित रहता है, उन्हें पूरा करने के लिए वह प्रेतयोनि में भी परेशान रहता है तथा तरह-तरह से अपनी कामनाओं एवं वासनाओं की तृप्ति के लिए प्रयत्न करता रहता है । अतृप्त वासनाओं और तृष्णाओं को लेकर मरने वाले व्यक्तियों की आत्माएँ अपनी इच्छा पूर्ति के लिए जीवित व्यक्तियों को सन्देश देती हैं, उनके शरीर पर अधिकार कर अपनी कामनाएँ पूरी करती हैं तथा वासनाओं का आवेग जिस स्तर का होता है, उसी के अनुरूप मन्द या तीव्र हलचलें करती हैं ।

लन्दन की श्रीमती मार्गो विलियास को अप्रैल १९७६ में एक मृत आत्मा का सन्देश प्राप्त हुआ । उस आत्मा का उद्देश्य केवल अपने अस्तित्व का परिचय देना ही था । आत्मा राबर्ट यंग नामक एक डॉक्टर की थी । एक समुद्री जहाज में डॉक्टर था । यंग की आत्मा ने विलियास को बताया कि वह अर्डेट नामक युद्ध पोत कैम्पटाउन की लड़ाई में काम कर रहा था और एक दुर्घटना में सागर की अतल गहराइयों में डूब गया था । श्रीमती विलियास ने इस तथ्य की वास्तविकता को परखना चाहा और इसके लिए ब्रिटेन के प्रतिरक्षा विभाग से सम्पर्क किया । पुरानी फाइलें उलटी गईं और सन्देश की प्रामाणिकता सिद्ध हो गई कि वास्तव में राबर्ट यंग एक सर्जन के तौर पर कैम्पटाउन के युद्ध में भाग लेने वाले जहाज पर गया था, जिसमें ४० सैनिकों सहित उसकी मृत्यु हो गई थी।

श्रीमती विलियास को दूसरा सन्देश एक कोयला खनिक की आत्मा का मिला । इस खनिक का नाम या एडवर्ड रोड्स, इसकी मृत्यु सन् १९७० में यार्क शायर की एक कोयला खान में काम करते समय हो गई थी । मृत्यु के बाद उनके शव को यार्कशायर के स्वेश नामक स्थान पर दफना दिया गया था। रोड्स का कहना था कि उनका शव ठीक से नहीं दफनाया गया है, जब वह दफनाया जा रहा था तो उसके लिए प्रार्थना नहीं की गई । उल्लेखनीय है रोड्स बहुत ही धर्म श्रद्धालु व्यक्ति या वह किसी भी दिन प्रार्थना में नागा नहीं करता था और हर सप्ताह ईश्वर को नियमित रूप से गिरजे में जाया करता था । पहले तो विलियास ने घटना की यथार्थता जानना चाही और इसके लिए 'राष्ट्रीय कोयला बोर्ड से सम्पर्क किया । वहाँ से घटना की सत्यता का पता लग गया । इसके बाद विलियास ने रोड्स के परिवार वालों से सम्पर्क स्थापित किया था तथा आवश्यक धर्मानुष्ठान कराये ।

यह तो शान्त आत्माओं के विवरण हैं, जो अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए दूसरों से विन्रम अनुरोध करती हैं । कुछ ऐसी आत्माएँ होती हैं जो उद्दात वासनाएँ लिए होती हैं और उनकी तृप्ति के लिए दूसरों को पीड़ित करने में भी नहीं हिचकिचाती । पिछले दिनों लखनऊ में एक युवक की प्रेतात्मा द्वारा एक परिवार को बुरी तरह पीड़ित किये जाने का समाचार प्रकाश में आया था ।

युवक का नाम था प्रमोद । युवावस्था में वह अपनी सहपाठी छात्रा बीना के प्रति बुरी तरह आसक्त हो गया था। बीना भी उसकी ओर आकर्षित हुई थी । फिल्मी ढंग से दोनों का कथित प्रेम परवान चढ़ने लगा और दोनों ने साथ-साथ मरने

की कसमें खाईं । घर वालों को जब इसका पता चला तो दोनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया । अवसर पाकर दोनों भाग निकले किन्तु रास्ते में ही बीना की मृत्यु हो गई । इससे प्रमोद को इतना सदमा पहुँचा कि उसने भी आत्म-हत्या कर ली । जिस स्थान पर दोनों छुपकर मिला करते थे. वहाँ आज भी चीखें सुनाई देती हैं । कुछ समय तक उन्होंने अपने परिवार वालों को तंग किया किन्तु बाद में शान्त हो गए । किन्तु अभी भी उनकी चीखें और अट्टहास उस खण्ड्हर में गूँज रहे हैं जहाँ प्रमोद और बीना मिला करते थे ।

किसी घर के भुतहा होने की भी कई घटनाएँ आये दिनों प्रकाश में आती रहती हैं । कोई आवश्यक नहीं कि भुतहे कहे जाने वाले सभी मकानों या स्थानों में भूतों का डेरा होता है, मुश्किल से सौ में से एकाध घटनाएँ ही सच होती हैं और उन स्थानों या घरों के भुतहा होने का कारण मात्र उसमें पहले रह रहे व्यक्तियों का इन स्थानों के प्रति अत्यधिक लगाव ही है । अब से कोई ३५-४० वर्ष पहले कानपुर के विरहना रोड, नया गंज इलाके स्थित एक मकान के सम्बन्ध में विख्यात था कि वह भुतहा है । उस मकान में नये-नये आकर रहने लगे । हलवाई ने मकान को नया रूप देने के विचार से तुड़वाया और पहले की अपेक्षा अधिक स्थान घेरकर नया मकान बनवाया । जैसे ही नये बने मकान में उस परिवार ने रहना आरम्भ किया, वैसे ही परिवार का मुखिया प्रेत पीड़ितों की सी हरकतें करने लगा । कई डॅक्टर आये, रोगी को देखा परखा, दवा दारू की किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ । अन्त में एक तान्त्रिक की शरण ली गई तो प्रेतात्मा ने प्रत्यक्ष होकर कहा कि "यह मेरा मकान है । मैंने इस व्यक्ति के साथ हमदर्दी बरती और उसे फटे-हाल स्थिति से उबारा किन्तु इसने मेरे साथ ही धोखा दिया । मैं इस मकान में पचासों साल से रहता हूँ। यह मकान मेरा है और मैं किसी को तंग नहीं करता । इसने मेरी अवज्ञा और उपेक्षा की इसीलिए इसे किये का दण्ड मिल रहा है ।"

बिजनौर जिले के धामपुर परगने में एक गाँव है वसन्तपुर मराबली । यहाँ के निवासी रात में अक्सर गाँव के बाहर एक प्रेतात्मा को देखते हैं जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह आज भी अपनी प्रेयसी की तलाश में भटक रहा है । घटना ४० वर्ष पूर्व की बताई जाती है । उस समय यहाँ एक ठाकुर कुँवरसिंह नामक जमींदार रहता था, उसके तीन बेटे और एक बेटी थी । लड़की गाँव के ही एक युवक हरीसिंह की ओर आकर्षित हो गई और उसके प्रेम पाश में बँध गई । हरीसिंह अपने परिवार में अकेला था, माँ बचपन में ही गुजर गई थी और बाप बेटे को पाल-पोसकर इस दुनियाँ से चलता बना था ।

हरीसिंह और ठाकुर की बेटी चोरी छिपे मिलने लगे । आखिर यह चोरी-छिपे का खेल कब तक चलता । एक दिन पता चल ही गया और ठाकुर ने अपने दोनों बेटों की सहायता से तालाब के किनारे एकान्त पाकर उसकी हत्या कर दी । ठाकुर की लड़की को जब यह पता चला तो वह पागल-सी हो गई और विक्षिप्तों की तरह रहने लगी । ठाकुर ने बहुत इलाज कराया परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ । अन्त में उसने अपनी सारी जमीन-जायदाद बेच दी और गाँव छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर चला गया । इस घटना के साक्षी व्यक्ति आज भी जिन्दा हैं और उनमें से जिन लोगों ने वह प्रेतात्मा देखी है, उनका कहना है कि उसकी आकृति हरीसिंह से हूबहू मिलती-जुलती है ।

मरने के साथ ही शरीर का अन्त नहीं हो जाता यह सत्य है । मृत्यु केवल स्थूल शरीर को ही नष्ट कर पाती है, सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व फिर भी बना रहता है । मृत्यु के बाद जन्म लेने तक की अवधि विश्राम के लिए है किन्तु जो व्यक्ति किन्हीं पदार्थों स्थानों या व्यक्तियों में आसक्त रहते हैं, उन्हें मरने के बाद भी चैन नहीं मिलता । ठीक उसी प्रकार जैसे अति लोभी लालची, लिप्सावान या चिंतित दुखी, व्यग्र, उद्विग्न व्यक्ति को रात में ठीक से नींद नहीं आती । वह रात में भी करवटें बदलता जागता रहता है । अनिद्रा का यह रोग मानसिक सन्तुलन को पूरी तरह डगमगा देता है । बहुत दिनों तक ठीक से न सो पाने के कारण जिस प्रकार लोग कई मनोव्याधियों के शिकार हो जाते हैं और उन्मत्तों जैसी हरकतें करने लगते है । उसी प्रकार अतृप्त वासनाएँ लेकर मरने वाले व्यक्ति मरण काल के बाद निश्चित विश्राम की अबधि भी चैन से नहीं बिता पाते । उन्हें पागल प्रेतों की सी स्थिति में देखा जा सकता है जो खुद भी चैन से नहीं रहते तथा औरों को भी चैन से नहीं रहने देते ।

जीवन काल की मनःस्थिति मरने के उपरान्त भी

जार्जिया के सरकारी अभिलेखों में एक ऐसे ही प्रसंग की चर्चा है । घटना का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि

१३ नवम्बर, १९५३ को एक बुढ़िया अपनी चार बिल्लियों सहित न जाने कहाँ से आई फोर्टबेनिंग क्षेत्र के ट्रेलर पार्क के समीप एक फूटे खण्ढ्हर में डेरा डालकर रहने लगी । उसे देखा तो कितनों ने ही पर समझा कोई भिखारिन अथवा पगली औरत कहीं से आकर ठहर गई है । किसी ने उसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया, देखा भर जैसा । पूछने पर वह अपना नाम डासा डंकन बताती थी और अपने को कुमारी कहती थी। बाल सफेद थे और शरीर अस्थियों का ढाँचा भर दिखाई पड़ता था ।

बुढ़िया ने जिस दिन से उस खण्ढ्हर में डेरा डाला उस दिन से पार्क के पक्षियों ने चहचहाना बन्द कर दिया, वे गुमसुम घोंसलों में शाम को पहुँचते और उसी खामोशी के साथ बिना पत्ता खड़काये सवेरा होते-होते भाग खड़े होते । दिन भर उस क्षेत्र में कोई पखेरू कहीं भी दीख नहीं पड़ता । एक सप्ताह नहीं बीता कि उस उपवन में सूखी धुन्ध छाई रहने लगी । यह धुन्ध भी अजीव थी न तो उसमें कुहरे जैसी नमी थी और न धुँए जैसी घुटन । लगता था अन्धेरा ही हलकी बदली की शक्ल में इस इलाके पर छा गया है । हर चीज धुँधली दीखती। आँखों में बहुत खराबी आ जाने पर जिस तरह हर वस्तु धुधँली दीखती है ठीक वैसा ही माहौल उस इलाके पर घिरा रहने लगा।

इधर से निकलने वालों ने किसी अज्ञात भय से उधर से आना-जाना बन्द कर दिया, जिन्हें जरूरी काम से उधर जाना पड़ता था, उनने एक दिन देखा कि वही बूढ़िया उस धुँध के ऊपर अधर में चल रही है और बिल्लियाँ उसके साथ हैं । अधर में चलना विचित्र था । एक ने दूसरे को दिखाया । सैकड़ों ने उसे देखा । सभी सन्न रह गये । यह सिलसिला कई दिन चला । नियत समय पर दर्शकों की भीड़ इकट्ठी हो जाती। इसके बाद वह बुढ़िया भी गायब हो गई और धुँध भी छट गई । लोगों का अनुमान था यह कोई तान्त्रिकी है और कई तरह की आफतें खड़ी कर सकती है ।

चर्चा यह रहती थी कि बुढ़िया तान्त्रिकी का डेरा उसी खण्ढ्हर में है । वह वहीं गुप्त प्रकट होती हुई डेरा डाले पड़ी रहती है । निदान लोगों ने उस खण्ढ्हर को नष्ट कर देने की ठानी और समूह बनाकर कुदाल फबड़े लेकर वहाँ पहुँचे। समूह खण्ढ्हर तक पहुँचने भी नहीं पाया कि एक भयंकर चक्रवात उसी क्षेत्र में प्रकट हुआ जिसने उन सभी को उछाल उलट कर रख दिया । कइयों के भारी चोटें लगीं । पेड़ उखड़ गये और आस-पास के झोंपड़े उजड़ गये । आश्चर्य इस बात का था कि वह तूफान खण्ढ्हर उजाडने वाले लोगों के इर्द-गिर्द ही घुमड़ता रहा और पन्द्रह मिनट तक उन्हें त्रास देने के उपरान्त स्वतः समाप्त हो गया ।

चार महीने तक यह उथल-पुथल चलती रही । बाद में अपने आप ही उस बुढ़िया और उसकी हलचलों का न जाने कहाँ पलायन हो गया ।

यह बुढ़िया जीवितों की तरह दीखती थी किन्तु वस्तुतः वह थी अदृश्य प्रेतात्मा । जानकार उसे मरण से पूर्व तान्त्रिक क्रियाकृत्यों से आजीविका कमाने और सदा कुचक्र एवं षड्यन्त्रों में संलग्न रहने वाली प्रकृति की बताते थे । मरने के बाद भी उसकी चेतना उसी प्रकार के डरावने नाटक रचती रही । जीवत स्थिति जैसी ही गतिविधियाँ मरण के उपरान्त भी चलते रहने का यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण सामने है ।

साक्षी देने वाली छाया मूर्ति

अनेक वर्षों पूर्व उत्तर इंग्लैण्ड की डारहम शायर बस्ती की चेस्टर लीस्टीर पर वाकर नामक एक श्रमजीवी रहता था। धर्मपत्नी के देहावसान के बाद उसका घर सुनसान हो गया पर फिर एक दिन समय ने पलटा खाया । एक निराश्रित युवती से उसकी घनिष्टता बढ़ी और युवती का वाकर के घर आना-जाना शुरू हो गया । दोनों के दिन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगे। घटनाक्रम आगे बढ़ा और युवती ने गर्भ धारण कर लिया ।

पुराने समय में इंग्लैण्ड के आशिक्षित लोग भी बड़े दकियानूसी विचारों के होते थे । एक अविवाहित स्त्री को गर्भवती होना विरोध का कारण था, उग्र समाज में कानाफूसी होने लगी और वाकर की ओर उँगलियां उठना आरम्भ हुआ । युवती और विधुर दोनों ही लज्जा का अनुभव करने लगे ।

यार्क शार्प नामक एक दूसरा मजदूर जो वाकर का घनिष्ट मित्र था एक दिन कुछ विशेष मन्त्रणा के लिए आया और घुट-घुटकर घंटों बातें करता रहा । दूसरे दिन एक सलाह ठहराई गई कि युवती को एक दूसरे मकान में रखा जायगा और जब उसका प्रसव हो जायगा तो वापिस आ जायेगी, शार्प के साथ उसे किसी अज्ञात स्थान के लिए रवाना कर दिया गया । फिर किसी को पता न चला कि वह कहाँ गई और उसका क्या हुआ ।

जेम्स आहम, वाकर का ही एक पड़ौसी था। उसने आटा पीसने की एक छोटी सी चक्की खोल रखी थी । उस वस्ती

में एक ही चक्की होने के कारण काफी अन्न पिसने को आता थां और कभी-कभी तो उसे रात को भी काम चालू रखना पड़ता था । एक दिन बहुत रात गुज़रे उसका काम समाप्त हुआ । तब कहीं घर जाने का अवकाश मिला ।

कारखाना बन्द करके हाथ में लालटेन लिये हुएं आहम उस कड़ाके की ठंड में घर की ओर तेजी से बढ़ता चला जा रहा था । चारों ओर सन्नाटा था और धीरे-धीरे बर्फ झड़ रही थी, घर उसका दो मील दूर था । इस जन्य शून्य रास्ते में इतनी रात गये किसी मनुष्य का दर्शन होना कठिन बात थी। आहम ने एक चौमुहाने के पास देखा कि कोई स्त्री सिर के बाल बखेरे हुए उसकी ओर बढ़ती चली आ रही है । आहम ने संदेह निवारणार्थ अपनी लालटेन को जरा तेज किया तो देखा कि एक साधारण स्त्री है । पर हैं, यह क्या ? इसके सिर में तो तीन इतने गहरे गहरे घाव हैं और उनमें से खून की धाराऐं बह रही हैं । फिर भी वह चुप हैं और सामने आकर खड़ी हो गई है । वह इसका कुछ भी कारण न समझ सका।

आहम ने अधिक गंभीर होकर पूछा- "आप कौन हैं? इस समय किस काम से जा रही हैं और मुझ से क्या चाहती हैं ?" स्त्री ने अत्यन्त ही दुख भरी कातर वाणी में कहा- आहम ! क्या आप मुझे भूल गये ? वाकर के मकान में आज से कुछ मास पूर्व एक अभागी युवती रहती थी क्या तुम उसे नहीं पहचानते ? वही तो मैं हूँ । जब मैं गर्भवती हुई तो अज्ञात स्थान पर रखने के बहाने वाकर ने मुझें शार्प के साथ भेज दिया । मैं निस्संकोच चली गई । रास्ते में जब जरा अँधेरा हो गया तो शार्प ने पीछे से मेरे सिर में कोयला खोदने की कुदाली मारी । मैं भूमि पर गिरकर जब तक मर नहीं गई तब तक उसने उसी कुदाली के तीन प्रहार किये । मेरे सिर में यह जो घाव देख रहे हो उन्हीं प्रहारों के हैं । मेरी मृत्यु के बाद शार्प ने अपने खून से सने हुए कपड़े, जूते, मोजे और वह कुदाली इन सबको मेरे लाश के साथ पास वाली कोयले की खान में पटक दिया । अब मेरा प्रेत शरीर आपके सामने खड़ा हुआ है । मैं प्रतिशोध की ज्वाला से जल रही हूँ । तुम्हारे अन्दर आध्यात्मिक चुम्बकत्व देखकर मुझे प्रकट होने में सुगमता हुई । मैं अब एक बात चाहती हूँ कि तुम सारा वर्णन किसी राज्याधिकारी से करके उन दुष्ट दुराचारियों को दंड दिलाने का प्रयत्न करो । इतना कहकर वह छाया अदृश्य हो गई ।

आहम बड़े असमंजस में पड़े, उन्हें विश्वास न हुआ कि मैंने यह वास्तविक घटना देखी है या स्वप्न । वह डरता काँपता अपने घर पहुँचा और सारी रात इसी के सोच विचार में पड़ा रहा । दूसरे दिन उसने किसी को सूचना न पहुँचाई तो तीसरे दिन फिर वही छाया मूर्ति उसी विकराल वेष में फिर प्रकट हुई और कर्कश स्वर में इतना कहकर अन्तर्ध्यान हो गई कि- "क्यों तुम मेरी सूचना न पहुँचाओगे ?"

आहम से अब न रहा गया वे सीधे पास की अदालत में पहुँचे और सारी घटना का वर्णन कर दिया । पुलिस को तथाकथित स्थान पर भेजा गया तो कोयले की खान में वे सभी वस्तुऐं पाई गईं जिनका वर्णन आहम ने किया ।

अदालत की आज्ञानुसार वाकर और शार्प पकड़े गये उन पर मुकदमा चला तो वही छाया मूर्ति जजों के सन्मुख साक्षी देने आई । डरहम की सैसन जज और जूरियों का फैसला सुनने के लिए हजारों दर्शक न्यायालय में उपस्थिति थे । जब अपराध और अपराधियों के सम्बन्धों मे पूरा-पूरा विश्वास कर लिया गया तो न्यायाधीशों ने उन क्रूर कर्मकर्त्ताओं को यथेष्ट दण्ड देकर अपने कर्तव्य का पालन किया ।

सार्जेन्ट हाटन नामक व्यक्ति के पास उपरोक्त जज का एक पत्र पाया गया, जिसमें इस सारी घटना का वर्णन है । उस पत्र के आधार पर इसकी सचाई में अविश्वास करने की गुजायश नहीं रहती ।

यही तो वह स्थान है

उत्तरी इंगलैण्ड में चेस्टरफील्ड डर्बीशायर नामक एक सुसम्पन्न नगरी है । वहाँ से पाँच छै मील की दूरी पर 'हार्डविकहल' नामक एक उपनगर है । इसमें हार्डविक वंश के धनी-मानी जमीदारों का निवास है । इन जमीदारों में कई लखपती कई करोड़पती हैं । वैसे तो वे सभी लोग लक्ष्मी के कृपा पात्र हैं। यह डार्डनिक हाल वहाँ के ड्यूक ने प्रचुर संपत्ति खर्च करके सन् १५८४ के लगभग बनवाया था । सम्राट वैरोनेट के वंशधारी ये जमीदार बड़ी-बड़ी जागीरों के स्वामी थे और ऐश्वर्य का जीवन बिताने के निमित्त इस अप्सरा पुरी में समोद निवास करते थे ।

सर राल्फ एक बड़े भारी जागीरदार थे । इस नगर में वे सबसे बड़े धनी समझे जाते थे । क्योंकि उनका विवाह एक ऐसी युवती से हुआ था जो अद्वितीय रूप सुन्दरी ही न थी वरन् दहेज में अपने पिता के यहाँ से एक बड़ी भारी जागीर लाई थी । सच तो यह है कि पति की अपेक्षा पत्नी की स्वतन्त्र सम्पत्ति कई गुनी अधिक थी । धन और रूप सौन्दर्य के कारण ही नहीं वरन् सद्गुणों के कारण भी पत्नी अपने पति की प्राणं बल्लभा बनी हुई थी । धन, स्वास्थ्य और प्रेम तीनों की प्रचुरता

के कारण वह दम्पत्ति स्वर्ग सुख का उपभोग करने लगा । दिन बीतते गये, श्रीमती राल्फ ने एक पुत्र प्रसव किया । उसके जन्मोत्सव का बड़ा भारी उत्सव हुआ । आनन्द की सीमा और अधिक विस्तृत हो गयी । बालक एसिण्टन की चाँद सी भोली मूर्ति माता पिता के हृदयों में एक गुदगुदी पैदा करने लगी ।

प्रकृति के कुछ ऐसे कठोर नियम हैं जिनके अनुसार सुख-दुख में परिवर्तन होता ही रहता है । आज एक है तो कल दूसरा । समय की गति के अनुसार राल्फ को भी ऐसी ही विपत्ति सहनी पड़ी । उनकी पत्नी अवोध शिशु को विलखता छोड़ कर सुरपुर सिधार गई ।

वर्षों तक राल्फ विधुर जीवन बिताते रहे उन्होंने बालक के लालन पालन में अधिक ध्यान दिया । पर घटनाचक्र की प्रगति तो देखिये । पड़ौस की एक दरिद्र युवती मिस इथेला से राल्फ की चार आँखें हुईं आखिर वह एक दिन पत्नी ही तो बन बैठी । राल्फ ने इस सुन्दरी से विवाह करते समय बड़े-बड़े सुख स्वप्न देखे किन्तु कालान्तर में भ्रम सावित हुए । इथेला सुन्दरी तो अवश्य थी पर उसके अन्दर कनक घट में बिष रस भरा हुआ था । अपने क्रूर स्वभाव के कारण पति का निरन्तर जी जलाने लगी । यों तो उसके भी एक लड़का हुआ उसका फिलिप नाम रखा गया, फिलिप का जन्मोत्सव भी शाही ठाठ-बाठ से हुआ पर पत्नी के दुर्व्यवहार का रोष उसके पुत्र पर उतरा । राल्फ फिलिप को उतना नहीं चाहते थे जितना कि एसिण्टन को । यह भेद-भाव इथेला से भी छिपा न रहा । वह मर्माहत सर्पिणी की तरह पति पर सदैव नाना प्रकार के प्रहार करने लगी ।

यह सब भी जल्दी ही समाप्त नहीं हुआ । कोई बीस वर्ष यों हीं बीत गये । इथेला ४० वर्ष की हो चुकी थी और राल्फ ६०. वर्ष के । एसिण्टन २२ वर्ष का था और फिलिप उससे तीन वर्ष छोटा । राल्फ अपने इस परिवार को छोड़कर परलोक सिधार गये । जागीर का अधिक भाग पूर्व पत्नी का था इसलिए वह कानून की दृष्टि से एसिण्टन को ही मिला । राल्फ की जायदाद दोनों लड़कों को आधी-आधी हो गई । इस प्रकार फिलिप की अपेक्षा एसिण्टन कोई दस गुना अधिक धनी हुआ ।

इथेला और फिलिप से यह सहन नहीं हुआ । ईर्ष्या से उनका हृदय जल उठा । चाँदनी जैसी सुन्दर मिशफिल शिया नामक एक किशोरी के साथ एसिण्टन का पाणिग्रहण होना उसके पिता निश्चित कर गये थे । यह बालिका इतनी सुन्दर थी कि उसे 'फूलों की रानी' कहकर पुकारा जाता था । फिलिप हशरत भरी निगाहों से उसे देखा करता और उच्छवास भरकर रह जाता कि 'हाय' ! फूलों की रानी' क्या मेरे भाग्य में नहीं है ।

इथेला बड़ी ही क्रूर कर्मा थी । उसने पुत्र के मनोभावों को ताड़ लिया और एक बड़ी ही निर्दय मंत्रणा तैयार करली । काँटे को हटाकर सारा सुख सौभाग्य प्राप्त करने के लिए फिलिप व्याकुल हो उठा । एक दिन वह निर्धारित मंत्रणा कार्यारूप में परिणित हो गई । दूसरे दिन घोषित कर दिया गया कि एसिण्टन बिना कुछ कहे सुने कहीं चला गया । कहाँ गया ? क्यों गया ? यह प्रश्न सबके मस्तिष्क में गूँज रहे थे पर उत्तर कुछ नहीं था । मुद्दतों खोज-बीन होती रही, पर परिणाम क्या होना था, एसिण्टन नहीं था ही जो मिल जाता वह तो अन्तरिक्ष के छोर पर पहुँच चुका था ।

ढूँढ़-खोज के बाद जब निराशा हो गई तो अदालत ने यह फैसला किया है ऐसिण्टन की जायदाद फिलिप के नाम कर दी जाय । अपार धन सम्पत्ति का फिलिप स्वामी हुआ । विपत्ति की तरह सम्पत्ति भी अकेली नहीं आती वह भी अपना कुछ उपहार साथ लाती है । फिलिप को एसिण्टन की प्रेमिका फिलिशिया के साथ पाणिग्रहण का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ । उसकी सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो गईं और अधिकारारूढ़ इन्द्र की भाँति गर्वोन्मत होकर ऐश्वर्य का उपभोग करने लगा ।

फिलिप को शिकार का बहुत शौक था वह अपनी पत्नी और मित्रों के साथ घोड़ों पर शिकार के लिए जाया करता था । उस दिन भी इसी प्रकार का प्रमोद दिवस था । सब घुड़सवार एक हिरन के पीछे दौड़े जा रहे थे । अचानक फिलिप का ध्यान पीछे की ओर गया उसने देखा कि ऐसिण्टन घोडे पर बैठा हुआ दौड़ता आ रहा है । हैं! ऐसिण्टन! यहाँ! फिलिप के हाथ से घोड़े का लगाम छूट गई । फिलिशिया का ध्यान भी उधर गया वह भी अपने पूर्व प्रेमी को देखकर सत्र रह गई । सवारों को रुकना पड़ा । वे बेतहाशा डर रहे थे। पार्टी के सब लोगों ने देखा कि ऐसिण्टन घोड़े पर सवार है और उँगली का इशारा करके एक जगह को दिखा रहा है-''देखो ! यही तो वह जगह है ।'' फिलिप मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, फिलशिया थर-थर काँप रही थी । साथ के शिकारी कुत्ते उस संकेतित स्थान पर दौड़ें और सूँघ-सूँघकर पंजों से खोदने लगे । ऐसिण्टन की छाया मूर्ति वहाँ से हटी नहीं वरन् बराबर उस स्थान की ओर इशारा करती रही । सवारों को वह स्थान खोदकर देखने के लिए विवश होना पड़ा । देखा तो उसमें ऐसिण्टन

की लाश दबी हुई थी । उसको कत्ल करके मारा गया था ।

जैसे-तैसे सब घर लौटे । झुण्ड के झुण्ड दर्शक उस वन्य प्रदेश में ऐसिण्टन की दबी हुई लाश को देखने पहुँचे । इथेली इस घटना के बाद पागल होगई, वह सड़कों में गलियों में चिल्ला-चिल्ला कर बताती फिर रही है कि किस प्रकार ऐसिण्टन की निर्दय हत्या उसने की । फिलिप उस मूर्छा से नहीं उठा और एक सप्ताह के भीतर उसकी मृत्यु हो गई ।

हार्डविक हाल जो एक समय इन्द्र का अखाड़ा बना रहता था आज श्मशान की शान्ति में डूबा हुआ रो रहा है ।

मरणोत्तर जीवन तक सचाई : एक तथ्य

हॉलीवुड की अभिनेत्री 'किमनोवाक' द अमोरम एडवंचर्स माल फ्लेडंर्स फिल्म की शूटिंग के लिए इंग्लैण्ड गयी थी । 'आउट डोर' सूटिंग के लिए 'केंटरावरी' में स्थित 'चिलहम कैसल' नामक प्राचीन किले के आस-पास का स्थान चुना गया । इस किले का अधिकांश भाग वारहवीं सदी का बना है तथा शेष ३०० वर्ष पूर्व बनाया गया है । किले के जिस भाग में अभिनेत्री किम नोवाक को ठहराया गया वह वारहवीं सदी का था । बिजली आदि की सुविधाएँ बाद में की गई थीं । 'किम नोवाक' शूटिंग के उपरान्त थककर वापस लौटती, भोजन करने के बाद थोड़ी देर टेलीविजन देखती तदोपरान्त सो जाती । यह क्रम नित्य का था ।

एक रात्रि टेलीविजन में संगीत का कार्यक्रम चल रहा था । संगीत के जादुई प्रभाव से 'किम' के पाँव संगीत की लहरों के साथ थिरकने लगे, वह नृत्य करने में तन्मय हो गई। अचानक उसे ऐसा लगा कि किन्ही बलिष्ठ हाथों ने उसे घेर लिया है तथा जबरन नृत्य करवा रहा है । आरम्भ में उसने इसे मन का भ्रम समझा किन्तु जब उसने अपने थिरकते हुए पैरों को नृत्य से रोकना चाहा तो पाया कि किसी व्यक्ति के दो हाथ उसे जबरन घुमाते जा रहे हैं । न चाहते हुए भी वह नृत्य करने लिए वाध्य थी । देखने पर सामने कोई स्पष्ट नहीं दिखायी दे रहा था । भय से शरीर से पसीना निकलने लगा। टेलीविजन पर संगीत की ध्वनि धीमी हो गई किन्तु उस अदृश्य व्यक्ति पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । वह अपने साथ अभिनेत्री किम को तेजी से नचाये जा रहा था । काफी समय के बाद अदृश्य हाथों की पकड़ समाप्त हुई । किम वेहोश होकर एक किनारे गिर पड़ी । चेतन्य स्थिति में आने पर उसने कमरे में चारों ओर दृष्टि दौड़ाई किन्तु कोई भी दिखाई नहीं पड़ा ।

इस घटना का उल्लेख अभिनेत्री 'किम' ने तत्काल अपने किसी अन्य साथी से नहीं किया तथा उत्सुकतावश आगे क्या होता है, यह देखने के लिए अपने अन्दर साहस बाँधने लगी। उस रात के बाद उसने टेलीविजन देखना तो छोड़ दिया किन्तु अदृश्य प्रेतात्मा अपनी उपस्थिति का प्रमाण अन्य रूप में देने लगी । किम कमरे की बत्ती जलाती तो वह गुल कर देता । बत्ती बुझाकर वह सोने जाती तो कोई हाथ आगे बढ़कर बिजली का स्विच ऑन कर देता । कितनी बार कमरे की रखी व्यवस्थित वस्तुएँ अस्त-व्यस्त फैली हुई मिलतीं । कभी-कभी खिड़की के दरवाजे बन्द होने पर भी उन पर लगे परदे जोरों से हिलने लगते । कई बार किम ने अनुभव किया कि कोई उसके हाथों से पहनने वाले कपड़े छीनने का प्रयास कर रहा है । शूटिंग के सत्तरह दिन में प्रत्येक रात्रि इन घटनाओं का क्रम चलता रहा । फिल्म की शूटिंग की समाप्ति पर सारी घटनाओं का उल्लेख 'किम' ने अपने साथी अभिनेता रिचर्ड जानसन से किया।

'रिचर्ड-जानसन' को उक्त महल में रहने वाली प्रेतात्मा की जानकारी पहले से थी । उसने कहा कि ''वह प्रेतात्मा तेरहवीं सदी के प्रसिद्ध राजा 'किंग जान' की है । ११ अक्टूबर, १२१६ को राजा 'जान' अपने दुशमनों के चंगुल से भागकर शरण प्राप्त करने के लिए उसी किले में रुका था । दूसरे दिन किंग जान एक खाई को पार करने का प्रयास कर रहा था तो नौका दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गई । उसकी आत्मा की आसक्ति इस किले के साथ अब भी बनी है। जानसन ने कहा कि मृतात्मा जान की उपस्थिति पिछले साढ़े चार सौ वर्षों से इस किले में बनी हुई है । इसका आभास समय-समय पर उस कमरे में रुकने वालों को होता रहता है ।

यह घटनाएँ जहाँ प्रेतात्मा के अस्तित्व का प्रमाण देती हैं, वहीं उसकी अतृप्त मनोवृत्तियों पर भी प्रकाश डलती है । मृत्यु के बाद जीवात्मा की अतृप्त आकाक्षाएँ एवं वासनाएँ स्थूल शरीर के साथ समाप्त नहीं हो जाती, वरन सूक्ष्म शरीर के साथ उनके संस्कार बने रहते हैं ।

यह अतृप्त वासनाएँ एवं इच्छाएँ मृत्यु के उपरान्त भी जीवात्मा को उद्विग्न बनाये रहतीं हैं, जिसकी पूर्ति के लिए जीवात्मा को प्रेत-योनि धारण करनी पड़ती है ।

प्रत्येक धर्मशास्त्र, वस्तु एवं व्यक्ति से मोह एवं आसक्ति के परित्याग की बात कहता है । दृष्टा ऋषियों एवं मनीषियों द्वारा शास्त्रों, धार्मिक ग्रन्थों में प्रतिपाद्य यह सिद्धान्त कभी अवैज्ञानिक नहीं हो सकता । उनके कथन के पीछे ठोस

मनोवैज्ञानिक आधार है। वे इस तथ्य से अवगत थे कि व्यक्ति अपने साथ जीवन काल के संस्कार निम्नस्तर के अतृप्त वासनाओं एवं इच्छाओं के होते हैं जो मृत्यु के उपरान्त भी जीवात्मा को उद्विग्न बनाए रहते हैं । जीवात्मा को इनके रहते हुए कभी शान्ति नहीं मिल पाती । इन अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति के लिए ही जीवात्मा प्रेत योनि में भटकती रहती है तथा जिस भी व्यक्ति, अथवा वस्तु से आसक्ति अथवा विद्वेष रहता है, उसके इर्द-गिर्द मंडराती रहती है ।

मृत्यु के बाद जीवन

कुछ वर्षों पूर्व आस्ट्रेलिया के पोर्ट जैकसन नगर में केन्द्रीय जेलखाना था । उसी कारागार में देश के अधिकांश कैदी बंद रखे जाते थे । उन दिनों एक ऐसा कानून था कि जो कैदी जेल में सच्चरित्रतापूर्वक जीवनयापन करें उन्हें जेल से बाहर स्वतंत्र नौकरी करने की सुविधा रहेगी । बहुत से कैदी जिन्होंने जेल अधिकारियों को अपने व्यवहार से संतुष्ट कर लिया था, जेल से बाहर नौकरी करके अपना जीवन सुविधापूर्वक व्यतीत करते थे ।

जेन्स नामक एक कैदी को भी यह सुविधा मिली थी । उसने उसी नगर के निवासी फिशर नामक जमीदार के यहाँ नौकरी करली । कैदी बोल-माल और व्यवहार में ऐसा निपुण था कि वह बहुत जल्द अपने मालिक का विश्वास भाजन और प्रिय बन गया । फिशर उसी से अपना सारा कारोबार कराते यहाँ तक कि रुपये का लेन-देन भी उसी के हाथों होता ।

कुछ दिन बाद फिशर का बाहर आना-जाना बिलकुल बन्द हो गया । जेम्स ही सारा कारोबार करता । कोई उससे पूछता कि फिशर कहाँ है तो वह कह देता कि -परदेश जाने की तैयारी कर रहे हैं । थोड़े दिनों बाद उसने यह घोषित कर दिया कि फिशर जहाज द्वारा इंगलैण्ड चले गये । फिशर के एक घनिष्ट मित्र जान्सन ने जब यह समाचार सुना तो उसे बड़ा दुख हुआ । जान्सन पास के गाँव में ही रहता था और फिशर का इतना घनिष्ट था कि वे उससे बिना पूछे साधारण से काम को भी न करते थे । फिर वे उस सूचना तक दिये बिना इंगलैण्ड चले गये यह बात जान्सन के कलेजे में काँटे की तरह चुभी । यह पहिले तो बहुत बड़बड़ाता रहा, पर आखिर उसने सोचा कि ऐसा हो नहीं सकता । फिशर मुझ से सलाह लिये बिना विदेश नहीं जा सकते । वे किसी कारण कहीं कर कुछ काम कर रहें होंगे । अवश्य ही वे आस्ट्रेलिया में मौजूद होंगे ।

कई महीने बीत गये पर फिशर के बारे में समाचार विदित न हुआ । जान्सन, हाट के उधर से ही आया जाया करते थे । एक दिन संध्या समय के हाट से लौट रहे थे, अचानक उनने देखा कि फिशर अपने घर के पास तालाब के किनारे खडे हुए हैं । उनका मुख मलीन हो रहा है आँख किसी गंभीर व्यथा के साथ तालाब की ओर उँगली का इशारा कर रहे हैं ।

जान्सन को इससे कुछ भी अचम्भा नहीं हुआ क्योंकि वह जानता था कि फिशर कहीं बाहर हरगिज नहीं गये हैं । वह जल्दी-जल्दी मित्र के पास पहुँचने के लिये कदम बढ़ाने लगा ताकि उनके अज्ञातवास का सविस्तार कारण पूछे । लेकिन जैसे ही जान्सन वहाँ पहुँचा वह मूर्ति अदृश्य हो गई । कई बार आँख मलीं, इधर उधर ढूँढ़ा जेम्स के पास जाकर पूछताछ की पर फिशर के संबंध में कुछ भी पता न चला । जान्सन बड़े असमंजस के साथ घर लौटा और अपनी पत्नी से सारा हाल कह दिया । वह समझता था कि मैंने प्रेतात्मा देखी है और शायद फिशर मर चुका है पर उसकी पत्नी ने उसे झिड़क दिया और कहा अँधेरे में कुछ भ्रम हुआ होगा । व्यर्थ के संदेह को मन में से दूर करो और चुपचाप चारपाई पर सो जाओ।

दूसरे हफ्ते हाट का दिन फिर आया । जान्सन फिर गया और उस दिन वह दिन छिपे से कुछ पूर्व ही लौट पड़ा । आज भी उसने देखा कि बिलकुल पहले दिन की भाँति फ़िशर उसी मुद्रा में खड़े हुए हैं । दो-तीन बार उसने आँखें मल-मलकर अपना भ्रम निवारण करना चाहा पर यह तो उसके चिर सखा फिशर ही खडे थे । वेदना पूर्ण विषाद के साथ तालाब की ओर उनकी उँगली इशारा कर रही थी । जान्सन भय और आशंका से काँप उठा, उसका कलेजा धक-धक करने लगा। इतने में ही वह मूर्ति फिर अदृश्य हो गई ।

घर पहुँच कर वह तमाम रात इसी घटना के सम्बन्ध में सोचता रहा । अब उसका विश्वास दृढ़ हो गया था कि फिशर का मृत शरीर इसी तालाब में गढ़ा होगा । प्रातःकाल होते ही जान्सन पुलिस के दफ्तर में पहुँचा और उसने सारी घटना कह सुनाई । पहले तो सब लोग उसकी बात को भ्रम समझकर हँसी में टालने लगे, पर जब उसने बहुत आग्रह किया, तो पुलिस साथ चलने को तैयार हो गई । ढूँढ़-खोज की गई, तो कीचड़ में गढ़ी हुई फिशर की सडी-गली लाश मिल गई । सन्देह में जेम्स गिरफ्तार कर लिया गया।

इस महत्वपूर्ण मुकदमे का जजों को फैसला करना था । जेम्स अपने को निर्दोष कहता था और उसके विरुद्ध को कोई प्रामाणिक गवाही ऐसी न थी, जिससे उसे अपराधी सिद्ध किया जा, सके । निदान जूरी ने एक युक्ति सोची, उनने झूठ-मूँठ यह फैसला सुना दिया कि जेम्स अपराधी है, उसे फाँसी दी जायेगी । सजा सुनने के बाद जेम्स ने एक लम्बी साँस ली

और कहा-''अब छिपाने से क्या लाभ । हाँ, मैंने ही धन के लोभ से अपने स्वामी की हत्या करके लाश को तालाब में गाड़ दिया था।'' इस स्वीकारोक्ति के आधार पर अदालत को उसके दोषी होने का विश्वास हो गया और उसे प्राणदण्ड का सच्चा आदेश सुनाया गया ।

उपरोक्त घटना के संबंध में परामनोविज्ञानियों का कहना था कि यह भ्रम नहीं, वरन वास्तविकता पर आधारित एक सत्य है । उन दिनों यह बहुचर्चित प्रसंग 'टू वर्ल्डस' नामक मैनचेस्टर के एक पत्र में प्रकाशित हुआ था । प्रकाशिका एमा हार्डिंग विवरण के उपसंहार में लिखती हैं कि" व्यक्ति की गहरी संवेदनाएं ही प्रेतात्मा को उपस्थित होकर अपना परिचय देने को वाध्य करती हैं । ऐसी ही एक सत्य घटना अमेरिका की विधवा महिला ''श्रीमती एलिस वेल'' के साथ घटित हुई जिसका प्रकाशन अमेरिका के अधिकांश प्रमुख पत्रों में हुआ था ।

श्रीमती एलिस वेल शाम को थकी-माँदी बाजार से लौटी। सामान को एक ओर पटक, वेलचा उठाकर अँगीठी में कोयला डालने का प्रयास करने लगी । बेलचा उठाते ही वे काँपने लगीं । वेलचा उन्होंने एक दिन पूर्व ही खरीदा था तथा बिल्कुल स्वच्छ एवं चमकदार था । यह देखकर आश्चर्यचकित रह गईं कि उस पर 'रावर्ट कैनेडी' का बिंव उभर आया था यह चेहरा उनकी हत्या के समय का था । ठीक वैसा ही था जैसा हत्या के उपरान्त १९६८ में देखा गया । सिर पीछे की ओर झुका था, आँखें बन्द थीं तथा चेहरे पर खून के धब्बे स्पष्ट दिखायी दे रहे थे । बिंब को देख श्रीमती 'वेल' द्रवित हो उठी । सहसा उन्हें यह अहसास हुआ कि ''कहीं यह भ्रम तो नहीं है ।'' उन्होंने बेलचे के ऊपर बने बिंब को हाथ से छूकर देखा, यह जानकर और भी भय मिश्रित आश्चर्य हुआ कि भयानक शीत में रखा हुआ बेलचे का वह भाग जहाँ बिंब दृष्टिगोचर हो रहा था, गरम था और मुलायम भी ।

बेलचे को उलटकर दूसरी ओर देखा तो पाया कि यह वैसा ही ठण्डा एवं कठोर था जैसा कि इस मौसम में होना चाहिए ।

श्रीमती 'वेल' अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर सकीं । कहीं यह दृष्टि भ्रम तो नहीं, ऐसा समझकर कि मैं रावर्ट की प्रशंसक रही हूँ तथा उनकी मृत्यु से हमें गहरा सदमा पहुँचा है, किसी ने मनोरंजन की दृष्टि से यह चित्र तो नहीं बना दिया है, उन्होंने वेलचे पर उभरे चित्र को हाथों से रगड़ा किन्तु यह सोचना असत्य था । वेलचे पर रंग-रोगन के प्रयोग का कहीं चिन्ह नहीं था तथा उसमें ताप अब भी उसी प्रकार बना था । श्रीमती वेल ने सोचा यदि यह मेरी चेतना का भ्रम है तो यह सब दृश्य किसी अन्य को दिखायी नहीं देना चाहिए । तथ्य की परीक्षा के लिए अपने पड़ौसी वोलोन दम्पत्ति के यहाँ पहुँची । उनके सामने बेलचे को रखते हुए श्रीमती वोलोन ने तेज स्वर में कहा यह तो रावर्ट कैनेडी हैं, जिनकी हत्या अमेरिका में कर दी गई थी । देखो ! उनके चेहरे से अब भी रक्त टपकता मालूम हो रहा है ।'' वेलचे की गर्मी का आभास उनको भी ठीक वैसा ही हुआ जैसा कि श्रीमती वेल को । सन्देह की अब बिल्कुल ही गुंजाइश नहीं थी ।

वेलचे पर उभरा हुआ चित्र किसी व्यक्ति द्वारा बनाया गया है अथवा अन्य कोई रहस्यमय कारण से बना है इस बात के परीक्षण के लिए चित्रकला विशेषज्ञ को बुलाया गया । वेलचे पर बने रंगीन चित्र पर तेजाव आदि डालकर परीक्षण किया गया । वेलचे की धातु में छेद तो हो गया किन्तु बिम्ब ठीक वैसा ही बना रहा । विशेषज्ञ ने परीक्षण के उपरान्त घोषणा की कि यह चित्र मानव निर्मित नहीं है । इसके पीछे किसी दैवीय शक्ति का हाथ है । इसका प्रमाण है वेलचे का गरम होना '' ।

अगले दिन लोगों की भीड़ यह देखने के लिए उमड़ पड़ी । अनेकों व्यक्तियों ने वेलचे पर उभरे चित्र का फोटोग्राफ लेने का प्रयत्न किया । किन्तु यह देखकर निराशा हुई कि फिल्म पर कोई चित्र नहीं आया साथ ही वेलचे पर उभरा चित्र भी लुप्त हो गया । इस घटना का विस्तृत विवरण उत्तरी इंगलैण्ड के (साउथ शोल्ड्स) से निकलने वाले पत्र ''सण्डे-मिरर'' में प्रकाशित हुआ ।

प्रख्यात परा-मनोवैज्ञानी डा०''टिमोरी वेलजोन्स'' ने 'वेलचे' में कैनेड़ी की प्रेतात्मा की उपस्थिति को स्वीकार करते हुए कहा कि ''कैनेड़ी की मृत्यु से 'श्रीमती वेल' को मानसिक आघात लगा । उनकी सम्वेदनाओं ने सूक्ष्म आध्यात्मिक वातावरण में केन्द्रीभूत होकर इस बिंब की स्रष्टि की जो किसी भी वास्तविक चित्र से अधिक यथार्थ है। वेलचे का गरम होना इस बात का प्रमाण है कि केनेडी की प्रेतात्मा द्रवित होकर उक्त चित्र में उपस्थित है । उन्होंने कहा कि इस प्रकार की उष्णता एवं कोमलता से बना बिंब मानस पटल पर ही प्रतिबिंबति होते हैं । कैमरे की फिल्म इतनी सम्वेदनशील नहीं कि उस पर इस प्रकार के बिंब आ सके ।

जीवितों के भी भूत होते हैं

यदि किसी व्यक्ति के समक्ष किसी मृत की अनुकृति प्रकट हो जाय, तो वह भयभीत होकर "भूत-भूत" कहता भाग खड़ा होगा, किन्तु यदि कोई व्यक्ति अपने ही सामने अपनी ही प्रतिकृति को काम करता देखे तो इसे क्या कहा जाय ? भ्रम ? भ्रम ? या मस्तिष्कीय विकार ? सामान्य बुद्धि कुछ भी समझ सकती है, पर आध्यात्मिक पुरुषों के लिए यह न तो भ्रम है, न भय की परिणिति और न मानसिक दुर्बलता का परिणाम, वरन् एक वास्तविकता है, जिसकी सत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता । आये दिन ऐसी कितनी ही घटनाएँ घटती रहती हैं, जिनमें सूक्ष्म शरीर या जीवित सूत्रों के मामले प्रकाश में आते रहते हैं ।

एक घटना जर्मनी की है । म्यूनिख शहर का एक अभियंता जब दोपहर के भोजन के लिए कार्यालय से अपने निकटवर्ती मकान में आया, तो भोजन से पूर्व किसी कार्यवश अपने शयन कक्ष में प्रवेश किया, किन्तु वहाँ एक सर्वथा अपरिचित व्यक्ति को देखकर आश्चर्य में पड़ गया । वह व्यक्ति दीवार के सहारे कोई चित्र टाँगने में व्यस्त था । उसे क्रोध चढ़ आया । अभी वह कुछ बोल पाता, इससे पूर्व ही पदचाप सुनकर अजनवी उसकी ओर मुड़ा । उसे देखते ही एडरिच का गुस्सा शान्त हो गया । सामने उसी का प्रतिरूप खड़ा था । आश्चर्य मिश्रित भय से उसके होठ बन्द हो गये । मुँह से कोई भी शब्द न निकल सका । एक पल तक दोनों आमने सामने खड़े रहे, फिर प्रतिरूप अचानक गायब हो गया । अब एडरिच को होश आया । दीवार की ओर दृष्टि दौड़ायी तो वह यह देखकर हैरान रह गया, कि जो चित्र लगाया गया है, वह उसी की तस्वीर है । कमरे में सामने ही उसका ड्राइंग बोर्ड था । अकस्मात ध्यान उस ओर गया, तो वह और विस्मय में पड़ गया । वह जिस नक्शे को महीनों के प्रयास से न बना सका था, वही कागज पर बना पड़ा था ।

इसी से मिलती-जुलती घटना का वर्णन डॉ. ग्रिफन ने अपनी पुस्तक "साइकिक पावर" में किया है, वह पेशे से मनः चिकित्सक थे । प्रतिदिन सुबह से शाम तक अपने क्लीनिक में रोगियों को देखते और शाम को घर लौट आते । एक दिन क्लीनिक में अप्रत्याशित भीड़ हो गई । रोगियों को वे जल्दी-जल्दी देखने लगे । सोच रहे थे कि समस्त मरीज आज ही निपटा दिये जायँ । इस कारण उन्होंने दोपहर का भोजन भी नहीं लिया और सिर्फ चाय से संतोष कर लिया । चाय पीने के उपरान्त पुनः वे बीमारों को देखने में जुट पड़े । धीरे-धीरे शाम हो गई किन्तु अब भी २५ मरीज शेष थे । किसी भाँति २० को निपटा दिया गया । अब तक रात के आठ बज चुके थे और डॉ. ग्रिफन बुरी तरह थक गये थे । आराम की नितान्त आवश्यकता महसूस हो रही थी । सोच रहे थे कि शेष ५ को कल बुला लिया जाय, पर इसी समय विचार आया कि इतनी देर बिठाये रखने के बाद लौटा देना ठीक नहीं । रोगियों को इससे मानसिक वेदना होगी । अस्तु, उनने बचे हुओं को भी देख लेना उचित समझा और उनके जीवन वृतांत सुनने और सलाह देने में पुनः व्यस्त हो गये । तब सभी रोगी निपट चुके,.... तो रात के साढ़े नौ बज चुके थे । थककर उनका बुरा हाल था । उनने जैसे-तैसे क्लीनिक बन्द किया,गाडी स्टार्ट की और घर की ओर चल पड़े । आधे घंटे बाद गन्तव्य पर पहुँचे । कमरे के अन्दर प्रकाश हो रहा था । यह देख आरंभ में तो उनने सोचा कि संभवतः प्रात जल्दबाजी में लाइट बुझाना भूल गये हों, इसलिए अब भी वह जल रही है । ताला खोलकर वे कमरे में प्रविष्ट हुए । नजर जैसे ही पलंग पर पड़ी, वे चौंक पड़े, सामने एक अन्य ग्रिफन महोदय लेटे पुस्तक पढ़ रहे थे । वे पलंग के और निकट आ गये और ध्यान से देखने लगे । पता चला दोनों में जरा भी अन्तर नहीं है । वे असमंजस में पड़ गये । आखिर यह हमशक्ल कौन हो सकता है ? यहाँ क्यों आया और इतने साहस और सहजता से पुस्तक पढ़ने में तल्लीन कैसे है ? इसी उधेड़बुन में वे पड़े थे कि देखा प्रतिरूप शनैः शनैः विस्तर से ऊपर उठ रहा है और स्पष्टता मलिन होती जा रही है । कुछ क्षण पश्चात् आकृति तिरोहित हो गई । न वहाँ उसका कोई निशान था, न ही वह पुस्तक । अब सब कुछ सामान्य था ।

लगभग ऐसी ही घटना इंग्लैण्ड के एक प्रशासनिक व्यक्ति से संबंधित है । बात बीसवीं सदी के आरंभिक दशक की है । उन दिनों हाउस ऑफ लार्ड्स में बहस चल रही थी । विपक्षी दल तरह-तरह के अभियोग लगाकर सरकार को गिराने के लिए उतारू थे । संसद के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति इन्हीं दिनों बीमार पड़ गये थे । उनकी अनुपस्थिति सरकार के लिए खतरनाक हो सकती थी । इलाज जारी था, पर वे स्वस्थ नहीं हो पा रहे थे । उधर सदन की बहस भी जारी थी । जिस दिन अविश्वास के प्रस्ताव पर विपक्षी सांसदों के मत लिए जा रहे थे, उस दिन सरकारी पार्टी के सांसदों ने जब सर कार्न रॉस को अपनी कुर्सी पर मौजूद पाया, तो उन्हें आश्चर्य भी हुआ और प्रसन्नता भी, किन्तु तब लोगों ने यह समझकर कुछ नहीं पूछा कि शायद

वे स्वस्थ हो गये हों, पर वास्तविकता का पता तो बाद में ही चल पाया, जब उस दिन के उपरान्त वे दो सप्ताह तक सदन की गतिविधियों में हिस्सा नहीं ले सके । पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वे अब तक स्वस्थ नहीं हो सके हैं। अस्तु संसद में उपस्थिति के साक्ष्य के रूप में उस दिन की सामूहिक तस्वीर आज भी सदन की दीवार पर लटकी देखी जा सकती है ।

ब्रिटिश परामनोविज्ञानी रिचर्ड बुलकर ने अपने जीवन के महत्वपूर्ण संस्मरणों को "मेमोयर्स" नामक पुस्तक में प्रकाशित किया है । इसमें अनेक संस्मरण सूक्ष्म शरीर से संबंधित भी हैं । एक संस्मरण का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि एक बार उनकी माँ गंभीर रूप से बीमार पड़ीं । घर से तुरन्त चले आने संबंधी तार आया । जब तार प्राप्त हुआ, उस समय तक वहाँ जाने वाली सारी गाड़ियाँ जा चुकी थीं । अतः उनका जाना एक दिन बाद ही संभव हो सकता था, किन्तु समाचार से उनका मन इतना बेचैन हो उठा कि एक दिन रुक पाना भी भारी होने लगा । निदान उनने एक प्रयोग करने को सोचा । परामनोविज्ञानी होने के नाते सूक्ष्म शरीर से यात्रा के अनेक प्रसंग उनने सुन और पढ़ रखे थे, अतः उसी शरीर से वहाँ पहुँचने का निश्चय किया । वे एक एकान्त कमरे में जाकर मन को एकाग्र करने लगे । जब एकाग्रता प्राप्त हुई, तो दृढ़ इच्छा की कि वे अपने घर रोगग्रस्त माँ के पास अवश्य पहुँचेंगे । लगभग आधे घंटे के उपरान्त उन्हें माँ चारपाई पर पड़ी स्पष्ट दिखाई पड़ी । वह स्वस्थ तो नहीं हो सकी थी, पर इतनी अस्वस्थ भी नहीं कि मामला गंभीर माना जाता । उनने माँ के शरीर का स्पर्श करने की कोशिश की, पर सफल न हो सके । इसके पश्चात् ही दृश्य दिखाई देना बन्द हो गया । दूसरे दिन जब वे घर पहुँचे तो माँ ने बड़े विस्मय भरे शब्दों में इस घटना का अक्षरशः वैसा ही उल्लेख किया, जैसा उनने देखा था ।

इन घटनाओं को विज्ञान, भ्रम अथवा मन की काल्पनिक संरचना कहकर टाल सकता है, पर अध्यात्मवादी जानते हैं कि ऐसी घटनाएँ सर्वथा असंभव भी नहीं । योगी-यति ऐसी क्षमताएँ कठिन तपश्चर्याओं द्वारा स्वयं को साध और शोध कर अर्जित करते हैं, किन्तु जहाँ मनोभूमि पहले से परिष्कृत होती है, वहाँ शोधन की कष्टसाध्य प्रक्रिया से नहीं गुजरना पड़ता और थोड़े से प्रयास अभ्यास द्वारा इसे सम्पन्न किया जा सकता है । उपरोक्त प्रसंगों में यही हुआ, ऐसी अध्यात्मविज्ञान की मान्यता है ।

मरणोत्तर जीवन में सूक्ष्म शरीर की गतिविधियां

मनुष्य के खाने-सोने और चलने-फिरने वाले शरीर के सम्बन्ध में सर्व साधारण को काम चलाऊ जानकारी भर है । उसके भरण-पोषण, चिकित्सा उपचार, साज-सज्जा एवं प्रसन्नता, मनोरंजन के लिए जो कुछ सम्भव होता है, सो अपनी बुद्धि और क्षमता के अनुरूप सभी करते हैं ।

इसके उपरान्त मनुष्य का व्यक्तित्व आता है, जो गुण कर्म, स्वभाव, शिक्षा एवं संगति पर निर्भर है । व्यक्तित्ववान् प्रतिभाएँ अपनी दूरदर्शिता के आधार पह बड़ी जिम्मेदारियाँ उठाती हैं और उन्हें सफल बनाकर दिखाती हैं । शरीर के स्वस्थ अथवा सुगढ़-सुन्दर होते हुए भी यदि आन्तरिक क्षमता दुर्बल हो तो दृश्यमान आकर्षण का प्रभाव ठहरता नहीं । जल्दी ही उसकी मूर्खता एवं अनगढ़ स्थिति प्रकाश में आती है और लोग उनका मजाक बनाने लगते हैं । न ही वह अपने कामों को सही ढंग से कर सकता है और न उससे वार्तालाप करते हुए कोई प्रभावित या प्रसन्न होता है, इसलिए शरीर की तरह ही मनुष्य के अन्तरंग का व्यक्तित्व का भी महत्व माना गया है ।

अध्यात्म क्षेत्र में शरीर और मन के अतिरिक्त सूक्ष्म शरीरधारी आत्मा का भी अस्तित्व माना गया है । यह सूक्ष्म शरीर-काया के इर्द-गिर्द प्राण विद्युत की तरह विद्यमान रहता है और तेजोवलय के रूप में उसे विशेष यन्त्र उपकरणों से देखा परखा भी जा सकता है । इसी को सुविकसित एवं क्षमता सम्पन्न बनाने के लिए अनेक प्रकार की साधनाएँ की जाती हैं ।

आर्ष मान्यता है कि मरने के बाद भी सूक्ष्म शरीर विद्यमान रहता है । स्वर्ग-नरक में उसी को जाना पड़ता है । नया जन्म न होने तक यह सत्ता अपना अस्तित्व बनाये रहती है । प्रिय-अप्रिय जनों के साथ उसका भला-बुरा सम्पर्क भी बना रहता है । नया जन्म लेने में इस सूक्ष्म शरीर का स्तर ही प्रधान भूमिका निभाता है ।

जीवित स्थिति में यह सूक्ष्म शरीर यदि उपयुक्त क्षमता अर्जित कर ले तो सिद्ध पुरुष जैसी स्थिति उपलब्ध होती है।

वह एक साथी या सहायक की तरह प्रत्यक्ष शरीर से एवं अन्यथा लोगों को अपनी विशिष्टता से लाभान्वित करता रहता है ।

पुरातन दर्शन एवं विज्ञान अनुसन्धान संस्थान के संस्थापक प्लूटो ने ईसा से ४२८-३४८ वर्ष पूर्व फैडी नामक पुस्तक में अपने गुरु सुकरात के उन सन्देशों को उद्धृत किया है जो प्लूटो को दिये गये थे । जीवन के अन्तिम क्षणों में सुकरात ने कहा था कि तुम्हें मेरी मृत्यु पर दुख व्यक्त नहीं करना चाहिए । क्योंकि यह नाशवान शरीर ही जलेगा, आत्मा नहीं । एक और पुस्तक रिपब्लिक प्लूटो की बड़ी लोकप्रिय बन चुकी है, जिसमें उनने आत्मा की अमरता को अंगीकार किया है । प्लूटो के इस ज्ञान का स्रोत मनोषिगण भारतीय दर्शन को ही मानते हैं ।

यहूदी भाषा में आत्मा को नैफेस की संज्ञा दी गयी है । जिसका अर्थ है-सजीव शरीर के साथ जुड़ा हुआ सूक्ष्म । अर्थात् आत्मा का शरीर से अलग रहकर कोई अस्तित्व नहीं रह जाता । वह स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीर को धारण किये ही रहती है । उक्त तथ्य की पुष्टि ईसाइयों के धर्मग्रन्थ बाइवल के जैनेसिस २:७ में भी की गयी है । न्यू टैस्टामेंट में भी आत्मा के अजर अमर होने के प्रमाण स्पष्ट रूप से पढ़ने को मिलते हैं । न्यू टैस्टामैट में वर्णित शुके शब्द भी यहूदी नैफेस के समरूप समझा जाता है । शुके शब्द का दो प्रकार से प्रयोग होता आया है । एक तो वह आत्मा जो निम्न कोटि के जीवधारियों तथा प्राणियों में कार्यरत रहती है और दूसरा स्वरूप वह जो ऊँचे-नीचे भेद-भाव आदि के झंझटों से मुक्त रहता है । इनमें से एक को प्रेतात्मा अथवा प्राणी कहा जा सकता है और दूसरे को स्वर्गस्थ जीवन मुक्त ।

संसार भर के अन्यान्य पुरातन ग्रन्थों और घटनाक्रमों को देखने-सुनने से पता चलता है कि आत्मा की शरीर से पृथक् होने की ही मान्यता नहीं रही है, वरन् यह भी माना जाता रहा है कि मरणोत्तर जीवन भी लम्बे समय तक बना रहता है । नवीन जन्म कब मिलता है और किस कारण किस प्रकार का शरीर धारण करना पड़ता है, इस सम्बन्ध में मतभेद होते हुए भी यह मान्यता अधिकतर दार्शनिकों की है कि आत्मा का अस्तित्व सूक्ष्म शरीर के रूप में मरने के बाद भी बना रहता है और वह लौकिक गतिविधियों में अपना हस्तक्षेप तथा योगदान किसी न किसी रूप में करती ही रहती है । देवताओं और मनुष्यों के बीच सन्देश-वाहक जैसी भूमिका उसकी रहती है ।

भारतीय तत्वदर्शन तो इस सन्दर्भ में अनादि काल से ही मानता रहा है कि मृत्यु केवल शरीर की होती है और उसके उपरान्त भी सूक्ष्म शरीर समेत आत्मा की गतिविधियों का क्रिया-कलाप जारी रहता है । स्वर्ग या मुक्ति की दशा में ही वह संसार से सम्बन्ध विच्छेद करती है और परम शान्ति को प्राप्त करती है । जब तक वह स्थिति नहीं आती तब तक सूक्ष्म शरीर संसार में अदृश्य रूप से रहता है और स्वार्थ या परमार्थ के लिए कुछ न कुछ करता ही रहता है । स्वार्थी अपनी अतृप्त कामनाओं को पूर्ति के लिए उस प्रकार के घटनाओं के इर्द-गिर्द मँडराते रहते हैं और शरीर न होने पर भी के इच्छित स्वभाव के अनुरूप जहाँ वातावरण दीखता है वहाँ जा पहुँचते हैं । जिनसे अपनी मित्रता या शत्रुता रही है, उन्हें लाभ-हानि पहुँचाने का भी जो कुछ प्रयास बन पड़ता है उसे करते रहते हैं । इन्हें प्रेत स्तर का कहा जाता है । परमार्थ परायण आत्माएँ कष्ट पीड़ितों की सहायता करने जा पहुँचती हैं और अदृश्य सहायकों की भूमिका निभाती हैं । किन्हीं को प्रेरणा देकर उनके शरीरों से वह काम करा लेती हैं जिसे करने के लिए उनकी परमार्थ भावना उमड़ती हैं ।

शरीरधारी मनुष्य लोकहित के अनेक कामों में योगदान देते रहते हैं। जिनकी वह प्रवृत्ति बनी रहती है, वे मरने के बाद भी ऐसे अवसर तलाशती रहती हैं और उस वातावरण में सम्मिलित होकर कुछ न कुछ ऐसा करती रहती हैं; जिससे सत्प्रयोजनों में सफलता मिले और दुष्टों के मनोरथ विफल होते रहें । उस प्रकार के घटना-क्रमों से जो सत्परिणाम उपस्थित होते हैं, उनकी अनुभूति ही उन्हें सन्तोष देती है । अस्तु, अपनी निज की प्रसन्नता और दूसरे की सुविधा के लिये सूक्ष्म शरीरधारी भी कुछ न कुछ करते ही रहते हैं ।

भौतिक संरचना की दृष्टि से सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व को सात श्रेणियों में विभक्त किया गया है । (१) सौलिड (२) लिक्विड (३) गैसियम (४) ईथरिक् (५) सुपर ईथरिक (६) सब-एटामिक और (७) एटामिक, वैज्ञानिकों के कथानुसार स्थूल शरीर में भी ९९ प्रतिशत परमाणु सूक्ष्म शरीर के ही क्रियाशील बने रहते हैं । सूक्ष्म परमाणुओं से बने शरीर को सूक्ष्म शरीर कहते हैं । लेकिन इनकी सरंचना परमाणु विज्ञान से कुछ भिन्न स्तर की होती है । इसके परमाणु सजीव एवं चेतन होते हैं । दूसरे शब्दों में, इसे प्राण शरीर भी कह सकते है । वर्षा, शीत, उष्णता, सुख-दुख का अनुभव स्थूल की भाँति ही उसे होता है, किन्तु सूक्ष्म शरीर के परिपोषण के लिए अन्न की आवश्यकता नहीं पड़ती । केवल विचार और भावना ही इस प्रयोजन की पूर्ति करते हैं ।

विचारों और भावनाओं का मूल केन्द्र सूक्ष्म शरीर है । इनका प्रवाह यदि निषेधात्मक और ध्वंशात्मक है तो व्यक्ति पिशाच, असुर, राक्षस शैतान बनेगा, विधेयात्मक स्थिति में

महापुरुष ऋषि, देवात्मा तथा महात्मा की श्रेणी में गिना जाने लगता है । इन्हीं के द्वारा मनुष्य सुखी, स्वस्थ, पराक्रमी तथा यशस्वी बनते हैं और यही प्रवृत्तियाँ उन्हें दुखी, रोगी, दीन, दास और तुच्छ बनाकर छोड़ती हैं । हिन्दू धर्म ग्रन्थों में सद्विचारों और सद्भावों के समुच्चय को ही ३३ करोड़ देवताओं की संज्ञा दी गयी है ।

अब प्रश्न उठता है या विचारों की अकूत सामर्थ्य को यन्त्र, उपकरणों के माध्यम से मापा जा सकता है ? वैज्ञानिकों ने हारमोनोग्राफ यन्त्र का निर्माण करके एक अनोखा कीर्तिमान स्थापित किया है । क्लैडिनी साउन्ड फ्लेट यानी ऐडाफोन की खोज भी इसी के सदृश्य है । जिनमें विचारों की क्रियाशीलता को सुगमतापूर्वक देखा जा सकता है । सेना में संगीत के माध्यम से सैनिकों के सूक्ष्म शरीर अर्थात विचार प्रवाह की शक्ति को विधेयात्मक मोड़ दिया जाता है जिससे उनमें साहस और देश भक्ति की भावनायें विकसित होने लगें । रुद्राक्ष, तुलसी, चन्दन, आदि में पवित्र भाव विद्यमान होने के फलस्वरूप ही पूजा-अर्चना में इनकी माला का इस्तेमाल किया जाता है ।

लगभग चार हजार वर्ष पूर्व मिश्र के महान अध्यात्म वेत्ता स्क्राइन ऐसी ने बताया कि मृत्यु के बाद जीवन का अस्तित्व बना रहता है । परिपक्व मृत्यु होने के बाद चेतना कुछ समय के लिए विश्राम में चली जाती है, जीव की अवस्था के अनुरूप यह दो माह से दो वर्ष तक विश्राम ले लेने के पश्चात् नया जन्म धारण कर लेती है । ग्रीक लोग उसे सबलूनर बर्ल्ड के नाम से पुकारते हैं । कहने का तात्पर्य है कि पृथ्वी में चन्द्रमा तक अर्थात २ लाख ४० हजार तक की दूरी में सूक्ष्म शरीर मरणोपरान्त भ्रमणशील बना रहता है । यहीं पर रैड इण्डियन का हंटिंग ग्राउन्ड नोसमैन का बलहल्ला, मुसलमानों का हैरीफील्ड पैराडाइज, ईसाइयों का गोल्ड एण्ड ज्वैल्ड गेटेड न्यू जेरुसलमा तथा भौतिक जगत के सुधारकों का लीराम-फिल्ड हैवन के होने का अनुमान लगाया जाता है ।

विश्राम के बाद देवात्माएँ जिनके शरीरों का आणविक विकास प्रकाशपूर्ण हो गया होता है, दिव्य लोकों को चली जाती हैं और जब तक वहाँ रहने की इच्छा होती है तब तक रहती हैं । पीछे इच्छानुसार सुसंस्कारी परिवारों में जन्म लेकर लोक सेवा, पुण्य-परमार्थ और नेतृत्व उत्तरदायित्व सम्भालती है । सूक्ष्म शरीर को चौथा आयाम भी कहते हैं । लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई जैसी विशेषताओं से इसकी संरचना मेल नहीं खाती ।

सूक्ष्म शरीर में विचरण कर रही भूलोक की आत्माओं को मध्यकाल में नौम, वाटर, स्प्रिट अनडाइन, एअरस्प्रिट सेले भेंडर के नाम से भी पुकारा जाता रहा है । सामान्य भाषा में इन्हें परी, अप्सरा, ऐल्व, बेताल, पेरिश, डाइन्स दैत्य, वन देवता, लम्पट, शैतान, पिशाच तथा देवात्माएं कह सकते हैं । मरण और पुनर्जन्म की अवधि में जीवात्मा को अशरीरी किन्तु अपना मानवी अस्तित्व बनाये रहना पड़ता है । जीवन मुक्त आत्माएं वस्तुओं, स्मृतियों, घटनाओं और व्यक्तियों से प्रभावित नहीं होती हैं और अभीष्ट उद्देश्य पूरा करने के उपरान्त पुन अपने लोक को वापिस लौट जाती हैं । किन्तु सामान्य स्तर की आत्मायें अपनी अतृप्त अभिलाषाओं को पूरा करने का ताना-बाना बुनती रहती हैं । विछोह, राग-द्वेष, की प्रतिक्रियाओं से उद्विग्न रहती हैं । वस्तुत ये अशरीरी आत्मायें सूक्ष्म शरीर के माध्यम से ही अपने अस्तित्व का परिचय देती रहती हैं ।

देवात्माओं को ईश्वर का सन्देशवाहक कहा जाता है । मनुष्य के बाद की श्रेणी देव योनि में ही पहुँचने की है । चौरासी लाख योनियाँ तो शरीरधारियों की हैं । वे स्थूल जगत में रहती हैं और आँखों से देखी जा सकती हैं । लेकिन दिव्य आत्माओं का शरीर दिव्य होने के कारण उन्हें चर्म-चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता । देवताओं की तीन श्रेणियां गिनी गयी हैं । (१) कामदेव (२) रूप देव (३) अरूप देव । देवताओं के मार्गदर्शक एवं पृथ्वी तत्व पर नियन्त्रण रखने वाले चतुर राजाओं यानी देव राजसों का उल्लेख विश्व के विभिन्न धर्मग्रन्थों में प्रायः होता आया है । ब्लैवट्स्की की सुप्रसिद्ध एवं लोकप्रिय पुस्तक सीक्रेट डैक्ट्राइन्स में इन देवराजसों की संख्या सात की अंकित की गयी है । हिन्दू धर्म में सप्त ऋषियों की भूमिका इसी प्रयोजन को पूरा करने की रही है ।

मरणोपरान्त भी आत्मा का अस्तित्व यथावत बना रहता है । जीवित्त और मृत भेद मात्र स्थूल जगत तक ही सीमित रहता है । सूक्ष्म जगत में सभी जीवित हैं । इस प्रकार की मान्यताएँ चिन्तन के कितने ही उत्कृष्ट आधार प्रदान करती हैं । आज हिन्दू भारतीय एवं पुरुष है । कल के जन्म में ईसाई, योरोपीयन या स्त्री भी हो सकते हैं । आज का सत्ताधीश, कुलीन मनुष्य सोचता है कल प्रजाजन अछूत एवं पशु बनना पड़ सकता है । मृत्यु की विभीषिका से बचने का यह सहज और सरल तरीका है ।

कैलीफोर्निया के वैज्ञानिकों द्वारा किये गये पर्यवेक्षणों से पता चला है कि सूक्ष्म शरीर पर जलवायु का उतना ही प्रभाव पड़ता है जितना कि स्थूल पर । इसके विकास में शीत ऋतु को उनने अधिक उपयुक्त समझा है । इसलिए ऋषियों ने हिमालय क्षेत्र को साधना उपासना की दृष्टि अधिक उपयुक्त चुना है । सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं अध्यात्मवेत्ता लैडबीयर का कथन है कि

आपत्तिकालीन स्थिति में उनकी सहायता ७००० मील दूर के अदृश्य सहायकों ने ही की । इसका अनुमान सूक्ष्म शरीर की क्रियाशील विद्युत को देखकर लगाया जा सकता है । उसमें सूर्य तथा अन्याय ग्रह नक्षत्रों से आने वाली ज्ञात और अविज्ञात किरणों का भरपूर समन्वय विद्यमान है ।

स्थूल शरीर जड़-पदार्थों के बन्धनों से बँधा होने के कारण ससीम है, पर सूक्ष्म शरीर के बारे में यह मान्यता सही नहीं बैठती । उसकी सम्भावनायें अनन्त और असीम हैं । जिन तत्वों और इकाइयों से इसका निर्माण हुआ, वे समूचे ब्रह्माण्ड की गतिविधियों को प्रभावित करने की सामर्थ्य रखती हैं ।

आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण भूत

यदि उसे अन्ध-विश्वास न बनाया जाये तो भूत और प्रेतों का अस्तित्व यह सावित करेगा कि आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व है, एक अवस्था विशेष होती है, जब आत्मा अपनी नितान्त शुद्ध अवस्था प्राप्त कर परमात्मा स्वरूप हो जाती है, किन्तु जब तक पाप, इच्छायें, ममता, वासनायें आदि विकारों की परत उस पर चढ़ी रहती हैं, उसका स्वतन्त्र अस्तित्व बराबर कायम रहता है ।

विज्ञान और प्रत्यक्षदर्शी इन उक्तियों को मानने के लिए तैयार नहीं । उनका कहना है कि मृत्यु के बाद जीवात्मा का अस्तित्व समाप्त हो जाता है । शरीर के सभी रासायनिक पदार्थ रूपान्तरित होकर शारीरिक सत्ता को बिगाड़ देते हैं, फिर कुछ नहीं रहता ।

किन्तु उनके लिए भूत एक चुनौती है, भूत को लेकर माना अन्ध-विश्वास भी खूब फैला है तो भी वह सब इसी चिर सत्य की नकल भर है । ऐसे प्रामाणिक उदाहरण भी हैं, जिन्होंने भूत पर कभी विश्वास नहीं किया तो भी उन्हें उस सम्पर्क में आना पड़ा । कुछ घटनायें ऐसी भी घटित हुई, जिनमें न कोई अन्ध मान्यता थी न भ्रम, उन घटनाओं ने पाश्चात्य जीवन में भी भूत की मान्यता को जीवित कर दिया ।

१९४५ में द्वितीय महायुद्ध के समय केन्टोर नामक व्यक्ति को एक बार अमरीका से लन्दन जाना पड़ा । रास्ते में एक रात वे केसिंगटन में रुके । उन्हें बोर्डिंग हाउस का एक कमरा सोने के लिए दिया गया । रात्रि में उन्हें जो अनुभव हुए उसका वर्णन उन्होंने स्वयं इन शब्दों में लिखा है

"भोजन करने के बाद मैं सो गया । पहली नींद ३ बजे टूटी । मैं उठा और लघुशंका के लिए कमरे से [illegible] गया और फिर लौटकर आया और बिस्तर पर लेट गया । लेटते देर नहीं हुई थी कि ऐसा लगा कि नीचे से कोई मेरे कम्बल को घसीट रहा है । पहले तो मैंने सोचा कपड़े अपने आप खिसक रहे होंगे इसलिए उन्हें ऊपर को खींच लिया किन्तु वही क्रिया दुबारा हुई । मेरा मुँह फिर खुल गया इस बार थोड़ी ताकत लगाकर कपड़े फिर ऊपर उठाये जितनी देर कपड़े उठाये रखा कपड़े ठीक रहते पर छोड़ते ही उन्हें फिर कोई खींच लेता । बाहर उठकर देखा, कोई नहीं था । दरवाजे बन्द करके कपड़े चारों ओर लपेट कर फिर लेट गया । लेटना था कि कमरे में एक विचित्र प्रकाश दिखाई दिया । उसमें अजीब तरह की हलचलें हो रही थीं । हँसने और रोने की विचित्र आवाजें भी आती रहीं । मैंने शेष रात बड़ी बेचैनी से काटी ।

इस घटना का नायक केन्टोर कोई साधारण और अविश्वस्त आदमी नहीं अमेरिका का प्रसिद्ध लेखक है जिन्हें कुछ दिन पहले ही 'पुलित्जर पुरस्कार' प्रदान किया गया है ।

अब्राहम क्यूमिंग्ज १८वीं सदी के अन्तिम चरण से उन्नीसर्बी शताब्दी के प्रारम्भ तक क्रियाशील एक पादरी थे । सन् १८२६ में उन्होंने एक किताब छपवाई । ७७ पृष्ठीय इस पुस्तिका का नाम है, 'इम्मार्टलिटी प्रूव्ड बाइ द टेस्टीमोनी आफ साइन्स'। इसमें एक कप्तान बटलर की मृत पत्नी की प्रेत छाया के बारे में प्रामाणिक विवरण है । इस ग्रन्थ की मूलप्रति 'न्यूयार्क पब्लिक लाइब्रेरी' में सुरक्षित है । पादरी क्यूमिंग्ज ने इस पुस्तिका में ३० व्यक्तियों की शपथपूर्वक की गई घोषणा छापी है कि उन्होंने उस मृतात्मा को देखा व सुना था । स्वयं पादरी ने उसे कई बार देखा व सुना है ।

अमरीका के कैलीफोर्निया शहर के इण्डावरी मुहल्ले में एक भुतहा मकान था । वहाँ कोई भी रहने को तैयार न होता । चार साहसी छात्रों ने एक बार उसे किराये पर लिया । वे भूत-प्रेतों की मान्यता को निरी भ्रान्त मानते थे । पर एक दिन सहसा आँगन में कुर्सियों पर बैठ-बैठ उन्होंने पाया कि उनकी कुर्सियाँ वायु में ऊपर उठकर ७-८ फुट की ऊँचाई पर स्थिर हो रही है । फिर एक रात सहसा पत्थर वर्षा होने लगी । खोजबीन से मालूम हुआ, वहाँ एक डक्टर ४-५ वर्ष पूर्व आत्महत्या कर चुका था, उसी की प्रेतात्मा का करिश्मा है। छात्रों ने मकान छोड़ दिया ।

धर्मयुग में श्री दामोदर अग्रवाल ने भी ऐसी ही एक आपबीती ही सुनाई । उनके घर में सफाई के बावजूद दुर्गन्ध आने, अल्मारी में ताले में बन्द पूरियाँ रात को गायब हो जाने और ताला ज्यों का त्यों बन्द रहने, धुले बर्तन सुबह जूठे मिलने;

आँगन में रखे लड्डूओं की जगह गीली मिट्टी बच रहना, मिठाइयों के रात भर में सड़ जाने, रसोईघर में अजनबी पंजों के निशान अंकित होने और दीवारों आदि पर उँगलियों के चिन्ह दिखने तथा दूध का भरा गिलास पल भर में गायब होने की घटनायें घटती थीं ।

नवनीत (हिन्दी डाइजेस्ट) में भी एक घटना छपी थी । अमरीका के श्री रोजेनहीम एडवोकेट के घर में सहसा टेलीफोन की घण्टियाँ टनटना उठतीं, ट्यूबलाइट बिना स्विच दबाये जल उठतीं, बल्ब जलकर फट जाते, टेलीफोन उठाने पर गालियों की बौछार सुनाई पड़ती । लगातार छानबीन व चौकसी के बावजूद शरारती व्यक्ति का पता न चला ।

'फ्रीवर्ग इन्स्टीट्यूट आफ पैरासाइकोलाजी', के अध्यक्ष परामनोवैज्ञानिक प्रो० हांस बेण्डर ने मामले की पड़ताल की और पाया कि मामला 'साइकोकाइनेसिस' यानी मनोगति क्रम का है । मनोगति क्रम का अर्थ है, ऐसी सूक्ष्म मानसिक शक्तियाँ जो भौतिक पदार्थों को नियन्त्रित-निर्देशत कर सके । प्रो०बौण्डर के अनुसार भूत-प्रेत के रूप में भी ऐसी मानसिक अवस्था सम्भव है ।

एक बार एक फोटोग्राफर ने 'डा० थयोव वरहाजमान' का एक फोटो खींचा । जब फोटो खींच लिया गया तो डा० वरहाजमान ने कहा-मुझे ऐसा लगा जैसे फोटो खींचते समय कोई मेरे साथ हो, जबकि उनके साथ कोई भी दृश्य प्राणी खड़ा हुआ न था । लेकिन दूसरे दिन जब फिल्म धुलकर आई तो लोग यह देखकर दंग रह गये कि इस फोटो के साथ ही स्वर्गीय ग्लेडस्टोन का भी फोटो आ गया था ।

किरायेदार ने सोचा मकान बहुत बढ़िया है- यहाँ बहुत अच्छा रहेगा और नहीं तो यह मकान मोल ही ले लूँगा । इन्हीं कल्पनाओं में खोया हुआ किरायेदार विलियम फ्रांक गहरी निद्रा में सो गया । किन्तु अभी उसे सोये हुए एक घण्टा भी नहीं हुआ था कि किसी ने हाथ के इशारे से उसे जगा दिया । फ्रांक ने चद्दर हटाया देखा एक बहुत ही भयंकर हरी आँखों वाली आकृति उसके सामने खडी है । उसने पूछा-कौन है ? किन्तु जैसे यह प्रश्न हवा में खो गया उसी प्रकार पता नहीं चला वह छायाकृति एकाएक कहाँ अन्तर्धान हो गई ।

फ्रांक उठ बत्तियाँ जलाकर सभी दरवाजे खिड़कियों की जाँच की, सब बिलकुल बन्द थे । बाहर से चिड़िया तो आ सकती थी किन्तु बिल्ली नहीं धँस सकती थी फिर यह पूरी दानवाकृति कहाँ से आई, कौन थी वह, कहाँ चली गई । उन्होंने निश्चय किया यह मेरे अवचेतन मन की कल्पना थी, जिसने स्वप्न में विधिवत् एक मनुष्य की आकृति खड़ी कर दी । मन को आश्वस्त कर फ्रांक फिर सो गये किन्तु जैसे ही आधी रात नियराई एक बार फिर वही पहले जैसी स्थिति । ठीक वह शकल फिर सिरहाने खड़ी थी और फ्रांक को झकझोर कर जगा रही थी । फ्रांक के मुँह से कौन तो निकला-उस कौन के साथ एक कराह-सी मालूम पड़ी उन्होंने स्पष्ट खड़े हुये एक आदमी को देखा किन्तु जैसे ही उन्होंने फिर बत्ती जलाई वहाँ न राम न रहीम । फ्रांक बुरी तरह घबड़ा गये । रात जागते बिताई । जहाँ उस मकान को वे खरीदने की सोच रहे थे । दूसरे दिन ही छोड़कर भाग गये ।

यह कोई गल्प-कथा नहीं लिखी जा रही वरन् एक सच्ची घटना है जो सिडनी (आस्ट्रेलिया)शहर की हेयर फोर्ड स्ट्रीट के एक मकान में घटित हुई । जिसकी जाँच मनो-वैज्ञानिकों ने भी की और सच पाया । उन्होंने माना कि अदृश्य जगत में यक्ष-गन्धर्व, ब्रह्म राक्षस, भूत-प्रेत, पिशाच, बेताल, किन्नर आदि होने की भारतीय मान्यता निराधार नहीं है ।

फ्रांक के जाने के बाद एक अन्य सज्जन पधारे । मकान किराये पर ले लिया । उस समय मुहल्ले वालों ने बताया-श्रीमान् जी इस मकान में एक किरायेदार पहले भी आये थे पर वह इन-इन परिस्थितियों में मकान छोड़ गये । कह नहीं सकते आपका मकान लेना हितकर होगा अथवा नहीं, पर सुना यह जाता है कि इस मकान का मालिक जो चाय पीने का बेहद शौकीन था शराब और माँस तो उसके लिये जल पीने की तरह थे । सदैव दुर्गन्धित शरीर-वाले उस दानवाकृति मकान मालिक ने शरीर छोड़ा तब से इस मकान में कोई टिका नहीं । कहते हैं उसकी आत्मा इसी मकान में चक्कर काटती है कोई और मनुष्य उस घर में रहे यह उससे बर्दास्त नहीं होता । उसके रिश्तेदार चाहते हैं कि मकान का कुछ किराया मिले पर यह अदृश्य भटकती हुई आत्मा किरायेदारों को रहने नहीं देती ।

मकान उन्होंने ले लिया और उसी दिन सामान लाकर जम भी गये । इसे अन्तर्चेतना की कमजोरी कहा जाये अथवा एक प्रगट सत्य कि उन सज्जन की पहली और दूसरी दो रातें तो अच्छी तरह गुजर गई किन्तु तीसरी रात जैसे ही कोई एक बजने को हुआ कि उन्हें किसी ने कन्धे झकझोर कर जगा दिया । इतनी तेजी से जगाया गया था कि नींद तड़फड़ा कर टूट गई । उन्होंने देखा एक कोई बहुत ही भारी भरकम शरीर का व्यक्ति सामने खड़ा है उसकी आँखें हरी थीं और शरीर काली छाया जैसा । देखते ही पहला हाथ बिजली बत्ती के स्विच पर गया । बत्ती जलने पर उन्होंने चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई दिखाई तो कोई नहीं दिया पर उनका अविश्वासी मन इतना

डर गया कि अच्छी तरह बोलना भी कठिन था । जिन्हें पहले से ही अतीन्द्रिय अस्तित्व पर विश्वास होता है, वे यह भी जानते हैं कि ऐसी उच्छिष्ट आत्मायें अपने आप अभिशाप होती हैं वे दूसरों का कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं ? जिनमें कुछ ऐसी क्षमता होती भी है, वह देव श्रेणियों होती हैं और अहित सोचने की अपेक्षा मनुष्य का हित ही करती हैं । शंकालु मन उक्त सज्जन को इन सब बातों का कोई पता न था सो उस रौद्र-कल्पना ने उन्हें इतना डरा दिया कि वे भी शेष रात सो नहीं सके । दूसरे-दिन वे भी वहाँ से सादर विदा होकर दूसरे घर में चले गये ।

घटना सिडनी पुलिस हैड क्वार्टर के रिकार्ड से उद्धृत की जा रही है । जिसको यह विलक्षण रिपोर्ट इस तीसरी घटना से प्राप्त हुई । इस बार माइकेल बुक्स नामक एक अन्य सज्जन आये और यही मकान किराये पर लेकर रहने लगे । उनसे किसी ने कुछ कहा भी नहीं । उन्हें या उनके परिवार को कभी इस बात की कल्पना भी नहीं थी, उनका अपना कोई विश्वास भी नहीं था । किन्तु एक रात की बात है कि कोई आहट पाकर उनकी कन्या जग गई और नेत्र खोलते ही जो भयंकरता, उसने देखी सो आँखें खुली की खुली रह गईं । अच्छी स्वस्थ सुन्दर कन्या की आँखों ने झपकना बन्द कर दिया और कोई भी चिकित्सक उसे ठीक नहीं कर सका । उस आकृति का जो भी दृश्य, इस कन्या ने बताया वह पहले दो किरायेदारों के विवरण से सौ-फीसदी मिलता-जुलता था ।

इसके बाद एक दिन श्रीमान कुक के साथ भी ठीक वैसी ही घटना घटित हुई । श्री कुक उसे देखकर न केवल चीख उठे वरन् रोने भी लगे । उन्होंने उसे बिस्तर उठाकर फेंकते हुये देखा । एक दिन उन्होंने पूरी केतली चाय बनाकर रखी थी । किसी काम से वे थोड़ा बाहर निकल कर आये दुबारा जब फिर चाय पीने के लिये आये तो यह देखकर आश्चर्य चकित रह गये कि वही आँखों वाला बीभत्स छाया पुरुष केतली में ही मुँह लगाये चाय पी रहा है । कहीं एक बूँद चाय गिरी नहीं फिर चाय का इस प्रकार देखते-देखते वायुभूत हो जाना एक बहुत रोमांचक घटना थी । उन्होंने कई बार उसे सेवकों की तरह काम करते भी देखा और कई बार स्वयं बाहर खुला हुआ रखा सामान उठाकर खाते हुये भी देखा । श्री कुक ने भी अन्ततः सपरिवार मकान छोड़ दिया पर चलते-चलते उसकी रिपोर्ट भी पुलिस हैड-क्वार्टर में लिखा गये ताकि पीछे और कोई उसमें आकर तंग न हो ।

पुलिस ने जाँच का निश्चय किया । एक पुलिस कान्स्टेबुल जाँच के लिये भेजा गया । सिपाही ने घूम-घूमकर पूरा बँगला देखा पर वहाँ उसे न कोई आकृति दिखी न छाया । सिपाही ने कुक को कई बार कोसा और कहा-लोगों को पुलिस को तंग करते मजा सा आता है । उसने मकान में ताला बन्द किया और थाने लौटकर पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट को बताया वहाँ कुछ भी तो नहीं है। दूसरे दिन आफिसर ने उसी सिपाही को फिर भेजा इस बार सिपाही ताला खोलकर घर में प्रविष्ट हुआ तो उसने जो कुछ देखा उससे उसके रोंगटे-खडे हो गये । कमरों का सारा सामान अस्त-व्यस्त पटका पड़ा था । करीने से लगी कुर्सी मेजें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं । रसोई घर में उसे केतली मे चाय मिली जिसे देखने से लगता था किसी ने अभी हाल चाय बनाकर पी है । मकान में चारों तरफ ताला बन्दी थी । कोई आने जाने का रास्ता नहीं फिर अन्दर कौन आया किसने चाय बनाई ? अभी वह इन्हीं विचारों में खोया पीछे को मुड़ा ही था कि ठीक वहीं आकृति उसके सामने खड़ी थी । पुलिस कान्स्टेबुल के शरीर से पसीना फूट पड़ा । बड़ी मुश्किल से बेचारे ने भागकर दरवाजे बन्द किये, ताला लगाया और थाने लौट आया । थाने में सही घटना लिखाकर घर लौटा तो डर के मारे उसे बुखार ही आ गया और वह पन्द्रह दिन बाद ठीक हुआ ।

इसके बाद सीनियर पुलिस अफसरों तथा सी०आई०डी० कर्मचारियों ने भी छान-बीन की । कई ने तो वह आकृति ज्यों की त्यों देखी भी । पर जिन्होंने उसे देखी भी नहीं उन्होंने भी मकान का सामान कई बार अदल-बदलकर रखकर जाँच की! बाहर पहरा होने के बावजूद सामान किस प्रकार तितर-बितर हो जाता है यह रहस्य कोई भी सुलझा नहीं सका । मनोवैज्ञानिक तथा पत्रकारों ने भी न्यू कैसल में रह रहे माइकेल कुक से बातचीत की तथा मौके पर जाकर जाँच भी की । सारे तथ्य सही पाये और सबने एक स्वर से यह माना कि कोई ऐसी सत्ता सचमुच है जो नितान्त स्थूल न होकर भी समर्थ मनुष्य जैसे काम कर सकने में सक्षम है । यदि यह सत्य है तो आत्मा के अस्तित्व की, मानवेतर जीवन, परलोक और पुनर्जन्म की भारतीय मान्यतायें निराधार नही कहीं जानी चाहिये वरन् उस मान्यता के महत्वपूर्ण पहलुओं का वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाना चाहिये । जब तक विज्ञान इस तरह के रहस्यों का उत्तर नहीं देता तब तक अतीन्द्रिय अस्तित्व से इनकार करने का कोई कारण नहीं होना चाहिये ।

कहते हैं इस मकान में पहले एक वृद्धा रहती थी । जो घर के अन्दर किसी से जोर-जोर से बात-चीत किया करती थी । कभी-कभी उसका स्वर इतना रौबीला और आदेश पूर्ण होता था मानो वह अपने किसी नौकर से काम करा रही हो । इतना होने पर भी उस व्यक्ति को किसी ने कभी देखा नहीं । कभी किसी ने वृद्धा से पूछा-अजी आप किससे बातें किया करती हैं ? तो वह हँसकर इतना ही उत्तर देती-बेटा ! जिससे मैं बात कर सकती हूँ तुम्हें तो उसके देखने की हिम्मत भी नहीं हो सकती । वृद्धा के आत्म-बल पर लोग आश्चर्य करते और कहा करते कि जिसके कारण दूसरे लोग मकान में रह भी नहीं पाते उसे बुढिया कैसे नाच नचाती है। वह इन दिनों बीमारी के कारण अस्पताल में थी तब अन्य किरायेदार आये और यह बात असली रूप में सामने आई । घटना सामने आ जाने पर भी अव्यक्त सी है और उसके गर्भ में सैकड़ों प्रश्नों की यथार्थता को समझ पाना कठिन है ।

ह्वाइट हाउस में मरणोत्तर जीवन

टेलिविजन सेट आन (चालू) हुआ और राष्ट्रपति ट्रूमैन अपनी पुत्री मार्गरिट से बातचीत करने लगे-अनुमान से सर्वथा भिन्न दिशा का सन्दर्भ-ट्रूमैन कहने लगे-एक दिन रात के लगभग तीन बज रहे थे जिस कमरे में हम सो रहे थे किसी ने दस्तक दी । बिस्तर से उठकर द्वार खोले तो जो दृश्य दिखाई दिया उससे मैं विस्मित और अवाक् ही रह गया । मैंने देखा-भूतपूर्व राष्ट्रपति लिंकन का भूत सामने टहल रहा है । आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ द्वार बन्द किये और बिस्तर पर आ लेटा ।''

घटना उनके राष्ट्रपति हॉल की ही है और है भी ह्वाइट हाउस की ही । प्रायः सभी अमरीकी राष्ट्रपति अपनी संम्वेदनशीलता, परिश्रमशीलता, साहस और उद्यमशीलता के लिये सदैव सारे संसार के आकर्षण बिन्दु रहे हैं हजारों लोगों ने उनसे अपनी-अपनी तरह की प्रेरणायें ग्रहण की हैं पर बहुत कम लोग होंगे जो १८ एकड़ में बने इस भव्य प्रासाद, 'ह्वाइट हाउस' जिसमें अमरीका का हर राष्ट्रपति निवास करता है, के सम्बन्ध में कुछ ऐसे कथ्य व तथ्यों से परिचित होंगे जो मनुष्य की चिन्तन की दिशाओं को बलात् एक अन्तरंग मरणोत्तर जीवन की ओर खींच ले जाते हैं । यह भी एक विलक्षण बात है कि सारे अमरीका में ह्वाइट हाउस को मरणोत्तर अस्तित्व का प्रमाण माना जाता है जबकि वहाँ की सभ्यता से प्रभावित अन्य देशों में लोगों का विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात् जीवन का कुछ भी अस्तित्व शेष नहीं रहता है ।

मन में दुर्बलता न आये, भय पैदा न हो इस दृष्टि से भूत-प्रेत का चिन्तन न करें यह किसी हद तक ठीक भी है किन्तु अधिकतम सौ वर्ष के जीवन के भौतिक सुख चिन्तन में पड़कर करोड़ों, अरबों वर्षों से भी अधिक शाश्वत एवं अनन्त अन्तरंग जीवन की अपेक्षा आत्मा के लिये कभी भी हितकारक नहीं कही जा सकती ? भूत है तो क्यों ? उसका स्वरूप क्या है ? यदि ह्वाइट हाउस के ऐसे प्रभावशाली और विशिष्ट व्यक्ति मानते हैं कि मृत्यु के बाद भी जीवन का अस्तित्व बना रहता है तो यह जानना ही चाहिये कि वह क्यों बना रहता है और क्या उस स्थिति में भी आत्मा सुख-शान्ति की अनुभूति कर पाती होगी जो कि मनुष्य जीवन का यथार्थ लक्ष्य है ।

ह्वाइट हाउस की यह घटनायें दिलचस्प ही नहीं गम्भीर भी हैं । एक बार हालैण्ड की महारानी विल्हेल्मिना ने अमेरिका का भ्रमण किया तब वे विशिष्ट सम्मानित अतिथि के रूप में ह्वाइट हाउस में ही ठहराई गईं । एक दिन उनके कमरे के दरवाजे को किसी ने खटखटाया । उन्होंने दरवाजा खोला तो देखा सामने काली छाया के समान अब्राहम लिंकन का भूत खड़ा है । अब्राहम लिंकन की हत्या की गई थी । वे महान व्यक्ति थे। जब वे राष्ट्रपति थे, तब भोग विलास और ऐश्वर्य की उन्हें कोई कमी क्यों रही होगी । फिर उनका भूत क्यों? भारतीय दर्शन के अनुसार उनमें आसक्ति का भाव रहा होगा उसी से उनकी आत्मा ह्वाइट हाउस को छोड़ना नहीं चाहती होगी । ठीक इसी समय भौतिक विज्ञान की इस मान्यता का भी खण्डन हो जाता है कि जीवन की चेतना रासायनिक है । यदि जीवन विद्युत, चुम्बक आदि के समान कोई स्थूल और रासायनिक चेतना होती है तो लिंकन की मृत्यु के बाद उनका अस्तित्व क्यों बना रहता ?

श्रीमती विल्हेल्सिना ने उस समय के राष्ट्रपति रूजवेल्ट से उस घटना का जिक्र किया तो वे बोले-मैडम ! हम तो लिंकन के कारण पहले ही परेशान रहे हैं अब जो मेरी पत्नी का अध्ययन कक्ष है वह पहले सोने का कमरा था पर लिंकन का भूत हमेशा उसी कमरे में आता रहता, इसी कारण अपनी पत्नी की इच्छानुसार उसे बदलना पड़ा । कुमारी मेरी नामक सेक्रेटरी ने लिंकन को कई बार कई मुद्राओं में देखा, हम कह नहीं सकते यह सब क्या है । इन भूतपूर्व राष्ट्रपतियों को मृत्यु के बाद भी ह्वाइट हाउस से क्यों लगाव बना रहता है ।

राष्ट्रपति क्वीवलैण्ड की पत्नी ने राष्ट्रपति भवन में एक बच्चे को जन्म दिया था । बच्चा कुछ ही दिन में चल बसा था। उस बच्चे से सम्भवतः उनका मोह मृत्यु के बाद भी नहीं

छूटा था इसी कारण उनकी आत्मा भी ह्वाइट हाउस में लिंकन की तरह ही भटकती है । उनकी विचित्र प्रकार की चीख कई बार सुनी गई । राष्ट्रपति निक्सन की पत्नी के मन में एक बार ऐसा हुआ कि गुलाब के बगीचे का स्थान बदल दिया जाय तो उससे राष्ट्रपति भवन की सुन्दरता और भी बढ़ जायेगी । एतदर्थ उन्होंने माली को बुलाकर कहा इस बगीचे का स्थान बदल दो । गुलाब का यह बाग राष्ट्रपति मैडीसन की धर्मपत्नी ने लगवाया था । व्हाइट हाउस में किसी परिवर्तन या नई व्यवस्था का अधिकार राष्ट्रपति की पत्नी को ही होता है । जब माली बगीचे के पास आया तो वह वहाँ खड़े हुए श्रीमती मैडीसन के भूत को देखकर घबरा उठा । लौटकर उसने सारी बात श्रीमती विल्सन से कही । विल्सन भूत-प्रेतों पर विश्वास नहीं करती थीं पर उन्होंने स्वीकार किया जब मैं बगीचे के पास स्वयं गई तो श्रीमती मैडीसन का भूत वहाँ था, मुझे ऐसा लगा कि वह कह रही हैं कि यदि यह बगीचा बदला तो भला न होगा, डरकर श्रीमती विल्सन ने अपनी सारी योजना रद्द कर दी ।

वहाँ के सभी लोग यह मानते हैं कि कुछ एक राष्ट्रपतियों को छोड़कर प्रायः सभी की रूहें अब भी वहाँ विद्यमान हैं और यही कारण है कि जब भी कोई नया राष्ट्रपति चुनकर आता है और परम्परा के अनुसार निवर्तमान राष्ट्रपति की पत्नी उसकी पत्नी को राष्ट्रपति भवन (ह्वाइट हाउस) का परिचय कराती हैं, तब वह भूतों के अस्तित्व और स्थानों की पूरी जानकारी अवश्य दे देती है ।

फिर भी ऐसी घटनायें वहाँ आये दिन होती ही रहती हैं । राष्ट्रपति एडम्स की पत्नी को वहाँ कपड़े सुखाते देखा गया, लिंकन को जूतों के फीते खोलते देखा गया । क्वीवलैण्ड की श्रीमती को हँसते और चिल्लाते सुना गया । इस अतीन्द्रिय अस्तित्व और अनुभूति का कारण क्या हो सकता है, यह शोध व अध्ययन का लम्बा विषय है पर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि मनुष्य का मृत्यु के बाद भी अस्तित्व बना रहता है । भारतीय दर्शन की इस मान्यता को निराधार कहने वालों को पहले अमरीकी राष्ट्रपतियों की पत्नियों और सहकर्मियों को अनउत्तरदायी और झूठा कहना होगा । पर यदि उनकी विशिष्टता पर विश्वास हो तो हमें भारतीय दर्शन के इन आधारभूत तथ्यों पर भी विश्वास करना और अपने जीवन को आध्यात्मिक पद्धति से ढालने का अभ्यास करना ही होगा ।

भूत बड़े-बड़ों ने देखा

टेलीफोन की घन्टी बजी, वकील साहब ने उसे उठाकर कान से लगाया और कहा-हलो ! हलो !! कौन बोल रहा है ? पर उधर से कुछ आवाज न आई चोंगा नीचे रख दिया । लेकिन अभी वे उठने को ही थे कि घन्टी फिर टनटनाई फिर रिसीवर उठाकर कान से लगाया तो कोई भद्दी गाली बकने लगा । कई दिन तक ऐसे ही कभी गालियाँ, कभी धोखा खाने के बाद भी उन्हें पता न चल पाया कौन तंग कर रहा है ?

फिर-स्विच दबाया नहीं ट्यूब लाइट तेजी से चमकने लगी । बल्ब जला और फटाक से फूट पड़ा । कमरे में उनके अतिरिक्त एक चिड़िया भी नहीं तो भी यह ऊधम मच रहा है । वकील साहब बड़े तंग हुए अन्त में हारकर बिजली विभाग को लिखा-कहीं कोई बिजली की गड़बड़ी है उसे ठीक किया जाये । बिजली विभाग के इन्जीनियर तक आये, सारे सर्किट की ओवर हालिंग कर गये पर न तो कोई गड़बड़ी मिली और न बन्द ही हुआ ऊधम । ऐडवोकेट साहब का बुरा हाल था ।

यह प्रसंग कोई कथा नहीं वरन् एक सत्य घटना है जो रोजेनहीम के एक वकील के साथ जून १९६८ में घटी । इस समाचार का विवरण नवनीत (हिन्दी डाइजेस्ट) में भी छपा है । लगभग ८-९ महीने की लगातार जाँच के बाद बिजली विशेषज्ञों ने जबाब दे दिया और स्थिति नियन्त्रण में नहीं आई । इसके बाद परामनोविज्ञान वेत्ता प्रो० हाँस बेन्डर, जो कि ''फ्रीवर्ग इन्स्टीटयूट आफ पैरासाइकोलाजी'' के अध्यक्ष हैं, ने इन परिस्थितियों की जाँच की और बताया कि-सब कुछ देखने के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि यह मामला मनोगति क्रम (साइकोकाइनेसिस) का है । मनोगति क्रम का अर्थ ही है कि सूक्ष्म मानसिक शक्तियाँ हैं जो भौतिक पदार्थों पर नियन्त्रण और हस्तक्षेप कर सकती हैं । उन्होंने स्वीकार किया कि मानसिक अवस्था किसी भूत प्रेत के रूप में स्थित रह सकती है ।

ब्राजील के अति प्रतिष्ठित दैनिक पत्र ''ओ क्रूजीरो'' के प्रतिनिधियों ने आँखों देखा और जाँचा हुआ समाचार छापा था कि साओपाअलो राज्य के इटापिका नगर के एक किसान 'सिडकान्टो' के घर पर न जाने कहाँ से पत्थर बरसते थे और घर में रहने वालों को घायल करते थे । भूत उपचारकों से लेकर अन्य सभी प्रकार के उपाय जब इसकी रोकथाम में असफल हो गये तो पुलिस को सूचना दी गई । वे लोग भी

रहस्य पर से पर्दा न उठा सके तो विषय सर्व साधारण की चर्चा का बन गया और ब्राजील ही नहीं योरोप के अन्य विशिष्ट व्यक्ति भी तथ्य का हर दृष्टि से पता लगाने के लिए पहुँचे पर न तो घटना क्रम को झुठलाया जा सका और न उसका रहस्योद्घाटन किया जा सका ।

इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध मनो-विज्ञानी और दार्शनिक सी०ई०एम जोड़ ने बी०बी०सी० पर एक परिसम्वाद में भाग लेते हुए कहा था-''मैं भूतों पर विश्वास नहीं करता था, पर एक दिन जब मेरे ऊपर प्रयोगशाला में बैठ-बैठ चारों ओर से साबुन की टिकिया बरसनी आरम्भ हो गई और खोज करने पर उसका कोई आधार नहीं सूझ पड़ा तो मेरा विश्वास बदल गया और मैं अब भूतों के अस्तित्व को मानता हूँ ।''

क्रेम्ब्रिज विश्व-विद्यालय में प्रेतात्माओं सम्बन्धी शोध कार्य करने के लिए एक विशेष विभाग ही खुला हुआ है । अमेरिका की 'साइकिकल रिसर्च फाउण्डेशन' द्वारा अनेक वैज्ञानिकों और बुद्धिजीविओं के सहयोग से सुनियोजित शोध कार्य चल रहा है ।

प्रेतबाधाओं के स्वरूप को भी वैज्ञानिकों ने समझने का प्रयास किया है । ऐसे स्पष्ट प्रमाण मिले हैं कि किसी घर या स्थान विशेष में आकस्मिक रूप से घन्टियाँ बज उठेंगी, चीजें इधर-उधर बिखरने लगेंगी, पत्थर, धूलिकण आदि बरसने लगेंगे, किबाड़, खिड़कियाँ स्वयं ही खुलने बन्द होने लगेंगी और ऐसी बिना किसी भी व्यक्ति या यन्त्र की गतिविधि के होगा । ऐसी घटनाएँ अब भली-भाँति परखी जा चुकी हैं और वैज्ञानिकों द्वारा सत्य पाई गई हैं । इसका अभी तक वैज्ञानिक यही स्पस्टीकरण प्रस्तुत कर सके हैं कि प्रेतबाधा सम्बन्धी समस्त घटनाएँ उस क्षेत्र के आस-पास किसी जीवित देहधारी की ही उपस्थिति में घटित होती हैं । इसका अर्थ है कि उपस्थित व्यक्ति के भीतर प्रविष्ट ''साइकिल फैक्टर'' या कि उसी व्यक्ति का अवचेतन अपनी आन्तरिक ऊर्जा को वहाँ प्रक्षिप्त करता है, भले ही वह स्वयं सचेतन रूप में इस क्रिया से अवगत नहीं रहता । पर जीवित व्यक्ति की मानसिक ऊर्जा के उपयोग से ही ये घटनायें घटित हो पाती हैं । यह सिद्धान्त व्यक्ति में निहित असीम सम्भावनाओं तथा अपार मानसिक ऊर्जा की धारणा की ही पुष्टि करता है । इस मानसिक ऊर्जा को ही मनोबल, आत्मबल आदि कहा गया है ।

वस्तुओं तथा व्यक्तियों के सहसा हवा में ऊपर उठ जाने तथा तैरने, व्यक्ति का थोड़े समय के लिए अत्यधिक लम्बा-ऊँचा हो जाने, अन्तर्धान होने, आकाश-संचरण आदि की घटनाएँ भी वैज्ञानिकों द्वारा नियन्त्रित वातावरण में स्पष्ट देखी-परखी गई हैं । सर डगलस होम ने अनेक वैज्ञानिकों के सामने कुर्सी समेत हवा में ऊपर उठ जाने, कई फुट लम्बे हो जाने, मेज आदि को ऊपर उठा देने के अनेक प्रर्दशन किये थे और भी कई प्रयोगकर्ता ऐसे प्रदर्शन कर चुके व कर रहे हैं । इनकी कैसी भी व्याख्या अभी तक वैज्ञानिक नहीं कर पाये हैं ।

प्रेतात्मा के अस्तित्व सम्बन्धी जो घटनायें सामने आती हैं उनके अधिक गम्भीर अन्वेषण किये जाने की आवश्यकता है । इन शोधों से मानव तत्व की कितनी ही विशेषताओं पर प्रकाश पड़ेगा और यह जाना जा सकेगा कि मरणोत्तर जीवन में मनुष्य को किन परिस्थितियों में होगा उतना ही यह स्पष्ट होता जायगा कि जीवन अनन्त है और उसकी सम्भावनाएँ असीम हैं । वर्तमान दृश्य जीवन तो उसका एक छोटा-सा अंग मात्र है ।

जड़ वस्तुओं के भी प्रेत

इस सिलसिले में एक और भी इससे भी बड़े आश्चर्य की बात यह सामने आई है कि जड़-पदार्थों से बने ऐसे माध्यम जिनके साथ जीवित मनुष्यों का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा हो, अपना प्रेत अस्तित्व बना लेते हैं और मूल पदार्थ के नष्ट हो जाने पर भी अपने अस्तित्व का वैसा ही परिचय देते रहते हैं, जैसा कि मरने के बाद मनुष्य अपना परिचय प्रेत रूप में प्रस्तुत करता रहता है ।

समुद्री इतिहास में ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख है, जिसमें सामने से आते हुए जहाज के साथ सम्भावित टक्कर से बचाने के लिए मल्लाहों ने अपना जहाज तेजी से मोड़ा और उस प्रयास में उनका अपना जहाज उलट कर नष्ट हो गया । यह जहाज जो सामने से आ रहा था और जिसकी टक्कर बचाने के लिए मल्लाह आतुरतापूर्वक प्रयत्न कर रहे थे, यहाँ यह कौन था, कहाँ का था- ठीक सामने टकराने जैसी स्थिति में क्यों हो रहा था- उसके चालक उसे बचा क्यों नहीं रहे थे- वह पीछे वहाँ से कहाँ चला गया ? आदि प्रश्नों के उत्तर सन्तोषजनक नहीं मिल और यह मान लिया गया कि सम्भवतः वह मल्लाहों की आँखों का भ्रम था, वस्तुतः उस प्रकार के जहाज का अस्तित्व सिद्ध नहीं हुआ ।

जाँच कमेटियों की रिपोर्ट में डूबने वाले और न डूबने वाले जहाजों तथा मल्लाहों की ऐसी अनेकों गवाहियाँ हैं जिन्होंने समुद्र की सतह पर ऐसे जहाज देखे जिनका अस्तित्व प्रमाणित नहीं किया जा सका । रिपोर्टों में उसे भ्रम बताकर जाँच पर पर्दा डाल दिया, पर उन मल्लाहों और यात्रियों का समाधान

न हो सका, जिसने अपनी आँखों से सब कुछ देखा था । भ्रम तो एक दो को हो सकता था, सारे मल्लाह और परियात्री एक ही तरह का दृश्य देखें यह कैसे हो सकता है । रिपोर्ट अपनी जगह कायम रही और दर्शकों की मान्यतायें अपनी जगह । पीछे यह अनुमान लगाया गया कि डूबे हुए जहाजों के प्रेत अपने जीवनकाल की आवृत्ति में समुद्र तल पर भ्रमण करते रहते हैं । यह उनका सूक्ष्म शरीर होता है, जिसमें सघन ठोस तत्व तो नहीं होते पर छाया आकृति ठीक वैसी ही होती है जैसी कि उनके जीवित काल में थी । डूबे हुए जलयानों के प्रेत होते हैं, यह अनुमान आरम्भ में उपहासास्पद ही माना गया था पीछे उनके प्रमाण इतने ज्यादा मिलते गये कि उस मान्यता को एक विचारणीय शोध विषय माना गया । अभी भी मृत जलयानों का प्रेत रूप में जीवित रहना किसी प्रामाणिक कसौटी पर खरा सिद्ध नहीं हुआ है । इसलिए उस मान्यता को भ्रम स्तर पर ही रखा गया है । फिर भी शोधकर्त्ताओं को स्वयं इस निष्कर्ष से सन्तोष नहीं हुआ है । वे यह कहते रहते हैं कि उपलब्ध प्रमाण साधन अपर्याप्त हो सकते हैं और भविष्य में कई ऐसे उपकरण या सिद्धान्त निकल सकते हैं जो इन बहुचर्चित प्रेतों के सम्बन्ध में कुछ अधिक सन्तोषजनक तथ्य प्रस्तुत कर सकें ।

एक ऐसी ही घटना का उल्लेख विश्वविख्यात ब्रिटिश परामनोविज्ञानी जे०बर्नार्ड हटन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि अदर साइड ऑफ रियेलिटी' में किया है ।

हटन ने इस घटना का साक्षात् किया था सन् १९२३ में । उस समय वे बच्चे ही थे । उनके पिता किसी सरकारी विभाग में अच्छे पद पर थे और समय-समय पर पूरा परिवार छुट्टियों का आनन्द लेने के लिए किसी एकान्त स्थल पर जाया करता था । उस वर्ष हटन परिवार सिल्ट द्वीप पर अपनी छुट्टियाँ मना रहा था । यह द्वीप चारों ओर से समुद्र से घिरा था सुन्दर रम्य प्रकृति की गोदी बना हुआ था ।

हटन के साथ उनके एक मित्र जो सेना में कैप्टन थे- शुलकौझ भी द्वीप पर छुट्टियाँ मनाने के लिए सपरिवार आये हुए थे । दोनों मित्रों ने पास-पास रहने का फैसला किया और एक ही स्थान पर बँगले किराये पर लिये । अभी छुट्टियाँ बीत भी न पायी थीं कि हटन को किसी आवश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ा । श्रीमती हटन और उनके बच्चों के साथ कैप्टन- शुलकौझ का परिवार भी श्री हटन को विदा करने स्टेशन तक गया । विदा कर लौटते हुए सब ने पूरे द्वीप का घूमते हुए चक्कर लगा कर अपने बंगलों पर वापस लौटने का निश्चय किया । इस प्रकार उन्हें छोटे से सिल्टद्वीप की चार मील परिधि भर का चक्कर लगाना पड़ता अतएव वे स्टेशन से बँगलों के लिए पैदल ही रवाना हुए ।

सब घूमते हुए चले जा रहे थे । घूमते-घूमते वे एक ऐसे स्थान पर जा रुके जहाँ खाड़ी सी बन गयी थी । रुकने का कारण था खाड़ी में उठने वाले एक तेज ज्वार और उसमें फँसी मल्लाहों की एक नाव; जिसमें करीब १५-२० मछुए बैठे थे और सब के चेहरों पर मौत का भय छाया हुआ था । इस समय देखकर आश्चर्य इस बात पर अधिक होता था कि जिस क्षेत्र में ज्वार के बीच नाव फँसी हुई थी वहाँ तो प्रचण्ड की लहरें उठ रहीं थीं जैसे सागर कश्ती पर ही अपना सारा क्रोध उतारने के लिए बेताब हो रहा हो । पर उस क्षेत्र के आस-पास का समुद्र बिल्कुल शांत था ।

थोड़ी देर में कुछ मछुए पास के गाँव से आ गये और उन्होंने तोप द्वारा लाइफलाइन फैंकी ताकि उसे पकड़ कर फँसे हुए मछुए अपनी जीवन रक्षा कर लें । लेकिन वह लाइफ नाव तक ही नहीं पहुँची । दुबारा लाइफ लाइन फेंकी गयी। इस बार पूरी सतर्कता, रखी गयी थी । इसलिए लाइफ लाइन ठीक नाव तक पहुँच गयी । नाव में बैठ मछुए उसे पकड़े-पकड़े इतने में ही एक लहर ऊँची उठी और उसने लाइफ लाइन को लपक लिया ।

तोप की आवाज सुन कर पास की बस्ती से बहुत सारे लोग जिनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी थे समुद्र के तट पर आ गयें । अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी । कुछ स्त्रियाँ विलाप भी करने लगीं । सम्भवतः उस नाव में उनके पति, पुत्र या सम्बन्धी होंगे । दो बार लाइफ लाइन फेंकने की कोशिश बेकार गयी तो तोप दागने वाले मछेरों ने किनारे से एक नाव उतारी । जिसमें चार-पाँच हष्ट-पुष्ट और ताकतवर व्यक्ति बैठ थे वे सफलता पूर्वक नाव को खेते हुए उस ओर ले गये जहाँ कि उनके साथी फँसे हुए थे ।

लहरों से संघर्ष करते हुए वे अपने साथियों की ओर बढ़ने लगे । उस नाव के मछेरों ने भी लाइफ बोट उतार ली थी और वे ज्वार-क्षेत्र से बाहर आने की कोशिश करने लगे । किनारे से रवाना हुई नाव उन तक पहुँच ही गयी थी । तट पर खड़े हुए मछेरों ने फिर लाइफ लाइन फेंकी पर वह भी लहरों की चपेट में आ गयी । जीवन और मृत्यु के इस संघर्ष को देख कर किनारे पर खड़े व्यक्ति परमात्मा से दया की प्रार्थना कर रहे थे । लाइफ बोट को सहारा देकर दुर्घटना में फँसे मछेरों को किनारे पर लाने की कोशिश की जा रही थी कि

एक तेज लहर आयी जिसने आकाश की ऊँचाइयों को छूते हुए दोनों नावों और उनके सवार मछेरों को सागर की तलहटी में पहुँचा दिया ।

इस दृश्य के समय बड़ा कारुणिक वातावरण बन गया था । स्वयं शुलकौझ, उनके साथी, बच्चों व अपनी तथा अपने मित्र की पत्नियों को कुछ समझ नहीं आ रहा था । एक दूसरे से आश्चर्य व्यक्त करते हुए उन्होंने आसपास देखा तो न कोई भीड़ थी और न ही सागर में तूफान आया हुआ था । एकदम शान्त समुद्र भी जैसे उस घटना को झुठला रहा था ।

घटना अविश्वसनीय लगती है । परन्तु सच है यह बात तब प्रमाणित हुई जब कैप्टेन ने अपने घर जाकर द्वीप के पादरी से इसकी चर्चा की । पादरी ने और भी आश्चर्य में डाल दिया कि अब से पचास वर्ष पूर्व जब वह बच्चा ही था सचमुच ही ऐसी घटना घट चुकी है ! दिन यही था जिस दिन शुलकौझ ने यह दृश्य देखा था । यही नहीं पादरी ने उन लोगों के बयान भी दिखाये जो पहले इस घटना की पुनरावृत्ति को देख चुके थे । कैप्टेन शुलकौझ ने उन बयानों को पढ़ा तो अनुभव हुआ कि जैसे अभी-अभी कोई व्यक्ति यह घटना देखकर आया है और अपने संस्मरण लिख रहा है ।

उस समय बच्चे रहे बर्नाडि-हटन उस अविश्वसनीय सचाई से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इसी दिशा में खोज करना अपना लक्ष्य बना लिया और परामनोविज्ञान के क्षेत्र में एक से एक अद्‌भुत प्रयोग किये तथा उनके निष्कर्षों से लोगों को अचम्भित कर दिया । क्योंकि आज का बुद्धिजीवी वर्ग इस प्रकार की बातों को बिना कुछ समझने का प्रयत्न किये तत्काल कपोल कल्पना या गप्प करार दे देता है ।

पश्चिमी देशों में मरणोत्तर जीवन की स्थिति पर शोध और प्रयोग के बड़े कार्य होने लगे हैं । सर ओलीवर लाज, सर विलियम बारेट, एफ० डब्ल्यू० एच० मारेस, रिचार्ड होडसन, मिसेज सिडपिक, सर आर्थर क़ानन डायल आदि परा मनोवैज्ञानिकों ने इस दिशा में गम्भीर खोजें की हैं और प्रामाणिक तथा तथ्यपूर्ण जानकारियाँ संगृहीत कर अध्यात्म को भी विज्ञान की कसौटी पर कसा है ।

उक्त प्रकार की घटना के ही समान प्रख्यात परा मनोवैज्ञानिक ए०पी०सीनेट ने भी ऐसा ही एक चौंका देने वाला अनुभव लिखा है । सीनेट एक बार झील के किनारे चहलकदमी कर रहे थे यकायक उन्हें लगा कि कोई युवती आत्मघात के उद्देश्य से झील में कूदने जा रही है । उन्होंने युवती को देखा और उसे पकड़ने के लिए दौड़े ताकि उस आत्मघात से बचाया जा सके, पर इसके पहले ही लड़की पानी में कूद चुकी थी । छपाक् की आवाज हुई और सीनेट लोगों को उसे निकालने के लिए पुकारने लगे । लोग आये, उन्होंने झील में लड़की का मूर्च्छित शरीर या शव निकालने के लिए काफी देर तक डुबकियाँ लगायीं । बाद में पुलिस को रिर्पोट की गई, पर यह जानकर आश्चर्य हुआ कि प्रति वर्ष इसी दिन और इसी समय आत्म-हत्या की रिर्पोट दर्ज करायी जाती है । पिछली पन्द्रह-सालों की फाइलों में एक-सी रिपोर्ट, आत्म-हन्ता लड़की का एक-सा हुलिया और एक से कपड़े बताये जाते हैं ।

सीनेट ने यह क्रम कब से शुरू होता है- यह बताने का आग्रह किया तो पता चला कि सोलह साल पहले इसी हुलिया का लड़की ने आत्म-हत्या की थी । उसके परिवार वालों ने इसके शव को ढूँढ़ा और निकाला था । इस प्रकार घटनाओं की पुनरावृत्ति का कारण बताते हुए 'टकनीक्स आफ एस्ट्रल प्रौजेक्शन' 'सुप्रीम ऐड्वेचर' तथा 'मोरल एस्ट्रल प्रोजक्शन' जैसी विश्व विख्यात पुस्तकों के लेखक रावर्ट कूकल ने लिखा है कि-मृत्यु चाहे दुर्घटना में हुई हो या आत्मघात द्वारा । मरने वालों का सूक्ष्म शरीर (एस्ट्रल-बाडी) तुरन्त यह अनुभव करने में असमर्थ होता है कि वह मर गया है । किसी तालाब में ढेला फेंकने के बाद जिस प्रकार बहुत देर तक तरंगें उठती रहती है उसी प्रकार मृतक व्यक्ति का सूक्ष्म शरीर भी उन घटनाओं की मूर्च्छा की दशा में पुनरावृत्ति करता है । ए०पी० सीनेट द्वारा उल्लिखित इस घटना का यही कारण है ।

निर्जीव पदार्थों के भी प्रेत होते हैं, इस संदर्भ में समुद्री इतिहास के बाद स्थल-इतिहास की भी एक कड़ी आकर और भी जुड़ जाती है । रेल दुर्घटनाओं में ड्रायवरों के अनेकों बयान ऐसे हैं जिनमें उनने सामने से धड़धड़ाती हुई एक रेल देखी और उसकी टक्कर बचाने का प्रयास करते हुए कड़ा ब्रेक लगाने में उनका इंजन उलट गया; अथवा वे हतप्रभ होकर अपना संचालन-सन्तुलन खो बैठे । सामने से रेल क्या थी, कहाँ से आई थी, इसका कोई प्रमाण न मिला तो इसे ड्राइवरों की मनगढ़न्त कहानी अथवा मनोविकृति भर कहकर उपेक्षित कर दिया गया । पर ऐसे घटनाक्रम अनेकों थे । जिनमें टक्कर से दुर्घटना अथवा बचाव के लिए किये गये खतरनाक प्रयासों का पता चलता था । प्रमाणहीन बात को माना कैसे जाय और इतने लोग अकारण भ्रम फैलाते हैं, यह भी कैसे गले उतारा जाय ? अन्ततः अनुमानों की शृंखला इस तरह भी जुड़ी कि जिस तरह डूबे हुए जलयानों के प्रेत समुद्र की सतह पर घूमते पाये जाते हैं, उसी प्रकार दुर्घटना में ग्रसित रेलों के भी प्रेत

हो सकते हैं और उनके दृश्य देखकर सामान्य बुद्धि का ड्रायवर उन्हें एक यथार्थता मान सकता है ।

'पदार्थ' का प्रेत 'प्रति पदार्थ' विश्व का प्रेत 'प्रतिविश्व' छाया पुरुष की तरह साथ-साथ विद्यमान रहता है उनकी चर्चा विज्ञान जगत में इन दिनों प्रमुख चिन्तन का विषय बनी हुई है । मनुष्य का प्रेत होता है, यह भी जाना और माना जाता रहा है । अब यह नया तथ्य सामने आया है कि महत्वपूर्ण घटनाओं के- महत्वपूर्ण पदार्थों के और प्रचण्ड संकल्प-सत्ताओं के भी प्रेत हो सकते हैं । स्थूल के नष्ट हो जाने पर भी सूक्ष्म का अस्तित्व बना रहता है । इस सूक्ष्म का गहन अन्वेषण हो सके तो हमारे ज्ञान-विज्ञान में एक नई किन्तु अति महत्वपूर्ण कड़ी जुड़ सकती है ।

परकाया-प्रवेश की शक्ति-सामर्थ्य

अब विज्ञान क्रमशः प्रौढ़ होता चला जा रहा है । पचास वर्ष पूर्व आत्मा और ईश्वर के अस्तित्व में इनकार करने का जो उत्साह था वह अब ठण्डा हो चला है । यह माना जाने लगा है कि आत्मा है और मरणोत्तर जीवन के उपरांत भी उसकी सत्ता पूर्णतया समाप्त नहीं हो जाती वरन् किसी न किसी रूप में बनी ही रहती है ।

यह सत्ता शरीर छोड़कर जब अन्तरिक्ष में भ्रमण करती है तो उसका परिचय प्रेतात्माओं के रूप में मिलता है स्वर्ग-नरक की अनुभूति उसे इसी अवधि में होती है । इसके बाद पुनर्जन्म का चक्र चल पड़ता है । प्रेतों का आकार-प्रकार और उनके कर्म, स्वभाव का ठीक से पता नहीं चल सका है पर जो प्रमाण मिलते हैं उनसे उनका अस्तित्व अवश्य सिद्ध होता है । सत्य ही अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर अर्थात् दुर्बल मनोभूमि वाले लोगों के भीतर प्रविष्ट होकर उनकी मूल सत्ता को परे धकेलकर अपना वर्चस्व स्थापित कर बैठने के भी प्रमाण मिले हैं ।

आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता के भी ऐसे ही प्रतिपादन के प्रमाण में परकाया प्रवेश के सिद्धान्त का समर्थन करने वाले कुछ आधुनिकतम एवं परखे, पहचाने उदाहरण हैं जिन्हें किसी अन्ध-विश्वासी की भावुकता अथवा सनक नहीं कहीं जा सकती है । अमेरिका के हारवर्ड और कैलीफोर्निया विश्व-विद्यालय के दो प्रोफेसरों ने मिलकर ''बीसवीं सदी में अचेतन मनोविज्ञान की नई खोज'' विषय पर सुविस्तृत खोज की है । अपने विषय के अब उन्होंने अनेकों प्रमाण संग्रह किये हैं । उन्हें पुस्तक रूप में भी छपाया है और पत्र-पत्रिकाओं में भी उन प्रमाणित घटनाक्रमों को छपाया है । प्रस्तुत विवरणों में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता है और वह एक शरीर से दूसरे में परिवर्तन करते रहने में समर्थ है ।

डा० आसवन ने अपनी शोध में एक ऐसे बर्तन विक्रेता का उल्लेख किया है जो घर से टहलने के लिए निकला था किन्तु अचानक गायब हो गया । कहीं अन्यत्र जाकर कुछ काम करने लगा । घर वालों ने तलाश किया पर कहीं कुछ पता न चला । दो वर्ष ऐसे ही बीत गये । इसके बात अचानक उस बर्तन विक्रेता को पूर्व जन्म की स्मृति जगी और आश्चर्य के साथ अपनी नई स्थिति और पुरानी स्थिति की तुलना करने लगा और स्तब्ध रह गया कि उसका नाम घर, व्यवसाय अब कुछ कैसे बदल गया और पुरानी स्थिति से इस नई स्थिति में उसे किसने कैसे डाल दिया ?

जिस नये व्यक्ति के रूप में वह दो वर्ष से रह रहा था वह भी कोई अवास्तविकता न थी । कुछ समय पूर्व वह नया आदमी भी जीवित था जिसके स्थानापन्न बनकर उसे रहना पड़ा । वह मशीनों की मरम्मत का काम करता था और घूम फिर कर अपनी रोटी कमाता था । वही कार्य उसे भी नई स्थिति में मिल गया और दो वर्ष मजे की रोजी-रोटी कमाते गुजार लिए । जिस सराय में वह ठहरता था, जिस नानबाई के यहाँ वह रोटी खाता था उन्हीं के यहाँ उसने अपनी व्यवस्थता ऐसे जमाली मानो उन स्थानों से वह पुराना परिचित चला आता है । उन दुकानों के नये पुराने सभी कर्मचारियों के नाम और व्यवहार उसे याद थे । इसी प्रकार मरम्मत का काम जहाँ मिलता था वह भी सब कुछ उसका जाना पहचाना था ।

दो वर्ष बाद मानो वह गहरी निद्रा में से उठा । अपने घर की याद आई और वापिस चला गया । कुछ दिन उसे स्थानापन्न जन्म की स्मृति भी रही, पीछे वह धुँधली चली गई और पीछे उसे उन दिनों की बातें लगभग पूरी तरह विस्मृत हो गईं और पहले की तरह अपना कसेरे का धन्धा करने लगा ।

शोधकर्त्ताओं ने इस घटना को बहुत गम्भीरता से लिया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हो न हो यह किसी प्रबल आत्मा का एक सामान्य आत्मा को वशवर्ती करके उसके शरीर पर अपना कब्जा कर लेने की घटना है । जब उसने कब्जा छोड़ा तो पुरानी आत्मा अपनी जागृत एवं स्वतन्त्र सत्ता का परिचय देने की स्थिति में आ गई । इस घटना को डा० आसवन ने अपने अनुमानित निष्कर्ष के साथ कई प्रसिद्ध समाचार पत्रों में छपाया ।

एक दूसरी घटना रोड्स नगर निवासी ऐसेलवर्न की है । वह बैंक से दस हजार का चैक भुनाकर बाहर निकला और अचानक गायब हो गया । घर वाले तलाश करते रहे पर कुछ पता न चला । सोचा डकुओं ने उसका अपहरण करके मार डाला और धन छीन लिया है । पर ऐसा हुआ नहीं । गायब होने के बाद वह सैकड़ों मील दूर एक अन्य नगर में जा पहुँचा और वहाँ उसने चीनी का व्यापार इस कुशलता से किया मानो वह उस व्यवसाय का माहिर रहा हो । चीनी के व्यापारी उसकी वार्ता से बहुत प्रभावित थे और उसे निष्णात अनुभवी मानने लगे । नाम भी उसका बदल गया । इस व्यापारी को ए० जे० ब्राउन कहा जाने लगा । दो महीने में- उसने बहुत रुपया कमाया और अपने क्षेत्र में अच्छी धाक जमा ली । किन्तु इसके बाद अचानक उसे याद आई कि वह तो रोड्स निवासी ऐसेलवर्न है, यहाँ कैसे आ गया और जिस चीनी के व्यवसाय से उसका दूर का भी वास्ता नहीं था उसे वह क्यों कर करने लगा ? इस अपरिचित जगह में इतनी दूर उसे कौन कैसे ले गया । इन प्रश्नों का कोई उत्तर उसके पास नहीं था । वह डर गया । तुरन्त ही चीनी का व्यवसाय समेटा और वापिस अपने नगर को चल दिया ।

इस घटना का भी लगभग वैसा ही निष्कर्ष था । और यही अनुमान लगाया गया कि कोई मृत आत्मा किसी जीवित शरीर पर कब्जा करके उससे अपनी रुचि का काम करा सकती है ।

साइकॉलाजीकल रिव्यू पत्रिका में एक घटना डक्टर डमा ने प्रकाशित कराई थी । डाक्टर की चिकित्सा में एक मूर्छित रोगी आया । वह अच्छा तो हो गया पर प्रौढ़ता खोकर पाँच वर्ष के बालक जैसी मनःस्थिति में आ गया । छोटे बच्चे जिस तरह सोचते और करते हैं उसका सारा शारीरिक, मानसिक व्यवहार उसी तरह का था । वह सुशिक्षित था पर पढ़ना-लिखना बिलकुल भूल गया था । कई महीने उसकी यही स्थिति रही । इसके बाद उसे पुरानी स्थिति याद आई और पुनः प्रौढ़ता वाले व्यक्तित्व में जागृत हो गया ।

उपरोक्त घटना से मिलती-जुलती एक अन्य घटना इंगलैंड के पादरी हाना की है । १५ अप्रैल, सन् १८९७ में वे मोटर दुर्घटना में घायल हुए । अचेत अवस्था में अस्पताल पहुँचाये गये । होश में आये तो वे बिल्कुल छोटे बालक की तरह थे, और अपना नाम पता व्यवसाय आदि पूरी तरह भूल चुके थे, यहाँ तक कि जो कुछ उनने पढ़ा लिखा था वह भी विस्मृत हो गया । इसके बाद वे उस पुरानी यहूदी भाषा में बात करने लगे जिससे वे कभी परिचित न रहे । इस विचित्र परिवर्तन से डक्टर तथा दूसरे परिचित बहुत हैरान थे । आखिर उन्हें न्यूयार्क विशेष चिकित्सा के लिए भेजा गया । परिवर्तन धीरे-धीरे हुआ । कुछ समय उनके मस्तिष्क पर बालक का कब्जा रहता कुछ समय वे पादरी हाना के रूप में बात करते । इस तरह उलट-पलट बहुत समय चली तब कहीं वे अपने असली व्यक्तित्व में रह सकने योग्य बने ।

इंगलैण्ड के डा०मौर्टन प्रिन्स ने मिस बोचैमम्प नामक लड़की की परीक्षा करने का बाद अपना यह मत व्यक्त किया कि भूत जैसी कोई वस्तु सम्भव है, जो गतिशील हो सकती है । इस लड़की की दशा कभी-कभी बड़ी विचित्र हो जाती थी । कई बार उसे दर्द होता था और कुछ देर उसकी विचित्र स्थिति रहती, फिर वह भली-सी हो जाती थी, किन्तु उसके सब क्रिया-कलाप बदल जाते थे । उस समय वह अपना नाम बोचैम्प न कहकर सैली बताती थी और परिवार वालों को बहुत तंग करती थी । कई ऐसे पत्र लिख देती थी, जिसके विषय बोचैम्प से सम्बन्धित होते ही नहीं थे, बाद में उस लड़की की परेशानी बढ़ जाती थी । इसके बाद जब सैली चली जाती थी तो बोचैम्प का व्यवहार फिर पूर्ववत् हो जाता था ।

इसी प्रकार रेवरेन्ड एन्सिल बोर्न नामक एक ईसाई प्रचारक ने एक हलवाई के यहाँ नौकरी करके एकाएक लोगों को हैरत में डाल दिया । कई सम्बन्धी उसके पास गये और कहा आप पादरी होकर यह काम करते हैं- चलिये अपने निवास-स्थान में अपना काम करिये तो वह बिगड़कर बोला- "मेरा नाम एन्सिल बोर्न नहीं, ए०जे० ब्रोन है, मैं तो हमेशा से नौकरी करता हूँ ।" कुछ दिन बात ब्रोन फिर ईसाई प्रचारक का काम करने के लिये आ गया पर उसने बताया कि इस बीच उसने क्या किया, इसका बिल्कुल स्मरण नहीं है, क्योंकि मेरा अस्तित्व ही न जाने कहाँ खो गया था । यह तो बाद में पता चला कि ए० जे० ब्रोन नामक एक व्यक्ति पहले किसी हलवाई की दुकान पर काम करता था उसकी कुछ दिन पूर्व मृत्यु हो गई थी ।

पादरी महोदय उस अवधि में जो कुछ बोलते, खाते-पीते रहे वह पूर्व ब्रोन के स्वभाव से बिल्कुल मिलते-जुलते थे, जिसका कि उन्हें बिल्कुल भी ज्ञान नहीं था । समझा जाता है कि इस अवधि में उनके शरीर पर उसी प्रेतात्मा ने अधिकार कर लिया था । दोनों अवस्थाओं में वे पूर्ण स्वस्थ थे, मस्तिष्क भी ठीक था, वे एक विश्वसनीय व्यक्ति थे तो भी इस तरह

के असामान्य परिवर्तन का कारण क्या था, इसका कोई उत्तर विज्ञान देने में असमर्थ है । वह स्थूल वस्तुओं को जान सकता है सूक्ष्म तत्वों को नहीं ।

कविवर गजानन मुक्तिबोध के सम्बन्ध में उनके अनेक मित्रों का और धर्म-पत्नी का यह ख्याल नहीं था कि वे प्रेत बाधा के शिकार हो गये हैं वरन् दिल्ली के सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक डा० विग ने भी यह स्वीकार किया कि उस पर तीव्र-से-तीव्र औषधियों का कोई प्रभाव ही नहीं परिलक्षित होता, यह सर्वथा समझ से परे बात है । काशी निवासी शव-साधक तान्त्रिक श्री अरुणकुमार शर्मा, जिन्होंने कठिन प्रेत साधनायें सिद्ध कीं, तिब्बत में रहकर लामाओं से गुह्य-तन्त्र सीखे, श्रीलंका से बौद्ध-दर्शन में एम० ए० तथा जवासिद्धि उपलब्ध किया- श्री गजानन माधव मुक्तिबोध के सम्बन्ध में पहले ही बता दिया था कि- "उन पर भूत व्याधि है और सन् १९६४ उनके जीवन का अन्तिम वर्ष है ।"

वही हुआ भी, हमीदिया अस्पताल भोपाल में उनकी अच्छी से अच्छी चिकित्सा की गई, किन्तु वे अच्छे न हुए मरणासन्न स्थिति में वे 'राम-राम' और आई, य (ओ माँ) ऐसे शब्द बोलते थे, जबकि उन्होंने जीवन में कभी उपासना न की थी । उनकी स्थिति देखने वाले सभी समीपवर्ती लोगों ने जो अधिकांश सभी शिक्षित और प्रतिष्ठित व्यक्ति रहे हैं, यह माना कि उनकी मृत्यु प्रेत बाधा से ही हुई । उनके निधन और दाह-कर्म की सूचना रेडियो से बड़े दुःख के साथ दी गई थी ।

कोई मृतात्मा किसी जीवित व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर सकती है और उस पर इच्छित समय तक अधिकार बनाये रह सकती है । इसके भी कितने ही उदाहरण मिले हैं । इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि आत्मा मात्र शरीर की परिधि में ही बँधा हुआ है । वह इस सीमा का उल्लंघन करके अन्य शरीरों में भी प्रवेश कर सकता है । इच्छित समय तक अधिकार बनाये रह सकता है और उसे छोड़ सकता है । ऐसा किस स्थिति में होना सम्भव है किस स्थिति में नहीं इनका ठीक से निर्णय तो नहीं हो सकता पर इतना कहा जा सकता है ऐसा होना असम्भव या अविश्वस्त नहीं है । यद्यपि ऐसा झूठा प्रदर्शन कई बार ढोंग बनाकर भी किया जाता रहता है ।

'दि अदर वर्ल्ड', 'जर्नीज आउट आफ दि वाडी' आदि ग्रन्थों में इस प्रकार की अनेक घटनाओं का वर्णन है- जिसमें आत्माओं ने अपने शरीर को छोड़कर सूक्ष्म शरीर के सहारे बहुत कुछ देखा और बहुत कुछ किया है । इन घटनाओं से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि अशरीरी आत्माओं का किन्हीं दूसरों के शरीर में प्रवेश करके उनके कुछ विशेष कार्य करा लेना सम्भव है । इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि सूक्ष्म शरीर स्वयं इतना परिपुष्ट हो जाय कि शरीरधारी की तरह स्वयं ही अपने क्रिया-कलाप का परिचय दे सके ।

अरविन्द आश्रम की संचालिका माता जी के बारे में कहा जाता है कि वे बाल्याकाल में देह से आत्मा को बाहर निकाल कर सूक्ष्म शरीर से दूर-दूर की यात्राएँ करती थीं ।

परामनोविज्ञान वेत्ता प्रो० मुलडोन ने अपने ग्रन्थ 'दि प्रोजेक्शन आफ एस्ट्रल वाडी' में परकाया प्रवेश के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि एक 'रजत तन्तु' से आत्मा अपने स्थूल शरीर से सम्बन्ध बनाये रखकर भी अन्यत्र किस प्रकार जा सकता है और क्या कर सकता है ?

जगद्गुरु शंकराचार्य के बारे में कहा जाता है कि उनकी आत्मा कुछ समय के लिए अपना शरीर छोड़कर किसी राजा के शरीर में रहने लगी थी और वहाँ उन्होंने कामकला के रहस्य सीखकर विदुषी भारती के प्रश्नों का उत्तर देते हुए शास्त्रार्थ जीता है ।

यह एक भिन्न प्रकार का उदाहरण है जिससे एक नये तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि कोई जीवित आत्मा भी किसी मृत शरीर पर अपना कब्जा करके उससे जीवितों जैसा प्रयोजन सिद्ध कर सकता है ।

इस प्रकार की अनेकानेक घटनायें सामने आती रहती हैं और यह सिद्ध करती रहती हैं कि मरने के साथ जीवन का अन्त नहीं हो जाता वरन् उसके उपरान्त भी बना रहता है । इससे आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध होता है ।

जन्म और मृत्यु इस स्वतन्त्र आत्मा की अविराम यात्रा के दो पड़ाव मात्र हैं । उसकी क्रीड़ा-कल्लोल की दो विशिष्ट भंगिमायें हैं । परकाया प्रवेश भी उस आत्मा की ऐसी ही एक नई गतिविधि, एक नया खेल, एक नयी भूमिका है । परकाया प्रवेश के ये प्रमाण जहाँ आत्मा की अकूत सामर्थ्य को प्रतिपादित करते हैं, वहीं यह भी कि इस देह के नाश से चेतना का कुछ भी नहीं बनता-बिगड़ता । जन्म और मृत्यु शरीर का होता है आत्मा का नहीं । जन्म का अर्थ आत्मा का नयी भूमिका में प्रकट होना और मृत्यु का अर्थ उस भूमिका का पटाक्षेप मात्र है । जन्म-मृत्यु दोनों ही जीवन के अविछिन्न प्रवाह के दो मध्यवर्ती पड़ाव मात्र हैं । इसे तो अब विज्ञान भी स्वीकारता है कि यहाँ न तो कुछ जन्मता है, न मरता है । जो है सब

अनादि और अनन्त है । इस सिद्धान्त को विज्ञान में 'कञ्जर्वेशन ऑफ़ एनर्जी एण्ड मैटर' कहा गया है ।

इस सिद्धान्त से स्वतः सिद्ध होता है कि जीव से चेतना का सम्बन्ध केवल इस शरीर से नहीं है वह इस शरीर में केवल मात्र प्रकट हुई है जब यह शरीर नहीं बना था तब भी वह चेतना थी । विज्ञान भी मानता है कि मनुष्य शरीर का निर्माण जिन कोशों (सेल्स) से होता है वह मुख्यतः दो भागों में विभक्त है एक नाभिक (न्यूक्लियस) यह चेतन अंश है । सुनना देखना, सूँघना, व्यक्त होना यह उसी के गुण हैं। साइटोप्लाज्म अर्थात् पंच भौतिक प्राकृतिक पदार्थ- जल, अग्नि, आकाश, हवा और पार्थिव तत्वों का सम्मिश्रण । इनमें से प्रकृति परिवर्तनशील है मनुष्य शरीर के प्राकृतिक कोश बदलते हैं उसके अनुरूप चेतना के गुण, कर्म, स्वभाव में तो अन्तर आता है । पर मूल चेतना में कोई अन्तर नहीं आता । इसी चेतन वाले अंश में पाये जाने वाले संस्कार सूत्र (जीन्स) अमर हैं यह वैज्ञानिक भी मानते हैं इससे प्रकट होता है कि प्रजनन कोश में 'जीन्स' एक कोश से सैकड़ों कोशों में विकसित तो होता है, तरुण अवस्था तक वह ६०,००,००,००,००,००,००,००,००,००,०० कोश तैयार तो कर लेता है पर वह कभी न रहा हो, चेतना कभी नष्ट होकर नई बनी हो, ऐसा नहीं होता । जिस प्रकार भाप एक ही है पर हवा के संयोग से उससे सैकड़ों तरह की आकृतियाँ बनती बिगड़ती रहती हैं उसी प्रकार सैकड़ों प्रकार के शरीर बनते-बिगड़ते रहने के बावजूद चेतना का प्रवाह अनन्त और अखण्ड है । जिस प्रकार जल में भँवर उठते रहते हैं उसी प्रकार चेतना भ्रमवश नाना स्वरूपों में विभक्त होते रहने के कारण अपने आपको जन्म और मृत्यु का घटक मान लेती है ।

जन्म के पहले जिस प्रकार हम थे उसी प्रकार मृत्यु भी कोई ऐसी घटना नहीं है जिससे जीवन का नाश सिद्ध होता हो । नाश शब्द भी जन्म की तरह 'नश अदर्शने' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है जो अभी तक दिखाई दे रहा था वह अब अव्यक्त हो गया । वह अपनी सूक्ष्म अवस्था में चला गया । शरीर स्थूल था उसके प्रविष्ट होने के कारण संरचना दिखाई दे रही थी, चेतना व्यक्त थी पर शरीर के बाद वह नष्ट हो गई हो, ऐसा नहीं । अब इस तथ्य को विज्ञान भी मानने लगा है । अलवत्ता विज्ञान प्रकट का सम्बन्ध अभी तक मनोमय विज्ञान से जोड़ नहीं पाया इसीलिये वह परलोक पुनर्जन्म, लोकोत्तर जीवन, भूत-प्रेत, देव-योनि, यक्ष, किन्नर, पिशाच, बैताल आदि अतीन्द्रिय अवस्थाओं का विश्लेषण नहीं कर पाता । पर मृत्यु के बाद जीवन नष्ट नहीं हो जाता है वह एक अकाट्य तथ्य है और इसी आधारभूत सिद्धान्त के कारण भारतीय जीवन पद्धति का निर्धारण इस प्रकार किया गया है कि वह मृत्यु के बाद भी अपने जीवन के अनन्त प्रवाह को अपने यथार्थ लक्ष्य स्वर्ग मुक्ति और ईश्वर दर्शन की ओर मोड़े रह सके ।

परकाया-प्रवेश की शक्ति-सामर्थ्य भी आत्मा की एक सहज शक्ति मात्र है लक्ष्य नहीं । दुष्ट प्रेतात्मायें उस सामर्थ्य का दुरुपयोग करती हैं, जबकि दयालु पितर उसका उपयोग कर दूसरों को उपकृत करती हैं । शंकराचार्य जैसे योगी इसी सामर्थ्य का प्रयोग समाज कल्याण के लिये करते हैं ।

प्राण-परिवर्तन की अद्भुत घटना

एक ही तारीख, एक ही दिन धरती के ठीक विपरीत दो भागों में एक ही नाम के दो व्यक्ति बीमार पड़े । अचेतावस्था में एक का प्राण दूसरे के शरीर में, दूसरे के प्राण पहले के शरीर में परिवर्तित हो जायें तो ? उसे मात्र संयोग नहीं वरन् आत्मा का अद्भुत तत्व दर्शन और किसी सर्वोपरि बुद्धिमान सत्ता की अनोखी लीला ही कहेंगे ।

२२ सितम्बर सन् १८७४ की बात है, रूस के यूराल पर्वत स्थित नगर औरन वर्ग का एक धन कुबेर यहूदी बीमार पड़ा, डाक्टरों ने उसे सन्निपात होना बताया । उसकी नाड़ी लगभग टूट गई, शरीर ठंडा पड़ गया, बत्तियाँ जलादी गईं, अन्तिम प्रार्थना की जाने लगी तभी मरणासन्न यहूदी इब्राहीम चारको के शरीर में फिर से चेतना लौटती दिखाई दी, श्वांस गति धीरे-धीरे तीव्र हो उठी, आँखें खुल गईं उसने अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई लगा अब बिल्कुल ठीक हो गया, कुछ गड़बड़ दीख रही थी इतनी ही कि वह कुछ विस्मित, आश्चर्य चकित सा दीख रहा था मानो इस स्थान के लिये वह निरा अनजान हो।

गीता के १३ वें अध्याय में मनुष्य शरीर को क्षेत्र और उसमें निवास करने वाली आत्म-चेतना को क्षेत्रज्ञ कहा है और बताया है-

इदं शरीर कौन्तेय क्षेत्रमित्यभि धीयते ।
एतद्यो वेत्तितं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।।
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्रज्ज्ञानं मतंमम ।।

-गीता १३।१-२

अर्थात्- हे अर्जुन जिस प्रकार से खेत में बोये हुए बीज समय पर फल देते हैं उसी प्रकार मनुष्य का शरीर क्षेत्र है और उसके द्वारा किये गये कर्म बीज यह संस्कार रूप बीजों के कर्म समय पर, फल देते हैं । इस प्रकार प्रकृति के गुणों से भी उन्हें जानने वाला पुरुष (चेतना) तत्व रूप से दो वस्तुयें हैं यह जानने वाला (क्षेत्रज्ञ) शरीर का संस्कार जन्म चेतना से भिन्न है जो ऐसा जानता है वह फिर जन्म नहीं लेता, देवत्व को प्राप्त करता है ।

इन पंक्तियों में आत्मा के जिस पृथक् अस्तित्व की बात स्वीकार की गई है प्रस्तुत घटना उसका जीता जागता उदाहरण है यह घटना सर्वप्रथम सेन्टपीटर्स वर्ग की बीकली मेडिकल जनरल में छपी उसी के आधार पर उसे "थियोसाफिकल इन्क्वारीज" ने छापा और बाद में यह अक्टूबर सन् १८८४ में आर्य-पत्रिका में भी छपा ।

होश में आने के बाद इब्राहीम चारको ने जो शब्द कहे उन्हें सुनकर घर वाले थोड़ा चौंके क्योंकि वह भाषा घर में कोई नहीं समझ पाया । घर वालों ने अपनी भाषा में बातचीत करनी चाही पर इब्राहीम चारको ने जो कुछ कहा उसे घर का एक भी सदस्य नहीं समझ पाया । लोगों ने समझा इब्राहीम पागल हो गया । वह इसी तरह दिन भर बड़बड़ाता, शीशे में चेहरा देखता और घर से भागने की चेष्टा करता । पागलों का इलाज करने वाले डक्टर परेशान थे कि पागल होने पर मनुष्य चाहे जितना ऊलल-जलूल बोले पर बोलता अपनी भाषा है और अस्त-व्यस्त बोलता है पर इब्राहीम जो कुछ बोलता है वह सब एक ही भाषा के शब्द हैं । उसने कागज पर कुछ लिखा उसे भाषा विशेषज्ञों से पढ़ाया गया तो पता चला कि उसने जो लिखा वह लैटिन भाषा के क्रमवद्ध शब्द और वाक्य थें जो निरर्थक नहीं थे । इब्राहीम चारको को लैटिन के एक अक्षर का भी ज्ञान नहीं था यही हैरानी थी कि वह आधे घण्टे के अन्तर से लैटिन किस तरह जान गया ।

अब उसे सेन्टपीटर्स वर्ग की मेडिकल यूनिवर्सिटी में ले जाया गया । वहाँ लैटिन भाषा जानने वाले प्रोफेसर आरेलो ने उसका परीक्षण किया पहली बार इब्राहीम ने खुलकर लैटिन में बात की उसने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा- आज मैं खुश हूँ कि कम से कम मेरी बात तो सुन और समझ सकते हैं । आप यकीन नहीं करेंगे पर यह है सच भगवान जाने कैसे हुआ पर मैं ब्रिटिश कोलम्बिया (उत्तरी अमेरिका) का रहने वाला हूँ, न्यूवेस्ट मिनिस्टर में मेरा घर है । मेरी पत्नी भी है और बच्चा भी, मेरा नाम इब्राहीम ही है पर इब्राहीम चारको नहीं, इब्राहीम उरहम है । प्रोफेसर आरलो ने उस समय तो यही कहा कि यह सब जासूसी षड़यन्त्र सा लगता है । इससे अधिक वे कुछ जान न पाये इसी बीच इब्राहीम वहाँ से चुपचाप भाग निकला फिर बहुत दिनों तक उसका पता न चला । लोगों ने समझा वह किसी नदी जोहड़ में डूबकर मर गया ।

कुछ दिन बाद ब्रिटिश कोलम्बिया के अखबारों में एक विचित्र घटना छपी । ठीक उसी दिन जिस दिन रूस का इब्राहीम चारको बीमार पड़ा था । न्यूवेस्ट मिनिस्टर के एक साधारण परिवार में भी इब्राहीम उरहम नामक अँग्रेज बीमार पड़ा । न्यूवेस्ट मिनिस्टर ग्लोब में ठीक मोरन वर्ग की सीध में पड़ता है यदि कोई लम्बी कील ओरन वर्ग से घुसेड़ी जाये और वह पृथ्वी आर-पार कर जाये तो न्यूवेस्ट मिनिस्टर में ही पहुँचेगी । बीमार थोड़ी देर अचेत रहा और जब होश में आया तब यहूदियों जैसी भाषा बोलने लगा । उसने अपने बच्चों तक को पहचानने से इनकार कर दिया । इसी बीच एक दूसरा इब्राहीम न्यूवेस्ट मिनिस्टर आ पहुँचा उसकी शक्ल-सूरत रूसियों की सी थी पर वह लैटिन बौलता था और इब्राहीम उरहम की पत्नी को अपनी पत्नी बताता था । उसने बहुत सी ऐसी बातें बताईं जो केवल वह और उसकी पत्नी ही जानते थे । पत्नी ने वह सारी बातें स्वीकार तो कीं पर उसने कहा- सब बातें सच होने पर भी शक्ल में तो तुम मेंरे पति से भिन्न शरीर के हो ।

यह समाचार अखबारों में छपा तब प्रो० अरलो स्वयं ब्रिटिश कोलम्बिया आये और यह देखकर हैरान रह गये कि वह वही व्यक्ति था जिसका उन्होंने पूर्व परीक्षण किया था । आत्म-विज्ञान की जानकारी के अभाव में पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इस घटना का कुछ अर्थ न निकाल सके । रहस्य, रहस्य ही बना रह गया, किन्तु इस घटना की याद करने वाले अमरीकन आज भी आश्चर्यचकित होकर विचार करते हैं क्या सचमुच शरीर से प्रथक् कोई आत्म-चेतना है जो शरीर के व्यापार में संलग्न होकर भी मुक्त जीवन तत्व हो ? इस रहस्य का विश्लेषण भारतीय धर्म विज्ञान और तत्व-दर्शन ही कर सकता है । विविध योग साधनाओं द्वारा इस सत्य की यथार्थ ज्ञान और अनुभूति कोई भी मनुष्य प्राप्त कर सकता है ।

उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले में एक गाँव है रसूलपुर जाटान । सन् १९५८ में उस गाँव के एक लड़के जसवीर की चेचक से मृत्यु हो गयी । उस समय लड़के की आयु कोई चार वर्ष रही होगी । मृत्यु रात के समय हुई थी, अतः घर

के लोगों ने विचार किया कि उसकी अन्त्येष्टि अगले दिन की जाय । शव को एक कमरे में लिटाकर बाकी के सब लोग रात बीतने की प्रतीक्षा करते रहे ।

कुछ लोग जसवीर के शव के पास भी बैठे थे । उन्होंने देखा कि जसवीर की देह में धीरे-धीरे हल-चल हो रही है । थोड़ी देर वाद जसवीर उठ बैठा । आस-पास बैठे लोगों का हर्ष मिश्रित आश्चर्य हुआ, कुछ भय-भीत भी हुए । परन्तु कुछ समझदार लोगों के समझाने-बुझाने पर सभी ने यह मान लिया कि जसवीर पुनर्जीवित हो गया है । पूरी तरह स्वस्थ हो जाने पर घर के लोगों ने जसवीर के व्यवहार में आश्चर्यजनक परिवर्तन देखा । वह प्रायः कहता- "मैं ब्राह्मण हूँ । तुम लोगों के हाथ का बना खाना नहीं खाऊँगा । मुझे मेरी पत्नी के पास ले चलो ।"

करीब सप्ताह भर तक घर के लोगों ने काफी उपचार किया । वे समझ रहे थे कि बीमारी के कारण जसवीर का दिमाग पगला गया है । परन्तु किसी प्रकार फायदा न होते और जसवीर द्वारा समझदार लोगों की तरह व्यवहार करते देख उसके कथानुसार पास के गाँव में ले जाया गया, जहाँ कि उसने अपना घर बताया था ।

तलाश करने पर पता चला कि उसी गाँव में शोभा राम त्यागी नामक एक ब्राह्मण युवक की मृत्यु एक दुर्घटना में हो गयी थी । जसवीर अपने को वह शोभाराम ही बताया था । उसने शोभाराम की पत्नी, माँ और भाई को पहचाना तथा उन्हें स्वयं की पत्नी, माँ तथा भाई बताया । जसवीर अपने साथ आये लोगों को उस स्थान पर भी ले गया जहाँ दुर्घटना घटी थी । उस दुर्घटना में जो अन्य लोग और आहत हुए थे तथा जीवित बच गये थे, उन्होंने जसवीर के कथन की पुष्टि की ।

गीताकार ने कहा है कि-

न जायते प्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भयः ।
अजोः नित्यः शास्वतोऽयं पुराणो न हन्यतेहन्यमाने शरीर ।

वह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा होकर के फिर होने वाला है क्योंकि यह अजन्मा, नित्य शाश्वत और पुरातन है, शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होता ।

गीता के इस कथन की सत्यता आये दिन घटने वाली इन घटनाओं से प्रमाणित हो जाती है ।

प्रथम महायुद्ध के समय डान और बाब नामक दो अमरीकी मित्र सैनिक युद्ध के एक मोर्चे में साथ-साथ घायल हो गये । डान का प्राणांत हो गया । आहत बाब उपचार से ठीक हो गया । पर स्वस्थ होने के बाद वह डान जैसा व्यवहार करने लगा । वह स्वयं को डान ही कहता । युद्ध समाप्ति पर उसे छुट्टियाँ मिलीं । वह घर जाने को रवाना हुआ । किन्तु बाब के घर न पहुँचकर डान के घर जा पहुँचा । वहाँ उसके माँ-बाप को देखकर उतना ही प्रसन्न-पुलकित हुआ, जैसा डान होता था, आचरण और व्यवहार से डान से पूर्ण सादृश्य हो जाने पर भी बाब का रूपरंग पूर्ववत् ही था । डान की अपेक्षा वह कुछ ताँबई रंग का था । माँ अपने बेटे का चेहरा-मोहरा कैसे न पहचानती । उसने उसे बेटा मानने से इन्कार कर दिया । इस पर वह बाब रूपी नया डान भावुक हो उठा । भावातिरेक में स्वयं को अपमानित अनुभव करने वाले उसने अतीत की ऐसी-ऐसी नितान्त निजी और प्रामाणिक घटनाएँ बताईं कि उन माँ-पिता को विश्वास हो गया कि यह हमारा बेटा डान ही है । फिर उसकी चेष्टाएँ, रुचियाँ, चाल-ढाल सभी कुछ तो डान जैसा ही था । उन्होंने समझा, अपने बेटे की मृत्यु की जो खबर फौजी केन्द्र से हमें मिली थी, वह शायद भ्रान्ति पर आधारित हो । बाद में, छानबीन करने वालों ने इस आश्चर्यजनक तथ्य का पता लगाया और यही निष्कर्ष निकाल सके कि मृत डान की आत्मा बाब के शरीर में प्रविष्ट हो गई ।

"पायोनियर" अन्तरिक्षयान को अमरीका ने बृहस्पति ग्रह की खोज करने के लिये जब छोड़ा, उसके कई महीनों पूर्व एक अमरीकी आत्मवादी ने अपने जीवित शरीर से ही सूक्ष्म शरीर को पृथक् कर उस ग्रह की यात्रा की । इस सज्जन का नाम है- इन्गोस्वान । इन्होंने वहाँ के वातावरण, दृश्य आदि का वर्णन अपनी यात्रा के अनुभवों के बाद अमरीकी कान्सुलेट को लिख भेजा, जो उनके कार्यालय में सुरक्षित रहा । इसी बीच हेराल्ड शरमन नामक एक अन्य आत्मवादी ने भी उस एक हजार लाख किलोमीटर दूर ग्रह 'बृहस्पति' की यात्रा की । उन्होंने भी अपने विवरण दर्ज करा दिये । महीनों बाद जब 'पायोनियर-१०' बृहस्पति-अभियान से लौटा तो वह अपने साथ अतिविकसित वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा एकत्र सूचनाएँ लाया । ये सूचनाएँ, स्वान और शमन द्वारा प्रस्तुत सूचनाओं से मेल खा रही थीं । तीनों के विवरण में सादृश्य था, जबकि तीनों द्वारा एकत्र सूचनाएँ एक-दूसरे को ज्ञात नहीं थी और फिर अन्तरिक्षयान कोई मनुष्य नहीं था, वह तो वहाँ के शीर्षस्थ वैज्ञानिकों के द्वारा संचालित योजना के अनुसार भेजा गया यान था, जिसकी सभी महत्वपूर्ण गतिविधियाँ पूर्णतः गुप्त रहती हैं। महीनों पूर्व, बिना किसी उपकरण के दोनों आत्मवादियों ने एक

भी पैसे खर्च किये बिना अपनी जीवात्मा की सामर्थ्य से जो जानकारियां संचित की थीं' वे करोड़ों डलर और सैकड़ों मेधावी मस्तिष्कों के अहर्निशि श्रम के खर्च से प्राप्त सूचनाओं जैसी ही थीं ।

जब यह बात अमरीकी पत्र-पत्रिकाओं में छपी । तो वहाँ की एक विज्ञान पत्रिका के सम्पादक ने उन आत्मवादियों को चुनौती दी कि वे जरा बुध ग्रह की यात्रा करें । चुनौती स्वीकार कर ली गई ।

दोनों आत्मवादियों ने उस ग्रह की यात्रा सूक्ष्म शरीर द्वारा की । फिर पत्रिका को लिख भेजा कि 'मरक्यूरी यानी बुध ग्रह का वातावरण पतला है और वहाँ विरल चुम्बकीय क्षेत्र भी है । तब तक बुध के बारे में मान्यता यही थी कि वहाँ चुम्बकीय क्षेत्र नहीं है । उस विज्ञान पत्रिका ने उपहासात्मक टिप्पणियों के साथ उक्त विवरण छापे । बाद में "मेरीनर-१०" अन्तरिक्षयान ने बुध ग्रह की परिक्रमा की और लौटकर वही निष्कर्ष साथ लाया । अब तो विज्ञानवादी चकित हो गये ।

स्पष्टतः ये घटनाएँ भूतों की हलचलों की घटनाओं से भिन्न कोटि की हैं । मृत्यु के बाद प्रेतात्माओं द्वारा चाहे जहाँ आ-जा सकने, सताने, चौकाने आदि की घटनाएँ तो प्रकाश में आती रही हैं । देव-पितरों द्वारा सत्कर्मों हेतु सहयोग और सद्भाव भरी प्रेरणाएँ देने के प्रसंग भी सामने आते रहे हैं । मरने के बाद व्यक्ति की आत्मा स्थूल-शरीर की सीमाओं में नहीं बँधी रहती, इतना तो स्पष्ट होता रहा है । किन्तु प्रस्तुत घटनाएँ जीवित स्थिति में भी व्यक्ति में ऐसी समस्त क्षमताएँ सन्निहित होना सिद्ध करती हैं । वियना की मनःसंस्थान प्रयोगशाला और अमरीका के केलिफोर्निया की मानसविज्ञान प्रयोगशालाओं समेत विश्व के अनेक परामनोवैज्ञानिक शोध-संस्थानों में जीवात्मा की इन क्षमताओं के द्योतक उदाहरणों की निरन्तर छानबीन चल रही है और उनकी प्रामाणिकता से वैज्ञानिक आश्चर्यजनक निष्कर्षों पर पहुँच रहे हैं । वे व्यक्ति-सत्ता की विलक्षण गहराइयों और जीवात्मा की अकूत शक्तियों को मानने को बाध्य हैं ।

स्वजनों, सुहृदों से सम्बन्ध के इच्छुक-भूत

मृत्यु के उपरान्त मनुष्य के सूक्ष्म शरीर से प्रेतयोनि में बने रहने के प्रमाण भी मिलते हैं । मरने के बाद भी आत्मा अपने सम्बन्धियों से सम्पर्क बनाने का इच्छुक रहता है । आह्वान करने की पद्धति मालूम होने पर वह सम्पर्क घनिष्ट भी हो जाता है और उसमें ऐसे तथ्य जुड़े रहते हैं जिनके कारण इस सम्पर्क की वास्तविकता में कोई सन्देह नहीं रह जाता । प्रेतयोनि का अस्तित्व भी मरणोत्तर जीवन की पुष्टि करता है । स्थूल शरीर न सही, सूक्ष्म शरीर सही आत्मा का अस्तित्व तो विद्यमान रहा ही । कब्र में कैद रहने वाली-अस्तित्व प्रकट न कर सकने वाली बात-शरीर के साथ आत्मा की समाप्ति हो जाने वाली बात तो एक प्रकार से मिथ्या ही सिद्ध हो गई ।

मरने के बाद पुनर्जन्म मिलता है । इसके मध्यवर्ती समय में कुछ अवधि विश्राम के लिये मिलती है । आमतौर से आत्मायें इस काल में लम्बी जिन्दगी में अनवरत रूप से किये गये श्रम की थकान उतारती रहती हैं और गहरी निद्रा में सोई पड़ी रहती हैं । जैसे दिन भर काम करने के उपरान्त रात्रि में सो लेने के उपरान्त प्रातःकाल ताजगी आती है और नई शक्ति के साथ सिरे से उत्साहपूर्ण मनःस्थिति में काम करना सम्भव हो जाता है उसी प्रकार इस मध्यावधि विश्राम के बाद मृतात्मा नवीन जन्म धारण करके नये सिरे से पुनर्जन्म का क्रिया-कलाप आरम्भ करता है ।

इस निद्राकाल में तरह-तरह के स्वप्न आते रहते हैं । सूक्ष्म शरीर का सचेतन मस्तिष्क समाप्त हो जाता है और अचेतन का ही जीवसत्ता पर आधिपत्य रहता है । अचेतन में जैसे भले-बुरे संस्कार दबे पड़े होते हैं वे उभरकर दृश्य रूप धारण करते हुए सामने उपस्थित होते हैं । जिसने जीवन का अधिकांश भाग दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों में गुजारा है उसे उसकी प्रतिक्रिया ही भयावह दृश्यावली के रूप में दिखाई पड़ेगी । इसी अनुभूति का नाम नरक है । जिन्होंने श्रेष्ठ जीवन जिया, उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व अपनाते हुए जिन्दगी का अधिकांश समय बिताया उनके अचेतन में दिव्य संस्कार जगे रहते हैं और वे उस मरणोत्तर निद्राकाल में दिव्य स्वप्न बनकर उभरते हैं उस सुखद स्वप्न शृंखला को स्वर्ग कहते हैं । स्वर्ग नरक के सुहावने, डरावने सपने यह छाया डालने आते हैं कि भविष्य में किस दिशा में चलना उपयुक्त और किस ओर चलना अनुपयुक्त रहेगा ।

इसी अवधि में जिन्हें गहरी नींद नहीं आती-बेचैनी बनी रहती है उन्हें प्रेत स्तर का समय गुजारना पड़ता है । मरने के बाद स्थूल शरीर का अन्त हो जाता है, किन्तु सूक्ष्म शरीर यथावत् बना रहता है । प्राणी अपने आपको लगभग उसी स्थिति में उसी शरीर कलेवर में अनुभव करता है जिसमें जीवित स्थिति

में था । अन्तर इतना ही होता है कि इन्द्रियों की सहायता से जो प्रत्यक्ष स्पर्श का सुख मिल सकता था वह नहीं मिलता । तरह-तरह के स्वाद सूक्ष्म इंद्रियाँ अनुभव कर सकती हैं पर वे पदार्थ को उदरस्थ करने और उपभोग करने का वैसा रसास्वादन नहीं कर पातीं, जैसा कि स्थूल शरीर के रहते करती थीं ।

संसार के पदार्थों को वह देखता है पर वह दूसरों को वायुभूत होने के कारण दीखता नहीं । पैर या पंख न होते हुऐ भी वह उड़ या चल सकता है । दूसरों के मस्तिष्क या शरीर में अपना प्रवेश कर सकता है और उसे अपने अस्तित्व का अनुभव आवेश के रूप में घटना या दृश्य के रूप में दे सकता है । बात-चीत, वाणी या शब्दावली के द्वारा तो नहीं कर सकता पर किन्हीं व्यक्तियों या पदार्थों के माध्यम से अपनी बात प्रकट कर सकता है । प्रेत अवस्था में जीवित स्थिति की अपेक्षा कुछ कमियाँ आ जाती हैं तो कुछ विशेषतायें बढ़ जाती हैं । इन सब बातों का प्रमाण प्रेतों के अस्तित्व अथवा क्रियाकलापों के ऐसे आधारों से मिलता है, जिनकी यथार्थता तथ्यों की कसौटी पर कसे जाने से सर्वथा सत्य सिद्ध होती है ।

विश्व विख्यात 'लायफ' पत्रिका के सम्पादक जार्ज लेथम की वह लेखमाला पढ़ने ही योग्य है जो उन्होंने 'मैं परलोकवादी क्यों हूँ' शीर्षक से कई पत्रों में प्रकाशित कराई थी । उनका पुत्र जान भी फैलडर्स के मोर्चे पर महायुद्ध में मारा गया था । तोप के गोले ने उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े उड़ा दिए थे । फिर भी उसकी आत्मा बनी रही और अपने पिता के साथ सम्पर्क बनाये रही । लेथम ने लिखा है- मेरा पुत्र जौन स्वर्गीय माना जाता है पर मेरे लिए वह अभी भी उसी प्रकार जीवित है जैसे वह किसी अन्य नगर में रहते हुए भी पत्र, फोन आदि के माध्यम से सन्देशों का आदान-प्रदान करता हो । उनने अपनी मान्यता को भ्रम अथवा भावावेश जैसा न समझ लिया जाय इस आशंका का खण्डन करने वाले ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये हैं जिनके आधार पर मरणोत्तर जीवन पर सन्देह करने वालों को भी इस सन्दर्भ में प्रामाणिक जानकारियाँ प्राप्त करने और तथ्य तक पहुँचने में सहायता मिल सके ।

सर ओलिवर लाज, सर विलियम क्रुक्स की तरह ही विज्ञान क्षेत्र के अन्य प्रामाणिक विद्वान भी मरणोत्तर जीवन और आत्मा के अस्तित्व पर अन्वेषण करते रहे हैं इनमें से डा०ए०रसल वालेस और सर विलियम बैरेट के नाम भी हैं, जिन्होंने आत्मा का अस्तित्व किन्हीं किम्वन्दत्तियों अथवा पूर्व प्रचलित मान्यताओं के आधार पर नहीं वरन् उपलब्ध ठोस प्रमाणों के आधार पर ही स्वीकार किया था । इन प्रमाणों की चर्चा उन्होंने अपनी पुस्तकों में की है ।

स्काटलैण्ड के सेन्ट कुर्री नामक गाँव में एक बालक जन्मा डेनियल डगलस होम । पिता दरिद्र और बालक रोगी । बच्चे को चाची ने पाला । चौदह वर्ष की उम्र तक वह ऐसे ही तरह-तरह की बीमारियों में ग्रसित रहकर ऐसे ही दिन काटता रहा । इसी बीच उसे यह अनुभव होता रहा कोई प्रेतात्मा उसके साथ सम्बन्ध बनाती है और तरह-तरह के सन्देश पहुँचाती है । डरते-डरते उसने वे संकेत अपने घर वालों और पड़ोसियों को बताये । पूर्व सूचनायें जब सही निकलीं तो उनका विश्वास बढ़ता और अमुक समस्या का हल प्रेतात्माओं से पूछकर बताने के लिए उसका उपयोग किया जाने लगा । जो परामर्श मिलते उनमें से अधिकांश बहुत ही उपयोगी महत्वपूर्ण और अप्रत्याशित होते थे ।

सन् १८५० का वर्ष और जुलाई का महीना था । उसी चाची ने मेज पर भोजन की प्लेटें सजाई हुई थीं । अचानक प्लेटों के आपस में टकराने की आवाज आई । बाहर निकल कर उनने देखा तो पाया कि.प्लेटें टूटी हुई जमीन पर पड़ी हैं । उनने इसका कारण होम की किसी हरकत को समझा और उस पर बुरी तरह झल्लाई पर वह निर्दोष था । सिर झुकाये एक कोने में खड़ा था । उसने इतना ही कहा इसमें मेरा दोष नहीं है । चाची ने दूसरी घटना यह देखी कि टूटे हुए टुकड़े अपने आप इकट्टे हो रहे हैं और जहाँ-तहाँ बिखरे न रहकर एक कोने में जमा हो रहे हैं । यह और भी अधिक आश्चर्य जनक था । समेटने वाला दिखाई कोई नहीं पड़ता । तोड़ने वाला कोई नहीं फिर प्लेटों में यह हलचल कैसे हो रही है। होम का प्रेतात्माओं से सम्बन्ध होने की बात और भी अधिक अच्छी तरह पुष्ट हो गई ।

जब भूत-प्रेत की बात अधिक फैली तो चाची डर गई और उसने झंझट भरे होम को घर से निकाल दिया । वहाँ से वह इंग्लैण्ड चला गया । अपनी शारीरिक रुग्णता की चिकित्सा कराने के सिलसिले में उसका सम्पर्क डा०काक्स से हुआ । वे अध्यात्मवादी थे उनने न केवल रुचिपूर्वक इलाज ही किया वरन लड़के की आत्मिक शक्ति को बढ़ाने में भी सहायता की ताकि वह परलोक की आत्माओं से अधिक अच्छा सम्बन्ध बना सकने में समर्थ हो सके । इस साधना से उसे आश्चर्यजनक सफलता मिली । उसे प्रेतात्माओं का प्रमाणिक सन्देशवाहक माना जाने लगा । इस सन्दर्भ में इंग्लैण्ड के उच्चकोटि के व्यक्ति उससे अपना समाधान कराने के लिए मिलने आये और

सन्तुष्ट होकर लौटे । इन ख्यातिनामा लोगों में ईविनिंग पोस्ट के सम्पादक विलियम कुलेन ब्रामेट, प्रख्यात उपन्यासकार विलियम थेकर, प्रसिद्ध रसायन विज्ञानी सर क्रुक्स जैसे मूर्धन्य लोगों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । उसकी विलक्षण प्रतिभा के सम्बन्ध में पत्र-पत्रकाओं में कितने ही लेख घटनाक्रम के विवरणों सहित प्रकाशित हुए ।

स्वर्गीय सम्राट नेपोलियन का एक सन्देश लेकर वह २७ फरवरी, १८६० को सम्राट से मिला । सम्राज्ञी युजीन तो उन अद्भुत किन्तु यथार्थ सन्देशों से इतनी अधिक प्रभावित हुई कि पुरुस्कार में होम को लाखों रुपये के बहुमूल्य उपहार दे डाले ।

होम के पूर्व जन्म की पत्नी रूस में जन्मी थी, वह उसी से विवाह करना चाहता था । यह कठिन था क्योंकि वह लड़की रूस के शाही जनरल क्रोल की इकलौती पुत्री थी । इतने प्रतिष्ठित और सम्पन्न पिता की सुशिक्षित पुत्री एक बीमार और प्रेत व्यवसाय का उपहासास्पद धन्धा करने वाले के साथ कैसे व्याही जा सकती थी, विशेषता ऐसी दशा में जबकि दोनों एक दूसरे से परिचित भी न थे और सुदूर देशों में रहते थे । यह कठिन कार्य काउण्ट आफ मांट के प्रसिद्ध उपन्यासकार ड्यूमा ने अपने कन्धों पर लिया । उनने सन्देशवाहक की सफल भूमिका निवाही और अन्ततः ८ अगस्त, १८६० को दोनों का विवाह हो गया । दोनों ने मिलकर प्रेतात्मा विद्या के शोध कार्य को और भी आगे बढ़ाया ।

होम २१ जून १८८९ को मरा । इससे पूर्व वह अपने प्रेतात्माओं के अनुभव सन्दर्भ में एक खोजपूर्ण पुस्तक प्रकाशित करा चुका था-'लाइट्स एण्ड शैडेज आफ स्प्रिचुअलिज्म' इस पुस्तक की भारी खपत हुई और होम को अच्छी कमाई हुई थी ।

मृत्यु के समय उसकी पत्नी सिरहाने बैठी रो रही थी । होम ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा-पगली, मैं मर कहाँ रहा हूँ, शरीर छूट जाने पर भी मैं तेरे साथ बराबर सम्पर्क बनाये रहूँगा । आत्मा और कला कहीं मरा करती हैं ।

कुछ समय पूर्व इंगलैण्ड के ख्यातिनामा कप्तान डेविड के ऊपर प्रेतात्मा के प्रकोप और उससे छुटकारे की घटना का समाचार इंग्लैण्ड के प्रायः सभी प्रमुख पत्रों में छपा था । डेविड की गणना उस देश के मूर्धन्य सेनाध्यक्षों में की जाती थी, उनका विक्षप्त हो जाना और हर घड़ी भयंकर प्रेत की छाया को अपने आस-पास उपद्रव करते देखना एक असाधारण कौतूहल की बात थी । चिकित्सकों ने तरह-तरह के परीक्षण किए यहाँ तक कि मानसिक विकृत की आशंका को भी बारीकी से परखा, पर न तो उन्हें कोई शारीरिक रोग था और न मानसिक । इतने पर भी इस कदर भयभीत होना उन जैसे दुस्साहसी के लिए सर्वथा अप्रत्याशित था । वे धीरे-धीरे मरणासन्न स्थिति में जा पहुँचे थे ।

एक प्रेत विद्याविज्ञ बुढ़िया को डेविड की पत्नी बुलाकर लाई । वह आँखें बन्द करके ध्यान करती रही । पीछे उसने डेविड का चीन से खरीदा हुआ वह बहुमूल्य कोट मँगाया जो उन्हें अत्यधिक प्रिय था । बुढ़िया ने उसके अस्तर में लगे खून के धब्बे दिखाये और बताया कि एक व्यक्ति की हत्या इसी कोट को पहने हुए हुई थी । उसी आत्मा की छाया इस कोट के साथ रहती है । उसे भी यह अत्यधिक प्रिय है । वह किसी दूसरे का कब्जा इस पर नहीं देखना चाहती । जब तक कोट घर में रहेगा तब तक उस प्रेतात्मा का आतंक भी बना रहेग ।

बुढ़िया के परामर्श के अनुसार कोट उसी समय जला दिया गया और डेविड को उसी क्षण प्रेत के आतंक से मुक्ति मिल गई ।

विश्व विख्यात नर्तकी अन्नापावलोवना की मृत्यु-स्मृति में उसकी शिष्या ने एक नृत्य समारोह आयोजित किया तो उसकी मृतात्मा भी साथ-साथ नृत्य कर रही थी । दर्शकों ने उसे अपनी आँखों से देखा ।

इटली के प्रसिद्ध वायलिन वादक पागगिनी की मृत्यु स्मृति में आयोजित समारोह में मृतात्मा का प्रिय वायलिन स्वयं ही बज उठा और आवाजें आई कि मैं पागगिनी हूँ-मैं पागगिनी हूँ । दर्शकों ने इसे प्रेतात्मा समझा ।

'फेट' नामक पत्रिका में पेज नं० ४३ में श्रीमती सेना सरजेस्की का संस्मरण 'सिसकते भूत का सन्देश' छपा है । वे लिखती हैं कि वे जिस मकान में रहती थीं, उसमें कभी-कभी सीढ़ियों पर और कमरों में किसी के टहलने की आवाज आया करती थी । एक दिन उन्हें लगा कि पास ही कोई छाया खड़ी है । उन्हें स्मरण हो आया कि इस मकान में टेड अलिशन नामक व्यक्ति ने आत्म-हत्या की थी । यही सबको मालूम भी था । वे लिखती हैं-मैंने साहस करके पूछा-"आप टेड तो नहीं हैं तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब मैंने यह स्पष्ट सुना-'यस' । मैने पूछा आप कुछ बताना चाहते हैं ? पर इससे पूर्व कि कोई उत्तर सुनूँ, वह छाया गायब हो गई और फिर कई दिन बाद आई । मुझे लगा कि वह कुर्सी पर बैठ गया है । मैंने फिर साहस करके पीछा-"आप सिसकते क्यों हैं, क्या आप कुछ कहना चाहते ।" इस बार उसने बताया-"मैंने आत्म-हत्या नहीं की थी, किसी जहरीली औषधि के भूल से सेवन से यह दुर्घटना हुई । आप मेरी धर्मपत्नी को कहना, मैं अपनी

बच्चियों को बहुत प्यार करता हूँ।'' इसके साथ ही वह आत्मा वहाँ से चली गई । बाद में मैंने श्रीमती टेड से बातचीत की तो उन्होंने बताया कि निःसन्देह वे अपने साथ इन्सुलिन की शीशी रखते थे ओर उसी के द्वारा उनकी मृत्यु हुई थी । उस दिन के बाद वहाँ कोई आत्मा नहीं आई ।

शाही परिवार के लोगों का भूत सम्पर्क

इंग्लैण्ड के राजपरिवार में अशरीरी प्रेतात्माओं के अस्तित्व का चिरकाल तक अनुभव किया जाता रहा । इस सम्बन्ध में डा० लीज की लिखी ती पुस्तकें न केवल मरणोत्तर जीवन पर प्रकाश डालती हैं-वरन् राजपरिवार को इस प्रकार की क्या अनुभूतियाँ होती रहीं इसकी भी चर्चा करती हैं ।

उन दिनों राज्य सिंहासन पर पंचम जार्ज अवस्थित थे । उनकी बहिन राजकुमारी 'लुईस' सुहाग के बहुत थोड़े दिन देख पाई और विधवा हो गई । लुईस को अपने पति 'ड्यूक आफ फिफ' के प्रति गहरी अनुरक्ति थी । वह उनके दिवंगत हो जाने के उपरान्त भी बनी रही और यह सम्बन्ध सूत्र बनाये रखना दिवंगत आत्मा ने भी स्वीकार कर लिया । वे प्रेत रूप में लुईस के पास आते रहे और उनके सम्पर्क बनाये रहे। लुईस भी बहुत दिन जीवित नहीं रही । उसकी मृत्यु के उपरान्त राजकुमारी की सचिव एलिजावेथ गोर्डन ने विस्तारपूर्वक प्रकट किया-जिससे उस घटनाक्रम पर प्रकाश पड़ता है जिसके अनुसार लुईस और उनके स्वर्गीय पति का मिलन-संभाषण, सान्निध्य का क्रम कितनी घनिष्टतापूर्वक चलता रहा मानो शरीर न रहने पर भी ड्यूक का अस्तित्व यथावत् बना रहा हो ।

इससे पूर्व की एक और घटना है जो प्रेतात्माओं के अस्तित्व को और भी अच्छी तरह प्रमाणित करती है । सम्राट एडवर्ड सप्तम की पत्नी महारानी ऐलेग्जेण्ड्रा प्रेत विद्या पर विश्वास करती थी और जब तब मृतात्माओं के आह्वान का प्रयोग किया करती थी । एक बार ऐसे ही प्रयोग से इन्हें ऐसा सन्देश मिला, जिसे एक तरह का विस्फोट ही कहना चाहिए । उन्हें प्रेत द्वारा सूचना दी गई कि-'सम्राट एडवर्ड अब कुछ ही दिन जीवित रह सकेंगे, उनकी उसी कोवे में मृत्यु होगी जिसमें कि वे जन्मे थे ।'

महारानी उन दिनों विंडसर प्रासाद में थीं । उन्हें समाचार मिला कि सम्राट कि सम्राट कुछ साधारण से अस्वस्थ हैं पर चिन्ता जैसी कोई बात जरा भी नहीं है । तो भी महारानी का समाधान न हुआ । वे दौड़ती हुई पहुँचीं और देखा कि एडवर्ड बेहोश पड़े हैं । रानी को देखने के लिए उन्होंने आँखें खोलीं और प्राण त्याग दिये ।

एडवर्ड की आत्मा का अस्तित्व मृत्यु के बाद भी अनुभव किया जाता रहा । उनकी एक अन्तरंग मित्र थी-लेडी वारविक । कुछ दिन प्रेत विद्या विशारद 'एटाराइट' के माध्यम से वे लेडी वारविक पर अपना अस्तित्व प्रकट करते रहे । इसके बाद उनने सीधा सम्पर्क स्थापित कर लिया । वे अक्सर अपनी प्रेयसी के पास आते और जर्मन भाषा में वारविक के साथ अपनी अतृप्त प्रणय आकांक्षायें व्यक्त करते ।

'स्प्रिच्युअलिस्ट एलायन्स' में अभी भी एक ऐसी घड़ी ऐतिहासिक सुरक्षा के साथ रखी हुई जो मरणोत्तर जीवन के अस्तित्व की मान्यता पर राज्यपरिवार की स्वीकृति का प्रमाण देती है । यह घड़ी महारानी विक्टोरिया ने इस चक्र की सदस्या कुमारी जार्जियाना ईगल को-उनके प्रेत आह्वान की यथार्थता अनुभव करके भेंट में दी थी । कुमारी ईगल ने महारानी विक्टोरिया के सम्मुख प्रेतों के अस्तित्व और आह्वान की प्रामाणिकता के ऐसे अनेक सबूत पेश किये थे, जिनके कारण विक्टोरिया को इस तथ्य पर पूरी तरह विश्वास जम गया था सन् १९०१ में महारानी विक्टोरिया की भी मृत्यु हो गई । प्रेत आह्वान संस्थान ने उनके साथ भी सम्पर्क बनाया । संस्थान की संच्चालिका ऐटा राइट ने एक दिन स्वर्गीय महारानी की आवाज प्रत्यक्ष सुनवाई तो सभी सुनने वाले अवाक् रह गये ।

महारानी विक्टोरिया का मरणोत्तर जीवन पर प्रगाढ़ विश्वास प्रख्यात है । वे १८१९ में जन्मीं । १८ वर्ष की आयु में सन् १८३७ में राजगद्दी पर बैठीं । तीन वर्ष बाद १८४० में उनका विवाह हुआ और कुछ वर्ष बाद ही वे विधवा हो गईं । महारानी ने अपने स्वर्गीय पति प्रिय अलवर्ट से सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली । इस कार्य में उन्हें आर०डी० लीज और जान ब्राउज नामक दो प्रेत विद्या विशारदों से बड़ी सहायता मिली । स्वर्गीय अलवर्ट जीवन काल की तरह मरने के उपरान्त भी महारानी को प्रत्येक कार्य में परामर्श और सहयोग प्रदान करते रहे । विधवा रहते हुए भी उन्हें सर्वथा एकाकीपन अनुभव न होने देने के लिए स्वर्गीय आत्मा उनके साथ घनिष्ट सम्बन्ध बनाये रही ।

अलवर्ट अपनी सूक्ष्म सत्ता को स्थूल रूप से प्रकट करने के लिए डी० ब्राउन के शरीर का सहारा लेते थे । जो कहना होता वे उन्हीं के शरीर में प्रवेश करके कहते । महारानी मि०

लीज के प्रति बहुत कृतज्ञ थीं । जिनने ब्राउन के रूप में एक अधिकारी माध्यम लाकर उन्हें दिया था । प्रेतात्माऐं हर शरीर के माध्यम से अपना अस्तित्व प्रकट नहीं कर सकतीं । उसके लिए उन्हें अधिकारी व्यक्ति चाहिए । इसके लिए मि० ब्राउन सर्वथा उपयुक्त प्रमाणित हुए । लीज द्वारा उपयुक्त माध्यम की व्यवस्था की थी । सो इस सहायता के बदले में उच्च राज्य पद देने का प्रस्ताव कई बार किया पर लीज ने उसे सदा यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि-"आत्मिक जिम्मेदारियों का बोझ इतना अधिक होता है कि उसे वहन करते हुए लौकिक कार्यों को ठीक प्रकार नहीं किया जा सकता है । दोनों में से एक कार्य ही प्रमुख रह सकता है ।" राज्य पद न लेने के इस तर्क को महारानी ने उचित समझा और उनसे इसी स्तर का सहयोग लेती रहीं ।

महारानी विक्टोरिया को अपने स्वर्गीय पति का सहयोग हर कार्य में अभीष्ट प्रतीत होता था, उनके परामर्श की उन्हें निरन्तर आवश्यकता अनुभव होने लगी । परोक्ष सन्देशों के अधूरेपन और सन्देह की आशंका रहती थी । अस्तु ब्राउन के शरीर माध्यम से प्रत्यक्ष सन्देशों के आदान-प्रदान की आवश्यकता अनुभव की गई । इसके लिए ब्राउन के शरीर और अलवर्ट की आत्मा का समन्वय ऐसा उपयुक्त सिद्ध हुआ कि महारानी के दुखी जीवन में उपयुक्त सहारा मिल गया और वे इतने से भी बहुत हद तक अपने भार में हलकापन अनुभव करने लगीं ।

ईश्वर की इच्छा प्रबल ठहरी, जान ब्राउन का भी स्वर्गवास हो गया । महारानी विक्टोरिया को इससे बड़ा आघात लगा मानो उनका दाहिना हाथ ही टूट गया हो । जान ब्राउन की सुन्दर सी कब्र पर महारानी विक्टोरिया के यह उदगार लिखे हुए हैं-

'मुझे वियोगिनी और व्यथिता के लिए-वरदान स्वरूप एक विलक्षण व्यक्ति की स्मृति ।' महारानी ने उनके प्रति अपनी कथित भावनायें व्यक्त करते हुए स्वामिभक्त साथी और विश्वस्त मित्र के रूप में सम्बोधित करते हुए संवेदना व्यक्त की ।

ब्राउन के स्वर्गवास से महारानी को आघात लगा । उसे व्यक्त करते हुए उनके निजी सचिव सर हेनरी पौन सोनवी का एक वक्तव्य 'टाइम्स' पत्र में प्रकाशित हुआ । उन्होंने कहा-स्वर्गीय ब्राउन की सहायता महारानी को निरन्तर रहती थी । उनके स्वर्गवास पर साम्राज्ञी को भारी पीड़ा हुई है । इस आघात से इन दिनों वे बहुत दुर्बल हो गई हैं ।

जगद्विख्यात सामुद्रिक शास्त्र ज्ञाता कीरो के पिता का जिस समय देहान्त हुआ, उस समय उनकी शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी और इसलिए वे कुछ आवश्यक बातें बताना चाहते हुए न बता सके और उनकी जीवन लीला समाप्त हो गई । कुछ महीने कीरो संयोगवश एक प्रेत आव्हान की बैठक में जा पहुँचे और वहाँ पिता की प्रेतात्मा ने आकर उनको बतलाया कि हमारे परिवार से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण दस्तावेज लन्दन के 'डेविस एण्ड सन सालिसिटर' के यहाँ रखे हैं । उनका दफ्तर स्ट्रेण्ड में गिरजाघर के पास एक तंग सड़क पर है, जिसका नाम मैं भूल गया हूँ । तुम उनके यहाँ जाकर उन कागजातों को ले आना ।"

"दूसरे दिन कीरो उस सड़क पर पहुँचे और बहुत देर परिश्रम करने के बाद वह कार्यालय मिल गया । उसके पुराने मालिक तो मर चुके थे, पर उस कारवार को किसी अन्य वकील ने खरीद लिया था । नये मालिक ने पहले तो इतने पुराने कागजात को जल्दी ढूँढ़ सकने में असमर्थता प्रकट की, पर जब कीरो ने उसके क्लर्क को पुरस्कार देने की बात कही तो उसने पुराने बण्डलों में से आधा घण्टा मेहनत करके उन दस्तावेजों को निकाल दिया ।"

शरीर त्याग के बाद भी आत्माओं का अस्तित्व बना रहता है । यदि सम्पर्क का उपयुक्त माध्यम बन सके तो उनके साथ घनिष्ट सम्पर्क ही नहीं वरन् आशाजनक सहयोग भी प्राप्त किया जा सकता है । इस तथ्य की प्रामाणिकता में असंख्य उदाहरण उपलब्ध हैं । आवश्यकता उस विधि एवं उन तथ्यों को जानने की है । मृत्युपूर्व की आकांक्षायें स्वयं प्रेतों को इस सम्पर्क के लिए आकुल रहती हैं उचित तालमेल बैठ जाने पर प्रेतात्मा तथा सम्बन्धित व्यक्ति दोनों ही लाभान्वित होते हैं । दोनों की आकांक्षा तृप्त होती है ।

आइए! आपका प्रेतों से साक्षात्कार करायें

भूत-प्रेतों के किस्से किसी मूलतः अन्ध विश्वासियों द्वारा कहे सुने जाते रहे हैं, इसलिए वे अविश्वसनीय एवं किम्बदन्ती जैसे माने जाते हैं । किन्तु कई बार सुशिक्षित, समझदारों एवं सम्भ्रान्त व्यक्तियों की साक्षी में ऐसी घटनायें सामने आती हैं तो इनकी यथार्थता पर अविश्वास करना कठिन हो जाता है।

अमेरिका के पश्चिमी छोर पर लास ऐंजेल्स महानगर में हॉलीबुड नामक सुप्रसिद्ध फिल्म नगरी है । यहाँ कितने कलाकारों एवं संचालकों का बाहुल्य है । सभी सुशिक्षित एवं सुसम्पन्न वर्ग के हैं एवं कला की सुरुचिपूर्ण महत्ता के पक्षधर

हैं । वे लोग झूठे किस्से कहानियाँ गढ़ेंगे, भ्रान्तियाँ फैलाएँगे ऐसा मानने को जी नहीं करता ।

इस नगरी में कई मकान अभिशप्त माने जाते हैं एवं प्रेतों के उत्पात के कारण उनमें रहने को बहुसंख्य व्यक्ति सहमत नहीं होते । उनमें आए दिन ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं जिन्हें प्रेतों की करतूत के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता । इस अच्छे-खासे मोंहल्ले में मकान ढेरों खाली पड़े हैं । जिस उपनगरी में स्थान प्राप्त करने के लिए लोग तरसते हैं, उसमें कुछ मकान मात्र इसी कारण लावारिस पड़े रहें कि उनमें प्रेतों का निवास है, सचमुच आश्चर्य की बात हे ।

इस नगरी में एक नृतत्वविज्ञानी रहते हैं । नाम है-रिचर्ड सीमेंट । उन्होंने ऐसे अभिशप्त मकानों में घटित होने वाली असाधारण घटनाओं का स्वयं अन्वेषण किया है और साक्षी पें ऐसे लोगों को लिया है जिन्हें अन्धविश्वासी या अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता । इन मकानों में याद-कदा घटित होने वाले घटनाक्रमों की जानकारी इन लोगों के माध्यम से वैज्ञानिक जगत के समक्ष प्रस्तुत की है और इस बात की जाँच पड़ताल कराई है कि कोई छल-कपट तो इसके पीछे नहीं है । कई बार कौतूहल फैलाने के लिए भी कुछ व्यक्ति ऐसी अचम्भे वाली घटनाओं की चर्चा करने लगते हैं । किन्तु जब इनकी बारीकी से जाँच-पड़ताल की जाती है तो पोल खुल जाती है और कोई प्रपंच रचा गया होता है तो वह खुलकर सामने आ जाता है । इस सम्भावना के स्पष्टीकरण हेतु श्री सीमेंट ने अपने साथ लास ऐंजल्स के प्रामाणिक अखबारों के पत्रकार भी साथ लिए और हॉलीवुड के कई मकानों में समय-समय पर घटित होने वाली प्रेत लीलाओं की तर्क सम्मत जाँच-पड़ताल आरम्भ की ।

ऐसे मकानों में ९११ आक्सफोर्ड, १०००१ नार्थ ऑक्सफोर्ड ड्रइव, ११४३ सम्मिट ड्रइव, १००५० सीपाली ड्रइव, १४३३ वेलाड्रइव ९८२० ईस्टर्न ड्रइव आदि कई है, जिनमें रात्रि के समय, प्रत्यक्ष कोई प्रतिमाएँ न दीखते हुए भी उनके द्वारा किये जाने वाले कृत्यों का प्रत्यक्ष आभास मिलता है । हँसना, रोना, उछलना, कूदना, धमाचौकड़ी, वस्तुओं का उठना-गिरना सामान को बिखेरना-सिमेट देना-बटोर लेना जैसी घटनाएँ यह बताती हैं कि वहाँ अदृश्य मानवों की उपस्थिति काम कर रही है । वे या तो आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, मद्यपान करते दिखाई देते हैं अथवा गाली गलौज देते, अवांछनीय कृत्यों में निरत देखे जाते हैं । सभी कृत्य ऐसे हैं जिन्हें असभ्य, अनगढ़ बेतुके व्यक्ति शिष्टाचार का उल्लंघन करते देखे जाते हैं । उनकी उपस्थिति एवं हरकत का परिचय इस आधार पर मिलता है कि वस्तुएँ हिलती-डुलती हैं, विचित्र आवाजें आती हैं, छतों या दीवारों पर धमाचौकड़ी होने से इमारतों में हलचल का आभास होता है । फर्नीचर तथा छोटी-बड़ी वस्तुएँ लड़खड़ाती इधर-उधर हटती, इकट्ठी होती हैं । यह सब बिना मनुष्यों की उपस्थिति तथा हरकत किए बिना नहीं हो सकता । इतने पर भी आश्चर्य इस बात का है कि हरकतें करने वाले मनुष्यों की उपस्थिति का आभास मिलते हुए भी उनका दृश्य आकार नहीं प्रत्यक्षीकृत होता एवं परोक्ष पर विश्वास न करने वालों को हतप्रभ कर देता है ।

मात्र इन्हीं मकानों में ये उपद्रव किसलिए होते हैं, इसका इतिहास ढूँढ़ निकालने पर विदित हुआ है कि इन मकानों में प्रकारान्तर से भूतकाल में कभी न कभी हत्याएँ, आत्म-हत्याएँ, मारधाड़, उपद्रव, चोरी, डकैती, बलात्कार, व्यभिचार जैसे दुष्कर्म होते रहे हैं । कुख्यात अपराधियों के ये अड्डे बने रहे हैं । सम्बन्धित व्यक्ति इन दुष्कर्मों के कारण पीड़ित होते रहे हैं । उन घटनाओं की पुनरावृत्ति करने अथवा बदला चुकाने, रिहर्सल करने जैसी कोई बातें रही होंगी, जिस कारण उस प्रकार की उठा-पटक का आभास मिलता है ।

जो व्यक्ति इस उठा-पटक को देखने उन मकानों में जाते हैं, उन्हें डराने-भगाने के उद्देश्यों से उपद्रवों की गतिविधियाँ तेज हो जाती हैं और जब दर्शक लोग वहाँ से चले जाते हैं, तो उठा-पटक धीमी पड़ जाती है और लगता है कि अब वे लोग निर्भय होकर शान्तिपूर्वक अपनी हरकतें कर रहे हैं ।

जब-जब भी किन्हीं साहसी व्यक्तियों ने इन मकानों को स्थायी निवास हेतु लेने का प्रयत्न किया है, तब तब उपद्रव बढ़ गए हैं और ऐसा लगा है कि उन्हें अज्ञात उपद्रवियों द्वारा जिनकी धूमिल आकृति सामान्य मनुष्यों जैसी ही मिलती-जुलती है, उठाया-धकेला या खदेड़ा जा रहा है । ऐसे उपद्रवों के बीच किसी का ठहरना कठिन पड़ता है और जैसे-तैसे करके जान बचाते हुए भागते ही बनता है । इन परिस्थितियों में वे मकान मुद्दतों से खाली पड़े हैं । कुछ हिम्मत वालों ने चार-चार छै-छै की मण्डली बनाकर वहाँ पैर जमाने का प्रयास किया है, पर हर बार असफलता ही हाथ लगी है । फलतः सर्वत्र यह बदनामी हो चुकी है कि इन मकानों मे रहना खतरे से खाली नहीं है ।

इन मकानों में होने वाली हरकतों और सम्बन्धित पूर्व घटनाओं की खोज करने हेतु इतिहास विशेषज्ञ, नृत्तत्व विज्ञानी प्रो० रिचर्ड सीमेंट बड़ी दिलचस्पी के साथ इन्हीं मकानों के इर्द-गिर्द डेरा डाले रहते है । जिन्हें भूत प्रेतों की लीलाओं को

देखने की दिलचस्पी होती है, उन्हें इनमें से किसी मकान की चाबी मालिकों से प्राप्त कर जितनी देर हरकतें देखने की इच्छा हो, दिखाकर वापस लौटा देते हैं । प्रवेश करने वाले हिम्मत वाले रहे हैं तो बिना घबराए सब कुछ देख-सुनकर लौट आए हैं । जिन्हें डर के मारे परेशानी होती है, वह बात दूसरी है पर धक्का-मुक्की-मार-पीट जैसी हानि किसी को नहीं उठानी पड़ी ।

एक बार उनके साथ एक पत्रकार एक प्रेत ग्रस्त मकान में गए और उन्होंने जो कुछ वहाँ देखा,उसे थोड़ी देर के अनुभव को अपने अखबार में छापा भी । पढ़ने वालों के अनेकों पत्र रिचर्ड के पास आए जिनमें से अधिकांश प्रत्यक्षतः इस प्रेत लीला को देखना चाहते थे एवं परोक्ष जगत मरणोत्तर जीवन पर विश्वास रखते थे । प्रो० रिचर्ड सीमेंट के लिये तो प्रेत विद्या शोध का विषय है । दिलचस्पी रखने वालों को वे अपने अनुमान सुनाते हैं तथा प्रेतों के क्रिया-कलापों के माध्यम से अपने वर्तमान जीवन को सुधारने की शिक्षा भी देते हैं । प्रेतों से सम्पर्क साधना उनकी हॉबी के में रूप में विकसित हो गया है ।

अमेरिका की तुलना में इंगलैण्ड में प्रेतों पर विश्वास रखने वालों की संख्या अधिक है । राजघराने के समस्त पुराने किले (कैसल्स) वहाँ अभिशप्त बताये जाते हैं । ९ वीं शताब्दी से लेकर १८ वीं शताब्दी तक बने ऐसे अनेकों किले हैं जिनमें प्रेत लीला का ताण्डव नृत्य देखा-अनुभव किया गया है । ऐसा ही चिलहम नामक १२ वीं शताब्दी का बना एक किला उ० इंगलैण्ड में है जहाँ अक्सर फिल्मों की शूटिंग हुआ करती है। रात्रि में सामान्यतया वहाँ कोई नहीं ठहरता । एक बार एक नर्त्तकी किमनोवाक रात्रि विश्राम हेतु वहीं रुक गयी । उस दिन रात्रि को उन्होंने एक विचित्र धुन सुनीं और ऐसा लगा बलात् कोई उन्हें पकड़कर नृत्य करने पर विवश कर रहा हो । घबराकर वे बीच शूटिंग से लौट आईं । आस-पास वालों ने बताया कि इस किले का शासक किंग जान द्वितीय था जो दुश्मनों द्वारा पीछा किये जाते समय यहीं खाई में डूबकर ११ अक्टूबर १२१६ ई० को मर गया था । तभी से ऐसे घटनाक्रम होते रहते हैं।

विश्व विख्यात "रीडर्स डायजेस्ट" पत्र समूह की ओर से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है "फेक मिथ्स एण्ड लिजेण्डस आफ ब्रिटेन" उसमें इस प्रकार की प्रेतात्माओं का वर्णन है, जिन्हें किवंदन्ती, भ्रम या अफवाह कहकर हँसी में नहीं उड़ाया जा सकता । घटनाओं में उन प्रेतों का जिक्र है, जो अपने अस्तित्व का प्रत्यक्ष परिचय सतत् देते और अपनी उपस्थिति का भान कराते रहे हैं । पुस्तक में इंगलैण्ड के डॅारसेट स्थित सेनफोर्ड ऑरकास नामक बंगले का जिक्र है, जिसमें कितने ही प्रेतों का आवागमन बना रहता है । वे वहाँ उपस्थित लोगों से वार्तालाप भी करते हैं और जरूरत की चीजों का आदान-प्रदान भी ।

"बुक ऑफ फैक्ट्स एण्ड रिकाईस" में आल्डविक थियेटर की उस घटना का उल्लेख है, जिसमें शेक्सपियर की आत्मा कुछ समय तक डेरा डाले बैठी रही ।

ईस्टर्न इस्क्वेयर लाइन नामक वायुयान कम्पनी में एक बार दुर्घटना हुई थी, उसमें प्रायः १०० यात्री मारे गये थे । वह घटना अपने समय की चर्चा बनकर समाप्त हो गई । कम्पनी चलती रही और उसके दूसरे वायुयान उड़ते रहे । आश्चर्य यह देखा गया कि अधजले शरीर बोलती-चालती स्थिति में उसी कम्पनी के जहाजों में बिना टिकिट सफर करते पाये गये । वे अपने लिए कोई सीट सुरक्षित नहीं कराते और न कहीं एक जगह बैठते हैं । बीच की खाली जगह में ही वे प्रकट और लुप्त होते रहते हैं । कभी-कभी किसी परिचारिका की ट्रे में से कोई खाने पीने की वस्तु उठा लेते हैं । घटना की प्रामाणिकता जाँचने और उसे रोकने के कई प्रयत्न किये गये, पर उनसे को काम न चला, सिलसिला समय बीतने पर रुक गया ।

उत्तरी आस्ट्रेलिया के बिरडम नगर में श्री लेन ओमेन होटल में कुछ डाकुओं ने उर्सुला नामक युवती को लूटा और उसका गला दबोचकर मार डाला । खानापूरी के बाद लाश दफना दी गई पर उर्सुला की विक्षुब्ध प्रेतात्मा होटल पर बहुत समय तक कब्जा जमाये रही । जो भी कमरा खाली देखती उसमें वह पैर फैलाकर आराम करने लगती । होटल के नौकर किसी खाली कमरे में ताला खोलते हुए डरते थे और घंटी बजाने के बाद उसमें प्रवेश करते । उन्हें ऐसे चिन्ह मिलते मानो उसमें से कोई अभी-अभी उठकर गया है । उसने भी अपने को लूटने वाले डाकुओं से उसी होटल में बदला लिया । मारे दहशत के एक की मृत्यु हो गयी, दो ने आत्महत्या कर ली ।

इंगलैण्ड के सफांक नगर में एक बँगला है- वीलिंग हाउस । उसमें अदृश्य आने जाने वालों की हरकतें तो अक्सर होती रहती थीं, पर एक बार तो वहाँ विचित्र घटना घटी । रात को बारह बजे अचानक घंटी बजने लगी । दरवाजा खोल कर देखा गया तो बाहर कहीं कोई नहीं था । घंटी तब भी बजती रही । बिजली की कोई खराबी समझ कर उस लाइन का कनेक्शन काट दिया गया । पूरी लाइन से बिजली हट गई तो भी घंटी बजती ही रही । पूरे दो दिन तक मिस्त्री,

इन्जीनियर इसका कारण जानने और ठीक करने में लगे रहे । पर वे न तो कोई कारण समझ सके और न आवाज ही बन्द कर सके । कई दिन बाद शोर अपने आप ही बन्द हुआ ।

प्रेतों का आवागमन कब्रिस्तानों, फाँसी घरों, श्मशानों व घटनास्थलों के अतिरिक्त जहाँ अधिक मात्रा में देखा जाता है, वे हैं अस्पताल, मरने वालों में से बहुत से ऐसे होते हैं, जिन्हें अस्पतालों में ही प्राण त्यागने पड़ते हैं । वहीं देर तक उनकी लाश रखी भी रहती है । पोस्टमार्टम भी होते हैं । इन कारणों से मृतात्माओं का लगाव प्रायः उस क्षेत्र से हो जाता है । बीमारी के दोनों में भी तो वह बहुत समय यहाँ रहते हैं । असली घर की तुलना में यह अस्पताल ही मरने के दिनों में उनका घर बन जाता है । ऐसी दशा में उनका यहाँ लगाव होना आश्चर्य की बात नहीं है । संवेदनशील कर्मचारियों में से कइयों को कुछ दिन पूर्व अकाल मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति उस क्षेत्र में टहलते या कराहते दीखते हैं । यह उनकी मानसिक दुर्बलता अथवा स्थान से जुड़ी लोक-मान्यता भी हो सकती है। एण्डरवुल अस्पताल में एक नर्स थी । उसके जिम्मे बेहोशी की दवा सुँघाने का काम था । एक बार एक मरीज उसकी गलती से दवा का डोज अधिक दे दिया गयी और वह उसी कारण मर गया । नर्स को अपनी भूल पर बड़ी ग्लानि हुई। उसने अस्पताल के ही एक कमरे में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली । इसके उपरान्त उस अस्पताल में कोई भी डाक्टर बेहोशी की दवा देने आता जो मृत नर्स की आत्मा डाक्टर या नर्स के कंधे पर हाथ रख कर कानों में कहती प्रिय! असावधानी न हो ।'

लंदन के सेन्ट थॉमस अस्पताल में एक बूढ़ी नर्स उन रोगियों की असाधारण सेवा करती जो मृत्यु के मुख में जाने वाले होते । उनके प्रति वह सहानुभूति भी करती और सिरहाने बैठकर मदद करने वाली परिचर्या भी करती । पानी माँगने पर पानी लाकर देती । मल-मूत्र त्यागने की इच्छा होती तो उसकी व्यवस्था स्वयं करती । वह मात्र रोगी को ही दीख पड़ती थी। अन्य कोई पास से गुजरने पर भी उसे देख न पाता । जब कभी उसकी उपस्थिति की चर्चा होती तो अनुमान लगा लिया जाता कि दूसरे ही दिन रोगी की मृत्यु होने वाली है ।

१९ जुलाई, १९६९ के बम्बई 'ब्लिट्ज' अखबार ने बम्बई का एक समाचार छापा है । फोर्ट इलाके की एक महिला को कुछ दिन पूर्व एक बिना नाम का पत्र मिला जिसमें उसे कई तरह की धमकियाँ दी गई थीं । यह समझा गया कि यह काम किसी बुरे व्यक्ति का है महिला की सुरक्षा-व्यवस्था मजबूत कर दी गई । पुलिस का भी प्रबन्ध कर दिया गया ।

एक दिन महिला कुछ खरीदने के लिए सहकारी भंड़ार पहुँची । उसका नौकर साथ था उसने पूरी सतर्कता बरती तो भी उस महिला की पीठ पर ब्लेड के निशान पाये गये । पुलिस ने समझा यह काम किसी जेब कतरे का है जो उसके कन्धे से लटके हुए बैग को काटना चाहता होगा । उन्होंने खुफिया तौर पर निगरानी रखी पर कोई भी नहीं दीखा । दूसरे दिन भी यह स्थिति बनी रही । उक्त महिला अपने पति के साथ भ्रमण के लिए निकली तो उसकी बाँह पैरों और शरीर के दूसरे हिस्सों में ब्लेड की खरौंच पाई गईं । कपड़े कई जगह से कट गये । पुलिस घर में भी निगरानी रख रही है पर यह पहेली अन्ततः पहेली ही रही । लोगों ने अनुभव किया यह मामला भी स्पष्ट ही ''मनोगति'' अर्थात् प्रेत तत्व से सम्बन्धित है ।

जर्मनी में अनाथों को सरंक्षण प्रदान करने वाली एक विख्यात 'अनाथाश्रम संस्था' काम करती है । उस संस्था के भूतपूर्व डायरेक्टर बहुत चरित्रवान् और नेक-नीयत व्यक्ति समझे जाते थे । लिफाफे के भीतर रखे पत्र की परिभाषा तो वही जान सकता है, जिसका पत्र हो। बाहर से ईमानदारी का आवरण ओढ़े वह सज्जन अपनी आत्मा से अपने पाप छुपा नहीं सके, कोई नहीं देखता, इसलिए धन चुराया जा सकता है, रिश्वत ली जा सकती है, मिलावट की जा सकती है, पशु वध, हत्या, डकैती आदि किये जा सकते हैं, उनका यह अज्ञान शीघ्र धुल गया, जब कि मृत्यु के इस पर्दे पर तो उनकी प्रशंसा हो रही थी और दूसरे पर्दे पर वे प्रेत-योनि का कष्ट भुगतने लगे ।

भूत-योनि में पड़े संचालक को ईश्वरीय प्रेरणा से ऐसा सूझा कि आश्रम का जो धन चोरी छिपे इकट्ठा कर अपने पुत्र को छोड़ दिया है, यदि अभी भी उसे मानकर पश्चाताप कर लिया जाये तो उस दुखद प्रसंग से छूटा जा सकता है। यह विचार आते ही वह एक दिन अपनी सेविका को दिखायी दिया । बुढ़िया को अपने मकान के एकान्त में ले जाकर भूत ने एक दस्तावेज निकलवाया, जिसमें उसने अपने हस्ताक्षरों सहित यह स्वीकार किया था कि उसने बहुत-सा धन चोरी करके अपने पुत्र को दिया है, वह धन उससे लेकर संस्था को दे दिया जाय ।

बुढ़िया वह प्रमाण-पत्र लेकर वर्तमान डाइरेक्टर के पास गई । उन्होंने भूतपूर्व संचालक के लड़के से इस सम्बन्ध में पूछा तो लड़के ने कोई भी धन देने से इन्कार कर दिया ।

निदान उस दस्तावेज के आधार पर न्यायालय में मुकदमा प्रस्तुत हुआ।

लड़के के बयान लिये जाने लगे, उस समय जैसे ही उसने कहा-मुझे मेरे पिता ने कोई धन नहीं दिया । भूत की बात मिथ्या है, सब कुछ जाली है। वैसे ही उसके गाल पर ऐसे जोर का तमाचा पड़ा कि सारा कोर्ट स्तब्ध रह गया । लड़के ने गाल पर हाथ रख लिया पर कोई दिखाई तक नहीं दिया कि तमाचा किसने मारा । इसी समय एक अज्ञात काँपती आवाज भी आई-सचमुच मैंने रुपये चोरी किये थे, वह रुपये संस्था को दिये जायें ।

कचहरी में चारों ओर से पहरा था । चिड़िया भी अन्दर घुसी नहीं थी, यह आवाज सबने सुनी पर कोई नहीं देख पाया कि आवाज किसने दी थी । आखिर लज्जित होकर युवक ने बाप का चोरी किया हुआ सारा धन न्यायालय में जमा कर दिया ।

भटकती प्रेतात्मा का प्रतिशोध

ब्रिटिश शासन काल के एक अँग्रेजी डिप्टी कलेक्टर मि० क्रिग ने भारत में रहते समय के कुछ संस्मरण प्रकाशित किये हैं । उनमें एक अध्याय भटकती आत्माओं का भी है । जिस घटना का उल्लेख उन्होंने किया है, उसकी भूमिका में लिखते हैं कि यदि यह मुकदमा मेरे समक्ष न चला होता तो मैं इस घटना पर कभी विश्वास न करता क्योंकि प्रेतात्माओं के अस्तित्व पर इससे पूर्व मैंने कभी विश्वास किया ही नहीं । उनके द्वारा प्रस्तुत विस्तृत घटनाक्रम का सार संक्षेप इस प्रकार है ।

घटना जनवरी, १९३७ की है, भारत में उस समय ब्रिटिश शासन था । केन्द्रीय सरकार के भारतीय अधिकारी श्री रामास्वामी स्थानान्तरित होकर शिमला आये थे । जो बँगला उन्हें रहने के लिए मिला उसमें प्रथम रात्रि को एक महिला की छाया दिखाई दी, साथ ही घन्टों की ध्वनि सुनाई दी । इस ध्वनि को सुनते ही श्री रामास्वामी ने भयभीत होकर दूसरे ही दिन वह बँगला छोड़ दिया ।

श्री रामास्वामी के बँगला छोड़ देने के बाद वह बँगला एक दूसरे मुस्लिम भारतीय अधिकारी को 'एलाट' कर दिया गया । जब यह अधिकारी महोदय उस बँगले में रहने गये पहले ही दिन ठीक अर्द्ध रात्रि के समय एक सफेद पोश महिला दिखाई दी । जहाँगीरी घन्टों की ध्वनि उसके आने का साथ बँगले में गूँज उठी । महिला की सिसकियाँ स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ रही थीं । मुस्लिम अधिकारी उसी समय चीत्कार करते हुए बँगला छोड़कर भागे और उक्त आश्चर्यजनक घटना की सूचना पुलिस तथा उच्च अधिकारियों को दी सूचना के उपरान्त एक पुलिस इन्सपेक्टर ने कुछ सिपाहियों के साथ उस बँगले में पड़ाव डाल दिया । रात्रि के ठीक बारह बजे वही सफेद पोश महिला ऊँची एड़ी की चप्पलें पहिने दिखाई दी । पुलिस इन्सपेक्टर ने रिवाल्वर से लगातार पाँच-छः गोलियाँ उस पर चलाईं किन्तु उस पर कोई प्रभाव न पड़ा । पहले सिसकियाँ और फिर ठहाका मार हँसने की आवाज और बाद में जहाँगीरी घन्टों की ध्वनि सुनते ही इन्सपेक्टर के होश-हवाश उड़ गये । पसीने से लथपथ इन्सपेक्टर और सिपाही उस बँगले से निकलकार भाग खड़े हुए । इस घटना से शिमला ही नहीं वरन् दिल्ली की केन्द्रीय सरकार भी आश्चर्य में पड़ गई एवं इसकी जाँच के लिए उच्चस्तरीय कार्यवाही करने का आदेश प्रसारित किया गया ।

प्रेतात्मा के इस रहस्यमय स्वरूप का मजाक उड़ाते हुए अँग्रेजी सरकार ने दिल्ली से एक अनुभवी एवं साहसी इन्सपेक्टर श्री आगा के नेतृत्व में एक पुलिस दस्ता घटना की जाँच के लिए भेजा । इन्सपेक्टर महोदय ने सिपाहियों को चारों ओर तैनात कर दिया और स्वयं डाइनिंग रूम की एक कुर्सी पर बैठ गये ।

श्री आगा के कुर्सी पर बैठते ही एक विचित्र बिल्ली उनके निकट से उछलकूद मचाती कमरे में ही विलुप्त हो गई । वे भयभीत तो हुए परन्तु साहस जुटाकर अपना रिवाल्वर भरकर सचेत होकर बैठ गये । रात्रि के ठीक १२ बजे उसी सफेद पोश महिला की छाया आगा साहब को दिखाई दी । आगा ने अपना रिवाल्वर सम्हाला ही था कि छाया ने कहा "ठहरिये, आप एक चरित्रवान अधिकारी हैं, मुझ अबला पर अकारण क्रोध क्यों करते हैं । वैसे आपका यह रिवाल्वर मेरा बाल बाँका भी नहीं कर सकेगा ।"

यह सुनकर आगा महोदय सहम गयें और नम्र भाव से बोले-देवी आप कौन हैं ? क्या अपना परिचय मुझे देंगी ? छाया ने कहा-मैं एक पीड़ित नारी हूँ क्या आप मेरी पीड़ा दूर करने में सहायता कर सकेंगे ? यदि वायदा करें तो मैं आपको एक बहुत बड़ा रहस्य बताऊँ" आगा सहाब ने तुरन्त कहा-"खुदा के नाम पर वायदा पक्का, मैं आपकी पूरी सहायता

करूँगा ।'' आश्वासन पाकर छाया ने अपनी दुःख भरी कहानी कहना प्रारम्भ की ''मैं एक पहाड़ी लड़की थी । शादी से पूर्व का मेरा नाम'' आवेरी'' था । मेरी माँ वेश्या का धन्धा करती थी । मेरी सुन्दरता से आकृष्ट होकर शिमला के तत्कालीन पादरी मि० आयजिक मुझे प्यार करने लगा । मैंने इसे यीशु की कृपा समझ प्रेम को ही परमेश्वर मान मि० आयाजिक को प्यार करना प्रारम्भ कर दिया और माँ के विरोध के बाबजूद भी आयजिक से कोर्ट-मैरिज करली । आयजिक को भी अपने माता-पिता का कड़ा विरोध सहना पड़ा । यह बंगला उस समय आयजिक का ही था और हम दोनों इसी में रहते थे । मेरी माँ मुझे भी वेश्या के रूप में देखना चाहती थी किन्तु मैंने यीशु के नाम पर वैसा न करने का संकल्प कर लिया था ।''

इन्सपेक्टर आगा ने पूछा-फिर आगे क्या हुआ ? छाया ने कहा कुछ दिनों बाद मैं गर्भवती हो गई तब भी मेरी माँ ने आयजिक से सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए मुझ पर दबाव डाला क्योंकि उसकी दृष्टि में पैसे का महत्व अधिक था और मुझे प्रेम महत्वपूर्ण जान पड़ा । मैंने माँ की बात को नहीं माना । इसी बीच ''आयजिक'' के पिता का तार आया जिसमें उसे तुरन्त बुलाया गया था । आयजिक ने बताया कि यदि वह नहीं जायगा तो उसके पिता की लाखों की सम्पत्ति उसके हाथ से निकल जायेगी । अस्तु मैंने उसे प्रसन्नतापूर्वक विदा किया और बँगले में अकेली रहने लगी । लगभग दो माह बाद आयजिक आया और प्रेम प्रदर्शित करते हुए चुम्बन लेने के बहाने मेरे गले में रूमाल फँसाकर मेरी हत्या कर दी ।''

इन्सपेक्टर आगा ने विस्मयपूर्वक पूछा- ''आगे क्या हुआ, बताओ ?'' छाया ने कहा-हाँ सुनिये, मेरी लाश पीछे वाले कमरे के बीचोंबीच गढ़ी है, पलस्तर उखाड़ने पर एक पत्थर के नीचे मेरे शव के अवशिष्ट भाग अब भी मिल जायेंगे । आयजिक का रूमाल तथा जेब का कुछ सामान भी उसी में पड़े मिल जायेंगे । इन्सपेक्टर महोदय ''मैं चाहती हूँ कि आयजिक पर मुकदमा चलाकर उसे प्राण दण्ड दिलाया जाय, मैं हर प्रकार के सबूत दूँगी ।'' इन्सपेक्टर ने आवेरी के पूरे कथनों को नोट कर लिया और भविष्य में मिलने की बात कहकर वहाँ से चला गया।

एक मजिस्ट्रेट के समक्ष उसे कमरे की खुदाई की गई। एक महिला के शव के साथ एक रूमाल तथा कुछ अन्य सामान भी मिला। इतना प्रमाण मिलने पर आयजिक के विरुद्ध हत्या का मुकदमा दायर करा दिया गया । मुकदमें में आयजिक के वकील ने कहा-''यदि उक्त बयान आवेरी का है तो उसमें उसके हस्ताक्षर क्यों नहीं हैं ? इन्सपैक्टर आगा ने समय माँगा और दूसरे दिन पुनः उसी बँगले में आवेरी की छाया की प्रतीक्षा करने लगा । किन्तु छाया समय से पूर्व ही उस कमरे में उपस्थित थी, उसने गलती स्वीकार करते हुए कहा-''कागज कलम बढ़ाइए मैं हस्ताक्षर किये देती हूँ ।'' इन्सपेक्टर ने कागजकलम आगे बढ़ाये और टेबुल पर रख दिये और देखता रहा । कागज पर लिखा गया ''मैं बयान देती हूँ कि मैंने जो कथन इन्सपेक्टर के समक्ष दिये हैं वे मेरे ही हैं । उक्त बयानों में मेरे ही हस्ताक्षर हैं-हस्ताक्षर ''आवेरी''।

अगले दिन कोर्ट खुलते ही मामला पेश हुआ । वकील व जज सभी आश्चर्यचकित थे । ठीक वही हस्ताक्षर जज की फाइल में बन्द आवेरी के बयानों में भी पाए गये । पुनः बचाव पक्ष के वकील ने प्रश्न किया ''यदि आवेरी हस्ताक्षर कर सकती है तो कोर्ट में आकर बयान दे या कोई ऐसा प्रमाण दे जिससे यह विश्वास किया जा सके कि वे हस्ताक्षर आवेरी के ही हैं।''

समय माँगकर इन्सपेक्टर आगा पुनः रात्रि में आवेरी से मिलने गया और उसे सारी बात बताई तो आवेरी ने बोम्बे से भेजा गया आयजिक के पिता का तार व कोर्ट मैरिज के कागजात टेबुल पर रख दिये, आवेरी ने यह भी बताया ''आयजिक के पिता की मृत्यु हो चुकी थी, यह झूठा और फर्जी तार आयजिक ने मुझ से पिण्ड छुड़ाने के लिए बुलवाया था । मेंया स्कूल फार गर्ल्स में मेरी सीनियर कैम्ब्रिज तक की शिक्षा के कागजात देखकर भी हस्ताक्षरों को प्रामाणित कराया जा सकता है ।

कोर्ट में पहुँच कर इन्सपेक्टर आगा ने आयजिक के नाम का जाली तार व विवाह के कागजात प्रस्तुत कर दिये। आयजिक न तो यह सिद्ध कर सका कि उसने आवेरी को तलाक दी थी और न यह बता सका कि वह कहाँ है । अन्ततः आयजिक ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और उसे प्राणदण्ड की सजा सुना दी गई ।

प्राण दण्ड के निर्णय के दिन इन्सपेक्टर आगा पुनः उसी बँगले में गये । उस दिन अचानक उन्हें नींद की झपकी आगई स्वप्न में आवेरी की छाया ने उन्हें बहुत धन्यबाद दिया और कहा-''अब मेरी आत्मा को पूर्ण शान्ति मिल गई और अब इस छाया शरीर से मुक्त हो रही हूँ अतः भविष्य में आप से न मिल सकूँगी । आपके उपकार का बदला तो मैं नहीं चुका सकती । मेरी आकांक्षा है कि बैड रूम के पीछे की बगीची की ओर वाली खिड़की के नीचे एक बक्सा गढ़ा है । उसे आप खोदकर निकाल लें और अपनी धर्म पत्नी को मेरी हार्दिक भेंट के रूप में उसे दे दें ।''

इतना कहकर वह छाया विलुप्त हो गई । प्रातः होते ही इन्सपेक्टर आगा ने वह स्थान खुदवाया । वास्तव में उसमें एक बक्सा निकला जिसमें लगभग चालीस हजार के सोने जवाहरात के आभूषण और लगभग इतनी ही धनराशि की करेन्शी रखी मिली। इन्सपेक्टर आगा ने पूरी ईमानदारी से बाक्स को सरकारी खजाने में जमा करा दिया । किन्तु सरकार ने इन्सपेक्टर आगा की ईमानदारी और सफल प्रयासों के पुरस्कार स्वरूप वह पूरी सम्पत्ति उन्हीं को दे दी ।

प्रेतों का अस्तित्व और स्वभाव

हैलेन जैकब की गणना अमेरिका के मूर्धन्य साहित्यकारों में होती है । एक बार एक प्रवास के दौरान उन्हें चार महीने एक ऐसे मकान में गुजारने पड़े, जो भुतहा था । भूत के उपद्रवों और कारिस्तानियों का विस्तृत वर्णन इनने अपनी पुस्तक में किया है, यहाँ उसका सार संक्षेप प्रस्तुत है-

जिस मकान की चर्चा लेखक ने अपनी पुस्तक में की है, वह नया-नया बनकर तैयार ही हुआ था । मध्यम आकार की वह एक दो मंजिली इमारत थी और पुराने मकानों से अलग कुछ दूरी पर बनी थी । लेखक को उस क्षेत्र में यही एकमात्र खाली मकान मिला, अस्तु पत्नी सहित उसी में ठहर गये । दिन में कोई असामान्य बात नहीं हुई । रात जैकब की पत्नी हेलेन ऊपरी तल के बेडरूम में लेटी हुई थीं । जैकब स्वयं अध्ययन कक्ष में लेखन कार्य में व्यस्त थे । गर्मी के दिन थे, अतः सारी खिड़की, दरवाजे खुले पड़े थे । तभी थोड़ी देर में बगल वाले कमरे से हैलेन की आवाज आयी । वह पूछ रही थी, कि क्या वह थपकी की आवाज आपने की है ? जैकब ने समझा कि शायद टेबुल पर कलम से कोई ध्वनि उत्पन्न हुई हो, उसी के बारे में हेलेन पूछ रही है, अतः उसने कोई ध्यान नहीं दिया लेकिन पुनः उस प्रकार की ध्वनि उत्पन्न की, किन्तु हैलेन ने कहा कि उसने जो ध्वनि सुनी वह इससे भिन्न थी । वह ऐसी थी जैसी कोई सामने के ईंट बिछी रास्ते को किसी पतली छड़ी से ठोक रहा हो । जैकब ने इसे गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया और हैलेन का स्वप्न अथवा भ्रम समझकर टाल दिया । इसके बाद फिर कोई असामान्य नहीं घटा ।

दूसरी रात लेखक और उसकी पत्नी निचले तल पर थे। रात के करीब दस बजे फिर वहीं ईंट बिछे रास्ते पर छड़ी से ठोंकने की ध्वनि उत्पन्न हुई । लेखक और उसकी पत्नी टार्च लेकर तुरन्त बाहर निकले, पर बाहर बिलकुल सुनसान था । देर तक खोजबीन के बाबजूद भी किसी व्यक्ति अथवा पशु की उपस्थिति ज्ञात नहीं हो सकी । उस दिन के बाद से वह घटना बिल्कुल आम बन गई और सैकड़ों बार घटी होगी। हर बार रहस्य का पता लगाने की कोशिश की गई, पर हमेशा असफलता ही हाथ लगी ।

इस घटना के अतिरिक्त बीच-बीच में अन्य घटनाएँ भी घटती रहीं, तथा एक रात लेखक रोशनी बुझाकर बिस्तर पर लेटा ही था कि जमीन पर माचिस की तीलियाँ डिब्बे सहित गिरने की आवाज आयी । जैकब अविलम्ब उठे रोशनी जलायी और कमरे को छान डाला, कहीं कोई तिनका भी फर्श पर नहीं दीखा ।

एक अन्य रात समाचार पत्र के पन्नों के नीचे कमरे के फर्श पर फिसलने की ध्वनि सुनाई पड़ी । फिर उठकर जैकब ने कमरे की छान-बीन की, परन्तु कागज का एक टुकड़ा भी कमरे में नहीं दिखाई पड़ा ।

इसी प्रकार एक रात एक व्यक्ति के चमड़े के जूते पहनकर निचले तल के कमरे में चलने की आवाज सुनायी पड़ी ।

एक दिन हैलेन ऊपरी तल के चौके के काम में व्यस्त थीं, तभी नीचे से किसी की स्फुट आवाज आयी- "क्या ऊपर बहुत व्यस्त हैं ।" आवाज ‘उसकी एक पड़ौसन से मिलती जुलती थी । उसने तुरन्त छानबीन की । उक्त पड़ौसन ने इस बारे में जानकारी चाही, तो उसने इस सबके बारे में अपनी अनभिज्ञता जाहिर की । अब तक जितनी भी घटनाएँ घटी थीं, वह सभी छोटे स्तर की सामान्य घटनाएँ थीं ।

एक रात जैकब दम्पत्ति अपने अध्ययन कक्ष में पढ़ रहे थे कि बगल के गैरेज में किसी चीज के गिरने जैसी तीक्ष्ण ध्वनि उत्पन्न हुई । ध्वनि इतनी तीव्र थी कि एक मील के दायरे तक में स्पष्ट सुनी जा सकती थी । आवाज किसी विशाल पियानो के जमीन पर गिरने और टकराकर चूर-चूर होने जैसा था । यद्यपि उस गैरेज को इस्तेमाल लेखक दम्पत्ति किताब-स्टोर के रूप में कर रहे थे, वहाँ पर टूटने लायक इस प्रकार की अन्य कोई चीज नहीं रखी थी, फिर भी मन की सान्त्वना देने के लिए जैकब ने टॉर्च उठायी और गैरेज पहुँचे । गैरेज का हर कौना छान मारा, जमीन पर कुछ भी गिरा नजर नहीं आया । अन्ततः जैकब पिशाच की कारगुजारी समझ अपने कमरे में लौट आये । कर्ण कुहरों को विदीर्ण करने वाली यह गगनभेदी ध्वनि उस रात कुल मिलाकर तीन बार उत्पन्न हुई ।

इसके अतिरिक्त तीन अन्य अवसरों पर इस घटना की पुनरावृत्ति हुई ।

एक बार लेखक महोदय ने एक मित्र पत्नी व बच्चे उनके यहाँ कुछ दिन के लिये आये । एक रात दोनों की पत्नियाँ व बच्चे थियेटर देखने चले गये । जैकब व उनके मित्र को किसी महत्वपूर्ण विषय पर मन्त्रणा करनी थी, अस्तु दोनों घर पर रुक गये । कुछ समय में दोनों वार्त्ता में व्यस्त हो गये, तभी ऊपरी मंजिल पर, किसी के कदमों की आहट आयी । जैकब इसे अनसुनी कर गया, किन्तु मित्र महोदय से न रहा गया, उसने पूछ ही डाला । जैकब से भूत के बारे में जानकर सहसा उसे विश्वास न हुआ । सिर के ऊपर ऊपरी मंजिल पर पदचाप लगातार आ रहे थे । टॉर्च लेकर दोनों दबे कदमों से उस कमरे में पहुँचे, मगर प्रेत पहले से ही सावधान था । दरवाजे तक उनके पहुँचते ही पग ध्वनि गायब हो गई । बिजली की रोशनी में कमरे का चप्पा-चप्पा ढूँढ़ा गया, कोई नहीं था । निराश होकर दोनों लौट आये । उस रात उनकी वार्त्ता और आगे नहीं चल पायी और महिलाओं के लौटते ही वे सोने की तैयारी में जुट पड़े ।

कमरे छोटे होने के कारण अतिथि अर्थात् मित्र, उसकी पत्नी व लड़की तीनों ने एक ही कमरे में बिस्तर लगा लिये, हैलेन बगल वाले कमरे में लेखक के बिस्तर पर सो गई, जबकि स्वयं लेखक निचले तल में एक सोफा पर सो गये । अभी थोड़ी ही देर हुई होगी कि ऊपरी मंजिल पर अतिथि मित्रों की चहलकदमी और दबी आवाजें सुनायी पड़ने लगीं । कुछ देर के बाद उनकी आवाजें बन्द हो गयीं । सबेरा होते ही मित्र ने जैकब के कमरे में आकर रात की उस रहस्यमय आवाज के बारे में पूछा । लेखक चौंके और अपनी अनभिज्ञता दर्शायी । बाद में मेहमान ने जैकब को बताया कि रात उनके बिस्तर पर जाते ही गैरेज से इतनी तेज आवाज आयी मानो गैरेज की छत्त ढहकर ध्वस्त हो गई हो । हैलेन से जब इस बारे में पूछा गया, तो उसने भी अपनी अनभिज्ञता जाहिर की ।

वस्तुतः यह वही ध्वनि थी, जिसे जैकब दम्पत्ति ने पहले तीन बार सुनी थी-विशाल पियानो का जमीन पर गिरकर चूर-चूर होना, पर आश्चर्य ! कि इतनी तीव्र ध्वनि भी इस बार उन्हें सुनाई नहीं पड़ी ।

इस घटना से उनके मित्र को भी भूतों के अस्तित्व पर विश्वास करना पड़ा, क्योंकि सबेरे मित्र के साथ लेखक ने अन्य अवसर की भाँति इस बार भी गैरेज की बारीकी से छान-बीन की, मगर परिणाम पहले जैसा ही था, कोई किताब भी गिरी नहीं दिखाई पड़ी वहाँ ।

जैकब तर्क और तथ्य को मान्यता देने वाले मनीषियों में एक हैं । इन चार महीनों में घटित होने वाली घटनाओं के सम्बन्ध में वे कारण ढूँढ़ते रहे पर अन्त में इस मान्यता को स्वीकार ने के लिए विवश हुए कि प्रेत सत्ता कोई होती है और वह मनुष्यों के साथ छेड़खानी करना पसन्द करती है । जिस स्थान से उन्हें मोह होता है, वहाँ वे सूक्ष्म रूप से बनी रहती व अपने अस्तित्व का परिचय देती हैं । लोगों का किसी प्रकार का अहित नहीं करतीं पर कुछ विक्षुब्ध आत्माएँ रोगी बनाकर भगा बैठने तक की उद्यम मचा देती हैं । मरणोत्तर जीवन का अस्तित्व असंदिग्ध है, ऐसी घटनाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं ।

पाल ब्रन्टन का मृतात्माओं से सम्पर्क

मिस्र के पिरामिडों का रहस्य अभी भी वैसा ही अविज्ञात बना हुआ है जैसा पहले कभी था । फराऊ शासकों की यह कला कृत्य वास्तुकला विशेषज्ञों के लिए इसलिए रहस्यमय है कि उस क्षेत्र में दूर-दूर तक उस स्तर के पत्थर नहीं हैं जैसे कि उसमें प्रयुक्त हुए हैं । फिर वे इतने भारी हैं कि उन्हें उतनी ऊँचाई तक उठा ले जाना और फिटिंग में कहीं रत्ती भर भी अन्तर दृष्टिगोचर न होना मानवी श्रेय के लिए आज तो नितान्त असम्भव ही लगता है । इसके लिए उठाने वाली और रेतने वाली आधुनिकतम मशीनें ही कदाचित् सफल हो सकें जिनके उस जमाने में उपलब्ध होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता । फिर वे इतने रहस्यमय ढंग से विचित्र आकृतियों में बनाये गये? जबकि संसार में उससे भी सुन्दर इमारतें रही हैं । उनकी अनुकृति की जाती तो और भी सरल सस्ते और सुन्दर बन सकते थे। पर ऐसा क्यों नहीं सोचा गया, क्यों नहीं किया ? यह काफी समय तक एक रहस्य बना रहा ।

मिस्र पर जब नैपोलियन ने चढ़ाई की ओर उसे जीता तो प्रचलित क़िम्बदन्तियों के सन्दर्भ में उसने इन पिरामिडों की नये सिरे से खोज की । उनने उन्हें ज्योतिविज्ञान की शोध दृष्टि के आधार पर बना पाया । मध्याह्न रेखा और ध्रुव वृत्त का सही स्थान ढूँढ़कर ही वह स्थान चुना गया जहाँ यह पिरामिड बने हैं । उनमें जहाँ-तहाँ ऐसे छिद्र भी हैं जो ब्रह्माण्ड की झाँकी कराते हैं और ग्रह नक्षत्रों की स्थिति में जो चल अन्तर पड़ा है उसका विवरण बताते हैं ।

अँग्रेजों का शासन जब उस क्षेत्र पर हुआ तो उन्होंने कब्रों के साथ दबी हुई बहुमूल्य सम्पदा खोज निकालने और पुरातत्व विज्ञान से सम्बन्धित तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने

की दृष्टि से भीतरी भागों की खोजबीन की पर शोधनकर्त्ताओं की आश्चर्यजनक ढंग से ऐसी मृत्युएँ होती रहीं जिनका कोई प्रत्यक्ष कारण समझा नहीं जा सका । उन दुर्घटनाओं को इस खोद-कुरेद का अभिशाप माना जाता है तो भी वह क्रम साहसी लोगों ने आगे भी चलाया किन्तु अविज्ञात रहस्य या बात का वतंगड़ बना कर उन लोगों ने भी विराम लिया ।

कहा जाता रहा है कि पुरातन काल के फराऊ राजाओं की आत्मायें अभी भी पिरामिडों के अन्तराल में विद्यमान हैं और जब-तब अपने अस्तित्व का परिचय देती रहती हैं । इसकी परख करने के लिए जो लोग किसी प्रकार उनमें घुस गये और रात्रि के दृश्य देखने के लिए रुक गये, उनमें से अधिकांश मर गये या पागल बनकर लौटे हैं अभी भी उन विश्व के सात आश्चर्यों में से एक माने जाने वाले इन पिरामिडों को देखने कई व्यक्ति जाते हैं, और फोटो खींचकर या इधर-उधर चक्कर लगाकर खाली लौट आते हैं । उस क्षेत्र में रहने वाले रक्षकों या दुकानदारों के मुँह चित्र-विचित्र किम्बदन्तियाँ सुनने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता । जिन भूतों के साथ छेड़खानी करने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ती और उपयोगिता भी नहीं जान पड़ती ।

इंग्लैण्ड के विश्व विख्यात आत्मिकी एवं पुरातत्वविद् कथा लेखक पाल ब्रन्टन ने इस सन्दर्भ में एक अनोखा साहस किया और वे जान हथेली पर रखकर किसी प्रकार गहराई में बनी कब्रों में रात बिताने के लिए उद्यत हो गये । साथ में चलने के लिए उनने एक मिस्री व्यक्ति से अनुरोध भी किया और लालच भी दिया किन्तु उसने अपनी जान गँवाने से स्पष्ट इनकार कर दिया और साथ ही उन्हें भी सलाह दी कि वे ऐसा कदम न उठायें जिससे अकारण ही जान गँवानी पड़े ।

ब्रन्टन रहस्यों का पता लगाने में भी मानवी ज्ञान में एक कड़ी जोड़ने के काम को कम महत्वपूर्ण नहीं मानते थे । इसलिए वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहे और चौकीदारों से आँख बचाकर उस कक्ष में जा घुसे, जिसमें सम्राट तूतन खामेन की कब्र बनी हुई है और उसके भीतर बहुत-सा लबाजमा भी गढ़ा हुआ है ।

पाल ब्रन्टन इससे पूर्व रहस्यमयी विद्याओं की खोज करने के सन्दर्भ में भारत की यात्रा भी कर चुके थे । हिमालय की कन्दराओं तथा रहस्यमय योगियों से उनने भेंटें भी की थीं । यहाँ आने पर उनकी जिज्ञासा घटी नहीं, बढ़ी ही थी । उनने प्रत्यक्ष देखा था कि अतीन्द्रिय क्षमताएँ बहुतों में अनायास ही होती है और बहुत से उन्हें अपनी तप साधना के सहारे जागृत कर सकते हैं । यह बढ़ी हुई जिज्ञासा ही पिरामिडों में निवास करने वाली दिव्य आत्माओं के सम्बन्ध में अधिक और अधिक जानने के लिए मिस्र घसीट ले गई थी और वे पिरामिडों के सम्बन्ध में प्रचलित अनेकानेक क्रिम्बदन्तियों की यथार्थता जानने के लिए अपनी जान हथेली पर रखने के लिए तुल गये थे ।

कई दिन चक्कर काटने के उपरान्त ब्रन्टन ने भीतरी कक्ष में प्रवेश पा लिया तथा एक टार्च तथा चाय का थर्मस लेकर वहाँ एक पत्थर पर बैठ गये ।

ब्रन्टन द्वारा प्रकट किये गये अनुभवों के आधार पर जाना गया कि वे उस अन्धेरे क्षेत्र में एक चट्टान पर इस प्रकार लेट गये थे कि किसी अविज्ञात आगुन्तक को उनकी उपस्थिति का सहज ही पता न चले । थोड़ी-सी रात्रि बीतते-बीतते वहाँ उन्हें भारी ठण्ड लगने लगी जब कि वह समूचा क्षेत्र बालू तपने से गरम रहता है । कसी हुई जाकिट पहनकर उनने अपनी शीतजन्य कठिनाई का समाधान किया । थोड़ी रात्रि बीतते ही वहाँ की निस्तब्धता टूटी और भयावह आकृतियों के आगमन की सूचना मिलने लगी । घने अन्धकार के बीच भी उन आत्माओं की आकृतियाँ उभर रही थीं और हाथ कुछ न सूझ पड़ने पर भी अपनी हरकतों का परिचय ध्वनि के आधार पर देते रहे । यह क्रम कई घण्टे चलता रहा । उनका उद्देश्य इस अजनबी को डराकर भय से घबराकर विक्षिप्त कर देने या प्राण छोड़ बैठने की स्थिति तक पहुँचा देने का था । पर ब्रन्टन इतने डरपोक नहीं थे । यदि होते तो उस क्षेत्र के निवासियों द्वारा सुनाई गई अनेकों डरावनी घटना पर ही विश्वास करके इरादा छोड़ बैठते । उन्हें बड़ी से बड़ी कठिनाई सहकर भी यथार्थता को खोज निकालने की धुन थी ।

सन्नाटा छा गया । उसे चीरती हुई दो दिव्य छायाएँ प्रकट हुईं । उनमें से एक राजा प्रतीत होता था और दूसरा पुरोहित । दोनों शान्त मुद्रा में थे । उनने नवागन्तुक के आगमन का अभिप्राय बिना पूछे ही जान लिया और हाथ उठाकर सहायता करने जैसा आश्वासन दिया ।

इसके उपरान्त वे आत्माएँ उनके शरीर को तन्द्राग्रस्त बनाकर सूक्ष्म आत्मा रूप में अपने साथ ले गईं और किसी विचित्र लोक में पहुँचीं । वहाँ डरावना जैसा कुछ नहीं था, वरन् शान्ति का साम्राज्य था और वे निवासी अधिक ऊँची आत्मिक स्थिति में पहुँचने के लिए प्रयत्नशील थे । सम्भवतः मृतात्माओं में से जो विचारशील थे, आत्मिक दृष्टि से ऊंचे उठे हुए थे उनके लिए बना हुआ यह विचित्र क्षेत्र था ।

उन आत्माओं में से जो प्रमुख थीं उनने एक ही परामर्श दिया कि बाहर से अपने को समेटो और भीतर के क्षेत्र में प्रवेश करो । वहाँ वह सब कुछ मिलेगा जिसकी तुम्हें तलाश है । दिव्य क्षमताओं की उपलब्धि के लिए बाहर के किसी का आश्रय लेने की अपेक्षा यह कहीं अधिक सरल है कि अपने को समझा जाय और उसका परिशोधन किया जाय । इतना संक्षिप्त और सारगर्भित मार्गदर्शन पाकर ब्रन्टन, जैसे विद्वान का समाधान हो गया ।

वे वापस शरीर चेतना में लौट तो उस क्षेत्र में विद्यमान डरावनी आत्माएँ भयभीत करने की स्थिति में नहीं थीं । हलचलें उनकी चल रही थीं पर वह सब कुछ सामान्य प्राणियों की स्वाभाविक उछल-कूद जैसा लगता रहा । भोर होते ही जैसे ही पिरामिड का फाटक चौकीदारों ने खोला, वे बाहर निकल आये और नया दृष्टिकोण लेकर वापस लौटे कि प्राणी चाहे जीवित स्थिति में हों या मृतात्मा के रूप में, अपने स्वभाव के अनुरूप ही आचरण करते रहते हैं । उनसे न अधिक लाभ मिल सकता है, न हानि की सम्भावना है । अपनी आत्मा ही सब कुछ है ।

चर्च के पादरी भी प्रेत बाधा की चपेट में

एक समय ऐसा था जब कि लंदन शहर के सेंटपाल चर्च के पादरी रेवरेण्ड डोगलस बीन को इन बातों पर तनिक भी विश्वास नहीं था कि भूत बाधायें मनुष्यों पर अपना आधिपत्य जमा सकती हैं । वे प्रायः इस प्रकार की बातों पर कहते कि यह मामला मूलतः मनः चिकित्सकों का है । मार्च १९७४ में उनका ध्यान एक तरुण युवती की ओर आकर्षित किया गया, जो कि यद्यपि चर्च में प्रार्थना के लिये तो नहीं आती थी किन्तु चर्च की सीमा में ही रहती थी और बहुत दिनों से मुख्य अस्पताल में मनः चिकत्सकों द्वारा हिस्टीरिया का उपचार करवा रही थी । मनः चिकित्सक परेशान थे । रोगिणी के कथन के अनुसार जब उसे हिस्टीरिया का दौरा पड़ता उसको कई दुरात्माऐं आकर बुरी तरह से तंग करती हैं और मार डालने का प्रयत्न करती हैं । पादरी बीन ने पहिले से उस युवती से मिलकर सच्चाई का पता लगाया । फिर चर्च के अन्य अधिकारियों से विचार विमर्श के पश्चात् उन्होंने उस पर एक परम्परागत प्रयोग करने का निश्चय किया । उन्होंने जिस मकान में वह युवती रहती थी, उसका इतिहास ज्ञात किया तो मालूम हुआ कि वह मकान दर्दनाक घटनाओं से सम्बन्धित रहा है । उसमें पूर्व में दो लोगों की हत्या की गई है और उस युवती के कमरे में एक व्यक्ति ने आत्महत्या की है । पादरी ने अपने कर्मकाण्डों के द्वारा एक पवित्र वातावरण बनाया । फिर प्रभावशाली ढंग से कुछ मंत्रों का उच्चारण किया इससे प्रभावित होकर वह युवती तड़प कर, चीखी और पृथ्वी पर धड़ाम से गिर गई । उसके बाद उस युवती को फिर कभी वैसी तकलीफ नहीं हुई किन्तु पादरी महाशय बीन, जो कि आधुनिक विचारधारा के एक बुद्धिमान व्यक्ति थे, ने उसी शाम को अपने आपको एक भंयकर, असहनीय मस्तिष्क की वेदना से ग्रसित पाया । वेदना के साथ उनकी नाक में से रक्त का प्रवाह भी होने लगा। कुछ दिनों तक चिकित्सा करवाने पर जब उन्हें लाभ नहीं हुआ, तब उन्होंने एक अन्य पादरी से उन पर एक मंत्र-तंत्र का प्रयोग करने को कहा । प्रयोग सफल रहा और उन्हें अपनी व्याधि से छुटकारा मिल गया ।

इस प्रकार की घटनाओं ने दोनों रोमन केथालिका और प्रोटेस्टेंट पादरियों को असमंजस भरे वातावरण में डाल दिया। उस समय वातावरण से भूत प्रेतों की बाधा और उन पर मंत्र तंत्र का प्रयोग की चर्चा एक आम बात थी पर इन पर विश्वास न करने वाले जब इस प्रकार के रोगियों को मनः चिकित्सक के पास ले जाते तो वे उन्हें हिस्टीरिया ही बताकर एक गलत निदान करते । प्रश्न यह उठा कि आधुनिक तर्क प्रधान युग में चिकित्सा पद्धति क्या हो ?

पोप पायस ६ ने अपने एक वक्तव्य में भूत-प्रेतों की सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार किया था । एक्सेंटर के बिशप राबर्ट मार्टीमेर ने एक कमीशन का गठन किया और उनसे सुझाव माँगे कि चर्चों की विक्षुब्ध प्रेतात्माओं के प्रति क्या प्रतिक्रिया होनी चाहिए और क्या मंत्र-तंत्र का प्रयोग इन पर उपयोगी सिद्ध होगा ?

कमीशन ने अपनी रिपोर्ट १९७६ में पेश की जिसके अनुसार उन्होंने एक मृतक से प्रेतात्माओं के अस्तित्व को स्वीकार किया और उसके लिये मंत्र-तंत्र की उपचार प्रक्रिया को आवश्यक बताया । उन्होंने सुझाया कि अलग-अलग सीमाओं का निर्धारण कर उसमें अलग-अलग तांत्रिकों की नियुक्ति उनके प्रशिक्षित होने के बाद की जानी चाहिये । नियुक्ति केवल बिशप ही परख कर करें और इसमें अन्य चर्चों का सहयोग भी लिया जाना चाहिये । उनका मत था कि इस प्रक्रिया की पुष्टि करने से उनका उद्देश्य जनसाधारण को भयभीत नहीं कराना है बल्कि उस परोक्ष जगत की सत्ता को स्वीकार करने हेतु सहमत करना है, जिसे प्रायः बुद्धिजीवी वर्ग नकारते देखा जाता है । इस

रिपोर्ट के बाद इंगलैण्ड में एक विवाद सा उठ खड़ा हुआ । प्रगतिशील बुद्धिजीवियों का कहना था कि जहाँ विज्ञान प्रगति की नयी मंजिलें छूता चला जा रहा है वहाँ इस प्रतिपादन, अंध-विश्वासों-मूढ़मान्यताओं को ही बदल देंगे । इसका प्रतिवाद एक ब्रिटिश पेस्टर जॉन एम्बुरी ने करते हुए कहा कि उनका उद्देश्य मात्र मंत्र शक्ति की महत्ता को प्रमाणित करना है । उनका मत था कि विक्षोभ-संक्षोभ ही अन्तर्द्वन्द्व बनकर व्यक्ति को प्रताड़ित करते एवं विभिन्न व्याधियों को जन्म देते हैं । यदि मनुष्य का सर्वांगपूर्ण उपचार करना है तो विज्ञान को थोड़ा उदार बनकर परोक्ष जगत के क्रिया-कलापों को, घटनाओं, प्रमाणों के आधार पर स्वीकार करना ही होगा । प्रेत होते हैं कि नहीं, प्रश्न इस बात का है कि ऐसे घटनाक्रमों का वैज्ञानिक समाधान क्या हो ?

जेफ्री बेल नामक एक पादरी को रॉवेन्स थोर्प की एक परियोजना द्वारा विनिर्मित नये मकानों में रहने वाली कुछ महिलाओं ने शिकायत की कि उन्हें विचित्र आकार के भूतों की अजीब सी आवाजें सुनाई देती हैं और उनकी रीढ़ की हड्डियों में बड़ी ही ठण्डी सिहरन पैदा होने लगती है । पादरी बेल ने रविवार के दिन प्रत्येक मकान में एक एक पवित्र क्रास पहुँचवा दिया और कहा कि वे उस क्रास को अपने सोने वाले कमरे में दीवार पर टाँग दें । इसके बाद प्रत्येक मकान पर जाकर आशिर्वचन पढ़े । इसके पश्चात भूतों का उपद्रव शान्त हो गया । टकुल्ला के चिरपरिचित फिक्शन्स में दुरात्माओं से जूझने हेतु पवित्र चिन्ह का ही प्रयोग किया जाता है ।

लीड्स नामक एक औद्योगिक नगर जो कि इंगलैण्ड के उत्तर में स्थित है, में एक कई फ्लेटों वाले विशाल भवन का निर्माण हुआ था । परन्तु जैसे ही कुछ लोग उनमें निवास के लिये आये उन्हें भूत बाधाओं द्वारा सताया जाने लगा, पुनः उपचार प्रक्रिया करने पर उन्हें शान्ति मिली ।

भूत बाधाएँ कार जैसी मशीनों के साथ भी खिलवाड़ कर सकती हैं, इसका एक उदाहरण- सिल्वर एण्ड के जार्ज बेकर के साथ हुई एक घटना के रूप में मिलता है । जार्ज बेकर एक दिन गर्मी के मौसम में शाम के समय अपने एक मित्र के साथ अपनी पुरानी कार में घूमने प्राकृतिक दृश्यों की सैर के लिये निकले । वे अपनी कार को रोक कर इंजन बन्द कर उतरने को ही थे कि एक नारी की हँसी जो कि कार की पिछली सीट पर से सुनाई दी थी, ने उन्हें कँपा दिया । उनके मित्र ने भी यह आवाज सुनी एवं आवाज के साथ ही एक जोर की ठंडी हवा ने उन्हें झकझोर दिया । गर्मी के मौसम में शीत वायु की आशा भी नहीं की जा सकती थी । बेकर भयभीत हो मित्र के साथ किसी प्रकार वापस घर पहुँचे । उन्होंने सारा वृतान्त पादरी आन्थानी मेयस्ट्रोन को सुझाया जिन्होंने उनकी कार पर पवित्र जल से अभिसिंचन किया और कुछ मंत्र भी पढ़े । फिर वैसी हँसी कभी सुनाई तो नहीं दी किन्तु अपने आन्तरिक भय के कारण बेकर ने वह कार बेच दी । फिर ऐसी घटना उनके साथ कभी नहीं घटी ।

जे०सी० नेलस्मिथ लंदन के एक गाँव हेमस्टीड के सेंट सेवियर चर्च के पादरी थे । लंदन के बिशप ने उन्हें कहीं भी आवश्यकता पड़ने पर अपने मंत्र-तंत्र का लाभ लोगों को देने के लिये जाने का अधिकार दे रखा था । उनका नाम दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया था । उन्होंने अपने मंत्र-तंत्र का उपयोग अनेक बार सफलतापूर्वक किया । यद्यपि उनकी भूत उतारने की विधि को लेकर उनकी आलोचना भी हुई फिर भी उनके पास आने वालों का ताँता लगा ही रहता था । वे लोगों को घुटने के बल खड़ा करते और कुछ मंत्र पढते हुए उसे पवित्र जल से अभिसिंचित करते । थोड़ी छटपटाहट के बाद व्यक्ति शान्त हो जाता । भूत बाधा से मुक्ति पाने के लिये अनेक देशों से अनेक जाति के लोग वे उनके पास आया करते थे । एक बार उन्होंने एक ऐसी महिला को, जो स्वयं प्रेत बाधा का उपचार करने का दावा करती थी, इस प्रकार की विपत्ति में फँसने पर मुक्ति दिलाई । उनके मंत्रोपचार के फलस्वरूप वह औरत जोर से चीखी और तड़प कर गिर गई और शान्त हो गई । फिर वह उठी और भागकर मेरी की प्रतिमा के पास गई और आँसू बहाने लगी । उसे फिर किसी विक्षुब्ध आत्मा ने तंग नहीं किया । उसने इस प्रकार के हस्तक्षेप करना बन्द कर दिया ।

अमेरिका के डीन मेक्से के अनुसार प्रेतों से निपटने के लिये मंत्र-तंत्र आवश्यक हैं । इसके लिए आधार उन्होंने पूर्वार्ध दर्शन का दिया है । एक अमेरिकन युवक जो कि वियतनाम युद्ध से लौटा था, पर बुरी आत्माओं ने अपना प्रभाव डाल रखा था । उनको उनसे मुक्ति दिलाने के लिये मंत्र-तंत्र ही आवश्यक और उपयोगी था । उनने ऐसे कई व्यक्तियों को रोग मुक्त किया । आज अमेरिका भूत प्रेत जन्य व्याधियों से इतना अधिक परेशान है कि उतना कभी पहिले वियतनाम युद्ध विभीषिका से भी परेशान नहीं था । यद्यपि वैज्ञानिक प्रगति अपनी चरम सीमा पर है, तथापि चिकित्सक ऐसी सम्भावनाओं को नकार नहीं पाते ।

डॉ बिल्ली ग्राह्म का मत है कि विक्षुब्ध प्रेतात्माएँ मनुष्य को परेशान अवश्य कर सकती हैं किन्तु वह मनुष्य को अपने वश में नहीं कर सकतीं । एक अन्य पादरी डोम रार्बट पेटिटपिरे

का मत है कि प्रेतात्माएँ आदमी के विचारों को भ्रष्ट कर सकती हैं किन्तु वे मनुष्य पर अधिकार नहीं कर सकती ।

एक लिबरल केथोलिक पादरी का कहना है कि कुछ साधारण घटनाओं को अपने पत्र की प्रसिद्धि के लिये कुछ समाचार पत्र विज्ञापित कर देते हैं । कभी-कभी लोग मानसिक बीमारियों को भी भूत बाधा से सम्बन्धित कर देते हैं । अतः प्रत्येक घटना को अच्छी प्रकार परख कर ही विश्लेषण व निदान किया जाना चाहिये । पादरी जेसफ ब्रिटिन का मत है कि आने वाले लोगों में केवल १० प्रतिशत ही भूत बाधाओं से त्रस्त पाये जाते हैं । जबकि ९० प्रतिशत मानसिक विकारों से पीड़ित होते हैं ।

वस्तुतः दिखाई न पड़ने व विज्ञान के आधार पर मरणोत्तर जीवन का अस्तित्व नकारने का कारण ही अनेक प्रकार के मनोविकारों का सही निदान नहीं हो पाता । हम अन्धविश्वासी तो न बनें न ही ऐसी मान्यता को पनपने दें । पर यह तो कर ही सकते हैं कि भावनात्मक संक्षोभों-विक्षोभों का सही उपचार क्रम सोचें । मनो-आध्यात्मिक विश्लेषण से लेकर विस्तृत मनः विश्लेषण के रूप में इसका शुभारंभ कर तद्नुसार चिकित्सा की व्यवस्था बनाई जाय तो कई व्यक्तियों को अनावश्यक बिजली का झटका लगने (ई०सी०टी) अथवा अनगढ़ ओझाओं के फंदे में पड़ने से बचाया जा सकता है ।

भूत एक भ्रम भी, एक वास्तविकता भी

चिरकाल से प्रचलित एवं बहुसंख्य व्यक्तियों से व्यवहृत मान्यताएँ मस्तिष्क के चारों ओर एक घेरा बना लेती हैं और एक सच्चाई का तरह प्रतीत होने लगती हैं । मनुष्य की विचार तरंगें पृथ्वी पर छाये आयन मण्डल की तरह ही मस्तिष्क के चारों ओर एक आयडियोस्फियर बना लेती हैं जो अपना प्रभाव सतत् मानवी चिन्तन पर डालता रहता है । वैज्ञानिकों का कथन है कि हर व्यक्ति अपना विचार मण्डल (आयडियोस्फियर) बनाने के लिये पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र है । वह चाहे तो इसे विधेयात्मक रूप देकर मनःशक्तियों को विकासोन्मुख कर सकता है, साथ ही निषेधात्मक विचार प्रवाह उसे पतन के गर्त्त में भी धकेल सकते हैं । लेकिन इसी आयडियोस्फियर से सम्बन्धित एक और प्रकरण ऐसा है जो दैनन्दिन जीवन क्रम में मानवी व्यवहार में देखने को मिलता है । वह है-कुकल्पनाओं से गढ़ा हुआ विचित्र जगत जिसमें भूत-पलीत, डायन-चुडैल आदि बसते हैं । वंश परम्पराओं से विभिन्न समाजों में देवी-देवता पूजे जाते रहते हैं । उनके वंशधर वैसा ही देखते-सुनते रहते हैं जो उन्हें उनके बड़े-बूढ़ों ने बताया है । उनकी कथा-गाथाएँ घरों में चला करती हैं । इन कथनोप-कथनों से उनके अस्तित्व और क्रिया-कलाप की पुष्टि होती रहती है और फलतः छोटेपन से ही उन मान्यताओं को इतनी मजबूती से पकड़ लेते हैं कि वे लगभग सच्चाई जितनी गहराई तक मनःक्षेत्र में अपनी जड़ें जमा लेती हैं । मान्यताएँ जड़ें पकड़ लेने पर सच्चाई बन जाती हैं अथवा सच्चाई बहुत दिनों तक कार्यान्वित होते रहने पर लोक-मान्यता बन जाती है, यह कहना कठिन है । सन्देह इसलिये उठता है कि विभिन्न स्थानों पर कितनी ही मान्यताएँ एक दूसरे से सर्वथा विपरीत होते हुए भी सच्चाई समझी जाती हैं । विशेषतया यह बात देवी-देवताओं के सम्बन्ध में-भूत-प्रेतों के सम्बन्ध में विशेष रूप से लागू होती है । अवास्तविकता की ऐसी प्रतिक्रिया जो वास्तविकता से किसी भी प्रकार कम नहीं होती, आश्चर्यजनक है । साथ ही जिन क्षेत्रों में जो भूत-प्रेत माने या देवी-देवता पूजे नहीं जाते रहे हैं, वहाँ उनके सम्बन्ध में चर्चा की जाय तो उन बातों की मजाक उड़ा दी जाती है और अविश्वास व्यक्त किया जाता है । इसके विपरीत जिन परिवारों में जो देवी-देवता माने या पूजे जाते रहते हैं वहाँ उनके अस्तित्व के बारे में सन्देह उत्पन्न करने वाली बातें सर्वसाधारण द्वारा उपहास में उड़ा दी जाती हैं एवं आक्रामक प्रतिरोध भी किया जाता है ।

ऐसी ही और भी कितनी ही मान्यताएँ हैं । उदाहरणार्थ, जैन धर्म के अनुयायिओं के सम्मुख देवताओं द्वारा बलि माँगे जाने और न देने पर रुष्ट होने की बात कदापि गले न उतरेगी इसके विपरीत आदिवासी-वनवासी लोग तनिक-तनिक सी बात की भूल में भूत का आक्रोश समझते और उसके निराकरण के लिए पशुबलि ही एक मात्र उपाय मानते हैं । दोनों ही अपने-अपने पक्ष में इतने कारण प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं कि अपने स्थान पर दोनों ही सही प्रतीत होते हैं । यदि ऐसा न होता तो अपने क्षेत्र को सही सिद्ध करने के लिए वे इतना जोर ही क्यों देते और विपरीता प्रकट करने पर आक्रोश क्यों व्यक्त करते ?

सत्य क्या है ? अभी तक इसका सही विवेचन नहीं हो सका। अन्तःकरण जैसे-जैसे उदार और निर्मल होता जाता है, वैसे-वैसे सत्य की उदात्त परिभाषा होने लगती है । मान्यताओं का आवरण हट जाता है । किन्तु साथ ही यह बात भी सच

है कि यदि अन्तरात्मा का स्तर गिरने लगे, दुष्टता का पक्षधर बनने लगे तो भी कुकर्म करते समय कोई ग्लानि न अनुभव होगी । वरन् वह कार्य हर दृष्टि से सही प्रतीत होने लगेगा । जिनका कार्य प्रतिदिन ढेरों जीवों की हिंसा करते रहना है, उन्हें अपना कार्य कुछ ही समय पश्चात् स्वाभाविक मनोरंजन ही नहीं, उपयोगी भी प्रतीत होने लगता है । वे तब अपने कार्य के पक्ष में ऐसी अपीलें देतें हैं जिससे तार्किक दृष्टि से अपनी बात का औचित्य भी ठहराया जा सके ।

यहाँ चर्चा भूत-पलीतों के सम्बन्ध में हो रही है । जिक्र चल ही पड़ा तो मनुष्य जैसे स्वभाव एवं आकृति प्रकृति के भूत-पलीतों को भी देवी-देवता कहा जा सकता है । बड़े रूप में देखा जाय तो अति सामर्थ्यवान प्रकृतिगत शक्तियों को भी देवता का रूप दिया जा सकता है-जैसे सूर्य, चन्द्र, पवन, अग्नि, वरुण आदि ।

संसार में अनेकों प्रकार की अनेकों क्षेत्रों में अनेकानेक मान्यताएँ प्रचलित हैं और उन सभी के अभ्यस्त अनुयायी अपनी बात पर उतना ही जोर देते हैं मानो पूर्ण सत्य की जिम्मेदारी या ठेकेदारी उन्हीं के हिस्से में आई हो । यदि ऐसा न होता तो धर्म सम्प्रदायों के नाम पर अब तक जो लम्बे समय से भयानक रक्तपात होता रहा है, वह क्यों होता ? इतनी गुंजाइश या सहनशीलता किसी भी धर्म में नहीं है, जो यथार्थता का पता लगाने के लिए अपनी मान्यता का भी एक पक्ष मानने की उदारता बरत सके । हर धर्मावलम्बी अपने मन्तव्य को पूर्ण सत्य और अन्यान्य मतावलम्बियों को भटके हुए मानकर पूर्वाग्रहों से भरकर विवाद क्षेत्र में उतरना चाहता है । यहाँ कठिनाई एक ही है कि पूर्वाग्रहों के आधार पर जमी हुई मान्यता इतनी प्रबल होती है कि अपने सिवाय अन्य किसी के तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण को वह गम्भीरता से लेना नहीं चाहती। फलतः शास्त्रार्थ का कभी कोई निर्णय नहीं निकलता, मात्र वितण्डावाद बनकर रह जाता है ।

चर्चा का मूल विषय सूक्ष्म शरीर है । शरीर का अन्त हो जाने के उपरान्त आत्मा का अस्तित्व शरीर के रूप में रहता है या नहीं अथवा शरीर रहते हुए भी कई आत्माएँ अपने सूक्ष्म शरीर से असम्भव समझे जाने वाले प्रत्यक्ष क्रिया-कलाप कर सकती हैं या नहीं, इसके लिये तर्क, तथ्य का कौन-सा आधार अपनाया जाय ? मूल प्रसंग यही है । अपना पक्ष प्रस्तुत करने पर भी इन पंक्तियों के पाठकों ने कई मान्यताएँ दृढ़तापूर्वक अपना ली होंगी तो फिर वे उन्हीं पर हठधर्मी बने रहेंगे और सूक्ष्मीकरण प्रसंगों को उथली कल्पना भर मानते रहेंगे ।

मान्यता का सत्य ही एक विशेष प्रकार का सत्य है, जो लगभग पूर्ण सत्य के समतुल्य ही जा पहुँचता है । हो सकता है कि पुराना मत बदलने पर पूर्वाग्रहयुक्त सभी तर्क गलत भी प्रतीत होने लगें पर जब तक उन पर हठधर्मिता का आवरण है तब तक तो वे उनकी अपनी दृष्टि में पूर्ण सत्य ही प्रतीत होंगे । न केवल प्रतीत होंगे वरन् परिणाम भी वैसे ही प्रस्तुत करेंगे । यह श्रद्धा का क्षेत्र है । श्रद्धा जब सृजनात्मक एव सघन होती है, तब वह जैसी है, अपने साथ वातावरण, परिस्थितियाँ एवं घटनाएँ भी बदलकर रख देती हैं ।

''शंका डायन मनसा भूत'' की उक्ति पूरी तरह सत्य है । यदि मरघट की, समीपवर्ती झाड़ी की मान्यता भूत-चुड़ैलों से जुड़ी हुई हो तो उधर से निकलने पर हिलती हुई पत्तियाँ भी असली डायन की तरह खूँखार प्रतीत होंगी और उस व्यक्ति को भयाक्रान्त कर देंगी । मन में भूत उत्पन्न होना भी उतना ही सत्य है । रात्रि के निविड़ अन्धकार में जग रहे व्यक्ति को पूर्व मान्यतानुसार दरवाजों या खिड़कियों का खड़खड़ाना भी भूत द्वारा की गयी गड़बड़ी का प्रमाण देता है । अब तक भूत-प्रेतों के चंगुल में फँसे सहस्रों व्यक्ति जीवन गँवा चुके हैं, तान्त्रिकों के चंगुल में फँसकर धन, स्वास्थ्य एवं मनोबल खो चुके हैं । उनके मिथ्या विश्वास ने ही उन्हें असली भूत की उपस्थिति की तरह डरा दिया पर वह डर उनका जान लेकर ही विदा हुआ ।

भूत वस्तुतः होता है या नहीं, यह शोध का विषय है पर पिछड़े वर्गों में जो भूतोन्माद की बीमारी पाई जाती है उसके मूल में कुछ तो उनके मिथ्या विश्वास ही जड़ जमाए बैठ होते हैं, कुछ अवसर आ पड़ने पर आसपास के वातावरण के कारण भूत रूप में उन पर छा जाते हैं । वे ऐसा व्यवहार करने लगते हैं, मानो भूत उन पर सवारी गाँठकर कुछ कहलवा रहा हो या करा रहा हो । यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति मिथ्या विश्वास पर अबलम्बित होते हुए भी रोगी को जीवन भर आतंकित किए रहती है । यह शोधकर्त्ताओं का विषय है कि वे देखें कि कोई भूत था भी या नहीं । केवल विश्वास और पूर्वाग्रह ही स्वसम्मोहित करके रोगी के लिए घातक स्थिति उत्पन्न करने न लगें ।

प्रश्न यहाँ शोध का ही नहीं, इसका भी कि ऐसी स्थिति में फँसे हुए रोगी के प्राण बचाने के लिए क्या किया जाय? उत्तर एक ही है-काँटे से काँटा निकाला जाय । भूत-प्रेत भगाने

वाले कई तरह के उपचार करते हैं व जताते हैं कि भूत को पकड़कर घड़े में या बोतल में बन्द कर दिया गया और उसे कहीं जमीन में गाड़ या जला दिया गया । इससे रोगी को विश्वास हो जाता है कि भूत सचमुच ही नष्ट कर दिया गया एवं उसे राहत मिलती है । यदि रोगी समझदार है और वस्तुस्थिति समझाई जा सकती है तो उसे यह समझाया जा सकता है कि आत्म-विश्वास, स्वसम्मोहन कितना जबरदस्त तथ्य है और किसी को भ्रमित कर काया व मस्तिष्क की यह क्या से क्या दुर्गति कर सकती है ।

फ्रान्स के एक राजा ने मृत्युदण्ड पाए रोगी को मनोवैज्ञानिक एवं विचित्र ढंग से फाँसी दी । उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी गई एवं एक पात्र से जल टपकाते हुए सुई चुभोकर कहा कि तुम्हारी एक नस काट दी गयी है । जल के गिरने की आवाज को उसने इतना स्वाभाविक समझा कि इतना भर कहे जाने पर कि तुम्हारा रक्त धीरे-धीरे निकल रहा है, वह भयाक्रान्त होकर मौत को प्राप्त हो गया । एक व्यक्ति को एक जहरीले साँप ने काटा । जिसने देखा उसने कह दिया, जरा सी खरोंच भर आई है । बात टल गयी । बहुत दिनों बाद उसने भेद खोला कि उसे असली साँप ने काटा था । तुरन्त जहरीले साँप के काटे जाने की स्मृति उसे हो आई एवं भयभीत हो वह मर गया । जहर के चढ़ने का प्रश्न ही नहीं उठता था । मन्त्र-तन्त्रों में प्रायः प्रयोक्ता का आत्म-विश्वास एवं दृढ़ मनोबल ही काम करता है । जिस पर मन्त्र चलाया जाता है उसका भी प्रयोक्ता पर विश्वास होना चाहिए तभी चमत्कारी परिणाम भी निकलते हैं ।

भूत-प्रेत के प्रसंग प्रायः निर्मूल आशंका पर आधारित होते हैं । लेकिन कभी-कभी भूत-प्रेतों का वास्तविक अवतरण भी होता है । कभी-कभी कोई सहानुभूति रखने वाली आत्मा विशुद्ध सहायता की दृष्टि से किसी से सम्पर्क साधती है पर लोग भूत-प्रेत का नाम मात्र सुनकर इतने भयभीत हो जाते हैं कि हितैषी और हानिकारक तक का अन्तर नहीं समझ पाते । परोक्ष जगत के सम्बन्ध में संव्याप्त अज्ञान ही इस भूतोन्माद का कारण है । पिछड़े, अनगढ़, सनकी लोगों की शारीरिक मानसिक अवस्था को सूक्ष्मधारी आत्माओं से अलग समझा जाना चाहिए व इस अज्ञान को मिटाया जाना चाहिए कि कोई देवी देवता या भूत-पलीत किसी के ऊपर आते हैं । मस्तिष्क पर छाया अज्ञान ही हिस्टीरिया के उन्माद रूप में निकलता है । किन्तु यदि उत्कृष्टता के मार्ग पर ले चलने वाली सहायक आत्माएँ परोक्ष जगत से आदान-प्रदान का क्रम स्थापित करना चाहेंगी तो सदैव श्रेष्ठ परामर्श के रूप में अविज्ञात सहयोग के रूप में वह प्रकट होगा, चाहे उसे अदृश्य होने के कारण देखा या समझा न जा सके एवं अविज्ञात या मात्र संयोग का नाम दे दिया जाय ।

प्रेतबाधा एक चिकित्सा योग्य मनोरोग

भूत बाधा के नाम से प्रचलित एक प्रकार के आदेश का लक्षण एवं प्रभाव ऐसा होता है, जिसे देखते हुए उसे वहानेबाजी या सनक भी नहीं कहा जा सकता । उसके प्रभाव प्रत्यक्ष दीखते हैं । उन कारणों से रोगी का जीवनक्रम ही अस्त-व्यस्त नहीं हो जाता कई बार तो जान पर बन आती है और बुरी तरह बर्बादी उठानी पड़ती है । ऐसी दशा में उसे झुठलाया कैसे जाय । कोई क्यों ऐसी बहानेबाजी करेगा, जिससे उसे कष्ट सहना और बहुत कुछ गँवाना पड़े । दूसरों का ध्यान आकर्षित करने- सहानुभूति पाने के लिए कई लोग कई प्रकार के चित्र-विचित्र आचरण तो करते और मन गढ़न्त करतूतें भी दिखाते हैं । इसमें प्रेत बाधा का खेल भी शामिल हो सकता है । पर हर परिस्थिति में यह बात सही नहीं होती । कई बार कई लोग इस संकट में बुरी तरह फँसे पाये जाते हैं ।

फिर ऐसे उपद्रव या आक्रमण प्रेत ही करते हों, आवेश या उन्माद खड़े करते हों, यह बात प्रेत विज्ञान से प्राप्त जानकारियों से सर्वथा भिन्न है । मृतात्माओं का अस्तित्व होना- उनका व्यक्ति विशेष के साथ सम्बन्ध जुड़ना एक बात है । उन्माद या आवेश आना - आवेशग्रस्त का असाध्य रोगी की तरह विपत्ति में फँस जाना सर्वथा दूसरी । फिर यदि प्रेत आवेश सचमुच ही होता है तो फिर वह पिछड़े लोगों या क्षेत्रों में ही क्यों पाया जाता है । समझदार लोगों में वैसा कुछ क्यों नहीं होता?

यह प्रश्न ऐसे हैं जो अपना निश्चित समाधान माँगते हैं । इस सन्दर्भ में विज्ञ जनों ने लम्बी खोजों के बाद इस स्थिति की अचेतन मन की विलक्षण विकृति कहा है । ऐसे या इससे मिलती-जुलती विकृतियाँ संसार भर में देखी गई हैं जिन्हें कोई चाहे तो प्रेत बाधा भी कह सकता है ।

शारीरिक रोगों की बढ़ोत्तरी के इस युग में मानसिक रोगों की भी चित्र-विचित्र किस्में निकली हैं । उन्माद आमतौर से उसे कहा जाता है जिसमें व्यक्ति सामान्य लोक व्यवहार और

चिन्तन की मर्यादाओं का व्यतिक्रम करके कुछ भी सोचने और कुछ भी करने लगे । ऐसे लोग कई बार निष्क्रिय हो बैठते हैं, कई बार आक्रमक रुख अपनाते हैं । कुछ घर छोड़कर कहीं भी चले जाते हैं और कुछ भी करते हुए जिधर-तिधर भटकते हैं । किन्तु अब नये किस्म के उन्मादों में ऐसी धाराएँ भी जुड़ी हैं जिनमें व्यक्ति सामान्यत लोक व्यवहार निभाता है पर कभी-कभी आवेश बढ़ता है और नशेबाजों की तरह अपनी पूर्व धारणा की अभिव्यक्ति करने लगता है । इन्हें एक विशेष प्रकार की सनकें कहा जा सकता है, जो यदा-कदा उभरती हैं और कुछ ऐसी भी होती हैं जो स्वभाव में अपने लिए स्वान बना लेती हैं ।

उत्तरी ध्रुव पर निवास करने वाले एस्किमों लोगों में कभी-कभी किसी-किसी पर एक भयानक मानसिक रोग चढ़ा दौड़ता है । इसमें वह आपे से बाहर हो जाता है और ऐसा लगता है कि कोई उससे यह सब बलपूर्वक करा रहा है ।

आँखे लाल हो जाती हैं, माँसपेशियाँ जकड़ जाती हैं, पसीना छूटता है । आवेशग्रस्त मनःस्थिति में पत्नी तक रेंडियर हिरन जैसी दीखती है और उस पर आक्रमण कर बैठने पर उतारू दीखता है । मुँह से लार टपकती भूख से तड़पड़ाता है और जो भी हाथ पड़े, खाने लगाता है । स्थिति पूर्णतया उन्मादी जैसी होती है ।

यह उस क्षेत्र का प्रख्यात रोग है । इसे उस क्षेत्र में काम करने वाले डाक्टरों ने "विन्ड्रेगो" नाम दिया है वहाँ के निवासी इसे 'हिम दानव' का आक्रमण कहते हैं विश्वास करते हैं कि यह उस क्षेत्र के अधिष्ठाता का आक्रमण है । जो भूखा होने पर किसी को भी क्षुधा निवृत्ति के लिए चुन सकता है। जिसे पकड़ता है उसे फिर जीवित नहीं छोड़ता ।

उन्माद जब अति स्तर पर होता है रोगी किस का भी मार डालने जैसे आक्रमण करता है । साथ ही यह भी कहता है कि यदि बचना है तो मुझे मिल-जुलकर मार डालो । प्रचलित उपाय भी यही है निकटवर्ती ऐक्सिमो उसे पकड़ ले जाते हैं और खुले में ले जाकर बध कर डालते हैं । समझा जाता है कि ऐसा करने वालों से "हिम-दैत्य" प्रसन्न होता है और उन्हें अपना वफादार सहयोगी मानकर पुरस्कार भी देता है ।

कनाडा के डाक्टरों ने इस रोग के सम्बन्ध में गहरी छानबीन की है और उस व्यथा को 'विन्डिनो साइकोसिस' नाम दिया है । कुछ समय यह रोग मध्य कनाडा और उत्तरी अमेरिका तक पहुँच गया था । पर अब उसकी रोकथाम के उपाय अपनाये गये हैं तो स्थिति क्रमशः सुधरती जा रही है और घटनाक्रमों का अनुपात कम होता जा रहा है ।

मानस रोगों के प्रत्यक्ष कारणों से व्यक्तिगत दुश्चिन्तनों, अरुचिकर सामाजिक-प्रचलनों, अनपेक्षित दबावों को प्रमुख माना जाता है । अब उसी श्रृंखला में एक्सिमो सम्पर्क के वैज्ञानिकों ने एक कड़ी और जोड़ी है- चुम्बकीय उभारों द्वारा व्यक्ति विशेष पर पड़ने वाले प्रभावों की । वे कहते हैं ध्रुव क्षेत्र की तरह ही कुछ अन्य क्षेत्र भी ऐसे हो सकते हैं जिनकी भौगोलिक एवं वातावरण सम्बन्धी चुम्बकीय परिस्थिति किन्हीं पर अतिरिक्त प्रभाव डाले और उसे इस प्रकार उन्माद में जकड़ दें ।

साइकोलाजिस्टो और एन्थोपोलोजिस्टों के एक वर्ग ने इसे हिस्टीरिया की तरह छूत स्तर का माना है एवं वंशानुक्रम में पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले रोगों से इस प्रकार के अनेक मानसिक उन्माद खोजे हैं । भूतोन्मादों के पीछे यही प्रक्रिया काम करती है । वे सर्वत्र नहीं होते । किसी विशेष क्षेत्र या समुदाय में ही उनकी धूम रहती है । यह व्यथा छूत की तरह एक से दूसरे को लगती है । दुःखती आँखों को देखने भर से अच्छी आँखें भी दुःखने लगती हैं । जुकाम वालों की समीपता से अन्य दुर्बल प्रकृति के लोग भी वैसी ही शिकायत करने लगते हैं । बड़ों को भूत से आक्रान्त देखकर छोटों के मन पर भी वह कुहासा जमने लगती है । जो अनुकूल अवसर मिलने पर फूट निकलता है । जिनके परिवार मुहल्लों में भूत-प्रेतों की घटनाएँ होती रहती हैं उनमें रहने वाले अन्य दुर्बल मनःस्थिति के लोग भी अनचाहा अनुकरण करने लगते हैं । कोढ़ में खाज की तरह झाड़-फूँक करने वाले और इस मान्यता वालों द्वारा सुनाये जाने वाले कथानकों से प्रभावित ऐसे लोग भी इस व्यथा में फँस जाते हैं, जिनकी मानसिक संरचना में उन्माद प्रकट होने की आशंका नहीं की जाती ।

मलेशिया की महिलाओं में "लता" नामक भयाक्रान्त रोग होता है, यदि उनसे आग में हाथ डालने को कहा जाय तो रोगिणी आग में हाथ डाल देगी । 'लता' के आक्रमण होने पर लोगों ने क्या-क्या दुर्व्यवहार उसके साथ किए यह तो उसे याद रहता है । पश्चिम चिकित्सक इस रोग को हिस्टीरिया, साइकोसिस, न्यूरोसिस तथा ब्रेनमान कन्वल्शन कहते हैं । मलेशिया में रहने वाली चीनी महिलाओं में यह रोग नहीं होता । ऐसा ज्ञात होता है कि यह रोग परम्परागत होता है जिसकी शुरूआत १८५० में तब से हुई जब से वहाँ गोरे लोग आए और उनसे बचने के लिए उन्हें 'लता' रोग ने घेरा । महिलायें पश्चिमी नकल को बाध्य की गयीं थीं । 'लता' मात्र अन्धाधुन्ध नकल की मानसिक दासता प्रतीक है ।

मलेशिया का मानस रोग ''एमोक'' बड़ा भयानक है । युवा रोगी विक्षिप्त होकर छुरा भोंकता फिरता है उसका कारण नौकरी से निकाला जाना या परीक्षा की असफलता आदि होती है । अनेक मनुष्यों को घायल होते-होते उन पर काबू पाया जाता है तब तक वह बेहोश होकर गिर पड़ता है । पश्चिम चिकित्सक इसका कारण बताते हैं- ब्रेन डैमेज, मिर्गी, हिस्टिरिया या डीलेरियम की स्थिति जिसमें आदमी चित्र भ्रमित हो जाता है । एपीलेप्टिक और हिस्टीरिया वाले रोगी तो विश्व के हर कौने में पाये जाते हैं किन्तु एमोक का सम्बन्ध १६ वीं शताब्दी में वहाँ के इतिहास से जोड़ा जाता है जबकि देशभक्त स्वराज्य प्राप्त एमोक पर निकल पड़ते थे । धर्म परिवर्त्तन के समय वे मरने को अधिक पसन्द करते थे । एमोक से मृत व्यक्तियों का सम्मान १८५० तक था । उसके बाद यह मानस रोग माना जाने लगा है । किन्तु रक्त के संस्कार तो बने ही रहते हैं ।

विश्व के विभिन्न स्थानों में मानसिक रोग विभिन्न रूप लेते हैं । स्थान की संस्कृति, जलवायु, जल प्रभाव तथा परम्परागत अन्ध विश्वास मानस संस्थान पर छाये रहते हैं । यह बात मात्र पिछड़ी जातियों तक ही नहीं अब सीमित रही वरन् पढ़े-लिखे आधुनिक सभ्यता में पले लोगों को भी होती ।

इंग्लैण्ड के एक परिवार में पीढ़ियों से यह मान्यता चली आयी है कि उसका हर नर सदस्य ५० वर्ष की आयु से पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा । पिछले दिनों असोड्डुशिएटेड प्रेस के माध्यम से २६ अक्टूबर, १९८३ के स्टेट्समैन अखबार में एक समाचार छपा कि सातवें अलेंक्रेवन ने जो गत पाँच वर्षों से आसन्न मृत्यु से भयभीत था, २६ वर्ष की आयु में ही स्वयं को गोली मारकर आत्म-हत्या कर ली । थॉमस राबर्ट डगलस क्रेवन शाही परिवार की सातवीं पीढ़ी के एकमात्र पुरुष सदस्य थे ।

कहा जाता है कि इनके पिता ३५ वर्ष की आयु में व दादा मात्र ३७ वर्ष की आयु में डूबने से अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए थे । यही इतिहास परिवार के हर सदस्य का है । गाँव वालों का कहना है कि हैम्पस्टेड मार्शल बर्कशायर नामक इस रियासत के एक बुजुर्ग ने ३०० वर्ष पूर्व एक कन्या से दुराचार किया था । उसके बाद यह शाप देकर कि इस परिवार का कोई भी पुरुष सदस्य पचास वर्ष तक जीवित नहीं रहेगा व जब तक जियेगा- अवसादग्रस्त मनःस्थिति में रहकर अन्ततः आत्म-हत्या कर लेगा, उस कन्या ने भी आत्म-हत्या कर ली। कहा नहीं जा सकता कि यह किंविदन्ती कितनी सत्य है किन्तु इतिहास यही बताता है कि हर पीढ़ी के पुरुष सदस्यों को 'स्कीजोफ्रेनिया' नामक मानस रोग जन्म से ही रहा व सभी ने आत्म-हत्या की है तथा ४०-४५ वर्ष की अवस्था तक पहुँचने के पूर्व ही काल कवलित हो गए । कुछ लोग इसे एक भय की आत्म सम्मोहन की स्थिति कहते हैं जिसमें हर व्यक्ति संभाव्य को सच मानकर ही जिया है व उसने मानो लोकोक्ति को ही सही सिद्ध करने के लिए आत्म हत्या की है ।

एन्थोपोलाजिस्ट चार्ल्स लिन्हाम का कथन है कि पिछले क्षेत्रों में पाया जाने वाला भूतोन्माद कहा जाता था और जिसके प्रति उपेक्षा-व्यंग्य, उपहास का ही प्रयोग होता था । अब वह नये रूप से शिक्षित समुदाय में भी नई-नई सनकों और उचंगों के रूप में दृष्टिगोचर होने लगा है । उसे वे भूतवाद की पुरातन पृष्ठभूमि पर नई परिस्थितियों के अनुसार उगा नये किस्म का किन्तु उसी प्रकृति का पौधा कहा जा सकता है ।

प्रेत बाधा-या भूतोन्माद को न उपहासास्पद ठहराया जाय न और न उसकी उपेक्षा की जाय । यदि बहानेबाजी पाई जाय तो उसका पर्दाफाश किया जाय किन्तु यदि वस्तुतः कोई इस व्यथा से आक्रान्त है तो उसे एक मानसिक रोगी की तरह उपचार किया जाय । खोजने पर जैसे अन्य रोगों के समाधान मिल गये । इस प्रकार इस विक्षेप के निराकरणों का भी मुक्ति मार्ग मिल सकता है ।

प्रवाह में बहकर मनुष्य प्रेत-पिशाच भी हो सकता है

मनुष्य के भीतर असीम क्षमताओं का भण्डार भरा पड़ा है । उसकी संरचना ऐसे तत्वों से हुई है कि असम्भव को सम्भव कर दिखाने वाले पराक्रम कर सकता है । प्रश्न एक ही है कि उस विशिष्टता का उपयोग किस प्रयोजन के लिया किया जाय ।

साधारण व्यक्ति इस शक्ति भण्डार को वासना तृष्णा की पूर्ति के लिए नियोजित करता रहता है । प्रश्न निर्वाह का नहीं, महत्वकांक्षाओं की ललक का है । निर्वाह तो सभी प्राणी अपने अनगढ़ शरीर और नगण्य से साधनों द्वारा भी थोड़े समय एवं परिश्रम से चला लेते हैं । फिर मनुष्य की शारीरिक, मानसिक संरचना तो ऐसी ही, जिसके द्वारा किया गया कुछ घण्टे का परिश्रम ही जीवन यात्रा के आवश्यक साधन जुटाने के लिए पर्याप्त होना चाहिए । जिसकी पूर्ति नहीं हो जाती वह ललक लिप्सा की गहरी खाई ही है। जिसे उचित अनुचित सभी उपायों से पाटने में अहिर्निशि निरत रहने पर भी काम नहीं चलता । उसका अभाव निरन्तर खटकता ही रहता है ।

श्रेष्ठ व्यक्ति अपनी क्षमताओं के आदर्शवादी प्रयोजनों के लिए नियोजित करते हैं और लोक-कल्याण के साथ-साथ आत्म-

कल्याण में भी अशातीत सफलता प्राप्त करते हैं । ऋषि-मुनी की, सन्त-सुधारक शहीदों की, महामानवों की दिशाधारा ऐसी ही होती है । हाथ पैर सभी के एक से हैं । मस्तिष्कीय विस्तार भी प्रायः एक जैसा ही है । पर यह दृष्टिकोण का ही चमत्कार है कि जहाँ सामान्य जन पेट प्रजनन मात्र के क्षेत्र में भी अभावग्रस्त और अतृप्त बने रहते हैं वहाँ उत्कृष्टता अपनाने वाले उतने ही समय साधनों में ऐसा कुछ कर गुजरते हैं जिनका अनन्त काल तक स्मरण किया जाता रहे । पेट तो उनका भी भरता है परिवार तो उनका भी पलता है ।

दृष्टिकोण में निकृष्टता भर जाने पर मनुष्य कितना क्रूर और पतित हो सकता है इसका भी एक रोमांचकारी अध्याय है । मनुष्य यदि आतंक में रस लेने लगे, सताने में विनोद खोजने लगे, विनाश को ही पराक्रम मानने लगे तो व्यक्तित्व के इसी काया में रहते हुए भी पिशाच बनते देर नहीं लगती है । वह ऐसे कुकृत्य भी करता रह सकता है जिस पर निर्लज्जता को भी लज्जा आने लगे । इतिहास में ऐसे क्रूर कर्माओं के अनाचार भी उपलब्ध होते हैं जिनके स्मरण से रोमांच हो उठते हैं ।

पन्द्रहवीं सदी के ट्रांसिलवानिया पहाड़ी क्षेत्र का शासक ड्रूक्युला अपनी हृदय विदारक नादिरशाही के लिए इतिहास प्रसिद्ध था । इतिहासकारों ने उसे विश्व का सर्वाधिक क्रूर शासक माना तथा नर-पिशाच की संज्ञा दी । अपने मनोरंजन के लिए ड्रूक्युला नवजात शिशुओं को मारकर उनकी माताओं के सीने में जुड़वा देता था । अनेकों बार तो माता-पिता को अपने ही बच्चे का माँस खाने को मजबूर कर देता । गाँवों में बाल-वृद्ध नर-नारियों सहित आग लगवा देना, अपराधियों को पेड़ों पर फाँसी चढ़वा देना, ड्रूक्युला के दरबार में चारों ओर लाशें टँगी रहती थीं । एक बार उसके मन्त्री ने निवेदन किया कि लाशों को कहीं अन्यत्र टँगवाया जाय, क्योंकि उनसे असह्य बदबू आती है । इस पर ड्रूक्युला ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि इसे भी एक खूंटे पर थोड़ी ऊँचाई पर जिन्दा ठोक दिया जाय । गलती के लिए क्षमा याचना करने के बावजूद भी उस कठोर का पाषाण-हृदय पिघला नहीं । उसने अपने जीवन में कितने व्यक्ति इसी क्रूर तरीके से मारे, इसकी कोई गिनती नहीं । उसका स्वयं का अन्त भी ऐसे ही वीभत्स ढंग से हुआ ।

पन्द्रहवीं शताब्दी में तुर्की के सुल्तान मोहम्मद द्वितीय ने अरब और मिस्र के नगरों में ऐसा कल्लेआम मचाया कि नगरों की गलियाँ लाशों से पट गईं । ट्यूनीशिया और अल्जीरिया में भी इनकी उसमानी जातियाँ फैली हुई थीं और अपनी निर्दयता के लिए प्रसिद्ध थीं । मान्यता है कि गुलामी प्रथा का आरम्भ इन्हीं के द्वारा किया गया । मुहम्मद तुगलक के विषय में कहा जाता है, कि उसके अत्याचार से पीड़ित होकर लोग अपने घर-द्वार त्यागकर जंगलों में छिपने लगे । सल्तनत काल में नृशंसता निर्दयता चरम सीमा पर थी । दूसरी ओर आतंकवादियों ने अपना कुचक्र अलग फैला रखा था । अपने भोग-विलास के लिए बड़े से बड़ा कुकृत्य करने में कुछ भी उठा नहीं रखा था । मुगलकाल के कई शासकों एवं मंचूरियन शासक चंगेज खाँ से सम्बन्धित ऐसे अनेकों प्रसंगों का विवरण मिलता है जिसमें क्रूरतम अत्याचार किये गए ।

मेसेच्युसेट्स निवासी कुर्टेन बचपन से ही अपराधी प्रवृत्ति का था, अपराध कर्म करते-करते उसका सम्बन्ध अपराधियों के संगठन से हो गया । अपराधी दल के सरदार ने उसके जघन्य अपराध करने की चरम सीमा की परीक्षा लेनी चाही, जो उसने एक अबोध जीवित बालक को नदी की वेगवती धार में फेंक कर दिया । दूसरा बालक बहते बालक को बचाने दौड़ा तो उसे भी झपटकर कुर्टेन ने डुबो दिया । उसका आतंक बढ़ने लगा । हत्या उसका व्यसन बन गया । अब वह रक्त पिपासु की भूमिका निबाहने लगा । तड़पते बच्चों को देखकर खुशी से नाच उठता । बालक न मिलने पर भेड़, कुत्ते, बकरी के बच्चों पर यही प्रयोग करता । बीस बरस तक वह क्रूर कर्म करते-करते थका नहीं अन्त में पकड़े जाने पर फाँसी पर लटकना पड़ा ।

हंगरी के 'सील्वेस्टर मटुस्का' को नर पिशाच के रूप में जाना जाता है । वह एक प्रख्यात कम्पनी का मालिक था, अपार धन और वैभव के रहते भी उसकी पिशाच वृत्ति इसी में आनन्द पाती कि लोगों को तड़पाकर मारा जाय, उजाड़ा जाय घायल और अपंग बना दिया जाय । उसे रेल दुर्घटनाएँ कराने, लोगों को आहत होते देखकर बहुत हर्ष होता था । उसने अपने जीवनकाल में अनेकों दुर्घटनाएँ कराईं । हजारों मौत के मुँह में धकेले, बेसहारे और अनाथ बनाए । अन्त में एक दुर्घटना कराते समय पकड़ा गया और फाँसी पर लटका दिया गया ।

रोम सम्राट नीरो को भी नर पिशाचों की श्रेणी में रखा जाता है वह नृशंसता उसे अपनी माँ से मिली । रोम की गद्दी हाथ लगते ही नीरो के कुसंस्कारों को जैसे खाद पानी मिल गया हो । निरपराधों तक को तड़पाकर मार डालने में उसे आनन्द आता । नीरो की गणना अधपगले, सनकी शासकों में की जाती है । उसकी आज्ञा की अवहेलना सीधे मृत्यु का

ग्रास बनने को मजबूर करती । अजीब सनक सवार हुई उसके सिर पर, मेरे बाद रोम का कोई शासक ही न बन पावे । अतः आदेश दिया कि रोम नगर को जलाकर नष्ट कर दिया जाय । नौ दिन तक अनवरत अग्निकाण्ड होता रहा । अवला, बाले, वृद्ध, सम्पत्ति सहित जलाकर खाक कर दिये गये । कहा जाता है रोम सम्राट शहर की ऊँची मीनार पर बैठकर नृशंस अग्निकाण्ड हत्याकाण्ड देखता रहा ।

मिस्र के पिरामिडों के साथ भी ऐसा ही रक्तरंजित इतिहास जुड़ा हुआ है । मिस्र के शासक फराहो की मृत्यु के पश्चात् उसकी कब्र में बहुमूल्य वस्तुएँ हाथी, घोड़े, असंख्यों नौकर, दासियाँ, दफनाए गये । जीवित दास, दासियों को इसलिए गाड़ दिया जाता क्योंकि तत्कालीन लोगों की मान्यता थी कि मरणोपरान्त भी ये नौकर-नौकरानियाँ राजा की सेवा कर सकेंगे । बर्बरतापूर्ण यह अमानवीय घटना मात्र फराहो तक ही सीमित नहीं रही, वरन् यह प्रक्रिया लम्बे काल तक तत्कालीन मिस्र में चलती रही, और हजारों निरीह निष्ठुरता के कोप भाजन बने ।

मुहम्मद विन तुगलक ने अपने राज्यकाल में लगान दस गुना- बीस गुना कर दिया था । लगान के अलावा भी अतिरिक्त कर लगाये थे । परेशान होकर लोगों ने अनाज के खलिहानों को जला डाला और मवेशियों को घर से निकाल दिया । दस-दस, बीस-बीस के मण्डल बनाकर उन्होंने गाँव छोड़कर जंगलों व तालाब के किनारे शरण ली । इस पर सुल्तान लश्कर लेकर दोआव पर चढ़ आया । मृतकों के खलिहान लग गये । खून की नदियाँ बह गयीं । जानवरों की तरह लोगों को चुन-चुनकर मारा गया । सल्तनत काल में जहाँ एक ओर नृशंसता, निर्दयता दृष्टिगोचर होती है, वहीं दूसरी ओर अय्याशी का आभास भी मिलता है । अमीर खुसरो ने लिखा है कि उस काल में जब कोई नई इमारत बनायी जाती थी तो उसे खून से धोया जाता । अलाउद्दीन ने अपनी इमारतों के उद्घाटन पर हजारों बकरे जैसी दाढ़ी वाले मुगलों का वध कराया । मुहम्मद-बिन-तुगलक के द्वार पर हत्यारे लोग मारते-मारते तंग हो जाते और तीन-तीन दिन तक लाशों के ढेर सड़ते रहते थे । मात्र अन्य जाति के काफिर कहे जाने वाले ही नहीं, मुसलमान भी उसकी नृशंसता के शिकार हुए ।

यह कुछ उदाहरण हैं जिनसे इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि मनुष्य का मन कोरे कागज की तरह है जिस पर कुछ भी भला-बुरा लिखा जा सकता है । वह गीली मिट्टी की तरह भी है जिसे किसी भी ढाँचे में ढाला और उसका कोई भी खिलौना बनाया जा सकता है ।

सन्त सज्जनों को बाह्य वातावरण और आन्तरिक सुसंस्कार सम्वर्धन के सहारे जहाँ अपने को ऊँचा उठाते हुए असंख्यों का कल्याणकारी मार्गदर्शन कर सकना सम्भव हुआ है वहाँ दुर्जनों की प्रवृत्ति दुष्टता के ढाँचे में इन्हीं कारणों के आधार पर ढलने में भी देर नहीं लगी है । मनुष्य की प्रकृति है कि वह जैसे सम्पर्क में रहता है जैसा कुछ सोचता है वैसा ही स्वभाव बनाता और कृत्य करने लगता है । इसलिए जहाँ मनुष्य की निजी संरचना को महत्व दिया जाता रहा है वहाँ वह भी कहा गया है कि वातावरण, सम्पर्क एवं दिशा निर्धारण करने वाले अन्यान्य कारणों की महत्ता भी कम नहीं है ।

मनुष्य जीवन जिस प्रकार ईश्वर प्रदत्त सर्वोपरि है, वहाँ संसार क्षेत्र का सबसे बड़ा सौभाग्य यह है कि उसे उत्कृष्टता के प्रगति पथ पर बढ़ते चलने वाला सुयोग भी मिले । इसके लिए हर व्यक्ति के निजी जीवन तथा सम्पर्क समुदाय में यह प्रयत्न करना चाहिए कि अन्न, वस्त्र की तरह शालीनता के वातावरण में साँस लेने का भी अवसर मिले । अन्यथा विषैली साँस लेने पर जिस तरह दम घुट जाता है उसी प्रकार अवांछनीय मार्ग सामने रहने पर मनुष्य आत्म-हनन और पैशाचिक कृत्यों पर उतारू होने जैसे अनर्थ करने में भी प्रेत पिशाचों से पीछे नहीं रहता ।

भूत से डरें नहीं वह तो बस भूत है

काल के अनन्त प्रवाह में बह रही जीवनधारा का प्रेतयोनि एक नया मोड़ मात्र है । हमारे सीमित बोध जगत के लिए भले ही वह जीवन धारा खो गई प्रतीत होती हो, पर वह सर्वदा अविच्छिन्न रहती है और हमारा संस्कार-क्षेत्र मरणोत्तर जीवन में भी सक्रिय रहता है, अन्तःकरण चतुष्टय मृत्यु के उपरान्त भी यथावत् बना रहता है । अशान्त, विक्षुब्ध मनःस्थिति भी अपना स्वभाव उस रूप में ही बनाए रखती है । दुष्ट जीवन-क्रम की यह स्वाभाविक परिणति जीवात्मा को जिस अशान्त दशा में रहने को बाध्य करती है, उसका ही नाम प्रेत दशा है । अपनी दुर्दशा से सामान्यतः प्रेतों को दुःख ही होता है, पर अत्यन्त कलुषित अनाचारी व्यक्तियों की हिंस्र मनोवृत्तियाँ प्रेत जीवन पाकर भी अपनी क्रूर आकांक्षाओं की पूर्ति करना चाहती हैं और लोगों को अनायास सताती रहती हैं । पर अपना

आंतक वे उन्हीं पर जमा पाती हैं, जिनका आत्मबल अविकसित हो ।

प्यार का अभाव, असुरक्षा की आधिकता, मूर्खतापूर्ण कठोरता से भरा नियन्त्रण, आत्यन्तिक चिन्ता, कुसंग से उत्पन्न विकृतियाँ व्यक्ति के विकासक्रम को जब बालकपन से ही तोड़ मरोड़ देती है तो आत्मबल का सम्यक् विकास नहीं हो पाता । ऐसी विघटित मनःस्थिति ही प्रेतात्माओं को अपना उपयुक्त क्रीड़ा-क्षेत्र लगा करती है । प्रेतात्माएँ उसे अपना क्रीड़ा-क्षेत्र न भी बनाएँ तो क्या, मनोविकृतियों का झुण्ड एकत्र होकर मानसिक रोगों का रूप ले लेता है या अन्य प्रकार से उन्मत्त आचरण के लिए प्रेरित व बाध्य करता है । उत्कृष्ट लक्ष्यों के लिए साहस, उल्लास और स्फूर्ति से भरपूर मनःस्थिति जहाँ मनुष्य की सामर्थ्य को अधिकाधिक विकसित एवं ऊर्ध्वगामी बनाते हुए उसे महामानवों-देवमानवों की कोटि में पहुँचा देती है, वहीं दुर्बल दूषित मनःस्थिति जीवन भर हताशा, आक्रोश और आत्मग्लानि के नरक में तो जलाती ही है, मरणोत्तर जीवन में भी अन्तश्चेतना की अविच्छिन्नता के कारण उसी स्तर की गतिविधियों का क्रम चलते रहने से प्राणी को क्षण भर भी चैन नहीं लेने देतीं । लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण तथ्य यह हैं ये अशान्त आत्माएँ या मनोदशाएँ उन्हीं लोगों पर अपना त्रासपूर्ण प्रभाव डाल सकने में समर्थ हो पाती हैं, जिनकी स्वयं की मनःस्थिति दुर्बल व विश्रृंखल हो ।

सर्वप्रथम तो, भूत-बाधा के यथार्थ होते हुए भी यह तथ्य निरन्तर स्मरणीय है की भूत-बाधाओं के किस्से कहानियों में लगभग तीन चौथाई तो निस्सार गप्पें होती हैं । शेष एक चौथाई में भी अधिकांश भ्रांति और अज्ञानता के आवरण में लिपटी होती है । अंधविश्वासी शंकालु, लोग वास्तविक शारीरिक-मानसिक रोगों को भी भूत-बाधा मान बैठते हैं और उचित उपचार न कराकर इधर-उधर भटकते रहते हैं तथा सब कुछ गवां बैठते हैं ।

शंका डायन मनसा भूत

संशय को स्वीकार कर लेने पर मस्तिष्क का पहिया उन्हीं आशंकाओं के समर्थन में चलने लगता है और चित्र विचित्र कल्पनाएँ अवास्तविक को भी तथ्य जैसा मानने लगती हैं ।

शंका डायन-मनसा भूत की उक्ति अक्षरशः सत्य है । किसी निर्दोष महिला पर अपनी कुशंकाओं का आरोपण करके उसे डाकिन, चुडैल, जादूगरनी आदि के रूप में भयानक देखा जा सकता है । डायनों का अस्तित्व पूर्णतया संदिग्ध है, किन्तु कुशंकाओं के खेत में असंख्यों एक से एक भयानक डायनों का उत्पादन निरन्तर होता रहा है । आश्चर्य इस बात का है कि यह मनगढ़न्त डाकिनें हानि उतनी ही पहुँचा देती हैं जितनी कि कोई वास्तविक डायन रही होती और उसने पूरे जोरशोर से आक्रमण किया होता ।

"मनसा भूत" की उक्ति में संकेत हैं कि मन से भूत उत्पन्न होते हैं । पीपल के पेड़ पर, मरघट में, खण्डहरों में भूत-पलीतों के किले बने होने और वहाँ से उनके तीर चलते रहने की मान्यता असंख्यों अन्धविश्वासियों के मनों में जड़ें जमाये बैठी रहती हैं । सभी जानते हैं कि जड़ों में दौड़ने वाला रस पत्र, पल्लव, पुष्प, फल आदि के रूप में विकसित होता रहता है । आशंकाजन्य भयभीरूता की जड़ें यदि अचेतन मन में घुस पड़ें तो उतने भर से भूतों को अपनी अनौखी दुनिया बन पड़ेगी और उस सेना के आक्रमण की अनुभूति घिग्घी बँघा देने वाला त्रास देती रहेगी । यह स्वनिर्मित भूत भी उतने ही डरावने और हानिकारक होते हैं जितने कि यदि वास्तविक भूत कहीं रहे होते और उनके द्वारा आक्रमण किये जाने पर कष्ट सहना पड़ता ।

हिस्टेरिया का एक प्रकार का, "सामयिक उन्माद' है इसे भूत, पलीत या देवी देवताओं के आवेश के रूप में देखा जा सकता है । शिक्षितों में यह आवेश दूसरी कई तरह की सामायिक उमंगों के रूप में आता है और वे अपने आपको क्रोध आदि आवेशों में ग्रसित पाते हैं । कई बार तो ऐसी स्थिति अपने लिए तथा सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के लिए घातक बन जाती है । आवेश ग्रस्त स्थिति के साथ रोगी जब भूत-प्रेतों के या देवी-देवताओं के आक्रमण के साथ संगति बिठा लेता है तब वह प्रवाह उसी दिशा में बहने लगता है और ऐसे लक्षण प्रकट होते हैं जिनमैं ऐसा प्रतीत होता है मानो सचमुच ही कोई भूत बेताल उन पर दौड़ा हो ।

'ऐक्जाइटी न्यूरोसिस' एवं हिस्टरिक न्यूरोसिस को हिस्टीरिया तो नहीं कहा जा सकता पर उसकी 'सहेली' या 'छाया' कहने में हर्ज नहीं है । कोई कल्पना जब मस्तिष्क पर असाधारण रूप से हावी हो जाती है तो उसे अनुभूतियाँ भी उसी प्रकार की होने लगती हैं । भूत-प्रेतों के आवेश प्रायः इसी स्थिति में आते हैं । मस्तिष्क में असंतुलन का दौरा पड़ता है रोगी के मस्तिष्क का एक बहुत छोटा अंश यह अनुमान लगाने की चेष्टा करता है कि इस आकस्मिक हलचल का कारण क्या हो सकता है? उसे दूसरे लोगों पर भूतों का आवेश

आने की जानकारी देखने या सुनने से पहले ही मिल चुकी होती है । अस्तु क्षण भर में अपनी स्थिति उसी प्रकार की मान लेने का विश्वास जम जाता है । बस, इतनी भर मान्यता शरीर के हिलने, झूमने, गरदन डुलाने, लम्बी साँसें, उत्तेजना आदि भूतोन्माद के लक्षण प्रस्तुत कर देती है ।

इसी श्रेणी में देवी-देवताओं के आवेशों की गणना की जा सकती है । भूतोन्माद अधिक अविकसित, अशिक्षित और असंस्कृत लोगों को आते हैं उनमें भय आक्रोश का बाहुल्य रहता है और हरकतों में निम्न स्तर की स्थिति टपकती है। जब कि देवोन्माद में उपेक्षाकृत सज्जनता एवं शिष्टता की मात्रा अधिक रहती है । आवेश एवं वार्तालाप भी ऐसा ही होता है मानों कोई देव स्तर का व्यक्ति कर रहा हो । जिन लोगों ने देवी-देवताओं की चर्चा अधिक सुनी है, स्वयं उस पर विश्वास करते हैं उनका मस्तिष्क आवेश की स्थिति में अपनी कल्पना, साथ ही हरकतें भी उसी स्तर की बना लेता है । वस्तुतः इन आवेशों में देव स्तर सिद्ध करने वाली कोई प्रामाणिकता नहीं होती । स्तर के अनुरूप इनका वर्गीकरण भूतोन्माद या देवोन्माद के रूप में किया जा सकता है, पर उनके बीच कोई बड़ा भेद नहीं होता ।

आयुर्वेद ग्रन्थों में भूतोन्माद की कितनी ही शाखा-प्रशाखाओं का वर्णन है । उसे रोग की संज्ञा दी गई है और उपचार विधि बताई गई है । वस्तुतः उसे उन्माद का यदाकदा आने वाला दौरा ही कह सकते हैं । आवेश गहरा हो तो रोगी के अवयव ही उत्तेजित होते हैं और वह उन्मत्तों जैसी हरकतें करता है किन्तु यदि दौरा हलका हो तो एक प्रकार से नशे जैसी स्थिति बन जाती है । भूत का व्यक्तित्व अपने ऊपर थोप कर ऐसी ही बातें करता है, मानो वह सचमुच ही भूत की स्थिति में पहुँच गया हो । भूत को जो कहना चाहिए सो ही वह कह रहा हो । यह कथन क्रमबद्ध तो होता हो, उसकी संगति बैठती है पर होता सर्वथा काल्पनिक है । भोले लोग उसे तथ्य मान बैठते हैं और उन्माद की स्थिति में जो कहा गया था उसी पर विश्वास करके वैसा ही करने या मानने लगते हैं ।

कई मनुष्यों को ऐसी आवाजें सुनाई पड़ती हैं मानों किसी ने उनसे कुछ बात जोर देकर कही है । लगता है उन्होंने वैसा सुना है । किसी किसी को ऐसा लगता है, कोई भीतर से बोल रहा है । पेट में बैठकर या सिर पर चढ़कर कुछ बता रहा है । इस बीमारी को हैवीफ्रेनिक शिजोफ्रेनिया कहते हैं । भूत पलीतों के, देवी-देवताओं के सन्देश, आह्वान, आदेश प्रायः इसी प्रकार के होते हैं । प्रेमी और प्रेमिकाओं को इसी प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं मानो उनका प्रिय पात्र सामने खड़ा कुछ इशारे कर रहा है । जिनके प्रियजन जल्दी ही मरे हैं, उनका वियोग निरन्तर छाया रहता उन्हें भी झपकी आते ही मृतात्मा निकट आकर कुछ करती कहती दिखाई पड़ती है । भक्त लोगों को उनके इष्ट देव भी ऐसे ही कौतूहलवर्धक परिचय देते हैं।

मानसिक अस्त-व्यस्तता को दो भागों में विभाजित किया जाता है (१) न्यूरोसिस (२) साइकोसिस ।

न्यूरोसिस वह स्थिति है जिसमें मनुष्य अन्ट-सन्ट सोचता और आँय-बाँय बोलता है । बेकार की चिन्ताएँ और बेसिर पैर की कल्पनाएँ उसे हैरान करती रहती हैं । चिन्ता में डूबा, आशंकाओं से ग्रसित, भयभीत एवं असंभव चिन्तन के घोड़े दौड़ाते हुए उसे आये दिन देखा जा सकता है । कभी कुछ कभी कुछ सनक सवार रहती है ।

साइकोसिस इससे आगे की और अधिक बिगड़ी हुई स्थिति है । उसमें व्यक्ति पूर्ण रूप से तो नहीं पर किसी विशेष समय, परिस्थिति, घटना, वर्ग या व्यक्ति के सम्बन्ध में उसके कुछ ऐसे भले या बुरे आग्रह जम जाते हैं जिनका वास्तविकता के साथ बहुत कम सबंध होता है । उसकी अपनी कल्पना और मान्यता एक अलग से स्वप्न लोक रच लेती है और उन्हीं में वह खोया रहता है ।

भूत-बाधाओं के अनेक किस्से वस्तुत; मानसिक रोगियों के बारे में फैली भ्रान्ति का परिणाम होते हैं । उनका सही सही उपचार करना चाहिए । अन्यथा रोगपीड़ित स्वजनों से असमय ही बिछुड़ना पड़ जाता है और दोष भूतों का लगता है ।

भूत-बाधाओं के वास्तिविक स्वरूप को समझना चाहिए। साथ ही यह तथ्य ही हृदय में भली-भाँति अंकित कर लेना चाहिए कि वास्तविक भूत-वाधाएँ भी दुर्बल चित्त लोगों के सामने ही उपस्थित होती हैं ।

प्रेतात्माएँ हर किसी के सम्पर्क में नहीं आतीं । वे दुर्बल मनोभूमि के व्यक्तियों को चुनौती देती हैं और उन्हीं को अपना वाहन बनाती हैं । मनस्वी लोग सदा जागरूक रहते हैं । द्विजातीय तत्वों से लड़ने के लिए जिस प्रकार रक्त के श्वेत कण अपनी संघर्ष शीलता का परिचय देते हैं, ठीक उसी प्रकार प्रतिभा और प्रखरता के धनी अपनी साहसिकता के बल पर प्रेतात्माओं को समीप नहीं आने देते, आती हैं तो उन्हें धकेलकर दूर फेंक देते हैं । दुर्बल मनोभूमि के, अथवा प्रेतात्माओं में विशेष रुचि

लेने वाले भूत भक्तों को उनका वाहन बनते देखा गया है । जिनके सिर पर आये दिन भूत झूमते रहते हैं उन्हें अंग्रेजी में 'मीडियम' कहा जाता है । साधारणतया उन्हें प्रेत वाहन नाम दिया जाय तो अनुपयुक्त न होगा ।

प्रेतात्मा प्रमाणित व्यक्ति के भीतर से एक सूक्ष्म पदार्थ-प्रवाह निकलता है, जिसे 'टेलीप्लाज्म' नाम दिया गया है । यह 'टेलीप्लाज्म' व्यक्ति-चित्त में विद्यमान उस अतीत के व्यक्ति-विशेष या वस्तु-विशेष जिसे प्रेत कहते हैं की छवि के सम्वेदनात्मक प्रतिविम्बों के अनुरूप आकार ग्रहण कर लेता है । यह माध्यम-व्यक्ति के शरीर से स्वयं को पृथक् कर सकता है और इस प्रकार प्रेत की प्रतिच्छाया या छवि स्पष्ट दिखाई दे सकती है ।

डा०सी० डी० ब्रोड समेत अनेक वैज्ञानिक-मनोवैज्ञानिकों ने 'मीडियम' (प्रेत प्रभावित व्यक्ति) के बारे में एक अन्य सिद्धान्त प्रस्तुत किया है । उनका कहना है कि मस्तिष्क की संरचना जटिल है । वह शरीर से सम्मिलित है, जिसे वे साइकिक फैक्टर कहते हैं । जब व्यक्ति मरता है, तो उसका शरीर रूपी यह संयोग बिखर कर नष्ट हो जाता है । इस प्रकार उस शरीर में अवस्थित मस्तिष्क का भी अस्तित्व समाप्त हो जाता है। किन्तु "साइकिक फैक्टर" कोई भौतिक द्रव्य (मैटर) नहीं है, अत; वह विनष्ट नहीं हो सकता । यह अवशिष्ट 'साइकिक फैक्टर' इधर-उधर भ्रमण करता रहता है । फिर ऐसे व्यक्ति के मस्तिष्क को पाते ही वह प्रविष्ट हो जाता है जो इन परिवाजक 'साइकिक फैक्टर्स' के प्रति सहनशील हो । ऐसा ही व्यक्ति 'मीडियम' प्रेत वाहन बना करते हैं । साइकिक फैक्टर कोई व्यक्ति तो होते नहीं वे पूरे मस्तिष्क के भी प्रतिनिधि नहीं होता। अपितु मस्तिष्क का पदार्थ से परे अंश विशेष होते हैं । अतः साइकिक फैक्टर एक पूर्ण मस्तिष्क की तरह काम नहीं कर सकते ।

प्रेतात्मा के नाम पर घटित होने वाली अगणित घटनाओं में से प्रायः आधी ऐसी होती हैं, जिन्हें आवेशग्रस्त मस्तिष्कीय रोगों की संज्ञा दी जा सकती है । उन्माद के-स्नायु, दुर्बलता के, भीरूताजन्य, आत्म-हीनता के दबे असन्तोष की प्रतिक्रिया के कितने ही कारण ऐसे होते हैं, जिनसे मनुर्ष्यो की मानसिक स्थिति गड़बड़ा जाती है । उस स्थिति में शरीरगत और मनोगत तनाव बढ़ता है वह एक प्रकार के कम्पन, रोमांच, ज्वर एवं आवेश जैसा होता है । ऐसी विचित्र रोग पहले अनुभव में नहीं आया था । अस्तु उसकी सीधी तुक प्रेत आक्रमण से लगा ली जाती है । रोगी के मन में यही मान्यता दृढ़ होती है और दर्शकों, सम्बन्धियों में से अधिकांश प्रेत उपचार के सरंजाम इकट्ठे करके रोगी की भ्रमग्रस्तता को पूरी तरह परिपुष्ट कर देते हैं । आमतौर से प्रेत आक्रमण इसी स्तर के होते हैं ।

संस्कार-जगत में प्रेतात्माओं का आतंक अंकित रहा, तो आवेश-ग्रस्त, रुग्ण व्यक्ति अपनी स्थिति की संगति भूत-प्रेतों, देवी-देवताओं के आक्रमण के साथ बैठाकर उसी प्रवाह मे स्वयं को बहाने लगता है । इससे ऐसे लक्षण प्रकट होते हैं, मानो सचमुच ही कोई भूत, बेताल उस व्यक्ति को दबोच बैठा हो । वस्तुतः यह 'एक्जाइटी न्यूरोसिस' तथा 'हिस्टरिक न्यूरीसिस' की स्थिति होती है । 'हैवीफ्रेनिया' की स्थिति भी ऐसी ही रुग्ण मनोदशा का परिणाम है । अपने इष्ट देवों का दर्शन करने वाले अनेक भक्त जन भी इसी मन स्थिति में विभिन्न कौतूलहवर्धक दृश्य देखा करते हैं । जिनके प्रियजन हाल ही में और असमय में मरे हों, उन्हें भी झपक आते ही मृतात्मा निकट आकर बात करती दिखाई पड़ती है । हैं ये सब मानसिक अस्त-व्यस्तता के ही परिणाम । सुचिन्तित सुनियोजित महत्वाकांक्षाएँ व्यक्तित्व को ऊर्जस्वी, गतिशील प्रखर और प्रभावी बनाती हैं, तो आकाश कुसुमवत आकांक्षाओं का अनपेक्षित विस्तार व्यक्तित्व को विभाजित कर देता है । विभाजित व्यक्तित्व मानसिक रोगों का सुरक्षित घर बनता जाता है । व्यक्तित्व का यह विभाजन अनेक बार प्रेतवाधाओं के रूप में भी सामने आता है । जब आकांक्षायें शक्ति से सर्वथा विलग और विसंगत हो जाती हैं तब वे स्वाभाविक न रहकर अस्वाभाविक हो जाती है, उनकी पूर्ति सम्भव न होने से उनका दमन करना पड़ता है। दमित आकांक्षाओं पाप-पिशाच का रूप लेती जाती हैं । वे विकृत और वीभत्स रूप में त्रास एवं दण्ड देती हैं ।

भूत बाधाएँ दो तरह से व्यक्ति को अपनी चपेट में लेती हैं-इस प्रकार की बाधा में रोगी के सिर पर भूत 'आता' है, वह अनर्गल प्रलाप और असंगत चेष्टाएँ करता है । रोग की इस स्थिति में रोगी की सामान्य चेतना विशृंखलित हो जाती हैं और यह विशृंखलित चेतना ही उसके व्यक्तित्व को घेरे रहती है ।

दूसरे प्रकार की बाधा में 'भूत' रोगी के शरीर में भीतर समा जाता है । वह निरन्तर 'व्यग्र-त्रस्त' विक्षिप्त सा रहने लगता है । कभी-कभी अंग-विशेष में पीड़ा भी होती है तथा यह पीड़ा अपना स्थान बदलती रहती है । ऐसे रोगों का शारीरिक कारण ढूढ़ँने पर भी मिल नहीं पाता ।

भूत-बाधा-पीड़ित व्यक्ति को आकस्मिक रूप से असह्य वेदना का अनुभव होता है, कभी हाथ पैर ठण्डे हो जाते हैं, दाँत-बँध जाते हैं, और इस तरह की अन्य शारीरिक प्रतिक्रियाएँ स्पष्ट दिखने लगती हैं ।

ये सभी प्रभाव मन में बैठी भय और अपराध की ग्रन्थियों के हैं । इसलिए इनकी चिकित्सा किसी भी औषधि द्वारा नहीं हो पाती ।

मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में प्रेत बाधा के अधिकांश मामले 'हिस्टीरिया' रोग का ही दूसरा नाम होते हैं । ऐसे रोगियों का व्यक्तित्व विभाजित होता है तथा उनके सामान्य व्यक्तित्व के साथ ही उनमें एक विशेष व्यक्तित्व भी समाहित हो जाता है। मनोवैज्ञानिकों का यह भी निष्कर्ष है कि मानसिक विभाजन की स्थिति संक्रामक होती है । इसलिए देखा गया है कि जब कोई भूत पीड़ित स्त्री झूमने लगती है तो उसके इर्द-गिर्द बैठी स्त्रियों के झुण्ड में से भी दस-पाँच स्त्रियाँ झूमने लगती हैं ।

विभिन्न आकृतियों-प्रकृतियों वाले अनेकानेक मानसिक विक्षोभ वस्तुतः मानसिक असन्तुलन के परिणाम हैं । इसके लिए आवश्यक है परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने की सूझबूझ तथा प्रतिकूल परिस्थितियों को और परिष्कृत दृष्टिकोण द्वारा ही यह सम्भव है ।

प्रेत प्रभाव के दो कारणों की चर्चा ऊपर की जा चुकी है, एक मृतात्माओं की उद्विग्न एवं आक्रामक सत्ता । दूसरे मनोरोगों के सन्दर्भ में प्रेत कल्पना की प्रतिक्रिया। इन दो के अतिरिक्त एक तीसरा कारण और भी है किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों की निजी चेतना में ही ऐसे उभार उत्पन्न हो जाते हैं जो भूतों की करतूत जैसे विलक्षण परिचय देने लगते हैं । यह व्यक्तित्व में विशिष्ट ऊर्जा का आकस्मिक उदय होना कहा जा सकता है । वही अपने समीपवर्ती क्षेत्र को प्रभावित करती है । इससे दर्शकों को लगता है यहाँ कोई प्रेतात्मा विद्यमान है और अपने अस्तित्व का परिचय देने के लिए उलट-पुलट कर रही है । इन तथ्यों को समझते हुए अपनी मनोभूमि को परिष्कृत एवं उत्कृष्ट बनाने की आवश्यकता है ।

भूत जो सचमुच भी होते हैं वे मात्र अपने अतीत की अनुगूँज होते हैं । अपनी वासना-तृष्णा एवं आकांक्षा की आग से वे स्वयं ही जल रहे होते हैं । वे वस्तुतः अतीत की भूलों का फल भुगत रहे होते हैं और उनसे मुक्त होने के लिए छटपटा रहे होते हैं । अभ्यास, कुतूहल या संस्कारवश वे अपनी गतिविधियों का प्रदर्शन करने को उद्यत होते भी हैं तो उसमें डरने जैसी क्या बात है ? वे तो दया के ही पात्र होते हैं और मुक्ति की कामना करते हैं । जो अपने वर्तमान में जी रहा है, ऐसे मनुष्य को किसी के भूत से डरना शोभा नहीं देता । वे बस 'भूत' ही तो हैं ।

अतृप्त आकांक्षाओं का उद्वेग मरने के बाद भी प्राणी को चैन नहीं लेने देता और वह सूक्ष्म शरीरधारी होते हुए भी यह प्रयत्न करता है कि अपने असन्तोष को दूर करने के लिए कोई उपाय, साधन एवं मार्ग प्राप्त करे । सांसारिक कृत्य या उपयोग शरीर द्वारा ही हो सकते हैं । मृत्यु के उपरान्त शरीर रहता नहीं । ऐसी दशा में उस अतृप्त प्राणी की उद्विग्नता उसे कोई शरीर गढ़ने की प्रेरणा करती है । अपने साथ लिपटे हुए सूक्ष्म साधनों से ही वह अपनी कुछ आकृति गढ़ पाता है जो पूर्व जन्म के शरीर से मिलती-जुलती किन्तु अनगढ़ होती है। अनगढ़ इसलिए कि भौतिक पदार्थों का अभीष्ट अनुदान प्राप्त कर लेना, मात्र उसकी अपनी इच्छा पर ही निर्भर नहीं रहता। उसके लिए प्रकृति का सहयोग और ईश्वरीय विधि-व्यवस्था का समर्थन भी चाहिये । तीनों तथ्य मिलने पर ही परिपूर्ण शरीर मिलता है । किन्तु मृतक को एकाकी प्रयत्नों तक ही सीमित रहना पड़ता है, अस्तु वह एक अपनी छोटी सामर्थ्य के अनुसार अनगढ़ शरीर ही रच सकता है । वह इतना ही बन पाता है कि बहुत प्रयत्न करने पर थोड़े समय के लिए दृश्य बन सके और कुछ हरकतें कर सके अन्यथा अदृश्य स्थिति में ही अपना निर्वाह करता रहे ।

'भूत' अपनी इच्छा पूर्ति के लिए किसी दूसरे के शरीर को भी माध्यम बना सकते हैं । उसके शरीर से अपनी वासनाओं की पूर्ति कर सकते हैं अथवा जो स्वयं करना चाहते थे वह दूसरों के शरीर से करा सकते हैं । कुछ कहने या सुनने की इच्छा हो तो वह भी अपने वशवर्ती व्यक्ति द्वारा किसी कदर पूरी करते देखे गये हैं । इसके लिए उन्हें किसी को 'माध्यम' बनाना पड़ता है । हर व्यक्ति माध्यम नहीं बन सकता । उसके लिए दुर्बल मनःस्थिति का आदेश पालने के लिए उपयुक्त मनोभूमि का व्यक्ति होना चाहिए । प्रेतों के लिए सवारी का काम ऐसे ही लोग दे सकते हैं । मनस्वी लोगों की तीक्ष्ण इच्छा शक्ति उनका आधिपत्य स्वीकार नहीं करती ।

भूतों के अस्तित्व से किसी को डरने की आवश्यकता नहीं है । वे भी मनुष्यों की तरह ही जीवनयापन करते हैं । मनुष्य धरती पर स्थूल शरीर समेत रहते हैं । तुलनात्मक दृष्टि से उनकी सामर्थ्य और साधन जीवित मनुष्यों की तुलना में कम होते हैं इसलिए वे डराने के अतिरिक्त और कोई बड़ी हानि नहीं पहुँचा सकते । डर के कारण कई बार घबराहट,

चिन्ता, असन्तुलन जैसी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं । भूतोन्माद में यह भीरुता और मानसिक दुर्बलता ही रोग बनकर सामने आती है । वे जिससे कुछ अपेक्षा करते हैं उनसे सम्पर्क बनाते हैं और अपनी अतृप्तिजन्य उद्विग्नता के समाधान में सहायता चाहते हैं । सम्पर्क समय का अनभ्यस्त अजूबापन ही प्रायः डर जाने का मुख्य कारण होता है ।

भूत-प्रेत कहने से ऐसे अदृश्य मनुष्यों का बोध होता है, जिनका स्थूल शरीर भी मर चुका है । लोगों का मोटा ख्याल है कि मरने के बाद आदमी भूत बन जाता है । यह बात मृतकों के ऊपर लागू नहीं, बहुत से मनुष्य मोक्ष प्राप्त करते हैं, कुछ स्वर्ग चले जाते हैं, कुछ विश्राम की मधुर निद्रा में सो जाते हैं । बहुत थोड़े प्राणी ऐसे रहते हैं जिन्हें भूत बनना पड़ता है । आर्ष-ग्रन्थों में प्रेत शब्द निन्दासूचक अर्थ के साथ व्यवहृद हुआ है । इसे पाप योनि माना गया है । तीन वासनाओं की उग्रता के कारण जीव परलोक यात्रा की स्वाभाविक श्रृंखला को तोड़ देता है और आगे बढ़ने की अपेक्षा पीछे लौट पड़ता है । सूक्ष्म लोक में विश्राम लेकर कृत कर्मो का फल भोगते हुए नवीन जन्म लेने के स्थान पर पिछले जन्म की ओर वापिस चलता है । पूर्व जीवन से अथवा किसी प्रियजन से अत्यधिक मोह होने के कारण या किसी ईर्ष्या, द्वेष में अनुरक्त होने पर मृतात्मा जहाँ का तहाँ ठहर जाता है । उसकी आंतरिक स्फुरणा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है पर वह किसी की नहीं सुनता और वहीं का वहीं अड़ा रहता है । जीवन भर की थकान, कर्मो का भार इन दोनों के कारण से वह बड़ा बेचैन रहता है । राग-द्वेष की इच्छाएँ, शरीरपात का लोभ, यह सब भी कुछ कम दुख नहीं देते । इसके अतिरिक्त स्थूल लोक के अधिक सम्पर्क में रहने के कारण उसकी इन्द्रियों में भी स्थूलता का अधिक भाग आ जाता है, अतएव वह भोग पदार्थ की भी इच्छा करता है, यह सब विषम स्थितियाँ मिलकर प्रेत को बड़ा बेचैन बनाये रहती हैं । वह व्याकुल, पीड़ित, आतुर और दुखित होता हुआ इधर-उधर मारा-मारा फिरता है ।

ऐसी घटनाएँ हमारे सुनने में आती हैं कि अमुक स्थान पर भूत रहता है, बीमार कर देता है, पत्थर फैंकता है या और उपद्रव करता है । सहायता करने की अपेक्षा भूतों द्वारा हानि पहुँचाने के समाचार अधिक सुने जाते हैं । इससे प्रतीत होता है कि भूतों को मानसिक उद्वेग अधिक रहता है । इन्द्रिय लिप्सा या मोह श्रृंखला में बँधने के कारण ही वे इस दुर्गति को प्राप्त होते हैं । जिन्हें स्वादिष्ट भोजनों की चाटुकारिता और मादक द्रव्यों की आदत, नाच-तमाशों में अभिरुचि, मैथुनेच्छा विशेष रूप से होती है, जिन्होंने जीवित अवस्था में इन्द्रियों को इन खराब आदतों का गुलाम बन जाने दिया है, वे विवश होकर मृत्यु के उपरान्त भी इन्हीं वासनाओं मे ग्रसित किन्हीं अन्य व्यक्तियों को देखते हैं, तो उनके माध्यम द्वारा अपनी तृप्ति करने के लिए उन पर अपना अड्डा जमा लेते है और उनकी इन्द्रियों द्वारा स्वयं तृप्ति लाभ करने की चेष्टा करते हैं ।

कहा जा चुका है कि भूतों की वासनाएँ बहुत नीची श्रेणी की होती हैं, इसलिए वे वेश्यालय, मदिरालय या ऐसे ही अन्य त्याज्य स्थानों में विशेष रूप से मँडराते रहते हैं इन स्थानों से सम्बन्ध रखने वाले लोगों के शरीर पर यह भूत गुप्त रूप से अपना अड्डा जमाते हैं । वे मनुष्य यद्यपि इनको पहचान नहीं पाते, पर इतना तो अनुभव करते ही हैं । त्याज्य स्थानों पर जाते ही उनकी वासना असाधारण रूप से उत्तेजित होती है ।

भूत होते तो हैं, पर बहुत ही कम संख्या में होते हैं। क्योंकि भूत योनि अस्वाभाविक योनि है, यह नियत क्रम के अनुसार नहीं, मृतक के मानसिक विग्रह के कारण मिलती है। भूत कभी कभी अपना थोड़ा-बहुत परिचय देते हैं, अन्यथा जन समाज से दूर किन्हीं एकान्त स्थानों में अपनी वेदना छिपाये पड़े रहते हैं । विक्षिप्त दशा में होने के कारण वे कोलाहल से दूर रहना ही पसंद करते हैं । अपना परिचय प्रकट करने की इच्छा तो किसी को और विशेष स्थिति के कारण ही होती है ।

फिर भूतबाधा की इतनी चर्चा जो सुनी जाती है वह क्या ? ऐसे प्रसंगों में भ्रम के भूत ही अधिकांश रहते हैं । जिसे डर लग जाता है कि मेरे पीछे भूत पड़ा हुआ है उसके लिए घड़ा भी भूत बन जाता है । मन में भूतों की कल्पना उठी कि पेट में चूहे लोटे । शाम को भूतों की कहानी सुनी कि रात को स्वप्न में मसान छाती पर चढ़ा । एक बार दो मनुष्यों में शर्त हुई कि रात को १२ बजे अमुक मरघट में कील गाढ आवे तो पचास रु० मिलें । वह मनुष्य रात को मरघट में सो गया । रात अंधेरी थी, जल्दी में वह अपने कुर्ते के कोने को कील समेत गाढ़ गया, जब उठा तो उसे विश्वास हो गया कि मुझे भूत ने पकड़ लिया है । उसने डर के मारे एक चीख मारी और बेहोश होकर वहीं मर गया । इसी प्रकार अनेक बार अपना भ्रम ही भूत का रूप धारण करके दुख देता रहता है । ऐसे भूतों से मन का सावधान हुए बिना छुटकारा

नहीं मिलता । जिन अशिक्षित जातियों में अज्ञान और अशिक्षा घर किए हुए होती हैं, उनको भ्रम के भूत अधिक आते हैं किन्तु सुशिक्षित परिवारों मे प्रायः उन्हें स्थान नहीं मिलता ।

मृत आत्माएँ जब प्रकट होती हैं, स्वरूप दिखाती हैं तो वे शरीर निर्माण की सामग्री को उन्हीं व्यक्तियों में से खींचते हैं जिन्हें ये प्रेत दिखाई दें । प्रेतों को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वे स्थूल परमाणुओं को खींच सकें । दिखाई देने की जब उनकी इच्छा होती है तो वे सामने वाले के शरीर की बहुत सी सामग्री खींचकर अपना रूप बना लेते हैं । ऐसे समय पर डाक्टरी परीक्षा करके देखा गया है कि उस मनुष्य का शरीर हलका हो जाता है, तापमान और विद्युत प्रवाह घट जाता है, पाचन क्रिया और रक्त प्रवाह में मन्दता आती है । जिन लोगों ने क्षति को पूरा करने के गुप्त अभ्यासों को सीख लिया है, उनकी बात दूसरी है, साधारण लोगों को भूतों का बार-बार दिखाई देना अच्छा नहीं है, इससे उन्हें ऐसे शारीरिक झटके लगते हैं, जिनके कारण वह खतरनाक दशा को पहुँचते हैं।

यह परमात्मा की छिपी हुई एक महती कृपा है कि मृत और जीवित मनुष्यों के मिलने में भय की यह एक बाधा खड़ी की गई है, यदि वह न होती हो मृत व्यक्ति भी घरों में ऐसे ही बैठ रहते जैसे चिड़िया, चूहे, चीटियाँ या खटमल भरे रहते हैं । इससे मृत और जीवितों का आगे का विकास रुक जाता और मोह बन्धनों में जकड़े हुए जहाँ के तहाँ पड़े रहते । प्रभु की इच्छा है कि सांसारिक झूठे रिश्तों के मोह-पास में अधिक न बँधे और अपना कर्तव्य पालन करता हुआ निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होता रहे । पीछे की भूमि पर से पाँव उठा लेने के बाद ही आगे कदम बढ़ा सकते हैं । हमें पीछे की ओर नहीं आगे की ओर चलना चाहिए । भूत के पाँव उलटे होते हैं । इस कहावत का तात्पर्य यह है कि वह आगे के लिए नए सम्बन्ध स्थापित करने की अपेक्षा प्राचीन सम्बन्धियों के मोह जाल में बँधकर पीछे की ओर लौट रहा है ।

कभी कभी मनुष्य की शारीरिक बिजली के परमाणु स्वयं एक स्वतन्त्र प्रतिभा बन जाते हैं . स्वभावतः आप किसी घर में घुसते ही वहाँ के निवासियों की स्थिति जान सकते हैं, क्योंकि वहाँ रहने वालों के मानवीय तेज उस वातावरण में मँडराते रहते हैं और आपके मानसिक नेत्र इस बात को आसानी से पहचान लेते हैं कि यहाँ क्या वस्तु भरी हुई है । जिन स्थानों पर कोई भयंकर कार्य हुए हों वहाँ मुद्दतों तक वैसा ही वातावरण बना रहता है । अग्नि काण्ड, भ्रूण हत्या, कालादि ऐसे दुष्कर्म हैं जिनके कारण उस स्थान के ईंट, पत्थर भी मूक वेदना से सिसकते रहते हैं । सताये हुए प्राणी की व्यथा साकार बन जाती है और जागृत या स्वप्न अवस्था में वहाँ के निवासियों को डराती है । कई मकानों को भुतहा समझा जाता है । वहाँ रहने वालों को भूत दिखाई देते हैं । ऐसे स्थानों पर किसी के अत्यन्त हर्ष, द्वेष, क्रोध, दुख या ममता की साकार प्रतिमाएँ ही प्राय अधिक पायी जाती हैं, क्योंकि वास्तविक भूत कोलाहल से कुछ दूर और एकांत स्थानों में ही रहना अधिक पसंद करते हैं ।

छोटी श्रेणी के भूत केवल मानसिक आघात पहुँचा सकते हैं, डरा देना या बीमार कर देना यह उनके बस की बात है । निर्बल शक्ति होने के कारण वे न तो अपना स्वरूप प्रकट कर सकते हैं और न किसी की अधिक क्षति कर सकते हैं । हाँ, छोटे बच्चों पर इनका आघात प्रहार हो सकता है । दुर्वासनाओं का बाहुल्य रहने के कारण यह दूसरों के साथ बुराई ही कर सकते हैं, भलाई नहीं । मध्यम श्रेणी के भूत जो अधिक बलवान और आतुर होते हैं, वे अपने नाना प्रकार के रूप धारण कर प्रकट हो सकते हैं । वस्तुओं को इधर से उधर उठाकर ला और ले जा सकते हैं, किसी मनुष्य के शरीर पर अधिकार करके उसकी इन्द्रियों से अपनी इच्छा पूरी कर सकते हैं तथा पागल या बीमार कर सकते हैं । ऊँचे श्रेणी के वीर ब्रह्म राक्षस, बेताल, पितर आदि कुछ सहायता भी कर सकते हैं, पर वे बातें कभी कभी गलत भी सिद्ध होती हैं । श्राप-वरदान देना भूत के बस की बात नहीं हैं क्योंकि उसके लिए जितने आध्यात्मिक बल की जरूरत है, वह उनमें नहीं होता ।

मनुष्य शरीर के एक-एक कण में एक स्वतन्त्र सृष्टि रच डालने की शक्ति भरी पड़ी है । यदि यह कभी विशेष मनोबल के साथ निकले हों और फिर वह स्थान सूना पड़ा रहे तो बाधा रहित होने के कारण वे बीज बढ़ते-पकते और पुष्ट होते रहते हैं । हजारों वर्ष पुराने खण्डहरों में किन्हीं भूत-प्रेतों का परिचय मिलता है । हो सकता है कि वे आत्मा अब तक अनेक जन्म ले चुकी हों और उनके पूर्वजन्म के यह कण उन भावनाओं की तस्वीर की तरह अब तक जीवित बने हुए हों । लेकिन ऐसा होता खाली मकानों में ही है, क्योंकि वहाँ उन प्राचीन कणों की स्वतन्त्र वृद्धि करने में कोई बाधा नहीं आती । जो स्थान मनुष्यों के निवास केन्द्र रहते हैं, वहाँ उनकी गर्मी उन प्राचीन प्रतिमाओं को हटा देती या नष्ट कर देती है ।

किन्हीं तेजस्वी आत्माओं के श्राप और वरदान एक स्वतन्त्र सत्ता बन जाते हैं और वह भी जीवित मनुष्यों की तरह हानि लाभ पहुँचाते हैं । शंकर के कोप से वीरभद्र गणों का प्रकट

होना, दुर्वासा के क्रोध करने पर उनकी जटाओं में से एक राक्षसी का निकलकर अमबरीस के पीछे दौड़ना, इस प्रकार के मानसपुत्र भी मूर्त रूप हो सकते हैं । किसी की ''हाय'' इतनी साकार हो सकती है कि पिशाच की तरह सताने वाले का गला घोंटने लगे । वरदान, आशीर्वाद, शुभकामनाएँ चाहे हमें मूर्तिमान दिखाई न दें, पर वे देवता की तरह साथ रह सकती हैं और दुखद विपत्तियों में से भुजा-पकड़ कर दृश्य या अदृश्य रुप से बड़ी भारी मदद मिल सकती है । कई मनुष्य कुएँ में गिरने पर भी बेदाग निकल आते हैं या ऐसी ही अन्य प्राणघातक विपत्तियों में से साफ बच आते हैं । हो सकता है कि कोई आशीर्वाद उस समय हमारे ऊपर अदृश्य कृपा प्रकट कर रहा हो । इस प्रकार दूसरों के भले-बूरे विचरर भी भूतों की भांति अपने अस्तित्व का साकार या निराकार परिचय दे सकते हैं ।

भूत मनुष्य से कम समर्थ और कम साधन-सम्पन्न होते हैं । बशर्ते, मनुष्य ने आत्म -विकास किया हो । दबे, अविकसित, अपरिष्कृत मनुष्य ही भूतों के प्रकोप और आतंक के शिकार बनते हैं । भूत तो अपने ही उन्माद से त्रस्त, आत्म प्रताड़ित प्राणी होते हैं । वे उस त्रास का, आत्मप्रताड़ना का परिचय भर ही दे सकते हैं । उनसे डरकर स्वयं भी भूतोन्माद-ग्रस्त हो जाने वाले व्यक्ति की दयनीय दुर्बलता मनुष्य की गरिमा के अनुरूप नहीं । भूत आत्म-सत्ता की अविनाशिता के प्रमाण भर हैं । उस प्रमाण से मनुष्य को भयभीत होने की भला क्या आवश्यकता ? उल्टे, यह प्रमाण तो शक्ति ही देता है । जब जीवन अनन्त है और चेतना अविनाशी तो उसका भूत क्या बिगाड़ेगा ? उसे तो आत्म-सत्ता की सनातन विद्यमानता का संदेशवाहक भर समझना चाहिए ।

भूत बाधा और उसका निवारण

साधारण श्रेणी या निकृष्ट कोटि का जीवन बिताने वाले वे व्यक्ति जो लालसा, पीड़ा एवं मोहग्रस्त अवस्था में शरीर छोड़ते हैं, अक्सर प्रेत योनियों में पड़ जाते हैं यह पिछले पृष्ठों पर बताया जा चुका है । इस योनि में आत्मा की कोई विशेष उन्नति नहीं होती । अतृप्ति, द्वेष, कुढ़न आदि से प्रेरित होकर यह दूसरों को कष्ट देने, डराने या हानि पहुँचाने का प्रयत्न किया करते हैं । कुछ ऐसे होते हैं जो अत्यन्त मोह ग्रस्त होने के कारण प्रेत हुए हैं और अपने प्रियजनों के साथ रहना चाहते हैं, यह हानि तो कुछ नहीं पहुँचाते परन्तु अपनी वासनाओं को तृप्त करने के लिए कुछ न कुछ याचना करते रहते हैं । स्थूल मनुष्य शरीर की भांति इन प्रेतों का शरीर नहीं होता और न उन्हें अन्न, जल जैसी स्थूल चीजें खाई भी नहीं जा सकतीं। तो भी इनकी वासनाएँ जागृत रहती हैं और पूर्व जन्मों में अनुभव किए हुए इन्द्रिय भोगों को भोगना चाहतीं हैं ।

देखा गया है कि मृत्यु शैय्या पर पड़े हुए कुछ रोगी नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन माँगते हैं । वे चीजें उन्हें दी जाती है तो खाई एक आध तोले भी नहीं जातीं । करीब करीब ऐसी ही दशा इन प्रेतों की होती है, वे मनुष्य शरीर में भोगे हुए भोगों को भोगना चाहते हैं, पर जिस शरीर में हैं उनके द्वारा उनको भोगना सम्भव नहीं । वृक्ष के शरीर में जो आत्मा है वह पशु के शरीर के भोगों को नहीं भोग सकती और न कोई पशु उन भोगों के भोगने में समर्थ है जो वृक्षों को प्राप्त हैं । हर शरीर की स्वादेन्द्रियाँ प्रथक ढंग की होती हैं । इसलिए प्रेत इच्छा करते हुए भी मनुष्य शरीर के स्वादों को चखने में असमर्थ रहते हैं, इस असमर्थता का अनुभव करके वे और भी अशान्त रहने लगते हैं और झुंझलाहट को अपने निकटस्थ व्यक्तियों पर निकालते हैं, उन्हें कष्ट देते हैं ।

हाँ, कभी कभी कोई वृद्ध उनका अपवाद करते देखे जाते हैं । मृत्यु समय उनकी समझ परिपक्व होती है, बच्चों के लिए उनकी ममता, स्नेह, सहायता व क्षमा का भाव होता है, इन्द्रियाँ भी इनकी अधिकांश में तृप्त होती हैं । ऐसे प्रेत जिस घर में रहते हैं, उस घर में लोगों की सहायता किया करते हैं, आपत्तियों से सचेत करते हैं और कष्टों के निवारण में जो कुछ वे थोड़ी बहुत सहायता पहुँचा सकते हैं, पहुँचाते हैं। इनके द्वारा जानबूझकर कोई ऐसी कार्य नहीं किया जाता जो सम्बन्धियों को हानिकारक हो ।

मन की एक प्रवृत्ति ऐसी है कि यदि वह स्वयं जिस इच्छा को पूर्ण नहीं कर पाता तो उसे दूसरों से पूर्ण कराकर स्वयं तृप्ति का आनन्द अनुभव करता है । बड़ा हो जाने पर आदमी छोटे खिलौने से लोक लाज की वजह से नहीं खेलता, परन्तु वह अपने बच्चों के लिए अच्छे -अच्छे खिलौने लाता है और उन्हें खेलते देखकर अपनी तृप्ति का अनुभव करता है । इसी प्रकार प्रेत अपनी वासना को तृप्त करने के लिए दूसरों को भोजनादि कराने का आदेश करते हैं और उनकी तृप्ति से स्ययं भी संतोष लाभ करते हैं । अक्सर देखा गया है कि किसी ब्राह्मण या अमुक व्यक्ति को अमुक भोजन कराने की प्रेत लोग माँग किया करते हैं, इसका यही कारण है । उनकी आज्ञानुसार कार्य हुआ है और उनके बताए हुए अमुक व्यक्तियों ने तृप्ति लाभ की है । यह देखकर उन्हें संतोष हो जाता है और उद्विग्नता घट जाती है ।

भूत-प्रेतों का श्रेणी विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है-(१) काल्पनिक भूत-जिन्हें मनुष्य भय, आशंका, विश्वास एवं संकल्प द्वारा स्वयं उत्पन्न करता है, (२) रोग का भूत, (३) मृत जीवित व्यक्तियों के शरीर विद्युत परमाणु जो पुनः जागृत होकर अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता बना लेते हैं, (४) इन्द्रिय भोगों में अतृप्त लालसा, वासना, प्रतिहिंसा से जलते हुए पिशाच,

(५) अपने वैभव, स्थान, कुटुम्ब या मित्रों में अतिशय आसक्ति, (६) तांत्रिक साधना द्वारा सिद्ध की हुई संकल्प प्रतिमाएँ-छाया पुरुष, यक्षिणी आदि, (७) जीवन मुक्त आत्माएँ, जो सत्कर्मों में प्रेरणा और सहायता किया करती हैं । इन सात श्रेणियों में सभी प्रकार के भूत-प्रेत आ जाते हैं । इनमें आरम्भिक चार तो मनुष्यों को हानि ही हानि पहुँचाते हैं । पाँचवें के द्वारा हानि और लाभ दोनों हो सकते हैं । छटवें, सातवें केवल लाभ ही पहुँचाते हैं । अब इनके अस्तित्व सम्बन्धी कुछ परिचय और उनसे छुटकारा पाने के कुछ उपाय बताये जाते हैं ।

(१) काल्पनिक भूत-भय क़ा मूर्त स्वरूप है । आशंका और भय जब दृढ़ीभूत होकर विश्वास का रूप धारण कर लेते हैं, तो उनकी आकृति दिखाई देने लगती है । हिप्नोटिज्म द्वारा तन्द्रित किए व्यक्ति को ऐसी वस्तुएँ दिखाई देने लगती हैं । जिनका वास्तव में कोई अस्वित्व नहीं होता । लकड़ी को आदमी और आदमी को लकड़ी समझने का भ्रम हो जाता है । भय के कारण बुद्धि भ्रमित हो जाती है और आंशका की छाया को इन्द्रियाँ अनुभव करने लगती हैं । आँखें देखती हैं कि भूत सामने खड़ा है, कान सुनते हैं, वह अमुक बात कर रहा है या शब्द कर रहा है । त्वचा अनुभव करती है कि पकड़ रहा है, छू रहा है, भीतर घुस रहा है। वह अनुभव उसे बिलकुल सत्य प्रतीत होते हैं जब वे विपत्र अवस्था में हैं तो जो कुछ भी अनुभव होगा, वह सत्य प्रतीत होगा । काल्पनिक भूतों की पीड़ा से जो पीड़ित हैं, उन्हें ऐसा जरा भी नहीं लगता कि हम भ्रम ग्रस्त अवस्था में हैं । वे तो अपने अनुभवों को बिलकुल सत्य के रूप में ही मानते हैं । जब भी इनका भय और आंशका जागृत होने का अवसर पाते हैं, तभी वह भूत सामने आ खड़ा होता है और तरह तरह के उत्पात करता है ।

(२) मस्तिष्क सम्बन्धी कोई खराबी हो जाने पर पागलपन उन्माद सरीखे रोग उत्पत्र होते हैं । जिसके कारण मनुष्य की चेष्टा, आकृति, आदत, वाणी तथा रुचि विचित्र हो जाती हैड । वह बेढंगी बातें करता है और विचित्र प्रकार के आचरण करता है । कोई अतृप्त इच्छा गुप्त मन में दबी पड़ी रहे तो वह समय पाकर मृगी, मूर्छा आदि के रूप में उभरती है । कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति में पड़ा हुआ हो जिसे वह पसंद नहीं करता, परन्तु उस दशा में से निकलने का उसे अवसर नहीं तो ऐसी झुँझलाहट भरी स्थिति के कारण मस्तिष्कीय ज्ञान तन्तु बहुत उलझ जाते हैं,

भूतावेश जैसी स्थिति हो जाती है । देखा गया है कि कई किशोर लड़कियाँ अपनी ससुराल जाती हैं, परन्तु वहाँ का वातावरण उन्हें पसंद नहीं आता, ऐसी दशा में उद्विग्नता और लाचारी का क्षोभ उनके मानसिक तन्तुओं पर घातक असर डलता है, जिसके कारणं भूत बाधा जैसे लक्षण उसमे दृष्टिगोचर होने लगते हैं । अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने की एक वृत्ति मनुष्य में पाई जाती है, इससे प्रेरित होकर कई मनुष्य झूठ मूठ भूतावेश का बहाना करते हैं अथवा ऐसे किस्से गढ़ लेते हैं । यह भी एक प्रकार की मानसिक कमजोरी है । अप्रसन्न और असन्तुष्ट लोग अपने परिवार को परेशान करने, नुकसान पहुँचाने और पैसा खर्च कराने के लिए भूतबाधा की सृष्टि करते देखे गये हैं । चालाक नौकर, बदमास पडोसी, ठग, ओझा आदि की करतूतें भी भूत उन्माद के समान ही आडम्बर खड़ा कर लेती हैं । यह सामाजिक रोग है ।

(३) पिछली फसल में जो अनाज पैदा हुआ था,उसके कुछ पौधे अगली फसल में भी उग आते हैं । कारण यह है कि पिछली फसल में जो दाने खेत में गिरे थे, वे नष्ट नहीं हुए वरन् समय पाकर उग आये । इस प्रकार किसी मकान में कोई असाधारण (नीचे या ऊँचे) स्वभाव का मनुष्य रहा हो अथवा कोई असाधारण घट्ना घटी हो तो सम्बन्धियों के सूक्ष्म शरीर के कुछ परमाणु उसमें विशेष रूप से चिपक जाते हैं । यह परमाणु अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर पुष्ट होते हैं और एक अदृश्य व्यक्ति जैसी स्वतन्त्र सत्ता कायम कर लेते हैं ।

एक घर में बहुत समय तक एक वेश्या रही, पीछे वह चली गई, उसी मकान में कुछ दिन बाद एक सदाचारी भद्रपुरुष का रहना हुआ । वे बहुत संयमी, ब्रह्मचारी और अच्छे विचारों के थे । किन्तु जिस दिन से उस मकान में रहे, उसी दिन से उन्हें नित्य स्वप्नदोष होने लगा । स्वप्न में उन्हें एक सुन्दर स्त्री दिखाई पड़ती थीं और उसी की कुचेष्टाएँ उन्हें गिरा देती थीं । एक दिन वे बाजार में जा रहे थे तो देखा कि साक्षात् वही स्त्री कोठ पर बैठी हुई है जो उन्हें रात में दिखाई पड़ती है, वे बहुत असमंजस में पड़े कि यह क्या मामला है । वे घबराये हुए हमारे पास आये, हमें सारी घटना उन्होंने बताई । तलाश करने पर मालूम हुआ कि वह वेश्या उस मकान में रहती थी । हमने उन भद्रपुरुष को बताया कि उस वेश्या के कुछ विद्युत कण उस मकान में रह रहे हैं और परिस्थितियों के कारण उन्होंने अपनी अलग सत्ता कायम कर ली है, वे एक प्रकार से जीवित व्यक्ति का प्रेत बन गये हैं । वे ही इस तरह कार्य करते हैं। आप उस मकान को खाली कर दीजिए । उन भद्रपुरुष ने मकान छोड़ कर दूसरा ले लिया, इसके बाद न उन्हें स्वप्नदोष हुआ और न कभी व स्त्री दिखाई दी ।

ऐतिहासिक स्थानों या तीर्थ स्थानों में कभी-कभी वहाँ के प्राचीन पुरुषों की झलक दिखाई दे जाती । वृन्दावन की सेवाकुंज में कभी-कभी श्रीकृष्णजी की एक अस्फुट सी झाँकी लोगों को हुई है, किन्हीं ने रासलीला होती देखी है । ऐसे दृश्यों का कारण यह है कि ऊँची आत्माओं का तेज बहुत बढ़ा-चढ़ा होता है, उस तेज के विद्युत कण हजारों वर्षों तक वहाँ बने रहते हैं और समय-समय पर उनका मूर्त रूप देखने में आता रहता है । कुरुक्षेत्र, इन्द्रप्रस्थ आदि के ऐतिहासिक स्थानों में किन्हीं को महाभारतकालीन पुरुषों की झाँकियाँ हुई हैं । तीर्थों के वातावरण में एक विशेषता यह होती है कि

वहाँ जो प्रख्यात मनस्वी महापुरुष हुए हैं, उनका प्रभाव किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है और वह अनुकूल मनोभूमि वाले लोगों को विशेष रूप से प्रभावित करता है ।

स्पष्ट है कि जहाँ मनुष्य शरीरों का कुछ असाधारण प्रयोग हुआ है; वहाँ भूत बाधा जैसी गड़बड़ें बहुत देखी जाती हैं । श्मशान, कब्रिस्तान, फाँसीघर, जिवहखाने आदि स्थानों का वातावरण बड़ा आतंकित रहता है । इन स्थानों में शरीर यन्त्र का असाधारण उपयोग किया जाता है, जिसके कारण उन शरीरों के कुछ परमाणु वहाँ जम जाते हैं और समय समय पर अपना अस्तित्व प्रकट करते हैं । उन स्थानों की समीपता में अपने वालों को भय और आतंक उत्पन्न करने वाले कई प्रकार के अनुभव होते हैं । जिन घरों में हत्याएँ होती हैं, दुष्ट कर्म होते हैं, उनमें भी ऐसा ही भयावह वातावरण बना रहता है। इन भयंकरताओं की मूल में वे परमाणु हैं जो भूतपूर्व व्यक्तियों के शरीर से असाधारण प्रतिक्रिया द्वारा निकले हैं । वे आत्माएँ भले ही मर चुकी हों, दूसरी जगह जन्म ले चुकी हों या जीवित हों, जो भी स्थिति हो पर उनके सूक्ष्म शरीर से निकले हुए यह प्रेत स्वतन्त्र रूप से बहुत काल तक अपना अस्तित्व बनाये रहते हैं और परिचय देते रहते हैं । इन परमाणु प्रेतों द्वारा भी वैसे ही विस्मयजनक भयंकर कार्य होते हैं जैसे अन्य प्रकार के भूतों द्वारा हो सकते हैं ।

(४) इन्द्रिय भोगों से अतृप्त वासना ग्रस्त प्रेत अपने प्रियजनों पर विशेष रूप से आतंक जमाते हैं क्योंकि उनका पहले से ही उनसे परिचय होता है और अपने पूर्व अनुभव के आधार पर वे सोचते हैं कि इच्छाएँ इनके द्वारा पूरी हो सकती हैं । खाने-पीने की चींजों की उनकी इच्छा अधिक होती है, कोई अपने लिए चबूतरा, वृक्ष आदि रहने योग्य स्थान चाहते हैं, किन्हीं को दान-पुण्य, तीर्थयात्रा, देवदर्शनादि शुभ कर्मों में रुचि होती है । कोई अपनी आज्ञा पालन करा के अपने अहंकार को पूरा करना चाहते हैं । जो भी उनकी इच्छा हो उसे पूर्ण कराने के लिए वे उपद्रव करते हैं और जब उनकी इच्छा पूर्ण हो जाती है तो संतुष्ट हो जाते हैं । इनके निवास स्थानों को अपवित्र करने वाले, वहाँ विघ्न-बाधा उपस्थित करने वाले ही अक्सर उनके क्रोध भाजन बनते हैं । मध्याह्न या मध्यरात्रि के समय उनका क्षोभ बढ़ता है, इस समय में निकटस्थ व्यक्ति पर अकारण ही वे आक्रमण कर बैठते हैं । पिछले जन्म का बदला चुकाने के लिए उनके उत्पात होते हैं ।

(५) अपने प्रियजनों में अतिशय मोह करने वाले मनुष्य मृत्यु के उपरान्त अपनी प्रबल मोह भावना के वशीभूत होकर प्रेत योनि पाते हैं और अपने उसी घर के आस-पास फिरते रहते हैं । अपने बाल-बच्चों को हँसता-खेलता देखकर प्रसन्न होते हैं । वृद्धजन अक्सर इस कोटि में आते हैं, वे किसी को हानि नहीं पहुँचाते वरन् समय समय पर कुटुम्बियों को आपत्तियों से सचेत किया करते हैं और विपत्ति निवारण में सहायता दिया करते हैं । इन्हें पितर कहते हैं ।

जो तरुण अवस्था में मृत्यु को प्राप्त होते हैं और जिनकी लालसाएँ अत्यन्त उग्र एवं स्वार्थपूर्ण होती हैं, वे अपने प्रियजनों को अपनी जैसी प्रेत अवस्था में ले जाकर साथ रखने की इच्छा करते हैं और उसी भावना से वे अपने प्रियजनों को मार डालने का भी आयोजन करते हैं । तरुण स्त्रियाँ जो अपने बाल-बच्चों को छोटा केवल अनाश्रित छोड़कर मर जाती हैं, वे इस प्रकार के कार्य अधिक करती हैं, अपने बच्चों को अपने साथ रखने की मोहमयी लालसा उनसे इस प्रकार का कार्य कराती है ।

(६) तान्त्रित साधनाओं द्वारा छाया पुरुष, भैरवी, भवानी, बैताल, पीर, जिन्न, पिशाचनी आदि की सिद्धि की जाती है, उन्हें वश में किया जाता है । उनकी सहायता से अमुक वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं, अमुक कार्य पूरे किए जाते हैं और अमुक व्यक्तियों को अमुक प्रकार की हानियाँ पहुँचायी जाती हैं । सेवक की तरह यह संकल्प प्रतिमाएँ काम करती हैं । जो भूत, पिशाच, देव इस प्रकार वशीभूत किये जाते हैं वे साधक की निजी मानसिक और शारीरिक शक्तियों के मन्थन से उत्पन्न हुए एक प्रकार के अदृश्य प्राणी होते हैं । शारीरिक विद्युत के परमाणु अवसर पाकर अपने आप एक स्वतन्त्र इकाई बन जाते हैं किन्तु यह देवदानव तांत्रिक विधियों से उत्पन्न किये जाते हैं । इस प्रकार ये अपने ही ''मानस पुत्र'' होते हैं परन्तु प्रतीत ऐसा होता है कि वे पहले से ही कोई स्वतन्त्र सत्ता रखते थे । वास्तव में उनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता पहले से नहीं होती है वरन् साधक उन्हें स्वयं उत्पन्न करता है । जितनी दृढ़ उसकी श्रद्धा और साधना होती है, उसी अनुपात से इन देव दानवों की कार्य शक्ति होती है । दुर्बल मानसिक बल वाले ऐसी कोई प्रतिमा वशीभूत कर लें तो भी उसकी कार्य शक्ति बहुत ही तुच्छ रहेगी , उसके द्वारा कोई महत्वपूर्ण कार्य न हो सकेगा। हाँ, जितना मानसिक बल बढ़ा-चढ़ा है उसका देव दानव भी उतना ही सशक्त होगा । एक की सिद्ध-प्रतिमा दूसरी से लड़ भी जाती है और जो बलवान होती है वह दूसरे को परास्त करके अपना कार्य पूरा करती है । मारण आदि की भयंकर क्रियाएँ इन संकल्प पुत्रों द्वारा ही की जाती हैं ।

(७) जीवन मुक्त आत्माएँ मनुष्यों को सदा शुभ मार्ग पर चलने के लिये प्रोत्साहित करती हैं । शुभ कर्म करने वालों पर प्रसन्न रहती हैं । अपनी स्वाभाविक उदारता के कारण लोगों

को उन्नति के कार्यों में सहायता दिया करती हैं । इनके द्वारा जन समाज का हित ही होता है, अनहित नहीं । अन्तिरक्ष में ऐसे अनेक सिद्ध महात्मा तथा महापुरुषों के सूक्ष्म शरीर उड़ते रहते हैं और वे समय-समय पर मानव प्राणियों को सत्कर्मों में सहायता प्रदान किया करते हैं ।

उपरोक्त सात प्रकार के प्रेतों का परिचय जानने के उपरान्त पाठक इस नतीजे पर पहुँचे होंगे कि जीवनमुक्त आत्माओं के अतिरिक्त छःहों प्रकार के प्रेत हमें लाभ कम और हानि आधिक पहुँचाते हैं । लाभ का विषय ऐसा है कि उस पर विचार करने की कुछ आवश्यकता नहीं, क्योंकि लाभ किसी को बुरा नहीं लगता । यदि किन्हीं प्रेतों के द्वारा कुछ लाभ पहुँचता है तो उसके लिए किसी को कुछ चिन्ता नहीं होती । चिन्ता तब उत्पन्न होती है जब किसी को उनके द्वारा क्षति पहुँचती है । जब प्रेतों द्वारा किसी प्रकार की हानि पहुँचती है तब उसका निवारण करने के लिए हमें चिन्तित होना पड़ता है ।

अब यह जानना है कि प्रेतों के उत्पात से किस प्रकार अपना बचाव किया जा सकता है । यद्यपि ऐसे उत्पात बहुत ही कम होते हैं तो भी जिन्हें उस अवस्था में पड़ जाने का दुर्भाग्य प्राप्त होता है उनके भय कष्ट और दुख का ठिकाना नहीं रहता । अनुभव से ज्ञात हुआ है कि जितने भी भूत उत्पात होते हैं उनमें से दो तिहाई भय एवं कल्पना से उत्पन्न हुए भूतों के होते हैं । शेष एक तिहाई में आधा भाग मनुष्य शरीर के निकले हुए विद्युत परमाणुओं की स्वतन्त्र सत्ता का होता है। इनका प्रभाव किसी स्थान विशेष में होता है, एक नियत घेरे के अन्दर ही यह अपना प्रभाव दिखा सकती हैं । वह भी तब जब कोई अकेला आदमी वहाँ सुनसान समय में रहे। बहुत से मनुष्यों की भीड़ में उनकी शक्ति निर्बल हो जाती है । इन परमाणु प्रतिमाओं में बहुत थोड़ी ताकत होती है । अपना रूप दिखा देना, स्वप्न या तन्द्रावस्था में पड़े हुए व्यक्ति का अपना परिचय देना, कोई शब्द या दृश्य प्रकट करना आदि कार्यों द्वारा उनका अस्तित्व दिखाई पड़ता है, उससे डरकर कोई स्वयं ही अपनी हानि कर ले यह बात दूसरी है वैसे उन परमाणु प्रतिमाओं में ऐसी शक्ति नहीं होतीं कि किसी को कुछ हानि-लाभ पहुँचा सकें । सैंकड़ा पीछे पन्द्रह बीस घटनाएँ इन प्रतिमाओं के द्वारा होती हुई देखी जाती हैं।

जिन घरों में इस प्रकार की गड़बड़ें दिखाई पड़ें उन्हें कई बार अच्छी तरह चना,गोबर,फिनायल आदि से साफ करना चाहिए । नीम की पत्तियाँ घरों में जलाकर बाहर से दरवाजे बन्द कर देने चाहिए । ताकि पत्तियों का धुआँ घर में भर जाय। इसके अतिरिक्त हवन, यज्ञ आदि का भी अच्छा प्रभाव पड़ता है । जागरण, धार्मिक गीत-वाद्य, संकीर्तन, शंख-ध्वनि से इस प्रकार की अणुमूर्तियों को हटाने में सहायता मिलती है ।

प्रेतोन्माद के मानसिक रोग की चिकित्सा आरम्भ करते हुए रोगी को बल-वीर्यबर्द्धक भोजन देना चाहिए । ब्राह्मी, शतावरि, आँवला, सालभ, गोरखमुण्डी, शंखपुष्पी, बच, प्रभृति औषधियाँ सेवन करना, ब्राह्मी तथा आँवले का तेल सिर एवं शरीर पर मलवाना हितकर रहता है । जिस स्थान से रोगी का जी उचट रहा हो, वहाँ से हटाकर कुछ दिन के लिए इच्छित स्थान में रखना भी उचित है । जहाँ तक सम्भव हो उसे सन्तुष्ट और प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया जाय । सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करने और मस्तिष्क को शक्ति देने वाली चीजें सेवन कराने से ऐसे रोगी बहुत अच्छे हो जाते हैं ।

जिन्हें ऐसा विश्वास हो गया हो कि मुझे किसी बलवान भूत ने पकड़ रखा है और अब मुझ से कुछ नहीं हो सकता। ऐसे निर्बल स्वभाव वाले व्यक्तियों के सामने कुछ ऐसा आडम्बर रचना होता है जिससे प्रभावित होकर वे यह विश्वास कर लें कि हमारे ऊपर जो भूत था वह संतुष्ट कर दिया या मार भगाया गया । काँटे से काँटा निकालने की और विष से विष मारने की नीति से यहाँ काम लेना पड़ता है, इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं । जिनके अन्तर्मन में यह विश्वास गहरा उतर चुका है कि मेरे ऊपर भूत चढ़ा है, उसका भ्रम यह कहने मात्र से ही नहीं मिट सकता कि तुम पर भूत नहीं है वह तुम्हारा भय है । रोगी इस बात को नहीं मान सकता, उसे इस पर विश्वास नहीं हो सकत । हर व्यक्ति की मानसिक स्थिति भिन्न होती है । जो लोग अपने विश्वास के आधार पर भूतग्रस्त हो जाते हैं उनमें भावुकता की मात्रा अधिक होती है, ऐसे लोगों को नाटकीय ढंग से कुछ अद्‌भुत विचित्र और आतंक उत्पन्न करने वाली पद्धति से अच्छा किया जाता है ।

यूरोपीय रीतियों के अनुसार प्लेनचिट ऑटोमेटिक राइटिंग करने की पद्धति का हमारे देश में भी प्रचार हो गया हैं । पहले हम भी उसे ठीक समझते थे, परन्तु नये अनुभवों के आधार पर ऐसा प्रतीत हुआ कि यह अपनी ही मानसिक शक्तियों का एक खेल है । इन उपायों द्वारा किसी मृतात्मा के संदेश आना बहुत सन्देहास्पद है । इसलिए इन साधनों का प्रयोग करने के लिए हम अपने पाठकों को सलाह नहीं दे सकते। अपनी ओर से भूत-प्रेतों के सम्बन्ध में अधिक रुचि लेना भी ठीक नहीं । हाँ किसी को अनायास भूत बाधा का शिकार होना पड़े तो उससे छुटकारा पाने के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है ।

पितर

उच्च स्वभाव-संस्कार वाली अशरीरी आत्माएँ-पितर

मरने के बाद क्या होता है ? इस प्रश्न के उत्तर में विभिन्न धर्मों में विभिन्न प्रकार की मान्यताएँ हैं । हिन्दूधर्म शास्त्रों में भी कितने ही प्रकार से परलोक की स्थिति और वहाँ आत्माओं के निवास का वर्णन किया है । इन मत भिन्नताओं के कारण सामान्य मनुष्य का चित्त भ्रम में पड़ता है कि इन परस्पर विरोधी प्रतिपादनों में क्या सत्य है, क्या असत्य ?

इतने पर भी एक तथ्य नितान्त सत्य है कि मरने के बाद भी जीवात्मा का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता वरन् वह किसी न किसी रूप में बना ही रहता है । मरने के बाद पुनर्जन्म के अनेकों प्रमाण इस आधार पर बने रहते हैं कि कितने ही बच्चे अपने पूर्व जन्म के स्थानों सम्बन्धियों और घटनाक्रमों का ऐसा परिचय देते हैं जिन्हें यथार्थता की कसौटी पर कसने में वह विवरण सत्य ही सिद्ध होता है । अपने पूर्व जन्म से बहुत दूर किसी स्थान पर जन्मे बच्चे का, पूर्व जन्म के ऐसे विवरण बताने लगना, जो परीक्षा करने पर सही निकले, इस बात का प्रमाण बताता है कि मरने के बाद पुनः जन्म भी होता है ।

मरण और पुनर्जन्म के बीच के समय जो समय रहता है उसमें जीवात्मा क्या करता है? कहाँ रहता ? आदि प्रश्नों के सम्बन्ध में भी विभिन्न प्रकार के उत्तर हैं पर उनमें भी एक बात सही प्रतीत होती है कि उस अवधि में उसे अशरीर किन्तु अपना मानवी अस्तित्व बनाये हुए रहना पड़ता है । जीवन मुक्त आत्माओं की बात दूसरी है । वे नाटक की तरह जीवन का खेल खेलती हैं और अभीष्ट उद्देश्य पूरा करने के उपरान्त पुनः अपने लोक को लौट जाती हैं । इन्हें वस्तुओं, स्मृतियों, घटनाओं एवं व्यक्तिओं का न तो मोह होता है और न उनकी कोई छाप इन पर रहती है । किन्तु सामान्य आत्माओं के बारे में यह बात नहीं है । वे अपनी अतृप्त कामनाओं, विछोह, संवेदनाओं, रागद्वेष की प्रतिक्रियाओं से उद्विग्न रहती हैं। फलतः मरने से पूर्व वाले जन्मकाल की स्मृति उन पर छाई रहती है और अपनी अतृप्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिए ताना-बाना बुनती रहती हैं । पूर्ण शरीर न होने से वे कुछ अधिक तो नहीं कर सकतीं, पर सूक्ष्म शरीर से भी वे जिस-तिस को अपना परिचय देती हैं । इस स्तर की आत्माएँ भूत कहलाती हैं । वे दूसरों को डराती या दवाव देकर अपनी अतृप्त अभिलाषाएँ पूरी करने को सहायता करने के लिए बाधित करती हैं । भूतों के अनुभव प्रायः डरावने और हानिकारक ही होते हैं । पर जो आत्माऐं भिन्न प्रकृति की होती हैं, वे डराने, उपद्रव करने से विरत ही रहती हैं । अमेरिका के राष्ट्रपति भवन में समय-समय पर जिन पितरों के अस्तित्व अनुभव में आते रहते हैं उनके आधार पर यह मान्यता बन गई है कि वहाँ पिछले कई राष्ट्रपतियों की प्रेतात्माऐं डेरा डाले पड़ी हैं । इनमें अधिक बार अपने अस्तित्व का परिचय देने वाली आत्मा अब्राहमलिंकन की है ।

ये आत्माएँ वहाँ रहने वालों को कभी कोई कष्ट नहीं पहुँचातीं । वस्तुतः उपद्रवी आत्माएँ तो दुष्टों की ही होती हैं ।

मरण समय में विक्षुब्ध मनःस्थिति लेकर मरने वाले अक्सर भूत-प्रेत की योनि भुगतते हैं, पर कई बार सद्भाव सम्पन्न आत्माएँ भी शान्ति और सुरक्षा के सदुद्देश्य लेकर अपने जीवन भर सम्बन्धित व्यक्तियों को सहायता देती, परिस्थितियों को सम्भालती तथा प्रिय वस्तुओं की सुरक्षा के लिए अपने अस्तित्व का परिचय देती रहती हैं । पितृवत् स्नेह, दुलार और सहयोग देना भर उनका कार्य होता है ।

पितर ऐसी उच्च आत्माएँ होती हैं जो मरण और जन्म के बीच की अवधि को प्रेत बन कर गुजारती हैं और अपने उच्च स्वभाव संस्कार के कारण दूसरों की यथासम्भव सहायता करती रहती हैं । इनमें मनुष्यों की अपेक्षा शक्ति अधिक होती है । सूक्ष्म जगत से सम्बन्ध होने के कारण उनकी जानकारियाँ भी अधिक होती हैं । उनका जिनसे सम्बन्ध हो जाता है उन्हें कई प्रकार की सहायताएँ पहुँचाती हैं । भविष्य ज्ञान होने से वे सम्बद्ध लोगों को सतर्क भी करती हैं तथा कई प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने एवं सफलताओं के लिए सहायता करने का भी प्रयत्न करती हैं ।

ऐसी दिव्य प्रेतात्माएँ अर्थात् पितर सदाशयी सद्भाव सम्पन्न और सहानुभूति पूर्ण होती हैं । वे कुमार्ग गामिता से असन्तुष्ट होतीं तथा सन्मार्ग पर चलने वालों पर प्रसन्न रहती हैं ।

पितर वस्तुतः देवताओं से भिन्न किन्तु सामान्य मनुष्यों से उच्च श्रेणी की श्रेष्ठ आत्माऐं हैं । वे अशरीरी होती हैं, देह धारी से सम्पर्क करने की उनकी अपनी सीमाएं होती हैं । हर

किसी से वे सम्पर्क नहीं कर सकतीं। कोमलता और निर्भीकता, श्रद्धा और विवेक दोनों का जहाँ उचित सन्तुलन-सामञ्जस्य हो ऐसी अनुकूल भावभूमि ही पितरों के सम्पर्क के अनुकूल होती है। सर्व साधारण उनकी छाया से डर सकते हैं जबकि डराना उनका उद्देश्य नहीं होता। इसलिए वे सर्व साधारण को अपनी उपस्थिति का आभास नहीं देता। वे उपयुक्त मनोभूमि एवं व्यक्तित्व देखकर ही अपनी उपस्थिति प्रकट करतीं और सत्परामर्श, सहयोग-सहायता तथा सन्मार्ग-दर्शन करती हैं।

अवांछनीयताओं के निवारण अनीति के निराकरण की सत्प्रेरणा पैदा करने तथा उस दिशा में आगे बढ़ने वालों की मदद करने का काम भी ये उच्चाशयी 'पितर' आत्माएँ करती हैं। अतः भूत:प्रेतों से विरक्त रहने उनकी उपेक्षा करने और उनके अवांछित-अनुचित प्रभाव को दूर करने की जहाँ आवश्यकता है वहीं पितरों के प्रति श्रद्धा-भाव दृढ़ रखने, उन्हें सद्भावना भरी श्रद्धांजलि देने तथा उनके प्रति अनुकूल भाव रखकर उनकी सहायता से लाभान्वित होने में पीछे नहीं रहना चाहिए।

पितरों के भी अनेक स्तर होते हैं और उसी के अनुरूप वे सहायता करते हैं।

श्री सी० डब्ल्यू० लेडवीटर ने अपनी पुस्तक 'इन विजिकुल हेल्पर्स' में लिखा है कि सात लोकों में से ऊपरी छः लोकों से सम्बन्धित छः तरह की पितर आत्माएँ होती हैं और प्रत्येक स्तर के दायित्व तथा गतिविधियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। प्रकृति, संस्कार, योग्यता एवं अभिरुचि के अनुरूप ये पितर सहायता एवं मार्ग दर्शन का काम करते हैं।

श्री लेडबीटर ने अपनी उपरोक्त पुस्तक में विश्व के विभिन्न समुदायों में प्रचलित पितरों सम्बन्धी, धारणाओं के विवरण प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया है कि पुरानी यूनानी एवं रोगन सभ्यता में ये आस्थाएं जहाँ धूमिल अस्पष्ट धारणाओं के रूप में विद्यमान हैं वहीं ईजिप्ट, मिश्र तथा चीन की सांस्कृतिक आस्थाओं में पितरों से सम्बन्धित विस्तृत कथाओं तथा कर्मकाण्डों की विद्यमानता है। ईजिप्ट-सभ्यता के धर्म ग्रन्थों का सार-सन्दर्भ 'द बुक आफडेड' नामक ग्रन्थ में संग्रहीत है। उसमें पितरों की गतिविधियों, उनके द्वारा दी जाने वाली सहायताओं के सैकड़ों मामले विस्तार से दिए गए हैं। किन्तु पितरों की गतिविधियों का निरूपण करने वाले नियम तथा प्रक्रियाएं स्पष्ट रूप में नहीं दी गई हैं।

श्री लेडबीटर ने अपनी पुस्तक में कहा है कि हिंन्दुओं में श्राद्ध की जो प्रक्रिया प्रतिष्ठित है, तथा उनसे सम्बन्धित जो विवरण हैं, वे सर्वाधिक प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक हैं। किन्तु अब वे भी मात्र कर्मकाण्डों के रूप में अवशिष्ट हैं और परम्परागत रीति-रिवाज बनकर रह गए हैं। उनके पीछे सन्निहित तत्व ज्ञान को अधिकांश हिन्दू भूल चुके हैं। इसलिए न तो वे स्वयंही उस प्रक्रिया द्वारा पितरों से समुचित और पर्याप्त लाभ प्राप्त कर पाते हैं, नहीं पितरों एवं स्वर्गीय-आत्माओं को ही अपनी श्रद्धा- भावना का उचित लाभ पहुँचा पाते हैं।

श्री लेडवीटर ने स्पष्ट किया है कि इन अशरीर आत्माओं से सम्पर्क का मूल आधार संकल्प एवं विचार ही हैं। जड़ वस्तुओं और निष्प्राण कर्मकांडों के माध्यम से पितरों से आदान-प्रदान का क्रम नहीं चल सकता क्योंकि वह सारा व्यापार भावनात्मक एवं विचार परक ही है। कर्मकांड की प्रक्रियाएं आवश्यक तो हैं, किन्तु वे उपकरण हैं, उनका प्रयोग होता है, वे स्वयं इन प्रयोगों के संचालन एवं परिणामों के प्रतिपादन में असमर्थ हैं बिना ज्ञान के उपकरणों का उचित प्रयोग और सही परिणामों की प्राप्ति असम्भव है। अतः आवश्यकता पितरों की सत्ता के सही स्वरूप को समझने और उनसे सम्पर्क की पात्रता स्वयं में विकसित करने की है? वैसा हो सके, तो उनसे-देव स्तर का सहयोग प्राप्त किया जाकर जीवन को अधिक समृद्ध, सार्थक एवं सफल बनाया जा सकता है।

दिव्य प्रेतात्मा से कभी-कभी किन्हीं-किन्हीं का सीधा सम्बन्ध उनके पूर्वजन्मों के स्नेह सद्भाव के आधार पर हो जाता है। कई बार वे उपयुक्त सत्पात्रों को अनायास ही सहज उदारता वश सहायता करने लगते हैं किन्तु ऐसा भी सम्भव है कि कोई व्यक्ति अपने आपको साधना द्वारा प्रेतात्माओं का कृपा पात्र बनाले और अपने साथ अदृश्य सहायकों का अनुग्रह जोड़कर अपनी शक्ति को असामान्य बनाले एवं महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त करने का पथ-प्रशस्त करें।

पितरों के अनेक वर्ग हैं और देवसत्ताओं की ही तरह उनके क्रिया कलापों के क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न हैं। प्रत्यक्ष मार्ग दर्शन, गूढ़ संकेत, दिव्य प्रेरणाएं तथा आकस्मिक सहायताएं उनसे उपलब्ध होती हैं। विपत्ति से त्राण पाने, सन्मार्ग पर अग्रसर होने और मानवीयता के क्षेत्र को विस्तृत करने, सामाजिक प्रगति का पथ प्रशस्त करने में उनके दिव्य अनुदान दैवी वरदान बनकर सामने आ सकते हैं। सूक्ष्म शक्तियों के रूप में वैसे भी वे क्रियाशील रहते ही हैं और अनीति-अत्याचारों अन्याय के क्रम को आकस्मिक अप्रत्याशित रीति से उलट देने की चमत्कारी प्रक्रिया कई बार उनके अनुग्रह से ही सम्पन्न हुआ करती है। ऐसे श्रेष्ठ पितर सचमुच श्रद्धा-भाजन हैं।

इस संदर्भ में एक नया पक्ष और भी है। वह यह है कि जीव सत्ता अपनी संकल्प शक्ति का एक स्वतंत्र घेरा बनाकर खड़ा कर देती है और जीव को अन्य जन्म मिलने पर भी वह संकल्प सत्ता उसका कुछ प्राणांश लेकर अपनी एक स्वतन्त्र इकाई बना लेती है। और इस प्रकार बनी रहती है, मानो कोई दीर्घजीवी प्रेत ही बनकर खड़ा हो गया हो। अति प्रचंड संकल्प वाली ऐसी कितनी ही आत्माओं का परिचय समय-समय पर मिलता रहता है लोग इन्हें 'पितर' नाम से देवस्तर की संज्ञा देकर पूजते पाये जाते हैं। वे अपने अस्तित्व का प्रमाण जब तब इस प्रकार देते रहते हैं कि आश्यचर्यचकित रह जाना पड़ता है। इतने पुराने समय में उत्पन्न हुई वे आत्माएँ अभी तक अपना अस्तित्व बनाये हुए है, यह प्रेत विद्या के लोगों के लिए भी अचम्भे की बात है, क्योंकि वे भी प्रेतयोनि को स्वल्पकालीन मानते हैं। अब उन्हें भी एक नये 'पितर' वर्ग को मान्यता देनी पड़ी है। जो मात्र भूत-प्रेत नहीं होते, वरन् अपनी प्रचंड शक्ति का दीर्घकाल तक परिचय देते रहते हैं।

हजारों वर्ष पूर्व उत्पन्न आत्माएं अभी तक प्रेतावस्था में ही हों, यह मानना असंगत और असमीचीन हैं? वे अभी तक निश्चय ही नये जन्म लेकर नयी गतिविधियों में जुट चुकी होंगी। ऐसी स्थिति में यही स्पष्ट होता है कि प्रचंड संकल्प सत्ता जीवात्मा की प्राण-शक्ति का एक अंश लेकर एक नई ही शक्तिशाली इकाई बना डालती है। यह प्राणावेग से भरपूर सत्संकल्पात्मक इकाई अपने आवेग की सामर्थ्य के अनुसार ही एक निश्चिय समय तक सक्रिय रहती है। वह समय उस प्राण सत्ता के लिए कुछ अधिक न होते हुए भी हमारे लिए हजारों वर्षो का होने से हमें चमत्कारिक लग सकता है। संकल्प सत्ता के साक्षात विग्रह स्वरूप ये 'पितर' इकाइयां अपनी संरचना में सन्निहित तत्वों के अनुरूप ही गतिविधियाँ करती हैं, अन्य नहीं। अर्थात् ये कुछ सीमित प्रयोजनों में ही मददगार हो सकती हैं। प्रयोजनों के जिन ढाँचों से इन संकल्प सत्ताओं का अधिक परिचय-लगाव होता है उनकी पूर्ति में वे विशेष सहायक सिद्ध हो सकती हैं। प्रार्थना-उपासना, ईश्वर-आराधना, सामाजिक कर्त्तव्य विशेष आदि में आकस्मिक सहायता के रूप में ऐसी ही पितर-सत्ताओं का अनायास अनुग्रह बरसा करता है।

पितरों के ऐसे अनुग्रह-अनुदान संकल्प की प्रखरता, सत्प्रवृत्तियों से अनुराग और विराट करुणा के परिणाम होते हैं। ये दैवी तत्व न केवल पितरों की विशेषताएं होती हैं, अपितु मनुष्य की भी वास्तविक विभूतियाँ हैं।

सामान्य स्थिति में आकर्षण

अपनत्व का प्रभाव मृत्यु के तत्काल बाद ही देखा जाता है। नेपालियन बोनापार्ट को अपनी माँ से गहरा प्यार था। जिस समय उसके मृत्यु हुई उसकी माँ उससे सैकड़ों मील दूर थी। वह फ्रांस में था, माँ रोम में। उस दिन माँ ने देखा- नेपोलियन सहसा आया है। पैर छूकर कह रहा है कि " माँ! अभी ही तो मुझे झंझटों से फुरसत मिल पाई।" थोड़ी देर बाद वह अन्तर्धान हो गया। बाद में पता चला कि उसका उसी दिन उसी समय निधन हुआ था।

प्रख्यात कवि बायरन ने भी एक ऐसे ही अनुभव का विवरण लिखा है। एक फौजी कप्तान ने रेल यात्रा में रात को सहसा नींद उचटने पर अपने छोटे भाई को पायताने बैठे देखा। वह भाई वेस्टईंडीज में नियुक्त था। कप्तान ने समझा कि कहीं वे स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं। उन्होंने अपने जगे होने की आश्वस्ति के लिए हाथ बढ़ाकर भाई को छूना चाहा। उनके हाथ में उसका कोट छू गया तो लगा कि वह कोट पानी से तर है। तभी वह भाई अदृश्य हो गया। बाद में तीसरे दिन खबर मिली कि उसकी उसी समय समुद्र में डूब जाने से मृत्यु हुई थी जब वह वहाँ दिखा था।

परामनोवैज्ञानिकों को अपने अनुसंधानों के दौरान ऐसे अनेक साक्ष्य मिले हैं जिनसे यह पता चलता है कि मृत व्यक्ति सैकड़ों-हजारों मील दूर स्थिति अपने आत्मीयों के पास मृत्यु के तत्काल बाद देखा गया। कई बार व्यक्ति नहीं दिखाई देता पर उसकी आवाज सुनाई पड़ती है।

इंग्लैंड के चार्ल्स मैथ्यूज समुद्री जहाज सेवा में कर्मचारी थे। एक रात वे ड्यूटी पर गये। उससे कुछ घंटे बाद उनकी पत्नी और उनकी पड़ौसिन दोनों का चार्ल्स को अवाज सुनाई पड़ी। पड़ौसिन ने सुना कि चार्ल्स उससे कह रहे हैं कि इसका यानी उनकी पत्नी का ध्यान रखना। पत्नी को लगा कि वे उसे पुकार रहे हैं। हुआ यह था कि उस रात जहाज डूब गया था और उसी के साथ श्री मैथ्यूज भी।

इससे सर्वथा भिन्न एक अन्य घटना है। कैलीफोर्निया के एक पुलिस अधिकारी ने एक बार उसके कुछ ही दिनों पूर्व मृत मित्र की छाया देखी। इस छाया ने उससे कहा कि तुग तुरन्त मैकडोनाल्ड एवेन्यू पहुँचो। वहाँ स्ट्रीम लाइनर से एक ट्रक टकराकर उलट गया है और उसके ड्राइवर की छाती चकनाचूर हो गई है। पुलिस अधिकारी वहाँ पहुँचा। तब तक वहाँ वैसा कुछ

भी घटित न हुआ था। उसे लगा कि मैने दिवास्वप्न देखा है। वह लौटने को था। तभी वही घटना घटी। स्ट्रीम लाइनर से सामने से आ रहा ट्रक टकराया और ड्राइवर की छाती छलनी हो गई।

इस तरह के प्रमाणों से यह पता चलता है कि मानवीय चेतना जब तक शरीर से ही तादात्म्य अनुभव करती रहती है तब तक तो वह सीमाबद्ध रहती है पर शरीर से निकलते ही वह सर्वव्यापी हो जाती है। उसकी संचरण और सम्प्रेषण क्षमता फिर निर्बन्ध हो जाती वह कहीं भी आ जा सकती है। यद्यपि अपने संस्कारों के कारण वह सर्वप्रथम अपने आत्मीय के पास पहुँचती है।

कई बार वह आत्मीय के पास न पहुँच कर सर्वप्रथम वहाँ पहुँचती है, जहाँ उसका मृत्यु के तत्काल पूर्व ध्यान जाता है। पूना के एक बड़े वकील को एक बार देर रात में दफ्तर बंद करते समय एक परिचित व्यक्ति दरवाजे पर दिखा। उन्होंने उसके आने का कारण पूछते हुए अन्दर आने को कहा। तभी वह अदृश्य हो गया। वे चकरा गये। इसके बाद बिस्तर पर जाकर लेट गये। दो तीन घंटे बाद उस व्यक्ति के रिश्तेदारों ने दरवाजा खटखटाया। वकील साहब बाहर निकले। तब उन्हें बताया गया कि उस व्यक्ति के घर कुछ लोग गये थे। उन्होंने कहा कि आपको अभी ही वकील साहब ने बुलाया है। नगर पालिका के चुनाव के बारे में कोई खास चर्चा करनी है। सुबह वे जरूरी काम से बम्बई चल देंगे। वहाँ वकील साहब के घर और लोग भी हैं, आपसे भी चर्चा करनी है। वह व्यक्ति चल दिया और अभी तक नहीं लौटा। इसी से वे सब ढूँढ़ने आये थे। लोगों ने समझ लिया कि छल किया गया है। प्रातः पता चला कि रात को उन लोगों ने उसकी हत्या कर दी। इससे यह स्पष्ट हुआ कि मृत व्यक्ति को वकील साहब का नाम लगाकर बुलाया गया था, अतः उसके चित्त में यह बात थी और मृत्यु के तत्काल बाद उसकी आत्मा वहाँ पहुँची थी।

लेखिका शेला आस्ट्रेन्डर को एक बार उनकी एक सहेली मृत्यु के तत्काल बाद दिखी। वह सहेली कई मील दूर दूसरे शहर में उसी समय मरी थी। मृत्यु की खबर दूसरे दिन मिली।

इससे चेतना की निस्सीमता का परिचय मिलता है। ऐसा नहीं है कि मृत्यु के उपरान्त ही, मानवीय चेतना इस प्रकार निर्बन्ध होती है। वरन् यदि संकर्णता के मानसिक बन्धन दूर कर दिये जायें, तो जीवित अवस्था में भी चेतना की इन शक्तियों का अनुभव किया जा सकता है और लाभ उठाया जा सकता है।

ये घटनाएँ विरल या अपवाद नहीं हैं। ऐसे लोगों की कमी नहीं, जो दूरस्थ परिजनों की तीव्र संवेदना से, याद करने पर, उनके पास आभास रूप में देखे जाते हैं। ऐसे भी लोग हैं, जो भावाकुल होकर जब किसी प्रियजन का स्मरण करते हैं, तो वह उन्हें अपने सामने उस स्थिति में दिखता है, जिसमें वह उस समय होता है। बाद में पत्र मिलने पर या प्रत्यक्ष भेंट होने पर इस तथ्य की पुष्टि होती है। विशेषकर नारियों को दूराभास और दूरानुभूति प्रायः होती रहती है।

परामनोविज्ञानी हैराल्ड ने ऐसे अनेक वृतान्तों का संकल्प किया है, जिनमें महिलाओं को दूरस्थ भाई या पति की बीमारी, या मृत्यु का आभास हुआ और वह सत्य निकला। मनःशास्त्री हेनब्रुक ने भी यही कहा है कि यों, ये क्षमताएँ होती मनुष्य मात्र में हैं। नारियों में सौम्यता, मृदुता और सहृदयता के आधिक्य के कारण यह सामर्थ्य अधिक विकसित पायी जाती हैं।

बीज रूप में यह सामर्थ्य प्रत्येक व्यक्ति में सन्निहित है। आवश्यकता है, मन को संकीर्ण सीमाओं के बन्धनों से मुक्त करने की। ऐसा करने पर पानी में तेल की बूँद की तरह प्रत्येक व्यक्ति की अनुभव संवेदना का क्षेत्र दूर तक फैल जाता है। सामान्यतः अपने शरीर और मन की दीवालों से टकरा टकराकर ही व्यष्टि-चेतना की तरंगें लौटती रहती हैं तथा सीमित क्षेत्र में ही हिलोरें लेती रहती हैं। परन्तु यदि अनुभूति और संवेदना के स्तरों पर ये दीवालें हटादी जायें, तो अनन्त चेतना-समुद्र से उन लहरों का सम्पर्क हो जाता है।

श्रेष्ठ संस्कारों वाली पितर-आत्माएं शरीर और मन की संकीर्णता रूपी दीवालों से मुक्त होती हैं इसीलिए वे देशकाल की परिधि को लाँघते हुए सत्पात्रों को अपना सूक्ष्म सत्ता की विशाल सामर्थ्य से लाभान्वित करती रहती हैं।

जीवन के अदृश्य रहस्य

योगवशिष्ठ में एक बहुत महत्त्वपूर्ण आख्यायिका आती है। यह उपाख्यान जीवन के अदृश्य रहस्यों और मृत्यु के उपरान्त जीवन परम्परा पर प्रकाश डालता है इसलिए समीक्षाकार इसे योगवशिष्ठ की सर्वाधिक उपयोगी आख्यायिका मानते हैं। वर्णन इस प्रकार है–

किसी समय आर्यावर्त में पद्म नाम का एक राजा राज्य करता था। लीला नामक उसकी धर्मशीला धर्मपत्नी उसे बहुत प्यार करती थी। जब कभी वह मृत्यु की बात सोचती वियोग की कल्पना से घबरा उठती। कोई उपाय न देखकर उसने भगवती की उपासना की और यह वर प्राप्त कर लिया कि यदि उसके पति की पहले मृत्यु हो जाये, तो पति की अन्तर्चेतना राज महल से बाहर न जाये। सरस्वती ने यह भी आशीर्वाद दिया कि तुम

जब चाहोगी अपने पति से भेंट भी कर सकोगी। कुछ दिन बीते पद्म का देहान्त हो गया। लीला ने पति का शब सुरक्षित रखवा कर भगवती सरस्वती का ध्यान किया सरस्वती ने उपस्थित होकर कहा– भद्रे ! दुःख न करो तुम्हारे पति इस समय यहीं हैं पर वे दूसरी सृष्टि में हैं उनसे भेंट करने के लिए तुम्हें भी उसी सृष्टि वाले शरीर (मानसिक-कल्पना) में प्रवेश करना चाहिए।

लीला ने अपने मन को एकाग्र किया, अपने पति की याद की और उस लोक में प्रवेश किया जिसमें पहम की अन्तर्चेतना विद्यमान थी। लीला ने जाकर जो कुछ दृश्य देखा उससे बड़ी आश्चर्यचकित हुई। उस समय सम्राट पद्म इस लोक के १६ वर्ष के महाराज थे और एक विस्तृत क्षेत्र में शासन कर रहे थे। लीला को अपने ही कमरे में इतना बड़ा साम्राज्य और एक ही क्षण के भीतर १६ वर्ष व्यतीत हो गये देखकर बड़ा विस्मय हुआ। भगवती सरस्वती ने समझाया भद्रे–

> सर्गे सर्गे पृथग्रूपं सन्ति सर्गान्तराण्यपि।
> तेष्वप्यन्तः स्यसर्गोधाः कदलीदल पीठवत्।।
>
> *–योगवशिष्ठ ४।१८।१६-१७*
>
> आकाशे परमाण्वन्तर्द्रव्यादेरणकेऽपि च।
> जीवाणुर्यत्र तत्रेदं जगद्वेत्ति निजं वपुः।।
>
> *–योगवशिष्ठ ३।४४।३४-३५*

अर्थात्– हे लीला ! "जिस प्रकार केले के तने के अन्दर एक के बाद एक परतें निकलती चली आती हैं उसी प्रकार प्रत्येक सृष्टि के भीतर नाना प्रकार के सृष्टि क्रम विद्यमान हैं इस प्रकार एक के अन्दर अनेक सृष्टियों का क्रम चलता है। संसार में व्याप्त चेतना के प्रत्येक परमाणु में जिस प्रकार स्वप्न लोक विद्यमान है उसी प्रकार जगत में अनन्त द्रव्य के अनन्त परमाणुओं के भीतर अनेक प्रकार के जीव और उनके जगत विद्यमान हैं।"

अपने कथन की पुष्टि में एक जगत दिखाने के बाद कहा-देवी तुम्हारे पति की मृत्यु ७० वर्ष की आयु में हुई है ऐसा तुम मानती हो इस से पहले तुम्हारे पति एक ब्राह्मण थे और तुम उनकी पत्नी। ब्राह्मण की कुटिया में उसका मरा हुआ शव अभी भी विद्यमान है यह कहकर भगवती सरस्वती लीला को और भी सूक्ष्म जगत में ले गई । लीला ने वहाँ अपने पति का मृत शरीर देखा- उनकी उस जीवन की स्मृतियाँ भी याद हो आई और उससे भी बड़ा आश्चर्य यह हुआ कि जिसे वह ७० वर्ष की आयु समझे हुये थीं वह और इतने जीवन काल में घटित सारी घटनायें उस कल्प के कुल ७ दिनों के बराबर थीं। लीला ने देखा- उस समय मेरा नाम अरुधन्ती था, एक दिन एक राजा की सवारी निकली उसे देखते ही मुझे राजसी भोग भोगने की इच्छा हुई। उस वासना के फलस्वरूप ही उसने लीला का शरीर प्राप्त किया और राजा पहम को प्राप्त हुई। इस समय भगवती सरस्वती की प्रेरणा से राजा पहम जो अन्य कल्प में था उसे फिर से पद्म रूप में राज्य-भोग की वासना जाग उठी । लीला को उसी समय फिर पूर्ववर्ती भोग की वासना ने प्रेरित किया फलस्वरूप वह भी अपने व्यक्त शरीर में आगई और राजा पद्म भी अपने शव में प्रविष्ट होकर जी उठे फिर कुछ दिन तक उन्होंने राज्य भोग भोगे और अन्त में मृत्यु को प्राप्त हुए।

इस एक आख्यायिका से आत्मा की अकूत सामर्थ्य, देश काल को सापेक्षता, संकल्प की प्रचंड शक्तिमत्ता और जगत की अनंत रूपता रहस्यमयता सभी पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। हजारों वर्षों के उपरान्त भी पितर-सत्ताओं का सक्रिय रहना देश-काल की सापेक्षता और संकल्प शक्ति की प्रखरता का परिणाम है। उनका सर्वव्यापी हो सकना और विशिष्ट सामर्थ्य सम्पन्न होना आत्मसत्ता की अकूत सामर्थ्य पर प्रकाश डालता है तथा इसी जगत् में, हमारे ही इर्द-गिर्द उनकी विद्यमानता जागतिक-संरचना की विलक्षणता को प्रकट करती है। संकल्प-साधना और श्रद्धा-भावना से इन पितर-सत्ताओं से सम्पर्क साधा जा सकता और लाभ उठाया जा सकता है।

पितर-सम्पर्क से लाभ ही लाभ

वाशिंगटन के किसी चर्च में श्रीयुत् रेवरेन्ड आर्थर फोर्ड का भाषण था। मृतात्माओं को बुलाने और उनका जीवित मनुष्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में फोर्ड की उन दिनों अमेरिका में वैसी ही ख्याति थी जिस तरह भारतवर्ष में अहमद नगर के श्री बी० डी ऋषि और उनकी धर्म पत्नी की चर्चा रही हैं। श्रीमती रूथ मान्टगुमरी ने फोर्ड के वारे में अनेक बातें सुनी थीं वह स्वयं भी अमेरिका की प्रख्यात महिला थीं और डिक्सन के सम्पर्क में आने के बाद से आत्मा, मृत्यु, परलोक पुनर्जन्म आदि पर विस्तृत खोज कर रही थीं। एक दिन एक लाइब्रेरी में उन्हें श्री शेरवुड एडी की प्रसिद्ध पुस्तक 'आप मृत्यु के बाद भी जीवित रहेंगे' (यू विल सरवाइव आफ्टर डेथ) पढ़ी। उसमें फोर्ड की उपलब्धियों की विस्तृत चर्चा थी। श्री एडी विश्व के विख्यात लेखक थे। पूर्व में वाइ० एम० सी० ए० के संस्थापक भी वही थे, इसलिए श्रीमती रूथ मान्टगुमरी ने निश्चय किया कि जब एडी ने भी फोर्ड की उपलब्धियों को सत्य और प्रामाणिक माना है तो उनसे मिलकर निःसन्देह अनेक तथ्यों का पता लगाया जा सकता है।

तभी से वे इस प्रयत्न में थीं कि कहीं फोर्ड से भेंट की जाये। सौभाग्य ही था कि आज फ़ोर्ड स्वयं किसी आध्यात्मिक भाषण के सम्बन्ध में वाशिंगटन पधारे थे। श्रीमती रूथ मान्टगुमरी ने अवसर खोना ठीक नहीं समझा। वे फोर्ड से मिलीं और विस्तृत विचार-विमर्श के लिए और समय की माँग की। फोर्ड ने दो दिन बाद आने की स्वीकृति दे दी।

दो दिन बाद श्रीमती रूथ मान्टगुमरी फोर्ड से नियत स्थान पर फिर मिलीं और उनसे पूछा-क्या यह निश्चय है कि मृत्यु के बाद जीवन का अन्त नहीं हो जाता वरन् आत्मायें अपनी गतिविधियाँ और क्रिया-कलाप उसी प्रकार जारी रखती हैं, जिस तरह जीवित मनुष्य ?

फोर्ड ने उत्तर दिया- मृत्यु के पश्चात् भी आत्मायें दूसरे लोकों में जाकर बराबर आध्यात्मिक उन्नति के प्रयत्न में रहती हैं, जब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती तब तक उनका यह प्रयत्न बराबर चलता रहता है। आध्यात्मिक उन्नति के लिये यह आत्मायें दूसरे लोगों, विशेष कर अपने प्रियजनों को भी सन्देश पहुँचाना चाहती हैं पर उन सूक्ष्म संकेतों को सब लोग नहीं पकड़ पाते, इसलिये उनके सन्देश निरर्थक जाते रहते हैं, पर कई आत्मायें इतनी बलवान् होती हैं कि वे अपनी बात किसी माध्यम से व्यक्त और लिख सकती है, ।

श्रीमती रूथ इतनी आसानी से यह बातें मान लेने वाली नहीं थीं। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में ऐसी जिज्ञासायें उठती हैं, किन्तु चिन्तन के अभाव में, विश्लेषण अथवा प्रमाणों के अभाव में वह रहस्य मुँदे के मुँदे रह जाते हैं। एक बार बालक नचिकेता को भी ऐसी ही प्रबल जिज्ञासा उठी थी, उसने भी यमाचार्य से ऐसा ही प्रश्न किया था-

ये यप्रेते विचिकित्सा मनुष्ये अस्तीत्येके नत्यमस्तीति चान्ये।
एतद्विद्यामनुशिष्ट स्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः।।

—कठ० उप० १-२०,

" आचार्य देव ! मरे हुये मनुष्य के विषय में बड़ा भ्रम है। कुछ लोग कहते हैं, मृत्यु हो जाने पर भी जीव बना रहता है। कुछ कहते हैं, उसका नाश हो जाता है। सो आप मुझे उसका निश्चित निर्णय करके बताइये सत्य क्या है ?"

यमाचार्य ने नचिकेता को तब योगाभ्यास कराया और उसके द्वारा उसने यह जाना कि जीव किस प्रकार मृत्यु के उपरान्त यमलोक, प्रेतलोक, वृक्ष, वनस्पति आदि योनियों, भुवर्लोक आदि में जाता है और वहाँ की परिस्थितियों का वर्तमान की तरह उपयोग करता है।

अपनी बात फोर्ड ने समाप्त की तो श्रीमती रूथ मान्टगुमरी . ने उनसे पूछा-क्या आप ऐसी आत्मा को बुलाकर मुझसे परिचय करा सकते हैं, जिसे मैं पहले से जानती होऊं, जिसमें मैं सत्य और असत्य का पता लगा सकूँ ?

फोर्ड एक सोफे पर आराम से बैठ गये। दोनों आँखें एक काले रूमाल से बाँध लीं। रूथ ने पूछा क्या बत्ती बुझा देनी चाहिए पर फोर्ड ने कहा- उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। थोड़ी देर बाद एक आवाज आने लगी, यह आवाज यद्यपि फोर्ड के मुख से ही आ रही थी पर उनकी आवाज से बिल्कुल भिन्न। उसने बताया यह लो श्रीमती रूथ तुम्हारे चाचा तुम से भेंट करना चाहते हैं। इनका नाम फ्रेन्ड बैनेट है। वह बहुत समय पहले अफरीका में पादरी (प्रीचर) थे।"

श्रीमती रूथ तुरन्त बोलीं-" नहीं, नहीं यह गलत है मेरे इस नाम के कोई चाचा नहीं थे, न ही इस नाम के किसी व्यक्ति को जानती हूँ।' इसके बाद माध्यम (फोर्ड) ने फिर बोलना आरम्भ किया- वह भी तुम्हें नहीं जानते पर उनका कहना है कि तुम्हारे पति उन्हें खूब अच्छी जानते हैं तुम्हारे पति का नाम 'बाबा' है, तुम उनसे घर जाकर पूछना और हाँ, अब लो यह तुम्हारे पिताजी उपस्थित हैं। वे अपना नाम ट्रा' बता रहे हैं। श्रीमती रूथ यह सुनते ही चौंकी- वस्तुतः उनके पिता का यही नाम था।

माध्यम ने आगे बोलना आरम्भ किया-"श्रीमती रूथ आपके पिता आपको और आपकी माता जी को प्यार कहते हैं, वे बताते हैं कि जब उनकी मृत्यु हुई थी, तब तुम उनके पास नहीं थी। वे काफी बीमार थे और उनकी एकाएक मृत्यु हो गई थी। मर कर थोड़ी देर में उन्हें अपने रोग का भी पता नहीं रहा। वे स्वथ्य अनुभव कर रहे हैं वे कह रहे हैं- "यहाँ किसी प्रकार की बीमारी नहीं है, मनुष्य हमेशा एक सी अवस्था में रहता है, न वह बूढ़ा होता है, न बालक और न युवक और हाँ देखो तुम्हारी माता जी यहाँ नहीं हैं, वे तुमसे काफी दूर हैं अभी कुछ दिन तक आयेंगी भी नहीं, उन्हें मैं देख रहा हूँ उनकी टाँग में कई दिन से दर्द हो रहा है।"

उक्त दोनों व्यक्तियों के अतिरिक्त कई और जानी, अनजानी आत्माओं का परिचय श्रीमती रूथ से कराया गया। अपनी पुस्तक 'सत्य की खोज में'(इन सर्च आफ ट्रूथ) में वे स्वयं लिखती हैं "कई पहचानी हुई आत्माओं की बातें इतनी सत्य थीं कि मैं आश्चर्य-चकित रह गई मेरे पिताजी ने जो-जो बातें बताईं सब सच थीं। सचमुच ही जब वे बीमार थे तब मैं अखबार

के काम से इजिप्ट गई थी । मुझे इजिप्ट में ही तार द्वारा उनके निधन की सूचना दी गई थी। जब मैं लौट कर आई तब दो दिन बीत चुके थे । पिताजी किसी बीमारी से ही मरे थे, यह भी मुझे अच्छी तरह मालूम है।"

"सायंकाल मैंने एकाएक माताजी को टेलीफोन किया तो उन्होंने बताया कि सचमुच उनके एक पैर में कई दिन से बुरी तरह से कष्ट है और उन्हें लौटने में काफी समय लगेगा। इसी प्रकार बाब ने मुझे बताया कि मेरी मौसी फ्रेंड बैनेट नाम के एक पादरी को ब्याही थी। वे काँगो (अफ्रीका) में ही रहते थे।"

इन दोनों घटनाओं में श्रीमती रूथ ने जहाँ वर्तमान के सत्यों को स्वीकार किया है, वहाँ वह भी लिखा है कि यदि मृतात्माओं द्वारा बताई हुई भूत व वर्तमान की बातें सच होती हैं तो वे मृत्यु के अनन्तर अपने अस्तित्व के बारे में भी जो कुछ कहते हैं, उसे सत्य मानने से इनकार करना दुराग्रह ही होगा। उसे न मानकार मानव समाज अपना अहित ही करता है क्योंकि उससे एक अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी वास्तविकता पर पर्दा पड़ जाता है।"

"माध्यम" के द्वारा मेरे पिता ने कहा था-मैं कहा एक ऐसे रहस्य का उद्घाटन करता हूँ, जो विश्व की सबसे बड़ी आवश्यकता है, वह यह कि हम एक ऐसे संसार में रह रहे हैं जिसमें स्थूल की तरह सब कुछ दृश्य है, सब कुछ अनुभव गम्य है, जहाँ बराबर उन्नति होती रहती है। हम शून्य (वैकुअम) में नहीं रह रहे पर यहाँ सबको मनोरंजन से रहना पड़ता है यहाँ बेकार बैठकर कोई प्रसन्न नहीं रह सकता, जितना शरीर से काम कर सकता था उससे अधिक काम में अब भी कर सकता हूँ। तुम जानती होगीं मुझे गाने का शौक था, मैं अभी भी संगीत का अभ्यास करता हूँ।"

" यह बातें सुनने वाले को अटपटी अवश्य लगती हैं, किन्तु देर तक अध्ययन और खोज करने के पश्चात् मुझे इनकी सत्यता में अविश्वास नहीं रह जाता।" यह शब्द स्वयं श्रीमती रूथ मान्टगुमरी ने स्वीकार किया है और उसके साथ अमेरिका की उस जबर्दस्त घटना को जोड़ा है जिसके बारे में वहाँ बहुत दिन तक व्यापक हलचल मची रही।

यह घटना भी फोर्ड ने माध्यम के द्वारा बताई, जिस समय श्रीमती रूथ को मृतात्माओं से परिचय कराया जा रहा था, माध्यम (फोर्ड जो मृतात्माओं को बुलाकर उनसे संकेत प्राप्त करके रूथ को बताता था) ने बताया-आपसे कोई जज बात करना चाहते हैं वह लैपटे शहर में आपके घर के समीप ही रहते थे, एक दिन अचानक कहीं गायव हो गये बाद में डूब जाने से उनकी मृत्यु हुई थी, उनका सड़ा हुआ ढाँचा अब भी वहाँ पड़ा देखा जा सकता है।

श्रीमती रूथ ने वहाँ तो यही कहा कि मुझे ऐसे किसी पड़ौसी का पता नहीं है, किन्तु घर आकर उन्होंने लैफ्टे कूरियर जनरल के सम्पादक से टेलीफोन पर पूछा तो उसने बताया -"हाँ-हाँ आपके मकान के पास पार्किन्सन नामक एक सज्जन अवश्य रहते थे। वे 'यूनाइटेड कोर्ट आफ अपील्स' में जज थे। वे एक बार एकाएक गायब हो गये। सात राज्यों के सम्मिलित प्रयत्नों के बाद भी उनका कहीं पता न चला। लेक शोर होटल के समीप मिशगन झील के किनारे उनका एक हैट और छाता अवश्य मिला था पर उनके डूबकर मर जाने का कोई प्रमाण न मिलने के कारण उनके स्थान पर कोई परमानेन्ट जज की नियुक्ति नहीं की गई थी। उनका वेतन उनके बैंक खाते में जमा किया जाता रहा है।"

सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि थोड़े दिन बाद ही उनका सड़ा हुआ ढाँचा पानी में तैरता हुआ पाया गया। इन घटनाओं से इस बात की पुष्टि होती है कि जीवात्मा नहीं, शरीर मरता जीता हैं और मृत्यु के बाद भी जीवन का विकास-क्रम बन्द नहीं होता। गीता में भगवान कृष्ण ने भी यही बात कही है-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नाय भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

—गीता २ अध्याय । २०

अर्थात् यह आत्मा न तो कभी जन्म लेता है और न मरता है, वह तो अजन्मा, नित्य शाश्वत और पुरातन है, मरना जीना तो शरीर का धर्म है, शरीर का नाश हो जाने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता। योग वाशिष्ठ में लिखा है-

न जायते भ्रियते चेतनः पुरुषः क्वचित्।
स्वप्न संभ्रमवद् भ्रांतमेतत्वपश्यति केवलम्।।

-३।५५।६७

पुरुषश्चेतना मात्र स कदा क्लेव नश्यति।
चेतन व्यतिरिक्तत्वे वदान्यक्तिं पुभान्भवेत्।

३।५४।६८

आत्मा न कभी जन्म लेता है और न मरता है। भ्रमवश स्वप्न की सी स्थिति का अनुभव किया करता है। पुरुष तो चेतन मात्र है नष्ट नहीं होता। लाखों शरीरों का नाश हो जाने पर भी चेतन आत्मा अक्षय स्थित रहता है।

व्यक्ति के सत्संस्कार- सम्पन्न होने पर यही अक्षय आत्मा उसकी मरणोपरान्त अवधि में 'पितर' रूप में क्रियाशील रहती है तथा अपनी आत्मोन्नति के लिए प्रयासरत रहने के साथ ही

इस पृथ्वी के प्रति रागात्मक सम्पृक्ति रखने के कारण यहाँ भी स्वजनों या सत्पात्रों की आत्मोन्नति में मदद करने को सदैव प्रस्तुत रहता है। उन पितरों से सम्पर्क करने पर व्यक्ति को लाभ ही लाभ होता है हानि कुछ नहीं होती ।

योगद्वारा सूक्ष्म शरीर के अदृश्य ज्ञान को स्थूल रूप में लाने की विद्या किसी समय भारतवर्ष में बहुत अधिक प्रचलित थी। लोग पितरों से जीवित मनुष्यों की तरह सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे अब भी उस विद्या के जानकार छिट पुट योगी हैं अवश्य, पर उनका दृष्टिकोण भी नितान्त स्वार्थपूर्ण और व्यवसायिक है। संसार के कल्याण अथवा एक नये विज्ञान की खोज का भाव उसमें नहीं पाया जाता, यह विद्या धीरे-धीरे पश्चिम को जा रही है। पिछले १०० वर्षों में वहाँ इस सम्बन्ध में विस्तृत खोजें हुई हैं। बड़े बड़े पदार्थ वेत्ताओं ने यह माना है कि मृत्यु के बाद चेतना दूसरों कोषों में बना रहता है, प्रोफेसर क्रुक्स, ब्रन्टन और सर ओलिवर लाज ने इन विषयों पर बहुत अधिक लिखा है।

दिव्य प्रेतात्माओं से लगभग देव स्तर का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। उनकी सामर्थ्य स्वल्प होते हुए भी सूक्ष्म जगत से सम्बन्धित होने के कारण कितनी ही बातों में इतनी बढ़ी-चढ़ी होती हैं कि सम्बद्ध मनुष्य उस सहयोग से आशाजनक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। प्रेतात्मा की सहायता से अनेक लाभ मिलते रहे हैं।

वैज्ञानिकों में मूर्धन्य सर विलियम क्रुक्स और सर आलिवर लाज की मृतात्माओं से सम्पर्क स्थापित करने की खोजों का संसार भर में प्रमाणिक माना जाता है। वे लोग इस स्तर के नहीं थे जिन पर गप्पबाजी का आरोप लगाया जा सके।

सर ओलीवर लाज ब्रिटेन के माने हुए वैज्ञानिक रहे थे, उन्हें कई विश्वविद्यालय की मूर्धन्य डिग्रियाँ और स्वर्ण पदक प्राप्त थे। वे ब्रिटिश ऐसोसियेशन के प्रधान थे। ईथर तत्व का पदार्थ के साथ क्या सम्बन्ध है, इस विषय पर उनकी खोज अत्यन्त प्रमाणिक मानी जाती है। उन्होंने विज्ञान के लिए आत्मा के अस्तित्व को भी एक आवश्यक अन्वेषण पक्ष माना था और स्वयं आगे बढ़कर इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। इसके लिए उन्होंने 'साइकिक रिसर्च सोसाइटी' की स्थापना की और उसे बहुमूल्य योगदान देकर अभीष्ट प्रयोजन के लिए अधिक काम कर सकने योग्य बनाया। सर ओलिवर लाज अपनी शोध दृष्टि का समुचित प्रयोग करके न केवल आत्मा का अस्तित्व और मरणोत्तर जीवन की यथार्थता स्वीकार करने की स्थिति में पहुँचे थे, वरन् उन्होंने प्रेतात्माओं को साक्षात करने और उनके साथ सम्पर्क बनाने में भी सफलता प्राप्त की थी।

उनका पुत्र रेमण्ड प्रथम विश्व युद्ध में मारा गया था। मृतात्मा के साथ सम्पर्क बनाने और उसके माध्यम से अनेकों ऐसी अविज्ञात जानकारियाँ प्राप्त करने में सफल हुए जो परखने पर पूर्णतया सत्य सिद्ध हुईं। उनके एक समकालीन वैज्ञानिक सर विलियस कुकुस ने अपने प्रेतात्माओं सम्बन्धी निष्कर्षों का विवरण 'रिसर्च इनद फेनोमिनस आफ स्प्रिचुअलिज्म' में प्रकाशित कराया है। उसमें सर ओलिवर लाज के शोध कार्यो का भी उल्लेख हुआ है।

सर आलीवर लाज ने स्वर्गीय आत्माओं के अस्तित्व एवं क्रिया कलाप सम्बन्धी जानकारी के लिए एक सुव्यवस्थित शोध संस्थान स्थापित किया था। उसमें आक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय के सर अर्नेस्ट बनेट जैसे मूर्धन्य मनीषी सम्मिलित थे। इन शोध कार्यो का प्रसारण ब्रिटेन के रेडियो प्रसारण, बी० बी० सी० पर होता रहा है। सरलाज ने ब्रिटेन के अति प्रामाणिक लोगों के भूतों का अस्तित्व सिद्ध करने वाले अनुभवों का संग्रह एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराया था।

स्वीडन के शरीर शास्त्र, अर्थशास्त्र, खगोल विद्या, गणित में अठारहवीं सदी के माने हुए विद्वान् एमेनुअल स्वेडन वर्ग ने परलोक विद्या पर गहरी खोज की थी और मृतात्माओं से सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी। एक बार हालैण्ड के मृत राजदूत की विधवा पत्नी अपने पति द्वारा कहीं रखे गये दस्तावेजों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए उनके पास उपस्थित हुई। स्वेडनवर्ग ने मृतात्मा से सम्बन्ध स्थापित करके वह गुप्त स्थान बता दिया जहाँ वे महत्त्वपूर्ण दस्तावेज रखे हुए थे।

मनोविज्ञान शास्त्र के जन्मदाता फेडरिक मायर्स ने अन्तः चेतना का एक विशेष स्तर स्वीकार किया है- सुप्रालिमिनल सेल्फ' की व्याख्या करते हुये उन्होंने लिखा है- इस स्तर का विकास मनुष्य की अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ करा सकती हैं। जो सर्व विदित नहीं हैं ऐसे रहस्यों को जान सकने की क्षमता मस्तिष्क के उस परिचेतना में बीज रूप से मौजूद रहती है जिसे सब लिमिनल सेल्फ कहते हैं।

उन्होंने अपने निज के अनुभवों की चर्चा की है और मनुष्य चेतना के भीतर एक ऐसा तत्व है जिसके आधार पर दूरवर्ती छिपी हुई तथा भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की जानकारी मिल सकती है। अप्रकट रहस्यों के प्रकटीकरण और अशरीरी

आत्माओं के साथ सम्बन्ध जोड़ने की सम्भावना इस चेतना स्तर में होने की बात उन्होंने स्वीकार की है।

राजनेता, लब्ध प्रतिष्ठ लेखक और भारती भवन बम्बई के संचालक स्वर्गीय श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने अपनी प्रेतत्माओं सम्बन्धी अभिरुचि तथा विश्वसनीयता की चर्चा करते हुए लिखा है-

मार्च १९३० में डाँडी यात्रा के पूर्व हमने कश्मीर जाने का निश्चय किया था। हमने आत्मा से पूछा कि हमें कब जाना चाहिए। आत्मा ने उत्तर दिया- 'नहीं तुम जेल जा रहे हों' और सचमुच डाँडी यात्रा शुरू हो गई, मैंने सत्याग्रह किया तथा गर्मियाँ आर्थर रोड जेल में बितायीं।

संसार के कितने ही अन्य सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने दिवंगत आत्माओं के साथ सम्पर्क स्थापित करने में सफलता पाई है।

'रिब्यू आफ रिव्यूज' के सम्पादक डब्लू० टी० स्टैड जैसे विशिष्ट व्यक्तियों ने आत्मा से सम्पर्क की कला को एक आदरपूर्ण विषय बना दिया है। 'शरलक होम्स' के रचयिता सर आर्थर कोनन डायल भी मृतात्माओं से सम्पर्क किया करते थे। कहा जाता है कि सन् १८९३ में पादरी जे० एच० बरोस ने सेन्ट पाल, बुद्ध, सुकरात, जेरी टेलर, जान मिल्टन, रोगर विलियम्स, लैसिंग, अब्राहम लिंकन, टैनिसन, ह्विटियर और फिलिप्स ब्रुक्स से सम्पर्क किया था।

इलाहाबाद से निकलने वाले अँग्रजी दैनिक लीडर के स्वर्गीय सम्पादक श्री सी० वाई० चिन्तामणि प्रायः एक आत्मा के प्रभाव में आ जाया करते थे। वे स्वयं में उस आत्मा की उपस्थिति अनुभव करते थे।

'एडवेन्चर्स आफ स्पिरिचुअलिज्म' के लेखक बम्बई वासी श्री पोस्टन जी० डी० महालक्ष्मी वाला ने ३ सितम्बर, १९२५ को एक प्रसिद्ध परलोक विद्याविद् अमरीकी डॉ० पी० बल्स की आत्मा का, एक कोरा कागज रख कर आह्वान किया। पितर ने उस कागज पर हस्ताक्षर किए। वे हस्ताक्षर डॉ० पी० बल्स के पिछले हस्ताक्षरों से मिलाये गए। वे हू-बहू वैसे ही थे।

श्री प्रो० बी० डी० ऋषि इन्दौर में जज थे। धर्मपत्नी सुभद्रादेवी की मृत्यु ने उनमें मृत-पत्नी से वार्ता की इच्छा जगाई तथा वे इसी खोज में लग गये। वे सफल हुए व पूरा जीवन परलोक विद्या के लिए ही समर्पित कर दिया। उन्होंने कई पितरों को बुलाकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के समक्ष विभिन्न प्रमाणों सहित वार्तालाप किया कराया था। वे ऐसे तथ्य उद्घोषित करतीं, जो नितान्त निजी होते।

प्रसिद्ध पत्रकार एवं शिक्षा-शास्त्री पं० श्री नारायण चतुर्वेदी के पिता स्वर्गीय पं० द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी भी पितर सत्ताओं को बुलाने के प्रयोग करते थे। एक मेज पर वे पंचपात्र व एक चमची रख देते । मृतात्मा के आते ही पंचपात्र स्वयं बज उठता। फिर प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए जाते।

महाकवि विलियम ब्लैक के बारे में कहा जाता है कि माइकेल एजिलो-मोजेन-क्लीओ पेट्रा की स्वर्गीय आत्माओं के साथ रात्रि के एकान्त में वार्तालाप करते थे। वे आत्माएँ आकर उनके साथ महत्त्वपूर्ण विषयों पर वार्तालाप करती थीं।

यदि सम्पर्क उचित माध्यम से किया जा सके तो मरणोपरान्त आत्माएँ उचित परामर्श, सहयोग, सान्निध्य देने में समर्थ रहती हैं। इसमें सन्देह नहीं है।

अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन अक्सर आत्मवादी कुमारी नैटीकोल बर्न को आदर पूर्वक ह्वाइटहाउस में आमन्त्रित किया करते थे और उससे रणनीति तथा दूसरे महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर परामर्श किया करते थे। उस लड़की पर कई पितरों की छायाऐं छाई रहती थीं और वे इस स्तर की थीं कि किन्हीं रहस्यपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन कर सकें। लिंकन ने कई बार अपनी कार्य पद्धति उनकी सहायता से बनाई थी और कई ऐसी रहस्यपूर्ण बातों का पता लगाया जिन्हें खोज सकना जासूसी जाल द्वारा भी सम्भव न हो सका।

पितरों से सम्पर्क कर उनसे दूरस्थ क्षेत्रों में वर्तमान में घट रही घटनाएँ, तथा सूक्ष्म जगत के अन्तराल में पक रही भविष्यत् सम्भावनाएँ जानी जा सकती हैं । इसी प्रकार श्रेयस्कर तथा कल्याणकारी सन्मार्ग की जानकारी प्राप्त कर आत्मोत्थान की दिशा में बढ़ा जा सकता है। भौतिक लाभ भी पितरों की अनुग्रह पूर्ण सूचनाओं से प्राप्त किए जाते रहे हैं तथा ऐसी सूचनाएँ देते समय वे अपनी संस्कार जन्य श्रेष्ठता के कारण, औचित्य अनौचित्य पर भी प्रकाश डालने में कभी पीछे नहीं रहते। इस प्रकार इन श्रेष्ठ भावनाओं, विचारों एवं इच्छाओं वाले श्रद्धास्पद पितरों से सम्पर्क हर प्रकार लाभकारी ही सिद्ध होती है ?

साधारण मृतात्माएं वे होती हैं, जो अपने स्वजनों, आत्मीयों, बन्धु बांधवों से ही सम्बन्ध को उत्सुक रहतीं। उनकी दुनिया सीमित ही रहती है। अपनेपन का उनका दायरा घर-परिवार तक ही सीमित रहता । उनकी कामनाएँ भी सीमित और साधारण होती हैं। परिजन प्रियजन से मृत्यु के उपरान्त कुछ दिनों तक मिलते रहना, उन्हें छिटपुट जानकारियां दे देना, प्रणय-निवेदन कर देना, साथ-साथ थोड़ी देर रह लेना या मृत्यु

के पूर्व की अपनी किसी वासना आकांक्षा की इस सम्पर्क द्वारा पूर्ति कर-करालेना ही उनका उद्देश्य होता है प्रियतम पति या प्रियतम-पत्नी से सम्पर्क करने वाली अथवा अपने प्रशंसकों को उत्तर लिखवाती रहने वाली मृतात्माएँ इसी भूत-अवस्था में रह रही होती हैं। कुछ समय बाद इनकी आसक्ति का केन्द्र कहीं अन्यत्र हो जाता है। 'माध्यम' के माध्यम से इनका संपर्क हलका-फुलका सन्तोष ही दे पाता है और आत्मकल्याण में किञ्चिन्मात्र सहायक नहीं होता भूतों के सम्पर्क ऐसे ही व्यर्थ होते हैं।

पितर आत्माएं इनसे भिन्न हैं। इनका उद्देश्य आत्म कल्याण के लिए पथ-प्रदर्शन करना, सत्परामर्श देना ही होता है। उनकी निज की कोई वासना नहीं होती। कोई क्षुब्ध प्रयोजन पितरों के इस सम्पर्क के पीछे नहीं होता। वे तो सन्मार्ग दिखलाने के लिए ही सम्पर्क करते हैं।

आत्मा चेतना के विस्तार की दृष्टि से ये पितर-आत्माएं भी दो प्रकार की होती हैं। एक तो वे जो मृत्यु-पूर्व की अवधि के कुलवंश के सगे-सम्बन्धियों को ही आत्मीय मानतीं, उनको ही सत्परामर्श देती, पथ-प्रदर्शन करतीं और लाभ पहुँचाती हैं। दूसरी वे उदार पितर आत्माएँ हैं, जिनकी आत्मीयता की परिधि अति विस्तृत हो चुकी होती है। जो सत्प्रवृत्तियों सद्भावनाओं के आधार पर समापन मानती हैं। पूर्व के किसी परिचय-सम्बन्ध की उन्हें रञ्च मात्र अपेक्षा नहीं होती। जो सन्मार्गगामी हैं, सद्भाव सम्पन्न हैं, वही आत्मीय। ऐसी पितर-आत्माएँ प्रत्येक उत्कृष्ट व्यक्ति को सहायता पहुँचाने को तत्पर एवं प्रस्तुत रहती हैं। वे किसी भी सत्पात्र से सम्पर्क करने में समान रूप से सन्तोष आनन्द का अनुभव करती हैं।

आत्मीयों को पितरों के अनुग्रह, अनुदान

सन् १९६७ की दिसम्बर की ठण्डी रात्रि थी। श्रीमती एकले 'हडसन' नदी के किनारे स्थिति अपने मकान की बालकनी में खड़ी अपने पति का खाना होते देख रही थीं। यह वहीं विक्टोरिया कालीन मकान था, जो वर्षो से खाली पड़ा था। झूठ या सच प्रायः हर व्यक्ति यह कहता था इस भवन में भूत निवास करते हैं। एक दिन खेत जाते समय श्री एकले की नजर इस पर पड़ी। वे इन बातों पर विश्वास नहीं करते थे। वे प्रतिदिन यह विचार करते कि इतना भव्य मकान वीरान पड़ा है। केवल इसलिए कि लोग इसे भुत बाड़ा समझ बैठे हैं। रोज इसे खरीदने का वे विचार करते और अंततः इसे एक दिन उन्होंने कार्य रूप में परिणित कर दिया। मकान उन्होंने स्वयं खरीद लिया।

उसी रात्रि श्रीमती एकले को ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई उनके बहुत समीप खड़ा है। इतना समीप कि उसकी सांसें उनकी गर्दन को स्पर्श कर रही हैं। भूतों से संबन्धित सभी कल्पनाएँ उनके मस्तिष्क में घूम गईं। वे भयभीत होकर, वे वहाँ से जैसे ही भागने को पीछे मुड़ी, उन्होंने देखा कि एक छाया उनके मार्ग में खड़ी है। इस छाया से क्षीण ध्वनि फूटी:-"तुम डर कर भागो नहीं। अभी तक जितने भी व्यक्ति इस घर में आये हैं- भयभीत होते रहे हैं, जबकि हमारा उद्देश्य मनुष्यों की सहायता करना, उनसे सहानुभूति अर्जित करना है" इन शब्दों से श्रीमती एकले को साहस मिला। वे आश्वस्त हुई और बोली-"आप लोग कौन हैं, कितने व्यक्ति हैं व इस रूप में क्यों आपको भटकना पड़ रहा है ? " छाया ने जवाब दिया कि हम लोग ३ व्यक्ति हैं जो तुम्हारे वंश के ही हैं। तुम्हारा यहाँ आना एक संयोग मात्र नहीं है। हमारे द्वारा एकले को दी गयी विचार रूप में प्रेरणा ही तुम्हें यहाँ लायी है। मरणोन्तर जीवन में एक योनि ऐसी होती है जिसमें उच्च अशरीरी आत्माएँ सहायक आत्माओं के रूप में सूक्ष्म जगत के भ्रमण करती रहती है व सभी की सहायता करती है। जब इस मकान को भुतहा ठहरा दिया गया तो हमने उचित समझा कि तुम्हें यहाँ बुलाया जाय।" श्रीमती एकले काफी देर तक अपने वंशज पितर से बात करती रहीं। बात का विषय मोड़ तथाकथित प्रेत ने हडसन नदी के दृश्य की सुन्दरता की चर्चा आरम्भ कर दी व श्रीमती एकले उसे इतना दत्तचित्त हो देखने लगीं कि उन्हें स्मरण ही नहीं रहा कि कब वह छाया वहाँ से चली गई।

यह बहुचर्चित घटना जो उन दिनों अखबार की सुर्खियों का विषय बनी, रीडर्स डायजेस्ट के मई १८७७ अंक में भी छपी है वह इसमें इस प्रथम साक्षात्कार के बाद इन सहयोगी आत्माओं से मिले कई अनुदानों की चर्चा है। ऐसी घटनाएँ आज के मनुष्य को, जो भौतिकवाद डूबा पड़ा है, मरणोन्तर जीवन की सचाई से अवगत कराती हैं।

एक उच्च श्रेणी देवता की होती है व एक निचली श्रेणी प्रेत की। इन दोनों के मध्य पितर योनि होती हैं ऐसा हमारे शास्त्रकारों का मत है इनके प्रति श्रद्धा का अर्थ इनसे सहयोग एवं शुभ कामनाएँ प्राप्त करना है। इनसे भयभीत होना नहीं। डरावनी या घिनौनी प्रकृति के भूत प्रेत कम ही होते हैं। अतृप्त आकांक्षाओं व वासनाओं वाले भूत प्रेत ही मनुष्यों को परेशान करते हैं। इन अशरीरी आत्माओं का अस्तित्व सिद्ध करने वाली घटनाएँ एक तथ्य निश्चित

ही स्पष्ट करती हैं कि “वैज्ञानिकों का यह कथन मरने के बाद जीवन समाप्त हो जाता है” गलत है। इन पितरों का अस्तित्व सिद्ध करने के विषय में भारतीय दर्शन अतीत काम से अपनी मान्यताएँ प्रतिपादित करता आया है। पर जब इस तरह की प्रामाणिक घटनाएँ घटती हैं, तब स्वाभाविकत: भौतिकवादियों को मरणोत्तर जीवन, आस्तिकता धार्मिकता के पग में सदगति देनी पड़ती है।

एकले परिवार ने पड़ोसियों की आशा के विपरीत उस घर में बने रहने का निर्णय लिया। आये दिन घर के किसी न किसी सदस्य की भेंट इन अदृश्यों से होती रही व अपनी सहायक मनोवृत्ति का परिचय देती रही।

कई बार ये पितर मजाक के मूड़ में होते। हाथ से मुँह में जा रहा नाश्ता कोई अज्ञात छाया अपने मुँह में झपट लेती एवं सब एक साथ हँस पड़ते। ऐसा प्रतीत होता है कि इनको सिंथिया से विशेष लगाव था जो ‘एकले’ की बड़ी पुत्री थी। यदि वह पढ़ाई हेतु सवेरे नियत समय पर न उठती तो उसका बिस्तर जोरों से हिलने लगता जब तक वह उठकर बैठ न जाती विस्तर हिलता रहता। छुट्टियों में । सिंथिया ने सोते समय प्रार्थना की कृपया मुंझे देर तक सोते रहने देना।’ आत्माओं ने बात मानली व काफी देर तक थकी हारी सिंथिया सोती रही। सिंथिया ने अक्सर एक राजकालीन वेषभूषा में घूम रही महिला की छाया को अपने कमरे में देखा। १९७६ में सिंथिया के विवाह के बाद श्रीमती एकले ने कमरे में प्रवेश करते ही आवाज सुनी “हमारी ओर से भी सिंथिया के लिये कुछ भेंट है जो आशीर्वाद स्वरूप उसे दे देना।” उन्होंने एक आल्मारी खोली व उसमें एक सुन्दर नक्काशी किया चाँदी के चम्मचों का जोड़ा पाया। सिंथिया को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई तो औरों की भेंटों के साथ ही उन्हें अपने पितरों से सोने की अंगूठी भी मिली।

यह घटना इन पितरों द्वारा एकले परिवार को आत्मीयता-वश दी गई, सहायता एवं सहानुभूति दर्शाती है । वे उस परिवार द्वारा इनके प्रति दी जाने वाली श्रद्धा का महत्त्व प्रतिपादित करती है।

मृत व्यक्ति द्वारा आत्मीयों से सम्पर्क की प्रतिपादक, एक अन्य घटना “ मृत्यु के पश्चात् मनुष्य जिन्दा रहता है” (मैन्स सखाइवल आफ्टर डेथ) में एस. पी. आर. की रिपोर्टस से उद्धृत हुए करते पादरी- सी. एल. ट्वीडेल ने दी है।

आइओवा नगर में रहने वाले एक किसान, श्री मिकाइल कौनले की मृत्यु हो गई। मिकाइल बड़ा सम्पन्न व्यक्ति था, पर वह हमेशा गन्दे कपड़े पहनता था। उसकी मृत्यु भी गन्दे कपड़ों में ही हुई। एक कमीज, जो महीनों से नहीं धोई गई थी पहने उसकी संदिग्ध अवस्था में मृत्यु हो गई। इस मृत्यु की जाँच करने वाले अफसर ने शव को देखकर कहा इसके पुराने कपड़े तो यहीं मुर्दाघर में फेंक दिये जायें और इसे साफ कपड़ा पहनाकर मेरे घर भेज दिया जाय। किसान के बेटे ने ऐसा ही किया। सफेद कपड़े पहनाकर लाश अफसर के घर भेजदी गई। लड़का जैसे ही अपने घर लौटा कि अपनी बहन बेहोश पाई। काफी देर बाद होश में आने पर उसने बताया मैने अभी-अभी पिताजी को साफ कपड़ों में देखा। वैसे कपड़े वे कभी नहीं पहनते थे। वे मुझसे कह रहे थे मेरी पुरानी कमीज मुर्दाघर में पड़ी है उसमें कुछ बिल और रुपये हैं।”

लड़की के इस बयान को घर और पड़ौस वालों ने भी तब तो बकवास कहा, पर जब लड़के ने बताया कि हाँ सचमुच ही उनके पुराने कपड़े उतरवा कर, मुर्दाघर में फिकवा दिये गये हैं तो लोगों की आतुरता भी बढ़ी। लोग मुर्दाघर गये। कमीज उठाकर देखी गई । उसमें भीतर बड़ी सावधानी से एक थैली सीं हुई थी। उसमें बिल भी थे और रुपये भी। इस घटना से सभी आश्चर्यचकित रह गये वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने माना कि मृत्यु के पश्चात् भी चेतना अपनी बौद्धिक क्षमता के साथ जीवित रहती है तथा आत्मीयों से सम्पर्क कर उन्हें आवश्यक सूचनाएँ देकर लाभ पहुँचाती है।

ये पितर-आत्माएँ अपने स्वजन आत्मीयों से अनुराग आकर्षण तो रखती हैं किंतु हीनता-दुष्टता से मुक्त होने के कारण उनका यह अनुराग भोग-वासना परक नहीं, अपितु सहायता परक होता है।

भोग के लिए उत्सुक वासना की आग से उत्तप्त मृतात्माएँ तो स्वजनों को अपनी छिछोरी चेष्टाओं से आतंकित करती और उनकी चेतना पर दबाव डालकर उन्हें अनुचित क्रिया-कलापों के लिए बाध्य करती देखी जाती हैं । ये दुरात्माएँ कुत्सित दुरभिलाषाएँ भी पालती हैं कि हमारा अमुक प्रियजन रुग्ण होकर मर जाए और अकालमृत्यु तथा प्रेत-आवेश के कारण हमारी ही बिरादरी में खिंच आए तो हम गर्हित वासना-भोग की कल्पनाएं साथ-साथ कर सकें।

सत्संकार-सम्पन्न पितर-आत्माएँ भी आत्मीयों से सम्पर्क की इच्छुक रहती हैं किंतु उनका उद्देश्य भूतों से सर्वथा विपरीत रहता है। वे सत्परामर्श एवं विवेक पूर्ण मार्गदर्शन देकर सच्चे सात्विक अनुराग का परिचय देती हैं।

अनसुनी चेतावनी

स्काटलैंड का राजा जेम्स चतुर्थ इंग्लैड पर प्राय: आक्रमण कर बैठता था ? अंतिम आक्रमण के बाद उसे एक पूर्वज की अदृश्य आत्मा आमास रूप में दिखाई पड़ी। उसने स्पष्ट चेतावनी देते हुए कहा-“भविष्य में तुमने कोई और आक्रमण किया तो तुम्हें जान से हाथ धोना पड़ेगा। राजा ने उस चेतनावनी की उपेक्षा कर दी और अगला आक्रमण किया। परिणाम वही हुआ युद्ध स्थल में उसकी मृत्यु हो गई।

ऐसी ही एक घटना फ्रांस के सम्राट हेनरी चतुर्थ की है।

सम्राट हेनरी चतुर्थ दिन सायंकाल अपने राजोद्यान में भ्रमण कर रहे थे। घूमते-घूमते थोड़ा आगे बढ़ जाने लौटने में देर हो गई। सूर्य डूब गया। झुरमुट हो गई।

एक प्रकाश जैसी छाया-आकृति उन्हें सामने और अपने आस-पास चक्कर सी काटती दिखाई दी। हेनरी पहले तो कुछ झिझके पर शीर्घ ही सम्भल गये और पूछा -कौन हो ? छाया बोली-मैं तुम्हारा शुभेच्छु और आत्मीय हूँ और यह बताने आया हूँ कि तुम्हारी हत्या का षड़यन्त्र रचा जा रहा है। शीघ्र ही मार दिये जाओगे। कर सकते हो तो बचाव का अभी कोई प्रबन्ध कर लो।

उत्सुकता वश हेनरी ने पूछा-आप प्रेत क्यों हुए ? यह बात शरीर न होने पर कैसे जान गये ? क्या आप मेरे षड़यन्त्रकारियों को मार नहीं सकते ?

इस पर प्रेत ने उत्तर दिया- शरीर की मृत्यु हो जाने पर भी इच्छा शरीर उत्तेजित बना रहता है, यही हमारी स्थिति है अधिकांश प्रेत अपने लोगों का भली ही करने की सोचते हैं, हम आपके षड़यन्त्रकारियों को जानते हैं जो आपकी हत्या करना चाहते हैं। उन्हीं की चेतावनी देने हम आये हैं। यह कहकर वह छाया वहाँ से अदृश्य हो गई।

हेनरी चतुर्थ ने अपने सभी दरवारियों को यह घटना सुनाई तो सब लोग हँस पड़े और बोले-श्रीमान्जी ! आपने दिवास्वप्न देखा होगा। आपकी हत्या भला कौन करेगा, किन्तु सारे फ्रांस और संसार ने सुना कि उसके कुछ ही दिन बाद उनकी सचमुच हत्या कर दी गई।

भयानक आकृति प्रेतात्मा ने भला किया

इससे भिन्न एक घटना यह है- इंगलैण्ड की डफरिन और अवा रियासतों के सामन्त लार्ड डफरिन कभी भारतवर्ष के वायसराय रह चुके थे, कनाडा के गर्वनर जनरल और रोम के राजदूत रहने का भी उन्हें सौभाग्य मिला था। सन् १८९१ में वे पेरिस के राजदूत नियुक्त हुए। एक दिन उन्हें एक मित्र ने आयरलैण्ड में एक दावत दी। रात के बारह बजे तक भोज चला। इसके बाद उनके लिये अत्यन्त सजे हुए एकान्त कमरे में विश्राम की व्यवस्था कर दी गई । लार्ड डफरिन अभी लेटे ही थे कि सारा कमरा एकाएक तीव्र प्रकाश से भर गया। यों उस दिन पूर्णमासी थी। बाहर चन्द्रमा पूरे वेग से छिटक रहा था तो भी कमरे के सभी दरवाजों और खिड़कियों पर पर्दा पड़ा था भीतर प्रकाश जाने की कोई सम्भावना नहीं थी। बल्व बुझे हुए थे। लार्ड डफरिन को आशंका हुई, वे उठे, सब तरफ देखा, कहीं कुछ गड़बड़ तो नहीं। फिर लेटे ही थे कि वही पहले जैसा तीव्र प्रकाश अनुभव हुआ। उन्होंने अच्छी तरह परखा कि वे जाग रहे हैं और होश में हैं। फिर खड़े होकर खिड़की से झाँककर देखा तो कुछ ही गज की दूर पर एक आकृति, अपने कन्धे पर एक शव ढोने के कठघरे जैसा बोझ लिये दिखाई दी। वह कराह सी रही थी। लगता था बोझ भारी है, उसे जाने में कष्ट हो रहा है।

उन दिनों प्रयोगशालाओं के लिये शवों की बड़ी आवश्यकता रहती थी। वैज्ञानिक मुँह माँगे दाम देते थे, इसलिए फ्रांस में मुर्दों की चोरी की एक आम हवा चल पड़ी थी। डफरिन ने सोचा कोई मुर्दा चोर है सो साहस करके वे आगे बड़े और पास पहुँचते ही ललकार कर पूछा-“कौन हो ?” आकृति ने उनकी ओर थोड़ा घूमकर देखा तो वे स्तब्ध रह गये। इतना भयानक चेहरा लार्ड डफरिन ने पहले कभी नहीं देखा था तो उन्होंने साहस किया और आक्रमण के लिए जैसे ही थोड़ा आगे बड़े कि वह आकृति वहीं अन्तर्धान हो गई। न कोई व्यक्ति था, ने कोई बोझ। टार्च के सहारे दूर तक देखा पृथ्वी पर पैरों के कहीं चिह्न भी नहीं थे। लार्ड डफरिन तब कुछ डरे। यह एक अविस्मरणीय घटना थी। वे कमरे में लौटे और उसी समय जो कुछ जैसा देखा था, वैसी ही डायरी में नोट कर लिया। फिर वे रात भर सो नहीं सके। कुछ दिन में बात आई गई हो गई।

कुछ वर्ष बीते, लार्ड डफरिन तब पेरिस में राजदूत ही थे, एक दिन सभी राजनैतिक व्यक्तियों को भोज दिया गया। पेरिस के ग्रान्ड होटल में उसका प्रबन्ध किया। समय पर सब लोग होटल के समीप इकट्ठे हुए। ऊपर होटल तक ले जाने के लिए ‘लिफ्ट’ (एक ऐसी मशीन जो बिजली के सहारे रेल की तरह ऊपर को चढ़ती है, कई मञ्जिलों की इमारत में वह ऊपर बोझ और व्यक्तियों को पहुँचाने में काम आती है) तैयार थी। वरिष्ठ होने के नाते सब लार्ड डफरिन की ही प्रतीक्षा में थे।

नियत समय पर जैसे ही वे उस लिफ्ट के पास पहुँचे वर्षो पूर्व देखी हुई वही भयानक आकृति वहाँ उपस्थित पाई। उस दिन

की सारी घटना एक सेंकिंड में मस्तिष्क में नाच गई। वे पीछे हट गये, अपने सेक्रटरी से भोज में सम्मिलित होने से इनकार करते हुए, वे लौट पड़े और सीधे होटल के मैनेजर के पास जाकर पूछा- लिफ्ट पर किसे नियुक्त किया गया है ? जब तक वह कोई उत्तर दे एक धड़ाम की आवाज आई, सब लोग लिफ्ट की ओर दौड़े। देखा लिफ्ट बीच में ही कटकर टूट गई है, सारे सवार अतिथि गिरकर चूर-चूर हो गये हैं। डफरिन के अतिरिक्त सभी लोग मर चुके थे। यह समाचार फ्रांस के सभी समाचार पत्रों ने छापा और यह स्वीकार किया कि भूत की सत्ता सचमुच कुछ न कुछ है- उसका विज्ञान कुछ भी होता हो ? लुई आन्स्पैचर द्वारा यह घटना "रीडर्स डाइजेस्ट" पत्रिका में भी छपी थी।

उस भयानक आकृति के डफरिन को आरलैण्ड में शव ढोने वाला बक्सा ले जाते जैसी अशुभ स्थिति में दिखने पर भी उनका अनिष्ट न करना इस अनुमान को बढ़ाता है कि दूसरों के लिए वह कितना भी अशुभ रहा हो, किन्तु डफरिन के प्रति उसके मन में आत्मीयता का कोई कोना सुरक्षित था।

पेरिस के ग्रान्ड होटल में वह छाया-रूप में ही लिफ्टमैन के निकट विद्यमान रहा होगा और लोगों को वह भयानक आकृति नहीं दिखी। नियमित ड्यूटी वाला लिफ्टमैन ही दिखा। मात्र लार्ड डफरिन को वह भयानक पुरुष दिखा। इसका अर्थ है कि वह अपनी भयानक गतिविधियों में प्रकृति वश जुटा रहकर भी डफरिंन को मूक चेतावनी देना चाहता था। कई प्रेततत्व विद्या विशारदों के अनुसार वह कोई लार्ड घराने का ही क्रूरकर्मी पूर्वज रहा होगा। जिसे मृत्यु के बाद भी ऐसे ही कठोरदायित्व सौंपे गये। श्री लेडबीहट ने भी इनविजिबुल हेल्पर्स" में यही लिखा है, जिस आत्मा के जो कार्य अधिक अनुकूल होते हैं उन्हें परलोक में वैसे ही दायित्वों के निर्वाह का प्रशिक्षण देकर फिर वैसी ही भूमिका सौंप दी जाती है। अपनी सीमा में बँधे हुए भी उस क्रूरकर्मी पितर ने डफरिन को तो चेतावनी देकर उनका हित ही साधा। डफरिन ने उस मूक चेतावनी या गुप्त संकेतपूर्ण आभास को समझ लिया और उसकी उपेक्षा नहीं की, इससे वे लाभान्वित हुए। यों, उस आकृति की भयानक भी इतना अधिक थी कि डफरिन का सहम जाना अनिवार्य ही था।

ममता भरा मार्गदर्शन

श्री लेडबीहर ने अपनी पुस्तक " इनविजिबुल हेल्पर्स" में लन्दन के पादरी डॉ० जान मेसन नील का एक संस्मरण बताया कि एक महिला अपने दो बच्चे छोड़कर मर गई। कुछ दिनों बाद उसका पति बच्चों के साथ अपने एक मित्र के घर घूमने गया। दोनों दोस्त गपशप में मशगूल हो गये। बच्चे खेलने लगे।

खेलते-खेलते बच्चे उस मकान के एक उपेक्षित कोने की सीढ़ियों पर जा पहुँचे। वे सीढ़ियाँ तहखाने को जाती थीं। बच्चे नीचे उतर रहे थे, तभी उन्हें उनकी माँ आती दिखी। माँ ने उनसे कहा कि वहाँ नहीं जाओ। चलो, ऊपर चलो।' माँ की बात सुनकर वे बच्चे लौटकर ऊपर आए। तब तक उन दोनों मित्रों का ध्यान इस बात की ओर जा चुका था। बच्चों के पिता के मित्र घबड़ा उठे कि मित्र के बच्चे कहीं तहखाने की तरफ तो नहीं गए। वे लोग उधर लपके तो बच्चे सीढ़ियों पर मिले, तहखाने में एक पुराना कुँआ था। सीढ़ियाँ उसी तक जाती थीं। बच्चे उनमें उतरते चले जाते तो कुँए में जा गिर सकते थे और तब प्राण गँवा बैठते। इसलिए मित्र घबड़ाते हुए दौड़ से पड़े। बच्चों ने बताया कि "अभी-अभी मां मिली थी। उसी ने ऊपर आने को कहा था। फिर जाने कहां चलदी।"

ये सदाशयी आत्माओं द्वारा अपने आत्मीयों के मार्गदर्शन करने उनके ऊपर अपनी आत्मीयता पूर्ण छाया बनाए रखने के उदाहरण हैं। ऐसी हजारों प्रामाणिक घटनाऐं देखीं तथा लिपिबद्ध की जा चुकी हैं, जो मरणोपरान्त जीवन का तथा उस अवधि में भी उदार आत्माओं द्वारा आत्माओं के संरक्षण पथ प्रदर्शन का विवरण प्रस्तुत करती हैं।

नैपोलियन बोनापार्ट जिन दिनों सेंट हेलेना द्वीप में था, उसे भी एक पितर-सत्ता ने उसकी मृत्यु की सूचना दी थीं, जिसे उसके साथियों ने अमान्य कर दिया था। पर अन्त में नैपोलियन की मृत्यु ठीक उसी दिन उन्हीं परिस्थितियों में हुई, जो प्रेत ने बताई थी। सम्भवतः उस पितर का बोनापोर्ट के प्रति विशेष लगाव था।

अनेक सिद्ध पुरुष अपने दूरस्थ शिष्यों को अपनी सूक्ष्मसत्ता से प्रत्यक्ष मदद पहुँचाते हैं। प्रसिद्ध आर्य समाजी सन्त स्व० श्री आनन्द स्वामी के पुत्र लेखक-पत्रकार श्री रणजीत ने कुछ समय पहले अपने संस्मरण -लेख में यह बताया था कि किस प्रकार उनके पिता ने उन दिनों, जब कि वे जीवित थे और भारत में थे तथा श्री रणजीत विदेश में प्रवास पर थे, एक भयानक खड्ड में गिर पड़ने से चेतावनी देकर उन्हें रोका था। अन्य कई अवसरों पर भी उनको मदद व मार्ग-दर्शन का कार्य उनके पिता ने किया था। जबकि वे उस समय उनसे सैकड़ों मील दूर हुआ करते थे।

विकसित आत्म सामर्थ्य के ये लाभ सिद्ध पुरुषों द्वारा आत्मीयजनों को अनायास ही पहुँचाए जाते रहते हैं। यही स्थिति पितरों की है ऐसी शरीरी अशरीरी उच्च आत्माओं के प्रति श्रद्धा-भाव रखना उचित भी है और आवश्यक भी।

अधिक उच्चकोटि की पितर आत्माएँ तो जीवित महामानवों-महायोगियों की तरह ही उदात्त होती हैं। उनके लिए अपने पराए जैसा कोई भेदभाव होता ही नहीं। जहाँ भी आवश्यकता एवं पात्रता दिखी, वहीं उनके अनुग्रह-अनुदान बरसने लगते हैं। जरूरत उनके अनुकूल बनने उत्कृष्ट जीवन और प्रगाढ़ श्रद्धा-भाव अपनाने की होती है।

मृत्यु के बाद भी जीवन का अस्तित्व बना रहता है। परिपक्व मृत्यु होने पर चेतना कुछ समय के लिए विश्राम में चली जाती है। जिस प्रकार दिन भर का थका मांदा व्यक्ति प्रगाढ़ निद्रा में सो लेता है तो उसे फिर से नयी ताजगी मिल जाती है उसी प्रकार मृत्यु के बाद जीव की अवस्था के अनुरूप वह २ माह से २ वर्ष तक विश्राम ले लेने के पश्चात् नया जन्म धारण कर लेता है। पर कई बार नींद पूरी तरह नहीं आती। अफीमची और शराबी लोगों की नींद उखड़ी-उखड़ी होती है ऐसे लोगों को मृत्यु के समय भी पूरा नींद नहीं आती और वे नया जन्म लेने पर भी थके-थके से अस्त-व्यस्त होते हैं जिन्हें नींद पूरी आ जाती है और जिनके मन शुद्ध और पवित्र होते हैं वे अन्य जन्मों में बाल्यवस्था से ही पूर्व जन्मों की स्मृतियाँ दोहराने लगते हैं।

जिनकी इन्द्रिय वासनाऐं प्रबल होती हैं या जिनकी मृत्यु हत्या या आत्माहत्या जैसी होती हैं वे एक प्रकार से निचोड़े गये शहद की भांति होते हैं। शहद का छत्ता काटकर रख दिया जाये तो उसका शहद अपने आप टपक आता है। वह नितान्त शुद्ध होता है, पर निचोड़े जाने पर उसमें मोंम आदि का अंश भी आ जाता है, उसी प्रकार ऐसी मृत्युओं में स्थूल अवयव भी बने रहते हैं, ऐसी ही आत्माएँ प्रेत, पिशाच, भूत, बैताल, किन्नर और यक्ष होते हैं, यह मरघट अपने शवों तथा जिनके प्रति उनकी स्वभावित आसक्ति होती है, उनके पास घूमते आते जाते भी रहते हैं पर जिनके शरीर में अग्नेय-अगु अधिक होते हैं उनके पास इस तरह की गन्दी आत्माऐं नहीं जापाती हैं और जब नींद टूटती है तो वे अपनी आसक्ति के अनुरूप निम्न-गामी योनियों में चले जाते हैं।

विश्राम के बाद देव आत्मायें या जिनकी गति ऊर्ध्वमुखी-अच्छे कामों में रही होती है, जिनके शरीरों का आणविक विकास प्रकाश पूर्ण हो गया होता है, वे दिव्य लोकों को चली जाती हैं और जब तक वहाँ रहने की इच्छा होती है तब तक रहती हैं पीछे इच्छानुसार अच्छे घरों में जन्म लेकर लोक सेवा पुण्य परमार्थ और नेतृत्व आदि उत्तरदायित्व सम्भालती हैं पर जिनका मन अशुभ संस्कारों वाला रहा होता है, वे अधोगामी लोकों में रहकर निम्नगामी योनियों में चले जाते हैं। इस प्रकार संसार में गुण कर्म का यह प्रवाह, प्रकृति की जटिलता के समान स्वयं भी जटिल रूप में चलता रहता है।

पितर आत्माएँ वे हैं, जिनकी ऊर्ध्वमुखी गति होती हैं। वे कई बार विश्राम की अवधि में कुछ लम्बे समय तक भी रही आती हैं। उस अवधि में वे स्वयं तो प्रकाशपूर्ण वातावरण में रहते ही हैं, दूसरे स्वजनों या जिनके प्रति उनके मन में आकर्षण होता है, उनकी भी समय-समय पर प्रकाशपूर्ण मार्ग दर्शन एवं अनुग्रह-अनुदान देते रहते हैं।

प्रगतिमार्ग के पथ-प्रदर्शक-पितर

उदात्त आत्माएँ पितर रूप में समस्त सत्पात्रों की सहायता के लिए सदैव प्रस्तुत रहती हैं। उनकी आत्मीयता की परिधि अति विस्तृत होती है। ये पितर सत्ताएँ पात्रता देखती हैं, परिचय की पृष्ठभूमि नहीं। क्योंकि सत्पात्र का परिचय उन्हें तो मिल ही जाता है और दूसरे को अपना परिचय देने की उनकी कोई निजी आकांक्षा नहीं होती। वे तो कल्याण पथ में नियोजित कर देना ही अपना कर्तव्य मानंती हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी को एक पितर-सत्ता ने ही श्री हनुमान और भगवान् राम के दिव्य-दर्शनों की विधि सुनाई थी और उन्हें एक अनाथ भावनाशील बालक से एक भक्त महाकवि और सन्त बन जाने में विशेष भूमिका निभाई थी।

थियोसाफिकल सोसाइटी की जन्मदात्री मैडम ब्लैवेटस्की को चार वर्ष की आयु से ही पितर आत्माओं का सहयोग सान्निध्य प्राप्त होने लगा। वे अचानक आवेश में आकर ऐसी तथ्यपूर्ण बातें कहती जिन्हें कह सकना किन्हीं विशेषज्ञों के लिए ही सम्भव था। परिवार के लोग पहले तो उन्हें विक्षिप्त समझने लगे, पर जब उनके साथ देवात्माओं के प्रत्यक्ष सम्पर्क के प्रमाण देखने लगे तो उनकी विशेषता स्वीकार करनी पड़ी।

एक बार एक प्रेतात्मा ने उसके शरीर के कपड़े ही मजाक में बिस्तर के साथ सीं दिये। दूसरे लोगों ने जब वह सिलाई उधेड़ी तभी वे उठ सकीं। एक बार कर्नल हैनरी आल्काट उनसे मिलने आये तो वे सिलाई से तौलिये सीं रही थीं और कुर्सी पर पटक रही थी। आल्काट ने पैर पीटने का कारण पूछा तो उनने कहा एक छोटा प्रेतात्मा बार-बार मेरे कपड़े खींचता है और कहता कि मुझे भी कुछ काम दे दो। कर्नल ने उसी मजाक में उत्तर दिया कि उसे कपड़े सीने का काम क्यों नहीं दे देतीं? ब्लैवेटस्की ने कपड़े समेट कर अलमारी में रख दिये और उनसे बातें करने

लगी। बात समाप्त होने पर जब अलमारी खोली गई तो सभी बिना सिले कपड़े सिये हुए तैयार रखे थे।

मैडम ब्लैवेटस्की के कथानानुसार उनकी सहकारी मण्डली में सात-प्रेत थे, जो समय-समय पर उन्हें उपयोगी परामर्श और मुक्त हस्त सहायता करते थे। कर्नल आल्काट अमेरिका में अपने समय के अत्यन्त सम्मानित नागरिक और प्रसिद्ध वकील थे, उन्होंने मैडम से प्रभावित होकर उनके अध्यात्म कार्य में सदा भरपूर सहयोग दिया।

ब्लैवेस्टकी एक बार अपने सम्बन्धियों से मिलने के लिए रूस गई। वहाँ उसके भाई के कान में भी उनकी दिव्य शक्ति की चर्चा पहुँची। उसने इतना ही कहा कि मैं मात्र बहिन होने के कारण उनकी बातों पर विश्वास नहीं कर सकता। मैडम ने अपने भाई को एक हलकी सी मेज उठाकर लाने के लिए कहा वह ले आया। अब उन्होंने फिर कहा इसे जहाँ से लाये हो वहीं रख आओ। भाई ने भरपूर जोर लगाया पर वह इतनी भारी हो गई कि किसी प्रकार न उठ सकी। इस पर घर के अन्य लोग आगये और वे सब मिलकर उठाने लगे इतने पर भी उठी नहीं। जब सब लोग थक कर हार गये तो मैडम ने मुस्करा कर उसे यथावत् कर दिया और मेज फिर पहले की तरह हलकी हो गई। उसे उठा कर आसानी से जहाँ का तहाँ रख दिया गया ।

अशरीरी आत्माओं का अस्तित्व और उनके द्वारा मनुष्य को सहयोग यह एक तथ्य है। डरावनी या घिनौनी प्रकृति के भूत प्रेत कम ही होते हैं। साधारणतया उच्च आत्माएँ मनुष्यों की सहायता ही करती हैं और अपनी उच्च प्रवृत्ति के कारण दूसरों को आगे बढ़ाने तथा खतरों से बचाने के लिये पूर्व संकेत भी करती हैं। जिस प्रकार उदार मनुष्य अकारण दूसरों की सेवा सहायता करने के लिये तैयार रहते हैं वैसे ही सूक्ष्म शरीरधारी आत्माएँ लोगों को उपयोगी ज्ञान देने अथवा आत्मा का अस्तित्व शरीर न रहने पर भी बना रहता है यह विश्वास दिलाने के लिये कुछ व्यावहारिक सहयोग देती रहती हैं।

महान् सन्त सुकरात के बारे में बताया जाता है कि प्रारम्भिक जीवन में उन्हें धर्म-कर्म एवं अदृश्य जीवन पर कतई विश्वास नहीं था। एक दिन उन्हें एक प्रेत मिला। उसने अतीन्द्रिय दर्शन की क्षमता उनमें विकसित करने हेतु भगवत भजन का परामर्श दिया। शीघ्र ही सुकरात की यह क्षमता विकसित हो गई। प्रेत उन्हें आजीवन विशिष्ठ मामलों में जानकारी व परामर्श देता रहा। इससे सुकरात सहस्रों व्यक्तियों का कल्याण करते। उन्होंने बताया तो यह तथ्य अपने साथियों को भी। पर साथी-सहयोगी प्रेत को देख नहीं सकते थे, अतः वे सुकरात के भविष्य-कथन आदि को उन्हीं की चमत्कारिक शक्ति मानने लगे।

प्लेटो, जेनोफेन, प्लुटार्क आदि विद्वानों ने सुकरात के जीवन की प्रामाणिक घटनाओं पर प्रकाश डाला है। उन सभी ने स्वीकार किया है कि- 'सुकरात ने अनेकों बार यह कहा- मेरे भीतर एक रहस्य मय देवता डेमन' निवास करता है और वह समय पर मुझे पूर्व सूचनाएँ दिया करता है।' इस तथ्य की यथार्थता के अनेक प्रमाण और उद्धरण भी उपरोक्त लेखकों ने प्रस्तुत किये हैं।

प्लुटर्क ने अपनी पुस्तक दी जेनियो सोक्रिटिस" में एक घटना दी है- एक बार सुकरात अपने कई मित्रों के साथ एक रास्ते जा रहे थे। सहसा वे रुक गये और कहा इस रास्ते हमें नहीं चलना चाहिए खतरा है। कइयों ने उसकी बात मानली और वह रास्ता छोड़ दिया पर कई इस साफ सुथरे रास्ते को छोड़ने के लिये तैयार न हुये। वे सुकरात की सनक को बेकार सिद्ध करना चाहते थे। वे कुछ ही दूर गये होंगे कि जंगली सुअरों का एक झुण्ड कहीं से आ धमका और उनमें से कइयों को बुरी तरह घायल कर दिया।

प्लेटो ने अपनी पुस्तक "थीवीज" में एक प्रसंग दिया है- एक दिन एक तिमार्कस नामक युवक सुकरात के पास आया कुछ खाया पिया। जब चलने लगा तो सुकरात ने उसे रोका और कहा अभी तुम जाना मत, तुम्हारे ऊपर खतरा मंडला रहा है। तीन बार उसने जाने की चेष्टा की पर तीनों बार सुकरात ने उसे पकड़ कर बलपूर्वक रोक लिया। पीछे वह नहीं ही माना और हाथ छुड़ा कर चला गया। दूसरे ही दिन उसने एक खून कर डाला और फाँसी पर चढ़ाया गया । ऐसी ही अन्य कितनी ही घटनाऐं हैं जिनमें सुकरात के उसके सहचर देवता 'डेमन' द्वारा पूर्वभास दिये जाने तथा सहायता करने के प्रमाण मिलते हैं।

सुकरात पर जब मुकदमा चला और प्राणदण्ड दिया जाने लगा, उस समय उसके पास ऐसे प्रमाण थे और साधन थे, जिन से प्राणदण्ड से छुटकारा सम्भव था। ऐथेन्स की जेल से उसके मित्र एवं शिष्य भाग ले जाने हेतु भी पूर्ण तैयारी कर चुके थे। किंतु सुकरात ने न्यायलय में स्वीकार किया- अभी-अभी मेरा देवता, 'डेमन' मेरे कानों में कहकर गया है कि- मृत्यु दण्ड मिलेगा, उससे डरने की कोई बात नहीं है, ऐसा मृत्यु मनुष्य के लिए श्रेयस्कर होती है।

इंगलैण्ड के राज घराने में प्रेतात्माओं की अनुभूतियों का वर्णन चार्ल्स डिकेन्स अपने उपन्यास मिस्ट्री आव एडविनहुड में

किया है। पुस्तक के बीस अध्याय लिखकर ही वे स्वामी हो गये थे। मृत्यु के दो वर्ष बाद उन्होंने थामस जेम्स को लिखने का माध्यम बनाने के लिए तैयार किया और उनकी कलम से अपना शेष कार्य स्वयं पूरा कराया।

श्रमती जान कूपर का 'टेल्का' उपन्यास विशेष रूप से और अन्य सामान्य रूप से प्रख्यात हुए हैं। श्रीमती कूपर का कथन है इस लेखन में उन्हें किसी दिव्य आत्मा का मार्ग दर्शन और सहयोग मिलता रहा है।

अमेरिका की श्रीमती रूथ मान्टगुमरी का कथन है कि उनका 'ए वर्ल्ड वियोन्ड ग्रन्थ' स्वर्गीय आर्थर फोर्ड की आत्मा ने बोल बोल कर लिखाया है।

इग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध लेखक तोएल कोबर्ड ने अपनी प्रख्यात रचना 'दि व्लिथे स्प्रिट' के सम्बन्ध में लिखा है कि यह लेखन उसने अदृश्य साथी के सहयोग से लिखा है।

'जान आफ आर्क' अपने आत्मा परिचय में यह जानकारी ही थी कि विशिष्ट काम करने की प्रेरणा और शक्ति किसी अदृश्य आत्मा से मिलती है । ब्रिटिश कस्बे गलोसेस्ट-शायर में रहने वाली छियालीस वर्षीया पैट्रिशिया मूलतः कनाडा की रहने वाली लेखिका हैं। उनका कहना है कि कई वर्ष पूर्व वे महान नाटककार जार्ज बर्नार्डशा से आयरलैंड की किर्लानी झील के तट पर एक होटल के एक कमरे में मिली थीं और दोनों में प्यार हो गया। बर्नार्डशा अपनी मृत्यु उपरान्त पहली रात में मेरे कमरे में आकर मुझसे मिलते है। मृत्यु उपरान्त पहली रात जब जब शां की आत्मा आई, तो दोनों ने एक वर्णमाला तैयार करली उसी के आधार पर दोनों में बातें होती हैं।

पेट्रिशिया जार्ज बर्नार्डशा को बर्नी' कहती हैं। उनके अनुसार बर्नी ने उन्हें एक अँगूठी विवाह की रस्म पर दी थी। यह 'विवाह' बर्नार्डशा की मृत्यु के बाद हुआ। यह अंगूठी पेट्रीशिया की हथेली पर हरदम चमचमाती रहती है। पेट्रीशिया के एक बच्चा भी हैं, जिसे वह शा का यानी अपने बर्नी का बताती है। हालांकि जार्ज बर्नार्ड शा की मृत्यु के १० वर्ष बाद यह बच्चा हुआ है।

पेट्रशिया के अनुसार वह इन दिनों जो कुछ भी साहित्य लिख रही हैं वह बर्नी की ही प्रेरणा से। उसके कमरे में जार्ज बर्नार्डशा की एक बड़ी तस्वीर है। मकान में इस युग में भी कभी बिजली नहीं जलती। बाहर कमरों वाले दो मञ्जिलें मकान में सिर्फ दो-तीन कमरों में पुराने लैम्प टिमटिमाते हैं। शेष भाग घने अन्धकार में लिपटे रहते हैं। एकान्त में वह अक्सर अदृश्य 'बर्नी' से बातें करने लगती है।

संगीत-शिक्षक आत्मीय पितर

लन्दन की एक महिला रोजमेरीब्राउन परलोक वेत्ताओं के लिए पिछली तीन दशाब्दियों से आकर्षण का केन्द्र रही है। वे संगीत में पारंगत हैं। बहुत शर्मीले स्वभाव की हैं भीड़-भाड़ से, सार्वजनिक आयोजनों से दूर रहती हैं और अपनी एकान्त साधना को शब्द ब्रह्म की साधना के रूप में करती है।

आश्चर्य यह है कि उनका कोई मनुष्य संगीत शिक्षक कभी नहीं रहा। उन्हें इस शिक्षा में अदृश्य मनुष्य सहायता देते रहे हैं और उन्हीं के सहारे वे दिन-दिन प्रगति करती चली है। उनकी संगीत साधना तब शुरू हुई जब वे सात साल की थीं। उन्होंने एक सफेद बालों वाला-काले कोट वाला आत्मा देखा जो आकाश से ही उतरा और उसी में गायब हो गया। उसने कहा मैं संगीतज्ञ हूँ, तुझे संगीतकार बनाऊँगा। कई वर्ष बाद उसने विख्यात पियानो वादक स्वर्गीय फ्रांजलिस्ट का चित्र देखा वह बिलकुल वही था जो उसने आकाश में से उतरते और उसे आश्वासन देते हुए देखा था।

बचपन में वह कुछ थोड़ा सा ही संगीत सीख सकीं। पीछे वह विवाह के फेर में पड़ गईं और जल्दी ही विधवा भी हो गई। उन दिनों उसकी गरीबी और परेशानी भी बहुत थीं, फिर वही मृतात्मा आई और कहा संगीत साधना का यही उपयुक्त अवसर है। उसने कवाड़ी के यहाँ से एक टूटा पियानो खरीदा और बिना किसी शिक्षक के संगीत साधना आरम्भ करदी। रोजमेरी ब्राउन का कहना है कि उसका अशरारी अध्यापक अन्य संगीत विज्ञानियों को साथ लेकर उसे सिखाने आता है। उनके मृतात्मा शिक्षकों में वाख, शोर्य, देवुसी, लिश्ट, शूवर्ट जैसे महान् संगीतकार सम्मिलित हैं जो उसे ध्वनियाँ और तर्ज ही नहीं सिखाते उसकी उगलियाँ पकड़ कर यह भी बताते हैं कि किस प्रकार बजाने से क्या स्वर निकलेगा। गायन की शिक्षा में भी वे अपने साथ गाने को कहते हैं। वे यह सब प्रत्यक्ष देखती हैं पर दूसरे पास बैठे हुए लोगों को ऐसा कुछ नहीं दीखता।

रोजमेरी ने एक जीवित शिक्षक को परीक्षक के रूप में रखा। यह सिर्फ देखता रहता है कि उसके प्रयोग ठीक चल रहे हैं या नहीं। ऐसा वह इसलिए करती हैं कि कहीं उसकी अन्तःचेतना झुठला तो नहीं रही है। उसके अभ्यास सही हैं या गलत। पर वह दर्शक मात्र अध्यापक उसके प्रयोगों को शत प्रतिशत सही पाता है। रोजमेरी लगभग ४००० प्रकार की ध्वनियाँ बजा लेती है। बिना शिक्षक के टूटे पियानो पर बिना निज की उत्कट इच्छा के यह क्रम इतना आगे कैसे बढ़ गया, इस प्रश्न

पर विचार करते हुए अविश्वासियों को भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि इस महिला के प्रयासों के पीछे निस्सन्देह कोई अमानवी शक्तियाँ सहायता करती है।

रोजमेरी का जीवन गरीबी और कठिनाइयों से भरा था। वह एक स्कूल में रसोई दारिन का काम करती थी, उसी में से उसने समय निकाला और अपने अदृश्य सहायकों की सहायता से संगीत साधना का क्रम चलाया। लोगों ने उसके कथन में यथार्थता पाई तो उन्होंने स्वर्गीय आत्माओं द्वारा निर्देशित कुछ संगीत निर्देशावलियाँ नोट कराने का अनुरोध किया। उसने यह स्वीकार कर लिया। फलतः ३००० शब्दों की एक संगीत निर्देश माला प्रकाशित हुई। नाम है एवं उसका 'टेन कमांडमेन्टर फारम्युजिशि यशन्स। इन दिर्नेशों के आधार पर जो ग्रामों फोन रिकार्ड (एल० पी०) बने हैं उन स्वर्गीय आत्माओं के संगीत से परिचित लोगों को इस सादृश्य से बहुत प्रभावित किया है।

अपने संगीत जीवन के संस्करणों को याद करते हुए-

श्रीमती ब्राउन लिखती हैं कि सात वर्ष की उम्र में फ्रांजलिस्ट नामधारी जिस संगीतज्ञ आत्मा से साक्षात्कार हुआ था, वही आत्मा १९६४ में २० वर्ष बाद पुनः प्रकट हुई, पर उस बार वह अकेली नहीं थीं। विश्व प्रसिद्ध संगीतकार आत्माओं को भी साथ में लायी थी, जिनमें चोपीन, स्क्यूबर्ट स्कूमेन, बीथोवेन, बेच, मोजार्ट, ग्रीज, बर्लीलियोज, स्ट्रेविनस्की, रैकमेनिआफ आदि प्रमुख थे। रोजमेरी लिखती हैं कि पहले तो वह उन्हें देख कर डर गई पर सम्भवतः मेरे विचार को पढ़ कर उन सभी ने आश्वासन दिया- "डरो मत। हमें तुम्हारे माध्यम से अपनी इच्छा पूरी करनी है, सो अपनी संगीत की योग्यता बढ़ाती जाओ, उसमें हम सभी तुम्हारी मदद करेंगे।"

श्रीमती ब्राउन तब दो बच्चों की माँ थीं और विधवा जीवन बिता रही थी। सन् १९६४ के एक अन्य अवसर का वर्णन करते हुए लिखती हैं कि एक दोपहर को वह अपने कमरे में बैठी कुछ पढ़ रही थीं कि एक घने बालों वाले वृद्ध व्यक्ति की आकृति कमरे में प्रकट हुई एवं कमरे में रखे पियानों की ओर संकेत करने लगी। जब वह पियानों बजाने बैठीं तो अतिविशिष्ट धुनें थोड़े से प्रयास से ही निकलने लगीं। बीच-बीच में उस आकृति का मार्गदर्शन मिलता रहा। बाद में उसने अपना परिचय 'लिज्ड' नाम से दिया और कहा कि इन्हें लिपिबद्ध भी करती जाना, ताकि भूलने की गूँजायश समाप्त हो जाय।

वह आगे कहती हैं कि इसके बाद प्रायः प्रतिदिन कोई न कोई संगीतकार आ जाते और संगीत का मर्म सिखा कर चले जाते। हर संगीतज्ञ अपने प्रिय वाद्य की ही शिक्षा देते। इसकी अनुभूति का वर्णन करती हुई ब्राउन कहती हैं कि जब चोपीन संगति शिक्षा के लिए आते, तो बड़े सज-धज कर आते। उनका स्वभाव विनोदी था और बीच-बीच में हँसी-मजाक भी किया करते। एक बार तो वे बाद्ययंत्र सहित अदृश्य हो गये, पर उसकी धुन स्पष्ट सुनाई पड़ती रही। कुछ क्षण बाद वे पुनः प्रकट हुए और वही तर्ज सिखाने लगे।

स्क्यूबर्ट के बारे में ब्राउन लिखती हैं कि वे मधुर प्रकृति के थे। सब कुछ बड़े भोलेपन से सिखाते । कभी कोई तर्ज समझ में नहीं आती, तो वे उसे बार-बार बजा कर सुनो। लिस्उट का स्वभाव इनसे भिन्न था। जब उन्हें ऐसा लगता कि उनका उचित सम्मान नहीं किया जा रहा है, तो वे तत्काल तिरोहित हो जाते और फिर उस दिन दुबारा लौट कर नहीं आते। रिचमेनिआफ पास बैठने की अपेक्षा खड़ा रहना अधिक पसंद करते। डेबूसे दाढ़ी रहित रूखे स्वभाव के थे। कम बोलना उनके स्वभाव का अंग था। बीथोबेन नम्र प्रकृति के परिश्रमशील व्यक्ति थे। घंटों वे साज का अभ्यास करवाते रहते।

ब्राउन लिखती हैं कि यह क्रम लगभग १५ वर्षों तक चलता रहा और जब वह संगीत के विभिन्न वाद्ययंत्रों में निष्णात् हो गईं, तो सभी ने यह कह कर बिदाई ली कि "अब तुम इस क्षेत्र में समर्थ हो गई हो। अब और किसी प्रकार के मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं हैं, फिर भी यदि कभी इसकी जरूरत महसूस हुई तो हम मार्गदर्शन के लिए प्रस्तुत होते रहेंगे, पर एक बात का ध्यान रखना, तुम इस क्षेत्र में कृपण कभी न बनना। जिज्ञासुओं को इसकी शिक्षा उसी प्रकार देती रहना, जैसी कि हम लोगों ने तुम्हें परिश्रमपूर्वक दी है।" इतना कह कर सभी आत्माएँ गायब हो गईं। तभी से रोजमेरी ब्राउन अनेकों को संगीत-शिक्षा देने में लगी हुई हैं।

सन् १९७१ में सर डोनाल्ड टोवे की एक संगीत कृति प्रकाशित होनी थी। इसका जिम्मा श्रीमती ब्राउन को सौंपा गया। महीनों की मेहनत से जब पाण्डुलिपि बन कर प्रेस में जाने के लिए तैयार हुई, तो एक दिन दिवंगत टोवे स्वयं प्रकट होकर ब्राउन को पाण्डुलिपि की एक गलती की ओर इशारा करने लगे। बाद में सुधार के पश्चात् ही पुस्तक छापी गई।

१७ अक्टूबर, १९६८ को बी. बी. सी. ने ब्राउन के संगीत पर आधारित एक वृत्तचित्र प्रसारित किया। विश्व के तत्कालीन संगीत विशारदों ने उसे देखने-सुनने के बाद एक ही निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि यह सब ब्राउन की ही रचनाए हैं, इसमें शक की गुँजायश नहीं है, तथापि यह निस्संदेह एक अविश्वसनीय घटना है। न्यूयॉर्क मैगजिन' के संपादक एलनस्पिटज लिखते हैं

कि श्रीमती ब्राउन की रचनाएँ सचमुच विश्व प्रसिद्ध संगीतकारों द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त कृतियाँ हैं, क्योंकि इनमें से एक में भी उनकी मौलिकता नजर नहीं आती। 'सटर्ड रिव्यू' पत्रिका में इरविंग कोटडिंग कहते हैं कि एक व्यक्ति द्वारा विश्व के अनेक संगीतज्ञों की शैली में गूढ़ रचनाएँ प्रस्तुत करना निश्चय ही पितर स्तर की आत्माओं द्वारा प्रशिक्षण का उत्कृष्ट नमूना है।

इसी से मिलती जुलती घटना सेण्टलुइस की एक महिला श्रीमती करेन से सम्बधित है। १९१३ में जब वह मात्र ६ वर्ष की थी, तभी उसे एक महान साहित्यकार की आत्मा का सहयोग प्राप्त हुआ था। इसी के कारण वह इस अल्पवय मं भी सात उपन्यास, अनेक कहानियाँ एवं निबन्ध संग्रह लिखने में सफल हुई। तीन लाख शब्दों वाला उपन्यास "दि सारी टाल" को पढ़कर उस समय के सभी साहित्यकार विस्मित हो गये थे कि इस अत्यल्प वय में इतना परिपक्व और शोधपूर्ण विचारों वाला ग्रन्थ कैसे सम्भव हो सका ?

रणभूमि में प्रत्यक्ष सहायता-मार्गदर्शन

एक तो युद्ध स्थल उस पर घनघोर अँधेरी रात और भयानक शीत ऐसा लगता था वीभत्सता साकार होकर व्याप्त हो गई हो। एक तम्बू के अन्दर कुछ सैनिक कोयले की अंगीठी जलाये बैठे आँच ले रहे हैं। उनका वायरलेस सेट पास ही रखा है। युद्ध अभी खामोश है इसलिए सब अपने-अपने घरों की याद कर रहे हैं, ऐसी ही चर्चा में वे सब संलग्न हैं, तभी वायरलेस पर कमाण्डर का हुक्म आता है, अपनी उत्तर वाली चौकी की सहायता के लिए तुरन्त प्रस्थान करो।

घटना जम्बू कश्मीर की है, सन् १९६१ जब भारत का पाकिस्तान से युद्ध हुआ। यह सभी जवान जिस स्थान पर बैठे हैं चौकी वहाँ से १५ मील दूर है। सवेरा होने से पहले ही वहाँ पहुँचता है सवेरा हो जाने पर दुश्मन देख सकता था मार सकता था अतएव कैसी भी कठिनाइयों में सवेरा होने तक चौकी पहुँचना आवश्यक था। अतएव वहाँ से उसी प्रकार तत्परता पूर्वक आगे बढ़े जिस तरह मृत्यु को कभी न भूलने वाले योगी मनुष्य जीवन को अस्त-व्यस्त तरीके से नहीं व्यवस्थित अनुशासन पूर्वक और तत्परता से जीते हैं।

१३ नवम्बर की बात है। ठण्डक के दिन थे। १० सिपाहियों की छोटी-सी टुकड़ी अपने अस्त्र सँभाले नशे के सहारे आगे बढ़ रही थी। वायरलेस से कमाण्ड पोस्ट का सम्पर्क बना हुआ। सम्वादों का आदान-प्रदान भी ठीक-ठीक चल रहा था कि एकाएक ऐसा स्थान आ पहुँचा जहाँ से आगे बढ़ना नितान्त कठिन हो गया। सारा स्थान बर्फ से ढक गया था। युद्ध में सैनिक नक्शों में नदी वाले टीले, वृक्ष आदि संकेतों के सहारे बढ़ते हैं पर बर्फ ने पृथ्वी के सभी निशान मिटा डाले थे। नदी-झरने सब जम चुके थे। पेड़ पौधे तक बर्फ से ढके थे ऐसी स्थिति में आगे बढ़ना मुश्किल हो गया। सभी सैनिक निस्तब्ध खड़े रह गये सोच नहीं पा रहे थे क्या किया जाये ?

कहते हैं युद्ध के समय अदृश्य आत्माओं की भावनाओं की सम्वेदनशीलता बढ़ जाती है। द्वितीय महायुद्ध के दौरान अतीन्द्रिय अनुभूतियों, मृतात्माओं के विलक्षण क्रिया-व्यापार सम्बन्धी सैकड़ों घटनाओं के प्रामाणिक विवरण सैनिक रिकार्डस में पाये जाते हैं। यह घटना भी उसी तरह की है और प्रकाश डालती है कि मृत्यु के बाद भी आत्मा का चेतन शरीर का नाश नहीं होता। यदि आत्मा तुरन्त मृत्योपरान्त नींद में नहीं चली जाती और उसकी कोई प्रवल कामना भी नहीं होती तो वह सासांरिक कर्त्तव्यों में जीवित व्यक्तियों को जीवित व्यक्तियों की भांति ही सहायता पहुँचा सकती है। यह घटना उस तथ्य की पुष्टि में ही दी जा रही है। इस टुकड़ी में जो दस सैनिक थे उन्हीं में से एक श्री गिरजानन्द झा- मस्ताना के द्वारा प्रस्तुत यह घटना १९६२ के एक धर्म युग अंक में भी छपी थी।

अभी सैनिक इस चिन्ता में ही थे कि अब किस दिशा में कैसे बढ़ा जाये कि किसी की पद-ध्वनि सुनाई दी। अब तक आकाश में चन्द्रमा निकल आया। आशंका से भरे सैनिकों ने देखा सामने एक आफिसर खड़ा है। कन्धे पर दो स्टार देखने से लगता था वह लेफ्टिनेंट हैं। देखते ही सैनिकों ने उन्हें सैल्यूट किया। सैल्यूट का उत्तर सैल्यूट से ही देकर लेफ्टिनेंट साहब बोले- देखो आगे का रास्ता भयानक है तुम लोगों को कुछ मालूम नहीं है। चौकी दूर है सवेरा होने में कुल चार घन्टे बाकी हैं इसलिए बिना देर किये तुम लोग मेरे पीछे-पीछे चले आओ। यह कहकर वे पीछे मुड़े-सैनिकों ने देखा लेफ्टिनेंट साहब की कमीज में पीठ पर गोल निशान है लगता था उतना अंश जल गया था।

बिना किसी नक्शे के सहारे लेफ्टिनेंट साहब आगे-आगे ऐसे बढ़ते जाते थे मानो वह सारा क्षेत्र उनका अच्छी तरह घूमा हुआ हो। सिपाही परेशान भी थे और चिन्तित भी कि यह अजनवी आफिसर इस इलाके के इतने माहिर क्यों हैं कभी-कभी आशंका भी हो जाती थी कि कहीं कोई दुर्घटना तो होने वाली नहीं है। चुपचाप चलने में खामोशी और उदासी सी अनुभव हो रही थी। उस उदासी को दूर करते हुए कमाण्डर ने बताया मेरी पींठ पर यह निशान जो तुम लोग देख रहे हो वह कल की गोलवारी का है- हम लोग हमले की तैयारी में थे तभी पाकिस्तानी सेना ने गोलाबारी शुरू कर दी। सब लोग जमीन पर लेट गये, तभी एक

बम आकर उधर फटा। उसी का एक टुकड़ा मेरी पीठ पर गिरा कमीज जल गई....... । इससे आगे कुछ और कहने से पूर्व उन्होंने बातचीत का रुख मोड़कर कहा- तुम लोग शायद आत्मा की अमरता पर विश्वास न करते हो पर मैं करता हूँ मरने के बाद आत्माएँ अपने जीवन विकास की तैयारी करती हैं, जिसकी जो इच्छाएँ होती हैं उसी तरह के जीवन की तैयारी में वे जुट जाती हैं कोई इच्छा न होने पर भगवान् अपनी ओर से प्रेरित करके उसे आगे के क्रम में नियोजित करते हैं।

बात चीत करते-करते रास्ता कट गया और रात भी। जिस चौकी पर पहुँचना था, वह कुछ ही फर्लागं पर सामने दिखाई दे रही थी, आफिसर रुका, उसके साथ ही सभी सिपाही भी रुक गये उसने पीछे मुड़कर कहा- देखो अब तुम लोग अपने स्थान पर आगये अब तुम लोग जाओं हम यहाँ से आगे नहीं जा सकते। सैनिकों ने सैल्यूट किया और आगे की ओर चल पड़े। आफिसर ने सलामी लीं पर आगे नहीं बढ़ा। सैनिकों ने दस गज आगे जाकर फिर पीछे की ओर उत्सुकता पूर्वक देखा कि साहब किधर जा रहे हैं किन्तु वे आश्चर्य चकित थे कि वहाँ न तो कोई साहब था और न ही कोई व्यक्ति। दूर-दूर तक दृष्टि दौड़ाई पर कहीं कोई दिखाई न दिया।

सिपाही चौकी पर पहुँचे जहाँ कमाण्डर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। रात में वायरलेस सम्पर्क टूट गया था सैनिक कमाण्डर ने आते ही पूछा- तुम लोग इस वीहड़ मार्ग में इतनी जल्दी कैसे आ गये। तो उन्होंने बताया कि एक लेफ्टिनेंट इन्हें यहाँ तक लेकर आये, वे एक फर्लागं पहले कहीं अदृश्य हो गये।

लेफ्टिनेंट ? - उन्होंने आश्चर्य पूर्वक कहा- यहाँ तो कोई भी लेफ्टिनेंट नहीं ? तुमको जिस व्यक्ति ने रास्ता दिखाया उसका हुलिया क्या था ? सिपाहियों ने एक ही हुलिया बताया, कमाण्डर आश्चर्य चकित रह गया उनका कथन सुनकर, क्योंकि जिस लेफ्टिनेंट के बारे में उन्होंने बताया, उनकी मृत्यु उसी स्थान पर एक ही दिन पहले गोला लगने से हो गई थी।

गोला लगने के बाद लेफ्टिनेंट की मृत्यु हो गई। युद्ध के समय कोई इच्छा या वासना न होना स्वाभाविक है। उस समय चित्तवृत्तियाँ एकाग्र रहती है। ध्यानस्थ एकाग्रता के साथ हुई मृत्यु के बाद लेफ्टिनेंट जीवात्मा को मृत्यु के बाद ही नींद नहीं आई उस समय भी उन्हें अपने कर्तव्य का भाव बना रहा। उन्होंने देखा कि इन सैनिकों को सहायता की आवश्यकता है तभी उन्होंने अपने ही मृत शरीर में फिर से अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति दुवारा प्राणों का प्रवेश कर उससे उतनी देर काम ले लिया। टूटे-फटे शरीर को यद्यपि देर तक रहना कठिन था तथापि प्राण शक्ति दुवारा उतनी देर तक पूर्व शरीर को काम में लेकर उन्होंने देश भक्ति और कर्तव्य भावना का आदर्श रखा साथ ही सूक्ष्म शरीर की सत्ता और उसकी महान् महत्ता को भी प्रमाणित कर दिया।

पितर-सत्ताए ऐसी ही परायणता-परमार्थ, कर्त्तव्य भावना और निस्पृहता के साथ अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा प्रत्यक्ष मार्गदर्शन एवं सहायता किया करती हैं।

सच्ची श्रद्धा और भक्ति भावना के साथ पितरों का स्मरण किया जाय तो वे अशरीरी किन्तु अति समर्थ सत्ताएँ निश्चय ही सत्प्रयोजनों में मदद के लिए आगे आ जाती हैं। इस सन्दर्भ में द्वितीय महायुद्ध की एक घटना विलक्षण प्रमाण है। इस युद्ध श्रृंखला में मोन्स लड़ाई का यह प्रामाणिक और सुरक्षित युद्ध दस्तावेज विद्यमान है-

इस युद्ध में ब्रिटिश सेना बुरी तरह मारी-काटी गई। कुल ५०० सैनिक शेष रहे थे। जर्मन सेनाएँ उन्हें भी काट डालने की तैयारी में थीं। उनकी संख्या उस समय दस हजार थी। ब्रिटिश सैनिकों में से एक सिपाही ने कभी सेंट जार्ज की तस्वीर एक होटल में देखी थी। यह तस्वीर एक प्लेट में कढ़ी थी और उसके नीचे लिखा था-"सेंट जार्ज इंग्लैण्ड की सहायता करने को उपस्थित हों" वह कभी इंग्लैण्ड के प्रख्यात सेनापति थे और अपने कई हजार सैनिकों के साथ युद्ध में मारे गये थे। उनकी याद आते ही सैनिकों ने अपनी सम्पूर्ण भावना और आत्म-शक्ति से सेंट जार्ज का स्मरण किया और दूसरे क्षण स्थिति कुछ और ही थी। बिजली सी कौंधी और ५०० सैनिकों के पीछे कई हजार श्वेत वस्त्रधारी सैनिकों की सी आभा दिखाई देने लगी। दूसरे ही क्षण दस हजार सेना मैदान मे मरी पड़ी थी रहस्य तो यह था कि किसी भी सैनिक के शरीर में किसी भी अस्त्र का कोई चोअ या घाव तक नहीं था। इस घटना ने इंग्लैण्ड में एक बार तहलका मचा दिया कि सचमुच मृत्यु के उपरान्त आत्मा का अस्तित्व नष्ट नहीं होता वरन् रूपान्तर होता है और यह आत्माएँ अदृश्य होते हुए भी स्थूल सहायतायँ पहुँचा सकती हैं।

वह गरीब देखते-देखते लखपति बन गया

अमेरिका के एक दरिद्र व्यक्ति आर्थर एडवर्ड स्टिलबैल ने अपनी जिन्दगी ४० डालर प्रति मास जैसी कुलीगीरी की छोटी सी नौकरी से आरम्भ की और वह प्रेतात्माओं की सहायता से उच्चश्रेणी के यशस्वी धनवान विद्वानों की श्रेणी में सहज ही जा पहुँचा।

पन्द्रह वर्ष की आयु से ही उसके साथ छै प्रेतों की एक मण्डली जुड़ गई और जीवन भर उसका साथ देती रही। इन छै प्रेत में तीन इन्जीनियर एक लेखक एक कवि और अर्थ विशेषज्ञ

था। इनके साथ उसकी मैत्री बिना किसी प्रयोग परिश्रम के अनायास ही हो गई और वे उसे निरन्तर उपयोगी मार्गदर्शन कराते रहे।

प्रेतों ने उसकी लगी लगाई नौकर छुड़वादी और कहा चलो तुम्हें बड़ा आदमी बनावेंगे। प्रेतों ने उसे अपने रेल मार्ग बनाने-अपनी नहर खोदने, अपना बन्दरगाह बनाने के लिए कहा। बेचारा आर्थर स्तब्ध था कि नितान्त दरिद्रता की स्थिति में किस प्रकार करोड़ों, अरबों रुपयों से पूरी हो सकने वाली योजनाएँ कार्यान्वित कर सकने में सफल होगा, पर जब प्रेतों ने उसे सब कुछ ठीक करा देने का आश्वासन दिया तो उसने कठपुतली की तरह सारे काम करते रहने की सहमति देदी और असम्भव दीखने वाले साधन जुटने लगे।

आर्थर पूरी तरह प्रेतों पर निर्भर था। उसके पास न तो ज्ञान था न अनुभव और न साधन। फिर भी उसके शेखचिल्ली जैसे सपने एक के बाद एक सफलता की दिशा में बढ़ते चले गये और धीरे-धीरे अपनी सभी योजनाओं में जादुई ढंग से सफल होता चला गया। २६ सितम्बर, १९२८ को वह मरा तो अपनी अरबों की धन राशि छोड़कर मरा। उसकी अपनी पाँच लम्बी रेलवे लाइनें थीं। जहाजों के आने-जाने की क्षमता से सम्पन्न विशालकाय नहर पोर्ट आर्थर का वह स्वामी था। उसी के नाम एबना पोर्ट आर्थर बन्दरगाह भी उसका अपना था और भी उसके कितने ही अरबों रुपयों की पूँजी के अर्थ संस्थान थे।

उसने साहित्य के तथा कविता के प्रति प्रसिद्ध तीस ग्रन्थ भी लिखे। जो साहित्य क्षेत्र में भली प्रकार सम्मानित हुए।

आर्थर से उसकी सफलताओं का जब भी रहस्य पूछा गया तो उसने अपने संरक्षक प्रेतों की चर्चा की और बताया प्रत्येक महत्त्वपूर्ण योजना, अर्थ साधनों की अर्थ व्यवस्था, कठिनाइयों की पूर्व सूचना, गतिविधियों में मोड़ तोड़ को सारी जानकारी और सहायता इन दिव्य सहायकों से ही मिलती रही है। उनकी अपनी योग्यता नगण्य है। साहित्य सृजन: के सम्बन्ध में भी उसका यही कथन था कि यह कृतियाँ वस्तुत: उसके लेखक और कवि प्रेत सहायकों की ही हैं। उसने तो कलम कागज भर का उपयोग करके यह प्राप्त किया है।

उदार पितर सत्ताएँ अपने सहयोग से मनुष्य की समृद्धि और प्रगति को ऐसे ही सम्भव बनाती हैं।

कुछ पितर सहज उदारता और सात्विक स्वभाव वश सत्पात्रों को अनायास ही सहयोग-सत्प्रेणा उँड़ेल देते हैं। कुछ को उनके अनुकूल दिव्य सहयोग मार्ग दर्शन के दायित्व ही, सृष्टि सञ्चालक विराट सत्ता द्वारा, उसी प्रकार सौंप दिये जाते हैं, जिस प्रकार मनुष्य को इस सृष्टि-व्यवस्था को अधिकाधिक सुन्दर समृद्ध बनाने के दायित्व सौंप रखे गए हैं और अधिकांश मनुष्य भले ही अनुत्तरदायित्व की पराकाष्ठा का परिचय देते हों किन्तु प्राणवान, परिष्कृत लोग तो अपने दायित्व का निर्वाह करते ही हैं।

कुछ पितर ऐसे भी होते हैं, जो आत्मविभक्ति का आकांक्षा पूरा करने के लिए अनुकूल माध्यम स्वयं चुनते हैं। लेखन संगीत कला आदि के क्षेत्रों में अदृश्य सहयोग कई बार ऐसी पितर सत्ताओं द्वारा भी प्रदान किया जाता है।

किसी पूर्वकृत उपकार के बदले प्रत्युपकार करने की पवित्र भावना के कारण भी कुछ पितरों द्वारा सम्बन्धित लोगों को आकस्मिक सहायता दी जाती है।

श्रीमती बीजरूस से सम्बन्धित घटना है। यह ७० वर्षीय वृद्धा कलात्मक सृजन की नवीन प्रेरणा पाने की अभिलाषा से सन् १९३६ में पेरिस पहुँची। वहाँ कई महीने रहीं, घूमी, पर कोई भी नवीन प्रेरणा वहाँ के वातावरण और व्यक्तियों कलाकारों कला कृतियों के सम्पर्क से उसे नहीं मिली। वह कोई किशोरी तो थी नहीं। दुनियाँ देख चुकी थी। अपने विषय का गहन अध्ययन करती रही थी। इसलिए उसने पाया कि इन दिनों पेरिस में कलक्षेत्र में जो कुछ भी है वह पुरातन प्रेरणाओं से रहित है। अभिनव-प्रेरणा के योग्य वहाँ कुछ न था।

महीनों की व्यर्थता ने उन्हें मात्र व्यग्रता दी। उन्हें वहाँ आना निरर्थक ही प्रतीत हुआ। रात में ठीक से नींद भी न आती।

ऐसी ही उदासी और मानसिक थकान से भरी एक रात में वे करवटें बदलते देर तक जगती रहीं। आखिर उन्हें नींद आ गई। गहरी नींद के तीन घन्टे बीते, तभी जैसे किसी ने उन्हें जगा दिया। वे स्वयं को तरोताजा अनुभव कर रही थीं जैसे नई ताजगी और नया प्रकाश उनके भीतर भर गया हो। तभी उनकी अन्त: प्रेरणा उन्हें स्टूडियो की ओर चलने को कहने लगीं। उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। परन्तु मानो वे विवश थीं।

वे स्टूडियो में पहुँची और अँधेरे में ही कागज पर ब्रुश चलाने की अविज्ञात प्रेरणा ने उन्हें ऐसा ही करने को बाध्य कर दिया। वे यह देखकर चकित भी थीं और पुलकित भी कि उनके हाथ स्वत: बड़ी तेजी से चल रहे हैं। वे स्पष्ट अनुभव कर रहीं थीं कि वे इस समय किसी अविज्ञात शक्ति का माध्यम मात्र है और जो हो रहा है, उस पर उनका वश नहीं है। देर तक यह होता रहा। तब उनका हाथ स्वत: रुक गया और उसी अन्त:प्रेरणा से वे फिर अपने बिस्तर पर जा पहुँची, लेट गईं और सो गईं। सब कुछ मानो विवशता में घटित हो रहा था।

सुबह वे जगीं, तब उन्हें रात्रि का घटना क्रम याद आया। उत्सुकता उमड़ पड़ी। वे स्टूडियो की ओर बढ़ गईं । वहाँ जाकर निपट अन्धेरे में अनायास बन गए उस चित्र को देखा तो विस्मय विमुग्ध हो उठी। किसी अज्ञात सुन्दरी का अनुपम चित्रांकन था वह। उन्हें लगाकि कभी उन्होंने यह चित्र कहीं किसी प्रख्यात कलाकार द्वारा बना देखा है। पर स्मृति पूरी तरह साथ नहीं दे रही थी।

चित्र को कला-बाजार में लाने से पहले वे अपनी इस जिज्ञासुओं को शान्त कर लेना चाहती थीं कि यह असामान्य और उत्कृष्ट कलाकृति इस विचित्र ढंग से बनी कैसे ?

उन्होंने ऐसी महिला से सम्पर्क किया जो प्रेत विद्या विशारदा के रूप में प्रसिद्ध थी। उससे यह निवेदन किया कि इस रहस्य का पता लगाए।

उस महिला ने अपनी सम्पर्क विद्या द्वारा पता लगाकर जो कुछ बताया वह यों है- "सम्पर्क के दौरान गोया की प्रेतात्मा ने आकर बताया कि मैं अपने अंतिम दिनों में सन् १८२८ ई० में स्पेन के अपने विरोधियों से दूर रहने के लिए दक्षिणी फ्रांस में उक्त महिला के पति के पूर्वजों के घर पर रहा था। उन दिनों मैं असहाय था। पर आज तक मेरे उपयुक्त कोई अवसर न मिला। अब उन कलाकार-महिला को मानसिक कष्ट में देखकर यह अवसर अपने अनुकूल पाया तथा ऐसी प्रेरणा दी तथा इस कृति का सृजन सम्भव बनाया, जो मेरी कृति 'ग्वालिन' से साम्य रखती हैं।

सचमुच उस कृति का साम्य 'ग्वालिन' से था, जो प्रख्यात चित्रकार गोया की विशिष्ट कला-कृतियों में से एक है। यह तो श्रीमती बीज-रूस को याद आ गया, पर गोया के जीवन के बारे में उन्हें और कुछ ज्ञात नहीं था। उनकी उत्सुकता बढ़ चुकी थी। अतः उन्होंने गोयाकी जीवनी एक पुस्तकालय से लेकर पढ़ा। तब स्पष्ट हुआ कि गोया ने अपने जीवन के अन्तिम दिन श्री रोजेरिग्री वीज के घर बताए थे, जो श्रीमती बीज-रूस के श्वसुर थे। माध्यम महिला के बताए विवरणों की पूर्ण पुष्टि हो गई।

इस मामले की जाँच अमेरिकी मन-शास्त्री डाक्टर स्टीवेन्सन कर चुके हैं व प्रामाणिक ठहराया है। इससे स्पष्ट होता है कि गोया की आत्मा ने, जिसे स्वर्गस्थ पितर ही कहा जायेगा, इस प्रकार अपनी कृतिज्ञता व्यक्त की व प्रत्युकार किया। यहीं यह भी स्पष्ट होता है कि पितरों की अपनी भी सीमाएँ होती हैं। उनका जो व्यक्तित्व विकसित हो चुका होता है, उसी के तारतम्य में ही वे अशरीरी रूप में भी कार्य कर सकते हैं। गोया की आत्मा ने कलाकृति के सृजन के रूप में सहयोग देना ही सुगम पाया।

इस प्रकार पितर अपनी क्षमता-योग्यता, रुचि-स्वभाव, संस्कार तथा आकांक्षा के अनुसार जीवन के विविध क्षेत्रों में सत्पात्रों को सहायता-सहयोग करते रहते हैं। इसके लिए आन्तरिक सात्विकता, सौम्यता, मृदुता तथा पितरों के प्रति श्रद्धा-सद्भावना से सम्पन्न होना अधिक अनुकूल सिद्ध होता है।

अविज्ञात की अनुकम्पा के प्रति अकृतज्ञ न हों

उपनिषद के ऋषि का अनुभव है कि आत्मा जिसे वरण करता है उसके सामने अपने रहस्यों को खोलकर रख देता है। इस उक्ति का निष्कर्ष यह है कि रहस्यों का उद्घाटन चेतना की गहराइयों से होता है। मानवी संसार की सामायिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जब जितने अनुदान इस धरती पर उतारता रहता है। यह अवतरण जिनके माध्यमों से होता है वे सहज हो श्रेयाधिकारी बन जाते हैं।

वैज्ञानिक आविष्कारों का श्रेय यों उन्हें मिलता है जिनके द्वारा वे प्रकाश में आने योग्य बन सके। किन्तु यहाँ यह विचारणीय है कि क्या उसी एक व्यक्ति ने उप प्रक्रिया को सम्पन्न कर लिया ? आविष्कर्ता जिस रूप में अपने प्रयोगों को प्रस्तुत कर सके हैं उसे प्रारम्भिक ही कहा जा सकता है। सर्वप्रथम प्रदर्शन के लिए जो आविष्कार प्रस्तुत किये गये वे कौतूहलवर्धक तो अवश्य थे, आशा और उत्साह उत्पन्न करने वाले भी- पर ऐसे नहीं थे जो लोकप्रिय हो सकें और सरलतापूर्वक सर्वसाधारण की आवश्यकता पूरी कर सकें। रेल मोटर, टेलीफोन, हवाई जहाज आदि के जो नमूने पंजीकृत कराये गये थे, उनकी स्थिति ऐसी नहीं थी कि उन्हें सार्वजनिक प्रयोग के लिए प्रस्तुत किया जा सके यह स्थिति तो धीरे-धीरे बनी है और उस विकास में न्यूनाधिक उतना ही मनोयोग और श्रम पीछे वालों को भी लगाना पड़ा है जितना कि आविष्कर्ताओं को लगाना पड़ा था।

संसार के महान् आन्दोलन आरम्भिक रूप में बहुत छोटे थे उनके आरम्भिक स्वरूप को देखते हुए कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि कभी वे इतने सुविस्तृत बनेंगे और संसार की इतनी बड़ी सेवा कर सकेंगे। किन्तु अविज्ञात ने जहाँ उन आन्दोलनों को जन्म देने वाली प्रेरणा की निर्झरणी का उद्गम उभारा किसी परिष्कृत व्यक्ति के माध्यम से उसे विकसित किया, साथ ही इतनी व्यवस्था और भी बनाई कि उस उत्पादन को अग्रगामी बनाने के लिए सहयोगियों की शृंखला बनती-बढ़ती चली

जाय। ईसा, बुद्ध, गाँधी आदि के महान आन्दोलनों का आरम्भ और अन्त-बीजारोपण और विस्तार देखते हुए लगता है यह श्रेय साधना किसी अविज्ञात के संकेतों पर चले और फले फूले हैं। इन अविज्ञात शक्तियों में पितर-सत्ताओं का भी सवावेश है।

जिन आविष्कर्ताओं को श्रेय मिला उन्हें सौभाग्यशाली कहा जा सकता है। गहरे मनोयोग के सत्परिणाम क्या हो सकते हैं इसका उदाहरण देने के लिए भी उनके नामों का उत्साहवर्धक ढंग से उल्लेख किया जा सकता है। गहराई में उतरने की प्रेरणा भी उस चर्चा से कितनों को ही मिलती है। पर यह भुला न दिया जाना चाहिए कि उस आविष्कारों के आरम्भों की रहस्य प्रकृति ही अपना अन्तराल खोलकर प्रकट करती है। हाँ इतना अवश्य है कि इस प्रकार के रहस्योद्‌घाटन हर किसी के सामने नहीं होते। प्रकृति की भी पात्रता परखनी पड़ती है। अनुदान और अनुग्रह भी मुफ्त में नहीं लूट जाते, उन्हें पाने के लिए भी उपयुक्त मनोभूमि तो उसे श्रेयाधिकारी को ही विनिर्मित करनी पड़ती है।

आविष्कारों की चर्चा इतिहास पुस्तकों में जिस प्रकार होती है वह बहुत पीछे की स्थिति है। आरम्भ कहाँ से होता है यह देखना हो तो पता चलेगा कि उन्हें आवश्यक प्रकाश और संकेत अनायास ही मिला था। इनमें उनकी पूर्ण तैयारी नहीं के बराबर थी। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो यह भी कह सकते हैं कि उन पर इलहाम जैसा उतरा और कुछ बड़ा कर गुजरने के लिए आवश्यक मार्ग दर्शन देकर चला गया। संकेतों को समझने और निर्दिष्ट पथ पर मनोयोगपूर्वक चल पड़ने के लिए तो उन आविष्कर्ताओं को प्रतिभा को सराहना ही पड़ेगा।

बात लगभग दो हजार वर्ष पुरानी है। एशिया माइनर के कुछ गड़रिये पहाड़ी पर भेड़ें चरा रहे थे। उनकी लाठियों के पेदे में लोहे की कीलें जड़ी थीं। उधर से गुजरने पर गड़रियों ने देखा कि लाठी पत्थरों से चिपकती है और जोर लगाने पर ही छुटती हैं। पहले तो इसे भूत प्रेत समझा गया फिर पीछे खोजबीन करमे से चुम्बक का विज्ञान यहीं से आरम्भ हुआ। आज तो चुम्बक एक बहुत शक्ति की भमिका निभा रहा है।

यह गड़रिये चुम्बक का आविष्कार करने का उद्‌देश्य लेकर नहीं निकले थे और न उनमें इस प्रकार के तथ्यों को ढूँढ़ निकालने और विश्वव्यापी उपयोग के लायक किसी महत्त्वपूर्ण शक्ति को प्रस्तुत कर सकने की क्षमता ही थी।

न्यूटन ने देखा कि पेड़ से टूट कर सेव का फल जमीन पर गिरा। यह दृश्य देखते सभी रहते हैं, पर न्यूटन ने उस क्रिया पर विशेष ध्यान दिया और माथा पची की कि फल नीचे ही क्यों गिरा, ऊपर क्यों नहीं गया ? सोचते-सोचते उसने पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का पता लगाया और पीछे सिद्ध किया कि ग्रह नक्षत्रों को यह गुरुत्वाकर्षण ही परस्पर बाँधे हुए हैं। इस सिद्धान्त के उपलब्ध होने पर ग्रह विज्ञान की अनेकों प्रक्रियाएँ समझ सकना सरल हो गया।

पेड़ से फल न्यूटन से पहले किसी के सामने न गिरा हो ऐसी बात नहीं है। असंख्यों ने यह क्रम इन्हीं आँखों से देखा होगा पर किसी अविज्ञात ने अकारण ही उसके कान में गुरुत्वाकर्षण की सम्भावना कह दी और उसने संकेत की पूँछ मजबूती से पकड़ कर श्रेय प्राप्त कराने वाली नदी पार करली।

अबसे ३०० वर्ष पुरानी बात है। हालैंड का चश्मे बेचने वाला ऐसे ही दो लैसों को एक के ऊपर एक रखकर उलटपुलट का कौतुक कर रहा था । दोनों शीशों को संयुक्त करके आँख के आगे रखा तो विचित्र बात सी दिखाई पड़ी। उसको गिरजा बहुत निकट लगा और उस पर की गई नक्कासी बिल्कुल स्पष्ट दीखने लगी। दूरवीन का सिद्धान्त इसी घटना से हाथ लगा और अब अनेक प्रकार के छोटे बड़े दुरवीन विज्ञान की शोधों में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

चश्मे बेचना एक बात है और दुरवीन बेचना दूसरी। दोनों के बीच सिद्धान्त और व्यवहार का कोई सीधा तालमेल नहीं है। फिर भी संकेत देने के लिए इस संगति भर से काम चल गया। प्रकृति ने एक रहस्य उसके ऊपर उड़ेल ही दिया।

अभी पूरे सौ वर्ष भी नहीं हुए सन् १८९५ की बात है। प्रो० राब्टजन अपनी प्रयोगशाला में एक हवा रहित काँच की नली में होकर विद्युत-प्रवाह छोड़ने सम्बन्धी प्रयोग कर रहे थे। संयोगवश उसी कमरे में अन्यत्र फोटोग्राफी प्लेटें बन्द बक्से में रखी थीं। प्लेटें जब काम में लायी गईं तो उन पर प्रयोग समय के दृश्य अंकित पाये गये। बन्द बक्से में घटना चित्र कैसे पहुँचे इस खोज से " ऐक्स-रे" का आविष्कार हो गया। सभी जानते हैं कि आज रोगों के निदान और सर्जरी में एक्स किरणों की सहायता से उतारे जाने वाले चित्रों का कितना अधिक योगदान है।

एक्सरे का आविष्कार का श्रेय जिस व्यक्ति को मिला उसे सोभाग्यशाली कहने में हर्ज नहीं, पर प्रयोगशाला में ऐसा सुयोग जान बूझ कर नहीं बनाया था। उस संयोग के पीछे कोई अविज्ञात ही काम कर रहा होगा। अन्यथा ऐसे-ऐसे संयोग आये दिन न जाने कितने सर्वसाधारण के सामने आते रहते हैं। उसकी ओर ध्यान जाने का कोई कारण भी नहीं होता।

बात आविष्कारों की हो या आन्दोलनों की, श्रेय साधनों का शुभारम्भ अविज्ञात की प्रेरणा से होता है। इस अविज्ञात को

ब्रह्म कहा जाय या प्रकृति इस पर बहस करने की आवश्यकता नहीं श्रेय लक्ष्य है। प्रगति अभीष्ट है। वह आत्मा के, परमात्मा के उद्‌गम से आविर्भूत होता है। एक सहयोगी शृंखला का परिपोषण पाकर विकसित होता है। यह सहयोग पितरों स्वर्गीय श्रेष्ठ आत्माओं द्वारा भी प्राप्त होता है देवसत्ताओं द्वारा भी तथा सर्वोच्च सत्ता की अव्यक्त प्रेरणा द्वारा भी।

गड़रियों ने जब अग्नि का आविष्कार किया, उस समय पहले तो आग की चिनगारियों को उन्होंने भूतों का ही उपद्रव समझा, पीछे पितरों की कृपा मान उत्सव मनाया, आनन्दित हुए और पितरों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

श्रद्धा-भाव रखने तथा श्रेष्ठ जीवन क्रम अपनाए रहने पर उच्च स्तरीय पितर-सत्ताएँ सचमुच ऐसे ही महत्त्वपूर्ण सहयोग-अनुदान, प्रकाश-प्रेरणाएँ प्रदान करती है, जो व्यक्ति एवं समाज के जीवन को सुख-सुविधाओं से भर देती है, उन पितरों की अपेक्षा यही रहती है कि इन उदार अनुदानों का दुरूपयोग न हों। परमेश्वर की भी तो मनुष्यों से यही अपेक्षा रहती है। पर कृतघ्न मनुष्य इतनी सी अपेक्षा भी पूरी नहीं कर पाता।

लूट-खसोट, अनीति-अन्याय की अवरोधक पितर-सत्ताएँ

भूमिगत विशेषता एवं सम्पदा का निर्माण इस तालमेल के साथ हुआ है कि उस क्षेत्र के निवासी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते रह सकें। अन्न, फल और औषधियों के बारे में प्रसिद्ध है कि जहाँ के जन्में लोगों को उसी क्षेत्र का उत्पादन अनुकूल पड़ता है द्रुतगामी साधनों से पदार्थों के सुदूर स्थानों तक भेजा जा सकता है, पर प्राणियों की, पदार्थों की संरचना में जो तत्व घुले रहते हैं उनका तालमेल न बैठ पाने से लाभदायक प्रतीत होते हुए भी हानिकारक बैठते हैं। क्षेत्रीयता की बात ऐसे ही कई दृष्टिकोणों के आधार पर बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य के रूप में सामने आती हैं।

खनिज पदार्थों एवं अन्य प्रकृति सम्पदाओं के सम्बन्ध में भी यही बात है। वे उस क्षेत्र के निवासियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर वितरित की गई है। उत्तरी ध्रुव के निवासी मनुष्यों और प्राणियों की शारीरिक संरचना तथा उपलब्ध पदार्थ सामग्री को देखते हुए सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रकृति की वितरण व्यवस्था कितनी दूरदर्शितापूर्ण है। खनिज तथा अन्यान्य प्रकृति सम्पदाओं के सम्बन्ध में भी यही बात है।

क्षेत्रीय उपलब्धियों से लाभान्वित होने का प्रथम अधिकार यहाँ के भूमि पुत्रों का है। इसके बाद अन्यत्र के लोगों को उससे लाभान्वित होने का अवसर मिलना उचित है इसी आधार पर देशों के क्षेत्रीय अधिकारों को मान्यता मिलती रही है। उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद की निन्दा का कारण यही है कि स्थानीय लोगों के लिए दी गई प्रकृति उपलब्धियों का अपहरण अन्यत्र के लोग करते हैं तो उससे अव्यवस्था एवं अनीति का फैलना स्वाभाविक है। ऐसे शोषण अपहरण का जहाँ विश्व न्याय के आधार पर विरोध होता है वहाँ ईश्वरीय व्यवस्था भी उसे निरस्त करने में सहायक होती है। प्रकृति प्रतिरोध का परिचय तब अधिक अच्छी तरह देखा जा सकता है। जब समर्थों द्वारा असमर्थों के स्वत्वों का अपहरण करने वाली अनीति का आचरण उभरता है।

अमेरिका की भूमि पर मूल अधिकार उस देश के मूल निवासियों का ही माना जा सकता है। वहाँ की प्रकृति सम्पदा का लाभ भी उन्हीं को मिलना चाहिए। गोरे लोगों ने बलपूर्वक उस भूमि पर अधिकार कर तो लिया है, पर प्रकृति वहाँ के मूल निवाससियों के पक्ष में ही अपना समर्थन देती है और लुटेरों को असफल बनाने वाले आधार खड़े करती रहती है। इस सम्बन्ध में वहाँ के स्वर्ण क्षेत्रों में गोरों की असफलता विशेष रूप से विचारणीय है।

अमेरिका के ऐरिजेना प्रान्त में कुछ खाई खड्डों से भरे सघन वन प्रदेश ऐसे हैं जो न केवल अगम्य और डरावने हैं वरन् उनमें रहस्य भरी विशेषताएँ भी पाई जाती हैं। यह रहस्य अलौकिकवा दियों और वैधानिक शोधनकर्ताओं के लिए एक पहेली बनी हुई है।

कहा जाता है कि उस प्रदेश में या तो आसमान से सोने के धूलि कण बरसते हैं या फिर पहाड़ उसे अदृश्य लावे की तरह उगलते हैं। जो हो उस क्षेत्र की पहाड़ियों को सोने के पर्वत का नाम दिया जाता है और अनेकों उस सम्पदा को सहज ही प्राप्त कर लेने के लालच में उधर जाते भी रहते हैं।

सम्पत्ति का लोभ जितना आकर्षक है उतना ही वहाँ के प्रहरी प्रेत पिशोचों के आतंक का भय भी बना रहता है। इस उपलब्धि के लिए अब तक सहस्त्रों दुस्साहसी उधर गये हैं। इनमें से अधिकांश को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा है। जो किसी प्रकार जीवित लौट आये हैं उनने सोने के अस्तित्व को तो आँखों देखा विवरण सुनाया है, पर साथ ही यह भी कहा है कि वहाँ

अदृश्य आत्माओं का आतंक असाधारण है। वे सोना बटोरने के लालच से जाने वालों का बेतरह पीछा करती हैं और यदि भाग खड़ा न हुआ जाय तो जान लेकर ही छोड़ती हैं।

भूमिगत विशेषताओं का अन्वेषण करने जो लोग पहुँचे हैं । उन्होंने इस क्षेत्र को रूस के साइबेरिया की ही तरह रेडियो किरणों से प्रभावित पाया है। रूसी वैज्ञानिक साइबेरिया के कई क्षेत्रों को किसी अज्ञात विकरण से प्रभावित मानते हैं और कहते हैं कि सभी अन्तरिक्ष या धरती से यहाँ अणु विस्फोट जैसी घटना घटी है। ऐसा किसी उल्कापात से भी हो सकता है। अमेरिकी लोग भी इस क्षेत्र की तुलना लगभग रूसी प्रदेश से ही करते हैं। यहाँ एक ६०० फुट गहरा और एक मील लम्बा गड्ढ़ा है। समझा जाता है कि यह किसी उल्कापात का परिणाम है। उस क्षेत्र में से किसी उद्देश्य से जाने वाले व्यक्तियों पर सम्भवतः विद्यमान रेडियो विकरण ही आतंकित करने जैसा प्रभाव उत्पन्न करता होगा और उस अप्रत्याशित प्रभाव को भूतपलीतों का आक्रमण मान लिया जाता होगा।

रहस्यवादियों का मत है कि योरोपियनों के इस क्षेत्र पर कब्जा जमाने से पहले आदिवासी लोग रहते थे। इनमें से अपैंची कबीला मुख्य था। उसके साथ गोरों की झड़पें होती रहीं और इन मार्ग के कंटकों को हटाने के लिए अधिकर्ताओं द्वारा क्रूरतापूर्ण नर संहार किये जाते रहे। इन मृतकों की आत्मायें ही प्रतिशोध से भरी रहती हैं और जो इधर से गुजरता है उस टूट पड़ती हैं।

कारण क्या है, यह तो अभी ठीक तरह नहीं समझा जा सका, किन्तु सोना बरसने और आतंक छाये रहने की बात सच है। गाथा और किम्बदन्तियाँ तो बहुत दिनों से प्रचलित थीं। वहाँ जाने और कुछ कमाकर लाने की बात भी बहुतों ने सोची, पर साहस सबसे पहले पाइलीन वीवर ने किया। वह अपने कुछ साथियों के साथ आवश्यक सामान लेकर गया और उस क्षेत्र में डेरा लगाया। दूसरे साथी तो सो गये, पर वीवर को नींद नहीं आई। वह अकेला उठा और कौतूहल में दूर तक चला गया। उस जगह सोने के टुकडे पाये। ध्यान से देखा तो वे शत प्रतिशत सोने के थे। उसने बहुत से टुकड़े जमा कर लिए और जितना वजन उठ सकता था उतना साथ लेकर वापिस लौटा। लौटते ही उसकी खुशी आतंक में बदल गई। डेरा जला हुआ पड़ा था और वहाँ सामान्यतया मनुष्यों की राख भर बनी हुई थी। आँख उठाकर पर्वत की चोटी को देखा तो वहाँ से गिद्धों के झुण्ड की तरह भयानक छायाएँ उसकी ओर बढ़ती आ रही दिखाई पड़ी। डर के मारे वह बेहोश हो गया। बहुत समय बाद जब होश आया तो किसी प्रकार भाग चलने का उपाय निकाला और जैसे-जैसे घर वापिस आ गया।

इस घटना की चर्चा तो बहुत हुई, पर दुबारा उधर जाने का साहस किसी में भी नहीं हुआ। इसके १६ वर्ष बाद मैक्सिकी का एक दुस्साहसी पैरलटा एक मजबूत और साधन सम्पन्न जत्था लेकर उधर गया। उस दल के प्रायः सभी व्यक्ति उसी प्रयास में मर गये केवल एक ही उनमें से जीवित लौटा। उसने सोने का उपस्थिति और मडलाने वाली विपत्ति के जो विवरण सुनाये उसने कौतूहल तो बहुत बढ़ाया, पर नये जत्थों के उधर जाने का साहस उत्पन्न नहीं किया।

छुटपुट रूप से अनेकों व्यक्ति एकाकी अथवा टुकड़ियाँ बनाकर उधर जाते रहे, किन्तु किसी को जान गँवाने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगा। इसके बाद अमेरिका का ख्याति नामा डाक्टर लवरेन कोमली का अभियान था। वे बहुत तैयारी और चर्चा के साथ गये थे। साधनों और जानकारी की जितनी आवश्यकता थी वह उसने जुटा ली थी। साथी बीच में से ही लौट आये और मायाविनी छात्राओं के आतंक के भयानक विवरण सुनाते रहे। लबरेन ने खोज की प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया था। अकेले ही बढ़ते गये। किन्तु सोने के स्थान पर पागलपन साथ लेकर वापिस लौटे। कुछ दिन भयभीत विक्षिप्तता के शिकार रहकर वे भी मौत के मुँह में चले गये।

होनोलूलू के व्यवसाइयों का एक जत्था स्वर्ण सम्पदा को प्राप्त करने के उद्देश्य से उधर गया और और आस्ट्रेलिया के युवक फैज ने रहस्यों पर से पर्दा उठाने की ठानी। जर्मनी के इञ्जीनियरों का एक दल वालेज के नेतृत्व में बड़े दमखम के साथ उधर पहुँचा। वालेज अपने पूर्ववर्ती शोधकर्ताओं की तुलना में अधिक चतुर था उसने उस क्षेत्र की एक आदिवासी युवती को ललचा कर विवाह कर लिया और उसकी सहायता से स्वर्ण भण्डार के स्थान तथा छायाओं के भेद जानने का प्रयत्न करने लगा। छायाओं को यह पता लग गया। उनने युवती का अपहरण कर लिया और वाल्ज की जीभ काट ली। इसी कष्ट में उसकी मृत्यु हो गयी।

उसकी डायरी किसी प्रकार साथियों को मिल गई। उसके विवरणों से पता चलता है कि उसने स्वर्ण स्रोतों का पता लगा लिया था। भूमिगत कई रहस्यमय स्थान देखे, ढूँढ़ी और प्रेतात्माओं को चकमा देकर बच निकलने को सुरंगें में सफल होता रहा। इतना सब उसकी आदिवासी पत्नी की सहायता से ही सम्भव हो सका, किन्तु दुर्भाग्य ने उसका पीछा छोड़ा नहीं और अपनी जान गँवा बैठा। यह प्रयत्न सन् १८९१ का है। इसके बाद अन्तिम

प्रयत्न सन् १९५९ में हुए। स्टेनलोफनेंल्ड और फरेश नामक दो व्यक्तियों ने संयुक्त प्रयत्न नये सिरे से सोना पाने के लिए किये। उसमें पूर्ववर्ती कठिनाइयों और सफलताओं को पूरी तरह ध्यान में रखा गया। इस बार की तैयारी अधिक थी। प्रयत्न भी बड़े पैमाने पर और अधिक दिन चले, पर उसका निष्कर्ष इतना ही निकला कि फरेश प्राणों से हाथ धो बैठा और फर्नेल्ड किसी प्रकार जान बचाकर वापिस लौट आया। पल्ले कुछ नहीं पड़ा।

इस स्वर्ण अभियान में जितने मृतकों की लाशें मिल सकीं इनके देखने से एक ही निष्कर्ष निकला कि वे सभी मौतें शरीर से खून चूस लिये जाने के कारण हुईं। इनमें से किसी की भी देह में कहीं छेद नहीं पाये गये और न कहीं कपड़ों पर या जमीन पर रक्त बिखरा हुआ ही पाया गया फिर यह रक्त चूसने की क्रिया किसके द्वारा किस प्रकार की गई यह अभी भी उतना ही रहस्यमय बना हुआ है जितना पहले कभी था।

लगता है सूक्ष्म जगत में ऐसे किन्हीं अदृश्य प्रहरियों की चौंकीदारी भी विद्यमान है जो न्याय का समर्थन और लूट-खसोट का प्रतिरोध करने के लिए अपनी जागरूकता का परिचय देते रहते हैं। सम्भवतः उस क्षेत्र की स्वर्ण सम्पदा की रखवाली वे ही करते हों। यह भी अनुमान लगाने की गुञ्जायश है कि जिनके स्वत्वों का अपहरण किया गया, जिन्हें निर्दयतापूर्वक मारा गया उनकी आत्माएँ प्रतिशोध की भावनाएँ भरे हुए उस इलाके में निवास करती हों और उनकी रोकथाम से मुफ्त का धन पाने वालों को असफल रहना पड़ता हो। आत्माओं द्वारा न्याय के संरक्षण और अनौचित्त का प्रतिरोध एक तथ्य है। साथ ही प्रकृति व्यवस्था में स्थानीय व्यवस्था में स्थानीय भूमि पुत्रों के लाभान्वित होने की जो नीति मर्यादा है उसका उल्लंघन में ऐसे कारण उत्पन्न कर सकता है जैसे कि अमेरिका में स्वर्ण उपलब्ध करने वालों को भुगतने पड़े हैं।

सूक्ष्म-शक्तियों के उभार के विलक्षण परिणाम

मनः शास्त्री फ्लैमैरियन का कथन है- मानवी विद्युत की एक गहरी परत ओजस् है, इसके, समुचित मात्रा उपलब्ध हो तो मनुष्य सूक्ष्म अतीन्द्रिय शक्तियों से सम्पन्न हो सकता है। मानवी विद्युत पर विशेष खोज करने वाले विक्टर ई० क्रोमर का कथन है- मनःशक्ति की धनीभूत करने की कला में प्रवीणता प्राप्त करके, उसे किसी दिशा विशेष में प्रयुक्त किया जा सकता है। यह इतना बड़ा शक्ति स्रोत है कि मानवी व्यक्तित्व को कोई भी पक्ष उस प्रयोग से अधिक प्रखर और उज्ज्वल बनाया जा सके। यह प्रयोग यदि अपनी सूक्ष्म शक्तियाँ तलाश करने और उभारने पर केन्द्रित किया जा सके तो अतीन्द्रिय चेतना के क्षेत्र में आशाजनक सफलता मिल सकती है।

बहाई धर्म के संस्थापक महात्मा बाव को प्रचीन परम्पराओं से भिन्न स्थापनाएँ करने के कारण तत्कालीन शासन ने मृत्यु दण्ड सुनाया, उन्हें ९ जुलाई, १८५० को प्रातः १० बजे सरेआम तबरीज के मैदान में गोली से उड़ाया जाना था। दस हजार दर्शक उपस्थित थे। महात्मा बाव और उनके एक अनुयायी को रस्सों से कसकर अधर में लटकाया गया और ढाई-ढाई सौ सैनिकों की तीन टुकड़ियाँ भरी हुई बन्दूकें लेकर खड़ी की गईं। एक टुकड़ी एक साथ ढाई सौ गोली दागे, यदि फिर भी अपराधी बच जाये तो दूसरी टुकड़ी अपनी बारी पर गोलियाँ चलाये और इस पर भी कोई कमी रह जाय तो तीसरी टुकड़ी भी अपने निशाने लगाये। ७५० गोलियों में से एक भी न लगे ऐसा नहीं हो सकता था। उन दिनों मृत्यु दण्ड का प्रायः यही रिवाज था।

व्यवस्था के अनुसार गोलियाँ बराबर दागी गईं पर ७५० में एक भी निशाना नहीं लगा और महात्मा बाव अपने अनुयायी सहित साफ बच गये।

यह घटना वैसी किम्बदन्ती नहीं है जैसी कि आमतौर से लोग अपने प्रिय देवता या गुरु का महत्त्व बढ़ाने के लिए गढ़ लिया करते हैं और उसे फैलाकर अन्य लोगों को आकर्षित करते हैं।

इंग्लैण्ड की सरकार के विदेशी विभाग में सार्वजनिक दफ्तर में इस घटना की साक्षी में एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज मौजूद है। यह २२ जुलाई, १८५० का लिखा हुआ है और इसका रिकार्ड नम्बर F.O. ६०।१५३।८८ है। यह महारानी विक्टोरिया के विशेष प्रतिनिधि प्लेनीपोन्टेन्शियरी के प्रधान सर जस्टिनशील का लिखा हुआ है। उसमें इस घटना की प्रत्यक्षदर्शी पुष्टि की गई है।

समर्थ महात्मा अपनी सूक्ष्म शक्तियों का प्रयोग-कुतूहल-वर्धन और चमत्कार-प्रदर्शन के लिए भले ही कभी भी न करें, किन्तु अत्याचार-अन्याय के विरोध में वे निश्चय ही आगे आते हैं। यही बात अदृश्य सूक्ष्म-शक्तियों, पितर-सत्ताओं के बारे में भी है।

परमात्म-सत्ता के संकेतों को समझने वाले, वे शरीरधारी महामानव हों, या अशरीर सूक्ष्म सत्ताएँ अन्याय-अधर्म के उन्मूलन के लिए अपनी शक्तियों का उसी प्रकार प्रयोग करते हैं, जिस प्रकार वह सर्वोच्च सत्ता स्वयं करती है। इस क्रम में जब सूक्ष्म अतीन्द्रिय शक्तियों द्वारा यह कार्य होता है, तो लोग इसे

अस्वाभाविक चमत्कार समझ बैठते हैं। परन्तु वह वस्तुतः सहज नियम ही है।

पितर-सत्ताओं में तो यह सामर्थ्य सीमित ही होती है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अनीति-अन्याय का विरोध उस एक सीमा तक ही हो सकता है जो पितरों की सामर्थ्य -सीमा है। अपितु पितर तो छोटे पैमाने पर ही यह भूमिका निभाते हैं। उससे बहुत बड़ी, विस्तृत और विशाल भूमिका देव -सत्ताओं तथा इन सबकी उद्‌गभ सर्वोच्च सत्ता कीहै। धर्म के संरक्षण और अधर्म-अनीति-अनाचार के निवारण की ईश्वरीय प्रक्रिया ब्रह्माण्ड व्यापी है। वह हर एक देशकाल में चलती रहती है। कभी भी रुकती नहीं।

अन्यायी कौरव भरी सभा में द्रौपदी का चीरहरण करने में तुले थे। उस अनीति का प्रतिकार कोई नहीं कर रहा था। भीष्म, द्रोण जैसे विद्वान नीतिवेता सिर झुकाए बैठे थे। वह असहाय अबला लुटी जा रही थी। परम सत्ता से यह अन्याय नहीं देखा गया और उसने सहायता कर उसकी लाज बचायी।

दमयन्ती वीहड़ वन में अकेली थी, व्याध उसका सतीत्व नष्ट पर तुला था। सहायक कोई नहीं। उसकी नेत्र ज्योति में से भगवान प्रकट हुए और व्याध जल कर भस्म हो गया। दमयन्ती पर कोई आँच नहीं आयी। प्रहलाद के लिये उसका पिता ही जान का ग्राहक बना बैठा था, बच कर कहाँ जाय ? खम्भे में से नृसिंह भगवान प्रकट हुए और प्रहलाद की रक्षा हुई। घर से निकाले हुए पाण्डवों की सहायता करने, उनके घोड़े जोतने भगवान स्वयं आये। नरसी महता की सम्मान रक्षा की तरह ही मानी। ग्राह के मुख से गज के बन्धन छुड़ाने के लिये प्रभु नंगे पैरों आये थे।

मीरा को विष का प्याला भेजा गया और साँपों का पिटारा, पर वह मरी नहीं। न जाने कौन उनके हलाहल को चूस गया और मीरा जीवित बची रही। गाँधी को अनेक सहयोगी मिले और वे दुर्दान्त शक्ति से निहत्थे लड़ कर जीते। भगीरथ की तपस्या से गंगा द्रवित हुई और धरती पर बहने के लिये तैयार हो गई शिवजी सहयोग देने के लिये आये और गंगा को जटाओं में धारण किया, भगीरथ की साध पूरी हुई। दुर्वाशा के शाप से संत्रस्त राजा अम्बरीष की सहायता करने भगवान का चक्र सुदर्शन स्वयं दौड़ा आया। तो समुद्र से टिटहरी के अण्डे वापिस दिलाने में सहायता करने के लिए भगवान अगस्त्य मुनि बनकर आये थे।

सनातन सत्ता तो काल गति और ब्रह्माड से सर्वथा अतीत है, जिस तरह वह प्राचीन काल में थी, और उसकी अदृश्य सहायताएँ पूर्व से पश्चिम उत्तर से दक्षिण तक आज भी प्राप्त करते रहते हैं। टंग्स्टन तार पर धन व ऋण विद्युत धाराओं के अभिव्यक्त होने की तरह यह ईश्वरीय अनुदान जिन दो धाराओं के सम्मिश्रण से किसी भी काल में प्रकट होते रहते हैं वह श्रद्धा और विश्वास जहाँ कहीं जब कभी हार्दिक अभिव्यक्ति पाती हैं परमेश्वर की अदृश्य सहायता वहाँ उभरे बिना नहीं रह सकती।

तात्पर्य यही कि अनीति-अन्याय के प्रतिकार के लिए श्रेष्ठ महामानव और सर्वव्यापी सर्वोच्च सत्ता- दोनों ही समय पर आगे आते हैं। उत्कृष्ट संस्कारों वाली पितर सत्ताएं भी अपनी सूक्ष्म शक्तियों द्वारा अनीति की राह में बाधा बनकर तथा पीड़ित के पक्ष में वातावरण निर्मित कर एवं आवश्यकतानुसार प्रत्यक्ष और चमत्कारिक रूप से उसकी सहायता कर-उस अन्याय-अनाचार का सामर्थ्यानुसार प्रतिकार करती हैं। इस तथ्य प्रत्येक सन्मार्गगामी को सदा साहस पूर्वक अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहना चाहिए, साथ ही अदृश्य सत्ताओं के प्रति सदैव श्रद्धा-भाव दृढ़ रखना चाहिए। इन अदृश्य-सत्ताओं में पितर, देव जैसी सूक्ष्म शक्तियां भी आती हैं और सर्वोच्च ब्रह्म सत्ता तो अदृश्य होते हुए भी सर्वव्यापी है ही।

ये अप्रत्याशित घटनाएँ क्यों?

दृश्य और प्रत्यक्ष शक्तियों के अलावा संसार में कई अदृश्य के अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालने वाली शक्तियाँ भी हैं। उनमें से कई व्यक्ति या समाज की हितैषी होती हैं तथा कई को विघ्न उत्पन्न करने में ही रस आता है। इन शक्तियों को अदृश्य आत्माएँ कहा जाय अथवा मनुष्य का प्रारब्ध, यह प्रश्न अपनी जगह है परन्तु जब ये मनुष्य के हित में काम करती हैं तो वे बड़े-बड़े संकटों से उबार लेती हैं।

न्यूयार्क में रहने वाली महिला श्रीमती कैथलीन मेकक्वोइन के जीवन में कई अवसर ऐसे आये जब वह आसन्न संकटों से किन्हीं प्रेरणाओं, संकेतों और सहायताओं के बल पर बच गयीं। श्रीमती कैथलीन यों एक साधारण महिला की तरह दिखाई देती हैं, उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि यह कोई अलौकिक शक्ति के संरक्षण में रहने वाली महिला हैं, पर कैथलीन के साथ जो घटनाएँ घटी, वे इस तथ्य को गलत भी नहीं बतातीं।

कैथलीन जब नौ वर्ष की थीं, तब एक बार पाठशाला के सैकड़ों विद्यार्थियों के साथ हड़सन नदी की सैर करने गयीं। नदी के बीच स्टीमर में आग लग गयी। बच्चे चीखने लगे और हंगामा

मच गया। कैथलीन को तभी लकड़ी का एक तख्ता नजर आया और वह तख्ते को अपने सीने से चिपकाकर नदी में कूद गयीं। थोड़ी देर में कुछ नाविकों ने , जो किश्ती खेते हुए उधर आये थे कैथलीन को बचा लिया बाकी सभी बच्चे जल गये।

इसके दो ही साल बाद की घटना है। कैथलीन एक मिनी बस में सफर कर रही थीं। अचानक बस का टायर फट गया और बस लुढ़कती हुई एक खड्ड में जा गिरी। कैथलीन बिल्कुल नहीं घबराईं। वह खिड़की का शीशा तोड़कर बाहर कूद पड़ीं। बस में आग लग गयी और कैथलीन के अलावा बाकी सभी लोग जलकर मर गये। इसी प्रकार सन् १९५४ में कैथलीन हवाई जहाज से अमरीका जा रही थीं कि जहाज में कुछ खराबी पैदा हो गयी। जहाज के चालक ने जहाज को नीचे उतारना चाहा, लेकिन उतरते ही जहाज में आग लग गयी और सारे यात्री जल कर मर गये। केवल कैथलीन बुरी तरह जलने के बाद भी जिन्दा बच गयीं।

इसके पाँच वर्ष बाद ५ जनवरी १९५९ को कैथलीन रेल में यात्रा कर रहीं थीं। वह रेल के आखिरी डिब्बे में बैठी थीं। डिब्बे में दस-बारह यात्री थे। रात का समय था और कैथलीन ऊँघ रहीं थीं। अचानक उनकी आँख खुली। आँख खुलने के दो मिनट बाद ही जोर का धमाका हुआ। पीछे से आने वाली गाड़ी का इन्जन कैथलीन के डिब्बे से टकरा गया था। डिब्बा चकनाचूर हो गया, उसके सभी यात्री मर गये पर कैथलीन फिर भी बच गयीं।

सन् १९६३ में कैथलीन जार्जिया के एक छोटे से होटल में छुट्टियाँ मना रही थीं। एक दिन पहाड़ से कोई ८० मन का पत्थर लुढ़कता हुआ होटल की इमारत पर आ गिरा। वह पत्थर होटल के जिस भाग पर गिरा था उसमें बैठे हुए पांच व्यक्ति उसी समय मर गये। कैथलीन भी वहां बैठी थीं, पर इधर पत्थर का गिरना हुआ था कि उधर कुछ ही क्षण पूर्व कैथलीन उस भाग से निकल रहीं थीं। एक बार जब वह घर वापस आ रहीं थीं उनकी कार का एक्सीडेण्ट हो गया जिसमें जिसमें कार ड्राइवर मर गया तथा उसमें बैठे सात अन्य व्यक्ति बुरी तरह घायल हो गये परन्तु कैथलीन को खरोंच तक नहीं आयी थी।

सन् ६८ में कैथलीन अपनी कुछ सहेलियों के साथ एक दावत में गयीं। इस दावत में जो भोजन परोसा गया था वह विषाक्त हो गया था अत: जिन व्यक्तियों ने दावत खायी वे सभी मर गये किन्तु कैथलीन पर उस विषाक्त भोजन का कुछ असर नहीं हुआ। इस काण्ड की जांच हुई और पता चला कि कैथलीन भी उस दावत में सम्मिलित हुई थीं। उसके आमाशय की जाँच की गयी। डॉक्टर यह जानकर हैरान हुए कि उसके पेट में भी वही भोजन है फिर वह बच कैसे गयीं ?

श्रीमती कैथलीन के साथ घटी ये घटनाएँ, आने वाले आकस्मिक, संकट और आकस्मिक सुरक्षा प्रबन्ध का कोई विश्लेषण नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि कई बार अदृश्य शक्तियां किन्हीं कारणों से मनुष्य को बड़े-बड़े खतरों से भी बचा ले जाती हैं। यह उनका उपकार ही कहा जाना चाहिए। यों भी कहा जा सकता है कि मारने वालों से बचाने वाला बड़ा और समर्थ होता है। लेकिन यह प्रश्न तो फिर भी अपने स्थान पर ही है कि इन दुर्घटनाओं में अदृश्य शक्तियाँ कैथलीन की ही रक्षा क्यों करती रहीं ?

पिछले दिनों स्विट्जरलैण्ड की एक ६८ वर्षीय महिला अपने पति के साथ कार में जा रही थी। रास्ते में कार दुर्घटनाग्रस्त हो गयी। दुर्घटना कोई गम्भीर नहीं थी परन्तु उसके कारण महिला गूंगी हो गयी। पति ने कितना ही उपचार कराया, कोई लाभ नहीं हुआ। वर्षों तक वह गूँगी ही बनी रही। आधुनिकतम उपचार आदि सबका सहारा लिया गया। परन्तु सभी व्यर्थ सिद्ध हुए। एक दिन पति-पत्नी दोनों अपने मकान की छत पर बैठे थे, तभी आकाश में नीचे को मंड़राते हुए एक जेट यान उधर से गुजरा। जेट जब उस मकान की छत से गुजर रहा था तो जेटयान ने एक धड़ाके के साथ गति बढ़ाई। उस धड़ाके ने प्रत्येक व्यक्ति को चौंका दिया। पर साथ ही उस गूँगी महिला के मुख से हे भगवान’ शब्द निकला और उस गूंगी वृद्धा को फिर वाणी मिल गयी।

बाईस वर्षीया जीन हेजीज बचपन से ही बहरी हो गयी थीं। वह बोल तो सकती थीं परन्तु किसी दुर्घटना में श्रवण शक्ति जाती रहने के कारण वह दूसरे क्या कह रहे हैं, जरा भी सुन नहीं पाती थीं। वह फोम बनाने के एक कारखाने में काम किया करती थीं। इसे वर्षों हो गये थे काम करते हुए, इस दौरान उसे कई बार छींकें भी आयीं, खाँसी भी उठी और सर्दी जुकाम भी हुआ। परन्तु एक दिन जब वह अपने दफ्तर में काम कर रही थी तो उसे जोर की छींक आयी। छीक के कारण उसकी आँख से आँसू निकल आये। परन्तु तभी उसे वर्षों बाद अचानक अपनी साँस लेने की आवाज सुनाई दी और अपने आस पास काम कर रहे मित्रों और सहेलियों की बातचीत भी।

इसके बाद तो उसे जैसे छीकों का दौरा ही पड़ गया और प्रत्येक छींक उसकी श्रवण शक्ति को सतेज बनाती जा रही थीं छीकों का दौरा जब समाप्त हुआ तो वह भली-भाँति सुन सकती थी, इससे पूर्व बचपन में जब वह किसी दुर्घटना में बहरी हो

गयी थी, अभिभावकों ने उसका बहुत इलाज कराया परन्तु उसका बहरापन नहीं गया तो नहीं ही गया। डॉक्टरों का कहना था कि बहरेपन को दूर तभी किया जा सकता है जबकि उसके कान का आपरेशन किया जाय। इस चीर फाड़ को जोखिम पूर्ण बताया जा रहा था और फिर भी इस बात की पूरी सम्भावना नहीं थी कि सफलता मिल ही जायेगी। इसलिए माता-पिता ने उसका आपरेशन नहीं ही कराया और एक दिन यह समस्या बिना किसी हस्तक्षेप के सुलझ गयी।

जिस प्रकार अविज्ञात कारणों से कभी-कभी मनुष्य पर अप्रत्याशित विपत्तियाँ टूट पड़ती हैं और प्रत्यक्ष कोई कारण न होने पर भी दुर्घटना स्तर का संकट सहन करना पड़ता है। उसी प्रकार कभी-कभी विपत्तियों से उबरने वाली ऐसी अदृश्य सहायताएँ भी अनायास ही मिलती देखी गई हैं जिसकी न कभी कोई आशा थी न सम्भावना।

इन घटनाक्रमों के पीछे सन्निहित अविज्ञात कारणों की आमतौर से प्रारब्ध संयोग आदि कहकर किसी प्रकार समाधान कर लिया जाता है,

चीन के बिजिंग शहर की एक महिला हुआंग हुआ के सम्बध में यह तथ्य अक्षरशःलागू होता है। उसका जीवन आकस्मिक विपत्तियों और अप्रत्याशित सुरक्षा-संयोगों का ऐसी विचित्र प्रतिमान है जिसे देखकर आश्चर्य से चकित रह जाना पड़ता है। प्रतीत ऐसा होता है कि कोई आसुरी सत्ता उसकी जीवनलीला समाप्त करने पर सदा सन्नद्ध रही, पर दैवीसत्ता के संरक्षण के आगे उसकी एक न चली और उसके आक्रमण सुरक्षा कवच पर होने वाले आघात की भाँति सदा निष्फल होते रहे। हुआ के जीवन में सात जानलेवा दुर्घटनाएँ हुईं, पर हर बार दैवयोग से वह बचती रही। इन दुर्घटनाओं में आश्चर्यजनक बात यह रही कि कइयों में सारे-के-सारे यात्री मारे गये, जीवित एक मात्र वही बची।

एक बार जब वह किशोरावस्था में थी, तो स्कूल की ओर से अन्य बच्चों के साथ पिकनिक में जाने का कार्यक्रम बना। नियत समय पर सभी बस से रवाना हुए पर दुर्भाग्यवश पिकनिक स्थल पहुँचने से पूर्व ही रास्ते में बस की टक्कर विपरीत दिशा में आते एक ट्रक से हो गई। ट्रक की रफ्तार इतनी तेज थी, कि बस बगल के एक गहरे खड्डे में जा गिरी। जीवित सिर्फ चालक और हुआ ही बचे। अन्य सभी ने या तो घटना स्थल पर दम तोड़ दिया अथवा अस्पताल में।

इसी प्रकार सन् १९६० में एक बार वह बिजिंग से संघाई वायुयान से जा रही थी। बीच में उसमें कुछ खराबी आ गई। पायलट ने सभी यात्रियों को इसकी जानकारी देदी। उसने निकटवर्ती हवाई अड्डे में जहाज को उतारना भी चाहा पर सफल न हो सका। उतरने से पूर्व इंजन में आग लग गई। जलता विमान सड़क के किनारे एक खेत में जा गिरा तुरन्त आपातकालीन सेवाएँ दी गई। यात्रियों को जब बाहर निकाला गया तो सभी दम घुटने से मर चुके थे। एक हुआंग ही बेहोश अवस्था में पड़ी मिली। कई दिनों के उपचार के बाद अस्पताल में वह ठीक हो गई।

सन् १९६२ में वह मस्तिष्कीय शोध सम्बन्धी कार्य के लिए रूस गई। एक दिन वह उक्रेन के काला सागर तट पर स्थित एक होटल में रात में सागर का आनन्द ले रही थी कि अचानक तूफान आ गया। उस भीषण तूफान में तटवर्ती होटलों के अधिकांश लोग मारे गये। कुछ एक जो बचे, उनमें हुआंग भी सम्मिलित थी। उसका बचना भी बड़ा विलक्षण रहा। भयंकर तूफान में जब होटल पानी से भर गया और वह पानी में ऊपर-नीचे आने-जाने लगी, तभी न जाने कहाँ से उसके सामने लकड़ी का एक मोटा लट्ठा आ गया। वह उसी के सहारे तैरती हुई बड़ी कठिनाई से जिन्दा रह सकी। बाद में सेना की नाव ने उसे वहाँ से सुरक्षित स्थल तक पहुँचाया।

सन् १९६४ में एक शाम वह अपनी एक सहेली के विवाह के उपलक्ष्य में एक प्रीतिभोज में सम्मिलित हुई। दावत में मछलियाँ परोसी गईं, पर दुर्दैव से वह किसी ऐसे जलाशय की थीं, जो विषाक्त हो चुका था। उसमें रहने वाली मछलियाँ भी उससे अप्रभावित न रहीं। उसे खाते ही सभी को उलटियाँ होने लगीं। तुरन्त सबको अस्पताल पहुँचाया गया। हुआंग भी इनमें शामिल थी। लगभग आधों ने तो रास्ते में ही दम तोड़ दिये। कुछ अस्पताल पहुँचने पर और अनेक, उपचार मिलने के उपरान्त भी जीवित न रह सके। हुआ की स्थिति भी गंभीर हो गई थी। डॉक्टरों ने उससे भी आशा छोड़ दी थी, पर समय बीतने के साथ-साथ उसमें सुधार आता गया। चिकित्सकों को उसके ठीक होने पर हैरानी इस बात की हुई कि कई लोगों की अस्पताल पहुंचने पर स्थिति हुआ से अच्छी थी। उन्हें परिश्रमपूर्वक भी बचाया न जा सका, किन्तु उन्हीं दवाओं ने हुआ के लिए रामवाण औषधि का काम किया। यह कितने आश्चर्य की बात है।

एक बार वह कॉलेज से अन्य सहेलियों के साथ टैक्सी में घर आ रही थी। गर्मी के दिन थे। ड्राइवर को गाड़ी चलाते बीच में झपकी आ गई। टैक्सी सड़क किनारे एक वृक्ष से जा टकरायी। चालक की तत्काल मृत्यु हो गई। तीनों सहेलियाँ गम्भीर रूप से घायल हुईं। हुआंग के सिर्फ हाथ की हड्डी टूट कर रह गयी।

इन्हीं दिनों की बात है। एक दिन वह सड़क पार करती हुई कॉलेज में प्रवेश कर रही थी कि एक तीव्र गति की कार ने उसे जोर की टक्कर मारी। वह किनारे दूर जा गिरी। उपस्थित लोग दौड़े। सोचा हुआ का बचना मुश्किल है। निकट पहुंचे, तो पता चला कि उसकी बायी टांग टूट गई है। इसके अतिरिक्त और कोई चोट नहीं आयी। दर्शकों ने जब इस पर हैरानी प्रकट की तो उसने कहा कि टक्कर लगने से ठीक पूर्व ऐसा लगा कि मुझे किसी ने झटके से किनारे खींच लिया हो। मेरी टाँग उसी झटके से किनारे खींच लिया हो। मेरी टाँग उसी झटके से टूटी है। धक्का तो मुझे लगा ही नहीं। ऐसा होता, तो मेरा बच पाना सम्भव न था।

राजस्थान प्रान्त के जैसलमेर के पश्चिमी रेगिस्तानी इलाके में अनेकों प्रकार के खतरनाक सर्प पाये जाते हैं। उनमें सबसे भयंकर तथा विषधर सर्प है 'पीना'। कहते हैं कि यह सर्प रात को निकलता है तथा सोये हुए आदमी के सीने पर सवार हो जाता है। नाक के समीप सटकर मनुष्य द्वारा छोड़ी गई साँस को पीता है और अपनी जहरीली साँस छोड़ता है। उसकी सांस इतनी विषैली होती है कि साँप के चले जानेके बाद उस आदमी के गले में जहरीला फोड़ा हो जाता है। कुछ दिनों में फोड़े के फटते ही आदमी की भी मृत्यु हो जाती है।

इस सर्प की चमड़ी रबड़ जैसी होती है तथा लाठियों के प्रहार से भी नहीं मरता। सूर्य के प्रकाश में यह अन्धा हो जाता है। अमरीकी संग्रहालयों में भी पीना सर्प रखा गया है।

६ नवम्बर १९७८ को जैसलमेर के भैरबा ग्राम में एक ऐसी घटना घटित हुई जो अदृश्य सत्ता के प्रत्यक्ष सहयोग का प्रमाण देती है। उक्त गाँव के एक सहायक कृषि अधिकारी सरकारी फार्म में कार्यरत थे। हनुमान जी के वे परम भक्त थे। ईश्वर के प्रति उनकी अटूट आस्था थी। एक दिन अपने फार्म का निरीक्षण करते घूम रहे थे। पेड़ पर उन्होंने देखा कुछ बन्दर उछल-कूद मचा रहे थे। यकायक बन्दरों के पास से निकलते हुए एक आवाज सुनाई दी "साँप से बचना।" चोंक कर उन्होंने ऊपर देखा किन्तु कुछ नहीं था। अधिकारी ने मन का भ्रम समझकर भुलाने की चेष्टा की किन्तु उस चेतावनी का डर तो बना ही रहा।

रात्रि को जब अधिकारी महोदय सोने का प्रयास कर रहे थे, इसी बीच उन्हें अपने सीने पर कुछ रेंगती हुए चीज मालूम पड़ी। तेजी से विस्तर से उठ खड़े हुए रेंगती हुई चीज नीचे गिर पड़ी। बगल में रखी टार्च जलाकर देखा तो सर्प था, बचाव के लिए चिल्लाने पर, फार्म में सोये अन्य कर्मचारी पहुंच गये। लाठियों से सर्प पर बारम्बार प्रहार किया गया किन्तु आश्चर्य कि सर्प नहीं मरा। कुछ लोग इस विचित्र सर्प से पूर्व से ही परिचित थे। उन्होंने बताया यह पीना सर्प है जो लाठियों से नहीं मरता तत्पश्चात् भाले बल्लम के प्रहार से सर्प मर गया। सर्प की मोटाई ३.५० इंच थी तथा लम्बाई सवा पाँच फुट थी। वजन इसका १.३ किलो पाया गया।

ईश्वर की वशिष्ट कृपा का वर्णन करते उक्त अधिकारी महोदय ने सारी घटना एवं अदृश्य चेतावनी की बात सभी को बतायी। उन्होंने कहा कि दी गई चेतावनी के कारा ही हमें नींद नहीं आ रही थी। यदि सो जाता तो सर्प के जहर से बचना असम्भव था।

कहा जाता है कि मानवी चेतना प्रत्येक परिस्थितियों एवं घटनाओं से जूझने में समर्थ है। किन्तु यह बात प्रत्यक्ष दिखायी देने वाली घटनाओं के सन्दर्भ में भी लागू होती है। कुछ घटनायें ऐसी होती हैं जिनके विषय में कुछ भी जानकारी नहीं होती है अथवा कुछ परिस्थितियाँ ही ऐसी आ खड़ी होती हैं जिनमें जीवन-सुरक्षा असम्भव जान पड़ती है। ऐसे विशिष्ट अवसरों पर जब मनुष्य असहाय एवं असमर्थ होता है एकमात्र आसरा उस परमात्मा का ही रहता है। देखा यह जाता है कि इन असहाय परिस्थितियों में अदृश्य शक्ति किसी न किसी रूप में सहयोग करती तथा संकटग्रस्त को उबारती है।

प्रतापगढ़ (उ० प्र०) के जेठवारा थाना के पांती ग्राम में एक ऐसी घटना घटित हुई जिसमें दैवी अनुकम्पा प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुई। कहा जाता है कि गाँव की एक महिला का पति मर गया। उसका दो वर्ष का बच्चा था। विधवा ने पुनर्विवाह के लिए एक युवक को राजी कर लिया विवाह में एक अड़ंग आ खड़ा हुआ। युवक का कहना था कि बच्चे के रहते वह विवाह करने के लिए तैयार नहीं होगा। फलस्वरूप लड़की के माता-पिता बच्चे को लेकर हत्या करने के उद्देश्य से एक खेत में ले गये। इसके पूर्व कि गड़ासे का प्रहार बच्चे के ऊपर करें, एक भयंकर सर्प फुफकारता हुआ उनको काटने के लिये आगे बढा। सर्प देखकर वे भयभीत होकर भाग गये। पुलिस ने बाद में उन दोनों को गिरफ्तार कर लिया। इस प्रकार बच्चे की जान बच गई।

दैवी शक्तियाँ समय-समय पर अपने प्रिय पात्रों का सहयोग, अनुग्रह करती रहती हैं। साथ ही दुष्ट, आतताइयों को उनके कुकृत्यों के लिए भयंकर दण्ड-व्यवस्था भी करती है सूक्ष्म जगत में विचरण करती दिव्य आत्माओं का सहयोग अनायास इस रूप में मिलते देखा गया है।

इंगलैण्ड के न्यायिक इतिहास में उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में एक ऐसी घटना घटी, जिसने कानून व्यवस्था को भी चनौती

दे दी। इंग्लैण्ड के एक्सटर जेल में एक 'जान ली' नामक अपराधी बन्द था हत्या के आरोप में न्यायलय द्वारा उसे मृत्य दण्ड सुनाया गया। उस समय विद्युत द्वारा फांसी दी जाने की व्यवस्था आज की तरह नहीं थी। मोटी रस्सी के फंदे द्वारा फाँसी दी जाती थी।

निर्धारित तिथि एवं समय पर डाक्टर ने उसके स्वास्थ्य की परीक्षा की। पादरी ने 'जान ली' के किये गये अपराधों के लिए परमात्मा से क्षमा-प्रार्थना की। फांसी का फंदा उसके गले में डालने के पूर्व जल्लाद जेम्स वेरी ने फाँसीघर के सारे उपकरणों की भली-भाँति जाँच करली। फाँसी का फंदा बनाकर खींचे जाने वाले रस्से को ठीक किया। मजिस्ट्रेट की देख-रेख में अपराधी के गले में फंदा डाला गया। जल्लाद ने पीछे हटकर नीचे के तख्ते को खींचा। किन्तु तख्ता बिल्कुल नहीं हिला पुनः तख्ते का निरीक्षण किया कि सम्भवतः कहीं जाम हो गया हो, किन्तु पाया वह बिल्कुल ठीक था। दुबारा जोर लगाकर तख्त खींचा किन्तु आश्चर्य कि वह टस से मस न हुआ। जल्लाद ने तीसरी बार तख्ते की जाँच करने के बाद खींचने का प्रयास किया किन्तु असफलता ही हाथ लगी।

तीसर बार फाँसी पर चढ़ाये जाने की मानसिक पीड़ा से जान ली' भीषण ठण्ड में भी पसीने से डूब गया। मजिस्ट्रट सामने खड़ा सारी कार्य वाही देख रहा था। उसके जीवन की यह अभूतपूर्व घटना थी। वह विस्मित था कि फाँसी के सारे उपकरण ठीक होते भी तख्ता खिसक क्यों नहीं रहा है। निरन्तर सात मिनट तक अथक प्रयास तथा तीन बार फाँसी के तख्ते पर चढ़ाये जाने पर भी उसे मृत्यु दण्ड नहीं दिया जा सका। उस समय के लिए फाँसी को मजिस्ट्रेट ने स्थगित करने का आदेश किया। फाँसी का निर्धारित समय बीत चुका ।

सर विलियम कोर्ट में इस मामले को प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया गया "कि न्यायालय द्वारा निर्धारित समय पर पूरी सतर्कता एवं सावधानी रखने के बाद भी मृत्यु न दी जा सकी। अतः न्याय की रक्षा के लिए फाँसी के लिए अगला समय निर्धारित किया जाय।" उच्च न्यायालय ने अपील को निरस्त करते हुए कहा कि "अपराधिक दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार न्यायलय द्वारा मृत्यु दन्ड की सारी कार्यवाही पूरी हो चुकी है। इस समय को आगे बढ़ाना न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बाहर है विश्व के न्यायिक इतिहास में यह एक आश्चर्य जनक घटना थी जबकि एक व्यक्ति को निरन्तर ७ मिनट तक फाँसी दी जाती रही हो और वह बच गया हो।

पत्रकारों ने 'जान ली' से पूछा कि "वह कैसे बच गया"। उत्तर में उसने कहा कि "वह निर्दोष था, हत्या में उसे किसी प्रकार फँसा दिया गया था। अपनी सफाई एवं समुचित साक्ष्य वह न्यायालय में प्रस्तुत नहीं कर सका जिससे उसको मृत्यु दण्ड मिला। फाँसी के तख्ते पर ईश्वरीय न्याय एवं सहयोग की प्रार्थना वह निरन्तर करता रहा। फलस्वरूप किसी अदृश्य शक्ति को प्रत्यक्ष सहयोग करते उसने अनुभव किया।"

कभी-कभी यह दैवी प्रेरणा, सहयोग व्यक्तियों के अन्तःकरण में अवतरित होकर, उन्हें अनायास इस प्रकार के निर्णय लेने को बाध्य करता है, जिसका कारण तुरन्त जान सकने में वे असमर्थ होते हैं। घटना के घटित होने पर उक्त प्रेरणा का रहस्योद्घाटन होता है। नवम्बर १९५० अमेरिका के वाशिंगटन शहर में प्रसिद्ध लेखक 'हेराल्ड ग्लक' चिन्तित होकर अपने कमरे में घूम रहे थे पत्नी के पूछने पर उन्होंने बताया कि "उनके मन में मछली पकड़ने जाने के लिए बारम्बार प्रेरणा उठ रही है।" मौसम उस समय प्रतिकूल था। तूफानी ठण्डी हवायें चल रही थीं। हल्की बूँद-बाँदी भी हो रही थीं। पत्नी के रोकने पर भी हेराल्ड नहीं रुके। अपने निकटवर्ती मित्र के घर पर पहुंचकर मन की बात बतायी। मित्र यह सुनकर अवाक रह गया। उसने बताया कि उसके अन्दर भी उसी प्रकार की प्रेरणा उठ रही है। मौसम की प्रतिकूलता भी उन दोंनों के निर्णय को बदल न सकी। समुद्र के किनारे पहुंचकर नाव को समुद्री उठती लहरों के बीच खोल दिया। ऊँची लहरों में नाव का सन्तुलन रख पाना कठिन हो रहा था। जैक ने डरकर हेराल्ड से वापस लौट चलने को कहा किन्तु उसने इन्कार कर दिया। कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा कि दो व्यक्ति समुद्री धारा में डूब रहे हैं। वे अचेतन अवस्था में डूबते-उतरते बहे जा रहे हैं। दोनों ने जाल फेंककर बहते को नाव में खींच लिया। नाव किनारे ले आकर दोनों बेहोश व्यक्तियों का प्राथमिक उपचार किया। उनकी चेतना वापस लौट आयी।

इन घटनाओं को मात्र एक आकस्मिक संयोग कहकर नहीं टाला जा सकता। भयंकर तूफान में एक साथ ही दो व्यक्तियों के मन में समुद्र में नाव लेकर पहुंचने की प्रेरणां उठना, तूफानी लहरों में भी नाव चलाते हुए साहस बनाये रखना तथा बहते हुए व्यक्तियों को बचाना अकस्मात सम्भव नहीं है। दैवी शक्ति ने सुनियोजित ढंग से एक साथ ही दोनों मित्रों को समान विचारों से प्रेरित किया उद्देश्य था डूबते व्यक्तियों को मृत्यु से बचाना।

अदृश्य शक्तियाँ इस प्रकार अपने प्रिय-पात्रों की न केवल प्रतिकूलताओं में सुरक्षा करती सहयोग देती हैं वरन् किन्हीं-किन्हीं की भौतिक उन्नति में भी योगदान देती देखी गयी है जर्मनी के जान ग्रीक की घटना प्रसिद्ध है। एक सामान्य सा सरकारी कर्मचारी अदृश्य सहायता से पूँजीपति बना। अपनी आर्थिक स्थिति

अच्छी न होने के कारण वह अक्सर चिन्तित रहता था। इसी चिन्ता में एक दिन अपने कमरे में बैठा था कि अचानक उसे आवाज सुनाई दी कि, “तुम नौकरी छोड़ दो तथा सड़क का ठेका लेने का कार्य आरम्भ करो।” कमरे में चारों ओर उसने दृष्टि दौड़ाई किन्तु कोई दिखाई न पड़ा। मन का भ्रम जानकर उसने आवाज की उपेक्षा कर दी किन्तु दूसरे दिन पुनः इसी प्रकार की निर्देशित आवाज सुनाई दी। कई दिनों तक इस प्रकार की आवाज उसे सुनाई देती रहीं। दैवी शक्ति का निर्देशन मानकर उसने नौकरी छोड़ दी। तथा सड़क बनवाने के ठेके का काम आरम्भ किया।

इस कार्य में उसे अप्रत्याशित लाभ होने लगा। ग्रीक का कहना है कि ठेके के कार्य में समय-समय पर एक दिव्यात्मा द्वारा सुझाव एवं निर्देशन मिलता रहता है। आज जर्मनी के अच्छे पूँजीपतियों में उनकी गणना है। अनेक संकटपूर्ण स्थिति में रक्षा किये जाने की बात को भी ग्रीक ने स्वीकार किया।

अदृश्य दैवी सत्ताएँ मनुष्यों की सुरक्षा करती, सहयोग करतीं तथा उन्नति में अपना योगदान देती हैं। ऐसी आत्माओं के साथ अध्यात्म साधनाओं के माध्यम से सम्पर्क साधा जा सकता है, उन्हें अधिक सहयोग देने के लिए सहमत किया जा सकता है।

मारने वाला बड़ा कि बचाने वाला

फ्रैंक एडवार्ड्स के “स्ट्रेंज पीपुल” नामक ग्रंथ में एक ऐसी ही घटना का उल्लेख है। सन् १८०३ में सिडनी, आस्ट्रेलिया में एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। मौत का कारण चोरों द्वारा प्राणघातक आक्रमण था। आक्रमण के उपरान्त चोर उनके सोने के मोहरों से भरा बक्सा ले गये। शीघ्र ही जोसेफ सैमुएल्स नामक एक व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया गया। उस पर आरोप था कि उसी ने चोरी की है। सैमुएल्स ने अपने निरपराध होने की लाख दलीलें और साक्षियाँ दीं, पर उसकी एक न सुनी गई और प्राण दंड घोषित कर दिया गया। जल्दी ही आइजक साइमण्ड्स नामक एक अन्य व्यक्ति को पकड़ा गया। उस पर भी अपराध में सम्मिलित होने का अभियोग था, पर वह इसे स्वीकार नहीं रहा था। सैनिक न्यायाधीश ने सोचा कि शायद सैमुएल्स की यातनापूर्ण फाँसी से डर कर वह अपराध स्वीकार ले, इसीलिए उसके सार्वजनिक फाँसी के अवसर पर न्यायाधीश ने साइमण्ड्स को भी वहाँ उपस्थित रखने का आदेश दिया ।

नियत दिन सैमुएल्स को दंड के लिए लाया गया। फाँसी का तख्ता एक घोड़े-गाड़ी से बँधा था और उसी के द्वारा खींचा जाना था। निर्धारित समय पर फँदा अपराधी के गले में डाला गया, उसमें झूलने से पूर्व वह उपस्थित लोगों के समक्ष कुछ बोलना चाहता था। अधिकारियों ने इसे उसकी अंतिम इच्छा समझ कर अनुमति दे दी। फाँसी कुछ देर के लिए रोक दी गई। उसने उपस्थित जन-समुदाय को संबोधित किया, कहा कि वह बिल्कुल निर्दोष है। आरोप एकदम निराधार है। यदि भगवान सचमुच ही सर्वोपरि न्यायनिष्ठ सत्ता हैं, तो आज यहाँ कोई न कोई चमत्कार होना ही चाहिए।

इतना कहकर वह मौन हो गया। फंदा एक बार पुनः उसके गले में झूलने लगा। तख्ते का निरीक्षण हुआ और साथ ही अधिकारी का संकेत भी इशारे के साथ घोड़ों पर चाबुक पड़ी। घोड़े उछल कर आगे बढ़े। तख्ता खिंच चुका था और सैमुएल्स रस्से से लटकने लगा। अभी कुछ ही क्षण बीते थे कि मोटा सा रस्सा न जाने कैसे टूट गया और अभियुक्त संज्ञाहीन होकर नीचे लुढ़क पड़ा। उपस्थित गार्डों ने तुरन्त उसे घेर लिया। अधिकारी दूसरे फंदे की तैयारी करने लगे। अविलम्ब ही नया वलय अपराधी की गर्दन से लिपट गया। उसे एक कुर्सी पर बैठा कर तख्ते पर रखा गया, किंतु इस बार भी सैमुएल्स बच गया। इस बार रस्से से लटकते ही मजबूती से बँटा रस्सा धीरे-धीरे कर खुलने लगा, लम्बाई बढ़ती गई और कुछ ही पल में दण्ड प्राप्त व्यक्ति के पैर जमीन को छूने लगे।

अधिकारी इतने पर भी रुके नहीं। निष्फलता को अपनी ही कमियाँ मानते रहे। तीसरा प्रयास आरम्भ हुआ। इस बार रस्सा सैमुएल्स के सिर के ऊपर से टूट गया और प्राणदंड पूरा नहीं हो सका। इसके बाद वहाँ के गवर्नर ने फाँसी रुकवा दी और उसे अपराध मुक्त घोषित कर दिया।

इस असफलता से उपस्थित न्यायाधीश को शंका हुई। उसने समझा कि रस्सों के साथ किसी न किसी प्रकार की छेड़छाड़, हेराफेरी एवं गड़बड़ अवश्य ही की गई है, अस्तु उसने इनकी जाँच करने का निश्चय किया। निरीक्षण से जो निष्कर्ष प्राप्त हुआ, उससे न्यायाधीश आश्चर्यचकित रह गया। रस्सों के साथ किसी प्रकार की कोई छेड़खानी नहीं की गई थी, फिर भी वे टूट कैसे गये ? यही उसकी समझ में नहीं आ रहा था। तीसरा फँदा तो एकदम नये रस्से का बनाया गया था। अधिकारियों ने इसकी भार-वाहन क्षमता की पुनःपरीक्षा की। धीरे-धीरे कर चार सौ पाउण्ड वजन उससे लटकाया गया। वह यथावत् बना रहा। फिर उसमें की तीन बटी रस्सियों में से दो को काट दिया गया। उसकी एक लड़ भी उक्त भार ढोने के लिए पर्याप्त मजबूत साबित हुई,

फिर अपेक्षाकृत कम भार वाले अपराधी के लटकने पर वह धागे के समान क्यों कर टूट गया ? यह किसी की समझ में नहीं आ सका।

बाद में इस अद्भुत मुकदमे की समीक्षा करते हुए एक गोष्ठी के दौरान न्यायाधीश ने इसमें किसी परोक्ष सत्ता का हाथ होने की बात स्वीकारते हुए टिप्पणी की थी- “मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है।”

इस उक्ति की सच्चाई एक अन्य घटना में सत्य सिद्ध होते देखी गई।

७ फरवरी, १८९४ को विल परविस नाम के एक चौबीस वर्षीय युवक को कोलम्बिया, मिसीसिपी के एक किसान की हत्या करने के अपराध में प्राण दण्ड की सजा सुनाई गयी। निश्चित तिथि को नियत स्थान पर तीन हजार से अधिक लोगों की भीड़ परविस के प्राण दण्ड को देखने के लिए मैदान में डंटी थी। बिल परविस को फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया। जूरी ने जल्लाद को रस्सा खींचने का इशारा किया और रस्सा खींचा गया। संयोग से रस्सा परविस के गले से खिक गया और परविस धड़ाम से नीचे आ गिरा। उसे कोई चोट नहीं लगी। परविस को दुवारा फांसी के फन्दे में कस कर लटकाया गया। शेरिफ इविंन मेगी ने ट्रैपडोर खींचने के लिए जल्लाद को आदेश दिया। इस बार भी परविस बच गया। उपस्थि जनसमुदाय उछलते-कूदते, गाते हुए सर्वोच्च शक्तिमान ईश्वर को साधुवाद देने लगे।

बिल परविस को पुन: वापस काल कोठरी में बन्द कर दिया गया। स्टेट सुप्रीम कोर्ट ने दुवारा १२ दिसम्बर, १८९५ की तिथि को उसको फांसी के फन्दे से लटकाने के लिए तिथि निश्चित की। फाँसी दिए जाने के पूर्व ही उसके साथियों ने परविस को जेल से बाहर निकाल कर छिपा दिया। इसके एक माह बाद मिसीसिपी का गवर्नर बदल दिया। नये गवर्नर ने परविस के प्राणदण्ड को आजीवन कारावास में बदल दिया। १२ मार्च, १८९६ में परविस ने गवर्नर के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया और मात्र २ वर्ष बाद १८९८ में उसे कारावास से निरपाराध मानते हुए मुक्त कर दिया क्योंकि जो सेर्फ बियर्ड नामक एक व्यक्ति, ने उस किसान की हत्या करने का अपराध स्वयं स्वीकार कर लिया था।

जिन दिनों मामले की सुनवाई चल रही थी। १२ जूरियों का एक पैनल हत्या के मामले की जाँचकर रहा था। परविस को इस हत्या में दोषी ठहराया गया। परन्तु कटघरे में खड़ा परविस तभी चिल्ला उठा- “मैं निर्दोष हूँ, और आप में से बारहों जूरियों की मृत्यु देखकर ही मरूँगा। सचमुच, बारह जूरियों में से अन्तिम की मृत्यु के तीन दिन बाद १३ अक्टूबर, १९३८ को अड़सठ वर्ष की अवस्था में विल परविस की मृत्यु हुई।

पुराणों में ऐसी कथाएँ बहुतायत से पढ़ने को मिलती हैं जिनमें यह बताया गया होता है कि किसी देवता ने किसी भूखे प्यासे व्यक्ति को आकाश से भोजन भेजा, सवारी भेजी, वाहन भेजे, सहायताएँ प्रस्तुत कीं। भूखे-प्यासे उत्तंक को देवराज इन्द्र ने अन्न जल दिया था। अश्विनी कुमार आकाश मार्ग से देव औषधि लेकर च्यवन ऋषि के पास आये थे और उन्हें अच्छा किया था। भगवान राम को विरथ देख कर इन्द्र ने अपना रथ भेजा था। द्रौपदी की सहायतार्थ कृष्ण ने उनकी साड़ी को योजनों लम्बा कर दिया था। बाइबिल में ऐसे वर्णन आते हैं जब महाप्रभु ईसा को देवताओं ने देव भोग भेजे थे।

इन घटना क्रमों के पीछे सन्निहित अविज्ञात कारणों को आमतौर से प्रारब्ध संयोग आदि कहकर किसी प्रकार समाधान कर लिया जाता है, फिर भी आस्तिक जन विपत्तियों को अपना कर्मफल और सुविधा-सफलताओं में ईश्वर का अनुग्रह देखते हैं। इस संदर्भ में परोक्षवादी किन्हीं अदृश्य आत्माओं का भी हाथ देखते हैं जो पूर्वकाल की घटनाओं को ध्यान में रखकर प्रतिशोध लेतीं और कष्ट पहुँचाती हैं। साथ ही उच्चस्तरीय आत्माएँ अपने सम्बद्ध आत्मीयजनों को समय-समय पर अपनी सामर्थ्यानुसार लाभान्वित भी करती रहती हैं। इस तरह की अविज्ञात और सूक्ष्म शरीरधारी दिव्य आत्माओं द्वारा लोगों को अदृश्य या प्रत्यक्ष सहायता पहुँचाये जाने की कितनी ही घटनायें हर देश और काल में घटित होती रहती हैं जिसे निष्पक्ष प्रत्यक्षदर्शियों एवं अनुभवियों ने ही नहीं, वरन् अब विज्ञानवेताओं ने भी स्वीकारा है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक मनीषी सर डब्ल्यू. एफ. बैरट ने अपनी पुस्तक “ साइकिकल रिचर्स” में अमेरिका के एक सैनिक अधिकारी श्री गोवन और उनके दो पुत्रों का उल्लेख करते हुए बताया है कि उनकी प्राणरक्षा किस प्रकार हो सकी।

श्री मेक गोवन अपने दोनों पुत्रों को अवकाश के दिन नाट्य गृह में नाटक दिखाने जाना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने उसके टिकट भी एक दिन पूर्व ही मँगा लिए थे। किन्तु जिस दिन उन्हें नाटक देखने जाना था, उस दिन सुबह से उन्हें बार-बार एक ही आवाज सुनाई देती रही कि नाटक देखने मत जाओ और लड़कों को वापस घर ले आओ।’ जब बार-बार वही आवाज आती रही तो उन्होंने नाटक देखने का विचार बदल दिया। दूसरे दिन ज्ञात हुआ कि पिछली रात नाट्य गृह में भयंकर आग लग गयी और ३०० से अधिक लोग अग्निकांड में भस्मसात हो गये।

ऐसे अप्रत्याशित सहयोग को इसे देखते हुए यही कहा जा सकता है कि संकट की घड़ी में दिव्य वरदान की तरह उभर कर सामने आने और सहायता करने वाली देवात्माओं की संसार में कमी नहीं। कमी है तो उस अनुदान को उपलब्ध कर सकने जितनी योग्यता की। यदि इस अनुबन्ध को पूरा किया जा सके तो हर कोई इस उस अलौकिक सहायता की पग-पग पर अनुभूति कर सकता है, जिसे प्रायः सज्जन और सत्पुरुष ही पाते देखे गये हैं।

पितरः अदृश्य सहायक

आइन्स्टाइन कहते हैं-"पदार्थ की सूक्ष्मतर सत्ता तक जब मेरी कल्पना और अनुभव शक्ति पहुँच जाती है तो मुझे यह विश्वास सा होने लगता है कि वहाँ पहले से ही कोई विचार और परिवर्तन करने वाली चेतना सत्ता विद्यमान है। मैंने तो केवल उसके साथ एकाकार किया है! अब मुझे विश्वास होने लगा है कि यह कोई अदृश्य जगत की सूक्ष्म किन्तु महान शक्तिशाली सत्ता है।"

आध्यात्मिकता का उद्देश्य भी परमात्मा अथवा विश्व की किसी महान रक्षा करने वाली शक्ति के साथ जोड़ना है। ब्रह्माण्ड का अस्तित्व और इसका सत्य जिसके अन्तर्गत सम्भवतः लाखों विश्व हैं- जिनका कोई अन्त नहीं है, हमारी इन्द्रियों और बुद्धि के अनुभव की वस्तु हैं। ऊपर से देखने पर तो यह पता चलता है कि ब्रह्माण्ड अव्यवस्थित है पर जब सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, हर्शल प्लूटो आंर अन्य ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधियों पर दृष्टि छोड़ाते हैं तो लगता है, सब कुछ व्यवस्था और नियम के अन्तर्गत चल रहा है। जिससे स्पष्ट पता चलता है कि सबको जोड़ने वाली एक शक्ति है, जो प्रकृति अथवा बुद्धि को कोई अंश नहीं है वरन् वह नितान्त स्वतन्त्र, निर्लेप, बन्धन मुक्त है।

मनुष्य में स्वयं भी उसी शक्ति का प्रकाश विद्यमान है। किन्तु वह माँस-मज्जा की कारा में बँधकर अपने को उन्हीं से जुड़े संवेदनों तक सीमित मान बैठता है। जैसा कि श्री सी० डब्लू० लेडबीटर ने "इन विजिबुल हेल्पर्स" में लिखा है- उच्चतर लोकों में क्रियाशील अशरीरी पितर-सत्ताएँ जब मनुष्यों को देखती हैं, तो वे उन्हें अस्तिमांस के पिण्ड में कैद हो गया देखकर दुःखी भी होती हैं, करुणाभिभूत भी। सामान्य जन मृत व्यक्ति को सुख आनन्द से वञ्चित हो गया मान बैठता है, जब कि वे सत्ताएँ देखती हैं कि अपनी संकीर्णताओं में घिरा शरीराधारी मानव ही सहज आनन्द से वञ्चित है। ऐसे वंचितों में से जो भी आनन्दपूर्ण प्रकाश की दिशा में बढ़ते हैं, या जिनमें भी बढ़ने की सम्भावना होती है, अथवा जो कषाय-कल्मषों से अधिक लिप्त नहीं होते, उनको सहायाता देने के लिए वे पितर-सत्ताएँ सदैव जागरूक रहती हैं।

निर्दोष बच्चों तथा सज्जनवृत्ति के लोगों को संकट के समय में ये पितर-सत्ताएँ आकस्मिक सहायता प्रदान करती हैं और विपत्तियों के पहाड़ के नीचे दबने पर भी उनका बाल-बाँका नहीं होता।

इन पितर-सत्ताओं की करुणा और शक्ति के परिचय-प्रमाण देने वाली घटनाएँ आये दिन वड़ी संख्या में देखी सुनी जाती है।

श्री लेडबीटर ने अपनी उपरोक्त पुस्तक में ऐसे अनेक उदाहरण और अनुभव प्रस्तुत किए हैं-

"एक बार लन्दन की हालबर्न सड़क में भयंकर आग लग गई है। उसमें दो मकान जलकर राख हो गये। उस घर में एक बुढ़िया को जो धुएँ के कारण दम घुट जाने से पहले ही मर गई थी छोड़कर शेष सबको बचा लिया गया। आग इतनी भयंकर लगी थी कोई भी सामान नहीं निकाला जा सका।"

"जिस समय दोनों मकान लगभग पूरे जल चुके थे, तब घर की मालकिन को याद आया कि उसकी एक मित्र अपने बच्चे को एक रात के लिए उसके पास छोड़कर किसी कार्यवश कालचेस्टर चली गई थी। वह बच्चा अटारी पर सुलाया गया था और वह स्थान इस समय पूरी तरह आग की लपटों से घिरा हुआ था, आग की गर्मी से उस समय पत्थर भी मोम की तरह पिघला कर टपक रहे थे"

"ऐसी स्थिति में बच्चे के जीवन की आशा करना ही व्यर्थ था फिर उसकी खोज करने कौन जाता। पर एक आग बुझाने वाले ने साहस साधा, उपकरण बाँधे और उस कमरे में जो पहुँचा, जहाँ बच्चा लिटाया गया था। उस समय तक फर्श का बहुत भाग जल कर गिर गया था किन्तु आग कमरे में गोलाई खाकर अस्वाभाविक और समझ में न आने वाले ढंग से खिड़की की तरफ निकल गई थी। उस गोल सुरक्षित स्थान में बच्चा ऐसे लेटा था, जैसे कोई अपनी माँ की गोद में लेटा हो। बाहर का दृश्य देखकर यह भयभीत अवश्य था पर उसकी तरफ एक भी आग की चिनगारी बढ़ने का साहस न कर रही थी। जिस कौने पर बच्चा सोया था, वह बिल्कुल बच गया था। जिस पटिये पर खाट थी, वह आधे-आधे जल गये थे पर चारपाई के आसपास कोई आग न थी, वरन् एक प्रकार का दिव्य तेज वहाँ भर रहा था। जब तक आग बुझाने वाले ने बच्चे को सकुशल उठा नहीं लिया, वह प्रकाश दिव्य प्रभा बिखरता रहा पर जैसे ही वह बच्चे को लेकर पीछे मुड़ा कि आग वहाँ भी फैल गई और दिव्य तेज अदृश्य हो गया।"

वकिंमर शायर में बर्नहालवीयो के निकट हुई, एक घटना में इस तरह का दैवी हस्तक्षेप लगभग एक घण्टे तक दृश्यमान् रहा। एक किसान अपने खेत पर काम कर रहा था। उसके दो छोटे-छोटे बच्चे भी थे, जो पेड़ के नीचे छाया में खेल रहे थे। किसान को ध्यान रहा नहीं दोनों बालक खेलते-खेलते जंगल में दूर तक चले गये और रात्रि के अँधेरे में भटक गये।

इधर किसान जब घर पहुँचा और बच्चे न दिखाई दिये तो चारों तरफ खोज हुई। परिवार और पड़ौस के अनेक लोग उस खेत के पास गये, जहाँ से बच्चे खोये थे। वहाँ जाकर सब देखते हैं कि दीप-शिखा के आकार का एक अत्यन्त दिव्य नीला प्रकाश बिना किसी माध्यम के जल रहा है, फिर वह प्रकाश सड़क की ओर बढ़ा यह लोग उसके पीछे अनुसरण करते चले गये। प्रकाश मन्दगति से चलता हुआ, उस जंगल में प्रविष्ट हुआ जहाँ एक वृक्ष के नीचे दोनों बच्चे सकुशल सोये हुए थे। माँ-बाप ने जैसे बच्चों को गोदी से उठाया कि प्रकाश अदृश्य हो गया।

दैनिक हिन्दुस्तान- में छपी एक घटना इस प्रकार है-

"जबलपुर। भक्त प्रहलाद के काल में घटी उस घटना की पुनरावृत्ति इस कलियुग में हुई, जिसमें कुम्हार के जलते हुए अवाँ में ईश्वर ने बिल्ली के बच्चे की रक्षा की थी। अन्तर केवल वह था कि वे बिल्ली के बच्चे थे और इस बार चिड़िया के अण्डे। पन्ना जिले के धर्मपुर स्थान में कच्ची ईंटों को पकाने के लिए एक बड़ा भट्टा लगाया गया। भट्टे को जिस समय बन्द किया गया और आग लगाई गई, किसी को पता नहीं चला कि ईंटों के बीच एक चिड़िया ने घोंसला बनाया है और उसमें अपने अण्डे सेये हैं। एक सप्ताह तक भट्टा जलता रहा और ईंटें आँच में पकती रहीं, आठवें दिन जैसे ही भट्टा खोला गया एक चिड़िया उड़कर वाहर निकल भागी। बाद में पाया कि उस स्थान पर जहाँ घोंसला था, आग पहुँची ही नहीं। वहाँ की ईंटें कच्ची थीं। यह घटना देखकर वहाँ के प्रत्यक्ष-दर्शियों को विश्वास करना पड़ा कि अदृश्य सत्ताओं का अस्तित्व है।"

मात्र संयोग ही नहीं

बिहार में एक बार जोरदार भूकम्प आया। कई दिन तक रह रहकर पृथ्वी काँपी और जब स्थिर हुई तब पता चला कि नगर के नगर ध्वस्त हो चुके हैं। हजारों व्यक्तियों की जानें गई इस दुर्घघटना में । मुंगेर नगर में उस दिन बाजार थी। दोपहर का समय था हजारों व्यक्ति क्रय-विक्रय करने में तल्लीन थे। तभी आया भूचाल और उन हजारों दुकानदारों तथा खरीददारों को मकानों को मलवे में दाब कर चला गया।

पीछे आये सहायता दल सिपाही-सैनिक और समाज सेवी संस्थाएँ। मलवे की खुदाई प्रारम्भ हुई। एक दो दिन तक तो कुछ लोग जीवित कुछ चोट खाये निकलते रहे पर तीसरे दिन जो लाशें निकलनी शुरू हुई तो फिर पन्द्रह दिन तक लाशें ही निकलती रहीं ढेर लग गया मृतकों का।

गिरे हुये मकानों का मलवा निकालने का काम अभी तक कुछ लोग चौंके क्योंकि नीचे से आवाज आ रही थी-थोड़ा धीरे से खोदना। १५ दिन तक जमीन में दबे रहने पर भी यह कौन जीवित हुआ है इस आश्चर्य और विस्मय से सभी का मन भर गया। सावधानी से मिट्टी हटाई जाने लगी।

कई बड़ी-बड़ी छत्रियाँ तथा शहतीरें निकालने के बाद निकल एक अधेड़ आयु का व्यक्ति केले के छिलकों में पड़ा हुआ, एक भी चोट या खरोंच नहीं थी उसे सबसे आश्चर्य भरी बात तो यह थी ढेर सारी मिट्टी और तख्तों के नीचे दबे उस आदमी ने बिना खाये पिये साँस लिये १५ दिन कैसे काट दिये।

उसी से पूछा गया-भाई तुम कैसे बच निकले तो उसने आप बीती घटना इस प्रकार सुनाई-

"मैं आया था-केले बेचने, इस मकान की दालान के सिर नीचे पर टोकरी रखे खड़ा था' कि भूचाल आगया। छत टूट कर ऊपर आ गिरी मैं दब गया टोकरी कुछ इस प्रकार उल्टी कि सारे केले उसके नीचे आ गये और इस तरह वे पिचलने या सड़ने गलने से बच गये। इसी में से निकाल निकाल कर केले खाता रहा।'

पेट के नीचे का भाग कुछ इस तरह मिट्टी से पट गया कि सिरोभाग से कमर भाग सम्बन्ध ही टूट गया। टट्टी पेशाब की बदबू से इस प्रकार बचाव हो गया।"

"एक बार पृथ्वी फिर हिली और उसके साथ ही हिला यह मलवा, न जाने कैसे एक सूराख हो गया वह हलकी सी धूप की गर्मी भी देता रहा और शुद्ध हवा भी। अब जीते रहने के लिए एक ही वस्तु आवश्यक रह गई थी वह थी पानी। दैवयेग से पृथ्वी तिबारा काँपी, तब इस दुकान का फर्श टूटा और उसके साथ ही पानी की एक लहर इधर आ गई और इस गड्ढे को पानी से ऊपर तक भर गई। हवा और धूप यों छेद से मिल गये। केले पास थे ही, पानी भी परमात्मा ने भेज दिया। यह सब व्यवस्थायें भगवान् ने जुटा दीं तो मुझे विश्वास हो गया कि मुझे अभी नहीं मरना।

"इसी विश्वास के सहारे आज तक जीवित रहा। आज का दिन आखिरी दिन है जबकि सब केले समाप्त हो गये हैं, पानी

नहीं बचा है, रोशनी भी नहीं आ रही थी पर आप सब लोग आग गये सो मैं आप लोगों को भगवान् की मदद ही मानता हूँ।" इतना कहकर उसने कृतज्ञात की दो बूँद आँखों से लुढ़का दीं।

इस घटना का वर्णन महात्मा आनन्द स्वामी ने 'एक ही रास्ता' पुस्तक में किया है इस तरह की घटनायें बताती हैं कि अदृश्य सत्ताएँ सत्पुरुषों और पीड़ितों की मदद के लिए सदैव आगे आती हैं।

वेल्स की मुख्य सड़क से २२ वर्षीया युवती पैपिटा हैरिसन अपने पिता के जन्म-दिवस समारोह में भाग लेने लन्दन जा रही थी। अचानक कार एक बर्फ की चट्टान से टकरा गई, फिर एक दीवार तोड़कर एक खेत में घुस गई। दुर्भाग्य से खेत ढलान पर था, कार वहाँ से लुढ़की और ८० फुट नीचे नदी में जा गिरी। दुर्भाग्य ने वहाँ भी पीछा न छोड़ा, नदी में पास ही २०फुट गहरा जल प्रपात था, कार उसमें जा गिरी, इस बची वह डूबने के लिये प्रयत्न करने लगी तो ऐसा जान पड़ा, किसी ने हाथ पकड़ कर ऊपर उठा लिया हो। वह बाहर निकल आई।

सन् १८७४ की बात है। इंग्लैण्ड का एक जहाज धर्म प्रचार के सिलसिले में न्यूजीलैण्ड के लिये रवाना हुआ। उसमें २१४ यात्री थे। वह विस्के की खाड़ी से बाहर ही निकला था कि जहाज के पेंदे में छेद हो गया। मल्लाहों के पास जो पम्प थे तथा दूसरे साधन थे उन, सभी को लगाकर पानी निकालने का भरपूर प्रयत्न किया, पर जितना पानी निकलता था उससे भरने की गति तीन गुनी तेज थी।

निराश का वातावरण बढ़ता जाता था। जब जहाज डूबने की बात निश्चित हो गई तो कप्तान ने सभी यात्रियों को छोटी लाइफ वोटों में उतर जाने और उन्हें लेकर कहीं किनारे पर जा लगने का आदेश दे दिया। डूबते जहाज में से जो जाने बचाई जा सकती हों, उन्हें बचा लिया जाय अब इसी की तैयारी हो रही थी।

तभी अचानक पम्पों पर काम करने वाले आदमी हर्षातिरेक से चिल्लाने लगे। उन्होंने आवाज लगाई कि जहाज में पानी आना बन्द हो गया। अब डरने की कोई जरूरत नहीं रही। यात्रियों ने चैन की साँस ली और जहाज आगे चल पड़ा। काल्पर्सडाक बन्दरगाह पर उस जहाज की मरम्मत कराई गई तब पता चला कि उस छेद में एक दैत्याकार मछली की पूँछ फँसकर इतनी कस गई थी कि न केवल छेद ही बन्द हुआ वरन् मछली भी घिसटती हुई साथ चली आई।

इस घटना से ऐसा लगता है कि ईसाई धर्म को मानने वाली किन्हीं पितर-सत्ताओं ने ही यह विलक्षण सहायता पहुँचाई होगी।

कई बार ऊपर से दीखने वाली विपत्ति के पीछे भी दिव्य अनुग्रह छिपा रहता है। तात्कालिक हानि कालान्तर में हानि उठाने वालों को भी सुखद सिद्ध होती है और साथ ही दूसरों का भी उससे भला होता है। इसलिए प्रत्येक हानि का दुर्भाग्य सूचक या दैवी कोप ही नहीं मान लेना चाहिए।

लीसवे का समुद्री प्रकाश स्तम्भ आजकल जहाँ खड़ा है वहाँ किसी जमाने में जहाजों के लिये भारी खतरा था। उस उथलेपन में फँसकर अनेकों जलयान या तो नष्ट हो जाते थे या क्षतिग्रस्त। उस स्थान पर प्रकाश स्तम्भ खड़ा करना भी सम्भव नहीं हो रहा था क्यों कि वहाँ की जमीन वालू की थी।

सन् १७७१ में एक जहाजी दुर्घटना हुई। एक रुई से लदा अमेरिकी जहाज-दुर्भाग्य का शिकार होकर उसी दलदल में फँसकर नष्ट हो गया। कुछ विचित्र संयोग ऐसा हुआ कि रुई बालू और उस जल के विचित्र सम्मिश्रण से रुई पत्थर जैसी कठोर हो गई। फलस्वरूप उसी की नींव पर प्रकाश स्तम्भ किया गया जिससे भविष्य में उस क्षेत्र में जहाज नष्ट होने की आशंका समाप्त हो गई। उस एक जहाज के डूबने से जो प्रकाश स्तम्भ बना उसके कारण अमेरिकी जहाज भविष्य के लिये उस तरह की दुर्घटना के शिकार होने से सदा के लिए बच गये और अन्य यानों को भी उस तरह के संकट से छुटकारा मिल गया। अभिशाप को वरदान में बदलने वाली दुर्घटना यह आशा दिलाती है कि किसी अनिष्ट के पीछे मंगल भी छिपा हो सकता है।

बहुत सम्भव है कि उदार अशरीरी आत्माओं ने ही दुर्घटनाग्रस्त जलयानों की क्षति से लोगों को बचाने के लिए इस रीति से रास्ता बनाया हो।

एक भारवाहक उच्छृंखल गधा एक रात चुपके से घर से खिसक गया। उसके मालिकों ने उसे कई दिन ढूँढने के बाद मुश्किल से एक जगह खड़ा पाया। अमेरिका की इट्टाही पहाड़ियों की जिस सुरम्य घाटी में यह गधा खड़ा था वहाँ कुछ देर सुस्ताने के बाद उसके मालिक रुके और वे लोग उसे घर ले चलने के लिए घसीटने लगे, पीटा भी पर वह अड़ियल बनकर खड़ा हो गया और लौटने से इनकार करने लगा।

मालिकों ने ध्यान से देखा तो दीखा कि वहाँ रजत सीसिया धातु की बहुत बड़ी खान है। इस पहाड़ी पर उन्होंने कब्जा कर लिया, इन दिनों के अमेरिकी कानून के अनुसार खाली जगह पर कब्जा करने वाले ही उसके मालिक हो जाते थे। कब्जा होने के बाद मालिकों की सरकारी स्वीकृति के लिये अर्जी दी गई। सन् १८६५ में इस प्रकार की अर्जियों की सुनवाई करने वाले इलाही अदालत के न्यायाधीश श्री नार्मन वक ने सारी कथा ध्यानपूर्वक

सुनी और उपरोक्त दोनों व्यक्तियों को कब्जा देते हुए अपने फैसले में यह भी लिखा कि इस खान का असली शोधकर्त्ता और कब्जा करने वाला वह गधा है इसलिए आमदनी के एक बड़े अंश का अधिकार गधा है।

यह स्थान आज वंकर पहाड़ी तथा सुल्ली खान के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी सम्पत्ति अब ४३ अरब डालर से भी अधिक है। अड़ियल गधा अपने शोध उपहार की आमदनी का एक बड़ा अंश प्राप्त करता रहा।

इस कम्पनी के मालिकों ने गधे के नाम की सम्पत्ति को परमार्थ प्रयोजनों के लिए सुरक्षित रखा और उससे वहाँ कितने ही लोकोपयोगी कार्यों की नींव डाली गई। अदृश्य सहायता को ऐसा ही सदुपयोग होना भी चाहिए।

उदार दैवी अनुदानों के कुछ प्रसंग

व्यावहारिक जीवन में मनुष्य एक-दूसरे की सहायता करते रहते हैं। इस सहकारी प्रवृत्ति के कारण ही मनुष्य बुद्धिमान बना और प्रकृति सम्पदा पर आधिपत्य कर सका है। सर्वथा एकाकी मनुष्य तो निजी सामर्थ्य को देखते हुए अन्यान्य प्राणियों से भी गया बीता और दुर्बल असमर्थ सिद्ध होता है। सहकार ही स्वभावगत वह वैभव है, जिसका अभ्यास होने के कारण मनुष्य क्रमशः अधिक ऊँचा उठता और आगे बढ़ता चला गया है।

मनुष्यों में से जो जितने घटिया हैं, वे उतने ही संकीर्ण स्वार्थपरता से ग्रसित देखे जाते हैं, उन्हें अपने काम से काम एवं अपने मतलब से ही मतलब रहता है। दूसरों का दुःख दर्द समझने और उदार सहकार देने जैसी भावना उठती ही नहीं, सूझ जगती ही नहीं। ऐसे में कोई दुःखी जरूरतमन्द है या नहीं। यह सोचने-देखने की उन्हें फुरसत ही नहीं होती। किन्तु सभी ऐसे नहीं होते। बौद्धिक पिछड़ेपन की तरह यह भावनात्मक अधःपतत पाया तो अनेकों में जाता है, पर सब वैसे नहीं होते। अनेकों की प्रकृति में मानवी गरिमा के अनुरूप आत्मीयता एवं उदारता का भी बाहुल्य होता है और वे मिल-बाँटकर खाने की नीति पर विश्वास करते हैं। औरों का दुःख बँटा लेने और अपना सुख बाँट देने की ललक जगी रहने से वे सेवा साधना के अवसर ढूँढ़ते रहते हैं और जब भी, जहाँ भी सम्भव होता है अपनी उत्कृष्टता का परिचय देते हैं सेवा धर्म अपनाने वालों को देवता कहा जाता है। देवोपम अन्तःकरण प्राप्त कर लेना मनुष्य का सर्वोपरि सौभाग्य माना गया है।

शरीर न रहने पर भी आत्मा का अस्तित्व अक्षुण्ण बना रहता है। मरण और जन्म के मध्य ऐसी ही स्थिति रहती है। इसमें प्रत्यक्ष पंच भौतिक कलेवर न रहने पर भी उनमें क्षमता विद्यमान रहती है, जिसके सहारे अपनी उदारता का परिचय दे सकें और सेवा साधना की दृष्टि रखकर दूसरों की सहायता कर सकें। ऐसी ही आत्माएँ देवता कहलाती हैं और वे अपनी स्थिति में रहते हुए भी लोक-कल्याण के लिए कुछ न कुछ करती रहती हैं।

कितने ही अवसरों पर किन्हीं-किन्हीं को अदृश्य सहायताएँ मिलती रहती हैं। इन्हें दैवी अनुदान या वरदान माना जाता है। ऐसी उपलब्धि जिन्हें प्राप्त हुई हैं, उनके उदाहरण समय-समय पर सामने आते रहते हैं।

सन् १८६७ की घटना है। बेल्जियम के पियरे ड्रिरूडर नामक व्यक्ति का पैर पेड़ पर से गिरने के कारण टूट गया। हड्डी जुड़ी नहीं वरन् नासूर की तरह रिसने लगी। जख्म किसी तरह भरता नहीं था। बड़ी कठिनाई से ही वे किसी प्रकार दर्द से कराहते पट्टी बाँधें थोड़ी दूर चल सकते थे। जहाँ से पैर टूटा था, वह जगह टेढ़ी-कुबड़ी हो गई थी। ऐसी स्थिति तक पहुँचे हुए मरीज ठीक कर देने का वायदा किसी सर्जन ने भी नहीं किया।

निराश पियरे के मन में एक दिन उमंग उठी, वे सन्त लारेन्स की समाधि तक घिसटते-घिसटते पहुँचे। घुटने टेककर देर तक रोते और दिवंगत सन्त की आत्मा से सहायता की प्रार्थना करते हुए दिन भर बैठे रहे।

सन्ध्या होते-होते वापस लौटने का समय आया तो वे सामान्य मनुष्यों की तरह उठकर खड़े हो गये और सही पैर लेकर घट लौट आये। परिचितों में से किसी को भी इस घटना पर विश्वास न हुआ। प्रत्यक्ष देखने वालों की भारी भीड़ लगी रही। सभी की जीभ पर अदृश्य वरदान की चर्चा थी ।

सन् १६८५ में फ्रांस के राजा लुईस चौदहवें के विरुद्ध जनता ने विद्रोह कर दिया। १७०२ में जगह-जगह गुरिल्ला युद्ध होने लगे। सेना नायक क्लैरिस नामक एक प्रोटेस्टैन्ट विद्रोही था। राजा को परास्त करने और अपने को वरिष्ठ योग्य घोषित करने के लिए उसने अग्नि परीक्षा देने की बात कही।

लकड़ियों से ऊँची चिता बनाई गई और क्लैरिस भाव समाधि की स्थिति में उस पर चढ़कर खड़ा हो गया। चिता में आग लगा दी गई। धीरे-धीरे आग की लपटों ने क्लैरिस को चारों तरफ से घेर लिया और क्लैरिस मैदान में उपस्थित ६०० लोगों

की भीड़ को सम्बोधित करता रहा। लकड़ियाँ जलकर राख होगई। आग घुश गई तब तक क्लैरिस का भाषर्ण चलता रहा। क्लैरिस अग्नि परीक्षा में विजयी रहा उसे आँच तक नहीं आई।

दक्षिण इटली के फोगिया कस्बे में एक दम्पति के यहाँ नौ वर्षीय बालक जियोवेनियो-लिटिल जान रीढ़ की बीमारी के कारण नन्हें बच्चों जैसा घिसट-घिसट कर हाथ-पैरों के बल चला करता था। एक दिन जियोवेनियों फोगिया की सड़कों पर घिसटता चल रहा था, अचानक उसे अपने पीठ पर दिव्य स्पर्श का अनुभव हुआ। नजर उठाकर ऊपर देखा तो बगल में पादरी पैड्रेपियो खड़े थे कुछ पूछने से पहले ही पादरी चले गये और जियोवेनियो कृतज्ञता से पादरी की कृपा को मन ही मन सराहता रहा। उसकी अपंगता दूर हो गई थी। उठ खड़ा हुआ और दौड़ता हुआ अपने घर आया। पादरी पैड्रेपियो की कृपा से वह कृतार्थ हो चुका था।

सन् १८८१ के मध्य में कैप्टन नीलकरी अपने दो बच्चों के साथ लारा जहाज को लेकर लीयस्पूल के साथ फैन्सिस्को की ओर समुद्री लहरों के साथ आँख मिचौनी खेलते गन्तव्य की ओर बढ़ते चले जा रहे थे। फैन्सिस्को की पश्चिमी खाड़ी से १५०० मील पूर्व लारा में आग लग गई। कैप्टन नील अपने परिवार तथा ३२ अन्य जहाज कर्मियों के साथ जान बचाने के लिए लारा को छोड़कर तीन छोटी लाइफबोटो पर सवार हो गये।

लम्बी जलयात्रा तय करते हुए सभी व्यक्तियों को प्यास सताने लगीं। दूर-दूर तक फैले अथाह समुद्र में पीने योग्य मीठे पानी का कहीं कोई चिन्ह नहीं दिखाई दे रहा था। प्यास के मारे ३६ सदस्यीय यात्रियों में से ६ जहाजकर्मी बेहोश हो गये।

कैप्टन करी को निद्रा आ गई और स्वप्न में देखा कि पास में कुछ दूरी पर समुद्र के छोटे से घेरे में हरा पानी है जो पीने योग्य है। निद्रा भंग हुई और कैप्टन का जहाज हरे पानी पर तैर रहा था। थोड़ा सा पानी एक वेसल में लेकर कैप्टन ने पिया तो पाया कि स्वप्न में देखे पानी से अधिक मीठा एवं स्वच्छ जल था। सभी ने पानी पिया और जीवन की सुरक्षा की कैप्टन कुरी ने इसे एक समुद्री नखलिस्तान की संज्ञा दी। यह कैसे किस प्रकार उन्हें उपलब्ध हुआ, इसकी पूर्वापर संगति बिठा सकने में कोई समर्थ नहीं था।

घटना अमेरिका की है। एडविन रोबिन्सन एक ट्रक ड्राइवर था। वह प्राय: लम्बी दूरी की यात्रा करता, माल लाया और ले जाया करता था। जब उसकी आयु ५३ वर्ष की हुई, तो एक दिन एक सड़क दुर्घटना में उसकी आँखें चली गई और वह अंधा हो गया। कान भी लगभग बहरे हो गये थे। विशेषज्ञों ने उसकी जाँच करने के उपरान्त एक स्वर से यही कहा कि अब रोबिन्सन इस दुनिया को नहीं देख सकेगा। कान के बारे में भी उनके ऐसे ही विचार थे। अतीन्द्रिय चिकित्सकों ने भी उसे असाध्य घोषित कर दिया था। अब रोबिन्सन अंधों की भांति छड़ी के सहारे चलता और श्रवण यंत्र की सहायता से सुनता था। जिंदगी उसे भारभूत प्रतीत होने लगी थी, किन्तु फिर भी नियत का सुनिश्चित निर्धारण समझ कर वह उसे ज्यों-त्यों करके खींच रहा था। उसमें न पहले जैसा उत्साह रहा, न उमंग। जीवन नीरस और ऊबाऊ लगने लगा था। कई बार वह अपनी विकलांगता से इतना खिन्न हो जाता कि जीवन त्यागने की बात सोचने लगता। ऐसे हर अवसर पर उसे एक ऐसी शक्ति का आभास होता, जो उसे आन्तरिक सम्बल प्रदान करती जान पड़ती। वह पुन: नये जोश से जीवन आरम्भ करता, किन्तु कुछ ही दिनों में फिर वहीं अवसाद घेर लेता। इसी आशा-निराशा के बीच वह जीता चला जा रहा था। नौ वर्ष इसी तरह गुजर गये।

सन् १९८० की बरसात को एक दिन रोबिन्सन की मुर्गी का चूजा उसके फालमाउथ मैन स्थित मकान के गैराज के नजदीक दाने चुग रहा था। रोबिन्सन को इसका पता नहीं था। अत: वह अपने प्रिय चूजे का पता लगाने के लिए निकल पड़ा। हर दिन की तरह आज भी उसके हाथ में एल्यूमिनियम की छड़ी थी और कानों में श्रवण यंत्र लगा हुआ था। अभी वह थोड़ी ही दूर सामने के वृक्ष के निकट गया था कि दुर्भाग्य ने फिर उस पर आघात किया। पेड़ पर अकस्मात् बिजली गिर पड़ी और रोबिन्सन बेहोश हो गया। बीस मिनट पश्चात् जब उसकी चेतना लौटी, तो वह आश्चर्यचकित हो रहा था। उसका अंधत्व गायब हो चुका था। अब वह अच्छी प्रकार देख सकता था। उसका श्रवण उपकरण जल कर पूरी तरह नष्ट हो चुका था, किन्तु इसके बिना भी सम्प्रति रोबिन्सन अच्छी तरह सुन सकता था।

उसका पूरी तरह परीक्षण करने के पश्चात् मूर्धन्य नेत्र विशेषज्ञ डॉ० अल्बर्ट मोल्टन का उद्गार था कि वह नहीं जानता कि इसकी व्याख्या कैसी की जाय, पर यह सत्य है कि रोबिन्सन अब अंधा नहीं रहा। वह सब कुछ देख सकता है। उनने इसे चमत्कार की संज्ञा देते हुए कहा कि ऐसे प्रकरण स्थूल बुद्धि की पहुँच से परे के विषय हैं, अस्तु इनकी वैज्ञानिक व्याख्या सम्भव नहीं। जो सम्भव है, वह इतना ही कि प्रकृति के विभिन्न रहस्यमय प्रसंगों में से एक इसे मान लिया जाय और यह दुराग्रह छोड़ दिया

जाय कि यह किस भाँति सम्पन्न हुआ, क्योंकि सूक्ष्म का अनुसंधान करने और गहरी पैठ रखने वाली बुद्धि का विकास हुए बिना ऐसी गुत्थियों का समाधान शक्य एवं सरल नहीं।

घटना के एक माह बाद एक और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित हुआ। रोबिन्सन जो कि विगत ३५ वर्षों से गंजा था। उसके सिर पर घने बाल उग आये। चिकित्सकों के अनुसार उसका गंजापन आनुवंशिक था, अतः बिना किसी उपचार के इतने लम्बे अन्तराल बाद उनका पुनः उग आना चमत्कारिक ही कहा जायेगा। एक अन्य आश्चर्यजनक बात घटना के दिन जो देखने में आयी, वह यह कि पेड़ और श्रवण यंत्र दोनों ही जलकर बरबाद हो गये, पर रोबिन्सन इससे सर्वथा अछूता बना रहा।

इन सब तथ्यों को देखने के उपरान्त यही कहा जा सकता है कि उस "अघटन-घटना पटीयसी" के लिए असम्भव को सम्भव कर दिखाना कठिन नहीं। मुश्किल तो मनुष्य के लिए हो सकती है, पर जिसने इतनी विलक्षण सृष्टि गढ़ी और खड़ी की है, भला उस सत्ता के लिए यह सब दुस्साध्य क्यों कर होना चाहिए? हम यदि उससे सघन सम्पर्क कर सकें, उसकी चेतना को स्वयं में अवतरित कर सकें, तो न सिर्फ अपने अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकेंगे, वरन् उन गुत्थियों को सुलझाने में भी समर्थ हो सकेंगे, जो अनसुलझी बनी हुई हैं व परिष्कृत चेतना की माँग करती हैं।

दी रूट्स आफ कोइन्सीटैन्स' में कोस्लर ने स्पष्ट लिखा है- " हम निःसन्देह ऐसे चमत्कारों से घिरे हैं जिनके अस्तित्व की तब तक हम उपेक्षा करते रहे। फलतः इसे अन्धविश्वास से अधिक कुछ माना नहीं गया, इसलिए मनुष्य ने सदियों तक यह नहीं समझा कि वह सूक्ष्म शक्तियों से घिरा है।" आगे उन्होंने कहा कि-"यह निश्चित है कि हम एक ऐसे मानसिक चुम्बकीय क्षेत्र में वास करते हैं, जो संयोग जैसी घटनाओं को प्रेरित करता है।"

न्यूजीलैण्ड के कुक जलडमरु मध्य में दो महिला नाविकों की जान एक मृत ह्वेल मछली ने बचाई। नाव समुद्री चक्रवात में फँसकर डूब गयी। नाविक महिलाएँ थीं। वे कुछ दूर तक तैरी उसी बीच उन्हें एक ह्वेल मछली की लाश पानी में तैरती हुई मिल गई। वे उस पर चढ़ गयीं। और नाव की तरह उसी को खेती हुई किनारे पर आ लगीं।

मेरी गैलेन्ट प्रान्त के फ्रांसीसी गवर्नर की तीन वर्षीय पुत्री एक समुद्री यात्रा पर गयी। रास्ते में बीमार पड़ी और मर गयी। उसकी लाश बोरों में जल संस्कार के लिए सीं ली गयी। कुछ समय उपरान्त देखा गया कि जहाज की पालतू बिल्ली लाश के पास चक्कर काटती है। आमतौर से बिल्लियाँ लाश से दूर रहती हैं। सन्देह हुआ कि बच्ची जीवित तो नहीं है। बोरा खोला गया तो लड़की हलकी सी साँस चलती मिली। उसका उपचार चला और ठीक हो गयी। बड़ी होने पर उसका विवाह फ्रांस के राजा लुई चौदहवें के साथ हुआ और वह ८४ वर्ष की आयु तक जीवित रही।

सन् १८२५ में पश्चिम जर्मनी के समुद्र तट पर पालने में बैठे हुए दो बच्चे पाये गये। भयानक समुद्री बाढ़ आई थी। असंख्यों घर पविार उसमें डूब गये। किसी माता ने अपने इन बच्चों को तैरने की सुविधा सोचकर पालने से बाँध दिया होगा। वे डूबे नहीं किनारे पर आ लगे। उन्हें एक समुद्री जहाज के मालिक ने उठाया और पाल लिया। बड़े होकर वे पालने वाले के उत्तरधिकारी बने और जहाजों के मालिक कहलाये। जिन्दगी उनने समुद्र में ही बिताई अन्ततः किसी समुद्री तूफान में फँसकर जहाज समेत समुद्र के गर्भ में ही समा गये।

इसी प्रकार अमरीका की एक युवती प्रथम योरोपीय महायुद्ध के समय "लूसिटोनिया" नामक जहाज से इंग्लैण्ड की यात्रा करने वाली थी। वहाँ उसे अपने एक सहेली के विवाह में प्रधान सहचरी के रूप में भाग लेना था। उसने बड़े उत्साह के साथ यात्रा की तैयारियाँ की। पर उसकी माता इस यात्रा से सहमत न थी और उसने अपनी पुत्री के घर से रवाना होते समय कहा कि "अगर यह लड़की इस जहाज से गई तो हम उसे फिर जिन्दा न देखेंगे। तो भी वह उसके विरोध की परवाह न कर अगस्त १९५९ को न्यूयार्क पहुँच गई। दूसरे दिन दोपहर के १२ बजे जहाज रवाना होने वाला था। दिन भर वह घूम-घूम कर न्यूयार्क स्थिति मित्रों से मिलती रही। सबने उसे बधाई व तोहफे दिये पर रात के समय जैसे ही वह सोने को गई उसके कान में एक अदृश्य आवाज सुनाई दी कि "इस जहाज पर सवार होने वाला फिर नहीं लौटेगा।" इससे उसे बड़ी बेचैनी हुई और रात का ज्यादा भाग जागते हुये ही बीता। सुबह होने पर रात के संघर्षमय विचार लुप्त हो गये और फिर उसके मन में साहस का संचार हुआ और वह अपने सामान को यात्रा के लिये ठीक करने लगी।

जैसे ही सामान जहाज पर ले जाने को कुली ने दरवाजा खटकटाया कि उसको फिर वही प्रेरणा का स्वर सुनाई दिया-"अब भी समय है, आज के जहाज पर सवार होने वाला नहीं लौटेगा।"

अब उसका साहस जाता रहा और उसने बिना दरवाजा खोले ही कुलियों को लौटा दिया। फिर वह दौड़ी-दौड़ी जहाज पर गई और अधिकारियों से कहा कि मेरा पासपोर्ट नहीं आया है, इस लिए मैं जाने में असमर्थ हूँ। जहाज के अधिकारी उसे उसी समय स्थान देने के तैयार थे कि पासपोर्ट आता रहेगा,

पर वह कुछ और बहाना बनाकर चली आई। घर लौटने पर उसके अनेक मित्रों ने उसकी ऐसी अस्थिर बुद्धि पर उलाहना भी दिया। पर एक सप्ताह बाद ही जब सब लोग चाय के टेविल पर बैठे गप शप कर रहे थे, अचानक टेलीफोन की घंटी बज उठी। छोटी बहिन संदेश सुनने को गई और उसे सुनते ही उसका चेहरा पीला पड़ गया। उनके एक मित्र ने उसे बतलाया कि लूसिटेनिया जहाज आयरलैण्ड के पास जर्मन गोताखोर नाव द्वारा डुबा दिया गया। उसके हजार बारह सौ व्यक्तियों में से शायद ही कोई बचा हो।"

ऐसे अनुदान कभी-कभी किन्हीं को अनायास भी मिल जाते हैं, यह अपवादों की बात हुई। उनके पीछे निश्चित आधार यह है, कि मनुष्य अपने व्यक्तित्व को वैसा बनाये जैसा देव वर्ग को प्रिय है। आत्म-परिशोधन की तपश्चर्या में तथा लोक-मंगल की सेवा-साधना में संलग्न की ऋषि-कल्प व्यक्तियों को ऐसे अनुदान अपनी पात्रता के आधार पर विपुल परिमाण में उपलब्ध होते रहते हैं। ऐसे प्रमाणों की एक लम्बी शृंखला हैं पात्रता विकसित की जा सके। तो हर कोई दैवी अनुकम्पा पाकर अदृश्य जगत से लाभान्वित हो सकता है।

प्रत्यक्ष एवं परोक्ष के मध्य सघन सम्पर्क स्थापित हो

यदि मनुष्य शरीर चेतना शक्ति और पदार्थ सत्ता के सम्मिश्रण से बना पिण्ड है तो ठीक उसी प्रकार यह ब्रह्माण्ड भी दोनों ही शक्तियों के समन्वय का विराट् स्वरूप हैं। ब्रह्माण्ड में हर व्यक्ति के लिये जीवधारी के लिये स्तर के अनुरूप ढेरों पदार्थ सम्पदा व अनन्त चेतन सामर्थ्य भरी पड़ी है। पिण्ड व ब्रह्माण्ड में परस्पर आदान-प्रदान चलता रहता है। अदृश्य जगते में सूक्ष्म जीवधारियों की अपनी अनोखी दुनियां है। पृथ्वी पर विचरण कर रहे जीवधारियों के साथ उनके सम्पर्क आदान-प्रदान के उदाहरण बहुधा मिलते रहते हैं। क्रुद्ध-असन्तुष्ट दुर्गतिग्रस्त आत्माओं के रूप में प्रेत तथा श्रेष्ठ समुन्नत जीवन जी रही आत्माओं के रूप में पितर आत्माएँ इस अदृश्य लोक में सतत् भ्रमण करती रहती हैं।

अदृश्य जगत की इन सूक्ष्म शरीर धारी आत्माओं से किसी को भय नहीं होना चाहिए। जीवित या दिवंगत दोनों ही प्रकार की आत्माओं को पारस्परिक सम्पर्क का अनुभव न होने से जीवधारियों का कभी-कभी आतंकित होना स्वाभाविक है। लेकिन यह एक ऐसा प्रकरण है जिसे आत्मिकी के आधार पर सुनियोजित रूप से अधिक अच्छी तरह अधिक व्यापक एवं योजनाबद्ध प्रयोजनों के लिए खोला जा सकता है। यदि अदृश्य आत्माएँ किसी सुनिर्धारित आचार संहिता के आधार पर मानव जगत के साथ सम्पर्क साधें तो दो लोकों के बीच महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान चल सकता है। मृतकों व जीवितों के बीच पुरातन काल में भी ऐसा ही परस्पर उपयोगी प्रत्यावर्तन चलता था। आज भी ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं जिनसे पितरों के अदृश्य सहायक के रूप में सहयोगी होने के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। इनसे कम से कम उन भ्रान्तियों को मिटा सकने में तो मदद मिलती ही है जो इस विषय में जन-मानस में बुरी तरह संव्याप्त है।

दृश्य एवं अदृश्य जगत के मध्य सम्पर्क एवं आदान-प्रदान के ऐसे कई प्रसंग कई विख्यात विभूतियों से जुड़े हुए हैं जिनसे उनके विवादास्पद होने का सन्देह होने की गुंजाइश रह ही नहीं जाती। इन सभी से यह स्पष्ट होता है कि इन व्यक्तियों ने देव स्तर की आत्माओं का सहयोग प्राप्त कर उनसे लाभ उठाया।

महर्षि अरविन्द के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे जब अलीपुर जेल में थे तब दो सप्ताह तक लगातार विवेकानन्द की आत्मा ने उनमें सम्पर्क किया था स्वयं अरविन्द ने लिखा है "जेल में मुझे दो सप्ताह तक कई बार विवेकानन्द की आत्मा उद्बोधित करती रही और मुझे उनकी उपस्थिति का भान होता रहा। उस उद्बोधन से मुझे आध्यात्मिक अनुभूति हुई। भावी साधनाक्रम हेतु महत्त्वपूर्ण निर्देश भी मिले।"

सन् १९०१ में जब अरविन्द प्रेतात्माओं के सम्पर्क का अभ्यास किया करते थे, इस अभ्यास में एक बार रामकृष्ण परमहंस की आत्मा ने भी अरविन्द को समष्टि की साधना हेतु कुछ महत्वपूर्ण निर्देश दिये थे। अरविन्द जिन दिनों बड़ौदा में रह रहे थे, उन दिनों का एक अनुभव बताते हुए उन्होंने लिखा है कि एक बार जब वे कैम्प रोड शहर की ओर जा रहे थे तब एक दुर्घटना से किसी ज्योति पुरुष ने उन्हें बचाया।

श्री अरविन्द के जीवन चरित्र के श्री मां प्रकरण में इस प्रकार की घटनाओं का विवरण देते हुए लिखा गया है, "वे (श्रीमा) जब छोटी सी बालिका थी, तब उन्हें बराबर भान होता रहता था कि उनके पीछे कोई अति मानवी शक्ति है जो जब तब उनके शरीर में प्रवेश कर जाती हैं और तब वे बड़े-बड़े अलौकिक कार्य किया करती।" इस प्रकरण में उस दिव्य शक्ति द्वारा श्रीमां के कई काम सम्पन्न करने को अनेक घटनाएँ वर्णित हैं। पाण्डीचेरी आकर रहने व अरविन्द से सम्पर्क करने का निर्देश भी उन्हें एक अदृश्य ज्योति सत्ता से ही मिला था।

अनेक वर्ष पहले की बात है, स्टेनफोर्ड नगर में सी० वेइली नामक एक व्यक्ति रहता था। उसे कोई अदृश्य देवता सिद्ध था, जिसकी सहायता से अनेक अद्भुत वस्तुएँ वह पल भर में मँगा देता था। मि० फोर्ड ने वेइली को आर्थिक आश्रय दिया और उसकी सचाई की परीक्षा के लिए एक बड़ी भारी सभा में उसे उपस्थित किया। दर्शकों ने वेइली से बड़ी विचित्र चीजें माँगीं। उसने क्षण भर में उन चीजों को मँगा दिया। इन चमत्कारों की चर्चा उस देश के ऊँचे लोगों तक पहुँची और वहां की सबसे बड़ी वैज्ञानिकों की सभा ने फोर्ड और वेइली को चुनौती भेजी कि यदि उनकी बातें सच हैं तो एक विशाल प्रदर्शनी में अपनी सचाई सिद्ध करें। फोर्ड ने वह चुनोती स्वीकार करली और मेल्वार्न नगर की उस सबसे बड़ी प्रदर्शनी के सामने, जिसमें देश भर के प्रख्यात तार्किक, वैज्ञानिक, अन्वेषक और शोधक उपस्थित थे, देवता के करतब दिखाये और दर्शकों की मांगी हुई ऐसी-ऐसी वस्तुऐं हाजिर करदीं जिनके बारे में किसी को ख्याल तक नहीं था। दर्शकों में से एक ने टर्की देश का वह अखबार मांगा जो ठीक उसी समय वहां छप रहा हो। उसी क्षण वह अखबार हाजिर कर दिया। छपाई की स्याही भी सूखने न पाई थी कि हजारों मील उड़कर पल भर में वह अखबार आ गया। इन चमत्कारों को देखकर शीया पेरेली, काउण्ट बाउडी डिवेस्में, प्रोफेसर फरल कमेर, जिग्नोर, बर्जीनिया पेरो प्रो०सोसी, डिगिस्टी नियानी, सरीखे गणमान्य पुरुषों को यह बात मुक्त कण्ठ से स्वीकार करनी पड़ी कि इसमें रत्ती भर भी छल कपट नहीं है और यह किसी अदृश्य शक्ति का ही काम है।

एक फोर्ड या वेइली ही नहीं, अनेक महानुभाव इन अदृश्य प्राणियों के अद्भुत कार्यो का प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके हैं। आत्मा के न मानने वाले जड़ विज्ञान के अन्वेषकों में से भी जिन लोगों ने इस तत्व का अन्वेषण किया है उनमें से अधिकांश को अपना अविश्वास छोड़ना पड़ा है। डार्विन का साथी कार्यकर्ता और साइन्स का अग्रिणी विद्वान, आलफ्रेड रसेल वालेस, इंगलैण्ड की रायल सोसाइटी के सदस्य और फ्रांस की एकेडेमी आफ साइन्स से स्वर्ण पदक प्राप्त एवं रेडियोमीटर आथियोस्कोप सरीखे यन्त्रों के आविष्कारक प्रोफेसर बिलियम क्रुक्स, हावर्ट कालेज के प्रोफेसर सर जेम्स, कोलम्बिया कॉलेज के प्रोफेसर हिन् लौप, खगोल विद्या के आचार्य केमिल फ्लेमेरियोगा, आयरलैण्ड के वैज्ञानिक प्रो० वेरेट आदि अनेक महानुभावों को उनके अपने अनुभवों ने इस बात को मानने के लिए मजबूर कर दिया है कि दृश्य मनुष्यों की भाँति कोई अदृश्य प्राणी भी इस दुनियां में मौजूद हैं और वे यदा कदा सांसारिक कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं।

प्रेतों की कितनी ही किस्में कही जाती हैं जैसे-भूत, प्रेत, जिन्न, मसान, वैताल, पीर, भैरव आदि। यह दो प्रकार के माने जाते हैं। छोटी योग्यता और नीच इच्छा वाले अदृश्य प्राणी भूत प्रेत कहलाते हैं और ऊँची शक्ति एवं उत्तम इच्छा वाले प्राणी देवी देवता कहे जाते हैं। भूत प्रेत अक्सर पूर्व जन्म की इच्छाओं से प्रेरित होकर अपना विग्रह अनुग्रह प्रकट करते हैं। किन्तु देवी देवताओं को तप साधना द्वारा वश में किया जाता है। योग दर्शन में जिन ऋद्धि-सिद्धियों का वर्णन किया है वे देवियाँ हर किसी पर अनुग्रह नहीं करतीं। वरन् तपस्वियों पर ही प्रसन्न होती हैं। योग साधना करने वाले तपस्वी तथा कठोर वाममार्गी, हठ अनुष्ठान करने वाले तान्त्रिक ही ऋद्धि-सिद्धियों को धारण किये हुए देखे जाते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि भूत प्रेत चाहे भले ही किसी पर स्वेच्छा से विग्रह-अनुग्रह करें पर ऊँची शक्ति वाले देवी देवता घोर अध्यात्मिक साधन करने वाले साधकों के ऊपर ही कृपा करते हैं। सिद्ध लोगों के जीवन क्रम का, रहन सहन का, आचार व्यवहार का परीक्षण किया जाय तो वे एक विचित्र ढंग के सांचे में अपने को ढले हुए मिलेंगे, साधारण व्यक्तियों से उनकी स्थिति बहुत ही भिन्न होगी। यह भिन्नता प्रकट करती है कि उनका जीवन साधनामय बना हुआ है। तपस्या के कारण देवताओं की कृपा उन्हें प्राप्त हुई हैं या देवता की कृपा प्राप्त करने के लिए वे तपस्या कर रहे हैं, बात चाहे जो भी हो परन्तु यह निर्विवाद है कि देवताओं का तपस्या से ही, इन सिद्धियों का अत्यन्त घना सम्बन्ध है इतिहास में भी ऐसे ही आख्यान मिलते हैं जिनमें तपस्या से प्रसन्न होकर किसी देवता का प्रकट होना और मनोवाच्छा पूरी करना सविस्तार वर्णित है।

देवी देवताओं का यह स्वभाव बड़ा रहस्यमय है कि कोई दूसरा व्यक्ति घोर कष्ट सहन करे, कठोर आध्यात्मिक परिश्रम करे तो उन्हें बहुत प्रसन्नता होती है और अनायास ही उस साधक के वशवर्ती हो जाते हैं। विक्रमादित्य को 'वीर' सिद्ध थे। ये वीर उसकी आज्ञा में हर वक्त खड़े रहते थे। ऊपर वेइली के वश में अदृश्य प्राणी के होने का वर्णन है। यह प्राणी मोटी दृष्टि में भूत प्रेत समझा जा सकता है, पर बरीक दृष्टि से देखने पर वह देवता कोटि में आता है, क्योंकि भूत प्रेत किसी के आज्ञानुवर्ती नहीं बनते, वे मन मौजी काम करते हैं किन्तु सिद्ध हुआ देवता सेवक की तरह हुक्म बजाता है। सिद्ध योगी एवं तांत्रिकों के पास मनमौजी भूत नहीं, वरन् आज्ञाकारी देवता होते हैं। भूतों के तो विग्रह अनुग्रह दोनों ही अन्ततः हानिकारक सिद्ध होते हैं, किन्तु देवता का वश में हो जाना एक बड़ी सफलता है। पाठकों को

भूत और देवताओं का अन्तर भली प्रकार समझ लेना चाहिए। भूत अपनी ओर से आते हैं किन्तु देवता बड़े प्रयत्न से बुलाये जाते हैं। कभी-कभी कोई भूत विशेष अनुग्रह करें तो देवता स्वभाव का थोड़ा बहुत परिचय दे सकते हैं पर उसकी यह कृपा अस्थिर एवं अनिश्चित ही होती है।

'देव सिद्धि' वास्तव में एक बड़ा भारी पौरुष है। अनेकों मनुष्यों की कुछ अंशों में कोई देवी देवता सिद्ध होते हैं, पर वे उसके सम्बन्ध में कुछ अधिक होते हैं, पर वे उसके सम्बन्ध में कुछ अधिक जानकारी नहीं रखते। अपने में कुछ विशेष शक्ति उन्हें प्रतीत होती है, कभी-कभी ऐसे भी अनुभव आते हैं कि किसी आवश्यक मौके पर अचानक ईश्वरीय सहायता प्राप्त होती है। असल में यह शक्ति एवं सहायता देवता की ही प्रेरित होती है। ईश्वर तो एक साक्षी तत्व है वह प्राणियों के दैनिक काम काज में हस्तक्षेप नहीं करता। अदृश्य सहायता एवं प्रेरणाएँ तो उन देवताओं से ही प्राप्त होती हैं। हर कोई जानता है कि जो जितना परिश्रमी, उद्योगी तथा तपस्वी होता है उसे उतनी ही ईश्वरीय सहायता मिलती है कारण यह है कि उस व्यक्ति की तपस्या जितने परिणाम में होती है उसी अनुपात की देव कृपा प्राप्त हो जाती है।

मरने के बाद भी आत्माएँ धरती वासियों से सम्बन्ध रखे रहती हैं

वियेना के प्रख्यात चित्रकार जोसेफ आयनागार-के पीछे-पीछे मौत का साया फिरता था। जाने अनजाने उसे कई बार मौत ने घेरा, पर उसका अदृश्य एवं अपरिचित सहायक उसे हर बार बचाता रहा। सन् १८८० में बुडा-पेस्ट में उसने फांसी लगा कर आत्महत्या की। बचाने के लिए वही अदृश्य सहायक पहुँचा और रस्से से नीचे उतार लिया। सन् १८४८ में क्रान्तिकारी के रूप में शासन ने उसे मृत्यु दण्ड दिया। तब भी उस अपरिचित यूनियन भिक्षु ने राजा से मिलकर प्राणदण्ड रद्द कराया। अन्तत:उसने ६८ वर्ष की आयु में अपने सीने में आप गोली मार कर आत्महत्या कर ली। अन्तिम संस्कार कराने के लिए भी वही भिक्षु उपस्थित रहा।

सन् १५६३ की बात है। फ्रांसीसी ड्यूक डिगाइज की हत्या के अपराध में जानपाल ट्रीट नामक एक व्यक्ति को मृत्यु दण्ड दिया गया। मारने का तरीका यह निश्चित किया गया कि उसके दोनों हाथ दोनों पैर चार अलग-अलग मजबूत घोड़े से बाँध दिये जांय। घोड़े एक साथ दौड़ाये जांय ताकि अपराधी के चार टुकड़े हो जांय। नियत व्यवस्था के अनुसार सेना के बलिष्ठ घोड़ों को घुड़सवारों द्वारा दौड़ाया गया पर आश्चर्य यह है कि घोड़े आगे बढ़ न सके। कैदी इतना मजबूत था कि उसका कोई अवयव न तो उखड़ता था न ढीला पड़ता था। घोड़े तीन बार बदले गये। बारहों घोड़े जब असफल रहे तो उसे रिहा कर दिया गया। उसका कहना था कि इस कार्य में उसके पूर्वजों ने अदृश्य रूप से सहयोग दिया।

मैसूर के राजा ने नई तोप के उद्घाटन के अवसर पर उस क्षेत्र के एक प्रख्यात साधु से आशीर्वाद माँगा। इनकार किये जाने पर राजा बहुत क्रुद्ध हुआ और साधु को उसी तोप की नली से बाँधकर उड़ा देने का हुक्म दिया। वैसा ही किया भी गया। पर साधु मरा नहीं। पहली बार जब उसे बारूद भरी नली ने उड़ाया तो ८०० फुट ऊँचाई पर उछल कर बहुत दूर खड़े हाथी की अम्बरी पर जा गिरा। पकड़कर लाया गया और दुबारा फिर उसे उसी प्रकार तोप से कसा और उड़ाया गया। इस बार यह एक दूरस्थ झोंपड़ी के छप्पर पर जा गिरा। और साफ बच गया। तीसरी बार उसे फिर नहीं बाँधा गया।

सन् १९१९ में लिवरपूल में जेम्स नामक एक व्यक्ति के साथ जो बहुत पहले कभी फौज में रह चुका था एक घटना घटित हुई। लड़ाई के दौरान तोपों की भयंकर गर्जना के कारण उसके कान के पर्दे फट गये और वह बहरा हो गया था। पेंशन पर आ जाने के बाद एक रात उसने स्वप्न में देखा कि वह लिवरपूल के पवित्र सेंट विनिफ्रेड कूए के पास खड़ा होकर उसमें से जल निकाल कर स्नान कर रहा है जैसे ही पानी शरीर पर पड़ा कि शीत की-सी कपकपी लगी और इसी क्षण उसकी नींद टूट गई। वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। पास में सो रहे उसके घर वालों ने पूछा-कौन ! यह शब्द सुनते ही उसके जीवन में नया प्रकाश आ गया उसने आश्चर्यपूर्वक बताया -मैं हूँ जेम्स, पर यह क्या, हुआ-जिस बहरेपन को डॉक्टर नहीं ठीक कर पाये वह एक स्वप्न ने ठीक कर दिया।

प्रथम योरोपीय महायुद्ध में एक अंग्रेज फौजी अफसर तोप का गोला फटने से मारा गया। उसकी कुछ सम्पति लन्दन में किसी बैंक में जमा थी, उसे वह अपनी स्त्री के नाम लिखा जाना चाहता था, जिसके साथ उसने फ्रांस में विवाह कर लिया था और जिसके एक वच्चा होने की भी सम्भावना थी। चूंकि यह विवाह उसने माता की इच्छा के विपरीत किया था, इसलिए वह चाहता था कि वह अपना वसीयतनामा लिख कर सीधे अपने वकील के पास भेज दे और उसके द्वारा वह सम्पति उस स्त्री को मिल जाय। तोप के गोले से घायल होने पर भी उसमें इतनी शक्ति शेष रही कि उसने एक गढ़े में पड़े-पड़े ही वसीयतनामा लिख दिया और

पास ही पड़े हुए एक अन्य घायल सिपाही के गवाह के रूप में उस पर दस्तखत करा दिये। मरते-मरते उसने अपने मन में यही आशा की कि जो लोग शवों को गाड़ने आयेंगे वे इस पत्र को पाकर ठीक पते पर भिजवा देंगे। पर उसे यह भी शंका हो रही थी कि प्रथम तो इस दूर के स्थान पर कोई शवों का गाढ़ने वाला आयेगा भी या नहीं, और जो देर से आया भी तो शायद तब तक कहीं वर्षा होकर लिखा हुआ मिट न जावे। तीसरी शंका यह थी कि कहीं उसके सब सामान के साथ इस पत्र को भी माता के पास ही न भेज दिया जाय।

जब अदृश्य सहायकों ने उसकी ऐसी व्याकुलता को देखा तो वे कोई ऐसी तरकीव सोचने लगे जिससे यह पत्र शीघ्र ही ठिकाने पर पहुँचा दिया जाय। उन्होंने पता लगाया कि वहाँ से थोड़ी दूर पर ही उसका मित्र रहता है। उन्होंने उसे कई तरह से प्रेरणा दी कि वह उक्त अफसर के शव के पास जाकर वसीयतनामे को ले आवे। पर वह मित्र ऐसे कठोर स्वभाव का निकला कि उस पर किसी प्रेरणा का प्रभाव नहीं पड़ा। इस कारण एक तरुण सहायक को स्थूल रूप धारण कराके उसे सूचना दी गई और तब वह शव के पास जाकर मृत्यु पत्र को लाया और तभी उसे लन्दन भेज दिया।

फ्रांस के एक गाँव पर जर्मन सिपाहियों ने हमला किया और एक लड़के तथा एक लड़की को छोड़ कर शेष सबको मार दिया। वे दोनों बालक छिप जाने से बच गये। जब सिपाही गाँव को जला कर चले गये तो ये दोनों गाँव से बाहर निकले, पर मार्ग में फौजी सिपाहियों को देखकर फिर एक झाड़ी के भीतर जा छिपे। बड़ी देर तक गोले और गोलियाँ चलते रहे, पर गड्डे में रहने से उनकी जान बच गई। अन्त में जर्मन सिपाही वहाँ से हट गये, पर उन बालकों की खबर लेने वाला वहाँ कोई न था। जब "सिरिल" नाम का दैवी सहायक, जो स्वयं एक बालक की प्रेतात्मा था, उनके पास पहुँचा तो वे मरने के करीब थे। उनको दो दिन से भोजन नहीं मिला था और ठण्ड के मारे उनका शरीर अकड़ चला था।

सिरिल ने स्थूल रूप धारण करके बालकों को सान्त्वना देने का प्रयत्न किया, पर वे उसकी बात को न समझ सके। तब उसने अपने बड़े सहायक को बुलाया। उसने उनको फ्रांसीसी भाषा में ही समझाया कि तुम भय मत करो हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। सिरिल ने पास ही पड़े एक मृत सिपाही के झोले से कुछ रोटी और चटनी ला दी। पर लड़के ने स्वयं भूखा होने पर भी पहले अपनी छोटी बहिन को दिया। तब सिरिल उसके लिए और रोटी ले आया और उसे खाकर उन दोनों को कुछ चलने की शक्ति आई। तब सिरिल उनको अपने साथ किसी सुरक्षित स्थान को ले गया। पर उसे भी स्वयं मालूम नहीं था कि किस तरफ खतरा ज्यादा है और किस तरफ कम है ? इसलिये सिरिल ने हवा में उड़ कर उसका पता लगाया कि दुश्मन कहाँ है। इस प्रकार उनको हिम्मत तथा शक्ति देकर वह उनको युद्ध अस्पताल में भरती करा दिया गया और उसके बाद उनको किसी सज्जन ने अपने घर में रखकर पालन-पोषण करने का भार ग्रहण कर लिया।

तीसरी घटना "ईथन" नाम के छोटे बालक की है। उसका बाप जो उसे माता के मर जाने के बाद उसे बड़े प्रेम से पाल रहा था, लड़ाई में मारा गया। तब उसकी देख-भाल उसके चाचा करने लगे। उसका व्यवहार अच्छा था पर ईथन को पिता की याद नहीं भूलती थी और इससे वह दिन पर दिन दुःखी और बीमार सा होता जाता था। उसके पिता की मृतात्मा उसके चारों ओर मंड़राती रहती थीं और रात्रि में वह उसे सान्त्वना देकर उत्तम स्वप्न दिखलाती थी जिससे लड़का आनन्द में रहता पर जब सुबह होने पर उसकी नींद खुल जाती तो वह रात के स्वप्न की बात भूल जाता और दिन भर दुःखी बना रहता ।

जब पिता की सहायता करते हुए सिरिल ने "ईथन" की दयनीय दशा देखी तो वह उसकी सहायता को कटिबद्ध हो गया। इसके लिए इस बात की आवश्यकता थी कि "ईथन" को रात के स्वप्नों की याद रहे और वह उनकी सचाई को समझ कर पिता के वियोग के दुःख को भूल जाय। इसके लिये जो प्रयत्न किये गये थे इसलिये निष्फल रहे कि आठ वर्ष के "ईथन" को परलोक सम्बन्धी ऐसे विषय का कोई ज्ञान न था। तब निद्रा के समय सिरिल ने उसकी आत्मा से मित्रता करली और जागने पर भी वह स्थूल रूप धारण करके उसके पास मौजूद रहा। तब उसने छोटे लड़के को स्वप्न की बात की याद दिलाई और कहा कि मैं तथा तुम्हारा पिता, यहाँ मौजूद हैं । तुम व्यर्थ का दुःख मत किया करो। इस प्रत्यक्ष प्रमाण को देखकर लड़के का दुख मिट गया और वह प्रसन्न तथा स्वस्थ रहने लगा।

इस प्रकार ये अदृश्य दैवी सहायक, सैकड़ों हजारों दुःखी आत्माओं को सहायता पहुँचाते रहते हैं और साथ ही उनको मृत्यु के बाद के जीवन का भी प्रमाण दे देते हैं, जिससे आगे चलकर परलोक में उनको बहुत अधिक परेशानी नहीं उठानी पड़ती।

ब्रह्मविद्या के गूढ़ रहस्यों के प्रतिपादनकर्ता एवं थियोसोफिकल सोसायटी के संचालकों ने अध्यात्म तत्वज्ञान के अनेकानेक पक्षों पर प्रकाश डालते हुए, यह प्रतिपादन विशेष रूप से किया है कि दिव्य सत्ताएँ उदात्त चरित्र व व्यक्तित्व वाले लोगों को तलाशती रहती हैं और उनकी कसौटी पर खरे उतरने पर उन्हें ऊँचे उठने

आगे बढ़ने की प्रेरणा और सहायता समय-समय पर प्रदान करती रहती हैं। इन देव सत्ताओं की उन्होंने "इनविजिबल हेल्पर्स", "मास्टर्स" जैसे कई नामों से संबोधित किया है।

संस्था के मूर्धन्य संचालकों यथा मैडम ब्लैवेटस्की, ओलिवर लॉज, लेडबेटर, एनीबीसेण्ट आदि लोगों ने इस सम्बन्ध में कई प्रामाणिक पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें "टाक्स ऑन दि पाथ ऑफ आकल्टिज्म", "दि लाइट ऑन दि पाथ" "एट दि फीट ऑफ दि मास्टर्स" प्रमुख हैं। इन पुस्तकों का प्रधान प्रतिपाद्य विषय यही है कि यदि मनुष्य स्वयं को प्रखर, पवित्र और सात्विक बना ले, स्वार्थ को त्याग कर परमार्थ की ओर प्रवृत्त होने लगे एवं जन कल्याण और समाजोत्थान के कार्यों में अभिरुचि दिखा सके, तो उसे देवात्माओं का अदृश्य अनुदान और वरदान अनायास ही हस्तगत होता रहता है।

इन मान्यताओं की पुष्टि में उन अनेकानेक घटनाओं और व्यक्तियों के उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमें उन लोगों ने सत्प्रयोजनों में निरत रह कर अदृश्य सहयोग अर्जित किये। इन उद्धरणें में यह सम्भव है कि लोगों को उन सत्ताओं से साक्षाकार न हुआ हो अथवा किन्हीं विशेष परिस्थितियों में हो भी गया हो पर यह अनुभव प्राय: प्रत्येक को हुआ कि उसने जो असाधारण कार्य किये हैं, उसमें अवश्य ही किसी परोक्ष सत्ता का पुरुषार्थ भी काम करता रहा है। यह मात्र उसके स्वयं के बलबूते की बात नहीं हो सकती।

इसमें प्रथम उदाहरण थियोसोफी की संस्थापिका मैडम ब्लैवेट्स्की के जीवन का है। जीवन के अन्तिम दिनों में वे एक अति महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ "सीक्रेट डॉक्ट्रिन" के प्रणयन में लगी हुई थीं। आधा ग्रन्थ लिखा जा चुका था और आधा शेष था। इन्हीं दिनों वह गम्भीर रूप से बीमार पड़ीं। ऐसा लगता था कि इस बीमारी से वह उबर न सकेंगी, पर इस सम्भावना को गलत सिद्ध करती हुई आश्चर्यजनक ढंग से वह स्वस्थ्य हो गई। बाद में उनने बताया कि इसी मध्य एक देव सत्ता, जिसे वह प्राय: "मास्टर" कह कर पुकारती थीं प्रकट हुई और यह संदेश दे गई कि यद्यपि तुम्हारी मृत्यु अवश्यंभावी है, पर तुम तब तक जीवित रहेंगी, जब तक तुम्हारा ग्रन्थ पूरा न हो जाय। इसमें मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। हुआ भी ऐसा ही। उनका ग्रन्थ पूरा हुआ और कुछ दिन पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई।

इस ग्रन्थ के बारे में वह प्राय: कहा करती थीं कि यह उनके जीवन का सर्वश्रेष्ठ और महानतम ग्रन्थ है। इसमें उनने अध्यात्म के उन गूढ़ और अनुभूत तत्वों का विवेचन किया है, जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। यह उत्कृष्ट रचना यदि अधूरी रह जाती, तो संस्था और समाज एक अनूठी और अनमोल कृति से वंचित ही रह जाते पर 'मास्टर' की सहायता ने ऐसा कुछ न होने दिया। ग्रन्थ पूरा हुआ एवं अपने समय का एक विश्वकोष कहलाया, जिससे अगणित व्यक्ति प्रेरणा-प्रकाश पाते हैं।

टीपू सुल्तान की गणना अपने समय के सफलतम शासकों में होती है। सन् १७९९ में इस अप्रतिम योद्धा ने श्रीरंगपट्टम् में जब युद्ध करते हुए वीरगति पायी, तो राजमहल से उसकी एक व्यक्तिगत डायरी प्राप्त हुई, जिसमें उसने अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख कर रखा था। डायरी से यह भी ज्ञात हुआ कि सुल्तान को महत्त्वपूर्ण विषयों पर समय-समय पर दैवी चेतना की अन्त:प्रेरणा भी होती थी। उसी के आधार पर वह अपनी नीति का निर्धारण करता था। उसे अपने साथ होने वाले कुचक्रों व युद्ध में मृत्यु की जानकारी भी बहुत समय पूर्व मिल गई थी। इसका भी उल्लेख डायरी में उसने किया था।

अमेरिकन सोसाइटी फॉर साइकिकल रिसर्च के वरिष्ठ अनुसंधान कर्ता डॉ० कार्लेरिंग्स ने "आउट ऑफ बॉडी एक्स्पीरियन्सेस" नामक अपनी पुस्तक में मरणोत्तर सम्पर्क के, अपने निजी अनुभव के सम्बन्ध में एक सत्य घटना का वर्णन किया है। उनके अनुसार सियान्स नगर अमेरिका में एक ट्रक ड्राइवर था। रात को गाड़ी चलाकर ला रहा था कि आइस लेण्ड की शीत भरी रात से बचने के लिए नदी किनारे ट्रक रोक दिया। जहाँ अतिशीत के कारण उसकी मृत्यु हो गई। ड्राइवर की लाश लावारिस पड़ी रही। जहाँ पशु पक्षियों ने खा डाली, उसको विधिवत दफनाया नहीं जा सका। उसके टांग की बची हड्डी को, पास में रहने वाले बढ़ई ने अपने घर की दीवार में सुरक्षित रख दिया। मृतक ट्रक ड्राइवर की आत्मा बरसों भटकती रही। उसे सद्गति न मिल सकी। एक दिन स्वप्न में प्रकट होकर अपने भाई से उसने प्रार्थना की कि यदि आप मेरी टाँग की हड्डी को बढ़ई की दीवार से निकाल कर पास के कब्रगाह में दफना दें, तो आपका बड़ा उपकार होगा। स्वप्न में बताए गये ठौर ठिकाने का अतापता भी भाई को बता दिया गया। सत्यता की जाँच करने उसका भाई बतलाए गये स्थान पर पहुँचा। वास्तव में वहाँ बढ़ई रहता था और उसने दीवार में हड्डी लगा रक्खी थी। सारा वृतान्त बताने पर वह हड्डी उसके भाई को सौंप दी गई, जहाँ पास के कब्रगाह में उसे विधिवत दफना दिया गया तथा बाद में प्रार्थना की गयी। उस रात मृतक ड्राइवर की आत्मा पुन: अपने भाई के समक्ष प्रकट हुई और कहा कि अब वह पूर्ण सन्तुष्ट है।

सर डबल्यू० एफ० बेरेट, डबलिन के रायल कॉलेज में प्रोफेसर थे। उनकी मृत्यु सन् १९२५ में हुई थी। उन्हें अन्तर्जगत्

की बातों पर विश्वास था और अपने जीवनकाल में उन्होंने इस विषय में खोज करने के लिये एक संस्था भी स्थापित की थी। उनकी पत्नी का नाम लेडी फ्लोरेंस बैरेट था।

लेडी बैरेट ने अपने पति की आत्मा से एक बार उनके लोक के ग्यान-पान और रहन-सहन के विषय में कुछ पूछा था, उसके उत्तर में सर विलियम वैरेट ने बतलाया-“मैं कुछ खाता या पीता नहीं हूँ। मेरे शरीर के चर्म छिद्रों से पोषक तत्व अपने आप पहुँचाते रहते हैं। रहने का घर करीब-करीब बिलकुल वैसा ही है, जैसा कि पृथ्वी पर था। मैं कपड़े भी पहनता हूँ । हम लोग कपड़े अपनी इच्छा मात्र से उत्पन्न कर लेते हैं। मैं सूट पहनता हूँ, क्योंकि मुझे उसमें आराम मिलता है। लेकिन अगर मैं चाहूं तो दूसरा कोई भी वस्त्र पहन सकता हूं। हर आदमी अपने-अपने पेशे का काम करते हैं, ऐसा करने में वह कुछ समय तक खुश रहता है।”

लेडी वैरेट का कहना है कि कभी मेरे पति अपने सन्देशों द्वारा मेरे डाक्टरी के काम में भी मदद पहुंचाते हैं। एक बार उन्होंने मेरे स्वास्थ्य सुधार के लिये क्या भोजन उपयुक्त होगा, यह बताया था।

हमारे अदृश्य किन्तु शुभचिन्तक सहायक

१९५८ ई० की घटना है। अमेरिका के प्रसिद्ध पत्रकार एवं लेखक बर्नाड हटन ने स्वयं पर घटित इस घटना का उल्लेख अपनी “हीलिंग हैण्ड्स” नामक पुस्तक में किया है। ‘हटन’ महोदय न्यूराइडिटिस रोग से पीड़ित थे । साथ ही उनकी आँखों में देखने की क्षमता भी नष्ट प्रायः हो चुकी थी। नेत्र रोग विशेषज्ञ डॉ० हडसन उनकी चिकित्सा कर रहे थे। उन्होंने ‘हटन’ की आँखों के इलाज को असाध्य बता दिया और कहा कि दूसरा ऑपरेशन करने पर आँखों की शेष क्षीण ज्योति के भी चले जाने का खतरा है।

उसी समय हटन की धर्मपत्नी श्रीमती पर्ल हटन को मालूम हुआ कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के सुविख्यात नेत्र चिकित्सक स्वर्गीय डॉ० लैंग की प्रेतात्मा ‘एलिसबरी’ के मिस्टर चैपमैन पर आती है और वह चैपमैन के माध्यम से सैकड़ों नेत्र रोगियों की चिकित्सा सफलतापूर्वक कर चुकी है। श्रीमती पर्ल ने अपने पति से ‘एलिसबरी’ जाने के लिए आग्रह किया तो बर्नार्ड हटन ने उसको भ्रान्ति व अन्धविश्वास कहा। परन्तु श्रीमती पर्ल ने निवेदन करते हुए कहा कि यह समझ लीजियेगा कि ‘एलिसबरी’ का भ्रमण किया है। अस्तु श्री हटन अपनी पत्र-कारिता वाली बुद्धि को लेकर ‘एलिसबरी’ पहुँच गये।

मि० चैपमैन के यहाँ उन्हीं की प्रतीक्षा की जा रही थी। उस समय युवक चैपमैन पर डॉ० लैंग की आत्मा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई दे रहा था। उसका चेहरा, हावभाव बिल्कुल वृद्ध डॉ० लैंग जैसा लग रहा था। उसने बनार्ड हटन को गाड़ी से उतरते ही अपने कक्ष में बुलाया और कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा-“आइये मि० हटन आप नेत्र रोग से पीड़ित हैं। मैं डॉ० लैंग हूँ आपकी हर सम्भव सहायता करूँगा।”

बर्नार्ड हटन यह देखकर आश्चर्यचकित थे कि युवक चैपमैन के व्यक्तित्व में आकस्मिक परिवर्तन कैसे हो गया ? मि० चैपमैन यह सब कुछ आँख बन्द किये तन्द्रा जैसी अवस्था में कह रहे थे। मि० हटन तर्क बुद्धि कभी इसे सम्मोहन सोचती, कभी टेलीपैथी, कभी थॉट ट्रान्सफरेन्स’ तो कभी दिव्य-दृष्टि आदि। विचारों का ऊहापोह उनके मन में चल रहा था। मि० चैपमैन के माध्यम से डॉ० लैंग, मि० हटन की कुर्सी के समीप पहुँचे और अपनी बन्द आँखों को हटन की आँखों के पास जमाकर देखा और बोले-“तुम्हें माइनस १८ नम्बर का चश्मा लगता है।” उस समय वास्तव में ही मि० हटन को माइनस १८ लैस का चश्मा लगता था । बर्नार्ड हटन की आँखों को दो तीन बार उँगलियों से स्पर्श करके डॉ० लैंग ने बताया-“युवक मि० हटन! तुम्हारी आँखों का बचपन में जो ऑपरेशन हुआ था, बिल्कुल ठीक था।” हटन महोदय स्वयं भूल चुके थे कि कभी उनका ऑपरेशन हुआ था, परन्तु तब याद आया कि ६ वर्ष की अवस्था में तत्कालीन प्रसिद्ध डॉक्टर की भी मृत्यु हो चुकी थी।

मि० हटन की आँखों को दुबारा उँगलियों से स्पर्श करके डॉ० लैंग ने कहा-“ तुम्हारी आँखों का लिम्फ ड्रेनेज सिस्टम ठीक से काम नहीं कर रहा है, ग्लाकोमा हो गया है।” हटन की समझ में कुछ नहीं आ रहा था, वह तो स्वर्गीय डॉ० लैंग की जानकारी व प्रश्नों से ही हतप्रभ हो गये थे। इसके बाद डॉ० लैंग ने बताया कि “जिस बीमारी के वायरस तुम्हें कष्ट दे रहे थे वे तो तुम्हारे डॉ० के उपचार से ही नष्ट हो गये हैं, परन्तु उसके स्थान पर प्रतिक्रिया स्वरूप नई भयंकर बीमारी हो गयी है। हिपेटाइटिस वायरस के आक्रमण के कारण तुम्हारे लिवर को क्षति पहुँच रही और कष्ट बढ़ रहा है। तुम्हारी पूरी शक्ति क्षीण हुई जा रही है।”

मि० हटन महोदय को डॉ० लैंग की बातें, रोग की व्याख्या एक पहेली सी लग रही थी, उनकी पत्रकार-बुद्धि को कुछ कहते नहीं बन पड़ रहा था। अन्त में डा० लैंग ने कहा- “मि० हटन, मैं तुम्हारी आँखों का एक आपरेशन करूँगा जिसमें तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा क्योंकि यह ऑपरेशन सूक्ष्म शरीर का होगा स्थूल का नहीं। तुम हमारी बातें और उपकरणों का प्रयोग अनुभव

करोगे पर देख नहीं सकोगे। मेरे अन्य सहायक भी प्रेतात्माएँ हैं।

इतना कहकर डॉ० लैंग ने अपना काम शुरू कर दिया। मि० हटन उनकी उँगलियों को चलते, ऑपरेशन के उपकरणों को इधर-उधर प्रयोग करते हुए अनुभव कर रहे थे। डॉ० लैंग बीच में बोलते जा रहे थे-मैं तुम्हारे सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से थोड़ा अलग कर रहा हूँ, फ्लुइड की जाँच कर रहा हूँ क्रिस्टल, लेन्स, रेटिना आदि आदि!" कुछ मिनट बाद उन्होंने कहा-"अब ऑपरेशन पूरा हो गया है, तुम्हारे सिलियरी मसल्स अत्यन्त कड़े हो गये थे।" इसके पश्चात् डॉ० लैंग ने अपने सहायकों से कहा-" यदि हिपेटाइटिस वायरस का ऑपरेशन न किया गया तो यह ऑपरेशन अधिक लाभदायक न होगा।" डॉ० लैंग ने एक बार पुनः आँखें बन्द कीं। उसी मुद्रा में 'हटन' के शरीर पर हाथ फेरा। बर्नार्ड हटन को लगातार महसूस हो रहा था कि जैसे उनके मूर्छित शरीर पर ऑपरेशन किया जा रहा हो।

ऑपरेशन पूरा करने के बाद डॉ० लैंग ने हाथ के सहारे से मि० हटन को उठाकर बैठा किया। उस समय हटन को काफी कमजोरी अनुभव हो रही थी। तभी एक नर्स "मिस मार्गेट" आयीं और उसने हाथ का सहारा देकर हटन महोदय को खड़ा कर दिया। चलते समय डॉ० लैंग ने कहा- "मि० हटन, मैं आपकी बराबर सहायता करता रहूँगा और अपने सूक्ष्म शरीर से ऑपरेशन भी करता रहूँगा। आपकी नेत्र-ज्योति पुनः वापस आ जायेगी और आपका जीवन सुखमय बीतेगा, ऐसी मुझे पूरी आशा है।"

मिस मार्गेट ने 'हटन' को कार में बैठा दिया। उस समय उन्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था, परन्तु थोड़ी ही देर में धीरे-धीरे उन्हें सब कुछ स्पष्ट नजर आने लगा। वह प्रसन्नतापूर्वक अपने घर गये। बार-बार मि० हटन का हृदय प्रेतात्मा द्वारा की गयी अप्रत्याशित सहायता से भर आता था! इस विलक्षण घटना ने उनका जीवन क्रम ही बदल दिया।

ऐसी ही एक अन्य घटना फिलीपिन्स की है। वहाँ एक आश्चर्यजनक चिकित्सक है-टीनी एप गोआ। उसकी चिकित्सा प्रणाली इस युग के चिकित्सा शास्त्रियों को अचरज में डालती है। वे उसे देखते जाते हैं। उसकी प्रणाली देखते हैं, तो चकित रह जाते हैं पर समझ नहीं पाते कि उसका कारण क्या है और यह सब कैसे सम्भव होता है ?

२७ वर्षीय तान्त्रिक टोनी चिकित्सा व्यवसाय करता है। मुख्य रूप से वह शल्य चिकित्सक है। ट्यूमर, केन्सर, मोतियाबिन्द के आपरेशन करता है और विकृत माद्दा शरीर में से निकाल कर बाहर रख देता है। उसके पास न चाकू है न कैंची न सुई फिर भी आपरेशन करते रहना एक अद्‌भुत काम है। जो जादू जैसा प्रतीत होता है।

टानी क्लेजन के कुवाओ इलाके में दो मंजिल मकान में रहता है। ऊपर अपने परिवार सहित खुद रहता है नीचे उसका अस्पताल है। विभिन्न रोगों से ग्रस्त आपरेशन योग्य रोगी ही उसके पास आते हैं। उन्हें वह एक मेज पर लिटाता है मन्त्र पढ़ता है। चाकू का काम उसका हाथ करता है। काटने-फाड़ने चीरने की क्रिया वह उगंली से करता है। ट्यूमर, केन्सर, गाँठ, मवाद आदि को भीतर से निकाल कर बाहर रख देता है। इसके बाद वह बिना सुई के घाव को जोड़ देता है। इस बीच उसका चचेरा भाई एल्फ्रेडो उसके साथ रहता है और तौलिया देने-चीजें उठाने जैसे काम करता रहता है। थोड़ा खून तो निकलते देखा जाता है पर रोगी को दर्द जरा भी नहीं होता और ऑपरेशन ठीक और सम्पन्न हो जाता है। प्रतिदिन ऐसे १० से लेकर बीस तक ऑपरेशन उसे करने पड़ते हैं।

रोगियों की--प्रशंसकों की भारी भीड़ उसे घेरे रहती है। पहले वह फिलीपाइन की राजधानी मनीला में रहता था। ख्याति के साथ साथ भीड़ बढ़ी तो उसने वह स्थान छोड़ दिया नई जगह में उसने नाम का बोर्ड आदि कुछ नहीं लगाया है तो भी लोगों ने पता वहाँ पर लगा लिया और रोगी वहाँ भी पहुँचते हैं। जो आधुनिक ऑपरेशन से सम्भव है वह कर देने का दावा टोनी भी करता है। उसकी चिकित्सा विधि देखने डाक्टर वैज्ञानिक आते हैं और सारे क्रिया-कृत्य के फोटो फिल्म ले जाते हैं पर इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते कि यह असम्भव दीखने वाली बात सम्भव कैसे हो पाती है।

टोनी सपगोआ अपने इस कार्य का श्रेय किसी देवता को देता है। कहता है- उसका अद्‌भुत 'रक्षक' जो कराता है वह वही करता है। ऑपरेशनों में वही उसके साथ रहता है और उसकी सहायता करता है। इसके अतिरिक्त उस देवता के बारे में कुछ अधिक नहीं बताता।

मियामी फ्लोरिडा के वेल्क पेरा साइकोलोजी रिसर्च फाइण्डेशन के प्रतिनिधि डॉ० वनर्जी वहाँ गये। यह सब देखा-क्रिया-कलाप के फोटो भी लाये, पर इस निष्कर्ष पर न पहुँचे सके कि यह सब कैसे और क्यों कर सम्भव होता है। एक घटना प्रथम विश्वयुद्ध के समय की है। युद्ध लगभग समाप्त हो चुका था। ७ दिसम्बर अपराह्न साढ़े तीन बजे "रॉयल फ्लोईग कोर्म्स" के लेफ्टिनेंट जे० जे० लारेकिन अपने कमरे में आग तापते हुए पुस्तक पढ़ रहे थे तभी कमरे के बाहर बरामदे में किसी की पदचाप

सुनाई पड़ी। मुड़कर देखा तो उनके चिरपरिचित मित्र अफसर डेविड मैक कॉनेल अपनी वायुसेना की वर्दी में खड़े थे। संक्षिप्त बातचीत के दौरान उनने बताया कि "मैं एक महायात्रा पर जा रहा हूँ। मेरे परिवार की जिम्मेदारी अब तुम सम्भालना।" इतना कह कर वह गायब हो गये। लारकिन को कुछ समझ में नहीं आया। क्योंकि एक सप्ताह पूर्व ही मैक कॉनेल की चिठ्ठी आयी थी। जिसमें उनने अपने एक माह बाद आने की बात लिखी थी। फिर इतनी जल्दी बिनां पूर्व सूचना के कैसे आ गये और अचानक पुन: गायब कहाँ हो गये? यह सब कुछ उन्हें तिलिस्म-सा प्रतीत हो रहा था, मानो वास्तविकता इसमें कुछ हो ही न। अभी वे इसी ऊहापोह में थे कि उन्हें समाचार मिला कि अभी-अभी मैक कॉनेल की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई। श्री लारकिन ने अपनी पुस्तक में लिखा है-"मुझे इस घटना पर सहसा विश्वास नहीं हुआ, किन्तु जब एक अन्य मित्र ने मुझे कॉनेल की मृत्यु के समय की उसकी पोशाक व दुर्घटना के समय का उल्लेख किया तभी मैं इस पर विश्वास कर सका।"

शोध के दौरान इस प्रकार के अगणित प्रमाण-उदाहरण प्रकाश में आये जो मरणोत्तर जीवन की वास्तविकता को असंदिग्ध सिद्ध करते हैं। इस संदर्भ में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के परामनोविज्ञानी प्रो० एच० पी० प्रायस का कहना है कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। यह लगभग वैसी ही प्रक्रिया है जैसी पानी से भाप बनने की। वे कहते हैं कि जिस प्रकार पानी से भाप बन जाने के बाद जल का अस्तित्व सूक्ष्म और अदृश्य हो जाता है किन्तु इतने पर भी जल की सत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता। ठीक उसी प्रकार जीवन और मृत्यु के मध्य एक अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जब उपयुक्त समय आता है तो यह सूक्ष्म सत्ता भौतिक शरीर धारण कर अपनी अमरता का प्रमाण परिचय देती है। वे आगे कहते हैं कि मरने के बाद भी हमारी गतिविधियों में कोई अन्तर नहीं आता। वे वैसी ही बनी रहती हैं जैसी स्थूल में थीं। इस आधार पर उनने अशरीर आत्माओं को दो मुख्य श्रेणियों में बाँटा है, दुरात्माएँ और सदात्माएँ। दुरात्माएँ वे हैं, जो इहलौकिक जीवन की भाँति ही मृत्युपरान्त भी अपने विध्वंसक क्रियाकलापों में संलग्न रहकर दूसरों को प्रताड़ित करती हैं जबकि सदात्माओं की प्रवृति वैसी ही सहयोग सहकार जन्य बनी रहती है। उनका मत है कि इन आत्माओं से सम्पर्क सान्निध्य के जो सामान्य प्रयोग प्रयास चलते हैं उनमें से अधिकांश में बुरी आत्माऐं ही सम्पर्क में आती हैं, जो उल्टी सीधी जानकारियाँ देकर लोगों को बहकाने की कोशिश करती रहती हैं।

उनके इस कथन की पुष्टि "दि सोसाइटी फॉर साइकिकल रिसर्च" संस्था ने भी की है। शोध सर्वेक्षणों के आधार पर अनुसंधानकर्मियों का कहना है कि श्रेष्ठ आत्माएँ उच्चस्तरीय आत्माएँ होती हैं, पर उनसे सम्पर्क साधना हर किसी के लिए संभव नहीं होता। ऐसे ही व्यक्ति उनसे सूक्ष्म संबन्ध स्थापित करने में सफल हो पाते हैं जो शुद्ध हृदय पवित्र मन और सात्विक वृत्तियों वाले होते हैं। इस संदर्भ में लिखी गई पुस्तकों में 'दि टीचिंग्स ऑफ दि ट्रवेल्स अपोस्टल्स' एवं दि शेफर्ड ऑफ हर्म्स' अत्यधिक लोकप्रिय व प्रामाणिक घटनाओं का वर्णन किया है, जिसमें अनेक व्यक्ति ऐसी पितर एवं देव स्तर की आत्माओं से सम्पर्क कर संकटकालीन घड़ी से उबरे और अनेक अवसरों पर लाभान्वित हुए। यदि हम भी अपनी भावनाओं और वृत्तियों में यत्किंचित परिष्कृति ला सकें, तो कोई कारण नहीं कि ऐसी आत्माओं से सत्परामर्श प्राप्त कर लाभ नहीं उठा उठा सकते।

पितर आत्माएँ डराती नहीं, सत्प्रेरणाएँ उभारती हैं

दैवी सहायता में उच्चकोटि के देवताओं की अनुकम्पा तो सम्मिलित है ही, साथ ही दिवंगत पितरों के अनुदान भी आते हैं जो कि अपने स्वभाववश किन्हीं की उपयोगी सहायता करना चाहते हैं, पर उनका सम्पर्क उच्चस्तरीय व्यक्तियों से ही बनता है। घिनौने और कुकर्मियों का साथ न तो पितर देते हैं और न देवता। दुर्गन्धित स्थान से हर कोई बच निकलना चाहता है। उसी प्रकार दिव्य शक्तियाँ भी कुकर्मियों के आह्वान-अनुरोध को स्वीकार नहीं करती जब कि सत्पात्रों को वे स्वयं ही तलाश करती रहती हैं और अच्छे साथी के साथ सहयोग का आदान-प्रदान करते हुए वे अपने सहयोग की सार्थकता अनुभव करते हुए प्रसन्न भी होती हैं। सत्पात्रों को वे सद्प्रेरणाएँ एवं मातृपितृवत् स्नेह प्रदान करती हैं। ऐसी अदृश्य सहायता के बलबूते अपनी निजी सामर्थ्य की तुलना में उन्हें कहीं अधिक कार्य कर गुजरते देखा जाता है।

मृतात्माओं के बारे में यह मान्यता उचित नहीं कि वे किसी श्मशान, खण्डहर, एकाकी पीपल पर रहने वाली डरावनी सूरत जो औरतों पर, विशेषतया बच्चों पर आक्रमण करती हैं और पीछा छोड़ने के बदले में, अपहरणकर्ताओं की तरह फिरौती माँगती हैं। ओझा, सियाने, दिवाने, भोपे उनके कमीशन एजेन्ट होते हैं। कोई सौदा पटाने के लिए उनसे पास लेना जरूरी है। नई उम्र की

लड़कियों को चुडैलें, जिन्द, मसान सताते हैं और तब छोड़ते हैं तब मनमाना पुजापा वसूल कर लेते हैं, नहीं तो बुखार, हँफनी, ऐंठन, सिर दर्द, उल्टी, जैसी बीमारियाँ खड़ी कर देते हैं।

यह पिछड़ेपन की निशानी है, जो जनसाधारण को हैरान करती रहती है। पर वस्तुत ऐसी स्थिति है नहीं। यदि शरीर छोड़ने के उपरान्त आत्मा की स्थिति की वास्तविक जानकारी प्राप्त करनी हो तो उसे ऐसा सूक्ष्म शरीरधारी माना जा सकता है, जिसका पूर्व जन्म से सम्बन्धित व्यक्तियों से प्रेम न सही लगाव तो बना ही रहता है। अपना समय उन्हें कर्मानुसार जैसे भी भुगतना पड़ता है, वैसे तो भुगतते ही हैं, इसके अतिरिक्त परिचितों और सम्बन्धियों को अपनी स्थिति के अनुसार लाभ पहुँचाते हैं। सूक्ष्म शरीर धारी होने के कारण एक स्थानकी घटनाओं या सम्भावनाओं की जानकारी उन्हें रहती है। उसे भी उपयुक्त व्यक्तियों तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। इससे घटनाक्रम रुकता तो नहीं, पर उस सम्भावना की पूर्व तैयारी रहने पर वह झटका नहीं लगता जो आकस्मिक विपत्ति सामने आ खड़ी होने पर लगता है। पूर्व सूचना यदि उससे पहले मिल जाय, जब तक कि दुर्घटना घटित नहीं हुई है, तो प्रत्युत्पन्नमति वाले उससे पूरी तरह बच न सकें तो बचाव का उपाय तो कर ही सकते हैं।

कोई सूक्ष्मशरीरधारी किसी स्वजन सम्बन्धी को हानि पहुँचायेगा, ऐसी आशंका किसी को भी नहीं करनी चाहिए। ऐसा तो पिछड़े लोग अपनी मानसिक आशंकाओं और कुशंकाओं का वमन मनगढ़ंत रूप में करते रहते हैं और अपना विज्ञापन कराने के उपरान्त चुप हो जाते हैं।

विश्व में ऐसे अनेकों उदाहरण विद्यमान हैं जिनमें लोगों पर पितर आत्माओं का स्नेह बरसा, उनकी सहायता मिली। इतना ही नहीं वे सम्बन्धित व्यक्ति के पास प्रमाण स्वरूप अपना स्मृति चिन्ह भी छोड़ गये। रोम में विश्व का एक ऐसा ही अद्भुत एवं आश्चर्यजनक संग्रहालय है जिसमें पितर चिन्हित वस्तुओं के अनेकानेक प्रमाण संग्रहीत हैं। इस संग्रहालय को "हाउस ऑफ शैडोज" के नाम से जाना जाता है। इसे "पितरों का गृह" भी कहते हैं। इसमें तरह-तरह के छाया चित्र, तैल चित्र, वस्त्र आभूषण, तख्त तथा मूर्तियाँ आदि रखी हुई हैं, जिन्हें मरने के बाद वापस आई हुई सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं की निशानी कहा जाता है।

इसी संग्रहालय में मदाम लीलियो नामक एक महिला के पुत्र की बुशर्ट भी रखी है, जिसकी आस्तीन पर सूक्ष्म शरीर धारी मृतात्मा मां की हथेली का जला हुआ निशान भी है। घटना २१ जून सन् १९८७ की है जब मृत्यु के सत्ताइस वर्ष बाद मदाम की दिवंगत आत्मा पुन: अपने बेटे से मिलने और उसकी सहायता करने आई। अपने लाड़ले बेटे को उसने बड़े अरमानों से पाला-पोषा, पढ़ाया-लिखाया और योग्य बनाया था। पर दुर्भाग्यवश माँ की मृत्यु के पश्चात् वह कुसंगति मे फँसकर दुर्व्यसनों का आदी हो गया। प्रयत्न करने पर भी छुटकारा नहीं मिल रहा था। इन परिस्थितियों में उसे अपनी मां की बराबर याद आती रहती। उसकी स्थिति को देखकर मृतात्मा माँ को बड़ा कष्ट हुआ। आकर उसने दुष्प्रवृतियों के दुष्परिणामों से बेटे को अवगत कराया और उससे छटने के उपाय सुझाए सद्प्रेरणाएँ दीं। इस अलौकिक सत्परामर्श को सुनकर लड़के ने अपनी पाप वृति का प्रायश्चित माँ के सामने ही किया और भविष्य में ऐसे दुष्कृत्य न करने का दृढ़ संकल्प लिया। दिवगंत माँ की आत्मा ने विदा होते समय प्रमाण के लिए बेटे के बुशर्ट पर अपने हाथ का जला हुआ चिन्ह भी छोड़ दिया जिससे उसका साक्षात्कार हुआ था। इस घटना ने बेटे की दिनचर्या तथा आचरण में आमूल चूल परिवर्तन कर दिया। धीरे-धीरे उसने अपनी बुरी आदतों से छुटकारा पा लिया।

इसी तरह की एक प्रार्थना पुस्तिका को इस संग्रहालय में १९२० ई० में रखा गया जिस पर पितरात्माओं की उंगलियों के प्रतीक चिन्ह हैं, जिसकी वजह से पुस्तक के पन्नों में जलने के छेद जैसे हो गये हैं। इसकी घटना भी बड़ी ही विचित्र है। मारगेरिटा डेमर नाम की एक महिला की सास को मरे करीब ३० वर्ष हो चुके थे। अचानक ही उसकी आत्मा मारगेरिटा के पास आईं और कहने लगी "मेरी शांति एवं सद्गति के लिए तुम्हें एक तीर्थ यात्रा तथा दो प्रार्थना सभाओं का आयोजन करना चाहिए"। मारगेरिटा ने उनकी इच्छा आकांक्षाओं के अनुरूप वैसा ही किया। पितरात्मा प्रसन्न चित होकर बोली-मैंने अब सांसारिक भव बन्धनों को पार कर लिया है और मुक्ति पा चुकी हूँ।' लम्बे वार्त्तालाप के बाद आत्मा विदा होने लगीं, तो मारगेरिटा ने उससे कोई स्मृति चिन्ह छोड़ जाने का अनुग्रह किया जिसे वह हमेशा देखती रहे। सास ने बहू के विनम्र निवेदन को स्वीकार करते हुए पास में रखी प्रार्थना पुस्तिका पर हाथ रख दिये जिससे वह झुलस-सी गयी और उसके कुछ पृष्ठों में सूराख भी हो गये। संग्रहालय में ऐसी अनेकानेक वस्तुओं का संग्रह है, जो बड़ी ही रहस्यमय और आश्चर्यजनक प्रतीत होती हैं। संग्रहालय की संरचना ही बड़ी विचित्र है। उसमें चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा दीखता है एक भी रोशनदान नहीं मिलेगा। दर्शकों को अंधेरी गलियों में होकर ही गुजरना पड़ता है।

आवांछनीयताओं के निवारण और अनीति के निराकरण की सत्प्रेरणा पैदा करने तथा उस दिशा में आगे बढ़ने वालों की

मदद करने का काम भी ये सदाशयी 'पितर' आत्माएँ करती हैं। उदात्त आत्माएँ पितर के रूप में सत्पात्रों की सहायता के लिए सदैव प्रस्तुत रहती हैं। उनकी आत्मीयता की परिधि अति विस्तृत होती है। पथभ्रष्ट लोगों को कल्याण पथ में नियोजित कर देना ही अपना कर्तव्य मानती हैं।

ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी में आजकल भटकती पितरात्माओं की घटनाएँ कोई नई बात नहीं रह गई है अपितु तेरहवीं सदी से ही यह तांता अब तक चला आ रहा है। वर्ष १२३१ में गरीब वर्ग के छात्रों के सहायतार्थ सेंट पादरी रेवरेंड जेफरी जान के अनुसार जब से इस अस्पताल की नींव की खुदाई हुई है, तभी से इससे भटकती हुई तरह-तरह की चित्र विचित्र आकृतियाँ नजर आ रही हैं। यही नहीं खाली कमरों में गाने, बजाने तथा नाचने की ध्वनियाँ भी छात्रों को स्पष्ट सुनाई देती हैं। इन आत्माओं की शांति के लिए समय-समय पर प्रार्थना सभाएँ भी आयोजित की जा चुकी हैं। धर्म पुरोहित का कहना है कि इनसे भयभीत होने की कोई बात नहीं है। ये पितरों की ही दिवंगत आत्माएँ हैं जो छात्र जीवन को कल्याणकारी मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणास्पद संकेत दे रही हैं।

हालीवुड के सुप्रसिद्ध मनोचिकित्सक केनी किंगसटन ने अनेक मृतात्माओं से सम्पर्क बनाया है, उनका कहना है कि मृतात्माएँ जीवितों की सहायता ही करती देखी जाती हैं किंगसटन का कहना है कि-फ्लिपतन वेव नामक एक व्यक्ति की आत्मा उन्हें समय-समय पर सहायता देती रहती हैं। एक बार विश्वविख्यात धनकुबेर हावर्ड ह्यूजेस परिवार वालों को कोई सूचना दिये बिना ही घर से कहीं चले गये। ढूँढ़ खोज करने पर जब उनका कहीं कोई पता नहीं चला तो घर वालों ने किंगसटन महाशय की सहायता ली। तब 'वेव' की आत्मा ने उन्हें बताया था कि- "ह्यूजेस एक गोपनीय व्यापारिक दौरे पर हैं और लॉस वेगास होटल की नवीं मंजिल के एक फ्लैट में ठहरे हुए है।"

सम्राट एडवर्ड सप्तम की पत्नी महारानी एलेक्जेन्डा पितरों से सम्पर्क' में आस्था रखती थीं। एक दिन एक पितर आत्मा ने उन्हें सूचित किया कि उनके पति अब कुछ ही दिनों के मेहमान हैं, अब वे अपने जन्म स्थान कोवे में प्राण त्याग देगें। महारानी कोवे पहुँची तो पाया कि उनके पतिदेव पलंग पर मूर्च्छित पड़े थे। हिलाने-डुलाने पर उनने क्षण भर के लिए आँखें खोलीं और फिर सदा के लिए सो गए।

इसी तरह की एक घटना इंग्लैण्ड में घटित हुई जिसमें पितरों द्वारा मृत्युशय्या पर पड़ी एक महिला की जानकारी, उसकी लड़की को दी गई। "फैन्टास्म ऑफ लिविंग" पुस्तक में इस घटना का वर्णन करते हुए लेखक ने बताया है कि एक दस वर्षीय बालिका अपने पिता के साथ सड़क पर टहल रही थी कि अचानक उसके सम्मुख एक छाया प्रकट हुई उसकी माँ के अस्वथ होने का समाचार सुनाया। इस अप्रत्याशित घटना से वह लड़की भयभीत हो गई और उसने पिता को घर वापस लौट चलने के लिए बाध्य किया। जैसे ही वे घर पहुँचे तो देखा कि उनकी पत्नी दिल का दौरा पड़ने से मूर्च्छावस्था में पड़ी जीवन की अन्तिम साँसें गिन रही हैं। शीघ्र ही चिकित्सक को बुलाया गया जिससे महिला की प्राण रक्षा हुई।

प्रेतात्माओं से सम्पर्क साधने एवं उनके द्वारा मृत्यु की पूर्व घोषणा करने का विवरण रखने वालों में १७ वीं शताब्दी के जॉन ओब्रे नामक एक अँग्रेज को बहुत प्रामाणिक माना जाता है। उनके अनुसार मृत मार्टिन लूथर की आत्मा द्वारा की गई भविष्यवाणियाँ अक्षरशः सत्य घटित हुई हैं। मृत्यु के पश्चात् भी लूथर की सदाशयी आत्मा समय-समय पर लोगों को सत्परामर्श दिया करती थी। महान कवि विलियम ब्लैक भी मृतात्माओं से अपने सम्पर्क के लिए विख्यात थे। रात्रि के एकान्त में माइकेल मंजिलो, मोजेज, क्लियोपेट्रा जैसी कितनी ही स्वर्गीय आत्माओं से वे घण्टों वार्तालाप एवं विचार विमर्श किया करते थे।

प्रेत-पितर न केवल उपयोगी जानकारियाँ प्रदान करते हैं, वरन् माध्यम की सहायता से रोगियों को स्वस्थ्य करते हुए भी देखे जाते हैं। मेरी काडिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "इन सर्च ऑफ दि हीलिंग पावर" में इस तरह के कई उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। अफ्रीका के कई व्यक्ति इन्हीं अशरीरी आत्माओं की सहायता से लोगों की टूटी हुई हड्डियाँ जोड़ देते हैं। इसी तरह "द वर्ल्ड ऑफ पैराडाइज" पुस्तक में लेखक ने हवाई द्वीप में रहने वाली जन जातियों के बारे में लिखा है कि ये लोग कुछ सदाशयी मृत आत्माओं को प्रसन्न कर लेते हैं और उनसे रोगियों को स्वस्थ करने का काम लेते हैं।

वायुयान से सम्बन्धित पितर आत्माएँ अनेक बार यान चालकों को मदद करती देखी गई हैं और अगणित बार उन्हें खतरों से सचेत भी किया हैं ऐसी ही एक घटना ब्रिटेन की है।

१३ मार्च सन् १९२८ को ब्रटेन विनिर्मित एक सशक्त वायुयान को अमेरिका भेजने का निश्चय हुआ। वह कप्तान रेमण्ड हिंक्लिफ के संचालकत्व में जोश खरोश के साथ उड़ा तो पर भयंकर तूफान में फँस जाने के कारण वह बीच समुद्र में डूब गया। रेडियो संचार प्रणाली भी अस्त-व्यस्त हो गई और उसके

गिरने के सही समय और स्थान की सूचना छपी कि रात्रि के समय ब्रिटेन का एक शक्तिशाली वायुयान गुम हो गया। ढूँढ़ खोज होती रही पर उसका कोई पता न चला।

कप्तान हिंक्लिफ की सत्ता प्रेत रूप में बदल गई। जब कि वह कभी भूत प्रेतों की चर्चा में तनिक भी रस नहीं लेता था और उसे कोरी वकवास बताता था।

कप्तान की आत्मा अपने घर पहुँची और पत्नी को बताया कि उसका जहाज डूब चुका है वह उससे सशरीर मिलने की आशा न रखे। बच्चों को प्यार करने के बाद वह आत्मा अदृश्य हो गई।

इसके बाद वायुयानों को खतरे से बचाने के कार्यों में उसकी आत्मा ने रुचि लेना आरम्भ किया। एक बार अमेरिका से एक जहाज इंग्लैण्ड आ रहा था। दो चालकों में से एक सोया हुआ था कप्तान की चौकी के चौकीदार को एवं एक सोये चालक को प्रेत चालक ने सचेत किया कि वह रास्ता भटक गया है और गलत रास्ते पर जा रहा है। उसने सोते हुए साथी को जगाया और अदृश्य आत्मा की सूचना से अवगत किया। यन्त्रों के देखने से प्रतीत हुआ कि वह २०० मील भटक गया है। ईंधन भी चुकने वाला है दोनों ने मिलकर जहाज को एक छोटे टापू पर उतारा। रेडियो से संचालक केन्द्र को सूचना दी। दूसरे दिन ईंधन लेकर नया वायुयान आया, तभी उनके लिए नई उड़ान भर सकना सम्भव हुआ।

इसी प्रकार एक फ्रांसीसी विमान आग लगने से जल कर राख हो गया वह एक देहाती इलाके की छोटी आर्वी पहाड़ी से टकरा गया था। सवारों में से शेष सभी मर गये थे। मात्र एक व्यक्ति बच गया था। समाचार पहुँचाने की कोई सम्भावना न थी क्यों कि जहाज में पहले से ही कई खराबियां उत्पन्न हो गई थीं। रेडियो संचार पहले से ही गड़बड़ा गया।

यह सूचना कप्तान की प्रेतात्मा ने मुख्य कार्यालय में पहुँचकर स्वयं पहुँचाई और वह अदृश्य हो गई। आर्की नाम की कोई बड़ी जगह फ्रांस भर के नक्शों में न मिली। कठिनाईयों से "आर्वी रोड" एक रेलवे स्टेशन पर पाया गया। वहाँ उड़ाने भरते हुए दूसरे वायुयान पहुँचे तो सिर्फ जला हुआ मलवा और एक व्यक्ति बेहाल भूखी स्थिति में मिला। दुर्घटना की जाँच के लिए अफसरों ने प्रयत्न किया पर कोई ऐसे सूत्र हाथ न लगे जिससे सही स्थिति की जानकारी प्राप्त की जा सके।

इस प्रसंग में भी कप्तान की मृतात्मा उपस्थित हुई और उसने बताया कि जहाज के निर्माण में क्या त्रुटियाँ रह गई थीं। इसलिए उसे नीची उड़ान उड़ानी पड़ी और छोटी पहाड़ी से टकराकर जल गया। उसकी रेडियो व्यवस्था पहले से ही अस्त-व्यस्त हो गई थी। इस गवाही को प्रामाणिक मानकर जाँच की कार्यवाही समाप्त हुई।

लगभग ३० वर्ष तक यह सिलसिला चला। कप्तान हिंक्लिफ की आत्मा इंगलैण्ड से अमेरिका के क्षेत्र में मँड़राती पाई गई और उसने कितने ही जहाजों को मुसीवत से बचाया। सम्भवत उसके बाद वह अपने उपकारों के कारण मुक्ति पा गई।

पद्म पुराण का एक प्रसंग बहुचर्चित है कि राजा दशरथ की अतिशय पुत्र मोह वृत्ति के कारण मुक्ति नहीं हो पाई थी, तो भगवान राम ने पुष्कर में अपने पिताश्री का श्राद्ध कर्म सम्पन्न कर उनको तर्पण दिया था, तभी उनका सांसारिक मोह से पीछा छूटा। आज भी वहाँ का जल कुण्ड जनश्रद्धा का आकर्षण केन्द्र बना हुआ है। लोक मान्यता है कि इस पवित्र कुण्ड में शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के साथ मंगल का योग बिठते ही स्नान किया जाय तो विशेष प्रकार की शांति मिलती और श्रद्धास्पद वातावरण विनिर्मित होता है। इसी के फलस्वरूप पुष्कर को ब्रह्मा के तीर्थ, तीर्थराज की मान्यता मिली है।

हर मृत व्यक्ति उपद्रवी भूत ही बने, यह, कतई जरूरी नहीं। वह पितर रूप से दयालु, पथप्रदर्शक और उदार दानी भी हो सकता है और व्यक्तियों को कई प्रकार से लाभ पहुँचा सकता है। जिन्हें दैवी शक्तियाँ, देवात्माएँ देवता आदि कहते हैं वे उच्चकोटि की आत्माएँ ही हैं। हमारे पूर्वज ऋषियों की ये आत्माएँ हमारी श्रद्धा के अनुसार सहयोग देकर प्रगति पथ में बढ़ने की प्रेरणा देती हैं। ये करुणार्द्र आत्माएँ अपनी सामर्थ्य और शक्तियाँ, पीड़ितों के उद्धार के लिये खर्च करने को आतुर रहती हैं। पिछड़ों को आगे बढ़ाने और पतितों को ऊपर उठाने की उनमें ललक रहती है। सन्तप्त व्यक्तियों की शीतलता शान्ति पहुँचाने के लिये वे सदा तत्पर रहती हैं। बादलों की तरह वे हर प्यासी भूमि पर पानी बरसाने को सदा दौड़ती रहती हैं। परन्तु वे मदद कर सकें इसके लिए भावनात्मक अनुकूलता तो चाहिए ही। जो व्यक्ति भूतों से डरे नहीं प्रभावित न हो, उसका भूत कुछ नहीं बिगाड़ सकते, जहाँ उनकी घुसपैठ की गुंजायश हो वहीं वे उपद्रव दिखा पाते हैं। यह प्रत्येक सूक्ष्म शरीर धारी की सीमा है कि वह संवेदनात्मक अनुकूलता होने पर ही किसी व्यक्ति से सम्बन्ध बना सकता है। क्योंकि वे मुख्यतः संवेदानाओं, भावनाओं, विचारों के ही पुंज होते हैं। अतः जिस प्रकार भूतों के प्रति कोमलता, दुर्बलता न पालना ही उन्हें उत्पात को मौका देना है। उसी प्रकार श्रद्धा कृतज्ञता का भाव रखना ही पितरों को सहायता कर सकने का अवसर देना है। विरोध या उपेक्षा भाव रखने पर वे भी सहायता नहीं कर सकते।

पितृ-लोक को चन्द्र लोक के नाम से भी जाना जाता है। आश्विनी मास के कृष्ण पक्ष में मृतक पितरों के श्राद्ध किये

जाने का विधान शास्त्रोक्त है। वैज्ञानिकों ने भी अब इसकी महत्ता को पूरी तरह स्वीकार कर लिया है। उनके कथनानुसार इन दिनों चन्द्रमा अन्य महीनों की तुलना में पृथ्वी के अधिक निकट हो जाता है। फलत उसकी आकर्षण शक्ति का प्रभाव पृथ्वी तथा उसमें निवासरत प्राणियों पर अधिक पड़ता है। ऐसी स्थिति में चन्द्र-लोक के ऊपरी भाग में रहने वाली सूक्ष्म शरीर धारी पितरात्माएँ भूलोक की संतति से सहज ही श्रद्ध स्वरूप श्राद्ध स्वीकार कर लेती हैं। सशक्त रेडियो क्रिस्टल, दो देशान्तरों तक की सूचनाओं को खींच सकने में सक्षम होता है उसी तरह की सच्ची श्रद्धा पितरों के प्रति विकसित कर ली जाय तो उनके स्नेह सहयोग और सत्परामर्शों का लाभ आसानी से उठाया जा सकता है।

सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं में कुछ ही ऐसी होती हैं जो अपनी दुष्प्रवृतियों से प्रेरित होकर लोगों को डराती और हैरान करती हैं। किन्तु अधिकांश मृतात्माएँ ऐसी होती हैं जो अपनी जानकारी से लोगों को खतरों से सावधान करती एवं अपनी क्षमता के अनुरूप सहायता प्रदान करती रहती हैं। उनसे भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं। अपितु उनसे सम्बन्ध स्थापित कर लाभान्वित होना चाहिए।

सामान्य स्तर के लोग पितरों की छाया को देखते ही डरने लगते हैं जबकि डराना उनका उद्देश्य नहीं होता। यदि हम अपने आश्रित व्यक्तियों की सेवा सुश्रुषा करके उन्हें मृत्यु पर्यन्त प्रसन्नचित्त रखें तो वे पितर योनि में पहुँच कर भी हमारे लिए अपने अन्तःकरण में स्नेहसिक्त भावनाएँ संजोए रहते हैं। प्रेम और ममत्व की यही भावना हमारे दुःख-सुख में साथी सहयोग बन जाती है। प्रतिकूल या अनुकूल परिस्थितियों में हम अपने पूर्वजों को श्रद्धासिक्त होकर स्मरण करे तो वे हमारे साथ निश्चित रूप से उपस्थित रह कर सत्प्रेरणा का स्रोत सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार स्नेह पूर्ण उदार पितरों से बहुमूल्य सुझाव, सूचनाएँ, पथ निर्देश, जानकारियाँ और सहायता हो नहीं, प्राण अनुदान तथा शक्ति तक प्राप्त होती है। वे सूक्ष्म शरीर धारी साधु ब्राह्मण भी होते हैं। उनका स्मरण और वन्दन उपयोगी व लाभकारी होता है। उनकी मदद और मार्ग दिर्नेश, कृपा और करुणा जीवन में आगे बढ़ने, ऊँचा उठने में सहायक शक्ति बनकर प्राप्त हो सकती हैं। आवश्यकता उनके प्रति कृतज्ञता और श्रद्धा का भाव रखने की है।

अन्ध विश्वास कहकर अवहेलना न करें, श्रद्धा-कृतज्ञता भी जीवित रखें

अन्ध-विश्वास की मोटी परिभाषा है बिना प्रमाण युक्त कारणों की किन्हीं मान्यताओं को स्वीकार कर लेना। इस संदर्भ में मनीषियों के अन्यान्य प्रतिपादन भी हैं। रायल इन्स्टीट्यूट ऑफ लंदन में विज्ञान और अन्ध-विश्वास विषय पर अपना निबन्ध पढ़ते हुए रेवेन्डर चार्ल्स किंग्सले ने उसे 'अज्ञात का भय' सिद्ध किया। उनका मतलब शायद उन देवी देवताओं या भूत-प्रेतों से था जो भेंट पूजा ऐंठने के लिए डराने, धमकाने और आतंकित करने वाले माने जाते हैं। पर उनका यह प्रतिपाद भी एकाकी था। प्राचीन यूनान में प्रत्येक नदी, वृक्ष पर्वत आदि में देवात्मा मानी जाती थी और उससे मात्र शुभ कामना की आशा की जाती थी। यह आत्माएँ डराती नहीं, वरन् स्नेह, सहयोग प्रदान करती हैं। यूनानियों की देव-मान्यता अन्ध-विश्वास कही जा सकती है, पर उसका कारण अज्ञात का भय' नहीं माना जा सकता।

नेशनल कॉलेज आयरलेण्ड के प्राध्यापक सर वैरट ने कार्य और कारण की संगति बिठाये बिना किन्हीं मान्यताओं को अपना लेना अन्ध-विश्वास बताया है। इस परिधि में अनेकानेक धार्मिक प्रचलन और कथा पुराणों में बताये हुए सन्दर्भ भी आ जाते हैं। शकुन एवं मुहूर्त भी इसी वर्ग के हैं छींके हो जाने की, काम बिगड़ने की सूचना मानना यद्यपि बहु प्रचलित मान्यता है, पर खोजने पर ऐसा कोई कारण समझ में नहीं आता जिसमें छींक आने और काम बिगड़ने की परस्पर संगति बिठाई जा सके।

भूतकालीन मान्यताओं को यदि तथ्य पूर्ण नहीं सिद्ध किया जा सके तो उन्हें अग्राह्य ठहरा देना चाहिए, इस सिद्धान्त पर इन दिनों बुद्धिजीवी वर्ग का बहुत जोर है। इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि जो तथ्य आज उपलब्ध हैं वे ही अन्तिम हैं, आगे ऐसे आधार प्रस्तुत नहीं होंगे जिनसे आज अन्ध-विश्वास समझी जाने वाली बातें कल तथ्यपूर्ण सिद्ध हो सकें। तर्क, विवेक कारण और प्रमाणों को उचित महत्त्व दिया जाना चाहिए पर चिन्तन में यह गुन्जायश भी छोड़ी जानी चाहिए कि शोध की प्रगति किन्हीं भूतकालीन मान्यताओं को सही भी सिद्ध कर सकती है। उचित यही है कि हम प्रमाणित सिद्धान्तों को स्वीकार करते हुए, मस्तिस्क को इसके लिए खुला हुआ रखें कि अतीत की अध्यात्म सम्बन्धी मान्यताओं को भविष्य में सही सिद्ध हो सकने की सम्भावना है। सामाजिक कुरीतियों के रूप में जो हानिकारक

प्रचलन हैं उन्हें निस्संकोच हटाया जाय, पर अध्यात्म मान्यताओं के सम्बन्ध में उतावली न बरती जाय। तत्वदर्शी ऋषियों के अनुभव सहज ही उपहासास्पद नहीं ठहरा दिये जाने चाहिए और उन्हें तत्काल अन्ध-विश्वासों की श्रेणी में नहीं गिन लेना चाहिए।

पिछले दिनों योग सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं को अप्रामाणिक ठहराने वालों को अपनी बात पर पुनर्विचार करना पड़ा है और अत्युसाही खण्डन प्रवृत्ति से पीछे हटना पड़ा है।

डॉ० मेस्मर की मेस्मरिज्म और जेम्स ब्रेयड की हिप्नोटिज्म, जब प्रयोगशाला में सही सिद्ध होने लगे, तब उस आधार पर रोगियों को वेहोश करके ऑपरेशन किये जाने लगे और अचेतन मस्तिष्क का चमत्कारी उपयोग किया जाने लगा तो योग की इन शाखाओं को मान्यता मिली और समझा जाने लगा कि मानवी विद्युत से सम्बन्धित अन्य प्रतिपादनों में भी तथ्य हो सकता है और वे अगले दिनों प्रमाणित ठहराये जा सकते हैं

क्लोरिंगटन ने 'ईविल आई' सिद्धान्त के अनुसार यह सिद्ध किया है कि नेत्रों में बेधक दृष्टि होती है और उसे विशेष उपायों से समुन्नत करके दूसरों को अच्छे या बुरे प्रभाव के अन्तर्गत लाया जा सकता है। यह सिद्धान्त लगभग उसी स्तर का है जिसके अनुसार 'नजर लगने' की पुरानी मान्यता को अन्ध-विश्वास ठहरा दिया गया है।

चार्ल्स वाइविन ने इच्छा शक्ति एवं एकाग्रता की शक्ति को जादुई चमत्कारों से लेकर शारीरिक, मानसिक रोगों की निवृत्ति तक के लिए प्रयुक्त करके दिखाया और बताया है कि वह शक्ति मानवी क्षमताओं में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके प्रयोग से व्यक्तित्व को प्रतिभाशाली बताने की दिशा में आशातीत सफलता पाई जा सकती है और अपने में ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न कर सकते हैं जिन्हें अद्भुत कहा जा सके। इस सन्दर्भ में उनके प्रयोगों ने दर्शकों को चकित कर दिया है। यह मन्त्र शक्ति के सम्बन्ध में कहे जाने वाले चमत्कारी वर्णनों की पुनरावृत्ति है।

सोसाइटी फार साइकिकल रिसर्च के अध्यक्ष जी० एन० टीरेल ने अपनी खोजों में ऐसे प्रमाणों के पहाड़ लगा दिये हैं जिनमें प्रेतात्माओं के अस्तित्व एवं क्रिया-कलाप के लगभग वैसे ही प्रमाण मिले हैं जैसे कि जीवित मनुष्यों के होते हैं। ठीक इसी प्रकार की शोधें स्प्रिचुअल सोसाइटी ऑफ ब्रिटेन की है उसके संचालक भी अपनी संग्रहीत प्रमाण सामग्री में प्रेतात्माओं के अस्तित्व को इस प्रकार सिद्ध करते हैं जिससे अविश्वासियों को भी विश्वास करने के लिए बाध्य होना पड़े। यह प्रतिपादन प्रायः उन्हीं बातों को पुष्ट करता है जिन्हें बताने के कारण झाड़-फूँक करने वाले ओझा लोगों का अथवा भूत-प्रेत की बातें करने वालों को अन्ध-विश्वासी कहा जाता रहा है।

स्वप्नों के मिथ्या होने की बात बुद्धिजीवी वर्ग में कही जाती रही हैं। पर जब कितने ही उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनमें स्वप्न में देखी गई बात यथार्थ निकली अथवा स्वप्न में मिली सूचना भविष्य कथन बनकर सामने आई तब परामनोविज्ञान के विश्लेषणकर्ताओं को मनुष्य की अतीन्द्रिय शक्ति का स्वप्नों के साथ एक सीमा तक घुली रहने की बात स्वीकार करनी पड़ी। स्वप्न फल बताने वालों को अन्ध-विश्वासी ही कहा जाता रहे, आज के प्रस्तुत प्रमाणों को देखते हुए यह बात न्याय संगत प्रतीत नहीं होती।

मेन्टल टेलीपैथी-क्लेयर वायस आदि ऐसी अध्यात्म विधा सामने आती रही हैं जो भूतकालीन चमत्कारवाद की सत्यता मानने के लिए फिर वापिस लौट चलने का निमन्त्रण देती हैं। मैटा फिजिक्स विज्ञान का जिस क्रम से विकास हो रहा है उसे देखते हुए लगता है वह दिन बहुत दूर नहीं रह गया जब मस्तिष्क विद्या हमें प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि जैसे योगाभ्यासों को न केवल सही आधार पर विनिर्मित सिद्ध करेगी, वरन् यह भी बतायेगी कि उपासना, साधना की पद्धतियाँ जीवन के अन्तरंग और वहिरंग दोनों पक्षों के विकास में उपयोगी है और सहायक भी।

ऐसी दशा में हमें अन्ध-विश्वासों की सीमा निर्धारित करते हुए प्राचीन आध्यात्मिक मान्यताओं के सम्बन्ध में थोड़ा उदार दृष्टिकोण ही रखना चाहिए और विज्ञान बुद्धि द्वारा यथार्थता तक पहुँचने के लिए जितनी प्रतीक्षा की आवश्यकता है उसे बिना उतावली के पूरी होने देना चाहिए।

अदृश्य शक्तियों, उदार पितरों देव-सत्ताओं और प्रजातियों द्वारा सहयोग- मार्ग दर्शन दे सकता भी ऐसा ही एक सत्य है। प्राचीन आध्यात्मिक मान्यताओं में से यह भी एक है और पूर्णतः वास्तविक है। अन्ध-विश्वास नहीं। उसे अन्ध-विश्वास मान बैठना हटवादिता तो है ही, अकृतज्ञता भी है। अपने अदृश्य सहायकों के प्रति गहन श्रद्धा-भाव की आवश्यकता हैं, न कि प्रामाणिक घटनाक्रमों एवं तथ्यों की अवहेलना करने की।

पितरों को श्रद्धा दें, वे शक्ति देंगे

प्राणियों का शास्त्रीय वर्गीकरण शरीरधारी और अशरीरी दो भागों में किया गया है। अशरीरी वर्ग में- (१) पितर, (२) मुक्त, (३) देव, (४) प्रजापति हैं। शरीरधारियों में- (१) उद्भिज, (२) स्वेदज, (३) अंडज, (४) जरायुज हैं।,

चौरासी लाख योनियाँ शरीरधारियों की हैं। वे स्थूल जगत में रहती हैं और आँखों से देखी जा सकती हैं। दिव्य जीव जो आँखों से नहीं देखे जा सकते हैं उनका शरीर दिव्य होता है। सूक्ष्म जगत में रहते हैं। इनकी गणना तत्वदर्शी मनीषियों ने अपने समय में ३३ कोटि की थी । तेतीस कोटि का अर्थ उनके स्तर के अनुरूप तेतीस वर्गों में विभाजित किये जा सकने योग्य भी होता है। कोटि का एक अर्थ वर्ग या स्तर होता है। दूसरा अर्थ है-करोड़। इस प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि उस दिव्य सत्ताधारियों की गणना तेतीस करोड़ की संख्या में सूक्ष्मदर्शियों ने की होगी। जो हो उनका अस्तित्व है, कारण और प्रभाव भी।

जीवों के विकास क्रम को देखने से पता चलता है कि कितनी ही प्राचीन जीव जातियाँ लुप्त होती हैं और कितने ही नये प्रकार के जीवधारी अस्तित्व में आते हैं। फिर देश काल के प्रभाव से भी उनकी आकृति प्रकृति इतनी बदलती रहती है कि एक वर्ग को ही अनेक वर्गों का माना जा सके। फिर कितने ही जीव ऐसे हैं जिन्हें अनादि काल से जन-सम्पर्क से दूर अज्ञात क्षेत्रों में ही रहना पड़ा है और उनके सम्बन्ध में मनुष्य की जानकारी नही के बराबर है। कुछ प्राणी ऐसे हैं जो खुली आँखों से नहीं देखे जा सकते। सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों से ही उन्हें हमारी खुली आँखें देख सकती हैं। इतने छोटे होने पर भी उनका जीवन-क्रम अन्य शरीरधारियों से मिलता-जुलता ही चलता रहता है।

अपनी पृथ्वी बहुत बड़ी है उस पर रहने वाले जलचर-थलचर-नभचर कितने होंगे, इसकी सही गणना कर सकना स्थूल बुद्धि और मोटे ज्ञान साधनों से सम्भव नहीं हो सकती, केवल मोटा अनुमान ही लगाया जा सकता है, पर सूक्ष्मदर्शियों के असाधारण एवं अतीन्द्रिय ज्ञान से साधारणतया अविज्ञात समझी जाने वाली बातें भी ज्ञात हो सकती हैं। ऋषियों की सूक्ष्म दृष्टि ने अपने समय में जो गणना की होगी उसे अविश्वासनीय ठहराने का कोई कारण नहीं जब कि जीव शास्त्रियों की अद्यावधि खोज ने भी लगभग उतनी ही यौनियाँ गिनली हैं। इसमें कुछ ही लाख की कमी है जो शोध प्रयास जारी रहने पर नवीन उपलब्धियों के अनवरत सिलसिले को देखते हुए कुछ ही समय में पूरी हो सकती है, वरन् उससे भी आगे निकल सकती है।

देखे पहचाने जा सकने योग्य इन शरीरधारियों को मनीषियों ने चार भागों में विभक्त किया है- (१) उद्भिज, (२) स्वेदज, (३) अंडज, (४) जरायुज।

उद्भिज वर्ग में पेंड़-पौधे, लता गुल्म, घास, अन्न, जड़ी बूटियाँ आदि की गणना की जाती है। स्वेदज का मोटा अर्थ पसीने से उत्पन्न होने वाले "जूँ" आदि का नाम लिया जाता है, पर वस्तुतः यह शब्द मेरुदण्ड रहित प्राणियों के लिए प्रयुक्त होता है, कीट पतंग, मक्खी, मच्छर, टिड्डी, तितली आदि इसी वर्ग में आते हैं । अण्डज वे हैं जो अपने शरीर से अण्डा ही उत्पन्न कर सकते हैं। बच्चा उनके शरीर में नहीं पलता, वरन् अण्डे में विकसित होता और उसी को फोड़ कर शरीरधारी बनता है। इस वर्ग में मछलियाँ, पक्षी, रेंगने वाले कीड़े आदि आते हैं। चौथे जरायुज जिन्हें पिण्डज भी कहते हैं । वे जो माता के साथ नाल तन्तु में बँधे हुए उत्पन्न होते हैं। जन्म के समय ही जिनकी आकृति अपने जन्मदाताओं के अनुरूप होती है। मनुष्य और पशु इसी श्रेणी में गिने जा सकते हैं। यों स्वेदजों में से भी अधिकांश अण्डज ही होते हैं, पर उन्हें पृथक् रीढ़ रहित या रीढ़ सहित होने के कारण पृथक् वर्ग का गिना गया है।

शरीरधारियों की चौरासी लाख अथवा उससे न्यूनाधिक कितनी ही जातियाँ क्यों न हों, वस्तुतः उनका आरम्भिक जन्म एक ही रासायनिक तत्व से हुआ है। सृष्टि के आरम्भ में एक ही जीव रसायन था और वही अभी तक समस्त प्राणियों का संरचना का एकमात्र कारण है। परिस्थितियों ने लम्बे समय की क्रमिक विकास शृंखला में बाँधकर उन्हें आगे बढ़ाया है। प्रगति की घुड़दौड़ में एक से अनेक बने हुए प्राणधारी अपनी दिशा और तीब्रता के सहारे विभिन्न स्तर के विभिन्न आकृति प्रकृतियों के बनते चले गये हैं।

सृष्टि के प्रारम्भ होने से पूर्व ब्रह्म एक था। उसने एक से बहुत होने की इच्छा की तदनुसार वह अपने आपको विभक्त कर बैठा और उन खण्ड-विखण्डों ने अपनी विभिन्न प्रकार की आकृति-प्रकृति बनाली। तदनुसार यह विश्व अनेकानेक जड़ चेतन पदार्थों में बनता, बढ़ता और विकसित परिष्कृत होता हुआ वर्तमान स्थिति तक आ पहुँचा।

जीवन विद्या का निष्कर्ष यह है कि विश्व-व्यापी चेतना अविछिन्न है। प्रत्येक प्राणी में वही समुद्र की लहरों की तरह छोटे-बड़े वर्गों में विभाजित हुई दृष्टिगोचर हो रही है।

प्राणियों के बीच पाया जाने वाला सहचर्य, सहयोग स्नेह और सम्वेदन एक तथ्य है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। जड़ जगत में प्रत्येक पदार्थ अन्यान्य पदार्थों का सहयोग लेकर एवं देकर ही अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। यदि यह सहयोग सूत्र हट जाय तो प्रत्येक अणु-परमाणु अपने पृथक् अस्तित्व में

बिखरा-बिखरा दिखाई पड़ेगा फिर ऐसे किसी पदार्थ का आकार न बन सकेगा जिसे वस्तु नाम दिया जा सके या इन्द्रियों से देखा पकड़ा जा सके। सृष्टि सन्तुलन विद्या- इकालाजी यह सिद्ध करती है कि जड़ समझी जाने वाले प्रकृति का प्रत्येक घटक, सहयोग के आदान-प्रदान क्रम को अपनाये हुए हैं और उसी आधार पर उसका अस्तित्व एवं विकास क्रम चल रहा है।

चेतना के सम्बन्ध में भी यही बात है। जीवधारियों की चेतना में विकास, उल्लास एवं क्रिया-कलाप न्यूनाधिक दिखाई पड़ता है। उसका कारण सहचर्य, स्नेह, सहयोग की न्यूनाधिकता ही है। मनुष्य को इस सहकारिता की अधिक मात्रा उपलब्ध हुई। फलतः उसकी बुद्धि का विकास क्रम द्रुतगति से चला। इसी आधार पर उसने अन्य पदार्थों एवं पदार्थों का अधिक अच्छा उपयोग करना सीखा-खड़े होने, बोलने लिखते एवं सोचने की क्षमता बढ़ाई-परिवार तथा समाज का ढाँचा खड़ा किया और क्रमिक गति से आगे बढ़ते हुए वर्तमान स्थिति तक आ पहुँचा।

जिस प्रकार जीव रसायन के एक ही मूल आधार में अनेकानेक प्राणियों का जन्म एवं विकास हुआ है, उसी प्रकार एक ही चेतना तत्व जिसे प्राण कहते हैं-समस्त प्राणधारियों की चिन्तन शक्ति का-आत्मा का- मूलभूत आधार है। कपड़ा अनेक धागों से मिलकर बना होता है। चेतना के अनेक घटकों से मिला हुआ ही यह चेतन जगत है। अलग-अलग प्राणी दिखाई पड़ते हुए भी वे एक ही महाप्राण के अविछिन्न अंग हैं। सभी घटों में एक ही संव्याप्त आकाश पृथक्-पृथक् रूपों और सीमाओं में बँधा हुआ देखा जाता है। पृथक् आत्मा वस्तुतः एक ही व्यापक आत्मा की भिन्न दीखने वाली, पर वस्तुतः अभिन्न इकाइयाँ हैं। दृश्यमान अनेकता अपने मूल में अविछिन्न एकता को धारण किये हुए हैं।

परब्रह्म साक्षी, दृष्टा, अचिन्त्य एवं अनिर्वचनीय है। उसकी अनुभूति ही हो सकती है व्याख्या नहीं। शरीरी और अशरीरी स्थूल और सूक्ष्म कहे जाने वाले समस्त प्राणी उसी में से उत्पन्न होते हैं और अन्ततः उसी में लय हो जाते हैं। जड़ और चेतन सृष्टि का-परा और अपरा प्रकृति का सृजेता एवं अधिपति वही है। उसी ब्रह्म महासागर की लहरें हमें विविध आकार-प्रकारों में ज्ञान-विज्ञान के माध्यम से अनुभव करते हैं।

दिव्य योनियों के चार वर्ग पितर, मुक्त, देव और प्रजापति हमारी तरह पञ्च तत्वों का दृश्यमान शरीर धारण किये हुए नहीं है अस्तु उन्हें हम चर्म चक्षुओं से नहीं देख सकते तो भी उन्हें सूक्ष्म शरीरधारी ही कहा जायेगा। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श की तन्मात्राऐं उनके दिव्य शरीरों में विद्यमान रहती हैं, अतएव वे शरीरधारी प्राणियों को एवं पन्चतत्वों से बने हुए पदार्थों को प्रभावित कर सकते हैं। अपनी सीमा मर्यादा के अनुरूप अपनी सामर्थ्य का वे उपयुक्त अक्सर पर प्रयोग भी करते हैं और सृष्टि संतुलन बनाए रखने में भूमिका का निर्वाह भी करते हैं प्रजापति वर्ग की वे दिव्यात्माएँ होती हैं, जो केवल पृथ्वी का नहीं, वरन् समस्त ब्रह्माण्ड का-उसमें अवस्थित पृथ्वी जैसे असंख्यों चेतन प्राणधारियों वाले पिण्डों का और निर्जीव ग्रह-नक्षत्रों का सन्तुलन बनाते हैं। ब्रह्माण्ड में चल रही विविध क्रियाओं एवं उनकी प्रतिक्रियाओं की स्थापना और व्यवस्था उसी वर्ग की आत्माओं को सम्भालनी पड़ती है। उन्हें सृष्टा, पोषक-संहारक स्तर के कार्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश की भूमिका में सम्पन्न करने पड़ते हैं।

देव, वे जिन्हें सृष्टि सन्तुलन बनाये रहने का ईश्वर प्रदत्त विशिष्ट उत्तरदायित्व वहन करना पड़ता है। वे समय-समय पर विशेष प्रयोजनों के लिए-विशेष कलेवर धारण करके देवदूतों, महामानवों एवं अवतारी महापुरुषों के रूप में जन्म लेते हैं। समय की विकृतियों का निराकरण और अभीष्ट सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन उनका प्रधान कार्य रहता है। धर्म की ग्लानि और अधर्म के अभ्युत्थान का समाधान- साधुता का परित्राण एवं दुष्कृतों का विनाश-इन अवतारी महामानवों का लक्ष्य रहता है। लोक-शिक्षण एवं नव-निर्माण के लिए उनके विविध क्रिया-कलाप होते हैं। सामयिक सन्तुलन ठीक हो जाने के उपरान्त वे अशरीरी रहकर विश्व-कल्याण के प्रयोजनों में निरत रहते हैं।

पितर, वे हैं जो पिछला शरीर त्याग चुके किन्तु अगला शरीर अभी प्राप्त नहीं कर सके। इस मध्यवर्ती स्थिति में रहते हुए, वे अपना स्तर मनुष्यों जैसा ही अनुभव करते हैं।

वे साधारण पितरों से कई गुना शक्तिशाली होते हैं जो लोभ-मोह के-राग द्वेष के-वासना तृष्णा के बन्धन काट चुके। सेवा सत्कर्मों की प्रचुरता से जिनके पाप प्रायश्चित्त पूर्ण हो गये। उन्हें शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं रहती। उनका सूक्ष्म शरीर अत्यन्त प्रबल होता है। अपनी सहज सतोगुणी करुणा से प्रेरित होकर प्राणियों की सत्प्रवृत्तियों का परिपोषण करते हैं। सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन में योगदान देते हैं। श्रेष्ठ कर्मों की सरलता और सफलता में उनका प्रचुर सहयोग रहता है। ये श्रेष्ठ आत्माएँ मुक्त पुरुषों की होती हैं। उदार प्रवृत्ति वाले पितर भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार मुक्त पुरुषों की ही गतिविधियों का अनुसरण करने का प्रयास करते रहते हैं।

मुक्त आत्माओं और पितरों के प्रति मनुष्यों को वैसा ही श्रद्धा-भाव दृढ़ रखना चाहिए, जैसा देवों-प्रजापतियों तथा परमात्म-सत्ता के प्रति मुक्तों, देवों, प्रजापतियों एवं ब्रह्म को तो

मनुष्यों की किसी सहायता की आवश्यकता नहीं होती । किन्तु पितरों को ऐसी आवश्यकता होती है। उन्हें ऐसी सहायता दी जा सके, इसीलिए मनीषी-पूर्वजों ने पितर पूजन श्राद्ध-कर्म की परम्पराएँ प्रचलित की थी। उनकी सही विधि और उनमें सन्निहित प्रेरणा को जानकर पितरों को सच्ची भाव-श्रद्धांजलि, अर्पित करने पर वे प्रसन्न पितर, बदले में प्रकाश प्रेरणा, शक्ति और सहयोग देते हैं। पितरों को स्थूल सहायता की नहीं, सूक्ष्म भावात्मक, सहायता की ही आवश्यकता होती है, क्योंकि वे सूक्ष्म शरीर में ही अवस्थित होते हैं।

हमारे शास्त्रों में मनुष्यों के तीन शरीर माने गये हैं- (१) स्थूल, (२) सूक्ष्म और (३) कारण शरीर। स्थूल शरीर वह है, जो हमें दिखाई देता है। जो पार्थिव अणु संकुलन से बना है, जिसे स्पर्श कर अनुभव करते हैं।

दूसरा सूक्ष्म शरीर- हल्का एवं सूक्ष्म परमाणुओं से बना होता है। यह परमाणु-विज्ञान में माने गये परमाणुओं से भिन्न होते हैं, सजीव एवं चेतन होते हैं। इसे प्राण शरीर भी कहा जाता है। इस शरीर में भी वर्षा, शीत, उष्णता, सुख-दुख का अनुभव उसी तरह होता है, जिस तरह स्थूल शरीर में। किन्तु सूक्ष्म शरीर के पोषण के लिये अन्न की आवश्यकता नहीं होती। विचार और भाव उसका पोषण करते हैं, इसलिए सूक्ष्म शरीर के आने जाने में समय नहीं लगता। वह क्षंण मात्र में न्यूयार्क, जर्मनी, इटली या स्विरजरलैण्ड पहुँच सकता है। साधी हुई विचार-शक्ति (मनोयोग) से बन्द अलमारियों की पुस्तकें तक पढ़ी जा सकती हैं।

अन्यान्य चमत्कारपूर्ण जानकारियाँ हासिल की जा सकती हैं, सूक्ष्म शरीर की सत्ता और महत्ता पर कहीं अन्यत्र विस्तृत प्रकाश डाला जायेगा। अभी इतना ही जानना चाहिए कि सूक्ष्म शरीर सभी जड़-वस्तुओं के लिए भी पारदर्शक होता है। पितर आत्माओं का शरीर सूक्ष्म शरीर का बना होता है। इस शरीर के आस-पास हल्के रंग का प्रकाश भी चारों और फैला रहता है। जो आत्मा जितनी अधिक पवित्र होती हैं, उसका प्रकाश भी अधिक फैला और चमकदार होता है। महापुरुषों के मुख-मण्डल पर प्रदर्शित तेजोवलय इसी पवित्रता और तेजस्विता का प्रतीक होता है।

हिन्दू-दर्शन की मान्यता यह है कि जब जीवात्मा स्थूल शरीर छोड़ देता है, तभी मृत्यु हो जाती है। अन्त.करण चतुष्टय (मन,बुद्धि चित्त और अहंकार) तथा कारण शरीर सहित जीवात्मा सूक्ष्म शरीर में ही होता है। इसलिए उसका वह व्यक्तित्व वही बना रहता है। यथासमय यही सूक्ष्म शरीर पुनर्जन्म ग्रहण करता है। यह भी कहा जाता है कि स्वाधीनावस्था में सूक्ष्म शरीर ही अलग होकर लोक लोकान्तरों की अनुभूतियाँ ग्रहण करता है।

कुछ जीवात्मायें महान तेजस्वी, विकार, रहित, निष्काम तथा इतनी संकल्पवान होती है कि वे मृत्यु के उपरान्त किन्हीं लोकों में जा सकता है। स्थूल शरीर भी धारण कर सकते हैं, अपने सगे सम्बन्धियों को अथवा करुणावश किन्हीं भी मनुष्यों को सन्देश और प्रेरणायें भी दे सकते हैं। भगवान् कृष्ण ने शोक-ग्रस्त अर्जुन को अभिमन्यु के दर्शन कराये थे, तब अभिमन्यु ने अर्जुन से कहा था-"इस संसार में कौन किसका ? किसका पिता कौन पुत्र? सब जीव-कर्मवश शरीर धारण करते और फिर अपने लोक को लौट जाते हैं?"

जगद्गरु शंकराचार्य ने अपने सूक्ष्म-शरीर से ही माहिष्मती के मृत राजा के शरीर में प्रवेश किया था और काम कला का ज्ञान प्राप्त किया था। सन्त एकनाथ के यहाँ श्राद्ध के दिन ब्राह्मणों ने भोजन करने से इनकार कर दिया। तब उन्होंने अपने पितरों का आह्वान कर उन्हें साक्षात् भोजन कराया। इस घटना से सन्त एकनाथ को चमत्कारी व्यक्ति सिद्ध कर दिया था। सूक्ष्म शरीर के चमत्कार और भी आश्चर्यजनक है। वह लोकान्तरों में भी प्रसन्नतापूर्वक गमन कर सकता है।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि शरीर की बीज अवस्था बिल्कुल सूक्ष्म और अदृश्य है, उसे प्रकाशस्वरूप भी कह कह सकते हैं, उसकी ऊर्ध्वगति या अधोगति अच्छे और बुरे भावों, विचारों, संकल्पों एवं क्रिया-कलापों से होती है। इसलिये जीव के अन्यान्य ग्रहों में आवागमन का कारण भी सूक्ष्म रूप में विचार और भावनायें तथा स्थूल रूप में क्रिया कलाप, रहन-सहन और खान पान होता है। अर्थात् स्वर्ग और नर्क की प्राप्ति या उनसे छूटना एक और स्थूल शरीर की शुद्धि पर भी आश्रित है और सूक्ष्म शरीर की शुद्धता पर भी।

यहाँ तक दो बातें निर्विवाद सत्य सिद्ध होती हैं- (१) पारलौकिक जीवन, (२) आवागमन की स्थिति में सुख और दु:ख की अनुभूते । तब फिर हमें उपनिषदों की इस मान्यता की ओर लौटना ही पड़ता।

"न ह्यन्ततरतो रूपं किंचन सिध्येत्। नो एतन्नाना। तद्यथा रथस्यारेष नेमिरर्पिता नाभावरा अर्पिता एवमेवैता भूत मात्रा: प्रज्ञामावास्वर्पिता प्रज्ञामात्रा प्राणे अर्पिता: । एव लोक-पाल एष लोकधिपतिरेष सर्वेश्वर: स म आत्मेति विद्यात् स म आत्मेति विद्यात्।"

-कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषत् ९

अर्थात्- प्रज्ञामात्रा और भूतमात्रा के स्वरूप में कोई विभिन्नता नहीं है। जैसे- रथ की नेमि अरों में और अरे रथ नाभि के आश्रित रहते हैं, वैसे ही भूत मात्रायें, प्रज्ञामात्राओं में और प्रज्ञा-मात्रायें प्राण में स्थित हैं। यह प्राण ही अजर अमर सुखमय और प्रज्ञामात्रा है। यद्यपि वह श्रेष्ठ कर्मों से न तो बढ़ता और न बुरे कर्मों से घटता है, किन्तु जो शुभ कर्म करते हैं, प्रज्ञा और प्राण रूप परमेश्वर उन्हें ऊपर के लोकों (स्वर्ग) में पहुँचाता है तथा जो बुरे कर्म करते हैं, उन्हें नीचे के लोकों (नर्क) में धकेल देता है।

पितर-लोक ऊपर का ही लोक माना जाता है। यहाँ अवस्थित आत्माओं में सात्विकता का प्राधान्य होता है। उसी सत्व-गुण का प्रकाश वे अपने सम्पर्क में आए सत्पात्रों को देते हैं। साथ ही, पितर मुक्त नहीं होते। अपनी उन्नति में सहयोग की उन्हें भी अपेक्षा होती है। सद्भावनाएँ सम्प्रेषित करने पर उन्हें ऐसा ही भावात्मक सहयोग प्राप्त होता है। प्रकाशपूर्ण मार्ग दर्शन का सत्कर्म करने पर पितर भी सद्गति के अधिकाधिक अधिकारी बनते हैं। इसलिए उन्हें ऐसे सत्कर्म में सहयोग देना भी उनकी प्रगति में सहयोग देना ही है। ऐसा सहयोग पितरों से सम्पर्क कर, उनके प्रति कोमल भावनाएँ पालकर तथा उनके सूक्ष्म संकेतों को समझ कर सन्मार्ग पर बढ़ते हुए सहज ही प्रदान किया जा सकता है। पितर-पूजन, श्रद्धा-तर्पण का यही अर्थ एवं महत्त्व है।

सर्वपितृ अमावस्या

पितृ-पक्ष का हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति में बड़ा महत्त्व है। जो पितरों के नाम पर श्राद्ध और पिण्डदान नहीं करता, वह सनातन धर्मी हिन्दू माना नहीं जा सकता। हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार मृत्यु होने पर मनुष्य का जीवात्मा चन्द्रलोक की तरफ जाता है और ऊँचा उठकर पितृ-लोक में पहुँचता है। इन मृतात्माओं को अपने नियत स्थान तक पहुँचने की शक्ति प्रदान करने के लिए पिण्डदान और श्राद्ध का विधान किया गया है। श्राद्ध पितरों के नाम पर ब्राह्मण भोजन भी कराया जाता है। इसके पुण्य फल से भी पितरों का संतुष्ट होना माना गया है। धर्म शास्त्रों में यह भी कहा है कि जो मनुष्य श्राद्ध करता है वह पितरों के आशीर्वाद से आयु, पुत्र, यश, बल, वैभव, सुख और धन धान्य को प्राप्त होता है। इसीलिए धर्म-प्राण हिन्दू आश्विन मास के कृष्ण पक्ष भर प्रति दिन नियम पूर्वक स्नान करके पितरों का तर्पण करते हैं। जो दिन उनके पिता की मृत्यु का होता है, उस दिन अपनी शक्ति को अनुसार दान करके ब्राह्मण-भोजन कराते हैं।

एक समय इस देश में श्राद्ध कर्म का इतना प्रचार था कि उसके ध्यान में लोग अपने तन बदन की सुधि भूल जाते थे। उन्हें बाल बनवाने, तेल लगाने, पान खाने आदि का भी अवकाश न मिलता था। उसी बात के चिह्न स्वरूप आज प्रायः सभी हिन्दू चाहे वे श्राद्ध करने वाले न भी हों, इन कार्यों से पृथक् रहना धर्मानुकूल मानते हैं। वैसे जिन लोगों के पिता स्वर्गवासी हो गये हैं, वे अमावस्या तक और जिनकी माता स्वर्गवासी हो गई हैं, वे मातृ नवमी तक न तो बाल बनवाते हैं और न तेल लगाते हैं।

पितरों का पिण्डदान करने का सबसे बड़ा स्थान 'गया' माना जाता है और जनता में ऐसी मान्यता है कि गया में पितरों को पिण्डदान कर देने पर फिर प्रति वर्ष पिण्ड देने की आवश्यकता नहीं रहती है। यह भी कहते हैं कि महाराज रामचन्द्र जी ने गया आकर फल्गू नदी के किनारे अपने मृत पिता महाराज दशरथ का पिण्डदान किया था। कुछ भी हो इस प्रथा से इतना प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि हिन्दूओं की सभ्यता प्राचीन काल में काफी ऊँचे दर्जे तक पहुँच चुकी थी और वे जीवित माता-पिता की सेवा करना ही अपना परम धर्म नहीं मानते थे, वरन् उनके मरने पर भी उनकी स्मृति-रक्षा करना अपना पवित्र कर्तव्य समझते थे और इसके लिए १५ दिन का समय अलग कर दिया था। हिन्दुओं के इस प्रथा की प्रशंसा अन्य लोगों ने भी की है। हिन्दुस्तान के मुगल सम्राट शाहजहाँ ने, जब उसे अपने लड़के औरंगजेब को लिखा था कि " तुम से तो हिन्दू लोग ही बहुत ही अच्छे हैं जो मरने के बाद भी अपने पिता को जल और भोजन देते हैं। तू तो अपने जीवित पिता को भी दाना-पानी के बिना तरसा रहा है।"

इस विषय पर विशेष विचार करने से यही प्रतीत होता है कि पितृ-पक्ष का महत्त्व इस बात में नहीं है कि हम श्राद्ध-कर्म को कितनी धूम धाम से मनाते हैं और कितने अधिक ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं, वरन् उसका वास्तविक महत्त्व यह है कि हम अपने पितामह आदि गुरुजनों की जीवितावस्था में ही कितनी सेवा-सुश्रुषा, आज्ञा-पालन करते हैं। चाहे अन्य लोग इसका कुछ भी अर्थ क्यों न लगावें, पर हम तो यही कहेंगे कि जो व्यक्ति अपने जीवित पिता माता आदि की सेवा नहीं करते, उल्टा उनको दुःख पहुँचाते हैं, या उनका अपमान करते हैं, बाद में उनका पिण्डदान और श्राद्ध करना कोरा ढोंग है और उसका कोई परिणाम नहीं। क्योंकि अगर हमारे श्राद्ध का फल पितरों तक सूक्ष्म रूप से पहुँचता भी है तो वह तभी समभव है जब हम सच्ची भावना और एकाग्र चित्त से उस कार्य को करें। पर जो लोग जन्म भर अपने पिता-माता को हर तरह से कष्ट पहुँचाते रहे,

उनको भला-बुरा कहते रहे, वे फिर किस प्रकार श्रद्धा और हार्दिक भावना से श्राद्ध आदि कर्म कर सकते हैं?

माता-पिता गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता की भावना जीवन भर धारण किये रहना आवश्यक है । यदि इन गुरुजनों का स्वर्गवास हो जाय तो भी मनुष्य की वह श्रद्धा स्थिर रहनी चाहिये । इस दृष्टि से मृत्यु के पश्चात् पितृ यज्ञों में मृत्यु की वर्ष तिथि के दिन, पर्व समारोहों पर श्राद्ध करने का श्रुति स्मृतियों में विधान पाया जाता है ।

श्रद्धा से श्राद्ध शब्द बना है । श्रद्धापूर्वक किये कार्य को श्राद्ध कहते हैं । श्राद्ध से श्रद्धा जीवित रहती है । श्रद्धा को प्रकट करने का जो प्रदर्शन होता है, वह श्राद्ध कहलाता है । जीवित पितरों और गुरुजनों के लिए श्रद्धा प्रकट करने, श्राद्ध करने के लिए, उनकी अनेक प्रकार से सेवा-पूजा तथा संतुष्टि की जा सकती है परन्तु स्वर्गीय पितरों के लिए श्रद्धा प्रकट करने का । अपनी कृतज्ञता को प्रकट करने का कोई निमित्त बनाना पड़ता है । यह निमित्त है-श्रद्धा, मृत पितरों के लिए कृतज्ञता के इन भावों का स्थिर रहना हमारी संस्कृति की महानता को ही प्रकट करता है । जिनके सेवा सत्कार के लिये हिन्दुओं ने वर्ष में १५ दिन का समय प्रथक् निकाल लिया है । पितृ भक्ति का इससे उज्ज्वल आदर्श और कहीं मिलना कठिन है ।

श्रद्धा तो हिन्दू धर्म का मेरू दण्ड है । हिन्दू धर्म के कर्मकाण्डों में आधे से अधिक श्राद्धतत्त्व भरा हुआ हैं । सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी, अग्नि, जल, कुआ, तालाब, नदी, मरघट, खेत, खलिहान, भोजन चक्की, चूल्हा, तलवार, कलम, जेवर, रुपया, घड़ा, पुस्तक, आदि निर्जीव पदार्थों की विवाह या अन्य संस्कारों में अथवा किन्हीं विशेष अवसरों पर पूजा होती है । यहाँ तक कि नाली या घूरे तक की पूजा होती है । तुलसी, पीपल, वट, आँवला आदि पेड़, पौधे तथा गौ, बैल, घोड़ा, हाथी, आदि पशु पूजे जाते हैं । इन पूजाओं में उन जड़ पदार्थों या पशुओं को कोई लाभ नहीं होता परन्तु पूजा करने वाले के मन में श्रद्धा एवं कृतज्ञता का भाव अवश्य उत्पन्न होता है । जिन जड़-चेतन पदार्थों से हमें लाभ मिलता है, उनके प्रति हमारी बुद्धि में उपकृत भाव होना चाहिए और उसे किसी न किसी रूप में प्रकट करना ही चाहिए । यह श्राद्ध भाव ही तो है ।

मरे हुए व्यक्तियों का श्राद्ध कर्म से कुछ लाभ है कि नहीं ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि होता है, अवश्य होता है । संसार एक समुद्र के समान है जिसमें जल कणों की भाँति हर एक जीव है । विश्व एक शिला है तो व्यक्ति एक परमाणु । जीवित या मृत आत्मा इस विश्व में मौजूद है और अन्य समस्त आत्माओं से सम्बन्ध है । संसार में कहीं भी अनीति, युद्ध, कष्ट, अनाचार, अत्याचार हो रहे हों तो सुदूर देशों के निवासियों के मन में भी उद्वेग उत्पन्न होता है । जाड़े और गर्मी के मौसम में हर एक वस्तु ठण्डी और गर्म हो जाती है । छोटा सा यज्ञ करने पर भी उसकी दिव्यगन्ध व भावना समस्त संसार के प्राणियों को लाभ पहँचाती है । इसी प्रकार कृतज्ञता की भावना प्रकट करने के लिये किया हुआ श्राद्ध समस्त प्राणियों में शान्तिमयी सद्भावना की लहरें पहुँचाता है । यह सूक्ष्म भाव तरंगें तृप्तिकारक और आनन्ददायक होती हैं । सद्भावना की तरंगें जीवित-मृत सभी को तृप्त करती हैं परन्तु अधिकांश भाग उन्हीं को पहुँचाता हैं जिनके लिये वह श्राद्ध विशेष प्रकार से किया गया है ।

स्थूल वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान तक देर से कठिनाई से पहुँचती हैं परन्तु सूक्ष्म तत्त्वों के सम्बन्ध में यह बात नहीं है । उनका आवागमन आसानी से हो जाता है । हवा, गर्मी, प्रकाश और शब्द आदि को बहुत दूरी पार करते हुए बिलम्ब नहीं लगता । विचार और भाव इससे भी सूक्ष्म हैं । वह उस व्यक्ति के पास जा पहुँचते हैं जिसके लिए वह फेंके जाँय । तर्पण का कर्मकाण्ड प्रत्यक्ष रूप से बुद्धिवादी व्यक्तियों के लिये कोई महत्व नहीं रखता हो परन्तु उसकी महत्ता तो उसके पीछे काम कर रहो भावना में है । भावना ही मनुष्य को असुर, पिशाच, राक्षस, शैतान, या महापुरुष, ऋषि, देवता महात्मा बनाती है । इसी के द्वारा मनुष्य सुखी, स्वस्थ, पराक्रमी, यशस्वी तथा महान बनते हैं और यही उन्हें दु:खी, रोगी दीन ’दास, और तुच्छ बनाती हैं । मनुष्य और मनुष्य के बीच में जो जमीन आसमान का अन्तर दिखाई देता है, वह भावना का ही अन्तर है । यही कारण है कि हमारे पूर्वजों ने अपने धार्मिक कर्म-काण्डों का माध्यम इसी महान शक्ति को बनाया है । यह भाव निकल जाय तो धार्मिक समस्त क्रियाएँ व्यर्थ, शक्ति नीरस एवं निष्प्रयोजन हो जायगीं श्रद्धा के अभाव में यज्ञ करना और भट्टी जलाना एक समान है । देव मूर्तियों और बालकों के खिलौने में, शास्त्र श्रवण और कहानी कहने में, प्रवचनों और ग्रामोफोन के रिकार्डों में कोई अन्तर न रह जायगा । अश्रद्धा एक दावानल है जिसमें ईश्वर परलोक, कर्मफल, धर्म, सदाचार, दान, पुण्य परोपकार, प्रेम, एवं सेवा सहायता पर से विश्वास उठता है और अन्त में अश्रद्धालु व्यक्ति अपनी छाया पर, अपने आप पर भी अविश्वास करने लगता है । भौतिकवादी नास्तिक दृष्टिकोण और धार्मिक आन्तरिक दृष्टिकोण में प्रधान अन्तर यही है भौतिकवादी नीरस, शुष्क, कठोर दृष्टिकोण वाला व्यक्ति स्थूल व्यापार बुद्धि से सोचता है वह कहता है पिता मर गया-अब उससे हमारा क्या रिश्ता-जहाँ

होगा अपनी करनी भुगत रहा होगा उसके लिए परेशान होने से हमें क्या मतलब ? इसके विपरीत धार्मिक दृष्टि वाला व्यक्ति स्वर्गीय पिता के अपरिमित उपकारों का स्मरण करके कृतज्ञता के बोझ से नत मस्तक हो जाता है, उस उपकारमयी स्नेहमयी देवोमय स्वर्गीय मूर्ति के निस्वार्थ प्रेम और त्याग का ख्याल करके उसका हृदय भर जाता है । उसका हृदय पुकारता है स्वर्गीय पितृ देव तुम सशरीर यहाँ नहीं हो, पर कहीं न कहीं इस लोक में आपकी आत्मा मौजूद हैं । आपके ऋण भार से दवा हुआ मैं बालक आपके चरणों में श्रद्धा की अञ्जली चढ़ाता हूँ । इस भावना से प्रेरित होकर वह बालक जल की एक अंजुली भर कर तर्पण करता है ।

तर्पण का वह जल उस पितर के पास नहीं पहँचा, वहीं धरती में गिर कर विलीन हो गया, यह सत्य है। यज्ञ में आहुति दी गई सामिग्री जल कर वहीं खाक हो गई, यह भी सत्य है, पर यह असत्य है कि इस यज्ञ या तर्पण से किसी का कुछ लाभ नहीं हुआ। धार्मिक कर्मकाण्ड स्वयं अपने आप में कोई बहुत बड़ा महत्त्व नहीं रखते। महत्त्वपूर्ण तो वे भावनाएँ हैं, जो उन अनुष्ठानों के पीछे काम करती हैं।

उपर्युक्त कारणों के फलस्वरूप हिन्दू अपने पितरों के प्रति श्रद्धा, कृतज्ञता प्रकट करने और उनके प्रति अपनी भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए वर्ष में पन्द्रह दिन का समय देते हैं। श्राद्ध को केवल रूढ़िमात्र से पूरा न कर लेना चाहिए वरन् पितरों के द्वारा जो हमारे ऊपर उपकार हुए हैं उनका स्मरण करके, उसके प्रति अपनी श्रद्धा और भावना की वृद्धि करनी चाहिए। साथ-साथ अपने जीवित पितरों को भी न भूलना चाहिए। उनके प्रति भी आदर, सत्कार और सम्मान के पवित्र भाव रखने चाहिए।

श्राद्ध में ब्राह्मणों को अन्न, वस्त्र, पात्र आदि का दान दिया जाता है। इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि जिस व्यक्ति विशेष को आप जो वस्तुएँ दान रूप में दे रहे हैं, वह शीघ्र ही उनके काम आने वाली हों, उनकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने वाली हों। ऐसा न हो कि आप रुपया खर्च करके दान दें और वह वस्तुएँ उनके घर पर लम्बे समय तक बिना काम के पड़ी रहें।

यह बात युक्तिसंगत नहीं दीखती कि यदि किसी वृद्ध या वृद्धा की मृत्यु हो तो वृद्ध या वृद्धाओं को ही भोजन कराया जाय या दान दिया जाय या विधवा स्वर्गवास होने पर विधवाओं को ही दान दिया जाय। आवश्यकता को देख कर ही दान की महत्ता और लाभ सिद्ध होता है। भोजन कराते समय निर्धन विद्यार्थियों को फीस आदि के लिए स्थान रखना चाहिए। पितरों के लिए दिये गये दान द्वारा उनके जीवन का उत्थान होगा तो उनकी अन्तरात्माओं से आपके पितरों के प्रति शान्तिदायक सद्प्रेरणाएँ निकलेंगी। इसी प्रकार के सत्कार्यों में योग देने के लिए दान के अन्य उपाय सोचे जा सकते हैं।

तर्पण तो श्राद्ध में किया ही जाता है । इसके साथ-साथ पितरों की शान्ति के लिये " सूक्त संहिता" नामक पुस्तक में वर्णन पितृ सूक्त के मन्त्रों से हवन करना चाहिए क्योंकि हिन्दू धर्म में कोई भी शुभ या अशुभ कार्य हवन के बिना पूर्ण नहीं माना जाता। यह पुस्तक अखंड ज्योति प्रेस ने भी प्रकाशित कर दी है।

पितरों को सच्ची श्रद्धा दी जाएगी, उन्हें तृप्त रखा जाएगा, तो वे निश्चय ही शक्ति, प्रकाश मार्ग दर्शन प्रेरणा, सहयोग एवं भावात्मक अनुदान देगें।

पितृ ऋण और श्राद्ध तर्पण

सद्गुणों में कृतज्ञता की गणना मूर्धन्य मानी गई है क्योंकि हर उपयोगी वस्तु से हम लाभ उठाते हैं और उसके अनुदान को स्मरण रखते हैं। इसके उपरान्त प्रतिदान देने की इच्छा स्वयं ही होती है और हमें उस व्यक्ति वस्तु या वर्ग को बदले में सेवा सहायता करने की इच्छा होती है।

अपनी ओर से सेवा करने में अहंकार होने की भी सम्भावना रहती है। पर यदि बदला चुकाने के लिए -ऋण मुक्त होने के भाव से उसी कृत्य को किया जाय तो नम्रता और निरहंकारिता का भाव तो रहता ही है साथ ही किये हुए उपकारों का स्मरण करते रहने से यह ध्यान रहता है कि कितनों के कितने सहयोग से हम इस स्थिति में पहुँच सके एवं बचे हुए हैं। ऐसी दशा में ऋण मुक्त की भावना से किया गया सेवा कार्य अथवा स्मरण रखा गया कृतज्ञता भाव कहीं अधिक उच्चकोटि का होता है।

परमार्थ कृत्यों से उसके साथ जुड़ी हुई भावना का बहुत महत्त्व है। दान तिरस्कार पूर्वक, विवशता की स्थिति में अहंकार पूर्वक, विज्ञापन के निर्मित्त, प्रतिफल के लिए छल के लिए अनेक भावों का समन्वय हो सकता है। आत्म लाभ या पुण्यफल उसी भाव से होता है जिस भाव से कि कृत्य का किया गया है। देखने में तो चिड़ीमार, मछलीमार की सर्वप्रथम दानी की भूमिका निभाते हैं पर उनका उद्देश्य दूसरा ही होता है। अतएव विश्लेषण करने वाले उद्देश्य को ही महत्व देते हैं। साथ ही आत्मा और परमात्मा के दरवार में भी उनकी गणना भाव स्तर के अनुकूल ही होती है। इसीलिए परमार्थ कृत्य करते समय अपनी कामना का उल्लेख नहीं किया जाता वरन् ईश्वर समर्पण की भावना से ही किया जाता है। इस भाव की अभिव्यक्ति एक दोहे से होती है-

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।।

कृतज्ञता की स्मृति में प्रत्यक्ष पितृ ऋण है क्योंकि शरीर को उन्हीं ने पाला पनोसा बड़ा किया और योग्य बनाया एवं आश्रय दिया है। उन्हीं की प्रत्यक्ष सेवा से हम इस योग्य बन सके हैं जिसमें आज हैं। इसलिए पितृ ऋण को प्रमुखता देते हुए उनके स्मरण रखने के लिए नित्य प्रातःकाल चरण वन्दन का नियम है। अभिवादन न्यूनतम तर्पण है । इसमें माता-पिता ही नहीं उनकी समान आयु या स्तर के सभी लोग समझे जा सकते हैं बड़े भाई को भी पितृ तुल्य माना गया है। यह सभी प्रकारान्तर से गुरुजन हैं। इनका जीवित अवस्था में नित्य प्रति नमन वंदन का नियम है।

जो पितृगण दिवंगत हो चुके हैं उनके लिए तर्पण श्राद्ध का विधान है। श्रद्धाञ्जलि पूजा उपचार का सरलतम प्रयोग है अन्य उपचारों में वस्तुओं की जरूरत पड़ती है। वे कभी उपलब्ध होती हैं कभी नहीं। किन्तु जल ऐसी वस्तु है जिसे हम दैनिक जीवन में अनिवार्यतः प्रयोग करते हैं। वह सर्वत्र सुविधापूर्वक मिल भी जाता है। इसलिए पुष्पाञ्जलि आदि श्रमसाध्य श्रद्धाञ्जलियों में जलान्जलि को सर्वसुलभ माना गया है। उसके प्रयोग में आलस्य और अश्रद्धा के अतिरिक्त और कोई व्यवधान नहीं हो सकता। इसलिए सूर्य नारायण को अर्घ, तुलसी वृक्ष में जलदान, अतिथियों को अर्घ तथा पितरों को तर्पण का विधान है। प्रश्न यह नहीं कि इस पानी की उन्हें आवश्यकता है या नहीं। प्रश्न केवल अपनी अभिव्यक्ति भर का है। उसे निर्धारित मन्त्र बोलते हुए, गायत्री महामन्त्र में अथवा बिना मन्त्र के भी जलान्जलि दी जा सकती है। यही है उनकी प्रति पूजा अर्चा का सुगमतम विधान। शास्त्रीय भाषा में इसे 'तर्पण' कहा जाता है। इसमें यह तर्क करने की गुंजायश नहीं है कि यह पानी उन पूर्वजों तक या सूर्य तक पहुँचा या नहीं। इसके पीछे अपनी कृतज्ञता भरी भावनाओं को सींचते रहने की अभिव्यक्ति की ही प्रमुखता है। इसलिए उसे किसी पर अहसान करने के लिए नहीं, वरन् अपनी निज की श्रद्धा को सींचते रहने के लिए किया जाना रहना चाहिए।

पितृ ऋण को चुकाने के लिए दूसरा कृत्य आता है- 'श्राद्ध'। श्राद्ध का प्रचलित रूप तो 'ब्राह्मण भोजन' मात्र रह गया है पर बात ऐसी है नहीं। अपने साधनों का एक अंश पितृ प्रयोजनों के निमित्त ऐसे कार्यों में लगाया जाना चाहिए जिससे लोक कल्याण का प्रयोजन भी सधता हो।

ऐसे श्राद्ध कृत्यों में समय की आवश्यकता को देखते हुए वृक्षारोपण जैसा कार्य हो सकता है, जिसे ब्रह्मभोज से भी कहीं अधिक महत्त्व का माना जा सके। किसी व्यक्ति को भोजन करा देने से उसकी एक समय की भूख बुझती है। दूसरा समय आते ही फिर वह आवश्यकता जाग पड़ती है। उसे कोई दूसरा व्यक्ति कहाँ तक कब तक पूरा करता रहे। फिर यदि कोई व्यक्ति अपंग, मुसीवत ग्रस्त या लोकसेवी नहीं है तो उसे मुफ्त में भोजन कराते रहने के पीछे किसी उच्च उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। मात्र लकीर पिटने जैसी चिन्ह पूजा की परम्परा ही निभती है।

इससे अच्छा यह है कि श्राद्ध रूप में ऐसे वृक्ष लगाये जायँ जो किसी न किसी रूप में प्राणियों की आवश्यकता पूरी करते हों। अपने पास कृषि योग्य भूमि से थोड़ी भी जमीन बचती हो, कम उपयोगी हो तो उसमें आम, पीपल, महुआ आदि के वृक्ष लगा देने चाहिए। वेर, अमरूद तो और भी कम जगह में लग सकते हैं। यदि अपने पास जमीन न हो तो किसी की भी, सरकार की जमीन में भी वृक्षारोपण, इस शर्त पर हो सकता है कि उसका स्वामित्व जमीन मालिक का ही रहे। केवल सोचने, रखवाली करने आदि की जिम्मेदारी अपने कन्धे पर लेकर दूसरों की जमीन में वृक्ष लगा देने में भी पुण्यफल की प्राप्ति हो सकती है।

वृक्ष वायु शोधन करते हैं। छाया देते हैं। फल-फूल भी मिलते हैं। हरे पत्ते पशुओं का भोजन बन सकते हैं। सूखे पत्तों से जमीन को खाद मिलती है। लकड़ी के अनेकों उपयोग हैं। वृक्षों से बादल बरसते हैं। भूमि का कटान रुकता है। पक्षी घोंसले बनाते हैं उनकी छाया में मनुष्यों पशुओं को विश्राम मिलता है। इस प्रकार वृक्षारोपण भी एक उपयोगी प्राणी के पोषण के समान है। वृक्षों की भाँति ही जलाशयों के निर्माण का भी उपयोग है। तालाबों में हर साल वर्षा के पानी के साथ मिट्‌टी भर जाती है और उनकी सतह ऊँची हो जाने से कम पानी समाता है जो जल्दी ही सूख जाता है। इन्हें यदि हर साल श्रमदान से गहरे करते रहा जाय तो पुशओं को पानी, सिघाड़ा कमल जैसी- वेलें तथा तल में जमने वाली चिकनी मिट्‌टी से मकानों की मरम्मत हो सकती हैं।

मन्दिर धर्मशाला तो कोई बिरले ही धनी मानी बना पाते हैं। किन्तु उद्यान और जलाशय बनाने साफ करने का काम ऐसा है जिसे अपने मित्र पड़ौसियों के साथ मिल जुलकर पूरा किया जा सकता है और साथ ही उनसे किसी न किसी रूप में लाभ भी उठाया जा सकता है। इस प्रकार उपयोगी काम वे भी कर सकते हैं जो धन खर्च करने की स्थिति में तो नहीं है, पर जो शरीर से स्वस्थ हैं और श्रमदान के रूप में पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता का भाव चरितार्थ करते रहने की स्थिति में तो है ही।

गाँवों के कच्चे रास्ते की टूट-फूट होती रहती है। ऊँचे नीचे खाई खड्डे बनते रहते हैं। पड़ौसी किसान उस रास्ते की

जमीन को तोड़कर अपने खेत में मिलाते रहते हैं। इस प्रकार रास्ते छोटे और ऐसे बेतुके हो जाते हैं कि उनमें से निकलने वाले मनुष्यों या जानवरों को चोट लगती है मोच आती है। बैलगाड़ियाँ टूटती उलटती रहती है। इस कठिनाईयों को दूर करने के लिए पूर्वजों के श्राद्ध रूप में रास्तों की मरम्मत का काम भी श्रमदान के रूप में किया जा सकता है।

इस प्रकार की समाज सेवा के कार्यो से जीवित या दिवंगत पितृ गण निश्चय ही प्रसन्न होंगे। अपने कृतज्ञता भाव को जीवित रखने का पुण्य परमार्थ तो प्रत्यक्ष ही मिलता रहेगा।

श्राद्ध तर्पण का प्रयोजन

श्राद्ध पितरों के नाम पर किये जाते हैं और उनमें दान पुण्य किया जाता है। इस निमित्त उनके साथ तर्पण, पिण्डदान आदि कर्मकाण्ड भी जोड़ दिये गये हैं।

वर्ष में जिस तिथि में पितरों की मृत्यु हुई हो, उस दिन भी श्राद्ध किये जाते हैं और आश्विन कृष्ण पक्ष में भी। चूँकि उन दिनों कन्या का सूर्य होता है। इसलिए कन्यार्क का अपभ्रंस "कनागत" भी प्रचलित हो गया है।

पूर्वजों या गुरुजनों द्वारा किये गये उपकारों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और उसकी वार्षिक व्याज को चुकाना वार्षिक श्राद्ध है, चाहे यह मरण वाली तिथि को किया जाय या आश्विन पक्ष में।

उपकारी का प्रत्युपकार करना सामान्य मनुष्य धर्म हैं। धर्म कर्त्तव्यों के प्रति श्रद्धा बनाये रहना श्राद्ध है। अन्त्येष्टि संस्कार के उपरान्त जो १३ दिन बाद श्राद्ध किया जाता है, उसमें स्वावलम्बी उत्तराधिकार पूर्वजों की छोड़ी सम्पति को उनकी धरोहर मानकर उनकी सद्गति के लिए ही परमार्थ प्रयोजनों में लगा देते हैं। मात्र असमर्थ आश्रित ही उसे निर्वाह में काम में लाते हैं।

दान का परिणाम लोक और परलोक दोनों में ही होता है। उससे यश और शान्ति दोनों ही मिलते हैं। सह वितरण क्रम अपनाने से समाज की सुव्यवस्था भी बनती है। पर वह सत्पात्रों को ही दिया जाना चाहिए और ऐसा होना चाहिए जिससे किसी की सुविधा सम्पन्नता भले ही न पढ़े, पर उनसे पिछड़ेपन से छुटकारा पाने और आगे बढ़ने ऊँचा उठने में सहारा मिले। यश के लिए किसी पर भी पैसा लुटा देना दान नहीं, एक प्रकार का अहंकारी अज्ञान है।

महाभारत की कथा है कि राजा कर्ण नित्य सवा मन सोने का दान किया करते थे। जब वे स्वर्गलोक गये तब उनके लिए निवास वस्त्र उपकरण आहार आदि सब कुछ सोने से ही विनिर्मित मिले।

यह देखकर वे चकित भी हुए और दु:खी भी। केवल स्वर्ण साधनों से ही मेरा क्या काम चलेगा ? देवदूतों ने कहा- जो आपने दिया है, वही तो आपको मिलेगा !

कर्ण को अपनी भूल प्रतीत हुई। उनने धरती पर एक महीने के लिए लौटने की इच्छा प्रकट की। धर्मराज ने वह अनुरोध स्वीकार कर लिया और वापस आते ही उन्होंने ज्ञानदान और अन्न दान के लिए अधिकारी पात्र तलाश किये और अपने कृत्य का सद्पयोग माना। अवधि पूरी करके वे फिर स्वर्ग गये तो जीवनोपयोगी सभी सामग्री उन्हें उपलब्ध हुई।

आत्मिक प्रगति के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य है- "श्रद्धा।" श्रद्धा में शक्ति भी है। वह पत्थर को देवता बना देता है और मनुष्य को नर नारायण स्तर एक उठा ले जाती है किन्तु श्रद्धा मात्र चिन्तन या कल्पना का नाम नहीं है। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी होना चाहिए। यह उदारता, सेवा, सहायता, करुणा आदि के रूप में ही हो सकती है। इन्हें चिन्तन तक सीमित न रखकर कार्यरूप में, परमार्थ परक कार्यों में ही परिणत करना होता है। यही सच्चे अर्थो में श्राद्ध है। उपकारी के प्रति कृतज्ञता का प्रत्युपकार का भाव रखना भावना क्षेत्र की पवित्रता एवं उत्कृष्टता का प्राणवान चिन्ह है। इसके लिए धनदान आवश्यक नहीं, समय, धन, श्रम दान, भाव दान भी असमर्थता की स्थिति में इसी प्रयोजन की पूर्ति करते हैं। उन्हीं सब बातों पर विचार करते हुए भारतीय धर्म परम्परा में श्राद्ध कर्म की महत्ता बनाई गई है। सत्पात्र न मिलने या अपनी आर्थिक स्थिति अच्छी न होने की स्थिति से इसे जलान्जलि देकर तर्पण के रूप में भी सम्पन्न किया जा सकता है। यह सोचना उचित नहीं कि जो मर गए उन तक हमारी दी हुई वस्तु कैसे पहुँचेगी ? पहुँचती तो केवल श्रद्धा है। उसे चरितार्थ करने के लिए किया गया दान तो सत्प्रवृत्तियों के सम्बर्न्धन में ही काम आता है।

****

कर्मफल

संसार कर्मफल व्यवस्था के आधार पर चल रहा है

यह संसार कर्मफल व्यवस्था के आधार पर चल पड़ा है- जो जैसा बोता है वह वैसा काटता है। क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। पेण्डुलम एक ओर चलता है तो लौटकर उसे फिर वापस अपनी जगह आना पड़ता है। गेंद को जहाँ फेंक कर मारा जाय वहाँ से लौट कर उसी स्थान पर आना चाहेगी जहाँ से फेंक गई थी। शब्दवेधी बाण की तरह भले-बुरे विचार अन्तरिक्ष में चक्कर काट कर उसी मस्तिष्क पर आ विराजते हैं, जहाँ से उन्हें छोड़ा गया है। कर्म के सम्बन्ध में भी यही बात है। दूसरों के हित -अहित के लिए जो किया गया है उसकी प्रतिक्रिया कर्त्ता के ऊपर तो अनिवार्य रूप से बरसेगी, जिसके लिए वह कर्म किया गया था, उसे हानि या लाभ भले ही न हो । गेहूँ से गेहूँ उत्पन्न होता है और गाय अपनी ही आकृति-प्रकृति का बच्चा जनती है। कर्म के सम्बन्ध में भी यही बात है, वे बन्ध्य, नपुंसक नहीं होते। अपनी प्रतिक्रिया सन्तति उत्पन्न करते हैं। उनके प्रतिफल निश्चित रूप से उत्पन्न होते हैं। यदि ऐसा न होता तो इस सृष्टि में घोर अन्धेरा छाया हुआ दीखता, तब कोई कुछ भी कर गुजरता और प्रतिफल की चिन्ता न करता। शास्त्रों का भी अभिमत इस सन्दर्भ में स्पष्ट है-

यत् करोत्यशुभं कर्म शुभं वा यदि सत्तम ।
अवश्यं तत् समाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः।।

-महाभारत वन० अ० २०८

मनुष्य जो शुभ या अशुभ कार्य करता है, उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है, इसमें संशय नहीं है।

ज्ञानोदयात् पुराऽऽरब्धं कर्म ज्ञानान्न नश्यति ।
यदत्वा स्वफलं लक्ष्यमुद्दिश्यात्सृष्टबाणवत्।।

-अक्ष्युपनिषद २। ५३

ज्ञान का उदय हो जाने पर भी पूर्वकृत कर्मों के प्रारब्ध भोग तो भोगने ही पड़ते हैं। उनका नाश नहीं होता। धनुष से छूटा हुआ तीर प्रहार करता ही है।

उभयमेव तत्रोपयुज्यते फलं धर्मस्यैबेतरस्य च।

-महाभारत, उद्योगपर्व २३

राजन् ! धर्म और पाप दोनों के पृथक्-पृथक फल होते हैं और उन दोनों का ही उपभोग करना पड़ता है।

अपने किये हुए पाप अथवा पुण्य के फल मनुष्यों को भोगने ही पड़ते हैं। भोगने से ही कर्मफल भुगता जाता है। भोगे बिना कोई रास्ता नहीं, भोगे बिना शुद्धि नहीं होती और तभी कर्म बन्धन से छुटकारा मिलता है।

जो पापी हैं वे दरिद्र हैं। क्लेश, भय और संकट, सन्तापों से घिरे रहते हैं और बेमौत मरते हैं। पुण्यात्माओं के उनके शुभ कर्मों के सत्परिणाम अनेक सुख-साधनों के रूप में उपस्थित होते रहते हैं।

पादन्यासकृतंदुःखकण्डकोत्थंप्रयच्छति ।
तत्प्रभूततरस्थूलशंकुकीलकसम्भवम् ।।
दुःखंयच्छतितद्वच्चशिरोरोगादिदुःसहम् ।
अपथ्याशनशीतोष्णश्रमतापादिकारकम् ।।

-मार्कण्डेय पुराण (कर्मफल)

पैर में काँटा लगने पर तो एक ही जगह पीड़ा होती है, पर पाप कर्मों के फल से तो शरीर और मन में निरन्तर शूल उत्पन्न होते रहते हैं।

न केचित्प्राणिनः सन्ति थे न यान्ति यमक्षयम् ।
अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विचार्य्यताम्।।

-शिव पुराण

अपना किया हुआ कर्म सभी को अवश्य ही भोगना पड़ता है। इसलिए ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो यमराज के लोक को नहीं जाते हैं। शुभ-अशुभ कर्मों का निर्णय वहाँ पर ही होता है।

आत्मनैव कृतं कर्म ह्यात्मनैवोपभुज्यते ।
इह वा प्रेत्य वा राजंस्त्वया प्राप्तं यथा तथा।।

-महाभारत भीष्म० आ० ७७

आत्मा से अर्थात् स्वयं किया हुआ कर्म आत्मा से ही अर्थात् स्वयं ही भोगता, चाहे इस जगह में, चाहे परलोक में अपना ही भोगता है।

स्वमलप्रक्षयाद्यद्वद तौ धास्यन्ति धावतः ।
तत्र पापक्षयात्पापा नराः कर्मानुरुपतः।।

-शिव पुराण

धातुओं के मैल को हटाने के लिये जैसे उन्हें तीक्ष्ण अग्नि में रखते है उसी तरह पापी प्राणियों को पाप-नाश के उद्देशय से ही अपने कर्मों के अनुसार ही नरकों में गिराया जाता है।

कलौ प्रेतत्वमाप्नोति तार्क्ष्याशुद्ध क्रिया परः ।
रूतादौ द्वापर यावन्न प्रेतौ नैव पीड़नम् ।।

-गरुड़ पुराण

कलियुग में मनुष्यों के रहन-सहन के अशुद्ध हो जाने से वे प्रेतत्व को प्राप्त होते हैं। सतयुग, द्वापर आदि में न कोई प्रेत बनता था न किसी को प्रेत सम्बन्धी पीड़ा होती थी।

दुर्भिक्षादेवदुर्भिक्षक्लेशात्क्लेशंभयाद्भयंम् ।
मृतेभ्यः प्रमृतायान्तिदरिद्राः पापकर्मिणः ।।१८।।
गतिनानाविधांयान्तिजन्तवः कर्मबन्धनात् ।
उत्सवादुत्सवंयान्तिस्वर्गान्स्त्रर्गसुखात्सुखम् ।।१९।।

-मार्कण्डेय पुराण

जो पापी हैं वे दरिद्र होते हैं। क्लेश, भय और संकट संतापों से घिरे रहते हैं और बेमौत मरते हैं। पुण्यात्माओं के उनके शुभ कर्मों के सत्परिणाम अनेक सुख-साधनों के रूप में उपस्थित होते रहते हैं।

आधिक्षयेणाधिभवाः क्षीयन्ते व्याधयोऽप्यलम् ।
शुद्धया पुण्यया साधो क्रियया साधुसेवया ।।
मनः प्रयाति नैर्मल्यं निकषेणेव काञ्चनम् ।
आनन्दो वर्धते देहे शुद्धे चेतसि राधव ।।
सत्वशुद्धया वहन्त्येते क्रमेण प्राणवायवः ।
जरयन्ति तथान्नानि व्याधिस्तेन विनश्यति ।।

-योग वशिष्ठ

शरीर के रोग व्याधि और मन के रोग 'आधि' कहलाते हैं। इन दोनों के उत्पन्न होने का कारण विवेक की कमी और मूर्खता की प्रबलता ही है।

जब अविवेक के कारण मनुष्य का मन बेकाबू हो जाता है तो नाना प्रकार की तीव्र वासनाएँ उठती हैं। उन्हें पूरा करने के लिए अखाद्य खाता है, अगम्य गमन (अनुचित काम सेवन) करता है। अनियमितता और अस्त-व्यस्तता बरतता है, दुष्ट संग करता है और मस्तिष्क में बुरे विचार भरे रहता है।

इससे उसकी नाड़ियाँ शिथिल हो जाती हैं, अंग काम करना छोड़ देते हैं। प्राण शक्ति का संचार अस्त-व्यस्त हो जाता है। इन परिस्थितियों में शरीर की स्थिति गड़बड़ा जाती है और नाना प्रकार के दुःखदायक रोग उत्पन्न होते हैं।

मानसिक विकारों से शरीर रुग्ण होता है। उन विकारों के दूर होने से शरीर निरोग हो जाता है।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथा श्रुतम् ।।

अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार कितने ही देहधारी तो शरीर धारण करने के लिए किसी देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनि को प्राप्त होते हैं और कितने ही स्थावर भाव (कृक्षादियोनि) को प्राप्त होते हैं।

तद् य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीया यानिमापद्येरन्, ब्राह्मणयोनि वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन्।'-

-छादोग्य-५-१०.७

अर्थात् अच्छे आचरण वाले उत्तम योनि प्राप्त करते हैं और नीच कर्म करने वाले नीच योनियों में जन्मते हैं।

पुण्यो व पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन।'

अर्थात् निश्चय ही यह जीव पुण्य कर्म से पुण्यशील होता है। पुण्य-योनि में जन्म पाता है और पाप-कर्म से पाप शील होता-पाप योनि में जन्म ग्रहण करता है।

साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति।'

अर्थात्-अच्छे कर्म करने वाला अच्छा होता है। सुखी एवं सदाचारी कुल में जन्म पाता है और पाप करने वाला पापात्मा होता है । पाप योनि में जन्म ग्रहण करके दुःख उठाता है।

महाभारत वन पर्व में कहा है-

जातिमृत्युजरादुःखै, सततं समभिद्रुतः ।
संसारे पच्यमानश्च दोषैरात्मकृतैर्नरः ।।३३।।

मनुष्य अपने ही किये हुए अपराधों के कारण जन्म-मृत्यु और जरा सम्बन्धी दुःखों से सदा पीड़ित हो बारम्बार संसार में पचता रहता है।

जन्तुस्तुकर्मभिस्तैस्तैः स्वकृतैः प्रेत्य दुःखितः ।
तद्दुःख प्रतिघातार्थमपुण्यां योनिमाप्नुते ।। ३५ ।।

प्रत्येक जीव अपने .किये हुए कर्मों से ही मृत्यु के पश्चात् दुःख भोगता है और उस दुःख का भोग करने के लिए ही वह पाप योनि में जन्म लेता है।

पुण्यापुण्येहिपुरुषःपर्यायेणसमश्नुते ।
भुञ्जतश्चक्षययातिपापंपुण्यमथापिवा ।।१६।।
नतुभोगादृतेपुण्यपापंवाकर्ममानवः ।
परित्यजतिभोगाच्चपुण्यापुण्येनिबोधमे ।।१७।।
दुर्भिक्षादेवदुर्भिक्षक्लेशात्क्लेशंभयाद्भयम् ।
मृतेभ्यःप्रमृतायान्तिदरिद्राःपापकर्मिणः ।।१८।।
गतिंनानाविधांयान्तिजन्तवःकर्मबन्धनात् ।
उत्सवादुत्सवंयान्तिस्वर्गान्स्त्रर्गसुखात्सुखम् ।।१९।।

-मार्कण्डेय पुराण (कर्मफल)

अपने किये हुए पाप अथवा पुण्य के फल मनुष्यों को भोगने ही पड़ते हैं। भोगने से ही कर्मफल भुगता जाता है। भोगे बिना कोई रास्ता नहीं, भोगे बिना शुद्धि नहीं होती और तभी कर्म बन्धन से छुटकारा मिलता है।

जो पापी हैं वे दरिद्र हैं। क्लेश, भय और संकट, संतापों से घिरे रहते हैं और बेमौत मरते हैं। पुण्यात्माओं के उनके शुभ कर्मों के सत्परिणाम अनेक सुख-साधनों के रूप में उपस्थित होते रहते हैं।

यौनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन:।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।

-गरुड पुराण

जिसने श्रवण-मनन द्वारा जैसा मनोभाव प्राप्त किया है उसी के आधार पर अपने-अपने कार्मों के अनुसार कितने ही जीवात्मा देह धारणार्थ विभिन्न योनियों को प्राप्त होते हैं और अनेकों जीवात्मा अपने कर्मानुसार वृक्ष,लता, पर्वत आदि स्थानों पर पदार्थों के रूप को ग्रहण कर लेते हैं।

ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ता स्वरूपानुभवेन हि।
अतस्ते पुत्र दत्तानां पिण्डानां नैव कांक्षिण:।।

-महाभारत

"ज्ञानी मनुष्य तो अपने सच्चे स्वरूप को समझकर और तद्नुसार आचरण करके सदा ही मुक्त होते हैं। उनको पुत्रों द्वारा दिये गये पिण्डों की आकांक्षा कभी नहीं होती।"

यमनियमविधूतकल्मषाणामनुदिनमच्युत-
सक्तमानसानाम् ।
अपगतमदमानमत्सराणां त्यज भट
दूरतरेण मानवानाम् ।।२६।।

-विष्णु पुराण

जिनके पाप समूह यम नियमों के पालन से नष्ट हो गये हैं। जिन्होंने मत्सर और अहंकार छोड़ दिया है। उन सच्चे भगवत भक्तों को हे यमराज नरक में मत ले जाना।

न तेऽत्र प्राणिन: संति ये न यान्ति यमक्षयम्।
अवश्यं हि कृतं भोक्तव्यं तद्विधारितम्।।४।।

-भाष्य

यहाँ पर ऐसे कोई भी प्राणी नहीं हैं जो यमराज के घर में नहीं जाते हैं अर्थात् एक बार तो वहाँ सभी प्राणियों को जाना ही पड़ता है। उनका जो कुछ भी किया हुआ कर्म है वह अवश्य ही उन्हें भोगना ही पड़ता है।

न केचित्प्राणिन: सन्ति ये न यान्ति यमक्षयम्।
अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विचाटर्यताम्।।

-शिव पुराण

अपना किया हुआ कर्म सभी को अवश्य ही भोगना पड़ता है। इसलिए ऐसे कोई भी प्राणी नहीं हैं जो यमराज के लोक को नहीं जाते हैं। शुभ-अशुभ कर्मों का निर्णय वहाँ पर ही होता है।

इदानीं कि प्रलप्यध्वं पीडयमाना: स्वकर्मभि:।
भुज्यतां स्वानि कर्माणि नास्ति दोषो हि कस्यचित्।।

-शिव पुराण

यमदूतों ने पाप कर्मियों से कहा-इस समय तुम अपने ही कर्मों से उत्पीड़ित होते हुए क्यों रोते चिल्लाते हो? अब कर्मों के फलों को भोगो, इसमें अन्य किसी का कुछ भी दोष नहीं है।

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि ।
अवश्य मेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।।

-ब्रह्मवैवर्त प्रकृति अ० ३७

बिना भोग के सौ करोड़ कल्प तक भी कर्म का नाश नहीं होता। जो कुछ किया है, उसका फल जरूर भोगना पड़ेगा। इस भोग का कारण कर्तृत्वाभिमान है जीव अभिमान के वशीभूत होकर सोचता है कि मैं ही कर्त्ता हूँ, किन्तु वास्तव में जीव अकर्त्ता है।

स्वयमात्मकृत कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
प्राप्ते काले तु तत्कर्म दृश्यते सर्व देहिनाम् ।।

-हरि० पु० उग्रसेन अभि० २५

संसार के सम्पूर्ण प्राणियों को अपने कर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है। चाहे वह शुभ कर्म हो या अशुभ कर्म हों। शुभ कर्मों का परिणाम सुखद होता है और अशुभ कर्मों का फल दु:खद होता है।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयंन्तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयंन्तस्माद्विमुच्यते।।

-चाणक्य

जीव आप ही कर्म करता है, उनका फल भी आप ही भोगता है, आप ही संसार में भ्रमण करता है और आप ही उससे मुक्त भी होता है, इसमें उसका कोई साझी नहीं।

तस्मिन् वर्षे नर: पापं कृत्वा धर्म्मच भो द्विजा:।
अवश्यं फलमाप्नोति अशुभस्य शुभस्य च।।

-ब्रह्म पुराण

मनुष्य पापकर्म करके तथा धर्म का कर्म करके अवश्य ही फल प्राप्त किया करता है चाहे वह कोई शुभ कर्म करे तो उसका अच्छा फल उसे अवश्य मिलता है और चाहे वह अशुभ कर्म करे तो उसका भी वह फल प्राप्त किया करता है।

सुखं वा यदि वा दु:खं यत्किञ्चित क्रियते परे।
ततस्ततु पुन: पश्चात सवोत्मनि जायते।।

-दक्ष स्मृति २१

सुख या दु:ख जो भी दूसरों के लिए किये जाते हैं वे कुछ बाद में पीछे सब अपने ही लिये उत्पन्न होते हैं।

यथा मृत्पिण्डत: कर्त्ता कुरुते यद्यदिच्छति।
एवमात्मकृत कर्म मानव:प्रतिपद्यते।।

यथा छाया तपौ नित्यं सुसम्बद्धौ निरन्तरम्।
तथा कर्म च कर्त्ता च सम्बद्धावात्मकर्मभिः।।

-म० अनु० प० अ० १।७४-७५

जैसे मिट्टी के पिण्ड से कर्त्ता (कुम्हार) जो-जो चाहता है सो करता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने किये हुए कर्मानुसार फल प्राप्त करता है। जैसे छाया एवं धूप निरन्तर नित्य साथ हैं वैसे ही कर्म और कर्त्ता अपने किये कर्मों से बँधे हैं।

शुभानामशुभाना च नेह नाशोस्ति कर्मणाम्।
प्राप्यप्राप्यानुपच्यन्ते क्षेत्रं क्षेत्रं यथा तथा।
क्षेत्रं कर्मजमाप्नोति शुभं वा यदि वाऽशुभम्।।

-म० आश्वमे० प० अ० १८।५

इस संसार में शुभ और अशुभ कर्मों का नाश नहीं होता यथा खेत-खेत को प्राप्त कर पकता जाता है, फल लाता जाता है। इसी प्रकार कर्मों के पाक या फल का भी क्रम चलता रहता है। तदनुसार ही शुभ एवं शरीर को मनुष्य कर्मानुसार प्राप्त किया करता है।

देर है, अन्धेर नहीं

कर्म का प्रतिफल मिलने में थोड़ी देर लगने से अधीर लोग आस्था खो बैठते हैं और दुष्कर्म के दण्ड से बचे रहने की बात सोचने लगते हैं। विलम्ब के कारण कोई आस्था न खोयें यह चेतावनी देते हुए शास्त्र कहते हैं-

नाधर्मः कारणोपेक्षी कर्तामभिमुञ्चति।
कर्ताखलु यथा कालं ततः समभिपद्यते।।

-महा० शान्ति० अ० २९८

अधर्म किसी भी कारण की अपेक्षा से कर्त्ता को नहीं छोड़ता निश्चय रूप से करने वाला समयानुसार किये कर्म के फल को प्राप्त होता है।८।

अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मण ।
भर्तः पर्यागते काले कर्त्ता नास्त्यत्र संशयः ।।

वाल्मी० युद्ध स० १११

पाप कर्म का फल अवश्य ही प्राप्त होता है । हे पते ! समय आने पर कर्त्ता फल पांता है इसमें संशय नहीं है ।

यदा चरति कल्याणि शुभं दा यदि वा शुभम् ।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः ।।२५।।

-वाल्मी० अरण्य० स० ३

अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः ।
घोरं पर्य्यागते काले द्रुमः पुष्पनिवार्तपम् ।।

-वाल्मी० अरण्य० स० २

हे कल्याणी ! यदि जो कुछ भी शुभ-अशुभ करता है करने वाला वही अपने कर्मों के फल को प्राप्त करता है।

करने वाला अपने पाप कर्मों का फल घोर काल आने पर अवश्य प्राप्त करता है । जैसे मौसम आने पर वृक्ष फूलों को प्राप्त होते हैं ।

यथा धेनु सहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
एवं पूर्व कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति।।
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च ।
तत्कालं नाति वर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम् ।।

-महा० अनु० अ० ७

जैसे हजारों गौवों में से बछड़ा अपनी माँ को ढूँढ लेता है, ऐसे ही पूर्व किया हुआ कर्म कर्त्ता को प्राप्त होता है । बिना प्रेरणा के ही जैसे फूल अपने समय का उल्लंघन नहीं करते । वैसे ही पूर्व में किया हुआ कर्म समय का उल्लंघन नहीं करता ।

कर्मणः फलनिर्वत्तिं स्वयमश्नाति कारकः ।
प्रत्यक्षं दृश्यते लोके कृतस्यापकृतस्य च।।
शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा ।
कृतं फलति सर्वत्र ना कृतं भुज्यते क्वचिद् ।।
अर्था वा मित्र वर्गो वा ऐश्वर्यवा कुलान्वितम् ।
श्रीश्चापिदुर्लभाभोक्तुं तथैवाकृतकर्मभिः ।।
स्वयं चेत् कर्मफलं न स्यात् सर्वमेवाफलं भवेत् ।
लोको दैवमालक्ष्य उदासीनो भवेन्ननु ।।
अकृत्वा मानुषं कर्म यो दैवमनुवर्तते ।
वृथा भ्राम्यति सम्प्राप्यपति क्लीवमिवाङ्गना ।।
कृतः पुरुष कारस्तु दैवमेवानुवर्तते ।
न दैवमकृते किञ्चिद् कस्यचित् दातुमर्हति ।।
पांडवानां कृतं राज्यं धार्तराष्ट्रमहाबलैः ।
पुनः प्रत्याहृतं चैव न दैवाद् भुजसंश्रयात् ।
यथा तैलसंक्षयाद् दीपः प्रह्यसमुपगच्छति ।
तथा कर्मक्षमाद् दैवं प्रह्रासमुपगच्छति ।।

-महाभारत अनु० अ०

कर्म ही फल सिद्धि को स्वयं कर्त्ता भोगता है, अच्छे और बुरे कर्म का संसार में प्रत्यक्ष परिणाम देखा जाता है । शुभ कर्म से सुख एवं पाप कर्म से दुःख होता है । किये हुए कर्म का फल मिलता है, कर्म के बिना फल, कहीं भी भोगा नहीं जाता । धन या मित्र या ऐश्वर्य या कुलीनता और लक्ष्मी का भी भोगना कर्महीन जनों के लिए दुर्लभ है । यदि कर्म का फल न हो तो कर्म निष्फल हो जावें और सभी लोग भाग्य का आश्रय लेकर निश्चय कर्म करने

से उदासीन हो जावें जो जन मनुष्योचित्त कर्म न करके दैव के भरोसे रहता है, वह नपुंसक पुरुष स्त्री की भाँति व्यर्थ जीवनयापन करता है । पुरुषार्थ किया हुआ ही दैव के रूप में आता है, दैव पुरुषार्थ किये बिना किसी को कुछ नहीं दे सकता है । पाण्डवों का राज्य धृतराष्ट्र के पुत्रों द्वारा छीना हुआ पुनः बाहु बल से प्राप्त किया दैव से नहीं । जैसे–तैल के क्षय से दीपक क्षीणता को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार कर्म के क्षय से दैव भी क्षीण हो जाता है ।

सुशीघ्रमपि धावन्तं विधानमनुधावति ।
शेते सह शयानेन येन–येन यथा कृतम् ।।
उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति ।
करोति कुर्वतः कर्म छायेवानुविधीयते ।
येन–येन यथा यद्यत् पुरा कर्म समाहितम् ।
तत्तदेव नरो भुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मना ।।

–महा० शान्ति० अ० १८१

जिसने जो कर्म किया है वह कर्म शीघ्र दौड़ते हुए के साथ दौड़ता है, सोये हुए के साथ सोता है ।

बैठे हुए के साथ बैठता है और चलते हुए के साथ चलता है, करते हुए के साथ करता है । सारांश यह है कि किया हुआ कर्म छाया के समान मनुष्य के साथ रहता है ।

जिस–जिस ने जैसे जो–जो पहले कर्म किया है। वह–वह ही मनुष्य अपने किये कर्मों को नित्य भोगता है ।

आज का बोया बीज कुछ समय बाद फल देता है । आज का जमाया हुआ दूध कल दही बनता है-आज का आरम्भ किया अध्ययन, व्यायाम, व्यवसाय तत्काल फल नहीं देता उसकी प्रतिक्रिया उत्पन्न होने में कुछ समय लग जाता है। इसी विलम्ब में मनुष्य की दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता की परीक्षा है। यदि तत्काल फल मिला करते तो किसी के भले-बुरे का निर्णय करने की आवश्यकता ही न पड़ती। झूठ बोलने वाले का मुहँ सूज जाया करता, कुदृष्टि डालने वालों की आँखें दर्द करने लगतीं, चोरी करने वालों के हाथों में गठिया हो जाता, तो फिर कोई व्यक्ति कुकर्म करता ही नहीं। ईश्वर ने मनुष्य के निजी विवेक और कर्म स्वातश्य को कार्यान्वित होते रहने के लिए कर्म और फल के बीच अन्तर रखा है। इस धैर्य परीक्षा में जो असफल रहते हैं, वे सत्कर्मों की सुखद सम्भावना पर अविश्वास करके उन्हें छोड़ बैठते हैं और कुकर्मों का हाथों हाथ फल मिलते देखकर उन पर टूट पड़ते हैं। ऐसी ही अदूरदर्शिता के कारण पंछी बहेलिये के जाल में फँसते हैं, वे दाना देखते हैं फन्दा नहीं। आटे के लोभ में मछली अपना गला फँसाती है और बेमौत मारी जाती है। चासनी के लोभ में अन्धाधुन्ध घुस पड़ने वाली मक्खी के पंख चिपक जाते हैं और तड़पते हुए प्राण जाते हैं। यह अदूरदर्शी प्राणी दुर्गति के शिकार बनते हैं। कर्मफल के अनिश्चित होने की बात सोच कर ही मनुष्य कुमार्ग पर चलते हैं। कुकर्म करते हैं और दुर्दशा के जंजाल में फँसते हैं।

भगवान ने संसार बनाया और उसके साथ-साथ ही कर्म प्रतिफल का सुनिश्चित संविधान रच दिया। अपनी निज की लीलाओं में भी उसने लक्ष्य को प्रकट किया है। भगवान राम ने बालि को छिपकर तीर मारा, अगली बार कृष्ण बनकर जन्में राम को उस बहेलिया के तीर का शिकार होना पड़ा, जो पिछले जन्म में बलि था। राम के पिता दशरथ ने श्रवण कुमार को तीर मारा, उसके पिता ने शाप दिया कि वधकर्त्ता को मेरी तरह ही पुत्र शोक में बिलख-बिलख कर मरना पड़ेगा। वैसा ही हुआ भी। राम अपने पिता की सहायता न कर सके और उन्हें कर्म का प्रतिफल भुगतना पड़ा।

चक्रव्यूह में फँस कर अभिमन्यु मारा गया, तो उसकी माता सुभद्रा ने अपने भाई कृष्ण से कहा, तुम तो अवतार थे तो फिर अपने भानजे और अर्जुन सखा के पुत्र को क्यों नहीं बचाया ? कृष्ण ने विस्तार पूर्वक कर्म फल की प्रबलता का वर्णन करते हुए सुभद्रा का समाधान किया कि भगवान से भी प्रारब्ध बड़ा है। कर्म फल भुगतने की विवशता हर किसी के लिए आवश्यक है।

कर्म फल की सुनिश्चिता का तथ्य ऐसा है, जिसे अकाट्य ही समझना चाहिए। किये हुए भले बुरे कर्म अपने परिणाम सुख-दुःख के रूप में प्रस्तुत करते रहते हैं। दुःखों से बचना हो तो दुष्कर्मों से पिण्ड छुड़ाना चाहिए, सुख पाने की अभिलाषा हो तो सत्कर्म बढ़ाने चाहिए। ईश्वर को प्रसन्न और रुष्ट करना सत्कर्मों एवं दुष्कर्मों के आधार पर ही बन पड़ता है।

कर्मफल-व्यवस्था के प्रति अनास्था ही नास्तिकता

कर्मफल मिलने में विलम्ब होने के कारण ही सत्कर्मों के प्रति उत्साह शिथिल होता है और दुष्कर्मों के प्रति साहस बढ़ता है। यदि तत्काल कर्मफल का विधान रहा होता तो फिर किसी को भी अनास्था न होती। चोर के हाथ में लकवा मार जाता-झूठे की जीभ बोलने में असमर्थ हो जाती, कुदृष्टि देखने वाले अन्धे हो जाते, कुमार्गगमियों की चलने-फिरने की शक्ति चली जाती तो षड्यन्त्र रचने वाले स्मरण शक्ति खो बैठते 'उद्दण्डता वरतने पर क्षय जैसे असाध्य रोग घेर लेते तो फिर किसी को भी कुकर्म करने का साहस न होता। इसी प्रकार सज्जनों द्वारा

अपनाई गई सत्प्रवृत्तियों के फलस्वरूप उन्हें अच्छी आरोग्यता, विद्वत्ता, सम्पदा, सफलता जैसे लाभ तत्काल मिला करते तो फिर किसी को भी धर्मशिक्षा सुनने या सुनाने की आवश्यकता न रहती। प्रत्यक्ष फल प्राप्त होने की कठोर व्यवस्था बनी रहती तो फिर अवांछनीय गतिविधियों का कहीं दर्शन भी न होता। नाम भी सुनाई न पड़ता। फिर न धर्मोपदेशकों की आवश्यकता होती न शास्त्रों का कोई प्रयोजन रह जाता। पुलिस, कचहरी, कानून, जेल, वकील, गवाह आदि का जंजाल भी कहीं दिखाई ही न पड़ता। जब तत्काल दण्ड मिलने की व्यवस्था ही चल रही होती तो फिर अधर्म के उन्मूलन और धर्म के संस्थापन के लिए ईश्वर को अवतार लेने की भी कोई आवश्यकता न पड़ती। सुधारकों और सेवाभावियों का क्षेत्र भी समाप्त हो जाता। उनका उद्देश्य तो विकृतियों का निराकरण और सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन ही तो होता है, पर जब तत्काल ही कर्मफल मिलने की व्यवस्था रहती तो किसी को यह साहस ही न पड़ता कि मर्यादा तोड़े और सन्मार्ग छोड़े। आग छूने पर जलने की बात प्रत्यक्ष है। फलत: कोई भी जान बूझकर उसे छूने और जल मरने का प्रयत्न नहीं करता। अनजाने कोई दुर्घटना हो जाय तो बात दूसरी है। ठीक इसी प्रकार अधर्म करने की भी कोई गुन्जायश नहीं रहती। ठण्डा पानी पीते हैं तत्काल प्यास बुझती है, उसी प्रकार यदि सत्प्रवृत्तियों के सत्परिणाम मिला करते तो फिर उनका लोभ छोड़ना उसी तरह सम्भव न रहता जिस प्रकार भोजन, विश्राम आदि प्रत्यक्ष सुविधाओं की कोई उपेक्षा नहीं करता।

विचारणीय यह है कि यदि कर्मफल सचमुच ही नहीं मिलता है– जैसा कि विलम्ब लगने के कारण आभास होता है तो फिर यह स्पष्टीकरण भी साफ होना चाहिए ताकि या तो सभी लोग अनैतिकता के लाभों को समझ कर वैसी ही नीति अपनायें। सर्व साधारण को भी यह अवसर मिले कि कर्म फल जैसी कोई बात ही जब नहीं है तो फिर न्याय, शासन, ईश्वर आदि के सहारे आत्म-रक्षा की आशा न करें और अपने बचाव के जो कुछ उपाय सम्भव हों उसे अपनायें इस स्पष्टीकरण से उथल-पुथल तो बहुत मचेगी, पर सचाई तो सामने आ ही जायेगी। इससे मनुष्य यथार्थवादी ढंग से सोचने का और परिस्थिति का सामना करने का कोई कारगर रास्ता तो सोचने लगेगा।

किन्तु सृष्टि व्यवस्था के बारे में इतनी दूर तक जाने और असमंजस में पड़ने की आवश्यकता है नहीं। इस विश्व का निर्माण कर्त्ता बहुंत ही दूरदर्शी और व्यवहार कुशल है। उसने इतना बड़ा सृजन किया है। जड़ में हलचल और चेतन में चिन्तन की इतनी अद्‌भुत सत्ता का समावेश किया है कि किसी सूक्ष्मदर्शी को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। निर्माण, व्यवस्था और परिवर्तन की जो रीति-नीति विनिर्मित की है उसके तारतम्य को देखते हुए मनीषियों ने कला की कल्पना की और विज्ञान की धारणा को मूर्त रूप दिया। ऐसे सर्व सम्पन्न सृष्टा से कर्म व्यवस्था के सम्बन्ध में चूक होना यह सोचना अपनी ही बाल बुद्धि का खोखलापन दर्शाना है। जिसकी दुनिया में दिन और रात की, ग्रह नक्षत्रों के उदय-अस्त की, पदार्थ की प्रकृति और प्राणियों की परम्परा की विधि–व्यवस्था में कहीं राई-रत्ती अन्तर नहीं पड़ता– वह कर्मफल को सन्देहास्पद बनाकर अराजकता का और आत्मघात का विग्रह खड़ा नहीं कर सकता।

फिर देर से कर्मफल क्यों मिलता है? इस प्रश्न के कितने ही उत्तर हैं। पहला तो यही है कि अधिकतर ऐसा होता नहीं है। विलम्ब होने के अपवाद अधिक नहीं कम ही दिखाई पड़ते हैं। सामान्य सृष्टि व्यवस्था में–लोक व्यवहार में अधिकांश कर्मों के फल यथा समय मिलते रहते हैं। यदि न मिलते तो कृषि, पशु पालन व्यवसाय, शिक्षा, चिकित्सा आदि की जो अनेकानेक उपयोगी गतिविधियाँ चल रही हैं उनमें से किसी का भी क्रम अनिश्चितता की स्थिति में चल नहीं पाता। परस्पर व्यवहार में भी सज्जनता, दुर्जनता की कोई निश्चित प्रतिक्रिया न होती तो मनुष्यों के लिए अपने स्वभाव और आचरण को किसी निश्चित ढाँचे में ढालने की आवश्यकता न होती। कार्यों के परिणामों पर विश्वास न होता तो फिर किसी भी योजना की रूपरेखा बन ही न पड़ती। फिर सब कुछ यहाँ अनिश्चित, अविश्वस्त, अस्त-व्यस्त ही दृष्टिगोचर होता। सभ्यता, संस्कृति, नीति, धर्म, न्याय आदि का कोई रूप ही खड़ा नहीं हो सकता था। फिर विज्ञान की शोधों का, आविष्कारों का, क्रिया-प्रक्रिया का कोई तारतम्य ही नहीं बैठ सकता था। पदार्थों में पायी जाने वाली हलचल की एक सर्वांगपूर्ण विधि–व्यवस्था है। उसी की रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिए भौतिक विज्ञान का ढाँचा खड़ा हुआ है। प्राणियों की इच्छा, विचारणा एवं क्रिया के पीछे भी कुछ प्रकृति प्रेरणा काम करती है, तालमेल बिठाने वाली व्यवस्था रहती है। जीव विज्ञान, मनोविज्ञान एवं तत्वज्ञान की शाखा-प्रशाखाओं में चेतना के स्वरूप और प्रवाह का ही विवेचन किया जाता है। यह विश्व हर दृष्टि से एक नियति व्यवस्था में बँधा हुआ है। फिर यह हो ही नहीं सकता कि कर्मों का फल न मिले। पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख मिलने की बात भी इतनी ही स्पष्ट है। अपने ही चारों ओर हम में से प्रत्येक को अनेकानेक प्रमाण उदाहरण सहज ही उपलब्ध हो सकते हैं।

प्रश्न व्यवस्था का नहीं अपवादों का है। ऐसा कभी-कभी ही होता है। कहीं-कहीं ही देखा जाता है कि अनीति करने वाले फलेफूले हों और नीति को पराभाव का मुँह देखना पड़ा हो। यदि यह अपवाद अधिक संख्या में बनते हैं तो उस असन्तुलन से सार्वभौमिक संकट खड़ा होता है। उस सम्भावना के लिए सुधारकों और देवदूतों की सेना को समय-समय पर महाभारत रचने, समुद्र बाँधने और गोवर्धन उठाने जैसे प्रचण्ड पुरुषार्थ करने पड़ते हैं।

इतने पर भी यह मानना पड़ेगा कि इन अपवादों का अस्तित्व है और देखने को मिलते रहते हैं। वे इतने परिमाण में अवश्य होते हैं कि उतने से भी भ्रम उत्पन्न हो सके। दुष्टता की दिशा में साहस बढ़ सके और सदाशयता के प्रति निराशा उत्पन्न हो सके। विचारणीय इतना ही है कि आखिर इतना भी होता क्यों है?

दृश्यमान बुराई के पीछे भी कई बार भलाई के तत्व छिपे रहते हैं। स्पष्ट है कि हर बीमारी कष्टकारक होती है, पर यह भी स्पष्ट है कि उसके पीछे प्रकृति की परिशोधन अनुकम्पा का हाथ रहता है। देह में घुसे हुए विजातीय द्रव्य से, जीवनी शक्ति के प्रचण्ड संघर्ष का नाम ही बीमारी है । यह एक प्रकार की प्रकृति चिकित्सा है। यदि प्रकृति को अपना काम करने दिया जाय और उसके प्रयास में यत्किंचित अनुकूलता बनाई जाय तो उतने भर से रोग ही अच्छे नहीं हो जाते भविष्य के लिए संग्रहीत मलीनता से उत्पन्न होने वाले संकटों से भी छुटकारा मिल जाता है। ठीक इसी प्रकार विलम्ब से कर्मफल मिलने की बात–प्राणियों में सजगता, प्रखरता और दूरदर्शिता बनाये रहने का एक बहुत बड़ा आधार समझा जा सकता है। यदि इतना व्यतिक्रम न रहता तो प्राणियों को विकास मार्ग पर चलने का अवसर ही न मिलता। सजगता की कोई आवश्यकता ही न रहती। पराक्रम करने की जरूरत ही क्या थी ? चिन्तन बहुत ही सामयिक रह जाता। बुद्धिमत्ता का विकास उचित-अनुचित का, लाभ-हानि का विचार करने पर ही होता है। यदि संसार में सब कुछ ठीक-ठाक ही चलता रहता, व्यतिक्रम न होते तो फिर बुद्धि-बल को विकसित करने की आवश्यकता ही न पड़ती। फलतः प्राणी अविकसित स्थिति में ही पड़े रहते। अवांछनीयता के दुष्परिणाम का भय और सत्प्रवृत्ति के सत्परिणामों का लोभ ही है जो प्राणी को क्रमशः आगे धकलते और ऊँचा उठाते हुए विकास की वर्तमान सीमा तक घसीट लाया है। प्रतिकूलताओं का विपत्तियों का भय भी इतना ही बड़ा प्रगति आधार है जितना कि सृजन प्रयोजनों में संलग्न होने पर मिलने वाले लाभों का प्रलोभन। दिन का महत्त्व रात्रि के अस्तित्व से ही है। रात न होती तो दिन का आनन्द और लाभ ले सकना ही सम्भव न हो पाता। अवांछनीयताएँ जहाँ वे कष्ट पहुँचातीं और अव्यवस्था फैलाती हैं वहाँ उनसे एक लाभ भी है कि तुलनात्मक अध्ययन करने का, गुण-दोष समझने का अवसर मिल जाता है। यदि कर्मफल में अपवाद न होते, पराक्रम सुनिश्चित विधि से चल रहा होता तो फिर अनौचित्य अपनाने के लिए कहीं गुंजाइश ही न रहती और विग्रह का कोई चिन्ह कहीं दिखाई न पड़ता। फलतः सतर्कता और प्रखरता विकसित करने की आवश्यकता ही न होती।। जागरूकता और साहसिकता को–दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता को– प्रश्रय देने वाला एक बहुत बड़ा आधार नष्ट हो जाता ऐसी दशा में सरलता और व्यवस्था तो बनी रहती, पर प्रबल पुरुषार्थ के लिए न आवश्यकता पड़ती न चेष्टा होती। ऐसी दशा में निश्चित रूप से प्रगति क्रम अवरुद्ध हो जाता और मनुष्य को इस स्तर तक पहुँचने का सौभाग्य न मिलता, जहाँ कि वह इस समय पहुँच सका है। इसमें उसकी सुखेच्छा ही नहीं उन व्यवधानों को हटाने की अभिलाषा भी है, जो अनौचित्य अपनाने के कारण ही संकट बनकर सामने आते हैं। तुलना करने पर ही भले-बुरे का परिचय मिलता है। तुलना से प्रेरणा मिलती है। अच्छाई की गरिमा जानने के लिए बुराई से उत्पन्न दुर्गति को भी जानना चाहिए। संसार में फैली हुई दुष्प्रवृत्तियों का यह एक लाभ भी है। यों हानियाँ तो उनकी असंख्यों ही हैं।

जिस प्रकार अनास्था से आतंकवादी उच्छ्रंखलता अपनाने का उत्साह मिलता है। ठीक इसी प्रकार उस अनौचित्य को निरस्त करने के लिए देव मानवों को अधिक प्रखरता उत्पन्न करने– संगठित होने और अनाचार से जूझने की अन्तःप्रेरणा उभरती है। इन प्रयासों के फलस्वरूप न केवल सत्प्रवृत्तियों की मात्रा और सज्जनों की संख्या ही बढ़ती है, वरन् वह शौर्य, साहस, त्याग, बलिदान भी उमड़ता है जो मानवीय शालीनता का पक्ष मजबूत करता है और सर्वतोन्मुखी प्रगति के अनेकानेक आधार खड़े करता है। भूकम्प, महामारी, बाढ, विपत्ति, युद्ध आदि के कारण जो क्षति असंख्यों को होती है उसे सभी जानते हैं, किन्तु उसका एक पक्ष यह भी विचारणीय है कि उन संकटों से अनेकों की करुणा उभरती हैं, सेवा-वृति जगती है और परमार्थ में जुट पड़ने के लिए भाव भरी प्रतिस्पर्धा भी उमड़ पड़ती है। उसे कहते हैं बुराई के पीछे अच्छाई का झाँकना।

कर्मफल देर से मिलने के अपवादों की हानियों से इनकार नहीं किया जा सकता। उससे अनास्था उत्पन्न होती है और चरित्र संकट खड़ा होता है। इतने पर भी उसका किसी रूप में बने रहना इनके सूक्ष्म कारणों से सृष्टा ने आवश्यक समझा।

फलतः उसका नियति क्रम में एक मोटा-सा अस्तित्व बना हुआ है।

सामान्यतया यह देरी वाली परम्परा भी अपनी नियति व्यवस्था का एक साधारण क्रम है। समझदार लोग उसकी धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते हैं और विलम्ब लगने की बात को स्वाभाविक समझ कर अधीर नहीं होते। किन्तु कर्मफल में तनिक-सा विलम्ब होते देखकर मनुष्य न जाने क्यों धीरज खो बैठते हैं और अनास्था के संकट में न जाने कैसे फँसते हैं। आज का दूध कल दही बनता है। अब का बोया बीज कई महीने बाद फसल् बनता है। आरोपित किये गये पौधे वृक्ष बनने और फलित होने में कई वर्ष का समय ले जाते हैं। व्यायामशाला में प्रवेश करने और पहलवान बनने के बीच लम्बा मध्यान्तर रहता है। विद्यार्थी को पाठशाला में प्रवेश पाने के उपरान्त स्नातक बनने की सफलता पाने के लिए वर्षों की अध्ययन साधना करनी पड़ती है। कारखाना खड़ा करने से लेकर लाभ मिलने लगने की प्रक्रिया के बीच समय की काफी लम्बाई रहती है। जब हर बड़ा काम समय माँगता है तो कर्मफल मिलने में थोड़ा विलम्ब लगते देख कर धीरज खो बैठना और यह मान बैठना तत्काल परिणाम नहीं मिला तो कभी मिलेगा ही नहीं- बाल-बुद्धि का चिह्न है।

बच्चा अभी कमाता नहीं है, उलटे सेवा और खर्च कराता है तो यह समझा बैठना उचित नहीं कि यह जीवन भर ऐसे ही सेवा किया करेगा कभी कुछ कमाने और घर का उत्तरदायित्व सँभालने लायक न हो सकेगा। साधना आरम्भ करने से लेकर सिद्धि तक पहुँचने में समय लगता है। यात्रा आरम्भ करने के दिन ही लक्ष्य तक कौन पहुँचता है। लम्बी मंजिल पूरा करने में समय तो लग ही जाता है? मुकदमा चलने से लेकर फैसला होने तक में अदालतें बहुत दिन गुजार देती हैं। कर्मफल मिलने में यदि विलम्ब लगे तो समझदारी का परिचय देने वाले मनुष्य को यह विश्वास भी रखना चाहिए कि इस सुनिश्चित सृष्टि व्यवस्था में जो बोया है वही काटना होगा।

स्वर्ग-नरक, दुर्गति-सद्गति, मरणोत्तर जीवन, पुनर्जन्म आदि में मनुष्य को मिलने वाले सुख-दुःख यह सिद्ध करते हैं कि कुछ समय पहले किये कर्म समयानुसार फलित हो रहे हैं और परिपक्व होने के बाद अपने फल दे रहे हैं।

समाज की सुव्यवस्था इस बात पर निर्भर है कि मनुष्यों के बीच पारस्परिक सद्भावना और सहकारिता के सूत्र सुदृढ़ बने रहें। सामूहिक प्रगति के पथ पर चलने और सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ बनी रहना इसी वातावरण में सम्भव हो सकता है। समाज व्यक्तियों का समूह है। व्यक्ति अच्छे रहेंगे तो उनका सम्मिलित समुदाय भी समुन्नत और विकसित दिखाई पड़ेगा। व्यक्ति के सज्जन और सुसंस्कृत बनाये रहने के लिए कर्मफल को सुनिश्चितता का तत्व दर्शन हर किसी की आस्थाओं में गहराई तक प्रतिष्ठापित होना चाहिए।

कर्मफल के समर्थन में हजार तर्क, तथ्य और प्रमाण मौजूद हैं। पर उसमें एक ही खामी रहती है कि अपवाद स्वरूप कई बार भले कर्मों का सत्परिणाम और बुरे कर्मों का दुष्परिणाम उत्पन्न होने में विलम्ब लग जाता है। इस विलम्ब में ही अदूरदर्शी लोग अपना धैर्य खो बैठते हैं और अनास्था अपना लेते हैं। इसे बाल-बुद्धि की क्षुद्रता और विवेकहीनता का अभिशाप ही कहना चाहिए। यह उतावली जीवन की दिशाधारा को भटका देने का प्रधान कारण बनती देखी गई है। इसलिए इस मनःस्थिति की शास्त्रकारों ने तीव्र भर्त्सना की है। 'नास्तिकता' का मोटा अर्थ ईश्वर को न मानना समझा जाता है और किसी को 'नास्तिक' कहना इसकी सदाशयता पर लांछन लगाना समझा जाता है। विचारणीय है कि ईश्वर को मानने न मानने से उसके अनुदानों में कोई अन्तर नहीं आता। फिर 'नास्तिकता' की इतनी तीव्र भर्त्सना क्यों की गई? इसकी तात्विक विवेचना से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि ईश्वर को न मानने से अभिप्राय वस्तुतः उसकी कर्मफल व्यवस्था के प्रति अनास्था रखना है। पूजा-पाठ करने और ईश्वर के गुणानुवाद गाने पर भी यदि कोई कर्मफल के क्रम को झुठलाता है तो भजन, पूजन, करते रहने पर भी उसे नास्तिक ही कहा जाना चाहिए। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति ईश्वर की चर्चा नहीं करता किन्तु कर्मफल का अनुशासन सुनिश्चित मानकर अपनी गतिविधियों को सज्जनोचित रखे रहता है तो तात्विक दृष्टि से उसे आस्तिक कहने में आपत्ति नहीं करनी चाहिए। 'आस्ति' और 'नास्ति' का मोटा अर्थ ईश्वर है और नहीं यह समझा जाता है। यह उथला अर्थ है। सच्चा अर्थ है कर्म व्यवस्था सुनिश्चित है या नहीं। आस्तिक वह है जो कर्मफल की अकाट्य ईश्वरीय व्यवस्था पर विश्वास करके अपना हित अनहित निश्चित करता है। ऐसा व्यक्ति बुराई से बचने वाला चरित्र-निष्ठ और उदार परामर्थ परायण– समाज निष्ठ ही हो सकता है। पाप से बचकर दुःखों से छूटने और पुण्य अपनाकर सुखी बनने का यही राज-मार्ग है।

स्वर्ग-नरक की स्वसंचालित प्रक्रिया को समझ लेने पर अपने अगले कर्मों को पुण्य, पवित्र, सत्, और श्रेष्ठ बनाने की स्पष्ट प्रेरणा प्राप्त होती है।

क्या स्वर्ग एवं मुक्ति इतने सुगम व सस्ते हैं?

कई बार ऐसा असमंजस देखने को मिलता है, जिसमें प्रतिपादन और निष्कर्ष में जमीन आसमान जैसा अन्तर पाया जाता है। तब चौराहे पर खड़े व्यक्ति को सामान्य स्तर की बुद्धि के सहारे यह निर्णय करते नहीं बनता कि वह परस्पर विरोधी प्रतिपादनों और निष्कर्षों में से किसे स्वीकार और किसे अस्वीकार करे? उलझन उसे किंकर्तव्यविमूढ़ बनाकर रख देती है।

कर्म और उसका प्रतिफल समूचे धर्मशास्त्र, तत्वज्ञान, नीतिशास्त्र, विश्व व्यवस्था का आधार माना जाता है। दण्ड-पुरस्कार की विधि व्यवस्था ही सरकारें बनाती रहती हैं। स्वर्ग और नरक की संरचना भी इसी प्रकार एक प्रयोजन के निमित्त बन पड़ी है। दर्शनशास्त्र ने नैतिकता एवं सामाजिकता के पक्ष में लोकमानस को ढालने के लिए इसी हेतु अनेकानेक तर्कों और तथ्यों का आश्रय लिया है। इसी आधार पर सम्मान और तिरस्कार का व्यवहार होते देखा गया है। यदि कर्मफल की मान्यता को निरस्त कर दिया जाय, तो उपरोक्त आधारों में से किसी की भी आवश्यकता या उपयोगिता नहीं रह जाती। मनुष्यों को मर्यादापालन और वर्जनाओं का अनुशासन अपनाने के लिए भी कर्मफल की मान्यता ही अंकुश लगाती और मार्गदर्शन करती है। इसे मानवी गरिमा का मेरुदण्ड कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी।

इतने बड़े आधार को झुठला देने में एक अनगढ़ मान्यता महती भूमिका निभाती सब कुछ चौपट करती देखी जाती है– वह है– अमुक देवता के दर्शन झाँकी कर लेने, अमुक जलाशय में डुबकी लगा लेने, अमुक कथा-वार्ता पढ़ या सुन लेने, अमुक खेल खिलवाड़ स्तर के कर्मकाण्ड पूरे कर लेने भर से पाप-कर्मों के प्रतिफल का नाश-निराकरण हो जाना। वर्तमान जन्म के ही नहीं, पिछले अनेक जन्मों के किये गये संचित पाप भी इन अत्यन्त सस्ते क्रिया-कलापों की चिह्न पूजा कर लेने भर से उड़न छू हो जाते हैं। इसके बाद नरक की कोई सम्भावना शेष नहीं रह जाती और स्वर्ग लोक में अनायास ही जा पहुँचने का द्वार खुल जाता है।

यह धारणा किसी स्थान या कृत्य की ओर आकर्षित करने के लिए बाल प्रलोभन की तरह प्रस्तुत की गयी हो तो बात कुछ समझ में भी आती है। पर जब इसे वास्तविकता या विश्वस्त मान्यता के रूप में जोर देकर कहा जाने लगे तो एक प्रकार से ऐसा लगता है कि विश्व व्यवस्था के सारे उपक्रम को उलट कर ही देखा जा रहा है।

पाप कर्मों के दण्ड से चुटकी बजाने जैसे खिलवाड़ों के आधार पर छुटकारा मिल सकता है। तो इसकी बिल्कुल सीधी प्रतिक्रिया यही सामने आती है कि पाप कर्मों के आधार पर जो लाभ उठाये जाते रहते हैं उनसे डरने झिझकने जैसी कोई बात नहीं है। उनके दुष्परिणाम मिलें ही यह कोई निश्चित बात नहीं है। "शार्ट कट" मौजूद है। उस पगडंडी को अपना कर विशालकाय भयंकर बीहड़ से क्षण भर में पार हुआ जा सकता है। जब दण्ड फल से छुटकारा पाने का इतना सरल उपाय निकल गया तो फिर किसी को भी ऐसा कुछ नहीं कर गुजरना चाहिए जिसमें लोक-लज्जा या भर्तना-प्रताड़ना आड़े आने का आगा-पीछा सोचना पड़ता है। यह मान्यता विशेषतया अनाचारियों के लिए मन की मुराद पूरी करने कुकृत्य करने जैसे अलभ्य सौभाग्य देती दीख पड़ती है।

इन से रोकथाम की एक ही कारगर व्यवस्था युग-युगान्तरों से चली आ रही थी कि अन्तःकरण में यह विश्वास गहराई तक जमाया जाय तो कोई भी कुकृत्य अन्तर्यामी की जानकारी से बच कर नहीं रह सकता। वह जानकारी सुनिश्चित परिणामों से भरी पूरी है। अनाचार अपने साथ दुष्परिणाम भी कसे-जकड़े रहता है। यही था वह भय जो नर पशु एवं नर पिशाचों तक की दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश लगता रहा है। उसी की प्रमुख भूमिका ने अनाचारों की रोकथाम की है, साथ ही इस विश्वास को भी परिपक्व किया है कि सदाशयता अपनाने की प्रतिक्रिया स्वर्गोपम सुखद-सम्भावनाएँ सामने लाती हैं। जिन्होंने भी इन मान्यताओं को परिपक्व किया है, वस्तुतः उन्होंने मानवी गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखने में असाधारण योगदान दिया है। उन्हें जितना भी सराहा जाय उतना ही कम है।

किन्तु इस समूची नीतिमत्ता के दुर्ग को तो एक ही अणु बम से बिस्मार कर देने का प्रयत्न इन दिनों चल पड़ा है कि नगण्य सा काम और राई रत्ती जितना धन खर्चने भर से अमुक कर्मकाण्डों के सहारे समस्त पाप दण्डों से छुटकारा पाया जा सकता है। इतना ही नहीं, जन्म जन्मान्तरों के, अनेक पीढ़ियों के पूर्वजों को भी सद्गति का अधिकारी बनाया जा सकता है। इतना सस्ता नुस्खा हाथ लग जाने के बाद कोई वज्र मूर्ख ही ऐसा बनेगा जो दुष्कर्मों के माध्यम से तत्काल मिलने वाले अनेकानेक लाभों को उठाने के लिए आतुर न हो चले।

स्वर्गीय सुखद सम्भावनाओं को उपलब्ध करने के लिए तपश्चर्या स्तर की संयम-साधना धर्मधारणा और परमार्थ परायण

को अनिवार्य रूप से आवश्यक माना जाता रहा है। अब उस पर्वत शिखर पर नंगे-पैरों चढ़ने की झंझट से सहज निवृत्ति सुझा दी गई कि अमुक कर्मकाण्ड सम्पन्न करने से वह स्वर्ग अन्धों के हाथ बटेर लगने से भी अधिक सरल हो गया है। जब स्वर्ग इतना सस्ता है, मोक्ष इतना सुगम है तो फिर उपासना, साधना, आराधना जैसे पुण्यप्रयोजनों में अपने को नियोजित करने के लिए कोई क्यों तैयार हो ?

इस "रामनाम की लूट " वाली भ्रान्ति से जितना जल्दी उबरा जा सके, ठीक होगा। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि यदि भगवान इसी भ्रान्तिपूर्ण मान्यता के रूप में जिन्दा रहेगा तो इसे समाप्त करने में हमें एक क्षण की देरी भी नहीं लगानी चाहिए। बोये -काटे का, देकर पाने का, साधना से ही सिद्धि का सिद्धान्त जबतक व्यक्ति आत्मसात् नहीं कर लेता तब तक उसे सही अध्यात्म की कड़ुवी किन्तु प्रामाणिक कुनैन खिलाते ही रहना पड़ेगा। यदि नया ईश्वर भी रचना पड़े तो इसके लिए तैयार होना पड़ेगा।

गहना कर्मणो गतिः

माता के गर्भ में शयन करते हुए ऋषि वामदेव विचार करते हैं-"अब मैं देवताओं के अनेक जन्मों को जान चुका हूँ। जब तक मुझे तत्वज्ञान नहीं मिला था, मैं संसार में पाप-कर्मों से उसी तरह घिरा था, जिस तरह पक्षी को पिंजरों में बन्द कर दिया जाता है।" पूर्व-जन्मों का स्मरण करते हुए ऋषि वामदेव ने शरीर धारण किया और उन्नत कर्म करते हुए स्वर्ग को पहुँच गये।

यह कथा ऐतरेयोपनिषद के द्वितीय अध्याय के प्रथम खण्ड में है। शास्त्रकार इस अध्याय की पूर्वपीठिका में यह बताता है कि पिता के पुण्य कर्मों के निमित्त पिता की ही आत्मा पुत्र रूप में प्रतिनिधि बनकर जन्म लेती है। पुत्र के जन्म लेने पर पिता के पाप-कर्म कम होने लगते हैं, क्योंकि कोई भी पिता अपने पुत्र को बुरे कर्म करते देखकर प्रसन्न नहीं होता, वह यही प्रयत्न करता है कि जिन बुरे कर्मों के कारण मुझे कष्ट हुए हैं, उनका प्रभाव बच्चे पर न पड़े। जितने अंश में वह बच्चे का सुधार कर सकता है, उतना वह अपना भी सुधार कर लेता है और तब उसका दूसरा जन्म अर्थात ऐसे संकल्प लेकर जन्म होता है कि अब मैं बुरे कर्म नहीं करूँगा, जिससे संसार में शांतिपूर्वक परमात्मा का साधन करता हुआ, स्वर्ग की प्राप्ति करूँगा। यह संकल्प संस्कार बनकर उद्घटित होते हैं और जीव अपनी मुक्तावस्था को प्राप्त कर लेता है। जैसा ऋषि ने बताया है।

पुनर्जन्म, गर्भ में इस प्रकार का संकल्प, पिता के प्रतिनिधि रूप में पिता का ही पुत्र और इन सबका हेतु कर्मफल यह सब बातें कुछ अटपटी सी लगती हैं। आज के विज्ञान-बुद्धि लोगों के गले नहीं उतरतीं और यही कारण है कि लोग कर्मों में गुणावगुण की संधि और पाप के फल- पश्चाताप की बात अंगीकार नहीं करते। कर्मफल पर विश्वास न करने का फल ही आज पाप, अनय और भ्रष्टाचार के रूप में फैला है।

वंशानुसंक्रमण की बात जो लोग जानते हैं, उन्हें पता है कि वीर्य का एक सेल किस प्रकार अपने पिता के सभी गुण यहाँ तक कि उसकी बौद्धिक क्षमताएँ भी अपने में धारण किये रहता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म बीमारियों तक का प्रभाव इन सेल्स पर होता है। अर्थात् सेल्स का नाभिक भाग अपने में अवचेतन मन के सारे भाव या अच्छे-बुरे विचार जो अब तक नस रेशों के रूप में विकसित हुए थे, अपने साथ धारण करके ले जाता है। यह सूक्ष्म संस्कार मृत्यु के समय जीवात्मा के साथ भी उसी प्रकार जाते और बने रहते हैं, जिस प्रकार वीर्य में सेल के साथ। आधुनिक वैज्ञानिक इस तरह सोचते हैं कि- सम्भवत मृत्यु के समय शरीर के 'प्रोटोप्लाज्म' नामक तत्व निकलकर किन्हीं वनस्पतियों में चले जाते हैं, फिर वनस्पति के गुण और अन्य जीव के गुणों में साम्य के अनुरूप कोई भेड़-बकरी, तोता, कुत्ता, बैल, गाय, भैंस या मनुष्य उसको खा लेता होगा और वह पूर्व शरीर वाला प्राणी यह नया जन्म ग्रहण कर लेता होगा। यह एक विचित्र मान्यता है, जिसे भारतीय पुनर्जन्म सिद्धान्त के लिए हल्के-फुल्के ढंग से प्रस्तुत करते हैं। यह तुक तथा अब तक की परा मनोवैज्ञानिक खोजें भी उस सिद्धान्त की पुष्टि में सहायक ही होती हैं।

मस्तिष्क के विश्व प्रसिद्ध शल्य-चिकित्सक डा० विल्डर पेनफील्ड ने मस्तिष्क में एक ऐसी पट्टी का पता लगाया है, जो रिकार्डिंग पद्धति के आधार पर काम करती है। उनके अनुसार यह पट्टी मस्तिष्क के उस भाग में है, जिसके बारे में अभी तक कुछ विशेष पता नहीं लगाया जा सका।

स्मरण की प्रक्रिया के बारे में डा० विल्डर पेनफील्ड का कहना है कि वह काले रंग की दो पट्टियों में निहित है। यह पट्टियाँ लगभग २५ वर्ग इंच क्षेत्रफल की होती हैं, मोटाई इंच के दसवें भाग जितनी होती है। दोनों पट्टियाँ मस्तिष्क के चारों और लिपटी रहती हैं, यह पूरे मस्तिष्क को ढके रहती हैं। इन्हें 'टम्पोरल कोरटेक्स' कहा जाता है और यह कनपटियों के नीचे स्थित हैं। जब कोई पुरानी बातें याद करने का प्रयत्न करता है, तो स्नायुओं से निकलती हुई विद्युत धाराएँ इन पट्टियों से

गुजरती हैं, जिससे वह घटनाएँ याद आ जाती हैं। डा० पेनफील्ड ने मिरगी के कई रोगियों के मस्तिष्क का आपरेशन करते समय इन पट्टियों में कृत्रिम विद्युत धाराएँ प्रवाहित कीं और यह पाया कि रोगियों की काफी पुरानी स्मृतियाँ ताजी हो गईं। एक रोगिणी को इस पट्टी पर हल्का करेन्ट दिया गया, तो वह एक गीत गुन-गुनाने लगी। वह गीत उसने पाँच वर्ष पहले सुना था। करेन्ट हटाते ही वह गीत फिर भूल गई। फिर करेन्ट लगाया, तो फिर गुन-गुनाने लगी।

अब डा० पेनफील्ड स्वयं भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जागृत अवस्था में व्यक्ति जैसी भी घटनाएँ देखता, सुनता, करता रहता है, उनका विस्तृत रिकार्ड मस्तिष्क में बना रहता, यदि कुछ नये प्रयोग विकसित किये जा सकें, तो मस्तिष्क को इतना सचेतन बनाया जा सकेगा कि वह बहुत काल की स्मृतियों को ताजा रख सकेगा। तब सम्भवतः इस जीवन से अनन्तर पूर्व-जन्मों की स्मृतियों की भी उलट सम्भव हो जायेगी।

यह थी खोज किन्तु कर्मफल उससे भी बहुत कठोर, सुनिश्चित और अन्तर्व्यापी है, इसलिए उस पर शीघ्र तो लोग विश्वास नहीं करते पर यह सारा संसार उससे प्रभावित है और एक दिन सारा संसार उसे मानने को और सत्कर्म करने को विवश होगा। उत्पीड़न और अत्याचार के सभी कर्म मनुष्य को कई जन्मों तक सताते हैं, उनका परिमार्जन आसानी से नहीं हो पाता।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए कि मन भी एक प्रकार का सूक्ष्म विद्युत है और वह मस्तिष्क की इस पट्टी में जहाँ याद-दास्तें छिपी हैं, अपने आप चक्कर लगाया करता है, इस चक्कर से उसके मानसिक बनावट के अनुरूप जैसे अच्छे-बुरे विचार होते हैं, वह उभरते हैं और मनुष्य उसी प्रवाह में काम करने लगता है। उसे प्रकृति की प्रेरणा मानकर कुछ लोग यह भूल करते हैं कि जो कुछ गन्दा-फूहड़ विचार उठा वही करने लगते हैं, पर जो लोग कर्मफल पर विश्वास कर लेते हैं, वे बुराइयों और बुरे विचारों के प्रति सावधान रहने लगते हैं और जीवन में अच्छाइयों का प्रसार करते हुए प्रसन्न रहने लगते हैं।

डा० पेनफील्ड के यहाँ एक मिरगी का रोगी आता था। उसे मिरगी आने से पहले एक भयानक सपना आया करता था कि वह किसी उजाड़ और डरावने मकान के दरवाजे पर खड़ा है। कोई उल्लू भयंकर आवाज में बोलता है। वह डरकर दरवाजा खोलने का प्रयत्न करता है। उसे मालूम था कि दरवाजा खुलते ही कोई ऐसा भयानक दृश्य सामने आता है कि उसे देखते ही उसे मिरगी आ जाती है, इसलिए वह बहुत प्रयत्न करता कि दरवाजा न खोले पर अज्ञात शक्ति उसे वैसा करने को विवश कर देती और उसे मिरगी आ जाती, जिसमें पड़ा वह घण्टों तड़पता रहता।

सचेत अवस्था में भी जब इस रोगी को डाक्टर करेन्ट लगाते, तो उसके मुख-मण्डल पर भय की रेखायें छा जातीं। डाक्टरों ने उस स्थान का पता लगा तो लिया पर उसका कोई सुनिश्चित इलाज न ढूँढ सके।

हम जिसे मन कहते हैं, वह एक प्रकार की विद्युत शक्ति है और वह उस स्मृति-पट्टी पर अपने आप भी घूमता रहता है। स्वप्नावस्था में भी यह क्रियां बन्द नहीं होती, उसे जहाँ पूर्व जन्मों के उन स्मृतियों से गुजरना पड़ता है, जिससे उत्पीड़न भयंकरता, दण्ड, छटपटाहट, चोरी, दुष्टता जैसे कुकर्मों की रेखाएँ होती हैं, तो उसे तीव्र वेदना और अकुलाहट होती है। यही नहीं उस व्यक्ति में हीनता का अन्तर्भाव बढ़ता रहता है और ऐसा व्यक्ति जीवन में साधन और सुविधाएँ रहते हुए भी सुखी और शान्त नहीं रहता।

मिरगी के उस रोगी के बारे में यदि यह कहा जाये कि उसने पूर्व-जन्म में धन या और किसी लोभ में किसी के घर का दरवाजा खोलकर किसी की हत्या की होगी, तो अतिशयोक्ति न होगी। ऐसे भयंकर दृश्यों के अंकन भी वैसे ही क्षिप्र, टेढ़े-मेढ़े और भयानक होते हैं, जब वह स्मृति उस व्यक्ति को आती होगी तो भय से मूर्छा आ जाती होगी। शरीर की छोटी से छोटी खुजली से लेकर दमा, श्वास, क्षय, पक्षाघात, कुष्ठ आदि के कारण शरीर के विजातीय द्रव्य भले ही कहे जायें पर उन विजातीय द्रव्यों के उत्पादन का कारण मन और मन को पूर्व जन्मों के कर्मों का फल ही कहना अधिक तर्क-संगत है। कोई भी व्याधि एवं पीड़ा कर्मफल के अतिरिक्त नहीं हो सकती।

भगवान् अपनी इच्छा से किसी को दण्ड नहीं देते कर्मफल ही दण्ड देते हैं। भगवान् तो बार-बार मनुष्य जीवन के रूप में जीव को वह अवसर प्रदान करते रहते हैं, जिससे वह विगत पापों का प्रायश्चित कर अपने शुद्ध-बुद्ध और निरञ्जन स्वरूप को प्राप्त कर ले जैसा कि ऋषि वामदेव ने अपने को उसी प्रकार पाप से जीवन्मुक्त कर लिया जैसे, साँप केंचुली से छूट जाता है और परम स्वतन्त्रता अनुभव करने लगता है। इस तत्वदर्शन को नहीं समझ पाने के कारण ही लोग कुकर्म करते और पाप के भागी बनते हैं।

प्रायः समझा जाता है कि हम जो भी शुभ-अशुभ कार्य करते हैं, वह उस क्रिया के स्थूल परिणाम तक ही सीमित होता है। उसके बाद न तो उस कार्य का कोई अस्तित्व रह जाता है और न किसी

प्रकार के पृथक फल की आशा की जा सकती है। ऐसा विचार करने वाले उसके समर्थन में यह तर्क प्रस्तुत करते हैं, कि यदि कोई चोर, चोरी करता है, तो फल के रूप में या तो उसे धन की प्राप्ति होती है अथवा पकड़े जाने पर उसे अपराध की सजा मिलती है। कर्म तो यहीं समाप्त हो जाता है। इसका दण्ड भी उसे मिलता है। फिर परमसत्ता की ओर से अन्य किसी फल का क्या औचित्य रह जाता है ? देने वाला उसे किस आधार पर बाद में वह फल देगा ?

वस्तुतः ऐसा सोचने वाले भूल करते हैं। दृश्य परिणाम उपस्थित करने के बाद ही कोई क्रिया पूर्णतः समाप्त हो जाती है- ऐसा नहीं कहा जा सकता है। गर्मियों के दिनों में नदी, सरोवर सूख जाते हैं। उनका जल वाष्पीभूत होकर आँखों से ओझल हो जाता है। इस रूपांतर की प्रक्रिया से अनभिज्ञ व्यक्ति यह समझ सकता है कि जल समाप्त हो गया अथवा उसका अस्तित्व ही न रहा, पर विज्ञान के विद्यार्थी जानते हैं कि इस क्रिया के बाद भी जल का अस्तित्व ज्यों का त्यों बना रहता है। हाँ, उसके स्वरूप में भिन्नता अवश्य आयी। पानी ने अपना स्थूल स्वरूप बदल कर वाष्प का सूक्ष्म स्वरूप ग्रहण कर लिया, पर क्रिया की समाप्ति यहीं नहीं हो गई। यह तो इसका आरम्भ है, क्रिया का एक भाग है। इसकी पूर्णता तो तभी होगी, जब चक्र पूरा होगा, अर्थात् वाष्पीभूत जल पुनः बादल बन कर बरसेगा। बादल का बरसना इस क्रिया का फल हुआ।

ऐसी ही प्रक्रिया कर्म के साथ भी घटित होती है। वस्तुतः हम जो कर्म करते हैं, उसका सूक्ष्म प्रभाव हमारी आत्मा पर पड़ता है। स्थूल रूप से क्रिया समाप्त हो जाती है पर उसका सूक्ष्मीकृत अंश इस स्थिति में भी विद्यमान रहता है। जिस प्रकार मिर्च को जलाने पर उसकी स्थूलता तो नष्ट हो जाती है, मगर वह अपने वायुभूत अंश से वातावरण को प्रभावित किये रहती है। ऐसा ही कर्म के साथ भी होता है। कर्म के यही सूक्ष्म भाग "संस्कार" कहलाते हैं, जो हमारी आत्मा अथवा सूक्ष्म शरीरों को अपने प्रकार से संस्कारित कर लेते हैं। वास्तव में हमारी आत्मा के चारों ओर स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के तीन आवरण हैं। हम जो भी कार्य करते हैं, उसका प्रभाव मात्र स्थूल शरीर तक ही सीमित होकर नहीं रह जाता, वरन् छनकर सूक्ष्म शरीरों तक चला जाता है। ऐसा इसलिए, क्योंकि हमारे सूक्ष्म शरीर स्थूल प्रभाव को धारण नहीं कर सकते। संगीत रिकार्डिंग में कितने ही प्रकार के वाद्य यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है, पर रिकार्ड में उनकी स्थूलता की आवश्यकता नहीं पड़ती। सार रूप में सभी की ध्वनियाँ अंकित हो जाती हैं। इसी से काम चल जाता है। यही हाल हमारे कर्म प्रभावों अथवा संस्कारों का है।

इसे दूसरे प्रकार से इस तरह समझा जाता है कि विद्यालय में जब विद्यार्थी गणित पढ़ते हैं, तो आरंभ में उन्हें स्थूल प्रश्न हल करना बताया जाता है, किन्तु ज्यो-ज्यों वे आगे की कक्षाओं में बढ़ते जाते हैं, इसके साथ-साथ ऐसे उदाहरणों और नियमों की संख्या भी बढ़ती जाती है। ऐसी स्थिति में मस्तिष्क इतने उदाहरणों और स्थूल नियमों को कैसे याद रख सकता है ? क्योंकि यह इसकी सामर्थ्य से परे की बात है। तब वह इनके सार रूप सूत्रों को याद कर लेता है, जिसके सहारे बड़े-बड़े सवाल भी सुगमतापूर्वक हल किये जा सकते हैं। जब सरल-संक्षिप्त सूत्रों से काम चल सकता है तो बड़े और लम्बे नियमों के बोझ ढोने की क्या आवश्यकता है ? एक अन्य प्रकार से इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि किसी व्यक्ति के पास जब सौ पैसे इकट्ठे हो जाते हैं, वह उसकी जगह एक रुपये का नोट रखना पसंद करता है। जब उसके पास एक-एक के सौ नोट जमा हो जाते हैं, तो वह यहाँ भी एक-एक रुपये के सौ नोट रखने के बजाय सौ रुपये का एक नोट रखना पसंद करता है। बात एक ही है- वह सौ पैसे रखे अथवा एक का नोट सौ नोट रखे अथवा सौ का नोट। किन्तु प्रश्न यह है कि जब एक रुपये और सौ रुपये के नोट से वही काम हो सकता है, जो सौ पैसे एवं एक के सौ नोटों से, तो सुरक्षित जमा रखने की दृष्टि से कोई अनावश्यक स्थूलता का यह कष्ट क्यों उठायेगा ?

संस्कारों के साथ भी ऐसी ही स्थिति सामने आती है। जिस प्रकार गणितीय सूत्रों और नोटों की क्रमशः सूक्ष्म अवस्थाएँ आती चली जाती हैं, वैसी ही संस्कारों की भी सूक्ष्म अवस्थाएँ होती हैं। सबसे सूक्ष्म संस्कार शरीर पर अंकित होते हैं, जो मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा के साथ चले जाते हैं, यह कर्म के फल नहीं, वरन् क्रिया के कारण रूप हैं। फल तो अब इसके आधार पर ईश्वरीय सत्ता की ओर से मिलता है। जिसने कर्म किया है, चाहे वह भला हो या बुरा, क्रिया के आधार पर उसे उसका फलितार्थ तो मिलना ही चाहिए। अब प्रश्न है कि चोर को चोरी की सजा न्यायाधीश द्वारा मिल जाती है, तो दैवी सत्ता का दण्ड उसी अपराध के लिए दुबारा क्यों भोगना पड़ता है ? इसे समझने के लिए उस व्यक्ति पर विचार करना होगा, जिसने कोई गंभीर अपराध किया हो। जब वह इस दौरान जनता द्वारा पकड़ा जाता है, तो वह भी अपराध कर्म के लिए उसे अपने प्रकार की सजा देती है। उसकी पिटाई करती है, अंग-भंग करती और दूसरे प्रकार

की भी यातनाएँ देती है। इस पर कोई न्यायाधीश से यह जाकर कहे कि इसे किये का दण्ड मिल चुका है, अब आप इसे छोड़ दें, तो न्यायाधीश इन बातों पर तनिक भी ध्यान न देगा। चूँकि वह जानता है कि अपराधी ने कानून का उल्लघंन किया है, जिसकी उचित सजा एक मजिस्ट्रेट ही दे सकता है। जो न्याय और कानून से अनभिज्ञ हो, वह या तो अपराध की तुलना में कठोर दण्ड देगा अथवा मृदु दण्ड। दूसरे , वह इस कार्य के लिए अनधिकृत होता है, अतः उसकी याचना की उपेक्षा कर दी जाती है। जुर्म कितना संगीन है एक अधिकारी व्यक्ति ही उचित निर्णय कर सकता है और तदनुरूप दण्ड का निर्धारण भी। न्यायाधीश द्वारा सुनाया गया निर्णय दोषी को हर प्रकार से मानना और पालन करना पड़ता है। यही विधान भगवान के दरबार में भी लागू होता है। दोषी व्यक्ति जुर्म करके सृष्टि और सृष्टा दोनों का नियम भंग करता है, अतः सजा का पात्र है, भले ही मुजरिम को लौकिक दृष्टि से दण्ड मिल चुका हो, पर वह दण्ड उसके दरवार में वैधानिक नहीं माना जाता। किस जुर्म का कैसा दण्ड हो सकता है, इसका निर्धारण भली-भाँति परमसत्ता ही कर सकती है, अतः हर अपराधी को उसकी सजा भोगनी ही पड़ती है। भगवत्-सत्ता की यह विधि व्यवस्था इसलिए भी आवश्यक हो जाती है, कि मनुष्य अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति कर सके। इस आधार पर पाप कर्म का दण्ड दुःख-दर्द कष्ट-कठिनाई एवं पुण्य का पारितोषिक सुख-संतोष के रूप में मिलना आवश्यक हो जाता है। यदि यह व्यवस्था न हो, तो मनुष्य अपने पाप कर्म के रूप में हुई भूल में सुधार कर ही नहीं सकता और इस प्रकार वह लक्ष्य से भटक जायेगा।

इस तरह ईश्वरीय सत्ता की दण्ड-व्यवस्था का उद्देश्य बड़ा होता है। उसमें उसकी सुधार प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए मनुष्य को उसके परम लक्ष्म की ओर अग्रगामी बनाने का प्रयोजन मुख्य होता है, जबकि भौतिक जगत की दण्ड व्यवस्था में यह उद्देश्य निहित नहीं होता। यहाँ अपराधकर्मी को दण्ड सिर्फ इसलिए दिया जाता है, क्योंकि उसने अपराध किया। इस दण्ड से उसमें सुधार हो या न हो, इसकी जिम्मेदारी मजिस्ट्रेट की नहीं होती दैवी दण्ड की एक विशेषता यह भी है, कि इससे मनुष्य को सोचने के लिए विवश होना पड़ता है, कि आखिर यह दण्ड उसे क्यों मिला और यहीं से सुधार क्रम का सिलसिला आरंभ हो जाता है। वह अच्छे कर्म के लिए उद्यत होता है, जिसका परिणाम भी उसे हाथों हाथ मिलता है। सुख, संतोष, श्रद्धा, सम्मान इस लोक में और स्वर्ग-मुक्ति जैसा आनन्द परलोक में प्राप्त होता है। इसके विपरीत दुष्कर्मों में संलिप्त रहने वालों की भौतिक संसार में तो दुर्गति होती ही है, मृत्यु के बाद भी उन्हें नरक की पीड़ा सहनी पड़ती है। ऐसे लोगों को देख कर यह कहना पड़ता है कि यदि परिस्थिति सही रही होती, तो उन्हें इतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता , पर सच तो यह है कि शुभाशुभ कर्मों के आधार पर परिस्थितियों का बनना-बिगड़ना भी उसी सत्ता के अधीन है और वही इसका नियन्ता है, किन्तु इसके लिए उसे प्रकट होने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह सब कुछ उसकी स्वसंचालित प्रक्रिया के माध्यम से चलता रहता है। जिस प्रकार परीक्षा पास करने के बाद हर किसी को एक सर्टिफिकेट दिया जाता है, जिसमें उसकी योग्यता का उल्लेख रहता है, और उसी के आधार पर उसे छोटी-बड़ी नौकरी मिलती है, उसी प्रकार मानवी सत्ता में सूक्ष्म संस्कारों की व्यवस्था रहती है। हर मनुष्य के लिए यह उसकी व्यक्तिगत योग्यता का प्रमाण पत्र होता है, जिसमें उसके वर्तमान जीवन एवं पिछले जन्मों के संपूर्ण कर्मों का उल्लेख साररूप में रहता है। इसी आधार पर जीवन में उसे सुख-दुःख मिलते एवं उसकी अवगति-प्रगति होती है।

कुछ लोग स्थूल क्रिया की समाप्ति को ही कर्म की समाप्ति मान लेते हैं, पर यह गलत है। कर्म की समाप्ति तब तक नहीं होती जब तक कारण शरीर में सूक्ष्म रूप में उसका अंकन होकर फल प्राप्ति नहीं हो जाती। चक्र पूरा होने के बाद क्रिया पूरी होती है।

इस प्रकार न तो यह कहा जा सकता है कि स्थूल क्रिया के बाद कर्म की समाप्ति हो जाती है, और न ईश्वर पर यह आक्षेप ही लगाया जा सकता है कि लौकिक दण्ड मिल जाने के बाद उसकी न्याय-व्यवस्था का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। वस्तुतः भगवान की ओर से जो भी सजा मिलती है, वह हमारी भलाई के लिए ही होती है। जीवमात्र का इसी में कल्याण है और कल्याणकारी उसकी व्यवस्था है। कर्मों की गति वस्तुतः न्यारी है एवं भारतीय ऋषि प्रणीत कर्म व्यवस्था से श्रेष्ठ कोई सिद्धांत इसकी व्याख्या तर्क सम्मत रीति से नहीं कर सकता। हमें इसे ही सही नीति सम्मत व औचित्यपूर्ण मानकर अपने कर्मों को सही बनाते रहने का पुरुषार्थ सतत् करना चाहिए।

चित्रगुप्त का परिचय

नयन्ति नरकं नूनं मात्मानो मानवान् हतः।।
दिवं लोकं च ते तुष्टा इत्यूचुर्मन्त्र वेदिनः।।

-पंचाध्यायी

३.१४ मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवम् सत्य

(नूनं) निश्चय से (हताः) हनन की हुई (आत्मानः) आत्माएँ (मानवान्) मनुष्यों को (नरकं) नरक को (नयन्ति) ले जाती हैं (च) और (तुष्टा) संतुष्ट हुई (ते) वे आत्माएँ (दिव्यं लोकं) दिव्य लोक को ले जाती है(इति) ऐसा (मन्त्र वेदिनः) रहस्य को समझाने वालों ने (प्रोचुः) कहा है।

उपरोक्त श्लोक में कहा गया है कि हनन की हुई आत्मा नरक को ले जाती है और संतुष्ट हुई आत्मा दिव्य लोक प्रदान करती हैं। श्लोक में इस गुत्थी को सुलझा दिया गया है कि स्वर्ग नरक किस प्रकार मिलता है ? गरुड पुराण में इस सम्बन्ध में एक अलंकारिक विवरण दिया गया है, जिसमें कहा गया है कि यमलोक में, चित्रगुप्त' नामक देवता हर एक जीव के भले बुरे कर्मों का विवरण प्रत्येक समय लिखते रहते हैं। जब प्राणी मर कर यमलोक में जाता है तो वह लेखा पेश किया जाता है और उसी के आधार पर शुभ कर्मों के लिए स्वर्ग और दुष्कर्मों के लिए नरक प्रदान किया जाता है साधारण दृष्टि से चित्रगुप्त का आस्तित्व काल्पनिक प्रतीत होता है, क्योंकि पृथ्वी पर अरबों तो मनुष्य ही रहते हैं, फिर ऐसी ही तथाकथित चौरासी लाख योनियाँ जिनमें से अनेक तो मनुष्य जाति से अनेक गुनी अधिक हैं, इन सबकी संख्या गिनी जाय तो इतनी अधिक हो जायेगी कि हमारे अंक गणित की वहाँ तक पहुँच भी न होगी। फिर इतने असंख्य प्राणियों द्वारा पल पल पर किये जाने वाले कार्यो का लेखा दिन रात बिना बिश्राम के कल्प कल्पान्तों तक लिखते रहना एक देवता के लिए कठिन है। इस प्रकार चित्रगुप्त का कार्य असम्भव प्रतीत होता है, इस कथानक को एक कल्पना मान लेने पर चित्रगुप्त का अस्तित्व भी संदिग्ध हो जाता है।

आधुनिक शोधों ने उपरोक्त अलंकारिक कथानक में से बड़ी ही महत्त्वपूर्ण सच्चाई को ढूँढ़ निकाला है, डाक्टर फाइड ने मनुष्य की मानसिक रचना का वर्णन करते हुए बताया है कि जो भी भले या बुरे काम ज्ञानवान् प्राणियों द्वारा किये जाते हैं, उनका सूक्ष्म चित्रण अन्त चेतना में होता रहता है, ग्रामोफोन के रिकार्डों में रेखा रूप से गाने भर दिये जाते हैं। संगीत शाला में नाच-गान हो रहा है और साथ ही अनेक बाजे बज रहे हैं, इन अनेक प्रकार की ध्वनियों का विद्युत शक्ति से एक प्रकार का संक्षिप्त एवं सूक्ष्म एकीकरण होता है और वह रिकार्ड में जरा सी जगह में रेखाओं की तरह अंकित होता जाता है। तैयार किया हुआ रिकार्ड रखा रहता है, वह तुरन्त ही अपने आप या चाहे जब नहीं बजने लगता वरन् तभी उन संग्रहती ध्वनियों को प्रकट करता है, जब ग्रामोफोन की मशीन पर उसे घुमाया जाता है और सुई की रगड़ उन रेखाओं से होती है। ठीक इसी प्रकार भले और बुरे जो भी काम किये जाते हैं, उनकी सूक्ष्म रेखाएँ अन्त चेतना के ऊपर अंकित होती रहती हैं और मन के भीतरी कोने में धीरे-धीरे जमा होती जाती हैं। जब रिकार्ड पर सुई का आघात लगता है तो उसमें भरे हुए गाने प्रकट होते हैं,

इसी प्रकार गुप्त मन में जमा हुई रेखाएँ किसी उपयुक्त अवसर का आघात लगने पर ही प्रकट होती हैं। भारतीय विद्वान् कर्म रेखा' के बारे में बहुत प्राचीन काल से जानकारी रखते आ रहे हैं! **'कर्म रेख नहीं मिटे, करो कोई लाखन चतुराई'** आदि अनेक युक्तियाँ हिन्दी और संस्कृत साहित्य में मौजूद हैं, जिनसे प्रकट होता है कि कर्मो की कई रेखाएँ होती हैं, जो अपना फल दिये बिना मिटती नहीं। भाग्य के बारे में मोटे तौर से ऐसा समझा जाता है कि सिर की अगली मस्तक वाली हड्डी पर कुछ रेखाऐं ब्रह्मा लिख देता है और **'विधि का लिखा को मेंटन हारा।'** उन्हें मिटाने वाला कोई नहीं है। डाक्टर वीवेन्स ने मस्तिष्क में भरे हुए ग्रे मैटर(भूरी चर्बी जैसा पदार्थ) की सूक्ष्म दर्शक यन्त्रों की सहायता से खोज करने पर वहाँ के एक एक परमाणु में अगणित रेखाऐं पाई हैं, यह रेखाएँ किस प्रकार बनती हैं इसका कोई शारीरिक प्रत्यक्ष कारण उन्हें नहीं मिला, तब उन्होंने अनेक मस्तिष्कों के परमाणुओं का मुकाबिला करके यह निष्कर्ष निकाला कि अक्रिय, आलसी एवं विचार शून्य प्राणियों में यह रेखाएँ बहुत ही कम बनती हैं, किन्तु कर्मनिष्ठ एवं विचारवानों में इनकी संख्या बहुत बड़ी होती हैं। अतएव यह रेखाएँ शारीरिक और मानसिक कार्यों को संक्षिप्त और सूक्ष्म रूप से लिपिबद्ध करने वाली प्रमाणिक हुई।

भले-बुरे कार्मो का ग्रे मैटर के परमाणुओं पर यह रेखांकन (जिसे प्रकट के शब्दों में अन्तःचेतना का संस्कार कहा जा सकता है) पौराणिक चित्रगुप्त की वास्तविकता को सिद्ध कर देता है। चित्रगुप्त शब्द के अर्थो से भी इसी प्रकार की ध्वनि निकलती है। गुप्त चित्र, गुप्त मन, अन्तः चेतना, सूक्ष्म मन, पिछला दिमाग, भीतर चित्र, इन शब्दों के भावार्थ को ही चित्र गुप्त शब्द प्रगट करता हुआ दीखता है चित्त शब्द को जल्दी में लिख देने से चित्र' जैसा ही बन जाता है। संभव है कि 'चित्त' का बिगाड़ कर चित्र बन गया हो या प्राचीन काल में चित्र और चित्त एक ही अर्थ के बोधक रहे हों। कर्मो की रेखाएँ एक प्रकार के गुप्त चित्र ही हैं, इसलिए उन छोटे अंकनों में गुप्त रूप से, सूक्ष्म रूप से, बड़े-बड़े घटना चित्र छिपे हुए होते हैं, इस क्रिया प्रणाली को चित्र गुप्त मान लेने से प्राचीन शोध का समन्वय हो जाता है।

यह चित्र गुप्त निस्संदेह हर प्राणी के हर एक कार्य को हर समय बिना विश्राम किये, अपनी बही में लिखता रहता है।

सब का अलग-अलग चित्र गुप्त है, जितने प्राणी हैं, उतने ही चित्र गुप्त हैं, इसलिए यह सन्देह नहीं रह जाता कि इतना लेखक कार्य किस प्रकार पूरा हो पाता होगा। स्थूल शरीर के कार्यों की सुव्यवस्थित जानकारी सूक्ष्म चेतना में अंकित होती रहे तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पौराणिक चित्रगुप्त एक है और यहाँ अनेक हुए' यह शंका भी कुछ गहरी नहीं है, दिव्य शक्तियाँ व्यापक होती हैं, पाठक जानते हैं कि प्राण तत्व एक है, उसके अंश विभिन्न व्यक्ति में दृष्टिगोचर होते हैं । आत्मा और परमात्मा में व्यष्टि और समष्टि का ही भेद है, बाकी दोनों पदार्थ एक ही हैं घटाकाश मठाकाश का ऐसा ही भेद है इन्द्र, वरुण, अग्नि, शिव, यम आदि देवता बोधक सूक्ष्मत्व व्यापाक समझे जाते हैं। जैसे- बगीचे की वायु, गन्दे नाले की वायु आदि स्थान भेद से अनेक नाम वाली होते हुए भी मूलत: विश्व व्यापाक वायुतत्व एक ही है, वैसे ही अलग-अलग शरीरों में रह कर अलग-अलग काम करने वाला चित्र गुप्त देवता भी एक ही तत्व है।

यह हर व्यक्ति के कार्यों का लेखा किस आधार पर कैसा, किस प्रकार कितना, क्यों लिखता है वह अगली पंक्तियों मे बताया जायेगा, एवं चित्रगुप्त द्वारा लिखी हुई कर्म रेखाओं के आधार पर स्वर्ग-नरक का विवरण और अनेक प्राप्त होने की व्यवस्था पर प्रकाश डाला जायेगा।

पिछली पंक्तियों में पाठक पढ़ चुके हैं कि हमारा गुप्त चित्र-अन्तर्मन ही निरन्तर चित्रगुप्त देवता का काम करता रहता है। जो कुछ भले या बुरे काम हम करते हैं उनका सूक्ष्म चित्र उतार-उतार कर अपने भीतर जमा करता रहता है। सिनेमा के पर्दे पर मनुष्य की बराबर लम्बी चौड़ी तस्वीर दिखाई देती है। पर उसका फिल्म केवल एक इंच ही चौड़ा होता है। इसी प्रकार पाप पुण्य का घटना क्रम तो विस्तृत होता है पर उसका सूक्ष्म चित्र पतली रेखा मात्र के भीतर खिंच जाता है और वह रेखा गुप्त मन के किसी परमाणु पर अदृश्य रूप से जगकर बैठ जाती है। शार्ट हैंड लिखने वाले बड़ी बात को थोड़ी सी उलटी सीधी लकीरों के इशारे से जरा से कागज पर लिख देते हैं धर्म रेखा ऐसा ही दैवी शार्ट हैंड समझा जा सकता है।

पाठकों को इतनी जानकारी तो बहुत पहले हो चुकी होगी कि मन के दो भाग हैं एक बर्हिमन दूसरा अन्र्तमन बाहरी मन तो तर्क-वितर्क करता है, सोचता है, काट-छाँट करता है, निर्णय करता है और अपने इरादों को बदलता रहता है पर अन्तर्मन भोले-भाले किन्तु दृढ़ निश्वयी बालक के समान है वह काट-छाँट नहीं करता वरन् श्रद्धा और विश्वास के आधार पर काम करता है। बाहरी मन तो यह सोच सकता है कि पाप कर्मों की रेखाएँ अपने ऊपर अंकित न होने दूँ और पुण्य कर्मों को बढ़ा-चढ़ा कर अंकित करूँ जिससे पाप फल न भोगना पड़े और पुण्य फल का भरपूर आनन्द प्राप्त हो। परन्तु भीतरी मन ऐसा नहीं है बह सत्यनिष्ठा जज की तरह फैसला करता है, कोई लोभ, लालच भय, स्वार्थ उसे प्रभावित नहीं करता। कहा जाता है कि मनुष्य के अन्दर एक ईश्वरीय शक्ति रहती है, दूसरी शैतानी । आप गुप्त मन को ईश्वरीय शक्ति और तर्क, मन, छली, कपट, स्वार्थ, लोभ में रत रहने वाले वाह्य मन को शैतानी शक्ति कह सकते हैं। बाहरी मन धोखावाजी कर सकता है, परन्तु भीतरी मन तो सत्व रूप आत्मा का तेज है। वह न तो मायावी आवरण करता है न छल कपट। निष्पक्ष रहना उसका स्वभाव है। इसलिए ईश्वर ने उसे इतना महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा है। दुनिया उसे चित्रगुप्त देवता कहती है। यदि वह भी पक्षपात करता तो भला इतनी ऊँची जज की पदवी कैसे पा सकता था ? हमारा गुप्त मन खुफिया जासूस की तरह हर घड़ी साथ-साथ रहता है और जो जो भले-बुरे काम किये जाते हैं उनका ऐमालनामा अपनी खुफिया डायरी में दर्ज करता रहता है।

बाहरी दुनिया में मुलाजिम को सजा दिलाने का काम दो महकमों के आधीन है एक पुलिस, दूसरा अदालत। पुलिस तो मुलाजिम को पकड़ ले जाती है और उसके कामों का सबूत एकत्रित करके अदालत के सामने पेश करती है। फिर अदालत का महकमा अपना काम करता है, जज महाशय अपराध और अपराधी की स्थिति के बारे में बहुत दृष्टियों से विचार करते हैं। तब जैसा उचित होता है वैसा फैसला करते हैं। एक ही जुर्म में आये हुए अपराधियों को अलग-अलग तरह की सजा देते हैं। तीन खूनी पकड़ कर आये, इनमें से एक को बिलकुल बरी कर दिया, दूसरे को पाँच साल की सजा मिली, तीसरे को फाँसी । हत्या तीनों ने की थी, पर सजा देते वक्त मजिस्ट्रेट ने बहुत बातों पर विचार किया । जिसे बरी कर दिया गया था वह मकान बनाने वाला मजदूर था छत पर काम करते वक्त पत्थर का टुकड़ा उसके हाथ से अचानक छूट गया और वह नीचे सड़क पर चलते हुए मुसाफिर के सिर में लगा, सिर फट गया, मुसाफिर की मृत्यु हो गई। जज ने देखा कि हत्या तो अवश्य हुई, मजदूर निर्दोष है उसने जान-बूझ कर बुरे इरादे से पत्थर नहीं फेंका था, इसलिए उसे बरी कर दिया गया। दूसरा मुलजिम एक किसान था खेत काटते हुए चोर में ऐसी लाठी मारी कि वह मर गया। मजिस्ट्रेट ने सोचा चोरी होते देखकर गुस्सा आना स्वाभाविक है पर किसान की इतनी गलती है कि मामूली अपराध पर इतना नहीं मारना चाहिए था इसलिए उसे पाँच साल की सजा मिली। तीसरा मुलजिम

एक मशहूर डाकू था। एक धनी पुरुष के घर में रात को घुस गया और उसका कत्ल करके धन माल चुरा लाया इसका अपराध जघन्य था इसलिए फाँसी की सजा दी गयी। तीनों ही अपराधियों ने खून किया था, जुर्म का बाहरी रूप एकसा था, पर मजिस्ट्रेट सूक्ष्मदर्शी होता है, वह बाहरी को देखकर ही सजा नहीं दे डालता वरन् भीतरी बारीकियों पर भली प्रकार विचार करके तब कुछ फैसला करता है।

भीतरी दुनिया में गुप्त-चित्र, या चित्रगुप्त पुलिस और अदालत दोनों महकमों का काम स्वयं ही करता है। यदि पुलिस झूठा सबूत दे-दे तो अदालत का फैसला भी अनुचित हो सकता है। परन्तु भीतरी दुनिया में ऐसी गड़बड़ी की संभावना नहीं। अन्त: करण सब कुछ, जानता है कि यह कर्म किस विचार से, किस इच्छा से, किस परिस्थिति में, क्यों कर विया गया था। वहाँ बाहरी मन को बयान या सफाई देने की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि गुप्त मन उस बात के सम्बन्ध में स्वयं ही पूरी-पूरी जानकारी रखता है। हम जिस इच्छा से, जिस भावना से जो काम करते हैं उस इच्छा या भावना से ही पाप-पुण्य का नाप होता है। भौतिक वस्तुओं की तोल नाप बाहरी दुनिया में होती है। एक गरीब आदमी दो पैसा दान करता है और एक धनी आदमी दस हजार रुपया दान करता है, बाहरी दुनियाँ तो पुण्य की तौल रुपये पैसों की गिनती के अनुसार करेगी । दो पैसा दान करने वाले की ओर कोई आंख उठाकर न देखेगा पर दस हजार रुपया देने वाले की प्रशंसा चारों ओर फैल जावेगी। भीतरी दुनिया में यह तोल नाप नहीं चलती। अनाज के दाने अँगोछे में बाँधकर गाँव में बनिये की दुकान पर चले जायँ तो वह बदले में गुड़ दे देगा पर उसी अनाज को इंग्लैण्ड की राजधानी लन्दन में जाकर किसी दुकानदार को दिया जाय तो वह कहेगा महाशय ! इस शहर में अनाज के बदले सौदा नहीं मिलता यहाँ तो पौंड, शिलिंग, पेंस का सिक्का चलता है। ठीक इसी तरह बाहरी दुनिया में रुपयों की गिनती से काम के बाहरी फैलाव से, कथा वार्ता से, तीर्थ-यात्रा आदि भौतिक चीजों से यश खरीदा जाता है, पर चित्रगुप्त देवता के देश में वह सिक्का नहीं चलता, वहाँ तो इच्छा और भावना की नाप तौल है। उसी के मुताबिक पाप-पुण्य का जमा खर्च किया जाता है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उकसा कर लाखों आदमियों को महाभारत के युद्ध में मरवा डाला। लाश से भूमि पट गई, खून की नदियाँ वह गई फिर भी अर्जुन को कुछ पाप न लगा क्योंकि हाड़ माँस के बने हुए कितने खिलौने टूट-फूट गये इसका लेखा चित्रगुप्त के दरवार में नहीं रखा गया। भला कोई राजा यह हिसाब रखता है कि मेरे भण्डार में से कितने चावल फैल गये पाँच तत्व से बनी हुई नाशवान चीजों की कोई पूछ आत्मा के दरवार में नहीं है। अर्जुन का उद्देश्य पवित्र था। वह पाप को नष्ट करके धर्म की स्थापना करना चाहता था। बस वही इच्छा खुफिया रजिस्टर से दर्ज हो गई आदमियों के मरने जीने की संख्या का कोई हिसाब नहीं लिखा गया। दुनियाँ में करोड़पति की बड़ी प्रतिष्ठा है, पर यदि उसका दिल खोटा है तो चित्रगुप्त के दरवार में भिखमंगा शुमार किया जायेगा। दुनिया का भिखमंगा यदि दिल का धनी है तो उसे हजार बादशाहों का बादशाह गिना जायेगा। इस प्रकार मनुष्य जो भीं काम कर रहा है वह किस नीयत से कर रहा है वह नीयत, भलाई या बुराई, जिस दर्जे में जाती होगी उसी में दर्ज करली जायेगी। सद्भाव से फाँसी लगाने वाला एक जल्लाद भी पुण्यआत्मा में गिना जाता है। और एक धर्म ध्वजी तिलकधारी पण्डित भी गुप्त रूप से दुराचार करने पर पापी माना जा सकता है। बाहरी आडम्बर का कुछ मूल्य नहीं है, कीमत भीतरी चीज की है। सोप की कुछ कीमत नहीं, मोल-तोल तो मोती का है। बाहर से कोई काम भला या बुरा दिखाई दे, तो उससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। असली तत्व तो उस इच्छा और भावना में है, जिससे प्रेरित होकर वह काम किया गया है पाप-पुण्य की जड़ कार्य और प्रदर्शन में नहीं, वरन् निश्चित रूप से इच्छा और भावना में ही है।

उपरोक्त पंक्तियों में बताया गया है कि हमारे प्राणों के साथ घुलमिल कर रहने वाला चित्रगुप्त देवता बिना किसी पक्षपात के बुरे भले कर्मों का लेखा अत: चेतना के परमाणुओं पर लिखा करता है, उस अदृश्य लिपि को बोलचाल की भाषा में कर्म रेखा कहते हैं। साथ ही यह भी बताया जा चुका है कि पाप-पुण्य का निर्णय काम के बाहरी रूप से नहीं वरन् कर्ता की इच्छा और भावना के अनुरूप होता है। यह इच्छा जितनी तीव्र होगी उतना, ही पाप पुण्य भी अधिक एवं बलवान होगा। जैसा एक व्यक्ति उदास मन से किसी रोगी की सेवा करता है और दूसरा व्यक्ति दूसरे रोगी की सेवा अत्यन्त दया, सहानुभूति, उदारता एवं प्रेम पूर्वक करता है, तो बाहर से देखने में दोनों के काम एक समान भले ही हों, पर उस पुण्य का परिणाम भावना की उदासीनता एवं प्रेम तत्परता के अनुसार न्यूनाधिक होगा। इसी प्रकार एक भूखा व्यक्ति लाचार होकर चोरी करता है, दूसरा व्यक्ति मद्यपान के लिये चोरी करता है तो दोनों के पाप में निस्संदेह न्यूनाधिकता होगी। चोरी दोनों ने की है पर दुष्टता में न्यूनाधिकता के कारण पाप भी उसी अनुपात से होगा।

इस सम्बन्ध में एक और भी महत्त्वपूर्ण बात जान लेने की है कि हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग कानून व्यवस्था है।

रिश्वत के मामले में एक चपरासी, एक क्लर्क एक मजिस्ट्रेट तीन आदमी पकड़े जाएँ, तो तीनों को अलग अलग तरह की सजा मिलेगी। संभव है चपरासी को डाट-डपट सुना कर ही छुटकारा मिल जाय पर मजिस्ट्रेट बर्खास्त हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि उसकी बड़ी जुम्मेदारी है। एक असभ्य भील, शिकार मार कर पेट पालता है, अपराध उसका भी है, परन्तु अहिंसा का उपदेश करने वाला पंडित यदि चुपचाप बूचर की दुकान में जाता है, तो पंडित को उस भील की अपेक्षा अनेक गुना पाप लगेगा। कारण यह है कि ज्ञान दृष्टि करता हुआ जीव जैसे-जैसे आगे बढ़ता चलता है वैसे ही वैसे उसकी अन्त:चेतना अधिक स्वच्छ हो जाती है मैले कपड़े पर थोड़ी सी धूल पड़ जाय तो उसका कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु दूध के समान स्वच्छ धुले हुए कपड़े पर जरा सा धब्बा लग जाय, तो वह दूर से ही चमकता है और बहुत बुरा मालूम पड़ता है। छोटा बच्चा कपड़ों पर टट्टी फिर देता है, पर उसे कोई बुरा नहीं कहता और न बच्चे को कुछ शर्म आती है, किन्तु यदि कोई जवान आदमी ऐसा कर डाले तो उसे बुरा कहा जायेगा और वह खुद भी लज्जित होगा। बच्चे ने और बड़े ने अपराध एक सा ही किया, पर उनके मानसिक विकास में अन्तर होने के कारण बुराई की गिनती कम ज्यादा की गई। इसी प्रकार अशिक्षित, अज्ञान, असभ्य व्यक्तियों को कम पाप लगता है। ज्ञान वृद्धि के साथ-साथ भला बुरा समझने की योग्यता बढ़ती जाती है, सत् असत् का कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का विवेक प्रवल होता जाता है, अन्त:करण की पुकार जोरदार बनती है, इस प्रकार आत्मोन्नति के साथ-साथ साधारण की जिम्मेदारी भी बढ़ती जाती है। हुकम अदूली करने पर मामूली चपरासी को दो रुपया जुर्माना हो जाता है, परन्तु फौजी अफसर हुक्म अदूली करे तो कोर्ट मार्शल द्वारा गोली से सूट करा दिया जायेगा। ज्ञानवान, विचारवान और भावनाशील हृदय वाले व्यक्ति जब दुष्कर्म करते हैं तो उनका चित्रगुप्त उस करतूत को बहुत भारी पाप की श्रेणी में दर्ज कर देता है। गौदान से लोग वैतरणी पार कर जाते हैं, पर राजा नृप जैसा विवेकवान थोड़ी गलती करने पर ही नरक में पहुँचा। अज्ञानी व्यक्ति अपराध करे तो वह उतना महत्त्व नहीं रखता। किन्तु कर्त्तव्य च्युत ब्राह्मण तो घोर दंड का भागी बनता है। राजा बनना सब दृष्टियों में अच्छा है पर राजा की जुम्मेदारी भी सबसे ऊँची है। ज्ञानवानों का यह कठोर उत्तरदायित्त्व है कि सदाचार पर दृढ़े रहें, अन्यथा सात मंजिल ऊँची छत पर से गिरने वाले को जो कष्ट होता है, उन्हें भी वही दु:ख होगा।

कर्मों का फल किस प्रकार मिलता है? अगली पंक्तियों में पाठकों को वह रहस्य भी समझाया जायेगा।

पाप-पुण्य की स्वसंचालित प्रक्रिया

कुछ लोग कहते हैं कि इस संसार में पाप ही पाप भरा पड़ा है और दुर्लभ वस्तु की भाँति पुण्य का स्वल्प अंश ही यत्र-तत्र देखने को मिलता है। जब कि कुछ अन्य इसके लिए ईश्वर को जिम्मेदार ठहराते हैं। कहते हैं कि यदि ईश्वर में मनुष्य के प्रति तनिक भी करुणा होती, तो वह ऐसी दुनिया नहीं बनाता, जो पापमय हो।

इन आपेक्षों पर विचार करने से पूर्व हमें पाप-पुण्य की प्रक्रिया समझनी पड़ेगी एवं जानना होगा कि यह है क्या ? वस्तुत: मनुष्य जितने कार्य करता है, उनमें से प्रत्येक कभी पाप की श्रेणी में आता है, कभी पुण्य की। इसका निर्धारण उस परिस्थिति के आधार पर होता है, जिसमें कार्य सम्पन्न हुआ। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति किसी अपराधी को अपराध कर्म करते देख कर भी छोड़ देता है, तो वह पाप करता है, पर यदि दण्ड मिल चुकने के बाद भी वह उसे दण्ड देता है, तो दाता पाप का भागी बनता है। कार्य एक ही प्रकार के हैं, किन्तु दो भिन्न अवस्थाओं में सम्पन्न होने के कारण एक बार वह पुण्य कहलाता है, तो दूसरी बार पाप। एक ही क्रिया के दो परिणाम मिलते हैं, आखिर ऐसा क्यों? वस्तुत: हर क्रिया का एक औचित्य होता है। उसके अन्तर्गत वह पुण्य और उससे परे पाप कहलाता है। उपरोक्त उदाहरण में अपराधी को दण्ड देना प्रत्येक का कर्त्तव्य है, अत: वह पुण्य कहलायेगा। प्रथम मामले में अपराधी को अपराध के तुरन्त बाद सजा मिलती है, अत: पुण्य है, किन्तु दूसरे मामले में अपराध के बाद दण्ड तब मिलता है, जब पहले ही उसे किसी अन्य से दण्ड मिल चुका होता है, अस्तु यहाँ औचित्य यह कहता है, कि पहले यह पता लगा लिया जाय, कि उसे किये की सजा मिली या नहीं इसके बाद ही कोई कदम उठाया जाय।

पाप-पुण्य का निर्धारण कर्त्ता की स्वतंन्त्रा पर भी आधारित है। इसे परिभाषित करते हुए पाणिनि ने कहा है-"स्वतंत्र: कर्त्ता" अर्थात्- कर्त्ता वही कहला सकता है, जो स्वतंत्र हो। जिसे कार्य की स्वतंत्रता नहीं, वह कर्त्ता अथवा निमित्त कारण नहीं हो सकता, उसे साधन अथवा माध्यम मात्र कहा जा सकता है। दोनों कें बीच मौलिक अन्तर यही है कि कर्त्ता स्वतंत्र होता है, तो माध्यम परतंत्र। एक यदि बाजीगर है, तो दूसरा उसके इशारे पर नाचने वाली कठपुतली। एक पतंगबाज की भूमिका निभाता है, तो साथ वाला पंतग की । कर्त्ता और माध्यम के बीच इसी स्तर का संबंध होता है। नौकर सदा मालिक के इशारे पर काम करता है। इसमें उसकी अपनी इच्छा नहीं होती। मालिक जैसा कहता है, उसे वैसा ही करना पड़ता है। उसकी इच्छा, नौकर की इच्छा

बन जाती है। भले ही उसे इस दौरान गलत काम करना पड़े, पर इसका दोषी वह स्वयं नहीं, अपितु मालिक होगा। क्योंकि कार्य करने में वह स्वतंत्र नहीं है यहाँ नौकर का कर्त्तव्य सिर्फ आज्ञा पालन है। यदि कोई जल्लाद किसी व्यक्ति को फाँसी देता है, तो वह अपना कर्त्तव्य-पालन करता है। फाँसी पर चढ़ने वाला व्यक्ति दोषी है या निर्दोष है, इसका निर्णय करना उसका काम नहीं है। व्यक्ति यदि निर्दोष भी हो, तो भी उसे अपना कर्त्तव्य पूरा करना पड़ता है, क्योंकि किसी को दोषी-अदोषी-ठहराना उसके कार्य-क्षेत्र में नहीं आता। यह निर्धारण करना जज का काम है। हाँ, इतना अवश्य है कि उसे जज की आज्ञा पालन करने के लिए बाधित नहीं किया जा सकता। इसमें वह पूर्ण स्वतंत्र है। वह चाहे तो आज्ञा पालन करे अथवा न करे। यदि वह आज्ञा पालन करता है, तो अपना कर्त्तव्य पूरा करता और निर्दोष कहलाता है और उल्लंघन करने से दोषी बनता है।

इस प्रकार हर व्यक्ति कार्य करने में कुछ अंश में स्वतंत्र होता है और कुछ अंश में परतंत्र। जहाँ तक स्वतंत्र होता है, वहीं तक उसका कर्त्तापन होता है, परतंत्रता आरम्भ होते ही उसका करणत्व शुरू हो जाता है। इस तरह यदि जज के आदेशानुसार जल्लाद किसी को फाँसी के फन्दे पर लटकाता है, तो पुण्य-पाप का भागी नहीं बनता, पर जब वह अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग कर जिस किसी को भी फाँसी पर लटकाना चाहेगा, तो इसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी होगा, फलत: पाप-पुण्य का हिस्सा भी उसी के जिम्मे आयेगा। तात्पर्य यह कि जहाँ स्वतंत्रता है वहाँ पाप-पुण्य है और जहाँ परतंत्रता है वहाँ इसका अभाव। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कर्ता को यदि कर्म करने न करने की स्वतंत्रता है, और उद्देश्य-पूर्ति के लिए वह उस कार्य को सही समझता है, फिर भी नहीं करता, तो वह पाप करता है और इसका उलटा पुण्य है।

अब यदि इस पाप के लिए कोई ईश्वर को जिम्मेदार ठहराये, तो वह भूल करता है। वस्तुत: ईश्वर ने इस संसार को न पापमय बनाया है न पुण्यमय मनुष्य की यह अपनी सृष्टि है। परमसत्ता न तो किसी को पाप के लिए प्रेरित करती है, न पुण्य के लिए । इसके मूल में मनुष्य की अपनी स्वतंत्रता काम करती है। जब वह अपनी स्वतंत्रता का सदुपयोग करता है, तो पुण्य का भाजन बनता है और दुरुपयोग करने पर पाप का। इस पर कोई यह कहे कि भगवद् सत्ता ने मनुष्य को इतनी स्वतंत्रता दी ही क्यों ? ताकि वह पापकर्म पर उतारू हो जाये, तो ऐसा कहना भी भूल है। कदाचित ऐसा कहने वाले, मनुष्य की परतंत्रता का समर्थन करते हैं। यदि ऐसा ही होता, तो भी ऐसे लोगों को शिकायत रहती कि ईश्वर ने संसार को कारागार और मनुष्य को कैदी क्यों बना दिया, कि उसे किसी प्रकार की स्वतंत्रता ही नहीं है? तब शायद वे यह आक्षेप करते कि भगवान ने मनुष्य को तांगे का घोड़ा बना दिया है। जिस प्रकार घोड़ा अपनी आँखें बन्द किये मार्ग पर सीधे दौड़ता चलता है, उसे न अपना लक्ष्य मालूम होता है न जाने का कारण वैसी ही स्थिति तब मनुष्य की होती।

इसके अतिरिक्त गंभीरता पूर्वक विचार करने से एक अन्य तथ्य सामने आता है कि यदि मनुष्य स्वतंत्र न होकर परतंत्र रहा होता, तो उसका जीवनोद्देश्य कुछ भी न होता। यदि जीवन का कोई लक्ष्य व उद्देश्य न होता, तो वह किसी प्रकार की क्रिया ही क्यों करता ? स्कूल में शिक्षक और विद्यार्थी होते हैं। शिक्षक जो कुछ पढ़ाता है उसकी समय-समय पर वह परीक्षा भी लेता है। प्रश्नों का सही-गलत उत्तर देने, हल करने या न करने का अधिकार परीक्षार्थी को है। कितने ही इनके सही उत्तर देते हैं, कितनों से त्रुटियाँ हो जाती हैं, कितने इम्तहान में बैठते ही नहीं। नियम सिर्फ इतना है कि जो परीक्षा में सही उत्तर देगा, वही उत्तीर्ण होगा और गलत जबाव देने वाला अनुत्तीर्ण। कोई परीक्षा सम्बन्धी इस नियम पर आपत्ति करते हुए कहे कि यह नियम बड़ा बेतुका है आखिर अध्यापक ने विद्यार्थी को यह स्वतंत्रता ही क्यों दी कि वह उचित-अनुचित उत्तर लिखे ? क्यों नहीं अध्यापक परीक्षार्थी को सही-सही जबाव ही लिखवा देता है.?

ऐसे प्रश्न करने वाले संभवत: यह भूल जाते हैं कि स्वतंत्रता के समाप्त होते ही पढ़ाई व परीक्षा की उपयोगिता भी समाप्त हो जाती है। परतंत्रता में सम्पन्न होने वाली परीक्षा परीक्षार्थी की निजी योग्यता व स्तर नहीं बता सकेगी, न तो वह उसके लिए किसी प्रकार भी लाभप्रद एवं उन्नति में सहायक सिद्ध होगी। परतंत्रता से तो उलटे उसमें जड़ता आ जायेगी। फिर तो वह पढ़ना-लिखना ही बन्द कर देगा, क्योंकि परीक्षा का जो उद्देश्य है, यदि वह बिना परिश्रम के ही पूरा हो जा रहा है, तो वह किसी प्रकार का कष्ट क्यों उठायेगा ? ऐसी स्थिति में न तो विद्यालय खोलना उद्देश्यपूर्ण रह जायेगा, न अध्यापक का पढ़ाना और विद्यार्थी का पढ़ना। यदि स्वतंत्रता न होती, तो न तो किसी कार्य में हमारी रुचि होती, न हम किसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर पाते, अस्तु स्वतंत्रता मनुष्य के लिए आवश्यक थी।

इस प्रकार यह कहना कि मानवी पाप-पुण्य के लिए ईश्वर जिम्मेदार है अथवा ईश्वर ने पापमय संसार की रचना की है, सर्वथा गलत है। परमेश्वर न तो हमें पाप की अनुमति देता है न पाप सहन करता है। परीक्षार्थी द्वारा प्रश्नों के गलत उत्तर

देने का यह अर्थ कदापि नहीं कि इसमें अध्यापक का समर्थन है और वह उसे ऐसा करने की आज्ञा देता है। वस्तुतः अध्यापक न तो गलत उत्तर का समर्थन करता है, न सहन। ऐसा तो तब होता, जब वह गलत जबाव देने पर भी परीक्षार्थी को उत्तीर्ण कर देता, पर व्यवहार में ऐसा होता देखा नहीं जाता। अनुचित उत्तर देने वाले सदा अनुत्तीर्ण होते हैं। यही बात पाप-पुण्य के साथ भी लागू होती है। मनुष्य जब अपनी स्वतंत्रता का सदुपयोग कर औचित्य सीमा के अन्दर रहते हुए कार्य करता है, तो वह पुण्य का पात्र बनता है और उल्लघंन करने पर पाप का भागी। इस प्रकार पाप-पुण्य के लिए मनुष्य स्वयं जिम्मेदार है, न कि ईश्वर ।

आकस्मिक सुख-दुःख

देविकं दैहिकं चापि भौतिकं च तथैव हि
आयाति स्वयमाहूतो दुःखानामेष संचयः।।

- पंचाध्यायी

(देविकं) दैविक (अपिच) और (दैहिकं) दैविक (तथैव हि) उसी प्रकार (च) और (भौतिकं) भौतिक (दुःखानां) दुख का (एष) यह (संचयः) समूह (स्वयमाहूतः) अपने आप बुलाया हुआ (आयति) आता है।

अनेक बार ऐसे अवसर आ उपस्थित होते हैं जो प्राकृतिक नियमों के बिलकुल विपरीत दिखाई देते हैं। एक मनुष्य उत्तम जीवन बिताता है पर अकस्मात् उसके ऊपर ऐसी विपत्ति आ जाती है मानो ईश्वर किसी घोर दुष्कर्म का दण्ड दे रहा हो। एक मनुष्य बुरे से बुरे कर्म करता है पर वह चैन की वंशी बजाता है सब प्रकार के सुख सौभाग्य उसे प्राप्त होते हैं। एक निठल्ले को लाटरी में जुआ से या वहीं गढ़ा हुआ धन मिल जाता है किन्तु दूसरा अत्यन्त परिश्रम और बुद्धिमान मनुष्य अभाव में ही ग्रसित रहता है। एक व्यक्ति स्वल्प परिश्रम में ही बड़ी भारी सफलता प्राप्त कर लेता है दूसरा घोर प्रयत्न करने और अत्यन्त सही तरीका पकड़ने पर भी असफल रहता है ऐसे अवसरों पर प्रारब्ध' भाग्य' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार महामारी, बीमारी, अकाल, मृत्यु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बिजली गिरना, भूकम्प, बाढ़ आदि के दैवी प्रकोप भी भाग्य प्रारब्ध कहे जाते हैं। आकस्मिक दुर्घटनाएँ, मानसिक आपदा, वियोग, आदि वे प्रसंग जो टल नहीं सकते इसी श्रेणी में आ जाते हैं।

यह ठीक है कि ऐसे प्रसंग कम आते हैं प्रयत्न से उलटा फल होने को आकस्मिक घटना घटित हो जाने के अपवाद चाहे कितने कम क्यों न हों, पर होते जरूर हैं। और वे कभी-कभी ऐसे कठोर होते हैं कि उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसे अवसरों पर हममें से साधारण श्रेणी का ज्ञान रखने वाले बहुत ही भ्रमति हो जाते हैं और ऐसी-ऐसी धारणा बना लेते हैं जो जीवन के लिए बहुत ही घातक होती हैं। कुछ लोग तो ईश्वर पर अत्यन्त कुपित होते हैं, उसे दोषी ठहराते हैं और भरपूर गालियाँ देते हैं, कई तो नास्तिक हो जाते हैं कहते हैं कि हमने ईश्वर का इतना भजन पूजन किया पर उसने हमारी कुछ भी सहायता नहीं की ऐसे ईश्वर को पूजना व्यर्थ है, कई महानुभाव लाभ की इच्छा व साधु-सन्त देवी-देवताओं की पूजा करते हैं यदि संयोगवश इसी बीच में कुछ हानिकर प्रसंग आ गये तो उस पूजा के स्थान पर निन्दा करने लगते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि ऐसे आकस्मिक प्रसंग आने के समय ही यदि घर में कोई नया प्राणी आया हो, कोई पशु खरीदा हो, बालक उत्पन्न हुआ हो, नई बहू आई हो, तो उस घटना का दोष या श्रेय उस नवागन्तुक प्राणी पर थोप दिया जाता है यह नया बालक बड़ा भाग्यवान् हुआ जो जन्मते ही इतना लाभ हुआ, यह बहू बड़ी अभागी आई कि आते ही सत्यानाश कर दिया इस श्रेयदान या दोषारोपण के कारण कभी-कभी घर में ऐसा दुखदाई क्लेश कलह उठ खड़े होते हैं कि उनका स्मरण होते ही रोमांच हो जाते हैं। हमारे परिचित एक सज्जन के घर में नई बहू आई उन्हीं दिन घर का एक जवान लड़का मर गया। इस मृत्यु का दोष बेचारी नई बहू पर पड़ा, सारा घर यही ताने जनी करता। यह 'बहू बड़ी अभागी आई है आते ही एक बलि ले ली।' कुछ दिन तो इन अपमान को बेचारी निर्दोष लड़की विष के घूंट की तरह पीती रही पर जब हर वक्त का अपमान, घर वालों का नित्यप्रति का दुर्व्यवहार, सहन न कर सकी तो मिट्टी का तेल छिड़क कर जल मरी। बेचारी निरपराध विधवाओं को अभागी, कलमुंही, डायन, की उपाधि मिलने का एक आमरिवाज है। इसका कारण भाग्यवाद के सम्बन्ध में मन में जमी हुई अनर्थ मूलक धारणा है। सही बात को न समझने के कारण लोगों के हृदयों में ऐसे ऊट पटांग विश्वास घर जमा लेते हैं, अनेक व्यक्ति तो भाग्य की वेदी पर कर्त्तव्य को भी बलि चढ़ा देते हैं उनका विश्वास होता है कि इस जीवन में जो भी हानि लाभ होगा वह भाग्य के अनुसार होगा। अब जो कर्म किये जा रहे हैं उनका फल अगले जन्म में भले मिले पर यह जीवन तो प्रारब्ध के रस्सों से ही जकड़ा हुआ है। जब उपाय

करने, प्रयत्न या उद्योग करने की बात चलती है तो वे यही कहते हैं जो भाग्य में लिखा होगा सो होगा, ब्रह्मा की लकीर को कौन मेंट सकता है, जो ईश्वर को करनी होगी वह होकर रहेगी, होनी बड़ी प्रबल है, इन शब्दों का प्रयोग वास्तव में इस लिऐ है कि जब आकस्मिक दुर्घटना पर अपना बस नहीं चलता और अनहोने प्रसंग सामने आ खड़े होते हैं तो मनुष्य का मस्तिष्क बड़ा विक्षुब्ध किं कर्त्तव्य विमूढ़ हो जाता है । सामने कोई दोषी तो दिखाई नहीं पड़ता पर आघात लगने के कारण रोष आता ही है । आवेश में बुद्धि ठिकाने नहीं रहती सम्भव है कि वह दोष किसी निर्दोष पर बरस पड़े और अनर्थ उपस्थित करते इसलिए उस क्षोभ को शान्त करके किसी प्रकार सन्तोष धारण किया जा सके । परन्तु हम देखते हैं कि आज अनेक व्यक्ति उस आपत्ति काल के मन समझाव को कर्त्तव्य के ऊपर कुल्हाड़ी की तरह चलाते हैं । होते होते यह लोग उद्योग के विरोधी हो जाते हैं और अजगर और पक्षी की उपमा देकर भाग्य के ऊपर निर्भर रहते हैं, यदि यह सज्जन बड़े-बूढ़े हुए तो अपने प्रभाव से निकटवर्ती अल्पज्ञान वाले तरुणों और किशोरों को भी इसी भाग्यवाद की निराशा के दलदल में डाल देते हैं ।

पाठक समझे होगें कि आकस्मिक घटनाओं के वास्तविक कारण की जानकारी न होने से कैसी-कैसी अर्नथकारक ऊट-पटाँग धारणाएँ उपजती हैं और वे लोगों के मनों में जब गहरी घुस बैठती हैं तो जीवन प्रवाह को उलटा विकृत एवं बेहूदा बना देती हैं । मनुष्य जाति 'कर्म की गहन गति' को चिरकाल से जानती है और उसके उन कारणों को जानने के लिये चिरकाल से प्रयत्न करती रही है । उसके कई हल भी अब तक तत्वदर्शियों ने ढूँढ़ निकाले हैं । पंचाध्यायीकार ने उपरोक्त श्लोक में **'गहना कर्मणोगित:'** पर प्रकाश डालते हुए यह बताया है कि यह वैदिक, दैहिक और भौतिक घटनाएँ, तीन प्रकार के आकस्मिक सुख दुःख संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मो के आधार पर होते हैं । दूध एक नियत समय में एक विशेष प्रक्रिया द्वारा घी बन जाता है इसी प्रकार त्रिविध कर्म भी तीन प्रकार के फलों को उत्पन्न करते हैं । वे आकस्मिक घटनाएँ किस तरह उत्पन्न करते हैं इसका पूरा, विस्तृत, एवं वैज्ञानिक विवेचन अगले पृष्ठों पर करेंगे ।

तीन दुःख और उनका कारण

पहले बताया जा चुका है कि आकस्मिक सुख-दुख हर व्यक्ति के जीवन में आया करते हैं । इनसे सुर, मुनि, देव:, दानव कोई नहीं बचता भगवान राम तक इस कर्म गति से छूट न सके ।' सूरदास ने ठीक कहा है–

कर्मगति टारी नाहिं टरै ।
गुरु वशिष्ठ पण्डित बड़ ज्ञानी,
रचि पचि लगन धरै ।।
पिता मरण और हरण सिया को
बन में विपति करै ।।

वशिष्ठ जैसे गुरु के होते हुए भी राम कर्म गति को टाल न सके । उन्हें भी पिता का मरण, सिया का हरण एवं वन की विपत्तियाँ सहन करनी पड़ी वह विपत्तियाँ कहीं से अकस्मात् टूट पड़ती हैं, या ईश्वर नाराज होकर दुःख दंड देता है, ऐसा समझना ठीक न होगा । पंञ्चाध्यायी' का निश्चित मत है कि सब प्रकार के दुःख अपने ही बुलाने से आते हैं । रामायण का मत भी इस सम्बन्ध में यही है–

काहु न कोउ दुःख सुखकर दाता ।
निज-निज कर्म भोग सब भ्राता ।।

दूसरा कोई भी प्राणी या पदार्थ किसी को दुःख देने की शक्ति नहीं रखता । सब लोग अपने ही कर्मों का फल भोगते हैं और उसी भोग से रोते-चिल्लाते रहते हैं । जीव की पीछे से ऐसी कठोर व्यवस्था बँधी हुई है जो कर्मो का फल तैयार करती रहती है । मछली पानी में तैरती है उसकी पूँछ पानी को काटती हुई पीछे-पीछे एक रेखा सी बनाती चलती है । साँप रेंगता जाता है और रेत पर उसकी लकीर बनती जाती है, जो काम हम करते हैं उनके संस्कार बनते जाते हैं । बुरे कर्मों के संस्कार, स्वयं बोई हुई कटीली झाड़ी की तरह अपने लिए ही दुःखदायी बन जाते हैं ।

अब हम तीन प्रकार के कर्म, उनके तीन प्रकार के प्रभाव एवं तीन तरह के फल की चर्चा आरम्भ करते हैं । सुख तो मनुष्य की स्वाभाविक स्थिति है । सुकर्म करना स्वभाव है इसलिए सुख प्राप्त होना भी स्वाभाविक ही है । कष्ट-दुःख में होता है । दुःख से ही लोग डरते घबराते हैं उसी से छुटकारा पाना चाहते हैं । इसलिए दुखों का ही विवेचन यहाँ होना उचित है । आरोग्यवर्द्धक शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र दो अलग-अलग शास्त्र हैं । इसी प्रकार सुख-दुःख के भी दो अलग विज्ञान हैं । सुख वृद्धि के लिए धर्माचारण करना चाहिए जैसे कि स्वास्थ्य बृद्धि के लिए पौष्टिक पदार्थों का सेवन किया जाता है । दुःख निवृत्ति के लिए, रोग का निवारण करने के लिए उसका निदान और चिकित्सा जानने की आवश्यकता है । कर्म की गहन गति की जानकारी प्राप्ति करने से दुःखों का मर्म समझ में आ जाता है । दुःखों के कारण को छोड़ देने से सहज ही दुखों की निवृत्ति हो जाती है । आइए, अब हम दुःखों का स्वरूप आपके सामने रखने की प्रयत्न करें ।

दुःख तीन प्रकार के होते हैं (१) दैविक (२) दैहिक (३) भौतिक। दैविक दुःख वे कहे जाते हैं जो मन को होते हैं जैसे– चिन्ता, आशंका, क्रोध, अपमान, शत्रुता, विछोह, भय, शोक आदि। दैहिक दुःख होते हैं जो शरीर को होते हैं जैसे- रोग, चोट, आघात, विष आदि के प्रभाव से होने वाले कष्ट। भौतिक दुःख वे हैं जो अचानक अदृश्य प्रकार से आते हैं जैसे– भूकम्प, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, महामारी, युद्ध आदि। इन्हीं तीन प्रकार के दुःखों की वेदना से मनुष्यों को तड़पता हुआ देखा जाता है। यह तीनों दुख हमारे शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कर्मों के फल हैं। मानसिक पापों के परिणाम से दैविक दुःख आते हैं शारीरिक पापों के फलस्वरूप दैहिक और सामाजिक पापों के कारण भौतिक दुःख उत्पन्न होते हैं।

दैविक दुःख– मानसिक कष्ट, उत्पन्न होने का कारण वे मानसिक पाप हैं जो स्वेच्छा पूर्वक तीव्र भावनाओं से प्रेरित होकर किये जाते हैं जैसे ईर्षा, कृतघ्नता, छल, दम्भ, घमण्ड, क्रूरता, स्वार्थपरता आदि इन कुविचारों के कारण जो वातावरण मस्तिष्क में घुटता रहता है उससे अन्तःचेतना पर उसी प्रकार का प्रभाव पड़ता है जिस प्रकार धुएँ के कारण दीवाल काली पड़ जाती है या तेल से भीगने पर कपड़ा गन्दा हो जाता है। आत्मा स्वभावतः पवित्र है वह अपने ऊपर इन पाप मूलक कुविचारों प्रभावों को जमा हुआ नहीं रहने देना चाहती, वह इस फिक्र में रहती हैं कि किस प्रकार इस गन्दगी को साफ करूँ ? पेट में हानिकारक वस्तुएँ जमा हो जाने पर पेट उसे कै या दस्त के रूप में निकाल बाहर करता है। इसी प्रकार तीव्र इच्छा से, जानवूझ कर किये गये पापों को निकाल बाहर करने के लिए आत्मा आतुर हो उठती है। हम उसे जरा भी जान नहीं पाते किन्तु आत्मा भीतर ही भीतर उसी से भार को हटाने के लिए अत्यन्त व्याकुल होजाती है। बाहरी मन स्थूल-बुद्धि को उस अदृश्य प्रक्रिया का कुछ भी पता नहीं लगता, पर अन्तर्मन चुपके ही चुपके ऐसे अवसर एकत्रित करने में लगा रहता है जिससे वह भार हट जाय। अपमान, असफलता, विछोह, शोक, दुःख आदि प्राप्त हो, ऐसे अवसरों को वह कहीं से एक न एक दिन, किसी प्रकार खींच ही लाता है ताकि उन दुर्भावनाओं का पाप संस्कारों का इन अप्रिय परिस्थितियों में समाधान हो जाय।

शरीर द्वारा किये हुए चोरी, डकैती व्यभिचार, अपहरण हिंसा आदि में मन ही प्रमुख है, हत्या करने में हाथ का कोई स्वार्थ नहीं है, वरन् मन के आवेश की पूर्ति है' इसलिए इस प्रकार के कार्य जिनके करते समय इन्द्रियों को सुख न पहुँचता हो, मानसिक पाप कहलाते हैं ऐसे पापों का फल मानसिक दुःख होता है। स्त्री-पुत्र आदि प्रियजनों की मृत्यु, धननाश, लोक निन्दा, अपमान, पराजय, असफलता, दरिद्रता आदि मानसिक दुःख हैं, उनसे मनुष्य की मानसिक वेदना उखड़ पड़ती है, शोक, सन्ताप उत्पन्न होता है, दुःखी होकर रोता चिल्लाता है, आँसू बहाता है, शिर धुनता है। इससे वैराग्य के भाव उत्पन्न होते हैं और भविष्य में अधर्म न करने एवं धर्म में प्रवृत्त रहने की प्रवृत्ति बढ़ती है। देखा गया है कि मरघट में स्वजनों की चिता रचते हुए ऐसे भाव उत्पन्न होते हैं कि जीवन का सदुपयोग करना चाहिए। धन नाश होने पर मनुष्य भगवान को पुकारता है। पराजित और असफल व्यक्ति का घमण्ड चूर हो जाता है। नशा उतर जाने पर वह होश की बात करता है, मानसिक दुःखों का एक मात्र उद्देश्य मन में जमे हुए ईर्षा कृतघ्नता, स्वार्थपरता, क्रूरता, निर्दयता, छल, दम्भ, घमण्ड की सफाई करना होता है। दुःख इसलिए आते हैं कि आत्मा के ऊपर जमा हुआ प्रारब्ध कर्मों का पाप संस्कार निकल जाय। पीड़ा और वेदना की धारा उन पूर्व कृत प्रारब्ध कर्मों के निकृष्ट संस्कारों को धोने के लिए प्रगट होती है।

दैविक-मानसिक कष्टों का कारण समझ लेने के उपरान्त अब दैहिक-शारीरिक कष्टों का कारण समझना चाहिए जन्म-जात अपूर्णता एवं पैतृक रोगों का कारण पूर्व जन्म में उन अंगों का दुरुपयोग करना है। मरने के बाद सूक्ष्म शरीर रह जाता है। नवीन शरीर की रचना इस सूक्ष्म शरीर द्वारा होती है। इस जन्म में जिस अंग का दुरुपयोग किया जा रहा है, वह अंग सूक्ष्म शरीर में अत्यन्त निर्बल हो जाता है, जैसे कोई व्यक्ति अति मैथुन करता हो तो सूक्ष्म शरीर का वह अंग निर्बल होने लगेगा, फल स्वरूप संभव है कि वह अगले जन्म में नपुंसक हो जाय। यह नपुंसकता केवल कठोर दण्ड नहीं है, वरन् सुधार का एक उत्तम तरीका भी है। कुछ समय तक उस अंग को विश्राम मिलने से आगे के लिए वह सचेत और सूक्ष्म हो जायेगा। शरीर के अन्य अंगों के शारीरिक लाभ के लिए पाप पूर्ण, अमर्यादित, अपव्यय करने पर आगे के जन्म में वे अंग जन्म से ही निर्बल या नष्ट प्रायः होते हैं। शरीर और मन के सम्मिलित पापों के शोधन के लिए जन्म ज्ञात रोग मिलते हैं या बालक अंग-भंग उत्पन्न होते हैं। अंग भंग या निर्बल होने से उस अंग को अधिक काम नहीं करना पड़ता इसलिए सूक्ष्म शरीर का वह अंग विश्राम पाकर अगले जन्म के लिए फिर तरोताजा हो जाता है साथ ही मानसिक दुःख मिलने से वह मन पाप भार भी घुल जाता है।

मानसिक पाप भी जिस शारीरिक पाप के साथ घुला मिला होता है, वह यदि राजदंड, समाज दंड या प्रायश्चित्य द्वारा इस

जन्म से शोधित न हुआ तो अगले जन्म के लिए जाता है। परन्तु यदि पाप केवल शारीरिक है या उसमें मानसिक पाप का मिश्रण अल्प मात्रा में है, तो उसका शोधन शीघ्र ही शारीरिक प्रकृति द्वारा हो जाता है, जैसे- नशा पिया-उन्माद आया, विष खाया मृत्यु हुई। आहार-विहार में गड़बड़ी की बीमार पड़े। इस तरह शरीर अपने साधारण दोषों की सफाई जल्दी-जल्दी कर लेता है और इस जन्म का भुगतान इसी जन्म में कर जाता है। परन्तु गम्भीर शारीरिक दुर्गुण, जिनमें मानसिक जुड़ाब भी होता है, अगले जन्म में फल प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म शरीर के साथ जाते हैं।

भौतिक कष्टों का कारण हमारे सामाजिक पाप हैं। सम्पूर्ण मनुष्य जाति एक ही सूत्र में बँधी हुई है। विश्व व्यापी जीव तत्व एक है। आत्मा सर्वव्यापी है। जैसे- एक स्थान पर यज्ञ करने से अन्य स्थानों का भी वायुमण्डल शुद्ध होता है और एक स्थान पर दुर्गन्ध फैलने से उसका प्रभाव अन्य स्थानों पर भी पड़ता है। इसी प्रकार एक मनुष्य के कुत्सित कर्मों के लिए दूसरा भी जुम्मेदार है। एक दुष्ट व्यक्ति अपने माता-पिता को लज्जित करता है, अपने घर पर कुटुम्ब को शर्मिन्दा करता है। वे इसलिए शर्मिन्दा होते हैं कि उस व्यक्ति के कामों से उनका कर्त्तव्य भी बँधा हुआ है। अपने पुत्र, कुटुम्बी, या घर वाले को सुशिक्षित, सदाचारी न बनाकर दुष्ट क्यों हो जाने दिया ? इसकी अध्यात्मिक जिम्मेदारी कुटुम्बियों की भी है। कानून द्वारा अपराधी को ही सजा मिलेगी, परन्तु कुटुम्बियों की आत्मा स्वयमेवं शर्मिन्दा होंगी, क्योंकि उनकी गुप्त शक्ति यह स्वीकार करती है कि हम भी किसी हद तक इस मामले में अपराधी हैं। सारा समाज एक सूत्र में बँधा होने के कारण आपस में एक-दूसरे की हीनता के लिए जिम्मेदार हैं। पड़ोसी का घर जलता रहे और दूसरा पड़ोसी खड़ा-खड़ा तमाशा देखे, तो कुछ देर बाद उसका भी घर जल सकता है। मुहल्ले के एक घर में हैजा फैले और दूसरे लोग उसे रोकने की चिंता न करें, उन्हें भी हैजा का शिकार होना पड़ेगा। कोई व्यक्ति किसी की चोरी, बलात्कार, हत्या, लूट आदि होती हुई देखता रहे और सामर्थ होते हुऐ भी उसे रोकने का प्रयत्न न करे, तो समाज उससे घृणा करेगा एवं कानून के अनुसार वह भी दंडनीय समझा जायेगा।

ईश्वरीय नियम है कि हर मनुष्य स्वयं सदाचारी जीवन बिताये और दूसरों को अनीति पर न चलने देने के लिए भरसक प्रयत्न करे। यदि कोई देश या जाति अपने तुच्छ स्वार्थों में संलग्न होकर दूसरों के कुकर्मों को रोकने और सदाचार बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करती तो उसे भी दूसरों का पाप लगता है। उसी स्वार्थपरता के सामूहिक पाप से सामूहिक दण्ड मिलता है। भूकम्प, अति वृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी, महायुद्ध के कारण ऐसे ही सामूहिक दुष्कर्म होते हैं। जिनमें स्वार्थपरता को प्रधानता दी जाती है और परोपकारी की उपेक्षा की जाती है।

देखा जाता है कि अन्याय करने वाले अमीरों की अपेक्षा मूक पशु की तरह जीवन बिताने वाले भोले-भाले लोगों पर दैवी प्रकोप अधिक होते हैं। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, का कष्ट गरीब किसानों को ही अधिक होते सहन करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि अन्याय करने वाले से अन्याय सहने वाला अधिक बड़ा पापी होता है। कहते हैं कि "बुजदिल जालिम का बाप होता है।" कायरता में वह गुण है कि वह अपने ऊपर जुल्म करने के लिए किसी न किसी को न्योत ही बुलाता है। भेड़ की ऊन एक गड़रिया छोड़ देगा तो दूसरा कोई न कोई उसे काट लेगा। कायरता, कमजोरी, अविद्या स्वयं बड़े भारी पातक हैं। ऐसे पातकियों पर यदि भौतिक कोप अधिक हो तो कुछ आश्चर्य नहीं? सम्भव कि उनकी कायरता को दूर करने एवं स्वाभाविक सतेजता जगा कर निष्पाप बना देने के लिऐ अदृश्य सत्ता द्वारा वह घटनायें उपस्थित होती हों। यह भौतिक दुर्घटनायें सृष्टि के दोष नहीं हैं वरन् अपने ही दोष हैं। अग्नि में तप कर सोने की तरह हमें शुद्ध करने के लिए यह कष्ट बार-बार कृपा पूर्वक आया करते हैं और संसार को जोरदार चेतावनियाँ देकर सामाजिक निष्पापता बढ़ाने का आदेश दिया करते हैं।

दैविक, दैहिक, भौतिक, दुःखों का कुछ विवेचन ऊपर की पंक्तियों में किया जा चुका है। अब हम इसी लेखमाला के अन्तर्गत यह बतायेंगे कि किस प्रकार के पाप-पुण्यों का फल कितने-कितने समय में मिलता है ?

कर्मों की तीन श्रेणियाँ

तीनों दुःखों का निरूपण करने से पूर्व कर्म के तीन प्रकारों का जान लेना भी आवश्यक है। (१) संचित (२) प्रारब्ध और (३) क्रियामाण तीन प्रकार के कर्मों का संचय हमारी संस्कार भूमिका में होता है। चित्रगुप्त का परिचय लेख के अन्तर्गत पाठक पढ़ चुके हैं कि मनुष्य की अन्तःचेतना ऐसी निष्पक्ष, निर्मल, न्यायशील और विवेकवान है कि अपने पराये का कुछ भी भेद-भाव न करके सत्यनिष्ठ न्यायाधीश की तरह हर एक भले-बुरे काम विवरण अंकित करती रहती है।

दिन भर के कामों का यदि निरीक्षण किया जाय तो वे तीन श्रेणियों में बाँट देने पड़ेगें। कुछ तो ऐसे होते हैं जो बिना जानकारी

में होते हैं जैसे- बुरे लोगों के मुहल्ले में या सत्संग में रहने से उनका प्रभाव किसी न किसी अंश में गुप्त रूप से अपने ऊपर पड़ जाता है। वह प्रभाव पड़ा तो, परन्तु हमने उसे इच्छापूर्वक स्वीकार नहीं किया इसलिए वह हलका निर्बल एवं कम प्रभाव वाला होकर हमारी भीतरी चेतना के एक कोने में पड़ा रहा ऐसे हीन वीर्य संस्कार बनाने वाले संचित कर्म कहे जाते हैं। जो कार्य विवशता में, दवाये जाने पर, अहसावस्था में, करने तो पड़े पर मनकी आन्तरिक इच्छा यही रही कि यदि विवशता न होती तो इस काम को मैं कदापि न करता। इस तरह लाचारी से जो काम करने पड़े और मन जिनके विरुद्ध विद्रोह करता रहा एवं उस काम को स्वभाव बनाकर अपना नहीं लिया तो उस कार्य का संस्कार भी हल्का अल्पवीर्य और कम प्रभाव वाला होता है। ऐसे काम भी संचित कर्म की ही श्रेणी में आ जाते हैं। इन संचित कर्मों के संस्कार बहुत कमजोर एवं हलके होते हैं इसलिए वे मनोभूमि के किसी अज्ञात कोने में सिमटे हुए हजारों वर्ष तक पड़े रहते हैं यदि इन्हें प्रकट होने का कोई अच्छा अवसर न मिले तो यों ही दबे दबाये पड़े रहते हैं। किन्तु यदि उसी प्रकार के बुरे कर्म कभी जान-बूझकर, स्वेच्छा से, विशेष मनोयोग के साथ, किये गये तो वे सड़े-गले संचित संस्कार भी कुलबुलाने लगते हैं और अच्छे फोड़ के झुण्ड में पड़कर लँगड़े घोड़े भी चलने लगते हैं वैसे ही वे भी कब्र में से निकल कर जीवित हो जाते हैं। जिस प्रकार घुना हुआ बीज भी अच्छी भूमि और अच्छी वर्षा पाकर उग जाता है वैसे ही संचित संस्कार भी अपनी जाति के बलवान कर्मों की सहायता पाकर उग पाते हैं। हिमायत पाकर उनकी हिम्मत दूनी हो जाती है। परन्तु यदि उन संचित संस्कारों को लगातार विपरीत स्वभाव के बलवान कर्म संस्कारों के साथ रहना पड़े तो वे नष्ट भी हो जाते हैं। गर्म जगह में रखा हुआ एक घड़ा पानी गर्मी के प्रभाव से आखिर एक दो महीने, में सूख ही जाता है इसी प्रकार उत्तम कर्मों के संस्कार जमा हो रहे हों तो वे बेचारे बुरे संस्कारों उनकी गर्मी में जलकर नष्ट भी हो जाता हैं । धर्म ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि तीर्थ यात्रा आदि अमुक शुभ धर्म कार्य करने से इतने जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं असल में वह संकेत इन अल्पवीर्य वाले संचित संस्कारों के सम्बन्ध में ही है। भले और बुरे दोनों ही प्रकार के संचित कर्म संस्कार अनुकूल परिस्थिति पाकर फल दायक होते हैं एवं तीव्र प्रतिकूल परिस्थितियों में नष्ट भी हो जाते हैं ।

प्रारब्ध- वे मानसिक कर्म होते हैं जो स्वेच्छा पूर्वक, जान बूझकर, तीव्र भावनाओं से प्रेरित होकर, किये जाते हैं। इन कार्यों को विशेष मनोयोग के साथ किया जाता है इसलिए उनका संस्कार भी बहुत बलवान बनता है। हत्या, खून, डकैती, विश्वासघात, चोरी, व्यभिचार, जैसे प्रचंण्ड क्रूरकर्मों की प्रतिक्रिया अन्तःकरण में बहुत ही तीव्र होती है उस विजायती द्रव्य को बाहर निकाल देने के लिए आध्यात्मिक पवित्रता निरंतर व्यग्र बनी रहती है। और एक न एक दिन उसे निकाल कर बाहर कर ही देती है।

हम बता चुके हैं कि हमारी अन्तः चेतना निष्पक्ष न्यायाधीश की तरह हमारे हर काम को देखती रहती है और उसकी न्यूनता अधिकता के परिणाम के अनुसार दंड की व्यवस्था करती रहती है। चूँकि मानसिक दंड अपने आप, अन्दर ही अन्दर पूरा नहीं हो सकता, इसके लिए दूसरे साधनों की भी आवश्यकता होती है, दंड कार्य को पूरा करने के लिए सूक्ष्म-लोक में से उसी प्रकार का घटना क्रम उपस्थित करने के लिए हमारी अन्तःचेतना एक वातावरण तैयार करती है। इस तैयारी में कभी-कभी बहुत समय भी लग जाता है। जैसे छल-स्वभाव के निवारण के लिए शोक रूपी दंड की आवश्यकता है। अब यह देखा जायेगा कि छल किस दर्जे का है उसकी शुद्धि किस दर्जे के शोक से पूरा हो सकती है। अन्तःचेतना वैसी ही परिस्थितियाँ पैदा करने में भीतर ही भीतर लगी रहेगी। वह शरीर में ऐसे तत्व पैदा करेगी जिससे पुत्र उत्पन्न हो, उस पुत्र शरीर में ऐसी आत्मा का मेल मिलायेगी जिसे उसके कर्मों के अनुसार दस वर्ष ही जीना पर्याप्त हो, दस वर्ष का पुत्र हो जाने पर वही हमारी अन्तःप्रेरणा गुप्त रूप से पुत्र पर पिल पड़ेगी और उसे रोगी करके मार डालेगी एवं शोक का इच्छित अवसर पैदा कर देगी। ऐसे अवसर तैयार करने में केवल अपना ही कार्य अकेला नहीं होता वरन् दूसरे पक्ष का भी कार्य होता है। दोनों ओर की चेतनाएँ अपने-अपने लिये अवसर तलाश करती फिरती हैं। और फिर जब उन्हें इच्छित जोड़ मिल जाता है तो एक घटना की ठीक भूमिका बँध जाती है। ऐसे कार्यों में कई बार एक दो तीन या कई जन्मों का समय लग जाता है। लड़की के लिए वर और वर के लिये लड़की की तलाश बहुत दिनों तक जारी रहती है, सैकड़ों प्रसंग उठाये जाते हैं पर कुछ न कुछ कमी होने से वे तय नहीं होते जब दोनों पक्ष रजामंद हो जाते हैं तो विवाह बहुत जल्दी हो जाता है। इसी प्रकार पिता को पुत्र शोक और पुत्र को अल्पायु का संयोग, जब दोनों ही विधान ठीक बैठ जाते हैं तो वे एकत्रित हो जाते हैं। अफ्रीका में वेन्सस नामक एक दस फुट ऊँचा झाड़ होता है इसकी डालियों में से सूत जैसे अँकुर फूटते हैं। यह अंकुर बढ़ते हैं और इधर-उधर हवा में झूलते रहते हैं। दूसरा कोई अँकुर जब उससे छू जाता है तो वे दोनों आपस में गुथ जाते हैं और रस्सी की तरह बल डाल कर एक हो जाते हैं। जब तक दूसरे अंकुर से

भेंट न हो तब तक सूत बढ़ते ही रहते हैं और कभी न कभी वे किसी से न किसी से मिल ही जाते हैं। कोई सूत तो चार छः अंगुल दूरी पर ही जाकर किसी से मिलकर लिपट जाता है कोई चार-चार फुट लम्बा होने के बाद सफल होता है यही हालत कर्म फलों की है। शारीरिक दंड एकांगी है विष खाते ही तुरन्त मृत्यु हो जाती है। परन्तु मानसिक दंड में अपवाद है। जैसे- क्रूरता से प्रेरित होकर किसी की हत्या की गई वह यदि प्रकट हो गई तो राज्य द्वारा दण्ड मिल जायेगा किन्तु यदि हत्यारे ने अपना कार्य छिपा लिया तो उसका अन्तःकरण तुरन्त ही पाप दण्ड न दे बैठेगा, वरन् उसी दिन से बेन्सस पेड़ की तरह अंकुर फोड़कर इस तलाश में फिरेगा कि हिंसा वृत्ति से घृणा कराने के लिए हिंसा में जो दुःख होता है उसका अनुभव उसे कराऊँ। जब दूसरी ओर का भी कोई ठीक अंकुर मिल जाता है तो दोनों आपस में लिपट कर एक निर्धारित घटना की भूमिका बन जाते हैं। उपरोक्त कारणों से कभी-कभी अचानक सतकर्म करते हुए भी दुःख उपस्थित हो जाता है और कभी-कभी बुरे काम करते हुए भी कोई दुःख नहीं मिलता, इसका कारण उपयुक्त अवसर तैयार होने में विलम्ब लगना ही होता है।

कोई-कोई आत्म दर्शी योगी यह बता देते हैं कि भविष्य में तुम्हारे लिए यह होने वाला है, और सचमुच वैसा हो भी जाता है ऐसे अवसरों पर ऐसा संदेह न करना चाहिए कि मनुष्य पर तंत्र है, प्रारब्ध में जो लिखा है वही होता है। आत्मदर्शी महानुभाव का भविष्य कथन मनुष्य परतन्त्रता के कारण नहीं है। वरन् इसलिए है कि उन्होंने देख लिया कि इसका प्रारब्ध कर्म अब अपना ताना-बाना बुन चुका है उसका छूटना मुश्किल है। अपनी सूक्ष्म दृष्टि से वे अदृश्य परिस्थिति को देखकर उसे प्रकट कर देते हैं। मिसल को देखकर, हाकिम के स्वभाव को जानकर, पेशकार बंता देता है कि क्या फैसला सुनाया जाने वाला है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि मुद्दई, मुद्दा अलाह, गवाही, सबूत, वकील का कोई महत्व नहीं है। इसके प्रारब्ध में क्या लिखा है, यह बता देने का अर्थ यह है कि इसने एक समय ऐसे काम किये थे जिसका फल अब यह होने जा रहा है, तकदीर और तदवीर दो बातें नहीं हैं। वरन् एक ही वस्तु के दो नाम हैं। कर्म का परिपाक लेकर जब वह फल बनता है तकदीर कहा जाता है। कच्चा आम तदवीर है और पक्का आम तकदीर। नया कर्म तदवीर है जो आगे तकदीर बन जायेगा। इसी प्रकार पुरानी तदवीर आज फल देते समय तकदीर कही जा रही है। कर्म बछिया है और प्रारब्ध बूढ़ी गाय। समय के अन्तर से एक वस्तु के दो नाम पड़ गये हैं।

पाठक समझ गये होंगे कि मानसिक पापों का फल किस प्रकार मिलता है और उसमें विलम्ब हो जाने का क्या कारण है? दैनिक आपत्तियाँ क्रमपूर्वक, व्यवस्था के साथ आती हैं पर लोग उन्हें दैव का प्रकोप, ईश्वर इच्छा, संसार दुःख मय है, आदि शब्द, के द्वारा मन का संतोष करते हैं। यथार्थ में ईश्वर किसी के लिए भी दुःख शोक उपस्थित नहीं करता, न उसकी किसी को कष्ट में डालने की इच्छा है और न यह संसार ही दुःखमय है। मकड़ी अपने आप अपना जाल बुनती है और उसमें खुद ही फँसती, उलझती, लटकती रहती है। मन को अशुभ, अधर्मी, पापी बनाकर अपने लिए दुःख द्वन्द्वों के कांटे खुद ही बोते हैं और जब वे चुभते हैं तो रोते चिल्लाते हैं तथा दूसरों को दोष देते हैं। यहाँ एक बात और भी स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि प्रारब्ध फल आकस्मिक, तरीके से मिलेगा जैसे रोग से मृत्यु, मकान गिर पड़ना, धन खोजना, गिर पड़ने से चोट लगना, अंग-भंग हो जाना आदि। दूसरे व्यक्तियों द्वारा जानबूझ कर ऐसे कर्म नहीं किये जाते क्यों कि उसमें दो बुराइयाँ हैं एक तो अपकार करने वाले व्यक्ति के लिए क्षोभ उत्पन्न होने से वे दुर्गण और बढ़ेगें जिससे मन की उद्विग्नता और अधिक बढ़ जायेगी दूसरे अपकार करने वाले व्यक्ति को उसी चक्र में फँसना पड़ेगा। जान-बूझ कर व्यक्तियों द्वारा जो कर्म किये जा रहे हैं वे नवीन कर्म हैं और अनायास अकस्मिक ढंग से कष्ट आ पड़ते हैं वे प्रारब्ध के भोग हैं।

क्रियमाण कर्म शारीरिक हैं जिनका फल प्रायः साथ का साथ ही मिलता रहता है। नशा पिया कि उन्माद आया, विष खाया कि मृत्यु हुई। शरीर जड़ तत्वों का बना हुआ है। भौतिक तत्व स्थूलता प्रधान होते हैं। उनमें तुरन्त ही बदला मिलता है। अग्नि के छूते ही हाथ जल जाता है। नियम विरुद्ध आहार-विहार करने पर रोगों की पीड़ा का निर्बलता का अविलम्ब आक्रमण हो जाता है और उसकी शुद्धि भी शीघ्र हो जाती है। मजदूर परिश्रम करता है बदले में उसे पैसे मिल जाते हैं। जिन शारीरिक कर्मों के पीछे कोई मानसिक गुत्थी नहीं होती केवल शरीर द्वारा शरीर के लिए ही किये जाते हैं वे क्रियमाण कहलाते हैं। पाठक समझ गये होंगे कि संचित कर्मों का फल मिलना संदिग्ध हैं यदि अवसर मिलता है तो वे फलवान होते है नहीं तो विरोधी परिस्थितियों से टकरा कर नष्ट हो जाते हैं। प्रारब्ध कर्मों का फल मिलना निश्चित है परन्तु उसके अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त होने में कुछ समय लग जाता है। यह समय कितने दिन का होता है इस सम्बन्ध में कुछ नियत मर्यादा नहीं है, वह आज का आज भी

हो सकता है और कुछ जन्मों के अन्तर से भी हो सकता है। किन्तु प्रारब्ध फल होते वही हैं जो अचानक घटित हों और जिसमें मनुष्य का कुछ वश न चले। पुरुषार्थ की अवेहलना से जो असफलता मिलती है उसे कदापि प्रारब्ध फल नहीं कहा जा सकता। क्रियमाण तो प्रत्यक्ष हैं ही उनके बारे में ऊपर बता दिया गया है कि निश्चित फल वाले शारीरिक कर्म क्रियमाण हुआ करते हैं। इनका फल मिलने में अधिक समय नहीं लगता। इस प्रकार तीन प्रकार के कर्म और उसके फल मिलने की मर्यादा के सम्बन्ध में ऊपर कुछ प्रकाश डाल दिया गया है।

कष्टों का स्वरूप अप्रिय है, उनका तत्कालिक अनुभव कड़वा होता है अन्ततः के जीव के लिए कल्याणकारी और आनन्द दायक ही सिद्ध होते हैं। उनसे दुर्गुणों के शोधन और सद्गुणों की वृद्धि में असाधारण सहायता मिलती है। आनन्द स्वरूप, आत्म प्रकाशमय जीवन और सुखमय संसार में कष्टों का थोड़ा स्वाद परिवर्तन इसलिए लगाया गया है कि प्रगति में बाधा न पड़ने पावे। घड़ी में चाबी भर देने से उसकी चाल फिर ठीक हो जाती है, हारमोनियम में हवा धोंकते रहने से उसके स्वर ठीक तरह बजते हैं, पैडिल चलाने से साइकिल ठीक तरह घूमती है, अग्नि की गर्मी से सूखकर भोजन पक जाते हैं। थोड़ा सा कष्ट भी जीवन की सुख वृद्धि के लिए आवश्यक है। संसार में जो जो कष्ट हैं वह इतना ही है और ऐसा ही है। किन्तु स्मरण रखिये जितना भी थोड़ा बहुत दुःख है वह हमारे अन्याय का, अधर्म का, अनर्थ का फल है। आत्मा दुःख रूप नहीं है, जीवन दुःख मय नहीं है और न इस संसार में ही दुःख है।

आप दुःखों से डरिये मत। घबराइये मत, काँपिये मत, उन्हें देख कर चिन्तित या व्याकुल मत होइए, वरन् उन्हें सहन करने को तैयार रहिए। कटुभाषी किन्तु सच्चे सहृदय मित्र की तरह उससे भुज पसार कर मिलिए। वह कटु शब्द बोलता है, अप्रिय समालोचना करता है, तो भी जब जाता है तो बहुत-सा माल खजाना उपहार स्वरूप दे जाता है। बहादुर सिपाही की तरह सीना खोल कर खड़े हो जाइये और कहिए कि 'ऐ आने वाले दुखो! आओ!! ऐ मेरे बालको चले आओ!! मैंने ही तुम्हें उत्पन्न किया है मैं ही तुम्हें अपनी छाती से लगाऊँगा । दुराचारिणी वैश्या की तरह तुम्हें जार पुत्र समझ कर छिपाना या भगाना नहीं चाहता वरन् सती साध्वी के धर्म पुत्र की तरह तुम मेरे अंचल में सहर्ष क्रीड़ा करो मैं कायर नहीं हूँ। जो तुम्हें देखकर रोऊँ, मैं नपुंसक नहीं हूँ जो तुम्हारा भार उठाने से गिड़गिड़ाऊँ, मैं मिथ्या चारी नहीं हूँ जो अपने किये हुए कर्म का फल भोगने से मुँह छिपाता फिरूँ। मैं सत्य हूँ, शिव हूँ, सुन्दर हूँ, आओ मेरे अज्ञान के कुरूप मानस पुत्रो ! चले आओ ! मेरी कुटी में तुम्हारा लिए भी स्थान है। मैं शूर वीर हूँ, इसलिए हे कष्टो ! तुम्हें स्वीकार करने से मुँह नहीं छिपाता और तुमसे बचने के लिए किसी की सहायता चाहता हूँ। तुम मेरे साहस की परीक्षा लेने आये हो, मैं तैयार हूँ, देखो गिड़गिड़ाता नहीं हूँ, साहस पूर्वक तुम्हें स्वीकार करने के लिए छाती खोले खड़ा हूँ।"

खबरदार ! ऐसा मत कहना कि यह संसार बुरा है, दुष्ट है, पापी है, दुःख मय है, ईश्वर की पुण्य कृति, जिसके कण-कण में उसने कारीगरी भरदी है कदापि बुरी नहीं हो सकती। सृष्टि पर दोषारोपण करना तो उसके कर्त्ता पर आक्षेप करना होगा। " यह घड़ा बहुत बुरा बना है"। इसका अर्थ है कुम्हार को नालायक बनाना । आपका पिता इतना नालायक नहीं है जितना कि आप दुनिया दुःखमय है' वह शब्द कह कर उसकी प्रतिष्ठा पर लांछन लगाते हैं। ईश्वर की पुण्य भूमि में दुःख का एक अणु भी नहीं है। हमारा अज्ञान ही हमारे लिए दुःख है। आइए अपने अन्दर से समस्त कुविचारों और दुर्गुणों को धोकर अंतः करण को पवित्र करलें, जिससे दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जावे और हम परम पद को प्राप्त कर सकें।

"कर्मफल और उसके परित्याग" सिद्धांत की अपूर्णता

तत्व दर्शन के कुछ सिद्धान्तों की अनुपयुक्त व्याख्या करके उसे इस स्थिति में पहुँचा दिया गया है कि लोग उन्हें प्रगति के मार्ग में बाधक मानने लगे हैं और उन्हें तर्क विहीन तक कहने लगते हैं।

"इच्छाओं का परित्याग" एक ऐसा ही प्रसंग है जिस पर तत्व दर्शन में बहुत जोर दिया गया है और कामनाओं को छोड़ देने में मानसिक शान्ति या मोक्ष मिलने जैसे लाभों का दिग्दर्शन कराया गया है।

इस कथन का वह अर्थ नहीं है जो शब्द गठन के अनुरूप मोटी बुद्धि से लगाया जाता है। कामना त्याग का अर्थ यहाँ केवल इतना है कि भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं को लिप्सा तृष्णाओं को इतना न बढ़ने दिया जाय कि वे आकाश-पाताल चूमने लगें और परिस्थितियों तथा योग्यता के साथ तालमेल न बिठाने दें। ऐसे व्यक्ति दिवा-स्वप्नों को पूरा करने में जब असफल रहते हैं तो

अत्यधिक निराश हो जाते हैं और अपना मनोबल एवं प्रयास ही गँवा बैठते हैं। अथवा अपराधी दुष्प्रवृत्तियों पर उतर आते हैं। अपने में से एक को अत्यधिक वैभववान बनते देखकर लोग उनके पुरुषार्थ की सराहना करने के स्थान पर ईर्ष्या करने लगते हैं। इसके अतिरिक्त भी बढ़ी-चढ़ी सम्पन्नता से सामान्य जनों को विषमता की अनुभूति होती है और वे पुरुषार्थ की नकल न कर सकने पर वैभव प्रदर्शन का पाखण्ड रचते हैं और इसके लिए अनीति उपार्जन पर उतारू हो जाते हैं अथवा आँख में खटकने वाले को ही नीचे गिराने का प्रयत्न करते हैं। महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति निजी स्वार्थ साधना में इतना निमग्न हो जाता है कि उसे परमार्थ प्रयोजनों के लिए कुछ कर सकना तो दूर उस सम्बन्ध में सोचते तक नहीं बन पड़ता। इस प्रकार के संग्रहीत वैभव का स्वयं तो उपभोग कर नहीं सकते। उसका लाभ उत्तराधिकारी उठाते हैं और मुफ्त में मिले बिना परिश्रम से कमाये धन को आँख-मूँदकर खर्च करते हैं। फलतः बदले में उनके गले दुष्प्रवृत्तियाँ बँधती हैं और व्यक्तित्व का विकास रुकता है।

ऐसी-ऐसी अनेकों हेय परिणतियों का ध्यान रहते हुए महत्त्वाकांक्षाओं के परित्याग की बात कही गई है। पर उस कथन के साथ दो बातें जोड़ देने की भूल बन पड़ी है। एक तो यह कहना चाहिए था भौतिक कामनाओं को घटाया जाय और उस बचत को परमार्थ प्रयोजनों में उससे भी अधिक तत्परता के साथ नियोजित किया जाय। पूरी बात इतना स्पष्टीकरण करने के उपरान्त ही बन पड़ती है। अन्यथा कामना त्याग का अर्थ निष्क्रियता, नीरसता, अकर्मण्यता, उदासीनता जैसा ही कुछ बन पड़ता है। लोग उच्चस्तरीय आकांक्षाओं को भी त्याग मान बैठते हैं और मानसिक अपंगता की स्थिति में ले जाकर पटक देते हैं।

इच्छा शक्ति की महत्ता का वर्णन करते-करते मनोविज्ञान थकता नहीं है। वह कहता है कि बिखरी शक्तियों का केन्द्रीकरण करने और प्रतिभा को विकसित करना ही सफलता का मूल मन्त्र है। सफलताएँ उसी आधार पर मिलती हैं। उदासीन मन वाला व्यक्ति तो ज्यों-ज्यों करके अपने दिन ही गुजार सकता है कोई बड़ा काम कर सकने की पृष्ठभूमि तक नहीं बन पाती। ऐसी दशा में तत्वज्ञान द्वारा प्रतिपादित अनासक्ति का तात्पर्य यदि शब्दार्थ मात्र तक समझ बैठा जाय तो वह उपदेश जीवन की गतिशीलता अवरुद्ध कर देने वाला अभिशाप बनकर ही रह जाता है।

इसी कथन का एक पक्ष यह भी है कि फलासक्ति छोड़कर निष्काम कर्म करना चाहिए इसकी विद्वजन कैसी ही मनोरम व्याख्या क्यों न करें, पर वह व्यावहारिकता की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। कोई भी समझदार व्यक्ति किसी काम में हाथ तब डालता है जब उसके आकर्षक प्रतिफल की सम्भावना का अनेकानेक तर्कों, तथ्यों, प्रमाणों, उदाहरणों के सहारे परिणाम के सम्बन्ध में किसी सुनिश्चित प्रतिफल की बात पर विश्वास कर लेता है। इसके बिना कोई अपनी पूँजी, श्रम शक्ति और प्रतिष्ठा को दाँव पर नहीं लगा सकता। यह सामान्य व्यावहारिकता है। इसका परित्याग करना किसी परमहंस के लिए ही सम्भव हो सकता है। अथवा उस श्रमिक के लिए सम्भव है जिसका वेतन पाने के अतिरिक्त नफा नुकसान से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस स्थिति वाले भी यह परख लेते हैं कि वेतन उपयुक्त है या नहीं। वह यथा समय वसूल होता रहेगा। साथ ही यह भी विचार जाता है कि कोई जोखिम भरा काम तो नहीं करना पड़ेगा जिसमें लेने के देने पड़ें। परिणाम सोचे बिना कोई भी व्यक्ति किसी काम में हाथ नहीं डालता। इस सर्वमान्य और सही प्रचलन को झुठलाने में विद्या-व्यसनी लोग कुछ भी कहते रहें पर उनकी मधुर वार्त्तालाप सुनकर भी कोई श्रवण कर्त्ता ऐसा नहीं हो सकता जो उस कथन को अपने जीवन क्रम में सम्मिलित कर सके। बात जब गले उतरने वाली ही नहीं है तो उसे सच्चे मन से अपनाया किसके लिए किस प्रकार सम्भव हो सकता है।

योगी जन भी ऋद्धि-सिद्धि, स्वर्ग-मुक्ति, ईश्वर सान्निध्य, जन्म-मरण से छुटकारा, मान प्रतिष्ठा जैसी अनेक मनोकामनाओं से प्रभावित होकर ही वैराग्य, तप, योग आदि की दिशा में कदम उठाते हैं। सामान्य जनों में किसान, व्यवसायी, कर्मचारी यहाँ तक कि चोर-उचक्के तक पहले लाभ उठाने वाले पक्ष को देखते हैं। भले ही उनके बाद कुछ भी क्यों न परिणाम हाथ लगे न।

'कर्मफल का त्याग' का शब्दार्थ और उसकी मोटी व्याख्या दोनों ही ऐसी हैं जिन्हें असंगत और अव्यावहारिक कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है।

इस कथन का और भी अधिक स्पष्टीकरण आवश्यक है। कहा यह जाना चाहिए कि उद्देश्य और प्रतिफल के सम्बन्ध में विचारपूर्वक धारणा बनाने और कार्यारम्भ करने के साथ-साथ मनुष्य को प्रतिफल के सम्बन्ध में इतना निश्चिन्त नहीं होना चाहिए कि जो चाहा गया है वह यथावत् उपलब्ध होकर ही रहेगा, क्योंकि मनुष्य का एकाकी पुरुषार्थ ही सब कुछ नहीं है। परिस्थितियों की भी उसमें भारी भूमिका रहती है। वे प्रतिकूल चल पड़े तो सोची हुई योजना उलटी भी हो सकती है। किसान खेती करता है पर यह भी हो सकता है कि वर्षा का अभाव, बाढ़, टिड्डी पाला, फसल के रोग, चोरी आदि किसी प्रतिकूलता से पाला पड़े और परिश्रम निष्फल चला जाय। इसी प्रकार व्यवसाय में

मन्दी, प्रतिस्पर्धा, ग्राहकों की कमी, चोरी आदि के कारण उलटा घाटा भुगतना पड़े। ऐसी दशा में एकांगी चिन्तन करने वाले अपना मानसिक सन्तुलन गँवा बैठते हैं और भविष्य के लिए निराश हो बैठते हैं। ऐसी स्थिति में होना यह चाहिए कि बुरी से बुरी परिस्थिति आ धमकने पर भी उसका सामना करने के लिए तैयार रहा जाय।

इस तैयारी में वाहन प्रयास उतने कारगर सिद्ध नहीं होते जितने कि मानसिक पूर्व तैयारी। ऐसी दशा में किसी आकस्मिक झटके की आशंका नहीं रहती। सतर्कता में भी कमी नहीं पड़ती। हानि की जो सम्भावना है उनके सम्बन्ध में समुचित सावधानी वरती जाती है। अन्यथा सफलता या असफलता का एकांगी चिन्तन, करने वाले अथवा उदासीन रहने वाले को अपनी ही बौद्धिक भ्रम ग्रस्तता के कारण ऐसी जोखिम उठानी पड़ सकती है। जिसमें कि वह हर्ष-विषाद की दोनों ही परिस्थितियों में अपना सन्तुलन गँवा बैठे और भविष्य में कुछ करने का साहस ही न करे।

"कर्मफल का त्याग" इसी तत्व दर्शन का समग्र रूप है। जो उससे प्रभावित हों, वे उसका सात्विक अभिप्राय भी समझकर चलें, तभी वह दार्शनिक प्रतिपादन वैसा उपयोगी सिद्ध हो सकेगा, जैसा कि उसके माहात्म्य वर्णन में बताया जाता है।

कर्मों का फल ईश्वर केअर्पण कीजिए

कर्मों और कर्मफलों को ईश्वरार्पण कर देने के आदेश में बहुत बड़ा रहस्य एवं मन्तव्य छिपा हुआ है। जिन-जिन धर्म प्रवर्तकों ने इस रहस्य को समझ लिया है, उन्होंने अपने अनुग्रह पात्रों को वैसा करने का आदेश दिया है।

कर्मों एवं कर्म-फलों को ईश्वरार्पण कर देने में छिपे रहस्य का पता लगाने से अनेक मोटी बातें सामने आती हैं। संसार में जो कुछ क्रिया-कलाप दृष्टिगोचर होता है, उसका मूल प्रेरणा-स्रोत ईश्वर ही है। या यों कहना चाहिए कि यह सब कुछ ईश्वर ही करता है। प्रत्यक्ष में अधिकारियों द्वारा किये हुए सारे कार्य परोक्ष में प्रमुख राज सत्ता द्वारा ही किया हुआ माना जायेगा। मनुष्य ईश्वर का प्रतिनिधि कर्मचारी है। स्वतन्त्र अथवा मूल कार्य-कर्ता नहीं। वह जो कुछ करता है, ईश्वर की प्रेरणा से 'उसी की शक्ति द्वारा' उसी के हेतु करता है। यही कारण है कि जब-जब वह उसके निर्देश के विरुद्ध स्वेच्छाचारिता करता है, तब-तब अपदस्थ होकर दण्ड का भागी बनता है। वह अपनी स्वेच्छाचारिता के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकता।

जिस प्रकार मनुष्य स्वेच्छाचारिता के रूप में परम प्रभु से विद्रोह करता है, उसी प्रकार कर्मों के स्वामी, संचालक एवं स्रोत परमात्मा को न मान कर अपने को मानना भी उसके प्रति चोरी करना है। जो कर्मचारी अपने स्वामी के आदेशों का ठीक-ठीक पालन करता हुआ कर्म करता है वह उसके फलाफल का उत्तरदायी नहीं होता। उसके कर्मों का सारा परिणाम स्वयं स्वामी सम्भालता है और कर्मचारी निर्द्वन्द्व तथा निर्भीक अवस्था में यथावत् स्थित रहता है। न उसे चिन्ता करने की आवश्यकता रहती है औन न व्यग्र होने की।

समझने के लिए यदि यह भी मान लिया जाये कि मनुष्य स्वयं कर्म करता है और उसके फल का अधिकारी भी वह स्वयं ही है, तब भी अपनी यह पूँजी यदि वह सर्व-समर्थ परमात्मा को सौंप दे तो स्वर्ग-नरक, सुख-दु:ख, शोक-सन्ताप, अच्छाई-बुराई आदि द्वन्द्वों से उसी प्रकार सुरक्षित हो जाये जैसे कोई धनाढ्य अपना धन रिजर्व बैंक में जमा करके चोर-डाकुओं, ठगों, उचक्कों और चाटुकारों, शोषकों से छुट्टी पा लेता है। अस्तु, अपने प्रत्येक कर्म को, उसके फल को उसी की सम्पत्ति मान कर उसी प्रकार उसे समर्पित कर देने में ईमानदारी और कल्याण है, जिस प्रकार कोई सेनापति किसी भूखण्ड को जीत कर सम्राट को समर्पित कर देता है।

जिन कर्मों और कर्म-फलों को अपने ऊपर लादे रहने से कोई लाभ नहीं उलटी हानि ही है, उन्हें अपने पास रखे रहना बुद्धिमानी नहीं। फिर एक कर्म करके उसका फल सिर रख लेने से दूसरा कर्म करते समय वह क्षिप्रता न रह सकेगी जो निर्भर होकर काम करने में। इस प्रकार यदि एक के बाद दूसरे कर्म का भार अपने सिर पर लादते चले जायेंगे तो शीघ्र ही बहुत बड़े बोझ से दब कर सारी स्फूर्ति तथा क्षमता का अन्त कर लेंगे। प्रतिदिन के असंख्यों कर्मों का बोझ लेकर कोई कितनी दूर तक सुविधापूर्वक जीवन यात्रा कर सकता है ? जीवन-रण में जो जितना अधिक स्फूर्तिवान् और निर्द्वन्द्व होगा वह उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त करेगा।

यह स्वत: सिद्ध है कि जो कर्म को अपना मानेगा वह उसके फल का भी अधिकारी बनेगा और तदनुसार ही फल की मिठास तथा कड़वाहट को भी चखना पड़ेगा। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने प्रत्येक कर्म का फल मधुर से मधुर चाहता है, किन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं कि उसके सारे कर्म-फल मीठे ही हों। ऐसी दशा में इच्छा के विरुद्ध तिक्त-फल पाने पर वह दु:खी होगा, निराश होगा और रोयेगा। तब क्यों न इस दु:ख की कारणभूत भूमिका कर्मों की फलासक्ति से किनारा कर लिया जाये।

इन मोटे कारणों के अतिरिक्त कर्म-फलों की आसक्ति त्याग करने के आदेश के सूक्ष्म कारण और भी महत्त्वपूर्ण हैं। मनुष्य

जीवन कोई साधारण उपलब्धि नहीं, इसके पाने का हेतु असंख्यों जन्म का पुण्य ही है। यह न तो यों ही अकस्मात् मिल गया है और न यों ही साधारण रूप में आगे मिल सकेगा। मनुष्य जीवन एक अमूल्य अवसर है। यह बार-बार नहीं आता। मनुष्य जीवन एक ऐसा अवसर है, जिसका सदुपयोग करके कोई भी सच्चिदानन्द परमात्मा को पा सकता है। तुच्छ शारीरिक भोगों की तुलना में जो सर्वसुख रूप परमात्मा के साक्षात्कार और परमपद मोक्ष की उपेक्षा करता है वह उस मनुष्य की तरह ही गँवार और अभागा है, जो चिन्तामणि को गुंजा फल के लाभ में त्याग देता है।

यह परमात्मा का कितना बड़ा अनुग्रह है कि उसने हमें घोड़ा, गधा, बैल, बकरी आदि न बना कर मनुष्य बनाया है। अब यदि हम इस मनुष्य जीवन को घोड़ों और गधों जैसा बना लेते हैं तो न केवल अपनी हानि ही करते हैं, बल्कि उस दाता को भी लज्जित करते हैं। मनुष्य जीवन देने से बड़ा कोई दूसरा अनुग्रह परमात्मा के पास नहीं है। मनुष्य जीवन देकर मानो उसने अपने सारे वरदान, सारी कृपा और सारी करुणा ही हम पर उँढ़ेल दी है।

कर्म-फल की आसक्ति में एक बहुत बड़ा दोष यह है कि फलाकांक्षी का सारा ध्यान फल की ओर ही लगा रहता है, जिससे वह निपुणतापूर्वक कर्म नहीं कर पाता और ऐसी दशा में प्रतिकूल फल की तनिक भी सम्भवना होने पर काम करना छोड़ देता है। बहुत बार यह भी होता है कि प्रतिकूल फल की आशंका से कोई काम प्रारम्भ ही नहीं करता। फल लोभी इसी ऊहापोह में पड़ा रहता है कि न जाने ऐसा करने में 'सफलता मिलेगी अथवा असफलता' और यदि वह किसी प्रकार से कुछ करने की हिम्मत भी करता है तो हर समय सफलता के लोभ में असफलता की त्रिन्ता करता रहता है, जिससे असफलता पूर्वक परिस्थितियों को ही अधिक बल मिलता रहता है। सफलता की अत्यधिक कामना असफलता को ही निमन्त्रित करती है।

कर्म को अपना किया हुआ मानने से उसकी असफलता में तो दुःख होता ही है, सफलता में भी मनुष्य अभिमान से अभिभूत होकर अपनी हानि कर लेता है। एक कर्म की सफलता का अभिमान दूसरे कर्म में अदक्षता उत्पन्न कर देता है। सफलताभिमानी की इच्छा रहा करती है कि लोग उसकी योग्यता तथा समर्थता की प्रशंसा करें, उसका आदर तथा सम्मान करें। किसी भी कारण से उत्पन्न हुआ अभिमान मनुष्य को पतन के गर्त में गिराये बिना नहीं रहता।

मनुष्य में एक सीमित शक्ति रहती है। किन्तु जब वह अपनी शक्ति विश्व के निर्माता या नियामक में समाहित कर देता है, तो वह अनन्त शक्तिवान् हो जाता है। सिन्धु में बिन्दु की तरह मिल कर पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। कर्तापन का अभिमान करने वाला, विराट् विश्व चेतना से अलग होकर एक संकुचित सीमा में घिर कर बड़ा ही दीन-हीन बन जाता है। कर्माभिमानी जहाँ छोटे-छोटे काम करने में कठिनाई अनुभव करता है और पग-पग पर सफलता-असफलता से प्रभावित होता है, सुख-दुःख के वशीभूत होता रहता है, वहाँ स्वयं को सम्पूर्ण रूप से परमात्मा को अर्पण कर देने वाला बड़े से बड़े काम को साधारण रूप से कर लेता है।

कोई छोटा काम भी जब ईश्वरीय कार्य समझ कर किया जाता है तो भी वह महान् बन जाता है। किसी कार्य को ईश्वर का कार्य समझ कर उसमें उपासना का भाव रहता है, जिससे मनुष्य अपने पूर्ण पवित्र तन-मन से उसे करता है और ऐसी दशा में कार्य में सफलता मिलना अनिवार्य है। परमात्मा के प्रति किया हुआ छोटा-सा नीराजन भी जिस प्रकार परम पवित्र तथा महान् समझा जाता है, उसी प्रकार प्रभु को समर्पित किया हुआ मनुष्य का साधारण कार्य भी असाधारण माना जाता है। एक गरीब द्वारा की हुई छोटी-सी आरती के प्रति क्या गरीब, क्या अमीर सभी नत मस्तक होते हैं, पूर्ण पवित्र समझते हैं। उसी प्रकार ईश्वरीय कार्य समझ कर किया हुआ लघु से लघु कार्य भी लोगों की श्रद्धा-भक्ति का कारण बनता है।

इस चिर-दुर्लभ मानव-जीवन को पाकर जो छोटे-छोटे कर्म-फलों के लिए लालायित रहता है, वह परमात्मा के साक्षात्कार जैसे परम लाभ से वंचित रह जाता है। प्रत्येक कर्म को परमात्मा का समझ कर करने और उसके फल को भी उसका समझ लेने में मनुष्य का अपना कुछ बिगड़ता नहीं, तब न जाने वह क्यों कर्माभिमानी बन कर अनमोल मानव-जीवन का दुरुपयोग किया करता है ?

कर्म-फल और उसकी सुनिश्चतता

समाज में अपने ऊपर सर्वत्र बरसने वाली घृणा एक भारी सजा है। भोजन, वस्त्र, ऐश, आराम, जमीन, जायदाद, भोग-विलास छोटे दर्जे की चीजें हैं। समाज का सम्मान, इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और आनन्ददायक है। व्यक्ति गरीब रहकर यदि अपने चरित्र की रक्षा करता हुआ श्रद्धा और सम्मान का अनुकरणीय आदर्श जीवन व्यतीत करे तो उसे अपेक्षाकृत अधिक आनन्द मिलेगा। जिसके ऊपर सर्वत्र घृणा बरसती है, जिसे गुण्डा, उद्दण्ड, पापी और कुकर्मी माना जाता है वह कितनी ही कमाई कर ले, कितना ऐशो-आराम कर ले, एक निकृष्ट पतित

और क्षुद्र व्यक्ति की तरह सदा नीची आँखें ही किये रहेगा। उसके लिए किसी स्वजन-परिजन की आँखों में सच्ची श्रद्धा और सच्ची सहानुभूति की एक बूँद भी न मिलेगी। ऐसा अतृप्त और असफल जीवन लेकर भी अनीतिमान व्यक्ति यदि अपने को सफल और बुद्धिमान मानें तो यह उनकी नासमझी ही कही जायेगी।

सब से बड़ा दण्ड आत्म-प्रताड़ना का है। अनीति के मार्ग पर चलने वाले को उसकी अन्तरात्मा निरन्तर धिक्कारती रहती है। मानव जीवन सत्कर्मों द्वारा स्वयं शान्ति पाने और दूसरों को सुख देने के लिए मिला है। इसी में उसकी सफलता भी है। पर यदि उसके द्वारा दूसरों का अहित होता है और अपने को आत्म-प्रताड़ना की अशान्ति भोगनी पड़ती है तो यही कहना होगा कि नर तन प्राप्त होने का एक अमूल्य अवसर व्यर्थ ही हाथ से चला गया।

संसार का इतिहास साक्षी है कि सन्मार्ग को छोड़कर जिसने कुमार्ग को अपनाया है, नीति को परित्याग कर अनीति को पसन्द किया है वह सदा क्षुद्र, पतित और घृणित ही रहा है। उसके द्वारा इस संसार में शोक, सन्ताप, क्लेश और द्वेष ही बढ़ा है। शूल-हूलते रहने वाले काँटे तो यहाँ पहले से ही बहुत थे। अपना जीवन भी यदि उन्हीं पतितों की संख्या बढ़ाने वाला सिद्ध हुआ तो इसमें क्या भलाई हुई क्या समझदारी ? तृष्णा और वासना की क्षणिक पूर्ति करके यदि आत्मप्रताड़ना का, नारकीय यन्त्रणा का, लोकमत की लानत का अभिशाप पाया तो इसमें क्या अच्छाई समझी गई।

अनीति का मार्ग असफलता की कँटीली झाड़ियों में फँसा कर हमारे जीवनोद्देश्य को ही नष्ट कर देता है। हम पगडंडियों पर न चलें। राजमार्ग को ही अपनावें। देर में सही, थोड़ी सही, पर जो सफलता मिलेगी वह स्थायी भी होगी और शान्तिदायक भी। पाप का प्रलोभन आरम्भ में ही मधुर लगता है पर अन्त तो उसका हलाहल की भाँति कटु है। साँप और बिच्छू दूर से देखने में तो सुन्दर लगते हैं पर उनका दंशन प्राण घातक वेदना ही प्रदान करता है। पाप भी लगभग ऐसा ही है वह भले ही सुन्दर दीखे, लाभदायक प्रतीत हो, पर अन्ततः वह अनर्थ ही सिद्ध होगा। जीवन जीने की कला का एक महत्त्वपूर्ण आधार यह है कि हम पाप के प्रलोभनों से बचें और सन्मार्ग के राजपथ का कभी परित्याग न करें।

जीवन एक वन है साधारण नहीं सघन, सुरम्य नहीं, कँटीली झाड़ियों से भरा हुआ भी। इसे ठीक तरह पार करना काफी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता द्वारा ही सम्भव है। सदाचार और धर्म की सीधी सड़क इसे पार करने के लिए बनी हुई है। उस पर चलते हुए लक्ष्य तक पहुँचना समय साध्य तो है पर जोखिम उसमें नहीं है। इतनी बात न समझ कर जल्दबाज लोग पगडंडियाँ ढूँढ़ते हैं, जहाँ-तहाँ उन्हें वे दीखती भी हैं। बेचारों को यह पता नहीं होता कि यह अन्त तक नहीं पहुँचती, बीच में ही विश्वासघाती मित्र की तरह रास्ता छोड़ देती हैं और जल्दी काम बनने का लालच दिखाकर ऐसे दलदल में फँसा देती है जहाँ से वापस लौटना भी आसान नहीं रहता।

अनीति पर चलकर जल्दी काम बना लेने और अधिक कमा लेने का लालच एक छोटी सीमा तक ही ठीक सिद्ध होता है। आगे चलकर तो उसमें भारी विपत्तियाँ ही विपत्तियाँ आती हैं। आरम्भ में कई बात लाभदायक दीखती हैं पर अन्त इसका कैसा होगा यह सोच कर ही बुद्धिमान लोग उस आरम्भिक लालच को स्वीकार नहीं करते हैं। जहाँ अन्ततः जोखिम दीखती है, समझदार लोग उससे दूर ही रहते हैं। वे जानते हैं कि विनाश आरम्भ में आकर्षक ही लगता है। पाप के साथ आरम्भिक प्रलोभनों की एक लालच भरी गुद-गुदी जुड़ी रहती है उसी से तो मूर्खों को जाल में फँसाया जाता है। शैतान का नुकीला पंजा रेशम की टोपी से ढँका रहता है। मछली को पकड़ने वाली डोरी पर जरा-सा आटा लगा रहता है। चिड़ियों को पकड़ने वाले जाल के आस-पास अनाज के दाने फैले होते हैं, इस आरम्भिक लालच की व्यर्थता न समझ पाने के कारण ही तो मछली और चिड़िया अपना जीवन संकट में डालती हैं।

पाप और अनीति का मार्ग ऐसा ही है जैसा सघन वन की पगडंडियों पर चलना। ऐसा ही है जैसा मछली का काँटे समेत आटा निगलना और जाल में पड़े हुए दानों के लिए चिड़ियों की तरह आगा-पीछा न सोचना। अभीष्ट कामनाओं की जल्दी से जल्दी, अधिक से अधिक मात्रा में पूर्ति हो जाये इस लालच से लोग वह काम करना चाहते हैं जो तुरन्त सफलता की मंजिल तक पहुँचा दे। जल्दी और अधिकता दोनों ही बातें अच्छी हैं पर यदि उनके लिए यात्रा का उद्देश्य ही नष्ट होता है तब उन्हें बुद्धिमत्ता नहीं माना जायेगा।

चोरी, बेईमानी, झूठ, छल, विश्वाघात, अनीति, अपहरण, पाप, व्यभिचार आदि को आरम्भ करते समय यही सोचा जाता है कि एक बढ़िया लाभ तुरन्त प्राप्त होगा। ईमानदारी के राज मार्ग पर चलते हुए मंजिल देर में पूरी होती है, उसमें सीमा और मर्यादाओं का भी सीमा बन्धन है। पर पाप मार्ग में चलते हुए ऐसा लगता है कि मनमाना लोगों को ठगने से, कमजोरों को डराने से, सहज ही बड़ा लाभ कमाया जा सकता है। अशक्त से उनकी वस्तुएँ छीन लेना थोड़ी-सी चालाकी से ही सुगम हो जाता है।

लोगों की असावधानी या भलमनसाहत का चतुरतापूर्वक आसानी से भरपूर अनुचित लाभ उठाया जा सकता है। सोचने से यह प्रतीत होता है कि अनीति का मार्ग अपना लेने में कोई हर्ज नहीं। कितने ही ऐसे उदाहरण भी सामने आते हैं कि अमुक व्यक्तियों ने अनीति का मार्ग अपनाया और जल्दी ही बहुत लाभ कमा लिया। फिर हम भी ऐसा ही क्यों न करें ?

आरम्भिक लाभ को ही सब कुछ समझने वाले लोग मछली, चिड़ियों और पगडंडी पर दौड़ पड़ने वाले की अपेक्षा अपने को अधिक बुद्धिमान मानते हैं और अपनी चतुरता पर गर्व भी करते हैं पर जल्द ही स्पष्ट हो जाता है कि जैसा सोचा गया था वस्तुत: वैसी बात नहीं है। पाप का दुष्परिणाम आज नहीं तो कल सामने आने ही वाला है। पारा खाकर उसे कोई हजम नहीं कर सकता, वह देर-सवेर में शरीर को फोड़कर बाहर ही निकलता है। इसी प्रकार पाप भी कभी पचता नहीं। हो सकता है कि आज फल न मिले पर कल तो वह मिलने ही वाला है। इस संसार में अनेकों यातनाओं से ग्रसित व्यक्ति देखे जाते हैं यदि उन पर ध्यान दिया जाय तो सहज ही जाना जा सकता है कि व्यथा और असफलता भी यहाँ कम नहीं हैं। कुमार्ग पर चलते हुए सामयिक सफलता सदा ही मिलती रहे ऐसी कोई बात नहीं, दण्ड का यहाँ समुचित विधि-विधान मौजूद है।

वस्तुत: आत्म-प्रताड़ना सबसे बड़ा दण्ड है। जिस व्यक्ति की आत्मा भीतर ही भीतर उसके दुष्कर्मों एवं कुविचारों के लिए कचोटती रहती है, जिसे कुमार्ग पर चलने के कारण आत्मा धिक्कारती रहती है, वह अपनी दृष्टि में आप ही पतित होता है। पतित अन्तरात्मा वाला व्यक्ति उन शक्तियों को खो बैठता है जिनके आधार पर वास्तविक उत्थान का समारम्भ सम्भव होता है। हम ऊँचे उठ रहे हैं या नीचे गिर रहे हैं इसकी एक ही परीक्षा, कसौटी है कि अपनी आँखों में हमारा अपना मूल्य घट रहा है या बढ़ रहा है। आत्म-संतोष जिसे नहीं रहता, जो अपनी वर्तमान गतिविधियों पर खिन्न एवं असन्तुष्ट है उसे उन्नतिशील नहीं कहा जा सकता। जिसने अपनी आन्तरिक शान्ति गँवा दी उसे बाहर शान्ति कहाँ मिलने वाली है ? धन कमा लेने से कोई ऊँचा पद प्राप्त कर लेने से, कई प्रकार के सुख साधन खरीदे जा सकते हैं, पर उनसे आत्म-सन्तोष कहाँ मिल पाता है ?

मनुष्य की महान विचार शक्ति का यदि थोड़ा-सा ही भाग आत्मसन्तोष के साधन ढूँढ़ने और आत्म-शान्ति के मार्ग खोजने में लगे तो उसे वह रास्ता बड़ी आसानी से मिल सकता है जिस पर चलना आरम्भ करते ही उसका हर कदम आत्मिक-उल्लास का रसास्वादन कराने लगे। संसार की सम्पदा भी तो लोग सन्तोष प्राप्त करने के लिए ही कमाया करते हैं फिर उस क्षणिक एवं तुच्छ सन्तोष की अपेक्षा यदि चिरस्थायी आत्मशान्ति उपलब्ध करने का अवसर जिसे मिल रहा होगा वह उल्लास, उत्साह और प्रफुल्लता का अनुभव क्यों न करेगा ?

मानवी चेतना का मौलिक स्वभाव सज्जनता, सद्भावना से जुड़ा हुआ है। उसमें जब अनाचार घुस पड़ते हैं तो काँटे की तरह चुभते रहते हैं और बेचैनी उत्पन्न करते हैं। दुष्टता बरतने से दूसरों की जो हानि होती है उसकी तुलना में अपनी हानि कहीं अधिक होती है। दूसरे तो चोट खाते समय ही हैरान होते हैं पर अपने भीतर आत्म-प्रताड़ना का एक ऐसा राक्षस घुस बैठता है जो आजीवन त्रास देता रहता है।

कुकर्मों की आदत डालते ही अपने भीतर एक असुर उत्पन्न होता है। स्वाभाविक प्रकृति दैवी है। जगह एक के रहने लायक ही है पर मन:क्षेत्र में दो व्यक्तित्व परस्पर विरोधी प्रकृति के घुसते हैं तब निरन्तर संघर्ष करते हैं। देवासुर संग्राम की स्थिति बना देते हैं। एक आगे धकेलता है दूसरा पीछे घसीटता है। दो साँड़ जिस खेत में लड़ते हैं उसकी हरी-भरी फसल को रौंद कर रख देते हैं। कोई उपयोगी सामान उधर रखा हो तो वह भी बिखर जाता है। एक म्यान में दो तलवार ठूँसने पर म्यान फटता है और तलवारों को भी खरोंच आती है। दो परस्पर विरोधी व्यक्तित्व गढ़ लेने पर उनका द्वन्द्व युद्ध देखते ही बनता है। आत्म हनन इसी स्थिति को कहते हैं।

संसार में पागलपन तेजी से बढ़ रहा है। आँकड़े बताते हैं कि शारीरिक रोगियों की तुलना में मानसिक रोगियों की संख्या कई गुनी है। सनकी एवं अर्द्धविक्षिप्तों की संख्या गिनी जाय और उनके द्वारा हानियों का लेखा-जोखा लगाया जायेगा तो प्रतीत होगा कि मानव समाज की सबसे बड़ी समस्या यही है। गरीबी से भी बड़ी। गरीब की समझदारी तो कायम रहती है पर अधपगले तो आये दिन ऐसा सोचते और ऐसा करते रहते हैं जिससे उन्हें स्वयं भी नहीं, मित्र-शत्रुओं, परिचितों तक को पग-पग पर त्रास सहने पड़ें।

मनोविज्ञान शास्त्र में मस्तिष्क की श्रेष्ठता को खा जाने वाला दो व्यक्तित्वों का उपजना, परस्पर अन्तर्द्वन्द्व करना ही प्रधान कारण है। यह दूसरा असुर अपने ही अचिन्त्य चिन्तन और कुकर्म करने से उत्पन्न होता है। ऐसे व्यक्ति स्वयं तो सदा बेचैन रहते ही हैं, जिनके भी सम्पर्क में आते हैं उन्हें भी सताते रहते हैं। कुकर्मी दुर्व्यसनी भी होते हैं। उन्हें नशेबाजी, व्यभिचार, चोरी, छल, ठगी, शेखीखोरी जैसी कितनी ही कुटेवें पीछे लग लेती हैं और उनकी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं पारिवारिक

स्थिति दयनीय बना देती हैं। ऐसे लोगों पर से दूसरों का विश्वास उठ जाता है। अविश्वासी के साथ कोई आदान-प्रदान नहीं करता। सहयोग देना तो दूर, साथियों का अविश्वास पात्र बना हुआ व्यक्ति मरघट के भूत की तरह एकाकी रह जाता है। समय पर काम आने वाला उसका एक भी मित्र नहीं रहता। चाटुकार ही स्वार्थ सिद्धि के लिए पीछे लगे रहते हैं और जब उन्हें उसमें कमी दीखती है तो छिटक कर अलग हो जाते हैं। यह हानि साधारण नहीं समझी जानी चाहिए, व्यक्तित्व गँवा बैठने के उपरान्त फिर आदमी के पास बचता ही क्या है। वह जीवित रहते हुए भी मृतकों में गिना जा सकता है।

यह नारकीय स्थिति है। भीतर से आत्म प्रताड़ना और बाहर से भर्त्सना जिस पर बरसती है उसे साक्षात् नरकवासी कहा जा सकता है। शारीरिक और मानसिक रोगों से उद्विग्न रहने वाले नरक ही भोगते हैं। लोक-लोकान्तरों में नरक है या नहीं। कुम्भीपाक, वैतरणी आदि का अस्तित्व है या नहीं इस विवाद में पड़े बिना इतने से भी काम चल सकता है कि जो अपनी शान्ति और प्रतिष्ठा गँवा बैठा उसके लिए मानव जीवन की सरसत्ता कोसों पीछे रह गयी।

सरकार को चकमा देकर राज दण्ड से बचा जा सकता है। समाज की आँखों में भी धूल झोंकी जा सकती है। पर आत्मा की अदालत ऐसी है जिसने सब कुछ देखा सुना है उसके दण्ड से छुटकारा पा सकना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। यहाँ देर तो है पर अन्धेर नहीं है। मनुष्य के लिए थोड़े-से दिन का विलम्ब ही उसकी आस्था डगमगा देता है पर तत्वज्ञानियों की दृष्टि से यह जीवन असीम और अनन्त है। एक जन्म का समय बीतना उसके लिए एक रात की निद्रा लेकर नये प्रभात पर फिर उठने के समान है। आज का लिया कर्ज परसों चुकाने की शर्त पर मिल गया है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह सदा के लिए मुफ्त में मिल गया और फिर कभी वह देना न पड़ेगा। बहुत से लोग जन्म से ही अन्धे, अपंग उत्पन्न होते हैं। कइयों की प्रतिभा जन्म से ही ऐसी अद्‌भुत होती है कि दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। इसे पूर्व संचित संस्कारों का प्रतिफल कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

किसी के पास यदि पैसा कम है, पद छोटा है अथवा शरीर मोटा नहीं है तो उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि वे भाग्यहीन हैं। सच तो यह है यह जंजाल जितने कम होंगे आदमी उतनी ही तेजी से श्रेय पथ पर बढ़ सकेगा और वह लाभ प्राप्त कर सकेगा जिसके कारण आत्मा की प्रसन्नता और परमात्मा की अनुकम्पा अजस्र मात्रा में बरसने लगे। ऋषियों में से प्रत्येक के पास साधन सामग्री स्वल्प थी। विवेकवानों को औसत भारतीय स्तर का निर्वाह स्वीकार करना पड़ता है और इससे अधिक यदि वे किसी प्रकार उपलब्ध कर सकें तो दूसरे हाथ से उसे सत् प्रयोजनों के लिए अविलम्ब लगा भी देते हैं। तपस्वी शक्ति संग्रह करते हैं। यह प्रक्रिया अपने साथ कठोरता बरतने और सर्वतोमुखी संयम अपनाने से ही बन पड़ती है। इस मार्ग को अपनाने वालों में से किसी को अपने दुर्भाग्य की शिकायत करते नहीं सुना गया, वरन् उनकी गरीबी की गरिमा को समझते हुए, हरिश्चन्द्र, हर्षवर्धन, अशोक आदि ने अपनी अमीरी को स्वेच्छापूर्वक निछावर कर दिया था।

ऊँचा उठने वालों को हलका बनना पड़ता है, यदि किसी को कम वैभव से काम चलाने की परिस्थिति में रहना पड़ रहा है अथवा अनीति के विरुद्ध संघर्ष करने में कष्ट सहना पड़ रहा है, तो उसे आन्तरिक दृष्टि से प्रसन्नता अनुभव करते ही पाया जायेगा। इसके विपरीत जिन्होंने अनीतिपूर्वक वैभव जमा कर लिया है अथवा उच्छृंखल विलास का दम्भ पूर्ण प्रदर्शन का साधन जुटा लिया है तो उसे भीतर और बाहर से लानत ही बरसती अनुभव होगी। इस सन्तोष पर कुबेर के खजाने को निछावर किया जा सकता है।

कर्म-फल सुनिश्चित है। उसके लिए किसी अन्य न्यायाधीश की या अन्य लोक में जाने की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। अपने भीतर ही ऐसा स्वसंचालित तन्त्र विराजमान है, जो कृतियों का प्रतिफल उपस्थित करता रहता है, इसमें थोड़ा विलम्ब लगते देखकर किसी को तनिक भी अधीर नहीं होना चाहिए।

विलम्ब को विधान की असफलता न माना जाय

भूतकालीन कृत्यों के आधार पर वर्तमान बनता है और वर्तमान का जैसा भी स्वरूप है, उसी के अनुरूप भविष्य बनता चला जाता है। किशोरावस्था में कमाई हुई विद्या और स्वास्थ्य सम्पदा जवानी में बलिष्ठता एवं सम्पन्नता बनकर सामने आती है। यौवन का सदुपयोग दुरुपयोग बुढ़ापे के जल्दी या देर से आने, देर तक जीने या जल्दी मरने के रूप में परिणत होता है। वृद्धावस्था की मन:स्थिति संस्कार बनकर मरणोत्तर जीवन के साथ जाती है और पुनर्जन्म के रूप में अपनी परिणति प्रकट करती है।

यही प्रक्रिया संसार की समस्त गतिविधियों में दृष्टिगोचर होती है। जीवन के हर क्षेत्र में अपने प्रभाव का परिचय देती

है। आज की परिस्थितियों के सम्बन्ध में पिछले आलस्य या उत्साह को श्रेय लिया जा सकता है। सत्कर्मों एवं दुष्कर्मों के सम्बन्ध में भी यही बात है। वे देर-सवेर में अपनी परिणति प्रस्तुत किये बिना रहते ही नहीं। वर्तमान का जैसा भी स्वरूप है, उसमें पिछले कृत्यों की ही प्रधान भूमिका रहती है।

कुछ कर्म तत्काल फल देते हैं, कुछ की परिणति में विलम्ब लगता है। व्यायामशाला, पाठशाला, उद्योगशाला के साथ सम्बन्ध जोड़ने के सत्परिणाम सर्वविदित हैं। पर वे उसी दिन नहीं मिल जाते, जिस दिन प्रयास आरम्भ किया गया था। कुछ काम अवश्य ऐसे होते हैं, जो हाथों हाथ फल देते हैं। मदिरा पीते ही नशा आता है। जहर खाते ही मृत्यु होती है। गाली देते ही घूँसा तनता है। दिन-भर परिश्रम करते ही शाम को मजदूरी मिलती है। टिकट खरीदते ही सिनेमा का मनोरंजन चल पड़ता है। ऐसे अनेकों काम हैं, पर सभी ऐसे नहीं होते। कुछ काम निश्चय ही ऐसे हैं, जो देर लगा लेते हैं। असंयमी लोग जवानी में खोखले बनते रहते हैं, उस समय कुछ पता नहीं चलता। दस-बीस वर्ष बीतने नहीं पाते कि काया की जर्जरता अनेक रोगों से घिर जाती है।

समय-साध्य परिणतियों को देखकर अनेकों को कर्म-फल पर अविश्वास होने लगता है। वे सोचते हैं कि आज का प्रतिफल हाथों-हाथ नहीं मिला तो वह कदाचित् भविष्य में भी कभी नहीं मिलेगा। अच्छे काम करने वाले प्रायः इसी कारण निराश होते और बुरे काम करने वाले अधिक निर्भय-निरंकुश बनते हैं। तत्काल फल न मिलने की व्यवस्था भगवान् ने मनुष्य की दूरदर्शिता, विवेकशीलता को जाँचने के लिए ही बनाई है। अन्यथा वह ऐसा भी कर सकता था कि झूठ बोलते ही मुँह में छाले पड़ जायँ। चोरी करने वाले के हाथ में दर्द होने लगे। व्यभिचारी तत्काल नपुंसक बन जाय। यदि ऐसा रहा होता तो आग में हाथ डालने से बचने की तरह लोग पाप कर्मो से बचे रहते और दीपक जलाते ही रोशनी की तरह पुण्य फल का हाथों-हाथ चमत्कार देखते। पर ईश्वर को क्या कहा जाय। उसकी भी तो अपनी मर्जी और व्यवस्था है। सम्भवतः मनुष्य की दूरदर्शिता विकसित करने एवं परखने के लिए ही इतनी गुंजाइश रखी है कि वह सत्कर्मों और दुष्कर्मों का प्रतिफल विलम्ब से मिलने पर भी अपनी समझदारी के आधार पर भविष्य को ध्यान में रखते हुए आज की गतिविधियों को अनुपयुक्तता से बचाने और सत्साहस को अपनाने में जो अवरोध आते हैं, उन्हें भी धैर्यपूर्वक सहन करें।

कर्म फलित होने में देर लगाते हैं। हथेली पर सरसों नहीं उगाई जा सकती है। जौ बोने से दस दिन में ही उनके अंकुर छै इंच ऊँचे उग आते हैं। किन्तु जिनका जीवन लम्बा हो, जो चिरस्थायी हैं, उनके बढ़ने और प्रौढ़ होने में देर लगती है। नारियल की गुठली बो देने पर वह एक वर्ष में अंकुर फोड़ती है और वर्षों में धीरे-धीरे बढ़ती है। बरगद का वृक्ष ही देर लगाता है। जब कि अरंड का पेड़ कुछ महीनों में छाया और फल देने लगता है। हाथी जैसे दीर्घजीवी पशु, गिद्ध जैसे पक्षी, ह्वेल जैसे जलचर अपना बचपन बहुत दिन में पूरा करते हैं, जबकि खरगोश जैसे छोटे प्राणी एक वर्ष में ही बच्चे पैदा करने लगते हैं। मक्खी, मच्छरों का बचपन और यौवन बहुत ही जल्दी आता है पर वे मरते भी उतने ही जल्दी हैं। शारीरिक और मानसिक परिश्रम का, आहार-विहार का, व्यवहार-शिष्टाचार का प्रतिफल हाथों-हाथ मिलता रहता है। उनकी उपलब्धियाँ सामयिक होती हैं, चिरस्थायी नहीं। स्थायित्व नैतिक कृत्यों में होता है, उनके साथ भाव-सम्वेदनाएँ और आस्थाएँ जुड़ी होती हैं। जड़ें अन्तरंग की गहराई में धँसी रहती हैं, इसलिए उनके भले या बुरे प्रतिफल भी देर में मिलते हैं और लम्बी अवधि तक ठहरते हैं। इन कर्मो के फलित होने में प्रायः जन्म-जन्मान्तरों जितना समय लग जाता है।

अन्तःकरण की संरचना दैवी-तत्वों से हुई है। उसमें स्नेह-सौजन्य-सद्भाव सच्चाई जैसी सत्प्रवृत्तियाँ ही भरी पड़ी हैं। जीवन-यापन की रीति-नीति उत्कृष्टता के आधार पर बनाने की प्रेरणा इस क्षेत्र में अनायास ही मिलती रहती है।

इस क्षेत्र में जब निकृष्टता प्रवेश करती है, तो सहज उसकी प्रतिक्रिया होती है। रक्त में जब बाहरी विजातीय तत्व प्रवेश करते हैं, तो श्वेत-कण उन्हें मार भगाने के लिए प्राण-पण से संघर्ष छेड़ते हैं और परास्त करने में कुछ उठा नहीं रखते। ठीक इसी प्रकार अन्तःकरण की दैवी चेतना की आसुरी दुष्प्रवृत्तियों को जीवन सत्ता में प्रवेश करने और जड़ जमाने की छूट नहीं देना चाहती। फलतः दोनों के बीच संघर्ष छिड़ जाता है। यही अन्तर्द्वन्द्व है, जिसके बने रहते आन्तरिक जीवन उद्विग्न-अशान्त ही बना रहता है और उस विक्षोभ की अनेक दुःखदायी प्रतिक्रियाएँ फूट-फूटकर बाहर आती रहती हैं।

दो साँड़ लड़ते हैं, तो लड़ाई की जगह को तहस-नहस करके रख देते हैं। खेत में लड़ें तो समझना चाहिए कि उतनी फसल चौपट ही हो गई। दुष्प्रवृत्तियाँ जब भी जहाँ भी अवसर पाती हैं, वहीं घुस-पैठ करने, जड़ जमाने में चूकती नहीं। घुन

की तरह मनुष्य को खोखली करती हैं और चिनगारी की तरह चुप-चुप सुलगती हुई अन्त में सर्वनाशी ज्वाला बनकर प्रकट होती है। ठीक इसी प्रकार दुष्प्रवृत्तियाँ आत्म-सत्ता पर आधिपत्य जमाने के लिए कुचक्र रचती रहती हैं, किन्तु अन्तरात्मा को यह स्थिति सही नहीं, अस्तु वह विरोध पर अड़ी ही रहती हैं। फलत: संघर्ष चलता ही रहता है और उसके दुष्परिणाम अनेकानेक शोक-सन्तापों के रूप में सामने आते रहते हैं।

मनोविज्ञानी इस स्थिति को 'दो व्यक्तित्व' कहते हैं। एक ही शरीर में भले-बुरे व्यक्तित्व शान्ति-सहयोग पूर्वक रह नहीं सकते। कुत्ते-बिल्ली की, साँप-न्योले की, दोस्ती कैसे निभे ? एक म्यान में दो तलवार ठूँसने पर म्यान फटेगी ही। शरीर में ज्वर या भूत घुस पड़े तो कैसी दुर्दशा होती है, इसे सभी जानते हैं। नशेबाजों की दयनीय स्थिति देखते ही बनती है। यह परस्पर विरोधी शक्तियों का एक स्थान पर जमा होना ही है, जिसमें विग्रह की स्वाभाविकता टाली नहीं जा सकती।

आत्मा को कितना ही कुचला जाय वह न मरने वाली है और न हार मानती है। अनसुनी-उपेक्षित पड़ी रहने पर भी अन्तरात्मा की विरोधी आवाज उठती ही रहती है। दुष्कर्म करते समय जी धड़कता और पैर काँपते हैं। यह स्थिति कितनी ही दुर्बल क्यों न कर दी जाय, उसका अस्तित्व बना ही रहेगा और झंझट तब तक चलता ही रहेगा जब तक दृष्प्रवृत्तियाँ उस घुस-पैठ से अपना पैर वापस न लौटा लें।

अन्तर्द्वन्द्व जीवन की शान्ति और सुव्यवस्था को नष्ट करते हैं। प्रगति पथ अवरुद्ध करते हैं और भविष्य को अन्धकारमय बनाते हैं। पापों की परिणति से किसी भी बहाने बचा नहीं जा सकता। यह शारीरिक-संविधान की सामान्य क्रिया पद्धति हुई। इनके अतिरिक्त समाजगत, प्रकृतिगत एवं ईश्वरीय व्यवस्था के और भी ऐसे कितने ही आधार हैं, जिनके कारण कुमार्गगामी को अपने दुष्कृत्यों के दण्ड अनेक प्रकार से भुगतने के लिए विवश होना पड़ता है।

राजदण्ड की व्यवस्था इसीलिए है कि दुष्कर्मों की आवश्यक रोक-थाम की जा सके और अनीति बरतने वालों को उनकी करतूतों का मजा चखाया जा सके। पुलिस, कचहरी, जेल, फाँसी आदि की शासकीय दण्ड व्यवस्था का अस्तित्व मौजूद है। चतुरता बरतने पर भी लोग अक्सर उसकी पकड में आ जाते हैं और आर्थिक, शारीरिक, मानसिक दण्ड भुगतते हैं, बदनामी सहते और नागरिक अधिकारों से वंचित होते हैं।

इतने पर भी पीछा नहीं छूटता। शारीरिक व्याधि' और मानसिक आधि' उन्हें घेरती है और तिल-तिल करके रेतने, काटने जैसा कष्ट देती है। शरीर पर मन का अधिकार है। अचेतन मन के नियन्त्रण में आकुंचन-प्रकुंचन, निमेष-उन्मेष, श्वास-प्रश्वास, रक्त-संचार, ग्रहण-विसर्जन आदि अनेकों स्वसंचालित समझी जाने वाली गतिविधियाँ चलती हैं। चेतन मन की शक्ति से ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ काम करती हैं। शरीर तभी तक जीवित है जब तक उसमें चेतना का अस्तित्व है। प्राण निकलते ही शरीर सड़ने और नष्ट होने लगता है। चेतना का केन्द्र संस्थान मस्तिष्क है। मन के रूप में ही हम चेतना का अस्तित्व देखते एवं क्रिया-कलापों का अनुभव करते हैं। यह संस्थान-मनोविकारों से-पाप-ताप एवं कषाय-कल्मषों से विकृत होता है तो उसका प्रभाव शारीरिक आरोग्य पर भी पड़ता है और मानसिक सन्तुलन पर भी। नवीनतम वैज्ञानिक शोधों का निष्कर्ष यह है कि बीमारियों का केन्द्र पेट या रक्त में न होकर मस्तिष्क में रहता है। मन गड़बड़ाता है तो शरीर का ढाँचा भी लड़खड़ाने लगता है। बीमारियों की नित नई शोध होती हैं और उनके लिए आये दिन एक से एक प्रभावशाली उपचार ढूँढ़े जाने की घोषणाएँ होती हैं। अस्पताल तेजी से बढ़ रहे हैं और चिकित्सकों की बाढ़ आ रही है। आधुनिकतम उपचार भी खोजे जा रहे हैं, इतने पर भी स्वास्थ्य समस्या का कोई उपयुक्त समाधान निकल नहीं रहा है। तात्कालिक चमत्कार की तरह दवाएँ अपना जादू दिखाती तो हैं, पर दूसरे ही क्षण रोग अपना रूप बदलकर नई आकृति में फिर सामने आ खड़े होते हैं। यह स्थिति तब तक बनी ही रहेगी जब तक कि मानसिक विकृतियों के फलस्वरूप नष्ट होने और अगणित रोग उत्पन्न होने के तथ्य को स्वीकार नहीं कर लिया जाता।

न केवल शारीरिक वरन् मानसिक रोगों की भी इन दिनों बाढ़ आई हुई है। शिर दर्द, आधाशीशी, जुकाम, अनिद्रा, उन्माद, बेहोशी के दौरे आदि तो प्रत्यक्ष और प्रकट मस्तिष्कीय रोग हैं। चिन्ता, भय, निराशा आशंका, आत्म-हीनता जैसे अवसाद और क्रोध, अधीरता, चंचलता, उद्दण्डता, ईर्ष्या, द्वेष, आक्रमण जैसे आवेश मन: संस्थान को ज्वार-भाटों की तरह असन्तुलित बनाये रहते हैं। फलतः मानसिक क्षमता का अधिकांश भाग निरर्थक चला जाता है एवं अनर्थ बुनने में लगा रहता है। अपराधी दुष्प्रवृत्तियों से लेकर आत्म-हत्या तक की अगणित उत्तेजनाएँ विकृत मस्तिष्क के उपार्जन ही तो हैं। तरह-तरह की सनकों से कितने ही लोग सनकते रहते हैं और अपने तथा दूसरों के लिए संकट खड़े करते हैं। दुर्व्यसनों और बुरी आदतों से ग्रसित व्यक्ति अपना तथा अपने साथियों का कितना अहित करते हैं, यह सर्वविदित है। पागलों की संख्या तो संसार में तेजी के साथ बढ़ ही रही हैं। मनोविकार ग्रसित, अर्ध-विक्षिप्त लोगों की गणना

की जाय तो आधी से अधिक जनसंख्या इसी चपेट में आई हुई दिखाई पड़ेगी। शारीरिक रोगों का विस्तार हो रहा है। दुर्बलता और रुग्णता से सर्वथा अछूते व्यक्ति बहुत ही स्वल्प संख्या में मिलेंगे। जिन्हें शारीरिक एवं मानसिक रोगों से सर्वथा मुक्तपूर्ण निरोग कहा जा सके, ऐसे लोगों को ढूँढ़ निकालना इन दिनों अतीव कठिन है।

रंगाई से पूर्व धुलाई आवश्यक है। यदि कपड़ा मैला-कुचैला है, तो उस पर रंग ठीक तरह न चढ़ेगा। इस प्रयास में परिश्रम, समय और रंग सभी नष्ट होंगे। कपड़े को ठीक तरह धो लेने के उपरान्त उसकी रंगाई करने पर अभीष्ट उद्देश्य पूरा होता है। ठीक इसी प्रकार आध्यात्मिक प्रगति के लिए की गई साधना का समुचित प्रतिफल प्राप्त करने के लिए- उन अवरोधों का समाधान किया जाना चाहिए, जो दुष्कर्मों के फलस्वरूप आत्मोत्कर्ष के मार्ग में पग-पग पर कठिनाई उत्पन्न करते हैं। दीवार बीच में हो तो उसके पीछे बैठा हुआ मित्र अति समीप रहने पर भी मिल नहीं पाता। कषाय-कल्मषों की दीवार ही हमें अपने इष्ट से मिलने में प्रधान अवरोध खड़ा करती है।

उपासना का समुचित प्रतिफल प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि आत्म-शोधन की प्रक्रिया पूर्ण की जाय। यह प्रक्रिया प्रायश्चित्त-विधान से ही पूर्ण होती है। हठयोग में शरीर-शोधन के लिए नेति-धोति, वस्ति, न्योली, कपाल-भाति क्रियाएँ करने का विधान है। राजयोग में यह शोध कार्य यम-नियम के रूप में करना पड़ता है। भोजन बनाने से पूर्व चौका-चूल्हा, वर्तन आदि की सफाई कर ले जाती है। आत्मिक प्रगति के लिए भी आवश्यक है कि अपनी गतिविधियों का परिमार्जन किया जाय। गुण-कर्म स्वभाव को सुधारा जाय अगर पिछले जमा कूड़े-करकट को ढेर उठाकर साफ किया जाय। आयुर्वेद के काया-कल्प विधान में वमन-विरेचन, स्वेदन, स्नेहन आदि कृत्यों द्वारा पहले मल-साधन किया जाता है, तब उपचार आरम्भ होता है। आत्म-शोधन के सम्बन्ध में भी आत्म-शोधन की प्रक्रिया काम में लाई जाती है।

आज की अपनी दु:खद परिस्थितियों के लिए भूत-काल की भूलों पर दृष्टिपात किया जा सकता है। इसी प्रकार सुखी-समुन्नत होने के सम्बन्ध में भी पिछले प्रयासों को श्रेय दिया जा सकता है। इस पर्यविक्षण का सीधा निष्कर्ष यही मिलता है कि अशुभ विगत को धैर्यपूर्वक सहन करें या फिर उसका प्रायश्चित्त करके परिशोधन की बात सोचें। शुभ पूर्वकृतों पर सन्तोष अनुभव करें और उस सत्प्रवृत्ति को आगे बढ़ायें यह नीति-निर्धारण की बात हुई। अब देखना यह है कि यदि अधिक-व्याधियों के रूप में अशुभ कर्मों की काली छाया सिर पर घिर गई है, तो उसके निवारण का कोई उपाय है क्या ?

जो कर्मफल पर विश्वास न करते हों, उन्हें भी मानवी अन्त:करण की संरचना पर ध्यान देना चाहिए और समझना चाहिए कि वहाँ किसी के साथ कोई पक्षपात नहीं। पूजा-प्रार्थना से भी दुष्कर्मों का प्रतिफल टलने वाला नहीं है। देव दर्शन तीर्थ-स्नान आदि से इतना ही हो सकता है कि भावनाएँ बदलें। भविष्य के दुष्कृतों की रोक-थाम बन पड़े। अधिक बिगड़ने वाले भविष्य की सम्भावना रुके। पर जो किया जा चुका, उसका प्रतिफल सामने आना ही है। उसका उपचार शास्त्री परम्परा और मन:संस्थान की संरचना को देखते हुए, इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होता है कि खोदी हुई खाई को पाटा जाय। प्रायश्चित्त के लिए भी वैसा ही साहस जुटाया जाय, जैसा कि दुष्कर्म करते समय मर्यादा उल्लंघन के लिए अपनाया गया था। यही एक मात्र उपचार है, जिससे दुष्कर्मों के उन दु:खद प्रतिक्रियाओं का समाधान हो सकता है, जो शारीरिक रोगों, मानसिक विक्षोभों, विग्रहों, विपत्तियों, प्रतिकूलताओं के रूप में सामने उपस्थित होकर जीवन को दूभर बनाये दे रही हैं। यह विषाक्तता लदी ही रही, तो भविष्य के अन्धकारमय होने की भी आशंका है। अस्तु प्रायश्चित्त प्रक्रिया को अपनाकर वर्तमान और भविष्य को सुखद बनाना ही दूरदर्शिता है।

जाति, आयु और भोग–त्रिविध कर्मविपाक

कर्म-विपाक त्रिविधि परिणाम उत्पन्न करते हैं- जाति, आयु तथा भोग। जाति से आशय योनि से है। क्योंकि शास्त्रों के अनुसार "समाज प्रसव: जाति:"- एक ही योनि-वर्ग से जिसका जन्म होता है, उन्हें एक जाति के कहते हैं। अत: जाति से तात्पर्य हुआ-मनुष्य-जाति, गो-जाति, अश्व-जाति, हस्ति-जाति, सिंह-जाति, शेर-जाति, चीता-जाति, बन्दर-जाति, ऐसी योनियाँ या देह-जातियाँ। जिस देह में जन्म लिया, वह जाति हुई।

आयु का अर्थ हुआ उस देह का स्थितिकाल और भोग का अर्थ हुआ इस जन्म में भोगी जाने वाली क्रियाएँ, अनुभूतियाँ और परिणाम-सुख-दु:ख लाभ-हानि, भोग-रोग आदि।

जाति, आयु और भोग, इन तीनों के अब तक कुल तीन हेतु मनुष्यों ने खोजे या बिचारे हैं। प्रथमत: ईश्वर को ही इनका कर्तृत्व, हेतु माना जाता है। दूसरा यह माना जाता है कि इनका कारण अज्ञेय है और तीसरा निष्कर्ष यह है कि कर्म ही इनके कारण हैं। ईश्वर को कर्त्ता मानना उसे विषमता को जन्म देने वाला अन्यायी मानना है। अज्ञेयवादी यह तो कह सकते हैं कि इनके कारण हमारी दृष्टि में अज्ञात है। किन्तु इसी आधार पर

यह कहना कि इनके कारण "मनुष्य मात्र द्वारा अज्ञेय हैं" दुराग्रह या दर्प हैं। इलेक्ट्रान, प्रोटान आदि कण सामान्य मनुष्यों के लिए अदृश्य अज्ञेय हैं, किन्तु प्रयोगशील वैज्ञानिकों के लिए वह ज्ञेय एवं दृश्य हैं। आध्यात्मिक उपकरणों, बौद्धिक विवेचनों तथा अन्त:प्रज्ञात्मक अनुभूतियों द्वारा इस विषय की छान-बीन करने वालों ने कर्मो को ही इन तीनों का कारण माना है। महर्षि पतञ्जलि ने कहा है-

"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा: ।

योगसूत्र २।१३

अर्थात्- क्लेशमूल कर्माशियों के त्रिविधि विपाक होते हैं-जाति, आयु एवं भोग।

मनुष्य जो भी कर्म करता है, वह कर्म संस्कारों की प्रेरणा से। प्रज्ञा के उन्मेष के लिए, आत्म-साक्षात्कार के लिए किये गये कर्मो के संस्कार प्रज्ञा-संस्कार कहे जाते हैं। इसके अतिरिक्त शेष सभी कर्मो के संस्कार क्लिष्ट संस्कार हैं। इन्हीं संस्कारों के समूह को कर्माशय कहते हैं। उन्कृष्ट, निकृष्ट एवं मिश्रित ऐसे तीन प्रकार के कर्म होते हैं। इन तीनों के संस्कार जब पककर फलप्रद हो जाने की स्थिति में पहुँच जाते हैं, तो उन्हें त्रिविपाक कहते हैं। जब यह संस्कार जागृत होता है तो उसे वासना कहते हैं। वासना ही कर्म की प्रेरणा बनती है।

जिन कर्मो का फल इसी जन्म में प्राप्त होता है, उन्हें दृष्टजन्म-वेदनीय कर्माशय का परिणाम माना जाता है और जिनका परिणाम देर से प्राप्त होता है, उन्हें अदृष्टजन्म वेदनीय कर्माशय कहा जाता है। कर्माशय का अर्थ है-कर्म-संस्कार।

इन कर्माशयों के स्वरूप पर ही यह निर्भर करता है कि जीव की जाति या योनि अथवा देह क्या-कैसी होगी, आयु क्या होगी एवं भोग क्या होगें ? इनमें से दृष्टजन्म-वेदनाय कर्माशय तो साधारणत: लोगों की समझ में आ जाते हैं। क्योंकि वे इसी जीवन के कर्मो के फल होते हैं। किन्तु उसी जन्म के सचित कर्मो का फल आयु तथा भोग के रूप में ही सामने आ सकता है, किन्तु जाति या योनि क्या होगी, यह विगत जन्म के कर्म पर ही निर्भर होता है।

आयु को बढ़ाने वाले कर्म करने तथा स्वास्थ्य-संरक्षण के नियमों का पालन, सात्विक जीवन, श्रेष्ठ विचार, समुचित पोषण, सन्तुलित जीवनचर्या आदि के द्वारा इसी जीवन में आयुष्काल बढ़ा हुआ देखा जाता है। इसी प्रकार अभक्ष्य भक्षण, मदिरा-पान या अन्य नशों का सेवन, विष-भक्षण, आत्मघात, अस्त-व्यस्त, जीवनचर्या, जीवनी शक्ति का मनमाना अपव्यय आदि के द्वारा आयुष्काल को स्वयं इसी जीवन में लोग घटा लेते हैं। मनुष्यत्व को स्वयं ही पशुत्व में परिवर्तित करते अथवा देवत्व के रूप में ऊपर उठते भी इसी जन्म में लोगों को देखा जाता है। उन्नति-अवनति, विद्वत्ता-विमूढ़ता, सक्रियता-निष्क्रियता आदि की स्थितियाँ मनुष्य स्वयं ही अपनाता या छोड़ता है। इस प्रकार अपनी आयु एवं भोग का एक अच्छा-खासा अंश मनुष्य इसी जन्म के कर्मों के द्वारा बनाता है। यही दृष्ट-जन्म के वेदनीय कर्माशय हैं। इससे भी यह तार्किक निष्कर्ष स्वत: निकलता है कि जो जाति, आयु तथा भोग इस जन्म के कर्मों के फल नहीं हैं, उनका कारण प्राग्भावीय अदृष्ट जन्म वेदनीय कर्म होगा। फिर, सूक्ष्मतत्व विशारदों, जीवन-तत्व के ज्ञाताओं ने तो स्पष्ट अनुभूतियों एवं निरीक्षणों द्वारा यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया है कि समस्त भोग कर्मफल ही होते हैं तथा अप्रत्याशित प्रतीत होने वाले परिणामों के पीछे विगत जन्म के कर्म होते हैं। जन्मजात प्रतिभा या मूढ़ता, विशेष प्रवृत्ति-दिशा तथा विशेष रोग या अस्वाभाविक हानि-लाभ अदृष्य-जन्म वेदनीय कर्मो के परिणाम होते हैं। इस सम्बन्ध में भारतीय मनीषियों ने ये कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रतिपादित किये हैं, जिन्हें जान लेना उपयोगी होगा।

महर्षि व्यास ने पातञ्जल योग सूत्रों का भाष्य करते हुए लिखा है। (योगसूत्र २।१३ व्यास भाष्य):-

दृष्टजन्म वेदनीय कर्माशय कभी मात्र भोग का एवं कभी आयु और भोग दोनों का हेतु होता है। अनादिकाल से वासना द्वारा परिपुष्ट वह चित्त चित्रांकित पट जैसा या अनेकानेक गाँठों वाले (मछली पकड़ने के काम आने वाले) जाल जैसा होता है। इस प्रकार वासना तो अनेक-जन्मपूर्व की होती है, किन्तु कर्माशय पूर्व के एक ही जन्म से सम्बन्धित होता है।

यह कर्माशय नियत निपाक एवं अनियम-विपाक होता है। जो कर्म अपने फल को पूरी तरह उत्पन्न करता है, उसे नियत विपाक कहते हैं। जो कर्माशय अन्य कारणों से अनियमित-निर्देशित होकर पूर्ण फलवान नहीं हो पाता, उसे अनियत विपाक कहते हैं।

जो कर्माशय मुख्यत: एवं स्वतन्त्रता से फलदायक हो, उसे प्रधान कर्माशय कहते हैं और जो कर्माशय गौण या सहकारी भाव से स्थित हों, उन्हें अप्रधान कर्माशय कहते हैं।

जो कर्म तीव्र काम, क्रोध, क्षमा, दया आदि आवेगों से आचरित होता है या बार बार आचरण से जो गहराई तक संस्कार अंकित करता रहता है, वही प्रधान कर्माशय होता है। इसके विपरीत जो कर्माशय होते हैं, वे अप्रधान होते हैं, उनके सम्यक् परिणाम नहीं प्राप्त होते।

जब कोई अति प्रबल कर्माशय या कर्म-संस्कार विपाक को प्राप्त होता है, तो अन्य अप्रधान कर्माशय उससे अभिभूत हो जाता है, वह दब जाता है तथा कालक्रम से अवसर पाकर अभिव्यक्त होता है।

उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति बाल्यवस्था में धार्मिक आचरण करता है। इसके उपरान्त विषय-वासनाओं के आवेग से अनेक पाशविक कर्म करता है। अब मृत्यु के समय वही पाशविक भाव प्रधान रहने से उसका अगला जन्म पाशविकता प्रधान होगा या फिर पशु योनि में होगा। यदि पशु योनि में जन्मा तो वहाँ वह पशुवत् आचरण एवं भोग ही कर सकेगा। अप्रधान (वाल्यवस्था के) धर्माचरण का फल उस जन्म में प्रकाशित नहीं होगा। आगे जब वह मानव-जन्म लेगा, तभी उसका संचित धर्माचरण-अंश प्रकाशित होगा।

इस प्रकार अदृष्टजन्म-वेदनीय कर्माशय अनियत-विपाक ही होता है। अर्थात् उसका कितना फल पूरी तरह मिलेगा, कितना नहीं, यह पूर्णतः निश्चित नहीं होता। इसके कर्मों की तीन गतियाँ सम्भव हैं-

(१) अतिपक्व कर्म का नाश। जैसे- क्रोधपूर्ण आचरण का कर्माशय नये जन्म में अक्रोध के अभ्यास से नष्ट हो जाता है। अतः पिछले जन्म के कर्मों का कुछ अंश विरुद्ध कर्म से अथवा ज्ञान से नये जन्म में नष्ट हो जाता है। अथवा (२) वह प्रधानता से फल दे सकता है। (३) अथवा वह संचित रहकर किसी अन्य जन्म में फलप्रद हो सकता है।

अनेक कर्माशियों के फल एक ही जन्म में मिल जाते हैं। इस प्रकार एक ही जन्म के अनेक कारण होते हैं और वे उन सबके सम्मिलित प्रभाव से उस जन्म में जाति, आयु एवं सुख-दुःख प्राप्त होता है। जो कर्माशय उस जन्म में अभुक्त रह जाते हैं, वे उस जन्म के अन्य कर्माशयों के साथ अगले जन्म में अभिव्यक्त हो सकते हैं। यही क्रम चलता रहता है सामान्यतः एक जन्म के सभी कर्माशय अगले जन्म में फल उत्पन्न कर देते हैं। किन्तु अगले जन्म में किन्हीं कर्माशियों की प्रचण्डता से कुछ कर्माशय अनभिव्यक्त भी रह सकते हैं। इसी प्रकार एक जन्म के सभी कर्मों का फल संचित रहकर अगले जन्म में मिले यह कदापि आवश्यक नहीं। अनेक कर्मों के फल उसी जन्म में मिल सकते हैं और उनके कर्माशय इस प्रकार विनष्ट हो सकते हैं।

इस प्रकार कर्माशियों के कुल त्रिविपाक या तीन फल होते हैं- जाति, आयु एवं भोग। पुण्य एवं अपुण्य कर्मों के कारण ये त्रिविपाक सुखपूर्ण और दुःखपूर्ण होते हैं। यों प्रज्ञा-सम्पन्न योगियों के लिए सम्पूर्ण भोग दुःखमय ही होते हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश को क्षीण करने वाले, उनके विरोधी कर्म पुण्यकर्म कहलाते हैं और इन क्लेशप्रद वृत्तियों के पोषक कर्म अपुण्य या पापकर्म कहलाते हैं। आचार्य गौड़पाद के अनुसार यम, नियम, दया और दान ये धर्म-कर्म या पुण्य-कर्म हैं। जबकि मनु के अनुसार धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध-ये दस कर्म, धर्म,-कर्म हैं। विवेकी पुरुष को विषय सुख भी दुःखकर ही जान पड़ते हैं, क्योंकि वे परिणाम, ताप एवं संस्कार उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार क्लेश को बढ़ाते हैं। इसीलिए प्रज्ञामूल-संस्कारों को उत्पन्न करने वाले कर्म ही विवेकी व्यक्तियों का लक्ष्य होते हैं। क्योंकि प्रज्ञा ही परम लक्ष्य तक पहुँचाने में समर्थ होती है, अन्यथा जाति, आयु और भोग का अन्तहीन क्रम चलता ही रहता है।

बीज बोने पर वह अंकुरित होता है। उसमें पत्ते लगते हैं, फूल लगते हैं और फिर फल लगते हैं, फल से फिर बीज उत्पन्न होता है और वह बीज से फिर पहिले के समान अंकुर, पत्ते, फूल तथा बीज उत्पन्न होते हैं। जिस वृक्ष का बीज होता है। उस बीज से वही वृक्ष उत्पन्न होता है। जैसे- जौ से जौ उत्पन्न होता है, गेहूँ से गेहूँ, तथा बबूल से बबूल ही उत्पन्न होता है। कोई बबूल बोकर उससे मधुर दाखें उत्पन्न होने की आशा नहीं कर सकता। यही कर्म का फल या तत्व है, यह जानकर मनुष्य को अभिलाषा के अनुकूल ही बीज बोना चाहिए और कर्म के इस विषय को साधारण रूप से स्मरण रखना चाहिए।

कर्म-तत्व मन में जितना सहज मालूम होता है, उतना सहज नहीं है। यदि किसी से पूछा जाय कि आप बाजार क्यों गये थे ? तो वह कहेगा कि मुझको एक जोड़ा खड़ाऊँ चाहिए थीं, अथवा कहेगा, कि मुझे एक मित्र से मिलना था और मन में आया कि वह वहाँ मिलेगा, इस प्रकार सब ही कार्यों का एक न एक प्रयोजन और मनन व संकल्प देखने में आता है। क्रिया-मनन और प्रयोजन सदा एक ही सूत्र में गुथे रहते हैं । इस प्रयोजन का नाम वासना है। पहले वासना उत्पन्न होती है, यह कर्म की प्रथम अवस्था है। फिर संकल्प करते हैं, कि इस वासना की सिद्धि करेंगे यह दूसरी अवस्था है। अन्त में अभीष्ट लाभ के लिए कार्य करते हैं, यह कर्म की तीसरी अवस्था है। कर्म का यही क्रम है। हर एक कार्य के पीछे संकल्प और वासनायें लगी हुई हैं। कर्म -संकल्प और वासना, ये तीन कर्म रज्जु के सूत्र हैं, ये तीनों मिलकर कर्म रज्जु कहलाते हैं। कर्म के द्वारा हमारे निकट के सम्बन्धी सुखी या दुःखी होते हैं। यदि सुखी हों तो समझना चाहिए कि सुख का बीज बोया गया था और उसके प्रति फलकर्ता को भी सुख होगा, और यदि दुःख का बीज बोया है तो दुःख होगा। उसी प्रकार निष्ठुरता के काम करते हैं। तो निष्ठुरता का बीज बोया जाता है उसके फल से हमारे भोग में निष्ठुरता ही प्राप्त होगी। दया का बीज बोने पर दया मिलेगी, इसमें सन्देह नहीं। जैसा बीज बोया जायेगा, वैसा ही हमको भोगना पड़ेगा।

हर एक कर्म के पीछे संकल्प लगा हुआ है। जैसे- क्रिया से सुख-दुःख रूप फल मिलता है, तैसे ही उस संकल्प के कारण हमारा चरित्र गठित होता है। चरित्र में हमारे मन की प्रकृति का विकास है। हम जिस विषय की बहुत सी चिंता करते हैं। हमारे मन की वैसी ही दशा हो जाती है। केवल दया के व्यापार का विचार करने पर हम निःसंदेह दयालु होंगे। क्रूर कर्म की चिंता करने पर हमारा स्वभाव क्रूरता का ही हो जायेगा। रात दिन धोखेबाजी का ध्यान करने पर हम अवश्य ही धोखेबाज हो जायेंगे। श्रेष्ठ चिंतवन का फल साधु भाव ही है। इस प्रकार संकल्प से ही चरित्र गठित होता है। इस जन्म में हम जैसी चिंता करते हैं, पुनर्जन्म के समय हमारा चरित्र निःसन्देह उसके अनुसार ही गठित होगा। हम अपने स्वभाव के अनुसार ही कार्य करते हैं, इसलिए हमारे वर्तमान जीवन के संकल्प से ही, दूसरे जन्म के चरित्र और घटनाएँ संघटित होती हैं इसमें संदेह नहीं। संकल्प के मूल में ही वासना ही वासना के कारण ही हम अभीष्ट वस्तु पाते हैं। जैसे- चुम्बक लोहे को खींचता है, वैसे ही कामना अभीष्ट वस्तु को खींचती है। धन की इच्छा करने पर जन्मान्तर में धनवान होने का सुयोग पाया जाता है, ज्ञान की कामना करने पर जन्मान्तर में ज्ञानवान होने का संयोग होता है। प्रेम की अभिलाषा करने पर जन्मांतर में प्रेमलाप हो सकता है। शक्ति पाने की वासना होने पर जन्मांतर में शक्तिमान हो सकता है। कर्म फल के विषय में एक बात में यही कहा जा सकता है कि-

“अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्”

जैसा बीज बोया जाता है, फल वैसा ही होता है। यहाँ पाठक यह जिज्ञासा कर सकते हैं कि यदि हमारा वर्तमान कर्म पिछले जन्म के संकल्प का फल है और पिछले जन्म के सब संकल्प व्यतीत वासनाओं के फल हैं, तब तो जीव असहाय रूप से बँधा हुआ है ।

व्यतीत जन्म के संकल्पानुसार ही हम कर्म करने को विवश हैं। पिछले जन्म की वासनाओं के अनुसार हमारे संकल्पों का उदय होगा ही, वह बात ठीक है, परन्तु इसकी भी एक सीमा है, क्योंकि ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ हमारा परिवर्तन होता चला जा रहा है। उत्तरोत्तर ज्ञान पाने के साथ ही साथ जीव वासनाओं को बदलता जाता है। इसलिए यह बात कह सकते हैं कि पहले जन्मों में हमने जैसी वासना संकल्प और कर्म किया था, उससे अन्य भाव की भी वासना, संकल्प और कर्म कर सकते थे। अब भी चेष्टा करके उनकी गति पलटी जा सकती है। ज्ञान के बल से खोटे फल के अस्तित्व को समझकर यत्नपूर्वक उनका पलट देना असंभव नहीं है, क्योंकि अभ्यासों की शक्ति बड़ी ही प्रबल है।

किसी ने समझा, कि उसने कोई निर्दयपन का काम किया और साथ ही यह भी समझ पड़ा कि वह निर्दय काम किसी अतीत निर्दयपन की चिंता से उत्पन्न हुआ है और वह चिंता विषय की वासना का फल थी। उस वासना की चरितार्थता निर्दयपन के बिना हो ही नहीं सकती। उसने जान लिया कि उस कार्य के फल से ही वह इस लोक में कष्ट पा रहा है और उसी के कारण लोग उससे घृणा करते हैं और उसका कोई साथी भी नहीं है। दुःख मिला करता है। यह सब विचार कर उसने अपने स्वभाव को पलटने का संकल्प किया। उसने सकल अशान्तियों की मूल जो वासना है, उस वासना को ही दूर करने की चेष्टा की। उस समय वह जीवात्मा अपने आप ही कहने लगता है कि अब मैं इन सब विषयों की वासना नहीं रखूँगा क्योंकि निर्दयता के बिना वह सिद्ध नहीं होगी। इसके फल से मुझको बड़ा ही मानसिक कष्ट उठाना पड़ेगा। इस प्रकार वह संकल्प के द्वारा वासना का नाश करने के यत्न में लगा और वासना से संकल्प का उदय नहीं होने दिया। तब वासना जिसकी रस्सी टूट गई है, ऐसे घोड़े के समान उसको अपनी इच्छानुसार नहीं ले जा सकी। उसने संकल्प को लगाम रूप से काम में लाकर वासनारूपी घोड़े को अपने वश में कर लिया। उस समय वह जिस कार्य के करने से सुख मिलता है उसी कार्य के अनुकूल वासना को चलायेगा।

जो लोग अपने और दूसरे के सुख की वृद्धि चाहते हैं उनको चाहिए कि वासना को अपने वश में करें, दृष्टि डालकर और वस्तु का विचार करके, क्या सुख कारक है और क्या दुःखदायक है, इसका निर्णय करके अपनी समस्त शक्ति के बल से सुखमय विषय की ही वासना करें। किसी विशेष प्रकार से जीवन को बिता देने से जन्म-मरण रूप बन्धन से मुक्ति नहीं होती। कर्म का यही तत्व है।

सत्कर्म ही स्वर्ग है, दुष्कर्म अपवर्ग है

कर्म के भले बुरे होने की पहचान आत्मबल सम्पन्न ही कर सकते हैं। उन्हें ही समग्र मनुष्य कहना चाहिए। जिसमें यह समग्रता उत्पन्न नहीं हुई है उन्हें नर-पशु वर्ग में गिनना चाहिए। वन मानुषों की आकृति मनुष्यों से मिलती जुलती है। कितने ही प्राणी मनुष्यों जैसे शब्दों का उच्चारण कर लेते हैं। तोता, मैना जैसे पक्षी और चिंपाजी जैसे पशु मनुष्यों द्वारा बोले जाने वाले शब्दों की नकल कर लेते हैं। अनुकरण में बन्दर अग्रणी है। वह दूसरों को जैसा कुछ करते देखता है वैसी ही नकल करने लगता है। इतने पर भी उन्हें मनुष्य संज्ञा में नहीं गिना जाता है।

मनुष्य काया में भी कई ऐसे हैं जिन्हें कर्म कुकर्मों का मध्यवर्ती अन्तर नहीं मालूम। मालूम भी है तो परिपालन में जिनकी निष्ठा नहीं। उन्हें जीवधारियों में तो गिना जा सकता है पर मानवी गरिमा को अपनाने वाले मनुष्यों में नहीं। ऐसे लोग हेय स्तर के हैं। उनके कर्म भी बालकों जैसे होते हैं और उनके प्रतिफल भी क्षमा कर देने जैसे स्तर के। छोटे बालक माता के साथ सोते हुए भी मल मूत्र त्याग देते हैं। उनकी बड़ों जैसी भर्त्सना नहीं होती। कोई बड़ी आयु का व्यक्ति ऐसे अनुचित कर्म करे तो उसकी भर्त्सना भी की जायेगी और प्रताड़ना भी दी जायेगी। विवेकहीन मनुष्य भी इसी श्रेणी में आते हैं और चेतना की दृष्टि से गये बीते हुए भी। वे पशु प्रवृत्तियाँ अपनाने पर दण्डनीय नहीं माने जाते।

दण्ड पुरस्कार के योग्य मनुष्यों में वे ही माने जाते हैं जो आचार की दृष्टि से भले-बुरे का अन्तर समझते हैं और उनका परिपालन करने पर दण्ड पुरस्कार का प्रतिफल समझते हैं। जिन में इतनी समझदारी मिले समझना चाहिए कि उन्हें ही मानवी गरिमा का उत्तर दायित्व मिला और उसके निबाहने न निबाहने का दण्ड पुरस्कार प्रकृति, ईश्वर या समाज की ओर से अवश्य मिलेगा।

मनुष्य अपने आप में औचित्य-अनौचित्य के अन्तर को समझता है, साथ ही उन्हें अपनाने पर अपने भीतर जो प्रतिक्रिया होती है, वही विकसित चेतना की प्रतीक है। उसी स्तर की आत्मा अपने आप दण्ड पुरस्कार प्राप्त कर लेती है। आत्म प्रताड़ना और लोक भर्त्सना की पीड़ा उन्हें उतनी ही असह्य प्रतीत होती है जितनी किसी अविकसित को चाबुकों से पीटने की पीड़ा । इसी से उनके पुण्य-परमार्थ के कारण दूसरों को जो सुख सुविधा बनती है उज्ज्वल भविष्य का आधार बनता है उसका परिणाम कर्ता को अधिक सुखद अनुभव होता है। जिन्हें प्रत्यक्ष लाभ मिला है वे तो उस सुविधा को ही समझ पाते हैं किन्तु कर्ता को सत्कर्म करने से आत्मा में जो पवित्रता और प्रखरता का अंश बढ़ता है वह अपेक्षाकृत कहीं अधिक श्रेयस्कार होता है।

इस मिले हुए श्रेय के आधार पर महामानव देवात्म ऋषि, सिद्ध पुरुष बनने का अवसर मिलता है। सत्कर्म कर्ता इतने भर में यह अनुभव करता चलता है कि उसने स्वर्ग और मुक्ति जैसा प्रतिफल प्राप्त कर लिया है। स्वर्ग उच्चस्तरीय दृष्टिकोण को कहते हैं एवं मुक्ति भव बन्धनों से हेय कर्मो से छुटकारा पा लेने वाली प्रवृत्ति को। ऐसे व्यक्ति नर होते हुए भी, नारायण पुरुष होते हुए भी पुरुषोतम कहलाते हैं। अपने आपको वे वैसा ही ऊँचा उठा अनुभव करते हैं। उनके द्वारा जो श्रेष्ठ कृतियाँ बन पड़ती हैं, वे कमल पुष्प की तरह महकती हैं और व्यक्ति अपने आप में आनन्द विभोर बना रहता है। दूसरे उनका अभिनंदन और अनुकरण करते हैं। आत्मिक क्षेत्र में विकसित मनुष्यों के लिए इतना उपहार परिपूर्ण संतोष दायक होता है।

ऐसे मनुष्य जाने-अनजाने में किसी के साथ दुर्व्यवहार कर बैठते हैं तो उसका दुःख उन्हें अपने निज के दुःख से कहीं अधिक कष्ट कारक होता है। **"आत्मवत् सर्वभूतेषु"** की मान्यता अन्तःकरण में विकसित हो जाने पर किसी के साथ अन्याय बरतने का साहस ही नहीं पड़ता। धर्म या आवेश में कुछ ऐसा बन भी पड़े तो उसे आन्तरिक पीड़ा तब तक सताती है, जब तक वह क्षति पूर्ति का प्रायश्चित नहीं कर लेता। इस स्थिति को नरक यातना से किसी भी प्रकार कम कष्ट का नहीं मानते। क्योंकि अब न सही आगे चलकर दुष्कर्मों का प्रतिफल तो भुगतना पड़ेगा। जिनकी अन्तरात्मा जितनी विकसित हैं, उसी अनुपात में उन्हें शुभ-अशुभ कर्म करने का आनन्द और कष्ट ही होता है। इतना ही नहीं इसी आधार पर उन्हें प्रगति शील बनने का अवसर मिलता है, जब कि कर्म बन पड़ने पर जन-सहयोग और प्रगति का अवसर हाथ से निकल जाता है।

विकसित मनुष्य में अपना शरीर और मन ही नहीं अपना समाज भी मिल जाता है। यही तीनों देवता हैं। समाज गत दण्ड पुरस्कार भी शासन की ओर से मिलते हैं। इसीलिए व्यक्ति की तरह ही समाज को भी प्रबुद्ध एवं न्यायशील होना चाहिए। उसे कानून, सबूत, वकील जैसे जाल-जंजाल में न फँसकर स्वयं अपनी ओर से प्रजाजनों के चरित्रों तथा कृत्यों का पता लगाना चाहिए और तदनुसार दण्ड पुरस्कार की व्यवस्था करनी चाहिए। समाज भगवान का प्रतीक है। जिसे शासन द्वारा प्रताड़ित तिरस्कृत किया गया उसकी अप्रामाणिकता उन्नति के, विकास के द्वारा अवरुद्ध कर देती है और वह अपना स्तर गिरा कर पाप का समुचित दण्ड प्राप्त कर लेता है जिसने सत्कर्म करके प्रशंसा पाई और जिसमें शासन ने कोई खोट नहीं ढूँढा, वह व्यक्ति ईश्वरीय पुरस्कार का भागी बन गया।

भगवान को एक-एक व्यक्ति के कर्म और स्तर का लेखा जोखा रखने और तदनुरूप स्वर्ग नरक में भेजने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनका बनाया स्वसंचालित तंत्र ही ऐसा समर्थ है, जिसके अनुसार हर व्यक्ति अपने कृत्य एवं स्तर के अनुरूप अपनी अन्तरात्मा-समाज तथा शासन द्वारा दण्ड पुरस्कार प्राप्त करता रहता है।

दुष्प्रवृत्तियाँ मनः क्षेत्र में एक प्रकार का कुहराम मचाये रहती हैं। फलतः अन्तराल में ऐसी विपन्नता छाई रहती है जो

शारीरिक और मानसिक रोगों का सृजन करती रहे और उस आधार पर व्यक्ति हाथों हाथ दण्ड पुरस्कार प्राप्त करता रहे। शरीर की विधि व्यवस्था मात्र रक्त माँस से ही नहीं चलती। उसका सूत्र संचालन करने वाली प्राण शक्ति का उद्गम मस्तिष्क में रहता है। अवांछनीय कृत्यों द्वारा यह मस्तिष्कीय चेतना विकृत स्तर की बनती है। फलत: अनेकों रोग उठ खड़े होते हैं और वे साधारण दवा-दारू से भी अच्छे नहीं होते। यह प्रत्यक्ष दण्ड व्यवस्था है।

जिसे सत्कर्म करने, सदभाव एवं सज्जनतापूर्ण व्यवहार का अभ्यास रहता है, उसकी प्राण चेतना में प्रगतिशील तत्व भरे रहते हैं। अतएव उनके गुण, कर्म, स्वभाव में ऐसे तत्वों का बाहुल्य रहता है, जिसके सहारे मन प्रसन्न रहे। उत्साह साहस और परमार्थ भरी उमंगों की कमी न पड़े। ऐसे व्यक्ति सर्वोपयोगी योजनाएँ बनाते हैं और अपने आत्मबल के सहारे उन्हें पूरी कर गुजारते हैं। जिस व्यक्तित्व का पर्यवेक्षण करने से अनेकों का उत्साह बढ़े, अनकों सन्मार्ग पर चलें, अनेकों अपनी कुचाल का परित्याग करें। समझना चाहिए कि वह मनुष्य से ऊँचा उठ कर देव श्रेणी में गिना जाने योग्य हो गया। देवता पारस पत्थर के समान होते हैं जो भी सम्पर्क में आता है वह सोने का बन जाता है। जिनने अपने जीवन में ऐसी विभूतियाँ अर्जित करलीं, उनका जीवन हर दृष्टि से धन्य ही माना जाता है। वे देव मानव, ऋषि बन जाते हैं। भूसुर कहलाते हैं। वे स्वर्ग का जीवन यहीं जीते हैं यहीं मुक्ति पाते हैं।

कर्म-सिद्धान्त को समझा जाय

कर्म अपने आप में विलक्षण पहेली है। कब यह पाप बनता है-कब पुण्य? कब यह तप और योग का बाना पहनकर स्वर्ग की सृष्टि करता है ? कब इसके परिणाम यम के दण्ड विधान और नर्कवास के रूप में सामने आएँगे ? इन प्रश्नों का सही उत्तर न खोज पाने के कारण हममें से अनेक क्या करें? क्या न करें? के चक्रव्यूह में फँसकर न जाने कितनी व्यथा-वेदना सहने के लिए विवश होते हैं। ऐसा भी नहीं कि कर्म करने से बचा जा सके। गीताकार के शब्दों में कहें तो **“नहि कश्चित्क्षणमपि जातु: तिष्ठत्यकर्मकृत”** एक क्षण भी काम किए बिना नहीं रहा जा सकता। शरीर और मनकी हरकतें सोते-जागते किसी न किसी रूप में हमेशा होती रहती हैं।

धर्म शास्त्री जान पेरी के ग्रन्थ “एक्शन: इट्स एनालिसिस” के अनुसार सोचें तो किसी भी क्रिया के साथ दो चीजें अनिवार्य रूप से जुड़ी होती हैं-भाव और विचार। इनकी उत्कृष्टता और निकृष्टता अपने स्वरूप के आधार पर दो परिणाम प्रस्तुत करती हैं गौरव बुद्धि और आत्मग्लानि। एक में हमारा व्यक्तित्व समग्र बनता-ईश्वरीय सत्ता से अपना तादात्म्य बिठाता है। दूसरे में हमारा अस्तित्व टुकड़े-टुकड़े होकर पशुता के गर्त में गिर जाता है। मनुष्य शरीर धारण करने के बावजूद “नर पशु” “नर पिशाच” बनने के लिए विवश होते हैं।

दर्शनशास्त्री काण्ट की उलझन का समाधान यही है। लेकिन गौरव बुद्धि उन्हीं कामों में जाग्रत हो सकती है जो हमारी आत्म चेतना को समग्र बनाकर ईश्वरोन्मुख करने वाले हैं। जिन्हें सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो। उदाहरण के लिए कोई चोरी, डकैती व्यभिचार, हत्या आदि नृशंस- बर्बर काम करके स्वयं को गौरवन्वित नहीं अनुभव कर सकता। दूसरों के सामने बाहरी तौर पर वह कितना ही कुछ क्यों न कहता फिरे पर अन्तर्मन में उसे ग्लानि, कुण्ठा, हीनता की चोट सहनी पड़ेगी। क्योंकि प्रश्न समाज के सामूहिक मनका है- जिसका विरोध किसी भी एकाकी मन के द्वारा सम्भव नहीं।

यदा-कदा हमें इसके अपवाद देखने को मिलते हैं पर वे अपवाद दीखते भर हैं, होते नहीं। जैसे- लड़ाई के मोर्चे पर किसी सिपाही द्वारा शत्रुओं से जूझने, उन्हें पराजित करने का कार्य प्रत्यक्ष में नृशंस लगने पर भी यथार्थ में करुणा और सहृदयता से प्रेरित है। उसके पीछे अनेकों दुर्बलों की रक्षा करने, राष्ट्र की अस्मिता को बचाने का भाव है। यही गौरव बोध उसे पुण्यात्मा बनाता आत्मचेतना को विकसित करने में सहायक बनता है।

कौन-सा काम गौरव बोध जाग्रत करेगा ? इसका उत्तर है- जिसके पीछे स्वार्थ और अहं की प्रेरणा न हो। जो काम लोकादर्श की रक्षा करने के लिए, भगवान के प्रति समर्पित होकर क़िए जाते हैं। वे छोटे हों या बड़े उनमें से प्रत्येक का परिणाम-पुण्य जीवन में स्वर्ग की सृष्टि के रूप में सामने आता है। स्वर्ग और कुछ नहीं हमारा परिमार्जित परिशोधित मन है। यह कथन सिर्फ अलंकारिक सत्य नहीं। साधना जगत का गुह्य रहस्य है, जिसे कोई भी सुपात्र अनुभव कर सकता है। मनुष्य जहाँ व्यष्टि है वहीं विराट भी है। वह स्वयं में जब जैसा होता है, चेतना के उन्हीं स्तरों, शक्तियों की अनुभूति उसे होती रहती है। शरीर के स्तर पर की गई साधना उसे पार्थिव चेतना से एकत्व का आभास करा सकती है। यही भूतत्व की अनुभूति है। भूव तत्व के निम्न और उच्चस्तरों के अनुरूप प्रेत-पिशाचों की भयंकरता और यक्ष आदि प्राणिक शक्तियों की सौम्यता के दर्शन के रूप में हो सकती है। दैनन्दिन क्रम में स्वप्न के माध्यम से इसे यत्किंचित अनुभव करते हैं। जागरूकता का अभाव इसे स्पष्ट

नहीं होने देता। स्वःतत्व जिसे मन कहेंगे। श्री अरविन्द के महाकाव्य सावित्री के अनुसार जहाँ अपनी अपरिमार्जित स्थिति में अन्धा रहकर पशु प्रवृतियों के दासत्व का नर्कवास भुगतता रहता है वहीं परिशोधित-संस्कारित होने पर उसके सामने देवलोक का राज्य खुल जाता है। देवी-देवताओं की स्पष्ट अनुभूति होने लगती है।

मन के अन्धे होने, पशुप्रवृत्तियों के दासत्व भुगतने को हम स्वयं के-औरों के जीवन में अनुभव कर सकते हैं। जिनकी मन:स्थिति ओछी है घटिया है, उन्हें दैन्य को दारिद्रय, दु:ख दुर्बलता, कुण्ठा, क्लेश, अवहेलना, अवमानना के पाप समूहों में जकड़े घिरे रहना पड़ता है। यम दण्ड और नर्कवास के इस काल में भौतिक सम्पदाएँ उन्हें मिल भी जाएँ तो उनसे उन्हें सुख शान्ति नहीं मिल पाती उलटे उनकी दूषित प्रवृत्तियों का दारुण विस्फोट होने में ही बढ़ी हुई सम्पदा आधार बनती है और उनके व्यक्तित्व के अधिकाधिक क्षय के साथ ही वह सम्पदा भी क्षयीभूत होती है।

पाप से उबरने-नर्कवास से छूटने के लिए क्या करें ? इस सवाल का जवाब देते हुए दक्षिण भारत के महानसाधक रामालिंगम् स्वामी के अनुभूतिकोश पिरियर लाइट, के पृष्ठों का कहना है उन कामों को किसी भी स्थिति में न किया जाय जो स्वयं में कुण्ठा, ग्लानि उत्पन्न कर व्यक्तित्व को चूर-चूर करने वाले सिद्ध हों। हमारी कर्मशक्ति स्वयं में गौरव बोध जाग्रत करने, पुण्य उपार्जित करने में लगे-खपे। कर्म शक्ति का यही उपयोग सही अर्थो में साधना है।

" बुक आफ मेडिटेशन्स" नामक अपनी कृति में प्रसिद्ध अँग्रेज दार्शनिक जेम्स एलन ने कर्म सिद्धान्त' की विशद् व्याख्या की है। उनके अनुसार यह समग्र विश्व ब्रह्माण्ड न्याय व्यवस्था पर टिका हुआ है और यही न्याय मानव जीवन और आचार का नियमन करता है। आज विश्व में विद्यमान जीवन की विभिन्न दशाएँ मानव आचार पर प्रतिक्रियाशील इसी नियम का परिणाम हैं। विदेकशींल प्राणी होन्ने के कारण सोचने, विचारने और कर्म करने की उसे पूर्ण स्वतंत्रता मिली हुई है, परन्तु उनसे उत्पन्न परिणामों पर उसका कोई अधिकार नहीं है। इसका निर्णय नियामकसत्ता के हाथ में है । कर्म करने का सम्पूर्ण अधिकार मनुष्य को है किन्तु कार्य के निष्पादन के साथ ही उसका अधिकार समाप्त हो जाता है। कार्य के परिणामों को न तो बदला जा सकता है और न ही उनका अंत किया अथवा उनसे बचा जा सकता है। यह एक अटल नियम है कि बुरे विचार और कार्य क्लेश की, दु:ख की परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं जब किं सद्विचार और सत्कर्म सुखकारक अवस्थाओं का निर्माण करते हैं।

प्राच्य दर्शन विदों के अतिरिक्त कुछ पाश्चात्य विचारकों ने भी कर्मफल की सुनिश्चित विधि व्यवस्था में अपनी आस्था व्यक्त की है। प्लेटो इसमें सबसे अग्रणी हैं। प्रख्यात मनीषी पॉल ब्रण्टन ने भी अपनी पुस्तक "हिडेन टीचिंग्स बियोन्ड योगा" में लिखा है कि "कर्म नितान्त वैज्ञानिक नियम है। उनका कथन है कि दूसरों के प्रति हम जो कुछ करते हैं वह किसी न किसी समय किसी न किसी प्रकार हमें अवश्य लौटा दिया जाता है। अपने किये कर्मो का बदला हमें अवश्य मिलता है। जो हम देते हैं बदले में हमें वही मिलता है। सुप्रसिद्ध विद्वान डिंकिसन ने अपनी कृति " रिलीजन एण्ड इम्मौरैलिटी" में कहा है- वास्तव में यह सन्तोषप्रद भावना है कि हमारी वर्तमान समर्थताएँ हमारे पिछले जीवन के कार्यो द्वारा निर्धारित होती हैं और हमारे वर्तमान कर्म पुन: हमारे भावी जीवन चरित्र को निर्धारित करते हैं। "दी स्केल्स आफ कर्माज" नामक अपनी पुस्तक में मूर्धन्य मनीषी ओवेनरटर ने भी कर्मफल सिद्धान्त को स्वीकार किया है।

कर्मो की श्रृंखला इस प्रकार बनती है-क्रियमाण कर्म का अन्त संचित में हो जाता है और संचित में जो कर्मफल देने लगते हैं, उनको प्रारब्ध कहते हैं। इनमें से मनुष्य का अधिकार क्रियमाण कर्मो पर है। शेष दो उसकी ही उपलब्धियाँ हैं जिन पर उसका कोई अधिकार नहीं। इसे अधिक स्पष्ट करते हुए आद्य शंकराचार्य के अनन्य शिष्य पद्मपाद ने अपने ग्रंथ-"विज्ञान दीपिका" के श्लोक ५ एवं ८ में कहा है कि "संचित कर्म की तुलना घर में रखे अन्नों से, क्रियमाण या संचीयमान कर्म की तुलना खेत में खड़े अन्नों से और प्रारब्ध कर्म की तुलना पेट में पड़े अन्नों से की जा सकती है। पेट में पड़ा भोजन पच जाता है, पर उसमें कुछ समय लगता है। संचित एवं क्रियमाण कर्म का नाश सम्यक ज्ञान से होता है किन्तु प्रारब्ध का नाश उसके फलों को भोगने के बाद ही समाप्त होता है।"

उनके अनुसार कर्म विभिन्न प्रकार के होते हैं। और विभिन्न प्रकार के प्रतिफल उपस्थित करते हैं। सात्विक कर्मो से स्वर्ग, राजसिक कृत्यों से पृथ्वी या अन्तरिक्ष तथा तामसिक कर्मो से यातनाओं के स्थल प्राप्त होते हैं। वासनाओं का क्षय, कर्म तथा पुनर्जन्म की समाप्ति का प्रमुख आधार उन्होंने तत्वज्ञान को बताया है। जो विवेक एवं वैराग्य द्वारा उपलब्ध होता है।

ऐनीबीसेण्ट ने अपने ग्रन्थों में कर्म-सिद्धान्त और कर्म के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या की है। उसे समझने के लिये सबसे

पहले विश्व के तीन मण्डलों और उनके सम्बन्धी मनुष्य के तत्वों का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। ये तीन मंडल हैं- सुषुप्ति, मण्डल, स्वर्ग-मण्डल और भूमण्डल । भूमण्डल के दो विभाग सूक्ष्म (गगन मंडल) और स्थूल (पृथ्वी) हैं। प्रथम सुषुप्ति-मंडल में बुद्धि तत्व और महाकारण देह रहती है। दूसरे स्वर्ग मण्डल में मनस् तत्व और कारण देह तथा मानसिक अथवा सम्बन्धी देह रहती है। (३) गगन मंडल में काम तत्व और सूक्ष्म देह है। (४) भूमण्डल में लिंग तथा स्थूल तत्व और स्थूल देह रहती है।

विश्व के स्थूल मण्डल अर्थात् इस जगह में कार्य करने के लिए जीवन को स्थूल देह की सहायता लेनी पड़ती है, इसलिए जीव की चेतना का प्रकाश मस्तिष्क की शक्तियाँ से सीमाबद्ध किया जाता है। गगन-मण्डल की प्रकृति कई दर्जे की सूक्ष्मता वाली होती है, इसलिए इस मण्डल के कार्य के लिए जीव कई प्रकार सूक्ष्म उपाधियों से काम लेता है। इन सब उपाधियों को ही सूक्ष्म शरीर के नाम से पुकारते हैं। स्वर्ग अर्थात् देवयान मंडल भी दो भागों में विभक्त है, जिनमें से एक को रूप भवन और दूसरे को अरूपभवन कहते हैं। रूप भवन में जीव मायावी शरीर के आश्रय से काम करता है, इस मायावी रूप को मानसिक प्रकृति से बनने के कारण मानसिक देह भी कहते हैं। अरूपभवन में कारण शरीर काम देता है। चतुर्थ मण्डल मनुष्य की पहुँच से बहुत ऊँची है इसलिए उसका विशेष विवरण देना यहाँ पर अनावश्यक प्रतीत होता है।

यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि इन मण्डलों की प्रकृति में परस्पर बड़ा अन्तर होता है। प्रत्येक मण्डल की प्रकृति अपने ऊपर के मण्डल से अति घनी और स्थूल होती है। सृष्टिक्रम में भी इसी प्रकार प्रकृति सूक्ष्म से स्थूल और अघन से धन होती जाती है। इसके अतिरिक्त इन मण्डलों में देवों (तत्वों) के बहुत से गण भी बसते हैं। देव गणों की बहुत सी श्रेणियाँ होती हैं। सबसे उच्च श्रेणी के महमति वाले देवगण सुषुप्ति मंडल में रहते हैं, और नीची श्रेणी के मन्दगति वाले देवगण स्थूल मंडल में निवास करते हैं। प्रत्येक मंडल में कोई भी ऐसा अणु नहीं है जिसमें प्रकृति और पुरुष का संयोग न हो। अणु के शरीर को प्रकृति कहते हैं और उसके प्राण को पुरुष के नाम से पुकारा जाता है। कणों के पृथक-पृथक संघात अनेक प्रकार के रूप-रूपान्तर और मूर्तियों को धारण कर अपनी-अपनी जाति के देवगणों से प्रविष्ट अथवा संयुक्त होते हैं।

गगन मंडल के देवगण मनुष्य का सूक्ष्म शरीर निर्माण करते हैं, और उसकी सूक्ष्म इंद्रियों को सचेत करते हैं, जिनके द्वारा मनुष्य इन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करता है। जहाँ कहीं थरथराइट (वाइब्रेशन) अथवा स्पर्श होता है, वहाँ कोई न कोई देवता (तत्व) अपने आपको उससे सम्बन्धित कर लेता है। मनुष्य का मन अपने भवन अर्थात् गगन मंडल की सूक्ष्मतर प्रकृति में कार्य करके नाना प्रकार के आकार उत्पन्न होता करता है, इन आकारों को संकल्प रूप कहते हैं। मन की जिस शक्ति से ये रूप उत्पन्न होते हैं। उसे कल्पना शक्ति कहते हैं। बात-चीत के समय संकल्प रूपों को दूसरों के समक्ष प्रकंट करने के लिए शब्द तो एक तुच्छ और अधूरा साधन है। शब्दों में इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि वह एक मनुष्य के मन के आशय को दूसरे के मन में यथार्थ रूप से पहुँचा सके। यही कारण है कि प्राय: वार्तालाप में एक आशय को प्रकट करने के लिए बार-बार लम्बे-लम्बे वाक्य कहने पड़ते हैं। पर ये संकल्प-रूप जिन देवताओं से सम्बन्धित होते हैं उनका एक-एक विशेष रंग होता है, जिसे देखने से मनुष्य के मन का आशय शब्दों की अपेक्षा कहीं अधिक ठीक और शीघ्र समझा जा सकता है। यह रंगों की भाषा एक बड़ा गुप्त रहस्य है, जिसे जानकर मनुष्य सहज ही में देवताओं से वार्तालाप कर सकता है। ये रंग प्रत्येक मनुष्य के मुख-मंडल के पास उसी प्रकार दिखलाई पड़ते हैं जैसे हम मूर्तियाँ के चारों तरफ एक प्रभामंडल देखा करते हैं। पर ये रंग उन्हीं महापुरुषों को दिखलाई पड़ते हैं जिनकी दिव्य-दृष्टि खुल जाती है। और इनके ही द्वारा वे किसी व्यक्ति के आन्तरिक विचारों और कर्मों का पता लगा लेते हैं।

मनुष्य अपने संकल्प-रूपों को उत्पन्न करके उन्हें केवल दूसरे मनुष्यों की ओर भेजता ही नहीं। वरन् अपने से मिलते जुलते अन्य संकल्प-रूपों को जो गगन मंडल में उपस्थित रहते हैं और वैसे ही विचार वाले अन्य व्यक्तियों द्वारा उत्पन्न किये गये थे, चुम्बक की तरह अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यदि उसके संकल्प उत्तम और शुद्ध होंगे तो वे वैसा ही कल्याणकारी शक्तियों को स्वाभाविक रूप से अपनी ओर आकर्षित करेंगे। इनके फल से वह आदमी उस समय ऐसे श्रेष्ठ या महान कार्य कर जावेगा। जो बाद में स्वयं उसे आश्चर्यजनक जान पड़ेंगे। इसी प्रकार यदि मनुष्य में संकल्प निकृष्ट और अशुद्ध हैं, तो अपकारी शक्तियों के समूह को आकर्षित कर इनके बल द्वारा अपने वित्त से बढ़ कर ऐसा अपराध कर डालेगा जिसके लिए उसे बाद में महा पश्चात्ताप होगा और वह कहेगा- "आश्चर्य है कि ऐसा बड़ा काम कर्म करने का साहस मुझ में कहाँ से आ गया ! उस समय अवश्य ही मेरे सिर पर कोई भूत चढ़ गया होगा जिसने ऐसी करतूत मुझसे करा दी।" नि:सन्देह गगन-मंडल की अपकारी शक्तियों ने उसके म्लेच्छाभाव होने के कारण उसकी ओर खिंच कर यह क्रूरता पूर्ण शक्ति प्रदान की थी। संकल्प-रूप देवता चाहे

भले हों या बुरे, मनुष्य की वासनायुक्त सूक्ष्म देह के देवताओं और उसके निज संकल्पों के साथ सम्बन्ध उत्पन्न कर लेते हैं। पर यह सम्बन्ध सजातीय अर्थात् अपने से मिलते-जुलते व्यक्तियों पर ही होता है । विजातीयों पर उनका कुछ वश नहीं चलता क्योंकि वे परस्पर प्रति-घातक होते हैं। इसलिए सत्पुरुष केवल अपने तेज के बल से ही मलीन अथवा अधम योनि के देवताओं को परे भगा देते हैं।

अपनी दुनिया के स्वयं निर्माता

एक दार्शनिक का मत है कि संसार एक निष्प्राण वस्तु है। इसे हम जैसा बताना चाहते हैं यह वैसा ही बन जाता है। जीव चैतन्य है और कर्ता है। संसार पदार्थ है और जड़ है। चैतन्य कर्ता में यह योग्यता होती है कि वह जड़ पदार्थ की इच्छा और आवश्यकता का उपयोग कर सके। कुम्हार के सामने मिट्टी रखी हुई है वह उससे घड़ा भी बना सकता है और दीपक भी। सुनार के सामने सोना रखा हुआ है वह उससे मन चाहा आभूषण बना सकता है। दर्जी के हाथ में सुई है और कपड़ा भी। वह चाहे तो कुर्ता सी सकता है चाहे तो पजामा। संसार ठीक इसी प्रकार हमारे सामने रखा हुआ है उसमें सत, रज, तम तीनों का मिश्रण है चुनने वाला अपनी मर्जी के मुताविक उनमें से चाहे जो वस्तु चुन सकता है। बाग में कीचड़ भी है, गंदगी भी है और फलों की सुगन्ध भी है कीड़े-कीचड़ में घुस पड़ते हैं, मक्खियाँ गंदगी ढूँढ़ निकालती हैं और भौंरे सुगन्धित फूलों पर जा पहुँचते हैं। सब को अपनी इच्छित वस्तु मिल जाती है। चमगादड़ और उल्लू रात में भी प्रकाश पा लेते हैं, मधु मक्खियों को घास-पात के बीच मिठाई के ढेर मिल जाते हैं, सांप को ओस में भी विष वर्धक तत्व प्राप्त हो जाते हैं। त्रिगुण मयी प्रकृति में तीनों तरह की वस्तुएँ मौजूद हैं। इस दुकान पर खट्टा, मीठा, नमकीन तीनों तरह का सौदा बिकता है। जो जैसा ग्राहक आता है अपनी मन पंसद का सामान खरीद लेता है। इस भंडार में किसी वस्तु की कमी नहीं है। हर वस्तु के गोदाम भरे हुए हैं। माता ने षट्रस व्यंजन तैयार करके रखे हैं जिस बच्चे को जो रुचिकर हो खुशी-खुशी खा सकता है।

त्रिगुण भवी प्रकृति के दोनों पहलू मौजूद हैं, एक भला, दूसरा बुरा, एक काला दूसरा सफेद, एक धर्म दूसरा अधर्म, एक सुख दूसरा दुःख चुनाव की पूरी-पूरी आजादी आपको है। दुनिया का असली रूप क्या है ? यह प्रथम में ही बताया जा चुका है पर वह एक तत्वधिक व्याख्या है, व्यावदृष्टि से हर व्यक्ति की अपनी एक अलग दुनिया है। एक व्यक्ति चोर है उसके मानसिक आकर्षण से बहुत से चोरों से उसकी मैत्री हो जायेगी और जेल में, समाज में, घर में सब जगह उसे चोरी की चर्चा मिलेगी। घर वाले उससे बात करेंगे तो चोरी की, माता बुरा बतायेगी, स्त्री अच्छा, कोई चोरी का समर्थन करेगा कोई विरोध। घर से बाहर निकलने पर उसके परिचित लोग उससे जब मिलेंगे, उसके पेशे चोरी के बारे में ही बात भला-बुरा वार्तालाप करेंगे, अपने साथी चोरों से मिलेगा तो वही चोरी की बातें होंगी, जेल में भी चोर चोर मौसेरे भाई की तरह मिल बैठेंगे। और अपने प्रिय विषय की बातें खूब घुल-घुल कर करेंगे । इस प्रकार उस चोर के लिए वह सारा संसार चोरी की धुरी पर नाचता हुआ दिखाई देगा, उसको विश्व का सबसे बड़ा काम चोरी ही दिखाई पड़ेगा। अन्य बातों की ओर उसका ध्यान बहुत ही स्वल्प जायेगा। अन्य कार्यों पर उसकी उपेक्षा दृष्टि ही पड़ेगी। इसी प्रकार व्यभिचारी व्यक्ति की दृष्टि में सम्पूर्ण स्त्रियाँ वेश्याएँ व्यभिचारिणी, कुमार्गगामिनी दिखाई देंगी,उसी प्रकार की पुस्तकें तस्वीरें खिंच खिंच कर उसके पास जमा हो जायेगी, संगी साथी उसी प्रकार के मिल जायेगें, उसके मस्तिष्क में सब से बड़ा प्रश्न काम-वासना सम्बन्धी ही खड़ा रहेगा। नशेबाज अपने स्वभाव के भाई बन्दों को समेट कर अपनी अलग दुनिया बना लेते हैं।

एक ही व्यक्ति कई लोगों को कई प्रकार का दिखाई पड़ता है। माता उसे स्नेह भाजन मानती है, पिता आज्ञाकारी पुत्र मानता है, गुरु सुयोग्य शिष्य समझता है, मित्र हसोड़ साथी समझते हैं, स्त्री प्राण बल्लभ मानती है पुत्र उसे पिता समझता है, शत्रु बध करने योग्य समझता है, दुकानदार ग्राहक समझता है, नौकर मालिक मानता है, घोड़ा सवार समझता है पालतू सुग्गा उसे कैदी बनाने वाला जेलर देखता है, खटमल, पिस्सू उसे स्वादिष्ट खून से भरा हुआ कोठा समझते हैं। यदि इन सब सम्बन्धियों की माता, पिता, गुरु, मित्र, स्त्री, पुत्र, शत्रु, दुकानदार, नौकर, घोड़ा, सुग्गा, खटमल, पिस्सू आदि की उन मानसिक भावनाओं का चित्र आपको दिखाया जा सकें तो आप देखेंगे कि उस एक ही व्यक्ति के सम्बन्ध में यह सब संबन्धी कैसी-कैसी विचित्र कल्पना किये हुए हैं जो एक-दूसरे से बिलकुल नहीं मिलती। इनमें से एक भी कल्पना ऐसी नहीं हैं जो उस व्यक्ति के ठीक-ठीक और पूरे स्वरूप को प्रकट करता हो। जिसे, उससे जितना एवं जैसा काम पड़ता है वह उसके सम्बन्ध में वैसी कल्पना कर लेता है। तमांशा तो यह है वह मनुष्य स्वयं भी अपने बारे एक ऐसी ही कल्पना किये हुए है। मैं वैश्या हूँ, लखपती हूँ, वृद्ध हूँ, पुत्र रहित हूँ, कुरूप

हूँ, गण्य मान्य हूँ, दुःखी हूँ, बुरे लोगों से घिरा हुआ हूँ, आदि नाना प्रकार की कल्पनाएँ कर लेता है और उस कल्पना लोक में जीवन भर विचरण करता रहता है। जैसे दूसरे लोग उसके बारे में अपने मतलब की कल्पना कर लेते हैं वैसे ही मन भी अपने बारे में इन्द्रियों की अनुभूति के आधर पर अपने सम्बन्ध में एक लँगड़ी कल्पना कर लेता है और उसी कल्पना में लोग नशेवाज की तरह उड़ते रहते हैं "मैं क्या हूँ?" इस मर्म को यदि वह किसी दिन समझ पावे तो जाने कि मैंने अपने बारे में, कितनी गलत धारणा बना रखी थी।

लोग ऐसी ही अपनी-अपनी भावुकतापूर्ण मानसिक उड़ान के हवाई घोड़ों पर चढ़कर सच्चाई के धरातल से बहुत ऊँचे आकाश में उड़ते रहते हैं और उसी नशे में कोई मन के लड्डू खाया करता है कोई मन के चने चबाया करता है, कोई शराबी सामनेवाली दीवार को गालियाँ देकर अपना सिर फोड़ रहा है और कोई कुत्ते को बाहुपाश में कसकर प्रियतमा के चुम्बन आलिंगन का मजा ले रहा है। हम लोग अज्ञानता के नशे में सो रहे हैं किसी को महलों के सपने आ रहे हैं, कोई भयंकर दुस्वप्न देखकर भयभीत हो रहा है, किसी शेखचिल्ली की शादी हो रही है, कोई पगला अमीरी और बादशाही बघार रहा है। दुनिया के पागल खाने में तरह-तरह की खोपड़ियाँ डोल रही हैं। यह सभी मूर्तियाँ अपने ढंग की विचित्र हैं, सभी अपने को होशियार मान रहे हैं। आप कभी पागल खाने देखने गये हों और अधिक समय तक वहाँ बन्द रहने वाले "बुद्धिमानों" की बातें सुनी हो तो आसानी से दुनियाँदार लोगों के उन स्वप्न की तुलना कर सकते हैं जो कि वह दुनिया के बारे में सोते समय देखते रहते हैं।

मनुष्यों को नाना प्रकार के दुःखों में रोते हुए और नाना सुखों में इतराते हुए हम देखते हैं। "दुनिया बहुत बुरी है, जमाना बड़ा खराब है, ईमानदारी का युग चला गया, चारों ओर बेईमानी छाई हुई है, सब लोग धोखेबाज हैं धर्म धरती पर से उठ गया।" ऐसी उक्तियाँ जो आदमी बार-बार दुहराता है समझ लीजिए कि यह खुद धोखेबाज और बेईमान है। इसकी इच्छित वस्तुएँ इसके चारों ओर इकट्ठी हो गई हैं और उनकी सहायता से सुव्यवस्थित कल्पना चित्र इसके मन पर अकिंत हो गया है। जो व्यक्ति वह कहा करता है दुनिया में कुछ काम नहीं है। बेकारी का बाजार गर्म है, उद्योग-धन्धे उठ गये, अच्छे काम मिलते ही नहीं, समझ लीजिए कि उसकी अयोग्यता, उसके चेहरे पर छाई हुई है और जहाँ जाता है वहाँ के दर्पण में अपना मुख देख पाता है। जिसे दुनिया स्वार्थी, कपटी, दंभी, दुःखमय, कलुषित, दुर्गुणी, असभ्य, दिखाई पड़ती है समझ लीजिए कि इसके अन्तर में इन्हीं गुणों का बाहुल्य है। दुनिया एक लम्बा-चौड़ा बहुत बढ़िया बिल्लौरी काँच का चमकदार दर्पण है इसमें अपना मुँह हूबहू दिखाई पड़ता है। जो व्यक्ति जैसा है इसके लिए त्रिगुण मयी सृष्टि में से वैसे ही तत्व निकल कर आगे आजाते हैं।

क्रोधी मनुष्य जहाँ जायेगा, कोई न कोई लड़ने वाला उसे मिल ही जायेगा, घृणा करने वाले को कोई न कोई घृणित वस्तु मिल ही जायेगी। अन्यायी मनुष्य को सब लोग बड़े बेहूदे, असभ्य और दण्ड देने योग्य दिखाई पड़ते हैं। होता यह है कि अपनी मनोभावनाओं को मनुष्य अपने सामने वालों पर थोप देता है और उन्हें वैसा ही समझता है जैसाकि वह स्वयं है साधुओं को असाध्वी स्त्रियों से पाला नहीं पड़ता, विद्याभ्यासियों को सद्ज्ञान मिल ही जाता है, जिज्ञासुओं की ज्ञान पिपासा पूरी होती ही है, सतयुगी आत्माएँ हर युग में रहती हैं और उनके आस-पास सदैव सतयुग बर्तता रहता है।

हमारा यह कहने का तात्पर्य कभी नहीं है कि दुनियाँ दुध से धुली हुई है और आप अपने दृष्टि दोष से ही उसे बुरा समझ बैठे हैं। पीछे की पंक्तियों में यह बार-बार दुहराया जा चुका है कि दुनिया त्रिगुण मयी है। हर एक वस्तु तीन गुणों से बनी हुई है। उसमें आपसे छोटे दर्जे के बच्चे भी पढ़ते हैं आपकी समकक्षा से पढ़ने वाले भी हैं और वे भी हैं जो आपसे बहुत आगे हैं। तीनों ही किस्म के लोग यहाँ हैं। सतोगुणी वे विद्यार्थी हैं, जो आपसे ऊँची कक्षा के हैं, रजोगुणी वे हैं जो समकक्षा में पढ़ रहे हैं, तमोगुणी पिछली कक्षा वाले को कह सकते हैं। डाकू की तुलना में चोर सतोगुणी हैं क्योंकि डाकू की अपेक्षा चोर में उदारता के कुछ अंश अधिक हैं, किन्तु चोर और डाकू दोनों से श्रमजीवी मजदूर ऊँचा है उससे ब्राह्मण बड़ा है और ब्राह्मण से साधु बड़ा है। डाकू से साधु बहुत ऊँचा है पर जीवन मुक्त आत्माओं से साधू भी उतना ही नीचा है, जितना साधु से डाकू। यह डाकू क्या सब से नीचा है ! नहीं-सर्प से वह भी ऊँचा है। सर्प अपनी सर्पिनी के लिए उदार है, डाकू अपने परिवार में उदारता बरतता है, चोर अपने परिचित के यहाँ चोरी नहीं करता, ब्राह्मण अपनी जाति के कल्याण में दत्तचित्त रहता है, साधु मानव मात्र से उदारता करता है, जीवन मुक्तों को मनुष्य या चींटी के बीच कुछ अन्तर दिखाई, नहीं पड़ता। वह सर्वत्र एक ही आत्मा को देखता है। तात्पर्य यह है कि परम-पद पाने से पूर्व हर एक प्राणी अपूर्ण है, उसमें नीच स्वभाव कुछ न कुछ रहेगा ही, जिस दिन सारी नीचता समाप्त हो जायेगी उस दिन तो वह उन्नति के अन्तिम शिखिर पर पहुँच कर चरम ध्येय को ही प्राप्त कर लेगा। सृष्टि का हर प्राणी आज के वर्तमान स्वरूप में अपूर्ण है

अपूर्ण का अर्थ है सदोष। वेशक सब मिलाकर दोष से गुण ज्यादा है। अधर्म बेशक मौजूद है पर उससे धर्म ज्यादा है, अंधेरा बहुत है पर उससे प्रकाश ज्यादा है, दुनिया वाले बहुत खराब हैं पर उनमें खराबी से कहीं ज्यादा अच्छाई मौजूद हैं। हमें उस अच्छाई पर ही अपनी दृष्टि रखनी चाहिए, अच्छाई से ही आनन्द लेना चाहिए, और अच्छाई को ही बढ़ाना चाहिए। दिन में हम जगते हैं, प्रकाश में काम करते हैं, उजाले में रहना पसन्द करते हैं, जब रात का अँधेरा सामने आता है तो आँखें बन्द करके सो जाते हैं, जिन्हें रात में भी काम करना है वे दीपक जला लेते हैं। हमारी यह उजाले में काम करने अँधेरे में सो जाने की प्रवृत्ति यह सिखाती है कि संसार के साथ किस तरह व्यवहार करना चाहिए। किस आदमी में क्या सदगुण हैं ? उसे ढूँढ़ निकालिए और उन्हीं से संपर्क रखिये उन्हीं में आनन्द लीजिए उन्हें ही प्रोत्साहित कीजिए जो दोष हों उन्हें भी देखिये तो सही पर उनमें उलझिए मत। रात की तरह आँख बन्द कर लीजिए। महर्षि दत्तात्रेय की कथा जानने वालों को विदित होगा कि वे दुनिया के काले और सफेद दोनों पहलुओं का समन्वय करते रहे तब तक बड़े चिंतित और दु:खी रहे। जब उन्होंने काले पन से दृष्टि हटाली और सफेदी पर ध्यान दिया तो उन्हें सभी जीव आदरणीय, उपदेश देने वाले और पवित्र दिखाई पड़े उन्होंने चौबीस गुरु बनाये जिनमें कुत्ता, बिल्ली, सियार, मकड़ी, मक्खी चील, कौए जैसे जीव भी थे। उन्हें प्रतीत हुआ कि कोई भी प्राणी घृणित नहीं। सबके अन्दर महान आत्मा है और वे महानता के लिए आगे बढ़ रहे हैं जब हम अपनी दृष्टि को गुण ग्राहक बना लेते हैं तो दुनिया का सारा तख्ता पलट जाता है, दोष के स्थान पर गुण, बुराई के स्थान पर भलाई, दुख के स्थान पर सुख आ बैठता है। बहुत बुरी दुनिया, बहुत अच्छी बन जाती है।

तिल की ओर ताड़ छिपा हुआ है भूल-भुलैया के खेल में चोर दरवाजा जरा सी गलती के कारण छूट जाता है बाजीगर एक पोली लकड़ी रखता है उसमें एक तरफ डोरा पीला होता है दूसरी तरफ नीला। इस छेद में से डोरा खींचता है तो पीला निकलता है और उधर से खींचने पर वह नीला हो जाता है। लोग अचंभा करते हैं कि डोरा। किस तरह रंग बदलता है। पर उसे लकड़ी के पोले भाग में डोरे का एक भाग उलझा रहने के कारण यह अदल बदल होती रहती है। संसार किसी को बुरा दीखता है किसी को भला, इसका कारण हमारी दृष्टि की भीतरी उलझन है। इस उलझन का रहस्य भरा सुलझाव यह है कि आप अपनी दृष्टि कोण बदल डालिए। अपने पुराने कल्पना जंजालों को तोड-फोड़ कर फेंक दीजिए। तरह-तरह का उलझनों भरे जाल जो मस्तिष्क में बुन गये हैं उन्हें उखाड़ कर एक कोने में डाल दीजिए। अपना तीसरा नेत्र खोलकर पुरानी दुनिया को नष्ट कर डालिए वर्तमान कलियुग को प्रलय के गर्त में गिर पड़ने दीजिए और अपना सतयुग अपने मानस लोक में स्वयं रच डालिये आप दुनियाँ के अंधेरे को तमोगुण को देखना बन्द करके प्रकाश को, सद्गुणों को, देखिए। फिर देखिए कि यह दुनियाँ जो गौरव करती सी दिखलाई पड़ती थी, एक दिन बाद स्वर्ग बन जाती है। कल आपको अपना पुत्र अवज्ञाकारी लगता था, स्त्री कर्कश प्रतीत होती थी, भाई जान लेने की फिक्र में थे, मित्र कपटी थे, वे अपनी दृष्टि बदलने के साथ ही बिलकुल बदल जायेंगे। कारण यह है कि जितना विरोध दिखाई पड़ता है वास्तव में उसका सौवां हिस्सा ही मत-भेद होता है, शेष तो कल्पना के रंग दे देकर बढ़ाया जाता है। पुत्र ने सरल स्वभाव से या किसी अन्य कारण से आपका कहना नहीं माना। आपने समझ लिया कि यह मेरा अपमान कर रहा है। अपमान का विचार आते ही क्रोध आया, क्रोध के साथ अपने सुप्त मनोविकार जागे और उनके जागरण के साथ पक भयंकर तामसी मानसिक चित्र बन गया। जैसे- मन में भय उत्पन्न होते ही झाड़ी में से एक बड़े-बड़े दाँतों वाला, लाल आँखों वाला, काला भुसंण्ड भूत उपज पड़ा है वैसे ही क्रोध के कारण जगे हुए मनो-विकारों का आसुरी मानसिक चित्र पुत्र की देह में से झाड़ी के भूत की तरह निकल पड़ता है। बेचारा पुत्र यह चाहता भी न था कि मैं जान-बूझ कर अवज्ञा कर रहा हूँ, यह कोई पाप है, या इससे पिताजी नाराज होंगे पर परिणाम ऐसा हुआ जिसकी कोई आशा न थी। पिताजी आग बबूला हो गये, घृणा करने लगे, दण्ड देने पर उतारू हो गये और अपने दुर्भाग्य पर आँसू बहाने लगे। न कुछ का इतना बबण्डर बन गया। पुत्र सोचता है कि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ, खेलने जाने की धुन में पिता को पानी का गिलास देना भूल गया था या उपेक्षा कर गया था, इतनी-सी बात पर इतना क्रोध करना, लांछन लगाना, दण्ड देना कितना अनुचित है। इस अनुचितता के विचार के साथ ही पुत्र को क्रोध आता है, वह भी उसी प्रकारं अपने मनोविकारों को उकसाकर पिता के सरल हृदय में दुष्टता, मूर्खता, क्रूरता, शत्रु, और न जाने कितने-कितने दुर्गुण आरोपित करता है और वह भी एक वैसा ही भूत उपजा लेती है। दोनों में कटुता बढ़ती है। वे भूत आपस में लड़ते हैं और तिल का ताड़ बना देते हैं। कल्पना का भूत रत्ती भर दोष को, बढ़ाते-बढ़ाते पर्वत के समान बना देता है और वे एक-दूसरे के घोर शत्रु-जान के ग्राहक बन जाते हैं।

हमारे अनुभव में ऐसे अनेकों प्रसंग आये हैं जब हमें दो विरोधियों में समझौता कराना पड़ा है। दो शत्रुओं को मित्र बनाना

पड़ा है। दोनों में विरोध किस प्रकार आरम्भ हुआ इसका गंभीर अनुसंधान करने पर पता चला कि वास्तविक कारण बहुत ही स्वल्प था, पीछे दोनों पक्ष अपनी-अपनी कल्पनाएँ बढ़ाते गये और बात का बतंगड़ बन गया। यदि एक-दूसरे को समझने की कोशिश करें दोनों अपने-अपने भाव एक दूसरे पर प्रकट कर दें और एक दूसरे की इच्छा स्वभाव, मनोभूमि; का उदारता से अध्ययन करें तो जितने आपसी तनाव और झगड़े दिखाई पड़ते हैं उनका निन्यानवें प्रतिशत भाग कम हो जाय और सौ भाग से एक भाग ही रह जावे। क्लेश, कलह के वास्तविक कारण इतने कम हैं कि उनका स्थान आटे में नमक के बराबर स्वाद परिवर्तन जितना ही रह जाता है। मिर्च बहुत कड़ुई है और उसका खाना सहन नहीं होता पर स्वल्प मात्रा तो रुचिकर हैं।

नीच योनियों से उठकर मनुष्य जाति से आये हुए, मनजाति रूपी माता के गर्भ से नवीन प्रसव हुए बालक बहुत ही अपूर्ण होते हैं इसमें मनुष्य समाज के अनुरूप सारी योग्यताएँ आरम्भ में नहीं होतीं। यह बालक दिन में भी सो जाते हैं। रात को जगते भी रहते हैं, कपड़ों पर मल-मूत्र भी फिर देते हैं, भूख लगने जैसी साधारण आवश्यकता को पूरा करने के लिए ऐसे रोते-चिल्लाते हैं कि घर गूँज उठता है। इसका उत्पात अवश्य बना रहता है। जिस माता का प्रसव क्रमशः निरंतर तीव्र गति से जारी रहता है उसका घर इन उत्पातों से भी भरा ही रहेगा। परन्तु क्या कोई पिता-माता, भाई, बहिन इन नव-जात शिशुओं के उत्पातों से घबड़ा कर घर छोड़ देता है ! या इस बढ़ोतरी से डरकर घर को रहने से अयोग्य घोषित कर देता है ! सच तो यह है कि वह उत्पात भी उदार हृदय वालों के लिए एक अच्छा खासा मनोरंजन और दिन काटने का सहारा होता है। यदि उत्पाती बालकों की वृद्धि न होती तो पालता है वह कैसे मिल सकता था !

हर उन्नत आत्मा का कर्त्तव्य है कि यह आत्म विकाश के लिए दूसरों की उन्नति का भी प्रयत्न करे। गिरे हुओं को बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करे। समाज में तमोगुण उबलते रहेंगे उनसे डरने या घबराने की जरूरत नहीं है आत्मोन्नति चाहने वाली आत्मा का कर्त्तव्य है कि उन उत्पातों में सुधार करते हुए अपनी भुजाएँ मजबूत बनावें। दुष्टता को बढ़ने न देना, पाशविक तत्वों को मनुष्य तत्व में न घुलने देने का प्रयत्न करते रहना आवश्यक है। चतुर हलवाई दूध को मक्खियों से बचाता रहता है ताकि दूध अशुद्ध न हो जाय। कर्म कौशल यह कहता है कि समाज में पाप वृत्तियों को बढ़ने से रोकना चाहिए। इस विरोध कर्म में बड़ी होशियारी की जरूरत है वही तलवार की धार है इस पर चलना सचमुच योग कहा जायेगा।

बुराइयों से भरे हुए इस विश्व में आपका कार्य क्या होना चाहिए ! इस प्रश्न का उत्तर भगवान सूर्य नारायण हमें देते हैं वे प्रकाश फैलाते हैं ! अँधेरा अपने आप भाग जाता है, बादल मेह बरसाते हैं ग्रीष्म का पारा अपने आप ठण्डा हो जाता है, हम भोजन खाते हैं भूख अपने आप बुझ जाती है, स्वास्थ्य के नियमों की साधना करते हैं दुर्बलता अपने आप दूर हो जाती है, ज्ञान प्राप्त करते हैं अज्ञान अपने आप दूर हो जाता है। सीधा रास्ता वह है कि संसार में से बुराइयों को हटाने के लिए अच्छाइयों का प्रचार करना चाहिए। रोग निवारण का सच्चा उपाय यह है कि जनता के मन में स्वास्थ्य के नियम की महत्ता धँसाई जाय। बीमार होने पर दवा देना ठीक है पर समाज को निरोग करने में बेचारे अस्पताल असमर्थ हैं। दण्ड नीति का भी एक स्थान है पर वह अस्पताल की जरूरत पूरी करता है। तात्कालिक आवश्यकता का उपचार करती है, मूल कारणों का निवारण दण्ड नीति द्वारा नहीं हो सकता। विरोध, आपरेशन के समान एक तात्कालिक कार्य है एक मात्र आपरेशन करना ही जिस डाक्टर का काम हो वह कसाइ कहलावेगा। उस डाक्टर की महिमा है जो घाव को भर देता है। ऐसा डाक्टर किस काम का जो पीव निकालने के लिए फोड़ा तो चीरे पर ऐसी बुरी तरह चीरे कि घाव बहुत बढ़ जाय और चिकित्सा की मूर्खता में आपरेशन का घाव बढ़ते-बढ़ते गहरा पहुँच कर हड्डी को सड़ादे और रोगी के लिए प्राण घातक बन जाय।

आप सरल मार्ग को अपनाइए लड़ने, बड़बड़ाने और कुढ़ने की नीति छोड़कर दान, सुधार, स्नेह के मार्ग का अवलम्बन कीजिए। एक आचार्य का कहना है कि "प्रेम भरी बात, कठोर लात से बढ़कर है।" हर एक मनुष्य अपने अन्दर कम या अधिक अंशों में सात्विकता को धारण किये रहता है, आप उसकी सात्विकता को स्पर्श करिये और उसकी सुप्तता में जागरण उत्पन्न कीजिए। किस व्यक्ति में कितने सात्विक अंश हैं उन्हें समझिये और उसी अनुसार उन्हें बढ़ाने का प्रयत्न कीजिए। अँधेरे में मत लड़िए वरन् प्रकाश फैलाइए, अधर्म बढ़ता हुआ दीखता हो तो निराश मत हूजिए वरन् धर्म प्रचार का प्रयत्न कीजिए। बुराई को मिटाने का यही तरीका है कि अच्छाई को बढ़ाया जाय। आप चाहते हैं कि इस बोतल से हवा निकल जाय, तो उसमें पानी दीजिए। बोतल में से हवा निकालना चाहें पर उसके स्थान पर कुछ भरें नहीं तो आपका प्रयत्न बेकार जायेगा। एक बार हवा को को निकाल देंगे दूसरी बार फिर भर जायेगी। गाड़ी जिस स्थान पर खड़ी हुई है वहाँ खड़ी रखना पसंद नहीं करते तो उसे खींच कर आगे बढ़ा दीजिए आपकी इच्छा पूरी हो जायेगी। आप

गाड़ी को तो हटाना चाहें पर उसे आगे बढ़ाना पंसद न करें, इतना मात्र संतोष करलें कि कुछ क्षण के लिए पहियों को ऊपर उठा दिया करें, तो इससे काम न चलेगा । जितनी देर पहियों को ऊपर उठायें रहेगें उतनी देर तो स्थान खाली रहेगा, पर जैसे ही उसे छोड़ेंगे वैसे ही वह जगह फिर घिर जावेगी। संसार में जो दोष आपको दिखाई पड़ते हैं, उनको मिटाना चाहते हैं तो उनके विरोधी गुणों को फैला दीजिए। आप गंदगी बटोरने का काम क्यों पसंद करें ? उसे दूसरों के लिए छोड़िये आप तो इत्र छिड़कने के काम को ग्रहण कीजिए। समाज में मरे हुए पशुओं के चमड़े उधेड़ने की भी जरूरत है पर आप तो प्रोफेसर बनना पसंद कीजिए। ऐसी चिन्ता न कीजिए कि में चमड़ा ना उधेडूंगा तो कौन उधेड़ेगा? विश्वास रखिये प्रकृति के साम्राज्य में उस तरह के भी अनेक प्राणी मौजूद हैं। अपराधियों को दण्ड देने वाले स्वभावत: आवश्यकता से अधिक हैं। बालक किसी को छेड़ेगा तो उसके गाल पर चपत रखने वाले साथी मौजूद हैं। पर ऐसे साथी कहाँ मिलेंगे जो उसे मुफ्त दूध पिलायें और कपड़े पहनायें । आप चपत रखने का काम दूसरों को करने दीजिए। लात को जबाव घूसों से देने में प्रकृति बड़ी चतुर है। आप तो उस माता का पवित्र आँचल ग्रहण कीजिए जो बालक को अपनी छाती का रस निकाल कर पिलाती है और खुद ठण्ड में सिकुड़ कर बच्चे को शीत से बचाती है। आप को जो उच्च दार्शनिक ज्ञान प्राप्त हुआ है इसे विद्वान प्रोफेसर की भाँति पाठशाला के छोटे-छोटे छात्रों में बाँट दीजिए।

हो सकता है कि लोग आपको दु:ख दें, आपका तिरस्कार करें, आपके महत्त्व को ना समझें, आपको मूर्ख गिनें और विरोधी बन कर मार्ग में अकारण कठिनाइयाँ उपस्थित करें पर इसकी तनिक भी चिन्ता मत कीजिए और जरा भी विचलित मत हूजिए, क्योंकि इनकी संख्या बिलकुल नगण्य होगी। सौ आदमी आपके सत्यप्रयत्न का लाभ उठायेंगे तो दो चार विरोधी भी होंगे। यह विरोध आपके लिए ईश्वरीय प्रसाद की तरह होगा ताकि आत्म निरीक्षण का, भूल सुधार का अवसर मिले और संघर्ष से जो शक्ति आती है उसे प्राप्त करते हुए तेजी से आगे बढ़ते रहें

आप समझ गये होंगे कि संसार-असार है, इसलिए वैराग्य के योग्य है, पर आत्मोन्नति के लिए कर्त्तव्य धर्म पालन करने में यह वैराग्य बाधक नहीं होता। सच तो यह है कि वैराग्य को अपनाकर ही हम विकास के पथ पर तीव्र गति से बढ़ सकते हैं। संसार को दु:खमय मानना एक भारी भूल है। यह सुखमय है। यदि संसार में सुख न होता तो स्वतन्त्र शुद्ध, बुद्ध और आनन्दी आत्मा इसमें आने के लिए कदापि तैयार न होता। दु:ख अैर कुछ नहीं, सुख के अभाव का नाम दुख है। राज-मार्ग पर चलना छोड़ कर कटीली झाड़ियों में भटकना दुख है। दु:ख, विरोध, वर, क्लेश, कलह का अधिकांश भाग काल्पनिक होता है, दूसरे लोग सचमुच उतने बुरे नहीं होते, जितने कि हम समझते हैं। यदि हम अपने मस्तिष्क को शुद्ध कर डालें, आँख पर चढ़ा रंगीन चश्मा उतार फेंके, तो संसार का सच्चा स्वरूप दिखाई देने लगेगा। यह दर्पण के समान है भले के लिए भला और बुरे के लिए बुरा। जैसे ही हमारी दृष्टि भलाई देखने और स्नेह पूर्ण सुधार करने की हो जाती है वैसे ही सारा संसार अपना प्रेम हमारे ऊपर उँढ़ेल देता है, अन्तरिक्ष लोक से मुक्त आत्मा का अविरल प्रेम रस फुहारे की तरह झरने लगता है। उसे ठण्डा चश्मा लगा लेने पर जेठ की जलती दुपहरी शीतल हो जाती है वैसे ही सुख की भावना करते ही विश्व का एक-एक कण अपनी सुख शान्ति का भाग हमारे ऊपर छोड़ता चला जाता है। गुबरीले कीड़े के लिए विष्ठा के और हंस के लिए मोतियों के खजाने इस संसार में भली प्रकार भरे हुए हैं। आपके लिए वही वस्तुएँ तैयार हैं जिन्हें चाहते हैं संसार को दु:ख मय, पापी, अन्यायी मानते हैं तो वह मनसा भूत की तरह उसी रूप में सामने आता है। जब सुख मय मान लेते हैं तो मस्त फकीर की तरह रूखी रोटी खाकर बादशाही आनन्द लूटते हैं सब सुख दु:ख और पाप का कुछ अंश दुनिया में है पर वह दु:ख सहन करने योग्य है, सुख की महत्ता ढूँढ़ने वाला है, जो पाप है वह आत्मोन्नति का प्रधान साधना है। यदि परीक्षा की व्यवस्था न हो तो विद्वान और मूर्ख में कुछ अन्तर ही न रहे।

पाठकों को उपरोक्त पंक्तियों से यह जानने में सहायता हुई होगी कि सृष्टि जड़ होने के कारण हमारे लिए दु:ख-सु:ख का कारण नहीं कही जा सकती। वह दर्पण के समान है जिससे हर व्यक्ति अपना कुरूप या सुन्दर मुख जैसे का तैसा देख सकता है। “संसार कल्पित है” दर्शन शास्त्र की इस उक्ति के अन्तर्गत यही मर्म छिपा हुआ है कि हर व्यक्ति अपनी कल्पना के अनुसार संसार को समझता है। कई अंधो ने एक हाथी को छुआ। जिसने पूँछ छुई थी। वह हाथी को साँप-सा बताने लगा, पैर पकड़ा उसे खम्भे सा जँचा, जिसने पेट पकड़ा उसे पर्वत के समान प्रतीत हुआ। संसार भी ऐसा ही है। इसका रूप अपने निकटवर्ती स्थान को देखकर निर्धारित किया जाता है। आप अपने आस-पास पवित्रता, प्रेम, भ्रातृभाव, उदारता, स्नेह, दया, गुण दर्शन का वातावरण तैयार करलें अपनी दृष्टि को गुण ग्राही बनालें तो, हम शपथ पूर्वक कह सकते हैं कि आपको यही सांर नंदन वन की तरह स्वर्ग के उच्च सोपान की तरह, आनन्द दायक बन जायेगा।

भले ही पड़ौसी लोग अपनी बुरी और दुःखदायी कल्पना के अनुसार इसे बुरा और कष्ट प्रद समझते हैं।

दुःख का कारण पाप ही नहीं है

आमतौर से दुख को नापसन्द किया जाता है। लोग समझते हैं कि आपके फलस्वरूप अथवा ईश्वरीय कोप के कारण दुःख आते हैं। परन्तु यह बात पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। दुःखों का एक कारण पाप भी है यह तो ठीक है परन्तु यह ठीक नहीं कि समस्त दुःख पापों के कारण ही आते हैं।

बहुत बार ऐसा भी होता है कि ईश्वर की कृपा के कारण, पूर्व संचित पुण्यों के कारण और पुण्य-संचय की तपश्चर्या के कारण भी दुःख आते हैं। भगवान को किसी प्राणी पर दया करके उसे अपनी शरण लेना होता है, कल्याण के पथ की ओर ले जाना होता है तो उसे भव-बन्धन से, कुप्रवृत्तियों से छुड़ाने के लिए ऐसे दुःखदायक अवसर उत्पन्न करते हैं जिनकी ठोकर खाकर मनुष्य अपनी भूल को समझ जाय, निद्रा छोड़कर सावधान हो जाय।

संसारिक मोह-ममता और विषय-वासना का चस्का ऐसा लुभावना होता है कि उन्हें साधारण इच्छा होने से छोड़ा नहीं जा सकता। एक हलका-सा विचार आता है कि जीवन जैसी अमूल्य वस्तु का उपयोग किसी श्रेष्ठ काम में करना चाहिए परन्तु दूसरे ही क्षण ऐसी लुभावनी परिस्थितियाँ सामने आजाती हैं, जिनके कारण वह हलका विचार उड़ जाता है और मनुष्य जहाँ का तहाँ उसी तुच्छ परिस्थिति में पड़ा रहता है। इस प्रकार की कीचड़ में से निकालने के लिए भगवान अपने भक्त में झटका मारते हैं, सोते हुए को जगाने के लिए बड़े जोर से झकझोरते हैं। यह झटका और झखझोरा हमें दुःख जैसा प्रतीत होता है।

मृत्यु के समीप तक लेजाने वाली बीमारी, परम-प्रिय स्वजनों की मृत्यु, असाधारण घाटा, दुर्घटना, विश्वसनीय मित्रों द्वारा अपमान या विश्वासघात जैसी दिल को चोट पहुँचाने वाली घटनाएँ इसलिए भी आती हैं कि उनके जवरदस्त झटके के आघात से मनुष्य तिलमिला जाय और सजग होकर अपनी भूल सुधार ले। गलत रास्ते को छोड़कर सही मार्ग पर आजाय।

पूर्ण संचित शुभ संस्कारों के कारण इसलिए दुःख आते हैं कि शुभ संस्कार एक सच्चे चौकीदार की भाँति उस मनुष्य को उत्तम मार्ग पर लेजाना चाहते हैं परन्तु पाप की ओर उसकी प्रवृत्ति बढ़ती है तो वे शुभ संस्कार इसे अपने ऊपर आक्रमण समझते हैं और इससे बचाव करने के लिए पूरा प्रयत्न करते हैं। कोई आदमी पाप कर्म करने जाता है परन्तु रास्ते में ऐसा विघ्न उपस्थित हो जाता है कि उसके कारण उस कार्य में सफलता नहीं मिलती। वह पाप होते-होते बच जाता है। चोरी करने के लिए जाते हुए यदि रास्ते में पैर टूट जाय और दुष्कर्म पूरा न हो सके तो समझना चाहिए कि पूर्व संचित शुभ संस्कारों के कारण पुण्य फल के कारण ऐसा हुआ है।

धर्म कर्म करने में, कर्त्तव्य धर्म का पालन करने में असाधारण कष्ट सहना पड़ता है। अभावों का सामना करना होता है। इसके अतिरिक्त दुष्टात्मा लोग अपने पाप पूर्ण स्वार्थों पर आघात होता देखकर उस धर्म सेवा के विरुद्ध हो जाते हैं और नाना प्रकार की यातनाएँ देते हैं, इस प्रकार के कष्ट सत्पुरुषों को पग-पग पर झेलने पड़ते हैं। यह पुण्य संचय के, तपश्चर्या के अपनी सत्यता की परीक्षा देकर स्वर्ण समान चमकाने वाले दुःख हैं।

निस्सन्देह कुछ दुःख पापों के परिणाम स्वरूप भी होते हैं परन्तु यह भी निश्चित है कि भगवान की कृपा से, पूर्व संचित शुभ संस्कारों से और धर्म सेवा की तपश्चर्या से भी वे आते हैं। इसी प्रकार जब अपने ऊपर कोई विपत्ति आवे तो केवल यह ही न सोचना चाहिए कि हम पापी हैं, अभागे हैं, ईश्वर के कोप भाजन हैं। सम्भव है वह कष्ट हमारे लिए किसी हित के लिए ही आया हो, उस कष्ट की तह में शायद कोई ऐसा लाभ छिपा हो जिसे हमारा अल्पज्ञ मस्तिष्क आज ठीक-ठीक रूप से न पहचान सके।

दूसरे लोग अनीति और अत्याचार करके किसी निर्दोष व्यक्ति को सता सकते हैं। शोषण, उत्पीड़न और अन्याय का शिकार होकर कोई व्यक्ति दुःख पा सकता है। अत्याचारी को भविष्य में उसका दण्ड मिलेगा पर इस समय तो निर्दोष को ही कष्ट सहना पड़ा। ऐसी घटनाओं को उस दुःख पाने वाले व्यक्ति के कर्मों का फल नहीं कहा जा सकता।

विद्या पढ़ने में विद्यार्थी को काफी कष्ट उठाना पड़ता है, माता को बालक के पालने में कम तकलीफ नहीं होती, तपस्वी और साधु पुरुष लोग कल्याण और आत्मोन्नति के लिए नाना प्रकार के दुःख उठाते हैं, इस प्रकार के स्वेच्छा से स्वीकार किये हुए कष्ट और उत्तरदायित्व को पूरा करने में जो कठिनाई उठानी पड़ती है एवं संघर्ष लेना पड़ता है उसे दुष्कर्मो का फल नहीं कहा जा सकता।

हम मौज मारने वाले को पूर्व जन्म का धर्मात्मा और हर कठिनाई में पड़े हुए व्यक्ति को पूर्व जन्म का पापी कह देना उचित नहीं। ऐसी मान्यता अनुचित एवं भ्रम पूर्ण है। इस भ्रम के आधार पर कोई व्यक्ति अपने को बुरा समझे, आत्मग्लानि करे, अपने को नीच या निन्दित समझे इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। कर्म की गति गहन है उसे हम ठीक प्रकार नहीं जानते केवल परमात्मा ही जानता है।

हमें अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए हर घड़ी प्रयत्नशील एवं जागरूक रहना चाहिए। दु:ख सुख जो आते हों उन्हें धैर्य पूर्वक स्वीकार करना चाहिए। मनुष्य की जिम्मेदारी अपने कर्त्तव्य धर्म को पालन करने की है। सफलता असफलता या दु:ख सुख अनेक कारणों से होते हैं, उसे ठीक प्रकार कोई नहीं जानता।

भाग्यवाद की भ्रान्त धारणा और प्रारब्ध का यथार्थ

सुख-सुविधा हर किसी को अभीष्ट है। अनुकूल परिस्थितियाँ मिलतीं तो अधिक उपार्जन सम्भव हो सकता था। दूसरे सहयोग करते–आवश्यक साधन उपलब्ध होते तो सम्पन्नता और सफलता की कमी न रहती। किन्तु प्रयत्न करने पर भी अनुकूलता मिल नहीं पाती। अभीष्ट सफलता पीछे हटती और दूर भागती जाती है तो निराशा से मन खिन्न रहने लगता है। दूसरे लोग अपनी ही योग्यता के थे– अपने जितना ही प्रयत्न करते थे, पर उन्हें उपयुक्त सफलताएँ मिल गईं और वैसे साधन एवं अवसर न मिलने के कारण अपना प्रगति पथ अवरुद्ध ही बना रहा। परिस्थितियाँ अनुकूल हुई ही नहीं, अवसर मिले ही नहीं, साधन जुटे ही नहीं, सहयोग रहा ही नहीं फिर एकांकी प्रयत्न से भी क्या बनता। हाथ मलते हुए, दुर्भाग्य का रोना रोते हुए मन मसोस कर बैठा रहना पड़ा। समुन्नत परिस्थिति प्राप्त करने के स्वप्न धरे रह गये ।

इन निराशाजनक परिस्थितियों में प्राय: मनुष्य का अपने कौशल और पुरुषार्थ की कमी का दोष ही प्रधान होता है। सूक्ति है कि– असफलता मिलने पर यही सोचना चाहिए कि उसे प्राप्त करने के लिए जितने प्रयत्न की आवश्यकता थी उसमें कमी रही। अगली बार दूने उत्साह और साहस के लिए नया प्रयत्न करना चाहिए और बार-बार असफलताएँ आने पर भी पुरुषार्थ तब तक जारी रखना चाहिए जब तक कि सफलता सामने ही आकर खड़ी न हो जाय। यह उत्साहवर्धक परामर्श जनसाधारण को पुरुषार्थ की शक्ति और भविष्य की आशा के प्रति आस्थावान बनाये रहने की दृष्टि से उपयुक्त और आवश्यक है। ऐसे कथनों का समर्थन ही किया जाना चाहिए। अनवरत श्रम, अथक पुरुषार्थ और अडिग साहस और अविचल धैर्य की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही उत्तम है। लोक शिक्षण की दृष्टि से पुरुषार्थ परायणता का ही समर्थन किया जाना चाहिए। नीतिकारों का यही प्रयत्न भी रहा है। इस प्रकार के प्रतिपादनों की उपयोगिता के सम्बन्ध में दो मत हो ही नहीं सकते।

किन्तु तात्विक दृष्टि से गम्भीरतापूर्वक जब तथ्यों पर विचार करते हैं तो एक दूसरा पक्ष भी उभर कर आता है। वह यह कि कितने ही लोगों के सामने ऐसे अप्रत्याशित संकट आ खड़े होते हैं जिनके लिए उन्हें किसी भी प्रकार दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उसने ऐसा कोई काम नहीं किया था जिससे वह मुसीबत सिर पर टूट पड़ती। दुर्घटनाएँ कौन न्यौत बुलाते हैं। अनाचारियों के आक्रमण से होने वाली क्षति में किसका क्या दोष होता है। चोर, उचक्के जिस ढंग से हाथ साफ करते हैं उसमें सामान्य सजगता की कमी नहीं वरन् कुटिलता के कुचक्र ही प्रधान होते हैं। प्रकृति प्रकोपों की तरह कई बार परिस्थितियाँ अकारण ही इतनी प्रतिकूल हो जाती हैं कि उनमें अपना दोष क्या रहा होगा ? अपनी किस भूल ने यह विपत्ति की होगी ? ऐसा बहुत खोजने पर भी कुछ हाथ नहीं लगता और भाग्य का खेल कह कर किसी प्रकार जी हलका करना पड़ता है।

ऐसे ही अवसाद कई बार प्रगति प्रयासों के असफल होने के सम्बन्ध में भी सामने आते रहते हैं। उसी योग्यता के, उसी मार्ग पर चलने वाले, उसी उपाय का अवलम्बन करने वाले दूसरे लोग बाजी पर बाजी जीतते, सफलता पर सफलता पाते चाले जाते हैं। पर पूरी ईमानदारी और समझदारी के साथ किये गये अपने प्रयत्न बहुत ही स्वल्प परिणाम दे पाते हैं। कई बार तो बुरी तरह निराशा ही हाथ लगती है। यदि अपनी ही भूल से ऐसा हुआ तो वह भूल क्या थी ? यदि थी तो क्या वह जान-बूझकर की गई? इन प्रश्नों पर बहुत ढूँढ़ खोज करने पर भी कुछ ऐसे तथ्य हाथ नहीं लगते, जिन्हें असफलता का कारण ठहराया जाय, भूल माना जाय और भविष्य में उसे सुधारने का प्रयत्न किया जाय। अनेक बार मनुष्य स्वयं बिल्कुल निर्दोष होता है। परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी विचित्र बन जाती हैं कि सब कुछ किया कराया मिट्टी हो जाता है। अति वृष्टि, पाला, टिड्डी, कीड़े आदि के कारण किसान का तत्परतापूर्वक किया गया श्रम जब निरर्थक चला जाता है तो उसकी समझ में नहीं आता कि उससे कहाँ क्या भूल हुई ? और वैसी भूल भविष्य में न होने पाये, इसके लिए वह भविष्य में क्या सावधानी बरते ? ऐसे ही अगणित प्रसंग सामने आते रहते है, जिनसे पुरुषार्थ की सर्वसमर्थता के पक्ष में प्रस्तुत किये गये प्रतिपादनों की यथार्थता के सम्बन्ध में सन्देह होने लगता है।

इन्हीं आशंकाओं के मध्य भाग्यवाद का जन्म होता है। कहा जाता है–"मनुष्य नियति के हाथ की कठपुतली है। भाग्य टलता

नहीं। विधि का विधान अकाट्य है। जो होनी है सो होकर रहती है।" इसी प्रकार के और भी बहुत से कथन तब कहे जाते हैं। जब प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। कोई अप्रत्याशित संकट सामने आखड़े होते हैं अथवा सफलता मिलते-मिलते अपना रुख बदलती और बिजली की तरह आशा की चमक दिखा कर कहीं से कहीं चली जाती है। ऐसा ही तब भी कहा जाता है जब अन्धे के हाथ बटेर लगती है। कितनों को ही ऐसी सफलताएँ हाथ लग जाती हैं जिसके लिए उनके पुरुषार्थ को श्रेय किसी भी प्रकार नहीं दिया जा सकता। पूर्वजों की बड़ी सम्पत्ति उत्तराधिकार में मिल जाय तो इसमें प्राप्तिकर्त्ता का श्रेय क्या है ? लाटरी खुल जाने जैसी सफलताओं में किस कौशल या पौरुष को सराहा जाय ? तेजी मन्दी के चक्र में कई व्यापारी देखते-देखते दिवालिया होते और देखते-देखते लखपती होते देखे जाते हैं। उसमें किसको मूर्ख किसको बुद्धिमान कहा जाय? नदी के बाढ़ आती है। किसी का खेत काट कर उसकी आजीविका को उदरस्थ कर जाती है। किसी के ऊपर खेत में कहीं से लाकर ऐसी उपजाऊ मिट्टी पटक दी जाती है कि वह उसकी पैदावार से देखते-देखते अमीर बन जाता है। नदी द्वारा एक की भूमि को काट ले जाना और दूसरे को समृद्धि का वरदान बरसा जाना । इसे क्या कहा जाय ? इसके लिए दोष या श्रेय किसे दिया जाय? आँधी तूफान में किसका छप्पर उजड़ गया और घर बिगड़ गया इसमें उसकी क्या भूल बताई जाय? और भविष्य में क्या सावधानी बरतने का परामर्श दिया जाय?

यह ठीक है कि यह अपवादों की शृंखला है। सामान्य क्रम नहीं है। फिर भी अपवाद भी सर्वथा उपेक्षणीय नहीं हैं। उनका भी कारण खोजना होगा। विशेषतया ऐसी दशा में जबकि वे अत्यधिक परिमाण में आये दिन देखने को मिलते हैं। अत्युक्ति न समझी जाय और पौरुष समर्थकों को बुरा न लगे तो नम्रतापूर्वक दबी जवान से यहाँ तक कहा जा सकता है कि 'भाग्य का खेल' प्रायः तीस प्रतिशत घटना क्रमों में काम कर रहा होता है। यों महत्ता तो कर्म निष्ठा की ही रहेगी और खुला समर्थन उसी को दिया जायेगा। पर इन अप्रत्याशित परिणामों के सम्बन्ध में भी विचार तो किया ही जाना चाहिए।

विज्ञान कहता है कि-"इस संसार में ऐसा कभी कुछ नहीं हो सकता जो प्रकृति नियम के विपरीत हो।" भूकम्प, बिजली गिरना, ज्वालामुखी फटना, तूफान जैसी घटनाएँ सामान्य बुद्धि को आकस्मिक लगती हैं और उनके पीछे विपर्यय दीखता है, पर वस्तुतः जैसा कुछ होता नहीं है। उनके पीछे भी प्रकृति के सूक्ष्म नियम ही काम करते हैं। यह दूसरी बात है कि उन नियमों की जानकारी सर्वसाधारण को न हो अथवा उस तरह की घटना क्रम आये दिन घटित न होने के कारण वे आश्चर्यजनक लगते हों। चमत्कार उन्हीं को कहते हैं जो दृश्य आमतौर से देखने को नहीं मिलते। जब भी विज्ञान के आविष्कार प्रथम बार हुए तो उन्हें भारी चमत्कारों के रूप में देखा गया था। रेल, टेलीफोन, बिजली रेडियो, सिनेमा आदि पूर्व काल में अप्रचलित आविष्कार जब सामने आये तो सामान्य बुद्धि हतप्रभ रह गई और उसे जादू या भूत देव की करामात समझा गया। पीछे अब जब विज्ञान और आविष्कारों का सिलसिला समझ में आ गया हो तो अन्तगृह यात्रा पर निकले यानों, अणु-आयुधों, लेसर किरणों जैसी आश्चर्यजनक उपलब्धियों तक को साधारण बात मान लिया गया है।

जादू नाम की कोई वस्तु दुनिया में नहीं है। लोगों की आँखों की परख क्षमता को चकमा दे सकने की सफलता का नाम ही जादूगरी है। अध्यात्म क्षेत्र में सिद्धि चमत्कारों का वर्णन बहुत होता रहता है। उन्हें देखकर आश्चर्य तो किया जा सकता है, पर ऐसा नहीं माना जा सकता है कि यह आकस्मिक है। इनके पीछे प्रकृति की सामान्य नियम परम्परा का हाथ नहीं है। इसमें अव्यवस्था के लिए रंच मात्र भी गुंजाइश नहीं है। यहाँ ऐसा कुछ हो ही नहीं सकता जिसे अप्रत्याशित, असम्भव या चमत्कारी कहा जा सकेगा। जिसे हम नहीं जानते उस अविज्ञात को ही अपवाद कह सकते हैं। वस्तुतः उन अपवादों के पीछे भी प्रकृति का परिपूर्ण व्यवस्थाक्रम काम कर रहा है। आदि काल में सूर्य, बिजली, आग, वर्षा आदि आँख मिचौनी खेलने वाले तथ्यों को देवता माना जाता था। उनकी मनौती मनाई और बलि चढ़ाई जाती थी। चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण किन्हीं राक्षसों का आकस्मिक आक्रमण समझा जाता था, पर अब वह बात रही नहीं है। विज्ञान के शोध निष्कर्षों ने भली प्रकार समझा दिया है कि यहाँ अप्रत्याशित कुछ नहीं है। अविज्ञात को ही अपवाद कहते हैं। वस्तुतः इस सृष्टि में अन्धेरगर्दी के लिए, व्यतिक्रम के लिए, कहीं रत्ती भर भी गुंजाइश नहीं है।

अविज्ञात-अप्रत्याशित को ही अपवाद कहा जाता है। वस्तुतः वहाँ यथार्थवाद का ही अस्तित्व है, अपवाद का अर्थ इतना ही है कि जिस आधार पर वह असामान्य घटनाक्रम उपस्थित हुआ उसकी जानकारी अपने पल्ले नहीं पड़ी है। यों अपवादों का सिलसिला चलता ही रहेगा क्योंकि सामान्य व्यवस्था की ही हमें जानकारी है और उसी को देखने समझने की आदतें भी हैं। सृष्टि के अविज्ञात नियमों के आधार पर जब भी कुछ असामान्य घटित होगा तभी उसे अपवाद कह दिया जाया करेगा। प्रकृति के रहस्य अनन्त हैं और मनुष्य की बुद्धि अत्यन्त स्वल्प। ऐसी दशा में असाधारण तो घटित होता ही रहेगा। उचित यही है कि उसके सम्बन्ध में हम अपना दृष्टिकोण साफ कर लें। अपनी असीमता

को स्वीकार करें और असमंजस में न पड़कर तथ्यों तक पहुँचने का यथा सम्भव प्रयत्न करते रहें।

पिछले दिनों एक सस्ता तरीका अपनाया जाता रहा है कि- हर अपवाद को देव-दानवों के क्रिया-कृत्य मान कर समाधान कर लिया जाता रहा है। भाग्यवाद भी कुछ इसी प्रकार का दर्शन है जिसमें देवताओं के द्वारा भाग्य निर्माण की बात कह कर एक विचित्र प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न करदी गई है। विचारशील वर्ग में अपवादों को 'चान्स' लक आदि कहा जाता रहा है। उसे अप्रत्याशित अवसर मात्र ठहराया गया है। उसके लिए किसी देवता को श्रेय या दोष नहीं दिया गया है। उसमें अविज्ञात को, अपवाद को-मान्यता भर दी गई है और उसका कारण विदित न होने पर उसे किसी देवता का कीप या अनुग्रह कह कर एक नया भ्रम गढ़ने की चेष्टा नहीं की गई है। यह समझदारी का चिह्न है। सर्वज्ञ होने का दावा करना मिथ्या अहंकार है। जो ज्ञात नहीं है उसे जानने के लिए मस्तिष्क खुला रखा जाय और धैर्य पूर्वक रहस्योद्घाटन के सूत्र खोज निकालने का प्रयत्न करते रहा जाय। इसी में बुद्धिमानी है।

भाग्य को देवताओं के साथ, ग्रह नक्षत्रों के साथ जोड़ना सर्वथा उपहासास्पद है। देवता किसी का भाग्य बुरा लिखें और किसी का भला तो उन्हें विक्षिप्त ही कहा जायेगा। मनुष्य में अधिक न्यायशील और विवेकवान होने की मान्यता अपनाकर ही तो देवताओं को श्रद्धास्पद माना गया है । यदि भाग्य लेखन में किसी मर्यादा का ध्यान न रखेंगे और चाहे जिसका भाग्य भला और चाहे जिसका बुरा लिखने लगेंगे तो उनकी वह गरिमा टिकेगी ही नहीं, जिसके कारण उन्हें श्रद्धास्पद और पूजनीय ठहराया गया है। ग्रह नक्षत्रों की गणना भी ज्योतिषियों ने देवताओं के रूप में की है। इसीलिए तो वे उनकी पूजापत्री करते और अनुग्रह माँगते हैं। खगोलवेत्ताओं की तरह यदि वे ग्रहों को निर्जीव पदार्थ पिण्ड मानते तो उनके प्रभाव का समूची धरती या किसी भूखण्ड पर उनके किसी व्यापक प्रभाव की परिकल्पना करने और यदि अनुकूलता, प्रतिकूलता की बात सोचते तो उसका आधार इतना ही तो होता कि अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान को न्यूनाधिक करने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है। इसके विपरीत जब उनकी प्रसन्नता-अप्रसन्नता से व्यक्ति विशेष को कष्ट मिलने की मान्यता बनाई गई और पूजा पत्री से उसका रोष शान्त करने एवं अनुकम्पा पाने की समझी समझाई गई तो स्पष्ट है कि इन देवताओं को खगोल सम्पदा के स्थान से हटाकर देव संज्ञा देदी गई। होता भी यही रहा है। ग्रह नक्षत्रों को देव-प्रतिमाओं के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता और पूजा जाता है। देववाद और भाग्यवाद की विसंगति को संगति के रूप में बिठाकर एक अनौखे बुद्धि-कौशल का ही परिचय दिया गया है। इसमें चमत्कार अवश्य है। ग्रह-नक्षत्रों का, देवताओं का न सही इस परिकल्पना को गढ़ने वाली बुद्धि को तो निश्चय ही चमत्कारी कहा जायेगा। इस उद्योग को चलाने वाले और उसके चंगुल में फँसने वालों को भी अपने ढंग के चमत्कारी ही कहा जा सकता है। इतने पर भी यह प्रश्न तो यथा स्थान बना ही रहेगा कि यदि यह देवता और ग्रह-नक्षत्र सचमुच ही देवता हैं तो फिर अकारण किसी को दुख:किसी को सुख देने की अव्यवस्था क्यों फैलाते हैं। अपने क्रिया-कलाप में अन्धेरगर्दी की भरमार क्यों करते हैं ? उनके रोष से विपन्न हुए दुखिहारों की हाय, उन पर क्यों नहीं पड़ेगी ? उनके अनुग्रह से सम्पतिवान लोग कर्म और पुरुषार्थों को अँगूठा क्यों नहीं दिखायेंगे ? फिर नया एक और प्रश्न उठ खड़ा होता है कि पूजा पत्री के छुटपुट उपहार पाकर वे क्यों अपनी गतिविधियों को उलट देते हैं ? पूजा मिलने पर वे दोष को अनुग्रह में बदल देते हैं और न मिलने पर त्रास देते ही रहते हैं। इसका क्या कारण हो सकता है ? पूजा के नाम पर मिलने वाली प्रशंसा और सस्ती उपहार सामग्री मात्र से उनकी नीति और क्रिया में भारी उलट पुलट हो जाती है? कोई पत्थर अँगूठी में पहन लेने से किस कारण कोई ग्रह-नक्षत्र किसी पर अनुग्रह बरसाने लगता है ? आदि ऐसे असंख्य प्रश्न हैं जो भाग्यवाद की अपवाद स्थिति को स्वीकार करते हुए भी यह समाधान नहीं होने देते कि उस सबके लिए देवताओं का लिखा विधान अथवा ग्रह-नक्षत्रों का रोष अनुग्रह किस प्रकार कारण हो सकता है ? यदि कोई कारण है तो उसका किस तर्क और तथ्य के आधार पर समर्थन किया जाय ?

देवताओं और ग्रहन-क्षत्रों के अस्तित्व और अनास्तित्व के सम्बन्ध में बुद्धिपूर्वक तर्क और तथ्यों के आधार पर बहुत कुछ कहने, सोचने और खोजने की गुंजाइश है। दैवी शक्तियों का मानव-जीवन में कोई विशेष प्रभाव हो सकता है। इसी प्रकार ग्रह-नक्षत्र भी पृथ्वी के पदार्थों और प्राणियों को प्रभावित कर सकते हैं। इन सम्भावनाओं पर विचार करने के लिए व्यापक शोध क्षेत्र खुला पड़ा है। किन्तु इस प्रसंग पर तो गाड़ी एक दम रुक जाती है कि देवता किसी का भाग्य विधान बिना ऐसे ही मनमर्जी से भला-बुरा लिखते चले जायें ? अथवा ग्रह-नक्षत्र किसी पर रोष और अनुग्रह की अकारण वर्षा करते हुए अपने को अनाचारियों की स्थिति में ला पटकें। यदि वस्तुत: वे लोग ऐसे ही जैसा कि उनके बारे में मूढ़ मान्यताएँ समझाती हैं तो फिर उनके और हम सबके लिए बड़े दुर्भाग्य और शर्म की बात है। सृष्टि की सुव्यवस्था के सिद्धान्त का तो उसमें खुला उल्लंघन और उपहास है ही।

ऐसी उपहास्पद धारणाओं ने ही विचारशील वर्ग में भाग्यवाद के प्रति विरोध और आक्रमण की भूमिका बनाई है।

प्रारब्ध न तो अन्धविश्वास है और न अकारण

भाग्यवाद के प्रति विरोध और अक्रोश इसलिए उमड़ पड़ा कि उसके सहारे निहित स्वार्थों ने पाने-खाने के लिए ग्रह नक्षत्रों को बीच में डालकर अपना एक स्वतन्त्र व्यवसाय खड़ा कर लिया। अन्यथा वह एक स्वतन्त्र तत्वज्ञान समझा जा सकता है और उसके प्रभाव का व्यक्ति के उत्थान-पतन में क्या स्थान रहता है इस पर विचार करते हुए वह उपाय खोजा जा सकता है कि अन्य विपत्तियों की तरह उससे भी किस प्रकार जूझा जाय, किस प्रकार कठिनाइयों को सरल करने के अन्य क्षेत्रों में चलने वाले प्रयत्नों की तरह इस दिशा में भी उपाय ढूँढ़ा जाय।

भाग्य के सम्बन्ध में कितनी ही लोकक्तियाँ ऐसी प्रचलित हैं जो उसके ऊपर पड़े हुए पर्दे को अनायास ही उठा देती हैं। भाग्य को विधि का या विधाता का विधान कहा जाता है। इस लोकोक्ति के शब्दार्थ पर विचार करने से भी तथ्य का आभास मिलता है। विधि कहते हैं कानून को और विधान कहते हैं व्यवस्था को। विधि का विधान अर्थात् कानून की व्यवस्था। विधायक निर्माणकर्त्ता को कहते हैं। विधाता अर्थात् सृष्टा। सृष्टा अर्थात् परमेश्वर। परमेश्वर की व्यवस्था अर्थात् विधि का विधान। कानून का नियम कहा जाय अथवा परमेश्वर का, बात एक ही है। उसका तात्पर्य एक ही है, भाग्य अर्थात् वह प्रतिक्रिया जो किसी सुनिश्चित नियम प्रक्रिया पर आधारित है इस निर्णय पर पहुँच जाने से वह भ्रम जंजाल सहज ही कट जाता है जो भाग्य व्यवसायियों ने ग्रह-नक्षत्रों की आड़ में रचकर खड़ा कर दिया है और जिसमें दुर्बल मन:स्थिति के लोगों को डराने और लाभ उठाने का कुचक्र चलाया जाता है। बेचारे ग्रह-नक्षत्रों को इस सामान्य सृष्टि व्यवस्था में घसीटना, उन्हें दोष या श्रेय देना सर्वथा निरर्थक है।

खगोल विद्या-एस्ट्रोनोमी एक मान्य विज्ञान है। ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधियों की जानकारी कितनी उपयोगी है, उसे विज्ञ समाज में भली प्रकार जाना माना गया है। इसकी खोज के लिए अन्तरिक्षीय और अन्तरग्रही खोज खबर लाने के लिए विज्ञान के क्षेत्र में कितने मँहगे और कितने प्रबल प्रयास किये जा रहे हैं, यह सर्वविदित है। उससे लाभ भी है। रेडियो, टेलीफोन, टेलीविजन जैसे प्रत्यक्ष और कितने ही परोक्ष लाभ खगोल विद्या की जानकारियों के आधार पर मिलते जा रहे हैं। इस विज्ञान की प्रतिष्ठा रही है और रहेगी। किन्तु खगोल विद्या-एस्ट्रोनोमीको-जब फलित वर्णन के रूप में वर्णन किया जाने लगेगा और उससे नये किस्म की भ्रान्तियाँ फैलाकर स्वार्थ साधन का उपक्रम खड़ा किया जायेगा तो समाज में उसकी भर्त्सना होती ही रहेगी।

भविष्य कथन एक अतीन्द्रिय क्षमता है। परामनोविज्ञान के आधार पर उसका समर्थन हो रहा है। किन्तु यदि जन्म कुण्डलियों को भविष्य कथन के निमित्त एक नये जंजाल के रूप में खड़ा किया जायेगा तो विज्ञ समाज में उसकी प्रतिक्रिया हुए बिना नहीं रह सकती। खगोल-विज्ञान की तरह भाग्य विधान को भी विशुद्ध तत्व ज्ञान के रूप में लिया जाय तो उसका उपयोग भी व्यवहार शास्त्र 'कर्म प्रति फल' व्यवस्था विज्ञान की तरह ही उपयोगी हो सकता है। उसके सहारे विपत्तियों के निराकरण और सुविधाओं के सम्वर्धन में भारी योगदान मिल सकता है।

अप्रत्याशित और आकस्मिक दुर्घटनाओं के पीछे प्राय: संचित कर्मों का, सामयिक प्रतिक्रिया का यकायक बरस पड़ना ही कारण होता है। जलाशय से भाप उठती है, सघन होकर बादल बनाती है- बादल हवा के साथ इधर-उधर भ्रमण करते रहते हैं- जब वे भारी होकर घटा बनते हैं और परिस्थितियाँ उन्हें नीचे उतरने के लिए विवश करती हैं तो भूमि के समीप आकर बरसना आरम्भ कर देते हैं। भाप उठने के स्थान और समय की बरसने के स्थान और समय के साथ तुलना की जाय तो दोनों के बीच बहुत दूरी और विसंगति दीखती है। फिर भी जानकारों को यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होती कि एक समय का भाप उठना ही दूसरे समय का घटा बरसना है। मनुष्य के प्रारब्ध कर्म अपने परिपाक का समय बीतने पर जब विपत्ती के रूप में बरसते हैं तो उनको दुर्भाग्य या दुर्घटना का नाम दिया जाता है। मनुष्य द्वारा पहुँचाई गई हानि को तो शत्रुता, आक्रमण, अत्याचार, प्रतिशोध आदि कहा जा सकता है, पर जिसमें किसी का हाथ नहीं है जो विपत्तियाँ अप्रत्याशित रूप से बरसीं उन्हें वृष्टा की अव्यवस्था न मानना हो तो फिर सुनिश्चित और समाधान कारक उत्तर एक ही हो सकता है— संचित, प्रारब्ध कर्मों की प्रतिक्रिया। इसी का प्राचीन ऋषि प्रणीत नाम भाग्य प्रारब्ध कर्म परिपाक आदि है। देखना यह है कि जब अन्य अन्याय, असामान्य घटनाएँ भी किसी-किसी प्रकृति नियम के अनुसार ही घटित होती हैं तो मनुष्य जीवन में ऐसे अवसर किस कारण से आते हैं जिनका उसको प्रत्यक्षत: कोई इतना बड़ा दोष दिखाई नहीं पड़ता जिसके कारण उन संकटों या अवरोधों का त्रास सहन करना पड़ता। प्रगति क्रम में जब अन्य लोग सहज स्वभाव बढ़ते चलते जाते हैं तो अमुक व्यक्ति को ही क्यों

असफलताओं का मुँह ताकना पड़ता है? वह "भाग्य" किस कारण व्यक्ति विशेष को सताता और उसके प्रगति पथ को अवरुद्ध करके रख देता है।

तत्वदर्शियों की सनातन मान्यता एक ही रही है कि मनुष्य के सञ्चित कर्म ही भले या बुरे भाग्य का रूप धारण करके सामने आते हैं। संचित कर्मों के कालान्तर में मिलने वाले परिपाक को ही भाग्य कहा जाता रहा है। साथ के साथ ही अधिकतर कर्मों का फल मिलता और निपटता रहता है। कुछ ही विशेष कर्म ऐसे बचते हैं जिनके फल उत्पन्न होने में समय लग जाता है। शारीरिक परिश्रम और बुद्धिकौशल के प्रतिफल प्रायः साथ के साथ ही थोड़े बहुत समय के फेर से मिलते चले जाते हैं। देर उनमें लगती है जो 'नैतिक' होते हैं। पाप और पुण्य ही फलित होने में देर लगाते हैं। हथेली पर सरसों उगाई जा सकती है जो बोने से दस दिन में ही उनके अंकुर छः इंच ऊँचे उग आते हैं किन्तु जिनका जीवन लम्बा हो जो चिरस्थायी हैं उनके बढ़ने और प्रौढ़ होने में देर लगती है। नारियल की गुठली बो देने पर भी एक वर्ष में अंकुर फोड़ती है और वर्षा मे धीरे-धीरे बढ़ती है। बरगद का वृक्ष भी देर लगाता है। जब कि अरंड का पेड़ कुछ ही महीनों में छाया और फल देने लगता है। हाथी जैसे दीर्घजीवी पशु, गिद्ध जैसे पक्षी, ह्वेल जैसे जलचर अपना बचपन बहुत दिन में पूरा करते हैं जब कि खरगोश जैसे छोटे प्राणी एक वर्ष में ही बच्चे पैदा करने लगते हैं। मक्खी, मच्छरों का बचपन और यौवन बहुत ही जल्दी आता है, पर वे मरते भी उतनी ही जल्दी हैं। शारीरिक और मानसिक परिश्रम का, आहार-बिहार का, व्यवहार शिष्टाचार का प्रतिफल हाथों हाथ मिलता रहता है। उनकी उपलब्धियाँ सामयिक होती हैं, चिरस्थायी नहीं। स्थायित्व नैतिक कृत्यों में होता है उनके साथ भाव सम्वेदनाऐं और आस्थाएँ जुड़ी होती हैं। जड़े अन्तरंग की गहराई में धँसी रहती हैं इसलिए उसके भले या बुरे प्रतिफल भी देर में मिलते हैं और लम्बी अवधि तक ठहरते हैं। इन कर्मों के फलित होने में प्रायः जन्म जन्मान्तरों जितना समय लग जाता है।

अपनी दृष्टि सामयिक ही होती है। प्रत्यक्ष ही सब कुछ दीखता है। पुण्य और पाप का भला बुरा प्रतिफल तत्काल न मिलने पर अधीरता और अनास्था उत्पन्न होती है और उस स्थिति में तो एक प्रकार अन्तर्द्वन्द्व ही उठ खड़ा होता है जब सञ्चित कर्मों के प्रतिफल और आज के क्रिया-कलाप के मध्य विपरीतता दिखाई पड़ने लगे। पूर्व जन्म का पुण्य जिन दिनों फलित होकर शुभ परिणाम उत्पन्न कर रहा था, संयोंग वश उन्हीं दिनों उस व्यक्ति ने नया दुष्कर्म कर डाला। देखने वालों को यह भ्रम होता है कि अभी-अभी जो दुष्कर्म किया था उसका फ़ल इस विशेष लाभ के रूप में सामने आया। कहा जाने लगता है- "कलियुग की ऐसी ही महिमा है। भला करने का बुरा और बुरा करने पर अच्छा फल मिलता है।" इस कथन के प्रतिपादन में उन प्रमाणों को प्रस्तुत कर दिया जाता है जिसमें अशुभकर्ता को दुष्कर्म करने के दिनों में संचित पुण्य फल का लाभ संयोग वश मिल गया था।

ऐसे ही प्रसंग वे होते हैं जिनमें उस समय अच्छा कर्म करने के दिनों में ही किसी संचित अशुभ कर्म का बुरा प्रतिफल कष्ट रूप में सामने आ गया। तब भी ऐसी ही विसंगति बिठा दी जाती है कि अच्छा करने वाले को दुःख भुगतना पड़ता है। यह समय की महिमा है। ऐसी विसंगतियाँ कभी-कभी ही सामने आती हैं तो भी उतने से भी सामान्य बुद्धि को असमंजस में पड़ने का अवसर मिल ही जाता है। ऐसे ही प्रसंगों को देखते हुए शास्त्रकारों ने कर्म की गति बड़ी गहन बताई है और "गहना कर्मणो गतिः" कहकर उसकी जटिलता का संकेत किया।

इन पेचीदगियों के होते हुए संचित कर्म और भाग्य की एकता में कोई तात्विक अन्तर नहीं है। कल का दूध आज दही के रूप में प्रस्तुत है उसे संचित कर्म और भाग्य का उदाहरण समझा जा सकता है। शास्त्रकारों ने इस तथ्य को समय-समय पर- स्थान-स्थान पर-उजागर भी किया है। भाग्य के स्थान पर बहुत बार 'कर्म' शब्द का भी उपयोग होता है। करम में लिखा था'- करम रेख मिटती नहीं'- जैसी लोकोक्तियाँ भी हैं। 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा' जैसी अर्धालियों में भले-बुरे भोगों के लिए कर्म को ही उत्तरदायी माना है।

कर्म का पूर्व रूप विचार है। विचार को-बीज और कर्म को- वृक्ष कहा गया है। जैसे विचार होते हैं वैसे ही प्रयास चल पड़ते हैं तद्नुरूप भली-बुरी परिस्थितियाँ सामने आ खड़ी होती हैं। यह तथ्य सर्वविदित है। पर एक पक्ष दूसरा भी है जो भाग्यवाद के पक्ष में जाता दीखता है। जैसी भवतव्यता होती है वैसे कर्म बन पड़ते हैं। कर्मों को जिस रूप में बनना है वैसे विचार उठेंगे। सञ्चित कर्मों की प्रतिक्रिया इसी रूप में प्रकट होती है। रामायण में एक चौपाई आती है- **"काल दण्ड लै काहु न मारा। हरेउ पथय सब तस बुद्धि विचारा।"** संस्कृत में एक सूक्ति है-"देवता लाठी लेकर किसी को नहीं मारते जिसको दुःख देते हैं उसकी बुद्धि का अपहरण कर लेते हैं।" देवी दुर्घटनाएँ तो कभी-कभी ही होती है, आसमान से टूटने वाली विपत्तियाँ तो कभी-कभी ही किसी-किसी पर गिरती हैं, आमतौर से मनुष्य ऐसे मार्ग से चल पड़ते हैं जहाँ उनके लिए विनाश प्रतीक्षा कर रहा होता है। संचित कर्मों के फलस्वरूप जो दण्ड या पुरस्कार मिलते हैं उनका पूर्व

रूप अन्तःकरण के किसी भीतरी कोने में बीज रूप से पनपने लगता है और बढ़ते-बढ़ते वही विपत्ति या सम्पत्ति की परिस्थितियों के रूप में प्रकट होता है। दैवी वरदान या अभिशाप का यही रूप है। इसमें प्रत्यक्षत: तो दो दोष कर्त्ता का ही दीखता है, पर परोक्ष कारण यह होता है कि संचित कर्मों का विष भीतर ही भीतर उफनता है और वह फोड़े के रूप में प्रत्यक्ष होकर कष्ट देता है। पुण्य कर्मों के फलस्वरूप मिलने वाली सुविधा सफलता भी आसमान से नहीं उतरती, वरन् अन्तरंग के किसी कोने से सत्प्रवृत्ति बनकर अपनी जड़ जमाती है और उसके अमृत फल श्रेय, यश, सुख, सम्मान आदि की उपलब्धियों के रूप में सामने आ जाते हैं। "दैवेच्छा" शब्द ऐसे ही प्रसंगों के लिए उपयुक्त बैठता है। कई बार न चाहते हुए भी ऐसी भली-बुरी उमंगें भीतर से उठती हैं जो समझाने-बुझाने से भी नहीं रुकतीं और अपनी प्रेरणा से ऐसा कुछ करा लेती हैं, जो सामान्यतया मनुष्य के मन में पहले से नहीं रहा होता। ऐसी अप्रत्याशित घटनाओं की कमी नहीं होती जिनकी भूमिका थी नहीं, किन्तु अनायास ही आँधी तूफान की तरह प्रकट हुई और सामान्य परिस्थितियों को तोड़ती, मरोड़ती, मनुष्य को कहीं से कहीं उड़ा ले गई। ऐसी घटनाएँ भले के लिए भी होती देखी गई हैं और बुरे के लिए भी।

भाग्यवाद के समर्थन में भी अगणित घटनाएँ घटित होती रहती हैं। वे अपवाद तो होती हैं, पर इतनी कम मात्रा में नहीं होतीं कि उनकी उपेक्षा की जा सके। उनका तथ्य कारण जानने के लिए ग्रह-नक्षत्रों पर दोषारोपण करने या देवताओं को घसीटने, बदनाम करने की आवश्यकता नहीं है। यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के संचित कर्म-प्रारब्ध बनकर प्रकट हुए और उन्होंने निश्चित परिणाम तक पहुँचाने के लिए भीतर उमंगें उठाने से लेकर बाहर साधन बनाने तक के अनेकानेक आधार परोक्ष रूप से खड़े कर दिये।

निदान सही हो जाने पर रोग की चिकित्सा सरल हो जाती है और बिना भटके उचित उपचार का सही लाभ मिल जाता है। प्रत्यक्ष कर्मों की तरह संचित कर्मों का स्वरूप समझ लिया जाय तो फिर भाग्यवाद और कर्मवाद के बीच जो विरोधाभास है उसकी आवश्यता न रहेगी। तब किसी ग्रह-नक्षत्र की मनुहार किये बिना अपने पैर में अपनी भूल से चुभे हुए काँटे को निकालने की दूरदर्शिता पूर्ण प्रयत्न आरम्भ करना होगा। जिस प्रकार अपनी ही भूल से संकट उपजते हैं उसी प्रकार अपनी ही समझदारी से उनका निराकरण भी किया जा सकता है। समस्याएँ खड़ी करने और गुत्थी उलझाने का दोष भी मनुष्य ही करता है, पर यदि वह सम्भलने और बदलने पर तैयार हो जाय तो उन्हें सुलझाने में भी सफल हो सकता है। अपने ही अनाचरण से रोग उत्पन्न होते हैं, पर उस कुमार्गगामिता को छोड़कर यदि पथ्य बरसने और उपचार करने पर उतारू हो सका जाय तो उन रोगों से छुटकारा पाने का भी आधार बन जाता है। विग्रह खड़ा करने वाले यदि चाहें तो संधि भी कर सकते हैं। अशांति के उत्पन्नकर्त्ताओं के लिए यह भी सम्भव है कि वे शान्ति के लिऐ नये सिरे से प्रयत्न करें और अपनी सूझ-बूझ के सहारे उनमें सफल होकर रहें।

संचित कर्म अपना निज का उपार्जन एवं संग्रह है। इसमें हेर-फेर करना अपने काबू के बाहर की बात नहीं है। कर्म का फल निश्चत है, पर उसकी दिशा धारा मोड़ी जा सकती है। उनका निराकरण और समाधान भी हो सकता है। विष खा लेने पर भी जब उपचार द्वारा मरण संकट से बचाव हो सकता है तो कोई कारण नहीं कि प्रारब्धजन्य सम्भावनाओं में सुधार एवं हेर-फेर न हो सके। अशुभ प्रारब्ध के द्वारा उत्पन्न होने वाली विषम सम्भावनाओं का निराकरण सम्भव है। कर्मदारों को किस्तों में ऋण चुकाने के लिए सहमत किया जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि अपने ही कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली सम्भावित विपत्तियों से प्रयत्नपूर्वक छूटा न जा सके। प्रारब्ध कर्मों का फल भोग निश्चित होने पर भी उसके निवारण और निराकरण के उपाय हो सकते हैं। उन उपायों को अपनाया जा सकता है और प्रारब्ध के अनिष्ट फलों से बचा जा सकता है।

अनिष्टों से बचने के उपयों की यह व्यवस्था सस्ती और ऊलजलूल नहीं, सुसम्बद्ध न्यायोचित तथा वैज्ञानिक ही हो सकती है। न तो संकट किसी के आकस्मिक प्रकोप से उत्पन्न होते हैं औन न ही उनका निवारण किन्हीं चित्र-विचित्र चिन्ह-पूजा दान-अर्पण आदि मात्र से हो जाता है। आकस्मिक कष्टों-विपत्तियों की भी सही पृष्ठभूमि को समझने पर ही उनसे मुक्ति हो सकती है। भाग्यवाद की भ्रान्त धारणाओं से मुक्त हुए बिना प्रारब्ध के सही स्वरूप को समझना सम्भव नहीं है। यह जानना आवश्यक है कि प्रारब्ध का निर्माण कोई देवता, ग्रह-नक्षत्र आदि नहीं करते। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही करता है। भाग्य का परिणाम मनुष्य को मिलता तो है पर उस भाग्य के अच्छे-बुरे कैसे भी रूप का निर्माता स्वयं मनुष्य ही है।

स्वर्ग-नरक की स्वसंचालित प्रक्रिया

शरीर से असमर्थों, दुर्बलों और रुग्णों की ही तरह मानसिक पिछड़ेपन और विकारग्रस्तता के दल-दल में धँसे हुए लोगों का ही बाहुल्य अपने समाज में दृष्टिगोचर होता है। यह विक्षिप्तता भी एक प्रकार की बीमारी ही है जिसमें प्राणियों को तिरस्कार, अभाव एवं चित्र-वित्रित्र प्रकार के दुःख सहने पड़ते हैं।

विचारणीय है कि यह सब होता क्यों है? मनुष्य का प्रत्यक्ष कोई दोष दिखाई नहीं पड़ता। जान-बूझकर ऐसा कुछ किया हो जिससे उन शारीरिक व्याधियों और मानसिक आधियों का दुःख सहना पड़े ऐसा कुछ सूझ नहीं पड़ता। फिर ईश्वर ने ऐसी विचित्र संरचना क्यों की ? किसी को ऐसा-किसी को वैसा क्यों बनाया? इसका भी कोई उत्तर नहीं हो सकता? ईश्वर न तो अन्यायी है न उसका सृष्टि में अन्धेरगर्दी, अव्यवस्था। दूसरी ओर इन व्याधिग्रस्त लोगों का ऐसा कोई प्रत्यक्ष कसूर भी नहीं दीख पड़ता। जिसका दण्ड भुगतने जैसी बातें कही जा सकें।

इस असमञ्जस का समाधान मन: शास्त्र के आचार्य एक ही शोध निष्कर्ष के आधार पर देते हैं कि अनैतिक एवं असामाजिक चिन्तन और कर्तृत्व से मन:क्षेत्र में उत्पन्न होने वाला अन्तर्द्वन्द्व दुहरा व्यक्तित्व रच देता है और उससे निरन्तर उठने वाली आन्तरिक कलह सारे मनोभूमि को क्षत-विक्षत करके रख देती है। संचालक के आहत, घायल, उद्विग्न होने पर उसके अधीन काम करने वाले तन्त्र की दुर्दशा होना स्वाभाविक है। शरीर के अनाचार और मस्तिष्क के मनोविकार ही वे कारण हैं जिनके कारण आत्म-सत्ता का स्वसंचालित तन्त्र अनेकानेक प्रकार के आत्म-दण्डों की व्यवस्था अपने आप ही कर लेता है।

नरक का अधिपति पुराणों में चित्रगुप्त को कहा गया है। वर्णन है कि इन चित्रगुप्त के बही खातों में मनुष्य के सभी कर्म निरन्तर लिखे जाते रहते हैं। उन अभिलेखों के आधार पर भगवान चित्रगुप्त प्रत्येक प्राणी के लिए दण्ड पुरस्कार की व्यवस्था करते हैं। यह चित्रगुप्त विज्ञान की विवेचना के अनुसार अचेतन मन ही है जिसकी अत्यन्त सम्वेदनशील कोशाओं के ऊपर मनुष्य के भले-बुरे कर्म टैपरिकार्डर के फीते अथवा फोटोग्राफी की प्लेट की तरह अंकित होते रहते हैं। समयानुसार वे प्रकट एवं फलित होते हैं तो उनकी प्रतिक्रिया का परिचय शारीरिक एवं मानसिक रोगों के रूप में सामने आता है। इन दो व्यथाओं के साथ तीसरी एक और भी अनायास ही जुड़ जाती है, वह है सामान्य जीवन में पग-पग पर असफलता।

गंगा और यमुना दो संगम पर एक तीसरा सरस्वती कहीं पाताल में से अनायास ही प्रकट होकर उस समागम के स्थान पर आ धँसी है। ठीक इसी तरह शारीरिक व्याधियाँ और मानसिक आधियाँ जिसे घेरे हुए हैं उस विकृत मस्तिष्क और अस्वस्थ शरीर के द्वारा न कुछ उपयुक्त सोचते वन पड़ेगा और न उचित कर सकना सम्भव होगा। अतएव अपनी अटपटी कानी-कुबड़ी गतिविधियाँ किसी महत्त्वपूर्ण सफलता तक पहुँचने ही न देंगी सम्बन्धित व्यक्ति उस बेतुके व्यक्ति से खिंचते, खीजते रहेंगे। फलत: सच्चे सहयोग से भी प्राय: वंचित ही रहना पड़ेगा। मत भेद बढ़ते-बढ़ते शत्रुता और विग्रह तक जा पहुँचते हैं और आक्रमण, प्रत्याक्रमण के कुचक्र में ऐसे व्यक्ति को भारी घाटा उठाना पड़ता है। प्रगति पथ तो प्राय: अवरुद्ध ही बना रहता है। यह नई विपत्ति-शारीरिक और मानसिक रुग्णता की ही देन है। दो रंगों के मिलने से तीसरा एक और नया रंग प्रकट हो जाता है। आधि और व्याधि ग्रस्तों को अवरोध और असफलता का तीसरा संकट अतिरिक्त रूप से सहना करना पड़ता है।

शारीरिक रोग, मानसिक उद्वेग और सफलता के अवरोध का त्रिविध समन्वय कितना कष्टकर और सन्तापदायक होता है उसे भुक्तभोगी ही जानता है। जिनहें इन संकटों का त्रास सहना पड़ता है उनके लिए इस विपन्नता का प्रत्यक्ष नरक के रूप में ही अनुभव होता है। यमलोक के अधिपति चित्रगुप्त को- अचेतन मन ही समझा जाना चाहिए। उनका कार्य क्षेत्र यमलोक वह मन:संस्थान ही है जिसमें प्रतिफल को परिणित कर सकने की ईश्वर-प्रदत्त क्षमता मौजूद है। नियंत्रण-व्यवस्था एवं अनुशासन को ही यम कहते हैं। अत: उस व्यवस्था का केन्द्रस्थल मस्तिष्क ही यमलोक है तथा मस्तिष्क की मूल-भूत सत्ता चित्त है चित्रगुप्त। ईश्वर ने सर्वत्र स्वसंचालित व्यवस्था रखी है ताकि न्याय-व्यवस्था की अलग से अतिरिक्त झंझट न उठानी पड़े। अपनी ही सत्ता का एक पक्ष कर्म करता है, दूसरा उसका प्रतिफल गढ़कर तैयार कर लेता है। बाहर के न्यायाधीश को भ्रम में डाला जा सकता है। पर अन्तस्त में बैठे दृष्टा की निष्पक्ष न्यायाशील कभी भी विचलित नहीं हो सकती। स्वयं के पुण्य ही उत्कर्ष-उल्लास के तथा स्वयं के पाप ही शोक-संताप के नये-नये अवसर सामने लाते रहते हैं।

भगवान किसी को न तो दण्ड देता है और न पुरस्कार। वह केवल विधि व्यवस्था का विधायक और नियन्ता मात्र है। सृष्टि की क्रमबद्धता और समस्वरूपता का बनाये रखने भर का ध्यान रखता है। व्यक्तिगत जीवन में उसका हस्तक्षेप नहीं के बराबर है। हर किसी को उसने यह पूरी आजादी दी है कि जो चाहे जिस तरह सोचे या करे। साथ ही विवेक का अनुदान देकर यह भी स्पष्ट कर दिया कि चिन्तन का कर्तृत्व का स्तर ही उसके सामने दण्ड पुरस्कार के रूप में सामने आयेगा। स्वतन्त्रता दिशा अपनाने भर की है। पर जो कँटीले मार्ग पर चलेगा वह चुभन से बच न सकेगा यह तथ्य भी पूरी तरह स्पष्ट कर दिया गया। धर्म शास्त्र, तत्व दर्शन और प्रमाण उदाहरणों से भरा इतिहास इसी यथार्थता को पग-पग' पर प्रतिपादित करते रहे हैं।

घृणित कर्म करने वाले आप ही अपने को दण्ड देते हैं और सन्मार्ग पर चलने वाले अपनी गति-विधियों के कारण स्वयं ही

पुरुष्कृत होते हैं। अनादि काल से यही स्वसंचालित क्रिया प्रतिक्रिया को सुसम्बद्ध श्रृंखला अपनी गति से चल रही है। ऐसा हो ही नहीं सकता कि कुमार्ग पर चलने वाले सुख शांति से रहें और सन्मार्ग अपनाने वालों को दुख दारिद्रय से ग्रसित रहना पड़े। यदि ऐसा होता तो यहाँ उचित अनुचित के बीच कोई भेद ही न रह जाता और कोई कुकर्म से बचने एवं सत्कर्म अपनाने के लिए तैयार ही न होता। अधर्म का तात्कालिक आकर्षण यदि चिरस्थायी लाभ दे सका होता और उसके दुष्परिणाम की कोई आशंका न होती तो कदाचित् ही कोई व्यक्ति अधर्माचरण को अपनी प्रधान नीति बनाने से चूकता, तब शायद ही किसी को धर्म मार्ग अपनाने का उत्साह उत्पन्न होता और कदाचित् ही कोई उस कष्टसाध्य प्रतीत होने वाली प्रक्रिया को अपनाता।

ईश्वर ने मनुष्य को जितना स्वावलम्बी बनाया है उतना ही परावलम्बी भी। सर्वतन्त्र स्वतन्त्र मनुष्य नहीं ईश्वर ही है। ईश्वर इसलिए स्वतन्त्र है कि उसने नियम व्यवस्था बनाई है और उसने सर्व प्रथम अपने को बाँधा है। जहाँ विश्व का कण-कण किसी विधान से बँधा है उसी प्रकार ईश्वर भी मर्यादा पुरुषोत्तम है। मर्यादाएँ टूटने न पायें उन्हें तोड़ने का कोई दुस्साहस न करे इसलिए उसने अपने को भी प्रतिबन्धित किया है। पात्रता की मर्यादा से अधिक अनुदान किसी को नहीं मिलते। कर्मफल की मर्यादा का उल्लंघन करके वह न तो किसी को क्षमा प्रदान करता है और न किसी को भक्त अभक्त होने के नाम पर रागद्वेष की नीति अपनाता है। न्याय और निष्पक्षता की रक्षा उसके लिए प्रधान है। बिजली मनुष्य की बहुत सेवा सहायता करती है- पर करती तभी तक है जब ज्ञानी को भी उसे विधि पूर्वक प्रयुक्त किया जाता है। अविधि पूर्वक व्यवहार करने पर यज्ञाग्नि भी होता की जला सकती है। प्रचुर खर्च करके बिजली के यन्त्रों को सुसज्जा एवं मनोयोग पूर्वक लगाने वाले भी यदि प्रयोगों में प्रमाद बरतें तो वह प्रतिष्ठापित विद्युत यन्त्र प्रयोक्ता के प्राण लिये बिना न छोड़ेंगे। ईश्वर को कर्मफल की श्रृंखला में अग्नि या विद्युत के समतुल्य माना जाय तो उसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी।

जन्मजात अपंग, बाधित, असमर्थ, मूढ़, रुग्ण व्यक्तियों को देख कर अनुमान लगाया जा सकता है कि उद्धत आचरण करने वालों के प्रगति साधनों का प्रकृति ने किस प्रकार अपहरण कर लिया। बन्दूक का दुरुपयोग करने वालों का लाइसैंस जब्त हो जाता है, इसी प्रकार मोटर चलाने में प्रमाद बरतने वालों का लाइसैंस छिन जाता है। अपराधियों को न्यायालय में समाज से पृथक रहने का यातनापूर्ण कारावास मिलता है और उनके नागरिक अधिकार छिन जाते हैं। जन्मजात बाधितों को देखकर हम अनुमान लगा सकते हैं कि मिली हुई कर्म स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने वालों से प्रकृति किस प्रकार प्रतिशोध लेती है।

सुविधाजनक प्रगतिशील वातावरण में, सुसंस्कारी परिवार में जन्म होना पूर्वकृत सत्कर्मों का फल कहा जा सकता है। दुर्भावी व्यक्ति कुसंस्कारी परिस्थितियों में जन्म लेकर असुविधाजनक अड़चन भरे वातावरण में रहते हैं और प्रगति पथ पर बढ़ने में भारी अड़चन अनुभव करते हैं। इस विभेद के पीछे पूर्व जन्मों में संग्रहीत शुभ-अशुभ कर्म के परिणाम झाँकते देख सकते हैं। यों इन अड़चन भरी परिस्थितियों में भी सत्कर्म करने की, आगे बढ़ने की स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रहती है और कोई चाहे तो नियत अवरोधों को सहन करते हुए भी आगे बढ़ने, ऊँचे उठने में सफल हो सकता है। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं, जिनमें अन्धे, अपंग, मूक, वधिर जैसी विषमताओं से ग्रसित लोगों ने इतनी उन्नति करली जिसे देखकर सर्वसुविधा सम्पन्न व्यक्तियों को भी आश्चर्यचकित रहना पड़ा।

यदि इस संसार में ऐसी व्यवस्था रही होती कि तत्काल कर्म फल मिला करता तो फिर मानवी विवेक एवं चेतना की दूरदर्शिता की विशेषता कुण्ठित अवरुद्ध हो जाती। यदि झूठ बोलते ही जीभ में छाले पड़ जायें, चोरी करते ही हाथ में दर्द उठ खड़ा हो, व्यभिचार करते ही बुखार आ जाय, छल करने वाले को लकवा मार जाय तो फिर किसी के लिए भी दुष्कर्म कर सकना सम्भव न होता। एक ही निर्जीव रास्ता चलने के लिए शेष रह जाता है। ऐसी दशा में स्वतन्त्र चेतना का उपयोग करने की, भले और बुरे में से एक को चुनने की विचारशीलता नष्ट हो जाती और विवेचना, ऊहापोह का बुद्धि प्रयोग सम्भव न रहता। तब दूरदर्शिता और विवेकशीलता की क्या आवश्यकता रहती और इसके अभाव में मनुष्य की सर्वतोमुखी प्रतिभा का कोई उपयोग ही न हो पाता। बुरे कार्य के दुष्परिणाम और भले कार्य के सत्परिणाम समझने के लिए अन्तः प्रेरणा, अध्यात्म तत्वदर्शन, धर्म विज्ञान नीति-सदाचरण, श्रेय साधना का जो उपयोगी एवं आकर्षक सतोगुणी धर्म कलेवर खड़ा किया गया है उसकी कुछ आवश्यकता ही न रहती। सब कुछ नीरस हो जाता है, यहाँ जो कौतुक-कौतूहल दीख रहा है, बहुरंगी, कटु, मधुर अभिव्यंजनाएँ सामने आ रही हैं, उनमें कहीं कुछ भी दृष्टिगोचर न होता। इन परिस्थितियों में और कुछ लाभ भले ही होता मनुष्य की वह चेतनात्मक प्रतिभा कुंठित ही रह जाती जिसके कारण प्रगति पथ पर इतना आगे तक चल सकना सम्भव हो सका है।

कर्म का फल शारीरिक, आर्थिक, सामजिक दृष्टि से कुछ विलम्ब से भी मिल सकता है पर आन्तरिक दृष्टि से तुरन्त तत्काल

मिलता है। सद्भावनाएँ धारण करने वाला अन्तःकरण अपने आप में अत्यधिक प्रफुल्लित रहता है। सुगन्ध विक्रेता बिना प्रयास किये निरन्तर उस महक का लाभ उठाता रहता है जिसके लिए दूसरे लोग तरसते ललचाते रहते हैं। सत्कर्म का सबसे बहुमूल्य लाभ आत्म सन्तोष है जिसे प्राप्त करने में तनिक भी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। सन्मार्ग पर चलने वाले का अन्तरात्मा अपने आप को प्रोत्साहन भरा आर्शीवाद देता रहता है। इस आधार पर बढ़ता हुआ आत्मबल मनुष्य की वास्तविक शक्ति को इतना अधिक बढ़ा देता है जिसकी तुलना उपनिषद्कार की उक्ति के अनुसार हजार हाथियों के बल से भी नहीं की जा सकती।

सद्भाव सम्पन्न सन्मार्गगामी का कोई स्वार्थवश कितना ही विरोधी क्यों न हो पर भीतर ही भीतर उसके लिए गहन श्रद्धा धारण किये रहेगा। महात्मा गाँधी पर आक्रमण करने वाले गोड से ने गोली दागने से पूर्व उनके चरणस्पर्श करके प्रणाम किया था। ईसामसीह को क्रूस पर चढ़ाने वाले लोग आँसुओं की धार से अपनी श्रद्धांजलि चढ़ा रहे थे। सुकरात को विष पिलाने वाले जल्लाद ने आत्म-प्रताड़ना से अपना माथा पीट लिया था।

महामानवों के पास भौतिक सम्पदाएँ भले ही न रही हों पर उनकी चरित्र निष्ठा, आदर्शवादिता और उदारता की पूँजी इतनी प्रचुर मात्रा में उन्हें विभूतिवान् बनाये रही है और वह वैभव इतना बढ़ा रहा है जिसके ऊपर धन कुबेरों की सम्पन्नता को निछावर किया जा सके। ऋषियों के चरणों में राजमुकट रखे देखकर यह समझा जा सकता है कि सन्मार्गगामी सर्वथा निर्धन नहीं होते, उनके पास अपने ढंग की ऐसी सम्पदा होती है जिसे पाकर मानव जीवन को सब प्रकार सार्थक एवं धन्य हुआ माना जा सके।

भौतिक विज्ञानियों ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि शारीरिक स्वास्थ्य का आधार मात्र पौष्टिक आहार एवं व्यायाम नहीं है वरन् मनःक्षेत्र की समस्वरता पर आरोग्य एवं दीर्घ जीवन की नींव रखी हुई है। इसी प्रकार मस्तिष्कीय रोगों के विशेषज्ञ यह कहते हैं कि अधिक मानसिक श्रम करने आदि के कारण वे रोग उत्पन्न नहीं होते वरन् छल, प्रपंच, क्रूर, दुराचरण जैसी दुष्प्रवृतियाँ ही मनः संस्थान में अर्न्द्वन्द्व मचाती हैं और उन्हीं के फलस्वरूप अनिद्रा एवं सनक से लेकर उन्माद तक रोग अपने विभिन्न आकार प्रकार से उठ खड़े होते हैं। कोई समय था जब वात-पित्त, कफ, आहार-विहार, कृमि, कीटाणु, छूत संक्रमण, ऋतु प्रभाव, गृहदशा, भाग्य प्रारब्ध आदि को विभिन्न रोगों का कारण माना जाता था। वे बातें पुरानी हो गईं। मनःशास्त्र के विज्ञानी अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अनैतिक, असामाजिक और अवांछनीय चिन्तन से इस प्रकार की घुटन से भरा आन्तरिक विग्रह उत्पन्न होता है, जो ज्ञान तन्तुओं के माध्यम से अपने विद्रोह की कोशिकाओं तक पहुँच कर उन्हें रुग्ण कर देता है। इस मानसिक विद्रोह को शान्त करने के लिए अपनी रीति-नीति को सन्मार्गगामी बना लेना ही रोग निवृत्ति का एकमात्र उपाय है। इस आधार पर मनोविज्ञानवेत्ता रोगियों से उनकी भूलें कबूल कराते हैं, पश्चात्तप और परिवर्तन के संकल्प कराते हैं तदनुसार रोग निवृत्ति का लाभ भी मिलता है।

भारतीय धर्मशास्त्र आधि और व्याधि का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध मानता रहा है। आधि अर्थात् मनःक्षेत्र की दुष्प्रवृत्तियाँ जिस व्यक्ति में भरी होंगी वह शरीर और मस्तिष्क के रोगों से ग्रसित होता चला जायेगा और वे रोग मात्र ओषधि चिकित्सा से कदापि अच्छे न हो सकेंगे। कष्ट-साध्य रोगों की एक श्रेणी कर्मजन्य भी होती हैं, उन्हें अन्तःक्षेत्र में जमी हुई दुर्भावनाओं की प्रतिक्रिया ही कह सकते हैं। इन्हें प्रायश्चित और पश्चाताप द्वारा उखाड़ने का विधान है। असाध्य महारोगों के लिए यह प्रायश्चित चिकित्सा प्राचीन अध्यात्म विज्ञान और भौतिक मनोविज्ञान के आधार पर समान रूप से उपयुक्त मानी गई है। मन की निर्मलता से बढ़कर शारीरिक रोगों की निवृत्ति का और कोई कारगर उपाय नहीं है।

निश्चित रूप से मनुष्य एक स्वसंचालित यन्त्र है जो कर्म करने में स्वतन्त्र होते हुए परिणाम भोगने की श्रृंखला में मजबूती के साथ जकड़ा हुआ है। यदि हम सद्भावनाओं का, सत्प्रवृत्तियों का, चिन्तन और कर्त्तृव्य अपनायें तो सहज ही सुख-शांति की परिस्थितियाँ प्राप्त कर सकते हैं। इसके प्रतिकूल चलना अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारने की तरह है। सुख और दुःख ईश्वर प्रदत्त दण्ड पुरष्कार नहीं वरन् अपने ही सत्कर्म दुष्कर्म के प्रतिफल है।

मनुष्य को जहाँ इच्छा-पूर्वक भले-बुरे कर्म करने की स्वतन्त्रता मिली है वहाँ उसकी प्रतिक्रिया उत्पन्न करने और परिणाम प्रस्तुत करने की स्वसंचालित प्रक्रिया भी साथ ही जोड़ दी गई है। समस्त सृष्टि में यही हो रहा है, बीज जमीन में बोया जाता है, खाद पानी मिलते ही वह अंकुरित होता है और पौधा वृक्ष बनने लगता है। ईश्वर सर्वत्र समाया हुआ है इसलिए यह कार्य ईश्वर करता है यों करने में भी हर्ज नहीं है। पर ईश्वर भी इतना झंझट कहाँ तक सिर पर लादता उसने स्वसंचालित प्रक्रिया बनाकर अपना कर्म फल सम्बन्धी प्रयोजन सरल कर लिया है।

चक्की में ऊपर से अनाज डालते हैं नीचे आटा निकलता जाता है। कोल्हू में ऊपर से सरसों डालते ही तेल टपकता रहता

है। मोटर में मीटर लगा रहता है और वह बताता रहता है कि कितने मील चल लिए। यह स्वसंचालित मशीनों का जमाना है, बड़े-बड़े प्रिंटिंग प्रेस घण्टे में हजारों कागज इसी आधार पर छापते हैं। एक बार मशीन चलादी तो फिर सारा काम अपने आप ये मशीनें करती रहती हैं। इधर कच्चा माल डाला जाता है उधर से तैयार बनकर निकलता रहता है।

कर्मफल की प्रक्रिया भी इसी तरह की है। बुरे कर्म के दु:खद परिणाम जिन्हें नरक कहते हैं, निश्चित रूप से मिलते हैं और भले कर्मों का सत्परिणाम जिन्हें स्वर्ग कहा जाता है मिलना भी उतना ही सुनिश्चित है। यह स्वसंचालित ढंग से होता रहता है। शरीर अपने कर्मफल की व्यवस्था स्वयं कर लेता है। बैठे रहिए तोंद बढ़ जायेगी और चलना फिरना कठिन-अपच, दिल की धड़कन आदि कितने ही कष्टकर रोग घेर लेंगे। श्रम करना धर्म है और हरामखोरी पसीना न बहाना अधर्म। शारीरिक पाप किये बैठे रहने का, उसका फल मुटापे के साथ जुड़े हुए कष्टों के रूप में सामने आ गया। अधिक खाया- पेट में दर्द-रात भर जगे-सिर दर्द , नशा किया बदहोशी, जहर खाया-मौत, स्नान करने में आलस, बदबू, जुए, खाज। नियमित व्यायाम पहलवान, पथ्य परहेज-निरोगता, यह दण्ड पुरस्कार की व्यवस्था शरीर अपने आप ही किसी बाहरी हस्तक्षेप के बिना स्वत: ही कर लेता है। कर्म करने की अपनी इच्छा-फल देने की उस स्वसंचालित-ईश्वरीय सत्ता की इच्छा। दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। कर्म करलें उसके फल से बचे रहें यह नहीं हो सकता।

आलसी दरिद्री रहते हैं, प्रमादी के लिए प्रगति के द्वार बन्द हो जाते हैं, क्रोधी शत्रुओं से घिर जाता है, धूर्त मित्रों से वंचित हो जाता है, बेईमान के सहयोगी बिछुड़ जाते हैं, उद्दण्ड को घृणा मिलती है, अपव्ययी ऋणी बनता है। यह दण्ड व्यवस्था हर किसी को पग-पग पर अनुभव होती है। श्रेष्ठ गुण, स्वभाव और श्रेष्ठ कर्म करते हुए मनुष्य सम्मानित, यशस्वी, सहयोग सम्पन्न, समृद्ध सफल बनता है और उन्नति के उच्च शिखर पर जा पहुँचता है। स्वयं सुखी रहता है और दूसरों को सुखी बनाता है। यह कर्मफल की -स्वर्ग नरक प्रक्रिया निरन्तर सामने रहती है। पापी, दुष्ट, दुरात्मा राजदण्ड भुगतते हैं, घृणास्पद बनते हैं और स्नेह सहयोग से वंचित होकर मरघट के प्रेत पिशाच बने एकाकी घूमते हैं। यह घृणित जीवन नरक नहीं है तो और क्या है ? सेवा भावी, सद्गुणी, सज्जन धरती के देवता समझे जाते हैं और मरने के बाद भी वन्दनीय, श्रद्धास्पद ही बने रहते हैं, उनकी यश गाथायें अनेकों को प्रेरणा भरा प्रकाश देती रहती हैं। इसे स्वर्ग प्राप्ति न कहें तो और कया कहें? सम्मानस्पद, श्रद्धा पात्र, सज्जन और प्रामाणिक किसी व्यक्ति को माना जाय इससे बढ़कर सौभाग्य और सन्तोष की बात और क्या हो सकती है। इस प्रकार कर्मफल प्राप्त करते रहने की- स्वर्ग-नरक जैसी प्रक्रिया हम निरन्तर फलित होती देखते रहते हैं।

कई व्यक्ति दूसरों को धोखा देकर अपनी वस्तु स्थिति छिपा लेने में प्रवीण बन जाते हैं और इस प्रकार पाप कर्म करते हुए दूसरों द्वारा मिलने वाले दण्ड से बच निकलने की तरकीब निकालते हैं। यह चतुरता आजकल बहुत चल पड़ी है। इससे कुछ लाभ तो है पर हानि उससे कहीं अधिक है। लाभ यह है कि सरकार की पकड़ में आने पर राजदण्ड से बच जाते हैं। पाप प्रकट न हो तो दूसरों के द्वारा घृणा निन्दा एवं विलगता से होने वाली हानि बच जाती है। पर इसमें जो छिपाव का ताना-बाना बुनना पड़ता है वह अन्तर्मन में एक विचित्र प्रकार की घुटन पैदा करता है। दुष्कर्म के साथ दुराव मिल जाने से भाँग में भी अफीम मिली बन जाती है। अन्तर्मन की बनावट ऐसी है कि वह इस घुटन को पचा नहीं सकती।

नीलाथोथा खा लेने पर उलटी हुए बिना रहती नहीं। जमाल गोटा खा लेने पर दस्त जाना ही पड़ेगा। कच्चा पारा खालें तो शरीर में से फोले बनकर फूटेगा। यह विष ऐसे हैं जो पच नहीं सकते। पच जायें तो और भी भयंकर प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं और जीवन दुर्लभ कर देते हैं। ठीक इसी प्रकार दुष्कर्म और दुराव मिलकर एक ऐसा विष बनाते हैं जिसे चतुर मनुष्य देर तक छिपाये तो रह सकते हैं पर अन्तर्मन को पचा लेने के लिए रजामंद नहीं कर सकते। सिगरेट का धुँआ पेट में भर लेना तो सम्भव है पर वह वहाँ रुक नहीं सकता। मुँह बन्द करलें तो नाक में होकर बाहर आयेगा। भीतर किसी भी हालत में रुकेगा नहीं।

हवा भरे गुब्बारे को पानी में जितने जोर से डुबाते हैं अवसर मिलते ही वह उसी वेग से उछल कर ऊपर आ जाता है। छिपे हुए पाप शारीरिक व्याधि और मानसिक 'आधि' बनकर समय कुसमय ऐसी बुरी तरह फूटते हैं कि कारण प्रतीत नहीं होता। चिकित्सा उपचार काम नहीं करते हैं ।

यह पाप शरीर और मन को कष्ट देने तक ही सीमित नहीं रहते वरन् अन्तरिक्ष में अनेक अदृश्य विपत्तियों का सृजन करते रहते हैं। पत्थर के कोयले की अँगीठी कितने ही व्यक्ति ठण्ड से बचने के लिए कमरे में बन्द करके रख लेते हैं। तत्काल ठण्ड से तो बचत दीखती है पर आकाश में ऐसा विष भर जाता है जिससे सोते-सोते ही उनकी मौत हो जाती है। शरीर में चोट नहीं लगी, बुखार आया नहीं, मस्तिष्क की नस फटी नहीं, सब

कुछ ज्यों का त्यों, मौत का कुछ कारण मोटी आँख से दिखाई नहीं पड़ता। पर जानकार जानते हैं कि अँगीठी ने वायु में विष घोल दिया और वही मौत का कारण बना। ऐसे कितने ही अज्ञात अप्रत्यक्ष कारण अनायास ही विपत्ति बनकर सामने आ जाते हैं, जिनका अपने तात्कालिक क्रिया-कलाप से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं दीखता। इसी प्रकार कई बार सुविधा सफलतायें भी मिल जाती हैं जिनके लिए उचित श्रम और प्रयत्न नहीं किया गया होता। यह असंगत अवरोध और अनुदान-दैवी इच्छा एवं भाग्य का खेल बनकर सामने आते हैं। उनका प्रत्यक्ष कारण नहीं दीखता पर परोक्ष कारण वह स्वसंचालित प्रक्रिया ही होती है जिसने अपने कर्मों का फल अन्तरिक्ष में धीरे-धीरे तदनुरूप वातावरण बनाया और वह भले-बुरे अप्रत्याशित अवसर सामने आकर खड़े हो गये।

समय लग सकता है। आज का फल आज मिलने से व्यक्ति भ्रम में पड़ सकता है और यह सोच सकता है कि बुरे कर्म के दण्ड से बच गये या भला कर्म निष्फल चला गया, पर वस्तुतः ऐसा होता कभी नहीं तुरन्त या कालान्तर में इसका रहस्य अज्ञात होने के कारण प्रत्यक्षवादी , उतावले, अनास्थावान हो उठते हैं पर यदि धैर्य रखा जाय तो प्रतीत होगा कि इसी जन्म में अथवा अगले जन्म में प्रत्येक कर्म का भला-बुरा परिणाम मिलना सुनिश्चित है। उसी व्यवस्था क्रम पर तो यह विश्व टिका हुआ है, यदि असंदिग्ध हो जाय तो फिर ऐसा अन्धेर फैले-ऐसी अराजकता उपजे कि कहीं कुछ सँभालना-सम्भव न हो सके। फिर न कोई पाप से डरे और न पुण्य का झंझट और नुकसान उठाये।

दृष्टिकोण अपने आप में चित्त की प्रसन्नता-अप्रसन्नता, सन्तोष-असन्तोष, शान्ति-अशान्ति बनकर पग-पग पर फलित होता रहता है। सत्कर्म करने पर मन मेंअनायास ही सन्तोष और उल्लास उठता रहता है किसी कष्ट पीड़ित की सहायता अपना काम हर्ज करके यदि करदी जाय तो भीतर ही भीतर एक परम सात्विक हलका और शीतल मलयज पवन जैसा आनन्द उठता अनुभव होगा। इसके विपरीत यदि चोरी, ठगी, अनीति बरत कर किसी को क्षति पहुँचाई होगी तो भीतर ही भीतर कोई खटमल, पिस्सू की तरह काट रहा होगा और आत्मा ग्लानि से अन्तःकरण में उद्वेग बढ़ रहा होगा। वस्तुतः यही आत्म सन्तोष और आत्मधिक्कार अन्तःकरण को बलिष्ठ और दुर्बल बनाते हैं और इसी आधार पर प्रगति के अगणित मार्ग खुलते और अवरुद्ध होते हैं। पापी का अन्तरात्मा दिन-दिन दुर्बल होता जाता है। दूसरों पर से ही नहीं अपने पर से भी उसका विश्वास उठ जाता है। आत्मबल खोकर मनुष्य चैन नहीं पा सकता भले ही उसके पास पैसे कौड़ियों के टीले क्यों न जमा हो जायें। आत्म ग्लानि से भरी मनोभूमि को नरक कहा जा सकता है क्योंकि प्रकारान्तर से अनेक दुश्चिन्ताएँ आशंकाएँ, विभीषिकाएँ इतना सताती हैं कि उसकी तुलना में नरक वर्णित कष्टों की तुलना सहज ही की जा सके।

जो हर युवती को अपनी पुत्री की तरह देख सके-पराये पैसे को ठीकरी जैसा समझें, अपने स्वल्प उपार्जन से सादगी का जीवन जीते हुए सन्तुष्ट रहे, चरित्र उज्ज्वल रखे और दूसरों के प्रति स्नेह सहयोग भरा दृष्टिकोण रखे-उसे निरन्तर अपने भीतर एक अमृत जैसी निर्झरी कल-कल ध्वनि से प्रवाहित होती हुई अनुभव होगी और लगेगा कि भावना क्षेत्र में स्वर्गीय सुषुमा ही प्रादुर्भूत हो रही है।

मरने के बाद भी भले-बुरे कर्मों के दण्ड कितने ही प्रकार से मिलते होंगे। दो जन्मों के बीच सुखद और कष्टकर स्थिति रहती होगी, अगले जन्म उत्कृष्ट या निकृष्ट मिलते होंगे। स्वर्ग-नरक का स्थान भाव नगर की सही-प्रतिफल की व्यवस्था मरणोत्तर जीवन में भी रहती होगी। पर इस जन्म में तत्काल भी भले-बुरे परिणाम मिलते रहते हैं और स्वर्ग-नरक की स्वसंचालित प्रक्रिया भी हमें नियन्त्रण में रहने और विवेक पूर्ण रीति-नीति अपनाने के लिए बाध्य करती रहती है।

परलोक कहाँ है ?

स्वर्ग और नरक को ढूँढ़ने के लिए दूर जाने की जरूरत नहीं, वह यहीं-इस पृथ्वी पर ही मौजूद है। इसी लोक में अनेकों व्यक्ति सुरपुर का आनन्द लूट रहे हैं, उन्हें सब प्रकार के ऐश आराम हैं। स्वर्ग-लोक के जो वर्णन कथा पुराणों में सुने जाते हैं वे सब उनके लिए इसी लोक में मौजूद हैं। दूसरी ओर अनकों व्यक्ति ऐसे भी हैं जिनको यमपुरी की समस्त यातनाएँ हर घड़ी सामने उपस्थित रहती हैं। अस्पतालों, जेलखानों, पागलखानों, अपाहिज, गृहों, कोढ़ी खानों में जाकर हम देख सकते हैं कि मनुष्य कितनी पीड़ाएँ सहते हैं अनेकों मनुष्यों के लिए अपनी जिन्दगी का जीना तक कठिन हो जाता है, वे तत्कालीन वेदना से छुटकारा पाने के लिए विष खाकर, जलाशय में डूब कर, फाँसी लगाकर, तेल छिड़क कर, रेल के नीचे लेटकर तथा अन्य किसी प्रकार से आत्म-हत्या कर लेते हैं। मृत्यु में बड़ा कष्ट होता है पर आत्म-हत्या करने वाला मनुष्य अपनी जीवन को मृत्यु से भी अधिक कष्टदायक अनुभव करता है तभी तो वह इस प्रकार के भयंकर कामों के लिए तैयार हो जाता है। यह घटनाएँ बताती हैं कि नरक इस लोक में भी मौजूद है।

नन्दन बन से बगीचे, यक्ष गन्धर्वों से गायक, अप्सराओं से तरुणियाँ, वृहस्पति से देव गुरु, कुबेर से भण्डारी, पुष्पक विमान

से वाहन, इस लोक में भी मौजूद हैं। इन्द्र वज्र की समता करने वाला परमाणु बम यहाँ मौजूद है। वरुण, यम, अग्नि, पवन, पूषा, विश्वेदेवा इस लोक में चौकीदार की तरह हाथ बाँधे हर वक्त सेवा के लिए खड़े रहते हैं। विज्ञान ने समस्त देवताओं की शक्तियों को छीनकर मनुष्य की सेवा में उपस्थित कर दिया है। लक्ष्मी, सरस्वती तथा चण्डी के दर्शन करने हों तो किसी अन्य लोक में जाने की जरूरत नहीं। उन्हें इसी लोक में उपलब्ध किया जा सकता है सुरपुरी की विशेषताएँ इस लोक में मौजूद हैं।

नरक को ढूँढ़ने के लिए कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं है। रौरव, कुम्भीपाक, ताम्रपत्र, असिपत्र आदि चौबीस नरकों के स्थान पर यहाँ चौबीस सौ नरक देखे जा सकते हैं। किसी घृणित, भयंकर, कष्ट, साध्य और दुःख वेदना युक्त बीमारी में जिन्हें स्वयं फँसने का कभी अनुभव हुआ है या ऐसे रोगी की जिन्हौंने परिचर्या की है वे जानते हैं कि किसी नरक में इससे अधिक दुःख न होगा। एकसौ पाँच छः डिग्री के बुखार से जिसका रोम -रोम जल रहा है, हड़फूटन और प्यास की बेचैनी से बेहोशी तक आ जाती है उन्हें 'उष्ण ताप' नरक से क्या कम कष्ट है? कफ जब गले को रुँध देता है और जब न तो अच्छी तरह साँस ली जाती हैं न जिह्वा से शब्द निकलता है, तब यमदूत द्वारा गला घोंटने के कष्ट में और क्या अन्तर रह जाता है? गर्भ में बन्द बालक किस कुम्भी पाक से अच्छी दशा में है? आँख, दाढ़ के दर्द, जब उग्र रूप से उठते हैं। जो मनुष्य छटपटा जाता है। प्रसव के समय में मातायें कितनी पीड़ा सहती हैं। बिच्छू आदि जहरीले जानवरों के काट लेने पर, अग्नि से जल जाने पर भारी आघात लगने पर या भयंकर फोड़ा उठने पर जो पीड़ा होती हैं वे नरक की किस पीड़ा से कम होंगी।

नरक में नियत संख्या में यमदूत होते हैं, उन यमदूतों की खास तरह की शकल और खास तरह की पोशाक होती है जिससे आसानी से उन्हें पहचाना जा सकता है पर यहाँ तो अगणित यमदूत हमारे चारों ओर फिरते हैं। उनकी शकल और पोशाक भले आदमियों की सही होने के कारण और भी अधिक गहरी चोट लगती है। नरक के यमदूतों को तो जीव पहचान लेता है और उनकी चोटों के लिए तैयार हो जाता है। पर इस लोक के यमदूत उनसे भी भयंकर हैं। वे पहचानते नहीं जाते और अकस्मात ऐसे घातक आक्रमण करते हैं कि मनुष्य तिलमिला जाता है, उनके चोट करने के निर्लज्ज तरीके को देखकर यमदूत भी सकुच जाते हैं। मित्र बन कर दगा करने वाले, साधु बनकर ठगने वाले, हितू बनकर विश्वास घात करने वाले, रस दिखाकर विष पिलाने वाले, छाती से लगाने का प्यार दिखा कर कलेजा खा जाने वाले, यमदूत वहाँ गली-गली में मिल सकते हैं। ठग, चोर हत्यारे, व्यभिचारी, लम्पट विश्वासघाती, लवार, झूँठे, चुगल खोर, बेईमान, कपटी, धूर्त, अत्याचारी, अन्यायी, पर पीड़क, निर्लज्ज, कुकर्मी, नास्तिक, लुटेरे, निर्दय, क्रूर, निष्ठुर, स्वभाव के साक्षात् शैतान जगह-जगह मौजूद हैं। बेचारे यमदूत अपने सीधे-साधे दण्ड अस्त्रों से जीव को एक सीधे-सादे नियत तरीके से मारते-पीटते होंगे पर इस लोक के सफेद पोश यमदूत दूसरों को शारीरिक और मानसिक यातनाऐं पहुँचाने के लिए जो जो प्रपंच रचते हैं उन्हें देखकर नरक के यमदूत हैरत में रह जायेंगे। उन बेचारों से सात पुश्त में भी ऐसे मायावी आक्रमण करना शायद न आवे।

दृष्टि पसार कर हम यदि दूर-दूर तक देखें और सुखी, सम्पन्न, समृद्ध लोगों के जीवन के आनन्द तथा दुःखी, दरिद्र, पीड़ित, लोगों के कष्टों पर कुछ देर विस्तृत विचार करें, दोनों प्रकार के लोगों के जीवन पूरे चित्र अपने कल्पना क्षेत्र में खीचें तो इसी लोक में स्वर्ग और नरक का अस्तित्व हमें मिल जायेगा। सुख भी इतना है कि उससे बढ़कर स्वर्ग में भला और क्या अधिक सुख होगा? दुःख भी इतना है कि उन दुखों के आगे नरक लोक में और अधिक भला क्या दुःख होगा? मृत्यु तुल्य ही नहीं आत्महत्या के लिये प्रेरित करने वाले मृत्यु से भी अधिक दुःख इस लोक में मौजूद हैं, यह कष्टों की अन्तिम सीमा है। इन सब बातों पर विचार करते हुए सब पुरुषों ने कहा है कि स्वर्ग और नरक इसी लोक में हैं।' सचमुच पूर्ण तृप्ति दायक और अत्यन्त उद्विग्न करने वाली स्थिति इस लोक में मौजूद है। स्वर्ग और नरक का पूरा-पूरा अस्तित्व इस लोक में उपलब्ध है।

परलोक को भोग लोक कहा जाता है। परलोक में भले या बुरे भोग भोगने पड़ते हैं। इस लोक में जहाँ कर्म करने की सुविधा है वहाँ कर्मफल के भोग भोगने में विवशता भी है। कोई व्यक्ति सुकर्म करके उसके सुफल से बचना चाहे तो यह उसके हाथ की बात नहीं, इसी प्रकार बुरे कर्म करके दण्ड से बचना भी सम्भव नहीं। रोगी, घायल, अपाहिज तथा अन्य दुःखों में पड़े हुए व्यक्ति यह कब चाहते हैं कि उन्हें दुःख सहना पड़े तो भी चूँकि इस लोक में परलोक भी मौजूद है, उस परलोक के नियमानुसार उन्हें नरक भोगने के लिए विवश होना पड़ता है। उसी प्रकार चाहने को तो सुख समृद्धि सभी चाहते हैं पर चाहना कितनों की पूरी होती है ? कितने ही जीव किसी ऐसे परिवार में उत्पन्न होते हैं जहाँ अनायास ही अपारसुख साधन मौजूद रहते हैं। कर्मभोग उन्हें उस स्थिति में ले दौड़ता है। चूँकि परलोक इस लोक में मौजूद है इसलिए स्वर्ग सुख की स्थिति भी अधिकारी लोगों के सामने परलोक के नियमानुसार अपने आप सामने आ

जाती है। इस लोक में परलोक का कार्यक्रम यथावत् चल रहा है। उस कार्यक्रम के अनुसार सभी प्राय: स्वर्ग और नरक के सुख दु:ख का रसास्वादन करते हैं।

भू:लोक के परलोक में सुख को स्वर्ग और दु:ख को नरक कहते हैं। जिन्हें इस लोक में सुख प्राप्त है वे स्वर्ग भोग रहे हैं और जिन्हें दु:ख प्राप्त हो रहा है। वे बेचारे नरक भोग रहे हैं। यह एक मोटी परिभाषा है। इतना कह देने से ही काम न चलेगा अब हमें बारीकी में जाना होगा। कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें रुपया-पैसा, धन, दौलत, सोना-चाँदी की किसी प्रकार की कमी नहीं। नौकर, चाकर, महल, मोटर, सब कुछ है। रूपवती रमणियाँ जिनकी कृपा कोर की ओर निहारती रहती हैं। ऐश आराम के तरह-तरह के साधन मौजूद हैं। इतना सब होते हुए भी उन्हें चैन नहीं, दिन-रात अशान्ति की ज्वाला में जलते रहते हैं, रात को नींद नहीं आती, सारी सुख सामग्री फीकी मालूम होती हैं। हमें ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं कि अमुक राजकुमार या धनी व्यक्ति ने अपने ऐश आराम में लात मार दी और अमुक त्याग पूर्ण रास्ता ग्रहण कर लिया, इससे प्रतीत होता है कि उन्हें उस सुख सामग्री में वास्तविक सुख नहीं मिला।

हमारा व्यक्तिगत रूप से अनेक धनी, मानी और समृद्ध व्यक्तियों से सम्पर्क रहता है वे अपने हृदय की कथा खोल कर हमारे सामने अपने मन का भार हलका करते हैं। पिछली एक चौथाई शताब्दी के अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि सुख सामग्री होते हुए भी बहुत ही कम लोग ऐसे हैं जो सुखी कहे जा सकते हैं। अधिकांश में तो वे गरीब और अभाव ग्रस्त लोगों से भी अधिक दु:खी पाये जाते हैं।

अब दूसरी और देखिए इस दुनिया में ऐसे लोग हैं जिनके पास धन सम्पत्ति नहीं है। साथ ही कष्ट भी उठाते हैं फिर भी वे स्वर्ग वासी कहे जा सकते हैं। साधु, सन्त, ब्राह्मण, तपस्वी, महात्माजनों के पास धन सम्पत्ति नहीं होती, उनके पास जीवन निर्वाह को अन्न वस्त्र जैसी साधारण वस्तुएँ भी पर्याप्त मात्रा में नहीं होतीं धन के अभाव में प्राय: कुछ न कुछ असुविधाएँ उनके सामने खड़ी ही रहती हैं। कितने ही परोपकारी मनुष्य संसार के हित के लिए कष्ट सहते हैं। दधीचि ने अपनी हड्डियां दीं, हरिश्चन्द्र ने अपने को तथा स्त्री-पुत्रों को बेचा, मोरध्वज ने अपने पुत्र को दे डाला, शिवि ने अपना माँस काट कर दिया। बन्दा वैरागी, हकीकत राय आदि ने नाना विधि कष्ट उठाये मीरा और दयानन्द ने विष के प्याले पिये, प्रहलाद ने पिता के अत्याचार सहे, भारत के स्वाधीनता संग्राम में लाखों व्यक्तियों ने जेत, लाठी, गोली, तथा फाँसी सहीं, यह कष्ट सहन यह दुख, नरक नहीं कहा जा सकता। ऐसे कष्टों में भी स्वर्ग का सुख छिपा होता है। स्वेच्छा से स्वीकार किया हुआ कष्ट तप कहलाता है। तप बाहर से कष्ट जैसा दिखाई पड़ता है पर वास्तव में वह दु:ख नहीं है।

सुख और दु:ख का निर्णय के होने न होने के आधार पर नहीं किया जा सकता। मौज से पड़े रहना या कष्ट में दिन व्यतीत करना भी स्वर्ग नरक की पहचान नहीं है। क्योंकि न तो धनी लोग सुखी ही देखे जाते हैं और न अभाव ग्रस्तों या कठिनाइयों में दिन व्यतीत करने वालों को दु:खी ही कहा जा सकता। शास्त्रकारों ने भू:लोक के सुखों में शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य को स्वर्ग बताया है और जन स्वास्थ्यों का अभाव ही नरक है। जो शरीर से स्वस्थ है उसे बीमारियों के आक्रमण का आयेदिन शिकार न होना पड़ेगा। रोगों का उन पर हमला होता है जिनका शरीर दुर्बल होता है बलवान शरीर वाला मनुष्य दैहिक पीड़ाओं से प्राय: बचा रहता है। इन्द्रियों के बलवान रहने से भोग शक्ति सुस्थिर रहती है और उसे साधारण भोग सामग्री में भी वह आनन्द आता है जो अमीरों को बहुमूल्य ऊँचे दर्जे की वस्तुओं में उपलब्ध नहीं होता। जिसकी पाचन शक्ति ठीक है, जिसे कड़ाके की भूख लगती है उसे जौ की रोटी, चने के साग से खाते हुए वह आनन्द आता है जो कब्ज और जुकाम से पीड़ित रहने वाले व्यक्ति को छप्पन व्यंजनों से भरे थाल में नसीब नहीं हो सकता काम शक्ति स्वस्थ रहने से मजूर और उसकी स्त्री, मजूरिनी, इन्द्र और अप्सरा का आनन्द अनुभव करते हुए रात बिताते हैं। पर जिन्हें प्रदर प्रमेह, शीघ्र पतन, नपुंसकता आदि घेरे हुए हैं वे पति-पत्नी कितने ही रूपवान हों, कितनी ही विलास सामग्री सम्पन्न हों दाम्पत्य जीवन का सुख नहीं उठा पाते। रात्रि आती है पर उन्हें चिढ़ाने, तिरष्कृत करने और कुढ़ाने आती है। जीविका का प्रश्न भी स्वास्थ्य से सम्बन्धित है। जो मजबूत है, निरोग है, वह धरती में लात मार कर अपने निर्वाह के लिए चाहे जहाँ से जीविका उपार्जित कर लेगा। उसे निर्वाह के लिए जीविका कमाने की कभी चिंता नहीं करनी पड़ती।

शारीरिक स्वास्थ्य स्वयं एक सुख है जिसमें हर वक्त ताजगी, प्रसन्नता, निश्चिन्तता तथा खुशी छाई रहती है। आत्म विश्वास, साहस, पुरुषार्थ और उत्साह की तरंग उठती रहती हैं। निरोग मनुष्य अपने आप में एक पूर्णता अनुभव करता है। इन्द्रियाँ सशक्त और क्रियाशील रहने पर दीर्घ काल तक अपना काम ठीक प्रकार करती रहती हैं। बुढ्ढे हो जाने पर भी नेत्रों की ज्योति ठीक रहती है, दाँत मजबूत बने रहते हैं। कानों से ठीक सुनाई देता है। भोजन करते समय वे नित्य तृप्ति दायक सुख का आनन्द लूटते हैं। उसके दाम्पति जीवन में बड़ा संतोष जनक सुख रहता

है, जीविका उपार्जन करने में वे कभी पीछे नहीं रहते। धनी होना दूसरी बात है पर इतना वे अवश्य कमा लेते हैं कि जीवन क्रम पूर्ण सुविधा के साथ चलता रहे। यह सब सुख ऐसे हैं। जिनके लिए बड़े-बड़े अमीर तरसते हैं।

पैसे की अधिकता से सुख साधन तो अवश्य मिल जाते हैं पर साथ ही साथ उस पैसे की छीन-झपट करने के इच्छुक भी इतने पैदा हो जाते हैं कि उनसे बचाव करने उनके आक्रमण को रोकने के लिए असाधारण रूप से चिन्तित रहना पड़ता है। दूसरे उस पैसे की अधिकता के कारण अनेकानेक दुर्गुण पैदा हो जाते हैं, उन दुर्गणों के दुःखद परिणाम नित नये क्लेश उत्पन्न करते रहते हैं। इन तीनों प्रकार की बेचैनियों में मनुष्य का स्वास्थ्य क्षीण हो जाता है और वह स्वस्थता में मिलने वाले सुखों से वंचित हो जाता है। यही कारण है कि धनी लोग सुखी बहुत कम देखे जाते हैं। इस संसार में, भूःलोक में सुख उन्हें है जो शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ हैं। एक निरोग व्यक्ति-चाहे वह निर्धन ही क्यों न हो इतना सुखी रहता है, जितना सुखी धनवान् व्यक्ति अपने सारे धन के बदले में भी नहीं हो सकता।

शारीरिक सुख के बाद मानसिक सुख है, सुशिक्षा, विद्या, विचारशीलता, समझदारी, सुविस्तृत जानकारी, अध्ययन, चिन्तन, मनन, सत्संग, अनुभव आदि के द्वारा मन और मस्तिष्क, को सुसंस्कृत बना लेना, मानसिक स्वस्थता है। शिक्षा के द्वारा डाक्टर, वकील, इंजीनियर, अफसर, वैज्ञानिक, लेखक, सम्पादक, बाजीगर, शिल्पी, व्यापारी, कलाकार, मूर्तिकार, चित्रकार, संगीतज्ञ, नट आदि अपनी-अपनी महत्ता प्रकट करते हैं। अपनी योग्यताओं के बल पर संसार को महत्वपूर्ण लाभ पहुँचाते हैं और अपने आप में सफलता का सन्तोषदायक आनन्द अनुभव करते हैं, सम्पति कमाते हैं, यशस्वी बनते हैं, तथा मरने के बाद नई पीढ़ी के लिए एक आदर्श छोड़ जाते हैं। सुशिक्षा ने ही इस संसार में महात्मा, भक्त, ज्ञानी, तपस्वी, त्यागी, गुणी, विद्वान, महापुरुष, पथप्रदर्शक, नेता, देवदूत, पैगम्बर तथा अवतार पैदा किये हैं। यदि दुनियाँ में सुशिक्षा न रहे तो मनुष्य एक बहुत ही दुर्बल और असहाय पशु मात्र रह जायेगा। ज्ञान ने ही मनुष्य की तुच्छ पशु से ऊँचा उठा कर सृष्टि का सम्राट बना दिया है। जीवन का सुख इस विद्यालय पर भी बहुत हद तक निर्भर है। अशिक्षित, मूर्ख, बेबकूफ, भोंदू या अज्ञानी पुरुष एक प्रकार का पशु है, उसे पशुवत् भारभूत जीवन व्यतीत करना पड़ता है। अपनी शक्तियों को न तो वह जानता है, न उन्हें विकसित कर पाता है और न उनसे लाभ उठा पाता है। किन्तु जो लोग बुद्धिमान हैं वे अपने बुद्धिबल से इस जीवन में ही स्वर्ग सुख का आनन्द लूटते हैं।

विवेकवान् व्यक्ति अनेक प्रकार के मानसिक क्लेश और कष्टों से बचे रहते हैं। संसार में प्रकृति के क्रम से वस्तुओं का परिवर्तन होता है। स्वजनों की मृत्यु, बिछोह, घाटा, चोरी, भूल, टूट-फूट आदि के कारण अनेकों प्रकार की अनिच्छित घटनाएँ सामने आती हैं। अविवेकी पुरुष अनिच्छित घटनाएँ घटित होते देखकर मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं और शोक, क्लेश, चिन्ता, बेचैनी, पीड़ा एवं अशांति अनुभव करते हुए बुरी तरह रोते कलपते हैं परन्तु विचारशील पुरुष इस गति शील संसार की इन नित्य घटित होने वाली घटनाओं से विचलित नहीं होते और इस शोक सागर में डूबने से बच जाते हैं जिसमें कि अज्ञानी पुरुष डूब कर अपने जीवन को बुरी तरह घुला डालते हैं। स्वास्थ्य की भाँति शिक्षा भी अपने आप में स्वयं सुख है। सुशिक्षित मनुष्य के अन्तःकरण में एक बल रहता है। सद्‌विचारों, सुस्थिर विचारों और महत्त्वपूर्ण विचारों से उसका मन सदा प्रसन्न, प्रफुल्ल तथा सन्तुष्ट रहता है।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के बाद नैतिक स्वास्थ्य का स्थान है। स्वास्थ्य के इन तीन भागों को मिलाकर पूर्ण स्वस्थता बनती है। ईमानदारी, धर्म परायणता, सदाचार, संयम से अपने आपको पवित्र बनाना तथा दूसरों के साथ प्रेम, परोपकार, सेवा, उदारता एवं मधुरता का व्यवहार करना यह नैतिक स्वास्थ्य की परिभाषा है। अपनी असुविधा से दूसरों की असुविधा का अधिक ध्यान रखना और अपने सुख को पहला स्थान देना, यह नैतिक स्वास्थ्य की कसौटी है। इस कसौटी पर जिनकी विचार धारा और कार्य प्रणाली खरी उतरती है वे नैतिक दृष्टि से स्वस्थ हैं।

नैतिक स्वास्थ्य ठीक होने से समाज का बड़ा मधुर सहयोग प्राप्त होने लगता है। घर में, घर से बाहर, समाज में देश में, विदेश में ऐसे स्वस्थ मनुष्य को भी सभी अपनाते हैं। सहयोग करते हैं, सहायता देते हैं, प्रेम करते हैं, प्रशंसा करते हैं तथा छाती से लगाते रहते हैं। नैतिक स्वास्थ्य एक खिला हुआ सुगन्धित पुष्प है, जिसे देखने को, सूँघने को, छूने को, सभी लोग ललचाते हैं। जो ईमानदार हैं, सच्चा है, विश्वासी है, निष्कपट है, मधुर भाषी है, वफादार है, प्रेम करता है, उदार है, सेवा-भावी है, ऐसे व्यक्ति को पाकर हर कोई अपने को धन्य मानता है पिता पुत्र को, पत्नी पति को, भाई भाई को, मित्र मित्र को, मालिक नौकर को, इन गुणों से युक्त पाकर फूला नहीं समाता। नैतिक स्वस्थता के आधार पर मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बनता है। सच्चा मनुष्य देवताओं की तरह महान् और वन्दनीय है। नैतिकता में हजार हाथियों के बराबर बल बताया जाता है। वस्तुतः ईमानदार

मधुर और उपकारी स्वभाव के मनुष्य में अकूत बल होता है। उसे अपार आनन्द का अपने अन्तःकरण में निरन्तर अनुभव होता रहता है।

जिसे सच्चे हृदय से प्यार करने वाले, सच्ची सहानुभूति रखने वाले, आदर करने वाले अनेकों मनुष्य प्राप्त हैं। उसके लिए यह लोक ही स्वर्ग है आत्मीयता, प्रेम, विश्वास और आदर भाव रखने वाले लोगों के बीच में रहकर मनुष्य को जो सुख मिलता है उसका रसास्वादन करने वाले भक्त भोगी ही जानते हैं। गरीबी होते हुए भी, प्रेम और विश्वास के वातावरण में रहते हुए जो आनन्द मिलता है, उस पर अविश्वासी वातावरण की अमीरी को निछावर किया जा सकता है। नैतिकता का विकास मनुष्य के अस्तित्व का, व्यक्तित्व का, विकास है। इसे आध्यात्मिक उन्नति भी कहते हैं। जिसकी नैतिकता जितनी ही विकसित है, उसे अपने अन्तःकरण में सदा आनन्द का अनुभव होगा और चूँकि संसार दर्पण के समान है, इसमें वैसी ही शकलें दीखती हैं जैसे कि हम स्वयं होते हैं। अपने आपको भला बना लेने पर दुनिया के भले तत्व अपने सामने आ जाते हैं और उसे ऐसा प्रतीत होता है, कि इस दुनिया में सच्चे सज्जन, प्रेमी, भले एवं उत्तम स्वभाव के मनुष्य ही भरे पड़े हैं। हर जगह उसे अनुकूलता, मधुरता और शांति का वातावरण दृष्टिगोचर होता है।

शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक, स्वस्थता में वह शक्ति है कि भूःलोक को स्वर्गीय आनन्द से परिपूर्ण बना देती है। जिन साधनों के जीवन को आनन्दित बनाने के लिए आवश्यकता है वे सभी उसे उपलब्ध हो जाते हैं। हो सकता है कि उसके पास लाख करोड़ की सम्पत्ति न हो पर जो कुछ स्वस्थ मनुष्य के पास होता है वह इतना अधिक एवं इतना वास्तविक होता है कि उसकी तुलना चाँदी का मैदान और सोने का पहाड़ भी तुच्छ है, जिन्हें यह त्रिविधि स्वस्थता प्राप्त है उनके लिए यह परमात्मा का परम पुनीत उपवन, संसार सब प्रकार आनन्दमय है। सब ओर उसे प्रसन्नता और सुख-शान्ति का झरना झरता दृष्टि गोचर होता है। प्रभु की पुण्य कृति यह वसुधा वसुन्धरा, माता की गोद के समान सुखद दृष्टि गोचर होती है। शास्त्र कहता है- "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादऽपि गरीयसी।" स्वस्थ मनुष्य इस शास्त्र बचन की सत्यता को प्रत्यक्ष अनुभव करता है। उसे लगता है कि जन्म-भूमि धरती माता का भूःलोक, स्वर्ग से कम तो किसी प्रकार नहीं, वरन् उससे अधिक ही है।

शरीर को स्वस्थ रखना, बुद्धि को विकसित करना और नीतिवान् बनाना तीनों ही बातें मनुष्य के हाथ में हैं। कुमार्ग पर जाने से-नीच, तामसिक, दुर्गुणों को अपनाने से- शरीर नष्ट होता है, बुद्धि नष्ट होती है और सामाजिक प्रेम भाव तथा विश्वास नष्ट होता है। यह सर्वनाश ही नरक है। बुरे कामों के लिए जिसकी निन्दा होती है, जो अयोग्यता अथवा दीनता के कारण तिरष्कृत होता है, उसे नरकगामी कहना चाहिए। सद्गुणों के द्वारा जो दूसरों का मन अपनी मुट्ठी में रखता है, जिसे समीप देखकर दूसरों के हृदय की कली खिल जाती है, जिसके विचार तथा कार्य सम्माननीय हैं, वह स्वर्गगामी कहा जायेगा।

जिन्हें भूःलोक के परलोक में, इसी जीवन में, स्वर्ग का रसास्वादन करना हो उन्हें चाहिए कि अपने शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक स्वास्थ्य को उन्नत बनावें इस उन्नति के साथ-साथ मनुष्य क्रमशः स्वर्ग की सीढ़ी पर चढ़ता जाता है और नरक की यातनाओं से दूर टूटता जाता है।

भूःलोक अपने आप में, अपने अन्तःकरण में एक जबरदस्त लोक मौजूद है। उस लोक की स्थिति इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसके सामने भूःलोक और भुवः लोक तुच्छ हैं। निस्संदेह बाहर की परिस्थितियाँ मनुष्य को आन्दोलित, तरंगित तथा विचलित करती हैं परन्तु संसार के समस्त पदार्थों का जितना भला या बुरा प्रभाव होता है। उससे अनेकों गुना प्रभाव अपने निज के विचारों तथा विश्वासों द्वारा होता है।

गीता में कहा है कि-मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु है। कोई मित्र इतनी सहायता नहीं कर सकता जितनी कि मनुष्य स्वयं अपनी सहायता कर सकता है। इसी प्रकार कोई दूसरा उतनी शत्रुता नहीं कर सकता जितनी कि मनुष्य खुद अपने आप अपने से शत्रुता करता है अपनी कल्पना शक्ति, विचार और विश्वास के आधार पर मनुष्य अपनी एक दुनिया निर्माण करता है। वही दुनिया उसे वास्तविक सुख-दुःख दिखाया करती है।

एक व्यक्ति सुनसान रात में मरघट के पास से निकलता है। उसके मन में कोई आशंका नहीं, तारागणों की सुन्दरता निहारना हुआ, रात्रि की नीरवता और शीतलता को निरखता हुआ, मन्द स्वर से गीत गुनगुनाता हुआ खुशी-खुशी चला जाता है परन्तु दूसरा व्यक्ति उसी रास्ते जाता है तो मरघट में भूत लोटते दिखाई पड़ते हैं, झाड़ियों में से मसानी और चुड़ैलें झाँकती दीखती हैं, उनके मारे थर-थर पैर काँपने लगते हैं, कण्ठ सूख जाता है, निगाह चूकने से एक पेड़ के ठूंठ से टकरा जाता है। बस भूत के भयंकर आक्रमण का प्रत्यक्ष दृश्य दिखाई पड़ता है। वह बीमार पड़ जाता है, महीनों चारपाई सेता है, मुश्किल से अच्छा हो पाता है या मर जाता है। रास्ता वही था, रात वही थी, एक आदमी खुशी खुशी उसी रास्ते चला आया, दूसरे आदमी की जान पर बन आई। यह भेद क्यों हुआ? इसका कारण मनुष्यों की

भिन्न मानसिक स्थिति थी। जिसके मन में से भय उत्पन्न हुआ वह भय ही उनकी छाती पर भयंकर मसान बन कर चढ़ बैठा और उसे प्राण घातक संकट में फाँस दिया।

रस्सों को साँप समझ कर अनेक आदमी भयभीत होकर मूर्छित हो जाते हैं चूहे के काट जाने पर अपने आपको साँप का काटा समझ कर कई मनुष्य मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। साधारण रोग को असाध्य रोग मान कर अनेकों रोगी घबरा जाते हैं और वह घबराहट ही उनकी जान की गाहक बन जाती है। यह आफत के पहाड़ कौन ढाता है? मनुष्य अपने आप अपने विचार बल से उन आफत के पहाड़ों का निर्माण करता है और खुद अपने ऊपर पटक कर स्वयंमेव चकनाचूर हो जाता है। मनुष्य के मन में प्रचण्ड शक्ति भरी हुई है वह इस शक्ति द्वारा अपने लिये अत्यन्त अनिष्ठ कर और अत्यन्त उपयोगी तथ्य निर्मित कर सकता है।

हर मनुष्य की अपनी एक अलग दुनिया होती है जानकारी, इच्छा एवं कल्पना के आधार पर हम अपनी मनो-भूमि का निर्माण करते हैं। यह मनोभूमिका ही अपनी दुनिया है। इसमें जैसे- इरादे, मनसुवे, यकीने, जम जाते हैं उसी दृष्टिकोण से संसार के समस्त पदार्थो जो वह देखता है। आँखों पर पीला चश्मा पहन लेने से सभी दुनियाँ पीली दिखाई पड़ती है और नीला चश्मा पहन लेने पर हर चीज नीली दीखने लगती है। साधुओं की दृष्टि में यह संसार परमात्मा की पुनीत प्रतिमा है, सिंह की दृष्टि में सब मनुष्य स्वादिष्ट माँस के चलते फिरते लोथड़े हैं, दुकानादारों की निगाह में ग्राहक, वेश्या की दृष्टि में व्यभिचारी, कलार की दृष्टि में नशेबाज, इस दुनिया में भरे हुए हैं। भीतर मन की दुनिया जैसी होती है बाहर की दुनिया भी उसी के अनुरूप दिखाई देने लगती है।

मनुष्य को अपनी रुचि जिधर होती है, उधर ही उसका मस्तिष्क ढूँढ़ खोज जारी रखता है और यह एक प्रकट तथ्य है कि जो कुछ ढूँढ़ा जाता है वह मिलता है। अपने स्वभाव और विचारों के मनुष्यों को, स्थानों को, वातावरणों को, उसकी अदृश्य चेतना ढूँढ़ती रहती है और धीरे-धीरे उसे अपने अनुकूलन वातावरण मिल जाता है। चोरों को अपने साथी अन्य चारों का सहयोग हर जगह मिल जाता है और वे चाहे कहीं चले जाँएँ चोरी करने का अवसर या स्थान भी मिल जाता है। इसी प्रकार भले, बुरे, सभी प्रकृति के मनुष्य अपने रुचिकर स्थान को प्राप्त कर लेते हैं। सांसारिक परिस्थितियाँ दोनों ही प्रकार की होती हैं। सात्विक परस्थितियों में सुख-शान्ति, प्रसन्नता तथा तृप्ति का अनुभव होता है। इसके विपरीत तामसिक परिस्थितियों में क्लेश, अशांति, दु:ख, दरिद्र, तथा असन्तोष छाया रहता है, चोर स्वभाव का मनुष्य चोरी करेगा, फल स्वरूप उसे भय, अशान्ति, निन्दा, अविश्वास, राज दण्ड एवं कर्म के कठोर परिपाक का भागी बनना पड़ेगा। इसी प्रकार सदाचारी स्वभाव का मनुष्य सतकर्म करेगा और फल स्वरूप प्रसन्नता, सन्तोष, प्रशंसा, विश्वास, स्वास्थ्य एवं समृद्धि प्राप्त करेगा। चोर को अपने स्वभाव के लोगों के बीच रहना पड़ेगा और उनका व्यवहार उसके साथ वैसा ही दु:ख दायक रहेगा जैसा दुष्टों के साथ दुष्टों का रहता है। इसके विपरीत सज्जन पुरुष के समीपवर्ती लोग वैसे ही होंगे और उनका व्यवहार वैसा ही संतोष जनक रहेगा जैसा सज्जनों का होता है।

चोर और सदाचारी को जो सांसारिक परिस्थितियाँ प्राप्त हैं वह एक-दूसरे से बिलकुल विपरीत हैं। परन्तु इसका मूल कारण मनुष्य का अपना मन है। वह चोर स्वभाव को अपनावे या सदाचार की ओर झुके यह पूर्णतया उसकी इच्छा के ऊपर निर्भर है। मन:लोक का जैसा निर्माण किया जाता है बाहरी दुनिया वैसी ही बन जाती है। मन में यदि शान्ति है तो बाहर भी शान्ति का वातावरण होगा यदि मन में आकुलता है तो बाहर भी आकुलता से भरी हुई घटनाएँ चारों ओर मंडरा रही होंगीं। जिसने मन: लोक में स्वर्ग स्थापित कर लिया है उसके लिए इस संसार में सर्वत्र स्वर्ग है, जिसके मन में नरक, है उसे सब ओर नरक की ज्वाला जलती हुई दृष्टि गोचर होती रहेगी।

संसार के समस्त दु:ख मिलकर मनुष्य को उतना दु:खी नहीं कर सकते जितना कि भीतर के अन्तर्द्वन्द्व उसे दु:खी करते हैं। मृत्यु स्वयं उतना कष्ट नहीं देती जितनी कि मृत्यु का भय दु:खी बनाता है। व्यापार में घाटा हो जाने पर भी एक व्यापारी के सामने ऐसा अवसर नहीं आता कि उसे जीवन यापन में असुविधा हो तो भी वह इतनी चिन्ता करता है कि सूखकर काँटा हो जाता है। उस घाटे वाले व्यापारी की जो स्थिति है उससे भी बहुत गिरी हुई स्थिति के मजूर हंसते खेलते प्रसन्नता का जीवन बिताते हैं। घाटे वाले व्यापारी को सांसारिक विपत्ति वास्तव में नहीं आई, केवल उसके मन में विपत्ति की एक झाड़ी उग आई। ईर्षा, द्वेष, घृणा, शोक, चिन्ता, कुढ़न, निराशा, भय, आशंका, प्रतिहिंसा स्पर्धा, आदि दुर्भावों के कारण कितने ही मनुष्य बुरी तरह व्याकुल रहते हैं, उनके मन में सदा एक बेचैनी, आकुलता, अशान्ति, एवं पीड़ा उठती रहती है, जिनके कारण उनका मन: लोक बहुत ही नीरस, गन्दा, शुष्क, धुधं एवं अन्धकार पूर्ण हो जाता है। उन्हें हर घड़ी अशान्ति घेरे रहती है।

काम, क्रोध, लोभ मोह, मद, मत्सर, अहंकार, छल, पाखण्ड, असंयम, शोषण, अपहरण, दुराचार, व्यभिचार आदि के

कुविचार एक प्रकार के मानसिक शत्रु हैं वे मन: लोक में निशाचरों की भाँति छिपे बैठे रहते हैं और जब भी अवसर मिलता है, दल बल सहित पूरी तैयारी के साथ निकल पड़ते हैं और जीवन के सुकोमल तन्तुओं को अस्त-व्यस्त कर डालते हैं। जैसे पेट में कोई विषैला पदार्थ पहुँच जाय तो वहाँ बड़ी जलन होती है, दस्त या उलटी होने लगती है। रक्त में कोई विषैला विजातीय पदार्थ पहुँच जाय तो फोड़े-फुन्सी, चकत्ते, कोढ़ आदि पैदा हो जाता है। माँस में काँटा घुस जाय तो जब तक वह निकल नहीं जाता निरन्तर पीड़ा होती रहती है ठीक यही हाल इन कुविचार रूपी तामसिक, नीच, विजातीय, दानवों के मन:लोक में घुस जाने से होता है, यह कुछ न कुछ खुद-बुद किया ही करते हैं। आँख में पड़ी हुई कंकड़ी की भाँति वे अन्त: चेतना को हर समय घायल ही करते रहते हैं। जैसे कोई आदमी लाल मिर्चों की बुकनी मर्म छिद्रों में भर लेने के बाद तड़पता फिरता है, चैन और आराम उसके लिए स्वप्न हो जाता है वैसे ही दुस्वभावों को अन्त: करण में स्थान देने से आत्मा में तीव्र जलन होती रहती है, शान्ति के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं ऐसी स्थिति मानसिक नरक ही कहो जायेगी।

मानसिक स्वर्ग का अर्थ है अपने अन्त:करण में सात्विक विचारों सद्भावों और सद्गुणों की धारणा करना। ईमानदारी की पवित्रता हिम-सी शीतल, पुष्प-सी कोमल, चन्दन सी सुगन्धित और नवनीत-सी स्वच्छ होती है उसे धारण करते ही आत्मा को बड़ी राहत मिलती है। हिमालय की तपोभूमि में नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्य देखते हुए कन्द मूल फल खाते हुए, भगवती भागीरथी के तट पर निवास करने वाले तपस्वियों को जो शान्ति मिलती है उसी शान्ति को हम ईमानदारी की पवित्रता ग्रहण करके प्राप्त कर सकते हैं। सच्चा मनुष्य विश्वास करता है कि-"ईमानदारी का पवित्र जीवन ही मुझे जीना है, मैं सच्चाई और नेकी से भरे हुए ही अपने विचार रखूँगा, न्याय, के ऊपर ही मेरी जीवन नीति निर्भर रहेगी, मैं सत्य को ही सोचूँगा, सत्य के आधार पर ही विचार करूँगा, भलाई, नेकी, उदारता और क्षमा का आश्रय ग्रहण करूँगा कुविचार, पाप, द्वेष और तुच्छ स्वार्थो में ऊँचा उठकर आध्यात्मिक जीवन जीऊँगा। यह भावनाऐं उसके अन्त:करण में सात्विकता का शीतल झरना प्रवाहित कर देती हैं।"

सत्य, प्रेम और न्याय के जीवन तन्तुओं को झंकृत करते ही आत्मा में एक मधुर संगीत वजने लगता है। पवित्रता का आध्यात्मिक संगीत ही भगवान कृष्ण की त्रिभुवन मोहिनी मुरली का मधुर वेणु नाद है। इसका रस जिसने अनुभव किया है वह धन्य है। आत्मा पवित्र है, उसका मनुष्य के लिए सन्देश है कि "पवित्रता को विचार और कार्यों में ओत-प्रोत करें" यह ईश्वरीय सन्देश जिसने सुन लिया वह बड़ भागी है, जिसने सुनकर हृदयंगम कर लिया और तदनुकूल आचरण करना आरम्भ कर दिया वह परमात्मा का सच्चा भक्त है। ऐसे भक्तों के बीच में ही भगवान खेला करते हैं। जिनका हृदय पवित्रता की भावनाओं से भरपूर है वह ईश्वरीय लीलाओं का क्रीड़ा क्षेत्र है। महात्मा ईसा कहा करते थे। कि इस पृथ्वी का स्वर्ग भोले बालकों में मौजूद है । सचमुच जिनका हृदय बालकों की तरह कोमल एवं पवित्र है वे स्वयं स्वर्ग रूप हैं, स्वर्ग में जाने की उन्हें कुछ भी आवश्यकता नहीं, क्योंकि जिन तथ्यों के आधार पर स्वर्ग के सुख का निर्माण होता है वे दृश्य इसके हृदय में मौजूद हैं और हर घड़ी स्वर्ग के सुख को उत्पन्न करते रहते हैं।

जो दूसरों को कष्ट में देखकर दया से द्रवित हो जाता है, जो असहायों की सहायता के लिए सदा तत्पर रहता है, जो संसार के सुख में अपना सुख अनुभव करता है, दूसरों को हानि पहुँचाने की जिसे कभी इच्छा नहीं होती, सत्य की बढ़ोतरी देखकर जिसे आन्तरिक सुख होता है, जिसे पर स्त्री माता के तुल्य हैं, जो पर धन को धूलि के तुल्य समझता है, इन्द्रियों को जो मर्यादा से बाहर नहीं जाने देता, चुगली, निन्दा, ईर्षा, एवं कुढ़न से जो दूर रहता है, संयम जिसका व्रत है, प्रेम करना जिसका स्वभाव है, मधुरता जिसके होठों से टपकती है, स्नेह एवं सज्जनता से जिसकी आँखें भरी रहती हैं, जिसके मन में केवल सद्भाव ही निवास करते हैं, अनीति की ओर झुकने का जिसे कभी लालच नहीं आता, सादगी, सरलता, शिष्टता जिसके रहन-सहन की अंग होती है, ऐसे पवित्रता आत्मा व्यक्ति इस लोक के देवता हैं। वे जहाँ रहेंगे, छाया की तरह उनका स्वर्ग उनके साथ रहेगा।

अन्त:करण की शान्ति बाहरी दुनिया को स्वर्गीय आनन्द से परिपूर्ण बना देती हैं। जिसके मन में सात्विकता है उसे दूसरों का धन, वैभव, ज्ञान, रूप, यौवन, देखकर प्रसन्नता होगी कि परमात्मा के इस पुनीत उद्यान का एक पौदा सुविकसित तथा पल्लवित हो रहा है, उस नयनाभिराम दृश्य से शान्त पुरुष का हृदय तृप्त एवं प्रफुल्लित हो जाता है परन्तु जिसके मन में अशान्ति व्याप रही है, ईर्षा की डायन नंगा नृत्य कर रही है उसे दूसरों की बढ़ोतरी नहीं सुहाती। भीतर ही भीतर भारी कुढ़न होती है और उस कुढ़न की अग्नि से उसकी छाती भभकने लगती है। जिसकी बढ़ोतरी हो रही है उसे नीचा दिखाने के लिए तरह तरह के षड़यन्त्र रचता है और अनिष्ट कर पथ पर अग्रसर होता है।

जो क्रोधी है उसे दूसरों की ओर से क्रोध पूर्ण व्यवहार अपने ऊपर होता हुआ दृष्टि गोचर होगा। जो अनुदार है उसके

साथ में अन्य व्यक्तियों का अनुदारता पूर्ण व्यवहार होगा। झूँठे और लवार व्यक्ति जहाँ जायेंगे वही देखेंगे कि उनके ऊपर अविश्वास एवं निन्दा की बौछार हो रही है व्यभिचारी व्यक्ति को भले घरों में प्रवेश नहीं होने दिया जाता चुगलखोर और यहाँ की बात वहाँ करने वालों के सामने लोग अपने मन की बात नहीं करते। बेईमान आदमी के कार्यों को लोग अविश्वास के साथ देखते हैं और जब तक अनेक प्रकार जाँच पड़ताल नहीं कर लेते, तब तक भरोसा नहीं करते। इस प्रकार के अपमान जनक व्यवहार दूसरों की ओर से होते देखकर आमतौर से लोग मन ही मन कुड़कुड़ाते हैं और जमाने को, युग को, लोगों को, दुनियाँ को दोष देते हैं परन्तु वे अपने निजी दोषों को देखना भूल जाते हैं । वास्तव में अपने निजी दोषों असुखकर, अप्रिय, अपमान जनक, संघर्षमय वातावरण उत्पन्न करते हैं। यदि अपने हृदय में सात्विकता की पर्याप्त मात्रा विद्यमान हो तो दुनियाँ की ओर से अधिकांश आक्रमण तो अपने आप ही बन्द हो जाते हैं। जो थोड़े बहुत आक्रमण नितान्त दुष्टों की ओर से किये जाते हैं। वे प्राय: असफल होते हैं। यदि उन आक्रमणों से कुछ कष्ट भी उठाना पड़े तो वह धर्म-प्रतिरोध करता है। इन आक्रमणों या प्रतिरोध में उसकी मानसिक शान्ति नष्ट नहीं हो पाती।

स्व: लोक का स्वर्ग अपने भीतर है। यदि हम प्रेम, उदारता, ईमानदारी और भलमनसाहत का व्यवहार दूसरों से करें तो दूसरों के हृदयों में से भी वैसी ही आवाज हमारे लिए आवेगी। अपने मन में पवित्रता, निष्कपटता, सत्यता, संयम, एवं निस्वार्थता के भाव विद्यमान हों तो वे सदभाव ही अपने को सदा प्रफुल्लित एवं सन्तुष्ट रख सकते हैं। बारहसिंगा की नाभि में कस्तूरी होती है, यह अपने ही अन्दर नन्दन वन की सुगन्धित का रसास्वादन करता है। जिस सुगन्ध के लिए दूसरे लोग तरसते हैं और प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के उपाय करते हैं वह बारहसिंगा को अपने अन्दर ही मिल जाती है वह अपनी मस्ती में मस्त हुआ उछलता फिरता है। फिर तुम्हीं दिन-रात दूसरों को हानि पहुँचाने के दुष्प्रयत्नों में मग्न रह कर अपने हृदय को अशान्त क्यों रखते हो? चलो, अपने स्व: लोक को पहचानों और उसमें प्रवेश करो।

यह परलोक की दार्शनिक विवेचना हुई, पर यदि उसकी वास्तविकता समझनी हो तो यही कहना पड़ेगा कि परलोक का दूरी से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। 'क्ष' किरणों (X.Rays) ठोस पदार्थों को चीरती हुई पार हो जाती हैं, हमें दीवार का पर्दा तोड़ना मुश्किल मालूम पड़ता है पर 'क्ष' किरणों के लिए यह पर्दा कुछ नहीं के बराबर है। गर्मी और सर्दी का प्रभाव बहुत अंशों में बाहरी प्रतिबन्धों को तोड़कर भीतर चला जाता है, इसी प्रकार सूक्ष्म तत्वों के लिए स्थूल वस्तुओं के कारण कुछ बाधा नहीं पड़ती। हवा का समुद्र, पृथ्वी के चारों ओर भरा हुआ है, पर हम उसे चीरते हुए जहाँ फिरते हैं, हमें वह भान भी नहीं होता कि हम हवा के बीच में इसी प्रकार भाग-दौड़ कर रहे हैं जैसे- पानी में मछली। सम्भव है मछली भी पानी में ऐसे स्वतंत्र घूमती हो जैसे हम हवा के समुद्र में घूमते हैं। मृत आत्माएँ सूक्ष्म तत्वों की बनी हुई हैं, इसलिए वे ईथर तत्व की भाँति चाहे जहाँ आ जा सकती हैं। उसके निवासी स्वेच्छानुसार चाहे जहाँ भूमि, जल, पर्वत, ग्रह, नक्षत्र आदि के बीचों बीच या ऊपर नीचे भी रह सकते हैं और अपने रहने के लिए सब प्रकार की सुविधाएँ वहाँ उत्पन्न कर सकते हैं।

यह जानना चाहिए कि मृत प्राणी के साथ उसके विचार, स्वभाव, विश्वास और अनुभव भी जाते हैं। घरों में रहने, कपड़े पहनने, भोजन करने आदि की क्रियाएँ जीवित मनुष्यों को जीवन भर करनी पड़ती हैं, इसलिए उनके यह विश्वास सुदृढ़ हो जाते हैं, यह बात एक साधारण मनुष्य के विचारों के बाहर की है कि कोई मनुष्य बिना घर, वस्त्र, और भोजन के भी रह सकता है। जैसे विश्वासों के कारण सूक्ष्म शरीर और इन्द्रियाँ उत्पन्न हो जाती हैं वैसे ही विश्वासों के आधार पर परलोक वासी के लिए गृह, वस्त्र, आहार-विहार की भी व्यवस्था हो जाती है। वे समझते हैं कि हम घरों में रहते हैं, कपड़े पहनते हैं और भोजन करते हैं। यह सब पदार्थ उनकी भावना स्वरूप होते हैं। यदि कोई परमहंस संन्यासी निर्जन वन में वस्त्र रहित और कन्दमूल फल खाकर निर्वाह करता हो तो उसका परलोक भी वैसा ही होगा। भूत प्रेत किन्हीं विशेष स्थानों पर ठहर जाते हैं किन्तु साधारण क्रम के अनुसार चलने वाले प्राणी स्थान सम्बन्धी बन्धन में नहीं बँधते। वे एक स्थान पर रहते हैं किन्तु वह स्थान चाहे जहाँ हो सकता है।

स्त्री और पुरुष का लिंग भेद बना रहता है। विश्वासों के आधार पर यह भी निर्भर है, जो पुरुष स्त्री भावना का आचरण करते हैं या जो स्त्रियाँ पुरुष भाव को हृदयंगम करती हैं वे कुछ काल नपुंसक की दशा में रहकर लिंग परिवर्तन कर लेते हैं और अगला जन्म परिवर्तित भावना के अनुसार होता है। यह अपवाद है। साधरणत: लिंग परिवर्तन करने की किसी जीव की रुचि नहीं होती। शरीर सम्बन्धी अयोग्यताएँ परलोक में हट जाती हैं और वे प्राय: तरुण दशा को प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि यह अयोग्यताएँ मन की नहीं वरन् एक शरीर में भी कुछ समय की हैं। इसलिए इन शारीरिक अयोग्यताओं का मन पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता।

परलोक में इच्छा करने पर कोई जीव किन्हीं दूसरे जीवों से मिल भी सकता है। इच्छा होने पर ही वे दूसरे परलोकवासी

दिखाई देते हैं और उनसे विचार परिवर्तन करना सम्भव होता है। यह मिलन दो चेतनाओं का मिलन होता है। विचारों का आदान-प्रदान ही हो सकता है। शरीर कोई किसी को नहीं देखता क्योंकि परलोक वासियों के सूक्ष्म शरीर वास्तव में देखने योग्य नहीं होते घर, कपड़े,भोजनादि की हर जीव की अपनी कल्पना होती है उसका देखना भी दूसरे के लिए कठिन है। स्वर्ग-नर्क के दुःख-सुख का दूसरा परिचय पाते हैं, पर यह नहीं देख सकते कि वह कुम्भीपाक नर्क में पड़ा हुआ है या रौरव में। स्वर्गवासी आत्माओं के शरीर में एक प्रकार का तेज होता है जिससे उनके सुखी होने का परिचय मिलता है, पर यह जानना कठिन है कि वह हूर गिरमाओं के जन्नत में हैं या सुरपुरी में, क्योंकि यह सब भी अपनी-अपनी स्वतंत्र कल्पनाएँ हैं, दृश्य वस्तु इनमें से कुछ भी नहीं। मृतात्माएँ एक-दूसरे से कह सुन सकती हैं, पर उनके लिए यह कठिन है कि दुःख-सुख में भी हिस्सा बाँट सकें। कुछ आत्माएँ अपने पूर्व परिचितों मृतकों के साथ रहना पसन्द करती हैं और उनका एक समुदाय बन जाता है। ऐसे समुदाय नीचे लोक में ही होते हैं। उच्चलोकवासी जन्म- जन्मान्तरों में आकर्षित प्राणियों के साथ अपने सम्पर्कों का ध्यान करते हुए इन भ्रम बन्धनों की व्यर्थता को समझ जाते हैं और मोह जाल से दूर रहते हुए आत्मोन्नति का एकान्त प्रयत्न करते हैं। आत्माएँ किसी बाड़े में या किसी अन्य शासन के अधिकार में नहीं रहतीं, जीवों पर उनकी अन्तरात्माओं का ही शासन होता है।

श्राद्ध करने या स्मारक बनाने का पुण्य फल उनके करने वालों को ही प्राप्त होता है यह दान-पुण्य परलोक वासी की कुछ विशेष सहायता नहीं कर सकता क्योंकि इन उदार कार्यों के करने में अपना कुछ हाथ थोड़े ही है? यह निश्चय है कि पुण्य फल का अदला-बदला नहीं हो सकता। जो करता है, वही भरता है। फिर भी परलोक वासी जब यह देखता है कि मेरे पूर्व सम्बन्धी मेरे प्रति कृतज्ञता और उपकार के भाव प्रदर्शित कर रहे हैं, तो उसे संतोष होता है और कभी उनके बस की बात हो एवं अवसर पावें तो उस उपकार भाव का किसी अदृश्य प्रकार से बदला चुकाते हैं। अपने प्रियजनों की सहायता के लिए जो कर सकते हैं, करते हैं। सम्बन्धियों के रोने-पीटने या शोक प्रदर्शन करने से मृतक को दुःख होता है ओर उनकी शांति में बाधा पड़ती है। इसलिए उचित यह है कि मृतक के साथ मोह बन्धन शीघ्र से शीघ्र तोड़ लिया जाँए और केवल शांति की उच्च कामना की जाय।

परलोक जीवन और स्वर्ग-नरक

मृत्यु के अवसर पर मनुष्य के स्थूल शरीर में से उसका छाया-शरीर (ईश्वरमय शरीर) बाहर निकल जाता है। मनुष्य का प्राण और अन्य तत्व भी इसी छाया शरीर के साथ रहते हैं। इससे मनुष्य की देह और ज्ञानेन्द्रियाँ शून्य हो जाती हैं। स्थूल इन्द्रियाँ तो ज्यों की त्यों दिखाई पड़ती हैं, पर चूँकि उनका स्वामी, चला गया, इसलिए ये कोई काम नहीं कर सकतीं। जो उनके द्वारा देखता था, सुनता था, स्वाद लेता था, या छूता था, वह निकल गया। उसके बिना अकेली इन्द्रियाँ केवल जड़ पदार्थ का समूह हैं और उनमें ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति नहीं रह जाती। देह का यह स्वामी अर्थात् आत्मा, अपने समस्त जीवन-चित्रों को देखता और उनके सम्बन्ध में विचार करता हुआ धीरे-धीरे बाहर निकलता है। इन चित्रों में उसके जीवन की छोटी बड़ी सब घटनायें होती हैं। उस समय उसे स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि हमारी कौन-कौन कामनायें सफल हुईं और कौन निष्फल हुईं, हम कहाँ-कहाँ हारे और कहाँ पर जीते, किससे प्रेम किया और किससे घृणा-द्वेष किया। जीवन में जो मुख्य सार रहा वह भी स्पष्टतया दिखाई पड़ता है। जीवन में जो कुछ विचार प्रधान रूप रहा है वह इस समय जीव पर अपना प्रभाव अच्छी तरह डालता है और उससे मालूम पड़ जाता है कि जीव को यमलोक में कितने समय किस अवस्था में निवास करना पड़ेगा। यह अवसर मनुष्य के लिए बड़े महत्व का और बहुत गंभीर होता है, जब उसके सामने उसका सब जीवन उपस्थित है और भूतकाल का फल देखकर उसे मालूम पड़ जाता है कि हमारा भविष्य किस प्रकार का होगा। थोड़ी देर के लिए उसे यह भी मालूम पड़ जाता है कि मैं कैसा हूँ और मेरे जीवन का क्या उद्देश्य है? उसे इस समय यह दीख पड़ता है कि ईश्वर के नियम अटल, न्यायपूर्ण और हितकारी हैं। इसके पश्चात् स्थूल और छायामय शरीर के बीच का सम्बन्ध टूटता है, ये दोनों जन्म भर के साथी बिछुड़ते हैं और प्रायः मनुष्य शान्त होकर अचैतन्य अवस्था को प्राप्त होता है।

मृत्यु के समय जो अन्य व्यक्ति आस-पास उपस्थित हों उनका कर्त्तव्य है कि उस समय शान्त और मौन रहें, तथा भक्तियुक्त व्यवहार करें। ऐसा करने से मरने वाला व्यक्ति बिना किसी बाधा या क्षोभ के अपने जीवन-चित्रों का दर्शन कर सकता है। पर जैसा कि भारतवर्ष में प्रायः देखा जाता है, अनेक लोग उसी स्थान पर जोरों से रोने और बिलाप करने लगते हैं, जिससे मरने वाले की एकामता भय हो जाती है। अपने स्वार्थ के ख्याल

से मरते हुए प्राणी की शांति भंग करना और उसे सुख-शांति पहुँचान का उपाय न करना बड़ी बुरी बात है। इसलिए सब धर्मों के बुद्धिमान पुरुष यह आदेश दे गये हैं कि मरते हुए मनुष्य के निकट धर्म ग्रन्थ का पाठ, ईश्वर प्रार्थना आदि की जाय। क्योंकि ऐसा करने से शान्ति बनी रहती है और जीव की सहायता के लिए लोगों के मन में निःस्वार्थ विचार उठते हैं जिससे उसके परलोक गमन में सहायता मिलती है।

ऐसा अनुमान किया गया है कि मरने के प्रायः ३६ घंटे बाद जीव, छायामय (ईश्वर) शरीर को भी छोड़कर बाहर निकल जाता है। तब छाया शरीर भी स्थूल शरीर के पास रहकर धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। जो मुर्दे गाड़े जाते हैं उनके छाया शरीर कबर के ऊपर रहकर क्रमशः खतम हो जाते हैं। जो मुर्दे जलाये जाते हैं उनके छाया शरीर भी जल्दी नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि स्थूल शरीर के प्रति उनका जो खिचाव रहता है, वह मिट जाता है । योंभी एक कारण है कि जिससे मुर्दा गाड़ने की अपेक्षा उसे जला देना अच्छा है।

स्थूल शरीर में से छाया शरीर के निकल जाने के बाद उसमें से प्राण शक्ति निकल कर जगत में भरे हुए प्राणों में समा जाती है। अब मनुष्य का जीव (प्रेत) परलोक (काम लोक अथवा प्रेत लोक) की तैयारी करता है और उसके "लिंग-शरीर" की अवस्था बदलती है, जिससे जीव शुद्ध होकर मोक्ष अधिकारी बन सके। "लिंग शरीर" की इस प्रकार बदली हुई व्यवस्था को यातजा-देह कहते हैं, अर्थात् इसमें अपने कर्मो का फल माँग कर जीव शुद्ध हो जाता है।

प्रेतलोक में भूःलोक से आने वाले जीवों को सात अन्तर्भूमिकाओं अथवा परतों के गोले में रहना पड़ता है, जो एक प्रकार से उसका कैदखाना है। जब तक जीव कर्मो का फल भोग कर इस कैदखाने को भेद कर बाहर नहीं आ जाता तब तक उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। अब जिस जीव की प्रकृति इन सात परतों में से जिसके अधिक अनुकूल होती है उसी में वह अधिक समय तक रहता है। एक साधक का कथन है कि साधारण जीव इस लोक में अपनी योग्यता के अनुसार पाँच से पचास वर्ष तक रहते हैं। आत्मोन्नति वाले जीव की "अन्तर्भूमिका" बहुत सूक्ष्म या बारीक होती है, इसलिए उसकी भावना देह के सातों परत बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं और वह प्रेत लोक से निकल कर ऊपर के लोक में जा पहुँचता है। जिस व्यक्ति की इतनी आत्मोन्नति नहीं हुई है परन्तु जिसने उचित आहार-विहार द्वारा अपना जीवन शुद्ध रखा है और सांसारिक वस्तुओं में जिसकी वासना मन्द रही है, वह काम लोक से बहुत जल्दी तो नहीं निकल पाता, पर जब तक उस लोक में रहता है उसे अपनी अवस्था का ध्यान नहीं रहता और वह बराबर एक शान्तिदायक स्वप्न सा देखता रहता है। जब वह ऊपर वाले स्वर्ग लोक में पहुँच जाता है तभी उसे चेतना आती है। जो जीव इनसे भी कम उन्नति वाले हैं उनको नीचे के दर्जे में तो बेहोशी की अवस्था में रहना पड़ता है और जब वे अपनी प्रकृति के अनुकूल अन्तर्भूमिका में पहुँचते हैं तभी उनको चेतना आती है। जीवन काल में जिन मनुष्यों में पशु प्रवृत्तियाँ बहुत प्रबल रही हैं, वे अपनी वृत्तियों से मिलते हुए नीचे के खण्डों में जागृत हो जाते हैं और वहाँ के जीवन का भोग करते हैं। सर्वसाधारण की भाषा में प्रेत लोक की इन्हीं सात अन्तर्भूमिका या परतों को सात नर्क के नाम से पुकारा जाता है।

जिन मनुष्यों की किसी कारण से अकालमृत्यु होती है जैसे अपघात, आत्मघात, वध (कत्ल) या किसी प्रकार के अचानक मरण से तो उनके लिए दूसरा नियम है। यदि वे जीव शुद्ध हैं और इनका मन आत्मोन्नति की ओर रहा है तो इनकी विशेष रक्षा होती है और जितनी आयु बाकी बची थी, उतने समय तक वे आनन्ददायक निद्रा के वशीभूत रहते हैं परन्तु दूसरे प्रकार के लोगों को होश बना रहता है। बहुतों को तो मरते समय की सब बातें ज्यों की त्यों स्मरण रहती हैं और उनको अपने मरने की खबर भी नहीं होती। वे अपने कर्मो के अनुसार अन्तर्भूमिका में रहते हैं और उनका प्रेत लोक का जीवन तब आरम्भ होता है जब वे अपनी शेष आयु उस भूमिका में रहकर समाप्त कर लेते हैं। एक मनुष्य ने दूसरे व्यक्ति का खून किया था और इस अपराध में उसे फाँसी का दण्ड मिला था, प्रेत लोक में यह मनुष्य बार-बार उस मनुष्य को मार कर फिर गिरफ्तारी और फाँसी लगने का दुःख अनुभव करता था। आत्महत्या करके मरते हैं, उनको भी अपने जीवन की निराशा, भय आदि का अनुभव बराबर होता रहता है और वे बार-बार आत्महत्या का भयानक कृत्य करते रहते हैं। एक स्त्री आग में जल कर मरगई। मरते समय अपने को बचाने के लिए उसने बहुत प्रयत्न किया था। इसका फल यह हुआ कि मरने के बाद भी कितने ही दिन तक वह वैसा ही प्रयत्न करने का और कष्ट पाने का अनुभव करती रही। एक अन्य स्त्री आँधी के कारण नाव डूब जाने से अपने दूध पीते बच्चे के साथ मर गई। मरते समय भी उसका चित्त शान्त और प्रेममय था। इस कारण मर जाने पर भी वह अपने पति और बच्चों के आनन्ददायक स्वप्न देखती हुई सोती रही।

मनुष्य को अपने कर्मो का फल परलोक में अवश्य किसी न किसी रूप में भोगना पड़ता है पर आधुनिक विचार धारा के लोग इस अवधारणा को अमान्य कर देते हैं। उनको इस बात

पर विश्वास नहीं होता कि वास्तव में आकाश में ऊपर स्वर्ग और नीचे नरक लोक इसी प्रकार बसे हैं, जैसे हम अपनी इस पृथ्वी को देख रहे हैं। वे कहते हैं कि स्वर्ग-नरक और कहीं नहीं' इसी पृथ्वी पर मौजूद हैं और जो व्यक्ति जैसे कर्म करता है उसका स्वर्गीय या नारकीय फल उसे यहीं प्राप्त हो जाता है। इनके अतिरिक्त हिन्दुओं में ही जो एक श्रेणी आध्यात्मिकवादियों और वेदांतियों की है और जिसमें प्राय: ऊँचे दर्जे के विद्वान पाये जाते हैं, वे ऐसे स्वर्ग में बिलकुल विश्वास नहीं करते। उनके मतानुसार मनुष्य इसी लोक में इच्छानुसार आत्मोन्नति करके परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार स्वर्ग के विषय में लोगों में अनेक प्रकार के विचार और कल्पनायें प्रचलित हैं यद्यपि हिन्दुओं के पुराण स्वर्ग की कथाओं से ही भरे पड़े हैं, पर अब आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से शिक्षित लोगों का विश्वास उनमें बहुत ही कम रह गया है। नई रोशनी के व्यक्ति तो इन बातों को अधिकांश कल्पित ही मानते हैं।

पर अब थोड़े वर्षों से एक नई वैज्ञानिक विचारधारा का जन्म हुआ है। इसके अनुयायी हिन्दू शास्त्रों और पुराणों की बातों को कपोल कल्पित तो नहीं बतलाते हैं, पर वे कहते हैं कि ये वर्णन-रूपक और अलंकारों के द्वारा बहुत बढ़ा-चढ़ा कर किये गये हैं जिससे वास्तविक बातों को न समझ कर लोगों में तरह तरह के भ्रम उत्पन्न हो गये हैं। ऐसे लोगों में सर्व प्रधान थियोसोफिकल समाज का नाम लिया जा सकता है। इन लोगों ने हिन्दू धर्म के सभी सिद्धान्तों की नवीन ढंग से खोज की है और उनके वास्तविक स्वरूप पर प्रकाश डाला है। क्योंकि ये लोग अधिकांश में विदेशों के निवासी और उच्चकोटि के विद्वान, प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, इसलिए उन्होंने जो कुछ कहा है उसके बुद्धि संगत और विज्ञान के अनुकूल होने का भी ध्यान रखा है।

इन विद्वानों के मतानुसार स्वर्ग लोक ही नहीं पुराणों में बतलाये सातों लोक अवश्य हैं, पर जैसा समझा जाता है वे हमसे बहुत दूर या सर्वथा पृथक नहीं हैं। उनका कहना है कि ये सब लोक हमारे इर्द-गिर्द ही मौजूद हैं, पर उनमें से प्रत्येक की बनावट भिन्न प्रकार के परमाणुओं की है जिसका हमको न तो ज्ञान है और न हम उन्हें अनुभव कर सकते हैं।

जब यह कहा जाता है कि एक मनुष्य एक लोक से दूसरे लोक को गया तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान को चला गया। इसका अर्थ यही है कि उसने अपनी चेतना को दूसरे लोक की ओर बदल दिया। प्रत्येक मनुष्य में सात में से नीचे के पाँच लोकों की प्रकृति भरी है और उनकी प्रकृतियों से बने कोश भी उसमें रहते हैं, जिनके द्वारा वह उन लोकों में वैसी शिक्षा पाने पर क्रिया कर सकता है। इसलिए " एक लोक से दूसरे लोक में जाने का अर्थ अपने को एक कोष से हटा कर दूसरे कोष में स्थिर करने का है। जैसे- स्थूल शरीर से चेतना खींचकर लिंग शरीर में स्थिर करने से भुवर्लोक का सब ज्ञान मिलने लगेगा, और मनोमय कोष। स्थिर करने से मनो लोक का भान् होने लगेगा। प्रत्येक शरीर अपने ही लोक के कर्मों को ग्रहण कर सकता है। इसलिए उसे उसी लोक का ज्ञान होना सम्भव होता है। इस प्रकार यदि चेतना लिंग शरीर में स्थिर है तो उसे केवल भुवर्लोक का ही ज्ञान होगा। जब चेतना स्थूल इन्द्रियों द्वारा कार्य करती है तो उसे केवल भूर्लोक का ही ज्ञान होता है, यद्यपि ये सभी लोक हमारे आस-पास एक ही स्थान में और एक ही काल में वर्तमान हैं। वास्तव में इन सब लोकों को मिलने से एक बड़ा विराट रूप होता है जिसके बहुत ही थोड़े भाग को हम लोग एक बार में देख सकते हैं, क्योंकि हमारी शक्ति वहीं तक सीमित है।

मनुष्य जाति को इस समय जिन पाँच खण्डों या लोकों से सम्बन्ध है वे ये हैं-भू: या स्थूललोक, भुव: या अस्थूल, मनोलोक, बुद्धिलोक, और निर्वाण या काललोक। मनुष्य योनि के आरम्भ की अवस्था को छोड़कर बाकी समय में मनुष्य अपना विशेष काल इस "मनलोक" में ही खर्चे करता है। क्योंकि जंगली लोगों को छोड़कर दूसरे मनुष्यों को स्वर्ग में रहने की अवधि पृथ्वी के जीवन काल की अपेक्षा प्राय: बीस गुनी होती है अर्थात् साधारण सद्गृहस्थ वहाँ ६०० से १००० वर्ष तक रहते हैं और विशेष पुन्यात्मा तथा परोपकारी इससे कहीं अधिक समय तक रहते हैं। उसके पश्चात् वे फिर पृथ्वी पर ही जन्म लेते हैं। इस तरह जीवों का सच्चा और पक्का घर पृथ्वी के अपेक्षा यह मनोलोक ही है। पृथ्वीलोक में जन्म धारण करके आना यह उस जीव के जीवन में छोटी परन्तु मुख्य घटना है। इसलिए हम स्थूल शरीर धारियों को उस लोक का हाल समझने के लिए प्रयत्न करना एक दृष्टि से अति आवश्यक है।

दुर्भाग्य से उस मनोलोक का वर्णन इस भू:लोक की भाषा में अच्छी तरह हो ही नहीं सकता। वहाँ की प्रकृति यहाँ की प्रकृति की अपेक्षा इतनी सूक्ष्म (बारीक) है और यहाँ की चेतना (ज्ञान) की अपेक्षा वहाँ की चेतना इतनी अधिक बड़ी तथा भिन्न प्रकार की है कि वहाँ का वर्णन यहाँ की भाषा में में कर सकना प्राय: असंभव ही है। उदाहरण के लिए मनोलोक में देश और काल का भान ही नहीं होता। जो बातें यहाँ से दूर के स्थानों में और एक के बाद एक होती हैं वे उस लोक में एक साथ और एक ही

स्थान पर होती दिखलाई देती हैं। इसका कारण कुछ भी हो पर वहाँ रहने वाले जीवों को ऐसा ही भान होता है। वहाँ की अवस्था का वर्णन एक महापुरुष ने जो योग-शक्ति द्वारा उस स्थान को देख सकते थे, इस प्रकार किया है।

"इस लोक में प्रथम बार कुछ-कुछ ज्ञान इस बात का होता है कि ईश्वर किस प्रकार का होगा और वह हमें किस प्रकार का बनाना चाहता है। संसारी मनुष्य के जो सुख के विचार हैं वे यहाँ की ज्ञान दृष्टि में बहुत निरर्थक मालूम होते हैं। यहाँ यह दीख पड़ता है कि ये विचार ठीक नहीं है और इनसे सुख प्राप्त नहीं हो सकता। इस लोक में कवियों के विचारों से भी बढ़कर सत्य और सुन्दरता पाई जाती है।

इस मनोलोक की प्रकृति के अणु, परमाणुओं में कम्पन बहुत शीघ्रता से होते हैं। यद्यपि हम सिद्धान्त रूप से यह जानते हैं कि हमारी पृथ्वी के पदार्थ के कारण भी सदैव कणयुक्त रहते हैं, चाहे वे देखने में कैसे भी ठोस जान पड़ते हों इसके बाद जब हमकों भुवर्लोक का अनुभव हो जाता है तो यह कम्पन स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगते हैं और उनके द्वारा ऐसी-ऐसी चमत्कार-युक्त बातों की सम्भावना जान पड़ती है जिनकी भू:लोक में हम कल्पना भी नहीं कर सकते। जब भुवर्लोक की ऐसी स्थिति है तो मनोलोक (स्वर्ग) की क्या स्थिति होगी इसको शब्द किस प्रकार प्रकट कर सकते हैं। यहाँ के अणुओं के कम्पनों से वहाँ के अणुओं का कम्पन करोड़ों गुना अधिक है, इसलिए यहाँ की और वहाँ की अवस्था में भी वैसा ही अन्तर है।"

इस प्रकार जो लोग समझते हैं कि स्वर्ग में पृथ्वी से बढ़कर भोग विलास की सामग्री मिलती है, वे बड़ी गलती में है। यह सत्य है कि वहाँ का जीवन यहाँ के जीवन से करोड़ों गुना आनन्द पूर्ण है पर वह इन्द्रिय तुष्टि का तुच्छ आनन्द नहीं है, वरन् आत्मानन्द है। पृथ्वी के भोग विलास का अन्त थोड़े या बहुत समय बाद ही प्राय: ग्लानि में होता है, पर आत्मानन्द निरन्तर बढ़ता ही जाता है क्योंकि स्वर्ग से ऊपर कई लोक हैं जिनमें जीव उन्नति करके जा सकता है। इन सब लोकों के जीवों की ज्ञान राशि तथा शक्ति असीम है, पर उनका लक्ष्य सदैव परसेवा और प्रेम करना ही होता है। पृथ्वी पर भी इन गुणों को हम अपने भीतर अधिक से अधिक बढ़ा सकते हैं और जब हम वैसा करेंगे तभी हमको स्वर्गीय जीवन का कुछ भान होना संभव है।

ईश्वर बड़ा दयालु है, उसने प्राणियों को भरपूर स्वतंत्रता दी है कि वे इच्छापूर्वक कार्य करते हुए सत् चित् आनन्द की प्राप्ति करें। जो लोग गलती करते हैं उनसे परमात्मा क्रुद्ध नहीं होता और न किसी द्वेष भाव से दण्ड देता है, वरन् उसने ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि जीव अपनी त्रुटियों से अनुभव प्राप्त करें और आगे के कार्य के लिए अधिक योग्यता प्राप्त करें। स्वर्ग-नरक की रचना इसी दृष्टिकोण से की गई है। न्याय मूर्ति जज किसी को जेलखाने में बुरी नीयत से नहीं भेजते, उनकी हार्दिक इच्छा यह होती है कि वह आदमी त्रुटियों का परिणाम अनुभव करें और इससे शिक्षा ग्रहण करके भावी जीवन को उत्तमता से बिताने का प्रयत्न करें। मृत्यु के उपरान्त जीव को नर्क या स्वर्ग प्राप्त होता है, इस बात को संसार के समस्त धर्म एक स्वर से स्वीकार करते हैं। इसमें कोई संदेह की बात नहीं है। निश्चय ही हमें मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच में स्वर्ग-नरक का अनुभव प्राप्त करना पड़ता है, परमात्मा की इच्छा है कि इस व्यवस्था द्वारा पूर्व त्रुटियों का संशोधन हो जाय और भावी जीवन का मार्ग निरापद बन जावे।

तीन वर्ष या जितना समय जीव को परलोक में ठहरने के लिए अदृश्य चेतना आवश्यक समझती है, उसका पहला एक तिहाई भाग निद्रा में व्यतीत होता है, क्योंकि पूर्वजन्म के परिश्रम की उस काल में इतनी थकान होती है कि प्राणी इस समय अचेतन सा हो जाता है, इस समय वह दण्ड शिक्षा का कुछ अनुभव उसी प्रकार नहीं कर सकता, जैसे कि क्लोरोफार्म सुंघाकर बेहोश किया हुआ रोगी अपने शरीर की चीर-फाड़ का अनुभव नहीं कर करता। प्रारम्भिक एक तिहाई भाग बीत जाने पर जीव स्वस्थ होकर जागृत होता है और पीछे के कार्यक्रम पर ध्यान देता है। तीसरी तिहाई में वह अपने पिछले जीवन पर ध्यान देता है। सारे बुरे-भले कर्मो के परत उसकी चेतना के साथ बड़ी मजबूती के साथ चिपके हुए होते हैं। यह परत एक-एक करके खुलते हैं तब तक उन कर्मो के बीज पक चुके होते हैं और वे फल के रूप से उपस्थित होते हैं। इस समय वे केवल स्मरण मात्र नहीं होते वरन् अपना एक फल साथ लाते हैं। जीवन में हम जो कुछ बुरे-भले काम करते हैं साधारण तौर से कुछ दिन बाद उन्हें भूल जाते हैं, किन्तु साक्षी रूप आत्मा जो अन्त:करण में बैठा हुआ है उन सब बातों को नोट करता है। मान लीजिए आपने चोरी की। चोरी करते समय अन्तरात्मा धिक्कारती है, पर हम उसे नहीं सुनते और चोरी कर डालते हैं। किसी ने उस चोरी को देख नहीं पाया, तदनुसार प्रत्यक्ष रूप से कुछ दण्ड न मिला। आत्मा के क्षेत्र में वह काम बीज रूप से उसी प्रकार बोये जाते हैं जैसे- खेत में गेहूँ। कुछ समय बाद बाहर का मस्तिष्क उस चोरी को भूल जाता है पर आत्मा नहीं भूलती। उसके खेत में

वह बीज बराबर बढ़ता रहता है। खजूर की गुठली जब बोई गई थी तो उसका रूप दूसरा था किन्तु उसका परिवर्तन रूप खजूर का वृक्ष दूसरी तरह का होता है। पाप का स्वरूप दूसरा होता है किन्तु उसका परिवर्तित रूप दुःख होते हैं ।

नरकों का वर्णन अनेक प्रकार से होता है विभिन्न धर्मावलम्बी उनकी रूपरेखा में कुछ फर्क बताते हैं। कुम्भी पाक, वैतरणी , रौरव, दोजख, हैल आदि के वर्णन कुछ अलग हैं। यह विभिन्नताएँ अधूरी हैं। फिर भी सत्य हैं। हमारा मत है कि हर प्राणी के लिए अलग प्रकार का नरक होना सम्भव है। इस तरह जितने प्राणी हो चुके, उतने नरक हुए होंगे और आगे जितने होने वाले हैं, उतने नये होंगे। कारण यह है कि हर व्यक्ति का दृष्टिकोण अलग होता है। एक पण्डित जी को पाखाने में बन्द कर दिया जाय तो उन्हें मृत्यु के समान कष्ट होगा, पर एक मेहतर को दिन भर टट्टी साफ करते रहना कुछ भी नहीं अखरता। एक मनुष्य को छोटा फोड़ा हो जाय तो वह बड़ा दुःख का अनुभव करेगा, दूसरे वे भिखारी होते हैं जो अधिक भिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने घावों को बढ़ाते हैं, यदि उनका फोड़ा अच्छा हो जाय तो उन्हें बड़ा दुःख होता है। फाँसी-मृत्यु के दण्ड से कुछ लोग अत्यन्त भयभीत होते हैं, किन्तु कुछ लोग फाँसी के फन्दे को प्यार से चूमते हैं और गीत गाते हुए रस्से को अपने हाथ से गले बाँधते हैं। कुम्भीपाक के बारे में कहा जाता है कि यह नरक भीतर पोले कुएँ की तरह होता है और उसके ऊपर के भाग में एक छोटा सा छेद होता है। कुआँ खोदने वाले या कुएँ का पानी कोठी में चलाने वाले यदि इस नरक में बन्द कर दिये जावें तो उन्हें कुछ भी बुरा न लगेगा। एक आदमी में चाँटा मार दिया जाय तो उसे तलवार के आघात जैसा दुःख होगा किन्तु दूसरे में पचास जूते मारे जायें तो भी दस मिनट बाद हँसता नजर आवेगा। इन्हीं सब कारणों से अलग-अलग मानसिक स्थिति वाले लोगों के लिए अलग अलग प्रकार के नरकों की आवश्यकता है।

पुराणों में ऐसा वर्णन है कि यमदूत घसीट कर नरक में ले जाते हैं। ये यमदूत कोई स्वतन्त्र प्राणी नहीं हैं केवल जीव के मानस पुत्र हैं। अन्तःकरण अपने क्रम परिपाक में इन यमदूतों को भी उपजाता है। यह दूत केवल उतने ही दिन तक जीते हैं जितने दिन तक प्राणी को नरक में रहने की आवश्यकता होती है, कार्य समाप्त होते ही वह मर जाते हैं। एक के लिए पैदा हुए यमदूत दूसरे को दण्ड देने के लिए जीवित नहीं रहते । वास्तविक बात यह है कि परलोक में भौतिक जीवन समाप्त हो जाता है और आध्यात्मिक जीवन प्रस्फुटित रहता है। वैज्ञानिकों के मत से बाह्य मन मर जाता है और अन्तर्मन जीवित रहता है। वकीलों की काट-छाँट , पण्डितों की शास्त्रार्थ शक्ति यहाँ ढूँढ़ने पर भी दिखाई नहीं देती। छिपाने का दम्भ बिलकुल विदा हो जाता है। जिस अन्तरात्मा में पाप बीज बोये थे वह खेत प्रौढ़ रूप से उस प्रकार सचेत हो जाता है जैसे कि जीवित अवस्था में बाह्य मस्तिष्क। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का चतुष्टय, दसों इन्द्रियाँ इन सबके सम्मिश्रण से बना हुआ सूक्ष्म शरीर उस समय वैसा ही अचेतन रहता है जैसा कि जीवित अवस्था में गुप्त मस्तिष्क। हम देखते हैं कि एक मैस्मरेजम करने वाला बाहरी मस्तिष्क को निद्रित कर देता है और भीतरी मस्तिष्क को यह आज्ञा देता है कि तुम पानी में तैर रहे हो' तो वह व्यक्ति बिलकुल यही अनुभव करता है कि मैं पानी में तैर रहा हूँ। सचमुच पानी में तैरने और इस झूठ-मूठ के तैरने में रत्ती भर भी फरक उसे मालूम नहीं होता। यही बात उस नरक की है। उस नरक की , उन यमदूतों की कोई सत्ता नहीं होती और न परलोक में कोई अलग न्यायाधीश, जज, मुंशी, पेशकार बैठते हैं। प्रतिदिन अरबों खरबों जीव मरते हैं, इन सबको दण्ड देने के लिए उनसे दूने चौगुने तो यमदूत चाहिए और असंख्य दफ्तर, जेलखाने, नरक आदि। इतने अलग बखेड़ों का स्वतंत्र रूप से होना किसी प्रकार सम्भव और सत्य दिखाई नहीं पड़ता। बेशक हर व्यक्ति के लिए अलग अलग नरक हो सकते हैं क्योंकि वह उसके साथ पैदा होते हैं और नष्ट हो जाते हैं।

अन्तरात्मा में जमें हुए पाप-संस्कार प्रकाश के रूप में जब प्रकट होते हैं तो इतनी शक्ति रखते हैं कि सूक्ष्म शरीर को बलात् उसके सन्मुख आना पड़ता है। सर्प के नेत्र-तेज से खिंचकर पक्षी उसके मुख में चले आते हैं। सम्भव है वे अपने मन में उस समय ऐसा ख्याल करते हों कि हमें कोई स्वतंत्र जीव पकड़ लिए जा रहा है। कर्मफल की भोगनीय शक्ति द्वारा फल पाने के लिए आकर्षित किए जाते समय सम्भव है सूक्ष्म शरीर ऐसा ख्याल करता हो कि कोई यमदूत मुझे पकड़ कर खींचे लिए जा रहे हैं। इन यमदूतों का रंग-रूप, आकार-प्रकार भी अलग हो जाता है। हिन्दू के लिए तिलक लगाए हुए गदा धारण किये हुए, राक्षसों की आकृति के हिन्दू आते हैं। मुसलमानों के फरिस्ते दाढ़ी रखते हैं और शायद टर्की टोपी भी लगाये हुए होते हैं। अंग्रेजी यमदूत कोट, टोपी, नैक्टाई से सुसज्जित होते हैं। यह दूत बातचीत भी हिन्दी, अरबी, अंग्रजी या उस भाषा में करते हैं जिससे कि वह पूर्व जन्म में बोलता हैं उनकी आकृतियाँ भी अलग अलग विश्वासों के कारण अलग होती हैं। एक व्यक्ति बड़े दाँतों में दिलचस्पी रखता है, दूसरी बड़ी आँखों में, तो एक का यमदूत बड़े दाँतों वाला होगा, दूसरे का बड़ी आँखों वाला। यह यमदूत जिन्हें "संस्कारों का तेज" भी कह सकते

हैं। सूक्ष्म शरीर उसकी इच्छा के विरुद्ध भी दण्ड देंने के लिए हाजिर करते हैं। दुष्कर्मों का फल है- दुख। सूक्ष्म शरीर को वेदना, पीड़ा कष्ट देने के लिए अन्तरात्मा एक स्वतन्त्र नरक बना देती है। उनमें गिद्ध, कौए, खोंट खाने वाले, वैतरणी पार करने, उलटे लटकने, पिटने , आग में जलने के दृश्य उपस्थित होते हों या केवल अपमानन करने, खरी-खोटी सुनाकर लज्जित करने की व्यवस्था होती हो। यह अलग अलग मानसिक स्थिति के ऊपर निर्भर है। इस नारकीय यन्त्रणा का मन्तव्य यह है कि जीव दुख अनुभव करे। पाप कर्म और उनके फल इन दोनों को साथ साथ देखकर वह यह समझ ले कि इसका यह फल होता है। दण्ड कितने समय तक और कितनी मात्रा में मिलना चाहिए इसका माप यह है कि जितने से वह अपना सुधार कर ले। जज छोटे अपराधों के लिए छोटी सजा देता है और बड़े अपराधों के लिए बड़ी। कारण यह है कि छोटे अपराध वालों की मनोभूमि पाप में अधिक लिप्त नहीं समझी जाती, इसलिए उसका सुधार शीघ्र और थोड़े दण्ड से हो जाता है, किन्तु गुरुतर अपराध करने वालों की कठोर मनोभूमि में से आदतों को उखाड़ने के लिए अधिक परिश्रम और समय चाहिए। इसी दृष्टि से नरक की यातनाओं की सीमा होती है ।दुष्ट कर्मों के परत एक एक करके उखड़े आते हैं और अपना प्रभाव दिखाकर नष्ट हो जाते हैं। सूक्ष्म शरीर में इन्द्रियाँ भी होती हैं और मन भी, इसलिए शारीरिक पापों के लिए शारीरिक दण्ड और मानसिक पापों के लिए मानसिक वेदना प्राप्त होती है। जैसे कि अधिक खा लेने से अपने आप पेट में पीड़ा होती है, मिर्च के सेवन से अपने आप दाह होता है, वैसे पाप कर्मों का फल प्राप्त करने की व्यवस्था अन्तरात्मा स्वमेव ही कर लेती हैं, इसके लिए किसी दूसरे की जरूरत नहीं पड़ती। जो पाप प्रकट हो जाते हैं उनका फल तो प्रायः जीवित अवस्था में ही मिल जाता है किन्तु जो पाप भुगत नहीं पाते, उनको परलोक में भुगतना पड़ता है। प्रभु ने ऐसी व्यवस्था की है कि नवीन जन्म धारण करने से पूर्व ही जीव अपने पिछले अधिकांश पापों को भुगत ले और अगले जन्म के लिए पवित्र होकर जावे, ताकि अगला, जीवन इन पाप भारों के दुष्परिणाम से मुक्त हो। सेनापति अपने घायल सिपाहियों को तब तक अस्पताल में रखता है जब तक उसके घाव भर न जाँय क्योंकि यदि घायल को ही पुनः युद्ध में भेज दिया जावे तो वह सेनापति का उद्देश्य पूरा न कर सकेगा, उसके लिए हथियार चलाना तो अलग रहा अपने घावों की कराह से ही फुरसत न मिलेगी। इसलिए कुछ विशेष अवस्थाओं को छोड़कर (जिनका वर्णन पुनर्जन्म अध्याय में होगा) प्रायः सारे पाप परलोक में भुगत जाते हैं और जीव निर्मल बन जाता है। नरक का केवल इतना ही लाभ नहीं है कि पाप क्षीण हो जावें वरन् यह भी उद्देश्य है कि आगे के लिए बुरी आदतें छूट जांय और गलती के परिणाम का स्मरण रहे। चोरी करते समय चोरों के कण्ठ सूख जाते हैं, दुराचारियों के पाँव काँपने लगते हैं, हत्यारों की धुकधुकी चलने लगती है, यह पूर्वजन्मों में प्राप्त हुए दण्डों का सूक्ष्म स्मरण है। पर हाय, लोग उस आन्तरिक आवाज को बिलकुल भुला देते हैं और फिर उसी पाप के पैशाचिक फन्दे में फँस जाते हैं।

जिस प्रकार पाप कर्मों का फल नरक है, उसी प्रकार शुभ कर्मों का फल स्वर्ग है। पाप क्या है और पुण्य क्या ? यह प्रश्न बड़ा पेचीदा है, इस पर एक स्वतन्त्र पुस्तक छपी है। इस समय तो इतना ही समझ लेना चाहिए कि प्रेम तथा हार्दिक पवित्रता के साथ किये हुए कार्य पुण्य एवं स्वार्थ पाखण्ड के साथ किये हुए कार्य पाप हैं। पाप-पुण्य की व्याख्या बुद्धि के द्वारा ठीक न हो सके तो भी अन्तरात्मा उसे जानता है। गूंगा मनुष्य यदि मिठाई और नमकीन का स्वाद न बता सके तो भी उस स्वाद को जानता है। पुण्य कर्मों से तत्क्षण आत्मा में एक शान्ति प्राप्त होती है उसके विरुद्ध पाप कर्मों में एक जलन उठती है। मजहबी कर्मकाण्ड मन की पवित्रता में कुछ सहायता दे सकते हैं, पर वे स्वयं कोई धर्म नहीं हैं। शंख फूँकने या घड़ियाल टनटनाने से कुछ धर्म नहीं होता, इससे मनोभूमि को पवित्र करने में कुछ सहायता मिलती है। यदि किसी का मन ऐसा दुष्ट हो कि उसके अन्दर दुर्भावनाएँ ही उठती रहें तो कोई भी कर्मकाण्ड उसे स्वर्ग नहीं पहुँचा सकता। अज्ञानी लोग मजहबी कर्मकाण्डों को स्वर्ग का साधन समझते हैं। यथार्थ में वह बहुत ही तुच्छ साधन मात्र हैं। मजहबी रीति-रिवाज धर्म नहीं हो सकतीं, दया, प्रेम, उदारता, सत्य परायणता धर्म के अंग हैं। आत्मा को संतोष देने वाली आंतरिक सद्‌वृत्तियाँ ही पुण्य कही जा सकती हैं और उनके द्वारा ही स्वर्ग प्राप्त होना सम्भव है। अन्ध विश्वासों में पड़े रहना अँधेरे में भटकने के बराबर हैं जैसे जीवन में अन्य अनेक निष्प्रयोजन कार्यों में हम अपना समय नष्ट करते हैं, वैसे कितनी ही मजहब परम्पराएँ भी ऐसी ही हैं। जिनमें बिलकुल व्यर्थ समय बरबाद होता है और उनसे परलोक का रत्ती भर भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

शुभ कार्यों में आन्तरिक प्रसन्नता होती है, यह प्रसन्नता परलोक में स्वर्ग रूप में उसी प्रकार प्रस्फुटित होती है, जैसे पाप कर्म नरक के रूप मे। नरक में विषय में जैसी कल्पना हमारी होती है, वे प्रायः वैसे ही उससे मिलते-जुलते दिखाई देते हैं, उसी प्रकार स्वर्ग की कल्पना भी सत्य है। धर्मात्मा हिन्दू को बैकुण्ठ, इन्द्रलोक का सुख मिले और सुकर्मों से मुसलमान को गिलमाओं

वाली जन्नत मिले तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि स्वर्ग नरक हमारे आज के दृष्टिकोण के अनुसार कल्पना मात्र हैं, चाहे कल्पनाएँ उस समय सत्य ही प्रतीत होती हों। स्वर्ग सुख भी नियत समय तक ही रहता है, स्वर्ग का आनन्द मिलने का उद्देश्य यह है कि उसकी आत्मिक योग्यता अधिक चैतन्य एवं उत्साहित होकर आगामी जीवन में अधिक सूक्ष्म बन जावे। स्वर्ग सुख के अधिकारी जो व्यक्ति होते हैं उनकी तुच्छ इन्द्रिय लिप्साएँ पहले ही शान्त हो जाती हैं, इसलिए जैसा कि अज्ञानी समझते हैं, स्वर्ग लोक इन्द्रिय वासनाएँ तृप्त करने की सामग्री से ही भरपूर है, वैसा ही नहीं होता। इन्द्रियों के गुलाम और वासना के कीड़े स्वर्ग सुख से बहुत दूर रहते हैं। मद्यपान, वेश्यागमन,, मैथुन आदि का नाम ही यदि स्वर्ग में हो तो, ऐसे स्वर्ग के लिए इतना तप करने की कुछ आवश्यकता नहीं, वह कुछ पैसा खर्च करके जहाँ भी चाहे जब प्राप्त किया जा सकता है। यथार्थ में स्वर्ग सुख इन्द्रियों का सुख नहीं वरन् अन्तःकरण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) का आनन्द है। यह इन्द्रिय सुख की अपेक्षा बहुत ऊँचे दर्जे का है।

अध्यात्म तत्व के जिज्ञासु जानते होंगे कि आत्मा में अनन्त शक्ति है। ईश्वर का अंश किसी प्रकार अशक्त नहीं है। वह इच्छा मात्र से ही स्वर्ग-नरक की रचना कर लेता है, इसमें आश्चर्य और अविश्वास की कुछ बात नहीं है। ईश्वर ने इच्छा की कि "एकोहं बहुस्याम" मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ बस वह दृश्य जगत के रूप में प्रकट हो गया। आत्मा इच्छानुसार जागृत अवस्था, स्वप्न अवस्था और सुषुप्ति अवस्था की रचना करता है। जन्म-मरण को स्वर्ग बनाता है, उसी प्रकार स्वर्ग-नरक का निर्माण कर लेता है, इच्छा से बन्धन में बँधता है और इच्छा से ही मुक्त हो जाता है, यह सब बातें उनकी निजी शक्ति के अन्तर्गत हैं।

जिस प्रकार निद्रा और उसके अन्तर्गत स्वप्न की स्थिति है और वह स्वप्न स्थिति जाग्रतावस्था ही के विचारों पर अवलम्बित है उसी प्रकार मृत्यु की भी स्थिति होती है और वह स्थिति जीवन समय की भावनाओं पर अवलम्बित है इस सम्बन्ध में वेदान्त मत यह है कि यह समय स्वर्गों के सुख उपभोग में अथवा नरकों के घोर दुःख में इन्द्र के नन्दन वन का ऐश्वर्य अनुभव करने में अथवा अन्धकारतम दुःख में पड़े रहने आदि की स्थिति में व्यतीत होता है अब प्रश्न उठता है कि स्वर्ग और नरक की कल्पना क्या है? इस प्रश्न का समाधान यह है कि यह केवल कल्पना से उत्पन्न किये हुए मनोराज हैं। मानलें कि एक क्रिश्चियन अत्यन्त श्रद्धालु है। वह क्रिश्चियन धर्म के शास्त्रानुसार चलने वाला है प्रति रविवार को वह प्रार्थना मंदिर, गिरजा में जाने को नहीं चूकता प्रति दिन सुबह और शाम अन्तःकरण पूर्वक भावयुक्त होकर ईश्वर से प्रार्थना करता है। भोजन से पहले ईश्वर से उसकी कृपा माँगा करता है। सारांश यह है कि उसने अपना जीवन क्राइस्ट के चिन्तक और उसके चरित्र से तदात्म्य होने में व्यतीत किया अस्सी नब्बे वर्ष का समय इसी प्रकार व्यतीत करते हुए उसने अपने धर्ममय जीवन के फल में जो-जो भावनायें की है कि मृत्यु के बाद मुझे सम्मान देने को देवों का झुण्ड आवेगा, ईसु के दायें हाथ की ओर बैठने का मुझे सम्मान मिलेगा। तो उसकी ये भावनायें अवश्य सफल होंगी। पुनर्जन्म से पहले उसे यह स्थिति अवश्य प्राप्त होगी। यह मानने में कोई कारण नहीं है कि उसे यह स्थिति प्राप्त न हो। वेदान्त कहता है कि क्रिश्चियनों! यदि तुम्हारे हृदय में दृढ़ श्रद्धा, भावना और भक्ति होगी तो तुम्हारी धर्म पुस्तकों में जो आश्वासन दिये हैं, धर्म पालन के जो फल दिखलाये हैं वे अवश्य फलित होंगे, यह निश्चित है, परन्तु ध्यान रखो कि तुम्हारा मुसलमान और हिन्दुओं की निन्दा करना अनुचित है। एक मुसलमान मुहम्मद का सच्चा अनुयायी है वह कुरान की आज्ञानुसार प्रतिदिन बिना चूके चार-पाँच बार नमाज पढ़ता है मुहम्मद के लिए ही अपना जीवन समझता है और उनकी प्रीति के लिए जीवन उत्सर्ग करने को सदा तैयार रहता है तो ऐसे मनुष्य का संकल्प बिना पूर्ण हुए नहीं रह सकता। वेदान्त कहता है कि सृष्टि में ऐसा कोई भी नियम नहीं है ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है कि उक्त प्रकार के मुसलमान के संकल्प को फलित होने में बाधा डाल सके। यह निश्चित है कि यदि ऐसे मुसलमान ने मृत्यु के बाद स्वर्ग के सुन्दर-सुन्दर उपवनों में, भव्य विशाल राज मन्दिरों में खूबसूरत परियों के साथ-साथ राजविलास के भोगने की और मद्यपान का आनन्द प्राप्त होने की कल्पना की है और उस कल्पना के झूले पर झूलते हुए अपनी आयु पूर्ण की है तो मृत्यु के बाद और पुनर्जन्म के पहले बीच की स्थिति में उसे अवश्य वे भोगोपभोप प्राप्त होंगे। परन्तु वेदान्त यह भी कहता है कि हे मुहम्मदानुयायियो! तुम यह कहने का साहस न करो कि मृत्यु के बाद केवल मुहम्मद पैगम्बर ही एक ऐसा है जो न्याय करेगा, प्राणियों को ठिकाने लगावेगा। क्रिश्चियनों को उनके विचारानुसार चलने दो। यूरोप, अमेरिका एशिया, चीन, आदि में मरने वाले मनुष्यों को मुहम्मद की संरक्षता में न देकर स्वतंन्त्र रहने दो। यह हठ छोड़ो कि हमारे पैगम्बर पर विश्वास रखो तो ही तरोगे अन्यथा नहीं। इस प्रकार का विधान करने का तुम्हें अधिकार नहीं है, यह निष्ठुरता है। तुम्हारे धर्म द्वारा निश्चित मार्ग से यदि तुम जाओगे तो उसका फल तुम्हें

मिलेगा। जीवनावस्था में तमने जो आकांक्षायें की होंगी उनके अनुसार तुम्हारे लिये स्वर्ग का दरवाजा खुला हुआ है उसी प्रकार अन्य धर्मानुयायियों के लिये भी खुला रहने दो।

वास्तव में देखा जाय तो स्वर्ग और नरक अपने पर ही अवलम्बित है हम स्वयं ही अपने लिए स्वर्ग और नरक बनाते हैं क्योंकि स्वर्ग और नरक कल्पना है। स्वप्नों की कल्पना की अपेक्षा इस कल्पना में सत्य का भाग कुछ अधिक नहीं है। तुम जानते ही हो कि स्वप्न में स्वप्न की स्थिति कभी असत्य मालूम नहीं होती उसी प्रकार मृत्यु के बाद स्वर्ग नरक की कल्पना उस काल के लिए मृत्यु और पुर्नजन्म के बीच के समय के लिये अक्षर सत्य हैं परन्तु तत्वदृष्टि से यदि देखा जाय तो उस कल्पना में स्वर्ग और नरक की कल्पना में स्वप्न की अपेक्षा कुछ अधिक सत्य नहीं है। वहाँ इस पर भी विचार कर लेना आवश्यक है कि लोग कहते हैं कि जब तुम मानते हो कि हमारे धर्मों में दिये हुये आश्वासन सच्चे हैं तो मृत्यु के बाद जो गति हमें प्राप्त होने वाली हैं वह आत्यान्तिक सुखमय और शाश्वत होनी चाहिये क्योंकि हमारे धर्मों में कहा गया है कि मनुष्य की मृत्यु के बाद उसे प्राप्त होने वाले स्वर्ग नरकादि चिरकाल तक रहने वाले हैं। इस पर वेदान्त का कहना है कि शाश्वत काल का अर्थ दीर्घ काल है प्रायः अनन्तकाल है परन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि स्वभाव था और जागृत अवस्था में काल के माप करने की पद्धतियाँ भिन्न भिन्न प्रकार की हैं। कितनी बार अपनी आँखों के सामने स्वप्न में ऐसी स्थिति दीखती है कि हजारों वर्ष पुरानी बात है जैसा कि स्वप्न में किसी ने एक पर्वत देखा जाग्रतवस्था की अपेक्षा वह पर्वत नवीन ही उत्पन्न किया गया है परन्तु स्वप्न दृष्टि की अपेक्षा उसे उत्पन्न हुये हजारों वर्ष हो गये हैं। इसी प्रकार मृत्यु के बाद इन्द्र के नन्दन वन में स्वर्ग सुख में अथवा नरक में चिरकाल तक रहने का जो भाव होता है वह स्वप्न स्थिति की अपेक्षा होता है। जाग्रतवस्था के दर्शक की दृष्टि से नहीं। वाइबिल में कहे हुए आश्वासनों पर ही विचार करें इसमें कुछ संशय नहीं है कि आश्वासन सफल अवश्य होते हैं क्योंकि मृत्यु के बाद की स्थिति में वाइबिल में कहे हुये अनन्तकाल का शाश्वत स्थिति का भान अवश्य होता है परन्तु जागृत अवस्था की दृष्टि में वह भान वह मृत्यु के बाद की चिरकाल की स्थिति क्षणभंकर और मृग तृष्णा के जलवत् है। यह विवेक जगत् के भिन्न-भिन्न धर्मों के मृत्यु के बाद की स्थिति के सम्बन्ध में जो मत है उसका मिलान किस दृष्टि से करता है यह मालूम हो जाता है।

अब प्रश्न उत्पन होता है कि पुनर्जन्म क्या हैं? और मुक्त पुरुष जो कहलाते हैं वह कौन हैं? इसका उत्तर वेदान्त इस प्रकार देता है कि मृत्यु के बाद सबको स्वर्ग नरक में जाना ही चाहिये और पुनर्जन्म लेना ही चाहिए, ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है। जो मुक्त पुरुष होते हैं, उन्हें जन्म-मरण के फेर में नहीं पड़ना पड़ता। स्वर्ग-नरक के बंदीगृह में रहने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं। वे सम्पूर्ण चराचर को अपने देखते हैं ऐसे मुक्त पुरुषों का विवेचन करने की यहाँ आवश्यकता है।

स्वयं के दो भाग होते हैं एक दृष्टा दूसरा दृश्य। नदी, पर्वत, बन, वृक्ष आदि दृश्य वस्तुओं से घिरा हुआ यह आत्मा प्रवासी दृष्टा है स्वप्न में अनेक बातें देखी जाती हैं। उनमें "मैं" कहने वाली एक भिन्न वस्तु है और उससे जो भिन्न दिखाई देता है वे दृश्य वस्तु हैं वे स्वप्न का दृश्य भाग हैं। वेदान्त कहता है कि स्वप्न की दृष्टा और दृश्य रूप दो भाग वाली स्थिति जाग्रत अवस्था के आत्मा ने ही निर्माण की है। हम ही नदी पर्वत बाग वृक्ष उनमें विचरने जाले पशु पक्षी बनते हैं और हम ही इन्हें देखने वाले वाले दृष्टा बनते हैं दोनों ही हम हैं। वेदान्त कहता है कि मृत्युरूपी निद्रा की भी स्थिति इसी प्रकार है। इस निद्रा के स्वर्ग नरक व उनके सुख दुख आदि स्वप्न कल्पना हैं, जिसके कि उत्पन्न करने वाले हमी हैं। इस विषय का प्रयत्न अनुभव करने वाला ही मुक्त पुरुष है।

एक स्त्री जिसे वेदान्त का ज्ञान था, एक हाथ में अग्नि और दूसरे हाथ में पानी लेकर रास्ते में फिर रही थी। लोगों ने उसका यह विचित्र वेष देखकर पूछा कि बाई ! यह क्या है? उसने उत्तर दिया कि इस अग्नि से मैं तुम्हारे स्वर्ग-नरक, इन्द्र, चन्द्र को जला दूँगी और पानी से जलते हुए नरकों को शीतल करूँगी। मुक्त पुरुष स्वर्ग-नरक की इन कल्पनाओं को पार कर जाता है और यह इनका कुछ भी हर्ष-विषाद नहीं करता।

स्वर्ग-नरक की मान्यता गलत नहीं है

लोक मान्यता किसी ऊँचे या नीचे सुन्दर क्षेत्र में बसे स्थान पर स्वर्ग-नरक अवस्थित होने की है। स्वर्ग को ऊपर आकाश में और नरक को नीचे पाताल में माना जाता है। इस सन्दर्भ में अन्तरिक्षीय जाँच-पड़ताल करने से निराशा उत्पन्न होती है और अविश्वास बढ़ता है। अभी तक किसी ऐसे ग्रह-नक्षत्र का पता नहीं चला है जिनमें स्वर्ग-नरक में दर्शाई गई परिस्थितियाँ उपलब्ध होने की सम्भावना हो। फिर पूरे लोक में एक ही तरह की परिस्थितियाँ हों। वहाँ दूसरे प्रकार का कुछ होता ही नहीं। ऐसा भी कुछ सहज समझने योग्य नहीं है। जो सुविधाएँ या प्रताड़नाएँ वहाँ मिलती हैं वे प्रायः वैसी ही हैं जैसी कि अपनी धरती पर उपलब्ध होने वाली साधन सामग्री के द्वारा सम्भव है।

जहाँ इतनी सामग्री रहती हो भी निश्चय ही उसका वातावरण भी धरती जैसा ही होना चाहिए। यदि वे लोक सूक्ष्म होते तो फिर वह पदार्थ जन्य सुख-दुःख न होकर मात्र मानसिक भाव सम्वेदनाओं से सम्बन्धित होने चाहिए थे। किन्तु वर्णनों में तो वहाँ कष्टकारक एवं सुविधादायक पदार्थ परक साधनों का ही वर्णन है। ऐसी दशा में किसी विचारशील का असमंजस नहीं बढ़ता ही है।

तो क्या स्वर्ग-नरक की मान्यता गलत है। ऐसा भी नहीं कहना चाहिए। कर्मफल की मान्यता किसी न किसी रूप में प्रत्येक दर्शन ने स्वीकार की है। विज्ञान भी इस आधार पर शारीरिक, मानसिक उत्थान पतन की बात मानता है। ऐसी दशा में मूल तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि दुष्ट कर्मो का प्रतिफल दुःख और सत्कर्मो की परिणति सुख के रूप में होनी चाहिए। प्रश्न केवल इतना भर रह जाता है कि वे दुःख और सुख किस प्रकार की अनुभूति देते और किन साधनों की सहायता से किन के माध्यम से उपलब्ध होते हैं। पौराणिक गाथाओं में किन्हीं साधन सम्पन्न लोकों में स्वर्ग नरक होने की मान्यता है। यमदूत या देवदूत उन दण्ड उपहारों का प्रबन्ध करते हैं और हाड़-माँस जैसा शरीर रहने पर ही उन प्रताड़नाओं या सुविधाओं का अनुभव हो सकना सम्भव है। यहाँ फिर वही असमंजस सामने आता है कि मरने के उपरान्त मात्र वायुभूत आत्म सत्ता शेष रहती है तो उसके द्वारा प्रत्यक्ष शरीर के लिए ही जिनकी अनुभूति सम्भव है उनका तारतम्य किस प्रकार बैठता होगा। वायुभूत शरीर किस प्रकार सुविधा-असुविधाओं से प्रवाहित होता होगा?

समझा जाना चाहिए कि अनुकूलता-प्रतिकूलता, सुविधा-असुविधा, खिन्नता, प्रसन्नता हर स्थिति में उपलब्ध हो सकती है। वायुभूत शरीर के साथ भी तो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का अन्तःकरण चतुष्ट्य रहता है। अनुभूतियों का संस्थान वही है। यह मरने के बाद भी बना रहता है। इन्द्रियाँ भर स्थूल शरीर के साथ समाप्त होती हैं। मरण के उपरान्त भी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श की तन्मात्राएँ आत्मा के साथ गुंथी रहती हैं। ऐसी स्थिति में परलोक में, जितने समय तक जहाँ भी रहा जाय वहाँ दुःख-सुख की अनुभूतियाँ कर्मानुसार उपलब्ध होने में कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए।

पीड़ाएँ शरीर की ही नहीं होतीं, मन की भी होती हैं। प्रसन्नता शरीर की ही नहीं मन की भी होती है। सच तो यह है कि शरीर तो वाहन मात्र है जो कुछ भी सुख-दुःख अनुभव होता है उसे मनःक्षेत्र में सम्पन्न होने वाली स्थिति ही कहना चाहिए। जब औषधि से कोई अंग विशेष या समूचा मस्तिष्क संज्ञा शून्य कर दिया जाता है तो फाड़-चीर होते रहने पर भी कष्ट नहीं होता किन्तु जैसे ही चेतना लौट आती है, फिर अनुभूतियाँ होने लगती हैं। यह मन ही सुख-दुःख का अनुभव करता है। शरीर तो उस अनुभूति का एक सामान्य-सा उपकरण मात्र है। उसके न रहने पर भी मरणोत्तर जीवन में भली-बुरी अनुभूतियों में कोई कठिनाई नहीं रहती।

चित्रगुप्त द्वारा परलोक में दण्ड पुरस्कार की व्यवस्था करने का वर्णन आता है। यह चित्रगुप्त, अपना ही गुप्त चित्र-अचेतन मन है। इसमें अन्यान्य कृत्य करते रहने के लिए यह विशेषता भी है कि क्रिया की प्रतिक्रिया उत्पन्न करके स्वसंचालित पद्धति के अनुसार दण्ड पुरस्कार की व्यवस्था भी करता रहे। हम स्वयं ही आग छूते और स्वयं ही जलन अनुभव करते हैं। विष खाते और मरते हैं। विद्या पढ़ते और श्रेय पाते हैं। कुकर्म करते और आत्म प्रताड़ना भुगतते हैं। इसके लिए किसी अन्य मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी प्रकार शुभ-अशुभ कर्मों का भला-बुरा, प्रतिफल पाने के लिए अपने भीतर ही ऐसा तन्त्र विद्यमान है जो समुचित दण्ड पुरस्कार की व्यवस्था करता रहे। देर सवेर में जीवित स्थिति में भी यह प्रतिफल होते हैं और मरणोत्तर जीवन में भी वहाँ की परिस्थितियों के अनुसार ऐसी व्यवस्था हो सकती है जिसमें कि पाप पुण्य के फलस्वरूप उपलब्ध होने वाली प्रतिक्रियाओं की बुरी-भली अनुभूति का कोई न कोई क्रम चलता रहे।

स्वर्ग-नरक की मूल स्थापना कर्मफल की सुनिश्चितता प्रकट करने के लिए की गई है। वर्णनों के साथ जुड़े हुए घटनाक्रमों में जो विसंगतियाँ हैं उन पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। यह धर्म दर्शन के प्रवक्ताओं ने सामान्यजनों को उनकी अभ्यस्त अनुभूतियों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए निर्धारित की है। जिन देशों में, जिन क्षेत्रों में, जिन समुदायों में, सुख-दुःख की अनुभूति जिस स्तर की होती है, जिन माध्यमों से होती है, उन्हीं को स्मरण दिलाते हुए, स्वर्ग-नरक का वर्णन किया गया है यही कारण है कि संसार के विभिन्न भागों में इस सन्दर्भ में जो वर्णन किये गये हैं उनके बीच अन्तर पाया जाता है। इतने पर भी मूल तथ्य जहाँ का तहाँ रहता है। अशुभ कर्मों का फल दुःखदायक और सत्कर्मो की प्रतिक्रिया सुख सन्तोष से भरी-पूरी होनी चाहिए यह स्थापना हर दृष्टि से सही है। इस विश्वास के उपरान्त स्वर्ग नरक के चित्र-विचित्र वर्णन भी कोई असमंजस उत्पन्न नहीं करते वरन् स्थानीय परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने की उन प्रतिपादनकर्त्ताओं की सूझ-बूझ की प्रशंसा ही करते हैं।

स्वर्ग और नरक में कैसी परिस्थितियाँ हैं, इस सम्बन्ध में विभिन्न देशों और क्षेत्रों में विभिन्न मान्यताऐं प्रचलित हैं। इसका कारण वहाँ की स्थानीय परिस्थितियाँ, भावनाएँ और अनुभूतियाँ ही प्रधान कारण हैं। अन्यथा यह विवेचन वास्तविक होता तो मान्यताऐं सभी जगह की एक जैसी होनी चाहिए सूरज, चन्द्रमा आदि की आकृतियाँ तथा विशेषताऐं संसार भर में एक जैसी दीखती हैं। बादल सभी जगह एक जैसे बरसते हैं, बिजली की चमक-तड़क वैसी ही होती है। बुखार, खाँसी, दमा आदि रोगों की अनुभूति ही एक जैसी लगती है। जन्म और मरण के समय की अनुभूतियों में भी कोई अन्तर नहीं होता ऐसी दशा में स्वर्ग-नरक भी यदि वास्तविकता पर आधारित होते तो उनके सम्बन्ध में भी जानकारों ने एक ही तरह के विवरण प्रस्तुत किये होते। किन्तु देखा जाता है कि धर्म सम्प्रदायों ने इस सन्दर्भ में एक-दूसरे से भिन्न प्रकार के विवरण प्रस्तुत किये हैं।

भारतीय अवधारणा के अनुसार स्वर्ग-नरक जैसे-लोक हमारे पृथ्वी मण्डल के ही बढ़े हुए भाग हैं। जिस प्रकार पृथ्वी का वायु-मण्डल भूमि की अपेक्षा सूक्ष्म होने के कारण कुछ सौ मील की दूरी तक अधिक फैला हुआ है उसी प्रकार स्वर्ग (स्वर्लोक) और नरक (भुवर्लोक) और भी सूक्ष्म होने के कारण पृथ्वी से कई लाख मील के अन्तर तक फैले हैं। जिस प्रकार वायु-मण्डल ने समस्त भूमि और जल को आवृत्त कर रखा उसी प्रकार भुवर्लोक ने पृथ्वी और वायु-मण्डल को आवृत्त किया हुआ है और स्वर्लोक ने भुवर्लोक को भी आवृत्त कर रखा है, क्योंकि यह इससे भी अधिक सूक्ष्म है ।

मनुष्य के सम्बन्ध में भुवर्लोक के तत्वों का विशेष गुण, भावना, इच्छा अथवा कामना के रूप में प्रकट होता है। इसलिए इसे काम-लोक भी कहते हैं। यहाँ के तत्व या द्रव्यों के ही जरिऐ इच्छाओं अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोभावों का निर्माण और संचार इस विश्व में होता ।

भू लोक की तरह भुवर्लोक के भी सात उपलोक होते हैं और वे एक-दूसरे से उसी प्रकार भिन्न जान पड़ते हैं जैसे-हमारी पृथ्वी की तरल वस्तुएँ अथवा तरल और वायवीय वस्तुएँ एक-दूसरे से भिन्न प्रकार की जान पड़ती हैं। अन्तिम दो उपलोक अत्यन्त भद्दी; भयंकर और कुत्सित वासनाओं के स्थान हैं, उनके ऊपर वाले तीन लोक सामान्य वासनाओं के स्थान हैं और सबसे ऊपर वाले दो उपलोक उच्चकोटि की वासनाओं के स्थान हैं।

यहाँ रहने वाले निवासी अपनी-अपनी वासनानुसार भिन्न-भिन्न उपलोकों में स्थान पाते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच इसी लोक के निवासी हैं। इस लोक और भू लोक में केवल एक ही दर्जे का अन्तर है, इसलिए इन दोनों लोकों के प्राणियों में सम्बन्ध आसानी से स्थापित किया जा सकता है।

भुवर्लोक के विषय में योगी लोग बतलाते हैं कि जब पहले पहल इस लोक का अनुभव प्राप्त होता है तो वहाँ के उज्ज्वल प्रकाश को देखकर मनुष्य चका चौंध में पड़ जाता है। कारण यह है कि वहाँ का साधारण प्रकाश इतना तेज है कि उसके सामने भू लोक का प्रकाश अन्धेरा सा प्रतीत होने लगता है। इसीलिए इस लोक का अन्वेषण करते समय लोगों ने इसका नाम दिव्य लोक रख दिया है। पर यह विशेषता केवल इसी लोक की नहीं है। बल्कि जैसे-जैसे ऊपर स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक आदि की तरफ बढ़ा जायेगा वहाँ की सामान्य ज्योति के आगे नीचे का लोक अन्धेरा सा प्रतीत होगा। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। द्रव्य जैसे-जैसे सूक्ष्म होता जायेगा उसमें प्रकाश का परिणाम बढ़ना अवश्यम्भावी है। भुवर्लोक तो हमारे इतना पास है कि थोड़े ही अभ्यास से मनुष्य वहाँ की ज्योति आदि का अनुभव ले सकता है। हठयोग की कुछ ऐसी विधियाँ हैं जिनसे यह अनुभव बहुत सुगमता से प्राप्त हो जाता है और भोले-भाले सीधे लोग इसी को देखकर मुग्ध हो जाते हैं तथा समझते हैं कि उन्होंने भगवान को पा लिया। वास्तव में यह ऊपर के लोकों की ओर जाने वालों को भुलाने का अथवा उनकी परीक्षा लेने का एक प्रलोभन मात्र है।

जिस प्रकार भुवर्लोक का उपादान (द्रव्य) वासना या कामना है उसी प्रकार स्वर्ग का उपादान उससे कहीं अधिक सूक्ष्म, तत्व 'विचार' है अर्थात् इसी द्रव्य से विचार बनते हैं और उनका प्रसार होता है। इसी सूक्ष्म द्रव्य से स्वर्ग की समस्त वस्तुओं और प्राणियों का बाहरी स्वरूप निर्मित होता है। इस लोक के प्रकाश और सौन्दर्य का वर्णन करना या समझा सकना पृथ्वी के निवासियों के लिए सर्वथा असम्भव है। केवल तुलना के लिए यह कह सकते हैं कि इसके सामने भुवर्लोक की ज्योति अन्धेरी है। रूपों की बनावट, सजावट, मेल तथा सौन्दर्य का भी यही हाल है।

इस लोक की यह विशेषता है कि यहाँ के प्राणी शब्दों द्वारा एक-दूसरे से बातचीत नहीं करते, बल्कि जो कुछ विचार उनका होता है वह एक विशेष रंग का विशेष रूप धारण कर लेता है। इसे रंगों की भाषा कह सकते हैं। यहाँ के रंगों और रूपों की सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता है। सम्भव है कि इस लोक की इसी प्रधान विशेषता के कारण हमारे पूर्वजों ने इसका मूल तत्व 'रूप' बतलाया था। यहाँ के निवासी देवगण इस प्रकार के रंगों की भाषा में ही बातचीत करते हैं।

इस लोक के भिन्न-भिन्न उपलोकों के निवासी भी अनेक श्रेणियों के हैं। अनेक प्रकार के देवगण दैवी सहायक महात्माओं

के शिष्य आदि इसके साधारण निवासी हैं। मनुष्य भी जीवित और मृत्यु के पश्चात् दोनों अवस्थाओं में यहाँ रहता है । मनुष्य का वास्तविक स्थान स्वर्लोक का अरूप विभाग है। वहीं से वह नीचे के लोकों का अनुभव प्राप्त करने के निमित्त उतरता है और अनुभव प्राप्त करके फिर वापिस चला जाता है। यह प्रक्रिया ठीक वैसे ही होती है जैसे कोई पथिक यात्रा को जाता है और वहाँ अपना कार्य समाप्त करके पुन: घर वापिस आ जाता है। अन्तर सिर्फ इतना ही है कि पथिक को साधारणत: इस बात का स्मरण रहता है कि असली निवास-स्थान कहाँ है, पर मनुष्य नीचे उतरने पर अपने असली निवास-स्थान को, अपने स्वरूप को भूल जाता है और अपनी यात्रा की भिन्न-भिन्न मंजिलों को ही अपना निवास-स्थान समझने लगता है। यदि मनुष्य केवल इस तथ्य को समझ ले तो उसकी जीवन-यात्रा अत्यन्त सुगम और सत्य मार्गानुयायी हो जाय।

अन्य धर्मों में इन लोकों का वर्णन भिन्न प्रकार का किया गया है।

स्वर्ग को सुख का और नरक को दु:ख का स्थान माना गया है, पर वे सुख दु:ख किस प्रकार के हैं, किनके द्वारा दिये जाते हैं, इस विषय की मान्यताओं में काफी अन्तर पाया जाता है।

ठण्डे देशों के नरक अत्यधिक ठण्डे हैं और गर्म देशों के आग उगलते हुए। कारण कि उन देशों में ऋतु प्रभाव की कठिनाई का सामना एक-दूसरे से विपरीत स्तर का करना पड़ता है। इसलिए जहाँ जिस प्रकार के कष्ट अधिक भोगने पड़ते हैं, उन्हीं की बढ़ी-चढ़ी मात्रा नरक की स्थिति मानली जाती है। स्वर्ग के सम्बन्ध में भी यही बात है। जहाँ के लोग जिस प्रकार की वस्तुओं का अभाव अनुभव करते हैं, जिनके लिए लालायित रहते हैं उनको बाहुल्य की कल्पना करके ऐसे स्थानों का निर्धारण किया गया है जहाँ वे विपुल परिमाण में निरन्तर उपलब्ध रहती हैं स्वर्ग इसी का नाम है। जिस प्रकार नरक की पीड़ाऐं विभिन्न क्षेत्रों, समुदायों में भिन्न-भिन्न प्रकार की मानी गयी हैं उसी प्रकार स्वर्ग की साधन सामग्री, तथा परिस्थिति में भी भारी अन्तर देखा जाता है। एकता एक ही बात में है कि नरक में दु:ख और स्वर्ग में सुख की अनुभूति होती है।

श्रीमद्भागवत में २८ नरकों का वर्णन है जो पृथ्वी से नीचे किन्तु पानी के ऊपर हैं। गरुड़ पुराण में नरकों का इतना विस्तृत वर्णन है मानों उनमें किसी समूचे ग्रह नक्षत्र जितना बड़ा क्षेत्र हो और उसका असंख्यों कर्मचारी उसी उत्पीड़न प्रक्रिया में निरत रहते हों। हिन्दू धर्मानुयायी दक्षिण दिशा में नरक बताते हैं किन्तु पारसियों का उत्तर में है। मुसलमानों के दोजख में आग की लपटें उठती रहती हैं जबकि ईसाइयों के यमदूत त्रिशूल धारी दानवों के रूप में मार-काट मचाते रहते हैं। पाश्चात्य देशों की परलोक-मान्यताओं का चित्रण करने वाले परिचय ग्रन्थ स्पोकेलिरस आफ मीटर' में उत्पीड़न के नृशंस निर्धारणों का उल्लेख किया है। उसमें जीभ को रस्सी से बाँधकर लटकाये जाने जैसे वीभत्स वर्णन हैं दाँत्ते के नरक में मात्र दस घर हैं इन्हीं से निकल-निकल कर पैंने सींगों वाले यमदूत आते हैं और दिन भर खून खच्चर करके रात को घर लौट जाते हैं। होमर ने दुर्गन्ध भरे भयानक अन्धकार वाले क्षेत्र को नरक बताया है। जापानियों के नरक में बाराह बिरादरी के घिनौने प्राणियों की भरमार है, यूनानियों की 'स्टिक्स' नदी, हिन्दुओं की वैतरणी के समान ही सड़े पानी और काटने वाले कीड़ों से भरी है। अन्तर इतना ही है कि हिन्दुओं को गाय की पूँछ पकड़कर पार होने की सुविधा है और यूनानियों के मुर्दे जितना पैसा मरते समय मुँह में दाव कर ले जाते हैं। उतने ही टैक्स से घटिया जलपान प्राप्त करते हैं। दोनों ही मान्यताओं में वह गौ या मुर्दे के मुँह की राशि पुरोहितों के घर पहुँचती है। "सार्त्र" के "हुइस क्लाकर्स" ग्रन्थ में नरक को एक पिंजड़ा बताया है जिसमें हिलने-डुलने की बहुत कम जगह है। एक स्थान पर उन्होंने दो औरतें रखने वाले मर्द की विपन्नता का नरक से उपमा दी है।

स्वर्ग के सम्बन्ध में एक मत इतना ही है कि वहाँ सुख साधनों की कमी नहीं, पर वे साधन हैं किस प्रकार के इस सम्बन्ध में ऐसे वर्णन हैं जो एक-दूसरे से तालमेल नहीं खाते। यूनानी भी ईसाइयों की तरह ही सात स्वर्ग मानते हैं। मुसलमानों का खुदा भी सबसे ऊँचे स्वर्ग सातवें आसमान पर अवस्थित है। प्राय: प्रशान्त महासागर की सीध में बहुत ऊँचाई पर यूनानियों का स्वर्ग है जिसमें हिन्दुओं के नन्दन वन जैसा मीठे फलों वाला एक विशाल एवं रमणीक उद्यान है स्कैण्डेनेविया का एस गार्ड विशाल भवन ही स्वर्ग है। इस महल के ४५० दरवाजे हैं। चीनियों का 'यांग' सुनहरे प्रकाश और सुख सुविधाओं से भरा-पूरा है । जापान के स्वर्ग पर्वत पर भगवान बुद्ध भव्य कमलासन पर विराजमान है। चारों ओर सन्त विराजमान हैं। स्वर्ग यात्री भी उन्हीं की पंक्ति में जा बैठता है और ज्ञानामृत का पान करता है वेदकाल की मान्यताओं में कामधेनु गौ और कल्प वृक्ष के माध्यम से स्वर्ग पथ व्यक्ति सभी अभीष्ट सुविधाएँ प्राप्त करते हैं।

मध्यकाल में सामन्ती विलासिता ने युद्धोन्माद को जन्म दिया था। इसके लिए कटने-काटने वाले योद्धाओं की आवश्यकता पड़ती थी। उन्हें लूट-पाट में हिस्सा और मोटा वेतन तो मिलता ही था, पर इसके अतिरिक्त स्वर्ग में उन सुविधाओं का बाहुल्य

भी दरसाना पड़ता था जिनके लिए वे लालायित रहते हैं। ऐसे प्रलोभनों में धन सम्पदा के उपरान्त कामुकता की तृप्ति का ही बड़ा आकर्षण रह जाता है। स्थानीय लड़ाइयों में भी यह योद्धा लोग न केवल धन लूटते थे, वरन् जहाँ भी कामुकता की तृप्ति का अवसर आकर्षण देखते वहाँ उसका बेरोक-टोक लाभ उठाते। बलात्कार और अपहरण की उन्हें छूट दी थी। यह छूट स्वर्ग में और भी बढ़े-चढ़े रूप में होनी चाहिए। इसलिए युद्ध में मरने वालों को उस आकर्षण का पूरा-पूरा लालच दिखाया गया है। इन्द्रलोक में परियों की भरमार है जो बीर गति पाने वाले सभी योद्धाओं की मनोकामना पूर्ण करने के लिए हर घड़ी उत्सुक-आतुर रहती हैं। सत्तारों का मिलना और शराब की लहर से हर घड़ी सुरापान करने का चित्रण भी उसी मनोवृत्ति का परिचायक है। गीता में 'हतो वत्सय से स्वर्ग' का उल्लेख उसी मान्यता के अनुरूप है कि युद्ध में मरने वाले स्वर्ग सुख की निरन्तर उपलब्ध करते हैं। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि इस प्रकार मरने वाले का पक्ष नीति युक्त ही हो।

मरने के बाद किसी स्थान विशेष में पहुँच कर सुख-दु:ख की उपलब्धि के सम्बन्ध में आस्तिक परामनोविज्ञान-वादियों का मत है कि लम्बे समय तक दिन रात श्रम संलग्न रहने के उपरान्त मृतात्मा को कुछ समय विश्राम की आवश्यकता पड़ती है। श्रम के साथ विश्राम का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरे की गति नहीं। दिन-रात की तरह यह चक्र सर्वत्र चलता है। जन्म और मरण के मध्य भी कुछ ऐसा ही अवकाश समय मिलता है जैसा कि सरकारी कर्मचारियों की बदली होते समय कुछ समय का अवकाश मिलने का अवसर रहता है। मृतात्मा अनन्त अन्तरिक्ष में अपनी भार हीन स्थिति में किसी अनुकूल स्थान पर गहरी तन्द्रा में चला जाता है और प्रगाढ़ निद्रा में विश्राम लाभ करता है इस अवधि में उसे भले-बुरे स्वप्न भी आते हैं। दैनिक जीवन में भी निद्रा सर्वथा स्वप्न रहित नहीं होती उसका प्राय: आधा समय स्वप्नावस्था में व्यतीत होता है। उद्विग्न दिनचर्या में निरत रहने वालों के सपने भी भयानक एवं असन्तोषजनक होते हैं जबकि शान्त और प्रसन्न दिनचर्या बिताने वालों के सपने भी सुरुचि और प्रसन्नता के माध्यम बनते हैं। ठीक इसी प्रकार मृतात्मा को मरणोत्तर जीवन के विश्राम काल में ऐसी भली-बुरी अनुभूतियाँ होती हैं जिन्हें स्वर्ग या नरक कहा जा सके। अचेतन मन जिस प्रकार अपनी संचित कुत्साओं, कुण्ठाओं का निराकरण स्वप्न के माध्यम से करते हुए चेतना पर चढ़ा हुआ भार हलका करता है उसी प्रकार मरणोत्तर काल की विश्राम बेला में भी ऐसी स्वप्न श्रृंखला चलती रहती है जिसमें भली या बुरी- सुखद कष्टकारक अनुभूतियों का अवसर मिलता रहे। परामनोविज्ञानियों में से जो आस्तिक स्तर के हैं वे इस सन्दर्भ में अपना प्रतिपादन इसी रूप में प्रस्तुत करते हैं।

प्रत्यक्षवादियों ने पूर्व जन्म के भले-बुरे कर्मों का प्रतिफल जन्मजात अपंगताओं एवं प्रतिभाओं के रूप में प्रतिपादित किया है। वे कहते हैं कि कितने ही लोग अपने जन्मकाल से ही कुछ असामान्य प्रकृति साथ लेकर आते हैं। इनमें विलक्षण मेधावानों के कलाकारों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। जो बिना प्रशिक्षण एवं वातावरण के भी ऐसी प्रतिभा का परिचय देने लगे जिनकी प्रस्तुत परिस्थितियों के साथ कोई संगति नहीं बैठती। वंशानुक्रम, सुविधासाधन, सहयोग, अवसर आदि के आधार पर ही आमतौर से किसी की विशेष प्रतिभा या प्रगति का तारतम्य जोड़ा जाता है। पर जहाँ ऐसा कुछ भी न हो किन्तु बचपन से ही अनौखापन दृष्टिगोचर होने लगे तो यही कहना पड़ता है कि पूर्व संचित पुण्य या सुसंस्कार अनायास ही फलित होने लगे।

नरक के सम्बन्ध में भी इस क्षेत्र का प्रतिपादन यही है। कुछ बालक जन्म से ही अपंग, असमर्थ, मूढ़मति एवं कुसंस्कारी होते हैं। यह उन्हें वहाँ से नहीं मिली होती जहाँ कि वे जन्मे। वैसी विपन्नता कोई प्रत्यक्ष कारण दृष्टिगोचर न होने पर यही मानकर सन्तोष करना पड़ता है कि यह पूर्व जन्मों के शुभ-अशुभ संस्कारों की जन्मजात प्रतिक्रिया है।

मनोविज्ञानी इस प्रसंग में प्रत्यक्ष उदाहरण मनोविकारों की शारीरिक, मानसिक और सभ्यता की परिणति के रूप में कर्मफल का प्रतिपादन करते हैं और इसी को हाथों-हाथ मिलने वाला स्वर्ग नरक बताते हैं।

कलुषित अन्तःकरण स्वयं दण्ड भोगता है

असत्य और अनाचार के सामाजिक एवं शासकीय दण्ड से बचा जा सकता है। चतुरता के ऐसे अनेकों तरीके निकाल लिए जाते हैं, जिनसे अपराधी-दुराचरण करने वाले का पता ही न चले। पता चल भी जाय तो पुलिस, कानून, अदालत को बहका देने और बच निकलने के भी हजार रास्ते बना लिए जाते हैं।

अनाचारी जीवन के प्रति बरसने वाली जनसाधारण की घृणा को हलका या निरस्त करने के लिए ऐसे लोग कभी-कभी कोई दान पुण्य जैसा बड़ा विज्ञापन खड़ा कर देते हैं। उससे लोगों की आँखें चौंधिया जाती हैं, निरन्तर किये गये कुकृत्य भुला दिये जाते हैं और वह एक पुण्य विज्ञापन लोगों की आँखों में छाया रहता है। भीतर से पापात्मा बाहर से धर्मात्मा बने रहने की कला भी अब बहुत विकसित हो गई है। सरकार की, समाज की आँखों

में धूल झोंकते हुए शान के साथ दुष्कर्म करते रहना बाहरी ढकोसला सज्जन का बनाये रहना अब व्यावहारिक चतुरता का एक अंग हो गया है। अपराधियों में से दस प्रतिशत भी नहीं पकड़े जाते, जो पकड़े जाते हैं उनमें से दस प्रतिशत भी समुचित दण्ड नहीं भुगतते। जिन्हें दण्ड मिलता है वे और भी अधिक ढीठ निर्लज्ज बनकर पूरी निर्भयता निश्चिन्तता के साथ वैसे ही कुकर्म करते हैं।

ऐसा अन्धेर चल पड़ने पर भी किसी को यह नहीं मान बैठना चाहिए कि पाप के दण्ड से पूर्णतया बचाव हो गया। भगवान के घर एक दिन जाना ही होगा और वहाँ न्याय की तुला पर तौला ही जायेगा। वहाँ चतुरता काम नहीं आती और कुकर्मी को कराहते हुए अपने कुकृत्यों का फल भोगना पड़ता है।

कुकृत्यों का लेखा-जोखा हमारा अचेतन मस्तिष्क भी नोट करता रहता है। वहाँ ऐसी स्वसंचालित प्रक्रिया स्थापित है जो उन पाप अंकनों के आधार पर दु:ख दण्ड की व्यवस्थाएँ यथावत् बनाती रहती है। शारीरिक और मानसिक रोगों के रूप में- स्वभाव की विकृति के कारण स्वजनों से मनोमालिन्य के रूप में- अपने ही मनोविकारों से उत्पन्न विक्षेपों के रूप में अन्त:संस्थान बेतरह खिन्न उद्विग्न रहता है। बाहर के लोगों को प्रतीत भले ही हो पर वह स्वयं अशान्त और बेचैन ही बना रहता है। नींद न आने से लेकर घबराहट भरी मन: स्थिति किसी नारकीय दण्ड से कम नहीं। जेलखानों में भी उतना शरीरिक कष्ट नहीं होता जितना मानसिक विक्षोभ। अपराधी प्रवृत्तियाँ अपने ही अचेतन मन के माध्यम से शारीरिक और मानसिक आधि-व्याधियों से घेर देती हैं और कुकर्मी उस स्वसंचालित विधि-विधान के आधार पर स्वयं ही दण्ड का भागी बनता रहता है।

क्रोध, आवेश, चिन्ता, भय, हर्षातिरेक, कामोत्तेजना आदि के अवसर पर नाड़ी संस्थान उत्तेजित हो उठता है। रक्तचाप बढ़ जाता है। श्वांस की गति तीव्र हो जाती है। त्वचा की उष्णता में बढ़ोतरी होती है। यह सर्वविदित है।

ठीक इससे मिलता-जुलता एक अदृश्य आवेश उस समय होता है जब मनुष्य छिपाने का, ठगने का या झूठ बोलने, छल करने का प्रयत्न करता है। जानकारी को-मन:स्थिति को यथावत् प्रकट कर देने की प्रक्रिया सरल और सुगम है। उसमें किसी प्रकार का अतिरिक्त तनाव उत्पन्न नहीं होता। पर छिपाने में अपने सही व्यक्तित्व को दवाना पड़ता है। वास्तविकता को छिपाकर अन्य प्रकार की स्थिति प्रकट करने पर भीतर ही अन्त: संघर्ष शुरू हो जाता है। स्वाभाविकता असली रूप में प्रकट होने के लिए प्रस्तुत रहती है। पर छल या दुराव के अवसर पर उस वास्तविकता को पूरी तरह दवाना पड़ता है और एक कल्पित स्थिति गढ़कर प्रकट करनी पड़ती है। इस गढ़ंत में बहुत मानसिक शक्ति खर्च होती है। उससे भी जादा दबाव तब पड़ता है जब अवास्तविकता को वास्तविकता जैसे ढंग से प्रकट करने का हाव-भाव उच्चारण, कथन उपक्रम एवं क्रम प्रवाह, इस तरह ढालनाा पड़ता है कि अभिनय खरा उतरे- पकड़ में न आवे। इस सारे क्रिया-कलाप में अन्त: चेतना को एक भारी सघन आन्तरिक संघर्ष में उलझना पड़ता है और इस उलझने का निश्चित रूप चिन्तन केन्द्र पर भारी दवाब पड़ता है।

सच और झूठ का अन्तरंग स्थिति में इतना भारी अन्तर रहता है कि उसे पहचाना और पकड़ा जा सकता है। अभी-अभी विज्ञान ने इस प्रकार के मानसिक तनाव को अंकित करने के लिए एक अति सम्वेदनशील यन्त्र बनाया है- नाम है उसका 'लाइ डिक्टेटर', ब्लड प्रेशर हृदय गति नापने के यन्त्रों जैसा ही यह दीखता है मस्तिष्क पर टोपी की तरह इसके बाह्य उपकरण लगा दिये जाते हैं और विचार प्रवाह की तरंगों का अंकन उस पर आरम्भ हो जाता है। झूठ बोलने और न बोलने के बीच का अन्तर इन अंकनों के आधार पर स्पष्ट अंकित होता चलता है। फलत: यह जान लिया जाता है कि व्यक्ति ने जो उत्तर दिये वह गलत थे या सही ।

अन्तर्द्वन्द्व और शारीरिक उत्तेजना से अथवा किसी मानसिक उत्तेजना से उत्पन्न तनाव में भौतिक अन्तर रहता है। अपराधी प्रश्नोत्तर के समय- अथवा इस मशीन के आतंक से घबरा भी सकता है और उसका मानसिक तनाव बढ़ सकता है पर वह बिलकुल दूसरी तरह का होगा। झूठ जैसा अन्तर्द्वन्द्व उसमें नहीं होता। इसलिये वह यन्त्र शारीरिक या मानसिक तनावों को भी अंकित तो करता है पर उनका स्वरूप झूठ वाली स्थिति से सर्वथा भिन्न प्रकार का होता है।

झूठ बोलने में चतुर व्यक्ति भी इस परीक्षण को झुठलाने में समर्थ नहीं हो सकता है क्योंकि मस्तिष्क की बनावट के अनुसार सही जानकारी ही स्वाभाविक रीति से प्रकट हो सकती है। स्मृति केन्द्र यथावत् स्थिति में तभी काम कर सकते हैं जब जो कुछ जैसा है उसी रूप में कह दिया जाय। यथार्थता को तोड़ने-मरोड़ने में मस्तिष्क को अतिरिक्त श्रम न करना पड़े यह हो ही नहीं सकता और उपरोक्त यन्त्र इतना सम्वेदनशील है कि उस मानसिक यथार्थता को पकड़े बिना रह ही नहीं सकता। इस माध्यम से मिथ्या साक्षी देने वाले अथवा छल-कपट का जाल रचने वालों की कलई खुल जाना अब अधिक सरल हो सकेगा।

असत्य के बीच जब कभी सत्य स्थिति की चर्चा होती है तो मौन रहते हुए भी उस व्यक्ति के मन: क्षेत्र में एक अतिरिक्त

हलकापन उभरता है। ऐसी दशा में कोई असत्य वादी यदि चुप रहकर सब कुछ छिपाये रहने का प्रयत्न करे तो भी उसकी चाल चलेगी नहीं। तब प्रश्नकर्ता स्वयं ही विभिन्न प्रकार के परस्पर विरोधी प्रश्न पूछता चला जायेगा और उन प्रश्नों को सुनकर मन की सहमति-असहमति 'लाइ डायरेक्टर' पर अंकित होती जायेगी। जैसी किसी व्यक्ति ने कानपुर के माल बजार में चोरी की। तो अन्य बाजारों का नाम पूछते चलने पर चोर का मस्तिष्क अस्वीकृति अंकित करेगा पर जब माल बाजार कहा जायेगा तो अंकन बिलकुल दूसरी तरह का होगा और उसमें स्वीकृति की सूचना होगी। इसी प्रकार साथियों के नाम चोरी का माल रखने का स्थान आदि भी कुशल प्रश्नकर्ता पूछता चला जाय और अपराधी चुप बैठा रहे तो मन: क्षेत्र की- स्थिति और घटना क्रम की यथार्थता का भेद खुलता चला जायेगा।

दूसरों को धोखा दे सकना सरल है पर अपने आपको धोखा कैसे दिया जा सकता है? अपने को तो अपनी वास्तविकता विदित होती है। अनुचित और अवांछनीय कार्यों को छिपाना ही पड़ता है। छिपाया न जाय तो सामाजिक तिरस्कार और राज्य दण्ड का भागी दार बनना पड़ता है। वस्तु स्थिति से भिन्न तरह की बात प्रकट करने में दुहरा व्यक्तित्व बनता है। एक असली एक नकली दो आदमी एक ही शरीर मन में घुस बैठते हैं और एक म्यान में दो तलवार ठूँसने पर म्यान की जो दुर्गति होती है वही उस कुकर्मी की भी होती है।

सच्चा व्यक्ति दुष्टता की सारी गतिविधियों को जानता है यदि उसे काम करने दिया जाय तो सही बातें ही बाहर प्रकट करेगा। पर वैसा करने से तो सारा खेल बिगड़ता है। बाहर वालों को तो ऐसी जानकारी देनी है जिससे अपनी प्रामाणिकता और भलमनसाहत पर आँच न आती हो उसके लिए एक झूठा आदमी अपने अन्दर गढ़ना, बनाना पड़ता है। वह झूठे विवरण सोचता है और उस पर रंग चढ़ाकर सच्चाई की तरह प्रकट करता है।

इतना होते हुए भी अचेतन मन वस्तुस्थिति से अवगत तो रहता ही है, इस दुराव, छल, पाखण्ड, प्रपंच की प्रतिक्रिया से स्वयं प्रभावित होता है, वह प्रतिक्रिया जब स्वसंचालित क्रम के अनुसार बीज से अंकुर की तरह फलित होती है तो वे शारीरिक, मानसिक विक्षोभ सामने आ खड़े होते हैं जिन्हें अनायास आगत माना जाता है। वस्तुत: अनायास, संयोगवश, भाग्य से, ईश्वर की इच्छानुसार यहाँ कुछ भी नहीं होता। जो भी होता है उसमें एक क्रम विधान ही जुड़ा रहता है।

छल और दुराव के साथ किये गये कुकृत्य अपने अन्त: करण को कलुषित करते हैं और उसकी प्रतिक्रिया हुए बिना नहीं रहती, इस सच्चाई को वैज्ञानिक उपकरणों ने सिद्ध कर दिया है। आज इतना और सिद्ध करना बाकी है कि प्रत्येक कुकर्म अपने निर्धारित विधान के अनुसार कर्त्ता को दण्ड दिये बिना नहीं छोड़ता। वह सब किस क्रिया-प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होता है? यदि इस विज्ञान के क्रिया-प्रतिक्रिया वाले सिद्धान्त की परिणति माना जाय, तो उसमें आगे इतना और जोड़ लेना चाहिए कि परोक्ष स्वर्ग-नरक इतर लोक में भले ही कहीं अन्यत्र स्थित हों, पर उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति इसी जन्म में इसी धरती पर हुए बिना नहीं रहती। स्वर्ग-नरक का व्यावहारिक और तर्कसंगत स्वरूप यही हो सकता है, ऐसा मूर्धन्यों का मत है।

पुनर्जन्म की तैयारी

परलोक में रहने की अवधि के पहले भाग में विश्राम, दूसरे में स्वर्ग-नरक होते हैं। तीसरा भाग पुनर्जन्म की तैयारी में व्यतीत होता हैं स्वर्ग-नरक भोगने के बाद आगामी जन्म के लिए ज़ीव को विशेष प्रोत्साहन मिलता है नरक भोगने वालों के साधारण पाप तो प्राय: नष्ट हो जाते हैं, किन्तु आदतें शेष रह जाती हैं। इन आदतों को आध्यात्मिक भाषा में संस्कार के नाम से पुकारा जाता है। यह आदतें तब तक नहीं छूटतीं जब तक कि जीव उन्हें ज्ञानपूर्वक पहचान कर छुड़ाने का वास्तविक प्रयत्न न करे। बंधन के कारण यही संस्कार हैं जीव स्वतन्त्र है, वह अपनी इच्छानुसार संस्कार बनाता है और उन्हीं में जकड़ा रहता है। यह माया और कुछ नहीं, अज्ञान का एक पर्यायवाची शब्द है। अपने आपकों खुद अपने ही अज्ञान के बंधन में उलझा कर दु:खी होना बड़ी विचित्र बात है। इसी गोरख धंधे को दुस्तर माया के नाम से पुकारा गया है।

शुभाशुभ कर्मों का फल भोगने के बाद भी उसके पूर्व संस्कार नहीं मिटते। जैसे- एक जुआरी धन-सम्पति हार जाने पर भी जुआ खेलने की इच्छा करता है, शराबी अनेक कष्ट सहकर भी मद्यपान की और लालायित रहता है, उसी प्रकार पिछली आदतों के कारण जीव पुनर्जन्म के लिए स्थान तलाश करता है। यह मध्यम श्रेणी के व्यक्ति प्राय: पूर्वजन्म जैसी स्थिति के वातावरण में आकर्षित होते हैं। मान लीजिए एक व्यक्ति इस जन्म में किसान है, सारी उम्र उसके मन पर खेती के संस्कार जमते रहे अब वह अगले जन्म में भी दुकानदार होने की अपेक्षा किसानी ही पसंद करेगा। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि कोई अन्य शक्ति बलात् जन्म दे देती है। जीव स्वयं अपनी इच्छा से संस्कारों के वशीभूत होकर जन्म ग्रहण करता है। ऊपर उड़ता हुआ गिद्ध जैसे तीक्ष्ण दृष्टि से मृत पशु को तलाश करता फिरता है, उसी प्रकार जीव

निखिल आकाश में अपना रुचिकर वातावरण ढूँढ़ता फिरता है। पहले यह बताया जा चुका है कि तर्क, बहस का चुनाव करने वाली भौतिक बुद्धि परलोक में नहीं रहती इसलिए वह चालाकियाँ नहीं जानता और अपने स्वभाव के विपरीत ऊँची-नीची स्थिति की ओर नहीं खिंचता। छोटा बालक राजमहल की अपेक्षा अपनी झोंपड़ी को पसंद करता है, उसी प्रकार किसी व्यापारी संस्कारों का जीव राजघर में जन्म लेने की अपेक्षा व्यापारी परिवार में शामिल होना पसन्द करता है। आधे से अधिक मनुष्य प्रायः अपने पूर्व घर या परिवार में ही जन्म लेते हैं। यदि पूर्व घर में उसे अपमानित लांछित या बहिष्कृत न किया गया हो तो वह उसी में या उसके आस-पास जन्म लेना चाहता है। दूरी के सम्बन्ध में भी यही बात है। पूर्व जन्म कें प्रदेश में रहना ही सब पसन्द करते हैं, क्योंकि भाषा, भेष, भाव की गहरी छाप उनके मन पर अंकित होती है। इटली का मनुष्य भारतवर्ष में या भारतवर्ष का टर्की में जन्म लेना पसन्द न करेगा। कोई विशेष ही कारण हो तो बात दूसरी है।

हमारी स्थूल इन्द्रियों के लिए यह पहचानना कठिन है कि किन स्थानों में कैसी मानसिक स्थिति और आन्तरिक वातावरण है पर परलोकवासी इस बात को बड़ी आसानी से पहचान लेते हैं। वे जहाँ ठीक स्थिति देखते हैं उस परिवार के आस-पास डेरा डालकर बैठ जाते हैं। परलोवासियों को पिछले कई जन्मों का भी स्मरण हो आता है। यदि वे पुराने घरों में अधिक स्नेह रखते हैं तो उनकी ओर खिंच जाते हैं। बहुत समय व्यतीत हो जाने पर उन परिवारों की ओर अपनी मनोवृति में अन्तर आ जाता है तो भी वे कभी-कभी खिंच जाते हैं। किसी विद्वान कुल में एक मूढ़ का जन्म लेना या असुर कुल में महात्मा का पैदा होना, दो कारणों को प्रकट करता है-(१) या तो वह कुल कुछ पीढ़ियों के उपरान्त बदल गया है और जीव के संस्कार पुराने ही मौजूद हैं, (२) या वह जीव दूसरे ढाँचे में ढल गया है और केवल व्यक्तिगत स्नेह के कारण उस कुल में खिंच आया है। हम बार-बार दुहरा चुके हैं कि जीव स्वतंत्र है, वह अपने आचरणों से संस्कारों में आसानी से परिवर्तन कर सकता है। जब किसी परिवार में कोई विपरीत स्वभाव की सन्तान पैदा हो तो समझना चाहिए कि या तो यह कुछ बदल गया या वह जीव प्राचीन मोह के कारण ही यह बेमेल संयोग मिला है।

जिस परिवार में जन्म लेना जीव पसंद कर लेता है, उसके आस-पास मँडराने लगता है, अवसर की प्रतीक्षा करता है। जब किसी स्त्री के पेट में गर्भ की स्थापना होती है तो उसमें अपनी सत्ता को प्रवेश करता है और नौ मास गर्भ में रहकर संसार में प्रकट हो जाता है। कई तत्वज्ञों का मत है कि यह गर्भ पर अपनी सत्ता जमाता है और पूरी तरह शरीर में तब प्रविष्ट होता है जब बालक पेट से बाहर आ जाता है हमारा मत यह है कि संभोग के समय रज-वीर्य का सम्मिलन होकर यदि गर्भ कलल बन जाय तो उसमें कुछ ही क्षण उपरान्त जीव अपना अधिकार कर लेता है और गर्भ में रहने लगता है। यह समझना ठीक नहीं कि गर्भ में बालक को बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि उस समय तक गर्भ का मस्तिष्क और इन्द्रियाँ अविकसित होने के कारण जीव को पूरी तरह बन्धित नहीं करते और जीव का कुछ भी विशेष बन्धन नहीं होता। वह उदर में घोंसला रखता है पर अपनी चेतना से चारों ओर परिभ्रमण कर सकता है। जन्म लेने के कुछ ही समय पूर्व जब गर्भ की इन्द्रियाँ पूर्णतः परिपक्व हो जाती हैं तो जीव की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है। तब वह तुरन्त ही बाहर निकलने का प्रयत्न करता है। इसी समय को प्रसव काल कहा जाता है।

कभी-कभी एक परिवार में जन्म लेने के लिए कई जीव इच्छुक होते हैं। उन्हें क्रम से आना होता है। अमुक के गर्भ में जन्म लेने की इच्छा रखते हुए भी यदि उसका क्रम न हो या वह गर्भ धारण करने में असमर्थ हो तो फिर काम चलाऊ उपाय ढूँढ़ना पड़ता है, एक स्थान पर दूसरे को पसंद करना पड़ता है। कई बार जीव अमुक परिवार में जन्म लेने की इच्छा से बहुत दिनों तक प्रतीक्षा में बैठा रहता है, पर यदि उचित अवसर न आवे और परलोक का नियत काल समाप्त हो जाय तो उसे बहुत जल्दी कहीं जन्म लेने का प्रयत्न करना पड़ता है जैसे कुछ देर का मल पेट में जमा हो जाने पर उनके निकलने का काल आ जावे और बहुत जोर की टट्टी लगे तो मनुष्य को कहीं न कहीं उचित या अनुचित स्थान पर मल त्यागने के लिए मजबूर होना पड़ता है, उसी प्रकार यदि नियत काल समाप्त हो रहा हो वह जल्दी में कहीं न कहीं जन्म ले लेता है। ऐसे अवसरों पर वह मनचाही स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाता।

गर्भ का शरीर और उसके अवयव यह पूर्णतः जीव की ही इच्छा से नहीं बनते। यह साझे का कार्य है माता-पिता के रज-वीर्य और जीव की इच्छा इन सबके मिलने से ही नवीन शरीर बनता है। कुम्हार और मिट्टी इन दोनों में से एक भी दोषपूर्ण होगा तो इच्छित फल की प्राप्ति न होगी। माता-पिता का रज-वीर्य मिट्टी है और जीव कुम्हार। अनाड़ी कुम्हार अच्छी मिट्टी से भी खराब बर्तन बनाता है और अच्छे कुम्हार का प्रयत्न खराब मिट्टी के कारण बेकार रहता है। जीव यदि उत्तम संस्कार वाला हो तो रज-वीर्य के भौतिक संस्कारों पर अपना उत्तम प्रभाव डालता है और कुछ न कुछ सुधार कर लेता है, इसके विपरीत कुसंस्कारी

जीव उत्तम रज-वीर्य में भी कुछ न कुछ दोष मिला देता है। फिर भी माता-पिता के संस्कार पूर्ण रूप से मिट नहीं जाते, उनका बहुत बड़ा प्रभाव होता है। माता-पिता की भावनाओं का प्रभाव गर्भ शरीर पर पड़ता है। यदि जीव ऊँचे दर्जे का न हो तो उसे उन शारीरिक संस्कारों के क्षेत्र में ही रहना पड़ता है। देखा गया है कि व्यभिचार द्वारा उत्पन्न हुई संतान बहुधा दुष्ट होती है, क्योंकि गर्भाधान के समय माता-पिता का अन्तरात्मा पाप कर्म के कारण बड़ा व्यग्र रहता है, वही संस्कार गर्भ पर भी उतर जाते हैं।

कुछ जीव किन्हीं खास दुष्ट आदतों में बुरी तरह प्रवृत्त हो जाते हैं, वे किन्हीं इन्द्रियों का बार बार दुरुपयोग करते हैं। हर बार उन्हें नरक भोगना पड़ता है, पर वे आदत से इतने मजबूर होते हैं कि दण्ड भोगकर उसे भुला देते हैं और फिर उसी आदत का अनुसरण करने लगते हैं। ऐसे जीवों की वे इन्द्रियाँ कुछ जन्मों के लिए छीन ली जाती हैं। जैसे किसी मंत्री को कांग्रेस की सदस्यता से पाँच साल के लिए वंचित कर दिया है। या जैसे बन्दूक का दुरुपयोग करने वालों से सरकार लाइसैंस जप्त कर लेती है, इसी प्रकार अदृश्य सत्ता यह आवश्यक समझती है कि इसकी अमुक इन्द्रियों को जप्त कर लिया जाय, ताकि वह आदत अगले जन्म में छूट जाय। जन्म से गूँगे, बहरे, अन्धे अपाहिज, नपुंसक वे होते हैं, जिन्होंने अपनी उन इन्द्रियों को अनुचित रीति से उपयोग करने की आदत डाल ली होती है। फिर भी यह भोग योनि नहीं है, जीवात्मा उनका भी जाग्रत होता है, और वे चाहें ते इच्छानुसार अन्धकार से प्रकाश की ओर चलने के लिए स्वतंत्र हैं। कुछ मनुष्य इतने दुष्ट होते हैं कि वे जीवनभर अपनी सारी इन्द्रियों का दुरुपयोग ही दुरुपयोग करते हैं, उन्हें जड़ योनियों में जाना पड़ता है। वृक्षादि में जन्म लेना भोग योनि है। उनमें जीव तो रहता है पर क्रियाशील चेतना का अधिकांश भाग जप्त कर लिया जाता है। इन भोग योनियों में जन्म प्राप्त होना प्रभु की ही कृपा का चिह्न है, क्योंकि बिना जड़ योनि मिले उन दुष्ट संस्कारों को भुला सकना उस अज्ञानी के लिए कठिन है, जब तक कि वह पुरानी बुरी आदतों को भूल नहीं जाता। अब उसकी उन्नति का क्रम यहीं से आरम्भ होता है। वृक्ष के बाद कीड़े-मकोड़े फिर पशु-पक्षियों की योनियाँ धीरे-धीरे पार करता है, क्रमश: अधिक ज्ञान वाली योनि को अपनाता जाता है। डार्विन के उस मत को हम झूठा नहीं बताते जिसके अनुसार वह कहता है कि एक छोटे से कीड़े से बढ़ते-बढ़ते जीव पशु-पक्षियों की योनि धारण करता हुआ मनुष्य बनता है। हिन्दू धर्मशास्त्र इन योनियों की संख्या चौरासी लाख मानती है। भौतिक विज्ञानी उनकी संख्या इससे भी अधिक बताते हैं। जो हो यह निश्चित है कि दुष्ट कर्म करने वाले, अपनी इन्द्रियों को बार-बार अनुचित रीति से प्रयोग करने वाले जड़ योनियों में जन्म लेते हैं और फिर वहाँ से उन्नति करते-करते मनुष्य शरीर प्राप्त करने में हजारों लाखों शरीर बदलने पड़ते हैं। किसी योनि में उन्नति क्रम रुक गया तो वह योनि एक से अधिक बार भी ग्रहण करनी पड़ती है, जैसे फेल हो जाने पर विद्यार्थी को दूसरे वर्ष भी उसी कक्षा में पढ़ना पड़ता है।

जड़ योनियों में जाने का दण्ड प्राय: उन्हीं जीवों को दिया जाता है जो अत्यन्त दुष्ट होते हैं और अपनी क्रियाशीलता को पतनोन्मुखी कर लेते हैं। साधारण पुण्य-पाप करते रहने वालों को दूसरी बार भी मनुष्य जन्म मिलता है क्योंकि लाखों योनियों में भ्रमण करके उसने जो इतना ज्ञान सम्पादन किया है, वह इतना उपेक्षणीय नहीं है कि जरा सी बात पर करोड़ों वर्षों तक भटकने के लिए उसी चक्कर में फिर पटक दिया जाय। मनुष्यों को बार-बार यह अवसर दिया जाता है कि वे अपने अन्तिम उद्देश्य परम पद को पावें।

कुसंस्कार धोएँ, भूल सुधारें

६ अगस्त १९४५ को जापान पर दो अणु बम फेंके गये थे, उसमें हिरोशिमा में ७८ हजार मनुष्य मरे और ५६ हजार घायल हुए थे। नागासाकी में ७४ हजार मरे और ७७ हजार घायल हुए थे। साढ़े नौ सौ वर्गमील का क्षेत्र पूरी तरह नष्ट हो गया था। इसके अतिरिक्त रेडियो-धर्मी प्रभाव से पीड़ित लोगों की संख्या लाखों तक जा पहुँचती है।

इन अणु बमों को गिराने के लिए प्रख्यात मेजर इथरली को अपने उस कुकृत्य से भारी आत्म-ग्लानि हुई। पहले वह सोचता था कि इतना बड़ा साहसिक काम करने के लिए उसे जो यश मिलेगा, उससे उसे प्रसन्नता होगी, पर वैसा हुआ नहीं। आत्म-प्रताड़ना ने उसे विक्षिप्त बना दिया। वह आत्महत्या करने अथवा आत्मदण्ड पाने के लिए इतना आकुल रहने लगा, मानों इसके अतिरिक्त आत्म-प्रताड़ना के दुसह-दु:ख से बचने का और कोई रास्ता हो ही नहीं सकता।

अन्तत: उसने आत्म-दण्ड का सहारा चुना। कई अपराध किये और बन्दूक लेकर एक दुकान में डाका डालने के लिए घुस पड़ा और पुलिस द्वारा पकड़ा गया और न्यू अलियिन्स के जेलखाने में बन्द कर दिया गया। उसने अपनी सफाई देने

का कोई प्रयत्न नहीं किया खुले रहने की अपेक्षा उसने जेल पसन्द की उसके ऊपर सरकार बनाम इथरली नाम से मुकदता चला। पर उसका मानसिक और शारीरिक सन्तुलन इतना बिगड़ा हुआ था कि अदालत में खड़ा तक न हो सका। जेल से उसे अस्पताल भेजना पड़ा। मानसिक व्याधि ने उसका शेष जीवन नष्ट कर डाला।

नागासाकी (जापान) पर अणुबम गिराने वाले विमान संचालक फ्रेडओलीवी ने अपने मार्मिक-वक्तव्य में कहा- "इस युग की सबसे दर्दनाक, सबसे अमानुषिक और सबसे भयानक घटना का जब भी मैं स्मरण करता हूँ तो सिर घूम जाता है और रात-रात भर उसी सोच-विचार में जागना पड़ता है। मुझे हैरत होती है कि विज्ञान ने क्या अजीब परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं? जिस कार्य के लिए अनेक नैपोलियन मिलाकर भी कम पड़ते, उसे मुझ जैसे नाचीज व्यक्ति को कर गुजरने में समर्थ बना दिया गया। यह ऐसा भयानक कृत्य था, जिसका प्रभाव मनुष्यों पर पीढ़ी दर पीढ़ी तक पड़ता चला जायेगा।"

"हमें कोकुरा पर अणु-बम गिराना था, पर उस दिन वहाँ घने बादल छाये हुए थे- सो कुछ दीख नहीं पड़ रहा था। अस्तु दूसरे आदेश अनुसार उसे नागासाकी पर गिराया। जहरीले धुँए का छत्तेदार बादल प्रति मिनट एक मील की चाल से ऊपर उठता हुआ हमने देखा। मेरे मन में इस घड़ी इतनी प्राण-घातक भय की भावना उठी, जितनी मनुष्य के इतिहास में शायद कभी किसी ने अनुभव न की होगी। भागते-भागते हमें अणुतरंगों के एक के बाद एक झटके लगे। जहाज का नियन्त्रण हाथ से छूटते छूटते बचा और हम भी किसी प्रकार बाल-बाल बच निकलने में सफल हो गये। एक सेकिण्ड की भी देर हो जाती तो फिर हमारा भी खात्मा ही था। उस दस्ते के हम सब उड़ाका यही अनुभव करते रहे, सिर्फ एक बम ही नहीं गिराया गया है वरन् एक बड़ी पिशाच-शक्ति को इस विश्व को निगल जाने के लिए मुक्त कर दिया गया है। उस घटना को काफी दिन बीत गये, पर आज भी जब मैं आँखे बन्द करता हूँ तो महादैत्य जैसी उस दिन की नीली रोशनी अभी भी आसमान में छाई दीखती है, जिसके सामने सूरज बुझती मोमबत्ती जैसा लगता था। ईश्वर न करे, मानव इतिहास में फिर कभी ऐसा भयानक दृश्य देखने को मिले।

"जब मैं अणुबम गिराकर लौटा तो मेरी बूढ़ी माँ अत्यधिक दु:खी थीं। उनके चेहरे पर कातरता और करुणा बरस रही थी। जैसे ही घर में घुसा तो माँ ने कड़ककर पूछा- फ्रैडी, तुम्हारी आत्मा तुम्हें कचोटती नहीं ? अपराधी की तरह सिर नीचा किये मैं खड़ा रहा, एक शब्द भी मुँह से निकला नहीं।"

" वे रात को अक्सर चौंककर उठ बैठतीं और घुटने टेक कर प्रार्थना करती रहतीं- हे भगवान्! मेरे बेटे को क्षमा करना।" फ्रेड ओलोवी जीवन भर अपने उस दुष्कृत्य के कारण पश्चात्ताप की आग में जलता। यद्यपि बम गिरने का निर्णय उसका नहीं था, वह तो विमान चालक का कर्त्तव्य ही निभा रहा था। तो भी पाप-कर्म में सहभागी होने , मानवता के प्रति नृशंस व्यवहार का साथ देने की सजा उसके भीतर बैठे न्यायाधीश ने उसे दी ही। वह अन्त तक बिलखता ही रहा।

पाप, अहंकार और अत्याचार संसार में आज तक किसी को बुरे कर्मफल से बचा न पाये। रावण का असुरत्व यों मिटा कि उसके सवा दो लाख सदस्यों के परिवार में दीपक जलाने वाला भी कोई न बचा। कंस, दुर्योधन, हिरण्यकशिपु की कहानियाँ पुरानी पड़ गयीं। हिटलर, सालाजार, चंगेज और सिकन्दर, नैपोलियन जैसे नरसंहारकों का किस प्रकार दुर्दिन देखने पड़े, उनके अन्त कितने भयंकर हुए, यह भी अब अतीत को गाथाओं में जा मिले हैं। नागासाकी पर बम गिराने वाले अमेरिकन वैज्ञानिक फ्रेड ओलोवी और हिरोशिमा के विलेन (खलनायक) मेजर ईथरली का अन्त कितना बुरा हुआ, यह देखकर-सुनकर सैकड़ों लोगों ने अनुभव कर लिया कि संसार सरंक्षक के बिना नहीं है। शुभ-अशुभ कर्मों का फल देने वाला न रहा होता, तो संसार में आज जो भी कुछ चहल-पहल, हँसी-खुशी दिखाई दे रही है, वह कभी नष्ट हो चुकी होती।

जालियाँ वाले हत्याकांड को जब तक याद रहेगी तब तक जनरल डायर का डरावना चेहरा भारतीय प्रजा के मस्तिष्क से न उतरेगा पर बहुत कम लोग जानते होंगे कि डायर को भी अपनी करनी का फल वैसे ही मिला जैसे सहस्त्रबाहु, खर-दूषण, वृत्रासुर आदि को।

हंटर कमेटी ने उसके कार्यों की सार्वजनिक निन्दा की, उससे उसका मन अशान्त हो उठा। तत्कालीन भारतीय सेनापति ने उसके किये हुए काम को बुरा ठहराकर त्यागपत्र देने का आदेश दिया। फलत: अच्छी खासी नौकरी हाथ से गई, पर इतने भर को नियति की विधि-व्यवस्था नहीं कहा जा सकता। आगे जो हुआ, प्रमाण तो यह है, जो यह बताता है कि मरने के फल विलक्षण और रहस्यपूर्ण ढंग से मिलते हैं।

सन् १९२१ में जनरल डायर को पक्षाघात हो गया, उससे उसका आधा शरीर बेकार हो गया । प्रकृति इतने से ही सन्तुष्ट न हुई, फिर उसे गठिया हो गया। उसके मित्र उसका साथ छोड़ गये। चलना-फिरना तक दूभर हो गया। ऐसी ही स्थिति में एक दिन उसके दिमाग की नस फट गई और फिर लाख कोशिशों

के बावजूद वह ठीक नहीं हुई। डायर सिसक-सिसक कर तड़प-तड़प कर मर गया अन्तिम शब्द उसके यह थे-

'जो अपने को मुझ जैसा चतुर और अहंकारी मानते हैं, जो कुछ भी करते न डरते हैं न लजाने हैं, उनका क्या अन्त हो सकता है? यह किसी को जानना हो तो इन प्रस्तुत क्षणों में मुझसे जान ले।' डायर का यह स्वगतालाप उसके भीतर बैठे न्यायाधीश का ही निर्णय वाचन था।

"डा० वारमन विन्सेंट पीले" अमेरिका के गिरजों के परामर्शदाता मन्त्री थे और मनोवैज्ञानिक चिकित्सक भी। अपने जीवन में उन्होंने सैकड़ों पीड़ित व्यक्तियों का मानसोपचार किया। विश्लेषण में उन्होंने यह पाया कि रोग-शोक और कुछ नहीं, पूर्व कृत बुरे कर्मों का ही परिणाम होता है। मस्तिष्क में जड़ जमाये हुए काम, क्रोध, लोभ, चोरी के भाव, व्यभिचार आदि शरीर में अपनी सहायक ग्रन्थियों से एक प्रकार का रस (जिसे विष कहना उपयुक्त होगा) स्रावित करते रहते हैं, बीमारियों और व्याधियों का कारण यह स्रावित रस ही होता है, जिसका मूल व्यक्ति के दुर्भाव, दुर्गुण और दुष्कर्म होते हैं।

कर्मों की गति यद्यपि विचित्र है मानवीय दृष्टि से यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि किस पाप का परिपाक कहाँ जाकर होगा। उसका फल कब मिलेगा। चोरी करने वाले को तत्काल कोई दण्ड नहीं मिलता, व्यभिचार करने वाला उस समय पकड़ में नहीं आता, पर इन कर्मों का फल कालान्तर में प्रकृति जन्म रूप में उसी प्रकार मिलता है, जिस तरह मक्का का फल दो महीने, जौ, गेहूँ सात महीने में और अरहर के बीज का फल दस महीने में। पर प्रत्येक कर्म का फल मिलता अवश्य है।

पूर्वजन्म में किये हुय पाप व्यक्ति को रोग बनकर सताते हैं, इसका उल्लेख आयुर्वेद में आता है कि- "पूर्वजन्म कृतं पापं व्याधि रूपेण पीड़ति"। आज के भौतिकवादी युग में यह बातें कुछ असम्भाव्य लगती हैं पर अब मनोविज्ञान का एक पक्ष ऐसा भी उभर रहा है, जिसने अनेक तथ्यों की खोज के आधार पर यह मानना प्रारम्भ कर दिया है कि इस जन्म के रोग-शोक पूर्वजन्मों या जीवन के दुष्कर्म का फल होता है।

अमेरिका में एक बहुत बड़े क्लीनिक डा० सी० डब्लू० लेब हुए हैं। उनके पास एक ऐसा रोगी आया करता था, जो आये दिन एक नये रोग की शिकायत किया करता था। कभी सिर दर्द, कभी डिसेन्टरी, कभी तनाव, कभी थकावट डाक्टर ने हारकर एक दिन कह दिया- लगता है, तुम कोई ऐसा काम कर रहे हो, जिसके लिए तुम्हें अपनी आत्मा को दबाना पड़ता है। कोई पाप कर रहे हो उसी के कारण तुम्हारे भीतर से रोग फूटते रहते हैं। पहले तो वह इनकार करता रहा पर बाद में उसने स्वीकार किया कि उसका एक भाई किसी दूसरे देश में रहता है। जब पिता जीवित थे तो वे यह व्यवस्था कर गये थे कि उसकी जायदाद का समान भाग दोनों को मिलता रहे पर उक्त सज्जन अपने भाई को थोड़े से डालर भेजते थे शेष स्वयं हड़प कर जाते थे।

जब अपना सारा पाप बयान कर चुके तो उन सज्जन ने बड़ा हल्कापन अनुभव किया, उसी दिन उसने अब तक भाई के हिस्से की जितनी धनराशि थी, वह सब भेज दी साथ में पूर्वकृत पाप के लिए क्षमा भी माँगी। इसके बाद उन्हें किसी शारीरिक पीड़ा ने कष्ट नहीं दिया। इससे क्लेशों, कष्टों के सूक्ष्म आधार स्पष्ट होते हैं।

कुसंस्कारों का परिपाक कष्टों के रूप में

जैसे-जैसे हम स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश करते हुए आगे बढ़ रहे हैं, वैसे-वैसे हमें संकटों और अभावों के वास्तविक कारणों को समझने में सुविधा मिल रही है। मोटी बुद्धि सदा संकटों का कारण बाहर ढूँढ़ती है। व्यक्तियों, परिस्थितियों पर ही प्रस्तुत विपन्नताओं का दोष थोपकर चित्त हलका करने की विडम्बना चलती रहती है। समझदारी बढ़ने पर ही यह पता चलता है कि घटिया व्यक्तित्व ही बिछड़ेपन से लेकर समस्त संकटों के घाट हैं। मन: स्थिति के अनुरूप परिस्थिति बनती है उसे विचारशील ही स्वीकार करते हैं अन्यथा आमतौर से कठिनाइयों के कारण बाहर ही ढूँढ़े जाते हैं। गहराई में प्रवेश किये बिना न तो वास्तविकता जानी जा सकती है और न उनके निवारण का कारगर उपाय ही बन पड़ता है। व्यक्तित्व का घटियापन सूझ ही न पड़े- उनके सुधारक की कोई योजना बने ही नहीं तो परिस्थितियों की विपन्नता का समाधान हो नहीं सकता। वे एक से दूसरा रूप बदलती रहेंगी।

बहुत समय पहले शारीरिक रोगों को बाहरी भूत-पलीतों का आक्रमण माना जाता था। पीछे बात, पित्त कफ का ऋतु प्रभाव का कारण उन्हें माना गया। उसके बाद रोग कीटाणुओं के आक्रमण की बात समझी गयी। रोगों की शोधों में अगला चरण यह बना कि आहार की विकृति से पेट में सड़न पैदा होती है और उस विष से रोग उत्पन्न होते हैं। यह क्रम अधिकाधिक गहराई में प्रवेश करने का- अधिक बुद्धिमत्ता का- स्थूल से सूक्ष्म में उतरने का है। इस प्रगतिक्रम में उतरते-उतरते इन दिनों आरोग्य शास्त्र के मूर्धन्य क्षेत्र में इस तथ्य को खोज निकाला गया है कि शारीरिक रोगों के सन्दर्भ में आहार-विहार, विषाणु, आक्रमण आदि को तो बहुत ही स्वल्प मात्रा में दोषी ठहराया जा सकता है। रुग्णता का असली कारण व्यक्ति की मन: स्थिति है।

मनोविकारों की विषाक्तता यदि मस्तिष्क पर छाई रहे तो उसका अनुपयुक्त प्रभाव नाड़ी संस्थान के माध्यम से समूचे शरीर पर पड़ेगा। फलतः दुर्बलता और रुग्णता का कुचक्र बढ़ते-बढ़ते अकाल मृत्यु तक का संकट खड़ा कर देगा। नये अनुसंधान जीवनी शक्ति का केन्द्र हृदय को नहीं मस्तिष्क को मानते हैं। रक्त की न्यूनाधिकता या विषाक्तता को रुग्णता का उतना बड़ा कारण नहीं माना जाता जितना कि मानसिक अवसाद एवं आवेश को।

इन शोध प्रयासों में नये-नये तथ्य सामने आये हैं। उनसे पता चलता है कि शरीर की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष क्रियाओं पर पूरी तरह मानसिक अनुशासन ही काम करता है अचेतन मन की छत्र-छाया में रक्ताभिषरण आकुँचन प्रकुँचन, श्वास-प्रश्वास, निमेष-उन्मेष, ग्रहण-विसर्जन, निद्रा-जागृति आदि की अनैच्छिक कहलाने वाली क्रियाऐं चलती रहती हैं। चेतन मन के द्वारा बुद्धिपूर्वक किये जाने वाले क्रिया-कलापों और लोक व्यवहारों का ताना-बाना बुना जाता है। शरीर की परोक्ष और प्रत्यक्ष क्षमता पूरी तरह अचेतन और चेतन कहे जाने वाले मन:संस्थान के नियंत्रण में रहती है, उसी के आदेशों का पालन करती है। शरीर का पूरा-पूरा आधिपत्य मन मस्तिष्क के ही हाथों मे रहता है। उस क्षेत्र की जैसी भी कुछ स्थिति होती है। उसका प्रभाव शरीर पर पड़ता है। यदि मस्तिष्क आवेशग्रस्त होगा तो शरीर के अवयवों में उत्तेजना और बेचैनी छाई रहेगी। इस स्थिति में ऐसे रोग उत्पन्न होंगे जिनसे शरीर के उत्तेजित होने, गरम होने, फटने-फूटने जैसे अनुभव होने लगेंगे। यदि मस्तिष्क उदास-हताश, शिथिल हो जायेगा तो उस अवसाद का प्रभाव अंग अवयवों की दुर्बलता के रूप में देखा जा सकेगा।

यह मोटा निष्कर्ष हुआ। बारीकी में उतरने पर पता चलता है कि अमुक शारीरिक रोग, अमुक मनोविकार के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं और वे तब तक बने ही रहते हैं जब तक कि मानसिक स्थिति में कारगर परिवर्तन न हो जाय। इस अनुसंधान ने उस असमंजस को दूर कर दिया है जिसके अनुसार रोगियों को चिकित्सकों के दरबाजे पर ठोकरें खानी पड़ती हैं। नित नई दवाऐं बदलनी पड़ती हैं किन्तु आशा-निराशा के झूले में झूलते हुए समय भर बीतता रहता है। रोग हटने का नाम ही नहीं लेते। तेज औषधियाँ अधिक से अधिक इतना कर पाती हैं कि बीमारी के स्वरूप और लक्षण में थोड़ा-बहुत फेर बदल प्रस्तुत कर दें। जीर्ण रोगियों में से अधिकांश का इतिहास यही है। जिससे औषधि उपचाक की निरर्थकता ही सिद्ध होती रहती है। आहार-विहार जन्य साधारण रोग तो शरीर का निरोधक जीवनी शक्ति ही अच्छे करती रहती है। उसी का श्रेय चिकित्सकों को मिल जाता है। सच्चाई तो यह है कि एक भी छोटे या बड़े रोग का शर्तिया इलाज अभी तक संसार के किसी भी कोने में किसी भी चिकित्सक के हाथ नहीं लगा हैं। कोई भी औषधि अपने आश्वासन को पूरा कर सकने में सफल नहीं हुई है। अंधेरे में ढेले फेंकने जैसे प्रयास ही चिकित्सा क्षेत्र में चलते रहते हैं, उसी भगदड़ में कभी-कभी किसी अन्धे के हाथ वटेर लग जाती है यदि ऐसा न होता तो कम से कम चिकित्सकों को खुद तो रुग्ण रहना ही न पड़ता और उनके घर वाले सम्बन्धी तो बीमारियों से ग्रसित नहीं ही रहते। देखा यह गया है कि दवाओं की भरमार बीमारियों को घटाती नहीं वरन् उस नई विषाक्तता के शरीर में घुस पड़ने से नये-नये उपद्रव और खड़े होते हैं। सच तो यह है कि चिकित्सकों के शरणागत रहने वालों की अपेक्षा वे कहीं अधिक नफे में रहते हैं जिन्हें चिकित्सा का सौभाग्य या अभिशाप प्राप्त कर सकने का अवसर ही नहीं मिल सका।

शरीर शास्त्री अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आरोग्य और रुग्णता की कुञ्जी मन:क्षेत्र में सुरक्षित है। मानसिक असन्तुलन और प्रदूषण का निराकरण किये बिना किसी को भी स्वस्थ शरीर का आनन्द नहीं मिल सकता। जीवनी शक्ति का पिछले दिनों बहुत गुणगान होता रहा है। उसे प्राप्त करने के लिए आकाश-पाताल के कुलावे भी मिलाये जाते रहे हैं। टानिकों, हारमोन, और ग्रन्थि आरोपणों जैसे प्रयोग परीक्षणों की भरमार रही है। किन्तु गरीबों की बात तो दूर कोट्याधीश, शासनाध्यक्ष एवं स्वयं चिकित्सकों तक को उस प्रयास में कुछ पल्ले न पड़ा। अब यह निर्णय निकला है कि जीवनी शक्ति कोई शरीर गत स्वतन्त्र क्षमता नहीं है वरन् जिजीविषा की मानसिक प्रखरता ही अपना परिचय जीवनी शक्ति के रूप में देती रहती है। मानसिक स्थिति के उतार -चढ़ावों के अनुरूप यह जीवनी शक्ति भी घटती-बढ़ती रहती है। शरीर की बलिष्ठता, सक्रियता, स्फूर्ति ही नहीं कोमलता, सुन्दरता और कान्ति तक मानसिक स्थिति पर अवलम्बित है। विपन्नता की मन:स्थिति में भय, शोक, क्रोध आदि के अवसर आने पर तो तत्काल आकृति से लेकर शरीर की सामान्य स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ते प्रत्यक्ष देखा जाता है। यदि मनोविकार जड़ जमा लें तो समझना चाहिए कि शरीर एक प्रकार से विपन्नता में फँस ही गया और उस दलदल से निकल सकना चिकित्सा उपचार के बल-बूते की बात भी नहीं रह गयी है।

अब आरोग्य दशा और रोग निवृत्ति की दोनों ही आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मन: संस्थान की खोज-बीन करना आवश्यक हो गया है और यह समझा जाने लगा है कि यदि मनुष्य के चिन्तन क्षेत्र में घुसी हुई विकृतियों की ओर ध्यान

नहीं दिया गया। वहाँ जमी हुई वितृष्णाओं और विपन्नताओं का समाधान न किया गया तो आहार-विहार का सन्तुलन बनाये रहने पर भी रुग्णता से पीछा छूट नहीं सकेगा। चिकित्सा उपचार से भी मन बहलाने के अतिरिक्त और कुछ प्रयोजन सिद्ध हो नहीं सकेगा। अब क्रमश: औषधि उपचार का महत्व घटता जा रहा है और मानसोपचार को प्रमुखता दी जा रही है। मानसिक बीमारियों की पिछले दिनों अलग से गढ़ना होती रही है और उसका क्षेत्र अलग रहा है। अब नये शोध प्रयोजनों ने कुछ दुर्घटना जैसे आकस्मिक कारणों से उत्पन्न होने वाले रोगों को ही शारीरिक माना है और लगभग समस्त बीमारियों को मन:क्षेत्र की प्रतिक्रिया घोषित किया है। गहरी खोजों के फलस्वरूप आरोग्य जैसे मानवी-जीवन के अति महत्त्वपूर्ण प्रयोजन पर नये सिरे से विचार करना होगा और आहार-विहार के ही गीत न गाते रहकर यह देखना होगा कि मनस्विता बनाये रहने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है ?

मानसिक विकृतियों में से सामयिक उलझनों के कारण तो बहुत थोड़े-से ही होते हैं। अधिकतर उनका कारण नैतिक होता है। छल, दुराव एवं ढोंग, पाखण्ड के कारण मनुष्य के भीतर दो व्यक्तित्व उत्पन्न हो जाते हैं। एक वास्तविक दूसरा पाखण्डी। दोनों के बीच भयंकर अन्तर्द्वन्द्व खड़ा रहता है। दोनों एक-दूसरे के साथ शत्रुता बनाये रहते हैं और विरोधी को कुचलकर अपना वर्चस्व बनाने का प्रयत्न करते हैं। यह देवासुर संग्राम सारे मन: क्षेत्र को अशान्त उद्विग्न बनाये रहता है। इस विग्रह के फलस्वरूप अनेकों रोग उठ खड़े होते हैं और वे वैसे ही मानसिक स्थिति बने रहने तक हटने का नाम नहीं लेते।

शारीरिक रोग प्रत्यक्ष होते हैं। इसलिए उनकी जानकारी भी सहज ही मिल जाती है और दवा दारु से इनका इलाज होने के भी साधन मौजूद रहते हैं। मानसिक रोगों के प्राय:विक्षिप्त स्तर के ऐसे लोग गिने जाते हैं जो अपना सामान्य काम-काज चला सकने में असमर्थ हो गये हों, जिनका शरीर निर्वाह और लोक व्यवहार लड़खड़ाने और अटपटाने लगा हो जो अपने लिए और साथी सम्बन्धियों के लिए भार बन गये हों। ऐसे रोगियों की संख्या भी लाखों से आगे बढ़कर करोड़ की संख्या अपने ही देश में छूने लगी है। यह विज्ञान विक्षिप्त हुए हैं। ऐसे लोगों की संख्या का कोई ठिकाना नहीं जो रोजी रोटी तो कमा लेते हैं और खाते सोते समय भी साधारण लगते हैं, पर उनका चिन्तन विचित्र और विलक्षण होता है। कितने ही दुष्टता की भाषा में सोचते और हर किसी पर दोषारोपण करते हुए शत्रुता की परिधि में लपेटते हैं। कितने ही आशंकाओं, सन्देहों, आक्षेपों के इतने अभ्यस्त होते हैं कि उन्हें अपनी पत्नी, बेटी, बहिन आदि तक के चरित्र पर अकारण सन्देह बना रहता है। सम्बन्धियों और पडोसियों को अपने विरुद्ध कुचक्र रचते हुए देखते हैं। दुर्भाग्य और ग्रह नक्षत्रों के प्रकोप से कितने ही हर घड़ी काँपते हैं और विपत्ति का पहाड़ अपने ऊपर टूटता ही अनुभव करते हैं। शेख चिल्लयों के से मनसुवे बाँधते रहने वाले, सम्भव , असम्भव का विचार किये बिना अपने सपनों की एक अनौखी दुनिया बनाये बैठे रहते हैं। न अपनी पटरी दूसरों के साथ बिठा पाते हैं न किसी और को अपना घनिष्ठ बनने का अवसर देते हैं। परिस्थिति का मूल्यांकन कर सकना दूसरों की मन:स्थिति और परिस्थिति समझ सकना उनके लिए सम्भव ही नहीं होता। अटपटे अनुमान लगाते ओर बेतुके निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। विचार जो भी उठें वे एक पक्षीय सनक की तरह बिना किसी तर्क-वितर्क का आश्रय लिए बेलगाम के घोड़े पर चढ़कर दौड़ते चले जाते हैं। जो सोचा जा रहा है उसका आधार क्या है ? और उस सनक पर चढ़े रहने का अन्तत: परिणाम क्या निकलेगा इतना समझ पाना उनके क्षत-विक्षत मस्तिष्क के लिए सम्भव ही नहीं होगा। अकारण मुँह लटकाये बैठे रहने वाले, जिस-जिस पर दोषारोपण करने वाले- दुर्भाग्य की कुरूप तस्वीरें गढ़ने में उन्हें देर नहीं लगती। दुनिया की निस्सार बताने वाले आत्महत्या की बात सोचते रहने वालों की संख्या अपने ही ईर्द-गिर्द ढेरों मिल सकती है। हँसी-खुशी से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। कहीं न कहीं से मुसीवत की कल्पना ढूँढ़ लाते हैं और स्वयं दु:ख पाते, साथियों को दु:ख देते- जिन्दगी की लाश ढोते रहते हैं। यह सनक कभी-कभी आक्रामक हो उठती है तो जो भी उसकी चपेट में आता है.उसे सताने में कसर नहीं छोड़ते। मित्र को शत्रु को शत्रु और मित्र समझने में उनकी अदूरदर्शिता पग पग पर झलकती रहती है। ठगों के आये दिन शिकार होते रहते हैं। आयु बड़ी हो जाने पर भी सोचने का तरीका बालकों जैसा ही बना रहता है। किसी महत्त्वपूर्ण प्रसंग में उनका परामर्श तनिक भी काम का सिद्ध नहीं होता। अपनी कार्य पद्धति को किसी उद्देश्य के साथ जोड़ सकना उनसे बन नहीं पड़ता। जैसे-जैसे समय गुजारते हुए- ज्यों-त्यों करके ही मौत के दिन पूरे कर लेते हैं। इन्हें पागल तो नहीं कह सकते, पर व्यक्तित्व की परख की दृष्टि से उससे कुछ अच्छी स्थिति में भी उन्हें नहीं समझा जा सकता।

विक्षिप्त, अर्ध विक्षिप्त और विक्षिप्तता के सन्निकट-सनकी लोगों से प्राय: आधा समाज भरा पड़ा है। मूढ़ मान्यताओं-कुरीतियों, अन्धविश्वासों से जकड़े हुए लोगों में तर्क शक्ति एवं विवेक बुद्धि का अभाव रहता है। उनके लिए अभ्यस्त ढर्रा ही सब कुछ होता

है। उस लक्ष्मण रेखा से बाहर जाने में उन्हें भय लगता है। स्वतन्त्र चिन्तन का प्रकाश उनकी आँखें चौंधिया देता है और औचित्य को समझने स्वीकार करने का साहस ही नहीं पड़ता। यह सुसंस्कार हीनता का, अविकसित एवं विकृत व्यक्तितत्व का ही परिणाम है। अध्यात्म विज्ञानी मन: संस्थान की इस विकृति को पाप कर्मो की परिणति बताते हैं और कहते हैं कि तपश्चर्या द्वारा जब तक उस मलिनता को जला-गला कर स्वच्छ नहीं कर लिया जाता तब तक उससे उबर पाना संभव नहीं। मनोवैज्ञानिकों का भी लगभग वैसा ही मत है। शरीर शास्त्री भी लम्बे शोध-अनुसंधान के बाद अब उसी निष्कर्ष के निकट पहुँचते जा रहे हैं।

एकबार इग्लैण्ड के डाक्टरों ने एक प्रयोग किया। एक बन्दर के एड्रिनल में "मेडुलरी भाग" में हलकी-सी विद्युत् करेन्ट प्रवाहित करके देखा कि उससे " एड्रिलीन" हारमोन के स्राव की मात्रा बहुत बढ़ गई उस समय बन्दर की मुख मुद्रा में भयानक क्रोध के लक्ष्यण उभर आये। फिर उन्होंने कुछ तीव्र रसायनों द्वारा उस भाग को "शून्य" कर दिया और तब फिर विद्युत करेन्ट प्रवाहित किया तब "एड्रिलीन" बहुत थोड़ा निकला। बन्दर उस समय कुछ ज्यादा क्रोधित भी नहीं हुआ। इसके साथ एक ऐसे व्यक्ति का परीक्षण किया गया जिसने किसी महिला के पर्स की चोरी करली थी। उस समय वह अत्यन्त भयभीत था कि कहीं पुलिस पकड़ न ले और उसे पीटा न जाये। डाक्टरों ने उसकी जाँच की तो पाया कि उसका सारा केन्द्रीय नाड़ी संस्थान उत्तेजित है और उससे शरीर के पूरे यन्त्र (मेटा बोलिज्म) पर असर पड़ रहा है ऐसे समय तीव्र असर वाली बीमारियों होने की सम्भावना डाक्टरों ने भी स्वीकार की। चिन्ता व शोक् की स्थिति में " थैलमस" फोलिकल स्टेमुलेटिंग हारमोन रिलीजिंग फैक्टर" में कमी हो जाने आदि के उदाहरण से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि बुरी भावनाएँ मनुष्य शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव निश्चित रूप से डालती हैं। वही रोग के रूप में उत्पन्न होते हैं इसलिए यदि रोग से स्थायी बचाव करना है तो अपने मनोमय संस्थान को शुद्ध रखना ही पड़ेगा। साथ ही साथ अब तक जो मलिनताएँ मन में भर गई हैं उन्हें प्रायश्चित द्वारा परिमार्जित करना ही होगा जब तक मनुय्य इन्हें स्वीकार नहीं करता वह अन्तर्दहन से बच नहीं सकता।

"हारमोन्स" क्या है" और उनका मनुष्य शरीर से क्या सम्बन्ध है ? यह समझने से उक्त तथ्य गहराई में प्रवेश किया जा सकता है। मनुष्य शरीर में दो प्रकार की ग्रन्थियाँ (ग्लैण्ड्स) होती हैं। ग्रन्थियाँ एक ऐसे कोशों (सेल्स) के समुदाय को कहते हैं जो किसी गाँठ की शक्ल में बदल जाते हैं और जिनसे तरल रासायनिक स्राव निकलता रहता है इस स्राव को ही "हारमोन्स" कहते हैं। एक ग्रन्थियाँ वह होती हैं जिनका सम्बन्ध नलिकाओं द्वारा शरीर से होता है दूसरी नलिका विहीन (डक्टलेस ग्लैण्ड्स) वह होती हैं जिनका सम्बन्ध नलिकाओं से नहीं होता वे स्राव मस्तिष्क की गति -विधि के अनुसार निकालती और मनुष्य शरीर पर प्रभाव डालती हैं। यही सर्वाधिक महत्व की हैं अभी वैज्ञानिक इनके बारे में पूर्णतया नहीं जान पाये। जब जानेंगे तब पूर्व जन्मों के संस्कार, पुनर्जन्म आदि के कितने ही आश्चर्यजनक तथ्य सामने आयेंगे ऐसा अनुमान है। हम नहीं जानते पर अब विज्ञान यह बताने लगा है कि मनुष्य की अच्छी-बुरी भावनाओं के द्वारा ही अच्छे या बुरे हारमोन्स शरीर में स्रवत होकर रासायनिक सन्तुलन या विकृत उत्पन्न करते हैं। नलिका विहीन ग्रन्थियों (डक्टलेस ग्लैण्डड्स) में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थि "पिचुट्री" होती है। इसका स्थान मस्तिष्क के प्रति-पृष्ठीय भाग (विन्ट्रल साइड) में "आप्टिक कैजमा" अर्थात् दोनों आँखों को मिलाने वाले स्थान पर ललाट के पीछे होता है। इसका मन से सीधा सम्बन्ध होता है इसलिए मन में उठने वाली हर तरंग इनको प्रभावित करती है और यदि वह तरगें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, कादर्य, चोरी, तृष्णा जैसी हुई तो उनका विकारों के अनुरूप तीव्र प्रभाव इन ग्रन्थियों पर पड़ता है और तब स्राव की मात्रा बहुत अधिक निकल जाती है और उसका शरीर पर विषाक्त प्रभाव पड़ता है साथ ही भविष्य के लिऐ रासायनिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। इससे अच्छा स्वस्थ और खाता-पीता दीखते हुए भी व्यक्ति भीतर ही भीतर घुटन, असन्तोष अनुभव करता और कुछ दिन में किसी खास-रोग का शिकार हो जाता है। यह मनोविकार अचेतन मन से निसृत होते रहते हैं कई बार न चाहते हुए भी बुरी वासनाएँ और मनोविकार उठ खड़े होते हैं वह पूर्व जन्मों के ज्ञात-अज्ञात कर्मो के ही स्पन्दन होते हैं हम अपने संशोधन की क्रिया छोड़ देते हैं इसीलिए वह विकार रोग बनकर फूटते रहते हैं। दवा से रोग दब तो जाते हैं पर उसका पूर्ण उपचार तभी हो पाता है जबकि निरन्तर उठने वाले मन के बुरे विचारों का शमन हो और उसके स्थान पर अच्छे अच्छे विचारों की स्थापना हो। भारतीय पश्चाताप पद्धतियाँ यही करती हैं और इसीलिए उनका आत्म-विकास से गहन सम्बन्ध माना गया है। पाप का प्रायश्चित किये बिना कोई ईश्वरीय दिव्य शक्तियाँ प्राप्त नहीं कर सकता वह इसी तथ्य का प्रतीक बोध है।

पिचुट्री ग्रन्थि तीन भागों में विभक्त होती हैं (१) एन्टीरियर पिचुट्री (२) मिड पिचुट्री (३) पीस्टीरियर पिचुट्री। एण्टीरियर

पिचुट्री से एफ. एस. एच. (फोलिकिन स्टेमुलेटिंग हारमोन्स) निकलते हैं और गर्भाशय प्रजनन कोशों आदि पर प्रभाव डालते हैं। दूसरा एल० एच० (यूटी लाइजिंग हारमोन) यह कामोत्तेजक हारमोन है और इसकी विकृति उपदेश, प्रमेह आदि रोग पैदा करती है। तीसरे टी० एस० एच (थापराइड स्टेमुलेटिंग हारमोन) से थायराक्सीन नामक स्राव निकलता है जो गले आदि को प्रभावित करता है। रक्त, क्षार, लवण आदि का सन्तुलन यही रखता है। उसकी विकृति से ही घेंघा आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।(४) प्रोलेक्टीन (५) एड्रिनल स्टेमुलेटिंग हारमोन्स भी यहीं से निकलते हैं अभी इनके सम्बन्ध में कुछ सन्तोषजनक खोजें हो नहीं पाई। मिड पिचुट्री से एम० एस० एच० (मेलन आफर्स) हारमोन निकलता है। यह त्वचा और शरीर के रंग रूप को प्रभावित करता है। पोस्टीरियर पिचुट्री के (१) "आक्सीटोसीन" से पेशाव पर नियन्त्रण होता है इसकी त्रुटि से मूत्र रोग हो जाते हैं। (२) वासोप्रेसीन का सम्बन्ध गर्भवती स्त्रियों से होता है। गर्भावस्था में सन्तुलित न रहने वाली महिलाओं का वासोप्रेसीन गड़बड़ होकर बीमारियाँ पैदा करता है।

इसी तरह {१} थायराइड, {२} एड्रिनल, {३} पैंक्रियास, {४} पैराथायराइड जैसे ग्रन्थियों से निकलने वाले अनेकानेक रसस्रावों एवं एस्ट्रोजेन, प्रोजेन्ट्रान आदि हारमोन्स का पता चला है और डाक्टरों ने इन पर गम्भीर खोजें की हैं और उनके द्वारा शारीरिक व्यवस्था के अनेक आश्चर्यजनक तथ्य ढूँढ़ निकाले हैं। अभी प्रत्येक मनोभाव का अलग-अलग विश्लेषण तो नहीं किया जा सका पर इस सत्यता में कोई अविश्वास नहीं रह गया कि मानसिक आवेगों का इनसे गहरा सम्बन्ध है और मानसिक विकृति के कारण इनमें विकृति उत्पन्न होती और रोग पैदा करती है। यह विकृति मनुष्य को और प्रचण्ड पाप की प्रेरणा देती और उसे कर डालने के लिए निरन्तर उकसाती-उभारती रहती है। इस प्रक्रिया में हारमोन्स का अति वृष्टि जैसा स्राव मनुष्य जीवन के लिए इतना घातक हो सकता हैं कि मस्तिष्क में अपना स्थायी प्रभाव बनाकर जन्म-जन्मान्तरों तक दुःख देता रहे।

विज्ञान की भाषा में इसे अन्तःस्रावी तंत्र की गड़बड़ी कहा जा सकता है, पर अध्यात्म तत्वज्ञान की दृष्टि में इसको दुरित का दुष्परिणाम ही कहना पड़ेगा।

संचित पाप कर्मः संकटों के कारण

शारीरिक रोग मानसिक विक्षेप, दरिद्रता, दुर्घटना, अकाल मृत्यु-विपत्ति, संकट आदि अनेकों आकस्मिक आपत्तियों के कारण प्रायः पूर्व संचित पाप ही होते हैं। उनका कारण मात्र व्यवहार व्यतिक्रम ही नहीं होता वरन् संचित पाप प्रारब्ध की भी बहुत बड़ी भूमिका होती है। मरने के उपरान्त नरक, प्रेतयोनि, निकृष्ट योनियों में जन्म जैसी दुर्गतियों का कारण भी यह कुसंस्कारी संचय ही होता है। शास्त्र कहता है-

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा ।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः।।

पाप से व्याधि, वृद्धत्व, दीनता, दुःख और भयंकर शोक की प्राप्ति होती है। छोटे और बड़े पापों के क्रम से छोटे और फल प्राणी को भोगने पडते हैं।

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्।
दारिद्रयदुःखरोगानि बन्धनव्यसनानि च ।।२।।

-चाणक्य

मनुष्यों को अपने अपराध रूपी वृक्ष से दरिद्रता, रोग , दुःख, बन्धन और विपत्ति आदि फल मिलते हैं।

उभयमेव तत्रोपयुज्यते फलं धर्मस्यैवेतरस्य च।।

-महाभारत

राजन्! धर्म और पाप दोनों के पृथक्-पृथक् फल होते हैं और उन दोनों का ही उपभोग करना पड़ता है।

आचराल्लभते ह्यायुराचारदीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारों हन्त्यलक्षणम्।।
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितीऽल्पायुरेव च।।

-मनु०

श्रेष्ठ आचरण का जीवन जीने वाला दीर्घजीवी होता है। श्रेष्ठ सन्तान पाता और सम्पन्नता प्राप्त करता है। बुरों को भी सुधार देता है।

दुराचारी निन्दित होता है। दुःख भोगता है। अल्पजीवी होता है। रोगी रहता है।

इतना जब जान लेने के उपरान्त हमें एक ही निश्चय निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि चेतना की मूल सत्ता अन्तःकरण को प्रभावित करने वाले नैतिक और अनैतिक विचार एक कर्म ही हमारी भली और बुरी परिस्थितियों के लिए पूर्णतया उत्तरदायी हैं। इसी उद्गम से हमारे उज्ज्वल भविष्य का आधार खड़ा होता है और यहीं से विपत्तियों के जाल गिराने वाली दुःखद सम्भावनायें विनिर्मित होती हैं। इस मूल केन्द्र का परिशोधन करना ही एक प्रकार से आन्तरिक काया-कल्प जैसा प्रयास है। प्रस्तुत संकटों से छुटकारा पाने और निकट भविष्य में फलित होने वाले संचित प्रारब्धों का निराकरण करने के लिए आन्तरिक परिशोधन का प्रयास इतना अधिक आवश्यक है कि उसे अनिवार्य की संज्ञा दी

जा सकती है और कहा जा सकता है कि विष वृक्ष की जड़ काटने से ही काम चलेगा। टहनियाँ तोड़ने और पत्तियाँ गिराने से स्थायी समाधान बन नहीं पड़ेगा।

जो लोग साधारण क्षमा प्रार्थना, स्रोत पाठ, कथा कीर्तन, स्नान-दर्शन जैसे छुट-पुट कर्मकाण्डों के सहारे कर्म फल के विधान को झुठला देने की बात सोचते हैं वे भूल करते हैं इतने सस्ते में यदि यह विधि-व्यवस्था उलट जाया करे तो फिर उसे उपहासास्पद ही माना जायेगा। इतनी सस्ती तरकीब भिड़ाकर तो कोई भी दुष्कर्म के दण्ड से बच जाया करेगा और निर्भयतापूर्वक अपनी दुष्वृत्तियों को दुहराया करेगा। भाग्य विधान को सुनिश्चितता के साथ-साथ ईश्वरीय व्यवस्था के उच्च नियमों के आधार पर उनमें परिवर्तन तो हो सकता है, पर वह परिवर्तन कारी उपक्रम भी इतने सरला और सस्ते नहीं हो सकते जैसे कि आज धर्मोपदेशकों द्वारा बातये जाते हैं। तनिक-तनिक से कर्म क़ाण्डों से एक नहीं सैंकड़ों जन्मों के पाप दूर होने के महत्व आये दिन सुने जाते हैं। गंगा स्नान से लेकर सत्यनारायण कथा सुनने तक की सरल प्रक्रिया मात्र से सैकड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाने की जन श्रुतियाँ आये दिन सुनने को मिलती हैं। परिशोधन विधान को इतना सस्ता कर देने से तो उसका मखौल ही बन जायेगा। परलोक पुनर्जन्म में कठोर कर्मफल मिलने तक की बात का भी मजाक हो जायेगा। सम्भव है उन कर्मकाण्डों का महत्त्व बढ़ाने के लिए पाप नाश होने की बात कही गई हो, पर कहने वालों ने यह तो भुला ही दिया कि इसमें पाप दण्ड का भय ही समाप्त हो जायेगा और जीवन में धर्मधारण के महत्व को समझाने के स्थान पर उलटे उपेक्षा होने लगेगी और अधर्म पनपेगा। जो हो यह मान्यता किसी भी कसौटी पर सही नहीं बैठती कि छुट-पुट कर्मकाण्डों से ही बड़े-बड़े पापों का दण्ड भुगतने से छूट मिल जायेगी। अधिक से अधिक इतना कहा जा सकता है कि पाप प्रवृत्ति में परिशोधन होगा। पाप न करने की आस्था जगेगी। इतने भर को पाप निवृत्ति कहा जाय तो उसे सारगर्भित कहा जा सकता है। पाप में प्रवृत्ति से छुट-पुट पूजा-पत्री द्वारा भी छुटकारा पाने की बात समझ में आ सकती है, पर पाप दण्ड बच निकलने के लिए सस्ते धर्मोपचारों की असाधारण महिमा बताया जाना न केवल अत्युक्ति है वरन् उसके पीछे धर्माचरण की उपेक्षा का भी परोक्ष प्रतिपादन है। अत्युक्ति भले ही सदुद्देश्य से की गई हो अन्ततः उसकी प्रतिक्रिया अवांछनीय ही होती है।

साधारणतया समझाने-बुझाने की पद्धति ही सुधार परिवर्तन के लिए काम में लायी जाती है, पर देखा यह गया है कि भीतरी परतों पर जमे हुए कुसंस्कार इतने गहरे होते हैं कि उन पर समझाने बुझाने का प्रभाव बहुत ही थोड़ा पड़ता है। देखा जाता है कि नशेबाजी जैसी आदतों से ग्रसित व्यक्ति दूसरे अन्य समझदारों की तरह ही उस बुरी आदत की हानि स्वीकार करते हैं। दुःखी भी रहते हैं और छोड़ना भी चाहते हैं, पर उस आन्तरिक साहस का अभाव ही रहता है जिसकी चोट से उस अभ्यस्त कुसंस्कारिता को निरस्त किया जा सके। इस विवशता से कैसे छूटा जाय? इसका उपयुक्त उपाय सूझ ही नहीं पड़ता। लगता रहता है कि कोई दैवी दुर्भाग्य ऐसा पीछे पड़ा है जो विपत्ति से उबरने का कोई आधार ही खड़ा नहीं होने देता। पग-पग पर अवरोध ही खड़े करता और संकट पटकता भी वही दीखता है। यह दुर्भाग्य और कोई नहीं, अपने अन्तरंग पर छाये हुए कषायकल्मष कुसंस्कार ही हैं, जो अभ्यास और स्वभाव का अंग बन जाने के कारण छुड़ाये नहीं छूटते और पटक-पटक कर मारते हैं। नरक के यमदूतों जैसा त्रास देते हैं। इस विपन्नता को उलटने का समर्थ उपचार आन्तरिक परिशोधन ही है।

दुष्कर्मों के संगृहीत प्रतिफल को प्रारब्ध एवं भाग्य विधान को सुधारने और सरल बनाने के लिए भारतीय धर्म शास्त्रों में एकमात्र विधान प्रायश्चित्त का ही है। प्रायश्चित्त का एक सुविस्तृत तत्वज्ञान और सुनिश्चित विधि-विधान है। यों सस्तेपन की बचकानी घुस-पैठ ने इस क्षेत्र को भी अछूता नहीं छोड़ा है और प्राचीन विधि-विधानों को ओछी और बचकानी नकलें बनाकर उस महान प्रयोजन को भी उपहासास्पद ही बना दिया गया है। वस्तुतः प्रायश्चित्त विधान का वजन किये गये पाप कर्मों के फलस्वरूप मिलने वाले दण्ड के समतुल्य ही जा पहुँचता है। अन्तर थोड़ा-सा ही रह जाता है। किसी को चोरी करने पर पुलिस और अदालत द्वारा कठोर दण्ड जेल-दण्ड भुगतना पड़ता है या अपनी भूल स्वयं समझकर जिसकी चोरी की है उसके सामने दुःखी होते और जितना सम्भव है उतना लौटा देने से अपेक्षाकृत कम कष्ट सहने में काम चल जाता है यही बात प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में भी है भूल स्वीकार करने किये का पश्चात्ताप करने और भविष्य में वैसा न करने की भावभरी मनः स्थिति में अपराधी मनोवृत्ति का परिवर्तन का चिह्न है। यह चिह्न ही पाप दण्ड को हलका करने का प्रधान आधार होता है। उसके उपरान्त क्षति-पूर्ति का प्रश्न सामने आता है। जो हानि पहुँचाई गई है। अनाचरण से अन्तःकरण को कलुषित और वातावरण को दूषित करने का सदाचार बन पड़ा है। उसकी क्षतिपूर्ति दो प्रकार से हो सकती है एक तो अनाचार का जितना गहरा गड्ढा खोदा गया है पाटा जाय अर्थात् क्षतिपूर्ति कर सकना वर्तमान परिस्थितियों में जितना

कुछ सम्भव रह गया है उसे परा किया जाये उसके अतिरिक्त अन्तःकरण पर उन कुकर्मों के कुसंस्कार जमे हों उन्हें कुछ नये पुण्य कर्म करके सुसंस्कारों की नई स्थापना की जाय। जिनका श्रेष्ठ प्रभाव नये सिर से अन्तःकरण पर जमे और मलीनता की संचित परतों को हटा सकने में समर्थ बन सके। इसी नीति को अपनाने में समाज की पहुँचाई गई क्षतिपूर्ति भी सम्भव हो सकती है।

इन्हीं सब तत्वों का सम्मिश्रण प्रायश्चित्त विधान है। उसमें वे सिद्धान्त बीज रूप से मौजूद हैं जो अशुभ भाग्य विधान को काट सकने में, अन्धकारमय भविष्य की विभीषिका को निरस्त करने में समर्थ हो सकते हैं। अपराध कर्त्ता की इसी में शालीनता, सज्जनता और साहसिकता भी है। जिस दुस्साहस से प्रेरित होकर कुकर्म किये हैं उसी स्तर का सत्साहस जुटाने वाला ही अपने संचित दुष्प्रवृत्ति के विरुद्ध विद्रोह करते और उसके उन्मूलन में जुट जाने का उत्साहस कर सकता है। उस साहस में वीरता और शालीनता के चिह्न हैं। इसलिए उसका परिणाम परिवर्तनकारी-सुधार परायण एवं मंगलमय सिद्ध होता है तो यह उचित ही है।

प्रायश्चित्त का अर्थ गिड़गिड़ाना या सस्ते मोल में विधि-विधान से बच निकलना नहीं, वरन् क्षतिपूर्ति करना है। दुष्कर्मों से अपने अन्तःकरण की- विचार संस्थान की तथा काय कर्मों में जिस प्रकार दुष्प्रवृत्तियों से भर दिया गया था उसी साहस और प्रयास के साथ इन तीनों संस्थानों के परिमार्जन, परिशोधन एवं परिष्कार की प्रक्रिया को प्रायश्चित्त कहा गया है। पाप कर्मों से समाज को क्षति पहुँचती है। सामान्य मर्यादा प्रवाह में व्यवधान उत्पन्न होता है। लोक परम्परायें नष्ट होती हैं। अनेकों को कुमार्ग पर चलने के लिए अनुकरण का उत्साह मिलता है। जिन्हें क्षति पहुँची है वे विलाप करते हैं और उससे वातावरण विक्षुब्ध होकर सार्वजनिक सुख-शान्ति के लिए संकट उत्पन्न करता है। ऐसे-ऐसे अन्य अनेकों कारण हैं जिन्हें देखते हुए समझा जा सकता है कि जिसे पाप कर्म द्वारा क्षति पहुँचाई गई अकेले उसी की हानि नहीं हुई प्रकारान्तर से सारे समाज को क्षति पहुँची है। विराट् ब्रह्म को-विश्व मानव को ही परमात्मा कहा गया है। यह एक प्रकार से सीधा परमात्मा पर आक्रमण करना, उसे आघात पहुँचाना और रुष्ट करना हुआ। अपराध भले ही व्यक्ति या समाज के प्रति किये गये हों उनका आघात सीधे ईश्वर के शरीर पर पड़ता है और उसे तिलमिलाने वाले कभी सुखी नहीं रहते।

अवांछनीयताओं का तत्काल परिशोधन होता रहे। गन्दगी जमा न होने पाये यह उचित है। देर तक जमा रहने के उपरान्त गन्दगी की सड़न अधिकाधिक बढ़ती जाती है। शरीर में जमा हुआ विजातीय द्रव्य जितने अधिक समय तक ठहरेगा। उसी अनुपात से विष बढ़ता जायेगा और सामान्य रोगों की अपेक्षा उससे असाध्य बीमारी उपजेगी। पुराना कर्जा ब्याज समेत कई गुना हो जाता है। मनोमालिन्य बहुत समय तक टिका रहे तो वह द्वेष प्रतिशोध का रूप धारण कर लेता है। संचित पाप कर्मों के सम्बन्ध में भी यही बात है। उनका प्रतिफल भुगतने में जितनी देर होगी उतनी ही प्रतिक्रिया भयंकर होगी। नया अपच जुलाब की एक गोली से साफ हो जाता है किन्तु यदि कई दिन तक मल रुका रहे तो उसकी पत्थर जैसी कठोर गाँठें बनकर ऐसे भयंकर उदर शूल का कारण बनती हैं, जिसके लिए पेट फाड़ कर गाँठें निकालने के अतिरिक्त और कोई चारा ही शेष नहीं रह जाता है। गन्दगी को जितनी जल्दी हटाया जा सके उतना ही उत्तम है।

इस जन्म के विदित और स्मृत पापों से लेकर जन्म जन्मातन्रों तक के पापों का निराकरण आवश्यक है। उन्हें निकालना और निरस्त करना आवश्यक है। विष खा जाने की गलती का परिमार्जन इसी प्रकार हो सकता है कि पेट और आँतों की धुलाई करके वमन, विरेचन आदि द्वारा उसे जल्दी से जल्दी निकाल बाहर किया जाय। प्राण संकट उसी उपाय से टल सकता है। प्रायश्चित्त ही परिशोधन का एक मात्र उपाय है। नदी, तालाबों में स्नान करने से, देव मन्दिरों का दर्शन करने से या छुट-पुट से ही अन्य ऐसे ही उपचार कर देने से पाप नष्ट हो जायेंगे ऐसा सोचना भूल है। यदि ऐसे ही दुष्कर्मों के दण्ड से छुटकारा मिल जाया करेगा तो फिर निर्भय होकर लोग वैसे ही कुकृत्य करते रहेंगे और दण्ड से बच निकलने के लिए ऐसे ही सस्ते तरीके ढूँढ़ लिया करेंगे। राज दण्ड से बचने के लिए रिश्वत का पहले ही बोलबाला है। लोक-सेवी और धर्मात्मा का आडम्बर रचकर उसकी आड़ में समाज दण्ड से भी बचाव हो जाता है। ईश्वरीय दण्ड ही एक मात्र पाप से डरने का कारण रह गया था। उसी अंकुश से नीति निष्ठा बनी रहने की सम्भावना है यदि उसे भी सस्ते कर्मकाण्डों के सहारे झुठला दिया गया तो समझना चाहिए कि उस आधार पर भरपेट पाप करते रहने और सरलतापूर्वक ईश्वरीय दण्ड से बच निकलने का एक और नया भ्रष्टाचार खड़ा हो गया। शारीरिक और मानसिक दुष्प्रवृतियों के परिमार्जन का एकमात्र उपाय प्रायश्चित ही है। उसमें दण्ड भुगतने, क्षतिपूर्ति करने और भविष्य में वैसी गलती न करने के तीनों ही वे तत्व घुले हुए हैं जिनके सहारे भूल सुधारने और अन्धकार को प्रकाश में बदलने का अवसर मिलता है।

प्रायश्चित्त प्रक्रिया से भागिये मत

रसौली (एक प्रकार उभरी हुई गाँठ की बीमारी) की मरीज एक स्त्री एक बार श्रीमती जे० सी० ट्रस्ट के पास गईं और अपने रोग की चिकित्सा के लिए कोई औषधि देने की प्रार्थना करने लगीं। श्रीमती ट्रस्ट अमेरिका की विश्व विख्यात सन्त हैं जिन्होंने धर्म और अध्यात्म को वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न ही नहीं किया अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों से सैकड़ों पीड़ित और पतित लोगों का भला भी किया है। उनके प्रवचन और आध्यात्मिक गवेषणायें सुनने के लिए बड़े-बड़े वैज्ञानिक तक पहुँचते थे।

ट्रस्ट ने उस महिला को बहुत ध्यान से देखा और कहने लगीं- आप नहीं समझ सकतीं पर जिन्हें प्रकाश की गति और अवस्था का ज्ञान होता है वे यदि कोई न भी बताये तो भी, किसी के भी अन्तरंग की बात जान लेते हैं। आप के शरीर में मुझे कुछ काले रंग के अणु दिखाई देते हैं जो इस बात के प्रतीक हैं कि आपके जीवन में कहीं कोई त्रुटि, विकृति या ऐसी अनैतिक प्रवृत्तियाँ हैं जो आप दूसरों से छिपाती रहती हैं। आप प्रायश्चित का साहस कर सकें तो हम विश्वास दिलाते हैं आपका यह छोटे से छोटा रोग तो क्या भविष्य में अवश्यम्भावी कठिन रोगों का निवारण भी उससे हो सकता है।

स्त्री बोली- माता जी ! मैं आपके पास चिकित्सा के लिए आई हूँ उपदेश तो बहुतेरे पादरियों, सन्त और धार्मिक व्यक्तियों से सुन चुकी। औषधि दे सकती हैं तो दीजिये अन्यथा हम यहाँ से जायें।

उस महिला की तरह सैकड़ों लोगों के जीवन विकार ग्रस्त होते हैं मन में दूषित- काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर आदि विकार उठते रहते हैं, उनसे प्रेरित जीवन से जो पाप सम्भव हैं उन्हें लोग एक सामान्य ढर्रे की तरह अपना लेते हैं। काम-वासना से पीड़ित व्यक्ति किसी भी नारी को देखकर उत्तेजित हो उठता है, क्रोधी व्यक्ति हर किसी को दुश्मन की तरह देखता और वैसा ही कटु व्यवहार करता, लोभी व्यक्ति ही चोरी से लेकर रिश्वत छल, कपट और मिलावट तक करते हैं भले ही उसमें समाज का कितना ही अहित क्यों न हो ? जब उससे यह कहा जाता है कि पाप और विकारों का कर्म भोग-भोगना पड़ेगा। यह पाप ही आधि-व्याधि, रोग-शोक और बीमारियों के रूप में फूटते हैं इन्हें अभी सुधार लो, अभी प्रायश्चित कर पाप से बोझ से मन को हलका कर लो तब वह इन विचारों को दक़ियानूसी पिछड़ापन कहता है और तर्क देता है कि विकास के लिए संघर्ष अनौचित्य प्राकृतिक सत्य है प्रकृति यही सब कर रही है मनुष्य क्यों न करें ? वह कर्मफल के सिद्धान्त को मानने को तैयार नहीं होता। विकारों को वह विकार न मानकर शारीरिक आवश्यकताएँ मानता है और उनकी किसी भी उपाय से पूर्ति-धर्म। इन मान्यताओं के कारण ही आज न केवल सामाजिक व्यवस्थाएँ विशृंखलित हुईं वरन् लोगों के जीवन रोग-शोक से भरते चले जा रहे हैं। पाप और मनोविकार सचमुच रोग और भविष्य के लिए अन्धकार उत्पन्न करते हैं यह बात अब न केवल तर्क संगत रही, वरन् विज्ञान सम्मत भी हो गई है।

श्रीमती ट्रस्ट के समझने से उस महिला पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने अपने जीवन के सारे दोष स्वीकार किये और बताया कि उसे क्रोध बहुत आता है इसी दुर्भाव के कारण वह अनेकों पाप कर चुकी है। उसने कई बार चोरी भी की है और झूठ-मूठ कहकर लोगों को लड़ाया भी। उसने अपने सारे ऐब स्वीकार कर लिए इसके बाद ट्रस्ट के कहने से उसने कुछ दिन उपवास किया, उससे उसकी गाँठ भी अच्छी हो गई और मन की अशान्ति भी दूर हो गई। श्रीमती ट्रस्ट ने इसी तरह एक नवजात शिशु के रोग उसकी माँ से प्रायश्चित कराकर ठीक किये। उन्होंने ऐसे सैकड़ों व्यक्तियों से निष्कासन तप कराकर उन्हें शरीर और मन से शुद्ध बनाया वह सब उपरोक्त वैज्ञानिक सत्य का ही प्रतिफल था।

अपराध यदि व्यक्त है, किसी की चोरी की गई, किसी की हत्या हुई, मिलावट के अपराध में पकड़ा गया, रिश्वत में मिले नोटों में किसी अधिकारी के हस्ताक्षर थे उसने आकर पकड़ लिया। ऐसे अपराधी जेल भेज दिये जाते हैं किसी-किसी को शारीरिक दण्ड देकर छोड़ दिया जाता है और मान लिया जाता है कि उससे अपराधी का दोष परिमार्जन हो गया।

भारतीय मान्यतायें इससे भिन्न हैं। शाश्वत जीवन की कल्पना और कर्म-अकर्म के फल भोग के लिये बार-बार जीव शरीरों में आने वाली अमर चेतना यदि स्वतः अपने पापों का अपराधों का परिष्कार नहीं कर लेती तो वह निरन्तर अधोगति की ओर अग्रसर होती चली जाती है और नरक के पतन के गड्ढे में जा गिरती है। कूकर, शूकर योनियों में जन्म, सर्प और भेड़िये के शरीर में आना, आत्म चेतना के गुप्त मन की वह प्रेरणायें ही होती हैं जो उसे शारीरिक और मानसिक पाप करने की प्रेरणा देती रहती हैं। शास्त्रकार ने उसका उपाय बताते हुए लिखा है-

एतैर्द्विजातय: शोध्या व्रतैराविष्कृतैनस:।
अनाविष्कृपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत।।

मनुस्मृति ११।२२६

प्रकट पाप की शान्ति के लिये द्विजों को पूर्वोक्त चान्द्रायण आदि व्रत करना चाहिए और गुप्त पाप की शान्ति के लिए मन्त्रों का जप और होम करें।

पाप कैसा भी हो उसके लिए उत्तरदायी व्यक्ति स्वयं ही होता है। एक बार डा० सिगमंड फ्रायड से किसी ने पूछा- "स्वप्न कौन दिखाता है" तो फ्रायड ने छूटते ही उत्तर दिया "मनुष्य का मन।" उन सज्जन का अभिप्राय यह था कि मनुष्य सामाजिक जीवन की अनेक परिस्थितियों से घिरा होता है, कोई उसे डाँट देता है तो गुस्सा आता है कोई कामुक प्रदर्शन करता है तो मन में काम-वासना के विकार उठ खड़े होते हैं, खाने-पीने का भी प्रभाव पड़ता है यह सब मिलकर स्वप्न में प्रभाव डालते हैं इसलिए स्वप्न का कारण व्यक्ति के मन को मानना उसकी दृष्टि में एक पक्षीय निर्णय था किन्तु विचारक फ्रायड उस मत के नहीं थे। यद्यपि काम जैसे नाजुक विज्ञान का भी वे शालीन विश्लेषण नहीं कर पाये तथापि पाप के प्रति उनकी विवेचना भारतीय विचारकों के विवेचन से मेल खाती है। पाप और अपराध किसी और कारण से नहीं व्यक्ति की अपनी मानसिक कमजोरी से होते हैं और उसका दण्ड भुगते बिना वह उस मानसिक दुर्बलता से बच नहीं सकता। यह कहना गलत है कि इन्द्रिय लिप्सायें और महत्वकाँक्षायें व्यक्ति की प्राकृतिक प्रेरणायें हैं, पाप नहीं। मनोविज्ञान अभी उस स्थिति में तो नहीं पहुँच सका जिससे इस जन्म के अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार ही अगले जन्म होने की बात साबित हों पर गुप्त मन के विकारों के दुष्परिणाम अब स्पष्ट हो चुके हैं। २२ दिसम्बर १९५८ को लन्दन से प्रकाशित होने वाले "संडे टाइम्स" में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के सदस्य श्री माँटगुमरी हाइड ने जो कि अमरीका के अपराधी समाज का अध्ययन करने गये थे- एक लेख छापा उसमें लिखा था- आज संयुक्त राज्य अमेरिका में जो सबसे अधिक वस्तु परेशान किये है वह है बाल अपराध की समस्या। वहाँ २ वर्ष से कम आयु के बच्चे चाहे जब चाहे जिसे गोली मार देते हैं। लास एन्जिल्स में एक लड़के ने एक लड़की को केवल इसीलिए गोली मारदी क्योंकि वह एक ऐसी लड़की के चेहरे से मिलती-जुलती थी जो उसके एक प्रतिद्वन्द्वी लड़के के घर की थी। उस लड़की को देखते ही उसे कुढ़न हुई और उसने गोली मार दी। ओहियो की एक बाल अपराध अनुसंधान समिति ने ५४ बल अपराधियों के स्वभाव का परीक्षण कर, पाया कि ५३ अपराधी ऐसे थे जिन्होंने बिना कुछ सोचे-समझे अज्ञात प्रेरणा से अपराध किया। इन अपराधों का कारण माता-पिता की भावुक अस्थिरता को, पारिवारिक असंगठन और मनोमालिन्य को दिया जाता है किन्तु हर जगह ऐसा नहीं होता। बच्चों के जन्म जात संस्कारों का अपना महत्त्व होता है और उसकी वैज्ञानिकता से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। ऐसे अपराधों के व्यापक अध्यन और अमेरिकन सुधार (करेक्शन) संघ में ३५ वर्षों तक निरन्तर काम करने वाले महामन्त्री श्री एडवर्ड कांस ने भी यही निष्कर्ष निकाला और कहा "अपराध वृद्धि का कोई सरल उत्तर दे सकना कठिन है अधिक से अधिक उसके लिए माता-पिता और परिवार को ही दोष दिया जा सकता है पर कुछ अप्रकट भी है उसका मूल्य और महत्त्व कम नहीं आँका जाना चाहिये।"

मन एक प्रकार की विद्युत है जिस प्रकार संसार के सभी पदार्थ नष्ट नहीं होते केवल रूपान्तरित होते हैं मन भी नष्ट नहीं होते। मनुष्य अपने व्यक्त जीवन में जो भी विचार और कर्म करता है वह सब संस्कार रूप से मन में जमते और अपनी गाँठ मजबूत बनाते चले जाते हैं। ऊपर से देखने पर मनुष्य वही रहता है पर शारीरिक परिवर्तन के समान ही उसके मानसिक संस्कार परिवर्तन भी प्रौढ़ होते चले जाते है। और यदि उनका समय रहते निदान नहीं कर लिया जाता तो वे काले अणुओं के रूप में जीवात्मा के साथ चले जाते हैं वही कुसंस्कार अगले जन्मों में मनोविकार अपराध भावना आदि के रूप में फूट पड़ते हैं और मनुष्य जीवन को अज्ञात गंदगी की ओर बढ़ा ले जाते हैं ऊपर से देखने पर मनुष्य कितना ही अच्छा क्यों न दिखाई देता हो उसकी असलियत उसके मन में छिपी रहती है। वही व्यक्ति के संस्कारों में, अज्ञात कल्पना और विचारों के रूप में, स्वप्नों में अभिव्यक्त होती रहती है। वास्तव में इन संस्कारों का विश्लेषण ही सच्चा मनोविज्ञान हो सकता है केवल मात्र किसी के बाह्म स्वभाव का अध्ययन मनोविज्ञान नहीं ।

हिटलर युवावस्था में साहसी, धीर, और वीर प्रकृति का व्यक्ति था किन्तु अपनी महत्त्वाकांक्षाओं से प्रेरित होकर जब उसने हिंसा बरतनी शुरू की, हजारों निरीह व्यक्तियों को उसने मौत के घाट उतार दिया तो दूसरों का कितना अनर्थ हुआ उससे अधिक उसने अपना पतन कर लिया। १९४५ में जब कि उसे आत्म रक्षार्थ एक बंकर में भूमिगत होना पड़ा तब उसकी स्थिति यह थी कि वह अपने बड़े से बड़े विश्वासपात्र को भी सन्देह से ही देखता। वह इतना भयभीत रहता था कि ताजी हवा लेने के लिये बंकर से ऊपर भी नहीं आता था गोरिग लुफ्तवाफ को उसने जर्मन वायुसेना का प्रधान सेनापति अपना वफादार मानकर

नियुक्त किया था, उसने विद्रोह किया भी नहीं था पर उसने ग्रीम से उसके देशद्रोही होने की बात कही। ग्रीम सारी स्थिति जानता था पर भयवश खुद भी सच्ची बात नहीं कर सकता था। हिटलर का मानसिक संताप इतना अधिक बढ़ गया कि उसे पैर में लकबा मार गया। दो दिन पूर्व तक उसके बाल काले थे पर एक दिन में ही उसके बाल सफेद कैसे पड़ गये ? इस बात पर स्वयं उसकी प्रेमिका इवा और गोबेल्स की पत्नी फ्रा भी आश्चर्य चकित हो उठी थीं। अन्ततः अपनी मानसिक स्थिति नियन्त्रण से बाहर पाई तो हिटलर को आत्महत्या ही उससे बचने का एक मात्र उपाय सूझा और उसने आत्महत्या करली।

मन के कुसंस्कारों को छुपाना पाप का भी पाप है। इसीलिए भारतीय आचार्यों ने निष्कासन तप का सिद्धान्त बनाया था लोगों को चान्द्रायण आदि कराते समय उनसे सारे पाप कबूल कराये जाते थे। देखने में प्रायश्चित कर्त्ता को अपना स्वाभिमान सा नष्ट होता दीखता है, उससे औरों की हँसी का डर भी रहता है किन्तु भूलें स्वीकार कर लेने से मन में जो गाँठें पड़ सकती थीं पड़ने से बच जाती हैं और मनुष्य एक व्यवस्थिति जीवन के लिए, शुद्ध संस्कार जीवन के लिए तैयार हो जाता है।

बम्बई का एक समाचार है-२५ वर्ष पूर्व सिन्ध हैदराबाद में देश विभाजन के समय मजिस्ट्रेट बी० ए० गहानी की अदालत में एक केस आया-गहानी ने यह बात स्वयं ही तब बताई जब वे बम्बई के मुख्य प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट थे। केस एक वृद्ध के खिलाफ था- सुनवाई की तारीख के दिन श्री गहानी फैसला तैयार नहीं कर सके थे। वृद्ध बीमार था इसलिए वह स्वयं नहीं आ पाया था, तारीख बढ़ाने के लिए लड़के को भेज दिया लड़के को तारीख बढ़ाने की प्रार्थना नहीं करनी पड़ी। मजिस्ट्रेट ने तारीख बढ़ाने की घोषणा करादी। वृद्ध ने उसका अर्थ यह लगाया कि फैसला उसके विपरीत गया होगा तभी तारीख बढ़ाई गई। इस सदमे से उसकी मृत्यु हो गई। अगली तारीख में जब मजिस्ट्रेट ने उसे निर्दोष घोषित किया, तब लड़के ने बताया कि वह तो उसी दिन मर गये। इस से मजिस्ट्रेट के मन में अपने छिपाव का मनस्ताप रहने लगा। २५ वर्ष तक इस मनोव्यथा की स्थिति में रहने के बाद जब बोझ असह्य हो चला तो उन्होंने सार्वजनिक रूप से अपनी भूल स्वीकार की उन्हें तभी अपनी मनोव्यथा से मुक्ति मिली। भले ही अकर्त्तव्य के लिए उन्हें उपहास और फटकार ही क्यों न मिली हों। इसके साथ ही यदि उपवास या व्रत आदि कर लिया जाता तो दोष और शान्त हो जाता। अरब के प्रसिद्ध हकीम श्री इब्न सीना ने अपनी पुस्तक "कानून" में एक दिलचस्प उदाहरण दिया है जो 'पूर्व जन्म कृतं पाप व्याधि रूपेण पीड़ति' वाली भारतीय मान्यता का समर्थन है। गजनी का महमूद इब्नसीना को अपने पास रखना चाहता था। पर जब इब्नसीना ने इनकार कर दिया तो उसने बल प्रयोग करना चाहा। इब्नसीना हर्केनियाँ भाग गये। वहाँ का शासक बीमार था जिसे कोई भी अच्छा नहीं कर सका था। इब्नसीना उसे देखने गये। नब्ज पकड़ कर बोले- आप अनेक शहरों के नाम बोलिये। एक खास शहर का नाम लेने पर रोगी की नब्ज फड़की। फिर एक ऐसा आदमी बुलाया गया जो उस शहर की हर गली को जानता हो। इस बार गलियों के नाम पुकारे गये। एक विशेष गली का नाम लेने पर फिर वैसी ही नब्ज फड़की। इस तरह इब्नसीना ने उस युवती का पता लगा लिया जिसे शाह ने देखा था और उसे व्याहता बनाना चाहता था, पर उसे जानता नहीं था। मन के अज्ञात सागर में कहाँ के किस जन्म के संस्कार भरे हैं, यह इस उदाहरण से स्पष्ट है, हमारे शरीर की हर ज्ञात-अज्ञात क्रिया पूर्व कृत कर्म और विचारण के आधार पर चलती है इसीलिए जीवन शुद्धता सुख-शान्ति का आधार ही यही है कि मन शुद्ध हो, सात्विक विचारों वाला, संकल्पशील हो।

अब ऐसे यन्त्र भी बन चुके हैं जिनके प्रयोग से पता चलता है कि मन में रागात्मक अनुभव जितना तीव्र होगा त्वचा का विद्युत अवरोध उतना ही घट जायेगा। इसी आधार पर सच और झूठ का विश्लेषण करने वाली मशीनें बनाई गई हैं। यह मशीन "स्फिग्मोमैनो मीटर" तथा " न्यूमोग्राफ" के आधार पर बनाई गई हैं। इसे ई० ई० जी० कहते हैं एक फीते पर सच या झूठ का ग्राफ त्वचा की प्रतिरोधकता के अनुसार खिंच जाता है। आगे अज्ञात् संस्कारों की जानने वाली मशीनें भी बन सकती हैं पापों की पोल खोलने वाले यन्त्र भी प्रकाश में आ सकते हैं उन सबका निष्कर्ष यही होगा कि मनुष्य अपनी भावनाओं को शुद्ध रख कर ही सुखी रह सकता है। उसका एक मात्र उपाय प्रायश्चित प्रक्रिया ही होगी। अपनी भूलें स्वीकार करने और उचित दण्ड के लिए संहर्ष तैयार होने के अतिरिक्त हमारी सुख-शान्ति और सद्गति का दूसरा उपाय नहीं। उससे बचने का अर्थ अपना ही अहित, आत्मघात होगा जिसका बुरा फल न जाने कितने जन्मों तक भोगना पड़ेगा। शास्त्रों में इसीलिए पश्चात्ताप और प्रायचित्त के विधान निर्दिष्ट हैं-

यावंतो जंतवः स्वर्गे तावंतो नरकौकसः।
पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपरागंमुखः।।
गुरूणि गुरूभिश्चैव लघूनि लघुभिस्तथा।
प्रायश्चित्तानि ह्यन्येच मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्।

-शिवपुराण

जो मनुष्य अपने किये हुए दुष्कमा का कोई भी प्रायश्चित शास्त्रांनुसार नहीं किया करते हैं वे ही पापात्मा प्राणी नरक में जाया करते हैं। स्वायम्भु मनु ने तथा अन्य महर्षियों ने भी बड़े पापों के बड़े प्रायश्चित्त और छोटे-छोटे पाप कर्मों के छोटे प्रायश्चित्त बतलाये हैं।

पाश्चात्ताप: पापकृतां निष्कृति: परा।
सर्वेषां वर्णितं सद्भि: सर्वपापविशोधनम्।
पश्चात्तापेनैव शुद्धि: प्रायश्चित्तं करोति स:।
यथोपदिष्टं सद्भिर्हि सर्वपापविशोधनम्।।
प्रायश्चित्तमधीकृत्य विधिवन्निर्भय: पुनाम्।
स याति सुगतिं प्राय: पश्चात्तापी न संशय:।।

-शिवपुराण

पश्चात्ताप ही पापों की परम निष्कृति है। विद्वज्जनों ने पश्चात्ताप से सब प्रकार के पापों की शुद्धि होना कथन किया है। पश्चात्ताप करने से जिसके पापों का शोधन न हो, उसे प्रायश्चित्त करना चाहिए। विद्वानों ने इससे सब पापों का शोधन होना कहा है। विधिपूर्वक अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त करने पर भी मनुष्य भय रहित नहीं हो पाता परन्तु पश्चात्ताप करने वाले को सुगति की प्राप्ति होती है।

विकर्मणा तप्यमान: पापाद् विपरिमुच्यते।
न तत् कुर्या पुनरिति द्वितीयात् परिमुच्यते।।

-महाभारत वन पर्व

जो मनुष्य पापकर्म बन जाने पर सच्चे हृदय से पश्चात्ताप करता है, वह उस पाप से छूट जाता है तथा फिर कभी ऐसा कर्म नहीं करूँगा ऐसा दृढ़ निश्चय कर लेने पर वह भविष्य में होने वाले दूसरे पाप से बच जाता है।

प्रायश्चित्तमकृत्वा तु न तिष्ठेद् ब्राह्मण: क्वचित्
यद्ब्रू युर्ब्राह्मणा: शान्ता: विद्वांसस्तत्समाचरेत्।

-कूर्म पुराण

निन्दित हेय कुकर्म करने पर मनुष्य को पाप लगता है। उसका शोधन प्रायश्चित्य द्वारा करना चाहिए।

श्रेष्ठ विद्वान और तपस्वी ब्रह्म वेत्ताओं से प्रायश्चित्य पूछना चाहिए और तदनुसार व्यवस्था करनी चाहिए।

प्रायश्चित्तमकुर्वाणा पापैषु निरतानर:।
अपश्चस्तापिन: कष्टान् नरकान् यांति दारूणम्।।

"प्रायाश्चित्त न करने वाले, पाप कर्मों में आसक्त पश्चाप से रहित मनुष्य घोर नरक योनियों को प्राप्त होते हैं।"

अभ्द्रिर्गात्रान्मलमिव तमोह्यग्नि भयाद्यथा।
दानेन तपसाश्चैव सर्वं पापमपोहति।।

-महाभारत

जल से शरीर शुद्ध होता है। अग्नि से अन्धकार हटता है। इसी प्रकार दान और तप से पापों की निवृत्ति होती है।

प्रायाश्चितैत: शमंयाति पापं कृतमसंशयम्।
राजदंडाच्छमयाति प्रायश्चित्तम् कुर्वताम्।
प्रायश्चित्त विहीना ये राजभिश्चाप्यवासिता:।
नरकं प्रतिपद्यन्ते तिर्यग्नोनिं तथैव च।
मनुष्यामपि चसाध भवन्तीह तथाङ्गिता।

प्रायश्चित करने से पापों का शमन होता है। जो प्रायश्चित नहीं करना चाहते उन्हें, राजदण्ड प्राप्त करना चाहिए। जो राजदण्ड और प्रायश्चित दोनों से बचते हैं। वे नरक में पड़ते हैं। तिर्यक योनियों में जन्म लेते हैं। कदाचित मनुष्य जन्म मिले भी तो वह बहुत ही क्षत विक्षत विद्रुप होता है।

प्राय: पापं विजानीयात् चित्तं वै तद्विशोधनम्।
प्रायो नाम तप: प्रोक्त चित्तं निश्चय उच्यते।

प्राय: का अर्थ है 'पाप' और चित्त का अर्थ है 'शुद्धि' अर्थात् 'पाप की शुद्धि'। अथवा 'प्राय' का अर्थ है। 'तप' और चित्त का अर्थ है निश्चय अर्थात् तप करने का निश्चय अथवा तप और 'निश्चय' पूर्वक भविष्य में पाप न करने की विधि।

अज्ञानाद् वाज्ञानात कृतं कर्म विगर्हितम्।
तस्माद् विमुक्ति मान्विच्छन द्वितीयं न समाचरेत्
कार्यकार कृते पापे प्रायश्चित्तेन शुद्धति।

-पाराशर

जाने या अनजाने में जो निद्यं कर्म बन पड़े हों उनकी निवृति और शुद्धि के लिए प्रायश्चित ही उपाय है।

नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि।
शोशणेन शरीरस्य तपसाध्ययने न च।
पाप कृन्मुच्येत पापाद्दानेन च दमेन च

शरीर की तपश्चर्या और ध्यान उपासना से पापों का नाश होता है। काम करने वाले दान और इन्द्रिय दमन से शुद्ध होते हैं।

शातातपस्मृति में प्रायश्चित्य की आवश्कता एवं अनिवार्यता का प्रतिपादन इस प्रकार किया है:-

प्रायश्चित विहीनानां महापातकिनां नृणाम्।
नरकान्ते भवेज्जन्म चिन्हाङ्कितशरीरिणाम्।
प्रतिजन्म भवेत्तेषां चिन्हं तत्पापसूचितम्।
प्रायश्चित्ते कृते याति पश्चात्तापवतां पुन:।।
महापातकजं चिन्हं सप्तजन्मनि जायते।
उपपापोद्भवं पंच त्रीणि पापसमुद्भवम्।
दुष्कर्मजा नृणां रोगा यान्ति चोपक्रमै: शमम्।
जपै: सुरार्चनैर्दानैस्तेषां शमोभवेत्।।

पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः।।
कुष्ठञ्च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणा तथा।
मूत्रकृच्छाश्मरीकासा अतीसारभगन्दरौ।।
दुष्टब्रणं गंडमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम्।
इत्येवसादयो रोगा महापापोद्भवाः स्मृताः।।

किये हुये पापों के प्रायश्चित न करने वाले, चिन्ह विशेष से अंकित शरीर वाले महान पातक करने वाले मनुष्यों का जन्म नरकान्त में होता है। महान पातक का सूचक वह चिन्ह उनकी प्रत्येक जन्म में रहता है। किये हुये पाप का पश्चात्ताप करने वालों का प्रायश्चित कर लेने पर वह चला जाता है। महापातक के कारण होने वाला चिन्ह सात जन्म तक होता है। मध्यम पापों से होने वाला पाँच जन्म तक तथा साधारण पाप से समुत्पन्न चिन्ह तीन जन्म तक रहता है। मनुष्यों के दुष्कर्म से होने वाले रोग उपकर्मो के द्वारा शान्त होते हैं। ऐसे उन रोगों की शांति जप , देवार्चन, होम और दानों के द्वारा होती है। पूर्व जन्म में किया हुआ पाप नरक के परिक्षय हो जाने पर मनुष्यों को किसी व्याधि के रूप में उत्पन्न होकर सताता है और उसका उपशमन जपादि द्वारा होता है। कुष्ठ, राजयक्ष्मा, प्रमेह, संग्रहणी मूत्रकृच्छ, पथरी, कास, अतिसार, भगन्दर, दुष्ट व्रण, गण्डमाला, पक्षाघात और नेत्रहीनता इत्यादि रोग महापातकों के कारण ही उत्पन्न होते हैं।

जलोदरं यकृत प्लीहा शूलरोगव्रणानि च।
श्वासाजीर्णज्वरच्छदि्ंदभ्रममोहगलग्रहा।
रक्तार्वुद विसर्पाद्या उपपापोद्भवा गदाः।।
दंडापतानकश्चित्रवपुः कम्पविचर्चिकाः।
वल्मीकपुंडरीकाद्या रोगाः पापसमुद्भवाः।।
अर्शआद्या नृणां रोगा अतिपापाद्भवन्ति हि।
अन्ये च बहवो रोगा जायन्ते वर्णसंकराः।।
उच्यन्ते च निदानानि प्रायश्चित्तानि वै क्रमात्।

-शातातपस्मृति १ से १०

पापों का प्रायश्चित्य न करने वाले मनुष्य नरक को तो जाते ही हैं अगले जन्मों में उनके शरीरों में उन पापों के चिन्ह भी प्रकट होते हैं।

प्रायश्चित न किया जाय तो अनेकों जन्मों तक वे पाप चिन्ह प्रकट होते हैं। उसका निवारण प्रायश्चित्य करने पर ही होता है।

महा पापों के चिन्ह सात जन्मों तक मध्यम पापों के चिन्ह पाँच जन्मों तक और छोटे पापों के चिन्ह तीन जन्मों तक रहते हैं।

दुष्कर्मों से उत्पन्न प्रारब्ध जन्म रोग प्रायश्चित, जप, पूजन, होम दान आदि से शान्त हो जाते हैं।

कुष्ठ, राक्षष्ठा, प्रमेह, संग्रहणी, मूत्र कृच्छ, पथरी, स्वांस, भंगदर नासूर, गण्ड माला पक्षाघात अन्धता जैसे भयंकर रोग, महापातकों के फलस्वरूप होते हैं।

जलोदर, तिल्ली, यकृत, शूल, व्रण, श्वास, अजीर्ण, ज्वर, जुकाम, भ्रम, मोह, जलग्रह, रक्तार्वुद, विसर्य, आदि रोग उप पातकों मध्य पातकों के कारण होते हैं।

दण्ड पतानक, चित्रवपु, कम्प विशूचिका, पुण्डरीक आदि रोग सामान्य पापों के कारण होते हैं। इनके अतिरिक्त सम्मिश्रित रोग भी होते हैं।

इन सबका प्रायश्चित्य विधान करना चाहिए।

अकृत्वा विहितं कर्म्म कृत्वा निन्दितमेव च।
दोषमाप्नोति पुरुषः प्रायश्चत्तं विशोधनम्।।
प्रायश्चितमकृत्वा तु न तिष्ठेद् ब्राहाणः क्वचित्
यद्ब्रू युर्ब्राह्माणाः शान्ताः विद्वांसस्तत्समाचरेत्।

-कूर्म पुराण

निन्दित हेय कुकर्म करने पर मनुष्य को पाप लगता है। उसका शोधन प्रायश्चित द्वारा करना चाहिए।

श्रेष्ठ विद्वान और तपस्वी ब्रह्मवेत्ताओं से प्रायश्चित्त पूछना चाहिए और तदनुसार व्यवस्था करनी चाहिए।

याचेद दण्ड मानेन प्रायश्चित्त यथाचितम्।
तेषां मनुसया कुत्वा प्रायश्चित्तं यथाविधि।

-शालायन

अपराध जितना बड़ा हो, उसी के अनुपात से दण्ड विधान का स्वरूप निर्धारण किया जाय।

प्रायश्चित्तं प्रकृर्वीता तत्सातक शान्तिये।

-अग्नि पुराण

पापों की शान्ति के लिए प्रायश्चित्य करें।

प्रायश्चित प्रक्रिया के चार चरण

प्रायश्चित के चार चरण हैं-

(१) जीवन भर के दुष्कर्मों की सूची बनाकर उनके द्वारा दूसरों को पहुँची हानि का स्वरूप समझना भारी पश्चात्ताप।

(२) दुष्कर्मों का चिन्तन कर आत्म-विश्लेषण करना, उन्हें न दोहराने का संकल्प एवं विज्ञजनों के समक्ष उनका प्रकटीकरण करते हुए प्रायश्चित्त का संकल्प लेना अर्थात् आत्मस्वीकृति एवं संकल्प।

(३) पश्चाताप के प्रतीक रूप में व्रत, उपवास, जय, अनुष्ठान आदि प्रायश्चित्त कृत्य करना।

(४) व्यक्ति अथवा समाज को जो हानि पहुँची हो, उसकी क्षतिपूर्ति करने के लिए यथासम्भव अधिकतम प्रयत्न करना।

इन चारों चरणों का अधिक स्पष्टीकरण यह है कि पाप कर्म इसलिए बनते और बढ़ते रहते हैं कि कर्त्ता उनके द्वारा होने वाली हानियों पर ध्यान नहीं देता। उन्हें अन्य लोगों द्वारा भी अपनाई जाने वाली सामान्य क्रिया-प्रक्रिया मान लेता है और ऐसे ही हलके मन से उन्हें करता चला जाता है। बाद में अभ्यास बन जाते हैं। धन, अधिकार, आतंक, उपयोग जैसे कई लाभ मिलने लगते हैं तो उनका आकर्षण और भी अधिक बढ़ जाता है। पीछे वह आदत, स्वभाव का अंग बन जाती है और बाहर वालों के समझाने, बुझाने एवं डाँट-डपटने से भी नहीं छूटती। कुमार्ग से विरत होने का एक ही मार्ग है कि उस मार्ग पर चलने वाले को उसकी हानियाँ स्वयं दृष्टिगोचर हों और प्रतीत हो कि इस दिशा में चलकर वह अब तक अपना तथा दूसरों का कितना अहितकर चुका। गतिविधियाँ जारी रहीं तो और भी कितनी हानि हो सकती है।

दुष्कर्मों, दुष्प्रवृत्तियों और दुर्भावनाओं से दूसरों का अहित और अपना हित होने की बात सोची जाती है, पर वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत हैं। कुमार्ग की कँटीली राह पर चलने से अपने ही पैर काँटों से विंधते हैं, अपने ही अंग छिलते और कपड़े फटते हैं। झाड़ियों को भी कुछ हानि तो होती होगी, पर इससे क्या ? घाटे में तो अपने को ही रहना पड़ा। अपना मस्तिष्क विकृत होने से प्रगति के रचनात्मक कार्यों में लग सकने वाली शक्ति नष्ट हुई। अनावश्यक पढ़ने से यह बहुमूल्य यन्त्र विकृत हुआ। शारीरिक और मानसिक रोगों की बाढ़ आई। मन: स्थिति गड़बड़ाने से क्रिया-कलाप उलटे हुए और विपरीत परिस्थितियों की बाढ़ आ गई। हर दृष्टि से यह अपना ही अहित है। अस्तु बुद्धिमत्ता इसी में है कि संमार्ग पर चला जाय, सत्प्रवृत्तियों को अपनाया जाय और अन्त:करण को सद्भावनाओं से भरा पूरा रखा जाय।

इस प्रकार के चिन्तन से ही यह विरोधी प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सकती है जिसके कारण दुष्कर्मों के प्रति भीतर से घृणा उपजती है, पश्चात्ताप होता है। यह घृणा और पछतावा ही वे आधार हैं जिनके सहारे भविष्य भ वैसा न होने की आशा की जा सकती है। अन्यथा कारण वश उपजा सदाचरण का उत्साह, श्मशान-वैराग्य की तरह ठण्डा हो जायेगा और फिर उसी पुराने ढर्रे पर गाड़ी के पहिये लुढ़कने लगेंगे। प्रथम चरण पश्चात्ताप की उपयोगिता इसी दृष्टि से है कि अन्त:करण में अनाचार विरोधी प्रतिक्रिया इतने उग्र रूप से उभरे कि भविष्य में उस प्रकार के अनाचरण की मुञ्जायश ही शेष न रह जाय।

दूसरा चरण मन की गाँठें खोल देने का है। इसमें दूसरों का नहीं अपना ही लाभ है। अनैतिक दुराव के कारण मन की भीतरी परतों में एक विशेष प्रकार की मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियाँ बनती हैं। उनके कारण केवल शरीरिक ही नहीं, मानसिक रोग भी उठ खड़े होते हैं। यह प्रकृति निर्मित- स्वसंचालित दण्ड व्यवस्था है जिसके कारण अपना आपा ही न्यायाधीश बनकर अनाचार के दुष्परिणाम प्रस्तुत करता रहता है। यह ग्रन्थियाँ व्यक्ति को बुरी तरह लड़खड़ा देती हैं। उसे विकृत बेढ़ंगा बेहूदा और बेसिलसिले का बना देती हैं। ऐसा व्यक्ति कुढ़ता-कढ़ाता , खीजता-खिजाता देखा जाता है- हँसने-हसाने का सहयोग देने , पाने की उसकी स्थिति ही नहीं रह जाती। यदि इस स्थिति से छुटकारा न मिले तो अर्ध विक्षिप्त, अर्ध मृतक, अर्धांगंग्रसित रोगी की तरह गया– गुजरा, उपहासास्पद, तिरस्कृत जीवन बिताना पड़ता है। विकसित व्यक्तित्व का लाभ यदि समझा जा सके तो उसका मूल्य चुकाने की भी तैयारी करनी चाहिए। खुलामन, स्वच्छमन, दुराव रहित मन ही व्यक्तित्व को गौरवान्वित स्थिति तक पहुँचाने में समर्थ हो सकता है।

मानसोपचार में रोगी के अब तक के जीवन के सामान्य जीवन-क्रम को विस्तारपूर्वक सुनाने के लिए कहा जाता है। चिकित्सक उन संस्मरणों को रुचिपूर्वक सुनता जाता है। उस प्रसंग में उन घटनाओं की भी चर्चा हो जाती है जिन्होंने अचेतन मन पर कोई अवांछनीय छाप डाली और मानसिक स्तर लड़खड़ा गया। मन में चुभा वह काँटा यदि निकल गया तो वह विक्षिप्त व्यक्ति स्वयमेव अच्छा होने लगता है और कष्ट कट जाता है। शरीर में विष का प्रवेश हो जाय तो उसे किसी न किसी उपाय से निकाल बाहर करना ही प्राण रक्षा का एकमात्र उपाय होता है। ठीक उसी प्रकार अनैतिक दुराव की ग्रन्थियों को निकाल बाहर करने से ही वह मन: स्थिति प्राप्त होती है जो सुविकसित जीवन-क्रम बनाने के लिए नितान्त आवश्यक है। इस दृष्टि से उन दुरावों को प्रकट करना आवश्यक है।

असत्य को सबसे बड़ा पाप माना गया है। कपट और छल-छिद्र को रामायण में अध्यात्म मार्ग का सबसे बड़ा अवरोध और ईश्वर-विरोधी विग्रह माना गया है। व्यभिचार में यों हत्या , अपहरण, जैसा कोई अत्याचार नहीं है, पर चूँकि उसमें दुराव अपनाना पड़ता है, अस्तु उतने भर से अतीव हानिकारक परिस्थितियाँ बन जाती हैं और अनिष्टकारक प्रतिक्रियाएँ होने

लगती हैं। असत्य के कई विशेष प्रसंगों को अपवाद रूप से समय की आवश्यकता के रूप में अपनाना पड़ता है। किन्तु सामान्यत: उसे इसी कारण पाप ठहराया गया है कि उसमें दुराव का भयंकर दोष छिपा हुआ है और इस कारण विकृतियों की अवांछनीय श्रृंखला ही चल पड़ती है।

अनैतिक दुरावों के प्रकटीकरण में यह खतरा भी है कि ओछे व्यक्ति उन जानकारियों का अनुचित प्रयोग कहने वाले की बदनामी करने तथा हानि पहुँचाने के लिए कर सकते हैं। अस्तु निस्संदेह इस प्रकटीकरण के लिए ऐसे सत्पात्रों को ही चुनना चाहिए जिनकी उदारता एवं दूरदर्शिता असंदिग्ध हो। चिकित्सक के आगे रोगी को अपने यौन रोगों की वस्तुस्थिति बतानी पड़ती है। उदार चिकित्सक उन कारणों को प्रकट करते नहीं फिरते जिनकी वजह से वह रोग उत्पन्न हुए। उनका दृष्टिकोण रोगी की कष्ट निवृत्ति भर होता है। ऐसे ही उदार चेता एवं उपयुक्त मार्गदर्शन कर सकने में समर्थ व्यक्ति ही इस योग्य होते हैं जिनके सामने अपने मन की दुराव ग्रन्थियाँ खोली जा सकें। हर किसी के सामने इस प्रकार के वर्णन करते-फिरते में और भी उलटी और नई झंझट भरी परिस्थितियाँ उठ खड़ी होने की सम्भावना रहती है। अस्तु इस सन्दर्भ में जहाँ रोगी और चिकित्सक की स्थिति हो वहीं प्रकटीकरण की बात सोचनी चाहिए।

ईसाई धर्म में प्रवेश करने वाले को 'वपतिस्मा' लेना पड़ता है। उस संस्कार के समय मनुष्य को अब तक के अपने पाप पादरी के सम्मुख एकान्त में कहने होते हैं। उस धर्म में मृत्यु के समय भी यही करने की धर्म परम्परा है। मरणासन्न के पास पादरी पहुँचता है। उस समय अन्य सब लोग चले जाते हैं। मात्र पादरी और रोगी ही रहते हैं। वह व्यक्ति अपने पापों को पादरी के सामने प्रकट करता है। इस प्रकार उसके मन पर चढ़ा भार हलका हो जाता है। पादरी शान्ति सद्गति की प्रार्थना करता है और रोगी को आश्वस्त करके महा प्रयाण के लिए विदा करता है। वपतिस्मा और मरण काल में इस स्वीकारोक्ति को- 'कन्फैशन' को अत्यन्त पवित्र और आवश्यक माना गया है। मन:शास्त्र के अनुसार यह प्रथा नितान्त श्रेयस्कर ठहराई गई है।

प्रायश्चित में प्रकटीकरण को एक अति महत्वपूर्ण अंग माना गया है। अनैतिक कृत्यों के दुराव को कभी किसी के सामने प्रकट न किया जाय तो मन:क्षेत्र में वह उर्वरता उत्पन्न न हो सकेगी जिसमें आध्यात्मिक सद्गुणों का अभिवर्धन सम्भव होता है।

प्रायश्चित का तीसरा चरण है- दण्ड स्वरूप ऐसे अपने ऊपर दबाव डालना जिनकी स्मृति देर तक बनी रहे और उस परिवर्तन की छाप को अन्त चेतना गहराई तक धारण कर ले। बच्चे को कभी अधिक गड़बड़ी फैलाने पर अभिभावक हलकी चपत जड़ देते हैं या दूसरे प्रकार से धमका देते हैं। उससे बच्चे पर सामान्य समझाने-बुझाने की अपेक्षा अधिक गहरा असर पड़ता है और वह सीख जाता है कि इस प्रकार की गड़बड़ी पर अभिभावक कितने अधिक रुष्ट होते हैं। इस दृष्टि से वह धमकाना थोड़ा कष्टकर होने पर भी परिणाम की दृष्टि से श्रेयस्कर होना है उससे गड़बड़ी के दुहराये जाने की सम्भावना घटती है।

स्कूलों में भी बच्चों को पैसे का जुर्माना, खड़ा कर-देना, परीक्षा से रोक लेना आदि दण्ड दिये जाते हैं ताकि उनकी अनुचित गतिविधियों को रोका जा सके। जेल में जो कैदी गड़बड़ी करते हैं उन्हें बेड़ी-खड़ी, हथकड़ी, कड़ा परिश्रम , तनहाई, छूटने में मिलने वाले समय की रिआयत को काट लेना आदि कई तरह के सामयिक दण्ड' मिलते हैं। इसका उद्देश्य इतना भर होता है कि जेल व्यवस्था तोड़ने पर अधिकारी वर्ग रुष्ट हैं और दण्ड देने पर उतारू हैं। इससे कैदी के मन पर छाप पड़ती है और भविष्य में उस गलती को दुहराने से डरता है। प्रायश्चित्त रूप में अपने आपको दण्ड देने में यह पद्धति तप-तितीक्षा के नाम से विनिर्मित की गई है।

व्रत, उपवासों में कई तरह के विधि-विधान हैं। चान्द्रायण, कृच्छ चान्द्रायण आदि का विशेष रूप से उल्लेख है और भी कई हलके-भारी व्रत-उपवास, अस्वाद आहार , एक समय खाना आदि की विधि-व्यवस्थाएँ मिलती हैं। पैदल तीर्थयात्रा, परिक्रमा इसी प्रकार है जैसे पुलिस फौज में अपराधी सिपाहियों को दौड़ने की 'दलील' कराई जाती है। सर्दी-गर्मी का सहना, कम वस्त्र पहनना, नंगे पैर रहना, भूमिशयन, मौन-धारण , रात्रि-जागरण, खड़े रहना आदि कितने ही विधानों का शास्त्र में उल्लेख मिलता है। जप, अनुष्ठान, पाठ आदि भी इस सन्दर्भ में कराये जाते हैं। इन सब में थोड़ी सी शारीरिक एवं मानसिक कठिनाई सहन करनी पड़ती है। इससे अनीति आचरण के दुष्परिणाम और छोड़ देने के लिए किये संकल्प का ध्यान भविष्य में भी बना रहता है। यह अन्त: चेतना पर परिवर्तन की छाप छोड़ने का अच्छा उपाय है। इसलिए इस तीसरे चरण को प्रायश्चित्त विधान में समुचित स्थान दिया गया है।

चौथा चरण सबसे महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है प्रथम तीन चरणों को उसकी भूमिका माना जा सकता है। असली और प्रभावशाली बात है- क्षतिपूर्ति । जो हानि पहुँचाई गई है। उसकी पूर्ति होनी चाहिये। सड़क पर गड्ढा खोदकर यदि दूसरों के लिए उसमें गिरने का कष्टकारण आचरण किया गया है तो उसकी क्षति

पूर्ति इसी प्रकार होगी कि जितना श्रम गड्ढा खोदने में किया गया था। उतना ही उसे पूरा करने के लिए किया जाय। गड्ढा पट जाने पर ही उस अनाचार की भरपाई होगी, जिसके कारण अनर्थ होता रहा। विघातक कृत्य के वजन का विधेयात्मक कार्य करने पर ही सन्तुलन बनता है और क्षतिपूर्ति संभव होती है। पाप के वजन के बराबर पुण्य करने पर तराजू के पलड़े बराबर होते हैं।

हमारी भावी रीति-नीति, सज्जनता युक्त होनी चाहिए। इन दिनों मन:क्षेत्र में जो दोष, दुर्गुण भरे हों उन्हें भविष्य में चरितार्थ न होने देने का निश्चय करना चाहिए। सज्जनता ही हर दृष्टि से लाभदायक नीति है। यदि अनाचार से लड़ना पड़े तो बहादुरी से उस धर्म युद्ध में उतरा जाय, पर उस मोर्चे पर भी शालीनता को हाथ से न जाने दिया जाय। द्वेष के स्थान पर सुधार को लक्ष्य कर कुमार्गगामियों से लड़ा जा सकता है। उसमें अनीति का प्रतिकार भी हो जाएगा और द्वेष की लपट से अपने आपको जलाने की, प्रतिपक्षी की अपेक्षा अपने को ही अधिक हानि पहुँचाने वाली विपत्ति भी सिर पर न बरसने पायेगी। आत्मरक्षा की आवश्यकता समझी गई हो तो सब से पहले भीतर घुसे दुर्भावों से और व्यवहार में आने वाले दुष्कर्मों से अपना पिण्ड छुड़ाना चाहिए।

सरकारी खजाने की कोई खजांची रकम लेकर भागे। पीछे वह अपनी भूल स्वीकार करे और प्रायश्चित्त करना चाहे तो उसे पहला कदम यही उठाना पड़ेगा कि जो रकम उड़ाई गई थी, उसमें से जितना कुछ बचा हो उसे तो तत्काल वापिस जमा करा दिया जाय और शेष के लिए किश्तों में धीरे-धीरे चुका देने की पेशकश की जाय तो समझौता होने की मुकदमा न चलने और जेल न भुगतने की संभावना बन सकती है। जो रकम हड़पी गई थी उसे डकार लिया जाय और ऐसे ही व्रत-उपवास करके क्षमा याचना करके-दण्ड से छुटकारा पा लिया जाय ऐसा नहीं हो सकता।

प्रायश्चित के साथ दान-पुण्य के विधान जुड़े रहते हैं । इसमें धनदान और श्रमदान दोनों की ही व्यवस्था है । क्षति पूर्ति इसी रूप में हो सकती है । श्रम और धन वस्तुत: एक ही तथ्य के दो पहलू हैं । क्षति पूर्ति के लिये एक का या दोनों का प्रयोग किया जा सकता है । क्षति यदि शारीरिक, मानसिक की गई है तो आवश्यक नहीं कि उसी रूप में उसे पूरा किया जाय। धन के रूप में भी उसे चुकाया जा सकता हैं । कारखानों में, दुर्घटनाओं में किसी का अंग-भंग हो जाने पर उसकी क्षति पूर्ती मुआवजे का धन दिलाकर कराई जाति हैं । मानहानि के मुकदमों के बदले में मानहानि नहीं कराई जाती, वरन् अपराधी से कहा जाता हैं कि वह धन देकर क्षति पूर्ती करें ।

यदि धन न हो तो श्रम देकर उसकी पूर्ति हो सकती है । जुर्माना न दे सकने वाले अपराधी को अमुक समय तक जेल में रहकर समाज की क्षति पूर्ति करनी पड़ती है । अपराध व्यक्ति विशेष के साथ अथवा किसी संस्थान के साथ हुआ, पर सरकार उसका जुर्माना वसूल करती है। कारण स्पष्ट है। सरकार समाज की प्रतिनिधि है। व्यक्ति विशेष के साथ हुए अपराध भी प्रकारान्तर से समाज के साथ बरता गया अनाचार ही है। अस्तु समाज को अधिकार है कि वह अपने किसी घटक के साथ बरती गई अनीति का प्रतिशोध ले और शासनतन्त्र के माध्यम से उसे दण्डित करे।

आवश्यक नहीं कि जिस व्यक्ति को जिस तरह हानि पहुँचाई गई हो उसकी, उसी रूप में पूर्ति की जाय। बहुत बार वैसा सम्भव ही नहीं रहता। यौन सदाचार नष्ट करने पर उसकी क्षतिपूर्ति ठीक उसी रूप में सम्भव नहीं हो सकती। जो व्यक्ति मर गये हैं या अविज्ञात स्थान को चले गये हैं उनका उसी रूप में कैसे बदला चुकाया जाय ? यहाँ यही मानकर चलना होता है कि सारा समाज एक है।

व्यक्ति उसी के घटक हैं। शरीर के एक अंग के साथ किया गया दुर्व्यवहार समूचे शरीर को कष्ट पहुँचाता है। गाल पर चपत मार देने से मात्र गाल को ही कष्ट नहीं हुआ, समूचे व्यक्ति का अपमान है। ठीक इसी प्रकार व्यक्ति विशेष के साथ किये गये दुर्व्यवहार को पूरे समाज की क्षति माना जा सकता है और उसका बदला समाज सेवा के रूप में चुकाया जा सकता है। फैलाई गई दुष्प्रवृतियों की भरपाई के लिए आवश्यक है कि उतने ही परिणाम में सत्प्रवृतियाँ फैलाने वाले लोक-मंगल के कार्य किये जायें। इस प्रयोजन में धन एवं श्रम का अधिकाधिक उपयोग करना चाहिए। यदि हानि पहुँचाने के बदले उससे अधिक वजन के सेवा कार्य किये गये तो इसमें भी लाभ ही लाभ है। पुण्य की बढ़ी हुई मात्रा अपने लिए उज्ज्वल भविष्य का आधार बनेगी। चिन्ता तो तब होनी चाहिए जब पाप की तुलना में पुण्य कम परिमाण में बन पड़ रहा हो।

यहाँ यह नहीं सोचा जाना चाहिए कि पाप तो बहुत भारी किये हैं उनके बदले में उतना पुण्य तो बन नहीं पड़ेगा। इसलिए थोड़ा करने से क्या लाभ? तब न करना ही ठीक है। हमें सोचना चाहिए कि जितना चुक सकें उतना चुकाने के लिए तो पूरी ईमानदारी और पूरी शक्ति के साथ प्रयत्न किया ही जाय। यदि

वस्तुत: विवशता ही होगी तो परमेश्वर परिस्थितियों को समझते हैं वे भावना के अनुरूप निर्वाह भी कर सकते हैं। दिवालिये से एक अंश लेकर ही ऋण देने वाले उसका छुटकारा कर देते हैं। बैंकें भी अपनी पूँजी डूबती देख कर कर्जदार से समझौता करती हैं और कम लेकर भी झगड़ा समाप्त कर लेती हैं। साहूकार जब देखते थे कि आसामी के पास कुछ नहीं है तो जितना वह दे सके, लेकर छुटकारा लिख देते थे ताकि भविष्य के लिए लेने-देन फिर शुरू हो सके। ऐसी व्यवस्था भगवान के यहाँ तथा समाज के विधान में भी है। यदि प्रायश्चित की क्षतिपूर्ति के लिए सच्ची व्याकुलता है और ईमानदारी के साथ शक्ति भर प्रयास किया गया है तो उस सद्भावना की यथार्थता की परखते हुए विधि-विधान में भी इतनी लोच-लचक विद्यमान है कि उतने भर से पाप कृत्यों का समाधान हो सके और अन्त:करण के परिमार्जन का वह लाभ मिल सके जो प्रायश्चित विधान का मूलभूत उद्देश्य है।

अभिवर्धन से पूर्व परिशोधन आवश्यक

अभिवर्धन से पूर्व परिशोधन की आवश्यकता सामान्य जीवन में सर्वत्र समझी जाती है, पर आत्मिक प्रगति का प्रसंग जब आता है तो उस ओर से एक प्रकार मुँह ही मोड़ लिया जाता है। इस उपेक्षा का ही कारण है कि प्रगति के लिए किए गये प्रयास प्राय: निरर्थक चले जाते हैं और यह शिकायत बनी रहती है कि आत्मिक क्षेत्र की सफलताएँ प्राप्त करने के लिए जो उपाय बताये गये, वे सारगर्भित नहीं थे अधिकांश साधकों को ऐसी ही असमंजस की स्थिति में फँसा और निराशा से भिन्न मन: स्थिति की ओर जाता देखा जाता है। आरम्भिक उत्साह को बहुत समय तक स्थिर रखने वाले कोई विरले ही दीखते हैं। इसमें अधीरता तो एक कारण है ही, पर उस कठिनाई की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती, जिसके कारण साधनायें अपने प्रभाव का कोई परिचय नहीं करतीं और आशा का कुसुम असमय में ही मुरझाने लगता है

तथ्यों को खोजने पर एक भयंकर भूल सामने आती है कि अभिवर्धन से पूर्व परिशोधन के सिद्धान्त की उपेक्षा कर दी जाती है। सरलतापूर्वक जल्दी उपार्जन के लोभ में ऐसी आतुरता अपनाई जाती है जिसके अत्युत्साह में परिशोधन की प्रक्रिया पूरी करने के लिए ठहरना बन ही नहीं पड़ता। फलत: एकांगी प्रयास अधूरे रहते हैं, सफलता के लिए समग्र प्रयास चाहिए। आधी अधूरी प्रक्रिया हर काम में असफलता उत्पन्न करती है तो फिर आत्मिक क्षेत्र ही उसका अपबाद कैसे रह सकता है साधनाओं की असफलता का मूल कारण यह अधूरापन ही होता है जिसमें परिशोधन जैसी आरम्भिक आवश्यकता को पूरा किये बिना ही आगे की छलाँग लगादी गई। दुष्कर्मों के कारण चित्त पर जमे हुए कुसंस्कारों की मोटी परतें आत्मिक प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा हैं। उन्हें हटाने को परिशोधन' कहते हैं। उपासना का महत्त्व कृषि कर्म करने, उद्यान लगाने जैसा है जिसके लिए बीजारोपण से भी पूर्व भूमि शोधन की आवश्यकता है। अच्छी तरह जोतना, भूमि के कंकड़-पत्थर हटाना, खरपतावार उखाड़ना, नमी रखना, खाद देना जैसे कई काम करके भूमि को इस योग्य बनाया जाता है कि उसमें बोया हुआ बीज ठीक तरह उग सके। अंकुरों को बढ़ने और फल-फूलने की स्थिति तक पहुँचने के लिए उपयुक्त भूमि की आवश्यकता होती है। यदि उसके बनाने में आनाकानी की गई है और जल्दी फसल कमाने के लोभ में साधना का श्रम निरर्थक समझा गया है तो उसे भूल ही जाना कहा जायेगा। जो आरम्भ में तो श्रम बचाने की बुद्धिमत्ता समझा गया था, पर पीछे उसमें बीज भी गँवा बैठने की निराशा ही हाथ लगती है।

आत्मिक प्रगति की साधना का पूर्वार्ध है- आत्मशोधन और उत्तरार्ध है- आत्म विकास। उपासनायें आत्म-विकास का प्रयोजन पूरा करती हैं। इसके लिए योगाभ्यास वर्ग के अनेकानेक विधि-विधानों का प्रचलन है। अपनी रुचि, आवश्यकता और परम्परा के अनुसार उनमें साधक चुनाव करते हैं और प्रगति का उपक्रम आरम्भ करते हैं यह उत्तरार्ध है। यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि उत्तरार्ध से लाभ पाने के नये आधार और दृश्य सामने आते हैं और कुछ पाने की आशा तो बँधती है, पर पूर्वाध की उपेक्षा करके यह छलाँग प्राय: असफल ही होती देखी गई है। पूर्ण असफल न भी हो तो भी उसका प्रतिफल इतना स्वल्प दिखाई देता है जो आरम्भ में सोचे या बताये गये माहात्म्य की तुलना में बहुत ही कम होता है और साधक का मन उदास कर देता है।

होना यह चाहिए था कि विकास प्रयासों का उत्तरार्ध अपनाने के साथ-साथ पूर्वाध का परिशोधन पक्षी भी ध्यान में रखा गया होता। इसे तप साधना कहते हैं। इसके हलके भारी अनेकों प्रकार हैं। उन्हें अपनाने से मनोभूमि की कुसंस्कारिता हटती है और उर्बरता उत्पन्न होती है। यही भूमि शोधन है जिसमें अंकुर उपजाने जैसे उत्साहवर्धक दृश्य तो तत्काल सामने

नहीं आते, पर दूरदर्शिता के सहारे निकट भविष्य में अभीष्ट सफलता मिलने का आश्वासन अवश्य मिलता है। अस्तु साधना की सनातन परम्परा में आत्मशोधन की तपश्चर्या की भी उतनी ही आवश्यकता और महत्ता बताई गई है जितनी कि उपलब्धियों की झलक दिखाने वाली योग साधनाओं को। अदूरदर्शिता की भूमि की उखाड़-पछाड़ बेकार लगती है और अंकुर उपजाना या पौद लगाना प्रत्यक्ष लाभदायक दीखता है। इतने पर भी तथ्य तो तथ्य ही रहेंगे। शोधन की उपेक्षा करके उपार्जन की उतावली अन्ततः निराशाजनक ही सिद्ध होती है।

उपासना विधानों का प्रचलन इन दिनों तेजी पर है। बताने वाले ऐसे गुरुओं की बाढ़-सी आई हुई है जो बहुत ही सरल पूजा प्रक्रिया बताकर लम्बे-चौड़े लाभ मिलने का आश्वासन देकर पहली ही बार अनेकों को आकर्षित कर लेते हैं। उनका आरम्भ कर देने वाले लोगों की भी कमी नहीं रहती । क्योंकि वे बहुत ही सरल होते हैं। इतने सरल जिससे शारीरिक-मानसिक या अन्य किसी प्रकार का दबाव नहीं पड़ता। ऐसे ही बाल-क्रीड़ा की तरह उस पूजा पत्री को पूरा कर देना चुटकी बजाने जैसा खेल मात्र होता है। इतना कुछ करने पर भी देवता को प्रसन्न करके और उससे तरह-तरह के वरदान पाने का लाभ यदि मिलता है तो उसे कौन छोड़े। लाटरी खुलने के लाभ की कल्पना करके जब एक रुपये का टिकट खरीदने वाले लाखों मिल सकते हैं तो अत्यन्त सरल पूजा विधि के सहारे प्रचुर लाभ पाने का लोभ कौन संवरण कर सकेगा? स्पष्ट है कि चमत्कारी फलश्रुति बताने वाले को अपनी बताई विधि को अपनाने वालों की कमी नहीं मिलती। किन्तु बताये हुए लाभ न मिलने पर जो निराश होती है वह अनास्था में बदलती जाती है। ऐसी दशा में सस्तेपन का प्रलोभन बनाने वाले के लिए उपासना पद्धति के लिए लोक मान्यता के लिए अहितकर ही सिद्ध होता है।

उपयुक्त मार्ग यही है कि साधना विज्ञान को सही रीति से अपनाया जाय। उचित मूल्य चुकाकर महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त करने के सिद्धान्त पर विश्वास किया जाय। उपासनात्मक प्रक्रिया अपनाने के साथ या उससे भी पहले आत्मशोधन की महत्ता और आवश्यकता समझी जाय। प्रगति के प्रयासों में उसे अनिवार्य रूप में सम्मिलित रखा जाय। रोग और तप दोनों एक-दूसरे के पूरक और अन्योन्याश्रित हैं। इन्हें धुलाई और रंगाई की उपमा दी जा सकती है तप को धुलाई और योग को रंगाई कहा जा सकता है। मैले-कुचैले, चिकनाई और गन्दगी से सने कपड़े पर कोई भी रंग नहीं चढ़ता और रंग का पैसा एवं रंगाई का श्रम निरर्थक चला जाता है। इसी प्रकार साधना मार्ग पर चलते हुए आत्मिक प्रगति के साथ जुड़ी हुई अति महत्त्वपूर्ण सफलताएँ जिन्हें सिद्धियों या विभूतियों के नाम से जाना जाता है- प्राप्त कर सकना तभी सम्भव हो सकता है जब आत्मशोधन और आत्म विकास की दोनों ही प्रक्रियाएँ समानान्तर चलती रहें।

उपासना को योग पक्ष कहते हैं। उसकी विधि व्यवस्था में जप, ध्यान, प्राणायाम, नींद, मुद्रा, बन्ध, प्रत्याहार, समाधि आदि प्रौढ़ स्तर की और पूजा-पाठ, स्नान, देवदर्शन, कथा, कीर्तन जैसे बाल स्तर के अनेकानेक उपचारों का समावेश है। आत्मा की परमत्मा से जोड़ने वाली-क्षुद्रता को महानता के साथ सम्बद्ध करने वाली, व्यवहार में आदर्श भर देने वाली और जीवात्मा को परमात्मा बना देने वाली यह समस्त गतिविधियाँ योग कहलाती हैं। योग का अर्थ है जोड़ना। योग साधना को, उपासना प्रक्रिया को आत्मिक प्रगति का उत्तरार्ध कहते हैं।

परिशोधन को तपश्चर्या कहते हैं-इस प्रकरण में अपनी अवांछनीय आदतों और मान्यताओं को उलटने के लिए अन्तःक्षेत्र में जमी कुसंस्कारिता से संघर्ष करना पड़ता है और आदर्श पालन के लिए कष्ट कठिनाई को जानबूझकर आमन्त्रित करना और हँसते-हँसते सहना होता है। इसी स्तर के हलके भारी क्रिया-कलापों की तपश्चर्या करते हैं व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य, मौन, अभ्यस्त सुविधाओं का परित्याग, मितव्ययता एवं सादगी का वरण, सत्कार्यों के लिए श्रमदान एवं साधनों का अंशदान इसी वर्ग में आते हैं। परमार्थ के लिए किये जाने वाले सभी पुण्य प्रयास इसी श्रेणी में आते हैं। साधना की प्रौढ़ता में दोनों वर्गों का समावेश आवश्यक है।

धर्मशास्त्र में पाप निवृत्ति और पुण्य प्रवृत्ति के दोनों उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उपयुक्त साधना चान्द्रायण तप बताया गया है। इस पुण्य प्रक्रिया के पाँच प्रमुख भाग यह हैं- (१) एक महीने तथा आहार के घटने-बढ़ने वाला उपवास (२) गुप्त पापों का प्रकटीकरण (३) आन्तरिक परिवर्तन कर सकने वाले वातावरण में निवास और अनुशासन का प्रतिपालन (४) अन्तःकरण को परिष्कृत करने वाला योगाभ्यास युक्त तप साधन। (५) दुष्कर्मों की क्षतिपूर्ति और पुण्य वर्धन की परमार्थ परायणता। इन्हें पूरा करने से चान्द्रायण तप सम्पन्न होता है। मात्र एक महीने का उपवास ही चान्द्रायण नहीं है।

एक महीने की निर्धारित ब्रह्म वर्चस् साधना क्रम में इन पाँचों का समन्वय है।

(१) पूर्णिमा से पूर्णिमा तक एक महीने का उपवास रहता है। पूर्णिमा को पूर्ण आहार कर उसका चौदहवाँ अंश कृष्ण पक्ष में हर दिन घटाया जाता है। शुक्ल पक्ष में उसी क्रम से बढ़ाते

रहते हैं। अनभ्यास लोगों को 'शिशु' चान्द्रायण कराया जाता है और मनस्वी लोगों को यति चान्द्रायण। यह स्वास्थ्य सम्वर्धन के लिए शारीरिक काया-कल्प जैसा प्रयोग है। इससे रोग की जड़े कटती हैं। परम सात्विक हविष्यान्न ही पेट में जाने से विचार परिष्कार और सद्भाव सम्वर्धन का उद्देश्य बड़ी अच्छी तरह पूरा होता है। पंच गव्य सेवन, गौ मूत्र से संस्कारित हविष्यान्न का आहार आदि के माध्यम से गौ सम्पर्क भी सधता रहता है। टयास बुझाने के लिए मात्र गंगाजल पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

(२) गुप्त पापों को प्रकटीकरण साधना के मार्गदर्शक के सम्मुख करके चित्त की भीतरी परतों पर जमी हुई दुराव की जटिल ग्रन्थियों को खोला जाता है। मानसिक रोगों के निराकरण का यह बहुत ही उत्तम उपचार है। जो किया जा चुका उसके परिमार्जन के लिए क्या करना चाहिए यह परामर्श प्राप्त करना भी इसी प्रकटीकरण का अंग है।

शीर्ष संस्कार इसी प्रयोजन के लिए है। पूर्ण मुण्डन तो नहीं कराया जाता, पर बाल थोड़े छोटे अवश्य हो जाते हैं। जिसका तात्पर्य है संचित दुष्ट विचारों का परित्याग । बच्चों का मुण्डन संस्कार भी जन्म-जन्मान्तरों की पशु-प्रवृत्तियों को मस्तिष्क में से हटाने के उद्देश्य से ही किया जाता है। बाल छाँटने के अतिरिक्त गोमूत्र गोमय आदि मन्त्र विधान सहित शीर्ष संस्कार किया जाता है। साधक अनुभव करता है कि इस धर्म कृत्य के साथ साथ उसके मन: संस्थान में अति महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहा है।

(३) वातावरण का मनुष्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व के परिवर्तन प्रयास में वातावरण का परिवर्तन आवश्यक माना गया है। ब्रह्मवर्चस् आरण्यक में वैसी समुचित सुविधा उपलब्ध है। परिमार्जन, संरक्षण और अभिवर्धन के तीनों उद्देश्य पूरे करने वाली त्रिवेणी यहाँ विद्यमान है। दिनचर्या में स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन के चारों तत्व गुंथे हुए हैं। शारीरिक और मानसिक संयम अनुशासन की कठोर विधि व्यवस्था का पालन करना पड़ता है। प्रवचन और परामर्श का दैनिक लाभ मिलता है। दिनचर्या, इतनी अनुशासित और व्यवस्थित रहती है कि उस ढर्रे में ढल जाने वाला भविष्य में अपने आपको सर्वतोमुखी प्रगति में सहायक ढाँचे में ही ढाल लेता है। वातावरण का प्रभाव अभिनव परिवर्तन के रूप में निरन्तर अनुभव होता रहता है।

(४) अन्त:करण में दैवी संस्कारों की जड़ जमाने वाले योगाभ्यास और तप साधन चान्द्रायण के साथ-साथ ही करने होते हैं। सवा लक्ष्य गायत्री पुरश्चरण अनिवार्य रूप से आवश्यक है। गायत्री यज्ञ में नित्य ही सम्मिलित होना होता है। इसके अतिरिक्त उच्चस्तरीय पंचकोशी साधना के लिए पाँच योगाभ्यास निश्चित हैं। जप और ध्यान के अतिरिक्त (१) त्राटक (२) सूर्यविधन प्राणायाम (३) खेचरी मुद्रा (४) सोहम् साधना एवं शक्तिचालिनी प्रक्रिया के रूप में नित्य ही करनी पड़ती है। इन साधनाओं का चेतना क्षेत्र के पाँच प्राणों का और काया क्षेत्र के पाँच तत्वों का परिष्कार होने के साथ साथ जीवन में अभिनव प्राण संचार होता है। शास्त्रों में इसे पंचीकरण योगाभ्यास एवं पंचाग्नि तपश्चर्या कहा है। सर्व साधारण के सध सकने जिंतना ही दबाव इस एक महीने के साधन क्रम में सम्मिलित किया गया है। गायत्री की पञ्चमुखी साधना में पंचकोशों के अनावरण का ग्रन्थि वेधन का रहस्यमय विधान इन्हीं पाँच साधनाओं के अन्तर्गत आ जाता है। अन्त:चेतना के यह पाँच उभार देवताओं के वरदान जैसे चमत्कार प्रतीत होते हैं।

(५) पापों की क्षति पूर्ति एवं पुण्य सम्पदा की अभिवृद्धि के लिए चान्द्रायण व्रत की पूर्णाहुति के रूप के कुछ अवाँछनीयताओं का परित्याग और कुछ परमार्थों को अपनाने का संकल्प करना होता है। संग्रह का अंश दान तीर्थयात्रा के रूप में धर्म प्रचार का श्रमदान, पुण्य प्रयोजनों में सहकार, सत्सृजन में योगदान जैसे कुछ कदम ऐसे उठाने के लिए परामर्श दिया जाता है जिनके सहारे अन्त:करण पर परिवर्तन को व्यवहार में उतारने की छाप प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगे। आन्तरिक काया-कल्प-चान्द्रायण तपश्चर्या का उद्देश्य है। यह कल्पना क्षेत्र तक ही सीमित बनकर न रह जाय वरन् व्यवहार में भी परिलक्षित होने लगे। इसके लिए क्रियात्मक कदम उठाने के लिए वैसा परामर्श मिलता है जो प्रस्तुत परिस्थितियों में सरलतापूर्वक शक्य हो सके। उपलब्ध सुसंस्कार परिपक्वता के लिए- दूसरों के सम्मुख परिवर्तन का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए कुद साहसिक कदम उठाने पड़ते हैं। यही चान्द्रायण की पूर्णहुति है।

बीज को वृक्ष रूप में परिणित करना एक चमत्कार है। व्यक्ति को तुच्छ से महान भी एक दैवी वरदान है। बीज अनायास ही वृक्ष नहीं बन जाता। उसे उगने से लेकर फूलने-फलने की परिपक्व स्थिति तक पहुँचने में समय और साधनों की आवश्यकता पड़ती है। (१) भूमि (२) खाद (३) पानी (४) सुरक्षा एवं (५) उत्पादक की श्रमशीलता का समन्वय आवश्यक होता है। ठीक इसी प्रकार ईश्वराधन को सफल बनाने के लिए पाँच परिपोषणों की आवश्यकता पड़ती है। इन्हीं पाँचों को समन्वय ब्रह्म वर्चस् साधना में है। इसका सुनियोजित तप साधना की सामूहिक व्यवस्था से उस युग शक्ति का उद्भव होगा जिसकी

सामर्थ्य से नये युग के सृजन की अनेकों आवश्यकताऐं पूर्ण हो सकेंगी। व्यक्ति में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण के लिए जिन सृजन शक्तियों को युगान्कारी भूमिका निभानी है, उनकी धार तेज करने के लिए यह एक महीने की चान्द्रायण तपश्चर्या अति महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी यह सुनिश्चित है।

चान्द्रायण का सामान्य व्रत विधान

शास्त्रों में प्रायश्चित्त प्रकरण में कई प्रकार के विधानों का वर्णन है।

कृच्छ, अतिकृच्छ, तप्तकृच्छ, सौम्य कृच्छ, पाद कृच्छ, महा कृच्छ, कृच्छाति कृच्छ पर्ण कृच्छ, सान्तापन, कृच्छ सान्तापन, महा सान्तापन, प्राजापत्य, पराक, ब्रह्मकूर्य आदि विधानों का उल्लेख है। इनमें चान्द्रायण व्रतों को तप में सर्व प्रमुख माना गया है।

उसकी क्रिया-प्रक्रिया सर्वविदित हैं। मोटे नियम इस प्रकार हैं-

एकैकं ह्रासयेत्पिंड कृष्णे, शुक्ले च वर्द्धयेत्।
इन्दुक्षयेन पुंजीत एवचान्द्रायणो विधि।

-वशिष्ट

पूर्णमासी को पूर्ण भोजन करके एक-एक ग्रास घटाता जाय। चन्द्रमा न दीखने पर अमावस्या और प्रतिपदा को निराहार रहे। पीछे एक-एक ग्राम बढ़ाकर शुक्ल पक्ष के १४ दिनों में पूर्ण आहार तक पहुँच जाय।

ग्रास से तात्पर्य मुर्गी के अण्डे जितना तथा मुँह में जितना आहार एक बार में आ सके उतना है।

नित्य स्नायी मिताहारी गुरुदेव द्विजार्चक:।
पवित्राणि जपेच्चैव जुहुयाच्चैव शक्ति:।।
व्रीहिणाष्टिक मुद्गाश्च गोधूम सतीला यवा:।
चरुभैक्ष्यं सक्तुब्रणा: शांवांघृत दधि पय:।।

-अग्नि पुराण

नित्य स्नान करे, भूख से कम खाये, गुरु देव, ब्रह्म परायणों का अभिवादन करे, पवित्र रहे, जप करे, हवन करे।

जौ, चावल मूँग, गेहूँ, तिल, हविष्यान्न, सत्तू, शाक, दूध, दही, घृत पर निर्वाह करे।

चन्द्रायण के चार भेद हैं (१) पिपीलिका (२) यव मध्य (३) यदि (४) शिशु। इन चारों के अन्य नियम समान हैं, पर आहार सम्बन्धी कठोरता, न्यूनाधिक है। यदि तपश्चर्या अधिक कठिन है और शिशु व्रत साधन में शरीर और मन की स्थिति को देखते हुए सरलता रखी गई है।

पाप पर से पर्दा हटाया जाय

पापों के प्रकटीकरण की प्रक्रिया का एक स्वरूप तो मुण्डन कराने- बाद कटवाने के रूप में प्रतीक चिह्न की तरह है। दूसरा चरण है प्रकटीकरण। यह मात्र किसी सत्पात्र के सम्मुख ही हो सकता है। सार्वजनिक घोषणा कर सकने का किसी में साहस हो तो और भी उत्तम। पर इसे प्रकटीकरण में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि व्यभिचार जैसी प्रक्रियाओं में साथी का नाम, पता आदि प्रकट न किया जाय।

पापों पर पड़े हुए पर्दे को उठाने और प्रकटीकरण की विधा पूरी करने के लिए शास्त्र निर्देश इस प्रकार हैं-

यथा यथा नरोऽधर्म स्वयं कृत्वाऽनुभाषते।
तथा तथा त्वचेवाहि स्तेनाधर्मेण मुच्यते।।

-मनुस्मृति

जैसे-जैसे मनुष्य अपना अधर्म लोगों में ज्यों का त्यों प्रकट करता है, वैसे-वैसे ही वह अधर्म से उसी प्रकार मुक्त होता है जैसे केंचुली से साँप।

समत्वे सति राजेन्द्र तयो: सुकृत पापया:।
गूहितस्य भवेद् वृद्धि कीर्तितस्य भवेत् क्षय:।।

-महाभारत

राजेन्द्र जब पुण्य पाप दोनों समान होते हैं, तब जिसको गुप्त रखा जाता है, उसकी वृद्धि होती है और जिसका वर्णन कर दिया जाता है उसका क्षय हो जाता है।

तस्मात् प्रकाशयेत् पापं स्वधर्म सततं चरेत् ।
क्लीवा दु:खी च कुष्ठी च सप्त जन्मानि वै नर:।।

-पाराशर स्मृति

पाप को छिपाने से मनुष्य सात जन्मों तक कोढ़ी, दु:खी नपुंसक होता है। इसलिए पाप को प्रकट कर देना ही उत्तम है।

आचक्षाणेनतत्पापमेतत्कर्म्मास्मिशाधिमाम्।

वह अपने किये हुए पाप को मुँह से कहता हुआ दौड़े कि मैं ऐसे कर्म के करने वाला हूँ मुझे दण्डाज्ञा प्रदान कीजिए।

कृत्वा पापं न गूहेत् गुह्यमानं विवर्द्धते ।
स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा थर्मविद्धयो निवेदयेत्।।
ते हि पापे कृते वेद्या हन्तारश्चैव पाप्मनाम्।
व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमन्तो रुजापहा:।।

-पाराशर स्मृति

पाप कर्म बन पड़ने पर छिपाना नहीं चाहिए। छिपाने से वह बहुत बढ़ता है। पाप छोटा हो या बड़ा उसे किसी धर्मज्ञ से प्रकट अवश्य कर देना चाहिए। इस प्रकार उसे प्रकट कर देने से पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे चिकित्सा करा लेने पर रोग नष्ट हो जाते हैं।

रहस्यं प्रकाश्चं च ।

-प्रायश्चित्तेन्दु शेखर

पापं नश्यति कीर्तनात् ।

-धर्म सिन्धु

रहस्य के पर्दे को उठा देना चाहिए। पाप के प्रकटीकरण से वे धुल जाते हैं।

तस्मात् पापं न गुह्येत् गुहमानं विवर्धयेत् ।
कृत्वातत् साधुरवमेयतेतत् शमयन्त्युत् ।।

-महा० अनु०

अत: अपने पाप को न छिपावें, छिपाया हुआ पाप बढ़ता है। यदि कभी पाप बन गया हो तो उसे साधु पुरुषों से कह देना चाहिए वे उसकी शान्ति कर देते हैं।

परिशोधन प्रक्रिया में प्रकटीकरण भी एक उपचार है। जो कुकृत्य बन पड़े हैं उनका प्रकटीकरण आवश्यक है। पर वह होना उन्हीं के सामने चाहिए जो इतना उदार हो कि चिकित्सक की करुणा से अपराधों को धैर्यपूर्वक सुन सके और घृणा धारण किये बिना उन्हें अपने भीतर पचा सके। प्रकट करने वाले की निन्दा न होने दें। उसे उस प्रकटीकरण के कारण लोकनिन्दा के द्वारा होने वाली क्षति न पहुँचने दें, वरन् उसे स्नेहपूर्वक सत्परामर्श देकर सुधरने में सहायता करें। ऐसे व्यक्ति जब तक न मिलें तब तक प्रकटीकरण नहीं ही करना उचित है।

चान्द्रायण से शक्ति-अभिवर्धन

चान्द्रायण तप का एक निषेध पक्ष है- कष्ट सहन। जिसमें आहार घटाने-बढ़ाने की तितीक्षा प्रमुख है। दोषों के प्रकटीकरण से भी पश्चात्ताप करने और लज्जित होने का मानसिक कष्ट है। क्षतिपूर्ति के लिए दान-पुण्य करना अर्थ दण्ड है। तीर्थयात्रा आदि सत्कर्मों के लिए श्रमदान जैसे परमार्थों में भी कष्ट सहने और त्याग करने की ही बात है। यह सारा समुच्चय आत्म-प्रताड़ना परिकर का है। परिशोधन क़ी प्रक्रिया निषेधात्मक होने के कारण कष्ट सहने की ही हो सकती है।

दूसरा विधायक पक्ष है- योंग, जिसमें परित्याग की रिक्ता पूर्ण करनी पड़ती हें। यह उपार्जन है। आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना योग है। योग से हर किसी का परिमाण बढ़ता है। विस्तार, मूल्य और सामर्थ्य में वृद्धि होती है। परित्याग से जो घाटा पड़ा था उसकी कमी योग की कमाई द्वारा पूरी हो जाती है। शौच जाने से पेट खाली होता है। इस कारण लगने वाली भूख की पूर्ति भोजन से करनी पड़ती है, तभी उस युग्म उपक्रम से शरीर यात्रा का पहिया आगे लुढ़कता है।

ब्रह्म वर्चस् साधना का यह भूमि शोधन पथ चान्द्रायण तप से पूरा होता है। इसके उपरान्त बीज बोने और खाद पानी लगाने की अभिवर्धन उद्देश्य के लिएं की जाने वाली प्रक्रिया योग साधना द्वारा सम्पन्न होती है।

ब्रह्मवर्चस् योगाभ्यास पंचमुखी गायत्री की पंचकोशी साधना है। पाँच प्राणों से चेतना का और पाँच तत्वों से काया का निर्माण हुआ है। इन दोनों प्रवाहों के मध्यवर्ती दिव्य शक्ति स्रोतों को पंचकोश कहते हैं। योगशास्त्र के विद्यार्थी जानते हैं कि अन्नमय कोश प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश यह पाँच शक्तिशाली आवरण आत्मा पर चढ़े हैं। इन्हें सुरक्षा कवच वाहन, आयुध आदि भी कहा जा सकता है। यह रहस्यमय रत्न भण्डार हैं जिनमें सिद्धियों और विभूतियों के मणिमुक्तक प्रचुर परिमाण में भरे पड़े हैं। चाबी न होने पर तिजोरी में भरी धन राशि भी अपने किसी काम नहीं आती और अधिपति को भी अभावग्रस्त रहना पड़ता है। इसी प्रकार इन दिव्य कोशों का द्वार बन्द रहने पर- आवरण चढ़ा रहने पर मनुष्य को दु:खी दरिद्रों की तरह गया गुजरा जीवनयापन करना पड़ता है।

उच्चस्तरीय गायत्री उपासना को पंचकोशों की अनावरण साधना कहते हैं। इसी योगाभ्यास को हठयोग की पद्धति के अन्तर्गत चक्रवेधन एवं कुण्डलिनी जागरण साधना कहते हैं। षटचक्रों का नाम सभी ने सुना है। भ्रू-मध्य भाग से मस्तिष्क प्रारम्भ होता है और वह मेरुदण्ड में होकर जननेन्द्रिय क्षेत्र तक चला जाता है। यह समूचा परिधि ब्रह्मलोक या ब्रह्मरंध्र कहलाता है। इसमें सात शक्ति संस्थान हैं। इनमें से छ: मध्यवर्ती सक्रिय स्रोत षटचक्र हैं। एक इन सबका अधिपति नियन्त्रक है, जिसे महाचक्र, सहस्रार चक्र कहते हैं। इस प्रकार यह पूरा परिकर गिना जाय तो सप्तचक्र बन जाते हैं। इन्हीं का पिण्ड- ब्रह्माण्ड में अवस्थित सप्त ऋषि, सूर्य के सप्त अश्व, सप्त लोक, सप्त सिन्धु, सप्तमेरु, सप्त द्वीप, सप्त तीर्थ आदि अलंकारिक निरूपणों के साथ अध्यात्म शास्त्रों में वर्णन मिलता है।

सप्त चक्रों की भी एक विवेचना यह है कि नीचे का मूलाधार और ऊपर का सहस्रार यह दोनों क्रमश: प्रकृति और पुरुष के शक्ति और शिव के, रयि और प्राण के, धरती और स्वर्ग के प्रतीक हैं। पृथकता की स्थिति में यह दोनों बहुत ही स्वल्प काम कर पाते हैं। मूलाधार प्राय: प्रजनन का ताना-बाना बुनता रहता है और शरीर को ऊर्जा, साहस, उत्साह आदि प्रदान करता है। सहस्रार की अर्धमूर्छित स्थिति में अचेतन और चेतन दोनों

मिलकर कायिक गतिविधियों का संचालन और चिन्तन वर्ग के प्रयोजन पूरे करते रहते हैं। यह इन दोनों का निर्वाह मात्र के लिए चलते रहने वाला स्वल्प कार्य है। यदि उन दोनों की तन्द्रा छुड़ा दी जा सके और वे समर्थ सक्रिय हो उठें तो फिर समझना चाहिए कि अनन्त शक्तियों के- सिद्धियों के स्रोत खुल पड़ेंगे और मनुष्य साधारण से असाधारण बन जायेगा। ऋषि, देवता और अवतारी मनुष्य इसी स्तर के होते हैं उनकी आन्तरिक मूर्छना जागृति में परिणित हो गई होती है। कुम्भकरण का पौराणिक उपाख्यान इस स्थिति की झाँकी कराता है। जब भी वह देत्य जागता था अपनी सामर्थ्य का हाहाकारी परिचय प्रस्तुत करता था। मूलाधार की सामर्थ्य को सर्पिणी कहते हैं और सहस्त्रार को महासर्प कहा गया है। इन दोनों के मिलन को कुण्डलिनी जागरण कहते हैं। बिजली के अलग अलग पड़े तार जब भी मिलते हैं तो चिनगारी छूटती और शक्तिधारा प्रवाहित होती है। इसी स्थिति को कुण्डलिनी जागरण कहते हैं। यह सौभाग्य सुअवसर जिन्हें प्राप्त होता है वे भौतिक सिद्धियों और आत्मिक विभातियों से सुसम्पन्न पाये जाते हैं। दे आत्मोकर्ष का परम लक्ष्य प्राप्त करते और अपूर्ण से पूर्ण बनते हैं। ईश्वर प्राप्ति इसी स्थिति का नाम है।

सहस्त्राधार को महासर्प कहा गया है। विष्णु की शेष शैया भी वही है। शिव के अंग में वही लिपटा है। समुद्र मंथन में रस्सी का काम वही करता है। सर्पिणी के रूप में कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन प्राय: होता रहता है। वह अधोमुखी निद्रित स्थिति में पड़ी रहती है। जाग्रत होने पर ऊपर उठती और अग्नि शिखा के रूप में देवयान मार्ग से ब्रह्मलोक तक पहुँचती है। यह अंलकारिक वर्णन इस बात का है कि जननेन्द्रिय मूल में पड़ी हुई यह महाशक्ति जब ऊर्ध्वगामी बनती है तो मेरुदण्ड मार्ग से ब्रह्मरन्ध तक जा पहुँचती है और उस क्षेत्र में सन्निहित अगणित दिव्यताओं को अनायास ही जागृत करती है। इसी स्थिति में अतीन्द्रिय क्षमताओं का जागरण होता है। समुद्र मंथन से चौदह रत्न निकलने के उपाख्यान में मूलाधार के कुण्डगह्वर को समुद्र, मेरुदण्ड को सुमेरु पर्वत, सूर्यविधन प्राणायाम के इड़ा पिंगला संघर्ष को मंथन माना जाता है। समुद्र मंथन कुण्डलिनी जागरण का महा पुरुषार्थ है। जिसमें चेतना के देव पक्ष और काया के दैत्य पक्ष को मिल-जुलकर साधनारत होना होता है। इसका सत्परिणाम समुद्र मंथन से निकले १४ प्रसिद्ध रत्नों की तरह साधक को दिव्य विभूतियों के रूपों में प्राप्त होता है।

मूलाधार और सहस्त्रार को नीचे वाले महाचक्रों को यदि कुण्डलिनी जागरण साधना के विशेष वर्ग में गिन लिया जाय तो शेष मध्यवर्ती पाँच चक्र की रह जाते हैं। इन्हें पाँच कोश या पाँच चक्र कह सकते हैं। कोश व्याख्या में इन्हें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कहते हैं। चक्र वर्णन में इन्हीं को स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनामृत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र कहा जाता है। यह एक ही तथ्य का दो रूप में वर्णन विवेचन मात्र है। वस्तुत: है एक ही। चक्रों का जागरण या कोशों का अनावरण एक ही बात है। संख्या की दृष्टि से पाँच, छ: या सात की गणना से किसी को भ्रम में पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। गायत्री माता के पाँच मुखो की उच्चस्तरीय साधना परम शान्तिदायिनी और महान शक्तिशालिनी साधना है। इसी प्रक्रिया को ब्रह्मवर्चस् का योगाभ्यास साधना पक्ष समझा जाना चाहिए।

इष्टापूर्ति एवं तीर्थयात्रा

परिशोधन में प्रायश्चित्त साधना तथा क्षतिपूर्ति का समावेश है। चान्द्रायण तप जैसी त्रिशिष्ट साधनाएँ परिशोधन के साथ ही अभिवर्धन आत्मविकास का भी आधार बनती हैं। पापों के तीन वर्ग प्रधान हैं- (१) निरपराध सताना, आक्रमण (२) व्यभिचार बलात्कार, (३) आर्थिक शोषण, अपहरण, चोरी, बेईमानी।

पाप कर्मों का प्रायश्चित करने में पश्चात्ताप वर्ग की पूर्ति, व्रत उपवास से- शारीरिक कष्ट सहने से, तितीक्षा कृत्यों से होती है। किन्तु क्षतिपूर्ति का प्रश्न फिर भी सामने रहता है। इसके लिए पुण्य कर्म करने होते हैं। ताकि पाप के रूप में जो खाई खोदी गई थी वह पट सके पुण्य-पाप का पलड़ा बराबर हो सके। दुष्प्रवृत्तियों को सत्प्रवृत्तियों से ही पाटा जा सकता है। इसलिए दुष्कर्म करके जो व्यक्ति विशेष को हानि पहुँचाई गई- समाज में भ्रष्ट अनुकरण की परम्परा चलाई गई -वातावरण में विषाक्त प्रवाह फैलाया गया , उसको निरस्त तभी किया जा सकता है, जब सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन करने वाले पुण्य कर्म करके उसकी पूर्ति की जाय। समाज को सुखी और समुन्नत बनाने वाली सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन आवश्यक माना जाय। इसके लिए समय, श्रम, एवं मनोयोग लगाया जाय। धर्म प्रचार की पदयात्रा करके लोक प्रेरणा देने वाले तीर्थ यात्रा जैसे पुण्य कर्म किये जायें। जो घटना घट चुकी वह अनहोनी तो नहीं हो सकती। आक्रामक कुकर्मों की क्षतिपूर्ति इसी में है कि लगभग उतने ही वजन के सत्कर्म सम्पन्न किये जायें। इसे ही शास्त्रीय शब्दावली में इष्टापूर्ति भी कहते हैं।

व्यभिचारजन्य पापों का प्रायश्चित्त यही है कि नारी को हेय स्थिति से उबारने के लिए उसे समर्थ एवं सुयोग्य बनाने के

लिए जितना प्रयास पुरुषार्थ बन पड़े उसे लगाने के लिए सच्चे मन से प्रयत्न किया जाय।

आर्थिक अपराधों का प्रायश्चित्त यह है कि अनीति उपार्जित धन उसके मालिक को लौटा दिया जाय अथवा सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के श्रेष्ठ कामों में उसे लगा दिया जाय। इस अर्थ दान को प्रायश्चित्त विधान का आवश्यक अंग इसलिए माना गया है कि अधिकांश पाप अर्थ लोभ में से किये जाते हैं और उनमें न्यूनाधिक मात्रा में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में भौतिक लाभ उठाने का उद्देश्य रहता है। यह अनीति उपार्जित धन अपने लिए और अपने परिवार वालों के लिए समयानुसार भयंकर विपत्तियाँ ही उत्पन्न करता है। भले ही तत्काल उससे कोई कमाई होने और सुविधा मिलने जैसा लाभ ही प्रतीत क्यों न होता हो।

जो कमाया गया है उसे बगल में दाबकर रखा जाय। अनीति उपार्जित सुविधाओं का परित्याग न किया जाय। मात्र घड़ियाल के आँसू बहाकर व्रत, उपवास जैसी लकीर पीट दी जाय तो उतने भर से कुछ बनेगा नहीं। व्रत, उपवास तो अनीति अपनाने से आत्मा पर चढ़ी कषाय-कल्मषों की परत धोने भर के लिए हैं। क्षतिपूर्ति का प्रश्न तो फिर भी जहाँ का तहाँ रहता है। जो अनीति बरती है उसकी हानि को भरपाई कर सकना वर्तमान परिस्थितियों में जितना अधिक से अधिक सम्भव हो उसके लिए उदार साहस जुटाना चाहिए। घटनाओं की क्षति पूर्ति अर्थ दण्ड सहने से भी हो सकती है। रेल दुर्घटना आदि होने पर मरने वालों के घर वालों को सरकार अनुदान देती है। उसमें क्षतिपूर्ति के लिए आर्थिक प्रावधान को भी एक उपाय माना गया है। प्रायश्चित्त विधानों से क्षति पूर्ति की दृष्टि से दान को महत्त्व दिया गया है। दोनों में गौ दान, अन्न दान, उपयोगी निर्माण आदि के कितने ही उपाय सुझाये गये हैं। वे जिससे जितने बन पड़े उन्हें वे उतनी मात्रा में करने चाहिए। कुछ भी न बन पड़े तो श्रम दान, सत्कर्मों में योगदान तो किसी न किसी रूप में हर किसी के लिए सम्भव हो सकता है। शास्त्र कहता है-

सर्वस्व दानं विधित्सर्व पाप विशोधनम्।

-कूर्म पुराण

अनीति से संग्रह किये हुए धन को दान कर देने पर ही पाप का निवारण होता है।

दत्वै वापह्यतं द्रव्यं धनिकस्याभ्यु पापतः।
प्रायश्चित्तं ततः कुर्यात् कलुषस्य पापनुत्तये।।

-विष्णु स्मृति

जिसका जो पैसा चुराया हो उसे वापिस करे और उस चोर कर्म का प्रायश्चित्त करे।

वापिसी सम्भव न हो या आवश्यक न हो तो अनीति उपार्जित साधनों का बड़े से बड़ा अंश श्रेष्ठ सत्कर्मों में लगा देना चाहिए।

आचार्य वृहस्पति के अनुसार-"उपवासः तथा दानः उभौ अन्योन्याश्रित।"

प्रायश्चित में उपवास की तरह दान भी आवश्यक है। दोनों एक दूसरे के साथ परस्पर जुड़े रहते हैं।

प्राज्ञः प्रतिग्रहं कृत्वां तद्धनं सद्गतिं नयेत् यज्ञाद्वा पतितोद्धार पुन्यात् न्याय रक्षणेवापी कूप तड़ागेषु ब्रह्मकर्म समुत्सृजेत्।

-अरुण स्मृति

अनुचित धन जमा हो तो उसे यज्ञ पतिद्वार, पुण्यकर्म, न्याय रक्षण, बावड़ी कुआ, तालाब आदि का निर्माण एवं ब्रह्मकर्मों में लगा दें। अनुचित धनकी सद्गति इसी प्रकार होती है।

तेनोदपानं कर्त्तव्यं रोपणीयस्तथा वटः।

-शातायन

सच्छास्त्र पुस्तकं दद्यात् विप्राय स दक्षिणम्।

-पाराशर

वापी कूप तडागादि देवता यतनानि च।
पतितान्युद्धरेद्यस्तु व्रत पूर्ण समाचरित्।।

-यम

सोपि पाप विशुद्धयर्थ चरेच्चान्द्रायण व्रतम्।
व्रतान्ते पुस्तकं दद्यात् धेनु वत्स समन्वितम्।।

-शातायन

सुवर्ण दानं गोदानं भूमिदानं तथैव च।
नाशयन्त्याशु पापानि अन्यजन्म कृतान्यपि।।

-सम्वर्त

इन अभिवचनों में सत्साहित्य वितरण, विद्यादान, वृक्षारोपण, कुआ, तालाब, देवालय आदि का निर्माण, यज्ञ, दुःखियों की सेवा, अन्याय पीड़ितों के लिए संघर्ष आदि अनेक शुभ कर्मों में क्षति की पूर्ति के रूप में अधिक से अधिक उदारतापूर्वक दान देने का विधान है। इस दान श्रृंखला में गौ दान को विशेष महत्त्व दिया गया है। गौ की गरिमा को शास्त्रों में अत्यधिक महत्व दिया गया है। इसलिए गोदान की महिमा बताते हुए प्रायश्चित व्रतों के साथ उसे भी जोड़कर रखा गया है। यथा-

गोदानं च तथा तेषु कर्त्तव्यं पाप शोधनम्।

-वृद्ध सूर्यारुण

अर्थात् पापशोधन के साथ ही गोदान भी करना चाहिए।

धर्म प्रचार की पदयात्रा-तीर्थ यात्रा

पाप निवृत्ति और पुण्य वृद्धि के दोनों की पूर्ति के लिए तीर्थयात्रा को शास्त्रकारों ने प्रायश्चित की तप साधना में सम्मिलित किया है। तीर्थयात्रा का मूल उद्देश्य है धर्म प्रचार के लिए की गई पदयात्रा। दूर-दूर क्षेत्रों में जन-सम्पर्क साधने और धर्म धारण को लोकामानस में हृदयंगम कराने का श्रमदान तीर्थयात्रा कहलाता है। श्रेष्ठ सत्पुरुषों के सान्निध्य में प्रेरणाप्रद वातावरण में रहकर आत्मोत्कर्ष का अभ्यास करना भी तीर्थ कहलाता है यों गुण, कर्म, स्वभाव की परिष्कृत करने के लिए किये गये प्रबल प्रयासों को भी तीर्थ कहा गया है। तीर्थ का तात्पर्य है तरना। अपने साथ-साथ दूसरों को तारने वाले प्रयासों को तीर्थ कहते हैं। प्रयश्चित विधानों में तीर्थ यात्रा की आवश्यकता बताई गई है।

आज की तथाकथित तीर्थयात्रा मात्र देवालयों के दर्शन और नदी सरोवरों के स्नान आदि तक सीमित रहती है। यह पर्यटन मात्र है। इतने भर से तीर्थयात्रा का उद्देश्य पूरा नहीं होता है। सत्प्रवृतियों के सम्वर्धन के लिए किया गया पैदल परिभ्रमण ही तीर्थयात्रा कहलाता है। यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सम्वर्धन के लिए श्रेष्ठ उपचार भी है। धर्म प्रचार के लिए जन सम्पर्क साधने का पैदल परिभ्रमण जन-समाज कोउपयुक्त प्रेरणायें प्रदान करता है। साथ ही उससे श्रमदान से कर्ता की सत्प्रवृतियों का सम्वर्धन भी होता चलता है ऐसे ही अनेक कारणों को ध्यान में रखकर तीर्थयात्रा को ऐसा परमार्थ कहा गया है जिसे कर सकना प्रत्येक श्रमदान करने में समर्थ व्यक्ति के लिए संभव हो सकता है। तीर्थयात्रा का स्वरूप और माहात्म्य शास्त्रकारों ने इस प्रकार बताया है-

नृणा पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत्।
यथोक्त फलद तीर्थ भवेछुद्वात्मनां नृणाम्।।

पापी मनुष्यों के तीर्थ में जाने से उनके पाप की शान्ति होती है। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है,ऐसे मनुष्यों के लिए तीर्थ यथोक्त फल देने वाला है।

तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्धायुक्तं समाहितः।
कृतपापो विशद्धश्चेत् कि पुनः शुद्ध कर्मकृत्।।

जो तीर्थों का सेवन करने वाला, धैर्यवान्, श्रद्धावान्, श्रद्धायुक्त और एकाग्र चित है, वह पहले का पापचारी हो तो भी शुद्ध हो जाता है, फिर जो शुद्ध कर्म करने वाला है, उसकी तो बात ही क्या है।

यावत् स्वस्योऽस्ति में देहो यावन्नेन्द्रियविक्लवः।
तावत् स्वश्रेयसां हेतुः तीर्थयात्रा करोम्यहम्।।

जब तक मेरा शरीर स्वस्थ है, जब तक आँख, कान आदि इन्द्रियाँ सक्रिय हैं, तब तक श्रेय प्राप्ति के लिए तीर्थयात्रा करते रहने का निश्चय करता हूँ।

तीर्थयात्रा का पुण्यफल धर्मशास्त्रों में पग पग पर भरा पड़ा है। उसके कारण पाप प्रवृत्तियों का विनाश और उत्कृष्ट सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन का जो प्रयास बन पड़ता है वही पुण्य फल बनकर परम कल्याणकारी सिद्ध होता है। तीर्थयात्रा का पुण्यफल बताते हुए कहा गया है-

निष्पापत्वं फलं बिद्धि तीर्थस्य मुनिसत्तम?
कृषेःफलं यथा लोके निष्पन्नान्नस्य भक्षणम्।।

-देवी भागवत

जिस प्रकार कृषि का फल अन्न उत्पादन है। उसी प्रकार निष्पाप बनना ही तीर्थयात्रा का प्रतिफल है।

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति।
यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति।
अन्नादधुर्य जमानाय लोकं
दिशो भूतानि यद कल्पयन्त।।

-अथर्व वेद

जिस तरह यज्ञ करने वाले यजमान यज्ञादि द्वारा बड़ी बड़ी आपत्तियों से मुक्त होकर पुण्यलोक की प्राप्ति करते हैं, उसी प्रकार तीर्थयात्रा करने वाले तीर्थयात्री तीर्थादि द्वारा बड़े-बड़े पापों और आपत्तियों से मुक्त होकर पुण्यलोक की प्राप्ति करते हैं।

अनुपातकिनस्त्वेते महापातकिनो यथा।
अश्वमेधेन शुद्धयन्ति तीर्थानुसरणेन च।।

-विष्णु स्मृति

महापातकी और उपपातकी के शुद्ध करने वाले दो ही साधन हैं- यज्ञ और तीर्थाटन।

अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्य नभिजम्य च।
अदत्वा कांचनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते ।।

-महाभारत

जो तीन रात्रि तक उपवास नहीं कर सका, जिसने कभी तीर्थ यात्रा नहीं की जिसने परमार्थ के लिए दान नहीं किया, ऐसा व्यक्ति दरिद्र होता है।

ऋषिणां परमं गुह्यमिदं भरत सत्रम।
तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते।।

-महाभारत

ऋषियों का गुह्य मत यह है कि यज्ञों में भी तीर्थ यात्रा की विशेषता है।

तीर्थाटन की महिमा का बखान करने वाले कई प्रसंग तुलसीकृत रामचरितमानस में आते हैं।

तीर्थाटन साधन समुदाई,
विद्या विनय विवेक बड़ाई।
जहँ लगि साधन वेद बखानी,
सब कर फल हरि भगति भवानी।

-उत्तरकाण्ड

चरन राम तीरथ चलि जाहीं।
राम बसहु तिन्ह के उर माहीं।।

-अयोध्याकाण्ड

सूरसागर में महात्मा सूरदास तीर्थयात्रा न कर सकने को एक दुर्भाग्य मानते हैं और उसका सुयोग न बन पड़ने पर दुःख प्रकट करते हुए कहते हैं

मन की मन ही मांहि रही,
ना हरि भजे न तीरथ सेये, चोटी काल गही।।

-सूरदास

विधिपूर्वक तीर्थ करने से तात्पर्य है उस परिभ्रमण के साथ साथ अपनी दुष्प्रवृतियों को छोड़ने और सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए भाव भरा प्रबल प्रयास करना।

तीर्थान च यथोक्तेन विधिनां संचरन्ति ये।
सर्व द्वन्द्वसहा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः।।

-नारद पुराण

जो यथोक्त विधिपूर्वक तीर्थयात्रा करते हैं, सम्पूर्ण द्वन्द्वों को सहन करने वाले वे धीर पुरुष स्वर्ग में जाते हैं।

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थ माविशेत्।
न तेन किंचिदप्राप्त तीर्थाभिगमनाद् भवेत्।।

-नारद पुराण

जो काम, क्रोध और लोभ को जीतकर तीर्थ में प्रवेश करता है, उसे तीर्थ यात्रा से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

यदि तीर्थाटन पर्यटन मनोरंजन के लिए किया गया है, तो उसका उतना ही लाभ है, किन्तु यदि उसे आत्म परिष्कार के लिए प्रबल प्रयत्न करने के उद्देश्य रूप से किया गया है तो उसका प्रतिफल श्रद्धा के अनुरूप ही होगा। धर्म प्रयोजनों में यह श्रद्धा ही प्रमुख निमित्त है।

मन्त्रे तीर्थे द्विजे दैवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।।

तीर्थ, मन्त्र ब्राह्मण, देवता, औषधि, गुरु तथा ज्योतिषी में जिसकी जैसी जितनी श्रद्धा भावना होती है, उसे वैसा ही फल मिलता है।

येनैकादश संख्यानि यन्त्रितानीन्द्रियाणि वै।
स तीर्थ फलमाप्नोति नरोऽन्यः क्लेशभाग् भवेत्।।

जिसने अपनी ग्यारह (दस इन्द्रियाँ और मन) इन्द्रियों को वश में कर रखा है, वही तीर्थयात्रा का वास्तविक फल पाता है दूसरे अजितेन्द्रिय मनुष्य तो केवल क्लेश के ही भागी होते हैं।

तीर्थ में व्यक्ति का परिष्कार होता है यह ठीक है। पर यह भी सत्य है कि उत्कृष्ट स्तर के ब्रह्मज्ञानी किसी स्थान को तीर्थ बना देते हैं।

यो न क्लिष्टोऽपे भिक्षेत ब्राह्मणस्तीर्थ सेवकः।
सत्यवादी समाधिस्थः स तीर्थ स्योपकारकः।।

जो तीर्थ सेवी ब्राह्मण अत्यन्त क्लेश पाने पर भी किसी से दान नहीं लेता, सत्य बोलता और मन को वश में रखता है, वह तीर्थ का महिमा बढ़ाने वाला है।

भवद्विधा भागवतास्तीर्थ भूताः स्वयं विभो।
तीर्थो कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः स्थेन गदाभृता।।

- भागवत

युधिष्ठिर विदुर से कहते हैं, आप जैसे भक्त स्वयं ही तीर्थ रूप होते हैं। आप लोग अपने हृदय में विराजित भगवान के द्वारा तीर्थों को महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं।

तीर्थयात्रा का एक उद्देश्य है उन क्षेत्रों में निवास करने वाले मनीषियों से आत्म कल्याण एवं उज्ज्वल भविष्य निर्माण के लिए उपयुक्त मार्ग दर्शन प्राप्त करना।

तीर्थेषु लभ्यते साधु ब्रह्मज्ञान परायणः।
यद्दर्शन नृणां पापराशिदाहाशुशुक्षणिः।।

-पदम पुराण

तीर्थों में ब्रह्म परायण, साधु सज्जन मिलते हैं। उनका दर्शन मनुष्यों की पाप-राशि को जला डालने के लिए अग्नि के समान है।

तस्मात् तीर्थेषु गन्तव्यं नरैः संसार भीरुभिः।
पुण्योदकेषु सतत साधुश्रेणि विराजिषु।।

-पद्म पुराण

इसीलिए जो लोग पाप से डरे हुए हैं और उसके बन्धन से छूटना चाहते हैं उन्हें पवित्र जल वाले तीर्थों में, जो साधु सज्जनों के समूह से सुशोभित हैं, अवश्य जाना चाहिए।

'तरहि अनेन इति तीर्थ'

तारने वाले को तीर्थ कहते हैं। तरना सप्तकर्मों, सद्भावनाओं, सद्विचरों एवं सज्जनों के द्वारा ही हो सकता है।

इसलिए इन्हीं को तीर्थ कहते हैं। जिन स्थानों में इन प्रवृत्तियों को बढ़ाने वाला वातावरण होता है उन्हें ही तीर्थस्थान कहा गया है।

साधुनां दर्शन पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थ फलति कालेन सद्यः साधु समागभः।।

साधुओं का दर्शन बड़ा पुण्यकारक होता है, क्योंकि साधु तीर्थ रूप ही हैं। तीर्थ तो समय पर फल देते हैं, किन्तु साधु समागम का तत्काल फल मिलता है।

मुख्या पुरुष यात्रा हि तीर्थ यात्रा प्रसंगतः।
सद्भिः समागमो भूमिभागस्तीर्थ तयोच्य ते।।

-स्कन्ध पुराण

तीर्थ यात्रा के प्रसंग से महापुरुषों के दर्शन के लिए जाना ही तीर्थयात्रा का मुख्य उद्देश्य है, अतः जिस भू-भाग में सज्जन निवास करते हैं वही तीर्थ कहलाता है।

ब्राह्मण जंगमं तीर्थ निर्मल सार्वकामिकम्।
येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः।।

-शातातपस्मृति

साधु-ब्राह्मण चलते तीर्थ हैं। जिनके सद्वाक्य रूपी निर्मल जल से मलिन जन भी शुद्ध हो जाते हैं।

सम्पूर्ण भारत वर्ष ही तीर्थ स्वरूप है। उसके किसी भी भाग की यात्रा की जाय उसे तीर्थ ही माना जायेगा।

त्रयाणपि लोकानां तीर्थ मध्यमुदाहृतम्।
जाम्बवे भारतं वर्ष त्रैलोक्य विश्रुतम।।
कर्म भूमिर्यतः पुत्र तस्मात्तीर्थ तदुच्यते।।

-ब्रह्म पुराण

तीनों लोकों के मध्य में स्थित कर्म भूमि भारत वर्ष साक्षात् तीर्थ स्वरूप है।

छोटों के लिए बड़े शिष्यों के लिए अज्ञान निवारण करने वाले गुरुजन भी तीर्थ के समान ही श्रद्धास्पद होते हैं।

अज्ञानाख्यं तमस्तस्य गुरुः सर्व प्रणाशयेत्।
तस्माद् गुरूः परं तीर्थ शिष्याणामवनी यते।।

-पद्म पुराण

हे राजन्! शिष्य के हृदय के अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाले गुरु, शिष्यों के लिए परम तीर्थ हैं।

तीर्थ स्थान में जाकर पाप परित्याग का अभ्यास करना चाहिए। वहाँ अपने ऊपर कठोर नियन्त्रण करके यह प्रयत्न करना चाहिए उस पुण्य क्षेत्र में कोई अभ्यस्त दुष्प्रवृत्ति भी सक्रिय न होने पावे। तीर्थ मर्यादा का उल्लंघन करके वहाँ किये गये पाप तो और भी अधिक दुःखद एवं दुर्भाग्य पूर्ण सिद्ध होते हैं।

यदन्यत्र कृतं पापं तीर्थे तद् याति लाघवम्।
न तीर्थकृत मन्यत्र क्वचि देव व्ययोहति।।

दूसरे स्थान पर किया हुआ पाप तीर्थ में क्षीण हो जाता है, परन्तु तीर्थ में किया हुआ पाप अन्य स्थानों में कभी नष्ट नहीं होता।

अन्य क्षेत्रे कृतं पापं पुण्य क्षेत्रे विनश्यति।
पुण्य क्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति।।

-स्कन्ध पुराण

दूसरे क्षेत्रों के पाप पुण्य क्षेत्रों में नष्ट हो जाते हैं। किन्तु पुण्य क्षेत्रों में किये हुए पाप कहीं नष्ट नहीं होते।

तीर्थ यात्रा पद यात्रा के रूप में ही होनी चाहिए। सवारी पर नहीं। तभी उसका समुचित लाभ मिलता है।

इति ब्रुवन् रसनया मनसा च हरिं स्मरन्।
पादचारी गतिं कुर्यात् तीर्थ प्रति महोदयः।।

वाणी से कीर्तन करते हुए तथा मन में भगवान का स्मरण करते हुए, पैदल तीर्थ यात्रा करने वाले का महान् अभ्युदय होता है।

ऐश्वर्य लोभान्मोहाद् वा गच्छेद् यानेन यो नरः।
निष्फलं तस्य तत्तीर्थ तस्माद्यानं विवर्जयेत्।।

-मत्स्य पुराण

ऐश्वर्य के गर्व से, मोह से या लोभ से जो सवारी पर चढ़कर तीर्थ यात्रा करता है, उसकी तीर्थ यात्रा निष्फल हो जाती है। - आज की स्थिति में ब्रह्मवर्चस् साधना के अन्तर्गत आरम्भ की गई धर्म प्रचार यात्रा मण्डलियां ही तीर्थ यात्रा का वास्तविक उद्देश्य पूरा कर सकती हैं। ऋषि प्रणीत इस पुण्य परम्परा को नव जीवन देने के लिए ऐसी ही सार्थक तीर्थ यात्रा प्रक्रिया देश के कोने-कोने में प्रारम्भ होनी चाहिए।

प्राचीन काल में ब्राह्मण ज्ञान के लिए क्षत्रिय राज्य के लिए, यात्रा करते थे। वैश्य व्यापार के लिए यात्रा करता था। यात्रा के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता- १५वीं, १६ वीं सदी से ही यूरोप के विविध देशों में ज्ञान पिपासा, नये-नये देशों की खोज और ज्योतिष, भूःगर्भ शास्त्र, भौतिक विज्ञान, रसायन तथा चिकित्सा आदि विविध क्षेत्रों में अनुसंधान की होड़-सी लग गई है। सत्य के ज्ञान और प्रकृति के रहस्यों के उद्घाटन के लिए वैज्ञानिकों और दूसरे यात्रियों ने अपने प्राण संकट में डालकर दुस्साहस के अनेक कार्य किये थे। साहसी यात्रियों की गौरव गाथाएँ सर्वत्र गाई जाती हैं। प्रगति शीलता का दूसरा नाम यात्रा है। वस्तुतः जीवन की पुकार ही 'चरैवेति, चरैवेति' चलना है, चलना है, सब चलते हैं, जीवन गतिमान है।

यात्रा से मनुष्य की दृष्टि विस्तृत होकर उदार होती है। यात्रा से मस्तिष्क विराट होता है और हृदय विशाल।

प्राचीन काल में इसी दृष्टि से १२ वर्ष गुरुकुल में अध्ययन करने के बाद २ वर्ष देश भ्रमण करने की व्यवस्था रहती थी। प्रकृति की विविधता उसके सौन्दर्य और भयानकता से जहाँ यात्री आनन्द प्राप्त करता है वहाँ ज्ञान की वृद्धि होती है। इस प्राकृतिक आदान-प्रदान से मनुष्य में आध्यात्मिकता की शक्ति एवं सत्यं शिवं सुन्दरम् की भावना जागृत होती है।

वैदिक ऋषि ने गाया है- 'जो व्यक्ति चलते रहते हैं। उनकी जंघाओं में फूल खिलते हैं। उनकी आत्मा में फलों के गुच्छे लगते हैं। उनके पाप थककर सो जाते हैं, इसलिए चलते रहो, चलते रहो।' तीर्थ यात्रा मातृभूमि के प्रति उत्कट प्रेम की सर्वथा अभिव्यक्ति है। यह देश पूजा की ऐसी विधि है जिससे धार्मिक भावों को बल मिलता है। साथ ही भौगोलिक चेतना बढ़ती है। तीर्थ यात्रा से मिलने वाले पुण्य लाभ के पीछे और भी कितने ही लाभ छिपे हैं।

यात्रा केवल चरणों से ही नहीं की जाती वरन् मन, बुद्धि, चित्त सभी यात्रा करते हैं। यह सृष्टि का विकास है। तन, मन सब धुलकर निखर जाते हैं।

स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में कहा गया है कि तीर्थों के दो भेद हैं। मानस तीर्थ और भौम तीर्थ। जिनके मन शुद्ध हैं जो आचरणवान, ज्ञानी और तपस्वी हैं ऐसे लोग मानस तीर्थ हैं, जितेन्द्रिय जहाँ रहते हैं वहीं वे तीर्थ बनते हैं। भौमतीर्थ चार प्रकार के हैं-

(१) अर्ध तीर्थ- नदियों के तट और संगम पर व्यापार केन्द्र

(२) धर्म तीर्थ- प्रजाओं के धर्म पालन के निमित्त पवित्र धर्म नीति के केन्द्र ।

(३) काम तीर्थ- कला और सौन्दर्य साधना केन्द्र।

(४) मोक्ष तीर्थ- विद्या, ज्ञान और अध्यात्म के केन्द्र

जहाँ इन चारों का समुदाय हो और जीवन की बहुमुखी प्रवृत्तियों के सूत्र मिलते हों, वे बड़े तीर्थ महापुरियों के रूप में प्रसिद्ध हो जाते हैं। जैसे- काशी, प्रयाग, मथुरा, उज्जयिनी आदि।

महाभारतकार ने बन पर्व ८०।३४-४० में कहा है कि ऋषियों ने वेदों में बहुत से यज्ञ कहे हैं। उनका फल जीते जी और मरकर लोगों को मिलता है। लेकिन दरिद्र जनता को वह फल कैसे मिल सकता है ? यज्ञों हेतु विद्वान्, विधि विशेषज्ञ एवं साधन सामग्री की आवश्यकता होती है, निर्धन लोग अकेले बिना बहुत व्यय के यज्ञों का फल पा सकें इसकी युक्ति तीर्थ यात्रा है। तीर्थों में जाने का पुण्य यज्ञों से भी अधिक है।

इस प्रकार जनता को सांस्कृतिक आन्दोलन में सम्मिलित करने हेतु तीर्थ यात्रा बड़ी सहायक हुई। सुदूर क्षेत्रों, ग्रामों, जंगलों में रहने वाले जो धर्म, संस्कृति, क्रिया और सदाचार की प्रवृत्तियों से अपरिचित रहते थे वे भी तीर्थयात्रा के निमित्त स्वेच्छा से तीर्थ केन्द्रों में आते और उनके संस्कार ले जाते थे।

ऋषियों की जीवन प्रक्रिया का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उनका अधिकांश समय परिभ्रमण में बीता। यही कारण है कि जहाँ अन्य वर्ग के महापुरुषों के स्थान, स्मारकों के चिह्न मिलते हैं वहाँ ऋषियों के इतने महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व होते हुए भी न तो किसी स्थान विशेष पर टिके और न उनके बने। मध्यकालीन सन्तों में से प्राय: प्रत्येक की क्रिया-प्रक्रिया यही रही है। उन्होंने अध्ययन एवं विशिष्ट तप साधना के लिए जितने समय जहाँ रुकना आवश्यक समक्षा, वहाँ रुके और इसके पश्चात् परिभ्रमण के लिए निकल पड़े। सिखाना और सीखना यही उनकी प्रधान प्रवृत्ति रही।

तीर्थयात्रा का पुण्य उस प्रयोजन के लिए बने नगरों, देवालयों एवं नदी सरोवरों से जोड़कर भूल की गई है। वस्तुत: तीर्थ यात्रा धर्म प्रचार की एक सुव्यस्थित योजना है। जिसमें विराम विश्राम के लिए प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व के स्थानों को चुना गया है। इन यात्रियों के लिए कई तरह की सुविधाएँ यहाँ साधन सम्पन्न लोग जुटा दिया करते थे। भोजन, वस्त्र, पात्र, मार्ग व्यय, पुस्तक, पूजा उपकरण, औषधि आदि जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती वे सभी तीर्थ मठों में संचित रहती थीं और धर्म प्रचारकों को आवश्यकतानुसार वे साधन सरलतापूर्वक मिल जाते थे। सत्संग, शिक्षण और अन्य ज्ञातव्य साधन यहाँ रहते थे और आगे की यात्रा के लिए साथियों, सहयोगियों का हेर-फेर भी यहीं बन जाता था। इन्हीं कारणों से अमुक स्थान तीर्थ घोषित किये। उन विराम स्थलों पर प्रचारकों का पारस्परिक मिलन, सम्पर्क एवं कई तरह का आदान-प्रदान भी होता रहता था। जंक्शन की तरह कितने ही मार्गों के यात्री उधर से गुजरते और अनेक प्रकार के पारस्परिक सम्पर्क साधते हुए लाभान्वित होते थे। स्थानों को महत्त्व मिलने के ऐसे ही कुछ कारण हैं। इतने पर भी स्थान विशेष पर जाकर कुछ देखने करने को नहीं, धर्म प्रचार के लिए पैदल यात्रा को ही तीर्थ यात्रा का लक्ष्य एवं प्रयोजन माना गया है। वह उद्देश्य यहाँ न बन पड़े तो समझना चाहिए कि मात्र प्राण विहीन कलेवर ही लटक रहा है।

प्राचीन काल की तीर्थ यात्रा मण्डलियों में दो वर्ग के लोग रहते थे। एक वे मनीषी जो अपने साथियों तथा सम्पर्क क्षेत्रों

को अपने ज्ञान तथा अनुभवों का लाभ पहुंचाते चलते थे। दूसरे वे जिज्ञासु जो मण्डली के वातावरण में अपने को श्रेष्ठता के लिए प्रशिक्षित करते थे, ताकि भविष्य में वे इस आधार पर उपार्जित किये चरित्र ज्ञान एवं कौशल के आधार पर प्रचारकों की अगली भूमिका निभा सकें। यात्रा में कई व्यक्ति रहने से सुविधा भी रहती है और शोभा भी। भोजन आदि की दैनिक व्यवस्था और किसी के रुग्ण हो जाने पर परिचर्या, सुविधा का लाभ भी मण्डली में ही बन पड़ता है। सम्पर्क में कई प्रकार के कितने ही लोगों से वार्त्तालाप आदान-प्रदान करना पड़ता है इसमें कई व्यक्तियों का होना उपयुक्त रहता है। एक या दो व्यक्ति हों तो निजी व्यवस्था एवं सम्पर्कजन्य समस्याओं का निपटारा कठिन पड़ जाय ऐसे ही अनेक कारणों को ध्यान में रखते हुए तीर्थ यात्रा एकाकी नहीं वरन् टोलियों के रूप में निकलती थीं। यों निषेध एकाकी का भी नहीं है द्रुतगामी वाहनों के उपयोग से शारीरिक सुविधा तो रहती है पर अधिक लोगों से अधकि सम्पर्क उस जल्दबाजी में बन ही नहीं पड़ता। पैदल चलते हुए तो मार्ग में भी कितनों से ही बातें होती चलती हैं। वाहनारूढ़ व्यक्ति के लिए वैसा कर सकना सम्भव नहीं है।

नदियों, पर्वतों, पुण्य क्षेत्रों की परिक्रमाएँ अभी भी होती हैं नर्मदा के उद्गम से लेकर अन्त तक की परिक्रमा हर साल निकलती है। गिरनार जौर गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा का पुण्य है। ब्रज चौरासी कोस, प्रयाग की पंचकोशी परिक्रमाएँ प्रसिद्ध हैं। शिवरात्रि पर लोग कन्धों पर गंगाजल की कांबरें' उठाते हैं और अमुक शिवालय पर उन्हें चढ़ाते हैं। मार्ग में यह यात्री लोग भजन-कीर्तन गाते हुए चलते हैं ताकि चलते-चलते भी उद्बोधन का प्रयोजन पूरा होता चले। अब चिन्ह पूजा प्रधान और लक्ष्य तिरोहित हो गया है । यदि लक्ष्य को प्रधान और चिन्ह पूजा को आवश्यकतानुरूप बना लिया जाय तो तीर्थ यात्रा की पुण्य परम्परा अपने युग की आवश्यकता पूरी करने में भी प्राचीन काल की तरह ही अतीव श्रेयस्कर सिद्ध हो सकती है।

भक्ति और तीर्थ यात्रा प्राचीन काल में परस्पर सघनतापूर्वक जुड़ी रही हैं। तपश्चर्याओं में उसे प्रधान माना गया हैं । तितिक्षा के अन्य साधन भी तप के रूप में बताये गये हैं, पर तीर्थ यात्रा के साथ जो व्यक्ति एवं समाज का विविध-विधि हित साधन होता है उसे ध्यान में रखते हुए इसका प्रचलन बहुत हुआ है और महत्त्व अधिक मिला है। प्रख्यात धर्म पुरुषों में से अधिकांश ने अपनी कार्य पद्धिति में तीर्थ यात्रा तप को प्रधान रूप से सम्मिलित रखा है। छोटे या बड़े सन्तों की जीवन चर्या पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य स्पष्ट रूप से सामने आ खड़ा होता है।

देवर्षि नारद जी निरन्तर यात्रा निरत रहे। कहते हैं दो घड़ी से अधिक कहीं न ठहरने का उन्हें अभिशाप था। देवर्षि नारद जी तो नित्य परिव्राजक्र हैं, उनका काम ही है अपनी वीणा की मनोहर झंकार के साथ भगवान के गुणों का गान करते हुए सदा यात्रा करना। भक्ति सूत्र निर्माता नारदजी के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि उन्होंने प्रतिज्ञा की थी- सम्पूर्ण पृथ्वी पर घर-घर में एवं जन-जन में भक्ति की स्थापना करना।

दक्षिण में असुरों के बढ़ते हुए अत्याचार को रोकने के लिए अगस्त्य ऋषि ने दक्षिण की यात्रा कर वहाँ अपना आश्रम बनाया। लक्ष्मण को अगस्त्याश्रम का परिचय देते हुए राम कहते हैं:-

यदा प्रभृति चक्रान्ता दिगियं पुण्य कर्मणा।
तदा प्रभृति निर्वैराः प्रशान्ता रजनीचराः।

-वाल्मी० रामा०

उन पुण्यकर्मा महर्षि अगस्त्य ने जब से इस दक्षिण दिशा में पदार्पण किया है, तब से यहाँ के राक्षस शान्त हो गये हैं तथा उन्होंने दूसरों से बैर विरोध करना छोड़ दिया है।

भगवान श्री राम का तीर्थ यात्रा प्रेम अद्भुत था। उनकी तीर्थ यात्रा के बारे में स्कन्ध, पद्म, अग्नि, ब्रह्म, गरुण तथा वायु आदि पुराणों में विस्तार से बताया गया है।

योग वाशिष्ठ में राम के बचपन में ही वशिष्ठ आदि ब्राह्मणों के साथ अनेकों नदियों तथा मानसरोवर आदि तीर्थों में भ्रमण करने का विस्तार से वर्णन है।

आनन्द रामायण में भगवान राम की अपने अनुचरों के साथ की गई तीर्थ यात्रा का 'यात्रा काण्ड' में विस्तार से वर्णन किया गया है। इस यात्रा में भगवान राम ने देश के सभी तीर्थों का भ्रमण किया था।

भगवान राम सारे जीवन यात्रा ही करते रहे। इस यात्रा में पुराने तीर्थों का उद्धार, नये तीर्थों की स्थापना, धर्म प्रचार, दुष्टता का उन्मूलन आदि अनेक उद्देश्य निहित थे।

चौदह वर्ष के वनवास काल में भगवान जहाँ-जहाँ गये वे स्थान तीर्थ बन गये।

वनवास गतो रामो यत्र व्यवस्थितः।
तानि चोक्तानि तीर्थानि शतंभष्टोत्तरं क्षितौ।।

-कूर्म पुराण

वनबास के समय राम जहाँ-जहाँ रहे वहीं तीर्थ बन गये, ऐसे तीर्थों की संख्या १०८ हो गई थी।

लोक-कल्याण के व्रती महात्मा बुद्ध ने लगातार ४५ वर्ष तक देश भर में भ्रमण करके जनता को सत्य धर्म का उपदेश

दिया और उनको अनेकों कुरीतियों और अन्धविश्वासों से छुड़ाकर कल्याणकारी मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी।

सम्राट अशोक ने तेईस वर्ष तक राज्य करने के उपरान्त ईसा पूर्व २४९ में अपने राज्य के तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया। पाँच लाटों में अंकित वृत से यह पता चलता है कि वे मुजफ्फरपुर और चम्पारन होते हुए हिमालय की तराई तक गये और वहाँ से पश्चिम की ओर मुड़कर लुम्बिनी बन पहुँचे जहाँ तथागत का जन्म हुआ था। अपनी यात्रा के स्मारक के रूप में उन्होंने लुम्बिनी वन में भी एक लाट स्थापित की थी। आचार्य उपगुप्त के साथ फिर कपिलवस्तु, सारनाथ श्रावस्ती गये। इस प्रकार बौद्ध तीर्थों की यात्रा करते-करते सम्राट अशोक कुशीनगर पहुँचे। तीर्थ यात्रा के उपरान्त अशोक ने संन्यास धारण कर लिया एवं सारा समय धर्म चर्या एवं धर्मोपदेश में बिताया।

जगद्‌गुरु आद्य शंकराचार्य ने दिग्विजय का समारम्भ किया। अनन्तशय, आयोध्या, इन्द्रप्रस्थपुर, उज्जयिनी, कर्नाटक, काँची, चिनम्बर, बदरी, प्रयाग आदि तीर्थ क्षेत्रों और महानगरों में आत्मज्ञान और धर्म का प्रचार किया। काश्मीर से रामेश्वर तक की विद्वन्मण्डली ने उनकी विद्वता का लोहा मान लिया। उन्होंने पद यात्रा के अन्तर्गत दक्षिण में श्रृंगेरी, पूर्व में जगन्नाथपुरी में गोवर्धन, पश्चिम द्वारका में शारदा और उत्तर बदरिकाश्रम में ज्योतिर्मठ की स्थापना की।

सन्त ज्ञानेश्वर ने अलन्दी से, नेवा से वापिस आने पर, पन्द्रह वर्ष की आयु में स० १३४७ वि० में 'ज्ञानेश्वरी गीता' का प्रणयन किया तदुपरान्त तीर्थयात्रा आरम्भ की। उनके साथ निवृत्तिनाथ सोपानदेव, मुक्ताबाई, नरहरि सोनार, चोखामेला आदि तत्कालीन सन्त थे। वे पण्डरपुर गये। वहाँ से सन्त नामदेव उनके साथ हो गये। फिर उक्त सन्त मण्डली ने उज्जैन, प्रयाग, काशी, अयोध्या, गया, गोकुल, वृन्दावन, गिरिनार आदि तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा की। लोगों को अपने सत्संग से सचेत कर जागरण का सर्वत्र सन्देश सुनाया। सन्त ज्ञानेश्वर की इस ऐतिहासिक, लोक-शिक्षिण परक तीर्थ यात्रा की बड़ी ख्याति सुदूर क्षेत्रों में फैल गई। वे मारवाड़ और पंजाब की ओर भी गये। तीर्थ यात्रा से लौटने पर पण्ढरपुर में सन्त नामदेव ने इस यात्रा-यज्ञ की पूर्ति स्वरूप एक विशाल उत्सव का आयोजन किया।

सन्त एकनाथ अपने अनुष्ठान की पूर्ति के बाद गुरु आज्ञा से तीर्थ यात्रा के लिए निकल पड़े। उनकी तीर्थ यात्रा में जनार्दन पन्त ने नासिक त्र्यम्बकेश्वर तक उनका साथ दिया। ब्रह्मगिरि की परिक्रमा के उपरान्त गोदावरी, ताप्ती, गंगा और यमुना का स्नान किया। आठों विनायक और बारह ज्योतिलिंग के दर्शन किये। वृन्दावन, काशी, प्रयाग, गया, बदरिकाश्रम एवं द्वारका की यात्रा की। सन्त एक नाथ ने १३ साल तक यात्रा की। २५ वर्ष की अवस्था में वे पेठठा लौट आये।

चैतन्य महाप्रभु ने भी सामूहिक एवं एकाकी रूप से अनेक स्थलों का परिभ्रमण किया। गया गये, फिर नीलकाचल के उपरान्त दक्षिण की यात्रा की। अपने भक्त और अनुचर गोविन्द को लेकर वे हाजीपुर, मिदनापुर होते नयनगढ़ गये। चैतन्य ने अलौकिक प्रेम भाव का ही उपदेश दिया। ढलेश्वर, जलेश्वर, हरिहरपुर, बलशोर होते हुए नीलगढ़ गये। अपनी तीर्थयात्रा में उन्होंने जनमानस का परिष्कार किया। सत्याबाई और कमलबाई वेश्याओं का हृदय परिवर्तन किया। महाप्रभु कांचीपुरम् गये, शिव कांची, पक्षी, तीर्थ, काल तीर्थ, सन्धि तीर्थ आदि पवित्र तीर्थों के दर्शन करते हुए वे तिरुचिरा-पल्ली पहुँचे। तज्जाबूर, कुन्ती, कर्ण, पड़ा, पह्नकोट, त्रिपत्र, श्रीरंगम, रामेश्वर आदि दक्षिण भारत के अनेक तीर्थों का महाप्रभु ने भ्रमण किया। महाराष्ट्र के बाद गुजरात द्वारका, सोमनाथ, जूनागढ़, प्रभाव क्षेत्र होते हुए मध्यभारत के अनेक स्थलों के दर्शनार्थ गये। अन्त में उत्तर भारत की यात्रा अकेले पैदल की। मथुरा-वृन्दावन, प्रयाग, काशी गये। काशी का मन जीत श्री चैतन्य ने भारत का मन जीत लिया। मात्र ४८ वर्ष की आयु पाकर ही। उन्होंने तीर्थ-यात्रा द्वारा लाखों पतित पददलितों का उद्वार किया। जो समाज में पद्च्युत थे उन्हें नई हैसियत दी। समग्र समाज को जीने के लिए एक नयी आस्था प्रदान की।

गोस्वामी तुलसीदास ने १४ वर्ष तक तीर्थ यात्रायें कीं। वे प्रयाग, जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारिका, वदरिकाश्रम आदि पावन स्थलों के दर्शनार्थ गये। तीर्थ-यात्रा के बाद वे काशी में रहकर सन्तों का संग और राम की कथा कहने लगे।

सन्त तुकाराम ने तत्कालीन महाराष्ट्र को ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र को आत्मदर्शन एवं भगवद् दर्शन प्रदान किया। पण्ढरी की यात्रा का उन्होंने आजीवन पालन किया।

गुरु नानक जी लगभग तीस वर्ष की आयु में सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर भटकती हुई मानवता को सत्य मार्ग का उपदेश देने निकल पड़े। गुरु नानक ने देश-विदेश की व्यापक यात्राऐं कीं। उन्होंने १५ वर्ष तक भारतवर्ष की चारों दिशाओं में सभी प्रमुख स्थानों की यात्राएँ कीं और अन्त में अफगानिस्तान, ईरान, अरब और ईराक तक गये।

समर्थ गुरु रामदास ने १२ वर्ष के तप के उपरान्त १२ वर्ष तक तीर्थयात्रा की एवं सं० १७०१ के वैशाख मास में कृष्णानदी के तट पर आये। तीर्थ यात्रा के प्रसंग में श्री समर्थ जहाँ-जहाँ

गये, वहाँ-वहाँ इन्होंने मठ स्थापित किये। लोक-कल्याण की भावना से धर्म स्थापनार्थ उस युग में जब रेल, तार, जहाज, अखबार प्रेस आदि का सर्वथा अभाव था, समस्त देश घूमे। वे सर्वप्रथम काशी गये। फिर मथुरा-वृन्दावन से पंजाब, श्रीनगर एवं काश्मीर पहुँचे। वहाँ से चलकर हिमालय में केदारनाथ बद्रीनाथ की यात्रा की। उत्तराखण्ड, के उपरान्त जगन्नाथ गये। लंका से वापिस होते हुए केरल, मैसूर, फिर महाराष्ट्र आ गये। यहाँ उन्होंने गोकर्ण, बैंक्टेश, मल्लिकार्जुन बालनरसिंह, पालन नरसिंह का दर्शन किया , इसके बाद पाठ्यसर, शिष्यमूक, करवीर क्षेत्र पढरपुर आदि होकर पञ्चवटी लौट आये।

पुष्टिमार्गी सन्त गोस्वामी विट्ठलनाथ ने गुजरात तथा दक्षिण और मध्यभारत के तीर्थों की यात्रा की। बादशाह अकबर, मानसिंह, बीरबल, महारानी दुर्गावती, राजा आसकरण आदि उन्हें बड़े सम्मान एवं आदर की दृष्टि से देखते थे।

कृष्णोपासक सन्त दयारामभाई ने तीर्थ यात्रा सम्पादित की। दयारामभाई श्रीनाथ द्वारा से काकरोली गये। काकरोली से मथुरा-वृन्दावन, गोकुल आदि की यात्रा की। उन्होंने सम्पूर्ण ब्रज मण्डल चौरासी कोश की परिक्रमा की। तीर्थ-यात्रा से लौटने पर दयारामभाई ने बड़ौदा के गोस्वामी श्री बल्लभ लाल जी महाराज से ब्रह्म सम्बन्ध लिया।

सन् १८८८ में स्वामी विवेकानन्द देश भ्रमण के लिए निकले। उन्होंने लगातार कई वर्ष तक देश व्यापी यात्रा परिभ्रमण किया। इस यात्रा से उन्होंने भारतीय विभिन्न वर्गों की अच्छी जानकारी प्राप्त की। राजस्थान में पहले वे अलवर गये। घूमते घूमते ज्ञानोपदेश करते लिम्बड़ी काठियावाड़ गये। फिर मैसूर पहुँचे। फिर वे रामेश्वर होकर कन्याकुमारी पहुँचे। बाद में अमेरिका, इंग्लैण्ड एवं अन्य पाश्चात्य देशों की यात्रा की।

स्वामी रामतीर्थ ने अपनी देश, विदेश की यात्राओं में अध्यात्म का सच्चा स्वरूप प्रतिपादित किया। सनातन धर्म सभा के प्रसिद्ध उपदेशक दीनदयाल शर्मा के साथ उन्होंने ब्रज, प्रयाग और काशी की तीर्थ यात्रा की। उत्तराखण्ड की भी यात्रा की। हिमालय के अंचल से मैदान में उतर कर उन्होंने मथुरा, फैजाबाद, लखनऊ,आदि की यात्रा कर वेदान्त पर महत्त्वपूर्ण भाषण दिया। स्वामी रामतीर्थ ने अमेरिका, जापान तथा मिश्र आदि देशों की जनता को सत्य, शान्ति और प्रेम का सन्देश दिया।

स्वामी दयानन्द विद्याध्ययन के उपरान्त प्रायः परिभ्रमण ही करते रहे। आर्य समाजों की स्थापना, उन्हें गति देना, शास्त्रार्थ, साहित्य लेखन आदि सभी कार्य उन्होंने अपने प्रवाह कार्य के साथ ही सम्पन्न किये थे।

कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ टैगोर ने विलायत से लौटकर तीर्थ यात्रा की। उन्होंने देश के गरीबों की स्थिति का अध्ययन करने हेतु कलकत्ते से पेशावर तक बैलगाड़ी में यात्रा की। यद्यपि उस समय रेलगाड़ी चल निकली थीं किन्तु रेलयात्रा से पिछड़े हुए गाँवों और भूखे-नंगे कृषकों की अवस्था का क्या पता लग सकता था ?

अफ्रीका से लौटने पर गाँधी जी ने एक वर्ष तक समस्त देश का भ्रमण किया। एक वर्ष तक देश की यात्रा करने के उपरान्त गांधी जी अहमदाबाद लौटे और वहाँ सावरमती नदी के किनारे उन्होंने अपने सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की। उनकी डांडी नमक सत्याग्रह यात्रा एवं नोआखाली की साम्प्रदायिक सद्भाव यात्रा तो प्रसिद्ध ही है।

सन्त विनोबा ने पूरे देश में पैदल घूम-घूमकर लाखों गरीबों की जीविका की व्यवस्था करने के साथ भारतीय जनता की दशा का निरीक्षण किया और उसकी समस्या को समझा। पाकिस्तान की भी पदयात्रा की। चौदह वर्ष सन् १९५१ से १९६४ तक लगभग ४३ लाख मील की पैदल यात्रा करके विनोबा ने जब पुनः अपने आश्रम में प्रवेश किया तो उस समय उनका ४, २३६-८२७ एकड़ जमीन भू-दान में मिली और ७५६० ग्राम दान में मिले।

ईसामसीह ने अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासा की पूर्ति के लिए विदेशों की यात्रा की थी। डा० नोटोविच की कृति ईसामसीह का अज्ञात जीवन चरित्र के अनुसार चौदह वर्ष की आयु में ईसा सौदागरों के एक दल के साथ भारत (सिंध) आ पहुँचे । इसके बाद वे जगन्नाथ गये। वहाँ उन्होंने वेदशास्त्र का अध्ययन किया। फिर बनारस आदि स्थानों की यात्रा में ६ वर्ष व्यतीत हो गये। फिर कपिलवस्तु पहुँचे। बौद्ध शास्त्रों का भी उन्होंने अध्ययन किया। उसके पश्चात् वे नेपाल और हिमालय से होते हुए ईरान पहुँच गये। तदुपरान्त स्वदेश पहुँच स्वजातीय भाइयों में उस आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार करने लगे जो उन्होंने इतने वर्ष के अध्ययन और स्वानुभव से प्राप्त किया था।

अन्यान्य धर्म संस्थापकों ने भी यही किया इस्लाम धर्म के पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब ने अपनी धर्म प्रचार यात्रा जारी रखी। पारसी, यहूदी, ताओ आदि संसार के प्रधान धर्म सम्प्रदायों के संस्थापकों एवं प्रचारकों को अपना अधिकांश समय धर्म प्रचार की तीर्थयात्राओं में ही व्यतीत करना पड़ा है।

यह तो कुछ उदाहरण मात्र हैं। इसकी गणना की जाय और सूची बनाई जाय तो ऐसे प्रख्यात धर्मात्मा कहे जाने वाले प्रायः सभी लोग धर्म प्रचार की तीर्थ यात्रा को अपनाये हुए मिलेंगे। जिन्हें एक स्थान पर बैठकर शोध, लेखन, शिक्षण आदि कार्य करने पड़े हैं उन्होंने भी कभी न कभी लम्बी तीर्थयात्राओं का

पुण्य सम्पादित किया है। सामान्य गृहस्थ भी अपनी व्यस्तता में से भी अवकाश निकालकर इस पुण्य लाभ के लिए समय निकालते रहे हैं। स्व-पर कल्याण का इससे अच्छा रोचक एवं उपयोगी धर्म कृत्य दूसरा कोई भी नहीं है।

तीर्थ यात्रा के नाम पर स्थान दर्शन को आज महत्त्व मिल गया है। इस भगदड़ में मात्र निहित स्वार्थों को ही धन बटोरने का अवसर मिलता है। पर्यटन अपनी जगह पर कायम रहे, पर उसे तीर्थ यात्रा का नाम न मिले। इन विडम्बनाओं को बदला जा सके और युग की आवश्यकता पूरी कर सकने वाली तीर्थ यात्रा प्रक्रिया की योजनाबद्ध रीति से सुनियोजित किया जा सके तो यह महान धर्म परम्परा आज की स्थिति में भी पूर्वकाल की तरह ही व्यक्ति और समाज के लिए सर्व प्रकार हितकारक सिद्ध हो सकती है।

इस प्रकार तप-साधना तीर्थ-यात्रा, क्षतिपूर्ति या इष्टापूर्ति के द्वारा प्रायश्चित-प्रक्रिया सम्पन्न कर जो साधक आत्मशोधन कर डालते हैं उन्हीं की चान्द्रायण-साधना एवं अन्य योग साधनाएँ शक्ति-संवर्धन, आत्मविकास, जीवनलक्ष्य की प्राप्ति का आधार बनती हैं। अतः आत्मविकास के इच्छुक साधकों को, जीवन को सार्थक बनाने के आकांक्षी प्रत्येक व्यक्ति को कर्मफल का अटल सिद्धान्त एवं प्रारब्ध का यथार्थ स्वरूप ठीक-ठीक समझ लेना चाहिए तथा अपनी स्थिति का चिन्तन-मनन कर आत्मशोधन, आत्मनिर्माण एवं आत्मविकास के पथ पर संकल्पपूर्वक बढ़ चलना चाहिए। आवश्यक प्रायश्चित-प्रक्रिया को अपनाए बिना प्रारब्ध के अनिष्ट-भोग से बचने के लिए अपनायी जाने वाली सस्ती तरकीवें और तिकड़में, बाधाओं-व्यवधानों, कष्टों-क्लेशों को और अधिक बढ़ाएँगी और तब दैव को व्यर्थ ही दोष देने से अपनी पीड़ा-परेशानियाँ ही बढ़ेंगी। प्रायश्चित्त की शास्त्रीय प्रक्रिया का सही स्वरूप समझकर उसे अपनाने पर ही अभीष्ट-सिद्धि हो सकती है तथा न केवल स्वयं के पूर्वकृत पापों का क्षय हो सकता है, अपितु दूसरों को भी पुण्य-प्रवृत्तियों में नियोजित करने, औरों की सेवा -सहायता करने तथा जीवन को उत्कृष्ट-धन्य बनाने की शक्ति अर्जित की जा सकती है।

* * *

पुर्नजन्म

मरणोत्तर जीवन और उसकी सच्चाई

पालटेराजेस्ट फेनामेना, आडिटरी हेलसिनेशन, फिजीकल, ट्राँसपोजीशन, ह्विजिनरी एक्सपीरियेन्स, स्प्रिटिपाजेशन प्रभृति वैज्ञानिक कसौटियों पर कसे गये घटनाक्रम एवं अनुभवों द्वारा आत्मा और शरीर की भिन्नता के अधिकाधिक प्रमाण मिलते जा रहे हैं । शरीर के मरने पर भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है और जीव बिना शरीर के होने पर भी दूसरों के सम्मुख अपनी उपस्थिति प्रकट कर सकता है, इस तथ्य की पुष्टि में इतने ठोस प्रमाण विद्यमान हैं कि उन्हें झुठलाया नहीं जा सकता । विज्ञान के क्षेत्र की वह मान्यता अब निरस्त हो चली है कि शरीर ही मन है और उन दोनों का अन्त एक साथ हो जाता है ।

मरने के बाद प्राणी की चेतना का क्या हश्र होता है, इसका निष्कर्ष निकालने के लिए अमेरिकी विज्ञानवेत्ताओं ने एक विशेष प्रकार का चेम्बर बनाया । भीतरी हवा पूरी तरह निकाल दी गई और एक रासायनिक कुहरा इस प्रकार का पैदा कर दिया गया, जिससे अन्दर की अणुहलचलों का फोटो विशेष रूप से बनाये गये कैमरें से लिया जा सके।

इस चेम्बर से सम्बद्ध एक छोटी पेटी में चूहा रखा गया और उसे बिजली से मारा गया । मरते ही उपरोक्त चेम्बर में जो फोटो लिये गये, उसमें अन्तरिक्ष में उडते हुए आणविक चूहे की तस्वीर आई । इसी प्रयोग श्रृंखला में दूसरे मेंढ़क, केकड़ा जैसे जीव मारे गये तो मरणोपरान्त उसी आकृत्ति के अणु बादल में उड़ते देखे गये । यह सूक्ष्म शरीर हर प्राणधारी का होता है और मरने के उपरान्त भी वायुभूत होकर बना रहता है ।

टैलेपैथी, प्रीकागनीशन, क्लेयरवायेन्स, आकाल्ट साइंस, मेटाफिजिक्स प्रभृति विज्ञानधाराओं पर चल रहे प्रयोगों एवं अन्वेषणों से अब यह तथ्य अधिकाधिक स्पष्ट होता चला जा रहा है कि शरीर की सत्ता तक ही मानवी-सत्ता सीमित नहीं। वह उससे अधिक और अतिरिक्त है तथा मरने के उपरान्त भी आत्मा का अस्तित्व किसी न किसी रूप में बना रहता है । यह अस्तित्व किस रूप में रहता है-अभी उसका स्वरूप वैज्ञानिकों के बीच निर्धारण किया जाना शेष है । इलेक्ट्रोनिक (विद्युतीय) एवं मैगनेटिक (चुम्बकीय) सत्ता के रूप में अभी वैज्ञानिक उसका अस्तित्व मानते हैं और ऐसी प्रकाश-ज्योति बताते हैं, जो आँखों से नहीं देखी जा सकती । डा० रह्मेन ने इस सन्दर्भ में जो शोध कार्य किया है, उससे आत्मा के अस्तित्व की इसी रूप में सिद्धि होती है उन्होंने ऐसी दर्जनों घटनाओं का उल्लेख किया है, जिसमें किन्हीं अदृश्य आत्माओं द्वारा जीवित मनुष्यों को ऐसे परामर्श, निर्देश एवं सहयोग दिये गये-जो अक्षरशः सच निकले और उनके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए ।

सरविलियम वेनेट की 'डैथबैड विजन्स' पुस्तक में ऐसी ढेरों घटनाओं का वर्णन है-जिसमें मृत्यु-काल की पूर्व सूचना से लेकर घातक खतरों से सावधान रहने की पूर्व सूचनाऐं समय से पहले मिली थीं और वे यथासमय सही होकर रहीं । इसी प्रकार के अपने निष्कर्षों का विवरण प्रो० रिचेट ने भी प्रकाशित कराया है ।

यह बात तो वैज्ञानिक भी मानते हैं कि मनुष्य का शरीर कोशिकाओं से बना है । यह कोशिकायें प्रोटोप्लाज्म नामक जीवित अणुओं से बनी होती हैं । यदि प्रोटोप्लाज्म को भी खण्डित किया जाए, जो जीवन पदार्थ का अन्तिम टुकड़ा होती है और जिसमें चेतना का स्पन्दन होता है, तो उनके भी साइटोप्लाज्म और न्यूक्लिअस नामक दो खण्ड हो जाते हैं । साइटोप्लाज्म कोशिका से काट देने पर मृत हो जाता है पर न्यूक्लिअस अर्थात् नाभिक अपनी सत्ता को पुनः विकसित कर लेने की क्षमता रखता है । इस नाभिक के बारे में विज्ञान अभी कोई अन्तिम निर्णय नहीं कर सका । यहाँ से भारतीय तत्व-ज्ञान प्रारम्भ हो जाता है ।

शास्त्र कहते हैं **"अणोरणीयान्महतोमहीयान'** अर्थात् यह आत्मा छोटे से भी छोटा और इतना विराट् है कि उसमें समग्र सृष्टि नप जाती है । अणु के अन्दर समाविष्ट आत्मा की सत्यता का प्रमाण यही है कि जब वह पुनः किसी प्राणधारी के दृश्य रूप में विकसित होता है तो अपने सूक्ष्म (नाभिक शरीर) के ज्ञान की दिशा में बढ़ने लगता है । इसी बात को गीता में भगवान् कृष्ण ने इस प्रकार कहा है-

" पार्थ नैवेह नामुत्र, विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद दुर्गतिं तात गच्छति ।।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभि जायते ।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।४२।
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूमः संसिद्धौ कुरुनन्दन।४३।
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्माहिवर्तते।४४।
(६/४०, ४१, ४२, ४३, ४४)

अर्थात् (अर्जुन की इस शंका का कि यदि इसी जन्म में योग-सिद्धि नहीं हुई और वासना के किसी उभार से साधक पथभ्रष्ट हो गया, तो वह न तो भोग ही भोग पाएगा, न योगी ही हो पायगा, उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा) हे अर्जुन ! उस योग भ्रष्ट साधक के विनष्ट होने का प्रश्न ही नहीं । कल्याण के मार्ग पर पैर बढ़ाने वाले की दुर्गति का प्रश्न ही नहीं । (उसने जितनी दूर तक यात्रा करली है उसके आगे की यात्रा अगले जन्म में करने की प्रेरणा संस्कारों द्वारा उसे प्राप्त होगी ।

ऐसा योगभ्रष्ट पवित्र एवं श्री-सम्पन्न घर में जन्म लेता है या फिर योगियों के ही कुल में वह बुद्धिमान व्यक्ति उत्पन्न होता है ! नये जन्म में वह पूर्वदेह के संचित-संस्कारों से बौद्धिक-भावनात्मक प्रेरणा पाकर सिद्धि के लिए पुनः प्रयास करता है पहले किए हुए अभ्यास के कारण वह अवश-सा उसी मार्ग में बढ़ने के लिए विवश होता है ।"

इस प्रकार जीवन का प्रवाह अविच्छिन्न गति से आगे बढ़ता है । नाश सिर्फ शरीर का होता है । उस शरीर के माध्यम से आत्मा जिन अनुभवों-गुणों-विभूतियों तथा जानकारियों को संचित करती है, वे सूक्ष्म तथा कारण शरीर के साथ संस्कार रूप में जुड़कर आगे के जन्म में भी काम आते हैं तथा व्यक्ति-जीवन को प्रभावित-निर्देशित करते हैं ।

इसलिए तो ऋषियों ने कहा है- "वाणी को जानने से कोई लाभ नहीं, वाणी को प्रेरित करने वाली आत्मा को जानना चाहिए । गन्ध को छानकर क्या बनता है, यदि गन्ध ग्रहण करने वाली आत्मा को नहीं जाना जाता । रूप के ज्ञाता आत्मा को न जानकर रूप को जानने का प्रयत्न व्यर्थ है । जो शब्द सुनता है, उसे जानना चाहिए शब्द को नहीं अन्य-रस के ज्ञान की कामना व्यर्थ है । कर्म, सुख-दुख, काम सुख, पुत्रोत्पत्ति और गमनागमन को जानने से कोई लाभ नहीं, यदि इनके ज्ञाता और साक्षी आत्मा को न जाना जाय । हे प्रतर्दन ! मन को जानने की जिज्ञासा भी व्यर्थ है, मननशील आत्मा को जानना चाहिए "

यह कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् के तृतीय अध्याय में भगवान् इन्द्र ने प्रतर्दन से कहा-**"न वाचं विजिज्ञासीतवक्तारं विद्यात् न गन्ध विजिज्ञासीत घ्रातारं विद्यात्......न मनो विजिज्ञासीत मन्तारं विधात्।"**

उपरोक्त सन्दर्भ में जितना अधिक चिन्तन करते हैं, उतने ही महत्वपूर्ण रहस्य प्रकट होते हैं । ऐसा लगता है कि उनको जान बिना मनुष्य का यथार्थ कल्याण सम्भव नहीं । शास्त्रकार का यह कथन कि सुन्दर स्वर संगीत, सुगन्धित वस्तुयें, सुन्दरभोजन, रति, सुख-दुख, साधन श्रृंगार यह सब भौतिक आवरण हैं । इनके बीच घिरी हुई, साक्षी आत्मा को जब तक नहीं जान लिया जाता, यह सारा ज्ञान निरर्थक है । यथार्थ सुख-शान्ति और बन्धन मुक्ति दिलाने वाली आत्मा है, उसको जाने बिना मनुष्य शरीर और पशु शरीर में कोई अन्तर नहीं रह जाता ।

प्रमाण,तर्क और विज्ञान-बुद्धि-इस युग का प्राणी कहता है, आत्मा का कोई अस्तित्व सम्भव ही नहीं, तो जाना किसे जाए ? आत्मा नाम की कोई वस्तु इस संसार में है ही नहीं, इस मूढ़ मान्यता के कारण ही भौतिक आकर्षणों का मोह आज संसार में भयंकर रीति से बढ़ता और प्राणिमात्र को संकट, संघर्ष, अशांति, उद्वेग, निराशा, कलह, वैमनस्य, युद्ध, अन्तर्द्वन्द्व से जकड़ता जा रहा है ।

इसी उपनिषद के अगले पन्नों में आत्मा के स्वरूप और उसकी प्राप्ति के उपायों का विवेचन किया गया है, पर उसे कहने की अपेक्षा आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करना सर्वप्रथम आवश्यक है । प्रमाण, तर्क और वैज्ञानिक तथ्यों की कमी नहीं, यदि बुद्धिजीवी लोग श्रद्धा-परायण आत्मा को जानने के इच्छुक नहीं तो प्रमाण-परायण आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करने में तो झिझक और हिचक न होनी चाहिए ।

वैज्ञानिक धारणा के अनुसार कोई भी व्यक्ति जैव-द्रव के सक्रिय परमाणुओं का समूह होता है, जो सारभूत रूप में करोड़ों वर्षों के जीव-विकास क्रम की पुष्टि करता है । ये सक्रिय परमाणु सारे शरीर में उसकी अनुभूतियों में और मस्तिष्क में केन्द्रित होते हैं, इतना जान लेने के बाद विज्ञान अपने आप से प्रश्न करता है कि इन परमाणुओं की संरचना, गति और अनुभुतियों को रचने वाला, प्रेरणा देने और ग्रहण करने वाला कौन है ? उनका उत्तर होता है -मौन । भारतीय-दर्शन वहीं से अध्यात्म का आविर्भाव मानता है और कहता है कि वह आत्मा है, आत्मा । उसे ही जानने का प्रयत्न करना चाहिये।

मन ही सब कुछ नहीं

डा० टिमोदी लियरी ने मन को ही सब कुछ माना और अध्यात्म की सत्ता वहीं तक स्वीकार की । मन एक रासायनिक तत्व है । अन्न के स्वभाव और गुण के अनुरूप उसका आविर्भाव होता है । मनश्चेतना के विस्तार तथा उसकी अभिव्यक्ति के लिये अनेक रासायनिक द्रव्यों का विकास हुआ है । भारतीय-तन्त्र और तिब्बती तांत्रिक साधनाओं में भी रासायनिक तत्वों के आधर पर मनश्चेतना के प्रसार और उसके द्वारा विलक्षण अनुभूतियों और दूरवर्ती ज्ञान को प्राप्त कर लिया जाता है । एलन गिंसवर्ग ने भी उसी की पुष्टि की है और उनका विश्वास है कि जीव-चेतना का अन्तः मन है, उसके आगे न कोई सूक्ष्म सत्ता है और न कोई अति मानस ज्ञान । पर अब पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने ही इन तांत्रिक साधनाओं के आधार पर ही अतीन्द्रिय और मनश्चेतना से परे किसी ऐसे तत्व का अस्तित्व स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया, जो सर्वदृष्टा, शाश्वत, मुक्त और स्वेच्छा से भ्रमण और स्वरूप ग्रहण करने वाला है, जो साक्षी चेतन और अपनी इच्छा से विकसित होने वाला है । इस विश्वास की पुष्टि और शोध के लिए ही 'लीग फार स्पिरिचुअल डिस्कबरी' की स्थापना हुई है । यह संगठन अनेक घटनाओं के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है कि मनश्चेतना से परे भी कोई चेतना तत्व इस सृष्टि में विद्यमान है, शरीरधारियों का केन्द्र और मूल भी वही है ।

हमारे यहाँ यह कहा जाता है कि कथा-कीर्तन, संगीत, भजन, चित्रकला, जप-तप, ध्यान-धारणा के आधार पर मन को एकाग्र करके कैसे आत्म-तत्व को शोध में नियोजित किया जा सकता है निग्रहीत मन की सत्ता इतनी सूक्ष्म और गतिशील हो जाती है कि उसे कहीं भी दौड़ाया जा सकता है और दूरस्थ स्थान को भी देखा और सुना जा सकता है । मन को जब आत्मा में केन्द्रित कर देते हैं तो समाधि सुख मिलता है ।

दूसरे देशों में समाधि-सुख की कल्पना तो की गई है, पर उसका कारण और कर्त्ता आत्मा को न मानकर मन को माना जाता है । मन यद्यपि अत्यन्त सूक्ष्म सत्ता है, पर वह अन्न की गैसीय स्थिति है, अन्न से रस, रक्त, माँस, मेदा, मज्जा, अस्थि, वीर्य आदि सप्त धातुयें बनती हैं । वीर्य इनमें से स्थूल-तत्व की अन्तिम अवस्था है, वहाँ से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि अन्त-करण चतुष्टय बनते हैं, इनको ज्ञान और मोक्ष का आधार माना गया है । अर्थात् यह मन के ऊपर अवलम्बित है कि वह संसारिक पदार्थ से घिरा रहे अथवा सूक्ष्म-सत्ता को प्राप्त कर समाधि सुख प्राप्त करे । मन तो भी एक रासायनिक तत्व ही है, आत्मा नहीं ।

अमेरिका के डक्टर टिमोदीलियरी ने मन को अन्तिम स्थिति माना है और उसी के विस्तार को समाधि सुख । नशा और कुछ औषिधियाँ मनश्चेतना का विस्तार कर देती हैं, जिससे अनेक गुना अधिक शक्ति अनुभव होती है, उस स्थिति में कामजन्य-सुख बहुत बढ़ जाता है । सामान्य स्थिति में भी अपने में शक्ति अनुभव होती है और बड़ा आनन्द आने लगता है। वह दरअसल चेतना को निम्नस्तर से उठाकर जगत् के मूल-भूत तत्वों के साथ एकाकार कर देने की क्षणिक स्थिति मात्र है । पर वह उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना आध्यात्मिक साधना । उससे अति मानस तत्व की सत्यता अनुभव की जा सकती है ।

इस दिशा में जैसी कैसन के मनो-विस्तारक प्रयोगों का बड़ा महत्त्व है । वे प्रकाश की किरणों को विविध आकृतियों में संयोजित करती हैं और पानी के माध्यम से उन आकृतियों के छाया-चित्र किसी पर्दे में प्रक्षेपित करती हैं । उन चित्रों को ध्यानपूर्वक देखने से मनुष्य सम्मोहन की स्थिति में पहुँच जाता है और उसे विचित्र प्रकार की अनुभूतियाँ होने लगती हैं, इससे भी आत्मा का अस्तित्व प्रमाणित होता है । यह अनुभूति यद्यपि क्षणिक होती है और पाश्चात्य वैज्ञानिक उसे सुख की संज्ञा दे देते हैं, पर यह वस्तुतः उस आत्मा के साथ एकाकार का क्षणिक आवेग है, समाधि सुख तो आत्मा में पूर्ण विलय के साथ ही मिलता है ।

सोमरस के सम्बन्ध में भारतवर्ष में अनेक तरह की मान्यतायें प्रचलित हैं, उसका अलडुअस हक्सले ने बहुत गुणगान किया है । उत्तर योरोप में उसी तरह का एक पेय फ्लाई एगेरिक नाम कुकुरमुत्ते से तैयार किया जाता है फिजी द्वीप-समूह के लोग कावा नामक पेय पीते हैं । एन्डियन तराई (अमरीका) के लोग आयाहुस्का नामक पेय पीते हैं, इससे उन्हें दिवास्वप्न जैसी अनुभूतियाँ होने लगती हैं । कई बार इस अवस्था में भविष्य की और मृत आत्माओं की विचित्र और सत्य बात फलित होती हैं । मन उस अवस्था में किसी बड़े तत्व के साथ एकाकार होकर ही क्षणिक अनुभूतियाँ प्राप्त करता है । वह तत्व यदि है तो उसे आत्मा कहेंगे । भले ही उसका स्वरूप समझने में विज्ञान जगत को कुछ समय लगे ।

शाश्वत सुख हमारे जीवन का लक्ष्य है और आत्मा उसका केन्द्र । इन्द्रियाँ उसके विषय मात्र हैं, इन विषयों को लक्ष्य

न बनाकर आत्मा को जानने का प्रयत्न करना चाहिये, यही बात उपनिषदकार ने कही है ।

लोकोत्तर जीवन की विज्ञान द्वारा स्वीकृति

आत्मा की चैतन्य-सत्ता के प्रतिपादन के साथ ही यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि मृत्यु के उपरान्त आत्मा की गति क्या, कैसी और कहाँ होती है । यही बात कौषीतिकि ब्राह्मणोपनिषद् में इस प्रकार कही है ।

महर्षि उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को महर्षि चित्र का यज्ञ सम्पन्न कराने को भेजा । चित्र स्वयं महान् विद्वान थे, उन्होंने श्वेतकेतु से जीवात्मा की गति संबन्धी कुछ प्रश्न किये । किन्तु श्वेतकेतु से उन प्रश्नों का उत्तर न बन पड़ा। उन्होंने कहा-''हमारे पिताजी, अध्यात्म विद्या के पण्डित हैं उनसे पूछकर उत्तर दूँगा ।''

श्वेतकेतु पिता उद्दालक के पास आये । सारी बात कह सुनाई । महर्षि चित्र ने जो प्रश्न किये थे, वे भी सुनाये । किन्तु उद्दालक स्वयं भी उन बातों को नहीं जानते थे, इसलिये उन्होंने श्वेतकेतु से कहा- 'तात्,तुम स्वयं चित्र के पास जाकर इन प्रश्नों का समाधान करो; प्रतिष्ठा का अभिमान नहीं करना चाहिए । विद्या या ज्ञान छोटे बालक से भी सीखना चाहिये।'

श्वेतुकेतु को अपने पिता की बात बहुत अच्छी लगी । वे चित्र के पास निरहंकार भाव से गये और विनीत भाव से पूछा- ''महर्षि हमारे पिताजी भी उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकते । उन्होंने आपसे ही वह विद्या जानने को भेजा है ।'' तब चित्र ने विनीत श्रद्धा से प्रसन्न होकर जीवात्मा की परलोक गति का विस्तृत अध्ययन कराया । कोषीतिक ब्राह्मणोपनिषद में महर्षि चित्र ने जीव की गति और लोकोत्तर जीवन की व्याख्या करते हुए लिखा है -

''तनेत देवयजनं पन्थानमासाद्याग्नि लोक भागच्छति । स वायुलोकं स वरुणलोकं स आदित्यलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापति लोकं स ब्रह्मलोकम् तं ब्रह्मा हाभिधावत् मम यशभा विरजाँ पालयन्नर्दीप्राप न वाऽयजिगीयतीति ।''

कौषीताकि ब्राह्मणोपनिषत् ।३,

अर्थात्-जो परमेश्वर की उपासना करता है, वह देवयान मार्ग द्वारा प्रथम अग्निलोक को प्राप्त होता है । फिर वायु-लोक में पहुँचता है, वहाँ से सूर्यलोक में गमन करता, फिर वरुण-लोक में जाकर इन्द्र-लोक में पहुँचता है । इन्द्र-लोक से प्रजापति-लोक, प्रजापति-लोक से ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है । इस ब्रह्म-लोक में प्रविष्ट होने वाले मार्ग पर 'आर' नामक एक वृहद् जलाशय है । उससे पार होने पर काम-क्रोध आदि की उत्पत्ति द्वारा ब्रह्म-लोक प्राप्ति की साधना और यज्ञादि पुण्य कर्मों को नष्ट करने वाले 'येष्टिह'नामक मुहूर्ताभिमानी देवता निवास करते हैं, उनसे छुटकारा मिलने पर विरजा नाम की नदी मिलती है, जिसके दर्शन-मात्र से वृद्धावस्था नष्ट हो जाती है । इससे आगे इला नाम की पृथिवी का स्वरूप इह्य नामक वृक्ष है, उससे आगे एक नगर है, जिसमें अनेकों देवता निवास करते हैं, उसमें बाग-बगीचे, नदी-सरोवर, बावड़ी, कुएँ आदि सब कुछ है ....।

इन आख्यानों को आज का प्रबुद्ध समाज मानने को तैयार नहीं होता । उन्हें काल्पनिक होने की बात कही जाती है । सम्भव है उपरोक्त कथन में जो नाम प्रयुक्त हुए हों, वह काल्पनिक हों पर आज का विज्ञान यह तो स्पष्ट मानने को तैयार हो गया कि पृथ्वी के अन्यत्र लोक भी हैं, वहाँ भी नदियाँ, पर्वत, खार-खड्डे, प्रकाश, जल, वायु, ऊष्मा आदि हैं । चन्द्रमा के एक पर्वत का नाम शैलशिपर रखा गया है । इस तरह के अनेक काल्पनिक नाम रखे गये है। मंगल गृह के चित्र में कुछ उभरती हुई रेखायें दिखाई दी हैं, जिनसे नहर या सड़क होने का अनुमान लगाया जाता है । यदि इस तरह का विज्ञान अन्य लोकों में सम्भव है, तो वहाँ भी सभ्य और सांस्कृतिक जीवन हो सकता है । इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं रह जाती।

अब तक जो वैज्ञानिक खोजें हुई हैं, उनमें बताया गया है कि हमारी आकाश गंगा में लगभग १००००००००००० नक्षत्र हैं । ग्रह परिवारों से युक्त नक्षत्रों की संख्या १०००००००००० है । जीवों के निवास योग्य ५००००००००० नक्षत्र हैं, जिनमें जीव हैं उन ग्रहों की संख्या २५००००००००० बताई जाती है । ऐसे ग्रह जिनके प्राणी काफी समुन्नत हो चुके हैं, उनकी संख्या ५०००००००० है । जिन ग्रहों के जीव संकेत भेजना चाहते हैं और जिनके संकेत भेज रहे हैं, उनकी संख्या क्रमशः १०,०००००००० और १०००००० है । यह आँकड़े ब्रिटेन के प्रसिद्ध अन्तरिक्ष शास्त्री 'डेस्मॉड विग हेली' द्वारा विस्तृत अध्ययन खोज और अनुमान के आधार पर प्रस्तुत किये गये हैं ।

कुछ ग्रह ऐसे हैं, जहाँ जल व आक्सीजन की मात्रा इतनी कम है कि वहाँ जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती । चन्द्रमा का धरातल दिन में इतना गर्म रहता है कि धातुयें पिघल जायें, इसलिये किसी मानव जैसे देहधारी का वहाँ होना नितान्त असम्भव है । इसी तरह रात में चन्द्रमा का तापमान शून्य से भी बहुत नीचे गिर जाता है, इसलिये भी प्राणियों का अस्तित्व सम्भव नहीं दिखाई देता । चन्द्रमा का एक दिन पृथ्वी के सात दिन के बराबर होता है, इतने लम्बे समय तक सूर्य की 'अल्ट्रावायलेट' किरणों को सहन करना मानव शरीर के

वश की बात नहीं । शुक्र ग्रह की स्थिति भी ऐसी ही है वहाँ जीवन की सम्भावना नहीं हो सकती ।

किन्तु कुछ ऐसे कारण और परिस्थितियाँ भी हैं, जिनसे सौरमण्डल के कुछ ग्रहों में जीवन होने का स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है । यह हम सब जानते हैं कि पदार्थ समान परिस्थिति के अणुओं से मिलकर बनता है । अणु ही शरीर रचना के आधार होते हैं । वैज्ञानिकों को इन बातों के प्रमाण मिले हैं कि जिस तरह के अणु पृथ्वी में पाये जाते हैं, उस तरह के अणु लाखों मील दूर के ग्रहों में भी विद्यमान हैं । वह शरीर रचना की स्थिति में होते हैं । अलवत्ता चेतनता उन ग्रहों में पहुँचकर उन अणुओं से बने शरीर के कारण ज्ञान, आत्म-सुख, सन्तोष, शांति आदि की परिस्थितियाँ पृथक् अनुभव कर सकती है । उनके बोलने और समझने के माध्यम अलग हो सकते हैं । शरीर की आकृति भी भिन्न हो सकती है । चूँकि प्राकृतिक नियम और रासायनिक तत्व ब्रह्माण्ड के सभी ग्रहों पर अपरिवर्तित रहते हैं, इसलिये वैज्ञानिकों को यह भी आशा है कि रासायनिक तत्त्वों के मिश्रण से जैसी चेतनता तथा प्रतिक्रिया पृथ्वी पर अनुभव होती है, वैसी कल्पना से परे दूरियों पर बसे अगणित ग्रहों पर भी अवश्य होती होगी ।

इटली के ब्रूनो कहते थे-"असंख्य ग्रहों पर जीवन का अस्तित्व है । विश्व में जीवन की अभिव्यक्ति असंख्य और अलग-अलग रूपों में है । किसी ग्रह के निवासियों के हाथ पाँव, सात किसी के पाँव नहीं होते होंगे । कहीं दाँतों की आवश्यकता न होती होगी, कहीं पेट की । आकृतियाँ कहीं-कहीं कल्पनातीत भी हो सकती हैं । पृथ्वी अनन्त विश्व में एक छोटे से कण के बराबर है । यह सोचना हास्यास्पद है कि केवल पृथ्वी पर ही बुद्धि वाले जीव रहते हैं ।"

बाद में इंग्लैण्ड के न्यूटन, जर्मनी के कैप्लेर और लैब्नीत्सा, गैलीलियो, रूस के लोमोनासोव फ्रान्स के देकार्त और पास्कल आदि ने भी स्वीकार किया कि ब्रह्माण्ड के ग्रहों में जीवन है । वे वेदों के इस विश्वास को भी मानने को तैयार थे कि पृथ्वी से दूर आकाशीय पिंडों में जीव की कर्मगति के अनुसार पुनर्जन्म होता है । यह जन्म कुछ समय के बाद भी हो सकते हैं और लम्बे समय के भी । मनुष्य अपने सारे जीवन के बाद मृत्यु के क्षणों तक जैसी मानसिक स्थिति विकसित कर लेता है, उसका प्राण-शरीर और कारण शरीर भी उसी के अनुरूप परिवर्तित हो जाता है, फिर जहाँ उस शरीर के अनुरूप परिस्थितियाँ होती हैं, वह उसी आकाश पिण्ड की ओर खिंच जाता है । और वहाँ सुख-दुःख की वैसी ही अनुभूति करता है, जिस तरह कि इस भौतिक जगत में ।

सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड मनुष्य शरीर की तरह ही एक स्वतन्त्र पिण्ड जैसा है, उसमें जीवों की गति उसी प्रकार सम्भव है, जिस तरह शरीर में अन्न-कणों की गति होती है ।

अब इस मान्यता का खण्डन करना सम्भव हो गया कि अन्य ग्रहों की तापमान की स्थिति में प्राणी का रहना सम्भव नहीं । यह ठीक है कि शरीर का जो स्वरूप (हाथ-पाँव, नाक-मुँह, पेट आदि) पृथ्वी पर है, वह अन्यत्र न हों । वातावरण के तापमान और दबाव की स्थिति में भी जीव प्राणी अपने आपको वातावरण के अनुकूल बना लेते हैं । इस दृष्टि से वृहस्पति, शनि, यूरेनस (उरण), नेप्च्यून (वरुण), प्लूटो (यम) आदि ग्रहों को देखें तो जान पड़ता है कि वहाँ जीवन नहीं है, वहाँ मीथेन गैस की अधिकता है । वृहस्पति ग्रह पर घने बादल छाये रहते हैं ।

बादलों का विश्लेषण करने पर वैज्ञानिकों ने पाया, उनमें हाइड्रोजन का सम्मिश्रण रहता है । अमोनिया और मीथेन गैसें भी अधिकता से पाई जाती हैं । बादलों में सोडियम धातु के कण भी पाये जाते हैं, इससे वृहस्पति के बादल चमकते हैं । इन परिस्थितियों में यद्यपि जीवाणुओं की शक्ति नष्ट हो जाती है, पर जिस तरह पृथ्वी पर ही विभिन्न तापमान और जल-उष्मा की विभिन्न स्थितियों में मछली, साँप, मगर, कीड़े-मकोड़े, वनस्पति, फल-पौधे, स्तनधारी गोलकृमि और टारड़ीग्रार्डे जैसे जीव पाये जाते हैं, तो अन्य ग्रहों पर इस तरह की स्थिति संभाव्य है और इस तरह सूर्य, चन्द्रमा आदि पर भी जीवन सम्भव हो सकता है, भले ही शरीर की आकृति और आकार कुछ और ही क्यों न हो ।

इस तथ्य की पुष्टि में अमरीकी वैज्ञानिक मिलर का प्रयोग प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है । मिलर ने एक विशेष प्रकार के उपकरण में अमोनिया, मीथेन, पानी और हाइड्रोजन भर कर उसमें विद्युत धारा गुजारी । फिर उस पात्र को सुरक्षित रख दिया गया । लगभग १० दिन बाद उन्होंने पाया कि कई विचित्र जीव-अणु उसमें उपज पड़े हैं, कुछ तो 'एमीनो एसिड' थे । इससे यह सिद्ध होता है, वातावरण की विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्राणियों का जीवन होना सम्भव है । यह भी संभव है कि उनमें से कुछ इतने शक्तिशाली हों कि दूर ग्रहों पर बैठे हुए अन्य ग्रहों-जिन में पृथ्वी भी सम्मिलित है-के लोगों पर शासन कर सकते हैं । उन्हें दण्ड दे सकते हों अथवा उन्हें अच्छी और उच्च स्थिति प्रदान कर सकते हैं । लोकोत्तर निवासी पृथ्वी के लोगों को अदृश्य प्रेरणायें और सहायतायें भी दे सकते हैं ।

इस दृष्टि से यदि हम अपने आर्य ग्रन्थों में दिये गये सन्दर्भों और अनुसंधानों को कसौटी पर उतारें, तो यह मानना पढ़ेगा कि वे सत्य हैं, आधारभूत हैं । अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार जीवात्मा को अन्य लोकों में जाना पड़ता होगा और वहाँ वह अनुभूतियाँ होती होंगी, जो कोषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् में दी गई हैं ।

इन वैज्ञानिक तथ्यों को देखते हुए यदि कोई कहे कि मनुष्य को शुभ और सत्कर्म करना चाहिए, ताकि वह ऊर्ध्व लोकों का आनन्द ले सके तो उसे हास्य या उपेक्षा की दृष्टि से नहीं, वैज्ञानिक दृष्टि से तथ्यपूर्ण अनुभव करना चाहिये। शास्त्रकार का यह वचन हम सबके लिये शिरोधार्य होना चाहिये-

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
तथात्मानं समाधत्स्व भ्रश्यसेन पुनर्यथा ।।

यह मनुष्य शरीर पाना बड़ा दुर्लभ है । बड़े पुण्यों से यह प्राप्त किया जाता है । यह स्वर्ग की प्राप्ति का साधन है, इसलिये इस मनुष्य शरीर को प्राप्ति करके इसं शुभ कर्मों में लगाना चाहिये, जिससे अवनति को प्राप्त न हो । पथ-भ्रष्ट न हो ।

जीवात्मा की अमरता को स्वीकार कर हमें भी ऊर्ध्व लोकों (स्वर्ग) और ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के प्रयत्न करने चाहिये । सत्कर्मों द्वारा आत्मा को विकसित करना उसका सर्वोत्तम और सरल उपाय है । विकास को इसी जीवन तक सीमित समझ कर तथा उसके उपरान्त विकास के अधूरे प्रयत्न व्यर्थ ही रह जाने की आशंका कर अर्जुन की तरह अन्तर्द्वन्द्व में पड़ने की आशंका नहीं । मृत्यु जीवन का अंत नहीं और सत्प्रयास कभी भी निष्फल नहीं रहते । अतः मरणोत्तर जीवन एवं पुनर्जन्म की वास्तविकता को समझकर निरन्तर विकास को चेतना को ऊर्ध्वमुखी बनाने का प्रयास करना ही उचित एवं आवश्यकहै । मनुष्य जन्म की सार्थकता इसी में है । जीवन को शरीर तक सीमित समझकर पशु-प्रयोजनों में ही उलझे रहना तो आत्म-सत्ता का अपमान है उसकी महानता की अवज्ञा है । इस पाप से बचने और चेतना की अनंतता को स्मरण करते हुए शरीर को नहीं, उसी अविनाशी सत्ता को सुख देने का ध्यान रखना चाहिए ।

जन्म-मृत्यु मात्र स्थूल जगत की घटनाएँ

प्राचीन भारतीय इतिहास को आध्यात्मिक उपलब्धियों की शृंखला कहें, तो आध्यात्मिक साहित्य और दर्शन को तत्वदर्शी, ऋषियों, योगी और सन्तों का इतिहास कहना पड़ेगा । आध्यात्मिक जगत की प्रसिद्ध घटना है कि मण्डन मिश्र के जगद्‌गुरु शंकराचार्य से शास्त्रार्थ में पराजित हो जाने के बाद उनकी धर्मपत्नी विद्योत्तमा ने मोर्चा सम्भाला । उसने शंकराचार्य से ''काम-विद्या'' पर ऐसे जटिल प्रश्न पूछे जो उन जैसे ब्रह्मचारी संन्यासी की कल्पना से भी परे थे, किन्तु वे योगी थे उन्हें मण्डन मिश्र जैसे महान् पण्डित की सेवाओं की अपेक्षा थी सो उन्होंने महिष्मती नरेश के मृतक शरीर में ''परकाया-प्रवेश''किया और ''काम-विद्या'' का गहन अध्ययन किया । उनके द्वारा प्रणीत ''काम-सूत्र''इस विद्या का अनुपम ग्रन्थ माना जाता है ।

इतिहास में इस घटना की तरह ही पाटिलपुत्र के सम्राट महापद्मनन्द और चाणक्य भी प्रख्यात हैं, पर वे केवल शासकीय दृष्टि से । बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि महापद्मनन्द का शरीर एक था पर उस शरीर से यात्रायें दो आत्माओं ने की थी एक स्वयं महापद्मनन्द ने तो दूसरे तत्कालीन विद्वान् आचार्य उपवर्ष के प्रसिद्ध योगी शिष्य 'इन्द्र दत्त' ने ।

महर्षि उपवर्ष और उनके अग्रज महर्षि वर्ष का पाटलिपुत्र में ही विशाल तपोवन और गुरुकुल आश्रम था, जिसमें देश-विदेश से आये स्नातक साहित्य, भेषज, व्याकरण और योग विद्या सीखा करते थे । उपवर्ष के शिष्यों में तीन शिष्य ऐसे थे जिन्हें त्रिवेणी संगम कहा जाता था । प्रथम वररुचि या कात्यायन जो पीछे सम्राट चन्द्रगुप्त के महामन्त्री बने । इन्होंने पाणिनी के व्याकरण सूत्रों की टीका की थी । दूसरे थे ''व्याडी'' इन्होंने एक विशाल व्याकरण ग्रन्थ लिखा था जिसमें सवा लाख श्लोक थे यह ग्रन्थ अँग्रजों के समय जर्मनी में उठा ले गये थे और आज तक फिर उसका पता ही नहीं चल पाया । केवल

मात्र कुछ श्लोक ही यत्र-तत्र मिलते हैं । तीसरे देवदत्त थे जिनकी योग विद्या में इतनी गहन आभिरुचि थी कि उस युग में उनके समान कोई अन्य योगी न रह गया था । ''उपवर्ष ने उन्हें ''परकाया प्रवेश''तक की गूढ़ विद्या सिखलाई थी ।

तीनों शिष्यों में प्रगाढ़ मैत्री थी । आश्रम से विदा होते समय तीनों साथ ही महर्षि उपवर्ष के पास गये और उनसे गुरु दक्षिणा माँगने का आग्रह किया । आचार्य प्रवर ने समझाया-वत्स आचार्यों की विद्या योग्य शिष्य पाकर स्वतः सार्थक हो जाती है, तुमने अपने-अपने विषय में दक्षता और प्रवीणता पाकर मेरा यश बढाया है, यही मेरे लिए पर्याप्त है तो भी मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि तुम्हें जो ज्ञान का प्रकाश और मार्गदर्शन यहाँ मिला उसका तुम सारे देश में प्रचार-प्रसार करना ।

बात पूरी हो गयी थी किन्तु वे तीनों सिद्धि के अंहकार में थे अतएव कोई न कोई लौकिक वस्तु माँगने के आग्रह पर अड़ गये । गुरु को क्षोभ हुआ उनने कहा भी-हमने तुम्हें सिद्ध बनाया । किन्तु सिद्धि को आत्मसात करने वाली सरलता और गम्भीरता नहीं सिखाई उसी का यह प्रतिफल है-वहीं मानते जाइये और हमारे लिये एक लाख स्वर्ण मुद्राओं का प्रबन्ध कीजिए।

तीर धनुष से निकल चुका था । मर्मस्थल तो विधना ही था । वररुचि और व्याडी दोनों अभी इस चिन्ता में थे कि इस कठिन समस्या का निराकरण कैसे हो तभी देवदत्त ने मुस्करा कर कहा-हे तात ! आपने सुना है आज महापद्मनन्द ने देह परित्याग कर दिया है मुझे परकाया प्रवेश-विद्या आती है । मैं महापद्मनन्द की मृतक देह में प्रवेश कर स्वयं पद्मनन्द बनूँगा, इसी खुशी में राजभवन में उत्सव होगा दान-दक्षिणा बटेगी उसी में इस धन का प्रबन्ध वररुचि को कर दूँगा, व्याड़ी इस बीच मेरे शव की रक्षा करें ताकि अपना कार्य पूरा करते ही मैं पुनः अपनी देह में आ जाऊँ ।

पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार देवदत्त ने अपने कुटी में लेटकर 'प्राणायाम' क्रिया के द्वारा अपने प्राणों को शरीर से अलग कर लिया और महापद्मनन्द के शरीर, में प्रवेश किया महापद्मनन्द पुनः जीवित हो उठे । यह घटना इतिहास प्रसिद्ध घटना है । सारे राज्य में छाई दुःख की लहर एकाएक खुशी में बदल गई । चारों ओर उत्सव मनाये जानें लगे ।

महापद्मनन्द के महामन्त्री ''शकटार'' ने देखा अब पुनर्जीवित महापद्मनन्द के संस्कार, गुण, कर्म, स्वाभाव, मूल सम्राट के गुर्णो से बिलकुल भिन्न हैं संस्कृत के अल्पज्ञ महापद्मनन्द का महान् पांडित्य ही सन्देह के लिए पर्याप्त था। उधर शकटार को यह भी ज्ञात था कि देवदत्त ही एक मात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें परकाया प्रवेश की विद्या आती थी सो यह अनुमान करते देर न लगी कि महापद्मनन्द के शरीर में ''देवदत्त'' की आत्मा के अतिरिक्त और कोई हो नहीं सकता था ।

शकटार कुशाग्र बुद्धि थे । परिस्थितियों के सूक्ष्म विश्लेषण के साथ वे प्रख्यात प्रत्युत्पन्नमार्त महामन्त्री थे । यह वह समय था जब सिकन्दर झेलम तक आ पहुँचा था और उसने सम्राट पुरु को भी पराजित कर लिया था । अगली टक्कर महापद्मनन्द से ही होने वाली थी यदि उसके निधन की बात सिकन्दर तक पहुँच जाती तो उसका तथा उसके सिपाहियों का मनोबल बढ़ जाता, अतएव शकटार ने निश्चय किया कि महापद्मनन्द को वे चाहे जो हों, पुनः मरने नहीं दिया जाना चाहिए । शकटार को कई दिनों से व्याडी का पता नहीं चल रहा था जबकि वररुचि इन दिनों व्यर्थ ही राजभवन के आसपास घूमते दिखाई देते थे, अतएव उसे यह अनुमान करते देर न लगी कि व्याडी और कहीं नहीं देवदत्त के शव की रक्षा में ही होगा । शकटार ने विश्वास-पात्र सैनिकों को भेजकर व्याडी के विरोध के वाबजूद देवदत्त के पूर्ववर्ती शरीर का ''शवदाह'' करा दिया । महापद्मनन्द के शरीर में निर्वासित देवदत्त को इस बात का पता चला तो वे माथा पीटते रह गये, पर अब बाजी हाथ से निकल चुकी थी, अतएव रहे तो महापद्मनन्द ही पर अब वह पद्मनन्द नहीं थे जो कभी पहले थे । बदले की भावना से उन्होंने जीवन भर स्वामिभक्त सेवक की तरह काम करने वाले महामन्त्री शकटार को भी बन्दी बना लिया । राजकाज से सर्वथा शून्य देवदत्त (अब महापद्मन्द) ने सर्वत्र अस्त-व्यतस्ता फैलाई उसी का प्रतिफल यह हुआ कि उसे एक दिन चाणक्य के हाथों पराजय का मुँह देखना पड़ा ।

इस घटना के पीछे किसी राजतन्त्र के इतिहास की व्याख्या करना उद्देश्य नहीं वरन् एक बड़े इतिहास-आत्मा के इतिहास की ओर मानव जाति का ध्यान मोड़ना है, साँसारिकता में पड़कर जिसकी नितान्त उपेक्षा की जाती है । एक शरीर के प्राण किसी अन्य शरीर में रहें, यह इस बात का साक्षी और प्रमाण है कि आत्मा शरीर से भिन्न और स्वतन्त्र अस्तित्व है । इस शाश्वत सत्ता को न समझने की अज्ञान दृष्टि ही मनुष्य को भौतिकतावादी बनाती है, स्वार्थी बनाती है, ऐसे अज्ञानग्रस्त मनुष्य अपने पीछे अन्धकार की एक लम्बी परम्परा छोड़ते हुए जाते हैं और प्रकाश पथ का पथिक, आनन्द-मूर्ति, आत्मा, अन्धकार और साँसारिक बाधाओं में मारा-मारा फिरता रहता है ।

''योग मार्ग उस सत्ता से सम्बन्ध जोड़ने, आत्मोंनुभूति कराने का सुनिश्चित साधन है । यह राह भले ही कठिनाईयों की, आत्म 'नियन्त्रण' आत्म सुधार की हो, पर एक वैज्ञानिक

पद्धति है जिसके परिणाम सुनिश्चित होते हैं । उस कठिन मार्ग पर चलाने वाली आस्था को ऐसी परिस्थितियाँ निःसन्देह परिपुष्ट करती हैं, इस तरह की घटनाएँ उसी युग में ही होती रही हों सो बात नहीं, आज भी इस देश में ऐसे योगी हैं जो इस विद्या को जानते हैं ।

बात उन दिनों की है जब भारत वर्ष में अँग्रेजों का राज्य था उन दिनों पश्चिमी कमाण्ड के मिलिटरी कमाण्डर एल.पी. फैरेल थे उन्होंने अपनी आत्म-कथा में एक मार्मिक घटना का उल्लेख इन शब्दों में किया है-

"मेरा कैम्प आसाम में ब्रह्मपुत्र के किनारे लगा हुआ था । उस दिन मोर्चे पर शान्ति थी । मैं जिस स्थान पर बैठा था उसके आगे एक पहाड़ी ढलान थी, ढाल पर एक वृद्ध साधु को मैंने चहलकदमी करते देखा । थोड़ी देर में वह नदी के पानी में घुसा और एक नवयुवक के बहते हुए शव को बाहर निकाल लाया । वृद्ध साधु अत्यन्त कृशकाय थे शव को सुरक्षित स्थान तक ले जाने में उन्हें कठिनाई हो रही थी तथापि वे यह सब इतनी सावधानी से कर रहे थे कि शव को खरोंच न लगे यह सारा दृश्य मैंने दूरवीन की सहायता से बहुत अच्छी तरह देखा ।

"इस बीच अपने सिपाहियों को आदेश देकर मैंने उस स्थान को को घिरवा लिया । वृद्ध वृक्ष के नीचे जल रही आग के किनारे पालथी मारकर वैठ । दूर से ऐसा लगा वे कोई क्रिया कर रहे हों थोड़ी देर यह स्थिति रही फिर एकाएक वृद्ध का शरीर एक ओर लुढ़क गया, अभी तक जो शव पड़ा था वह युवक उठ बैठा और अब वह उस वृद्ध के शरीर को निर्ममता से घसीटकर नदी की ओर ले चला इसी बीच मेरे सैनिकों ने उसे बन्दी बना लिया तब तक कौतूहल वश मैं स्वयं भी वहाँ पहुँच गया था । मेरे पूछने पर उसने बताया-महाशय ! वह वृद्ध मैं ही हूँ । यह विद्या हम भारतीय योगी ही जानते हैं । आत्मा के लिए आवश्यक और समीपवर्ती शरीर, प्राण होते हैं, मनुष्य देह तो उसका वाहन मात्र है । इस शरीर पर बैठकर वह थोड़े समय की जिन्दगी की यात्रा करता है, किन्तु प्राण शरीर तो उसके लिए तब तक साक्षी है जब तक कि वह परम-तत्व में विलीन न हो जाए ।

"हम जिसे जीवन कहते हैं-प्राण,शरीर और आत्मा की शाश्वत यात्रा की रात, उसका एक पड़ाव मात्र है जहाँ वह कुछ क्षण (कुछ दिनों) विश्राम करके आगे बढ़ता है यह क्रम अनन्त काल तक चलता है, जीव उसे समझ न पाने के कारण ही अपने को पार्थिव मान बैठता है, इसी कारण वह अधोगामी प्रवृत्तियाँ अपनाता, कष्ट भोगता और अन्तिम समय अपनी इच्छा शक्ति के पतित हो जाने के कारण मानवेतर योनियों में जाने को विवश होता है । मुक्ति और स्वर्ग प्राप्ति के लिए प्राण शरीर को समझना, उस पर नियन्त्रण आवश्यक होता है । यह योगाभ्यास से सम्भव है । अभी मुझे इस संसार में रहकर कुछ कार्य करना है, जबकि मेरा अपना शरीर अत्यन्त जीर्ण हो गया था इसी से यह शरीर बदल लिया ।

उस व्यक्ति की बातें बड़ी मार्मिक लग रही थीं । मन तो करता था कि और अधिक बातें की जायें, किन्तु हमारे आगे बढ़ने का समय हो गया था, अतएव इस प्रसंग को यहीं रोकना पड़ा, पर मुझे न तो वह घटना भूलती है और न यह तथ्य कि हम पश्चिम वासी रात को दिन, अन्धकार को ही प्रकाश मान बैठे हैं, इससे अवान्तर जीवन के प्रति हमारी प्रगति एकदम रुकी है यह मरण का वीभत्स रास्ता है, उससे बचने के लिए एक दिन पूर्व का अनुसरण करना पड़ेगा ।

ऊप्र की दो घटनाएँ परकाया प्रवेश की, यह सिद्ध करती हैं कि शरीरों और शारीरिक सुखों के लिए मानवीय मोह, माया मिथ्या है शरीर को, आत्मा का देवमन्दिर समझकर उसकी पवित्रता तो रखी जाये,पर उसे विषय वासनाओं के द्वारा इस तरह गन्दा-गलीज और घृणास्पद न बनाया जाये कि अपना अन्तःकरण ही धिक्कार कर उठे । पश्चिम की एक ऐसी ही घटना यह सिद्ध करती है कि शारीरिक विषय-वासनाओं की आसक्ति किस तरह बार-बार शरीरों में आने को विवश होती है, यहाँ तो प्राण बल था, अतएव दो आत्माएँ एक शरीर के लिए झगड़ती रहीं, किन्तु जब प्राण निर्बल हो तो कीड़े-मकोड़ों की अभावग्रस्त जिन्दगी ही मिलना स्वाभाविक है ।

मिशिगन (अमेरिका) के एक छोटे से गाँव वेटल कीक में वाल्टर सोडरस्ट्रास नामक एक व्यक्ति रहता था । वह एक ऊन की फैक्ट्री में काम करता था । आगे प्रस्तुत घटना १३ सितम्बर, १८५१ के 'न्यूयार्क मरकरी' अंक में इन्हीं सोडर स्ट्राम ने छपाई ।

वाल्टर को समुद्री नौकायन का शौक था वे जिस टापू पर नौका विहार और मछलियाँ पकड़ने जाया करते" उस पर एक कुटिया थी जिस पर एक अधेड़ आयु का व्यक्ति रहता था। अक्सर आते-जाते वाल्टर की उनसें जान-पहचान हो गई थी। एक दिन तूफान और आकस्मिक वर्षा के कारण वाल्टर ने रात उस कुटिया में ही बिताई । जिस समय तूफान का दौर चल रहा था । स्ट्रैन्ड नामक उस व्यक्ति की स्थिति बड़ी विचित्र रही वह इस तरह काँपता रहा जैसे कोई पत्ता काँपता हो यही नहीं बीच-बीच में वह भयंकर चीत्कार भी करता । इस चीत्कार में वह कभी एक भाषा निकालता कभी सर्वथा

अनजान दूसरी। वाल्टर स्काट ने वह रात बड़ी कठिनाई से ताई-वे लिखते हैं-उसकी देह बुरी तरह कसमसा कर ऐंठती थी तो लगता था कि दोनों ओर से पकड़कर दो आदमी उसे निचोड़ रहे हों । थोड़ी देर तक शरीर पीला और निढाल रहा पीछे स्ट्राण्ड मुस्काकर उठ बैठा । पूछने में पहले तो वह टालता रहा, पर बहुत आग्रह करने पर उसने बताया कि एक फ्रान्सीसी की आत्मा भी इस शरीर पर आने के लिए अक्सर प्रतिद्वन्द करती है । उसने बताया कि वास्तव में यह शरीर उसी का है, किन्तु शक्तिशाली होने के कारण इस पर मैंने आधिपत्य जमा रखा है । उसने जेब से एक लाइटर और एक डायरी भी दी जो उस फ्रान्सीसी के थे । लाइटर पर जेकब ब्यूमांट लिखा था । वाल्टर उन्हें लेकर चले आये यह घटना उनके मस्तिष्क पर छाई रही ।

कुछ दिन बाद वाल्टर को पेरिस जाने का अवसर मिला, कौतूहल बस वह डायरी के अनुसार पता लगाते हुए व्यूमांट तक पहुँच गये वहाँ जाकर उसने पाया कि वही स्ट्रैण्ड जो टापू में रहता था वहाँ विद्यमान था । वाल्टर को उसने पहचाना तक नहीं, पर उसने अपनी जेब से वाल्टर का फोटो निकालकर बताया कि आपका यह फोटो मेरे पास कैसे आया, मुझे ज्ञात नहीं । वाल्टर के स्मरण कराने पर वह अपने को व्यूमाण्ट ही बताता रहा-अलवत्ता उसने यह बात स्वीकार की कि उसका एक अमेरिकी आत्मा से लम्बे समय तक शरीर के लिए संघर्ष हुआ है और उसमें अन्तिम विजय मेरी रही ।

एक तीसरी घटना जिसमें एक ही आत्मा द्वारा विभिन्न शरीर उसी तरह बदलने का जिक्र है । जिस तरह एक शहर से ट्रान्सफर के बाद दूसरे शहर में आवास किराये पर लेना पड़ता है । यह घटना अभी थोड़े दिन पूर्व की है ।

१९५५ में लन्दन में एक पुस्तक प्रकाशित हुई है । जिसका नाम है "द थर्ड आई ।" यह पुस्तक एक अँग्रेज ने लिखी, पर उसने अपना नाम उसमें 'टी.लोवसंग' (तिब्बती नाम) लिखा है । १९५८ के मार्च की 'नवनीत' में उसका विस्तृत विवरण छपा है । जिसमें यह बताया गया है कि जिस अँग्रेज को तिब्बत के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, जिसने इंग्लैण्ड से बाहर कभी कदम नहीं रखा, उसने न केवल तिब्बत की भौगोलिक जलवायु सम्बन्धी, अपितु वहाँ के मन्दिरों, मठों, लामाओं तथा दलाई लामा के वह सूक्ष्म विवेचन और संस्मरण लिखे हैं जिनकी जानकारी उसे कभी सम्भव हो नहीं हो सकती थी ।

अपनी पुस्तक में लेखक ने अपने लामा गुरु मिंग्यार का वर्णन करते हुए लिखा है कि परकाया प्रवेश की विद्या मैंने उन्हीं से सीखी और उन्हीं के आदेश से अब तक मैंने तीन शरीर बदले हैं । यह ग्रन्थ पूरा करने के बाद ही मैं यह अँग्रेज शरीर भी छोड़ दूँगा और सचमुच ही पुस्तक लिखने के बाद यह अँग्रेज मृत पाये गये । मृतक की देह पर न तो किसी आघात के लक्षण थे न कृत्रिम मृत्यु । शरीर के प्रत्येक अंग को व्यवस्थित करके इस तरह प्राण निकले, मानो सचमुच किसी यात्रा की तैयारी में रहे हों । इस घटना के बाद जहाँ एक ओर इसके बारे में तहलका मचा, खोज करने पर वह स्थान, वह परिस्थितियाँ सच निकलीं दूसरी ओर लोग आत्म-सत्ता की सामर्थ्य, शरीर के माध्यम मात्र होने तथा जन्म-जन्मान्तर तक चेतना-प्रवाह के अविच्छिन्न रहने की प्रामाणिकता और उसकी उपयोगिता स्वीकारने और समझने को विवश हो रहे हैं ।

परामनोविज्ञान के आधुनिक अनुसंधानों के क्रम में ऐसे अनेक प्रमाण एकत्रित किये गये हैं जिनसे मनुष्यों का पूर्व जन्म होने के प्रमाण मिलते हैं । ऐसे अन्वेषणों में प्रो० राइन की खोजें बहुत विस्तृत और प्रामाणिक मानी गई हैं उनके आधार पर अन्यत्र भी इस दिशा में बहुत सी जाँच-पड़ताल हुई है । इस खोजबीन के निष्कर्ष इस मान्यता का पलड़ा भारी करते हैं कि आत्मा का अस्तित्व मरने के बाद भी बना रहता है और वह पुनर्जन्म धारण करती है । हिन्दू धर्म में आत्मा की अमरता एवं पुनर्जन्म की सुनिश्चितता को आरम्भ से ही मान्यता प्राप्त है किन्तु संसार में दो प्रमुख धर्मों के-ईसाई और इस्लामी धर्मों के बारे में ऐसी बात नहीं है, उनमें मरणोत्तर जीवन का अस्तित्व तो माना जाता है, पर कहा जाता है कि वह प्रसुप्त स्थिति में बना रहता है । महाप्रलय के होने के उपरान्त फिर कहीं नया जन्म मिलता है । इतने बिलम्ब से पुनर्जन्म होने की बात न होने जैसा ही बन जाती है । ऐसी दशा में इन धर्मों के अनुयायियों के बारे में पुनर्जन्म न मानने जैसी ही मान्यताएँ हैं । ऐसी दशा में उस प्रकार की घटनाओं एवं प्रमाणों को न तो खोजा ही जाता है और न वैसा कोई प्रमाण मिलने से उन पर ध्यान ही दिया जाता है । पर अब धार्मिक कट्टरता घट जाने और तथ्यों पर ध्यान देने की चल पड़ी है । विज्ञान और बुद्धिवाद के समन्वय ने यह नई दृष्टि दी है । अस्तु, पाश्चात्य देशों में तथ्यों पर ध्यान देने की प्रवृत्ति से पुनर्जन्म के सम्बन्ध में भी जाँच-पड़ताल करने पर जो तथ्य सामने आये उन पर विचार करने के सम्बन्ध में उत्साह उत्पन्न किया है ।

विगत शताब्दी में योरोप में सबसे पहली किताब फ्रेडरिक स्पेन्सर ओलीवर द्वारा लिखित 'एन अर्थ ड्वेलर्स रिटर्न' थी जिसमें उसने अपने पिछले ३२ जन्मों का हाल लिखा था । उसका

कथन था यह पुस्तक उसने नहीं लिखी किन्तु किसी दिव्यात्मा ने उसके शरीर में प्रवेश करके लिखाई है । इस पुस्तक के पीछे तर्क और प्रमाण न होने से उसे विश्वस्त तो नहीं माना गया, पर जब उसमें की गई भविष्यवाणियों में से कितनी ही सही सिद्ध हुईं तो वह बहुचर्चित अवश्य बन गई ।

इसके बाद मनोविज्ञान और चिकित्सा शास्त्र में समान रूप से ख्याति प्राप्त डा० जीना सरमी नारा द्वारा लिखित 'मैंनो मेन्शन' का नम्बर आता है । जिसमें ऐसे कितने ही आधार प्रस्तुत किये गये हैं जिनसे शरीर न रहने पर भी आत्मा का अस्तित्व बना रहने तथा फिर से जन्म होने की बात पर विश्वास जमता है ।

उन्नीसवीं सदी में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाण एक जीवित व्यक्ति का सामने आया, जिसने पुनर्जन्म की मान्यता वैज्ञानिकों और मनीषियों की गहरी खोज का विषय बनाने के लिए विवश किया उस व्यक्ति का नाम था एडगर कैसी । उसमें ऐसी चेतना उभरी जो कितने ही व्यक्तियों के पूर्व जन्मों के हाल बताती थी । ऐसे तो इस प्रकार की बातें ढोंगी और अर्ध विक्षिप्त लोग भी करते रहते हैं, पर कैसी के कथनों में यह विशेषता होती थी कि वह जो कुछ बताता था तलाश करने पर उसके सारे प्रमाण यथावत् मिल जाते थे । वर्णन इतने पुराने, इतनी दूर के और इतने महत्त्वहीन होते थे कि उन्हें किसी प्रकार पूर्व संग्रह करके तब कहीं बताते जैसी न तो आशंका की जा सकती थी और न वैसी सम्भावना ही थी । टेढ़े-मेढ़े परीक्षणों पर जब उसके कथन को बुद्धिजीवियो द्वारा जाचाँ और सही पाया गया तो उसके कथन को महत्व दिया गया और पुनर्जन्म के सम्बन्ध में नये सिरे से नये उत्साहपूर्वक शोध प्रयास आरम्भ हुऐ ।

अमेरिका के कैन्टकी प्रान्त में होपकिन्स विले नामक व्यक्ति देहात में हुआ । वह अपने अन्य परिवारियों की भाँति नाम मात्र को ही शिक्षित था । उसे सम्मोहन विद्या से वास्ता पड़ा । वह उस तन्द्रा में ऐसी बातें करने लगा जिन्हें अतीन्द्रिय अनुभूतियों की संज्ञा मिलने लगी । आरम्भिक दिनों में वह रोगियों के कष्ट, निदान एवं उपचार के सम्बन्ध में तन्द्रिय स्थिति में परामर्श देता था जो लाभदायक सिद्ध होते थे । फिर उसमें पिछले जन्मों का हाल बताने की नई क्षमता जागी । उसने सैकड़ों के पूर्व जन्मों के विवरण बताये और वे सभी ऐसे थे जो तलाश करने पर सही प्रमाणित हुए । इन प्रमाणों की साक्षी कहाँ से प्राप्त की जाय इस सन्दर्भ में उसने अनेकों सरकारी और गैर सरकारी कागजों में दर्ज ऐसे पुराने विवरण बताये जिनका साधारण रीति से पता लगाना अति कठिन था । साक्षी रूप में वे ढूँढ़े गये तो जैसा कि उल्लेख बताया गया था, ठीक उसी रूप में उसी तरह वह सब मिल गया।

इसी प्रकार कैसी ने ऐसे विवरण भी बताये जिनमें पुराने जन्मों के दुष्कर्मों का फल इस जन्म में मिलने के सिद्धान्त की प्रामाणिकता सिद्ध होती है । इन कष्ट पीड़ितों में अधिकांश विकलांग एवं रोगी थे । उन्हें यह विपत्ति किस कारण उठानी पड़ रही है, इसके सन्दर्भ में विवरण बताये गये वे भी उस कथन की पुष्टि के लिए सबल साक्षी थे । इनकी प्रामाणिकता भी बताये घटनाक्रम के साथ भली प्रकार खोजी गई और जो बताया गया था वह सही मिला । इस प्रकार कैसी रोग चिकित्सा-पूर्व जन्म और कर्मफल के तीन तथ्यों पर ऐसे रहस्यमय प्रकाश डालता रहा जो इससे पूर्व इतनी अच्छी तरह कभी भी सामने नहीं आये थे ।

सम्मोहन-विद्या के उपयोग द्वारा पुनर्जन्म -सिद्धान्त की प्रामाणिकता को पुष्ट करने वाले एसे ही एक व्यक्ति और हुए हैं । उनका नाम ता कर्नल डिरोचाज ।

दिसम्बर १९०४ का एक दिन । एक फ्रान्सीसी इंजीनियर के घर खचाखच भीड़ से भरे वातावरण में अधेड़ आयु के व्यक्ति कर्नल डिरोचाज ने प्रवेश किया । कर्नल को देखते ही लोगों में खामोशी छा गई । एक सर्वथा विचित्र प्रयोग था यह, लोग पुनर्जन्म के प्रमाण देखने उपस्थिति हुये थे । कर्नल ने इन्जीनियर की लड़की मेरी मेव को स्वच्छ आसन पर बैठाया, उसकी दृष्टि में अपनी दृष्टि डालकर वे कुछ क्षणों तक एकटक देखते रहे, थोड़ी ही देर में लड़की की वाह्य चेतना शून्य हो चली, कर्नल ने उसे आहिस्ता से लिटा दिया और उसकी देह को हलकी काली चादर से ढक दिया ।

दैवयोग से कर्नल डिरोचाज ने भारतीय दर्शन की इस मीमांसा की अनुभूति करली थी । वे मेस्मरेजम के सिद्ध थे और इस विद्या द्वारा जीवन के गूढ़ रहस्यों का पता लगाने में सफल हुए थे । उन्होंने न केवल फ्रांस वरन् सारे योरोप को यह बताया था कि जीवन के बारे में पाश्चात्य मान्यता भ्रामक और त्रुटि पूर्ण है हमें इस सम्बन्ध में अन्ततः भारतीय दर्शन की ही शरण लेनी पड़ेगी । अपने इस कथन को प्रमाणित करने के लिए ही वे यह प्रयोग कर रहे थे । उस प्रयोग को देखने के लिये फ्रांस के बड़े शिक्षाविद् और वैज्ञानिक भी उपस्थित थे ।

मेरी मेव के पिता सीरिया में इंजीनियर थे । मेरी स्वयं भी प्रतिभाशाली लड़की थी । मेस्मरेजम द्वारा उसे अचेत कर लिटा देने के बाद कर्नल साहब ने उपस्थित लोगों की ओर

देखकर कहा-अब मेरा इस लड़की के सूक्ष्म शरीर पर अधिकार है में इसे काल और ब्रह्माण्ड की गहराइयों तक ले जाने और वहाँ के सूक्ष्म रहस्यों का ज्ञान करा लाने में समर्थ हूँ ।

किसी जमाने में भारत में प्राण-विद्या के आधार पर प्राणों द्वारा आरोग्य प्रदान करने, गुप्त रहस्य ढूँढ़ने के प्रयोग हुआ करते थे । कर्नल डिरोचाज का यह प्रयोग भारतीय सिद्धांतों का प्रत्यक्ष प्रमाण है यह अनेक विलायती पत्रों में छपा था । पीछे इसे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मासिक 'सरस्वती' में छपाया था । उसी से यह घटना "आध्यात्मिकी" पुस्तक के लिए उद्घृत की गई । यह पुस्तक इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग से प्रकाशित हुई ।

कर्नल डिरोचाज अब प्रयोग के लिए तैयार थे । उन्होंने मेरी मेव को सम्बोधित कर पहला प्रश्न किया-अब तुम्हें कैसा अनुभव हो रहा है, क्या दिख रहा है-प्राण पाश में आबद्ध अचेतन कन्या ने उत्तर दिया-"मैं नीले और लाल रंग की छाया देख रही हूँ यह प्रकाश मेरे भौतिक शरीर से अलग हो रहा है और मैं अनुभव कर रही हूँ कि मैं शरीर नहीं प्रकाश जैसी कोई वस्तु हूँ, अब मैं अपने शरीर से एक गज के फासले पर स्थित हूँ, पर जिस तरह विद्युत कण एक रेडियो को रेडियो स्टेशन से सम्बन्ध किये रहते हैं उसी प्रकार मेरा यह शरीर एक रस्सी की तरह पार्थिव शरीर से बँधा हुआ है । मेरे इस रंगीन प्रकाश शरीर के भीतर दिव्य ज्योति परिलक्षित हो रही है, मैं यही तो आत्मा हूँ ।"

कर्नल ध्यानावस्थित हो गये । उन्होंने कहा-मेव ! अब तुम अपनी वर्तमान आयु से कम आयु की ओर चलो और क्रमशः छोटी आयु की ओर चलते हुए यह बताओ कि तुम इस शरीर में आने पूर्व कहाँ थीं ? कौन थीं ?

कर्नल के प्रश्न बड़े विचित्र लग रहे थे पर उनमें एक अदृश्य सत्य झाँक रहा था । उपस्थित जन-समुदाय स्तब्ध बैठा सारी गतिविधियों को देख, सुन रहा था । जब यह प्रयोग हो रहा था मेरी मेव १८ वर्ष की थी । अब वह बोली-मैं १६ वर्ष की आयु के दृश्य देख रही हूँ अब १४, अब १२ और अब १० की आयु के चित्र मेरे सामने हैं इस समय मैं मारसेल्स में हूँ अपने पिता के साथ, एक विस्तृत जीवन के दृश्य मेरे सामने हैं । अब मैं क्रमशः छोटी हुई जा रही हूँ । फिर वह कुछ देर तक चुप रही ।..............फिर बताना प्रारम्भ किया अभी-अभी मैं १ वर्ष की थी बोल नहीं पाई अब में अपने पूर्व जन्म के शरीर में हूँ । इस शरीर से निकलने के बाद मुझे किसी अज्ञात प्रेरणा ने "मेरी मेव" के शरीर में पहुँचा दिया था -अब में पहले जन्म के शरीर में छोटी हो रही हूँ और देख रही हूँ कि यह ग्रेट ब्रिटेन का समुन्द्री तट है, मैं एक मछुये की लड्की हूँ। मेरा नाम 'लीना' था । २० वर्ष की आयु में मेरी शादी हुई । मेरी एक कन्या हुई । वह दो वर्ष की आयु में मर गई । मेरा पति मछलियाँ मारता है । उसके पास एक छोटा-सा जहाज है, वह समुद्री तूफान में नष्ट हो गया, उसी में मेरे पति की मृत्यु हो गई, मैं बहुत दुःखी हूँ, मैं भी समुद्र में डूबकर मर गई हूँ, मछलियों ने मेरा शरीर खाया मैं वह सब देख रही हूँ । इस सूक्ष्म शरीर मैं मैंने वैसी ही अनेकों आत्मायें देखीं, मैंने कुछ बात भी करनी चाही, पर मेरी बात ही किसी ने नहीं सुनीं, मैं भटकती फिरी पति और बच्चे की याद में । वे मुझे मिले नहीं । हाँ एक नया शरीर अवश्य मिल गया ।

यहाँ तक जो कुछ मेरी मेव ने बताया पीछे जाँच करने पर वह प्रमाणिक तथ्य निकला ।

ऐसी ही एक घटना का विवरण एक रूसी विचारक ने दिया है । बात उन दिनों की है, जब रूस में क्रान्ति मच रही थी । वहाँ के डेनियल वेवर नामक प्रसिद्ध विचारक उन दिनों चीन में एक लामा के बारे में उत्सुक थे । उन्होंने सुन रखा था कि वह किसी भी भूतकालीन घटनाओं को स्वप्न में दिखा देने की क्षमता रखता है ।

श्री बेवर उस तांत्रिक से एक बौद्ध मन्दिर में मिले और उस तरह का प्रयोग देखने की इच्छा प्रकट की । लामा ने एक नवयुवक पर प्रयोग करके दिखाया । योग निद्रा द्वारा स्वप्न की अनुभूति कराने के बाद लामा ने पाल नामक इस युवक से पूछा तुमने क्या देखा उसने बताया "मैंने देखा कि मैं .रूस के सेन्टपीटवर्ग नगर में हूँ । मेरी एक बड़े शीशे के सामने खड़ी शृंगार कर रही है । उसे उसकी दासियाँ "क्रास ऑफ अलेक्जेण्डर" हीरे की अँगूठियाँ पहना रही हैं, मैंने मना किया कि तुम यह अँगूठी मत पहनो । मैंने सारी बातचीत रूसी भाषा में ही की । अपनी प्रेमिका से मिलन का यह स्वप्न बड़ा ही मधुर रहा । तभी एक दूसरा स्वप्न भी दिखाई दिया । मैंने अपने आप को एक परिवर्तित दृश्य में निर्जन रेगिस्तान में पाया। मेरे दो बच्चे भूख से तड़फ रहे हैं पर मैं उनके लिये भोजन नहीं जुटा पाया । मुझे एक ऊँट ने हाथ में काट लिया मेरा अन्त बढ़ी दुःखद स्थिति में हुआ ।'

अपने सम्मुख यह घटना देखने के बाद डा० बेवर रूस लौटे । देवयोग से एक बार सेंटपीटर्स में उनकी भेंट एक स्त्री से हुई । उससे इस बात का क्रम चल पड़ा तो वह एकाएक चौकी और बोली आप जिस महल की बातें बता रहे हैं वह मेरा ही मकान है मेरे पास 'क्रास ऑफ एलेक्जेंडर' हीरे की

अँगूठी भी थी मैंने उसे कई बार पहनना चाहा किन्तु मेरा प्रेमी रास्पुटिन इसे पसन्द नहीं करता था ठीक जिस प्रकार आपने पाल की घटना सुनाई वह मुझे यह अँगूठी पहनने से रोकता था ।

डा० बेवर उस स्त्री के साथ उसके घर गये । हू-बहू वही दृश्य जो स्वप्न में देखकर पाल ने बताये थे । डा० बेवर आश्चर्यचकित रह गये और माना कि स्वप्न सत्य था और यह भी कि जीवात्मा के पुनर्जन्म का सिद्धान्त मिथ्या नहीं है वे सहारा जाकर दूसरी घटना की भी जाँच करना चाहते थे पर कोई सूत्र न मिल पाने से वे निराश रह गये पर यह सत्य था कि उनको जितनी भी जानकारियाँ मिलीं उन्होंने इन मान्यताओं का समर्थन ही किया । इन घटनाओं का उल्लेख प्रो०बेवर ने अपनी पुस्तक 'द मेकर आफ द बेनली ट्राउजर्स' में किया है ।

अमेरिका के कोलोराडो प्यूएली नामक नगर में रूथ सीमेन्स नामक लड़की ने अपने पूर्वजन्म का सही हाल बता कर ईसाई धर्म के उन अनुयायियों को आश्चर्य में डाल दिया है जो पुनर्जन्म के सिद्धान्त को नहीं मानते । उपरोक्त लड़की को 'मोरे बर्नस्टाइन' नामक आत्मविद्या विसारद ने अपने प्रयोग से अर्धमूर्छित करके उसके पूर्व-जन्म की बहुत सी जानकारियाँ प्राप्त कीं । उसने बताया कि १०० वर्ष पूर्व आयरलैण्ड के कार्क नामक नगर में पहले उसका जन्म हुआ था, तब उसका नाम ब्राइडी मर्फी और उसके पति का नाम मेकार्थी था । जो बात लड़की ने बताई थी उनकी जाँच करने अमेरिका के कुछ पत्रकार आयरलैण्ड गये और लड़की के बताये विवरणों को सही पाया।

कालातीत चेतना-प्रवाह

मंगोलिया से अरब तक पहुँचने के लिये अफगानिस्तान ईरान, ईराक, जोर्डन आदि देश पार करके जाया जा सकता है । कई दिन की हवाई यात्रा क्या एक क्षण में सम्भव है? अपने जीवन की एक अद्भुत घटना का वर्णन करते हुए इस प्रश्न का उत्तर और भारतीय दर्शन के-कालातीत आत्मा सिद्धान्त की पुष्टि का प्रमाण प्रस्तुत किया है, अरब के सुप्रसिद्ध दार्शनिक और योगी श्री सुग-अल-जहीर ने ।

श्री जहीर योग की उच्च-भूमिका में प्रवेश के इच्छुक थे-तब वे एक गृहस्थ का जीवन जी रहे थे । सांसारिक सुखोपभोग के बीच कभी-कभी वे अपनी वृद्धावस्था और मृत्यु की कल्पना करते तो चित्त डोल जाता, वैराग्य उत्पन्न होता और वे सोचने लगते, क्या संसार के अन्तिम-सत्य के दर्शन नहीं हो सकते ? इस जिज्ञासा ने ही उन्हें बौद्ध योगियों की शरण लेने और साधना जन्य जीवन जीने की प्रेरणा दी थी । तभी उन्होंने गृहस्थ का परित्याग कर दिया । एक लामा योगी को अपना मार्ग दर्शक उन्होंने चुना और योगाभ्यास प्रारम्भ कर दिया ।

उन्हीं दिनों की घटना है । श्री जहीर अपने गुरु और कुछ अन्य लामाओं के साथ वन-विहार के लिये निकले थे । योग और उच्चस्तरीय साधनाओं में जहाँ शारीरिक चेतना और मन में तीव्र परिवर्तन तथा विचार मंथन प्रारम्भ हो जाता है वहाँ सांसारिक विषय-वासनाओं तथा पूर्व जन्मों के अशुभ प्रारब्ध योग भी पूरा जोर अजमाते हैं । साधक पथ भ्रष्ट न हो जाये, उसकी आत्म-निष्ठा प्रगाढ़ बनी रहे ताकि वह योग की कठिनाइयों को पार करने का साहस स्थिर रख सके, विज्ञ योगी और मार्गदर्शक साधक को शक्ति भी देते हैं और अपनी सिद्धि का लाभ भी । वन में घूम रहे अल-जहीर के मस्तिष्क में आत्मा के अस्तित्व और उसकी प्राप्ति के सन्दर्भ में तर्क-वितर्क उठ रहे थे । मन की बात जान लेने वाले सूक्ष्मदर्शी लामा-गुरु ने उनके अन्तःकरण को पढ़ा । पास में पड़े एक प्रस्तर खण्ड पर बैठते हुए उन्होंने कहा-तुम लोग थक गये होंगे, वह देखो ! वह रहा जलकुण्ड, वहाँ से पानी पीकर आजाओ और थोड़ा विश्राम करलो तब चलेंगे ।

अल-जहीर और अन्य लामा जब तक लौटे मार्गदर्शक लामा ने एक श्वेत पत्थर का तस्तरीनुमा टुकड़ा कहीं से प्राप्त कर लिया श्री जहीर के वापस आते ही बोले-जो-जो आत्मा सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है, वही विराट ब्रह्माण्ड में, तुम चाहो तो कालातीत आत्मा की अनुभूति इसी पत्थर में ही कर सकते हो ।

सो कैसे-? जिज्ञासु जहीर ने प्रश्न किया । लामा ने बताया-योगी में जब तक आत्मानुभूति की क्षमता का स्वतः विकास नहीं हो जाता । तब तक उसकी चेतना को सम्मोहित कर सुसुप्ति अवस्था में नहीं ले जाया जा सकता-और उसके अनेक पिछले जन्मों का-दृश्यों का ज्ञान कराया जा सकता है । आत्मा चूँकि काल से अतीत है इसलिये उसकी गहराई तक पहुँचकर स्वयं को आत्म-स्वरूप में परिणत करना तो समय और साधना साध्य प्रक्रिया है किन्तु कुछ एक जन्मों की पूर्वाभास कराया जाना नितान्त सम्भव है । लो अब तुम इस पत्थर पर अपनी दृष्टि जमाना और मैं तुम्हें उसकी अनुभूति कराऊँगा।

जहीर ने पत्थर में दृष्टि जमाते ही अनुभव किया कि उनकी बाह्य चेतना ज्ञान शून्य हो चली और अब वे धीरे-

धीरे प्रगाढ़ निद्रा की ओर बढ़ चले । अब जैसे कोई स्वप्न देखता है, स्वप्न में कुआँ, बाबड़ी, जानवर देखता है वैसे ही श्री जहीर ने देखा कि एक अत्यन्त तेजस्वी दिव्य आत्मा उनके सम्मुख खड़ी कह रही है- लो अब तुम तैयार हो जाओ मैं तुम्हें उस निविड़ की ओर ले चलता हूँ जहाँ सब कुछ आत्मा ही आत्मा, चेतना ही चेतना है, अचेतन और अनात्म कुछ भी नहीं है । श्री जहीर आगे लिखते हैं-

"अभी तक सामने घिरा अन्धकार दूर हो गया और मुझे लगा कि मैं समय की सीमाओं को छोड़ता हुआ अपने भूतकाल की ओर बढ़ रहा हूँ जैसे कल्पना के साथ विचार ही नहीं उठते दृश्य भी मानस पटल पर बनते जाते हैं । उसी प्रकार भूतकाल के प्रवाह में विगत जीवन की स्मृतियाँ भी सजीव हो चलीं । मैंने देखा मैं पूर्व जन्म में एक सामान्य व्यक्ति था और भौतिक आकर्षणों से घिरा जीवन जीकर नष्ट हो गया । उससे भी पूर्व लगता था में कोई पक्षी रहा होऊँ, हवा में उड़ने और पृथ्वी के ऊपर विचरण के वह दृश्य कभी साँस को तेज कर देते कभी मद्धिम और मैं अपने विचारों की धड़कन भी स्पष्ट सुन रहा था । अतीन्द्रिय अवस्था में विचार ही वाणी का काम करते हैं ।''

"अब मैंने अपने आपके ४ जन्म पूर्व के जीवन के बासठवें वर्ष में प्रवेश किया । रेल में बैठा यात्री जिस प्रकार रेलवे लाइन के किनारे-किनारे के दृश्य देखता है वृक्ष, मकान, दुकानें, खेत, नहरें वैसे ही आत्म-चेतना के प्रवाह में अतीत दृष्टिगोचर होता चल रहा था । प्रभावी दृश्यों की तरह उस समय की प्रभावी अनुभूतियाँ आज भी भूलतीं नहीं । मैं तब काली आँखों वाला एक योगी था और मैंने देखा कि मेरा मठ भी यही मंगोलिया में ही था जहाँ इन दिनों मैं विचरण कर रहा हूँ आश्चर्य है कि पूर्व जन्मों के संस्कार किस प्रकार मनुष्य को खींच-खींच ले जाते हैं मैंने देखा एक दिन मेरे पास एक सुन्दर युवती आई उसे देखते ही मैं अपनी सारी साधना, सारा ज्ञान, भूल बैठा । वह स्त्री मेरे योगच्युत होने का कारण बनी जहाँ मैं आत्मा के साक्षात्कार की दिशा में बढ़ रहा था वहाँ कामग्रस्त मुझ योगी को रोग और शोक, आधि-व्याधि और पतन ने आ घेरा । कर्म की प्रतिक्रिया से भला संसार में कौन बचा है । मेरे इस शरीर का अन्त भी बड़ा दुखद हुआ और इसके बाद का तो बड़ा घृणित जन्म जीना पड़ा मुझे ।''

यह विवरण किसी लोक की अतिरंजना नहीं वरन् एक उस धर्म और देश के प्रख्यात दार्शनिक श्री सुग्रअल-जहीर की आप-बीती और अपनी लेखनी से लिखी यथार्थ घटना है जिसमें आत्मा के आवागमन-पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं किया जाता । अरब देश और इस्लाम धर्म में जन्मे श्री जहीर ने स्वीकार किया है कि "आत्मा के अस्तित्व और विज्ञान सम्बन्धी इस्लाम मान्यतायें गलत हैं । योग साधनाओं द्वारा प्राप्त यथार्थ के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि भारतीय आत्म-विद्या जैसा सच्चा और महान् विज्ञान दुनिया में अन्यत्र नहीं एक दिन सारे विश्व को इन तथ्यों को स्वीकार करने को विवश होना पड़ेगा'' यह घटना उन्हीं की सुप्रसिद्ध पुस्तक "मंगोलिया मठभूमि की अध्यात्मिक यात्रा " से उद्घृत की जा रही है ।

''मैं जितना गहराई में गया मुझे विराट् विश्व की उतनी प्रगाढ़ अनुभूति होती गई और मैं अनुभव करता गया कि व्यक्ति चेतना जीव है और उसी चेतना का समष्टि रूप परमात्मा - यद्यपि मैं उस छोर तक नहीं पहुँच सका । चार दिन तक लगातार वैसी ही योग निद्रा में प्रकाश की गति से ब्रह्माण्ड की जिस सीमा तक जा सकता था उससे विराट् की अनुभूति हुई पर संसार का विस्तार तो करोड़ों प्रकाश वर्षों का है । उसे इस स्थूल देह से प्राप्त कर सकना कहाँ सम्भव था । मैंने मृत्यु की वह विकराल नदी देखी जिसमें संसार में जन्म जीव डूबते-उतरते रहते हैं । जैसे-जैसे गहराई बढ़ी, गतियाँ निश्चेष्ट और ध्वनियाँ शान्त होती जा रही थीं. नीरवता और नीलेपन की ओर बढ़ते हुई हुए मुझे अलौकिक अनुभूतियाँ हुई जिनका शब्दों में वर्णन कर सकना कठिन है क्योंकि वह उपामायें धरती पर हैं नहीं , जो वस्तुऐं अदृश्य हों उनका परिचय उपमाओं से ही दिया जा सकता है, उपमायें न हों तो वह विराट् कैसे समझाया जा सकता है ।''

''अब मैं वापस लौटता हूँ तो उसी क्रम से अनेक चित्र और दृश्य देखते-देखते फिर एक बार अपनी जन्मभूमि अरब के उस मकान में आकर विचार ठहर जाते हैं जहाँ कुछ दिन पूर्व मैं अपनी माँ, पत्नी और बच्चों के साथ रहता था । उसकी एक-एक घटना को मैंने देखा यह घटनायें ही मेरे द्वारा देखे गये अब तक के सभी दृश्यों की सत्यता का प्रमाण हैं क्योंकि इस जीवन की घटनाओं की सत्यता-असत्यता पर तो कोई शंका नहीं ही हो सकती । मैंने आज की स्थिति में भी अपनी पत्नी को देखा और अनुभव किया-मनुष्य की उस दुर्बलता को जो वह यह मानकर किया करता है कि मुझे तो कोई देख नहीं रहा। पर अनुभव करता हूँ कि मनुष्य हजार कोठरियाँ के अन्दर छिपा हो तो भी वह हजार आत्माओं द्वारा और परमात्मा द्वारा देखा जाता रहता है ।'

''धीरे-धीरे मेरी निद्रा समाप्त हुई तब मालूम पड़ा कि ४ दिन में कितने विस्तृत जीवन के दृश्य देख आया अब तो यही लगता है कि संसार में काल से अतीत, ब्रह्माण्डों से

भी- अतीत यह विज्ञानमय आत्मा ही सत्य है इसीलिए अब सांसारिक भोगों की आकांक्षा को त्यागकर आत्म-साक्षात्कार के प्रयत्न में जुट गया हूँ ।"

ये घटनायें पुनर्जन्म की मान्यता को स्पष्टतः प्रमाणित करती हैं । भारतीय धर्म शास्त्रों में पग-पग पर मरणोत्तर जीवन के तथ्य का प्रतिपादन किया है । गीता में बार-बार इस बात का उल्लेख किया गया है कि शरीर छोड़ना वस्त्र बदलने की तरह है । प्राणी को बार-बार जन्म लेना पड़ता है । शुभ कर्म करने वाले श्रेष्ठलोक को-सद्गति को प्राप्त करते हैं और दुष्कर्म करने वालों को नरक की दुर्गति भुगतनी पड़ती है ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय-
नवानि गृहणाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय-
जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

-गीता २।२२

"जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र को त्यागकर के नया वस्त्र धारण करता है, इससे वस्त्र बदलता है, कहीं मनुष्य नहीं बदलता, इसी प्रकार देहधारी आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर दूसरा नया शरीर धारण करता है ।"

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तब चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वयं वेत्थ परंतप ।।

-गीता ४।५

"अर्जुन! मेरे और तुम्हारे अनेक जन्म बीत गये हैं । ईश्वर होकर मैं उन सबको जानता हूँ, परन्तु हे परंतप ! तू उसे नहीं जान सकता ।"

थियासफी के जन्मदाताओं में से एक सर ओलिवर लाज ने लिखा है-"जीवित और मृत भेद स्थूल जगत तक ही सीमित है । सूक्ष्म जगत में सभी जीवित हैं । मरने के बाद आत्मा का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता । जिस प्रकार हम जीवित लोग परस्पर विचार-विनिमय करते हैं उसी प्रकार जीवित और मृतकों के बीच में आदान प्रदान हो सकना सम्भव है । हमें विज्ञान के इस नये क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिये । और एक ऐसी दुनिया के साथ सम्पर्क बनाना चाहिए जो हम मानवी परिवार को कहीं अधिक सुविस्तृत सुखी और प्रगतिशील बना सकेंगे ।

सर आर्थर कानन डायल भी इसी विचार के थे । वे कहते थे 'अपनी दुनियाँ की ही तरह एक और सचेतन दुँनिया है जिसके निवासी न केवल हमसे अधिक बुद्धिमान हैं वरन् शुभ-चिन्तक भी हैं । इन दोनों संसारों के बीच यदि आदान-प्रदान का मार्ग खुल सके तो इसमें स्नेह-सम्वेदनाओं का सुखद सहयोग का एक नया अध्याय प्रारम्भ होगा । मृतकों और जीवितों के बीच सम्पर्क-स्थापना का प्रयास यदि अधिक सच्चे मन से किया जा सके तो अब तक की प्राप्त वैज्ञानिक उपलब्धियों से कम नहीं वरन् बड़ी सफलता ही मानी जायेगी । तथा यह भारतीय प्रतिपादन पुष्ट हो जाएगा कि जन्म और मृत्यु मात्र स्थूल जगत की घटनाएँ हैं । आत्मा "न जायते, म्रियते वा कदाचिन' आत्मा न कभी जन्म लेती है न कभी मरती है ।

जीवन सत्ता का चैतन्य स्वरूप

ए०एन०विझोरी ने अपनी पुस्तक "कान्टेम्पोरेरी थॉट ऑफ ग्रेट ब्रिटेन" में इस बात पर चिन्ता व्यक्त की है कि सांसारिक अस्तित्व के सम्बन्ध में जितनी खोज की जा रही है, उतना मानवी-अस्तित्व के बारे में नहीं खोजा जा रहा है । लगता है-मानवी सत्ता, महत्ता और उसकी आवश्यकता को आँखों से ओझल ही किया जा रहा है अथवा चेतन को जड़ का अनुगामी सिद्ध किया जा रहा है बौद्धिक-प्रगति के यह बढ़ते हुए चरण हमें सुख-शान्ति के केन्द्र से हटाकर ऐसी जगह ले जा रहे हैं, जहाँ हम यांत्रिक अथवा रासायनिक बोलने-सोचने वाले उपकरण मात्र बनकर रह जायेंगे । तब हम साधन-सम्पन्न कितने ही क्यों न हों-सभ्यता और संस्कृति अन्य गरिमाओं से हमें सर्वथा वंचित ही होना पड़ेगा । जड़-जीवन के लिये बाधित की गई चेतना कितनी अपंग हो जायेगी? जब यह कल्पना करते हैं तो प्रतीत होता है कि विकास की दिशा में चल रही हमारी दौड़ विनाश में अधिक विघातक सिद्ध होगी ।

कई रूपों में हम-अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक अच्छे समय में रह रहे हैं । आज एक विधि तथा नियम का स्थिर शासन और निश्चित संविधान है । व्यक्तिगत सम्पत्ति एवं स्वतंत्रता अभिव्यक्ति अधिक सुरक्षित है । विज्ञान की प्रगति के कारण मृत्यु दर घट रही है । व्याधियों पर नियन्त्रण किया जा रहा है । औसत आयु बड़ रही है । शिक्षा का प्रसार बढ़ा है । देश-भक्ति जगी है । सुविधा-सामग्री सस्ती तथा सामान्य हो गई है । शासन की स्थापना में जनता का हाथ है । इतना सब होते हुए भी एक भारी क्षति मानवी-दृष्टिकोण का स्तर बहुत नीचा गिर जाने की हुई है । आज सर्वाधिक ज्ञानी, सर्वाधिक धनवान् और सर्वाधिक सामर्थ्यवान् लोगों का दृष्टिकोण भी संकीर्ण और स्वकेन्द्रित हो रहा है । वर्तमान से आगे की उनकी

चिन्तायें तथा रुचियाँ जाती रही हैं । आत्मा के सम्बन्ध में सोचने के लिए उसके पास समय नहीं और न यह सूझ पड़ रहा है कि मानव-जाति का भविष्य बनाने के लिये-बिगाड़ को रोकने के लिए क्या क्या कुछ किया जा सकता है ?

खोज और प्रगति के लिए मात्र भौतिक-क्षेत्र में ही अपने को अवरुद्ध कर लेना हमारे लिए उचित न होगा । यह और भी अधिक आवश्यक है कि जिस जीवधारी के लिए प्रकृति की शक्तियों को करत-लगत करके विपुल सुविधा-साधन जुटाये जा रहे हैं, उसकी अपनी हस्ती क्या है ? इस पर भी विचार किया जाय और यह भी खोजा जाए कि जीवन-सत्ता का विकास-विस्तार किस हद तक सुख-शान्ति की आवश्यकता पूर्ण कर सकता है ? विज्ञान का यह पक्ष भी कम उपयोगी और कम महत्वपूर्ण नहीं समझा जाना चाहिए ।

अभावों और असुविधाओं से लड़ने और प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने के लिए जीवधारी की संकल्प शक्ति को प्रखर बनाया जाना चाहिए । साधनों की बहुलता तो मनुष्य को अकर्मण्य और अशक्त बनाती चली जायेगी । प्रगति का मूल आधार विचार-प्रवाह एवं संकल्प-बल ही रहा है । जीवधारियों की प्रगति का इतिहास इन्हीं उदाहरणों से भरा पड़ा है ।

सृष्टि के आरम्भ में बहुकोषीय जन्तुओं की बनावट बहुत ही सरल थी । स्पन्ज, हाइड्रा, जेलीफिश, कोरल, सी०ऐनीमोन आदि ऐसे ही बहुकोषीय जीव थे । इनके आहार और मल-विसर्जन के लिए शरीर में एक ही द्वार था । इसके बाद क्रमशः सुधार होता चला गया । आहार और मल-विसर्जन के लिए दो द्वार खुले । फिर हड्डियाँ विकसित हुईं । मेरुदण्ड बने, बिना खोपड़ी वाले जानवर धीरे-धीरे खोपड़ी वाले बने । जलचरों ने थल में रहना सीखा । फिर तो कुछ हवा तक में उड़ने लगे । यही विकास क्रम उद्भिज, स्वेदज, अंडज और जरायुज प्राणियों में अग्रगामी हुआ । स्तनपायी जीवों की काया जैसे-जैसे बुद्धिमान होती गई वैसे ही वैसे उनमें अनेक प्रकार की शक्तियों और विशेषताओं का विस्तार हुआ । तदनुसार ही उनकी इन्द्रियों की क्षमता एवं अवयवों की संरचना परिष्कृत होती चली गई । इसी लम्बी मंजिल को पार करते हुए जीवन आज की स्थिति तक बढ़ता चला आया है ।

विकासवाद के अनुसार दुनिया के प्राचीनतम और सर्वोत्तम जीव प्रोटोजोन्स वर्ग के हैं । इन जीवों का शरीर एक कोषीय होता है । उदाहरण के लिए अमीवा, यूग्लोना, पैरामीशियम, वर्टीसेला आदि का आरम्भ एक कोषीय-जीव के रूप में हुआ था । पीछे इनमें से कुछ ने सुरक्षा और सुविधा के लिए परस्पर मिल जुलकर रहना आरम्भ कर दिया । बलकाक्स नामक जीव छोटी-छोटी कोलोनी बनाकर रहने लगे । इन्होंने अपने-अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व बाँटे और मिल-जुलकर रहने के लिए आवश्यक व्यवस्था क्रम का सूत्र-संचालन किया । उनमें से कुछ आहार जुटाने के कुछ वंश-वृद्धि करने, कुछ सुरक्षा संभालने, कुछ सूत्र-संचालन और कुछ वर्ग के लिए विविध श्रम-साधना करने में तत्पर हो गये । इसे हम आदिम-कालीन वर्ण-व्यवस्था कह सकते हैं । इस सहयोग-व्यवस्था के फलस्वरूप जीवन-विकास में तीव्र गति उत्पन्न हुई और बहुकोषीय मल्टी सेल्यूलर जन्तुओं का उद्‌भव सम्भव हुआ ।

सृष्टि के आदि में जीव बहुत ही छोटे एवं आकार और बनावट में बहुत ही सरल थे । धीरे-धीरे समय के साथ वातावरण के अनुकूल की परिस्थिति में सरल से जटिल और जटिल से जटिलतम होते गये । प्रकृति की इस मौलिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सृष्टि बनी और विविधता का सूत्रपात हुआ ।

सरल जीवों को जटिल जीवों में बदलने की प्रक्रिया को 'विकास' कहते हैं । इस विकासवाद को समझने के लिए विभिन्न सूत्र जो समय-समय पर वैज्ञानिकों ने अपने दृष्टिकोण से सामने रखे उन्हें 'विकासवाद' सिद्धान्त' कहते हैं । इन्हें कई वैज्ञानिकों ने विविध तर्कों, तथ्यों और उदाहरणों सहित प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है । लेमार्क और ह्यूगोडिब्रीज ने पिछली शताब्दी से इस सन्दर्भ में बहुत कुछ खोजा और बहुत कुछ कहा है । इस शताब्दी में चार्ल्स डर्विन ने विशेष ख्याति प्राप्त की है ।

विकासवाद के सिद्धान्त के समर्थकों में प्रसिद्ध वैज्ञानिक हीकल्स भी आते हैं कि मनुष्य शरीर का विकास एक कोषीय जीव(प्रोटोजोन्स) से हुआ । पहले अमीबा, अमीबा से स्पंज, स्पंज से हाइड्रा फिर जेलीफिश मछली, मेंढ़क, साँप, छिपकली, चिड़िया, घोड़े आदि से विकसित होता हुआ आदमी बना । इसके लिए (१) जीवों के लिये अवशेषों, (२) विभिन्न प्राणियों को शारीरिक बनावट के तुलनात्मक अध्ययन, (३) थ्योरी आफ यूज एण्ड डिसयूज (अर्थात् जिस अंग का प्रयोग न किया जाये, वह घिसता और नष्ट होता चला जाता है, उदाहरण के लिये पहले मनुष्य पेड़ों पर रहता था । उछलकर चढ़ने के लिये पूँछ आवश्यक होती है । तब मनुष्य की पूँछ थी यह इसका निशान 'टैलवरटिब्री' के रूप में अभी भी शरीर में है । पर जब मनुष्य पृथ्वी पर रहने लगा, पेड़ों पर चढ़ने की आवश्यकता न पड़ी तो पूँछ का प्रयोग भी बन्द होता गया और वह अपने

आप घिस गई) इन तीन उदाहरणों से यह सिद्ध किया जाता है कि मनुष्य शरीर विकसित हुआ है ।

किन्तु एक शरीर से दूसरे शरीर के विकास का समय इतना लम्बा है कि उन परिवर्तनों को सही मान लेना बुद्धि संगत नहीं जान पड़ता । प्रकृति के परमाणुओं में भी ऐसी व्यवस्था नहीं है कि बीज से दूसरे बीज वाला पदार्थ पैदा किया जा सके , भले ही उसके लिए भिन्न प्रकार की जलवायु प्रदान की जाये । जलव्रायु के अन्तर से फल के रंग आकार में तो अन्तर आ सकता है पर बीज के गुणों का सर्वथा अभाव नहीं हो सकता ।

''सेल फिजियोलाजी ग्रोथ एण्ड डेवलपमेण्ट्स'' विभाग कार्नेल यूनिवर्सिटी के डइरेक्टर डा०एफ०सी० स्टीवर्ड ने एक प्रयोग किया । उन्होंने एक गाजर काटी । उसका विश्लेषण करके पाया कि वह असंख्य कोशिकाओं का बना हुआ हैं उन सभी कोशिकाओं के गुण समान थे । कुछ कोशिकाओं को निकालकर काँच की नलियों में रखा । खाद्य के रूप में नरियल का पानी दिया । कोशिका जो संसार में जीवन की सबसे छोटी इकाई होती है, जिसके और टुकड़े नहीं किये जा सकते-वह इस खाद्य के संसर्ग में आते ही १ से २, २ से४, ४ से ८ अनुपात, के अनुपात में बढ़ने लगी और प्रत्येक कोष ने एक स्वतन्त्र गाजर के पौधे का आकार ले लिया ।

इस प्रयोग से दो बातें सामने आती हैं-(१) कोष अपने भीतर की शक्ति बढ़ाकर अपनी तरह के कोष बना सकते हैं, (२) किन्तु नई जाति का कोष बना लेना किसी अन्य कोष के लिए सम्भव नहीं, यदि ऐसा होता तो नारियल के पानी के आहार के साथ गाजर का कोष किसी अन्य प्रकार के वृक्ष और फल में बदल गया होता । प्रकृति की यह विशेषता विकासवाद के साथ स्पष्ट असहमति है । एक कोषीय जीव (प्रोटोजोआ) से मनुष्य का विकास तथ्य नहीं रखता । जोड़ गाँठ करके बनाया गया तिल का ताड़ मात्र है ।

'थ्योरी ऑफ यूज एण्ड डिस्यूज' की बात में तो भी कुछ दम है, उससे इच्छा-शक्ति की सामर्थ्य का पता चलता है । यदि हमारे मस्तिष्क में किसी जबर्दस्त परिवर्तन की आकांक्षा हो तो निश्चय ही वह कोषों के संस्कार सूत्रों-जीन्स-कोष में बटी हुई रस्सी की तरह का अति सूक्ष्म अवयव जिस पर कोषों के विकास की सारी सम्भावनायें और भूत का सारा इतिहास संस्कार रूप में अंकित रहता है को बदल सकता है । यदि संस्कार सूत्र (जीन्स) बदल जायें तो नये बीजों में परिवर्तन आ सकता है पर यह सब चेतन इच्छा शक्ति के द्वारा ही सम्भव है, किसी वैज्ञानिक प्रयोग से नहीं ।

उपरोक्त तथ्यों पर ध्यान देने से इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि अभाव ही नहीं, अदक्षता और असमर्थता का निराकरण भी संकल्प शक्ति को विकसित करके ही किया जा सकता है। क्रमिक विकास खोजों से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं । वे बताती हैं कि भावी-प्रगति की जो भी योजनायें बनाई जाएँ, उनमें मानवी विचारणा, भावना और आन्तरिक प्रखरता को उच्चस्तरीय बनाने को सर्वोपरि प्रधानता दी जाय। मनुष्य इसी अवलम्बन के सहारे अन्य जीवों की तुलना में अधिक आगे बढ़ सका है । उसके भावी मनोरथ भी इस आधार को और भी अधिक दृढ़ता के साथ अपनाने पर पूरे हो सकेंगे ।

वैज्ञानिक जीव-तत्व को रासायनिक पदार्थ मात्र मानकर एक विचित्र उलझन में उलझ गये हैं । वे भूल जाते हैं कि रसायन की जड़ता, चेतना के भीतर संकल्प शक्ति और आकांक्षाओं का विस्मयकारी प्रभाव कैसे उत्पन्न कर सकती हैं।

जीवधारी का रासायनिक आधार-प्रोटोप्लाज्मा ही सब कुछ नहीं हैं । अब उनके भीतर अव्यक्त जीवन-रस-ईडोप्लाज्मा की सत्ता स्वीकार कर ली गई है । वंश परम्परा केवल रासायनिक ही नहीं है, उसके पीछे अभिरुचियाँ, आस्थाएँ, भावनाएँ और न जाने ऐसा कुछ भरा हुआ है, जिसकी व्याख्या रासायनिक द्रवों के आधार पर नहीं हो सकती । चेतना की एक अतिरिक्त शृंखला की स्वतन्त्रत गति स्वीकार किये बिना 'ईडोप्लाज्मा' के क्रिया-कलाप की व्याख्या हो ही नहीं सकती एक ही स्थान पर जड़ और चेतन एकत्रित हो सकते हैं सो ठीक है, पर दोनों एक नहीं हैं-उसकी सत्ता स्वतन्त्र है । भले ही एक-दूसरे के पूरक हों, पर इन्हें एक ही मान बैठना भूल होगी ।

जीवन के व्याख्याकारों ने उसके सम्बन्ध में विविध प्रकार के मत व्यक्त किये हैं । गतिशीलता, समर्थता, चेतना, विकास की क्षमता, भोज्य पदार्थों को ऊर्जा के रूप में परिणित कर सकना, जन्म दे सकने की क्षमता आदि-आदि कितनी शर्तें जीवन-अस्तित्व के साथ जोड़ी गई हैं ।

यह सारी विशेषताएँ प्रोटोप्लाज्म में सीमित नहीं हो सकतीं, उसके लिए कुछ अतिरिक्त क्षमता की आवश्यकता है। हमारी भावी खोज और दिलचस्पी इस अद्भुत अतिरिक्तता पर ही केन्द्रित होनी चाहिये, जो जड़ परमाणुओं के सीमित क्रिया-कलाप से कहीं अधिक ऊँचा है ।

विज्ञान वेत्ता रासायनिक विश्लेषण से कभी आगे बढ़ते हैं तो विद्युतीय स्फुरणा के रूप में प्राण-चेतना की व्याख्या करने लगते हैं । मनुष्य शरीर में बिजली का विपुल-भण्डार भरा पड़ा है, यह ठीक है और यह भी सत्य है कि मस्तिष्क से विचारों के कम्पन विद्युत-प्रवाह के ही रूप में निकलते हैं और शारीरिक

आन्तरिक क्रिया प्रक्रिया सम्पन्न करते हैं, साथ ही विश्व ब्रह्माण्ड में हलचल उत्पन्न करके अगणित मस्तिष्कों पर अपना प्रभाव डालते हैं और जड़ पदार्थों की दिशा मोड़ते हैं । किन्तु यह मान बैठना उचित न होगा कि यह बिजली बादलों में कड़कने वाली धूप-गर्मी के रूप में अनुभव आने वाली तथा बिजलीघरों में उत्पन्न होने वाली के ही स्तर की है । भौतिक-बिजली और प्राण-शक्ति में मौलिक अन्तर है । प्राण के कारण शरीर और मस्तिष्क में बिजली पैदा होती है, किन्तु यह विद्युत तक सीमित न होकर अनन्त अद्भुत क्षमताओं से परिपूर्ण है ।

मानवी विद्युत आकर्षण-ह्युमन मैग्नेटिज्म का संयुक्त स्वरूप प्राण है । उसे विश्वव्यापी महाप्राण का एक अंश भी कहा जा सकता है क्योंकि भौतिक जगत में और चेतन संवेदनाओं में जो कुछ स्फुरणा रहती है, उनका समन्वित समीकरण मानवी-प्राणसत्ता में देखा जा सकता है ।

'प्रोजोक्टिजम आफ ऐस्ट्रल बाडी के लेखक ने बताया है कि शरीर की स्थूल रचना अपने आप में अद्भुत है, पर यदि उसके भीतर काम कर रहे विद्युत शरीर की क्रिया-प्रक्रिया को समझा-जाना जा सके तो प्रतीत होगा कि उसमें सूर्य से तथा अन्याय ग्रह-नक्षत्रों से धरती पर आने वाली ज्ञात और अविज्ञात किरणों का भरपूर समन्वय विद्यमान है । गामा, वीटा एक्स, लेजर, अल्ट्रा, वायलेट, अल्फा वायलेट आदि जितने भी स्तर की शक्ति किरणें भूमण्डल में भीतर और बाहर काम करती हैं, उन सबका समुचित समावेश मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में हुआ है । स्थूल शरीर जड़ पदार्थों के बन्धनों से बँधा होने के कारण ससीम है, पर सूक्ष्म शरीर की संभावनाओं का कोई अन्त नहीं । उसका निर्माण ऐसी इकाईयों से हुआ है जिनकी हलचलें ही इस ब्रह्माण्ड में विविध-विधि क्रिया-कलाप उत्पन्न कर रही हैं ।

जीवन-तत्ववेत्ता ई०के० लेनकास्टर ने अधिक गहराई तक जीवन-तत्व की खोज करने के उपरान्त उसे भौतिक-जगत में चल रही समस्त क्रिया-प्रक्रियाओं से भिन्न स्तर का पाया । उसके निरूपण के लिए जो भी सिद्धान्त निर्धारित किये, वे सभी ओछे पड़े । अस्तु उन्होंने कहा-जीवन सत्ता के बारे में मानव बुद्धि कुछ ठीक निरूपण शायद ही कर सके । उसकी व्याख्या भौतिक-सिद्धान्तों के सहारे कर सकना संभवतः भविष्य में भी संभव न हो सकेगा । जीवन एक स्वतन्त्र विज्ञान है और ऐसा जिसकी नाप तौल पदार्थ विद्या के बटखरों से नहीं ही हो सकेगी ।

निर्जीव पदार्थ का केवल अस्तित्व है । उनमें न अनुभूति है और न जीवन । पौधों में अस्तित्व और जीव है, पर ज्ञान का अभाव है । प्राणियों में अस्तित्व जीवन और अनुभूति है, परन्तु ज्ञान या स्वतन्त्र इच्छा विकसित अवस्था में नहीं हैं । इसके विपरीत मनुष्य में ये सब गुण विद्यमान हैं, उसमें अस्तित्व पूर्ण जीवन, अनुभूति, ज्ञान और स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का समन्वय है, इस प्रकार उसे चेतना के सुविकसित स्तर पर प्रतिष्ठापित किया जा सकता है ।

जड़ और चेतन की आणविक हलचलों में समानता हो सकती है, पर यह किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होता कि जड़ का विकास इतना अधिक हो सके कि वह चेतना के उच्चतम स्तरों की परतें उघाड़ता चला जाय । अस्तु, हार-थककर वे अन्य प्रकार के उपहासास्पद निष्कर्ष निकालते हैं । उदाहरण के लिए केल्विन, हैमरीज, किचटर, अरहेनियस की मान्यता है कि 'जीवन किसी अन्य लोक से भूलता भटकता पृथ्वी पर आ पहुँचा है । '

टैण्डल और पास्टयूर की मान्यता थी कि जीवन-जीवन से ही उत्पन्न हो सकता है । आरम्भ में सेल अपने आप अपनी वंश वृद्धि किया करते थे, पीछे 'नर-मादा संयोग' का क्रम चला। इसी प्रकार भीतर-बाहरी अवयवों की संख्या एवं क्षमता भी क्रमशः ही विकसित हुई है । जड़ से चेतन की उत्पत्ति अथवा पदार्थ का जीवन में परिवर्तन उन्होंने अशक्य माना है । चेतना को वे स्वतन्त्र सत्ता ठहराते हैं ।

ब्रह्माण्ड-व्यापी महाशक्तियों में से गुरुत्वाकर्षण की क्षमता सर्वविदित है । आकाश में समस्त ग्रह-नक्षत्र उसी के आधार पर टिके हुए हैं और जीवित हैं ।

इलैक्ट्रोमेग्नेटिक शक्ति (विद्युत चुम्बकीय क्षमता) अगणित भौतिक प्रक्रियाओं को नियन्त्रण करती है । प्रकाश, ताप, ध्वनि, विद्युत, रासायनिक परिवर्तन आदि का जो क्रिया-कलाप इस जगत में चल रहा है उसके मूल में यही शक्ति काम कर रही है । ईश्वर अपने विभिन्न आकार-प्रकारों में वस्तुओं पर शासन स्थापित किये हुए है ।

यह विद्युत चुम्बकीय क्षमता, मात्र जड़ नहीं है, यदि वह जड़ ही होती तो अणु-परमाणुओं की संरचना में जो अद्भुत व्यवस्था दिखाई पड़ती है, उसके दर्शन नहीं होते । साथ ही चेतन प्राणियों में दूरदर्शिता, आकांक्षा, भावना जैसी कोई विशेषता न होती और न किसी जीव में कोई ऐसी अतीन्द्रिय-क्षमता पाई जाती, जिसका जड़-चेतन के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं हो ।

अणु-अणु में संव्याप्त विराट् चेतना

योग वाशिष्ट में बताया है-

परमाणु निमेषाणा लक्षाँशकलनास्वपि ।
जगत्कल्प सहस्त्राणि सत्यानीव विभान्त्यलम् ।।

तेष्वप्यन्तस्तथैवातः परमाणु कणं प्रति ।
भ्रान्तिरेव मनन्ताहो इयमित्यवभासते ।।
–योग वाशिष्ठ ३/६२/१--२

अणावणावसंख्यानि तेन संति जगन्ति रवे ।
तेषान्तान्व्यवहारो घान्संख्यातुं क इव क्षमः ।।
–योग वाशिष्ठ ३/२/१७६/६

हे राम ! प्रत्येक परमाणु के एक क्षुद्र टुकड़े के भी छोटे-लाखवें भाग के भीतर सहस्रों विश्व स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं । उन परमाणुओं में से प्रत्येक के भीतर भी वैसा ही दृष्य जगत् विद्यमान है । यह आश्चर्य और अनहोनी जैसी लगती है पर यह सत्य हे राम ! आकाश के अणु-अणु में सुव्यवस्थित संसार समासीन है, उनके समाचार कौन जानता है ?

ज्ञान,शक्ति, प्रकाश, रूप यह चेतना ही ब्रह्म है, उसे जानना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य बताया है, शास्त्रकार ने। किन्तु हमारे सामने पदार्थ का एक विराट् संसार दृष्टिगोचर हो रहा है, हम उसमें भूल जाते हैं और विज्ञान को, वैज्ञानिक मान्ताओं को सत्य मानकर अन्तःचेतना की उपेक्षा करने लगे हैं ।

विज्ञान शास्त्रकार की उपरोक्त धारणा को स्थिर करता है, उसे सत्य सिद्ध करता है । सूक्ष्मदर्शी निरीक्षण (माइक्रोस्कोपिक इन्स्पेक्शन) से ज्ञात हुआ है कि मनुष्य का शरीर भी छोटे-अदृश्य परमाणुओं से बना हुआ है, उन्हें कोश (सेल) कहते हैं । कोशाओं की रचना प्याज के छिलकों की तरह (फैब्रिक फार्क्ड सेल्स टिशू) एक विशेष प्रकार की होती है, प्याज के छिलके की एक कोशिका अपनी पूरी प्याज की गाँठ की तरह ही परत के भीतर परत वाली होती है। इस तरह सूक्ष्म वस्तु के भीतर भी एक नियोजित चेतना काम कर रही है ।

पेड़ पौधों की पत्तियाँ भी साँस लेती हैं । साँस लेने की क्रिया वह पत्तियाँ आगे निकले हुए नुकीले भाग से करती हैं। सबसे आगे का नुकीला कोष बहुत ही छोटा होगा, वह आकाश से वायु खींच-खींचकर पहुँचाता है, वायु में अकेले हवा नहीं होती, उसमें प्रकाश के कण(इसका विवरण फोटो संस्थेसिस के लेख में करेंगे) भी होते हैं, इसी वायु और प्रकाश कणों से वृक्ष-वनस्पतियों के भीतर ठीक वैसी ही चेतनता काम करती रहती है, जिस तरह मनुष्य शरीर में श्वाँस-प्रश्वास क्रिया से ही सारे क्रिया कलाप चलते रहते हैं ।

छोटे से छोटे कोश में वायु,जल,प्रकाश, खनिज, लवण, धातुएँ आदि विभिन्न वस्तुयें जिस-जिस मात्रा और अनुपात में होती हैं, उसी अनुपात में उनका स्वरूप बनता-बिगड़ता रहता है और इस तरह प्रकृति में एक सुव्यवस्थित हलचल दिखाई देती रहती है । अणुओं के भीतर की यह हलचल विराट्, ब्रह्मांड में हो रही हलचलों की प्रतिच्छाया होती है । कुछ ऐसे तारों का पता लगाया गया है, जो कालान्तर में अपनी चमक बदलते रहते हैं । पृथ्वी में होने वाले ॠतु परिवर्तन को तो हम स्पष्ट देखते और अनुभव करते हैं ।

कुछ विशेष प्रकार के नक्षत्रों के अध्ययन से पता चला है कि आगे उनकी गतिविधियाँ क्या होंगी, यह निश्चित रूप से जाना जा सकता है । आकाश में कुछ ऐसे भी तारे हैं, जिनको हम देख भी नहीं सकते । पर वे ध्वनि कम्पनों से अनुभव में आते हैं । वैज्ञानिकों ने इन तारों की खोज इसी आधार पर की है, जब कोई वस्तु हवा में तीव्रता से कम्पन करती है, तब उससे दबाव तरंगें भी तीव्रता से उत्पन्न होती है । जब यह तरंगें कान से कुछ निश्चित परिस्थितियों में टकराती हैं, तभी उस ध्वनि का अनुभव होता है और इसी तरह अनेक अदृश्य तारों के अस्तित्व का पता लगाया गया है ।

विज्ञान के अनुसार यह ध्वनि, यह परिवर्तन-शीलता और यह विराट् दृश्य परमाणु में विद्यमान हैं, तब फिर हम उस परमाणु की मूल सत्ता को ही क्यों न जानें ताकि उसे जानकर विश्व-ब्रह्माँड को जानलें । योगाभ्यास हमें उसी सूक्ष्म-दर्शन की प्राप्ति कराता है । इस विद्या के द्वारा मनुष्य परमाणविक चेतना में विश्वभर की शक्ति विशम्भर शाक्ति और उसके विराट् स्वरूप के दर्शन कराता है । अतः सत्ता के चैतन्य स्वरूप को समझना सर्वोपरि आवश्यकता है ।

कोशिका की सत्ता का मूल स्वरूप क्या है

हमारे शरीर का प्रत्येक भाग कोशिकाओं से बना है । एक इंच जगह में ६ हजार कोशिकाएँ समा जाती हैं । प्रत्येक कोशिका के भीतर प्रोटोप्लाज्म नामक पतला-चिकना पदार्थ भरा रहता है । यह प्रोटोप्लाज्म वायु खींचता व कार्बन (दूषित वायु) बाहर फेंकता है । इस तरह हमारे शरीर के लाखों-करोड़ों प्रोटोप्लाज्म हमारी साँस के साथ साँस लेते हैं । 'प्रोटोप्लाज्म' में एक ''न्यूक्लियस''होता है । वैज्ञानिक उसे ही जीवन का आधार मानते हैं । नई कोशिकाएँ बनाने की उसी में क्षमता होती है । जब न्यूक्लियस निर्बल होने लगता है, तो प्रोटोप्लाज्म भी सूखने लगता है और एक दिन प्रोटोप्लाज्म से मूल चेतना गायब हो जाती है । वह कहाँ चली जाती है, यह अभी वैज्ञानिक नहीं समझ सके हैं ।

वीर्य का प्रत्येक 'सेल' पिता के और माता की प्रत्येक डिम्बकोष (ओवम) माता के सभी गुणों को धारण किये रहती है । सूक्ष्म रोगों, तक का वीर्य के प्रत्येक 'सेल'' में प्रभाव

होता है । सेल्स के 'नाभिक' में अचेतन के समस्त भावों का प्रभाव रहता है । यानी व्यक्ति के समस्त संस्कारों की छाप प्रत्येक सेल में होती है ।

संस्कारों के इतने सूक्ष्म 'सेल्स' में भी पूर्णतः विद्यमान होने और उनका एक शरीर से दूसरे शरीर में सम्प्रेषण सम्भव होने का यह सिद्धान्त स्पष्टतः पुनर्जन्म के सिद्धान्त की भी युक्ति युक्तता प्रतिपादित करता है ? जिस तरह वीर्य के सेल के साथ सूक्ष्म संस्कार जाते हैं, उसी तरह जीवात्मा के साथ भी वे बने रहते हैं और पुराने शरीर से नये शरीर में जाते हैं ।

आधुनिक वैज्ञानिकों की मान्यता है कि सम्भवतः मृत्यु के समय शरीरस्थ 'प्रोटोप्लाज्म' शरीर से पृथक् हो मिट्टी, राख आदि में मिल जाते हैं । वनस्पतियों, फसलों, पेड़-पौधों की पत्तियों, फूलों और फलों, दानों आदि में वे सन्निहित रहते हैं । इन पत्तियों, फूलों, फलों-अनाज आदि को गुण-साम्य के अनुरूप भेड़-बकरी, कुत्ता, बैल-गाय-भैंस, कौआ, तोता, मनुष्य आदि खाते हैं, और उनके द्वारा 'प्रोटोप्लाज्म' शरीर के भीतर पहुँच जाते हैं यही 'प्रोटोप्लाज्म' जीन्स' में समाहित रहते हैं और नये शिशु के साथ पुनः जन्म लेते हैं । इस प्रकार पूर्व शरीर के प्राणी का प्रोटोप्लाज्म ही नये शरीर के साथ जन्म लेता है ।

शिशु के स्मृति पटल में पहुँचकर जब कभी कोई 'प्रोटोप्लाज्म' जाग्रत हो उठता है, तो उससे सम्बन्धित पुनर्जन्म की घटनाएँ भी याद आ जाती हैं । इस तरह पुनर्जन्म 'प्रोटोप्लाज्म' का होता है, आत्मा का नहीं ! लेकिन इधर आत्मा सम्बन्धी खोजें वैज्ञानिकों को अपना पूर्वाग्रह परिवर्तित करने को प्रेरित कर रही हैं ।

खोज चेतन आत्मा की जड़ उपकरणों के माध्यम से

विलियम मैग्डूगल ने आत्मा के बारे में तरह-तरह से वैज्ञानिक खोज की हैं । उन्होंने एक ऐसा तराजू तैयार किया, जो पलंग पर पड़े रोगी का ग्राम के हजारवें हिस्से तक वजन ले सके । उस पर एक मरणासन्न रोगी को लिटाया । कपड़े सहित पलंग का वजन, फेंफड़े की साँसों का वजन भी लिया और दी जाने वाली दवाईयों का भी । रोगी जब तक जीवित रहा । तराजू की सुई एक ही स्थान पर टिकी रही । प्राण निकलने के क्षण सुई सहसा पीछे हटी और टिक गई । वह १ ओंस यानी आधा छटांक वजन कम बता रही थी । फिर कई रोगियों पर यह प्रयोग किया गया । एक चौथाई से डेढ़ औंश तक वजन में कमी पाई गई । इससे मैग्डूगल ने निष्कर्ष निकाला कि शरीरस्थ कोई सूक्ष्म तत्व ही जीवन का आधार है । विभिन्न निरीक्षणों, प्रयोगों द्वारा उन्होंने उसका सामान्य औसत भार भी निकाला ।

डा० गेट्स ने कालापन लिए लालसी यानी वनफशई रंग की किरणें खोजी हैं । इन किरणों का प्रकाश मनुष्य आँख से नहीं देख सकता पर कमरे की दीवारों पर रोडपसिन नामक पदार्थ का लेपकर उस पर ये किरणें फेंकी गई, तो उसका रंग बदल गया । ये किरणें हड्डी, लकड़ी, पत्थर, धातु को पार करके चमकने लगती हैं, पर इन किरणों को दीवार पर डाला जाये और बीच में कोई मनुष्य आ जाये, तो दीवार पर उसकी छाया दीखेगी यानी ये किरणें जीवित प्राणी का शरीर भेद नहीं सकती ।

डा०गेट्स ने इन प्रकाश-किरणों को तत्काल मरे पशुओं की आँखों से प्राप्त किया है । एक मरणासन्न चूहे को गिलास में रखकर ये किरणें फेंकी गईं । दीवार पर उस चूहे की छाया पड़ी । पर जैसे ही चूहे के प्राण निकले, एक छाया गिलास से निकली और मसाला लगी दीवार की तरफ लपकी । वह ऊपर तक गई और लुप्त हो गई । अब दीवार पर चूहे की छाया नहीं थी, यानी चूहे का मृत शरीर उन किरणों के लिये पारदर्शी हो चुका था । परीक्षा के समय दो अध्यापक भी मौजूद थे। उन्होंने भी मृत्यु-क्षण में छाया को ऊपर नीचे आते व सहसा लुप्त होते देखा ।अब डा० गेट्स का प्रयास है कि यह जाना जाय कि छाया जब शरीर से निकलती है-लुप्त होने के लिये, तो उस समय उसमें ज्ञान रहता है या नहीं ।

इन किरणों के लिये चूहा जीवित अवस्था में पारदर्शी क्यों नहीं था ? गेट्स ने उत्तर के लिये गैलवानो मीटर से उन किरणों की शक्ति तथा मानवीय देह में संचालित विद्युत तरंगों की सक्ति को मापा व बताया कि शारीरिक बिजली की शक्ति अधिक है ।

जीवित स्थिति में शारीरिक विद्युत प्रवाह होने से ये किरणें शरीर से टकराकर लौट जाती हैं, शारीरिक विद्युत प्रवाह उन्हें धकेल देता है । निष्प्राण होने पर ऐसी कोई बाधा बचती नहीं और किरणें शरीर को भेद जाती हैं ।

डा० गेट्स शरीर की विद्युत शक्ति को ही आत्मा की प्रकाश-शक्ति मानते हैं ।

फ्रान्स के डा० हेनरी वाराहुक ने अपनी मरणासन्न पत्नी एवं बच्चे पर प्रयोग कर मृत्यु के फोटो लिये, तो कुछ रहस्यमय

किरणों के चित्र प्राप्त हुये । डा०एफ०एम०म्ट्रा ने तो इस तरह का सार्वजनिक प्रदर्शन ही किया, जिसमें अखवारा प्रतिनिधियों ने भी चित्र लिये और रहस्यमय किरणों के चित्र प्राप्त किये।

अमरीका में बिलसा क्लाउड चेम्बर द्वारा आत्मा के अस्तित्व सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये गये हैं । यह चेम्बर एक खोखला पारदर्शी सिलेण्डर है । इसके भीतर से हवा पूरी तरह निकालकर, भीतर रासायनिक घोल पोत देते हैं । इससे सिलेण्डर में एक मन्द प्रकाशपूर्ण कुहरा छा जाता है । इस कुहरे से यदि एक भी इलेक्ट्रोन गुजरे तो फिट किये गये शक्ति सम्पन्न कैमरों द्वारा उनका फोटो ले लिया जाता है । सिलेण्डर में होने वाली हर हलचल का चित्र आ जाता है ।

इस चेम्बर में जीवित चूहे और मेंढ़क रखकर बिजली के करेन्ट से उनको प्राणहीन किया गया । देखा गया कि मरने के बाद चूहे या मेंढ़क की हू-बहू शक्ल उस रासायनिक कुहरे में तैर रही है । उस आकृति की गति-विधियाँ सम्बन्धित प्राणी के जीवन काल की ही गतिविधियों के अनुरूप थीं । क्रमशः यह सत्ता धुँधली होती जाती है फिर कैमरे की पकड़ से बाहर चली जाती है ।

लन्दन के प्रसिद्ध डा० डब्ल्यू०जे० किल्लर ने एक पुस्तक लिखी है-'दि ह्यूमन एटमॉस्फियर' । इसमें उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य गिनाकर भौतिक विज्ञान को इन चुनौतियों से जूझने का आव्हान किया है । एक तथ्य यह है -अपने सेन्ट जेम्स अस्पताल में डा०किल्लर ने रोगियों के परीक्षण के दौरान एक दिन खुर्दवीन पर एक दुर्लभ रासायनिक रंग के धब्बे देखे। यह रंग आया कहाँ से, वे व्यग्रता से खोज करने लगे ।

दूसरे दिन इसी रासायनिक रंग की लहरें उन्होंने एक रोगी की जाँच करते समय शीशे से देखी और चौंक पड़े । एक रोगी के सभी कपड़े हटा दिए फिर देखा-रोगी के छः सात इंच की परिधि में वहीं लहरें एक आभामण्डल बनाये हैं । वह प्रकाश किसी भी शारीरिक अस्वस्थता का परिणाम नहीं था । प्रकासमण्डल मन्द पड़ रहा था । डा० किल्लर सतर्क हो गये । रोगी मरणासन्न था । जैसे-जैसे प्रकाशमण्डल मन्द पड़ता गया, रोगी शिथिल होला गया। सहसा वह प्रकाश जाने कहाँ खो गया । डा० किल्लर ने देखा, रोगी निष्प्राण हो चुका था । अब उस ठण्डे शरीर के आस-पास कहीं कोई रासायनिक रंग शेष नहीं रहा था । इस घटना की रिपोर्ट छपी तो लोग चकित रह गये ।

वार्कले, केलीफोर्नियाँ (अमरीका) में कार्यरत डा० लीसनेला और उनके साथियों ने इस विषय पर न केवल खोज की है, बल्कि साइकोसिस और ट्रान्सेन्डेन्स ?' शीर्षक एक लेख में 'द रिवर्थ प्रासेस' (पुनर्जन्म प्रक्रिया) की गहरी छानबीन व दस्ताबेजों से भरी व्याख्या भी प्रस्तुत की है ।

डा० सनेला के समूह ने शोजीफ्रेनिया, मेनिअक, डिप्रेसन (एक अवधि के लिए मानसिक उन्माद की स्थिति आ जाना फिर सामान्य मनःस्थिति, इसी तरह अनवरत क्रम) तथा मानसिक असन्तुलन जन्य अन्य रोगों के रोगानुसन्धानों का विवरण देते हुए यह तथ्य प्रदर्शित किया है कि उनमें से अधिकांश उच्चतर मानसिक विकास की प्रक्रिया वाले वे लोग हैं, जो विराट् आन्तरिक शक्तियों के अपरिपक्व तथा असन्तुलित प्रस्फुटन के कारण इस स्थिति में पहुँचे हैं । सनेला-समूह के अनुसार विकास की यह स्थिति वस्तुतः मानसिक रोग नहीं, है बल्कि 'पुनर्जन्म-प्रक्रिया' की ओर यह गति मात्र है ।

पहले विज्ञान पदार्थ की चार अवस्थाएँ ही जानता था-ठोस, द्रव, गैस और प्लाज्मा । प्लाज्मा मात्र बाह्य अन्तरिक्ष में विद्यमान है, किन्तु भौतिकी प्रयोगशालाओं में भी उसे अत्युच्च तापमान पर उत्पादित किया जा सकता है ।

१९४४ में सोवियत भौतिकीविद् व्यही० एस० ग्रिश्चेन्को ने पहली बार पदार्थ की पंचम अवस्था--''जैव प्लाज्मा'' की खोज की जो कि सभी जीवधारियों में विद्यमान प्राण ही है ।

प्रो० ग्रिश्चेन्को के अनुसार जैव प्लाज्मा में इयान्स, स्वतन्त्र इलेक्ट्रॉन और स्वतन्त्र प्रोटॉन होते हैं, जो कि नाभिक से स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं । यह तीव्र संचालक है और दूसरे अवयवों या जीवधारियों में शक्ति के संग्रहण, रूपान्तरण तथा संवहन में सक्षम होता है । यह मनुष्य के मस्तिष्क में और सुषुम्ना नाड़ी में एकत्रित रहता है । यह अत्यधिक दूरियों को तीव्र गति से लाँघ सकता है और इस तरह टेलीपैथी, मनोवैज्ञानिक और मनोगति की प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है।

इस अनुसंधान के बाद, सोवियत विज्ञान ने तेजी से इस क्षेत्र में प्रगति की है । अपने प्रयोगों के दौरान रूसियों ने अत्यधिक विकसित उपकरणों का उपयोग किया । उच्च वोल्टेज वाली फोटोग्राफी की प्रक्रिया जिसमें इलेक्ट्रॉनिक माइक्रोस्कोप भी शामिल हो, क्लोज-सर्किट टेलीविजन तथा मोशन-पिक्चर, टेक्नीक का उपयोग जिसे, ऐस० डी० कबकलसयन और व्यही० के० कीलिंयन ने विकसित किया है, रेडिएशन-फील्ड फोटोग्राफी को रूसी 'कीलिंयन औरा' कहते हैं । इनके द्वारा प्रो० ग्रिश्चेन्को की 'बायो-प्लाज्मा' और उसके भारतीय समतुल्य 'सूक्ष्म-शरीर' तथा उसमें परिव्याप्त प्राण-आवरण अवधारणओं की पुष्टि होती है । इस तरह यह अज्ञात

ईश्वर तत्व के जगत में वैज्ञानिकों द्वारा अति महत्त्वपूर्ण भौतिक आधारों की खोज है ।

सोवियत रूस के प्रसिद्ध अन्तरिक्ष केन्द्र के पास आल्माअता में कजाकिस्तान राज्य विश्वविद्यालय की जैव विज्ञान प्रयोगशाला के निर्देशक डा० एम० न्युशियन पी० एच डी० ने अपने एक शोधपत्र में कहा है कि उच्चस्तरीय विशेषीकृत तथा क्लिष्ट विधियों के द्वारा अत्युच्च संवेदना वाली कीर्लियन-फोटोग्राफिक प्रक्रियाओं द्वारा पहले खरगोश और बाद में मनुष्यों के फोटोग्राफ लिए जाने पर, सोवियत वैज्ञानिक 'बायोप्लाज्मा' तथा शरीर के चारों ओर उसकी परिव्याप्ति (झीनी चादर) की फोटो लेने में सफल रहे हैं ।'' कीर्लियन फोटोग्राफों से पता चलता है कि जैविक-प्रकाश (चमक) का कारण जैव-प्लाज्मा है । इनका आधार होता है और इनमें ध्रुवीय छोर होते हैं ।

प्रयोगों से प्रमाणित होता है कि-

(१) प्लाज्मा मस्तिष्क में सर्वाधिक सघन है ।

(२) सुषुम्ना-नाड़ी और उसकी रासायनिक कोशिकाएँ वायोप्लाज्मा गतिवधियों के केन्द्र हैं ।

(३) यह अँगुलियों के छोर तथा सूर्य-चक्र की पीठ में अधिक सुदृढ़ होता है ।

(४) रक्त की तुलना में स्नायुओं के केन्द्रों में अधिक प्लाज्मा होता है ।

नेत्र तीव्र विकिरण के स्रोत हैं । (इनसे पता चलता है कि हिप्नोटिस्ट क्यों अपने सबजेक्ट की आँखों में गहराई तक झाँकते हैं और इस तरह अपने विचारों से उसे प्रभावित करते हैं ।)

डा० इन्सुशिन स्पष्ट करते हैं--अपनी प्रयोगशाला में हमने लगातार प्रयोग किये हैं यह जानने के लिए कि क्या वायो-प्लाज्मा का (प्राण शक्ति का) वास्तविक अस्तित्व है । हम जानते हैं कि प्रत्येक जीवधारी के पास एक ऐसी प्रणाली है जो शक्ति का विकिरण करती है और एक क्षेत्र (सूक्ष्म शरीर) तैयार करती है ।

किन्तु हम जीवधारियों की शक्ति-प्रक्रिया को बहुत कम जानते हैं, विशेषकर टेलीपैथी में, जबकि दो व्यक्ति एक ऐसी दूरी पर रहते हुए एक साथ परस्पर सम्बद्ध क्रियाएँ करते हैं, कि उसकी प्रक्रिया परम्परागत साधनों द्वारा ठीक से समझाई नहीं जा सकती ।

एक जीवित देहधारी को एक जैविक क्षेत्र कहा जा सकता है, जिसमें एक दूसरे को प्रभावित करने वाली शक्तिधाराओं का अस्तित्व हो । जैविक क्षेत्रों का स्पष्ट रूपाकार है और ये विभिन्न भौतिक क्षेत्रों द्वारा विनिर्मित हैं--इलेक्ट्रोस्टेटिक, इलैक्ट्रो मैग्नेटिक, हाइड्रोडायनमिक तथा सम्भवतः ऐसे अनके क्षेत्र भी जिनके बारे में हम अच्छी तरह जानते नहीं, वायो-प्लाज्मा इनमें से किसी एक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है ।

मनुष्य की विभिन्न शरीर क्रियावैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं की जाँच की गई । देखा गया कि सुषुम्ना नाड़ी का केन्द्र, (अनेक स्नायविक कोशिकाओं के गुच्छों के साथ चक्र) जैव प्लाज्मीय सक्रियता का केन्द्र है । वायो प्लाज्मिक सक्रियता 'मूड' पर निर्भर देखी गई । उदाहरणार्थ- कलाकार किसी कलाकृति के बारे में सोचते समय उच्चस्तरीय चेतना की स्थिति में थे । यानी उनका 'कोरोना' अत्यन्त प्रकाशवान था, जबकि कुण्ठित, तनावग्रस्त व्यक्ति का 'कोरोना' बहुत पतला था तथा उसमें कई काले धब्बे थे ।

शरीर में जैव-प्लाज्मीय (वायो-प्लाज्मिक) क्षेत्र की सापेक्ष स्थिरता के बावजूद वायो-प्लाज्मा के द्वारा शक्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंश अन्तरिक्ष में विकीर्ण होता है । यह माइक्रोस्टीमर्स के रूप में हो सकता है या फिर वायोप्लाज्माइड्स के रूप में । माइक्रोस्टीमर्स हवा के द्वारा बनने वाले 'वायो-प्लाज्मिक अवयवों के स्रोत हैं, जबकि वायो-प्लाज्माइड्स वायो-प्लाज्मा के वे टुकड़े हैं, जो शरीर से अलग हो गये हैं यानी वे कॉस्मिक-चेतना को मानवीय-चेतना से जोड़ने के स्रोत हैं ।

एक अन्य प्रख्यात वैज्ञानिक जर्मनी के प्रो० विलहेमरीच भी प्राण शरीर के अस्तित्व में भारतीय सिद्धान्त का मानवीय देह की एक प्रति कृति के अस्तित्व के रूप में समर्थन करते हैं । वे इसे 'आर्गोन, कहते हैं यानी एक जैव विद्युतीय शक्ति जो नीले रंग की है ।

सोवियत खोज को अमेरिकन वैज्ञानिकों के सामने प्रस्तुत करते हुए, शैला आस्ट्रेण्डर तथा लिन स्क्रोडर ने लिखा है, ''सोवियतों को साक्ष्य मिल गया प्रतीत होता है कि समस्त जीवधारियों में शक्ति का कोई संचार, एक प्रकार का अदृश्य शरीर अथवा भौतिक शरीर को परिवृत्त करने वाला कोई प्रकाश पिंड होता है । ....''

इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप की आंखों से इन वैज्ञानिकों ने प्रशान्त उच्चस्तरीय 'फ्रीक्वेन्सी' पर कोई ऐसी वस्तु निरन्तर 'डिस्चार्ज' होते देखी है, जो परले 'क्लेयर वोवेन्टस्' (भविष्यदृष्टा) ही देख पाते थे । उन्होंने जीवित देह में एक जीवित प्रतिकृत को गतिवान देखा है.....

''यह प्रतिकृत क्या है ? यह एक समग्र एकीभूत देह ही है ।' जो एक इकाई की तरह काम करती है । यह अपने स्वयं के विद्युत चुम्बकीय क्षेत्रों का अतिक्रमण करती है तथा जीव-वैज्ञानिक क्षेत्र का यह आधार है ।

४.२२ मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवम् सत्य

यह जैविक प्रकाश पिंड, जो कीर्लियन चित्रों में देखा जा सकता है, वायो-प्लाज्मा के द्वारा विनिर्मित है । कजाक वैज्ञानिकों के अनुसार इस कम्पनशील, रंगीन, शक्ति-शरीर की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसकी एक विशिष्ट स्थानिक संरचना है । उसमें आकार है तथा वह पोलराइण्ड भी हैं (यानी उसमें छोर भी है) ।

यह हैं कुछ निष्कर्ष जो पदार्थ विज्ञान के आधार पर मरणोत्तर जीवन की सम्भावनाओं पर प्रकाश डलते हैं और शरीर त्यागने के उपरान्त भी जीवात्मा का अस्तित्व बना रहने की मान्यता का समर्थन करते हैं । किन्तु यह यों तो तथ्य का एक छोटा और भौंड़ा पक्ष है । वस्तुतः उस सन्दर्भ में दूसरे आधार पर नये सिरे से विचार करना होगा । विशाल ब्रह्माण्ड का लघुतम घटक अणु-अण्ड है । दोनों के सघन समन्वय पर ही इस संसार की विविध हलचलों की व्याख्या विवेचना सम्भव होती है । भौतिकी का सुविस्तृत शास्त्र इन्हीं शोध प्रयोजनों में संलग्न रहता है । यह विश्व का स्थूल आवरण हुआ उसका प्राणतत्व उस सूक्ष्म सत्ता के रूप में जाना जाता है जिसे ब्रह्माण्डीय चेतना अथवा ब्रह्म के बीच होने वाले आदान-प्रदान पर ही चेतनात्मक हलचलों का आधार खड़ा है । जीव ब्रह्म में से ही उदय होता है और अन्ततः उसी में उसे लय भी होना पड़ता है । भौतिकी को आवरण विवेचना कहा गया है और ब्रह्म-विद्या को चेतना का तत्व-दर्शन । दोनों के अपने-अपने क्षेत्र हैं और अपने-अपने प्रयोजन । जिस दिन भौतिकी की तरह ब्रह्मविद्या का भी सुनिश्चित एवं प्रामाणिक शास्त्र बनकर तैयार हो जायेगा उसी दिन जीव सत्ता और ब्रह्म-सत्ता का पारस्परिक सम्बन्ध सम्पर्क ठीक प्रकार समझा जा सकेगा । ऋषियों ने अपने ढंग से दार्शनिक पृष्ठभूमि पर ब्रह्म-विद्या का ढाँचा खड़ा किया था आज उन निष्कर्षों का समर्थन प्रत्यक्षवादी आधारों पर किये जाने की युग अपेक्षा है सत्य तो सत्य ही है । तथ्य तो तथ्य ही है । उन्हें इस आधार पर भी सिद्ध किया जा सकता है और उस आधार पर भी । ब्रह्म-सत्ता को प्रत्यक्षवादी आधार ब्रह्माण्डीय चेतना के रूप में मान्यता दे रहे हैं और जीव के वायो-प्लाज्मा के रूप में । दोनों का तारतम्य बैठ रहा है । आशा की जानी चाहिए कि अगले ही दिन जीव-चेतना के सम्बन्ध में अनेकों महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रत्यक्षवादी पृष्ठभूमि पर भी प्रस्तुत हो सकेंगे तब सर्व-साधारण के लिए मरणोत्तर जीवन के अस्तित्व के तथ्य को सिद्ध कर सकना भी कुछ कठिन न रह जायेगा ।

आइन्सटाइन कहते थे– आज न सही, कल यह सिद्ध होकर रहेगा कि अणु सत्ता पर किसी अविज्ञात चेतना का अधिकार और नियन्त्रण है । भौतिक-जगत उस की स्फुरणा है । पदार्थ मौलिक नहीं है, चेतना की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही पदार्थ का उद्‌भव हुआ है । भले ही आज यह तथ्य प्रयोगशाला में सिद्ध न हो सके, पर मेरा विश्वास है कि कभी वह सिद्ध होगा अवश्य ।

जीव-तत्व की शोध के स्वस्थ कदम आत्मा की स्वतन्त्र चेतन सत्ता स्वीकार करने पर ही आगे बढ़ सकेंगे । आत्मा को जड़ सिद्धान्तों के अन्तर्गत बाँधते रहने से चेतना विज्ञान के उपयुक्त विकास में बाधा ही खड़ी रहेगी और सही निष्कर्ष तक पहुँचने में एक भारी व्यवधान खड़ा रहेगा ।

वैज्ञानिक शोधों में जिस जिज्ञासा की आवश्यकता पड़ती है, उसी सूक्ष्म दृष्टि को अपनकर आत्म-सत्ता की महत्ता और उसके स्वस्थ विकास की सम्भावनाओं को समझा जा सकता है । इस लाभ से मनुष्य जिस दिन लाभान्वित होगा, उस दिन उसे न अभाव, दारिद्रय का सामना करना पड़ेगा और न शोक-सन्ताप का ।

कठोपनिषद् के अनुसार बालक नचिकेता-महाभाग यम से जीवन और मृत्यु की पहेली का उत्तर पूछता है। तैत्तरीय उपनिषद् में भृगु अपने पिता वरुण से ब्रह्म की प्रकृति तथा सर्वोच्च यथार्थ के बारे में जानना चाहता है । श्वेतकेतु ज्ञान से समृद्ध होकर लौटता है तो उसके पिता उससे पूछते है कि क्या उसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया ? जनक निरन्तर याज्ञवल्क्य से एक के बाद एक प्रश्न पूछते हुए-एतरेय उपनिषद में यही जानना चाह रहे हैं कि जीव को शुद्ध अन्तरदृष्टि से किस प्रकार का पूर्णता का बोध होता है ?

इस समाधान को प्राप्त करके ही मानवी-चिन्तन की सार्थकता और विकास क्रम की पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है ।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त और विज्ञान

पुनर्जन्म का सिद्धान्त हिन्दू-धर्म अथवा भारतीय संस्कृति की एक सबसे बड़ी खोज है । मरने के बाद हमारा क्या होता

है, यह एक बड़ा ही टेढ़ा प्रश्न श्रद्धा के आधार पर तो आप इसका जैसा चाहें ? स्वरूपुनर्जन्म का सिद्धान्त और विज्ञान मान सकते हैं, पर जब इस संबन्ध में किसी तार्किक या प्रत्यक्ष-प्रमाण माँगने वाले से काम पड़ता है तो मृत्यु के बाद के जीवन के सम्बन्ध में कोई निश्चित बात कह सकना बड़ा कठिन होता है । यही 'कारण है कि संसार के किसी धर्म में इसका भली प्रकार विवेचन नहीं किया गया है और मरने के बाद किसी स्वर्ग या दिव्य-लोक की आकर्षक-सी कल्पना करके चुप हो गये हैं । केवल भारतीय दार्शनिकों ने ही अपनी प्रखर बुद्धि, योग-शक्ति और तर्क प्रणाली से यह सिद्ध किया है कि आत्मा कभी मरती या जिन्दा नहीं होती । वह एक अविनाशी तत्व है जो दैवी नियमानुसार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती रहती है ।

अब संसार के अन्य देशों के स्वतन्त्र मत वाले विद्वान और वैज्ञानिक भी खोज करते-करते इसी तथ्य के निकट पहुँच रहे हैं । विज्ञान के तत्वों की विवेचना करते हुए उन्होंने मालूम किया है कि स्थूल पदार्थों की भाँति शक्ति भी अक्षय है, उसका नाश नहीं होता, रूपान्तर मात्र हो जाता है । कोयला, भाप, तेल, बिजली आदि की जो शक्ति छोटी-बड़ी मशीनों को चलाती वह अपना काम करने के बाद नष्ट नहीं हो जाती वरन् किसी दूसरे रूप में बनी रहती है। जल कभी बर्फ के रूप में पत्थर की तरह कठोर हो जाता है, कभी भाप बनकर हवा की तरह अदृश्य हो जाता है और कभी अत्यधिक ताप से विभिन्न गैसों के रूप में परिवर्तित हो सकता जिनसे फिर सहज में जल नहीं बन सकता । पर इस परिवर्तन से वह नष्ट नहीं होता न उसके परिमाण में जरा सा भी अन्तर पड़ता है ।

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वस्तुओं का जो स्वरूप हमको दिखलाई पड़ता है वह वास्तविक नहीं है । हम लोग किसी भी जीव की उत्पत्ति को जन्म और उसके लय हो जाने को मरण या नाश समझते हैं, वह एक भ्रम है । दरअसल हमारी शक्ति का नाश तो जन्म काल से ही होने लगता है । पर हम उसे अनुभव नहीं करते और जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, हम उसको जीवन की वृद्धि कहते हैं । पर वास्तव में हमारी जीवन अवधि दिन पर दिन कम होती जाती है अर्थात् हमारे जीवन का क्षय होता जाता है । जब यह क्षय चरम सीमा पर पहुँच जाता है और एकदम उसका रूपान्तर होता जान पड़ता है तब हम उसे मृत्यु कह देते हैं। वैज्ञानिकों ने जाँच करके साबित किया है कि मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर भी उसके नाखून और बाल कई दिन तक बढ़ते रहते हैं । इससे विदित होता है कि हमारी मृत्यु भी वास्तविक नहीं है । जिसे लोग नाश समझते हैं वह सिवाय एक बड़े परिवर्तन के और कुछ नहीं है ।

जिस प्रकार संसार में दिखलाई पड़ने वाले समस्त ठोस, द्रव (जलीय) और वायु रूप पदार्थों का निर्माण अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओं से हुआ है, वही बात शक्ति के सम्बन्ध में भी है। आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तानुसार प्रत्येक अणु को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । इनमें एक मात्र कोष या "सैल" कहलाता है और दूसरा शक्ति य "फोर्स" इनमें से जब किसी अणु का कोश जीर्ण होकर नष्ट हो जाता है । तो उस शक्ति दूसरे कोप में प्रविष्ट हो जाती है । इन नवीन कोष को पुराना अणु प्राकृतिक नियमानुसार अपनी जीवित अवस्था में ही तैयार किया करता है । यही उत्पत्ति और रूपान्तर का नियम हमारे शरीर और जीवात्मा में भी पाया जाता है । जब किसी शरीर में विजातीय द्रव्य बढ़कर वह जीर्ण शीर्ण हो जाता है तो हमारा जीवात्मा या जीवनी शक्ति (फोर्स ऑफ लाइफ) उस देह के जीवाणु से अलग होकर दूसरे नवीन जीवाणु में प्रविष्ट हो जाती है । इस बात को हम यों भी कह सकते हैं कि हमारे शरीर में ही नित्य प्रति अणुओं के बनने और बिगड़ने के रूप में असंख्यों जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म होते रहते हैं । अंत में एक दिन ऐसा आता है कि हमारा समस्त शरीर ही एक साथ वैसे ही रूपान्तर को प्राप्त हो जाता है । प्रथम प्रकार का परिवर्तन अर्थात् हमारे शरीर के अणुओं का प्रतिदिन बनना -बिगड़ना ऐसे सूक्ष्म रूप में होता है कि साधारण मनुष्य उसे आँखों से देखकर अनुभव नहीं कर सकता । पर दूसरे प्रकार का परिवर्तन अर्थात् समस्त शरीर का जन्म-मरण इतना बड़ा होता है कि उसे हम सहज में देख और समझ सकते हैं ।

इस प्रकार विचार करने से विदित होता है कि हिन्दू-शास्त्रों में बतलाया हुआ पुनर्जन्म का सिद्धान्त कल्पित अथवा अवैज्ञानिक नहीं है । यह माना जा सकता है कि चूँकि साधारण श्रेणी के व्यक्ति इस सूक्ष्म विषय को भली प्रकार नहीं समझ सकते, यह देखकर पौराणिक ढंग के लेखकों ने उसको कहानी किस्से का सा रूप दे दिया है, जिससे बुद्धिबादी लोग उसे अविश्वास की दृष्टि से देखने लगे हैं । पर इसका मूल सिद्धान्त अकाट्य है जिसका प्रमाण भारतवर्ष में ही नहीं अन्य देशों

तथा जातियों में भी समय-समय पर मिलता रहता है । इस प्रकार के उदाहरणों से संसार के अनगिनती ग्रंथ भरे पड़े हैं। अतएव हम दृढ़तापूर्वक यह कह सकते हैं कि आत्म-शक्ति या जीवात्मा भी अन्य शक्तियों की तरह अविनाशी है और वह समय-समय पर एक कोश (देह) से दूसरे कोश में स्थान परिवर्तन करता रहता है ।

पुनर्जन्म के विरुद्ध कुछ लोग तर्क यह देते हैं कि यदि जीवन का अस्तित्व भूतकाल में था तो उस समय की स्मृति क्यों नहीं रहती ? ध्यान देने योग्य यह है कि घटनाओं की विस्मृति मात्र से पुनर्जन्म का खण्डन नहीं हो जाता । इस जीवन की प्रत्येक दिन की घटनाओं को ही हम कहाँ याद रख पाते हैं । अधिकांश घटनाएँ विस्मृत हो जाती हैं । स्मृति का न होना मात्र घटना को अप्रमाणित नहीं कर देता । स्मृति तो अपने जन्म की भी नहीं रहती । इस आधार पर यदि कहा जाय कि जन्म की घटना असत्य है क्योंकि उसकी हमें स्मृति नहीं है तो इसे अविवेकपूर्ण ही कहा जायेगा ।

किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों में जन्मजात ऐसी विशेषताएँ दिखायी पड़ती हैं जिन्हें देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । बड़े-बड़े विचारक भी उन विशेषताओं का कारण स्पष्ट नहीं कर पाते । पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानने से यह गुत्थी सहज ही सुलझ जाती है । यह मानना पड़ता है कि उसका कारण पूर्व जन्मों के संचित कर्म हैं ।

विकासवाद के समर्थकों ने मानवी गुण एवं प्रवृत्तियों का आधार पैतृक माना है तथा कहा है कि बच्चा अपने माता-पिता से विशेष प्रकार के गुण प्राप्त करता है । यह बात एक सीमा तक ही सत्य है । देखा यह जाता है कि अनेकों बच्चों में जन्मजात ऐसी विशेषताएँ होती हैं जो उनके माता-पिता में नहीं थीं । इन विशेषताओं के कारण की खोज में वैज्ञानिक पिता-पितामह से लेकर अनेक पीढ़ियों तक जाने का प्रयत्न करते हैं । उनके अनुसार इन पीढ़ियों में से कोई एक ऐसी होनी चाहिए जिसमें वे विशेषताएँ विद्यमान थीं । किन्तु इस प्रकार की व्यख्या से निराशा ही हाथ लगती है । वस्तुतः बच्चे के ये गुण मौलिक होते हैं जो वह संस्कारों के रूप में साथ लगती है । यह पता चलता है कि उसके पैतृक पीढ़ियों में कोई भी इन गुणों से युक्त नहीं था । तथ्य यह है कि प्रत्येक जीव अपनी मौलिक क्षमता लेकर आता है । उन क्षमताओं को वह माता-पिता के माध्यम से विकसित करता है ।

यदि पैतृक गुण ही मानवी गुण के आधार होते तो एक परिस्थितियों में पैदा होने वाले समान सुविधाओं को प्राप्त करते हुए भी इतने भिन्न क्यों दिखायी पड़ते, एक ही पिता के पुत्र असमान पाये जाते हैं । यह असमानता उनकी मौलिक क्षमताओं की भिन्नता के कारण हैं । एक उन्ब रूप में लेकर अवतरित होता है । ा-पिता के शरीर में प्रविष्ट होकर कुछ गुणों को अपनी मूल विशेषताओं के अनुरूप प्राप्त करता है । इस सीमा तक तो बात सही है, किन्तु सम्पूर्ण विशेषताओं का आधार पैतृक मानना सही नहीं है । पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किये बिना इन गुत्थियों को सुलझा सकना सम्भव नहीं है ।

पाश्चात्य दार्शनिक भी पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं । 'प्लेटो' ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि ''जीवात्माओं की संख्या निश्चित है । जन्म के समय जीवात्मा का सृजन नहीं होख्या, वरन् एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रत्यावर्तन होता है । लिबनीज ने अपनी पुस्तक 'दी आयडियल फिलासफी आफ लिब्टोज' में लिखा है कि मेरा विश्वास है कि मनुष्य इस जीवन के पहले भी रहा है । ''

प्रसिद्ध विचारक 'लेसिंग' की पुस्तक ''दी डिवाइन एजूकेशन ऑफ दि ह्यूमन रेस'' प्रख्यात है । वे अपनी इस पुस्तक में लिखते हैं--''विकास का उच्चतम लक्ष्य एक जीवन में ही पूरा नहीं हो जाता. वरन् कई जन्मों के क्रम में पूर्ण होता है । मनुष्य ने कई बार इस पृथ्वी पर जन्म लिया है तथा अनेकों बार लेगा ।'' अभी कुछ ही समय पूर्व विश्व-विख्यात ब्रिटिश परा मनोवैज्ञानिक जे० बर्नार्ड हट्टन ने कुछ ऐसी घटनाओं पर शोध किया है, जो यह सिद्ध करती है कि व्यक्ति ही नहीं घटनाओं का भी पुनर्जन्म होता है । इस विषय को इन्होंने अपनी पुस्तक 'द अदर साइड ऑफ रियेलिटी' में प्रमाणों और तथ्यों के आधार पर प्रतिपादित किया है ।

दार्शनिक 'ह्यूम' का कहना है कि ''आत्मा अजर अमर है । जो अक्षय, अजर या अविनाशी है वह अजन्मा भी है। आत्मा की अमरता के विषय में पुनर्जन्म ही एक सिद्धान्त है जिसका समर्थन प्रायः सभी दर्शनशास्त्री करते हैं ।'' 'गेटे' ने अपनी एक मित्र श्रीमती 'वी. स्टेन' को एक पत्र में लिखा था कि ''इस संसार से चले जाने की मुझे प्रबल इच्छा है। प्राचीन समय की भावनाएँ मुझे यहाँ एक घड़ी सुखमय बिताने नहीं देतीं । यह कितनी अच्छी बात है कि मनुष्य मर जाता है और जीवन में अंकित घटनाओं के चिह्न मिट जाते हैं। वह पुनः परिष्कृत संस्कारों के साथ वापस आता है ।''

पत्र लिखने का लक्ष्य चाहे जो भी रहा हो किन्तु 'गेटे' के उपरोक्त कथन में पुनर्जन्म में विश्वास होने का दृढ़ प्रमाण

मिलता है । तत्व ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'गीता' भी पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है । अर्जुन ने भगवान कृष्ण से पूछा–देव ! योगभ्रष्ट व्यक्ति की स्थिति क्या होती है ? भगवान कृष्ण कहते हैं–

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टो इभिजायते ।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीथताम ।।

वह योगभ्रष्ट साधक पवित्र और साधन सम्पन्न मनुष्य के घर जन्म लेगा अथवा बुद्धिमान योगी के घर पैदा होगा ।

पिछले जन्म की विशेषताओं एवं संस्कारों की प्राप्ति दूसरे जन्म में होती है । जन्म के साथ दिखायी पड़ने वाली आकस्मिक विशेषताओं का कारण पूर्वजन्म के कर्म होते हैं । उसका प्रमाण गीता के अगले श्लोक में मिलता है–

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ, कुरुनन्दन ।।

वह अपने पूर्व जन्म के संस्कार को प्राप्त करके पुनः मोक्ष सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है ।

दुष्कर्मों के फलस्वरूप जन्म निम्न योनियों में होता है। भगवान कृष्ण कहते हैं-

तानहं द्विषतः क्रूरान संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यज स्त्रभशुभानासुरीव्वेव योनिषु ।।

निकृष्ट कर्म करने वाले क्रूर, दीन, नराधमों को मैं आसुरी योनियों में फेंक देता हूँ ।

पुनर्जन्म एक सुनिश्चित सिद्धान्त है जिसको अधिकांश विचारशील स्वीकार करते हैं । कुछ लोग जीवन की इति श्री भौतिक शरीर की मृत्यु के साथ समझ लेते हैं । उनकी मान्यता है कि जब जीवन वर्तमान तक ही सीमित है तो उसका उपभोग जैसे भी बन पड़े करना चाहिए । नीति-अनीति में भेद किये बिना ''ऋण कृत्वा घृतं पिवेत'' का चारवाकी-सिद्धान्त अपनाना चाहिए । निस्सन्देह वे भयंकर भूल करते हैं । सामाजिक दण्ड के भागी तो बनते ही हैं, अपना अगला जीवन भी अन्धकार मय बनाते हैं । अच्छे का फल अच्छा , बुरे का बुरा मिलना सुनिश्चित है । किन्हीं कारणों वश यदि इस जीवन में कर्मों का फल नहीं मिलता तो अगले जीवन में मिलना निश्चित है । फल ही नहीं कर्मों के संस्कार भी सूक्ष्म रूप से अगले जीवन में साथ जाते तथा नये जीवन की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। विशिष्ट प्रतिभा, योग्यता, जन्मजात इसी कारण दिखायी पड़ती है । इस तथ्य को जानते हुए अपने गुण-कर्म-स्वभाव में सतत परिष्कार करते रहना चाहिए ? जीवन की अगली कड़ी की पृष्ठभूमि अभी से तैयार की जानी चाहिए ।

पुनर्जन्म सिद्धान्त को भली भाँति समझा जाय

किसी भी सिद्धान्त को यदि भली भाँति नहीं समझा जाय तो उसे मानने का दम भरने पर भी आचरण उससे विपरीत ही बना रहता है । पुनर्जन्म-सिद्धान्त के साथ भी ऐसा ही हुआ है । उसकी वैज्ञानिक प्रक्रिया को न समझने वालों ने जहाँ इस जीवन के भौतिक सुविधा-साधनों को ही पूरी तरह पिछले जन्म का पुण्यफल मान लिया, वहीं इस पुण्य-कर्म का अर्थ पूजा-पत्री, कर्म-काण्ड तक ही सीमित माना जाने लगा । परिणाम यह हुआ कि न तो व्यक्ति की आदर्श परायणता के प्रति कोई वास्तविक सम्मान बचा, न ही पुरुषार्थ को प्रगति का आधार समझा गया । इसके स्थान पर भौतिक सुख-सुविधाएँ अपने पुरुषार्थ की तुलना में कहीं अधिक जुटा पाना या पा जाना ही चारित्रक सौभाग्य या श्रेष्ठता का प्रमाण माना जाने लगा और वह श्रेष्ठता पाने का आसान तरीका ग्रहनक्षत्रों, देवताओं को टंट-घंट से प्रसन्न करना समझा गया ।

यह एक विचित्र विडम्बना ही है कि पुनर्जन्म का जो सिद्धान्त पुरुषार्थ और कर्म की महत्ता का प्रतिपादक था, कठिन से कठिन अप्रत्याशित विपत्ति को भी प्रारब्ध भोग मानकर धैर्यपूर्वक सहने और आगे उत्कर्ष हेतु पूर्ण विश्वास के साथ प्रयासरत रहने की प्रेरणा देता था, वही निष्क्रियता और अंधनियतिवाद का भ्रान्त मतवाद बनकर रह गया है ।

मनुष्य द्वारा अपने भाग्य का निर्माण आप किये जाने का तथ्य भुलाकर यह माना जाने लगा कि देवता अपनी मर्जी और मौज के मुताबिक किसी का भाग्य खराब, किसी का अच्छा लिखते या बनाते रहते हैं । भला, यदि ऐसा होने लगे, तो इन देवताओं को शक्ति सम्पन्न पागलों के अतिरिक्त और क्या कहा जायेगा ? पूजा-पत्री के रूप में मिथ्या या अतिरंजित प्रशंसा तथा अत्यन्त सस्ती उपहार-सामग्री पाकर ही अपनी नीति व्यवस्था को उलट-पुलट देने वाले देवता तो अस्त-व्यस्त अफसरों और बाबुओं से भी अधिक भोंदू सिद्ध होते ।

प्रायः किसी को धन-सुविधा-सम्पन्न देखकर इसे उसके पिछले जन्मों का पुण्य मान लिया जाता है । पर, धन मनुष्य की अनेक विभूतियों में से एक विभूति है, एकमात्र नहीं । कोई व्यक्ति धनी है, यह यदि उसके किसी विगत पुण्य का

फल है, तो साथ ही यदि वह दुराचारी है, क्षुद्र है, क्रूर है, व्यसनी है, तो यह सब उसके किसी विगत पाप का फल मानना होगा । यही स्वाभाविक और तर्क संगत प्रतिपादन कहलायेगा। सामान्यतः लोग जीवन में कुछ सत्कर्म करते हैं कुछ अनैतिकताएँ भी । सत्कर्म का सुफल किसी सद्गुण या समृद्धि के रूप में सामने आयेगा तो दुष्कर्म का प्रभाव दुष्प्रवृत्ति दुर्गुणों के रुप में दिखेगा धनिकों में से कोई भी मतिमंद देखे जाते हैं, तो कोई ओछे भी । कोई दुर्व्यसनी-दुराचारी होते हैं तो को धूर्त प्रबंचक भी । सबके सब धनिक सर्वगुण-सम्पन्न होते हों, ऐसा देखने में नहीं आता । लेकिन उनके दुर्गुणों को पिछले जन्म में उनके पापी होने का प्रमाण तो खुले आम नहीं कहा जाता जबकि उनकी धन-सम्पन्नता को उनके पुण्यात्मा होने का चिन्ह बताते प्रायः बहुत से रुढि-पूजकों को देखा जाता है । यह पुनर्जन्म की अधूरी और भ्रान्त धारणा हुई ।

साधन-सुविधाओं की प्रचुरता उपलब्ध होना न तो किसी के पिछले जन्म में पुण्यात्मा होने का प्रमाण है, न ही किसी के व्यक्तित्व की श्रेष्ठता का परिचायक है । प्रवृत्तियाँ दूषित या पतनशील हुईं तो परिस्थितियों की यह अनुकूलता और साधनों की प्रचुरता बौद्धिक-नैतिक एवं चारित्रिक पतन में भी सहायक सिद्ध होती हैं । साधन सम्पन्नता से भी बढ़ चढ़कर उत्कृष्ट संवेदना, आदर्शवादी आस्था, सात्विकता, प्रसन्नता, धैर्य, साहस, शौर्य, सूझबूझ, स्वाध्याय-परायणता, कला-कौशल व्यवहार-कुशलता, भावनात्मक श्रेष्ठता, करुणा, निरहंकारिता, अन्तर्दृष्टि, कुशाग्रबुद्धित्व, प्रखर धारणा, शक्ति-सहयोग वृत्ति, आदि सैकड़ों हजारों मानवीय विशेषताएँ हैं । इनमें से प्रत्येक का अपना महत्व है और उपयोगिता है । प्रत्येक से अनेक प्रकार की उपलब्धियाँ सम्भव हैं ।

इस पर भी इन दिनों किसी भी व्यक्ति की अन्य कोई विशेषता न देखकर मात्र उसकी आर्थिक-समृद्धि के आधार पर भाग्यवान और पुण्यात्मा मान लिया जाता है । अथवा आर्थिक विपन्नता देखकर अभागा और पिछले जन्म के पाप का फल भोगने वाला मान बैठा जाता है । इस प्रवृत्ति को पुनर्जन्म पर आस्था का द्योतक नहीं 'चिन्तन' शक्ति एवं विवेक की दरिद्रता और व्यक्तित्व के उथलेपन का परिचायक मानना ही सही है। इस उथलेपन और बौनेपन के कारण ही भाग्य को बदलने के लिए चमत्कारों का आश्रय खोजने में ही समय, श्रम एवं पुरुषार्थ गँवाया जाता रहता है ।

पुनर्जन्म की वास्तविक दार्शनिक मान्यता तो इससे भिन्न ही तथ्य एवं निष्कर्ष प्रस्तुत करती है । सफलताएँ-विफलताएँ व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व भर से सम्बन्धित नहीं होती । सामाजिक परिस्थितियों और समाज की प्रचलित मान्यताएँ भी इसमें निर्णायक भूमिका निभाती हैं । आदर्शवादी समाज में चरित्रवान का सम्मान होता है, तो भ्रष्ट समाज उसे पिछड़ा मूर्ख समझता है ।" कभी भारतवर्ष में तपस्वी विद्वानों का लोकमानस पर गहरा प्रभाव होता था। आज आर्थिक सम्पन्नता अन्य सभी सामर्थ्यों पर हाबी है । पैसे वालों को बुद्धिजीवियों कलाकारों तक का सहयोग सरलता से मिल जाता है । कभी यही कला और विवेक धर्म के लिये समर्पित होता था ।

अतः किसी व्यक्ति के पिछले जन्मों की प्रवृत्तियों, संस्कारों का लेखा-जोखा यदि करना ही हो तो ऐसा उसकी वर्तमान प्रवृत्तियों-गतिविधियों के आधार पर किया जाना ही उचित है, न कि सफलता के आधार पर । सफलता की परिभाषाएँ और पैमाने भिन्न-भिन्न होते हैं, किन्तु आदर्शवादिता और अवसरवादिता का मापदण्ड प्रायः सर्वमान्य होता है । स्वार्थ को छलपूर्वक परमार्थ तो प्रचारित किया जा सकता है परन्तु वास्तविकता विदित होने पर सभी एक स्वर से उसे हेय स्वार्थ ही कहेंगे । जबकि सफलता के बारे में ऐसा एकमत नहीं हो सकता है । भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद को कुछ लोग क्रान्ति-चेतना के प्रसार में सफल व्यक्ति मानेंगे तो कुछ अन्य उस दशा में उन्हें , विफल निरूपित करेंगे । किन्तु उनका जो भी आदर्श था उसके प्रति वे निष्ठावान थे यह सभी मानेंगे । इस प्रकार प्रवृत्तियों के मापदंड सर्वस्वीकृत हैं, जबकि उपलब्धियों के मापदण्ड़ों में भिन्नता है। अतः पिछले जन्म के पुण्य-पाप को उपलब्धियों से नहीं, प्रवृत्तियों से आँका जाना चाहिए ।

यह मन, बुद्धि, अंतःकरण की प्रवृत्तियाँ और चेतनास्तर ही है, जो अगले जन्म में भी काम आता है । साधन-सामग्रियाँ तो यहीं छूट जाती हैं ।

दक्षिणी अफ्रीका में जोहान्सवर्ग शहर स्थित बिट्टाटर स्ट्रैण्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर आर्थर ब्लेकस्ले ने 'साइकिक रिसर्च' के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये हैं । पिता एडवर्ड माइकेन बर्बे और माँ कैरोलिन फ्रांसिस एलिजाबेथ की संतान जोय बर्बे की जांच पड़ताल इन्होंने उस समय शुरू की, जब वह १३ वर्ष की थी और उसकी विचित्रताओं की बात श्री ब्लेकस्ले को विदित हुई ।

यह लड़की जोय २ १/२ वर्ष की आयु से ही अति प्राचीन ऐतिहासिक दृश्यों और वस्तुओं के चित्र बनाने लगी थी । उसकी इस शक्ति का प्रचार तब से अधिक हुआ, जब १२ वर्ष की आयु में वह 'क्रूगर' हाउस नामक भवन देखने गयी,

जहाँ १५वीं' शताब्दी में वहाँ के गणतन्त्र का प्रधान ओम पाल रहा करता था । जोय का कहना था कि मैं पाल को जानती थी । उसने पाल के बारे में अनेक बातें बताईं । जोय के इतिहास-प्राध्यापक ने जाँच के बाद उसके द्वारा बताये गये विवरण इतिहास-प्रमाणित बताये और कहा कि इसके पूर्व मैं स्वयं यह सब नहीं जानता था । जोय के बताने पर मैंने पुस्तकों और रिकार्ड्स की छानबीन की, तो पाया कि जोय की जानकारी आश्चर्यजनक रूप से सही थी । जोय ने बताया कि ओम पाल की पहली पत्नी मेरिया डू प्लेसिस १६ वर्ष की उम्र में एक बच्चे को जन्म देते समय मर गई थी । फिर मेरिया की भतीजी से पाल का दूसरा विवाह हुआ और उसके १६ बच्चे हुए । जोय ने यह भी बताया कि पाल को एक विद्रोह के बाद देश से निर्वासित कर दिया गया था, और वह स्विट्जरलैण्ड चला गया था. जहाँ १९४० में उसकी मृत्यु हुई । ये सभी बातें छानबीन से सही निकलीं ।

इस विचित्र बालिका जोय का दावा है कि उसे अपने पिछले ९ जन्मों की स्मृति है । इस बालिका के विवरणों में भी एक ही तथ्य अन्तर्निहित है कि मनुष्य के विकास क्रम में एक सातत्य है और वह पिछले संस्कारों के साथ नया जीवन प्रारम्भ करता है । यह बालिका आज परामनोवैज्ञानिकों के अध्ययन का एक आकर्षण-केन्द्र बनी हुई है । अपने इन नौ जीवन के बारे में १२-१३ वर्ष की आयु में जोय ने ऐसे विस्तृत विवरण पेश किये, जो मात्र अध्ययन के आधार पर शीर्षस्थ इतिहास-पुरातत्ववेत्ता ही बता सकते हैं । यह चमत्कार दूरानुभूति का परिणाम भी नहीं माना जा सकता । क्योंकि दूरानुभूति की सामर्थ्य से व्यक्ति उन्हीं बातों को जान सकता है, जो प्रश्नकर्त्ता के मन-मस्तिष्क में हैं । किन्तु जोय तो बिना किसी प्रश्नकर्ता के अनेकों ब्यौरे सुनाती बताती है, जिसकी जानकारी खुद श्रोताओं को नहीं होती ।

जोय के अनुसार बहुत पहले के एक जन्म की उसे इतनी ही याद है कि डिनासार यानी प्राचीन भीमकाय पशु ने उसका एक बार पीछा किया था । यह पाषण-काल की घटना है । दूसरे जन्म में जोय दासी थी । उसके स्वामी ने अप्रसन्न होकर उसका सिर काट दिया था । तीसरे जन्म में भी वह दासी के रूप में रही । चौथे जन्म में वह तत्कालीन रोम में एक जगह रहती थी और रेशमी कम्बल एवं वस्त्र बनाती थी। पाँचवें जन्म में वह एक धर्मान्ध महिला थी और एक धर्मोपदेशक को उसने पत्थर दे मारा ।

जोय का छठवाँ जन्म इटली में नवजागरण के काल खण्ड में हुआ । उस समय वहाँ कला और साहित्य की नयी जाग्रति उभार पर थी । जोय के घर में दीवारों और छतों पर बड़े-बड़े चित्र थे । सातवाँ जन्म गुड्होप के अन्तरीप में १७ वीं शताब्दी में हुआ । जहाँ पर वह ठिगने पीले रंग के लोगों में से थी । राज्याश्रय में पलने वाले व्यवसाय से उसका सदा सम्बन्ध रहा ।

आठवें जन्म में वह अधिक विकसित रूप में पैदा हुई। १९ वीं शताब्दी की यह बात है । सन् १८८३ से सन् १९०० तक वह ट्रांसवाल गणतंत्र के राष्ट्रपति ओमपाल के निवास भवन-आती जाती थी कला और कारीगरी में उसकी गहरी रुचि थी।

नवें वर्तमान जीवन में वह प्रिटोरिया नगर की एक छात्रा है । वह पिछले जन्मों के बारे में विस्तृत ब्यौरे बताती है । उसकी कला-रुचि प्रत्येक जन्म में अक्षुण्ण रही है । दासी के रूप में वह नाचती थी । रोम में रेशमी कम्बल बुनती थी, धर्म क्षेत्र से भी वह सदा सम्बन्धित रही । उसके संस्कारों में निरन्तर एक धारावाहिकता देखी जा सकती है ।

संस्कारों का यह प्रवाह ही पुनर्जन्म-सिद्धान्त का आधार है । भाव-संवेदनाएँ, आस्थाएँ, चिन्तन की दिशाएँ और स्वभाव ही अगले जन्म में संस्कार रूप में साथ रहते हैं । साधन-सामग्रियाँ नहीं । साधनों की उपयोगिता भी प्रवृत्ति के अनुरूप घटती-बढ़ती रहती हैं । बुद्धि के विकास में उनका राजसी ऐश्वर्य कोई सहायता नहीं कर सका । अयोध्या की साधन-सुविधाएँ राम को रावण-विजय में रंचमात्र सहयोग न दे सकीं । जिसके कारण राम या बुद्ध की गरिमा है, जो उन के व्यक्तित्व की वास्तविक विशेषताएँ कही, समझी जाती हैं, उनका निर्माण उन सुविधाओं के द्वारा नहीं हुआ था, जो उन्हें जन्म से प्राप्त थीं अपितु उन स्त्रप्रवृत्तियों के द्वारा हुआ था, जो उनके समग्र व्यक्तित्व के मूल में क्रियाशील रहीं । ये प्रवृत्तियाँ ही अपने अनुरूप साधन जुटाने का समर्थ आधार बन जाती हैं । व्यक्तित्व में ये विशेषताएँ न हुईं, तो साधनों-सुविधाओं का विशाल भण्डार खाली होते देर नहीं लगती ।

यह सही है कि पुनर्जन्म-सिद्धान्त में प्रारब्ध कर्म का अपना विशेष महत्त्व है । पर प्रारब्ध भी किसी चमत्कार का परिणाम नहीं होता और न ही उसमें हेरफेर सर्वथा असम्भव होता है । लेकिन आज पुनर्जन्म को मानने वालों में बड़ी तादाद उन लोगों की है, जो प्रारब्ध या दैवी-विधान को अकारण या व्यवस्था-विहीन चमत्कारिक मानते हैं । इनमें परिवर्तन भी चमत्कार के सहारे ही सम्भव मानते हैं । ये दोनों ही बातें पुनर्जन्म-सिद्धान्त के वास्तविक आधारों के विरुद्ध हैं ।

निस्सन्देह ऐसे लोगों की कमी नहीं, जिनमें जन्म से ही अनेक विलक्षणताएँ होती हैं या जो प्रचालित लोक-प्रवाह से

अप्रभावित, अपनी ही विशिष्टता से विभूषित देखे जा सकते है । इसका कारण भी दैवी चमत्कार नहीं, पिछले जन्म में वैसे विकास हेतु किया गया उनका स्वतः का प्रयास पुरुषार्थ होता है ।

महर्षि अरविन्द की प्रधान सहयोगिनी श्री माँ जब मीरा रिचर्ड के रूप में फ्रांस में बाल्यावस्था व्यतीत कर रही थीं, उसी समय उन्हें दिव्य दर्शन होते थे, जो उनके पिछले जन्म के ही संस्कारों के परिणाम थे । आचार्य विनोबा भावे ने अपने बारे में कहा है कि मुझे यह भास होता है कि पूर्व जन्म में मैं बंगाली था । साथ ही जिन वस्तुओं के प्रति जन-सामान्य में प्रचण्ड आकर्षण होता है उनके प्रति विनोबा में कभी भी आकर्षण ही नहीं हुआ यह भी वे अपने पिछले जन्म की कमाई मानते हैं । इस जन्म की कमाई तो वह तब होती, जब उस ओर आकर्षण होता और वे उस पर नियन्त्रण करते । श्री अरविन्द के एक प्रमुख शिष्य श्री अनिलवरण राय ने शैशवावस्था में ही श्रीकृष्ण के विराट्-स्वरूप के प्रत्यक्ष दर्शन की बात कही है । उस समय तक उन्होंने कैसी भी साधना नहीं की थी, अतः यह अनुभूति पूर्वजन्म की साधना का ही फल थी, यह बात उन्होंने स्वयं कही है ।

पुनर्जन्म के प्रति विवेक विरुद्ध मान्यताएँ पालकर हर दुःखग्रस्त या आर्थिक दृष्टि से कुछ खोने वाले व्यक्ति को पिछले जन्म का पापी और सुविधा-सज्जित लोगों, धन-कुबेरों, सत्तासीनों को विगत जन्म का पुण्यात्मा मान बैठने की मूढ़ता से बचना चाहिए । इन मापदंण्डों से तो राम,कृष्ण, विवेकानन्द, मार्क्स, महात्मा गाँधी समेत सभी महामानवों को अभागा और महापापी बताना तथा अत्याचारी विलासी सामन्ती-धनपतियों को महान पुण्यात्मा करार देना आसान होगा ।

आवश्यकता जन्म-जन्मान्तर तक चलने वाले कर्मफल के अटूट क्रम को समझने की है । उसे समझने पर ही उसकी दिशाधारा निर्धारित करने और मोड़ने में सफलता मिल सकती है । अपने भीतर की दुर्बलताओं और विकृतियों को अपनी ही भूल से चुभे काँटे समझकर धैर्यपूर्वक निकालना और घाव को पूरना चाहिए । अपनी सत्प्रवृत्तियों, श्रेष्ठ उमंगों को अपनी अमूल्य थाती समझकर उसे संरक्षित ही नहीं रखना चाहिए, अपितु बढ़ाने का भी प्रयास करना चाहिए । इस हेतु न तो किसी ग्रह-नक्षत्र की मनुहार की जरूरत है न चमत्कारों की खोज की । अपने भीतर की देव-प्रवृत्तियों की पूजा-प्रतिष्ठा और अपने भीतर जगमगा रही आस्था के प्रकाशपूर्ण ग्रहों-नक्षत्रों की अनुकूलता ही अपने विकास का आधार बन सकती है । यही पुनर्जन्म सिद्धान्त की दार्शनिक पृष्ठभूमि और नैतिक प्रेरणा है।

आत्मा की अमरता और शरीर की नश्वरता का सिद्धान्त भारतीय दर्शन का तो प्राण है ही, अन्यान्य धर्मों एवं दर्शनों ने भी उसे किसी ने किसी रूप में स्वीकार किया है । ईसाई मुसलमान धर्मों में पुनर्जन्म की तो मान्यता नहीं है, पर उनके यहाँ भी आत्मा का अस्तित्व मरने के बाद भी बने रहने और न्याय के दिन ईश्वर के सम्मुख उपस्थित होने की बात है । इसका अर्थ कम से कम इतना तो है ही कि मरने के साथ-साथ ही जीव की सत्ता सदा-सर्वदा के लिए समाप्त नही हो जाती, वरन् फिर से सचेतन की तरह काम करने का अवसर मिलता है । स्वर्ग-नरक की मान्यताएँ भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि करती हैं कि अशरीरी आत्मा को भी एक विशेष प्रकार का जीवनयापन करने का अवसर मिलता है ।

भूत-प्रेतों का अस्तित्व पिछड़े लोगों में अन्ध-विश्वास की तरह फैला हुआ है । प्रगतिशील लोग उस बात का मजाक बनाते हैं, पर दोनों की मध्यवर्ती भी एक स्थिति है जिसमें कठोर परीक्षणों की कसौटी पर भी मृतात्माओं के द्वारा शरीरधारियों जैसे आचरण होने के प्रमाण मिलते हैं । प्रेत कैसे होते हैं? क्या करते हैं ? मनुष्यों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करते हैं ? क्या चाहते हैं ? इन प्रश्नों पर मतभेद हो सकता है, पर यह तथ्य अब दिनों-दिन अधिक प्रामाणिक होता जा रहा है जिसमें किन्हीं आत्माओं का मरने के उपरान्त भी अपनी हलचलें प्रत्यक्ष करने की बात विश्वासपूर्वक स्वीकार की जा सके ।

आत्मा की अमरता का एक प्रमाण पुनर्जन्म है । मरने के बाद दूसरा जन्म मिलने का तथ्य हिन्दू धर्म में सदा से माना जाता रहा है । पुराणों में इसका पग-पग पर वर्णन है । धर्म-शास्त्रों में, अगणित आप्त वचनों में आत्मा के पुनर्जन्म लेने की बात कही गई है । चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के उपरान्त मनुष्य जन्म मिलने, पुण्य और पाप का फल भोगने के लिए फिर से जन्म मिलने की बात को धर्म-ग्रन्थों में अनेकानेक उदाहरणों के साथ बताया गया है ।

पुनर्जन्म की मान्यता के साथ कर्मफल का सघन सम्बन्ध है, जिन्हें भले या बुरे कर्मों का फल इस जन्म में तत्काल न मिल सका, उन्हें अगले जन्म में भोगना पड़ेगा । इस सिद्धान्त को स्वीकार करने पर पाप फल से डरने और पुण्य प्रतिक्रिया

के सम्बन्ध में अश्वत रहने की मनःस्थिति बनी रहती है । फलतः पुनर्जन्मवादी को अपने कर्मों का स्तर सही रखने की आवश्यकता अनुभव होती है और तत्काल फल न मिलने से उद्विग्नता उत्पन्न नहीं होती ।

आत्मा को स्वतन्त्र सत्ता न मानने, उसे शरीर चेतना भर समझने का नास्तिकवादी दर्शन प्राचीनकाल में भी रहा है । जाबकि इस मत के आचार्य थे । उन्होंने अपने प्रतिपादन की प्रतिक्रिया छिपाई नहीं, वरन् स्पष्ट कर दिया कि आत्मा और परमात्मा की सत्ता से इन्कार करने के उपरान्त क्या सोचना और क्या करना उचित है ? उन्होंने अपनी प्रख्यात घोषणा में कहा है- **''यावज्जीवेत् सुखं जीवत्, ऋण कृत्वा घृतं पिवेत् । भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमने कुतः ।''** अर्थात् जब तक जीना सुख से जीना-कर्ज लेकर घी पीना । क्योंकि शरीर के साथ ही मृत्यु हो जाती है, फिर लौटकर तो आना नहीं है। इस सिद्धान्त में नीति-अनीति के पचड़े में न पड़कर जैसे भी बने मौज-मजा करने के लिए प्रोत्साहित किया गया है ।

पिछली शताब्दियों में भौतिक विज्ञान की प्रगति से उत्पन्न हुए उत्साह ने यह कहना आरम्भ किया कि सत्य केवल उतना ही है जितना कि विज्ञान की मान्यता प्राप्त कर सके, चूँकि चेतना को प्रयोगशाला में प्रत्यक्ष नहीं किया जा सका । इसलिए घोषित किया गया कि शरीर ही आत्मा है और मृत्यु के उपरान्त उसका सदा सर्वदा के लिए अन्त हो जाता है । मनुष्य को चलता-फिरता पौधा भर कहा गया, जो उगता है और सूख कर समाप्त हो जाता है । यह मान्यता मात्र एक सिद्धान्त या प्रतिपादन मात्र बनकर नहीं रह सकती, उसकी गम्भीर प्रतिक्रिया चिन्तन और चरित्र पर होती है । पुनर्जन्म, परलोक, आत्मा के अस्तित्व की जब कोई बात ही नहीं है तो पाप-पुण्य के पचड़े में पडने से क्या लाभ ? चतुरता के बल पर जितना भी स्वार्थ सिद्ध किया जा सकता हो करना चाहिए । समाज और शासन के दण्ड से बच निकलने के हथकण्डों से तो भली प्रकार परिचित हैं । अंकुश मात्र परमात्मा के शासन और आत्मा को कर्मफल भोगने भर का था । नास्तिकवादी मान्यता के कारण उसका भी अन्त हुआ । ऐसी दशा में नीति, सदाचार और सामाजिक मर्यादाओं के पालन की उपेक्षा होनी स्वाभाविक थी । इस मान्यता ने उच्चस्तरीय आदर्शों को भारी क्षति पहुँचाई । भविष्य में और भी अधिक नीति संकट उत्पन्न होने और उसके फलस्वरूप व्यक्ति एवं समाज की बुरी तरह विघटन होने की आशंका है ।

ऐसी विषम परिस्थितियों में मानव जाति के भविष्य का ध्यान रखने वाले प्रत्येक विचारशील व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह आत्मा की अमरता, ईश्वर का अंकुश, कर्मफल की सुनिश्चितता से गुँथे हुए आध्यात्मवाद के प्रति लोक-निष्ठा बनाये रहने का प्रबल प्रयत्न करे । यह सिद्धान्त जहाँ प्रामाणिकता की कसौटी पर खरे उतरते हैं वहाँ उनकी प्रतिक्रिया भी व्यक्ति एवं समाज को आदर्शवादी मान्यताओं को जकड़े रहने की भी होती है । शालीनता और सुव्यवस्था बनाये रहने की दृष्टि से इस आस्था का बने रहना नितान्त आवश्यक है । आस्तिकता का बाँध टूटे जाने पर जो बाढ़ आवेगी उसमें वह सब कुछ डूब जाने की आशंका है, जो सभ्यता और संस्कृति के नाम पर अब तक उपार्जित किया गया है ।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि में अनेकानेक प्रमाण सामने आते हैं । भारत में तो इस सम्बन्ध में चिर-मान्यता होने के कारण यह भी कहा जा सकता है कि पुनर्जन्म की स्मृति बताने वाले, यहाँ के वातावरण से प्रभावित रहे होंगे था । यों इस आशंका को भी कठोर परीक्षा की दृष्टि से भली-भाँति निरस्त किया जाता रहा है और बच्चे ऐसे प्रमाण देते रहे हैं जिनके कारण किसी झाँसेपट्टी की आशंका नहीं रह जाती । पिछले जन्म के सम्बन्धियों के नाम तथा रिश्ते बताने लगने-ऐसी घटनाओं का जिक्र करना जिनकी दूरस्थ व्यक्तियों को जानकारी नहीं हो सकती, वस्तुओं के साथ जुड़े हुए इतिहास का विवरण बताना, जमीन में गढ़ी चीजें उखाड़कर देना अपने और पराये खेतों का विवरण बताना जैसे अनेक सन्दर्भ ऐसे हैं जिनके आधार पर पुनर्जन्म होने की प्रामाणिकता से इनकार नहीं पाया जाता । फिर लोगों का मान्यता का भी आक्षेप नहीं लगाया जा सकता है । पुनर्जन्म के प्रमाण तो वहाँ भी मिलते हैं । यह भी किम्बदत्तियों के आधार पर नहीं, वरन् परामनोविज्ञान की शोधकर्त्ता मण्डली द्वारा उनकी छानबीन की गई है और यह पाया गया है कि यह घटनाएँ मन-गढ़न्त, कपोल-कल्पित या झाँसापट्टी नहीं है । इनसे पुनर्जन्म की मान्यता की ही पुष्टि होती है ।

दार्शनिक एफ०एच० विलिस की भी मान्यता है कि पुनर्जन्म व आत्मा के विकास का सिद्धान्त सत्य है । उत्कृष्ट आत्माएँ अपूर्ण कार्य की पूर्ति हेतु पुनर्जन्म लेती हैं । श्री विलिस ने ऐसे कई जोड़े ढूँढ़े हैं, जिनके चिन्तन व कर्म में अपूर्व साम्य था । श्री विलिस इन्हें पुनर्जन्म की ही घटनाएँ मानते हैं । उनके अनुसार ईसामसीह ने दुबारा अपोलो निक्स ऑफ टिमाना के रूप में जन्म लिया । शौपनहावर बुद्ध के अवतार कहे जा सकते हैं । फिश्टे, हीगल, कान्ट को भी भारतीय आत्माएँ कहा जा सकता है । श्रीमती बेसेन्ट पहले ब्रूनो थीं । सिसरो ने ग्लैडस्टोव के रूप में पुनर्जन्म लिया ।

४.३० मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवम् सत्य

अमरीकी पादरी जिमविशप की मान्यता है कि राष्ट्रपति अब्राह्म लिंकन ने ही राष्ट्रपति जान एफ०केनेड़ी के रूप में पुनर्जन्म ग्रहण किया । उन्होंने दोनों के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन कर इन तथ्यों की ओर लोगों का ध्यान खींचा है।

लिंकन व केनेडी दोनों में गहरी धार्मिक भावना थी व बाइबिल के प्रेमी पाठक भी दोनों थे । दोनों विश्व-शान्ति के उपासक थे । दोनों में ४० वर्ष की आयु में ही राष्ट्रपति बनने की इच्छा हुई । नीग्रो स्वतन्त्रता के लिए दोनों ने निरन्तर प्रयास किया । लिंकन के चार बच्चे थे, दो मर गये थे । शेष दो से उन्हें गहरा प्यार था । केनेड़ी के भी चार बच्चे हुए दो का निधन हो गया । उन्हें भी वैसा ही प्यार था । दोनों अपने बच्चों से विनोद-परिहास बहुत करते थे ।

लिंकन की भी प्रथम धर्म-पत्नी फैशनेबुल थी, गृह-व्यवस्था, कविता तथा चित्रकला की शौकीन थी, केनेडी की भी । दोनों लिबरल पार्टी के सदस्य थे । लिंकन १८६१ में प्रेसीडेन्ट बने, केनेडी १९६१ में । लिंकन के प्राणों की सर्वाधिक चिन्ता केनेडी नामक समकालीन व्यक्ति को रहती थी , केनेडी के सुरक्षार्थ उनका निजी सचिव लिंकन सर्वाधिक सतर्क रहता था । दोनों गोली से मारे गये व शुक्रवार के ही दिन । लिंकन की मृत्यु के बाद उनका पद सम्हाला दक्षिणी उपराष्ट्रपति जान्सन ने और केनेडी की मृत्यु के बाद भी इस जिम्मेदारी को सम्हालने वाले का नाम जान्सन ही था वे दक्षिण से आये उपराष्ट्रपति थे ।

क्या यह अद्भुत साम्य मात्र संयोग है ? या इसके पीछे कोई सूक्ष्म आत्मिक विधान निहित है ?

सन् १२१५ में जन्मे फ्रांस के सन्त लुइस एक महान् क्रान्त दृष्टा थे । ५३९ वर्ष बाद सन् १७५४ में सम्राट् लुइस १६ वें का जन्म हुआ । दोनों के जीवन काल में ५३९ वर्ष का अन्तर था और दोनों की देह यानी रूपाकार में भी एकता थी । इसके अतिरिक्त दोनों के जीवन में असाधारण समानताएँ थीं ।

सन्त लुइस की छोटी बहिन का नाम इसाबेल था, वह उनसे १० वर्ष बाद पैदा हुई । सम्राट् लुइस की बहिन भी १० वर्ष ही छोटी थी । नाम था इलिजाबेथ । दोनों के पिताओं की मृत्यु उनकी आयु के १२ वर्ष में हुई । १५ वें वर्ष में सन्त लुइस बीमार हुए और सम्राट लुइस भी उसी आयु में उसी रोग से ग्रस्त हुए । दोनों का विवाह १७ वें वर्ष में हुआ व २१ वें वर्ष दोनों को बालिग अधिकार मिले ।

सन्त लुइस ने २९ वें वर्ष में हेनरी तृतीय से और सम्राट् लुइस ने २९ वें जार्ज तृतीय से शान्ति वार्ता की । दोनों के पास उनकी ३४ वर्ष की उम्र में पूर्व के एक राजकुमार का राजदूत, राजकुमार के ईसाई बनने की इच्छा से आया । ३५ वर्ष की उम्र में सन्त लुइस क्रान्तिकारी विचारों के कारण नजर बन्द किये गये । ३५ वर्ष की ही आयु में सम्राट लुइस के सभी सत्ताधिकार छिन गये । इसी आयु में सन्त भी पद से हटाये गये, सम्राट भी । आयु के उसी वर्ष में यानी ३६ वें वर्ष में सन्त लुइस ने ट्रिस्टन की स्थापना की व क्रान्ति का उद्घोष किया । सम्राट लुइस ने भी ३६ वें वर्ष वैस्टीन के पतन के साथ क्रान्ति का शुभारम्भ किया । सन्त ने उसी वर्ष जैकन की स्थापना की, सम्राट ने जैको विनस का सूत्रपात किया । सन्त के ३६ वें वर्ष में इसावेल ऐन्गुलेम की मृत्य हुई। सम्राट के ३६ वें वर्ष में इसावेल्ड ऐन्गुलेम का जन्म हुआ। दोनों ३८ वर्ष के थे, जब मातृ-सुख से वंचित हो गये । ३९ वें वर्ष सन्त अवकाश ग्रहणकर जैकोबिन बने । सम्राट् ने ३९ वें वर्ष में जैकोबिन को जीवन अर्पण किया । उसी वर्ष सन्त मैडेलियन प्रान्त में वापस पहुँचे । ३९ वें वर्ष में ही सम्राट लुइस मैडेलिन के अन्तिम संस्कार में पेरिस में सम्मिलित हुए।

इस तरह दोनों के ज़ीवन की घटनाओं में अद्भुत साम्य है । सभी घटनाएँ ५३९ वर्ष के अन्तर से मानो स्वयं को दुहराती रहीं ।

वर्जीनिया विश्व-विद्यालय के मनोवैज्ञानिक डाक्टर इवान स्टीवेन्सन ने पुनर्जन्म की स्मृति सम्बन्धी तथ्यों के संकलन हेतु संसार में दौरा किया । उसी श्रृंखला में भारत भी आये । कन्नौज के निकट जन्मे एक बालक के शरीर पर गहरे घावों के पाँव निशान थे । उसने बताया कि पिछले जन्म में उसकी हत्या शत्रुओं ने चाकू से की थी । जाँच करने पर श्री स्टीवेन्सन ने उसे सही पाया ।

डा० इवान स्टीवेन्सन ने समस्त विश्व में इस प्रकार के प्रामाणिक विवरण प्राप्त किये । भारत में सर्वाधिक इसलिए पाये गये कि यहाँ की संस्कृति में पुनर्जन्म की मान्यता है । इस कारण पूर्व जन्म की बातें बताने वाले को डाँटा या रोका नहीं जाता है ।

ब्रिटेन के प्रसिद्ध साहित्यकार डिक्सन स्मिथ भी काफी समय तक मरणोत्तर जीवन पर विश्वास नहीं करते थे । किन्तु प्रामाणिक विवरणों ने उन्हें इसे सत्य मानने के लिए बाध्य कर दिया । उन्होंने अपनी पुस्तक 'न्यू लाइट आन सरवाइवल' में अनेक तर्कों एवं प्रमाणों को प्रस्तुत किया है।

अमेरिका के कोलोराडो प्यूएली नामक नगर में रूथ सीमेन्स नामक लड़की ने अपने पूर्व जन्म की घटनाओं को बताकर ईसाई धर्म के उन अनुयायियों को असमंजस में डल दिया, जो पुनर्जन्म के सिद्धान्त को नहीं मानते हैं । इस लड़की को मोरे वर्नस्टाइन नामक आत्म-विशारद ने प्रयोग द्वारा अर्ध मूर्छित करके उसी के पूर्व जन्म की अनेक घटनाओं का पता लगाया । वह १०० वर्ष पूर्व आयरलैण्ड के मार्क नामक नगर में पैदा हुई थी । उसका नाम ब्राइडी मर्फी और उसके पति का नाम मेकार्थी था । इस घटना की जाँच की गई तो सत्य पाई गई ।

पुनर्जन्म में पूर्व जन्म के संस्कारों के प्रभाव के प्रमाण लगातार सामने आ रहे हैं । लिंग-परिवर्तन भी संस्कारों का प्रतिफल नहीं है ।

ब्राजीलवासी श्रीमती इडा लोरेंस को 'सियान्स' (मृतात्माओं के आह्वान सम्बन्धी बैठकें) में तीन बार उनकी पुत्री इमिलिया की मृतात्मा ने सन्देश दिया कि मैं अब तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लूँगी । इमिलिया को अपने लड़की होने से घोर असन्तोष था । वह अक्सर कहती थी कि यदि पुनर्जन्म सचमुच होता है, तो अगले जन्म में पुरुष बनूँगी । उसने अपने विवाह के सभी प्रस्ताव ठुकरा दिये और २० वर्ष की आयु में विष खाकर मर गई । बाद में 'सियान्स' में इमिलिया ने अपनी माँ से अपनी आत्म-हत्या पर पश्चात्ताप व्यक्त किया। साथ ही पुत्र रूप में अपने पुनर्जन्म की इच्छा व्यक्त की ।

श्रीमती इडा लोरेंस अब तक १२ बच्चों को जन्म दे चुकी थीं और अब सन्तान की उन्हें सम्भावना नहीं थी । पर इमिलिया की मृतात्मा का सन्देश सत्य निकला । अपनी मृत्यु के डेढ़ वर्ष बाद इमिलिया ने पुत्र रूप में पुनर्जन्म लिया । उसका नाम रखा गया–पोलो ।

पोलो की रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ इमिलिया जैसी ही थीं। सिलाई में इमिलिया निपुण थी, तो पोलो भी बिना सीखे ही ४ वर्ष की आयु में सिलाई में दक्ष हो गया । इमिलिया की ही तरह पर्यटन पोलो को भी अति प्रिय था । इमिलिया एक खास ढंग से डबल रोटी तोड़ती थी । पोलो में भी वही अन्दाज पाया गया । पोलो अपनी बहिनों के साथ कब्रिस्तान जाता, तो सिर्फ इमिलिया की कब्र पर फूल चढ़ाता । वह भी यह कहते हुए कि -"मैं अपनी कब्र की देखभाल कर रही हूँ ।" शुरू में पोलो की बातें लड़कियों जैसी ही थीं । उसके व्यक्तित्व में अन्त तक नारी तत्वों की प्रधानता रही । अपनी बहिनों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के प्रति उसमें लगाव नहीं था और वह अविवाहित ही रहा ।

मनोवैज्ञानिकों और परामनोवैज्ञानिकों ने उसका परीक्षण किया । उसमें स्त्री सुलभ प्रवृत्तियों पाई गईं ।

इसी तरह श्रीलंका की एक बालिका ज्ञानतिलक ने दो वर्ष की आयु में बताया कि पूर्व जन्म में वह लड़का थी। पूर्व जन्म वाले स्थान से एक दिन वह गुजरी तो सहसा उसके दिमाग में कौंधा कि वह पूर्व जन्म में यहीं पर थी । उसने अपने पूर्व जन्म की कई बातें बताईं जो सत्य निकलीं । ज्ञानतिलक का पूर्व जन्म का नाम तिलक रत्न था । इमिलिया को लड़का होने की तीव्र इच्छा थी, तो तिलकरत्न में नारी व्यक्तित्व की प्रधानता थी और पुनर्जन्म में वह लड़की ही बनी। साथ ही पुरुष बनी इमिलिया में नारी-प्रवृत्ति अवशिष्ट थी, तो नारी बने तिलकरत्न में पुरुष प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं ।

मोटे तौर से जीवात्मा के योनि-परिभ्रमण का अर्थ यह समझा जाता है कि वह छोटे-बड़े कृमि-कीटकों, पशु-पक्षियों की चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने के उपरान्त मनुष्य जन्म पाता है । पुनर्जन्म की घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य को दूसरा जन्म मनुष्य में ही मिलता है । इसके पीछे तर्क भी है । जीव की चेतना का इतना अधिक विकास, विस्तार हो चुका होता है कि उतने फैलाव को निम्न प्राणियों के मस्तिष्क में समेटा नहीं जा सकता । बड़ी आयु का मनुष्य अपने बचपन के कपड़े पहनकर गुजारा नहीं कर सकता । यही बात मनुष्य योनि में जन्मने के उपरान्त पुनः छोटी योनियों में वापिस लौटने के सम्बन्ध में भी लागू होती है । यह हो सकता है कि जीवन-क्रमिक विकास करते हुए मनुष्य स्तर तक पहुँचा हो । इसका प्रतिपादन तो डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त में भी हो सकता है, पर एक बार मनुष्य जन्म लेने के बाद पीछे लौटने की बात तर्क संगत नहीं है । कर्मों का फल भुगतने की बात हो तो दुष्कर्मों का दण्ड जितना अधिक मनुष्य जन्म में मिल सकता है, उतना पिछड़ी योनियों में नहीं । मनुष्य को शारीरिक कष्ट से भी अधिक मानसिक प्रताड़नाएँ सहनी पड़ती हैं । शोक, चिन्ता, भय, अपमान, घाटा, विछोह आदि से वह तिलमिला उठता है, जबकि अन्य प्राणियों को मात्र शारीरिक कष्ट ही होते हैं । मस्तिष्क अविकसित रहने के कारण उनमें भी उतनी तीव्र पीड़ा नहीं होती जितनी मनुष्यों को होती है। ऐसी दशा में पाप कर्मों का दण्ड भुगतने के लिए निम्नगामी योनियों में मनुष्य को जाना पड़े यह आवश्यक नहीं ।

चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण की एक नई वैज्ञानिक मान्यता सामने आई है । भ्रूण काल में जीव शरीर में इतनी तीव्र गति से परिवर्तन होते हैं कि उनकी स्थिति में लगभग इतना ही अन्तर पड़ता जाता है जितना कि अन्यान्य योनियों

के प्राणियों में पाया जाता है । इस प्रकार माता के उदर में रहते समय ही–नौ महीने की अवधि में जीव को लगभग उतनी ही योनियों का परिधान बदलना पड़ता है जितना कि पुराणों में गिनाया गया है ।

इस तरह जीव के ८४ लाख योनियों में भ्रमण का भारतीय मत पुष्ट होता है । ये ८४ लाख योनियाँ जीव जिन-जिन परिस्थितियों में रह आया है, उनका छाया चित्रण है । वह व्यवस्था इसलिये की गई है कि मनुष्य इन सबके स्मरण द्वारा अपना जीवन लक्ष्य सुदृढ़ कर ले ।

पुनर्जन्म की मान्यता जितनी सत्य है, उतनी ही लोकोपयोगी भी । आत्मा की अमरता और मरणोपरान्त फिर से शरीर धारण करके कार्यक्षेत्र में उतरने की आस्था बनी रहे तो व्यक्ति दूरदर्शी विवेक अपनाये रह सकते हैं और शालीनता तथा सामाजिकता के आदर्शों को सहज ही पालन करते रह सकते हैं ।

नया जन्म कैसे मिलता है ?

मृत्यु के बाद जीव निद्रा में जाता है । इस निद्रावस्था में अपने कर्मों का शोधन करने के लिए स्वर्ग-नरक के स्वप्न देखता है । इससे बहुत कुछ मानसिक संशोधन होता है फिर भी कुछ आदतें शेष रह जाती हैं । इन आदतों को आध्यात्मिक भाषा में "संस्कार" के नाम से पुकारा जाता है । यह आदतें तब तक नहीं छूटतीं जब तक कि जीव उन्हें ज्ञानपूर्वक पहचान कर छुड़ाने का वास्तविक प्रयत्न न करे । बन्धन के कारण यही संस्कार हैं । जीव स्वतन्त्र है। वह अपनी इच्छानुसार संस्कार बनता है और उन्हीं में जकड़ा रहता है । यही माया है । माया और कुछ नहीं अज्ञान का एक पर्यायवाची शब्द है । अपने आपको खुद अपने ही अज्ञान के बन्धन में उलझाकर दुःखी होना बड़ी विचित्र बात है । इसी गोरखधंधे को दुस्तर माया के नाम से पुकारा गया है ।

शुभाशुभ कर्मों का फल भोग लेने के बाद भी उसके पूर्व संस्कार नहीं मिटते । जैसे एक जुआरी धन सम्पत्ति हार जाने पर भी जुआ खेलने की इच्छा करता है, शराबी अनेक कष्ट सहकर भी मद्यपान की ओर लालायित रहता है, उसी प्रकार पिछली आदतों के कारण जीव पुनर्जन्म के लिये स्थान तलाश करता है । मध्यम श्रेणी के व्यक्ति प्रायः पूर्व जन्म जैसी स्थिति के वातावरण में आकर्षित होते हैं । मान लीजिए एक व्यक्ति इस जन्म में किसान है, सारी उम्र उसके मन पर खेती के संस्कार जमते रहे अब वह अगले जन्म में भी दुकानदार होने की अपेक्षा किसानी ही पसन्द करेगा । ऐसा नहीं समझना चाहिए कि कोई अन्य शक्ति बलात् जन्म दे देती है, जीव स्वयं अपनी इच्छा से संस्कारों के वंशीभूत होकर जन्म ग्रहण करता है । ऊपर उड़ता हुआ गिद्ध जैसे तीक्ष्ण दृष्टि से मृत पशु को तलाश करता फिरता है उसी प्रकार जीव निखिल आकाश में अपना रुचिकर वातावरण ढूँढ़ता फिरता है । पहले यह बताया जा चुका है कि तर्क, बहस, या चुनाव करने वाली भौतिक बुद्धि परलोक में नहीं रहती इसलिये वह चालाकियाँ नहीं जानता और अपने स्वभाव के विपरीत ऊँची या नीची स्थिति की ओर नहीं खिंचता। छोटा बालक राज महल को अपेक्षा अपनी झोंपड़ी को पसंद करता है । उसी प्रकार किसी व्यापारी संस्कारों का जीव राज घर में जन्म लेने की अपेक्षा व्यापारी परिवार में शामिल होना पसंद करता है । आधे से अधिक मनुष्य प्रायः अपने पूर्व घर या परिवार में ही जन्म लेते हैं । यदि पूर्व घर में उसे अपमानित, लांछित या बहिष्कृत न किया गया हो तो वह उसी में या उसके आस-पास जन्म लेना चाहता है । दूरी के सम्बन्ध में भी यही बात है । पूर्व जन्म के प्रदेश में रहना ही सब पसंद करते हैं, क्योंकि भाषा, भेष, भाव की गहरी छाप उनके मन पर अंकित होती है । इटली का मनुष्य भारतवर्ष में या भारतवर्ष का टर्की में जन्म लेना प्रायः पसंद न करेगा । कोई विशेष ही कारण हो तो बात दूसरी है ।

हमारी स्थूल इन्द्रियों के लिए यह पहचानना कठिन है कि किन स्थानों में कैसी मानसिक स्थिति और आन्तरिक वातावरण है पर परलोकवासी इस बात को बड़ी आसानी से पहचान लेते हैं । वे जहाँ ठीक स्थिति देखते हैं उसी परिवार के आस-पास डेरा डालकर बैठ जाते हैं । परलोक वासियों को पिछले कई जन्मों का भी स्मरण हो आता है यदि वे पिछले घरों में अधिक स्नेह रखते हैं तो उनकी ओर खिंच जाते हैं । बहुत समय व्यतीत हो जाने पर उन परिवारों की ओर अपनी मनोवृत्ति में अन्तर आ जाता है तो भी वे कभी-कभी खिंच जाते हैं । किसी विद्वान कुल में एक मूढ़ का जन्म लेना या असुर कुल में महात्मा का पैदा होना दो कारणों को प्रकट करता है–(१) या तो वह कुल कुछ पीढ़ियों के उपरान्त बदल गया है और जीव के संस्कार पुराने ही मौजूद हैं, (२) या वह जीव दूसरे ढांचे में ढल गया है और केवल व्यक्तिगत स्नेह के करण उस कुल में खिंच आया है । हम बार-बार दुहरा चुके हैं कि जीव स्वतन्त्र है वह अपने आचरणों से संस्कारों में आसानी से परिवर्तन कर सकता है । जब किसी परिवार में कोई विपरीत स्वभाव की सन्तान पैदा हो तो समझना चाहिये कि या तो यह कुल बदल गया या जीव ने जब इसे पंसद

किया था तब इसकी अन्य स्थिति थी और अब इतनी घट गई या वह जीव प्राचीन मोह के कारण ही यह बेमेल संयोग में मिला है ।

जिस परिवार में जन्म लेना जीव पसन्द कर लेता है उसके आस-पास मँडराने लगता है, अवसर की प्रतीक्षा करता है । जब किसी स्त्री के पेट में गर्भ की स्थापना होती है तो वह उसमें अपनी सत्ता को प्रवेश करता है और नौ मास गर्भ में रहकर संसार में प्रकट हो जाता है । कई तत्वज्ञों का मत है कि वह गर्भ पर अपनी सत्ता स्थापित कर लेता है और पूरी तरह शरीर में तब प्रविष्ट होता है जब बालक पेट से बाहर आ जाता है । हमारा मत यह है कि सम्भोग के समय इस वीर्य का सम्मिलन होकर यदि गर्भ कलल बन जाय तो उसमें कुछ ही क्षण उपरान्त जीव अपना अधिकार कर लेता है और गर्भ में रहने लगता है । यह समझना ठीक नहीं कि गर्भ में बालक को बड़ा कष्ट होता है । क्योंकि उस समय तक गर्भ का मस्तिष्क और इन्द्रियाँ अविकसित होने के कारण जीव को पूरी तरह बंधित नहीं करते और जीव का कुछ विशेष बंधन नहीं होता । वह उदर में घोंसला रखता है पर अपनी चेतना से चारों ओर परिभ्रमण कर सकता है । जन्म लेने के कुछ ही समय पूर्व जब गर्भ की इन्द्रियाँ पूर्णतः परिपक्व हो जाती हैं तो जीव की स्वतन्त्रता नष्ट होती है । तब वह तुरन्त ही बाहर निकलने का प्रयत्न करता है, इसी समय को प्रसव काल कहा जाता है ।

गर्भ का शरीर और उसके अवयव यह पूर्णतः जीव की ही इच्छा से नहीं बनते । यह साझे का कार्य है । माता-पिता का रज वीर्य और जीव की इच्छा इन सबके मिलने से ही नवीन शरीर बनता है । कुम्हार और मिट्टी इन दोनों में से एक भी दोषपूर्ण होगा तो इच्छित फल की प्राप्ति न होगी । माता-पिता का रज वीर्य मिट्टी है और जीव कुम्हार ! अनाड़ी कुम्हार से भी खराब अच्छी मिट्टी से भी खराब बर्तन बनाता है और अच्छे कुम्हार का प्रयत्न खराब मिट्टी के कारण बेकार रहता है । यदि जीव उत्तम संस्कार वाला हो तो रज वीर्य के भौतिक संस्कारों पर अपना उत्तम प्रभाव डालता है और कुछ न कुछ सुधार कर लेता है, इसके विपरीत कुसंस्कारी जीव उत्तम रज वीर्य में भी कुछ न कुछ दोष मिला देता है । फिर भी माता-पिता के संस्कार पूर्ण रूप से मिट नहीं जाते, उनका बहुत बड़ा प्रभाव होता है । माता पिता की भावनाओं का प्रभाव गर्भ शरीर पर पड़ता है । यदि जीव ऊँचे दर्जे का न हो तो उसे उन शारीरिक संस्कारों के क्षेत्र में ही रहना पड़ता है । देखा गया है कि व्यभिचार द्वारा उत्पन्न हुई संतान बहुधा दुष्ट होती है, क्योंकि गर्भाधान के समय माता-पिता का अन्तरात्मा पाप कर्म के कारण बड़ा व्यग्र रहता है, वही संस्कार गर्भ पर उतर जाते हैं ।

मरण के उपरान्त पुनर्जन्म सुनिश्चित है

मृत्यु के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न धर्मों की भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं लेकिन एक विषय में सभी एकमत हैं कि मृत्यु का अर्थ जीवन का अन्त नहीं है । इसी आधार पर कुछ धर्मों ने मरने के बाद फिर से जन्म लेने की मान्यता को स्वीकार किया है और कुछ के मतानुसार मृत्यु एक ऐसी घटना है जिसमें चेतना या प्राण सदा के लिए सो जाते हैं और सृष्टि के अन्त में फिर जाग उठते हैं । इस दृष्टि से आत्मा की अमरता और शरीर की नश्वरता को अन्यान्य धर्मों ने भी स्वीकार किया है लेकिन यह सिद्धान्त भारतीय दर्शन का तो प्राण ही है ।

इसके साथ ही पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी जुड़ा हुआ है। जिसके अनुसार प्राणी को मरने के बाद फिर जन्म लेना पड़ता है । भारतीय दर्शन के अनुसार पुनर्जन्म की मान्यता के साथ कर्मफल का सघन सम्बन्ध है । जिन्हें भले या बुरे कर्मों का परिणाम तत्काल नहीं मिल सका, उन्हें अगले जन्म में कर्मफल भोगना पड़ता है । इस सिद्धान्त को स्वीकार करने पर-पाप फल और दुष्कर्मों के दण्ड से डरने तथा पुण्य-फल के प्रति आश्वस्त रहने की मनःस्थिति बनी रहती है । फलतः पुनर्जन्म के मानने वालों को अपने कर्मों का स्तर सही रखने की आवश्यकता अनुभव होती है और तत्काल फल न मिलने से किसी प्रकार की उद्विग्नता उत्पन्न नहीं होती । पिछले दिनों भौतिकी विज्ञान की प्रगति से उत्पन्न हुए उत्साह के कारण यह कहा जाने लगा कि सत्य केवल उतना ही है, जितना कि प्रयोगशाला में सिद्ध हो सके । जो प्रयोगशाला में प्रत्यक्ष नहीं हो सकता वह सत्य नहीं है ।

चूँकि चेतना को प्रयोगशाला में प्रत्यक्ष नहीं किया जा सका इसलिए घोषित कर दिया गया कि शरीर ही आत्मा है और मृत्यु के बाद उसका सदा-सर्वदा के लिए अन्त हो जाता है । इस घोषणा के अनुसार मनुष्य को चलता-फिरता पौधा भर कहा गया । जो उगता है और सूखकर समाप्त हो जाता

है । यह मान्यता मात्र एक सिद्धान्त या प्रतिपादन भर बनकर नहीं रह सकती, उसकी प्रतिक्रिया चिन्तन और चरित्र पर भी होती है । पुनर्जन्म, कर्मफल, परलोक और पाप-पुण्य में आस्था जिस प्रकार व्यक्ति को दुष्कर्मों से बचाये रहती है उसी प्रकार शरीर को ही सत्य और आत्मा को मिथ्या मान लिया जाय तो लगता है कि पाप-पुण्य के पचड़े में पड़ने से क्या लाभ? चतुरता के बल पर जितना भी सम्भव हो सके स्वार्थ सिद्ध किया जाना चाहिए ।

अब जो प्रमाण सामने आये हैं और उनकी वैज्ञानिक गवेषणाएँ की गई हैं उनके अनुसार यह भ्रम ढहढहाता जा रहा है कि जीवन चेतना का अस्तित्व शरीर तक ही सीमित है। यह धारणा भ्रम तो पहले भी था, पर अब इस सचाई के प्रमाणों पर भी वैज्ञानिक ध्यान देने लगे हैं कि पुनर्जन्म वास्तव में एक ध्रुव सत्य है । पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि करने वाले अनेकानेक प्रमाण आ रहे हैं । भारत में तो इस सम्बन्ध में चिरकाल से प्रचलित विश्वास के कारण यह कहा जाता रहा कि पुनर्जन्म की स्मृति बताने वाले यहाँ के वातावरण से प्रभावित रहे होंगे या किसी कल्पना की आधी-अधूरी पुष्टि हो जाने पर यह घोषित किया जाता होगा कि यह बालक पिछले जन्म में अमुक था। यद्यपि इस तरह के प्रकरणों में जिस कठोरता के साथ जाँच-पड़ताल की गई, उससे यह आशंका अपने आप ही निरस्त हो जाती थी । उदाहरण के लिए पिछले जन्म के सम्बन्धियों के नाम और रिश्ते बताने ऐसी घटनाओं का जिक्र करने जिनकी जानकारी दूरस्थ व्यक्तियों को भी नहीं रही, नितान्त व्यक्तिगत और पति-पत्नी तक ही सीमित बातों को बता देने, पिछले जन्म में जमीन में गाढ़ी गई चीजें उखाड़कर देने तथा अपने और पराये खेतों का विवरण बताने जैसे अनेक सन्दर्भ ऐसे हैं जिनके आधार पर पुनर्जन्म की प्रामाणिकता से इन्कार नहीं किया जा सकता ।

लेकिन भारत के बाहर भी इस तरह की घटनाओं पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान दिया गया है और उनका वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है । इस क्षेत्र में सर्वप्रथम व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से गवेषणा करने वालों में प्रसिद्ध परामनोवैज्ञानिक डा० इवान स्टीवेन्सन का नाम लिया जाता है । यूनिवर्सिटी ऑफ वर्जीनिया मेडिकल सेन्टर के मनोचिकित्सा विभाग में कार्यरत डा० स्टीवेन्सन पुनर्जन्म की वास्तविकता को वैज्ञानिक ढंग से परखने का सिलसिला शुरू किया । सन् १९६६ में इस विषय पर उनकी पहली पुस्तक 'ट्वंटी कैसेज सजेस्टिव ऑफ रिइन्कार्नेशन' प्रकाशित हुई । इस पुस्तक के बाद उनकी तीन पुस्तकें और प्रकाशित हुईं जिनमें पुनर्जन्म की कई प्रामाणिक घटनाओं का विवरण देते हुए इस विषय का प्रतिपादन किया ।

ये तीनों पुस्तकें अलग-अलग देशों में घटी घटनाओं के आधार पर लिखी गई हैं । एक में भारत में जन्मे ऐसे व्यक्तियों का विवरण है जिन्हें अपने पिछले जन्मों की याद रही । दूसरी में श्रीलंका और तीसरी पुस्तक में तुर्की की घटनाओं का विवरण है । इन तीनों पुस्तकों में कुल मिलाकर १३०० घटनाओं का वर्णन है, जिनकी वास्तविकता और प्रामाणिकता असन्दिग्ध बताई गई है ।

भारत में भी हाल ही में एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, "लिविंग एण्ड डाइंग" इस पुस्तक में ३ सितम्बर १९६९ को उत्तर प्रदेश के एक ब्राह्मण परिवार में जन्मी कन्या का उल्लेख है । लड़की का नाम स्वर्णलता रखा गया । जब वह साढ़े तीन वर्ष की हुई तो उसके घर, उसके पिता से मिलने के लिए कुछ सफाई करने वाले जमादार आये । उन्हें देखकर स्वर्णलता सूअर का गोश्त खाने की जिद करने लगी । ब्राह्मण परिवार में गोश्त अण्डे की बात तो दूर रही चींटी भी नहीं मारी जाती । फिर लता ने यह कहाँ सुना और सीखा ? पिता जब उसे टालने और डपटने लगे तो स्वर्णलता ने बताया कि वह भी सफाई जमादारों की जाति की ही थी । उसने यह बताया कि उसका पूर्व जन्म का नाम शान्ति था और उसके पति का नाम राजिंदर था । उसने अपने पिछले जन्म के निवास ग्राम और घर का पता बताया, जो वर्तमान निवास से कुल दो किलोमीटर दूर ही था । उसकी मृत्यु किस प्रकार हुई यह पूछा जाने पर स्वर्णलता ने बताया कि वह रोज पास ही रेलवे लाइन पर कोयले बीनने के लिए जाया करती थी। जिस दिन उसकी मृत्यु हुई वह रामनवमी का दिन था । उस दिन किसी बात पर पति से तकरार हो गई और उसके पति ने शान्ति को झाड़ू की मूँठ से पीटा । इससे वह बेहद दुःखी हुई । उसी दिन जब वह रेल की पटरी पर कोयले बीनने गई तो रेल के नीचे कुचलकर मर गई । स्वर्णलता ने अपने पुराने परिवार और विशेषतः अपनी बेटी जिसका नाम गीता था और जो अविवाहित थी, देखने की हार्दिक इच्छा व्यक्त की ।

स्वर्णलता ने जो भी बातें बताई थीं, उन सारी बातों की छानबीन प्रसिद्ध परामनोविज्ञान वेत्ताओं द्वारा की गई, जो ऐसे मामलों की पहले भी कई बार जाँच कर चुके थे, इन विशेषज्ञों ने जिन मामलों की पहले जाँच की थी उनका नीर-क्षीर विश्लेषण कर सच-झूठ को निष्पक्ष ढंग से प्रतिपादित किया गया । इसलिए उनके निष्कर्षों पर जरा भी सन्देह करने की कोई गुंजाइश नहीं

थी । अनुसन्धान करने वाले परामनोविज्ञानवेत्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्वर्णलता ने जो कुछ भी बताया था वह अक्षरशः सच था । उन्होंने यह भी पाया कि पिछले जन्म के संस्कार उसके इस जन्म में भी विद्यमान थे । उन्होंने यह भी पाया कि अपनी पिछली जाति के अनुसार ही उसकी व्यक्तिगत आदतें भी थीं । वह घर के दूसरे बच्चों से अलग-अलग ही रहती और यह कहकर उसने स्कूल जाने से भी इन्कार कर दिया कि वह तो नीच जाति की है । इसके साथ ही वह रेलगाड़ियों से भी बहुत डरती थी । सन् १९७५ में उससे अनुसन्धान कर्त्ताओं ने आखिरी बार मुलाकात की । इस समय भी उसे अपने पिछले जन्म का स्मरण था, पर तब वह पहले की तरह बातें नहीं करती थी ।

जून १९६५ में जन्मी पुष्पा नाम की लड़की जब डेढ़ वर्ष की हुई तभी से एक घर की ओर इशारा करने लगी, जिसे बाद में उसने अपने पिछले जन्म का घर बताया । बोलने योग्य होते ही उसने अपने आपको एक सिख परिवार की बहू बताया और अपने बच्चों के नाम भी बताने लगी, वह अपने पिछले जन्म का नाम मनजीत कौर बताती थी । यह पूछने पर कि उसकी मृत्यु किस प्रकार हुई, मनजीत कौर (पुष्पा) ने भयभीत होकर कहा कि उसकी सास उसके पति को उल्टी-सीधी पढ़ाती रहती थी और उसके विरुद्ध कान भरती रहती थी । एक दिन तो उसका पति इस तरह भड़क उठा कि उसने मनजीत को चाकू से मार ही डला । जब इन बातों की पुष्टि के लिए पुनर्जन्म में रुचि रखने वाले व्यक्तियों ने छानबीन की तो इस तथ्य को बिल्कुल सही पाया गया कि मनदीप कौर की पुष्पा के जन्म से ठीक चार वर्ष पहले हत्या कर दी गई थी ।

हाल ही के १०-१२ वर्षों में पुनर्जन्म के ये दो बहुचर्चित प्रमाण हैं । इसके अलावा भी अनेकानेक प्रमाण आये दिन सामने आते रहते हैं । डा० स्टीवेन्सन ने अपनी पुनर्जन्म सम्बन्धी तीन पुस्तकों में जिनमें करीब डेढ़ सौ पुनर्जन्म की घटनाओं का विवरण विश्लेषण प्रस्तुत किया है, जो उन देशों में घटीं जहाँ आमतौर पर पुनर्जन्म में विश्वास नहीं किया जाता । अमेरिका के कोलोराडीप्यूएली नामक नगर में रूथ सीमेन्स नामक लड़की ने अपने पूर्वजन्म की घटनाओं को बताकर ईसाई धर्म के उन अनुयायियों को असमंजस में डाल दिया जो पुनर्जन्म के सिद्धान्त को नहीं मानते हैं । इस लड़की को मोरे बर्नस्टाइन नामक आत्मा-विशारद ने प्रयोग द्वारा उसी के पूर्वजन्म की अनेक घटनाओं का पता लगाया । प्रयोग के दौरान उसने बताया कि वह सौ वर्ष पूर्व आयरलैण्ड के यार्क नगर में पैदा हुई थी । उसका नाम ब्राइडीमर्फी था और उसके पति का नाम मेकार्थी था । रूथ सीमेन्स ने अपने विगत जन्म के बारे में जो भी बातें बताईं उनकी जाँच की गई तो वे अक्षरशः सत्य पाई गईं ।

विलियम वाकर एटकेन्सन ने अपनी पुस्तक रिइन्कार्नेशन में ऐसी अनेक घटनाओं का विवरण दिया है । जिनमें पुनर्जन्म में विश्वास न करने वाले परिवारों में जन्मे बच्चों को भी पूर्व जन्म की स्मृत्तियाँ थीं । बच्चों द्वारा प्रस्तुत किये गये विवरणों से इस सिद्धान्त की पुष्टि ही होती है । बड़ी आयु हो जाने पर यद्यपि ऐसी स्मृतियाँ नहीं रहतीं या धुँधली पड़ जाती हैं, पर बचपन में बहुतों को ऐसे स्मरण बने रहते हैं जिनके आधार पर उनके पूर्वजन्म के सम्बन्ध में काफी जानकारी मिलती है। मोटे रूप में जीवात्मा के योनि परिभ्रमण का यह अर्थ समझा जाता है कि वह छोटे बड़े कृमि-कीटकों, पशु-पक्षियों की चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने के बाद ही मनुष्य जन्म प्राप्त करता है । पुनर्जन्म की इन घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य को दूसरा जन्म मनुष्य के रूप में ही मिलता है । इसके पीछे तर्क भी है । जीव की चेतना का इतना अधिक विकास-विस्तार हो चुका होता है कि उतने फैलाव को निम्न प्राणियों के मस्तिष्क में समेटा नहीं जा सकता । बड़ी आयु का मनुष्य जिस प्रकार अपने बचपन के कपड़े पहनकर काम नहीं चला सकता उसी प्रकार मनुष्य योनि में जन्म लेने के बाद छोटी योनियों में प्रवेश करने से गुजारा नहीं चलता ।

रही बात बुरे कर्मों के दण्ड की, तो कर्मों का फल भुगतने के लिए दुष्कर्मों का अधिकाधिक दण्ड मनुष्य जन्म में ही मिल सकता है। मनुष्य को शारीरिक कष्ट से भी अधिक मानसिक यातनाएँ सहनी पड़ती हैं । शोक, चिन्ता, भय, अपमान, घाटा, विछोह आदि से वह तिलमिला उठता है, जबकि अन्य प्राणियों को मात्र शारीरिक कष्ट ही होते हैं । मस्तिष्क अविकसित रहने के कारण उनमें भी उतनी तीव्र पीड़ा नहीं होती जितनी मनुष्यों को होती है । इस स्थिति में पाप कर्मों का दण्ड भुगतने के लिए मनुष्य को निम्न योनियों में जाना पड़े यह आवश्यक नहीं । जो भी हो पुनर्जन्म एक ध्रुव सत्य और जितनी यह मान्यता सत्य है उतनी ही लोकोपयोगी भी । आत्मा की अमरता और मरणोपरान्त फिर से शरीर धारण करके कार्य-क्षेत्र में उतरने की आस्था बनी रहे तो व्यक्ति दूरदर्शी विवेक अपनाये रह सकता है और उसे नैतिकता, शालीनता तथा सामाजिकता के पालन की सहज प्रेरणा मिलती रहती है।

४.३६ मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवम् सत्य

पुनर्जन्म के सम्बन्ध में नास्तिकवादियों के अतिरिक्त ईसाई, मुसलिम धर्मों की पुरातन मान्यताएँ भी बाधक थीं । यह दोनों धर्म आत्मा का अस्तित्व बना रहने की बात तो कहते हैं, पर साथ ही यह भी बताते हैं कि महाप्रलय के उपरान्त जब नई सृष्टि का सृजन होगा तभी नया जन्म मिलेगा । इस मान्यता में लम्बी अवधि का प्रतिपादन होने से पुनर्जन्म के प्रति कोई आकर्षण नहीं रह जाता और भले-बुरे कर्मों को भुगतने के लिए कुछ ही दिनों बाद नया जन्म लेना पड़ेगा यह मान्यता न रहने पर उस एकान्त अवधि के प्रति निराशा जैसा चिन्तन उभरने लगता है ।

पुनर्जन्म की मान्यता जीवन के अनवरत रूप से गतिशील रहने का विश्वास दिलाती है और प्रगति-प्रयासों को तनिक-सा विराम लेने के उपरान्त फिर से गतिशील बनने का उत्साह उत्पन्न करती है । यह परिणति की बात हुई । जहाँ तक जीवन के मरण उपरान्त के बाद भी बने रहने का प्रश्न है, वहाँ तक पुनर्जन्म के प्रमाणों से इस तथ्य की भली-भाँति पुष्टि हो जाती है । इतना विश्वास लोकमानस में सुदृढ़ रह सके तो उसकी परिणति बिना वृद्धावस्था एवं मरण की बात सोचकर निराश हुए उपयोगी उत्कर्ष क्रम को उत्साहपूर्वक जारी रखा जा सकता है । साथ ही दुष्कृत्यों से विनिर्मित हुए कुसंस्कारों का प्रतिफल अगले जन्म में भुगतने की बात को भी बहुत बड़ा बल मिल सकता है ।

कभी पुनर्जन्म धर्म एवं दर्शन का विषय था । यह दोनों ही क्षेत्र श्रद्धा प्रधान हैं । तर्क प्रमाण जुटाने की आवश्यकता अनुभव की जाय तो धर्म प्रेमियों का ही समाधान हो सकता है जिनमें तथ्यान्वेषी जिज्ञासाएँ हैं । उनको बिना आधार प्रमाण पाये सन्तोष होता ही नहीं । अध्यात्म तत्व ज्ञान की आधार शिला समझी जाने वाली पुनर्जन्म मान्यता को अब वैज्ञानिक अनुसंधान का विषय स्वीकार कर लिया है । उस सन्दर्भ में जो प्रत्यक्ष प्रमाण मिले हैं, उनसे पुरातन असमंजस की स्थिति धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है । प्रत्यक्ष-प्रछन्न नास्तिकवाद के इन प्रस्तुत प्रमाणों के सम्मुख अपने पूर्वाग्रहों को जोड़ना या शिथिल करना पड़ रहा है । पुंनर्जन्म की मान्यता जीवनक्रम में नीतिमत्ता एवं भविष्य की आशा बनाये रहने की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है ।

डा० इयान स्टिवेन्शन (डायरेक्टर आफ डिपार्टमेण्ट आफ साइकिनाट्री) पूर्वजन्म सम्बन्धी शोध करने वाले व्यक्तियों के अगुआ हैं । उन्होंने 'ट्वेण्टी केसेज सजेस्टिव ऑफ रीइनकार्नेशन नामक एक पुस्तक लिखी है ।

अमेरिका के उत्तर पश्चिमी समुद्र के किनारे रहने वाले रेड इण्डियनों के पूर्वज हजारों वर्ष पूर्व एशिया से आकर वहाँ बसे हैं । इन लोगों में एक व्यक्ति ने अपनी मृत्यु से पूर्व भावी जन्म ग्रहण का भविष्य कथन कर दिया । बाद में उसका अगला जन्म ठीक उसी आधार पर हुआ पाया गया । घटना इस प्रकार है ।

१९४९ में विलियम ज्योर्ज सीनीयर अपने स्थानीय क्षेत्र में मछुओं का अगुआ था । उसने अपने पुत्र और पुत्रवधू से एक दिन कहा कि यदि पुनर्जन्म नाम की चीज सचमुच होती होगी तो मैं तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लूँगा । मेरे शरीर पर इस समय जहाँ-जहाँ जो चिह्न विद्यमान हैं वे यदि तुम्हारे पुत्र के शरीर पर भी यथावत् दिखें तो समझना कि मैंने ही तुम्हारे गर्भ में अपना नया जन्म ग्रहण किया है । थोड़े ही दिनों बाद मछली मारने जाने पर नाव उलट जाने से समुद्र में डूबकर वह मर गया । इसके कुछ दिनों बाद उस मछुआरे की पुत्रवधू गर्भवती हुई और समयपूर्ण होने पर उसने एक पुत्र को जन्म दिया । जिसका नाम विलियम ज्योर्ज जूनियर रखा गया । जैसे-जैसे लड़का बड़ा होने लगा उसके गुण, कर्म स्वभाव को देखते हुए उसके माता-पिता का यह विश्वास दृढ़तर होता गया कि इस लड़के को केवल आकृति ही नहीं अपितु प्रकृति भी अपने दादा से हू-ब-हू मेल खाती थी । इसके कुछ और भी उदाहरण प्रमाण इस प्रकार हैं ।

विलियम ज्योर्ज सीनीयर को बास्केटबाल खेलते हुए पैर में चोट आ गई थी जिसके कारण वह लँगड़ाकर चला करता था । विलियम ज्योर्ज जूनियर बचपन से ही इसी प्रकार लँगड़ाकर चला करता था । इतना ही नहीं भयप्रद स्थानों पर उसका दादा जिस तरह लोगों को आगाही देते हुए गुस्सा प्रदर्शित करता था वही आदत इसकी भी थी । इतनी कम उमर में ही वह मछली मारने में अपने दादा जैसी निपुणता प्रदर्शित करने लगा । अपने मित्र सम्बन्धी और परिचितों के बारे में भी वह अच्छी खासी जानकारी रखता था । मरने से कुछ वर्ष पूर्व विलियम ने अपने बेटे को सोने की घड़ी दी थी । एक दिन विलियम जूनियर के साथ उसकी माँ अपने जेवरों को देख रही थी । जैसे ही लड़के ने घड़ी देखी उसने कहा मेरी घड़ी लाओ । घण्टों की लड़-झगड़ के बाद भी उस घड़ी पर उसकी ममता कम नहीं हुई । १९ वर्ष की अवस्था तक घड़ी के प्रति उसका आकर्षण बना रहा । इसके पश्चात् युवावस्था में प्रवेश करते ही पूर्वजन्म सम्बन्धी सारे-के-सारे लगाव क्रमशः कम होते चले गये । इस लड़के पर इयान स्टीवेन्सन ने किशोरावस्था में उस

पर परीक्षण किया था । दुबारा युवावस्था में भी उसने प्रयोग करके सारे निष्कर्ष निकाले थे ।

अपने अनुसन्धान के आधार पर इयान स्टीवेन्सन ने मृत्यु और पुनर्जन्म की मध्यावधि सम्बन्धी कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। उनमें से एक यह है कि भिन्न-भिन्न स्थानों पर यह अवधि भिन्न पाई गई है–यथा टर्की में नौ महीने, श्रीलंका में इक्कीस महीने, भारत में ४५ महीने तथा अलास्का के विलजिट इण्डियन्स में ४८ महीने । जिनकी किसी हिंसक घटना अथवा आक्रमण से मृत्यु हुई होती है उनका जन्म जल्दी होता है तथा वे आमतौर पर अपना बदला चुकाने के लिए आते हैं । ऐसे प्रसंग सम्बन्धित जन्म श्रीलंका और भारत में ४० प्रतिशत तथा लेबनान और सीरिया में ८० प्रतिशत पाया गया है ।

पुनर्जन्म में व्यक्ति का लिंग परिवर्तन भी होता देखा गया है । ऐसे पूर्व देह के सामान्य लक्षण अधिकतर २ से ४ वर्ष की उम्र में अधिक प्रकट होते हैं तथा ५ से ८ वर्ष की उम्र तक समाप्त हो जाते हैं ।

डा० इयान स्टिवेन्सन ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त का निष्कर्ष निकालने से पूर्व सोलह सौ लोगों के पूर्व जन्म का अध्ययन करके कुछ ठोस अवधारणाएँ वैज्ञानिक जगत के समक्ष प्रस्तुत की । बचपन से विलक्षण, प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने व्यक्तित्व का कारण पुनर्जन्म के सिद्धान्त के द्वारा ही समझाया जा सकता है और इसके मूल में कर्म का अकाट्य सिद्धान्त अविच्छिन्न अंग के रूप में जुड़ा हुआ है ।

प्रो० सी० जे० डुकास (ब्राउन यूनिवर्सिटी) ने एक शोध पत्र प्रकाशित किया है जिसका शीर्षक है–"दि डक्ट्रिन आफ दि-इंकार्नेशन इन दि हिस्ट्री आफ थाट ।" इसमें प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक की पुनर्जन्म सम्बन्धी अनेक घटनाओं का वर्णन है । इसमें एडनर कैसी का भी उदाहरण दिया गया है । अमेरिका में पुनर्जन्म की बातों का प्रचलन एडगर कैसी के प्रयत्नों के फलस्वरूप स्थापित हुआ । एडगर कैसी ने यह दावा किया कि मैं बाइविल के समय से लेकर वर्तमान समय तक की पुनर्जन्म सम्बन्धी सारी घटनाओं को संकलित कर सकता हूँ ।

इन प्रमाणों से पुनर्जन्म की वैज्ञानिकता तो अब तक सिद्ध नहीं हो पा रही है किन्तु पुनर्जन्म की पुष्टि करने वाले सशक्त उदाहरणों की संख्या और प्रामाणिकता दिनों-दिन बढ़ती जा रही है । इससे ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि मनुष्य के लिए जो दो तत्व आज मान्यता प्राप्त हैं–(१) जेनेटिक हेरेड्टिी, (२) एनवायसमेण्टल इन्फ्लूएन्सेड में एक तीसरी बात और जुड़नी चाहिए और वह है–कर्म का सिद्धान्त ।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कार्ल जी० जुँग एक बार अफ्रीका में कहीं जा रहे थे । यह उनकी वहाँ की पहली यात्रा थी। वहाँ पहाड़ी पर खड़े आदिम जाति के एक व्यक्ति को देखते ही उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे यह उनकी अपनी मातृभूमि है । उस काले व्यक्ति को देखते ही उन्हें ऐसा लगा जैसे वह उसी स्थान पर ५,००० वर्षों से खड़ा उनकी प्रतीक्षा कर रहा हो । उस गाँव में प्रवेश करते ही उसके प्रत्येक स्थान के विषय में उन्हें ऐसा लगा मानो वहाँ के चप्पे-चप्पे से पूर्व परिचित हो। इस प्रकार की घटना के पीछे छिपे सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिक में 'देजाबु' नाम से जाना जाता है । जुंग इसकी व्याख्या 'रिकोग्नीशन आफ दि इम्मेमोरिम्मी नोन' कहकर करते हैं ।

विलियम चैपमैन ह्वाइट ने इस विषय पर लिखी अपनी पुस्तक में इस प्रकार की अनेक घटनाओं का वर्णन किया है । इसमें एक इस प्रकार है–

श्री व श्रीमती ब्रेलोर्न अमेरिका से पहली बार बम्बई घूमने आये । उन लोगों ने बताया कि मुझे ऐसा लगा कि जैसे मैं इस स्थान से चिर-परिचित हूँ । एक रास्ते पर चलते हुए मैंने अपनी पत्नी से कहा कि अगले मोड़ पर अफगान चर्च होगा और उससे थोड़ी दूर आगे चलकर जब हम गली पार करेंगे तो डिलाईल रोड आयेगा । मेरी पत्नी ने मजाक में कहा-लगता है आप यहाँ पहले कभी आये हुए हैं इसलिए आपको सभी रास्तों का पता है । यह बात सुनते ही मैं चौंक पड़ा कि मुझे क्यों ऐसा लग रहा है कि मैं यहाँ के प्रत्येक स्थान से पूर्व परिचित हूँ । हम वहाँ प्रत्येक स्थान पर घूमते रहे और मुझे हमेशा ऐसा लगता रहा कि हर गली, प्रत्येक पुराना मकान मेरा अच्छी तरह देखा भाला हुआ है । मलाबार हिल के पास पहुँचने पर पति ने एक बड़े वट वृक्ष के पास खड़े सिपाही से पूछा कि क्या इस स्थान पर कहीं कोई पुराना मकान था ? सिपाही ने बताया कि मेरे पिता उस मकान में काम करते थे इसलिए मुझे पता है कि वहाँ पर एक मकान था लेकिन वह ९० वर्ष पूर्व तोड़ दिया गया । वह मकान किसी 'भान' परिवार का था । सिपाही का उत्तर सुनते ही श्री ब्रेलोर्न ने अपनी पत्नी को याद दिलाया कि उन्होंने भी तो अपने पुत्र का नाम भान ब्रेलोर्न ही रखा है । इस आश्चर्यजनक संगति को देखकर वे विस्मित रह गये ।

बेंगलूर के मानसिक स्वास्थ्य तथा स्नायु तन्त्र विज्ञान के राष्ट्रीय प्रतिष्ठान द्वारा किये गये एक अध्ययन में बताया गया

है कि ४५ मामलों में पुनर्जन्म के दावों पर 'पर्याप्त व ठोस प्रमाण' मिले हैं ।

अध्ययन के दौरान प्रतिष्ठान के सामने २०० मामले आए जिनमें से अधिकांश उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब व मध्य प्रदेश के थे । लगभग आधे लोगों ने बताया कि पूर्वजन्म में उनकी अप्राकृतिक मृत्यु हुई थी । पुनर्जन्म की कथाएँ सुनाने वाले सभी की आयु १० वर्ष के भीतर थी । इनमें एक तिहाई संख्या लड़कियों की है ।

पुनर्जन्म किस योनि में या किस स्थिति में होगा यह मृतक के अपने संस्कार समुच्चय पर बहुत कुछ निर्भर है । जिधर अपना रुझान, झुकाव या अभ्यास होता है उसी दिशा में मन मुड़ता है और अपने अनुरूप वातावरण तलाश कर लेता है । एक ही बगीचे में भौंरा फूल पर बैठता है और गुबरीला सड़े गोबर की माँद ढूँढ़ने निकालता है । संस्कार उसी रुझान को कहते हैं । इसके अतिरिक्त संचित कार्यों के भले-बुरे परिणाम भी अपने विधान आकर्षण से प्राणी को अपनी ओर खींच बुलाते हैं । इन्हीं रस्से से बँधा हुआ प्राणी पुनर्जन्म के लिए स्थान एवं वातावरण ढूँढ निकालता है ।

शास्त्र मत इस सन्दर्भ में इस प्रकार है-

मानसेदं शरीरं हि वासनार्थ प्रकल्पितम् ।
कृमि कोश प्रकारेण स्वात्मकोश इवस्वयम् ।।

-योग वाशिष्ठ ४/११/७

करोति देहं संकल्पात्कुम्भ कारी घटं यथा ।।

-योग वाशिष्ठ ४/१५/७

जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपने रहने के लिए अपने आप ही कोश तैयार कर लेता है वैसे ही मन ने भी अपने संकल्प से शरीर को इस प्रकार बनाया है जिस प्रकार कुम्हार घड़ा बनाता है ।

काले काले चिता जीवस्त्वन्योऽयोभवति स्वयम् ।
भविताकार वानतं वसिना कलिको दयात् ।।

-योग वाशिष्ठ ६/१/५०/३९

अपने भीतर की वासना को मूर्तरूप देने की इच्छा से आकार धारण करने के लिए जीव अपना शरीर बदलता रहता है ।

श्रीमद्भागवत में एक अत्यन्त मार्मिक आख्यायिका आती है जिसमें देवर्षि नारद ने मरते हुए व्यक्ति को देखा, तो उनका अन्तःकरण जीव के मायावी बन्धन को देखकर द्रवित हो उठा। मृतक के शव के समीप खड़े कुटुम्बीजन तथा पुत्र विलाप कर रहे थे । नारद ने जीवात्मा को समझाया- वत्स इस संसारी बन्धन को छोड़कर मेरे साथ चल और जीवन मुक्ति का आनन्द ले। किन्तु मृतक पिता की आसक्ति विलापकर रहे कुटुम्बियों से जुड़ी थी । नारद की ओर उसने ध्यान नहीं दिया और अपने वासनामय सूक्ष्म शरीर से वहीं घूमता रहा । कुछ दिन बाद उसने पशुयोनि में प्रवेश किया और बैल बनकर अपने किसान बेटे की सेवा करने लगा ।

कुछ दिन पश्चात् नारद पुनः आये और बैल के पिंजरे में बन्द जीव से मिले और पूछा तेरा मन हो तो चल और अच्छे लोकों का आनन्द ले । बैल ने कहा–"भगवन् ! अभी तो बेटे की आर्थिक स्थित खराब है–मैं इसे छोड़कर कैसे चलूँ ? नारद जी चले गये । जीव डण्डे खाकर भी बेटे आसक्ति में डूबा रहा । मृत्यु के समय भी आसक्ति कम न हुई, सो वह कुत्ता बनकर बेटे की सम्पत्ति की रक्षा करता रहा । पूर्वजन्मों के संस्कार और मोह भावना में तल्लीन उस कुत्ते को मिलती दुत्कार और डण्डे फिर भी उसने मालिक बने पुत्र का दरवाजा नहीं छोड़ा।

देवर्षि नारद पुनः आये और चलने को कहा तो कुत्ते ने कहा-भगवन् ! आप देखते नहीं, मेरे बेटे की सम्पत्ति को चोर डाकू ताकते रहते हैं ऐसे में उसे छोड़कर कहाँ जाऊँ । नारद ने कहा-वत्स ! तू जिन इन्द्रियों को सुख का साधन समझता है वे तुझ बार-बार धोखा देती हैं फिर तू उनके पीछे बावला क्यों बना है, किन्तु कुत्ते की समझ में कहाँ आती ? मानवीय सत्ता तक तो इसे समझ नहीं पाती ।

जीव को बेटे के व्यवहार से क्रोध आया और अपना हिस्सा लेने के प्रतिशोध की भावना से कुत्ते का शरीर छोड़कर चूहा बना । उस स्थिति में भी नारद ने समझाया परन्तु उसे फिर भी ज्ञान न हुआ । चूहे से तंग आकर किसान बेटे ने विष मिले आटे की गोलियाँ रखीं । चूहा मर गया । चूहे ने देखा कि इस बार विष देकर मेरा प्राणान्त किया गया है उसका मन क्रोध और प्रतिशोध की भावना से जल उठा । फलतः उसे सर्प योनि मिली । क्रोधित हो सर्प बदला लेने बिल से जैसे ही बाहर निकला कि घर वालों ने उसे लाठियों, पत्थरों से कुचल-कुचल कर मार डाला । अब नारद जी ने उधर जाना ही व्यर्थ समझा क्योंकि वे समझ चुके थे कि अभी वह प्रतिशोध की धुन में चीटीं, मच्छर, मक्खी न जाने क्या-क्या बनेगा ?

'आफ्टर डेथ, नामक पुस्तक सन् १८९७ में प्रकाशित हुई थी तब से अब तक इसके लगभग बीस संस्करण कई

भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं । इसमें जुलिया नाम लड़की का विवरण बड़े ही मार्मिक ढंग से लिखा गया है । जुलिया बहुत ही सुन्दर एवं बहुत ही रंगीन स्वभाव की लड़की थी । उसके अनेक मित्र थे । मित्रों से वह कहा करती थी कि यदि मेरी मृत्यु हुई तो मिलती अवश्य रहूँगी । संयोग वश १२ दिसम्बर १८९१ में उसकी मृत्यु हो गई । उसकी प्रेतात्मा अपने मित्रों से मिलने के लिए भटकने लगी । इस बात को उसके सभी मित्रों एवं अन्य अपरिचित व्यक्तियों ने स्वीकार किया और बताया कि जुलिया की आत्मा अपने मित्रों के लिए भटकती रहती है, वह उन्हें देखती है पर स्वयं न देखे जाने या स्पर्शजन्य अनुभूति का आनन्द न प्राप्त कर सकने के कारण वह उद्विग्न एवं खिन्न रहती है ।

पुनर्जन्म की दो अन्य घटनाएँ इस प्रकार हैं–बिहार के दरभंगा जिले के बेहरा नामक स्थान के निवासी श्री ब्रजकिशोर वर्मा एक होम्योपैथ डाक्टर थे । उनके एक कन्या का जन्म हुआ जिसका नाम कुमकुम रखा गया । बचपन से ही वह अपनी दादी श्रीमती गंगावती वर्मा से अत्यधिक स्नेह रखती थी।

एक दिन 'दादी-अम्मा बच्चों को चूड़ा परोस रही थी, तभी कुमकुम बोली-'दादी अम्मा ! आप ही की तरह में भी अपने बच्चों को चूड़ा परोसा करती थी । मैं सच कह रही हूँ दादी अम्मा मेरा घर दरभंगा में ही उर्दू बाजार में है ।'

घर के लोग प्रारम्भ में उसकी बातों में काफी रस लेते थे । कुमकुम उनके हर प्रश्न का ऐसा उत्तर देती थी मानो सचमुच वह किसी सम्पन्न घर की पुरखिन हो । लेकिन कुछ ही दिनों में उसके माता-पिता उससे परेशान हो गये । वे समझ नहीं पाते थे कि इस साढ़े तीन-चार वर्ष की बच्ची को कैसे समझाया जाय ।

एक दिन बेहरा में मेला लगा था । कुमकुम की माँ ने उस दिन सोने के लाकेट वाली चेन और नयी साढ़ी पहनी । कुमकुम को भी नयी फ्राक पहनाई गयी । माँ के गले की चैन देखकर उसने कहा-मेरी चेन तुम्हारी चेन से अधिक चमकीली थी । मैं भी गहने पहनूँगी । मैं अपनी तिजोरी से पैसा निकालूँगी और बहुओं से मिलने जाऊँगी ।' इस प्रकार से हठ करते हुए वह रोने लगी। वह अक्सर अपने पूर्वजन्म के बहू-बेटों से मिलने के लिए मचलने लगती थी ।

आखिर डा० ब्रजकिशोर वर्मा ने दरभंगा राज के एक स्पेशल अफसर और अपने अन्तरंग मित्र पण्डित हरिश्चन्द्र मिश्र के सामने अपनी यह विषम समस्या रखी । उन्हें यह मामला अपनी पकड़ से बाहर होता प्रतीत हो रहा था ।

पण्डितजी ने सोचा, हो न हो यह मामला पुनर्जन्म का हो । सो कुमकुम से स्वयं पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उसके उर्दू बाजार वाले घर के सामने एक शिवजी का मन्दिर था जहाँ वह नित्य-नियमित रूप से पूजा करने जाया करती थी। उसकी बहू ने जहर खिलाकर उसकी जान ले ली । उन लोगों के यह पूछने पर कि वे उसके घर को कैसे पहचानेंगे ? उसने बताया कि मेरे घर के पीछे एक सिनेमा घर है ।

डा० वर्मा कुमकुम की सूचना और पं० हरिश्चन्द्र मिश्र की सहायता से कुमकुम के पूर्वजन्म के मकान को बिना किसी दिक्कत के खोजने में सफल हो गये । घर के मुखिया मिसरीलाल (कुमकुम के पूर्वजन्म का बड़ा बेटा) ने घर के बाजू में बने पोखर के बारे में बताया कि वह उसकी माँ के जीवन काल में ही तैयार किया गया था । पड़ौसियों ने यह भी बताया कि मिसरीलाल की माँ ने एक पूँछ कटा साँप भी पाल रखा था जिसे वह बड़ी हिफाजत से रखती थी । वह एक धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी और बिना मन्दिर में भगवान शंकर की पूजा किये वह भोजन नहीं करती थी ।

पारलौकिक विद्या के प्रसिद्ध विद्वान डा० इवान स्टीवेंसन ने कुमकुम के पूर्वजन्म के विवरणों का अध्ययन कर उसे सही पाया । उस समय वे पुनर्जन्म की सत्यता की जाँच के सिलसिले में विभिन्न देशों का भ्रमण करते हुए भारत आए थे । डा० स्टीवेन्सन ने बताया कि मृत्यु के समय व्यक्ति की जैसी बुद्धि होती है, वैसा ही अगला जन्म होता है ।

उत्तर प्रदेश के जिला मैनपुरी निवासी श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र के एक पुत्री हुई । घर में उसे लोग मधु के नाम से पुकारते थे । लेकिन जब बालिका कुछ बड़ी हुई तो अपने को अक्सर वह अपने को हरिजन बतलाती और सुअर का माँस खाने की चर्चा भी बेहिचक करती थी ।

एक दिन वह पिता के साथ रेलवे स्टेशन के करीब से गुजर रही थी । तभी सामने से आती हुई ट्रेन को देखकर वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी । उसने अपने पिता से बताया कि इसी गाड़ी से कटकर मैं मर गई थी ।

जब वह चार वर्ष की थी, उसने एक दिन अपने पिता के औषधालय में एक आदमी को देखकर मुँह फेर लिया और बताया कि यह मेरा जेठ है ।

बाद में उसने बताया कि लालाराम हरिजन उसका पति था । शराब पीने की उसकी बुरी लत थी । रामनवमी के दिन उसने अपने पति से शराब छोड़ देने के लिए कहा । इस पर उसने अपनी पत्नी को झाड़ू से पीटकर लहू-लुहान कर दिया।

आत्म-ग्लानि और स्वाभिमान टूटने के दुःख में उसने रेल से कटकर आत्महत्या कर ली । साथ ही उसने अपने छिपाए हुए पैसे मैंटे-बेटियों का हुलिया आदि सारी बातें बतायीं और बिना किसी मार्गदर्शन के अपने पूर्वजन्म के मकान में जाकर अपने उन सम्बन्धियों को भी पहचान लिया ।

भारत आस्तिक देश है । हिन्दू धर्म में पुनर्जन्म की मान्यता चिर पुरातन है । पर अन्य धर्मावलम्बियों को विशेषतया प्रत्यक्षवादी नास्तिक समुदाय को यह विचारना पड़ेगा कि उन्होंने जो अब तक मान रखा है वह सही नहीं है ।

ऐसी घटनाएँ संसार भर में घटित होती रहती हैं । कुछ समय पूर्व तक उन्हें इसलिए छिपाया जाता था कि उससे उनकी मान्यताओं का खण्डन होता था । पर अब सत्यान्वेषी वर्ग ने जब यथार्थता खोज निकालने का निश्चय किया है तो पुनर्जन्म की भारत जैसी अनेकों घटनाएँ देखते-सुनने को मिलने लगी हैं और मरणोत्तर जीवन को असन्दिग्ध माना जाने लगा है ।

यह प्राचीन मान्यताओं के खण्डन मण्डन का विषय नहीं है वरन् एक तथ्य का प्रतिपादन है जो सतत और चिरन्तन जीवन का विश्वा दिलाता है और मरण के साथ आने वाली व्यथा एवं निराशा का अन्त करता है । आत्मोत्कर्ष के लिए अन्तिम समय तक पुरुषार्थ करने की अदम्य अभिलाषा उन्हीं को रह सकती है जो मरण मात्र विराम समझें और अनवरत जीवन श्रृंखला पर विश्वास रखें । यह एक ऐसा लाभ है जिससे जीवन का स्तर और स्वरूप ऊँचा उठता है और प्रगति पथ पर बढ़ने के लिए वृद्धावस्था में भी उत्साह कम नहीं होता ।

मृत्यु जीवन का अन्त नहीं

महान धर्मात्मा राजा जनश्रुति को जब भोग-विलास से वैराग्य हुआ तो उसने देखा कि अब तो उसका शरीर भी जर्जर हो चुका है । शरीर में तप और साधना की शक्ति भी नहीं रही । जीवन भर अज्ञान में अनेक पाप किये उनका पश्चात्ताप राजा को दलने लगा तो वह महामुनि रैक्य के पास पहुँचे और बोले भगवान मैं धर्म चित्त हुआ राजा आज जीव भाव से आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूँ मुझे बतलाइये मृत्यु के बाद क्या होता है और क्या मेरी असहाय चेतना भी जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्ति पा सकती है ।

महामुनि रैक्य ने बताया–राजन् ! जब मृत्यु का समय आता है तब सब इन्द्रियों की वृत्ति वाणी में लय हो जाती है । वाणी की वृत्ति मन में और मन की वृत्ति तब प्राण में परिवर्तित हो जाती है । जाग्रत अवस्था में पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन की इच्छाओं पर नाचती थीं पर मृत्यु के समय मन प्राण चेतना के वश में चला जाता है तब प्राण ही जीवन भर की स्थिति के अनुरूप नये निर्माण में जुट जाते हैं वह निर्माण चाहे अच्छा हो या बुरा उसका निर्णय चेतना के शरीर छोड़ते समय ही हो जाता है । जो लोग ईश्वर उपासना, तप, ज्ञान सम्वर्धन और साधना द्वारा अपना मनोबल और आत्म-बल विकसित कर लेते हैं वह अनेक गुणों और सस्कारों से युक्त सुन्दर जीवन पाते हैं और जिनकी इन्द्रियों के प्रति लालसा जाग्रत बनी रहती है वे उन-उन इच्छाओं की पूर्ति के लिए पुनः कोई शरीर धारण करते हैं । यह पटाक्षेप सनातन काल तक चलते रहते हैं ।

उपरोक्त कथन में मृत्यु विज्ञान पर जहाँ संक्षिप्त शास्त्रीय प्रकाश डाला गया है वहाँ यह समझाने का प्रयत्न भी है कि एक मृत्यु के बाद मनुष्य जीवन का अन्त नहीं हो जाता वरन् उसे अपने कर्मानुसार अन्य जन्म भी धारण करने पड़ते हैं । बार-बार जन्म और बार-बार मृत्यु होती है जब तक सृष्टि का प्रत्येक जीव पूर्णता नहीं प्राप्त कर लेता यह प्रक्रिया कभी बन्द न होगी ।

पुनर्जन्म के इस सिद्धान्त को न मानने के कारण जहाँ ईसाई और मुसलमानों में अमानवीय आदर्श, हिंसा, भोगवाद, संग्रह, विलासिता और असामाजिकता का भाव बढ़ा वहाँ भारतीयों में कर्त्तव्य, धर्म और सदाचार के प्रति अब भी प्रेम और निष्ठा जुड़ी हुई है । इस विश्वास का मनोवैज्ञानिक लाभ हिन्दू जाति को सत्कर्म के रूप में मिला है । अभी भी यदि दुनियाँ में कोई देश है जहाँ विश्व मानव के प्रति दया, करुणा, क्षमा, उदारता, नैतिकता और सामाजिकता का भाव बचा हुआ है तो वह भारतवर्ष ही है ।

प्रस्तुत घटनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि पुनर्जन्म की मान्यता निराधार तथ्य नहीं । १९६० में राजकोट के सलोद बैंक के कर्मचारी प्रवीनचन्द्र शाह को एक पुत्री हुई । उसका नाम राजुल है । तीन साल तक बालिका के अति मस्तिष्कीय ज्ञान में जाग्रति के कोई लक्षण नहीं दिखाई दिये । पर थोड़े दिन बाद ही वह कहने लगी कि वह तो जूनागढ़ की है उसका नाम गीता है । पहले तो घर वालों ने कोई ध्यान नहीं दिया पर बाद में लड़की के दादाजी ब्रजभाई शाह ने अपने दमाद को जूनागढ़ जाकर पता लगाने को कहा ।

जब वहाँ जाकर खोज की गई तो पता चला कि टैली स्ट्रीट जूनागढ के गोकुलदास ठक्कर की बेटी गीता की मृत्यु जब वह २ १/२ वर्ष की थी तब हो गई थी । राजुल अपने घर के पास मिठाई की दुकान का जिक्र किया करती थी ।

जब यह लोग बालिका को लेकर जूनागढ़ पहुँचे तो ऊपर पते पर बताये गये स्थान के पास ही उस दुकान को बालिका ने पहचान लिया । शाम को वे लोग राजुल को लेकर गोकुलदास ठक्कर के घर गये । उनकी धर्म पत्नी कांताबेन खिड़की के पास खड़ी थी । ब्रजभाई ने राजुल से पूछा ? क्या तू इन्हें पहचानती है तो बालिका ने थोड़ा दिमाग को जोर लगाया और बोली--"तुम मेरी माँ हो ।" यही नहीं उसने उन्हें "भाभी" कहकर पुकारा तो सब लोग आश्चर्य चकित रह गये क्योकि गीता (अब राजुल) अपनी माँ को भाभी कहकर ही पुकारा करती थी । शाह परिवार को भी बड़ा आश्चर्य हुआ कि अपने परिवार में तो माँ को बा कहा जाता है पर लड़की ने माँ को भाभी कहने का सम्बोधन कहाँ से सीखा ।

दूसरे दिन घर के सब लोग मन्दिर दर्शन करने गये । बालिका से उस मन्दिर का पता पूछा गया तो उसने एक घर की ओर इशारा किया । लोगों ने समझा लड़की भूल गई पर जब कांताबेन ने बताया कि यह मकान-सा दिखाई देने वाला ही मन्दिर है और वे प्रतिदिन यहाँ पूजा करती हैं तो लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । लड़की के कथन की सत्यता को सभी ने स्वीकार किया ।

इसी तरह का एक और प्रसंग कल्याण मार्च १९६६ में छपी बेमुला (लंका) का है । सुरेश मैतृमूर्ति नाम के एक व्यक्ति जिन्होंने बौद्ध धर्म में दीक्षा ली थी बीमार पड़ गये। बीमारी के दिनों में उन्हें किसी अज्ञात प्रेरणा से मालूम हो गया कि उनकी मृत्यु कल शाम तक अवश्य हो जायेगी और उनका दूसरा जन्म उत्तर भारत में कहीं होगा ।

लोगों ने इनकी बातों का विश्वास नहीं किया क्योंकि तब स्थिति काफी सुधर चुकी थी । दिन भर स्थिति सुधरती ही रही किन्तु बात उन्हीं की सच हुई सायंकाल से पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई । मरने से पूर्व उन्होंने अपनी कलाई घड़ी अपने गुरुभाई श्रीआनन्द नेत्राय को दी । दोनों में बड़ा आत्म भाव था इसलिये श्री नेत्राय ने उनकी दूसरी बात का भी पता लगाने का निश्चय किया ।

कई वर्ष बाद श्री आनन्द नेत्राय मद्रास आये और एक ज्योतिषी से सुरेश के पुनर्जन्म की बात पूछी । उक्त ज्योतिषी के पास ५००० वर्ष पुरानी कोई पुनर्जन्म विद्या की पुस्तक थी उसके आधार पर उसने बताया कि सुरेश का जन्म बिहार प्रान्त में हुआ है । पिता का नाम रमेश सिंह और माता का नाम सावित्री बताया । इतने सूत्र मिल जाने पर श्री आनन्द नेत्राय ने पुलिस रिकार्ड की सहायता से पता लगाया । बच्चे का पता चल गया और कुछ विचित्र बातें सामने आईं जैसे यह कि यह बालक भी अपने पूर्व जन्म की बातें बताने लगा। आनन्द नेत्राय लंका में प्रोफेसर हैं वे बच्चे को वहाँ ले गये उसने जहाँ अनेक बातें स्पष्ट पहचानी वहाँ लोगों को अपनी घड़ी पहचान कर आश्चर्य-चकित कर दिया । आनन्द नेत्राय के हाथ की घडी देखते ही उसने कहा-"यह घड़ी मेरी है । यह वही घड़ी थी जो मृत्यु के पूर्व सुरेश ने ही आनन्द जी को दी थी।

बिहार में जन्मे बालक और सुरेश के गुण, कर्म और स्वभाव में अधिकांश साम्य पाया गया इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जीवात्मा की यात्रा जिस स्थान से (आत्मिक विकास की दृष्टि से) समाप्त हुई थी वहीं से फिर शुरू हो जाती है । यदि मनुष्य अपने जीवन को सँवारने, सुधारने, ऊर्ध्वगामी बनाने में लग जाता है तो पिछले जीवन के अशुभ कर्मों का फल भागते हुये भी उसका जीवन साधुओं जैसा निर्मल और उद्दात्त होता जाता है यदि पिछले जन्म के प्रारब्ध बहुत कठिन और जटिल न हुऐ तो थोड़े ही दिन में स्थिर शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होती है यदि जीवन का अधिकांश भाग भी उसमें लग जाता है और पुनः जन्म ग्रहण करना पड़ता है तो उसका दूसरा जन्म उच्च और श्री सम्पन्न कुल में होता है और फिर उसे जीवन मुक्ति की उपलब्धि होती है ।

गीताकार का कथन है–

शरीरं यदवाप्नोति पच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयति वायुर्गम्धानिवाशायात् ।।

-गीता ५/८

अर्थात्--जिस तरह गन्ध के स्थान से गन्ध ग्रहण कर ले जाता है वैसे ही देहों में निवास करने वाला जीवात्मा जिस पहले शरीर को त्यागता है उससे इन मन सहित इन्द्रियों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है उसमें जाता है । भावार्थ यह है कि मृत्यु के समय जैसे भाव-कुभाव जीव के होते हैं वह अन्य जन्म में चले जाते हैं । वह संस्कार कहे जाते हैं और उन्हीं के आधार पर जीव नये जीवन का प्रारम्भ करता है ।

इसी सूक्ष्म जीवन विद्या पर प्रकाश डालते हुये अपौरुषेय वेद कहते हैं –

"पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्पुनःप्राणः -पुनरात्मा म आगन् पुनञ्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मं आगन् । वैश्वानरोऽदब्ध स्तनूपा अग्निर्नः पातुदुरितादवयात् ।।

-यजु०४/१५

अर्थात्–सोने के समय मन आदि सब इन्द्रियों लीन हों गई थीं तब भी प्राण जाग्रत था तथापि उसके कार्य का हमें पता नहीं था वह सब कल के समान आज पुनः प्राप्त हुआ है, यह आत्मा की शक्ति का कितना आश्चर्यजनक प्रभाव है । वह आत्म शक्ति हमें पाप कर्मों से बचावे । जिस प्रकार निद्रा के पश्चात् सभी इन्द्रियाँ आदि स्वस्थ रूप में प्राप्त होती हैं उसी प्रकार महानिद्रा के पश्चात् भी हम उन्हें नई शक्तियों के साथ प्राप्त करते हैं । जो इस बात को नहीं जानता और इन्द्रियासक्ति या प्रमाद में पड़ा रहता है वह आत्म शक्ति को नष्ट का क्षुद्र योनियों में पड़ता है । अग्नि देव (परमेश्वर) हमें उस अधोगति से बचायें।

मृत्यु एक विधि व्याख्या है मात्र संयोग नहीं उसका एक उदाहरण इस प्रकार है, बरेली जिले के बहेड़ी ग्राम में पुनर्जीवन की एक विलक्षण घटना घटित हुई । गन्ना विकास संघ के एक चपरासी की एक अल्पवयस्क पुत्री की मृत्यु हो गई । जब उसे दफनाने के लिये ले जाया जा रहा था तो शव हिलता डुलता दिखाई दिया । जमीन पर रखदी गई और थोड़ी देर में ही वह जीवित होकर उठ बैठी और भी विचित्र बात उस समय हुई जब उस बालिका ने जैसे ही लौटकर घर में कदम रखा तो पड़ोस की एक उसी आयु की बालिका की मृत्यु हो गई । यह घटना मृत्यु के सम्बन्ध में और भी दार्शनिक गूढ़ता पैदा करने वाली कही जा रही है । इससे पता चलता है कि मृत्यु परमात्मा की एक नियन्त्रित व्यवस्था है भले ही उसे समझने में कुछ समय क्यों न लगे ।

नेहरूजी के जन्म का गुप्त रहस्य

लगभग सत्तर वर्ष पहले एक बार पंडित मदन मोहन मालवीय, पं० दीनदयाल शास्त्री और पं० मोतीलाल नेहरू ये तीनों हरिद्वार के पास ऋषीकेश गये थे । पं० मालवीय जी आरम्भ से ही श्रद्धालु प्रकृति के थे, इसलिए प्रतिदिन प्रातःकाल गंगा तट पर भ्रमण करने जाते और कहीं किसी प्रसिद्ध योगी को तपस्या करता सुनते वहीं जाकर उसके दर्शन करते थे ।

एक दिन संध्या के समय उन्होंने एक पेड़ के ऊपर लम्बी जटा वाले योगी के दर्शन किए । उस पेड़ के नीचे की डली पर एक हँड़िया लटक रही थी । पूछ-ताछ करने से पता लगा कि वे योगी महाराज पेड़ पर रहकर ही तपस्या करते हैं । प्रातः काल एक बार वे पेड़ से नीचे उतरते हैं और गंगा जी में स्नान करके फिर पेड़ पर चढ़ जाते हैं । उसी समय अगर उस पेड़ पर लटकी हाँड़ी में कुछ मिल जाता है तो उसका प्रसाद लेकर फिर पेड़ पर चढ़ जाते हैं और यदि हॉड़ी में कुछ न मिलता तो बिना कुछ खाये ही पेड के ऊपर चले जाते हैं ।

इस घटना की चर्चा करते हुए स्वयं मालवीय जी ने बतलाया था कि 'ऐसी बात सुन कर इस साधु की तरफ हमारी श्रद्धा बढ़ गई । दूसरे दिन प्रातः काल से कुछ पहले ही हम वहाँ जा पहुँचे, पर योगी वहाँ मौजूद न था, वह स्नान करने चला गया था । कुछ समय बाद वह वापस आ गया । उसके हाथ में पानी का भरा हुआ घड़ा था । यद्यपि योगी महाराज वृद्ध थे पर उनकी देह तेज से चमक रही थी हम सबने उनको प्रणाम किया । उन्होंने पूछा कि 'क्या चाहते हो ? मैंने मोतीलाल की तरफ इशारा करके कहा कि 'इनको पुत्र की अभिलाषा है !' योगी ने मोतीलाल जी की तरफ निगाह करके कहा- 'इनके नसीब में तो पुत्र नहीं है ।' यह बात सुनकर मैं और दीनदयाल बोल उठे कि 'आप तो कर्म योगी हैं इसलिए आप तो असम्भव को भी सम्भव कर सकते हैं । यदि आप ही हमारी सहायता न करेंगे तो दूसरा कौन कर सकता है ?

इसके पीछे दीनदयालजी ने शास्त्र के वचन उद्घृत करके सिद्ध किया कि कर्मयोगी सब कुछ कर सकता है और उसे दूसरों का उपकार करने में हिचकिचाना नहीं चाहिए । योगी ने कुछ उत्तर नहीं दिया वरन् चुपचाप विचारता रहा । इसके बाद उसने घड़ा से थोड़ा जल लेकर तीन बार जमीन पर छिड़क दिया और चौथी अंजली जल लेकर उसे मोतीलाल जी पर छिड़क दिया । तब वह हमारी तरफ देखकर मन्द स्वर में बोले–आप लोगों ने मेरे साथ बड़ी ज्यादती की है । मेरी जन्म-जन्म की तपस्या का फल तुमने मुझसे ले लिया है । मालवीय जी लिखते हैं कि उस समय योगीराज का चेहरा एक दम फीका पड़ गया था । वह बिना कुछ कहे पेड़ पर चढ़ गया । हम तीनों भी अपने ठरहने के स्थान पर वापस आ गये । दूसरे दिन हम फिर योगी का दर्शन करने गये तो वे पेड़ पर नहीं थे, वरन् पेड़ की जड़ के पास उनकी मृत देह पड़ी थी । योगी ने अपनी समस्त तपस्या का फल अर्पित कर दिया था ।

दस महीना बाद मोतीलाल जी के घर पर पुत्र का जन्म हुआ और उसका नाम जवाहरलाल रखा गया । पं० जवाहरलाल के जन्म से सम्बन्धित इस कथा को स्वयं मालवीय जी ने लिखा था और दिल्ली के "शेरे-पंजाब" नामक उर्दू पत्र ने उसको कहीं से प्राप्त करके प्रकाशित किया था । इस विवरण को पढ़कर श्री एन० वी० सेन नामक सज्जन ने इसके सम्बन्ध

में जाँच करने का विचार किया और स्वयं पं० नेहरू को पत्र लिखकर इसकी सचाई बतलाने को कहा । ता० २५-५-५७ को नेहरू जी के निजी सैक्रेटरी श्री सी० आर० श्री निवासन का पत्र उनको मिला कि "नेहरू जी ने आपका (श्री सेन का) पत्र पाने के बाद "शेरे पंजाब" के लेख को पढ़ा । इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि उन्होंने ऐसी कोई बात अभी तक किसी के मुख से नहीं सुनी थी ।"

नेहरू जी का यह उत्तर मिलने पर श्री सेन ने "शेरे पंजाब" के ऐडीटर से लिखा-पढ़ी की । उनकी तरफ से साफ शब्दों में यह उत्तर मिला कि "यह घटना स्वयं मालवीय जी ने एक प्रसिद्ध व्यक्ति को निजी-पत्र में लिखी थी, उसी में से इसे लिया गया है । वह पत्र अभी मौजूद है और वे उसे दिखाने को तैयार हैं ।

श्री नेहरू ने श्री सेन को जो उत्तर दिया था उसमें कहा गया था कि "यदि यह घटना सत्य होती तो मेरे पिताजी अथवा मालवीय जी ने मुझसे उसका जिक्र किया होता, पर इस सम्बन्ध में श्री सेन का विचार यह है कि "सम्भव है कि इन दोनों बुजुर्गों ने किसी खास कारणवश यह जवाहरलाल जी से न कही हो । इस प्रकार एक दृष्टि से तो यह अज्ञान आशीर्वाद स्वरूप समझना चाहिए ।

अन्यान्य धर्म भी देते हैं पुनर्जन्म की साक्षी

शरीर के साथ चेतना का उद्भव और मृत्यु के साथ ही उसका अन्त नहीं हो जाता, वरन् काय-कलेवर के न रहने पर भी जीवात्मा का अस्तित्व बना रहता है और वह पुनर्जन्म धारण करती है । भारतीय धर्म, दर्शन में आत्मा की अमरता एवं पुनर्जन्म की सुनिश्चितता को आरम्भ से ही मान्यता प्राप्त है । अध्यात्म-तत्व ज्ञान की आधारशिला समझी जाने वाली इस मान्यता के सम्बन्ध में विश्व के विभिन्न धर्मों में अलग-अलग विचारधाराएँ प्रचलित हैं किन्तु चेतना प्रवाह की अविच्छिन्नता और काया की नश्वरता को सभी ने समान रूप से स्वीकार किया है ।

आत्मा की अमरता एवं मरने के बाद दूसरा जन्म मिलने का तथ्य हिन्दू धर्म में सदा से माना जाता रहा है । भारतीय धर्म-शास्त्रों में पग-पग पर मरणोत्तर जीवन के तथ्य का प्रतिपादन किया गया है । पुराणों एवं आप्त वचनों में जीवात्मा के पुनर्जन्म लेने की बात कही गई है । गीता में इस बात का उल्लेख किया गया है कि शरीर छोडना वस्त्र बदलने की तरह है । प्राणी को बार-बार जन्म लेना पड़ता है । शुभ कर्म करने वाले श्रेष्ठ लोग तो सद्गति को प्राप्त करते हैं और दुष्कर्म करने वालों को नरक की दुर्गति भुगतनी पड़ती है । गीता के दूसरे अध्याय के २२ वें श्लोक में कहा गया- "जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र को त्याग करके नया वस्त्र धारण करता है, इससे वस्त्र बदलता है, मनुष्य नहीं बदलता । इसी प्रकार देहधारी आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर दूसरा नया शरीर धारण करती है । "गीता ४/५ में ही कृष्ण ने कहा है– "अर्जुन मेरे और तुम्हारे अनेक जन्म बीत गये हैं । ईश्वर होकर मैं उन सबको जानता हूँ, परन्तु हे परंतप ! तू उसे नहीं जान सकता ।"

सामान्यतया यह कहा जाता है कि विश्व के दो प्रमुख धर्मों-ईसाई और इस्लाम में पुनर्जन्म की मान्यता नहीं है, पर उनके धर्मग्रन्थों एवं मान्यताओं पर बारीकी से दृष्टि डलने से प्रतीत होता है कि प्रकरान्तर से वे भी मरणोत्तर जीवन की वास्तविकता को मान्यता देते हैं और परोक्ष रूप से उसे स्वीकार करते हैं ।

प्रख्यात विरद्वान प्रो० मैक्समूलर ने अपने ग्रन्थ-- "सिक्स सिस्टम आफइण्डियन फिलासफी" में ऐसे अनेक आधार एवं उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जो बताते हैं कि ईसाई धर्म पुनर्जन्म की आस्था से सर्वथा मुक्त नहीं है । प्लेटो एवं पैथागोरस के दार्शनिक ग्रन्थों में इस मान्यता को स्वीकारा गया है । दूसरी शताब्दी के सुप्रसिद्ध अँग्रेज विद्वान ऐरीगन ने स्पष्ट लिखा है- "बार-बार जन्म लेने पर फरिश्ते आदमी बन सकते हैं और आदमी फरिश्ते और बुरे-बुरे लोग भी उन्नति करते-करते अच्छे आदमी या फरिश्ते बन जाते हैं । ईसाई धर्म के प्रख्यात विद्वान जोजेफस ने अपनी पुस्तक में उन यहूदी सेनापतियों का हवाला दिया है जो अपने सैनिकों को मरने के बाद भी फिर से पृथ्वी पर जन्म मिलने का आश्वासन देकर उत्साह-पूर्वक लड़ने के लिए उभारते थे । उन्होंने लिखा है--"रूहें सब शुद्ध होती हैं, अच्छे मनुष्यों की आत्मा फिर से अच्छे शरीर में जाती हैं जबकि दुष्कर्मियों की रुहें सजा भुगतती हैं । थोड़े दिनों पश्चात् वह फिर से नया जन्म लेने के लिए भेजी जाती हैं । अच्छी रूहें अच्छे शरीर में और बुरी रूहें बुरे जिस्मों में, परन्तु जो लोग आत्महत्या करते हैं उन्हें पाताल की अँधेरी दुनिया में भेजा जाता है जिसे "हैडेस" के नाम से जाना जाता है । "जोजेफस का यह कथन इशोपनिषद् की उस आख्यायिका से अक्षरशः मिलता है जिसमें कहा गया है-- **"अन्धं तमः प्रविशन्ति ये के चात्महनो जनाः ।"** अर्थात्- जो लोग आत्महत्या करते हैं वह घोर अन्धकार में जाते हैं ।

४.४४ मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवम् सत्य

यहूदी धर्म में पुनर्जन्म को ''गिलगूलिम'' कहा जाता था। यहूदी परम्परा ''कब्बालह'' में भी इस मान्यता की प्रधानता है। उनके धर्मग्रन्थ ''जुहर'' में स्पष्ट रूप से उद्घृत है कि ''सब रुहों को बार-बार जन्म लेना पड़ता है । ''ईसाई धर्म का सबसे प्राचीन सम्प्रदाय-ग्नास्टिक सम्प्रदाय है, जिसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वे सभी विद्वान समझदार और नेक आदमी थे और सभी की मरणोत्तर जीवन पर पूर्ण आस्था थी । ईसा से चौथी-पाँचवी सदी के ''मनीशियन'' सम्प्रदाय के लोग भी पुनर्जन्म को मानते थे । इतिहासकार गिबन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक- ''डिक्लाइन एम्ड फाल ऑफ द रोमन एम्पायर'' में लिखा है कि ईसा के शिष्य पुनर्जन्म को मानते थे । उनके अनुसार प्रख्यात ईसाई आचार्यों में क्लीमैन्स, एलेगजैन्ड्रिनस, सिनेसियस, चैलसीडियस जैसे विद्वान इसे मानते थे । बाद के योरोपीय विद्वानों और दार्शनिकों में गिआरडनो, बान हेमाण्ट, स्वीडिन बर्ग, गेटे, लैसिंग, चार्ल्स बौनेट, हरडर, ह्यूम, शौपनहावर जैसे ख्यातिलब्ध विचारक भी मरने के पश्चात् फिर से नया जन्म मिलने पर विश्वास रखने लगे थे । ''विजडम आफ सोलेमन'' ग्रन्थ में महाप्रभु ईसा के वे कथन उद्धत हैं जिसमें उन्होंने पुनर्जन्म का प्रतिपादन किया है। उन्होंने अपने शिष्यों से एक दिन कहा था- ''पिछले जन्म का एलिज(इल्यास) ही अब'' जान दी बैपटिस्ट'' के रूप में जन्मा है । ''बाइबिल के चैप्टर ३ पैरा ३-७ में ईसा कहते हैं- ''मेरे इस कथन पर आश्चर्य मत करो कि तुम्हें निश्चित रूप से पुनर्जन्म लेना पड़ेगा ।'' सेण्टपाल को तो ईसा की प्रतिमूर्ति माना जाता है । ईसाई धर्म के प्राचीन आचार्य ओरिगन कहते थे- ''प्रत्येक मनुष्य को अपने पिछले जन्मों के कर्मों के अनुसार अगला जन्म धारण करना पड़ता है ।'' पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो, प्लोटिनस, काण्ट एवं टैनीशन, जान मैसफील्ड जैसे विचारकों की पुनर्जन्म में आस्था थी ।

सुविख्यात यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस का अभिमत था कि मरणोपरान्त आत्मा पुनः किसी भी प्रकृति के प्राणी में जा पहुँचती है । यह निर्धारण कर्मफल व्यवस्था के अनुसार ही होता है । प्लैटो ने यह भी स्वीकारा है- ''जो आत्माएँ शुद्ध हो चुकी हैं और शरीर पर जिनका तनिक भी मोह नहीं है, वे फिर से शरीर धारण नहीं करेंगी । पूर्ण रूप से अनासक्त होने पर वे आवागमन के चक्र से मुक्त हो जायेंगी ।'' उनका कहना है कि ''आत्माएँ इस जीवन में बार-बार जन्म लेती रहती हैं ।'' ''अनिश्चितसीमा'' नामक अपनी पुस्तक में श्री जी० एल० फ्लेअर ने इसकी पुष्टि करते हुए लिखा है कि ''यह बात नहीं कि हम यहाँ से कहीं जाते हैं, हम तो यहाँ पहले से ही थे ।''

वस्तुतः पुनर्जन्म की मान्यता जीवन को अनवरत रूप से गतिशील रहने एवं उत्तरोत्तर विकास करते जाने का विश्वास दिलाती है । अरबी में इसे तनासुख कहते हैं । इस्लाम के पवित्र धर्म ग्रंथों-इंजील और कुरान में इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट बात नहीं लिखी है, पर इससे इन्कार भी नहीं किया गया है कि कुरान में कहा गया है–'' इनसान! तुझे फिर अपने रब (खुदा) की तरफ जाना है । वही तेरा अल्लाह है । तुझे मेहनत और तकलीफ के साथ दरजे बदरजे अर्थात् सीढ़ी चढ़कर उस तक पहुँचना है ।''

कुरान में बहुत सी आयतें हैं जिनका गहराई से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य बार-बार जन्मता और मृत्यु को प्राप्त होता है ठीक उसी तरह जैसे कि यह सृष्टि बनती और विनष्ट होती रहती है । इनमें से कुछ आयतें इस प्रकार हैं- ''हमने तुम्हें जमीन में से पैदा किया है और हम तुम्हें फिर उसी जमीन में भेज देंगे और फिर उसी में पैदा करेंगे, बार-बार आखीर तक ।'' एक दूसरी आयत में कहा गया है- कैफातकफुरुना बिल्लाहे,.....। अर्थात् तुम अपने अल्लाह से कैसे इन्कार कर सकते हो । तुम मर चुके थे, उसने तुम्हें पुनः जीवित किया । वह तुम्हें फिर मारेगा और फिर जिलायोगा। यहाँ तक कि आखिर में तुम फिर उसके पास लौट जाओगे ।'' इस तरह कितनी ही आयतें हैं जो मृत्यु के पश्चात् जीवएँ की निरन्तरता पर प्रकाश डलती हैं ।

प्रसिद्ध सूफी सन्त-मौलाना रूम ने लिखा है- ''मैं पेड़-पौधे, कीट-पतंगे, पशु-पक्षी योनियों में होकर मनुष्य वर्ग में प्रवेश हुआ हूँ और अब देव वर्ग में स्थान प्राप्त करने की तैयारी कर रहा हूँ ।'' कुरान की आयतों के आधार पर पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाले सूफी सन्तों में अहमद-बिन-साबित, अहमद बिना यबूस, अबु मुस्लिम खुरासानी, शैख-उलइश्राक, उमर खय्याम, अल गिजाली आदि प्रमुख हैं । इन्होंने कुरान की सूरतुलमबरक आयत ६१ से ९२ तथा सूर-तुलमायादा आयत ५५ को प्रमुख रूप से अपनी मान्यता का आधार बनाया है।

''दी एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम'' में तनासुख अर्थात् पुनर्जन्म पर विशद् रूप से प्रकाश डला गया है । उसके अनुसार इस्लाम के बहुत से फिरके हैं जो पुनर्जन्म को मानते हैं विशेषकर शिया सम्प्रदाय के लोग ।'' दी एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन्स एण्ड एथिक्स'' में कहा गया है कि भारतीयों के अतिरिक्त ईरानियों जरथुस्त्रियों, मिस्रियों, यहूदियों, यूनानियों, रोमियों, कैलटिक एवं

टियोटोनिक आदि सभी ने पुनर्जन्म को माना है । इसी महाग्रंथ के बारहवें खण्ड में अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका के आदिवासियों के सम्बन्ध में यह अभिलेख है कि वे सभी समान रूप से मरणोत्तर जीवन को मानते हैं।

कभी पुनर्जन्म धर्म और दर्शन का ही प्रतिपाद्य विषय था । यह दोनों ही क्षेत्र श्रद्धा प्रधान हैं । जिनमें तथ्यान्वेषी जिज्ञासाएँ हैं, उनको बिना आधार प्रमाण पाये सन्तोष नहीं होता। अतः अब इस मान्यता को वैज्ञानिक अनुसन्धान का विषय स्वीकार कर लिया गया है । इस संदर्भ में वैज्ञानिकों एवं परामनोविज्ञानियों ने जो प्रत्यक्ष प्रमाण जुटाये हैं उनसे पुरातन असमंजस की स्थिति धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है । लोगों को अपने पूर्वाग्रहों को छोड़ना या शिथिल करना पड़ रहा है। पुनर्जन्म वस्तुतः जीवन यात्रा का अगला चरण है । सतत् गतिशीलता का अगला आयाम है । इसकी मान्यता जीवनक्रम में आस्तिकता की भावना नीतिमत्ता एवं भविष्य की आशा बनाये रहने की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है ।

विदेशों में पुनर्जन्म की घटनाएँ एवं मान्यताएँ

मरणोत्तर जीवन एवं पुनर्जन्म की मान्यता हमें चिन्तन के कितने ही उत्कृष्ट आधार प्रदान करती है। आज हम हिन्दू, भारतीय, एवं पुरुष हैं। कल के जन्म में ईसाई, यूरोपियन या स्त्री हो सकते हैं। ऐसी दशा में क्यों ऐसे कलह बीज बोयें, क्यों ऐसी अनैतिक परम्पराएँ प्रस्तुत करें जो अगले जन्म में अपने लिए ही विपत्ति खड़ी कर दें। आज का सत्ताधीश, कुलीन, मनुष्य सोचता है कल प्रजाजन, अछूत, एवं पशु बनना पड़ सकता है उस स्थिति में उच्च स्थिति वालों का स्वेच्छाचार उनके लिए कितना कष्ट कारक होगा। इस तरह के विचार दूसरों की स्थिति में अपने को रखने और उदात्त दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देते हैं।

मृतात्माओं की हलचलों के जो प्रामाणिक विवरण समय-समय पर मिलते रहते हैं और पिछले जन्मों की सही स्मृति के प्रमाण देने वाले घटनाक्रमों के प्रत्यक्ष परिचय अब इतनी अधिक संख्या में सामने आ गये हैं कि उन्हें झुठलाया नहीं जा सकता। ऐसी दशा में पिछली पीढ़ी के वैज्ञानिकों की आत्मा का अस्तित्व न होने की बात सहज ही निरस्त हो जाती है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आत्मा के अस्तित्व को ही सिद्ध करते हैं। हमारा अस्तित्व मुक्ति में- मृत्यु के साथ अथवा अन्य किसी स्थिति में किसी समय समाप्त हो जायेगा इस कल्पना को कितना ही श्रम करने पर भी स्वीकार नहीं कर सकते। चेतना इस तथ्य को कभी भी स्वीकार न करेगी। यह स्वतः प्रमाण मनःशास्त्र के आधार पर इस स्तर के समझे जा सकते हैं कि जीव चेतना की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने के लिए संतोषजनक माना जा सके।

पदार्थ विज्ञानी यह जानते हैं कि तत्वों के मूल-भूत गुण धर्म को नहीं बदला जा सकता है। उनके सम्मिश्रण से पदार्थों की शकल बदल सकती है। रंग को गन्ध में, गन्ध को स्वाद में, स्वाद को रूप में, रूप को स्पर्श में नहीं बदला जा सकता। हाँ वे अपने मूल रूप में बने रहकर अन्य प्रकार की शकल या स्थिति तो बना सकते हैं, पर रहेंगे सजातीय ही। दो प्रकार की गन्धें मिलकर तीसरे प्रकार की गन्ध बन सकती है- दो प्रकार के स्वाद मिलकर तीसरे प्रकार का स्वाद बन सकते है, पर वे रहेंगे गन्ध या स्वाद ही, वे रूप या रंग नहीं बन सकते। विभिन्न प्रकार के परमाणुओं में विभिन्न प्रकार की हलचलें तो हैं, पर उनमें चेतना का कहीं अता पता नहीं मिलता।

मस्तिष्क को संवेदना का आधार तो माना जा सकता है, पर उसके कण स्वयं संवेदनशील नहीं हैं। यदि होते तो मरण के उपरान्त भी अनुभूतियाँ करते रहते। ध्वनि या प्रकाश के कम्पन जड़ हैं- मस्तिष्कीय अणु भी जड़ हैं। दोनों के मिलन में जो विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं । उनमें पदार्थ को कारण नहीं माना जा सकता। चेतना की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार किये बिना प्राणी के चेतना सिद्ध करने के लिए जितने तर्क पिछले दिनों प्रस्तुत किये जाते रहे हैं, वे अब सभी क्रमशः अपनी तेजस्विता खोते जा रहे हैं। अमुक रसायनों या परमाणुओं के मिलने से चेतना की उत्पत्ति होती है और उनके बिछुड़ने से समाप्ति। यह तर्क आरम्भ में बहुत आकर्षक प्रतीत हुआ था और नास्तिकवाद में जीव को इसी रूप में बताया था, पर अब उनके अपने ही तर्क अपने प्रतिपादन को स्वयं काट रहे हैं कि मूल-तत्व अपनी प्रकृति नहीं बदल सकता। विचारहीन परमाणु-संवेदनशील बन सके ऐसा कोई आधार अभी तक नहीं खोजा जा सका है। जड़ के साथ चेतना घुली हुई हो तो उसके साथ-साथ जड़ में भी परिवर्तन हो सकते हैं। अभी इतना ही सिद्ध हो सका है। किसी परखनली में बिना चेतन जीवाणुओं की सहायता के मात्र रासायनिक पदार्थों की सहायता से जीवन उत्पन्न कर सकना सम्भव नहीं हुआ है।

परखनली के सहारे चल रहे सारे प्रयोग अभी इस दिशा में एक भी सफलता की किरण नहीं पा सके हैं कि रासायनिक संयोग से जीवन का निर्माण सम्भव किया जा सके।

लोह खण्डों के घर्षण से बिजली पैदा होती है तो भी बिजली लोहा नहीं है। स्नायु संचालन से संवेदना उत्पन्न होती है किन्तु संवेदना स्नायु नहीं हो सकते। अमुक रासायनिक पदार्थों के संयोग से जीवन उत्पन्न होता है तो भी वे पदार्थ जीवित नहीं हैं। चेतना का अवतरण कर सकने के माध्यम मात्र हैं।

हर्ष, शोक, क्रोध, प्रेम, आशा, निराशा सुख-दुःख, पाप, पुण्य आदि विभिन्न संवेदनाएँ किन परमाणुओं के मिलने से किस प्रकार उत्पन्न हो सकती हैं, इस सन्दर्भ में विज्ञान सर्वथा निरुत्तर है।

भौतिक विज्ञानी यह कहते रहे हैं कि प्राणी एक प्रकार का रासायनिक संयोग है। जब तक पंचतत्वों का सन्तुलन क्रम शरीर को जीवित रखता है, तभी तक जीवधारी की सत्ता है। जब शरीर मरता है तो उसके साथ ही जीव भी मर जाता है। शरीर में भिन्न जीव की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।

यह मान्यता मनुष्य को निराश ही नहीं अनैतिक भी बनाती है। जब शरीर के साथ ही मरना है तो फिर जितना मौज-मजा करना है वह क्यों न कर लिया जाय? यदि राजदण्ड या समाज दण्ड से बचा जा सकता है तो पाप-अपराधों के द्वारा अधिक जल्दी- अधिक मात्रा में अधिक सुख साधन क्यों न जुटाए जायें? पुण्य-परमार्थ का जब हाथों-हाथ कोई लाभ नहीं मिलता तो उस झंझट में पड़कर धन तथा समय की वर्बादी क्यों की जाय ?

आस्तिकता के विचार अगले जन्म में पुण्यफलों की प्राप्ति पर विश्वास करते हैं। इस जन्म में कमाई हुई योग्यता का लाभ अगले जन्म में मिलने की बात सोचते हैं। अस्तु उनके सत्प्रयत्न, इसलिए नहीं रुकते कि मरने के बाद इनकी क्या उपयोगिता रहेगी। यह मान्यताएँ मनुष्य को नैतिक, परोपकारी एवं पुरुषार्थी बनाये रखने में बहुत सहायता करती हैं। नास्तिक की दृष्टि में यह सब बेकार हैं। आज का सुख ही उसके लिए जीवन की सफलता का केन्द्र बिन्दु है, भले ही वह किसी भी प्रकार अनैतिक उपयोग से ही क्यों न कमाया गया हो। यह मान्यता व्यक्ति की गरिमा और समाज की सुरक्षा दोनों ही दृष्टि से घातक हैं।

व्यक्ति की आदर्शवादिता और समाज की स्वस्थ परम्परा बनाये रहने के लिए आस्तिकवादी दर्शन के प्रति जनसाधारण की निष्ठा बनाये रहना आवश्यक है। आस्तिकता का एक महत्वपूर्ण अंग है– मरणोत्तर जीवन। जो इस जन्म में नहीं पाया जा सका वह अगले जन्म में मिल जायेगा, यह सोचकर मनुष्य बुरे कर्मों से बचा रहता है और सत्कर्म करने के उत्साह को बनाये रहता है। तत्काल भले-बुरे कर्मों का फलन मिलने के कारण जो निराशा उत्पन्न होती है उसका समाधान पुनर्जन्म की मान्यता सँजोये रहने के अतिरिक्त और किसी प्रकार नहीं हो सकता। समाज संगठन और शासन-सत्ता में इतने छिद्र हैं कि भले कर्मों का सत्परिणाम मिलना तो दूर, बुरे कर्मों का दण्ड भी उनके द्वारा दे सकना सम्भव नहीं होता। अपराधी खुलकर खेलते रहते हैं और अपनी चतुरता के आधार पर बिना किसी प्रकार का दण्ड पाये मौज करते रहते हैं। इस स्थिति को देखकर सामान्य मनुष्यों का मन अनीति बरतने और अधिक लाभ उठाने के लिए लालायित होता है। इस पाप-लिप्सा पर अंकुश रखने के लिए ईश्वर के न्याय पर आस्था रखना आवश्यक हो जाता है और उस आस्था को अक्षुण्ण रखने के लिए मरणोत्तर जीवन की मान्यता के बिना काम नहीं चल सकता।

भौतिक विज्ञान ने शरीर के साथ जीव की सत्ता का अन्त हो जाने का जो नास्तिकवादी प्रतिपादन किया है, उसका परिणाम नैतिकता की परोपकार की सत्प्रवृत्तियों का बाँध तोड़ देने वाली विभीषिका के रूप में सामने आया है। आवश्यकता इस बात की है कि उस भ्रान्त मान्यता को निरस्त किया जाय।

मरणोत्तर जीवन के दो प्रमाण ऐसे हैं जिन्हें प्रत्यक्ष रूप में देखा, समझा और परखा जा सकता है। (१) पुनर्जन्म की स्मृतियाँ (२) प्रेत जीवन का अस्तित्व। समय-समय पर इस प्रकार के प्रमाण मिलते रहते हैं, जिनसे इन दोनों ही तथ्यों की सिद्धि भली प्रकार हो जाती है। मिथ्या कल्पना, अन्ध-विश्वास और किंम्बदन्तियों की सीमाओं को तोड़कर प्रामाणिक व्यक्तियों द्वारा किये गये अन्वेषणों से ऐसी घटनाएँ सामने आती रहती हैं जिनसे उपरोक्त दोनों तथ्य भली प्रकार सिद्ध होते रहते हैं।

"आत्मा की खोज" विषय को लेकर विश्व भ्रमण करने वाले अमेरिका के एक विज्ञानवेत्ता डा० स्टीवेंटसीन कुछ समय पूर्व भारत भी आये थे। पुनर्जन्म को आत्मा के चिरस्थायी अस्तित्व का अच्छा प्रमाण मानते थे। अस्तु उन्होंने भारत को इस शोधकार्य के लिए विशेष रूप से उपयुक्त समझा। भारत की धार्मिक मान्यता में पुनर्जन्म को स्वीकार किया गया है, इसलिए पिछले जन्म की स्मृतियाँ बताने वाले बालकों की बात यहाँ दिलचस्पी से सुनी जाती है और उससे प्रामाणिक तथ्य उभरकर सामने आते रहते हैं। अन्य देशों में यह स्थिति नहीं है। ईसाई और मुसलमान धर्मों में पुनर्जन्म की मान्यता नहीं है, इसलिए यदि कोई बालक उस तरह की बात करे तो उसे शैतान का प्रकोप समझकर डरा, धमका दिया जाता है तो उभरते तथ्य समाप्त हो जाते हैं।

डा० स्टीवेंसन ने संसार भर लगभग ६०० ऐसी घटनाएँ एकत्रित की हैं, जिनमें किन्हीं व्यक्तियों द्वारा बताये गये उनके पूर्वजन्मों के अनुभव प्रामाणिक सिद्ध हुए हैं। इनमें बड़ी आयु के लोग बहुत कम हैं। अधिकांश तीन से लेकर पाँच वर्ष तक के बालक हैं। नवोदित कोमल मस्तिष्क पर पूर्वजन्म की छाया अधिक स्पष्ट रहती है। आयु बढ़ने के साथ-साथ वर्तमान जन्म की जानकारियाँ इतनी अधिक लद जाती हैं कि उस दबाव से पिछले स्मरण, विस्मृति के गर्त में गिरते चले जाते हैं।

पूर्वजन्म का स्मरण किस प्रकार के लोगों को रहता है, इस सम्बन्ध में डा० स्टीवेंसन का मत है कि जिनकी मृत्यु किसी उत्तेजनात्मक आवेशग्रस्त मनःस्थिति में हुई हो उन्हें पिछली स्मृति अधिक याद रहती है। दुर्घटना, हत्या, आत्म-हत्या प्रतिशोध, कातरता, अतृप्ति, मोहग्रस्तता का विक्षुब्ध घटनाक्रम प्राणी की चेतना पर गहरा प्रभाव डालते हैं और वे उद्वेग नये जन्म में भी स्मृतिपटल पर उभरते रहते हैं। अधिक प्यार या अधिक द्वेष जिनसे रहा है, वे लोग विशेष रूप से याद रहते हैं।

भय, आशंका, अभिरुचि, बुद्धिमत्ता, कला-कौशल आदि की भी पिछली छाप बनी रहती है। जिस प्रकार की दुर्घटना हुई हो उस स्तर का वातावरण देखते ही अकारण डर लगता है। जैसे किसी की मृत्यु पानी में डूबने से हुई तो उसे जलाशयों को देखकर अकारण ही डर लगने लगेगा। जो बिजली कड़कने और गिरने से मरा है, उसे साधारण पटाखों की आवाज भी डराती रहेगी। आकृति की बनावट और शरीर पर जहाँ-तहाँ पाये जाने विशेष चिन्ह भी अगले जन्म में उसी प्रकार पाये जाते हैं। एक स्मृति में पिछले जन्म में पेट का आपरेशन चिन्ह अगले जन्म में भी उसी स्थान पर एक विशेष लकीर के रूप में पाया गया। पूर्वजन्म की स्मृति सँजोये रहने वालों में आधे से अधिक ऐसे थे जिनकी मृत्यु पिछले जन्म में बीस वर्ष से कम थी जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे भावुक सम्वेदनाएँ समाप्त होती जाती हैं और मनुष्य बहु-धंधी, काम-काजी तथा दुनियादार बनता जाता है। भावनात्मक कोमलता जितनी कठोर होती जायेगी, उतनी ही उसकी सम्वेदनाएँ झीनी पड़ेंगी और स्मृतियाँ धुँधली पड़ जायेंगी। डा० स्टीवेन्सन की यह टिप्पणी मुख्यतः पश्चिम की पुनर्जन्म स्मृतियों के विश्लेषण पर आधारित है। निर्मल, सरल, सात्विक, आत्माओं को भी ऐसी स्मृतियाँ रहा करती हैं।

सामान्यतया यह कहा जाता है कि ईसाई और मुसलमान धर्मों में पुनर्जन्म की मान्यता नहीं है, पर उनके धर्मग्रन्थों एवं मान्यताओं पर बारीक दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि प्रकारान्तर से वे भी पुनर्जन्म की वास्तविक को मान्यता देते हैं और परोक्ष रूप से उसे स्वीकार करते हैं।

प्रो० मैक्समूलर ने अपने ग्रन्थ ' सिक्स सिस्टम्स ऑफ इण्डियन फिलासफी' में ऐसे अनेक आधार एवं उद्धरण प्रस्तुत किये हैं जो बताते हैं कि ईसाई धर्म पुनर्जन्म की आस्था में सर्वथा मुक्त नहीं है प्लेटो और पैथागोरस के दार्शनिक ग्रन्थों में इस मान्यता को स्वीकारा गया है। जौजेक्स ने अपनी पुस्तक में उन यहूदी सेनापतियों का हवाला दिया है जो अपने सैनिकों को मरने के बाद भी फिर पृथ्वी पर जन्म मिलने का आश्वासन देकर उत्साहपूर्वक लड़ने के लिए उभारते थे। विजडम ऑफ सोलेमन ग्रन्थ' में महाप्रभु ईसा के वे कथन उद्धृत हैं, जिसमें उन्होंने पुनर्जन्म का प्रतिपादन किया है। उन्होंने अपने शिष्यों से एक दिन कहा था पिछले जन्म का एलिजा ही अबजान बैपटिस्ट के रूप में जन्मा था। वाइविल के चैप्टर ३ पेरा ३-७ में ईसा कहते हैं " मेरे इस कथन पर आश्चर्य मत करो कि तुम्हें निश्चित रूप से पुनर्जन्म लेना पड़ेगा।" ईसाई धर्म के प्राचीन आचार्य फादरा ओरिजिन कहते थे। "प्रत्येक मनुष्य को अपने पूर्वजन्मों के कर्मों के अनुसार अगला जन्म धारण करना पड़ता है।"

दार्शनिक गेटे, फिश, शोलिंग, लेसिंग आदि ने पुनर्जन्म का प्रतिपादन किया है। अँग्रेज दार्शनिक ह्यूम तो दार्शनिक की तात्विक दृष्टि की गहराई इस बात में परखते थे कि वह पुनर्जन्म को मान्यता देता है या नहीं।

सूफी सन्त, मोलाना रूम ने लिखा है, "मैं पेड़-पौधे, कीट-पतंगे, पशु-पक्षी योनियों में होकर मनुष्य वर्ग में प्रवेश हुआ हूँ और अब देव वर्ग में स्थान प्राप्त करने की तैयारी कर रहा हूँ।"

'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स' के बारहवें खण्ड में अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका के आदिवासियों के सम्बन्ध में यह अभिलेख है कि वे सभी समान रूप से पुनर्जन्म को मानते हैं। मरने से लेकर जन्मने तक की विधि-व्यवस्था में मतभेद होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि इन महाद्वीपों के आदिवासी आत्मा की सत्ता को मानते हैं और पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं। यहाँ विदेशों से सम्बन्धित कुछ पुनर्जन्म प्रतिपादक घटनायें दी जा रही हैं।

एम्सटरडम (हालैण्ड) के एक स्कूल में वहाँ प्रिंसिपल की लड़की मितगोल के साथ हाला नाम की एक ग्रामीण कन्या की बड़ी मित्रता थी। हाला देखने में बड़ी सुन्दर थी, मितगोल विद्वान। दोनों में समीपी सम्बन्ध था और परस्पर स्नेह भी। इसलिए

वे प्रायः एक दूसरे से मिलतीं और पिकनिक पार्टियाँ मनाया करतीं।

एक बार की बात है कि दोनों सहेलियाँ कार से कहीं जा रही थीं। सामने से आ रहे किसी भार-वाहक से बचाव करते समय एक विशालकाय वृक्ष के तने से जा टकराईं। भीतर बैठी दोनों सहेलियों में से मितगोल को तो भयंकर चोटें आयीं उसका सम्पूर्ण शरीर क्षत-विक्षत हो गया और कार से निकालते-निकालते उसका प्राणान्त हो गया। हाला के शरीर में यद्यपि बाहर कोई घाव नहीं थे तथापि अन्दर कहीं ऐसी चोट लगी कि उसका भी प्राणान्त वहीं हो गया है। दोनों शव बाहर निकाल कर रखे गये। तभी एकाएक एक विलक्षण घटना घटित हुई -जैसे किसी ने शक्ति लगाकर हाला के शरीर में प्राण प्रविष्ट कर दिये हों, वह एकाएक उठ बैठी और प्रिन्सिपल को पिताजी कहकर लिपटकर रोने लगी। सब लोगों ने उसे धैर्य दिलाया, पर सब आश्चर्यचकित थे कि यह किसान की कन्या प्रिंन्सिपल साहब को अपना पिता कैसे कहती है। उनकी पुत्री मितगोल का शरीर तो अभी भी क्षत-विक्षत अवस्था में पड़ा हुआ था।

उसका नाम-हाला कहकर जब उसे सम्बोधित किया गया तो उसने बताया "पिताजी ! मैं हाला नहीं, मैं तो आपकी कन्या मितगोल हूँ। मैं अभी तक (शव की ओर इशारा करते हुए) इस शरीर में थी। अभी अभी किसी अज्ञात शक्ति ने मुझे हाला के शरीर में डाल दिया है।

अनदेखी, अनहोनी इस घटना का जितना विस्तार होता गया लोगों का कौतूहल उतना ही बढ़ता गया। लोग तरह-तरह के प्रश्न पूछते और कन्या उनका ठीक वही उत्तर देती जिनकी मितगोल को ही जानकारी हो सकती थी। मितगोल की कई सहेलियाँ, सम्बन्धी आये और उससे बातचीत की -उन सब वार्ताओं में हाला के शरीर में प्रविष्ट चेतना ने ऐसी-ऐसी एकान्त की और गुप्त बातें तक बता दी जो केवल मितगोल ही जानती थी।

एक अन्तिम रूप से यह निश्चित करने के लिए कि हाला के शरीर में विद्यमान आत्म-चेतना क्या वस्तुतः मितगोल ही है-वहाँ के वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों, अध्यापकों और प्रिन्सिपल सहित सैकड़ों छात्रों के बीच खड़ाकर उस कन्या से स्पिनोजा के दर्शन शास्त्र' पर व्याख्यान देने को कहा गया। उल्लेखनीय है कि वह मितगोल ही थी जिसे स्पिनोजा के दर्शन जैसे गूढ़ विषय पर अधिकार प्राप्त था। गाँव की सरल कन्या बेचारी हाला स्पिनोजा तो क्या अच्छी कविता भी बोलना नहीं जानती थी। किन्तु जब वह बालिका स्टेज पर खड़ी हुई तो उसने 'स्पिनोजा के तत्वज्ञान' पर भाषण देकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। प्रिन्सिपल साहब ने स्वीकार किया कि उसके शब्द बोलने का ढंग हाव-भाव ज्यों के त्यों मितगोल के जैसे ही हैं , इसलिए वह मितगोल ही है, भले ही इस घटना का अद्भुत रहस्य हम लोगों की समझ में न आता हो।

पुनर्जन्म, मृत्यु और उसके कुछ ही समय बाद जीवित होकर कई -कई वर्ष तक जीवित रहने की सैकड़ों घटनायें प्रकाश में आती रहती हैं और उनसे यह सोचने को विवश होना पड़ता है कि आत्म चेतना पदार्थ से कोई भिन्न अस्तित्व है,-फिर भी मनुष्य सांसारिक मोह-वासनाओं और तरह - तरह की महत्वाकांक्षाओं में इतना लिप्त हो चुका है कि उसे इस ओर ध्यान देने और एक अति महत्वपूर्ण तथ्य को समझकर आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने की भी प्रेरणा नहीं मिलती। महाराज युधिष्ठर के शब्दों में इसे संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य ही कहना चाहिए।

इन्डोनेशिया के प्रायः सभी समाचार पत्रों में उस देश की एक मुस्लिम महिला तजुत जहाराफोना का विवरण विस्तारपूर्वक छपा था जिसके पेट में १८ महीने का बालक है और अँग्रेजी, फ्रेंच, जापानी तथा इंडोनेशियाई भाषायँ बोलता है। उसकी आवाज बाहर सुनी जा सकती है। उसकी डाक्टरी जाँच बारीकी से की गई। यहाँ तक कि इस देश के राष्ट्रपति सुहातो स्वयं उस महिला से मिलने और चमत्कारी बालक के सम्बन्ध में बताई जाने वाली बातों की यथार्थता जाँचने पहुँचे थे।

लेवनान और तुर्की के मुसलिम परिवारों में तो पुनर्जन्म की स्मृतियाँ ऐसी सामने आईं जिनकी प्रामाणिकता परामनोविज्ञान के शोधकर्ताओं ने स्वयं जाकर की और जो बताया गया था उसे सही पाया।

लेवनान देश का एक गाँव कोरनाइल। वहाँ के मुसलमान परिवार में जन्मा एक बालक, नाम रखा गया अहमद। बच्चा जब दो वर्ष का था तभी से अपने पूर्व जन्म की घटनाओं और सम्बन्धियों के बारे में बुदबुदाया करता था। तब उसकी बातों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया । कुछ बड़ा हुआ तो अपना 'निवास खरेबी और नाम बोहमजी बताने लगा।' तब भी किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। एक दिन सड़क पर उसने खरेबी के किसी आदमी को निकलते देखा उसने उसे पहचान कर पकड़ लिया' विचित्र अचम्भे की बात थी।

पता लगने पर पुनर्जन्म के शोधकर्त्ता वहाँ पहुँचे और बड़ी कठिनाई से बालक को उसके बताये गाँव तक ले जाने की स्वीकृति प्राप्त कर सके। गाँव ४० कि० मी० दूर था। रास्ता बड़ा

कठिन और सर्वथा अपरिचित। फिर भी लोग वहाँ पहुँचे। लड़के के बताये बयान उस २५ वर्षीय युवक इब्राहीम बोहमजी के साथ बिल्कुल मेल खाते गये जिसकी मृत्यु रीढ़ की हड्डी के क्षय रोग से हुई थी। तब उसके पैर अशक्त हो गये। पर इस जन्म में जब वह ठीक तरह चलने लगा तो बचपन से ही इस बात को बड़े उत्साह और हर्ष के साथ हर किसी से कहा कि वह अब भली प्रकार चल-फिर सकता है।

खरेबी में जाकर उसने कुटुम्बी, सम्बन्धी और मित्र, परिचितों को पहचाना, उनके नाम बताये और ऐसी घटनाएँ सुनाईं जो सम्बन्धित लोगों को ही मालूम थीं और सही थीं। उसने अपनी प्रेयसी का नाम बताया। मित्र के ट्रक दुर्घटना में मरने की बात कही। मरे हुए भाई भाउद का चित्र पहचाना और पर्दा खोल कर बाहर आई लड़की के पूछने पर उसने कहा तुम तो मेरी बहिन हुडा हो।

तुर्की के अदाना क्षेत्र में जन्मा इस्माइल नामक बालक जब १ १/२ वर्ष का था तभी वह अपने पूर्व जन्म की बातें सुनाते हुए कहता मेरा नाम अवीत सुजुल्मस है। अपने सिर पर बने एक निशान को दिखाकर बताया करता कि इस जगह चोट मार कर मेरी हत्या की गई थी। जब बालक पाँच वर्ष का हुआ और अपने पुराने गाँव जाने का अधिक आग्रह करने लगा तो घरवाले इस शर्त पर रजामन्द हुए कि वह आगे-आगे चले और उस गाँव का रास्ता बिना किसी के पूछे स्वयं बताये। लड़का खुशी-खुशी चला गया और सबसे पहले अपनी कब्र पर पहुँचा। पीछे उसने अपनी पत्नी हातिश को पहचाना और प्यार किया। इसके बाद उसने एक आइसक्रीम बेचने वाले मुहम्मद को पहचाना और कहा तुम पहले तरबूज बेचते थे और मेरे इतने पैसे तुम पर उधार हैं मुहम्मद ने यह बात मंजूर की और बदले में उसे बर्फ खिलाई।

पत्र प्रतिनिधि बच्चे को अदाना नगर ले गये। वहाँ वह अपनी पूर्व जन्म की बेटी गुलशरां को देखते हुए पहचान गया और मेरी बेटी-प्यारी बेटी गुलशरां कहकर आँसू बहाने लगा। उसने अपने हत्या के स्थान अस्तबल को दिखाया और बताया कि रमजान ने मुझ पर कुल्हाड़ी से हमला किया और मार डाला। इसके बाद वह अपनी कब्र पर पत्रकारों को ले गया जहाँ उसे दफनाया गया था। पुलिस ने भी इस कत्ल की ठीक वैसी ही जाँच की थी जैसी कि बच्चे ने बताई। हत्यारे को उससे पहले ही फाँसी लग चुकी थी। बालक इस्माइल का चचा उससे एक दिन क्रूर व्यवहार करने लगा तो उसने चिल्ला कर कहा तुम भूल गये मेरे ही बाग में काम करते थे और मैंने ही तुम्हें मुद्दतों रोटी खिलाई थीं। सचमुच आविद के इस जन्म के चचा पर भारी अहसान थे।

लेवनान के कारनाइल नगर से ६७ किलोमीटर दूर खरेबी गाँव के एक अहमद नामक लड़के ने कुछ बड़े होते ही अपने पूर्व जन्म के अनेक विवरण बताये जिसमें ट्रक दुर्घटना, पैरों का खराब होना, प्रेमिका से विफलता, भाई का चित्र, बहिन का नाम आदि के वे सन्दर्भ प्रकाश में आये जिनसे बालक का पूर्व परिचित होना सम्भव न था। बालक ड्रूज वंश का-इस्लाम धर्मावलम्बी है। आमतौर से उस वातावरण में पुनर्जन्म की मान्यता नहीं है तो भी इस घटना ने उन्हें पुनर्विचार के लिए विविश कर दिया।

इंग्लैण्ड की एक विचित्र पुनर्जन्म घटना कुछ समय पूर्व प्रकाश में आई थी। नार्थम्बरलैण्ड के एक सज्जन पोलक की लड़कियाँ सड़क पर किसी मोटर की चपेट में आकर मर गई थीं। बड़ी ११ वर्ष की थी-जोआना। छोटी छह वर्ष की -जैकलीन।

दुर्घटना के कुछ समय बाद श्रीमती पोलक गर्भवती हुई तो उन्हें न जाने क्यों यही लगता रहा कि उनके पेट में दो जुड़वाँ लड़कियाँ हैं। डाक्टरी जाँच कराई तो वैसा कुछ प्रमाण न मिला। पर पीछे समय पर दो जुड़वाँ लड़कियाँ ही जन्मीं। एक का नाम रखा गिलियन, दूसरी का जेनिफर। इन दोनों के शरीरों पर वे निशान पाये गये जो उनके पूर्वजन्म में थे। इतना ही नहीं, उनकी आदतें भी वैसी ही थीं, जैसी मृत लड़कियों की। इन लड़कियों को मरी हुई बच्चियों के बारे में कुछ बताया नहीं गया था, पर वे बड़े होने पर आपस में पूर्वजन्म की घटनाओं की चर्चा करती हुईं पाई गईं। समयानुसार उन्होंने पूर्वजन्म के अनेकों संस्मरण बताकर तथा अपने उपयोग में आने वाली वस्तुओं की जानकारी देकर यह सिद्ध किया कि उन दोनों ने पुनर्जन्म लिया है।

पुनर्जन्म होने और पूर्वजन्म की स्मृति बनी रहने वाली घटनाओं की शृंखला में एक कड़ी माइकेल शेल्डन की इटली-यात्रा की है। इटली में यों प्रत्यक्षत: उसे कुछ आकर्षण नहीं था और न कोई ऐसा कारण था-जिसकी वजह से इस यात्रा के बिना उसे चैन ही न पड़े। कोई अज्ञात प्रेरणा उसे इसके लिए एक प्रकार से विवश ही कर रही थी। माइकेल ने यात्रा के कुछ ही दिन पूर्व एक स्वप्न देखा कि वह इटली के किसी पुराने नगर में पहुँचा है और किसी जानी-पहचानी गली में घुसकर एक पुराने मकान में जा पहुँचा है। जीने में चढ़ते हुए वह चिर-परिचित दुमन्जिले कमरे में सहज स्वभाव घुस गया और देखा-एक लड़की घायल

पड़ी है, उसके गले पर छुरे के गहरे घाव हैं और रक्त बह रहा है। अनायास ही उसके मुँह से निकला-मारिया! मारिया! घबराना मत, मैं आ गया।' सपना टूटा । शेल्डन इस विचित्र स्वप्न का कुछ मतलब न समझ सका और आतंकित बना रहा। फिर भी यात्रा तो उसने की ही।

जब वह जिनोआ की सड़कों पर ऐसे ही चक्कर लगा रहा था तो उसे वही स्पप्न वाली गली दिखाई पड़ी । अनायास ही पैर उधर मुड़े और लगा कि वह किसी पूर्व परिचित घर की ओर चला जा रहा था। स्वप्न में देखी कोठरी यथावत थी, वह सहसा चिल्लाया- मेरिया! मेरिया! तुम कहाँ हो ?

जोर की आवाज सुनकर पड़ौस के घर में से एक बुढ़िया निकली, उसने कहा- मारिया तो कभी की मर चुकी। अब वहाँ कहाँ है ? पर तुम कौन हो ? बुढ़िया ने शेल्डन को घूर-घूर का देखा और पहचानने के बारे में आश्वस्त होकर बोली-पर लुइगी ब्रोन्दोनो! तुम तो इतने अर्से बाद लौटे- अब तक कहाँ रह रहे थे ?

बुढ़िया हवा में गायब हो गई तो शेल्डन और भी अधिक अकचकाया। उसे ऐसा लगा- मानो किसी जादू की नगरी में घूम रहा है। अपरिचित जगह में ऐसे परिचय-मानो सब कुछ उसका जाना-पहचाना ही हो। बुढ़िया भी उसकी जानी-पहचानी हो-घर भी- गली भी ऐसी है- मानो वह वहाँ मुद्दतों रहा हो। मारिया मानो उसकी कोई अत्यन्त घनिष्ट परिचित हो।

हतप्रभ शैल्डन को एक बात सूझी वह सीधा पुलिस ऑफिस गया और आग्रहपूर्वक यह पता लगाने लगा कि क्या कभी कोई मारिया नामक लड़की वहाँ रहती थी-क्या वह कत्ल में मरी ? तलाश कौतूहल की पूर्ति के लिए की गई थी, पर आश्चर्य यह कि १२२ वर्ष पुरानी एक फाइल ने उस घटना की पुष्टि करदी।

पुलिस रिकार्ड के कागजों ने बताया कि उसी मकान में मारिया बुइसाकारानेबो नामक एक १९ वर्षीय लड़की रहती थी। उसकी घनिष्टता एक २५ वर्षीय युवक लुइगी व्रोन्दोनो नामक युवक से थी। दोनों में अनबन हो गई तो युवक ने छुरे से उस लड़की पर हमला कर दिया और कत्ल करने के बाद इटली छोड़कर किसी अन्य देश को भाग गया। तब से अब तक उसका कोई पता नहीं चला।

शेल्डन को यह विश्वास पूरी तरह जम गया कि वही पिछले जन्म में मेरिया का प्रेमी और हत्यारा रहा है। यह तथ्य-उसे न तो स्वप्न प्रतीत होता था न भ्रम, वरन् जब भी चर्चा होती, उसके कहने का ढंग ऐसा ही होता-मानो किसी यथार्थ तथ्य का वर्णन कर रहा है।

इस घटना को परामनोवैज्ञानवेत्ताओं ने अपनी शोध का विषय बनाया। शैल्डन से लम्बी पूछ-ताछ की । पुलिस कागजात देखे और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जो बताया गया है-उसमें कोई वहकाबा या अतिशयोक्ति नहीं है। इस प्रकार जो अन्य घटनाओं के विवरणों पर गम्भीर विचार करने के बाद शोधकर्त्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अतीन्द्रिय चेतना की प्रस्फुरणा से ऐसी घटनाओं की स्मृति भी सामने आ सकती हैं, जिनका न तो वर्तमानकाल से कोई सीधा सम्बन्ध है और न अनुभव करने वाले व्यक्ति को इस तरह की कोई जानकारी या जिज्ञासा। ये स्मृतियाँ पूर्वजन्म की ही हो सकती हैं।

कोपेन हेगेन (डेनमार्क) में एक छह: सात वर्षीय बालिका थी उसका नाम था लूनी मार्कोनी। जब वह तीन वर्ष की थी, तभी से वह अपने माता-पिता से कहती रहती कि वह फिलीपाइन्स की है और वहाँ जाना चाहती है। मेरे पिता एक रेस्टोरेन्ट के स्वामी हैं, वह अपना नाम मारिया एस्पना बताती। यह बच्ची अपने पूर्वजन्म के संस्मरण इतनी ताजगी से सुनाती, जैसे वह अभी कल-परसों की ही बात हो। उसने यह भी बताया कि उसकी मृत्यु १२ वर्ष की आयु में बुखार आने के कारण हुई थी। लड़की के दावों की जाँच करने के लिए परामनोविज्ञान के शोधकर्त्ता श्री प्रो० हेमेन्द्रनाथ वनर्जी फिलीपाइन्स गये। वहाँ उन्होंने सारी बातें सत्य पाईं। यह ६८-६९ के लगभग की बात है।

ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध साहित्यकार डिक्सन स्मिथ बहुत समय तक मरणोत्तर जीवन के सम्बन्ध में अविश्वासी रहे। पीछे उन्होंने प्रामाणिक विवरणों के आधार पर अपनी राय बदली और वे परलोक एवं पुनर्जन्म के समर्थक बन गये। उन्होंने अपनी पुस्तक न्यू लाइट ऑन सरवाइवल' में उन तर्कों और प्रमाणों को प्रस्तुत किया है जिनके कारण उन्हें अपनी सम्मति बदलने के लिए विवश होना पड़ा।

पैरिस के अन्तर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक सम्मेलन में सर आर्थर कानन डायल ने परलोक विज्ञान को प्रामाणिक तथ्यों से परिपूर्ण बताते हुए कहा था कि उस मान्यता के आधार पर मनुष्य जाति को अधिक नैतिक एवं सामाजिक बनाया जा सकना सम्भव होगा और स्मरण-वियोग से उत्पन्न शोक-सन्ताप का एक आशा भरे आश्वासन के आधार पर शमन किया जा सकेगा।

निस्सन्देह मरणोत्तर जीवन की मान्यता के दूरगामी सत्परिणाम हैं। उस मान्यता के आधार पर हमें मृत्यु की विभीषिका को सहज सरल बनाने में भारी सहायता मिलती है। नैतिक मर्यादा की स्थिरता के लिए तो उसे दर्शन शास्त्र का बहुमूल्य सिद्धान्त कह सकते हैं।

जन्म-मृत्यु का अविराम क्रम

डाक्टर इवान स्टीवेन्सन ने पुनर्जन्म की स्मृति से सम्बन्धित घटनाओं की जाँच-पड़ताल करने के सम्बन्ध में समस्त

संसार का दौरा किया है। इस सन्दर्भ में वे भारत भी आये थे और उन्होंने यहाँ अनेकों घटनाओं की गंभीरतापूर्वक जाँच की और उनमें से अधिकांश को पूर्ण विश्वस्त बताया। इनकी खोज में दो घटनाएँ और भी अधिक आश्चर्यजनक थीं। कन्नौज के निकट जन्मे एक बालक के शरीर पर गहरे घावों के पाँच निशान जन्म काल से ही थे। वह कहता था पिछले जन्म में शत्रुओं ने उसकी हत्या चाकुओं से गोदकर की थी, यह उसी के निशान हैं। जाँच करने पर पूर्व जन्म में जहाँ उसने बताया था सचमुच ही उस नाम के व्यक्ति की चाकुओं से गोदकर हत्या किये जाने का प्रमाण था। ठीक इसी से मिलती-जुलती एक पूर्व जन्म स्मृति तुर्की के एक बालक की थी, जिसकी शत्रुओं ने छुरे से हत्या की थी। उसके शरीर पर घावों के निशान मौजूद थे और पुलिस के रिकार्ड में बताये गये व्यक्ति की हत्या ठीक उसी प्रकार किये जाने का विवरण दर्ज था, जैसा कि उस बालक ने बताया था। डा० इवान स्टीवेन्शन ने समस्त विश्व में इस प्रकार के प्रामाणिक विवरण प्राप्त किये हैं। अन्य देशों की अपेक्षा भारत में ऐसे प्रमाण इसलिए अधिक मिलते हैं कि यहाँ की संस्कृति में पुनर्जन्म की मान्यता सहज ही सम्मिलित है, इसलिए स्मृति बताने वाले बालकों को उस तरह डाँटा-डपटा नहीं जाता जैसा कि पुनर्जन्म न मानने वाले ईसाई, मुसलमान धर्मवाले देशों में, वहाँ इस तरह की स्मृतियों की जाँच-पड़ताल करना तो दूर, बताने वाले पर धर्म विरोधी होने के आक्रमण, आरोप की बात सोचकर उसे चुप कर देना ही ठीक समझा जाता है। भारत में स्थितियाँ अनुकूल होने से प्रमाणों को दबाया नहीं जाता।

डा० स्टीवेंसन के शोधरिकार्ड में एक ऐसी पाँच वर्ष की लड़की की भी घटना थी, जो हिन्दी भाषी परिवार में जन्म लेकर भी बंगला गीत गाती थी और उसी शैली में नृत्य करती थी। जबकि कोई बंगाली उस घर,परिवार के समीप भी नहीं था। इस लड़की ने अपना पूर्व जन्म सिलहट का बताया। इस जन्म में वह जबलपुर पैदा हुई, पर उसने पूर्वजन्म की जो घटनाऐं तथा स्मृतियाँ बताईं वे पता लगाने पर ९५ प्रतिशत सही सिद्ध हुईं। भारत में स्थितियाँ अनुकूल होने से प्रमाणों को दबाया नहीं जाता। इसी प्रकार की ११७ घटनाओं में डा० स्टीवेन्सन ने जाँच के बाद प्रामाणिक पाया कुछ ये हैं।

१-बदायूँ जिले के २१ वर्षीय प्रमोद कुमार ने अपने पूर्व जन्म के मुरादाबाद निवासी माता-पिता, पत्नी आदि को पहचाना। अपनी मृत्यु का कारण पेट का दर्द बताया। सम्बन्धियों को पहचाना, जेबर आदि की चर्चा की तथा अनेक घटनायें बताईं।

२- बदायूँ कचहरी के चपरासी, रमेश नाई के चार वर्षीय पुत्र अनिल ने अपने को पूर्व जन्म में तेजपाल मुख्तार का पुत्र बताया। अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में उसका कहना है कि अब से चार वर्ष पूर्व जब वह १६ वर्ष का था तब अपने बड़े भाई की पत्नी को लिवाने के लिए रिक्शे में जा रहा था कि रास्ते में ३३७ नम्बर की मोटर से रिक्शा टकरा गया और उसकी मृत्यु हो गई। सहसवान ले जाने पर उसने पूर्व जन्म के चचेरे भाइयों तथा उनकी पत्नियों को पहचाना। बड़े भाई की जूते की दुकान पर बिना रास्ता पूछे वह चला गया और बताया कि वह स्वयं भी इस दुकान पर बैठा करता था।

३- रिसौली गाँव के सुन्दरलाल नामक एक डाक कर्मचारी की ७ वर्षीय पुत्री मीरा ने अपने को बदायूँ के सर्राफ सीताराम की पत्नी बताया जिसका स्वर्गवास २३ वर्ष पूर्व हुआ था। तीन वर्ष की आयु में ही लड़की ने पूर्व जन्म की घटनायें बतानी शुरू की थीं। जब लड़की को बदायूँ ले जाया गया तो वह उस मकान पर अड़ गई जहाँ उसकी मृत्यु हुई थी। यह मकान बेच दिया गया है और सीताराम जी दूसरे मकान में रहने लगे हैं, यह बताने पर ही लड़की आगे बढ़ी। उसने अपने बेटे और पोते को भी पहचाना तथा कृषि में घाटा आना, घोड़ा-ताँगा रहने आदि की बातें बताईं जो सही थीं।

सुनील दत्त नामक लड़के ने अपने को पूर्व जन्म का स्वर्गीय सेठ श्रीकृष्ण बताया, उसके अनेक प्रमाण दिये तथा यह भी बताया कि उसने धर्मशाला, इण्टर कालेज तथा रामलीला मैदान के फाटक निर्माण कराने में कितना दान स्वयं दिया और कितना दूसरों से दिलाया। उसने ग्रुप फोटो में से अपना फोटो पहचान कर बताया।

मिदनापुर (बंगाल) के कालीचरन घोषाल एम० ए० पास करने के बाद एकाउण्टेण्ट जनरल के दफ्तर में नौकर हो गये। पीछे उनका तबादला मद्रास हो गया। एक दिन एक के० वी० नायर नामक मद्रासी युवक उनसे मिलने आया और बोला मैंने देखते ही यह अनुभव किया कि आप पहले जन्म के मेरे छोटे भाई हैं। घोषाल जी को इस पर विश्वास न हुआ। अन्ततः यह निश्चय हुआ कि वस्तुस्थिति जानने के लिए बनारस चला जाय जहाँ कि उनके पिताजी रहते थे। दोनों गये। युवक ने पिताजी को ऐसी अनेक बातें बताईं जो उनके निजी परिवार के अतिरिक्त और किसी को मालुम न थीं। युवक की यह बात भी सच निकली कि उसे १२ वर्ष की आयु में डाकुओं द्वारा मारा गया था।

आज से कोई ५ वर्ष पूर्व घाटापोला गाँव में एक पोस्टमैन के घर रूवी कुसुमा नाम की एक कन्या पैदा हुई। जब उसे कुछ

ज्ञान आया तो वह घर की तमाम वस्तुओं को शंका की दृष्टि से देखने लगी। वह कहती यह मेरा घर नहीं। मेरे माता-पिता अथूलवाला गाँव में रहते हैं, यह स्थान यहाँ से चार मील दूर है। वहाँ मुझे अच्छी-अच्छी वस्तुयें खाने को मिलती थीं। एक दिन मेरे माता-पिता खेत काटकर लौट रहे थे। मार्ग में एक कूऐं पर पानी पीते समय मैं उसमें गिर गई और मेरी मृत्यु हो गई। उसने अपने पिता का नाम पुंजीनोबा और एक भाई का नाम करुणासेन बताया। उसने अपनी चाची और नन्दराम मन्दिर की भी कई घटनायें सुनाईं, जब इनकी जाँच की गई तो देखा गया कि लड़की की बताई हुई सारी बातें सच हैं। मन्दिर के पुजारी ने भी बताया कि उसकी बताई हुई बातों का सम्बन्ध सचमुच इसी मन्दिर से है। बात सच थी, पर लौटना खाली हाथ ही पड़ा।

४ वर्ष का एक नन्हा बालक अपने पिता से बोला- "पिताजी मुझे बन्दूक खरीद दीजिये, शिकार खेलने का मन करता है।" पिता ने सोचा कि लड़के ने किसी को ऐसा कहते हुए सुना होगा। बच्चे अनुकरणशील होते हैं। बात याद रही आयी होगी सो उसने बन्दूक की माँग कर दी। स्नेह में आकर-कुछ बहलाने की दृष्टि से कह दिया- बेटा! मेरे पास इतने रुपये कहाँ हैं ? जो तुम्हें बन्दूक खरीदूँ।

लड़के ने पहले जैसी स्वाभाविक मुद्रा में कहा- पिताजी ! पैसों की चिन्ता मत कीजिए। मैंने बहुत से रुपये जमीन के अन्दर छिपाकर रखे हैं आप चाहें तो मेरे साथ पिलखाना गाँव चलें-वहाँ में अपने गढ़े रुपये निकालकर दे सकता हूँ।

घटना शाहजहाँपुर (उ० प्र०) जिले की और वहाँ से १२ मील दूर एक छोटे-से गाँव माहरा की है जो कुछ समय पूर्व अखबारों में भी प्रकाश में आई थी और जो पुनर्जन्म की वास्तविकता से सम्बन्ध रखती है।

यह कोई नई बात नहीं थी। माहरा ग्राम का यह लड़का अपने पिता पुत्तू लाल पासी को पहले भी कई बार कह चुका था कि पिताजी मैं तो पिलखाना का लोहार हूँ। मेरी स्त्री है, बच्ची है, मेरे भाई का नाम दुर्गा है, मेरी ससुराल कांजा गाँव में है। पिता अपने बेटे की बातं सुनता और भारतीय मान्यताओं के अनुरूप अनुभव भी करता कि बच्चा हो सकता है पूर्व जन्म में सचमुच ही पिलखाना में रहा हो। पर वह हमेशा बच्चे की पुरानी स्मृतियों को टालता ही रहा।

किन्तु जब उसने धन गढ़े होने की बात कही तो कौतूहल वश कहिये या लालच में, वह बच्चे को पिलखाना ले गया। वहीं उसने अपनी पत्नी को पहचान लिया, पुत्री को पहचान लिया। यद्यपि घर का कई स्थानों पर पुनर्निर्माण हो चुका है तथापि वह अपने कमरे में गया और वह धन जो उसने पूर्व जन्म में गाढ़ा था बता दिया। उसके पूर्वजन्म के भाई दुर्गा ने वहीं सबके सामने खोदा और सचमुच ही गड़ा हुआ धन पाकर आश्चर्यचकित हो गया। बच्चे से कई प्रश्न पूछे गये जो उसने सच-सच बता दिये यह प्रामाणित हो गया कि वह दुर्गा का भाई ही है पर उसने कहा-जब मैं बीमार था तब मेरे लिये एक नई धोती और एक नया कुर्ता आया था। वह मैं पहन नहीं पाया था। वह अमुक बक्से में रखे थे। घरवालों ने वह बक्सा खोला तो सचमुच जैसी उसने बताई थी वैसी धोती और वैसा ही नया कुर्ता रखा हुआ मिल गया । पर उस बेचारे को वह नया कुर्त्ता भी नहीं मिल सका। उसी तरह खाली हाथ अपनी उस नई जन्मभूमि में लौट आया जिस तरह जिन्दगी भर कहीं से भी छल-कपट और अनीतिपूर्वक बटोरने वाले लोग मृत्यु के समय खाली हाथ लौट जाते हैं। संचित कमाई की एक पाई भी तो साथ नहीं जाती।

करुण की ओर संकेत करते हुए ५ वर्ष की लड़की शुक्ला ने कहा- यह हमारे तूमी' हैं। खेतू नामक करुण के बड़े भाई को उसने मीनू के चाचा और श्री हरिधन चक्रवर्ती की ओर संकेत से ही उसने कहा- यह मीनू के पिता हैं। और 'मीनू' को तो देखते ही उसकी वर्षों की करुणा और ममता फूट पड़ी थी। वह पाँच वर्ष की ही बालिका, पर एक प्रौढ़ माता की तरह उसकी आँखों से आँसू झरने लगे।

'तूमी' बंगाल में छोटे देवर को कहते हैं। करुण को उसकी बड़ी भाभी ही तूमी कहती थी और सब कुटी कहा करते थे। इससे घटनास्थल पर उपस्थित सभी व्यक्ति आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सके। पच्चीस-तीस व्यक्तियों के बीच अपने पूर्वजन्म के पति, देवर, श्वसुर और पुत्री को पहचान लेना कौतूहल वर्द्धक था।

शुक्ला का जन्म सन १९५४ में पश्चिमी बंगाल के कम्पा नामक गाँव में श्री के० एन० सेन गुप्ता के यहाँ हुआ। अभी वह कोई दो वर्ष की ही हुई थी और बोलने का हल्का हल्का-सा ही अभ्यास हुआ था, तभी वह कोई गुड़िया, लकड़ी या जो कुछ भी खेलने को पाती, उसे ही 'मीनू-मीनू' कहकर अपने हृदय से लगा लेती। किशोर बालिका में मातृत्व के यह प्रौढ़ संस्कार घरवालों की आकृष्ट अवश्य करते, पर किसी ने उस पर उसी तरह गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया।

शुक्ला जैसे-जैसे बड़ी होने लगी, उसके मस्तिष्क में पूर्व-जन्म की स्मृतियाँ और भी तीव्रता से उभरने लगीं। वह अपनी माँ से, पिता से और सब घरवालों से कहती -मेरी ससुराल भारपाड़ा के रथतला स्थान में है। वहाँ मेरे पति, देवर और सौतेली सास

रहती है। मेरे पति मुझे एक ही बार सिनेमा दिखाने ले गये थे। उस पर सास बड़ी नाराज हुई थी। मेरी लड़की का नाम मीनू है। आप लोग मुझे रथतला ले चलिये, मुझे अपनी मीनू की बहुत याद आती है। मरने से लेकर मुझे अब तक भी उसकी याद नहीं भूलती।

शुक्ला अभी पाँच वर्ष की थी, पर इतनी बातें बताती थी कि घर वाले हैरान रह जाते। पता लगने पर मालूम हुआ कि सचमुच वहाँ से कोई १५ मील दूर पर रथतला स्थान है। वे लोग एक दिन मीनू शुक्ला को लेकर वहाँ पहुँचे और गाँव के किनारे ही ले जाकर छोड़ दिया। इसके बाद शुक्ला गलियों-गलियों होती हुई अपने ससुराल के घर जा पहुँची।

इसके बाद उसने अपने पूर्व के सभी सम्बन्धियों को न केवल पहचान लिया वरन् प्रत्येक के साथ उसने भारतीय नारी के आदर्शनुरूप लज्जा व संकोच का प्रदर्शन भी किया। उसने बताया कि मेरा पहले का नाम मंना' था। डा० पाल आदि परामनोविज्ञान के शोधकर्त्ताओं को कई ऐसी बातें भी बताई, जो उसके पति के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था और वे सच भी निकलीं। विश्वास विश्वविद्यालय का परामनोविज्ञान विभाग इस सम्बन्ध में बड़ी तत्परता से व्यापक शोध कार्य कर रहा है। इस अनुसंधान कार्य में आश्चर्यजनक तथ्य हाथ लगे हैं। नीचे कुद उदाहरण दिये जा रहे हैं, वह इस विश्वविद्यालय के परामनोवैज्ञानिकों की खोजें हैं-

लंका में ६ वर्ष पूर्व नवम्बर, १९६२ में नुगेगोड़ा के श्री जयसेना के घर एक लड़का पैदा हुआ। बच्चा जब तक बोल नहीं सकता था, तब तक तो कोई घटना नहीं घटी पर जैसे ही उसने बोलना सीख लिया, वह माँ से हमेशा कहता रहता-"तुम मेरी माँ नहीं हो । मेरी माँ बेवनगोंडा में रहती है।

जयसेना परिवार इस बात से दुःखी तो होता था पर सन १९६५ तक उन्होंने इस सम्बन्ध में कोई छानबीन नहीं की। एक दिन श्रीमती जयसेना और उनके पति अपने किसी सम्बन्धी से भेंट करने मटाले जा रहे थे। २४ मील की यात्रा करते ही बच्चा सीट पर खड़ा होकर चिल्लाने लगा-"यहीं मेरी माँ का घर है, मुझे उतार दो।" जाते समय तो बच्चे को बलपूर्वक बैठा लिया गया किन्तु उन सबने लौटते समय सच्चाई की जाँच करने का निश्चय किया। लौटते समय उन्होंने एक टैक्सी कर ली। जैसे ही टैक्सी उस स्थान पर पहुँची बच्चा फिर चिल्लाया-टैक्सी रोक दी गई। बच्चा उससे उतरकर एक घर की ओर तेजी से भागा। बच्चे को पकड़कर लोग फिर गाड़ी में तो ले आये पर यह पता लगा लिया कि यहाँ सेनेविरले नाम की एक महिला का बच्चा कई वर्ष पूर्व खो गया था।

कुछ दिन बाद विस्तृत जाँच के लिए बच्चे को वहाँ फिर लाया गया तो बच्चा स्वयं आगे चलकर अपने पूर्वजन्म के घर तक पहुँच गया और सेनेविरले के पैरों पर मिठाई रखकर माँ-माँ कहकर रोने लगा। उसने अपनी माँ को याद दिलाते हुए यह भी बताया कि एक बार उसके भाई ने उसे पीटा था। चाचा चार्ली के बिजली के कारखाने और अपने धान के खेत भी उसने पहचान लिये। सेनेविरले जो कभी पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करती थीं मान गईं कि तीन वर्ष पूर्व उनका जो बच्चा खो गया था, वही जयसेना के उदर से जन्मा है।

जयपुर के एक सरकारी कर्मचारी के ७ वर्षीय बालक मुकुल ने अपनी पूर्व-जन्म की घटनायें बताकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। लड़के ने बताया कि वह लखनऊ मेडीकल कालेज का विद्यार्थी था। अपने भाई के साथ कार में जा रहा था तो कार के ट्रक से टकरा जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। उसने यह भी बताया कि उसकी बहिन का नाम आशा-ग्वाले का गोविन्द और कुत्ते का टामी था, बच्चा छोटी आयु में ही कितनी ही बीमारियों के सम्बन्ध में जानकारी तथा दवाऐं बताता था।

मथुरा से थोड़ी दूर पर छाता कस्बा है। वहाँ के निवासी श्री ब्रजलाल वार्ष्णेय के घर एक बच्चे ने जन्म लिया। उसका नाम प्रकाश रखा गया। अभी यह बालक चार ही वर्ष का हुआ था कि वह एक दिन रात को सोते-सोते उठा, घर से निकलकर बाहर आ गया और सड़क की ओर चल पड़ा यह तो अच्छा हुआ कि घरवालों को पता चल गया वे पीछे-पीछे भागे और बच्चे को थोड़ी ही दूर से पकड़ लाये।

किन्तु हैरानी उस समय और बढ़ गई जब प्रकाश का स्वभाव सा हो गया कि वह रात के अँधेरे में ही अकेला जाग पड़ता और चुपचाप घर से निकलकर सड़क की ओर भागने लगता। घर वाले पकड़ते और पूछते तो वह कहता-मुझे कोसीकलाँ ले चलो मेरा घर कोसी में है वहाँ मेरे माता पिता, भाई और बहन हैं, मैं उनसे मिलूँगा।

वार्ष्णेय परिवार लगातार की इस परेशानी से चिन्तित तो था ही अब उनकी जिज्ञासायें और तर्क-वितर्क भी प्रबल हो उठीं। एक दिन वे बच्चे को कोसी लेकर आये भी पर दैवयोग से उस दिन वह दुकान बन्द थी जिसे वह अपने पूर्वजन्म की दुकान कहता था इसलिए वह और कुछ पहचान न पाया और इस तरह जैसे गया था वैसे ही वापस ले आया गया।

अगले दिन उस दुकान के मालिक श्री भोलानाथ जैन को पता चला कि कोई लड़का छाता से यहाँ आया था और यह कहता था कि यह उनके पूर्वजन्म के पिता की दुकान है तो एकाएक उन्हें ५ वर्ष पूर्व हुई अपने दस वर्षीय पुत्र निर्मल की मृत्यु की घटना याद हो आई। निर्मल बीमार पड़ा था। लगातार कोशिशों के बाद उसका बुखार टूटा नहीं एकाएक ऐसा जान पड़ा कि बालक का बुखार बिलकुल उतर गया है वह स्वस्थचित्त होकर बातें करने लगा।

निर्मल ने कहा-" मैं छाता अपनी माँ के पास जा रहा हूँ" और उसके बाद उसका निधन हो गया था।

उस घटना की याद आते ही श्री भोलानाथ जैन ने छाता जाने का निश्चय किया। साथ अपनी पुत्री को लेकर जब वे छाता पहुँचे और पता लगाते हुए श्री बृजलाल वार्ष्णेय के यहाँ पहुँचे तो बालक प्रकाश उन्हें देखते ही खुशी से नाच उठा और श्री भोलानाथ की पुत्री को अपनी बहिन तारा कहकर उसके साथ घुल-मिल कर ऐसी बातें करने लगा जैसे उसके साथ वर्षों की पहचान हो।

इस घटना के बाद प्रकाश की सोई स्मृतियाँ एक बार पुन: तीव्र हो उठीं। अब यह पुन: कोसीकलाँ जाने के लिए हठ करने लगा। श्री भोलानाथ के आग्रह पर वार्ष्णेय परिवार उसे कोसीकलाँ लाने के लिए राजी हो गया पर वे लोग भीतर ही भीतर कुछ डर से रहे थे कि कहीं ऐसा न हो कि लड़का वहाँ से न आने का ही हठ करने लगे और वह अपने हाथ से भी चला जाये।

कोसीकलाँ लाये जाने पर उसने अपने पूर्वजन्म की माँ और अपने भाई जगदीश को पहचान लिया और अपने भाई देवेन्द्र को तो उसने देखते ही देवेन्द्र' कहकर पुकारा भी, उससे लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि क्या पूर्वजन्मों की स्मृतियाँ इतनी भी स्पष्ट हो सकती हैं। दोनों परिवारों की बात-चीत से पता चला कि पूर्व- जन्म के निर्मल और अब के प्रकाश की रुचि, आदतें, व्यवहार बहुत अंशों में एक ही समान हैं। निर्मल ने ही प्रकाश के रूप में जन्म लिया है। इस सम्बन्ध में कोई सन्देह शेष नहीं रहता। पहले जन्म में उसने छाता जाने का मोह प्रदर्शित किया। इस जन्म में उसकी कोसी के प्रति ममता है कुछ ऐसी माया का फेर है कि मनुष्य बार-बार जन्म लेता और मरता है पर अपने शाश्वत स्वरूप को पहचानने और पाने का प्रयत्न नहीं करता।

ऐसी ही एक घटना कश्मीर, श्रीनगर की है। श्रीनगर के पास राधोपुर एक गाँव है। उससे ४ मील के फासले पर पीरनगर ग्राम स्थित है। एक बार यहाँ का एक पण्डित राधोपुर ग्राम से होकर गुजर रहा था, कि सामने से आकर एक लड़की उसके पैरों से लिपट गई और अपनी ग्रामीण भाषा में कहा.दादा कहाँ जाते हो ? तुमने मुझे इतने दिनों से तलाश क्यों नहीं किया था ? मैं तो यहीं हूँ । पंडित को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने यहाँ के लोगों से पूछा कि यह लड़की कौन है ? लड़की के प्रश्नों ने हैरत में डाल दिया था। क्योंकि उसने इससे पूर्व कभी भी इस लड़की को नहीं देखा था।

गाँव वाले काफी तादात में इकट्ठे हो गये। पंडित भी कौतूहल में था। आखिर वह चबूतरे पर बैठ गया और लड़की को गोद में उठा कर प्यार के साथ उसका आशय जानना चाहा। लड़की ने कहा मुझे इतनी जल्दी भूल गये मैं आपकी भतीजी जसोदा हूँ। मैं चेचक में मरी थी। आपने और रमुआ भाई ने तो बीमारी के समय मेरी बड़ी देख-भाल की थी। अब पंडित की समझ में आ गया कि यह लड़की पूर्वजन्म में मेरी भतीजी जसोदा थी। उनकी आँखों में आँसू भर आये और उसे गले लगा लिया।

समाचार पाते ही गाँव भर के सभी स्त्री-पुरुष जमा हो गये और वे सब लड़की की बात को अधिक जाँच करना चाहने लगे। निदान यह तय हुआ कि पीरनगर लड़की को ले जाया जाय। पीरनगर इस गाँव से सिर्फ चार मील के फासले पर था। इसलिए तय हुआ कि कल सवेरे लड़की को साथ लेकर लोग वहाँ जाँय और मामले की सच्चाई जानें। दूसरे दिन करीब ३०० ग्रामीण लड़की को लेकर पीरनगर पहुँचे, गाँव में घुसते ही लड़की को आगे कर लिया गया और अन्य सब लोग उसके पीछे थे। गाँव में घुसते ही लड़की ने बताना शुरू किया कि यह अमुक का घर है यह अमुक घर है ! वह टेड़ी-मेड़ी गलियों को पार करती हुई सीधी अपने घर पहुँची और बिना किसी झिझक के मकान में अन्दर घुसती हुई चली गई। वहाँ उसने अपने पूर्वजन्म के बड़े भाई रमुआ को पहिचाना। चाची की गोद में बैठकर हिलकी भरकर रोई। कहने लगी मैं तो पास के गाँव में ही थी तब भी तुमने मुझे क्यों नहीं बुलाया। इन आठ वर्षों में मकान में कुछ परिवर्तन हो गया था। सो भी उसने पूछा कि यहाँ पाल थी अब दालान कैसे बन गया ? और भी बहुत सी बातें उसने अपने घर वालों से कीं। उसने मुहल्ले की दूसरी लड़कियों के नाम बताये और उसने मिलने की इच्छा प्रकट की। उन्हें बुलाया गया तो लड़की ने सब को पहचाना और इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि वो इतनी बड़ी कैसे हो गई हैं।

जसोदा ग्यारह वर्ष की उम्र में आठ साल पूर्व चेचक की बीमारी में मर गई थी। अब वैश्य के यहाँ जन्म लिये हुए इसे छ: वर्ष हो गये अर्थात् पूर्व शरीर त्यागे हुए उसे आठ वर्ष व्यतीत हो गये थे। इस बीच में वह सामाजिक ज्ञान को बहुत कुछ भूल

गयी थी। जैसा कि उसने अपनी सहेलियों से पूछा था कि तुम इतनी बड़ी कैसे हो गईं और तुम्हें यह बच्चे कहाँ से मिले। पूर्व-जन्म में निश्चय ही वह इन सब बातों को जानती होगी परन्तु इस जन्म में यह सब ज्ञान उसने बहुत कुछ अंशों में भुला दिया था। पीरनगर में लड़की की सब सच्ची बातों को जान कर लोग बड़े कौतूहल में थे। छ: वर्ष इस जन्म के और नौ महीने माता के पेट के इस प्रकार पौने सात वर्ष व्यतीत हुए। बाकी सवा वर्ष उसके कहाँ व्यतीत हुए इस प्रश्न को हल करने के लिए सभी लोगों ने अपनी बुद्धि खर्च की, पर कोईसंतोष जनक उत्तर न मिल सका। लड़की से भी पूछा गया पर वह भी कुछ न बता सकी। निदान लड़की को उसकी वर्तमान गाँव राधोपुर ले आया गया। लड़की से यह पूछा गया कि क्या वह पीरनगर रहना पंसद करेगी ? उसने मना कर दिया। क्योंकि वह अपनी वर्तमान माता के प्रेम को छोड़ने में भी असमर्थ थी।

लड़की के ज्ञान के बारे में जब अच्छी तरह खोज की गई तो सामाजिक धार्मिक या अन्य प्रकार साधारण ज्ञान उसे इतना ही था। जितना राधोपुर में रहकर वह छ: वर्ष में इकट्ठा कर सकी थी। पीरनगर के वातावरण में ब्राह्मण के घर पली हुई ग्यारह वर्ष की लड़की को जितनी जानकारी होनी चाहिए उतनी उसे नहीं थी। केवल घटनायें भर याद थीं।

पुनर्जन्म की एक अन्य घटना का उल्लेख फरवरी १९८९ स्वामी शिवानन्द सरस्वती ने अपनी पुस्तक "ह्वाट बिकम्स ऑफ दि सोल आफ्टर डेथ" में किया है । घटना करीब २० वर्ष पुरानी है। कलकत्ते के जामा पुकुर नामक ग्राम के एक कृषक परिवार में एक अठारह वर्षीय लड़का अपनी लम्बी बीमारी के बाद मृत्यु शय्या पर पड़ा-पड़ा अपनी मौत के अन्तिम दिन गिन रहा था। माँ-बाप ने उसके हर प्रकार के उपचार करवाये पर स्वास्थ्य में कोई प्रगति नहीं हुई। अन्त में हारकर उन्होंने एक ग्रामीण वैद्य की शरण ली और इलाज उसके संरक्षण में चलने लगा, पर यहाँ भी कोई लाभ नहीं हुआ। इस पर क्रुद्ध लड़के की चाची उस वैद्य को कोसने लगी। बीमार लड़का वहीं शय्या में लगभग अचेतावस्था में पड़ा हुआ था। वाद-विवाद से लड़के में कुछ हलचल दिखाई पड़ी। वह अपने कुटुम्बियों को सम्बोधित करते हुए कहने लगा-"मैं स्वस्थ न हो सका" इसमें इन वैद्यजी का कोई दोष नहीं है। हमारा पिछला जीवन ही ऐसा था, जिसके कारण आज मुझे इतना कष्ट उठाना पड़ रहा है। विगत जीवन में एक रेलवे आफिस में काम करता था और आपसी मनमुटाव के कारण मैंने अपने ही एक सहयोगी की हत्या कर दी।

हत्या के बाद मैं पकड़ा गया। मुकदमा चला। वहाँ फाँसी की सजा से तो मैं बच गया, पर कठोर कारावास के दण्ड से न बच सका। वह पिछला कुकर्म ही आज मुझे इस फलितार्थ के रूप में प्राप्त हुआ है। अब मैं कभी स्वस्थ न हो सकूँगा, पर क्या आप (अपनी माँ की ओर इशारा करते हुए) जानती हैं कि हमारे बुरे कर्मों का फल मेरे साथ आपको क्यों भोगना पड़ रहा है ? मेरे कारण आपको क्यों संताप झेलना पड़ रहा है ? पिता की ओर इशारा करते हुए उसने पुन: कहना प्रारम्भ किया, गत जन्म में ये मेरे बेटे थे। उस समय इनका एक ही प्रयास रहता कि किस तरह अधिक से अधिक मुझे दु:ख पहुँचे। इसी कारण विधाता की मर्जी के अनुसार मुझे यहाँ जन्म लेना पड़ा और आप लोगों को इतने कष्ट उठाने पड़े।

इतना कहकर वह कुछ क्षण रुका और फिर कहा "बस यही मेरी विगत जीवन की गाथा है। अब मैं चलता हूँ।" इसके उपरान्त उस लड़के की मृत्यु हो गई

पुनर्जन्म का पूर्वाभास

इसी तरह का एक और प्रसंग कल्याण मार्च १९६६ में छपी बेमुला (लंका) का है। सुरेश मैतृमूर्ति नाम के एक व्यक्ति जिन्होंने बौद्ध धर्म में दीक्षा ली थी बीमार पड़ गये। बीमारी के दिनों में उन्हें किसी अज्ञात प्रेरणा से मालूम हो गया कि उनकी मृत्यु कल शाम तक अवश्य हो जायेगी और उनका दूसरा जन्म उत्तर भारत में कहीं होगा।

लोगों ने इनकी बातों का विश्वास नहीं किया क्योंकि तब स्थिति काफी सुधर चुकी थी। दिन भर स्थिति सुधरती ही रही किन्तु बात उन्हीं की सच हुई, सांयकाल से पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई। मरने से पूर्व उन्होंने अपनी कलाई घड़ी अपने गुरुभाई श्री आनन्द नेत्राय को दी दोनों में बड़ा आत्मभाव था इसलिए श्री नेत्राय ने उनकी दूसरी बात का भी पता लगाने का निश्चय किया।

कई वर्ष बाद श्री आनन्द नेत्राय मद्रास आये और एक योगी से मिले उसने बताया कि सुरेश का जन्म विहार प्रांत में हुआ है। पिता का नाम रमेश सिंह और माता का नाम सावित्री बताया। इतने सूत्र मिल जाने पर श्री आनन्द नेत्राय ने पुलिस रिकार्ड की सहायता से पता लगाया। बच्चे का पता चल गया और कुछ विचित्र बातें सामने आईं जैसे यह कि यह बालक भी अपने पूर्व जन्म की बातें बताने लगा। आनन्द नेत्राय लंका में प्रोफेसर हैं। वे बच्चे को वहाँ ले गये। उसने जहाँ अनेक बातें स्पष्ट पहचानीं,

वहाँ लोगों को अपनी घड़ी पहचान कर आश्चर्य चकित कर दिया। आनन्द नेत्राय के हाथ की घड़ी देखते ही उसने कहा-"यह घड़ी मेरी है। यह वही घड़ी थी जो मृत्यु के पूर्व सुरेश ने ही आनन्दजी को दी थी।

बरेली जिले के बहेड़ी ग्राम में पुनर्जीवन की एक विलक्षण घटना घटित हुई। गन्ना विकास संघ के एक चपरासी की एक अल्प वयस्क पुत्री की मृत्यु हो गई। जब उसे दफनाने के लिए ले जाया जा रहा था तो शव हिलता डुलता दिखाई दिया। जमीन पर रख दी गई और थोड़ी देर में ही वह जीवित होकर उठ बैठी। और भी विचित्र बात उस समय हुई जब उस बालिका ने जैसे ही लौटकर घर में कदम रखा तो पड़ोस की एक उसी आयु की बालिका की मृत्यु हो गयी। यह घटना मृत्यु के सम्बन्ध में और भी दार्शनिक गूढ़ता पैदा करने वाली कही जा रही है। इससे पता चलता है कि मृत्यु परमात्मा की एक नियमित व्यवस्था है, भले ही उसे समझने में कुछ समय क्यों न लगे।

मध्य प्रदेश छतरपुर जिले के असिस्टैन्ट इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स श्री एम० आई० मिश्र की एक कन्या जिसका नाम स्वर्णलता है, अपने पिछले दो जन्मों की बातें बताती है। इससे पहले वह असम के किसी गाँव में जन्मी थी। बालिका जिसे न तो कभी असम जाने का अवसर मिला न उसने असम भाषा ही सीखी, कुछ असमी भाषा के गीत भी सुनाती है, इसे अति मस्तिष्क की स्मृति शक्ति का चमत्कार ही कहा जा सकता है।

स्वर्णलता इससे पहले जबलपुर जिले में शाहपुर के समीप किसी गाँव में जन्मी थी। वह कहा करती कि उसके दो बेटे भी हैं, जब उसे उक्त स्थान पर ले जाया गया तो उसने घर, अपने दोनों बेटे और बहुत से पड़ौसीयों को भी पहचान लिया। पता लगाने पर मालूम हुआ कि १९ वर्ष पूर्व इस घर में विंदिया देवी नामक एक महिला की मृत्यु हृदय गति रुक जाने के कारण हो गई थी। १८ वर्ष में उसने दो जन्म धारण किये। विभिन्न स्थान और परिस्थितियों में जन्म लेने के पीछे परमात्मा का क्या नियम विधान है, वह तो वही जानते होंगे। पर यह सुनिश्चित है कि मृत्यु के बाद ही जीवन का अन्त नहीं हो जाता वरन् जीवात्मा की विकास यात्रा के यह दोनों पटाक्षेप हैं। जैसे दिन और रात गुजरने के बाद भी उनका क्रम नहीं टूटता, उसी प्रकार मृत्यु के बाद भी जीवन आता रहता है।

परामस्तिष्क की तरह वैज्ञानिकों को अब यह भी सन्देह होने लगा है कि स्थूल शरीर में रहने वाले चेतन शरीर के सेल्स अग्नि या प्रकाश जैसे परमाणुओं से मिलते-जुलते होते हैं। इस शरीर मे मस्तिष्क की संकल्प-भावनायें, विचार और क्रिया-कलापों के द्वारा परिवर्तन होता रहता है। मृत्यु के बाद परिवर्तित और जीव का कर्म गति के अनुसार अन्य शरीर में विकास हो सकता है।

राजस्थान विश्व-विद्यालय के परामनोवैज्ञानिक डा० एच बनर्जी के अनुसार तिब्बती लोगों को भी ऐसा ही विश्वास है। वहाँ की मान्यतायें भारतीयों जैसी ही हैं और यह माना जाता है कि कुछ लोगों के पुनर्जन्म तो सामान्य क्रम में होते रहते हैं पर संकल्पवान् तेजस्वी आत्मायें अपनी इच्छानुसार जीवन धारण करती हैं, इस सम्बन्ध में तिब्बत के वर्तमान् १४ वें दलाईलामा की घटना प्रस्तुत की जा सकती है।

वर्तमान दलाईलामा के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि वे १३ वें दलाईलामा के ही अवतार हैं। उन्होंने मृत्यु के समय ऐसे चिह्न छोड़े थे कि उनका जन्म चीन के किसी प्रान्त में होगा। निश्चित समय तक प्रतीक्षा के बाद तिब्बती मन्त्रि-परिषद के सदस्य चीन गये और उस बच्चे का पता लगा लिया, तब वह बालक २ वर्ष का ही था। उसे ल्हासा लाने की अनुमति माँगी गई तो वहाँ के गर्वनर ने उसके बदले तीन लाख चीनी रुपये लेकर बच्चे को ले जाने की अनुमति प्रदान की। जब इस बालक को तिब्बत लाया गया और उसे विधिवत् समारोह के साथ दलाईलामा के सिंहासन पर बैठाया गया तो उसने सम्पूर्ण क्रियाऐं इतनी शुद्धता और गम्भीरता से कीं मानो वह स्थान और वहाँ के सभी कर्मचारीगण बहुत पहले से ही परिचित रहे हों।

प्रस्तुत घटनायें पढ़कर हमें अपने शास्त्रों के कथन पर विश्वास करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। परमात्मा जीव को अनन्त आनन्द लेने के लिये बार-बार सुयोग प्रदान करता है। जीव भौतिक आकर्षणों में पड़कर उस महाशक्ति को समझ नहीं पाता। माया का स्पर्श होते ही वह बुराइयाँ करने लगता है और इस तरह कर्म में बँधकर पुनर्जन्म के चक्कर में पड़ा दुःख उठाता रहता है। यह घटनायें कुछ निर्मल और जाग्रत आत्माओं की हो सकती हैं, जिन्हें अपने पूर्व जन्मों की थोड़ी याद रह जाती हो, अधिकांश को तो ज्ञान ही नहीं होता कि उनकी बाल्यावस्था किस तरह बीती तो उससे पूर्व और उससे भी पूर्व उनकी क्या स्थिति थी, इसका ज्ञान तो क्या, उसकी कल्पना भी उन्हें नहीं उठती।

परिस्थितियाँ, घटनायें और विज्ञान द्वारा इन्द्रयातीत जगत् की उपस्थिति स्वीकार कर लेने पर यह सोचने को विवश होना पड़ रहा है कि मनुष्य जीवन का अन्त मृत्यु से नहीं हो जाता। काल-चक्र अनवरत चलता रहता है। मृत्यु के बाद जन्म और जन्म के बाद मृत्यु का क्रम निरन्तर जारी रहता है।

जन्मान्तर प्रगति या पतन के आधार-आत्म-सत्ता के संकल्प एवं कर्म

महर्षि वशिष्ठ राम को पुनर्जन्म प्रकरण पढ़ा रहे थे। उस समय की बात है जब एक प्रसंग में उन्होंने राम को बताया-

आशापाश शताबद्धा वासनाभाव धारिण:।
कायात्कायमुपायान्ति वृक्षाद्वृक्षमिवाण्डजा।।

हे राम! मनुष्य का मन सैकड़ों आशाओं (महात्त्वाकांक्षाओं) और वासनाओं के बन्धन में बँधा हुआ मृत्यु के उपरान्त उन क्षुद्र वासनाओं की पूर्ति वाली योनियों और शरीरों में उसी प्रकार चला जाता है जिस प्रकार एक पक्षी एक वृक्ष को छोड़कर फल की आशा से दूसरे वृक्ष पर जा बैठता है।

मनुष्य जैसा विचारशील प्राणी इतर योनियों-मक्खी, मच्छर, मेढ़क, मछली, साँप, बैल, भैंस, मगर, नेवला, शेर, बाघ,चीता, भेड़िया, कौवा आदि योनियों में किस प्रकार चला जाता होगा। यह बात राम की समझ में नहीं आई। उन्होंने अपनी शंका महर्षि के समक्ष प्रकट की और कहा- भगवन्! मनुष्य जैसा समझदार व्यक्ति भला दूसरी योनियाँ क्यों पसन्द करेगा? इस पर महर्षि ने राम को जिस ढंग से जीवात्मा द्वारा अन्य शरीर धारण करने की अवस्था और मनोविज्ञान समझाया है, वह वस्तुत: हर विचारशील व्यक्ति के लिये मनन करने की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वस्तु है वशिष्ठ ने राम को वह तत्वज्ञान जिन शब्दों में दिया, योग-वाशिष्ठ में उन्हें तीसरे अध्याय के ५५ वें सूत्र में ३९, ४०, ४१ और ४२ वें श्लोकों में इस प्रकार बताया है-

हे राम! वीर्य रूप में जीवात्मा ही स्त्री की योनि में आता है और गर्भ में पककर एक बालक का रूप धारण करता है। (यहाँ शास्त्रकार का वह कथन भी प्रामाणिक है जिसमें आत्मा को अणोऽरणीयान- अर्थात् सूक्ष्म से भी सूक्ष्म कहा गया है। पुरुष शरीर का वीर्य कोष (स्पर्म) अत्यन्त सूक्ष्म अणु होता है यह विज्ञान भी सिद्ध कर चुका है) और अपने पूर्व जन्मों के संस्कारों के अनुरूप अच्छा या बुरा शरीर प्राप्त करता है। (उल्लेखनीय है कि उसी कोष में ही जीव की शारीरिक रचना के सारे गुण सूत्र (क्रोमोसोम) रहते हैं। यह भी विज्ञान सिद्ध कर चुका है)। बालक धीरे-धीरे बढ़ने लगता है और इस प्रकार वह युवावस्था में पदार्पण करता है। पकी हुई इन्द्रियाँ अपना सुख माँगती हैं। कुछ पूरी होती हैं अधिकांश अधूरी। अधूरी रह गईं वासनायें, महात्त्वाकांक्षायें वह मनुष्य अपने मन में भीतर ही भीतर दबाता रहता है। एक बार उठी वासना जब तक पूर्ण नहीं हो जाती, नष्ट नहीं होती, वरन् वह भीतर ही भीतर और भी बलवती होती रहती हैं। (फ्रायड ने स्वप्न प्रकरण में स्वीकार किया है कि मनुष्य की दमित वासनायें ही स्वप्न में उसी तरह के काल्पनिक चित्र तैयार करती हैं और मनुष्य अद्भुत तथा अटपटे स्वप्न देखता है) वासनाओं के दमन से शरीर के पंच भौतिक पदार्थों पर दबाव पड़ता है और वे क्रमश: कमजोर होते चले जाते हैं, जिससे वृद्धावस्था आ जाती है और मनुष्य का शरीर मर जाता है, पर मन अपनी वासना के अनुसार एक- दूसरे जगत में प्रवेश कर जाता है। गीता में भगवान् कृष्ण ने शरीरों को क्षेत्र या जगत कहा है। महर्षि वशिष्ठ ने यह जो दूसरे जगत में जाने की बात कही उसका तात्पर्य दूसरी योनि के शरीर से ही है। शरीर और भौतिक प्रकृति में कोई अन्तर नहीं है, यह विज्ञान भी मानता है कि अब तक ढूढ़े गये १०८ तत्व ही विभिन्न क्रमों में सजकर विभिन्न प्रकार के कोश और शरीरों की रचना करते हैं।) इस प्रकार अपने मन की वासना के अनुरूप जीव तब तक अनेक शरीरों में भ्रमण करता रहता है जब तक उसकी वासनायें पूर्ण शान्त नहीं हो जातीं और वह फिर से शुद्ध आत्मा की स्थिति में नहीं आ जाता।

चक्कर चौरासी लाख योनियों का

मोटेतौर से जीवात्मा के योनि-परिभ्रमण का अर्थ यह समझा जाता है कि वह छोटे-बड़े कृमि-कीटकों, पशु-पक्षियों की चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने के उपरान्त मनुष्य जन्म पाता है। पुनर्जन्म की घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य को दूसरा जन्म मनुष्य में ही मिलता है। इसके पीछे तर्क भी है। जीव की चेतना का इतना अधिक विकास, विस्तार हो चुका होता है कि उतने फैलाव को निम्न प्राणियों के मस्तिष्क में समेटा नहीं जा सकता। बड़ी आयु का मनुष्य अपने बचपन के कपड़े पहनकर गुजारा नहीं कर सकता। यही बात मनुष्य योनि में जन्मने के उपरान्त पुन: छोटी योनियों में वापिस लौटने के सम्बन्ध में लागू होती है। वह हो सकता है कि जीवन-क्रमिक विकास करते हुए मनुष्य स्तर तक पहुँचा हो। इसका प्रतिपादन तों डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त में भी हो सकता है, पर एक बार मनुष्य जन्म लेने के बाद पीछे लौटने की बात तर्क संगत नहीं है। कर्मो का फल भुगतने की बात हो तो दुष्कर्मों का दण्ड जितना अधिक मनुष्य जन्म में मिल सकता है, उतना पिछड़ी योनियों में नहीं। मनुष्य को शारीरिक कष्ट से भी अधिक

मानसिक प्रताड़नाऐं सहनी पड़ती हैं। शोक, चिन्ता, भय, घाटा, विछोह आदि से वह तिलमिला उठता है, जबकि अन्य प्राणियों को मात्र शारीरिक कष्ट ही होते हैं। मस्तिष्क अविकसित रहने के कारण उनमें भी उतनी तीव्र पीड़ा नहीं होती जितनी मनुष्यों को होती है। ऐसी दशा में पाप कर्मों का दण्ड भुगतने के लिए निम्नगामी योनियों में मनुष्य को जाना पड़े यह आवश्यक नहीं।

यह सही है कि सामान्यतया मनुष्य का जन्म मनुष्य योनि में ही होता है। उसकी बौद्धिक चेतना इतनी विकसित हो चुकी होती है कि किसी अविकसित मस्तिष्क वाले म्यान में उसे ठूँसा नहीं जा सकता। बड़ी उम्र के व्यक्ति को छोटे बच्चे के कपड़े नहीं पहनाये जा सकते। इसलिए मनुष्य का अगला जन्म मनुष्य में ही होने की मान्यता अधिक तथ्यपूर्ण है। बुरे-भले कर्मों का फल तो मनुष्य शरीर में भी मिल सकता है, मिलता भी है।

किन्तु इस नियम के भी अपवाद पाये गये हैं। मनुष्य का अन्य शरीर में प्रवेश अथवा जन्म जो कुछ भी कहा जाय उसके उदाहरण भी देखने को मिलते हैं। पशुओं के शरीर तथा मन में ऐसी विशेषताऐं पाई गई हैं। जो उनमें आश्चर्यजनक मात्रा में मानवी भावना एवं प्रकृति होने का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

पश्चिम बंगाल के वर्दवान जिले में चाँदमारी कोलोनी आसनसोल निवासी अध्यापक श्री रामनरायण सिंह की गाय ने ३० अक्टूबर १९६९ को एक बछड़े को जन्म दिया। बंगाली नस्ल की काली गाय ने बछड़ा भी काला ही दिया। इस बछड़े की प्रकृति में मनुष्य जैसी मनोवृति और आदतें देखने को मिलीं। इसकी विलक्षण प्रकृति को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे और अनुभव करते थे कि यह पूर्वजन्म का कोई भावुक मनुष्य ही रहा होगा।

बछड़ा आदमी की गोद में बच्चे की तरह सोने का प्रयत्न करता था। जब कोई प्यार से उसे सुला लेता तो आनन्द-विभोर होकर ऐसी मुद्रा में चला जाता मानो होश-हवास खोकर गहरी निद्रा में चला गया। जब कभी अपने मालिक की गोद में किसी बच्चे को बैठा देख लेता तो उसे उतारकर ही छोड़ता और उस जगह पर खुद जा बैठता। यों खाता तो घास भी था, पर जब थाली में मनुष्य का भोजन दिया जाता तो खाने की तरकीब और सलीका देखते ही बनता। चाय का पूरा शौकीन-वह गर्म कितनी ही क्यों न हो ? देखते देखते प्याला साफ कर देता। पास बैठे मनुष्य को हलका धक्का देकर यह इशारा करता कि उसे घास या रोटी हाथ से खिलाई जाय। बिना दाल, साग के रूखी रोटी देने पर उसे खाता नहीं और नाराजी जाहिर करता। गृह-स्वामिनी उसके प्रति आवेश प्रकट करती तो घर के एक कोने में सट कर जा बैठता और आँसू बहाने लगता। यों प्रमाद में तुलसी के पत्ते वह प्रसन्नतापूर्वक खाता किन्तु आँगन में लगे तुलसी के गमले पर उसने कभी मुँह नहीं डाला। पूजा के समय शान्तिपूर्वक आकर बैठ जाता। रस्सी से बँधा होता तो उसे तुड़ाने का प्रयत्न करता और पूजा के समय देवस्थान तक पहुँचने का प्रयत्न करता।

सामान्यतः सृष्टि का विज्ञान सम्मत नियम यह है कि कोई भी जीव अपने माता-पिता के गुण सूत्रों (कोमोसोम्स) से प्रभावित होता है। शरीर के आकार-प्रकार से लेकर आहार-विहार और रहन-सहन की सारी क्रियाऐं मनुष्य ही नहीं जीव-जन्तुओं में भी पैतृक होती हैं। इस नियम में थोड़ा-बहुत अन्तर तो उपेक्षणीय हो सकता है, पर असाधारण अपवाद उपेक्षणीय नहीं हो सकते जो संस्कार सैकड़ों पीढ़ी पूर्व में भी सम्भव न हों, ऐसे संस्कार और जीव-जन्तुओं के विलक्षण कारनामें भारतीय दर्शन के पुनर्जन्म और जीव द्वारा कर्मवश चौरासी लाख योनियों में भ्रमण के सिद्धान्त को ही पुष्ट करते हैं।

जोहानीज वर्ग (अफ्रीका) का एक गड़रिया बकरियाँ चरा कर लौट रहा था। उसने एक झाड़ी के पास खों-खों कर रही बबून बन्दरिया देखी। लगता था वह बच्चा अपने माँ-बाप से बिछुड़ गया है। गड़रिया उसे अपने साथ ले आया और जोहानीज वर्ग के एक औद्योगिक फार्म के मालिक को उपहार में दे दिया।

अफ्रीका की जिस बबून बन्दरिया की घटना प्रस्तुत की जा रही है उसमें असाधारण मानवीय गुणों का उभार उस औद्योगिक फार्म में पहुँचते ही उसकी आयु के विकास के साथ प्रारम्भ हो गया। उसे किसी से कोई प्रशिक्षण नहीं मिला, फिर उसमें उस विलक्षण प्रतिभा का जागरण कहाँ से हुआ जिसके कारण वह इस परिवार की अन्तरंग सदस्य बन गई ? आज के विचारशील मनुष्य के सामने यह एक जटिल और सुलझाने के लिए बहुत आवश्यक प्रश्न है।

बन्दरिया का नाम आहला रखा गया। फार्म मालिक एस्टन को पशुओं से बड़ा लगाव है, उनकी उपयोगिता समझने के कारण ही उन्होंने फार्म के भीतर ही एक पशुशाला भी स्थापित की है। उसमें गायें, बछड़े-बछड़ियाँ, कुत्ते, बकरियाँ आदि दूध देने वाले पशु भी पाले हैं, उनसे उनकी अच्छी आय भी होती है और बचे समय का उपयोग का साधन भी। पशुओं को चराने और उनकी देख-रेख के लिए एक नौकर रखा गया थां यह बन्दरिया भी उसे ही देख-रेख के लिए दे दी गई।

नौकर उसे साथ लेकर गौ-चारण के लिए जाता था धीरे धीरे उसको अभ्यास हो गया। एक दिन किसी कारण से नौकर अपने गाँव चला गया। उस दिन बिना किसी से कुछ कहे ठीक समय पर बन्दरिया भेड़-बकरियों को बाड़े के बाहर निकाल ले

गई और दोनों कुत्तों की सहायता से उन्हें दिन भर चराती रही। उसने चरवाहे का नहीं कुशल चरवाहे का काम किया। भटके हुए मेमनों को उनके माता-पिता तक बगल में दाबकर पहुँचाकर, जिनके पेट आधे भरे रह गये उन्हें हरी घास वाले भू-भाग की ओर घेरकर पहुँचाकर उसने अपनी कुशलता का परिचय दिया। शाम को कुछ ऐसा हुआ कि बकरी का एक बच्चा तो जाकर स्तनों में लगकर दूध पीने लगा, दूसरा कहीं खेल रहा था। आहला ने देखा कि वह अकेला ही सारा दूध चट किये दे रहा है उसने उसे पकड़कर वहाँ से अलग किया। दूसरे बच्चे को भी लाई, तब फिर दोनों को एक-एक स्तन से लगाकर दूध पिलाया। मालिक यह देखकर बड़ा खुश हुआ। उसने चरवाहे को दूसरा काम दे दिया, तब से आहला लगातार १६ वर्ष तक चरवाहे का काम करती आ रही है। इस अवधि में उसने पशुओं की सुरक्षा, स्वास्थ्य रख-रखाव में ऐसे परिवर्तन और नये प्रबन्ध किये हैं जिन्हें देखकर लगता है, मानो वह पूर्वजन्म में कोई गड़रिया रही हो और उसने भेड़ बकरिया चराने से लेकर उनकी व्यवस्था तक का सारा काम स्वयं किया हो।

वह शिकारी, जन्तुओं से मेमनों की रक्षा करती है। शाम को हर एक पशु की गणना करती है। कोई पशु बिछुड़ गया हो, कोई मेमना कहीं पीछे रह गया हो तो वह स्वयं जाकर उसे ढूँढ़ कर लाती है। फुरसत के समय उनके शरीर के जुयें मारने से लेकर छोटे-छोटे मेमनों के साथ क्रीड़ा करने की सारी देख-रेख आहला स्वयं करती है। उसे देखकर जोहानीज वर्ग के बड़े-बड़े वकील और डाक्टर भी कहते हैं- इस बन्दरिया के शरीर में यह कोई मनुष्य आत्मा है। कदाचित् उन्हें पता होता कि जीवनी-शक्ति के रूप में आत्मा एक है, दो नहीं वह शक्ति इंच्छा रूप में इधर उधर विचरण करती और कभी मनुष्य तो कभी पशु-पक्षी और अन्य जीव के रूप में जन्म लेती रहती है।

योग वाशिष्ठ में इस तथ्य को बड़ी सरलता से प्रतिपादित किया गया है। लिखा है-

ऐहिकं प्राक्तनं वापि कर्म यद्चितं स्फुरत्।
पौरषौडसो परो यत्नो न कदाचन निष्फल:।।

- ३ ।९५ ।३४

अर्थात्- पूर्वजन्म और इस जन्म में किये हुए कर्म, फल-रूप में अवश्य प्रकट होते हैं । मनुष्य का किया हुआ यत्न, फल लाये बिना नहीं रहता है।"

कर्म की प्रेरणा, मन की इच्छा और आवेगों से होती है इसलिए इच्छाओं को ही कर्मफल का रूप देते हुए शास्त्रकार ने आगे लिखा है-

कर्म बीजं मन: स्पन्द: कथ्यतेऽथानुभूयते।
क्रियास्तु विविधास्तस्य शाखाश्चित्र फलास्तरो:।।

-योग वाशिष्ठ ३ । ९६ ।११

अर्थात्-मन का स्पन्दन ही कर्मों का बीज है, कर्म और अनुभव में भी यही आता है। विविध क्रियायें ही तरह-तरह के फल लाती हैं।

नये शरीर में आने के पश्चात् अपने पूर्व अनुभवों का विवरण लिखते हुए एक जाग्रत आत्मा की अनुभूति का वर्णन वेद में इस प्रकार आता है-

पुनर्मन: पुनरायुर्म आगन्पुन: प्राण: पुनरात्मा
म आगन् पुनश्चक्षु: पुन: क्षोत्रं म आगन्। वैश्वानरो-
ऽदब्ध स्तनूपा अग्निर्न: पातु: दुरितादवधात्।।

-यजुर्वेद ४ ।१५

अर्थात्-शरीर में जो प्राण-शक्ति (आग्नेय परमाणुओं के रूप में, काम कर रही थी मैंने जाना नहीं कि मेरे संस्कार उसमें किस प्रकार अंकित होते रहे। मृत्यु के समय मेरी पूर्वजन्म की इच्छायें, सोने के समय मन आदि सब इन्द्रियों के विलीन हो जाने की तरह मेरे प्राण में विलीन हो गई थीं वह मेरे प्राणों का (इस दूसरे शरीर में) पुनर्जागरण होने पर ऐसे जाग्रत हो गये हैं जैसे सोने के बाद जागने पर मनुष्य सोने के पहले के संकल्प-विकल्प के आधार पर काम प्रारम्भ कर देता है। अब मैं पुन: आँख, कान-आदि इन्द्रियों को प्राप्त कर जाग्रत हुआ हूँ और अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भुगतने को बाध्य हुआ हूँ।

इस कथन से आधुनिक विज्ञान का "जीन्स-सिद्धान्त" पूरी तरह मेल खाता है। कोश के आग्नेय या प्रकाश भाग को ही प्राण कह सकते हैं । पैतृक या पूर्व जन्मों के संस्कार इन्हीं में होते हैं यदि प्राणों की सत्ता को शरीर से अलग रखकर उसके अध्ययन की क्षमता विज्ञान ने प्राप्त कर ली तो पुनर्जन्म और विभिन्न योनियों में भ्रमण का रहस्य भी वैज्ञानिक आसानी से जान लेंगे।

तथापि तब तक यह उदाहरण भी इस परिकल्पना की पुष्टि में कम सहायक नहीं। आहला बन्दरिया उसका एक उदाहरण है। बन्दरों में मनुष्य से मिलती-जुलती बौद्धिक क्षमता तो होती है पर यह कुशलता और सूक्ष्म विवेचन की क्षमता उनमें नहीं होती यह संस्कार पूर्व-जन्मों के ही हो सकते हैं। आहला की यह घटना दैनिक हिन्दुस्तान और दुनिया के अन्य प्रमुख अखवारों में भी छप चुकी है दिलचस्प बात तो यह है कि आहला एक बार कुछ दिन के लिए कहीं गायब हो गई। फिर अपने आप आ गई। इसके कुछ दिन पीछे उसके बच्चा हुआ। बच्चे के प्रति उसका मोह असाधारण मानवीय जैसा था। दैवयोग से बच्चा मर गया

पर आहला तब तक उसे छाती से लगाये रही जब तक वह सूखकर अपने आप ही टुकड़े-टुकड़े नहीं हो गया। कुछ दिनों पूर्व पुनः गर्भवती हुई और उसकी खोई हुई प्रसन्नता फिर से वापस लौट आई।

बँदरिया ही क्यों, अपने असाधारण कारनामों के लिए कैरेकस का एक तोता पिछले वर्ष ही विश्व-विख्यात हो चुका है। इस तोते के बारे में लोगों का कहना है कि उसमें किसी कम्युनिस्ट नेता के गुण विद्यमान हैं। तोते को तोड़-फोड़ की कार्यवाही में सहयोग देने के अपराध में कैरेकस से २८७ मील दूर फाल्कन राज्य के सैन फ्रान्सिस्को स्थान पर बन्दी बनाया गया।

यह तोता क्यूबा के "फिडल कास्ट्रो" विचारधारा के साम्यवादी गुरिल्लों को "हुर्रा" कहकर उत्साहित किया करता और उन्हें क्यूबाई भाषा से मिलते-जुलते उच्चारण और ध्वनि में मार्गदर्शन किया करता, गुरिल्ले उसके संकेत बहुत स्पष्ट समझने लगे थे उन्हें इस तोते से बड़ी मदद मिलती थी। उन्होंने इसका नाम "चुचो" रखा था। अब इस तोते की जीभ साफ की जा रही है और उसे नई विचारधारा में ढालने का प्रयास किया जा रहा है, किन्तु उसके संस्कारों में साम्यवाद की जड़ें इतनी गहरी जम गई हैं मानो उसने साम्यवाद साहित्य का वर्षों अध्ययन और मनन किया हो। तोते की यह असाधारण क्षमता इस बात का संकेत है कि अच्छे या बुरे कोई भी कर्म अपने सूक्ष्म संस्कारों के रूप में जीव का कभी भी पीछा नहीं छोड़ते चाहे वह बन्दर हो या तोता।

यह दो उदाहरण व्यक्तिगत हैं, एक और उदाहरण ऐसा है। जो यह बताता है कि व्यक्ति ही नहीं यदि सामाजिक परम्परायें विकृत हो जायें और किसी समाज के अधिकांश लोग एक से विचार के अभ्यस्त हो जायें तो उन्हें उन कर्मों का फल सामूहिक रूप से भोगना पड़ता है। सन् १९१० के लगभग की बात है, दक्षिण पश्चिम अमरीका सामाजिक अपराधों का गढ़ हो चुका था। मांसाहारी होने के कारण वहाँ के लोग उग्र स्वभाव के तो होते ही हैं। हत्या, डकैतियों की संख्या दिनों-दिन बढ़ रही थी। ऐसे कई कुख्यात अपराधी मर भी चुके थे। उन्हीं दिनों वहाँ पाई जाने वाली भेड़ियों की "लोबो" जाति में कई ऐसे खूँख्वार भेड़िये पैदा हुये जिनके आगे लोग हत्या और लूट-पाट करने वालों का भी भय भूल गये।

कोलोरेडो का एक भेड़िया इतना दुष्ट निकला कि उसने अपने थोड़े से ही जीवनकाल में इतने पशु मारे कि उनकी क्षति का यथार्थ अनुमान लगाने के लिए सरकारी सर्वेक्षण किया गया और यह पाया गया कि इस एक भेड़िये ने १००००० डालर मूल्य के पशुओं को केवल शौक-शौक में मार डाला। इसे लोग "कोलोरेडो का कसाई" कहते थे और उसके असाधारण बुद्धि कौशल को देखकर मानते थे ऐसी चतुरता तो मनुष्यों में ही हो सकती है। प्रश्न यह है कि कोई खूँख्वार मनुष्य ही था जिसने कर्मफल या पूर्व जन्मों के संस्कारों के कारण भेड़िये के रूप में जन्म लिया।

१९१५ में ऐसे कई भेड़ियों का आतंक छा गया और तब सरकार को उन्हें मरवाने के लिए काफी धन भी खर्च करना पड़ा। "जैक द रिपर" भेडिये को सरकार ने इनाम देकर मरवाया। एक तीन टाँग का भेड़िया, जिसने केवल अपना शौक अदा करने के लिए लगभग एक हजार पशुओं का बध किया, वह भी ऐसे ही मारा गया। इसकी बुद्धि बताते हैं, मनुष्यों से कम नहीं थी। धोखा देने संगठित रूप से आक्रमण करने, चकमा देने में वह आश्चर्यजनक चतुरता बरतता । एक बार टेडी रूजवेल्ट नामक एक व्यक्ति ने अपने नौ शिकारी कुत्तों के साथ इस कसाई का पीछा किया । भेड़िया भागता ही गया रुका नहीं, रात होने को आई कुत्ते रोक लिये गये। बस भेड़िया भी वहीं रुक गया। रात को कैम्प लगाकर टेडी रुक गया और उस कैम्प में घुसकर एक एक करके भेड़िये ने नोओं कुत्तों को मार दिया और किसी को पता भी नहीं चल सका।

बँदरिया से लेकर तोते और भेड़िये तक के यह असाधारण संस्कार यह बात सोचने के लिए विवश करते हैं कि सचमुच ही कर्मफल जैसी कोई ईश्वरीय व्यवस्था भी है जो इच्छा शक्ति (जीव) को सैकड़ों योनियों में भ्रमण कराती, घुमाती रहती है।

अज-रहस्य

बकरा दौड़ता हुआ आया और आढ़त की दुकान में घुसकर भीतर लगी अन्न की ढेरी चबाने लगा। आढ़त का मालिक एक स्वस्थ नवयुवक, जो अभी पानी पीने कुएँ पर चला गया था दौड़ा-दौड़ा आया और बकरे की पीठ पर डंडे का भयंकर प्रहार किया कि बकरा औंधे मुँह जमीन पर गिर पड़ा। दम निकलते निकलते बची। मिमियाता हुआ वहाँ से बाहर भाग गया।

आद्य शंकराचार्य एक स्थान पर बैठे यह दृश्य देख रहे थे उन्हें ऐसा देखकर हँसी आ गई, फिर वे एका एक गम्भीर हो गये। शिष्य श्रेष्ठि पुत्र ने प्रश्न किया -भगवन्! बकरे पर प्रहार होते देखकर आपको एकाएक हँसी कैसे आ गई ? और अब आप इतने गम्भीर क्यों हो गये ?

दिव्य दृष्टा आद्य शंकराचार्य ने बतलाया- वत्स ! यह बकरा जो आज डण्डे की चोट खा रहा है, कभी उसी आढ़त का स्वामी था। यह नवयुवक कभी इसका पुत्र था, इस बेचारे ने अपने पुत्र की सुख-सुविधाओं के लिए झूठ बोला, मिलावट की, शोषण किया वही पुत्र आज उसे मार रहा है- जीव की इस अज्ञानता पर हँसी आ गई, पर सोचता हूँ कि मनुष्य मोह-माया के बन्धनों में किस प्रकार जकड़ गया है कि कर्मफल भोगते हुए भी कुछ समझ नहीं पाता दुकान में बार-बार घुसने की तरह नश्वरता पर, क्षणिक सुख-भोगों पर विश्वास करता है और इस तरह दैहिक, दैविक एवं भौतिक कष्टों में पड़ा दुःख भुगतता रहता है।

अज-रहस्य की यह कथा अब पुरानी पड़ गई। किन्तु क्या वस्तु स्थिति भी पुरानी पड़ गई ? आद्य शकंराचार्य ने श्रेष्ठि पुत्र को जो ज्ञान दिया था, पुनर्जन्म, कर्मफल, आसक्ति, माया और सांसारिक कष्ट भुगतने के वह सिद्धान्त क्या पुराने पड़ गये? क्या अब वैसी घटनायें नहीं घटतीं? सब कुछ होता है, केवल समझ और शैली भर बदली है। अन्यथा आज भी ऐसी सैकड़ों मार्मिक घटनायें घटती रहती हैं। हम उनका अर्थ जान पायें तो देखें कि वस्तुतः माया-मोह के बन्धनों में पड़ा जीव कितनी निकृष्ट योनियों में पड़ता और कष्ट भुगतता है।

फ्रेडरिक डब्ल्यू० श्लुटर० नामक एक जर्मनी अमरीका आकर बस गया। उसकी एक दादी थी जिसका नाम था कैथेरिना सोफिया विट । वह फ्रेडरिक से पूर्व ही १८७१ में ही अमरीका आकर बस गई थीं। यहीं इडियाना राजय के बुडबर्न नामक ग्राम में उन्होंने एक कृषक के साथ दुवारा विवाह कर लिया था। सोफिया विट के पति का एक बँगला यहाँ से चार-पाँच मील दूर खेतों में भी बना हुआ था। उसके पति प्रायः वहीं रहते थे। फ्रेडरिक किसी दूसरे शहर में नौकरी करता था किन्तु वह मन बहलाने के लिए कभी-कभी अपनी दादी के पास आ जाया करता था। वह अपना अधिकांश समय इस बँगले पर ही बिताया करता था।

जून सन् १९२५ की बात है जबकि फ्रेडरिक यहाँ छुट्टियाँ बिताने आया हुआ था। एक दिन उसे शिकार करने की सूझी। बन्दूक लेकर बाहर निकला और कोई पक्षी या जीव-जन्तु तो उसे नहीं दीखा, हाँ सामने ही एक चीड़ का वृक्ष था उसकी चोटी पर बने एक कोटर में एक वृद्ध कौवा बैठा हुआ था। फ्रेडरिक ने कौवे पर ही निशाना साध लिया पर अभी गोली छूटने ही वाली थी कि कौवे की दृष्टि उस पर पड़ गई सो वह बुरी तरह काँव-काँव करने और पंख फड़फड़ाने लगा।

उसकी यह आवाज सुनते ही फ्रेडरिक का चाचा (सोफिया का पति) दौड़ता हुआ आया और फ्रेडरिक की बन्दूक नीचे करता हुआ बोला- यह क्या करते हो भाई- यह तुम्हारी दादी का पालतू कौवा है। इसे फिर कभी मत मारना।

कौवे की मैत्री एक विलक्षण बात है, पर यह एक अद्भुत सत्य कथा है। कौवा यद्यपि अधिकांश समय इस वृक्ष पर ही बिताता था, पर कोई नहीं जानता रहस्य क्या था कि वह जब तक दिन में चार छः बार सोफिया से नहीं मिल लेता था तब तक उसे चैन नहीं पड़ता था। कौवे में इतना विश्वास शायद ही कहीं देखा गया हो, शायद ही किसी और से कौवे इतनी गहरी दोस्ती जुड़ी हो।

सोफिया की आयु इस समय कोई ८५ वर्ष की थी। फ्रेडरिक खेतों से लौटकर घर आया अपनी दादी के पास बैठकर बातें करने लगा। तभी उसने खिड़की की तरफ फड़फड़ की आवाज सुनी उसने सिर पीछे घुमाया, वही कौवा था जिसे उसने अभी थोड़ी ही देर पहले मारते छोड़ा था। कौवा एक बार तो चौंका पर जैसे ही सोफिया ने उसे पुचकारा कि दरवाजे से होकर कौवा भीतर आ गया और सोफिया की गोद में अनजान-अबोध बालक की भाँति लोटने लगा। कौवा निपट वृद्ध हो गया था । उसकी एक टाँग टूट गई थी। एक आँख भी जाती रही थी, पंख कुछ थे, कुछ झड़ गये थे। सोफिया ने कहा- फ्रेडरिक, नहीं जानती किस जन्म का आकर्षण है जो कौवा को मेरे पास आये बिना न इसे चैन और न मुझे।

इस घटना के कोई २ वर्ष पीछे की बात है। फ्रेडरिक तब मिलिटरी में भरती हो गया था और अब वेस्ट पाइन्ट की इन्जीनियर्स वैरक में रह रहा था। यह स्थान ब्रुडबर्मन जहाँ उसकी दादी रहती थी- से कोई ५०० मील दूर था। एक रात जब फ्रेडरिक सो रहा था तब खिड़की पर कुछ फड़फड़ाने की आवाज सुनाई दी- होगा कुछ ऐसी उपेक्षा करके वह फिर सो गया, उसे क्या पता था कि जीवन के अनेक ऐसे क्षण मनुष्य को बार-बार किसी गूढ़तम जीवन रहस्य की प्रेरणा देते रहते हैं, पर हमारी उदासीनता ही होती है जो आये हुए वह क्षण भी निरर्थक चले जाते हैं और हम जीवन की सूक्ष्म विधाओं से अपरिचित के अपरिचित ही बने रह जाते हैं।

फ्रेडरिक जब सवेरे उठा तब उसने देखा एक कौवा भीतर घुस आया है और मरा पड़ा है। उसने पास जाकर देखा तो आश्चर्यचकित रह गया क्योंकि यह कौवा वही था जिसे उसने २ वर्ष पूर्व मारते-मारते छोड़ा था।

उसने कौवे की मृत्यु की सूचना पत्र. लिखकर दादी के पास भेजी पर उधर से उत्तर आया चाचा का। जिसमें लिखा था कि- दादी का निधन हो गया है। जिस दिन से वे मरीं, वह कौवा दिखाई नहीं दिया।

कौवे की सोफिया से मैत्री, उनके निधन पर उसका फ्रेडरिक के पास जाना और मृत्यु की सूचना देना गहन रहस्य है । जिन पर मानवीय बुद्धि से कुछ सोचा नहीं जा सकता। सम्भवत: कोई और आद्यशंकराचार्य वहाँ उपस्थित होते तो कहते इस कौवे का सोफिया से पूर्वजन्म का कुछ सम्बन्ध रहा होगा सम्भव है वह उसका पति रहा हो। उसकी मृत्यु पर भी मोह-ममता कम न हुई हो जिसे पूरी करने के लिए वह अपने नाती फ्रेडरिक के पास पहुँचा होगा और वहाँ शीत सहन न करने के कारण मर गया होगा। यही सब संसार का माया-मोह है जो जीव को विभिन्न योनियों में भ्रमण कराता रहता है। भौतिकता सहन करते हुए भी मनुष्य इस तरह के आध्यात्मिक सत्यों की बात क्षण भर को सोचता नही' जबकि कुछ न कुछ रहस्य इन कथानकों में रहता अवश्य है।

आत्मसत्ता द्वारा स्वयं को शाप और वरदान

ऐसे असाधारण उदाहरण यानी अपवाद बहुत अधिक नहीं हैं। वे सामान्य नियम नहीं हैं, तो इसका यह अर्थ नहीं कि वे यों ही, संयोग मात्र हैं। प्रकृति का प्रत्येक कार्य-व्यापार सकारण है।

अन्य जीवों में पाये जाने वाले असामान्य कोटि के मानवी संस्कार इस तथ्य के प्रतिपादक हैं कि सामान्यत: मनुष्य निम्नतर योनियों में कभी जाता नहीं। स्वामी विवेकानन्द का यह कथन पूर्ण सत्य है कि मानवी-चेतना इतनी उत्कृष्ट एवं परिष्कृत कोटि की है, कि उसका निचली योनियों में जाना लगभग असम्भव है। तो भी यदि कोई मनुष्य अपनी संकल्प शक्ति का इतना भीषण दुरुपयोग करे कि वह मानवीय सद्गुणों से निरन्तर दूर ही हटता जाये, मानवीयता की संज्ञा ले जुड़े। भाव-स्पन्दनों को कुचलता ही रहे और पाशविक प्रकृतियों को ही अपनाकर उन्हीं को अपना साध्य, इष्ट, लक्ष्य, समझ ले तो किया क्या जाये? ऐसे नर-पशुओं नर-कीटकों का निम्नतर योनि में जाना उचित भी है स्वाभाविक भी। परन्तु इस कोटि का पतन कम ही मनुष्यों का हो पाता है। जिस प्रकार देवोमय स्तर बहुत थोड़े लोग ही प्राप्त कर पाते हैं उसी प्रकार पुन: नीचे जाने को विवश कर देने वाली हीनतर प्रवृत्तियाँ उससे भी कम ही लोग पूरी तरह अपनाते हैं। अधिकांश लोग अपनी शक्तिभर ऊपर उठने का ही प्रयास करते हैं। क्योंकि आनन्द प्राप्त करने की प्रत्येक जीवात्मा की मूलभूत इच्छा होती है और मनुष्य योनि में आने तक जीवात्मा इतनी विकसित तो हो ही चुकी होती है कि वह आनन्द के नाम पर नारकीय दु:खों को ही अपनाने में न जुट जायें। फिर जब कभी वह मोह तथा वासना के आवेग में उधर अधिक झुकता भी है, तो उसका मानवीय अंत:करण उसे ही कचोटने लगता है, वह छटपटाने लगता है और तब तक सामान्य स्थिति में नहीं आ पाता, जब तक प्रायश्चित्त और भूल-सुधारकर वह पुन: सामान्य एवं सहज मानवीय-स्तर को प्राप्त न कर ले, उसी राह पर चलने न लगे जो मनुष्यता के अनुकूल है।

इस प्रकार अपवाद-स्वरूप ही लोग मनुष्य बनने के बाद निचली योनियों में जाते हैं। श्रीमद्भगवद् गीता का यह कथन जन्मान्तर स्थित को भली भाँति स्पष्ट करता है-

ऊर्ध्व गच्छन्ति सत्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसा:।
जघन्य गुण वृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसा:।।

अर्थात्- सात्विक वृत्ति वाले लोग मरणोपरान्त उच्चतर लोकों को जाते हैं, मध्यम स्तर के रजोगुणी मनुष्य पुन: योनि में ही जन्म लेते हैं और जघन्य कर्मो, दुष्प्रवृत्तियों में लिप्त तामसिक निचली योनियों में जाते हैं। कठोपनिषद् में नचिकेता यमराज से पूछते हैं- मरने के बाद मनुष्य की गति क्या होती है? यमराज उत्तर देते हैं-

न प्राणेन नापानेन मृत्यों जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेता वुपाश्रतो।।

-द्वितीय बल्ली ५

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन:।
स्थाणुमन्येऽतुसंयन्यिथा कर्म यथाश्रुतम।।

-द्वितीय बल्ली ६

हे नचिकेता! कोई भी देहधारी प्राण या अपान से ही जीवित नहीं रहता किन्तु जिसमें यह दोनों आश्रित हैं (कारण शरीर) उसीके आधार पर जीवित रहते हैं। अगले मंत्र में मृतात्मा देहान्त के पश्चात् कैसे रहता है उस पर प्रकाश डाला है कहा है अपने-अपने कर्मों के अनुसार जिसने श्रवण द्वारा जैसा भाव प्राप्त किया, उसके अनुसार कितने ही जीवात्मा देह धारण के लिए विभिन्न योनियों को प्राप्त होते हैं और अनेकों जीवात्मा अपने कर्मानुसार वृक्ष, लता, पर्वत आदि स्थावर शरीरों को प्राप्त होते हैं।

स्पष्ट है कि अगले जन्म में कैसी, किस स्तर की योनि मिलेगी यह मनुष्य के अपने ही हाथ में है। तभी तो गीता में कहा है-

'आत्मैव हयात्मनो बंधुरात्मै वरिपुरात्मना'

अर्थात्- 'मनुष्य की आत्मसत्ता आप ही अपनी मित्र और आप ही अपनी शत्रु होती है।'

आत्म-सत्ता के संकल्प एवं कर्म ही प्रत्येक मनुष्य की प्रगति या पतन के आधार बनते हैं। मनुष्य की अपनी इच्छाशक्ति एवं

उसके कर्म ही जीवन-प्रवाह के नये-नये मोड़ों का कारण बनते-रहते हैं। यह इच्छा-शक्ति आत्मसत्ता से सदैव सम्बद्ध रहती है।

ब्राज़ील वासी श्रीमती इडा लोरेंस कोसियान्स' (मृतात्मा के आह्वान सम्बन्धी बैठकें) में तीन बार उनकी पुत्री इमिलिया का मृतात्मा ने सन्देश दिया कि मैं अब तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लूँगी। इमिलिया को अपने लड़की होने से घोर असन्तोष था। वह अक्सर कहती थी कि यदि पुनर्जन्म सचमुच होता है, तो अगले जन्म में मैं पुरुष बनूँगी । उसने अपने विवाह के सभी प्रस्ताव ठुकरा दिये और २० वर्ष की आयु में विष खाकर मर गई। बाद में सियान्स' में इमिलिया ने अपनी माँ से अपनी आत्म-हत्या पर पश्चात्ताप व्यक्त किया। साथ ही पुत्र रूप में अपने पुनर्जन्म की इच्छा व्यक्त की।

लिंग-परिवर्तन भी भावसत्ता के ही अनुसार

योनि-परिवर्तन ही नहीं, लिंग का कारण भी इच्छा शक्ति ही होती है। श्रीमती इडा लोरेन्स अब तक १२ बच्चों को जन्म दे चुकी थीं और अब सन्तान की उन्हें सम्भावना नहीं थी। पर इमिलिया की मृतात्मा का सन्देश सत्य निकला। अपनी मृत्यु के डेढ़ वर्ष बाद इमिलिया ने पुत्र रूप में पुनर्जन्म लिया। उसका नाम रखा गया-पोलो।

पोलो की रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ इमिलिया जैसी ही थीं। सिलाई में इमिलिया निपुण थी, तो पोलो भी बिना सीखे ही ४ वर्ष की आयु में सिलाई में दक्ष हो गया। इमिलिया की ही तरह पर्यटन पोलो को भी अति प्रिय था। इमिलिया एक खास ढंग से डबल रोटी तोड़ती थी। पोलो में भी वही अन्दाज पाया गया। पोलो अपनी बहिनों के साथ कब्रिस्तान जाता, तो सिर्फ इमिलिया की कब्र पर फूल चढ़ाता। वह भी यह कहते हुए कि- मैं अपनी कब्र की देख भाल कर रही हूँ।" शुरू में पोलो की बातें लड़कियों जैसी थीं। उसके व्यक्तित्त्व में अन्त तक नारी तत्वों की प्रधानता रही। अपनी बहिनों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के प्रति उसमें लगा नहीं था और वह अविवाहित ही रहा।

मनोवैज्ञानिकों और परामनोवैज्ञानिकों ने उसका परीक्षण किया। उसमें स्त्री सुलभ प्रवृत्तियाँ पाई गईं।

इसी तरह श्री लंका की एक बालिका ज्ञानतिलक ने दो वर्ष की आयु में बताया कि पूर्वजन्म में वह लड़का थी। पूर्वजन्म वाले स्थान से एक दिन वहँ गुजरी तो सहसा उसके दिमाग में कौंधा कि वह पूर्वजन्म में यहीं पर थी। उसने अपने पूर्व जन्म की कई बातें बताईं जो सत्य निकलीं। ज्ञानतिलक का पूर्व जन्म का नाम तिलकरत्न था। इमिलिया को लड़का होने की तीव्र इच्छा थी, तो तिलकरत्न में नारी व्यक्तित्व की प्रधानता थी और पुनर्जन्म में वह लड़की ही बनी। साथ ही पुरुष बनी इमिलिया में नारी प्रवृत्ति अवशिष्ट थी, तो नारी बने तिलकरत्न में पुरुष प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं।

उसके अनुरूप ही संस्कार-सूत्र (जीन्स) में परिवर्तन आ जाता है, जीन्स कभी नष्ट नहीं होते, यदि उनमें चेतना का अंश सिद्ध किया जा सके तो यह निश्चयपूर्वक विज्ञान द्वारा भी शरीर नष्ट हो जाने पर भी इच्छा शक्ति का कभी अन्त नहीं होता। मृत्यु के समय एक या अनेक इच्छाएँ बलवान हों तो कहा जा सकता है कि अपनी इच्छाओं के बस में बँधा हुआ होने के कारण ही मनुष्य दूसरी-दूसरी योनियों में भटकता रहता है।

अन्तिम इच्छाओं के अनुसार परिवर्तित जीन्स जिस जीव के जीन्स से मिल जाते हैं, उसी ओर वे आकर्षित होकर वही योनि धारण कर लेते हैं। ८४ लाख योनियों में भटकने के बाद वह फिर मनुष्य शरीर में आता है। गर्भोपनिषद में इस बात की पुष्टि हुई है-

पूर्व योनि सहस्त्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया।
आहारा विवधा मुक्तः पीता नानाविधाः।।
स्तना...।
स्मरति जन्म मरणानि न च कर्म शुभाशुभं विन्दति।।

अर्थात्- उस समय गर्भस्थ प्राणी सोचता है कि अपने हजारों पहले जन्मों को देखा और उनमें विभिन्न प्रकार के भोजन किये, विभिन्न योनियों के स्तन पान किये। अब जब गर्भ से बाहर निकलूँगा, तब ईश्वर का आश्रय लूँगा। इस प्रकार विचार करता हुआ प्राणी बड़े कष्ट से जन्म लेता है पर माया का स्पर्श होते ही गर्भ ज्ञान भूल जाता है शुभ-अशुभ कर्म लोप हो जाते हैं। मनुष्य फिर मनमानी करने लगता है और इस सुरदुर्लभ शरीर के सौभाग्य को भी गँवा देता है।

सौभाग्य से हीकल्स की अपनी अगली व्याख्या से ही इस बात का समर्थन हो जाता है। उन्होंने भ्रूण-विज्ञान (एम्ब्रियोलाजी) में एक प्रसिद्ध सिद्धान्त दिया- "आन्टोजेनी रिपीट्स फायलोजेनी" अर्थात् चेतना गर्भ में एक बीज कोष में आने से लेकर पूरा बालक बनने तक, सृष्टि में या विकास बाद के अन्तर्गत जितनी योनियाँ आती हैं, उन सब की पुनरावृत्ति होती है। प्रति तीन सैकिंड से कुछ कम के बाद भ्रूण की आकृति बदल जाती है। स्त्री के प्रजनन कोष (ओवम) में प्रविष्ट होने के बाद पुरुष का बीज कोष (स्पर्म) १ से २, २ से ४, ४, से ८, ८ से १६, १६ से ३२, ३२ से ६४ इस तरह कोषों में विभाजित होकर शरीर बनता है।

९ माह १० दिन के लगभग की अवधि गर्भ धारण की मानी गई है, इस अवधि में लगभग २४१९२००० सेकिंड होते हैं, तीन

सेकिंड से कुछ कम में आकृति बदलने का अर्थ भी ८०६०६६६ (लगभग ८४ लाख ही) विभिन्न आकृतियों का परिवर्तन आता है। यह ८४ लाख योनियाँ एक प्रकार से जीव जिन-जिन परिस्थितियों में रहकर आ चुका है, उनका छाया चित्रण होता। परमात्मा ने यह व्यवस्था इस दृष्टि से की है कि मनुष्य जन्म लेने से पूर्व अपना यह लक्ष्य सुदृढ़ कर ले कि मुझे संसार में किस लिये जाना है।

जब अपना लक्ष्य मनुष्य की भाव-सत्ता के सम्मुख स्पष्ट होता है, तो वह उस दिशा में बढ़ता ही चला जाता है।

मनुष्य की मूलभूत भावसत्ता ही उसकी गति का पथ और स्वरूप निर्धारित करती है। जब यह भावी सत्ता भौतिक भोगों का ही अपना लक्ष्य मान बैठती है, तो उसे रोग-दुःख और अशान्ति के अंतहीन मरुस्थल में भटकते रहना होता है। परन्तु जब वही भाव-सत्ता चेतन आत्मा के स्वरूप को समझकर उसी से जुड़े रहने की सार्थकता समझ जाती है तो वह प्रगति की दिशा में बढ़ती ही चली जाती है। महत्त्व अपने प्रति, अपनी ही भावना का, आन्तरिक श्रद्धा का है। गीता में कहा गया है-

"श्रद्धामयोऽयं पुरुषो, योयच्छृद्धः स एक्सः।"

अर्थात्- जीवात्मा श्रद्धामय है, जिसकी अपने प्रति जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही उसी श्रद्धा-भाव जैसा ही हो जाता है। भाव-सत्ता के अस्तित्व और उसकी शक्ति का प्रमाण है लिपजिग जर्मनी का न्यायाधीश "बेनेडिक्ट कारजो" जिसका जन्म १६२० में हुआ और मृत्यु १६६६ में।

कारजो दुनिया का भयंकरतम न्यायाधीश था, अपनी सर्विस की लम्बी अवधि में उसने ३० हजार लोगों को फाँसी की सजा दी सजा देने के बाद वह फाँसी होते देखने स्वयं भी जाता था। साथ में कुत्ता भी ले जाता था और फाँसी से मरे हुये मृतक की लाश कुत्ते से नुचवाता था। ऐसा कोई दिन नहीं गया, उसके कार्य-काल में जबकि उसने कम से कम ५ व्यक्तियों को फाँसी न लगवाई हो। एक दिन एक दुःखी मनुष्य की आत्मा कराह उठी। फाँसी पर चढ़ने के पूर्व उसने शाप दिया-तेरी कुत्तों जैसी मृत्यु होगी, जिस दिन तेरा कुत्ता मरेगा उसी दिन तू भी मर जायेगा और कितने ही जन्म तू बार-बार कुत्ता होकर मरेगा।

अभी शाप दिये कुछ ही दिन बीते थे कि एक दिन उसके पालतू कुत्ते को एक पागल कुत्ते ने काट लिया, फिर उसी के कुत्ते ने उसे काट लिया। कुत्ता मर गया उसके कुल तीन घण्टे पीछे कुत्तों की तरह भौंक-भौंककर उसकी भी मृत्यु हो गई। यह तो पता नहीं अगले जन्म में वह क्या हुआ पर यह आश्चर्य तो सभी को हुआ कि निर्दोष आत्मा के शाप- जिसे भावनाओं का आन्तरिक विस्फोट कहना ज्यादा उपयुक्त है- ने उसे किस तरह नारकीय परिस्थितियों में जा धकेला।

वस्तुतः आत्म सत्ता में ऐसी ही अकूत सामर्थ्य विद्यमान है। वह जब उच्चस्तरीय प्रगति के लिए भाव-विस्फोट करती है, तो उसके परिणाम वरदान के रूप में सामने आते हैं। निम्नतर गतिविधियों के लिए जब भाव विस्फोट होते हैं, तो उनका फलशाप के रूप में सामने आता है।

ये शाप-वरदान दूसरों के लिए तो यदा-कदा ही फलीभूत होते हैं, किन्तु, अपने लिए आत्मा में जिस प्रकार के भावों का आन्तरिक विस्फोट होता रहता है, उनका अपने को ही परिणाम निरन्तर मिलता रहता है। श्रेष्ठ प्रयोजनों में लगने पर आत्मसत्ता स्वयं को ही वरदान देती रहती है। और उसे निकृष्ट गतिविधियों में नियोजित करने पर वह स्वयं को ही धिक्कार एवं शाप देती है। आत्मोत्कर्ष या आत्मिक पतन के देव योनि अथवा पशु योनि के वर्णन के जिम्मेदार हम आप ही हैं।

पुनर्जन्म पुनरावर्तन नहीं, यात्रा का अगला चरण

माता के गर्भ में शयन करते हुये ऋषि वामदेव विचार करते हैं-"अब मैं देवताओं के अनेक जन्मों को जान चुका हूँ। जब तक मुझे तत्व ज्ञान नहीं मिला था, मैं संसार में पाप कर्मों से उसी तरह घिरा था, जिस तरह पक्षी को पिंजरे में बन्दकर दिया जाता है।" पूर्व-जन्मों का स्मरण करते हुए ऋषि वामदेव ने शरीर धारण किया और उन्नत कर्म करते हुए स्वर्ग को पहुँच गये।

यह कथा ऐतरेयोपनिषद के द्वितीय अध्याय के प्रथम खण्ड में है। शास्त्रकार इस अध्याय की पूर्व पीठिका में यह बताता है कि पिता के पुण्य कर्मों के निमित्त पिता की ही आत्मा पुत्र रूप में प्रतिनिधि बनकर जन्म लेता है। पुत्र के जन्म लेने पर पिता के पाप कर्म कम होने लगते हैं क्योंकि कोई भी पिता पापी पुत्र को बुरे कर्म करते देखकर प्रसन्न नहीं होता, वह यही प्रयत्न करता है कि जिन बुरे कर्मों के कारण मुझे कष्ट हुये हैं, उनका प्रभाव बच्चे पर न पड़े। जितने अंश में वह बच्चे का सुधार कर सकता है, उतना वह अपना भी सुधार कर लेता है और तब उसका दूसरा जन्म अर्थात् ऐसे संकल्प लेकर जन्म होता है कि अब मैं बुरे कर्म नहीं करूँगा, जिससे संसार में शांतिपूर्वक परमात्मा का साधन करता हुआ, स्वर्ग की प्राप्ति करूँगा। यह

संकल्प संस्कार बन कर उद्घटित होते हैं और जीव अपनी मुक्तावस्था को प्राप्त कर लेता हैं जैसा ऋषि ने बताया है।

पुनर्जन्म, गर्भ में इस प्रकार का संकल्प, पिता के प्रतिनिधि रूप में पिता का ही पुत्र और इन सबका हेतु कर्मफल यह सब बातें कुछ अटपटी सी लगती हैं। आज के विज्ञान-बुद्धि लोगों के गले नहीं उतरती और यही कारण है कि लोग कर्मों में गुणावगुण की संधि और पाप के फल - पश्चाताप की बात अंगीकार नहीं करते। कर्मफल पर विश्वास न करने का फल ही आज पाप, अनर्थ और भ्रष्टाचार के रूप में फैला है।

गरुड़ पुराण में ऐसी ही आख्यायिका आती है, जिसमें बताया गया है कि यमलोक पहुँचने पर चित्रगुप्त नाम के यम-प्रतिनिधि सामने आते हैं और उस व्यक्ति के तमाम जीवन में किये हुए कर्मों का जिन्हें वह गुप्त रीति से भी करता रहा, चित्रपट की भाँति दृश्य दिखलाते हैं, यमराज उन कर्मों को देखकर ही उन्हें स्वर्ग और नरक का अधिकार प्रदान करते हैं। शास्त्रकार इसी सन्दर्भ में यह भी बताते हैं कि हनन की हुई आत्मा (अर्थात् बुरे कर्मों से उद्विग्न और अशान्त मन: स्थिति) नरक को ले जाती है और सन्तुष्ट हुई आत्मा (नेक कर्मों से उल्लसित उत्फुल्ल और प्रसन्न मनः स्थिति) दिव्य लोक प्रदान करती है।

चित्रगुप्त जैसी कोई व्यवस्था का होना काल्पनिक-सा लगता है, किन्तु आधुनिक शोधों ने उपरोक्त अलंकारिक कथानक में बड़ी ही महत्त्वपूर्ण सचाई को ढूँढ़ निकाला है डा० बी० बेन्स ने सूक्ष्मदर्शक की सहायता से यह ढूँढ़ निकाला है कि मस्तिष्क में भरे हुए ग्रे सैटर (भूरी चर्बी जैसा पदार्थ भरा होता है) के एक एक परमाणु में अगणित रेखायें पाई जाती हैं। विस्तृत विश्लेषण करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जो व्यक्ति कर्मठ, क्रियाशील, सात्विक, सबसे प्रेम और सबका भला चाहने वाले होते हैं, उनके मस्तिष्क की यह रेखायें बहुत विस्तृत और स्वच्छ थीं, पर जो आलसी, निकम्मे तथा दुष्ट प्रकृति के थे, उनकी रेखायें बहुत छोटी-छोटी थीं। माँसाहारी व्यक्तियों की रेखायें जले हुए बाल के सिरे की तरह कुण्ठित और लुंज-पुंज थीं।

मस्तिष्क के विश्व प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक डा० विल्डर पेनफील्ड ने मस्तिष्क में एक ऐसी पट्टी का पता लगाया है, जो रिकार्डिगं पद्धति के आधार पर काम करती है, उनके अनुसार यह पट्टी मस्तिष्क के उस भाग में है, जिसके बारे में अभी तक कुछ विशेष पता नहीं लगाया जा सका।

स्मरण की प्रक्रिया के बारे में डा० विल्डर पेनफील्ड का कहना है कि वह काले रंग की दो पट्टियों में निहित है। यह पट्टियाँ लगभग २५ वर्ग इन्च क्षेत्रफल की होती हैं। मोटाई इन्च के दसवें भाग जितनी होती है। दोनों पट्टियाँ मस्तिष्क के चारों ओर लिपटी रहती हैं, यह पूरे मस्तिष्क को ढके रहती हैं। 'इन्हें तेम्पोरल कोरटेक्स' कहा जाता है और यह कनपटियों के नीचे स्थिति हैं। जब कोई पुरानी बात याद करने का कोई प्रयत्न करता है, तो स्नायुओं से निकलती हुई विद्युत धारायें इन पट्टियों से गुजरती हैं, जिससे वह घटनायें याद आ जाती हैं। डा० पेनफील्ड ने मिरगी के कई रोगियों के मस्तिष्क का आपरेशन करते समय इस पट्टियों में कृत्रिम विद्युत धारायें प्रवाहित कीं और यह पाया कि रोगियों की काफी पुरानी स्मृतियाँ ताजी हो गईं। एक रोगिणी को इस पट्टी पर हल्का करेन्ट दिया गया, तो वह एक गीत गुन-गुनाने लगी। वह गीत उसने पाँच वर्ष पहले सुना था। करेन्ट हटाते ही वह गीत फिर भूल गई। फिर करेन्ट लगाया तो फिर गुन–गुनाने लगी।

अब डा० पेनफील्ड स्वयं भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जाग्रत अवस्था में व्यक्ति जैसी भी घटनायें देखता, सुनता, करता रहता है, उनका विस्तृत रिकार्ड मस्तिष्क में बना रहता है। यदि कुछ नये प्रयोग विकसित किये जा सकें, तो मस्तिष्क को इतना सचेतन बनाया जा सकेगा कि वह बहुत काल की स्मृतियों को ताजा रख सकेगा। तब सम्भवतः इस जीवन से अनन्तर पूर्व-जन्मों की स्मृतियों की भी उलट सम्भव हो जायेगी।

यह थी खोज। किन्तु कर्मफल उससे भी बहुत कठोर, सुनिश्चित और अन्तर्व्यापी है, इसलिए उस पर शीघ्र तो लोग विश्वास नहीं करते पर यह सारा संसार उससे प्रभावित है और एक दिन सारा संसार उसे मानने को और सत्कर्म करने को विवश होगा। उत्पीड़न और अत्याचार के सभी कर्म मनुष्य को कई जन्मों तक सताते हैं। उनका परिमार्जन आसानी से नहीं हो पाता।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए कि मन भी एक प्रकार का सूक्ष्म विद्युत है और वह मस्तिष्क की उस पट्टी में जहाँ याद दास्तें छिपी हैं, अपने आप चक्कर लगाया करता है, इस चक्कर से उसकी मानसिक बनावट के अनुरूप जैसे अच्छे-बुरे विचार होते हैं, वह उभरते हैं और मनुष्य उसी प्रवाह में काम करने लगता है। उसे प्रकृति की प्रेरणा मानकर कुछ लोग यह भूल करते हैं कि जो कुछ गन्दा, फूहड़ विचार उठा वही करने लगते हैं, पर जो लोग कर्मफल पर विश्वास कर लेते हैं, वे बुराइयों और बुरे विचारों के प्रति सावधान रहने लगते हैं और जीवन में अच्छाइयों का प्रसार करते हुए प्रसन्न रहने लगते हैं।

डा० पेनफील्ड के यहाँ एक मिरगी का रोगी आता था। उसे मिरगी आने से पहले एक भयानक सपना आया करता था

कि वह किसी उजाड़ और डरावने मकान के दरवाजे पर खड़ा है। कोई उल्लू भयंकर आवाज में बोलता है। वह डरकर दरवाजा खोलने का प्रयत्न करता है। उसे मालूम था कि दरवाजा खुलते ही कोई ऐसा भयानक दृश्य सामने आता है कि उसे देखते ही उसे मिरगी आ जाती हैं, इसलिए वह बहुत प्रयत्न करता कि दरवाजा न खोले, पर अज्ञात शक्ति उसे वैसा करने को विवश कर देती और उसे मिरगी आ जाती जिसमें पड़ा वह घण्टों तड़पता रहता।

सचेत अवस्था में भी जब इस रोगी को डाक्टर करेन्ट लगाते तो उसके मुख-मण्डल पर भय की रेखायें छा जातीं। डाक्टर ने उस स्थान का पता लगा लिया और उतने अंश का आपरेशन करके निकाल दिया, जिससे रोगी अच्छा हो गया।

विज्ञान की यह शक्ति कर्मफल पर विस्तृत प्रभाव डालने वाली है। हम जिसे मन कहते हैं, वह एक प्रकार की विद्युत शक्ति है और वह स्मृति पट्‌टी पर अपने आप ही घूमती रहती है। स्वप्नावस्था में भी यह क्रिया बन्द नहीं होती, उसे जहाँ पूर्व-जन्मों की उन स्मृतियों से गुजरना पड़ता है, जिसमें उत्पीड़न, भयंकरता, दण्ड, छटपटाहट, चोरी, दुष्टता जैसे कुकर्मों की रेखायें होती हैं, तो उसे तीव्र वेदना और अकुलाहट होती है। यही नहीं उस व्यक्ति में हीनता का अन्तर्भाव बढ़ता रहता है और ऐसा व्यक्ति जीवन में साधन और सुविधायें रहते हुए भी सुखी और शान्त नहीं रहता।

मिरगी के उस रोगी के बारे में यदि यह कहा जाये कि उसने पूर्व जन्म में धन या और किसी लोभ में किसी के घर का दरवाजा खोलकर किंसी की हत्या की होगी, तो अतिशयोक्ति न होगी। ऐसे भयकंर दृश्यों के अंकन भी वैसे ही क्षिप्र, टेढ़े-मेढ़े और भयानक होते हैं, जब वह स्मृति उस व्यक्ति को आती होगी तो भय से मूर्छा आ जाती होगी। शरीर की छोटी से छोटी खुजली से लेकर दमा, स्वाँस, क्षय, पक्षाघात, कुष्ठ आदि के कारण शरीर के विजातीय द्रव्य भले ही कहे जायें पर उन विजातीय द्रव्यों के उत्पादन का कारण मन और मन को पूर्व-जन्मों के कर्मों का फल ही कहना अधिक तर्क-संगत हैं। कोई भी व्याधि एवं पीड़ा कर्मफल के अतिरिक्त नहीं हो सकती। फिर वे इस जन्म के हों या पूर्व जन्म के।

भगवान अपनी इच्छा से किसी को दण्ड नहीं देते। कर्मफल ही दण्ड देते हैं। भगवान तो बार-बार मनुष्य-जीवन के रूप में जीव को वह अवसर प्रदान करते रहते हैं, जिससे वह विगत पापों का प्रायश्चित कर अपने शुद्ध-बुद्ध और निरंजन स्वरूप को प्राप्त कर ले, जैसा कि ऋषि वामदेव ने अपने को उसी प्रकार पाप से जीवन्मुक्त कर लिया, जैसे साँप केंचुली से छुट जाता है और परम स्वतन्त्रता अनुभव करने लगता है।

साइकिक रिसर्च सोसायटी' तथा परामनोविज्ञान की अन्य शोध-संस्थाओं ने अपनी खोजों से पुनर्जन्म प्रतिपादक अनेक अद्यतन-आधार जुटाये हैं। इनसे जहाँ जीवन के बारे में भारतीय तत्वदर्शियों की मान्यताएँ खरी सिद्ध हुई हैं, वहीं पुनर्जन्म और कर्मफल सम्बन्धी प्रतिपादन भी नये सिरे से प्रमाणिक हुआ है? तथा संस्कारों का सातत्य और क्रमबद्धता सामने आयी है।

पुनर्जन्म का अभिप्राय यह नहीं कि फिर नये सिरे से जीवन विकास में जुटना होगा। यदि हर वार व्यक्ति वैसी ही आन्तरिक स्थिति में पैदा हो। मन, बुद्धि, अन्त:करण के नये सिरे से विकास हेतु प्रयास शुरू करना पड़े। मृत्यु के पूर्व तक अपने गुणों और अपनी क्षमताओं को चाहे जितना बढ़ा लेने और परिपक्व बना लेने पर भी अगले जीवन में यदि उनकी कोई उपयोगिता न रहे, तब पुनर्जन्म होने पर भी उसका कोई दार्शनिक और नैतिक महत्व नहीं रह जायेगा। पुनर्जन्म का अर्थ भौतिक तत्वों के एक निश्चित क्रम-संघात का पुनरावर्तन हो और स्मृति-कोषों का कोई अंश विशेष ही उसका एकमात्र सातत्य-सूत्र हो, तब पुनर्जन्म की प्रक्रिया की मानव-जीवन में कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं रह जायेगी। किन्तु वस्तुस्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। अगले जीवन में चेतना का वह स्तार जन्मत: उपलब्ध होता है, जो वर्तमान जीवन में विकसित कर लिया गया हो। इस प्रकार प्रगति का तार टूटता नहीं और मानवीं चेतना सतत् विकसित होती चलती है।

भौतिक दृष्टि से पुनर्जन्म एक पुनरावर्तन जैसा ही प्रतीत होने पर भी, वह वस्तुत: जीवन यात्रा का अगला चरण है। विकास का अगला क्रम है। पुनर्जन्म सतत गतिशीलता का अगला आयाम है। शरीर की दृष्टि से तो उस नये जीवन में भी शैशव: यौवन, ज़रा, मृत्यु का क्रम पूर्ववत ही रहता है। देह-धर्म तो उसी क्रम से चलता है। किन्तु मन, बुद्धि, अन्त:करण में समायी चेतना जिस स्तर तक विकसित हो जाती है वहाँ से पीछे नहीं लौटती प्रयत्न और साधन के अनुरूप आगे ही बढ़ती है।

पाप हो या पुण्य, उसका फल उसकी मात्रा व गुण के आधार पर ही मिलता है। न तो कोई भी कर्म बिना किसी प्रतिक्रिया-परिणाम के रहता और न ही क़िसी भी कर्म का परिणाम अनन्त होता है। जहाँ कर्मफल भोगना अनिवार्य है, वहीं यह भी निश्चित है कि पाप हो या पुण्य, अपनी गुरुता या लघुता के अनुसार उसके परिणामों का भी अन्त होता हैं तब अपनी अन्त: श्चेतना में संचित, संकलित, स्मृतियों, गुण, धर्म, संस्कारों और सामर्थ्य के

साथ आत्मा पुनः नये शरीर में अवतरित होती है। विगत जीवन में अर्जित-उपलब्ध शिक्षाएँ-दिशाएँ नये जीवन की प्रवृत्ति-प्रेरणाएँ बनती हैं और विकास पथ पर आगे बढ़ने के आधार प्रस्तुत करती हैं। इसीलिए मनुष्य-योनि को कर्मयोनि कहा गया है। प्रत्येक मनुष्य जहाँ अपनी अन्त: प्रकृति के गुण, धर्म, स्वभाव से प्रेरित होता है, वहीं वह अपने विवेक से इन प्रेरणाओं पर अनुशासन-नियन्त्रण भी स्थापित कर सकने में समर्थ है। तपश्चर्या, साधना द्वारा वह अपनी अन्त:प्रकृति का परिष्कार कर सकने, उसे नयी विशेषताओं-विभूतियों से सम्पन्न बना सकने में भी सक्षम है पुनर्जन्म के शास्त्रीय सिद्धान्तों से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि कोई प्राणी बार-बार इसी जगत में जन्म ले, यह आवश्यक नहीं। अनन्त ब्रह्माण्ड के किसी भी ऐसे लोक में वह जन्म ग्रहण कर सकता है, जहाँ जीवन्त प्राणियों का निवास हो और जो लोक उसकी सूक्ष्म इन्द्रियों तथा चेतना-स्तर के अनुरूप हो।

पुनर्जन्म के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यही है कि उससे इस जन्म में अर्जित, विकसित प्रवृत्तियों का प्रभाव अगले जीवन में भी प्रमाणित होता है। पुराणों में पुनर्जन्म की जो कथाऐं वर्णित हैं, उनमें भी चेतना-स्तर का सातत्य ही दिग्दर्शित है। संस्कारों का महत्त्व प्रतिपादित करने वाली ये पुराकथाऐं हमारे मनीषी पूर्वजों ने इसी उद्देश्य से संकलित की हैं, जिससे व्यक्ति कर्मफल की अनिवार्यता के सिद्धान्त को भली, भाँति समझकर सत्प्रवृत्तियों का तत्काल सत्परिणाम न दिखने पर भी हतोत्साहित न हो और श्रेयस् के पथ पर, पुरुषार्थ, कौशल, साहस एवं धैर्य के साथ बढ़ता रहे।

पद्मपुराण के अनुसार सोमशर्मा नामक तपस्वी साधक हरिहर-क्षेत्र में साधना-निरत थे। उनके जीवन का अन्तिम समय निकट था, तभी दैत्यों की एक टोली वहाँ पहुँची और भयानक उपद्रव वहाँ किया। इस प्रकार अन्त काल में उनके स्मृति-पटल पर दैत्यों की यह छवि अंकित हो गई। सात्विक प्रकृति के साधक वे थे ही, उनका सूक्ष्म शरीर मृत्यु के तत्काल वाद दैत्यराज हिरण्यकशिप की पत्नी कयाधु में प्रविष्ट हुआ। प्रहलाद के रूप में वे प्रकट हुए। जन्मत: ही उनकी अन्तश्चेतना परिष्कृत-उदात्त थी। दैत्य-दुश्प्रवृत्तियों के प्रति उनमें प्रबल विरोध भाव भी था। यही बालक प्रहलाद अपनी तपश्चर्या से भगवान के नृसिंहावतार का कृपाभाजन और दानवराज हिरण्यकशिपु के नाश का कारण बना।

स्कन्दपुराण में बलि की कथा के द्वारा सत्प्रवृत्तियों के क्रमिक अभिवर्धन का सत्परिणाम गिनाया गया है। देव ब्राह्मण निअंक जुआरी था, पर साथ ही उसमें दान की उदार प्रवृत्ति भी विद्यमान थी। एक बार जब जुए में उसने पर्याप्त धन कमा लिया, तो मद्यपान कर एक वेश्या के घर की ओर चला। मार्ग में मूर्छित हो गिर पड़ा। होश आने पर ग्लानि और प्रायश्चित-भावना से वह भर उठा, उसने अपने धन का एक अंश शिव-प्रतिमा को समर्पित कर दिया।

उस दिन से शिवात्व के प्रति यह आकर्षण उसमें उभरता ही गया। मृत्यु के उपरान्त उसे अपने अल्प पुण्य-कर्मों के फलस्वरूप तीन घड़ी के लिए स्वर्ग का शासन प्राप्त हुआ। तब तक सत्प्रवृतियों का महत्व वह समझ चुका था। स्वर्ग के भोगों की ओर उसकी रंचमात्र रुचि नहीं जगी। उल्टे इस पूरी तीन घड़ी तक वह स्वर्ग की बहुमूल्य वस्तुएँ, सत्पात्र श्रेष्ठ ऋषियों को लगातार दान करता रहा। इससे उसको पुण्य-प्रवृत्ति और गहरी हुई। अगले जन्म में वह महादानी बलि बना।

आधुनिक अनुसंधानों ने भी संस्कारों के महत्व को भी प्रतिपादित किया है। फ्रांस में जे-दम्पत्ति के यहाँ एक बच्ची पैदा हुई- थिरीज गे। तीन माह की आयु में उसने बोलना शुरू किया। परन्तु अपने जीवन में पहला शब्द उसने अपनी मातृ-भाषा फ्रेंच में नहीं, एक ऐसी भाषा में बोला, जो न तो माँ जानती थीं, न पिता। उन लोगों ने वह शब्द डायरी में अपनी बुद्धि से नोट किया-"अहस्यपाह।" वे इस विचित्रता पर हँसते रहे।

परामनोवैज्ञानिक मेयर ने अपनी पुस्तक "ह्यूमन पर्सनालिटी" में अमरीका की पेन्सल्वेनिया यूनिवर्सिटी में असीरियन- सभ्यता के विशेषज्ञ प्राध्यापक हिल प्रेचट द्वारा वेबीलोनिया- साम्राज्य की एक मणि पर खुदे अक्षरों को सहसा पूर्वजन्म की स्मृति से पढ़ लेने का वर्णन किया है। इन प्राध्यापक को उस लिपि व भाषा का ज्ञान नहीं था। अकस्मात् दिवा स्वप्न की तरह उनके दिमाग में वह अर्थ कौंध गया, जो बाद में उस लिपि के विशेषज्ञों द्वारा सही बताया गया। इससे यह अनुमान किया गया कि ये प्राध्यापक पूर्व जन्म में असीरियाई नागरिक थे और उसका संस्कार इतना गहरा था कि इस बार अमरीका में जन्म लेने पर भी वे असीरियाई- सभ्यता के ही अध्ययन की ओर अधिक प्रवृत्त हुए।

इस प्रकार यद्यपि उनके पिछले जन्म की स्थिति ने इस जीवन में उनके विषय विशेष के विद्वान प्राध्यापक बनने के साधन जुटाये, तो भी यह दक्षता जन्मजात नहीं थी। जन्म से तो उस दिशा में प्रवृत्ति-विशेष ही साथ थी। अन्तरंग में उमड़ रही उस प्रवृत्ति ने ही सफलता का पथ-प्रशस्त किया। वस्तुतः प्रवृत्तियाँ और संस्कार ही जन्म-जन्मान्तर के साथी-सहयोगी होते हैं।

शास्त्र कहता है-"**अणोरणीयान् महत्तोमहीयान्" अर्थात् यह आत्मा छोटे से भी छोटा और इतना विराट्** है कि उसमें समग्र सृष्टि खप जाती है। अणु के अन्दर समाविष्ट आत्मा की सत्यता का प्रमाण यही है कि जब वह पुन: किसी प्राणधारी के दृश्य रूप में विकसित होता है तो अपने सूक्ष्म (नाभिक शरीर) के ज्ञान की दिशा में बढ़ने लगता है । इसी बात को गीता में भगवान् कृष्ण ने इस प्रकार कहा है-

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूम: संसिद्धौ कुरुनंदन ।।

अर्थात्- आत्मा पहले शरीर में संग्रह किये हुए बुद्धि संयोग को अर्थात् समत्व बुद्धि-योग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाता है और तब हे अर्जुन ! उस संस्कार के प्रभाव से वह फिर परमात्मा की प्राप्ति रूप सिद्धि के लिए पहले से भी बढ़कर प्रयत्न करता है।

२०० वर्ष पूर्व जर्मनी में हानरिस हानेन्केन का जन्म हुआ यह बालक तीन वर्ष का था तभी उसने जोड़, बाकी, गुणा भाग लगाना और हजारों लैटिन मुहावरे सीख लिये थे। इसी अवस्था से उसने फ्रेंच भाषा और भूगोल का अच्छा ज्ञान प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया था। इस विलक्षण प्रतिभा का कारण वैज्ञानिक नहीं जान पाये।

इसी तरह साइबरनेटिक्स के रचनाकार वीनर ने पाँच वर्ष की आयु में ही विज्ञान में रुचि लेनी प्रारम्भ कर दी थी, वह अठारह वर्ष के लड़कों के साथ विज्ञान पढ़ता था। चौदह वर्ष की अत्यल्प आयु में वीनर ने विज्ञान की उपाधि प्राप्त करली। गेटे नौ वर्ष की आयु में कविताएँ लिखने लगा था, जो आज बी० ए० और एम० ए० की कक्षाओं में पढ़ाई जाती हैं । बायरन, स्काट और डारविन ऐसे ही विलक्षण बौद्धिक क्षमता वाले बच्चे थे। पास्कल ने पन्द्रह वर्ष की आयु में ही विज्ञान सम्बन्धी रचना प्रकाशित कर दी थी, जिसमें उसने सौ से भी अधिक नये प्रमेय सिद्ध कर दिये थे।

ऐसी विलक्षण और आध्यात्मिक प्रतिभा सम्पन्न बच्चों के उदाहरण भारतवर्ष में सर्वाधिक विद्यमान् हैं। उन सब में विलक्षण चित्रकूट से दस मील दूर जलालपुर नामक ग्राम में एक धर्म-प्राण ब्राह्मण परिवार में जन्मी बालिका है। उसका नाम है, सरोजबाला। पिता का नाम पं० श्यामसुन्दर जी, इन दिनों सूरत में कार्य करते हैं। इस बालिका के दो व्यक्तित्व हैं- एक तो साधारण बालिका और दूसरा अत्यन्त विद्वान् और प्रतिभा सम्पन्न बालिका का। जब तक वह घर में रहती, वह बालकों की सी चपलता, उछल-कूद, आमोद-प्रमोद किन्तु जैसे ही वह सभा-मंच पर पहुँचती है गीता, रामायण, महाभारत, वेदान्त, मनुस्मृति, योग और भक्ति के समन्वय से ऐसे धारा-प्रवाह प्रवचन करती है कि सुनने वाले मंत्र-मुग्ध हो जाते हैं। सरोजवाला तीन वर्ष की थीं, तभी से अपने को राजस्थान के एक ब्राह्मण परिवार के मृतक के रूप में घोषित करने लगी थी। १९६२ में स्व० डा०राजेन्द्रप्रसाद (उस समय के राष्ट्रपति) के समक्ष कानपुर में उसने प्रवचन किया था, जिसको सुनकर वे बहुत प्रभावित हुए थे। अगले वर्ष से ही वह नियमित रूप से सार्वजनिक समारोहों में प्रवचन करने लगी थी। उसके असीम ज्ञान, शुद्ध उच्चारण, प्रतिभा पूर्ण शैली और भाव-भंगिमाओं को देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि यह ज्ञान इसी जीवन का विकास है।

अन्तराल में प्रतिष्ठित प्रतिभा क्षेत्र

संसार की विषमता बड़ी विलक्षण है। कोई धनवान है, कोई कंगाल, कोई सुन्दर है तो कोई कुरूप। शारीरिक दृष्टि से बलिष्ठ एवं कमजोर दोनों ही प्रकार के व्यक्तियों का युग्म दिखाई पड़ता है। किसी को अनेकों प्रकार की बीमारियाँ घेरे हुए हैं, तो कोई सदा स्वस्थ, निरोग रहकर जीवन का वास्तविक आनन्द उठाता है। किसी के साथ जन्मजात विकलांगता का, अंधे अथवा रुग्ण होने का अभिशाप जुड़ा हुआ है तो कोई जन्म से ही स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य को साथ लिए प्रकट होता है। कुछ बच्चे जन्म से ही असाधारण प्रतिभा के स्वामी होते हैं और कुछ नितान्त बुद्धू । किन्हीं की बौद्धिक प्रखरता वयोवृद्धों को भी मात करती है, किन्हीं-किन्हीं पर प्रभाव शाली प्रशिक्षण का भी प्रभाव नहीं पड़ता और वे मूढ़ ही बने रहते हैं।

कई बार एक प्रकार की परिस्थितियों में ही यह विषमता उभर कर सामने आती है। साधन एवं प्रशिक्षण एक जैसा मिलते हुए भी कुछ बच्चे विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न बन जाते हैं, जबकि उन्हीं परिस्थितियों में दूसरे सामान्य अथवा मूर्ख बने रहते हैं। यह भिन्नता प्रकृति गुण एवं स्वभाव में भी दृष्टिगोचर होती है। हर दृष्टि से अनुकूल वातावरण होते हुए भी कोई-कोई बच्चे उद्दण्ड, क्रूर एवं हिंसक प्रकृति के हो जाते हैं इसके प्रतिकूल भी तथ्य देखे जाते हैं। पापी, क्रूरकर्मी अभिभावकों के संरक्षण में पले कोई-कोई बच्चे सौम्य, शालीन एवं सन्त प्रवृति के भी पाये जाते हैं। जबकि उन्हीं के दूसरे सहोदर भाई अभिभावकों के पदचिन्हों का अनुकरण करते हैं। सौम्यता, शिष्टता, शालीनता के संस्कारों

से युक्त माता-पिता के बच्चों में से कुछ उद्दण्ड, क्रूर, क्रोधी, एवं हिंसक संस्कारों से युक्त भी देखे जाते हैं।

इन विषमताओं एवं भिन्नताओं का प्रत्यक्ष कारण ढूँढ़ने पर कोई ऐसा आधार नहीं मिलता जो मानवी मस्तिष्क को सन्तुष्ट कर सके। वातावरण एवं आनुवंशिकी जैसे वैज्ञानिक आधारों पर भी उक्त विषमताओं का कारण स्पष्ट नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में कर्मफल एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त ही समाधानकारक सिद्ध होते हैं। वैचारिक दृष्टि से उनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। स्पष्ट है कि आनुवंशिकी गुणों के अतिरिक्त भी बच्चे के साथ कुछ ऐसी विशेषताएँ जुड़ी होती हैं जो अधिक सूक्ष्म तथा सशक्त हैं। भारतीय संस्कृति में उन्हें ही सूक्ष्म संस्कार कहते हैं जो मरणोपरान्त भी जीवात्मा के साथ संलंग्न रहते हैं तथा जन्म के साथ बच्चों में प्रकट होते हैं। जो उपयुक्त वातावरण में पोषण पाकर दृष्टिगोचर होते हैं। पातंजलि योग सूत्र में इस तथ्य का इस प्रकार रहस्योद्घाटन हुआ है-

"क्लेशमूल: कर्मो शयो दृष्टादृष्ट जन्मवेदनीय:।
सतिमूले तद्विपाको जात्यामुर्भोगा:।।"

अर्थात्- " यदि पूर्व जन्म के कर्म अच्छे हैं तो उत्तम जाति, आयु और भोग प्राप्त होते हैं। जब मनुष्य शरीर त्याग करता है, तब इस जन्म की विधा, कर्म और पूर्व प्रज्ञा आत्मा के साथ जाती है और उसी ज्ञान और कर्म के अनुसार जन्म होता है यानी वैसे ही संस्कार जन्म के साथ प्रकट होते हैं।"

पुनर्जन्म की पुष्टि वैज्ञानिक आधारों पर भी होती है। भौतिकी के पदार्थ के अविनाशिता के सिद्धान्तानुसार न तो पदार्थ की उत्पत्ति होती है और न ही विनाश की। मात्र उसका रूपान्तरण होता है। इस रूपान्तरण की प्रक्रिया में ही नित्य नये दृश्य दिखाई पड़ते हैं। पदार्थों का रूपान्तरण ही उनका पुनर्जन्म है। प्रसिद्ध परामनो वैज्ञानिक डा० रेना रुथ ने अपनी पुस्तक "रिइनकारनेशन एण्ड सांइस" में भौतिकीविद् क्लीफार्ड स्वार्डस के सिद्धान्त का उल्लेख किया है कि पदार्थ एवं ऊर्जा दोनों ही परस्पर परिवर्तनशील हैं। ऊर्जा परिवर्तित हो सकती है, अदृश्य हो सकती है, पर नष्ट नहीं होती। उन्होंने डी० एन० ए० (डिऑक्सी रीबो न्यूकलिक एसिड) को संस्कार वाहक माना है। उनकी मान्यता है, कि डी० एन० ए० संस्कारों के साथ ही अदृश्य जगत में मृत्युपरान्त अदृश्य रूप में विद्यमान रहता है। तथा जन्म के समय पुन: प्रकट होता है। अब तो पुनर्जन्म के सिद्धान्तों को वैज्ञानिक कसौटी पर कसने के लिए हमें सब एटामिक, एन्टीयूनीवर्स जगत में प्रवेश करना होगा।"

पदार्थों की तरह जीवात्मा भी शरीर का रूपान्तरण करती है। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानिगृहणाति नरोऽपिराण।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यान्यानि संयाति नवानि देही।।

अर्थात्-"जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र त्यागकर दूसरे नये वस्त्र ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा भी पुराने शरीर को त्यागकर नयी देह धारण करता है। शरीर का नाश होने पर आत्मा का नाश नहीं होता।"

जन्मजात प्राप्त क्षमतायें एवं प्रतिभायें इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि मनुष्य की अर्जित बौद्धिक विशेषताऐं इस जीवन तक ही नहीं रहतीं वरन् अगले जन्मों में भी बनी रहती हैं । विश्व भर में कितने ही बालक ऐसे हुए हैं जो अल्पायु में ही असामान्य प्रतिभा सम्पन्न देखे गये। आधुनिक ग्रामोफोन के आविष्कारक एवं विद्युत लैम्प के जन्मदाता अमेरिका निवासी टामस एल्वा एडिसन ने मात्र दस वर्ष की आयु में सियर, बर्टन एवं गिलन के महान् ग्रन्थों एवं डिक्शनरी ऑफ साइंस का अध्ययन पूरा कर लिया। पन्द्रह वर्ष की आयु में वे एक स्थानीय पत्र के सम्पादक बने। सापेक्षवाद को जन्म देने वाले अल्वर्ट आइंस्टीन के गणित के प्रश्नों की बौछार से सैकेण्डरी स्कूल के अध्यापक परेशान हो जाते थे तथा उत्तर देने में अपने को अक्षम पाते थे। १४ वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचतें उन्होंने भौतिक विज्ञान, बीजगणित, उच्च ज्यामिती जैसे विषयों में विशेषज्ञता प्राप्त करली।

माइकेनलग्रास्ट मिचिगन स्टेट यूनिवर्सिटी का प्रथम विद्यार्थी था, जिसने मात्र १५ वर्ष की आयु में गणित जैसे क्लिष्ट विषय में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। एलमर स्पेरी ने दस वर्ष की आयु में मसाला पीसने की मशीन बनाई, पानी के चक्र का आविष्कार किया। रेल मार्ग पर चलने वाली तीन पहियों वाली पैडल की गाड़ी बनायी। बोनेटेरेकी' को दो वर्ष चार माह की आयु में ३५०० शब्द याद थे एवं प्रसिद्ध कवियों की १०० कविताऐं कण्ठस्थ थीं। उसका बौद्धिक स्तर (आई-क्यू०) १८५ आँका गया। जो असाधारण प्रतिभा से भी ४५ अधिक होता है। मास्कों की इर्मासोखादभे नामक नो वर्षीय बालिका अठारह भाषाओं के दो सौ गाने गाया करती थी। तीन वर्ष की आयु में ही उसने सभी प्रकार के संगीत में विशेषता अर्जित करली।

मैकाले दो वर्ष की आयु में ही पढ़ा लिख सकता तथा बुजुर्गों जैसी बात करता था। आठवें वर्ष में उसने विश्व की इतिहास नामक पुस्तक लिखी।

प्रो० हार्वी फ्रिडमैन ने १०वें वर्ष में इंजीनियरिंग में पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। बिना मैट्रिक परीक्षा दिए ही उसने छह वर्ष की आयु में मैसाचुसेट्स इंजीनियरिंग कालेज के छह वर्षीय अभ्यास क्रम को पूरा कर लिया। जर्मनी का ९ वर्षीय बालक कालविट ने अपनी असाधारण प्रतिभा के कारण हीलिपजिग विश्व विद्यालय में प्रवेश पाने में सफल हो गया। चौदह वर्ष की आयु में उसे पी० एच० डी० तथा सोलहवें वर्ष में डाक्टर आफ ला' की उपाधि प्रदान की गई।

विदेशों में ही नहीं, भारत में भी अनेकों व्यक्ति पैदा हो चुके हैं जो बाल्यवस्था में ही विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न थे। शंकराचार्य ने सोलह वर्ष की आयु में भारत के सभी मूर्धन्य विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया । श्री निवास रामानुजम केवल ३२ वर्ष जिये, पर इस संक्षिप्त अवधि में गणितज्ञ के रूप में उन्होंने विज्ञान जगत को जो उपलब्धियाँ दीं, वे आज गणित शास्त्र का मूल आधार बनी हुई हैं।

बिना किसी प्रशिक्षण, अध्ययन के बचपन से ही प्रतिभा सम्पन्न उपरोक्त व्यक्तियों के जीवन क्रम का अवलोकन करते हैं तो उनके असामान्य होने का प्रत्यक्ष कोई कारण हाथ नहीं लगता है ।पुनर्जन्म के सिद्धान्त को जोड़ देने भर से गुत्थी सुलझ जाती है। कर्मों का फल इसी जीवन में मिले यह आवश्यक नहीं है। वह विशिष्ट प्रतिभा-योग्यता अथवा अनुकूल-प्रतिकूल प्ररिस्थितियाँ साथ लिए दूसरे जीवन में प्रकट होता है । प्रचलित भाषा इसे ही भाग्य' के नाम से संबोधित किया जाता है। जन्म से ही प्राप्त अनुकूलताओं अथवा प्रतिकूलताओं का भी कोई प्रत्यक्ष कारण ढूँढ़ने पर नहीं मिलता है। इनकी व्याख्या कर्मफल एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्तों के आधार पर ही की जा सकती है। पुरुषार्थ के बलबूते अनुकूल परिस्थिंतियाँ, योग्यता, क्षमता अर्जित कर लेना सम्भव है। एक सीमा तक प्रारब्धों को भी बदला जा सकता है। वातावरण एवं आनुवंशिकी का भी एक सीमा तक प्रभाव पड़ता है। इतने पर भी उपरोक्त प्रमाण पुनर्जन्म के सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन करते हैं।

भले बुरे कर्मों का प्रभाव न केवल इस जीवन तक वरन् अगले जीवन के भी संस्कारों के रूप में भी परिलक्षित होता है। अर्जित योग्यता एवं प्रतिभा भी सूक्ष्म संस्कारों के रूप में दूसरे जन्म में भी बनी रहती है। वहन केवल इस जीवन में वरन् दूसरे जीवन में भी विकास अथवा पतन का कारण बनती है। वैचारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टियों से भी ज्ञान की महत्ता भली-भाँति प्रामाणित है। इस तथ्य को समझने में पुनर्जन्म के सिद्धान्त न केवल सहायक हैं, वरन् सद्प्रेरणा देने में भी पूर्णरूपेण सक्षम है।

प्रतिभायें ! पूर्वजन्म का संचित ज्ञान

संसार में ऐसी विलक्षण प्रतिभाएँ समय-समय पर उत्पन्न होती रहती हैं जिनकी बौद्धिक असाधारणता को देखकर अवाक् रह जाना पड़ता है। शरीर विकास की तरह बौद्धिक विकास का भी एक क्रम है। समय और अवधि के अनुरूप साधन-सुविधाओं के सहारे कितने ही मनुष्य अपनी प्रतिभा को निखारते, बढ़ाते देखे गये हैं। पुरुषार्थ और परिस्थितियों के सहारे उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँचते भी अनेकों को देखा जाता है, पर इस स्वाभाविक प्रगति-प्रक्रिया का उल्लंघन करके कई बार ऐसी प्रतिभायें सामने आती हैं जिनके विकास क्रम का कोई बुद्धिगम्य कारण दिखाई नहीं पड़ता। ऐसी विलक्षण प्रतिभाओं का कारण ढूँढ़ने के लिए हमें पूर्व संचित ज्ञान-सम्पदा का प्रतिफल मानने के अतिरिक्त और कोई समाधान मिल ही नहीं सकता।

विख्यात फ्रांसीसी बालक 'जान लुई कार्दियिक' जब तीन मास का था तभी अँग्रेजी वर्णमाला का उच्चारण कर लेता था। तीन वर्ष का होते-होते वह अच्छी लैटिन पढ़ने और बोलने लगा। पाँच वर्ष की आयु में पहुँचने तक उसने फ्रेंच, हिब्रू और ग्रीक भी अच्छी तरह सीखलीं। छः वर्ष की आयु में उसने इतिहास, भूगोल और गणित पर भी आश्चर्यजनक अधिकार प्राप्त कर लिया। सातवें वर्ष में वह संसार छोड़कर चला गया।

बिलियम जेम्स सिदिस ने सारे अमेरिका को आश्चर्यचकित कर दिया। दो वर्ष की आयु में वह धड़ल्ले की अँग्रेजी बोलता, पढ़ता और लिखता था। आठ वर्ष की आयु में छः विदेशी भाषाओं का ज्ञाता था जिनमें ग्रीक और रूसी भाषाऐं भी सम्मिलित थीं, जिनका उस देश में प्रचलन नहीं था। ग्यारह वर्ष की आयु में उसने उस देश के मूर्धन्य विद्वानों की सभा में चौथे आयाम' की सम्भावना पर एक विलक्षण व्याख्यान दिया उस समय तक तीसरे आयाम की बात ही अन्तिम समझी जाती थी।

सिदिस की यह विलक्षणता किशोरावस्था अनि पर न जाने कहाँ गायब हो गई। वह अति सामान्य बुद्धि का व्यक्ति रह गया।

इंगलैण्ड के डेवोन स्थान में एक पत्थर तोड़ने वाले श्रमिक का दो वर्षीय पुत्र जार्ज, गणित में अपनी अद्भुत प्रतिभा प्रदर्शित करने लगा। चार वर्ष की आयु में उसने गणित के अत्यन्त जटिल प्रश्नों का दो मिनट में मौखिक उत्तर देना आरम्भ कर दिया, जिन्हें कागज, कलम की सहायता से गणित के निष्णात आधा घण्टे से कम में किसी भी प्रकार हल नहीं कर सकते थे। इसकी प्रतिभा भी दस वर्ष की आयु में समाप्त हो गई। फिर वह सामान्य लड़कों की तरह पढ़कर कठिनाई से सिविल इन्जीनियर बन सका।

फिल्मी दुनियाँ में तहलका मचाने वाला बाल अभिनेता विलियम हेनरी वेट्टी बाल्यकाल से ही अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देने लगा। उसके अभिनय ने सारे यूरोप का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया । ११ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते वह फिल्म दर्शकों का सुपरिचित प्रिय पात्र बन गया। ऐसा ही एक दूसरा बालक था-लन्दन का कवेंट गार्डन, उसका अभिनय देखने के लिए आकुल भीड़ को हटाने के लिए एक बार तो सेना बुलानी पड़ी । उसे इतना अधिक पारिश्रमिक मिलता था जितना पाने का अन्य किसी कलाकार को सौभाग्य न मिला। एक बार तो 'हाउस आफ कामन्स' का अधिवेशन इसलिए स्थगित करना पड़ा कि उस दिन कवेंट गार्डन द्वारा हेमलेट का अभिनय किया जाना था और सदस्यगण उसे देखने के लिए आतुर थे।

जर्मन की बाल प्रतिभा का कीर्तिमान स्थापित करने वालों में जान फिलिफ वैरटियम को कभी भुलाया न जा सकेगा। उसने दो वर्ष आयु में ही पढ़ना-लिखना सीख लिया । छः वर्ष की आयु में वह फ्रेंच और लैटिन भी धाराप्रवाह रूप में बोलता था। सात वर्ष की आयु में उसने बाइबिल का ग्रीक भाषा में अनुवाद करना आरम्भ कर दिया । सात वर्ष की आयु में ही उसने अपने इतिहास, भूगोल और गणित सम्बन्धी ज्ञान से तत्कालीन अध्यापकों को अवाक् बना दिया। सातवें वर्ष में ही उसे बर्लिन की रायल एकैडैमी का सदस्य चुना गया तथा डाक्टर आफ फिलॉसफी की उपाधि से सम्मानित किया गया। वह भी अधिक दिन नहीं जिया। किशोरावस्था में प्रवेश करते-करते वह इस संसार से विदा हो गया।

अत्यन्त छोटी आयु में विलक्षणता का परिचय देने में समस्त विश्व इतिहास को पीछे छोड़ देने वालों में लुवेक जर्मनी में उत्पन्न हुआ बालक फ्रेडरिक हीनकेन था। वह सन् १७२१ में जन्मा । जन्मने के कुछ घण्टे के बाद ही वह बातचीत करने लगा। दो वर्ष की आयु में बाइविल के सम्बन्ध में पूछी गयी किसी भी बात का विस्तारपूर्वक उत्तर देता था और बताता था कि वह प्रकरण किस अध्याय के किस मन्त्र में है। इतिहास और भूगोल में उसका ज्ञान अनुपम था। डेन्मार्क के राजा ने उसे राजमहल में बुलाकर सम्मानित किया। तीन वर्ष की आयु में उसने भविष्यवाणी की कि अब मुझे एक वर्ष ही और जीना है। उसका कथन अक्षरशः सही उतरा, चार वर्ष की आयु में वह इस संसार से विदा हो गया।

जो लोग पुनर्जन्म का अस्तित्व नहीं मानते। मनुष्य को एक चलता-फिरता पौधा भर मानते हैं। शरीर के साथ चेतना का उद्भव और, मरण के साथ ही उसका अन्त मानते हैं, वे इन असमय उदय हुई प्रतिभाओं की विलक्षणता का समाधान नहीं ढूँढ़ पायेंगे । वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षी सभी अपने क्रम से बढ़ते हैं, उनकी प्रत्येक्ष और अप्रत्यक्ष विशेषताएँ समयानुसार उत्पन्न होती हैं। फिर मनुष्य के असमय में ही इतना प्रतिभा सम्पन्न होने का और कोई कारण नहीं रह जाता कि उसने पूर्व जन्म में उन विशेषताओं का संचय किया हो और वे इस जन्म में जीवन चेतना के साथ ही जुड़ी चली आई हों।

लार्ड मैकाले १९वीं शताब्दी के विश्वविख्यात ब्रिटिश इतिहास लेखक ने इंग्लैण्ड का इतिहास आठ जिल्दों में लिखा। उसके लिये उन्होंने दूसरी पुस्तक उठाकर नहीं देखी। सैकड़ों घटना की तिथियों और घटना से सम्बन्धित व्यक्तियों के नाम उन्हें जवानी याद थे। यह नहीं स्थानों के परिचय, दूसरे विषय और अब तक जितने भी व्यक्ति उनके जीवन में उनके सम्पर्क में आ चुके थे, उन सब के नाम उन्हें बाकायदा कण्ठस्थ थे। लोग उन्हें चलता फिरता पुस्तकालय कहते थे।

पोर्सन ग्रीक भाषा का अद्वितीय पण्डित था, उसने ग्रीक भाषा की सभी पुस्तकें और शेक्सपियर के नाटक मुख-जवानी याद कर लिये थे। ब्रिटिश संग्रहालय के सहायक अधीक्षक रिचर्ड गार्नेट बारह वर्ष तक एक संग्रहालय के मुद्रित पुस्तक विभाग के अध्यक्ष थे, इस संग्रहालय में पुस्तकों की हजारों अलमारियाँ और उनमें करोड़ों की संख्या में पुस्तकें थीं। श्री गार्नेट अपनी कुर्सी पर बैठे बैठे न केवल प्रत्येक पुस्तक का ठिकाना बता देते थे वरन् पुस्तक की भीतरी जानकारी भी दे देते थे।

पास्काल १५ वर्ष की आयु में एक, प्रामाणिक विज्ञान ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित करा चुका था। गेटे ने ९ वर्ष की आयु में यूनान लैटिन और जर्मन भाषाओं में कविताऐं लिखना आरम्भ कर दिया था।

लिथूयानिया निवासी रैवी एलिजा के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसे विचित्र मानसिक शक्ति प्राप्त थी, पर उस पर उसका नियन्त्रण न होने के कारण वह शक्ति भी जीवन में कुछ काम न आई। उसने अपने जीवन में दो हजार से अधिक पुस्तकों को एक बार पढ़कर याद कर लिया था। कोई भी पुस्तक लेकर किसी भी पन्ने को खोलकर पूछने पर वह उसके एक-एक अक्षर को दोहरा देता था। उसका मस्तिष्क सदैव क्रियाशील रहता था इसलिये पुस्तकालय के बाद भी उसे अपने हाथ में पुस्तक रखनी पड़ती थी, दूसरे कामों से चित्त हटते ही वह पुस्तकें पढ़ने लग जाता था।

पिल्सवरी अमेरिका के हैरी नेल्सन को भी ऐसी विलक्षण मानसिक शक्ति प्राप्त थी। उसे शतरंज का जादूगर कहा जाता था। वह एक साथ बीस शतरंज के खिलाड़ियों की चाल को याद रख सकता था। बीस-बीस खिलाड़ियों से खेलते समय कई बार उसे मानसिक थकावट होने लगती थी, उस थकावट को उतारने के लिए वह ताश भी खेलने लगता था।

जर्मनी के राजा की एक लाइब्रेरी प्रसा में थी। इसके लाइब्रेरियन मैथुरिन बेसिरे की आवाज सम्बन्धी याददास्त अद्भुत थी। एक बार उसकी परीक्षा को लिए बारह देशों के राजदूत पहुँचे और उन्होंने अपनी-अपनी भाषा में बारह वाक्य कहे। जब वे चुप हो गये तो बेसिरे ने बारहों भाषाओं के बारहों वाक्य ज्यों के त्यों दोहरा दिये। वह एक बार में ही कई व्यक्तियों की आवाज सुनता रहता था और आश्चर्य यह था कि सब की बात उसे अक्षरश: याद होती जाती थीं। ऐसी विलक्षण प्रतिभा फ्रांस के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ लिआन गैम्बाटा और रिचार्ड पोरसन नामक ग्रीक पण्डित को भी उपलब्ध थी।

आत्मा के गुण हैं:- सूक्ष्मता, इन्द्रियाधिष्ठाता, अणु रूप, चेतनता, अजर और अमर इन गुणों की पुष्टि करने वाली और जीवात्मा के अनेक योनि शरीरों में आवागमन की पुष्टि करने वाली महत्त्वपूर्ण घटना- ह्यूमन परसनैलिटी भाग १' में इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० मायर्स ने उद्घृत किया है। १८ वर्षीया अमरीकन लड़की " एनो विन्सर" के मस्तिष्क के विक्षिप्तता आ गई उस समय वह कई बार तो अपने आपको क्वेकर सम्प्रदाय का सदस्य बताती और उस समय जो भाषण देती वे ठीक क्वेकर दर्शन के भाषण होते। उसने अपने आपको एक बार इंगलैण्ड की रानी ऐन बताया और उस समय जो बातें कहीं पता लगाने पर मालूम हुआ कि वे सब सच थीं।

यह निश्चेष्ट अवस्था में आँखें बन्द करके कोई भी पुस्तक पढ़ सकती थी। बहुत समय तक उस पर परीक्षण करने वाले डा० "आयरा वैराज" ने इस अवस्था में उसे अँधेरे कमरे में एक सुई व धागा दिया और उस सुई में धागा पिरोने के लिये कहा तो उस ने बड़ी आसानी से धागा पिरोकर यह सिद्ध कर दिया कि आत्मा स्वयं प्रकाश पूर्ण है, उसे देखने के लिये आँखें आवश्यक नहीं, आँख, कान, नाक, आदि सब उसकी अतीन्द्रिय शक्तियाँ हैं। वह दूसरे कमरे में रखी घड़ी में क्या बजा है यह बताकर सिद्ध करती थी कि आत्मा के लिये करोड़ों मील दूर तक देख सकने में भी कोई बाधा नहीं। वह उल्टी किताब पढ़ लेती थी और सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि वह सिर के ऊपर पुस्तक खोलकर जहाँ हिन्दू चोटी रखते हैं उस स्थान से पुस्तक पढ़ देती थी मानो चोटी का स्थान आँख रही हो।

यह लड़की सिर के बल, एक हाथ के बल खड़ी हो जाती, कभी अपने को कुत्ता कहती और इस तरह भौंकने लगती कि पड़ौसी के कुत्ते भ्रम में पड़कर स्वयं भी भौंकने लगते। उस स्थिति में वह पानी नहीं पीती, ठीक कुत्तों की तरह ही जीभ से चाटती। उसमें "हेस्टी पुडिंग" पुस्तक कभी भी पढ़ी नहीं थी, तो भी उसके अध्याय के अध्याय और वह भी सोती हुई अवस्था में अपने दाहिने हाथ से लिख देती। लतीनी फ्रांसीसी भाषायें उसने कहीं भी पढ़ीं नहीं थी पर लिख भी लेती और बोल भी लेती थी।

ज्ञान का भी पुनर्जन्म होता है

प्रबल पुरुषार्थ द्वारा जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त की जा सकती है तथा अपनी योग्यताओं और क्षमताओं को असाधारण रूप से बढ़ाया, विकसित किया जा सकता है। बहुत बार लगता है । किये जा रहे प्रयत्न निरर्थक जा रहे हैं, उनसे कोई लाभ नहीं मिल रहा है। सम्भव है किन्हीं कारणों से अपने प्रयत्नों का समुचित लाभ न मिल पाता हो, परन्तु उस प्रयत्न के बदले अन्तर्निहित प्रतिभा तथा योग्यता में जो निखार आता है, वह जन्म-जन्मान्तरों तक संचित पूँजी के रूप में विद्यमान रहता है, उसे न कोई छीन सकता है, न ही उसमें हिस्सा बँटा सकता है। प्रमाण हैं वे असंख्य महापुरुष जिन्होंने छोटी उम्र में ही ऐसे-ऐसे काम कर दिखाए जो बड़ी उम्र के व्यक्तियों के लिए असम्भव नहीं तो दु:साध्य तो कहे ही जा सकते हैं।

प्रश्न उठता है कि छोटी उम्र में ऐसी महान सफलताऐं अर्जित कर पाना किस प्रकार सम्भव हुआ, तो उत्तर में न तो सौभाग्य या वरदान कहा जा सकता है, न ईश्वर प्रदत्त विशेष सुविधा। ईश्वर सबको समान अवसर देता है, किसी को अधिक सुविधाऐं दे और किसी को कम तो उस पर पक्षपात करने का दोष आता है। ईश्वर न अन्यायी है न पक्षपाती। प्रमाद मनुष्य स्वयं ही करता है और अपनी अन्तर्निहित क्षमताओं को जगाने के सम्बन्ध में उपेक्षा बरतता है।

प्रयत्न और पुरुषार्थ द्वारा माँगी तथा खरीदी गई विशेषताऐं मनुष्य के लिए बैंक में फिक्स डिपॉजिट की तरह संचित और अभिवर्धित होती रहती हैं। कभी उनके पकने से पूर्व ही मृत्यु हो जाए तो भी वे चक्रवृद्धि, ब्याज सहित अगले जन्म में मिल जाती है। ठीक उसी प्रकार जैसे किसी नगर में रहते हुए वहाँ के बैंक में जमा कराया पैसा दूसरे शहर में चले जाने पर भी मिल जाता है।

राजनीति, विद्धता, कला, साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में ऐसे अगणित महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने छोटी उम्र में ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया और इतिहास में अपना स्थान बनाया, उदाहरण के लिए सम्राट अशोक ने २२ वर्ष की आयु में ही राज सिंहासन सम्हाला था। यह आयु राजकाज चलाने की तो क्या, व्यापार-व्यवसाय करने तक की नहीं होती। किन्तु अशोक ने न केवल राज्य-व्यवस्था का सुचारु रूप से संचालन किया बल्कि मौर्यवंश की डगमगाती धरोहर को फिर से सँवारने का सफल प्रयत्न किया। उसने इतिहास प्रसिद्ध कलिंग की लड़ाई ३७ वर्ष की आयु में लड़ी और विजय प्राप्त की। यह बात अलग है कि उसके बाद अशोक ने युद्ध न करने की कसम खा ली थी।

सिकन्दर महान २० वर्ष की आयु में ही मकदूनिया के सिंहासन पर आसीन हुआ और सिंहासन पर बैठते ही उसने विश्व विजय का स्वप्न देखा और इस अभियान पर निकल पड़ा। एशिया के पश्चिमी देशों, मिश्र, ईरान, हिंदुकुश, अन्दक, नाइसा आदि राज्यों पर विजय प्राप्त करता हुआ, वह दस वर्ष की अवधि में ही ओहिंद के समीप सिंधु नदी पार करके तक्षशिला की सीमा पर आ खड़ा हुआ था।

सम्राट अकबर का जब राज्याभिषेक हुआ तब उसकी आयु मात्र १३ वर्ष ४ महीने की थी। उसे नाममात्र का सम्राट बनाकर बैरम खाँ ने जब अपनी शक्ति बढ़ाना आरम्भ किया और वह अकबर के स्थान पर अब्दुलकासिम को सिंहासन पर बिठाने का षड़यन्त्र रचने लगा तो सन् १५६० में, अकबर ने उसे पदच्युत कर मात्र १८ वर्ष की आयु में शासन सत्ता की बागडोर पूरी तरह अपने हाथ में ले ली।

छत्रपति शिवाजी ने १९ वर्ष की आयु में ही तोरण के पहाड़ों दुर्ग पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में ले लिया था और दो वर्ष बाद पुरन्दर के किले को भी जीत लिया। इसी प्रकार महाराजा रणजीत सिंह ने भी १९ वर्ष की आयु में ही लाहौर पर विजय प्राप्त की थी।

फ्रांस का लुई चौदहवाँ यद्यपि ४ वर्ष की आयु में ही राजगद्दी पर बैठा था, किन्तु राज्य शासन का वास्तविक कर्ता-धर्ता उसका मंत्री मेजिरा ही था। फिर भी २२ वर्ष की आयु में उसने शासन-तन्त्र पूरी तरह अपने हाथ ले लिया। उल्लेखनीय है कि यूरोप के इतिहास में लुई चौदहवें जितनी लम्बी अवधि तक किसी भी राजा ने राज्य नहीं किया।

रूस का पीटर महान १७ वर्ष की आयु में राजगद्दी पर बैठा। उसने अपने देश का पिछड़ापन दूर करने के लिए जितने प्रयास किये, सम्भवत: रूस के किसी भी शासक ने उतने कार्यक्रम नहीं चलाऐ। आज भी रूस के इतिहास में पीटर को 'पीटर महान' कहकर उल्लेखित किया जाता है।

नैपोलियन बोनापार्ट २४ वर्ष की आयु में ही फ्रांसीसी सेना में जनरल बन गया था और तीन वर्ष बाद ही उसने इटली की सेना की बागडोर भी सम्हाल ली। यद्यपि इस बीच वह विरोधियों द्वारा सताया और दबाया भी गया। यहाँ तक कि उसे जेल में भी डाल दिया गया किन्तु तीन वर्ष जैसी छोटी सी अवधि में पतन के बाद एकदम इतनी शीघ्रता से उठ खड़े होने का उदाहरण इतिहास में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

राजनीति के क्षेत्र में तो फिर भी कहा जा सकता है कि इसमें सफलता बहुत कुछ परिस्थितियों पर निर्भर करती है तथा जिसे जब अवसर मिलता है, वह शिखर पर पहुँच जाता है परन्तु विद्वत्ता के क्षेत्र में तो ऐसा नहीं है। इसके लिए तो दीर्घावधि तक विद्याभ्यास करना होता है और फिर केवल विद्वत्ता तक की ही बात सीमित हो तो भी नजर-अन्दाज किया जा सकता है। विद्वत्ता के साथ पूरे सामाजिक क्षेत्र में एक हवा पैदा कर देने की सामर्थ्य, क्षमता और सफलता को क्या कहेंगे ? आद्य शंकराचार्य ने १५ वर्ष की आयु में ही समस्त धर्मशास्त्रों, वेद-वेदांगों का अध्ययन कर डाला था और १६वें वर्ष में संन्यास लेकर देश भ्रमण के लिए निकल पड़े थे। ३२ वर्ष की आयु में पहुँचने तक तो उन्होंने विशाल साहित्य का निर्माण कर डाला था, चार धामों में चार आश्रमों की स्थापना कर ली थी और देश भर के विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था।

संत ज्ञानेश्वर ने २१ वर्ष की आयु में ही समाधि ले ली थी। इसके पूर्व वे महाराष्ट्र में ज्ञान और भक्ति की ऐसी गंगा प्रवाहित कर चुके थे, जिसकी धारा आज भी बह रही है। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने गीता पर अपनी सुप्रसिद्ध टीका 'ज्ञानेश्वरी' लिख डाली थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने अमृतानुभव' तथा योगवाशिष्ठ जैसे ग्रन्थों का भी प्रणयन किया।

स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में हिन्दू धर्म का परिचय जिस प्रभावशाली ढंग से देकर ७००० श्रोताओं सहित वहाँ उपस्थित अन्य वक्ताओं को भी चमत्कृत कर दिया था, उस समय उनकी आयु मात्र ३० वर्ष की थी। सम्मेलन में जितने भी प्रतिनिधि उपस्थित थे, उनके बेटे, पोतों की आयु विवेकानन्द के बराबर थी। इसके पूर्व उन्होंने २३ वर्ष की आयु से लेकर सन् १८९३ में धर्म सम्मेलन में भाग लेने तक लगभग पूरे भारत का भ्रमण कर लिया था। परिव्राजक के रूप में वे उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, मैसूर, मद्रास, केरल, हैदराबाद, आदि प्रांतों की यात्रा कर वहाँ के विद्वानों को अपनी प्रतिभा से प्रभावित कर चुके थे।

कहा जा सकता है कि ये महापुरुष तो कोई अवतारी आत्मा या सिद्ध-संत रहे हैं। इनके लिए ऐसे चमत्कार प्रस्तुत कर पाना कोई कठिन काम नहीं है। किन्तु ऐसे कलाकार, साहित्यकार और वैज्ञानिक भी हुए हैं। जिनके सम्बन्ध में यह बात किसी भी तरह लागू नहीं होती। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि कीट्स २६ वर्ष की अवस्था में ही स्वर्गवासी हो गये थे किन्तु तब तक वे अपनी रची कविताओं के कारण अमर हो चुके थे। विक्टर ह्यूगो १४ साल की आयु तक ३००० से भी अधिक कविताऐं लिख चुके थे। महाकवि गेटे ने १० वर्ष की आयु में पहला नाटक लिखा था और १५ वर्ष की अवस्था में उनकी प्रसिद्ध रचना 'थाड्स इन द डिस्टेट आव जीसस क्राइस्ट इन टू हेल' प्रकाशित हुई थी।

प्रसिद्ध बंगला तोरुदत्त अपनी अंग्रेजी कविताओं के लिए १८ वर्ष की आयु में ही विदेशों तक विख्यात हो गई थी। भारत कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू ने १३ वर्ष की अवस्था में तेरह सौ पंक्तियों की एक अंग्रेजी कविता लिख थी। रवीन्द्रनाथ टेगौरः ने १४ वर्ष की आयु में ही शेक्सपीयर के अंग्रेजी नाटक मैकवैथ का बंगला अनुवाद किया था। वे अपनी कविताओं के लिए २० वर्ष की आयु में ही प्रसिद्ध हो चुके थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र २३ वर्ष के होने तक हिन्दी साहित्य को कई प्रसिद्ध रचानाऐं भेंट कर चुके थे। मुंशी प्रेमचन्द ने ३० वर्ष की आयु में कहानीकार के रूप में अपना स्थान बना लिया था।

कला के क्षेत्र में भी ऐसी कितनी ही प्रतिभाऐं हुई हैं। जिन्होंने अल्पायु में ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। माइकेल एंजिलो ने १७ वर्ष की उम्र में 'सेण्टर का युद्ध' नामक प्रतिमा बनाई। २६ वर्ष के होने तक तो वे मूर्तिकार के रूप में विख्यात हो चुके थे।

लुडविग फान विथोवेन का प्रथम संगीत ग्रन्थ जब प्रकाशित हुआ तब तक उनकी आयु मात्र १३ वर्ष की थी। जब वे २३ वर्ष के हुए तब तो संगीत क्षेत्र में मूर्धन्य स्थिति प्राप्त कर चुके थे। संगीतज्ञ मोत्सार्ट ने ८ वर्ष की आयु में अपना पहला संगीत प्रोग्राम दिया और दो वर्ष के भीतर ही उन्होंने यूरोपीय देशों के कई नगरों में अपने कार्यक्रमों की धूम मचा दी।

छोटी उम्र में ही कई वैज्ञानिकों ने भी महत्त्वपूर्ण आविष्कार किए हैं। एली ह्विटवी ने २८ वर्ष की आयु में कपास ओटाने की मशीन का आविष्कार किया। सैम्युअल कोल्ट ने १६ वर्ष की उम्र में रिवाल्वर का लकड़ी का मॉडल बनाया और बाद में उसे धातु का बनाकर, २१ वर्ष की आयु में पहली बार रिवाल्वर से गोली चलाई।

चार्ल्स मार्टिन होल ने २३ वर्ष की अवस्था में ही विद्युत संश्लेषण द्वारा अल्युमीनियम के उत्पादन की नई विधि पेटेण्ट कराई। जेम्सवाट ने जब भाप के इन्जन की कल्पना की तब उनकी आयु २५ वर्ष की थी और इस कल्पना को मूर्त रूप देने में उन्हें कुछ ही वर्ष लगे। एलेग्जेण्डर ग्राह्म वेल ने २० वर्ष की आयु में टेलीफोन बनाने का प्रयास शुरू किया था, जिसमें उन्हें सफलता मिली। यह अविष्कार पेटेण्ट कराते समय उनकी आयु २६ वर्ष थी।

सिगमंड फ्रायड ने जब मनोविज्ञान के क्षेत्र में अपने क्रांतिकारी सिद्धान्त प्रमाणों सहित प्रतिपादित किए तो उनकी आयु २९ वर्ष थी। चार्ल्स डार्विन भी २७ वर्ष की आयु में विकासवाद के सिद्धान्तों को खोज कर चुके थे। विज्ञान जगत में क्रांति ला देने वाले सापेक्षतावाद (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) के जनक आइन्स्टीन ने २६ वर्ष की आयु में ही अपने दर्शन का प्रणयन कर दिया था।

राजनीति, विद्वता, साहित्य, कला और विज्ञान के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा से छोटी उम्र में ही चमत्कृत कर देने वाली इन विभूतियों में से कई तो ऐसी हैं जिनकी स्थिति अत्यन्त साधारण रही थी। फिर भी उन्होंने अनूठी सफलताऐं अर्जित कीं। इन सफलताओं का कारण जन्म-जात प्रतिभा ही कहा जा सकता है किन्तु प्रतिभा किसी को भी पक्षपातपूर्ण ढंग से नहीं मिलती। जन्म से ही कोई बालक मेधावी दिखाई देते हैं तो इसका कारण पिछले जन्मों में उनके द्वारा किया गया प्रयत्न-पुरुषार्थ ही है जिनका समुचित परिणाम उन्हें नहीं मिल सका। उस समय उन्हें जो परिणाम या अवसर मिलने चाहिए थे। वे इस जन्म में बचपन में ही अनुकूल परिस्थितियों के रूप में प्राप्त होते हैं।

भगवान कृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है कि कोई भी शुभ कर्म करने वाला व्यक्ति न तो दुर्गति को प्राप्त होता है तथा न ही उसे अपने पुण्य कर्मों का फल बिना मिले रहता है। पूर्व जन्म के संस्कार को प्राप्त करते हुए, उनके प्रभाव से वह अनायास ही अभीष्ट दिशा में अग्रसर होता है। जन्मजात मेधावी-प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति अपने पूर्वजन्म के संस्कारों या उपार्जन का ही लाभ उठाते हैं। इसलिए असफलता के भय से न विचलित होना चाहिए न ही निराश।

'गिनिज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड' के अनुसार लॉर्ड केवलिन ने १० वर्ष की आयु में विलियम टॉमसन के नाम से ग्लासगो विश्वविद्यालय, से स्नातक की डिग्री प्राप्त की थी।

उक्त पुस्तक के अनुसार ताइवान के एक मेधावी छात्र जेलू ने ९ वर्ष की आयु में वोइस स्टेट विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। जेलू की आयु उस विश्वविद्यालय के छात्रों की ओसत उम्र से आधी थी। उसने अमेरिका के ४ वर्षीय पाठ्यक्रम को ३ वर्ष में ही पूरा कर लिया। अमेरिकी इतिहास में जेलू स्नातक की डिग्री प्राप्त करने वाला सबसे कम उम्र का प्रथम छात्र है।

डॉन फ्रांसिस्को कोलम्बिया विश्वविद्यालय में जब प्राकृतिक इतिहास का प्रोफेसर नियुक्त हुआ, तो उसकी आयु मात्र १६वर्ष थी।

चार वर्षीय वेबेल थाम्पनन अंकगणित, त्रिकोणमिति और प्रारम्भिक भौतिक में असाधारण गति रखती है। ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी ने इस अतिशय मेधावी बालिका के लिए अध्ययन का विशेष प्रबन्ध किया है।

रवि किरण नामक ढाई वर्ष का एक भारतीय बालक न केवल कई वाद्य यन्त्रों का कुशल वादक है, अपितु अन्यों द्वारा गलत बजाए जाने पर उनकी त्रुटि भी बता सकता है- 'मद्रास संगीत अकादमी न्यास' ने उसे ५० रुपये प्रतिमास की छात्रवृत्ति देने की घोषण की है।

दूसरा आधार है- वंशानुक्रम-माता-पिता तथा मातृकुल के अन्य पूर्वजों की विशेषता साथ लेकर जन्म लेना भी एक प्रकार का पुनर्जन्म ही है। इसके लिए आवश्यक नहीं कि मरण और जीवन का मध्यान्तर रहना ही चाहिए। माता-पिता के शरीर में शुक्राणु-डिम्बाणुओं के रूप में निवास करने वाली आत्मा, उस विशिष्ट लोक में निवास करने वाली मानी जा सकती है। गर्भाशय में भ्रूण बनकर विकसित होना भी कुंभीपाक नरक के सदृश्य है। जीवन उस स्थिति में भी विद्यमान रहता है। जन्म लेना उस अदृश्य का दृश्यमान होना भर है। पितृ शरीर से मातृ शरीर के दो लोकों का परिभ्रमण करते हुए, जब मनुष्य प्रसव कार्य से अपनी सत्ता दृश्यमान बनाता है, तो उस प्रत्यावर्तन को एक प्रकार का पुनर्जन्म ही समझा जाना चाहिए।

मन्दबुद्धि, चंचल, उद्धत, अनगढ़ प्रकृति के ऐसे कितने ही व्यक्ति पाये जाते हैं, जिन पर उपयुक्त शिक्षण का प्रभाव भी नगण्य जैसा ही होता है। यही बात शारीरिक विकास के सन्दर्भ में भी है। कुछ बालक ऐसे होते हैं, जिन्हें कितना ही खिलाया-पिलाया जाय, उनकी निजी विशेषता में बहुत अधिक हेर-फेर नहीं होता।

विकास के साधन उपलब्ध होने पर भी मनुष्य की अपनी निजी विशेषता एक सुनिश्चित तथ्य जैसी बनकर भारी चट्टान की तरह अड़ी बैठी रहती है, और बहुत प्रयत्न करने पर भी उत्साहवर्धक परिणाम उपलब्ध नहीं हो पाता। शारीरिक और मानसिक विकास में मनुष्य की निजी विशेषता का असाधारण महत्त्व है। सुधार प्रयत्नों से उस पर सीमित प्रभाव ही होता है और परिवर्तन भी यत्किंचित् हो पाता है। मनुष्य के चेहरे, रंग एवं कार्य शक्ति से दृष्टिपात करने पर पता चलता है, कि इस भिन्नता का परिस्थितियों या साधनों से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। काले नीग्रो अमरीका जैसे शीत प्रधान देश में गोरों के बीच बसते हुए भी अपने रंग और चेहरे को पीढ़ी दर पीढ़ी यथावत् बनाए रहते हैं। इसी प्रकार गोरे लोग दक्षिण अफ्रीका जैसे गर्म क्षेत्र में शताब्दियों से बसे होने पर भी काले नहीं हुए। उनकी सन्तान अपने पैतृक गुणों को यथावत् बनाये हुए है।

एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पैतृक गुणों की माता के लिए जिम्मेदार है- 'गुणसूत्र'। यह गुणसूत्र शरीर की समस्त कोशाओं में विद्यमान हैं, परन्तु शुक्राणुओं और डिम्बाणुओं में पाये जाने वाले घटक ही तात्कालिक भूमिका का निर्वाह करते हैं। इन गुणसूत्रों में रासायनिक पदार्थ के साथ ही अदृश्य विद्युत-प्रवाह घुला रहता है, जिसमें पूर्व पीढ़ियों के अनेकानेक रहस्य एवं सभी कायिक, मानसिक विशेषताऐं जुड़ीं रहती हैं। इन गुणसूत्रों में एक पितृपक्ष और दूसरा मातृपक्ष का सम्मिश्रण होता है। इनमें पूर्व पीढ़ियों की विरासत सन्निहित होती है। आवश्यक नहीं कि ये सब विशेषताऐं एक ही पीढ़ी में प्रकट हो जायँ। आदि मानव की तुलना में अर्वाचीन पीढ़ी में पाये जाने वाले गुणसूत्र अत्यधिक विकसित हैं। उनके साथ एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी के अनुदान जुड़ते चले आये हैं, और कुल मिलाकर स्थिति इतनी साधन सम्पन्न बन गई है, कि उनमें पाए जाने वाले पक्षों में यदि उपयोगी, अनुपयोगी का भेद एवं उपयोग करना सम्भव हो सके, तो हर स्तर की सन्तति उत्पन्न करना शक्य हो सकता है।

फ्रांस के क्लरमाण्ट शहर का निवासी क्रेटीन एक पादरी था। एक बार घरवालों से किसी बात पर विवाद हो जाने के कारण ईर्ष्यावश उसने एक ऐसी लड़की से विवाह कर लिया, जिसके वंशजों को पीढ़ियों से कुख्यात अपराधी माना जाता रहा था। इस दम्पत्ति से जीन क्रेटीन नामक पुत्र पैदा हुआ, जिसे हत्या और लूटपाट के अपराध में फाँसी दी गई। जीन क्रेटीन के पियरी, जॅमस और बैपरिस तीन पुत्र हुए। अपने पिता के समान यह तीनों भी अपराध जगत में कुख्यात निकले और तीनों भी फाँसी की भेंट चढ़े। पियरी का इकलौता लड़का जीन फ्रांसिस, टॉमस के दो पुत्र- फ्रांसिस और मार्टिन, बैपारस की सन्तान-जीन फ्रांसिस इन सबमें भी हत्या नृशंसता जन्मजात रूप में विद्यमान

थी। वह सभी या तो फाँसी से या जेल की सजा भुगतते मरे। मार्टिन का इकलौता बेटा मार्टिन जूनियर केने को सुधार गृह में रखा गया । वहाँ उसने आत्म-हत्या करली। जीन फ्रांसिस और उसकी पत्नी टेम से सात सन्तानें जन्मी जिनमें सभी पुत्र थे। वह सब भी हत्या एवं अपराध के मामले में मृत्युदण्ड के भागी बने।

जीवन की अविच्छिन्नता एक सचाई है। नवीनतम वैज्ञानिक अन्वेषणों का भी निष्कर्ष यही है कि जीवन में निरन्तरता तो है ही, किन्तु वे यह मानते हैं कि जीवन-ऊर्जा का रूपान्तरण होता रहता । उनकी मान्यता है कि जीवन-कोशिकाऐं और मस्तिष्क के विभिन्न चेतन प्रकोष्ठ प्राणी की मृत्यु के उपरान्त इधर-उधर बिखर जाते हैं वे भूमि, जल, वनस्पतियों आदि में समाहित हो जाते हैं और बाद में आहार रूप में प्राणियों के भीतर रक्त-रस, मज्जा में घुल-मिलकर उनकी सन्तति में सेल्स,' जीन्स, प्रोटोप्लाज्म आदि के रूप में सक्रिय रहते हैं।

अनेक व्यक्तियों द्वारा पूर्वजन्म की स्मृतियों के प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किये जाने का विश्लेषण वैज्ञानिक इसी रूप में करते हैं कि इन व्यक्तियों में पूर्ववर्ती उस व्यक्ति के चेतन प्रकोष्ट अथवा प्रोटोप्लाज्म का कोई अंश गर्भस्थिति में इनके निर्माण काल में घुल मिल जाता है, जिस व्यक्ति से सम्बद्ध प्रामाणिक विवरण, के बाद में बताते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पिछले जन्म की कुछ खास घटनाओं का विवरण जो मस्तिष्क के किसी चेतन प्रकोष्ठ में अंकित, सुरक्षित था, वही चेतन प्रकोष्ठ भर नये प्राणी के भीतर आ गया है। पूर्ववर्ती व्यक्ति का सम्पूर्ण मनोजगत या आत्मा से जुड़े समूचे संस्कार समूह नये शरीर में उसी पुरानी आत्मा के साथ स्वाभाविक रूप में आ गये हैं, ऐसा वैज्ञानिक अभी नहीं मानते। पूर्व-जन्म की किन्हीं स्मृतियों की प्रामाणिक पुनर्प्रस्तुति मात्र उनकी दृष्टि में उसी आत्मा द्वारा नया शरीर धारण करने का यथेष्ट प्रमाण नहीं है। वे यह मानते हैं कि घास-पात, पेड़-पौधे में मृत प्राणी के प्रोटोप्लाज्म के अंश घुल-मिल गये, वही अंश आहार द्वारा मनुष्य, शरीर में पहुँचे और सन्तान में अभिव्यक्त हुए।

इन वैज्ञानिकों की इस परिकल्पना को यदि सही माना जाये तब यह प्रकट होता है कि किसी भी नयी सन्तान के व्यक्तित्व के निर्माण में आनुवंशिक विशेषताऐं ही सर्वप्रधान कारण होती हैं, हाँ, छुटपुट नयी विशेषताऐं अवश्य प्रोटोप्लाज्म आदि के रूप में सन्तान में प्रविष्ट हो सकती हैं किन्तु उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व आनुवंशिक विशेषताओं के वाहक जीन्स से ही गठित होता है। गुण, धर्म, स्वभाव आदि का निर्माण ये वंशानुगत जीन्स' ही करते हैं।

आनुवंशिकी की ये स्थापनाएँ शारीरिक संरचना के क्षेत्र में तो अब तक पूरी तरह खरी उतरती हैं। सन्तान की नाक, कान, आँख, दाँत, मुँह, देह, यष्टि, अंग-उपॉग एवं विभिन्न अवयवों की बनावट तो वंशानुगत विशिष्टताओं के ही किसी न किसी अनुपात में सम्मिश्रण का परिणाम होती हैं। किन्तु बुद्धि और भावना के क्षेत्र में ऐसी विलक्षणताऐं सन्ततियों में उभरती देखी पाई गई हैं कि उनका आनुवंशिकी से दूर का भी सम्बन्ध नहीं सिद्ध हो पाता और बड़ी दिमागी जोड़-तोड़ के बाद भी यह नहीं स्पष्ट हो पाता कि आखिर अमुक व्यक्तियों की अमुक सन्तान में ये बौद्धिक भावनात्मक विशेषताऐं आईं कहाँ से जो, न तो उसके माता-पिता के वंश में थीं, न ही वातावरण में। उन विशेषताओं को प्रोटोप्लाज्म आदि के अंश की अभिव्यक्ति भी नहीं मान सकते, क्योंकि ऐसे लोगों में ये विलक्षणताऐं आंशिक रूप में नहीं होतीं, अपितु उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ही वैसा गठन होता है। ऐसी स्थिति में यही मानने को बाध्य होना पड़ता है कि व्यक्तित्व की ये विशेषताऐं आनुवंशिकी, पर्यावरण अथवा परिव्राजक प्रोटोप्लाज्म की कृपा नहीं, बल्कि उसी व्यक्ति द्वारा पिछले जन्म में अर्जित बर्धित, संचित सुरक्षित विशेषताऐं हैं, जो जन्मजात ही उसमें उभर आई हैं।

अशिक्षा, अज्ञान और अभाव के वातावरण में अप्रतिम मेधावी, विद्वान, संगीतज्ञ, गणितज्ञ आदि का पैदा होना, श्रेष्ठ परम्पराओं और उत्कृष्ट वातावरण वाले परिवारों में दुर्गुणी-दुराचारी सन्तति का जन्म जैसी घटनाऐं आये दिन देखने को मिलती हैं। जिस देश, समाज और परिवार में चारों ओर मांसाहारी एक सामान्य आहार अभ्यास के रूप में स्वीकृत हो वहाँ किसी अबोध बालक द्वारा माँस को छूने से भी अस्वीकार कर देना और पूर्ण सात्विक शाकाहारी भोजन पसन्द करना, क्रूरता के वातावरण में जन्मत: अथाह करुणा की प्रवृत्ति का पाया जाना आदि अनेक विचित्रताएँ देखने में आती रहती हैं, जो आनुवंशिकी सम्बन्धी जीवात्म के मरणो-परान्त बिखर जाने सम्बन्धी स्थापनाओं को खण्डित करती है तथा उसी आत्मा द्वारा नया शरीर धारण करने की पुष्टि करती प्रतीत होती हैं।

महान वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने ऐसी ही एक विलक्षण प्रतिभा की सामर्थ्य को देखकर उसे भावावेश में अपनी बाँहों में उठा लिया था और आनन्दातिरेक से बोल उठे थे- किशोर! तुमने आज फिर एक बार इस विश्व में, ईश्वर के संचालक होने का विश्वास दिलाया है।"

उस प्रतिभाशाली किशोर का नाम था मेनुहिन। तब वह मात्र आठ वर्ष का था। भारत में भी नेहरू पुरष्कार से सम्मानित किया गया। आज वह दुनियाँ का सर्वोत्कृष्ट वायलिन वादक है।

यहूदी मेनुहिन के माता-पिता में से कोई भी संगीतकार नहीं थे। वे स्कूल में साधारण शिक्षक थे। किन्तु मेनुहिन में बचपन से ही संगीत की विलक्षण सामर्थ्य थी। आठ वर्ष की ही आयु में उसने बीथोवेन, ब्राह्मस, वारव जैसे महानतम संगीतकारों की कठिन संगीत-रचनाओं को कुशलता से प्रस्तुत कर लोगों को चकित कर दिया था। सामान्य श्रोताओं की तो बात ही क्या श्रेष्ठ संगीतज्ञों और संगीत-समीक्षकों तक ने उसका वायलिन-वादन सुना तो विस्मय-विमुग्ध हो गये।

तीन वर्ष के नन्हे मेनुहिन की वायलिन-वादन की सामर्थ्य विलक्षण ढंग से प्रकट हुई। उसके माता पिता उसके लिए नकली, वायलिन खेलने के लिये लाये। मेनुहिन ने उसे बजाया तो उसका संगीत उसे रुचिकर नहीं लगा। उसने वह खिलौना फेंक दिया और मचल गया। माना तब, जब माता-पिता ने असली वायलिन लाकर दिया। उसे पाते ही वह बालक उसी में लीन रहने लगा। उसकी दक्षता उभर आई। तब जाकर चार वर्ष की आयु में माता-पिता ने उसे संगीत को शिक्षा दिलानी शुरू की। उसकी विलक्षण गति एवं लगन से संगीत शिक्षक भी विस्मित हो उठता। छ: वर्ष के मेनुहिन ने सेनफ्रांसिस्कों में हजारों श्रोताओं के सामने एक श्रेष्ठ संगीत रचना प्रस्तुत की। अगले दिन अमरीकी अखबार उसी प्रशंसा से भरे थे।

यद्यपि बाद में मेनुहिन ने श्रेष्ठ संगीत शिक्षकों से संगीत की शिक्षा ग्रहण की, तथापि उसके प्रत्येक शिक्षक ने यह कहा कि हमने इसे सिर्फ सिखाया ही नहीं, इससे बहुत कुछ सीखा भी है।

टोस्कानिनी जैसे विश्वविख्यात संगीत संचालकों ने उसे अलौकिक वायालिन वादक कहा। विश्व के अनेक शीर्षस्थ कलाकारों, वैज्ञानिकों, राजनेताओं, लेखकों, संगीतज्ञों ने उसकी एक स्वर से प्रशंसा की है और उसकी जन्मजात विलक्षण सामर्थ्य को ईश्वरीय वरदान कहा है। स्पष्ट है कि मेनुहिन की यह क्षमता आनुवंशिक विशेषता नहीं है। यह उसके पूर्व संचित संस्कारों का, पिछले जन्म की प्रगति का ही प्रतिफल हो सकता है।

महान गणितज्ञ जानकार्ल फ्रेडरिक गॉस भी ऐसा ही अनुपम प्रतिभाशाली था। ३० अप्रैल, १९७७ को जर्मनी के व्रन्सबिक शहर में उत्पन्न गॉस के पिता किसान थे और गरीब थे। छोटी-मोटी ठेकेदारी भी करते थे। तीन साल की ही आयु में उसने एक दिन मजदूरों का हिसाब कर रहे पिता की गलती पकड़ ली थी और उसे सुधार दिया था। नौ वर्ष की आयु में उसने कक्षा में अध्यापक को उस समय चमत्कृत कर दिया, जब गणित का लम्बा प्रश्न बोर्ड पर लिखकर जैसे ही अध्यापक रुके, गॉस ने उस कठिन प्रश्न का सही उत्तर प्रस्तुत कर दिया।

१४ वर्ष की आयु में उसकी चारों ओर प्रसिद्धि फैली व्रन्सविक के राजा नें उसे अपने दरबार में बुलाया, जहाँ उसने अपनी गणित विद्या की धाक जमाई। १९ वर्ष की आयु में उसने यूक्लीडियन सूत्रों में एक मूलभूत संशोधन प्रस्तुत किया कि सत्रह समान भुजाओं की आकृति को परकार तथा सीधी रेखाओं द्वारा भी बनाया जा सकता है। २२ वर्ष की आयु में उसने अपनी थीसिस’ में “फन्डामेण्टल थ्योरम आफ अलजेब्रा” नामक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। २५ वर्ष की उम्र में उसने “आंकिक सिद्धान्त” ग्रन्थ रचा, जिसने गणितीय विश्व में तहलका मचा दिया।

चलते-फिरते ज्ञान कोश, अद्‌भुत स्मरण शक्ति के धनी अनेक विलक्षण व्यक्ति आये दिन देखने को मिलते हैं। इनके माता-पिता के वंश में अथवा वातावरण में इनमें से कोई भी विशेषताऐं विद्यमान नहीं पाई जातीं। ऐसी स्थिति में यही मानना पड़ता है कि उनकी यह विभूति स्वयं उनके द्वारा पूर्वजन्म में अर्जित क्षमताओं का सत्परिणाम है।

बौद्धिक सामर्थ्यों की विलक्षणता की ही तरह स्वाभाव एवं संस्कारों की भावनात्मक विलक्षणताऐं भी देखी जाती हैं। जार्ज बर्नार्डशॉ के कुल में सभी माँसाहारी थे। समाज में भी माँसाहार का प्रचलन था। किन्तु वे बचपन से ही शाकाहारी थे देशभक्त परिवारों में देशद्रोही तथा दुराचार-रत परिवारों मे सज्जन-साधु व्यक्तियों का जन्म लेना भी संस्कारों की दृष्टि से वंशानुक्रम एवं वातावरण से विलक्षणता ही है।

बुद्धि, भावना और गुण-स्वभाव की ये विलक्षणताऐं जो आनुवंशिकता तथा पर्यावरण के प्रभावों से सर्वथा भिन्न होती हैं, सम्बद्ध व्यक्ति के स्वत:अर्जित संस्कार एवं सामर्थ्य का ही परिणाम मानी जा सकती हैं। इन प्रत्यक्ष उदाहरणों से यही तथ्य उभरता है कि शरीरनाश के साथ ही मानव जीवन का अन्त नहीं हो जाता, न ही यह बिखरकर टुकड़े-टुकड़े होकर नदी, पर्वत, मैदान, वृक्ष, वनस्पति आदि में समाहित हो जाता, अपितु आत्मा का अस्तित्व शरीर त्याग के बाद भी बना रहता है और उससे जुड़े संस्कार समूह जन्म जन्मान्तर तक धारावाहिकता के साथ गतिशील रहते हैं। प्रगति पथ पर बढ़ते रहा जाय, तो उसके सत्परिणाम इस जीवन में ही नहीं, अगले जीवन में भी मिलते हैं। इस तथ्य को समझ लिया जाय तो आत्मिक विकास में कभी भी आलस्य, प्रमाद की मनोवृत्ति नहीं उभर पनप पायेगी। ‘जब जागे तभी सवेरा’ की तरह, कितने ही विलम्ब से श्रेष्ठता की दिशा में कदम बढ़ाया जाय, तो भी उसमें निराशा की कोई बात नहीं। साथ ही, एक क्षण भी अनौचित्य अनाचार में लगाया गया, तो उसका भी परिणाम अवश्य होगा। अत: उस दृष्टि से रत्ती भर भी लापरवाही हानिकर सिद्ध होगी और प्रत्येक गलती को

सुधारने की आवश्यकता बनी रहेगी। इतना तो सत्कर्म कर लिया, अब जीवन का जो अंश बचा है, उसमें जरा मनमानी कर लें, मौज-मजे ले लें यह भावना भी पुनर्जन्म के मानने वाले में कभी नहीं आ सकती। यौवन के उभार में आदर्शन्मुखता और प्रौढ़ावस्था में भोग परायणता के जो दृश्य सामाजिक, राजनैतिक जीवन में देखे जाते हैं, वे जीवन की संकीर्ण धारणा का ही परिणाम है, पुनर्जन्म की वास्तविकता को समझने वाले तो अन्तिम क्षण तक श्रेयस पथ पर ही चलता रहेगा। बुढ़ापे में पढ़कर, साधना, स्वाध्याय कर या समय उपासना सेवा का पथ अपनाकर भी क्या होगा, अब तो थोड़े दिनों का खेल है, चाहे जैसे दिन काटने हैं, यह भावना पुनर्जन्म पर सच्ची आस्था रखने वाले में नहीं आ सकती। उसके लिये तो जीवन का प्रत्येक क्षण और प्रत्येक कार्य महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि उसका परिणाम अवश्यम्भावी है।

सभी धर्म पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते रहे हैं। हिन्दू धर्म तो उसे सुस्पष्ट-सुनिश्चित मान्यता प्राप्त है ही। इस्लाम और ईसाई भी प्रलय उपरान्त जीवों के पुन: जाग्रत एवं सक्रिय होने की बात कहते हैं। जो पुनर्जन्म का ही एक विचित्र एवं विलम्बित रूप है। ईसामसीह तो तीन दिन बाद ही पुन: जीवित हो उठे थे, ऐसा कहा जाता है।

परामनोविज्ञान के अनेक अनुसंधानों ने पुनर्जन्म की वास्तविकता को प्रमाणित किया है। अगले दिनों सघन वैज्ञानिक प्रयास इस दिशा में और अधिक प्रगति कर सकेंगे ऐसा विश्वास किया जाता है।

संस्कार भी चेतना के साथ चलते हैं

क्या मृत्यु के बाद मनुष्य का अस्तित्व सचमुच सदा के लिए समाप्त हो जाता है ? या वह किसी न किसी रूप में फिर भी बना रहता है ? मर चुके व्यक्ति क्या पुन: जन्म लेते हैं, ? आदि प्रश्न ऐसे हैं, जिनका विज्ञान के पास फिलहाल कोई उत्तर नहीं है। किन्तु ऐसे अंसख्यों उदाहरण हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि मरने के बाद भी मनुष्य का अस्तित्व विद्यमान रहता है। केवल शरीर ही नष्ट होता है, आत्म-चेतना शरीर के पिंजड़े से मुक्त होकर दूसरा नया शरीर तलाशने लगती है। इस तरह के हजारों मामले अब तक प्रकाश में आ चुके हैं, जिनमें सम्बन्धित व्यक्तियों ने उसी समय से अपने पिछले जन्म के बारे में बताना आरम्भ कर दिया, जबकि वे ठीक से इस जन्म के बारे में भी जानने-समझने या व्यक्त कर पाने की स्थिति में नहीं थे।

कई बार तो ऐसे उदाहरण भी देखने में आए हैं, जिनमें छोटे बच्चों ने विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया और अपने परिवार के लोगों को चमत्कृत कर दिया। उनकी यह विलक्षणता उनके परिवार, पास-पड़ौस के लोगों, मोहल्लों तथा गाँव-नगरों तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि सैकड़ों विद्वानों और अपने-अपने क्षेत्र के प्रभृतिजनों के लिए विस्मय का कारण बनी। ऐसा ही एक उदाहरण उत्तर प्रदेश का है। सन् १९४७ में झाँसी जिले के यौनी ग्राम में एक विचित्र बालक का जन्म हुआ। हलकूराम लौधी के घर में जन्मे इस बालक का डील-डौल पैदा होते ही तीन वर्ष के बच्चे के समान था, साथ ही वह नेत्रहीन भी था। जब उसकी आयु छह मास हो गई तो वह रामचरित मानस के दोहे और चौपाइयाँ गाने लगा। सामान्यत: छह माह की आयु में कोई बच्चा कुछ गाना याद करना तो क्या, ठीक से बोल भी नहीं पाता। इस बच्चे द्वारा रामायण के दोहे, चौपाइयाँ गाते देखकर सभी ग्रामवासी आश्चर्यचकित रह गये।

दो वर्ष का हो जाने पर बालक को निकटस्थ कस्बे मऊरानीपुर के रामायणी पण्डितों ने परीक्षा के लिए बुलाया कि उसके सम्बन्ध में जो कुछ कहा बताया जाता है उसमें कितनी सचाई ? उन पण्डितों के सामने बालक ने बिना किसी पुस्तक का सहारा लिए तीन घण्टे तक लगातार रामायण के दोहे चौपाई, गाकर सुनाये। यह कार्यक्रम तीन दिनों तक चला और बालक ने बिना किसी का सहयोग लिए उसी प्रकार रामचरित मानस गा-गाकर सुनाई। इस जन्मान्ध बालक ने तीन वर्ष का होने तक कई बार अपनी इस विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। जगह जगह से लोग उसे देखने आने लगे। उसे पूर्व जन्म का कोई विद्वान, सन्त, महात्मा समझा जाने लगा। यही नहीं कई स्थानों पर तो हलकूराम को अपने बेटे के साथ बुलाया गया तथा उसने सागर, ग्वालियर लाहौर और हरिद्वार में विद्वमंडली के सामने रामायण के पाठ सुनाये।

राधाचरण नाम के इस जन्मान्ध बालक ने छोटी सी आयु में, जब बच्चे पहली दूसरी कक्षा में पढ़ते हैं, भगवद्गीता, वाल्मिकी रामायण आदि धर्म ग्रन्थों के उदाहरण देकर पाँच-पाँच घण्टे तक धाराप्रवाह व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। लोग राधाचरण की इस विलक्षण प्रतिभा से चमत्कृत हुए। उसकी यह विशेषता थी कि किसी भी ग्रन्थ का कोई एक उद्धरण बता दिया जाए तो वह उस पर प्रवचन दे लेता था। राधाचरण ने अपने पूर्वजन्म का वृतान्त भी बताया। वह कहा करता था कि पिछले जन्म में वह मुतंगेश्वर (पम्वापुर) की एक गुफा में साधना किया करता था और साधना करते हुए ही उसकी मृत्यु हुई। उसने गुफा तक पहुँचने का मार्ग तथा उसमें रखे अपने चिमटे और खड़ाऊं के बारे में भी बताया। लोगों ने उस स्थान पर जाकर देखा तो सब कुछ सही पाया गया।

पिछले जन्म की घटनाओं और स्थितियों का सही-सही विवरण देने वाले मामले तो हजारों की संख्या में प्रकाश में आए हैं। ऐसे केसों को लेकर वैज्ञानिकों का ध्यान भी आकृष्ट हुआ है और देश-विदेश में अनेकों संस्था पुनर्जन्म की घटनाओं पर शोध करने में संलग्न हुई हैं। भारत की इन्डियन पैरासाइकिक रिसर्च इंस्टीट्यूट' संस्था ने अमेरिका के डा० आयन इस्टीवेन्स, राबर्ट कूकाल, डा० एच० एन० बनर्जी तथा डा० जमुना प्रसाद के सहयोग व निर्देशन में भारत, अमेरिका, ब्रिटेन तथा जर्मनी में पुनर्जन्म की कई घटनाओं का अध्ययन और सर्वेक्षण किया है। इनमें कुछ घटनाएँ पुनर्जन्म के सम्बन्ध में शोध की नई दिशाऐं और सम्भावनाऐं खोलती हैं।

पश्चिम जर्मनी के आगस्वर्ग नामक स्थान पर जन्मी फ्रैडरिक का केस इस तरह की घटनाओं में बहुत दिलचस्प है। उसका रंग, रूप, कद काठीं तो जर्मनों की तरह ही है, ? परन्तु उसकी आँखें भारतीय महिलाओं की तरह काली और केश भी भारतीय स्त्रियों जैसे ही थे कम उम्र में ही उसने विलक्षण बुद्धि का परिचय दिया और पढ़ना-लिखना सीख लिया। वह अपना प्रत्येक काम अपनी उम्र के बच्चों की अपेक्षा अधिक कुशलता और स्फूर्ति के साथ निबटा लेती थी । जब वह तेरह-चौदह वर्ष की थी, तभी उसने जर्मन, डच और अँग्रेंजी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। भारतीय भाषाओं में उसने संस्कृत को सीखने में बड़ी कुशाग्रता का परिचय दिया । उल्लेखनीय है कि जर्मनी की लगभग सभी शिक्षण संस्थाओं में संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की सुविधा उपलब्ध है। फ्रैडरिका ने इस व्यवस्था का लाभ तो उठाया ही, भारतीय धर्म-दर्शन के अध्ययन मनन में भी उसने पर्याप्त रुचि ली और कुछ ही समय बीतते वह पूजा, पाठ करने लगी, उसने वेद पुराणों और आर्ष ग्रन्थों के कई अंश कण्ठस्थ कर लिए। किशोरावस्था में प्रवेश करने तक तो वह ज्योतिष, अंकशास्त्र, पराविद्या, ब्रह्मविद्या, योगचक्र कुण्डलिनी आदि के विषय में भी इस प्रकार बातें करने लगी, जैसे वह इन विषयों की अधिकारी विद्वान हो ।

फ्रैडरिका के पिता बैंक में नौकरी करते थे। परिवार की स्थिति सामान्य थी। माँ अपनी बेटी के इस स्वभाव और रुझान को देखकर चिंतित रहने लगी थी। बचपन में ही उसने अपनी माँ को चिन्ताओं का समाधान करते हुए बताया कि वह पिछले जन्म में एक धर्म परायण भारतीय महिला थी और उसका सारा जीवन ही धार्मिक कर्मकाण्डों तथा पूजापाठों को करते हुए व्यतीत हुआ था। उसने वेद, पुराणों और अन्य भारतीय धर्मग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था। एक दुर्घटना में जब उसकी मृत्यु हुई तो मरने के पूर्व उसे अच्छी तरह होश था तथा वह मरते समय यही सोचती रही थी कि उसे अगला जन्म जहाँ कहीं भी मिले, वेद, पुराणों तथा धर्मशास्त्रों के अध्ययन में उसकी रुचि इसी प्रकार बनी रहे।

फरवरी १९७९ में फ्रैडरिका भारत भी आई । यहाँ उससे बरेली की पराविद्या शोध संस्थान की उस यूनिट से सम्पर्क किया जो पुनर्जन्म पर शोध कर रही थी। फ्रैडरिका ने अपने पिछले जन्म का जो भी विवरण बताया, यथा जन्म स्थान, माता-पिता का नाम, परिवार के सम्बन्ध में परिचय, पति और पति के परिवार की जानकारी, बच्चों के नाम आदि के सम्बन्ध में उसने जो भी वक्तव्य दिये वे सब टेप किये गये और उस आधार पर जाँच की गई तो बताये गये सभी विवरण सही पाये गए।

उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले में भी इसी प्रकार की घटना प्रकाश में आई है, जिसमें एक हरिजन महिला ने मरने के बाद एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया। सन् १९६९ में श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के घर में जन्मी इस कन्या को अपने पिछले जन्म की याद उस समय आई, जब वह अपने पिता के साथ रेल से कहीं जा रही थी। रेल पर सवार होते ही बच्ची हकबका गई। भय के कारण उसका चेहरा पीला पड़ गया। पिता को कोई कारण समझ में नहीं आ रहा था कि अचानक उसे क्या हो गया है? पूछने पर बहुत देर बाद उस लड़की ने अपनी तुतली जवान से बताया कि इसी रेलगाड़ी से कटकर वह मर गई थी।

पिता ने इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और बात आई-गई हो गई । एक दिन लक्ष्मीनारायण के घर एक हरिजन घूरे पर पड़ा खर-पतवार माँगने आया। उसने एक सूअर मारा था और उसे भून कर खाने के लिए ही वह खरपतवार माँगने के लिए आया था। लड़की ने यह जानकर सूअर का माँस खाने की जिद की। मिश्रजी के डांटने पर उसने तुनक कर कहा, मेरा तुमसे क्या रिश्ता ? मैं कंकरिया की रहने वाली हूँ। इन्दल मेरे बेटे का नाम है तथा ललई मेरा दूल्हा है। तुम्हें छोड़ दो मुझे, मैं अपने घर चली जाऊँगी।

पिता और घर के अन्य लोग यह सुनकर दुखी हुए और सोचने लगे कि कहीं उस पर किसी प्रेतात्मा का प्रकोप तो नहीं हुआ है। लेकिन ऐसा कुछ नहीं था। पीछे कुछ लोगों की सलाह पर उसके बताये संकेतों के अनुसार जाँच-पड़ताल की गई तो पता चला कि वह जो कुछ भी बता रही थी- वह सच है।

पिछले जन्मों की स्मृतियों के यह प्रमाण सिद्ध करते हैं कि मृत्यु केवल शरीर को ही मारती है। चेतना में जमें संस्कार न तो आसानी से नष्ट होते हैं तथा न ही उनमें विशेष परिवर्तन

आता है। अलवत्ता ये संस्कार थोड़े-बहुत बदल जरूर जाते हैं, किन्तु उनमें पूर्णत: परिवर्तन नहीं होता, संस्कारों का निर्माण दीर्घकालीन अभ्यासों से होता है। उनकी जड़ें चेतना में गहराई तक जमी हों तो वे मरने के बाद दूसरे जन्म में भी पूर्णवत प्रकट होने लगते हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व और कृतित्व उन्हीं के अनुरूप संचालित होने लगता है। यदि ऐसा नहीं हो तो भी व्यक्ति उन पूर्ववर्ती संस्कारों से बहुत सीमा तक प्रभावित होता है तथा तद्नुकूल आचरण करता है, भले ही उसे पिछले जन्म की याद रहे या न रहे।

प्रसिद्ध विद्वान 'मायर्स' ने अपनी पुस्तक 'ह्यूमन परसनाल्टी' में सिसली में जन्में एक गड़रिये लड़के का उल्लेख किया है जिसकी बौद्धिक क्षमता असामान्य थी, दस वर्ष की अल्प आयु में ही उसने पेरिस के विद्वानों के ऐकेडमी में अपनी हिसाब की शक्ति से सबको आश्चर्यचकित कर दिया। ऐकेडमी में उपस्थित गणित शास्त्र के विद्वानों में से एक ने उससे पूछा ३७९६४१६ का घनमूल क्या है? आधे मिनट में ही उसने उत्तर दिया, १५३ जो बिल्कुल ही ठीक था। पुन: २८२४७५२७९ का दसवाँ मूल पूछने पर उसने सात बताया। अन्यान्य पूछे गये गणित के प्रश्नों का उत्तर भी उसने सही देकर उपस्थित सभी विद्वानों को अचम्भित किया। उक्त बालक का नाम वाइटो मैंजियामील था।

सुमेश चन्द्र दत्त नामक एक बालक भी इस सदी के तीसवें दशक में बड़ा लोकप्रिय हुआ। उसकी प्रतिभा असामान्य थी। ढाका का उक्त बालक १५ अंकों की राशि का १५ अंकों की राशियों से मौखिक गुणा कर सकता था। विकसित होकर यह क्षमता यहाँ तक जा पहुँची कि वह १००० अंकों की राशि का १०० अंकों की राशि से मौखिक गुणा कर सकता था। इस बच्चे की अद्भुत क्षमता का प्रदर्शन पूरे विश्व में हुआ। अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में उसने ६० अंकों का ६० अंकों के साथ गुणा मात्र ४५ मिनट में करके दिया। गुणा करने में किसी भी प्रकार के कागज, पेन्सिल अथवा अन्य साधनों का प्रयोग नहीं किया गया। इन अंकों का गुणा कोलम्बिया विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर ने दो घण्टे प्रतिदिन के हिसाब से खर्च करके दो सप्ताह में किया था। किन्तु उनका उत्तर सही न था। जबकि 'सुमेश चन्द्र' का मौखिक हल किया गया उत्तर सही था। गणित के अन्य प्रश्नों के हल में भी उसकी असामान्य बौद्धिक क्षमता का परिचय अमेरिका के विद्वानों को मिला। अमेरिका के अखबारों ने उसे दिमागी जादूगर' विद्युत की तरह शीघ्र हिसाब करने वाला' (लाइटिंग केलकुलेटर) जैसी उपाधियाँ दीं। प्रख्यात नाटककार हरींद्र चट्टोपाध्याय ने अपना सबसे प्रसिद्ध नाटक 'अब्ब हसन' चौदह वर्ष की आयु में लिखा था। इस तरह के ढेरों उदाहरण हैं जो जन्मजात प्रतिभाओं की महान उपलब्धियों को प्रामाणित करते हैं।

इसके साथ ही यह प्रमाण उन निराश व्यक्तियों को अपनी हताशा का औचित्य सिद्ध करने के लिए भी एक बहाना बनते हैं जो किसी क्षेत्र में थोड़ा बहुत प्रयत्न करने के बाद हार थक जाते हैं और अपने प्रयत्नों को वहीं विराम दे देते हैं। इस सन्दर्भ में यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी कोई बात नहीं हैं, जिससे यह समझा जाय कि जिन व्यक्तियों में जन्मजात रूप से कोई प्रतिभा मिली हुई दिखाई देती है, उन पर ईश्वर की कोई विशेष कृपा है और उसने पक्षपात करते हुए यह विशेषताऐं वरदान स्वरूप दे डाली हैं। वस्तुत: ऐसा कुछ नहीं है। जिन व्यक्तियों में जन्मजात रूप से कोई प्रतिभा दिखाई देती है, वस्तुत: वह पिछले जन्म के किये गये प्रयासों साधनाओं का ही परिपाक परिणाम होती हैं। बहुधा ऐसे व्यक्ति पिछले जन्म में इस दिशा में अविराम श्रम करते हुए हार थककर असफल हुए हैं और इस जन्म में उन्हें पिछले जन्मों की साधना का सत्परिणाम प्राप्त हुआ है। जिस प्रकार बुरे कर्मों का फल इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में मिलता है, उसी प्रकार अच्छे कार्यों का परिणाम भी निश्चित है, वह भी इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में निश्चित रूप से मिलता है।

कर्मफल की निश्चितता का विश्वास भले ही तत्काल कोई परिणाम न भी मिले तो भी निरुत्साहित नहीं करता और पुनर्जन्म तो एक ऐसा ध्रुव सत्य है जो अब केवल मानने या विश्वास करने का ही विषय नहीं रह गया है वरन् विज्ञान् सिद्ध विषय बन चुका है। इस दृष्टि से असफलता के लिए भाग्य को दोष देकर हाथ पर हाथ धरे बैठ जाने का कोई कारण नहीं है। प्रख्यात साहित्यकार और विचारक श्री इलाचन्द्र जोशी ने जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न दिखाई देने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में लिखा है- "विराट् जीवन के जो असंख्य पहलू और अनगिनत रूप हमारी कल्पना में उतरते रहते हैं, उनका विकास एक छोटे से जीवन की सीमित परिधि में कदापि सम्भव नहीं है, उसके लिए कई जन्म चाहिए। प्रत्येक प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने भीतर इस महासत्य को अनुभव करता है।"

भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में तो प्रख्यात है कि उन्होंने पिछले सौ जन्मों की यात्रा पूरी करने के बाद बुद्धत्व को प्राप्त किया

था। इन पिछले सौ जन्मों में वे गाय, बैल से लेकर कूकर, शूकर आदि कई मानवेतर योनियों में रहे और इतनी लम्बी साधना के बाद जाकर कहीं बुद्ध बन सके। ऋषि-मुनियों के सम्बन्ध में तो पूर्व जन्मों में अगणित बार असफल होने का विवरण मिलता है। सन्त ज्ञानेश्वर, तुलसीदास, शंकराचार्य, कबीर, मीरा, सूरदास, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, पाणिनी आदि के बारे में भी ऐसी कई गाथाऐं प्रचलित हैं, जिनके अनुसार उन्हें पिछले जन्मों में विफलता का मुँह देखने को मिला था और उसके बाद जाकर कहीं सफलता मिली थी। आत्मिक उत्कर्ष के क्षेत्र में तो अनेक जन्मों में सिद्धि प्राप्त होने का उल्लेख शास्त्र ग्रन्थों में कई स्थानों पर मिलता है। एक जन्म में असफल हो जाने के बाद साधक की क्या स्थिति होती है, यह दर्शाते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा-

तत्रं तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्नदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः ससिद्धै, कुरूनन्दन।।
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽविसः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्माति वर्तते।।
प्रयत्नाद्यत मानस्तु योगी संशुद्ध किल्विषः।
अनेक जन्म संसिद्ध स्ततो यानि परमंगतिम्।।

(गीता ६।४३,४४,४५)

अर्थात्- हे कुरुनन्दन अर्जुन वह योगियों के कुल में जन्म लेकर पूर्व जन्म के संस्कार को प्राप्त करता है और उसके प्रभाव से वह उस दिशा में और अधिक प्रयत्न करता है। उसी पूर्व अभ्यास से अवश्य ही खिंच जाता है, क्योंकि योग का जिज्ञासु भी सकाम कर्मों के फल का अतिक्रमण कर जाता है। प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने वाला योगी तो पाप रहित और अनेक पूर्वजन्मों के संस्कारों की सहायता से सिद्ध होकर तत्काल परमगति को प्राप्त कर लेता है।

यही तथ्य प्रगति और उन्नति के अन्यान्य क्षेत्रों में भी लागू होता है। पश्चिमी देशों में तो अब यह भी माना जाने लगा है कि शेक्सपीयर, गेटे और बर्नार्डशॉ आदि प्रभृति विद्वानों की प्रतिभा को एक जन्म की नहीं अनेक जन्मों की साधना और संस्कारों की पूँजी से उच्चस्थिति में पहुँचा माना जाता है। कुछ ऐसे उदाहरण सामने भी आये हैं, जिनमें ख्याति प्राप्त व्यक्तियों ने अपनी पूर्वजन्म की की स्मृतियाँ बताईं और वे पूरी तरह सही निकलीं। इस आधार पर यह दावे के साथ कहा जाने लगा कि महान व्यक्तियों की महान उपलब्धियाँ अथवा जन्मजात प्रतिभाएँ एक ही जीवन की देन नहीं होतीं और न ही प्रकृति या परमात्मा का पक्षपातपूर्ण अनुदान।

इस सन्दर्भ में सन् १९२३ में नोबल पुरस्कार विजेता आयरलैण्ड के विश्वविद्यालय कवि विलियम बटलर यीट्स का उदाहरण पूर्णतया प्रामाणिक भी है और सन्देह से परे भी। यीट्स ने काव्य, नाटक, निबन्ध और साहित्य की अन्य विधाओं में लगभग ४० पुस्तकें लिखीं। एक आत्म कथा में यीट्स ने स्वयं स्वीकार किया है "कि मैं जब कभी अपने कमरे में अकेला होता हूँ कि कुछ होने लगता है। जिसके आधार पर मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता कि हूं के मेरे अन्तः व्यक्तित्व की परिचालना मुख्यतः पूर्व जन्मों के संस्कार ही करते हैं। अवचेतना में निहित जन्म-जन्म के ये संस्कार मुझे, समय-समय पर चेतना भी देते हैं और परामर्श भी।"

हालीबुड के प्रख्यात अभिनेता और संगीतकार ग्लैनफोर्ड पर तो विशेष रूप से जाति स्मरण के प्रयोग किये गये। स्वयं फोर्ड भी पुनर्जन्म में आस्था रखते थे अतः वे इस प्रस्ताव पर सहर्ष तैयार हो गये। उन पर जब प्रयोग किया गया तो वे उन्नीसवीं सदी के प्रचलित विशुद्ध अंग्रेजी बोलने लगे। प्रयोगकर्ता ने उनसे पूछा कि आप कौन हैं तो फोर्ड ने बताया कि मैं संगीत शिक्षक हूँ। इस पर एक पियानों मँगवाया गया तो उन्होंने ऐसी धुन निकाली जो उस समय कहीं प्रचलित ही नहीं थी। स्पष्ट ही वह उन्नीसवीं सदी की धुन थी। इसके बाद उनसे पूछा गया कि अच्छा बताइये आपका सबसे बढ़िया शौक क्या है ?

पूर्व जन्म की स्मृतियों में पहुँचकर फोर्ड ने कहा घुड़सवारी करना मेरा सबसे प्रिय शौक है। कहने पर फोर्ड ने घोड़े की सवारी करके भी बताया । जबकि वर्तमान जीवन में व्यस्त अभिनेता को घुड़सवारी करने की बात तो दूर रही उसे सीखने का भी कभी समय नहीं मिला था। फोर्ड ने अपने पूर्वजन्म के बारे में आगे बताया, मैं ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहा। क्षय रोग के कारण सन् १८९२ में ही मेरी मृत्यु हो जाती है। मुझे स्काटलैंड के एक छोटे से गाँव में गिरजाघर के कब्रिस्तान में दफनाया गया है। वहाँ मेरी कब्र पर अमुक अमुक लिखा हुआ है। लेकिन जिस स्थान पर मुझे दफनाया गया है, वह देखने में कोई बहुत सुन्दर जगह नहीं है। फिर भी मुझे इस बात का कोई रंज नहीं है, क्योंकि मेरे आस-पास के प्लॉटों में मेरे कई प्रिय मित्रों को दफनाया गया है।

जब प्रयोग समाप्त हुआ तो ग्लैन फोर्ड को ये सारी बातें जो टेप कर ली गई थीं, सुनाई गयीं। आश्चर्य की बात है कि ग्लैनफोर्ड ने अभी तक कभी स्काटलैंड की यात्रा नहीं की थी। बाद में समय निकालकर वे अपने कुछ मित्रों के साथ स्काटलैण्ड गये और उस स्थान को देखा जहाँ कि जाति-स्मरण प्रयोग के

दौरान ग्लैनफोर्ड ने अपने दफनाये जाने की बात कही थी। वही गाँव, वही गिरजा और वही कब्रिस्तान सब स्थानों पर फोर्ड तथा उनके मित्र की टेप की गई बातों के आधार पर इस तरह पहुँच जैसे किसी ने कागज, कलम से नक्शा बनाकर दे दिया गया हो। कब्र पर गड़े हुए जिस पत्थर की बात कही गई थी, वह पत्थर तो नहीं मिला शायद कोई उखाड़ ले गया था लेकिन कब्रिस्तान वास्तव में ऊबड़-खाबड़ जगह पर था।

यदि संसार के सफलतम और प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों पर जाति स्मरण का प्रयोग किया जाय तो यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि उनकी उपलब्धियाँ एक जीवन की देन नहीं हैं, वरन् उसके पीछे पिछले कई जन्मों की साधना शक्ति पूँजी के रूप में जुड़ी हुई है। उसी पूँजी से सफलता के वर्तमान शिखर छुए जा सके हैं। इसलिए वर्तमान जीवन में किये गये प्रयासों की असफलता के बारे में सोच-सोचकर निराश होने का कोई कारण नहीं है कि किये जा रहे प्रयत्न व्यर्थ जा रहे हैं। किसान बीज बोता है तो बोते समय तो यही लगता है कि बीज व्यर्थ मिट्टी में जा रहे हैं, पर जब वे फसल के रूप में उग आते हैं तो प्रतीत होता है कि बोये गये बीज व्यर्थ नहीं गये वरन् उनका निश्चित परिणाम प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार प्रगति और उत्कर्ष की दिशा में किये गये कोई भी प्रयास व्यर्थ नहीं जाते। उनके परिणाम निश्चित रूप से मिलते हैं। यह बात अलग है कि उनका परिणाम आज अभी या इसी जन्म में नहीं मिलता लेकिन मिलता अवश्य है। इसी तथ्य को गीताकार ने स्पष्ट करते हुए कहा है, **"नेहाभिक्रम नाशोऽरूपि प्राण्यवायो न विद्यते,'** अर्थात् जिसका प्ररम्भ कर दिया जाता है उसका कभी नाश नहीं होता और न ही परिणाम में कोई उलट फेर होता है। इसलिए परिणाम न होता दिखाई देने पर भी प्रयत्नों को शिथिल नहीं करना चाहिए। यह मानकर अनवरत प्रयत्नशील रहना चाहिए कि साधना का फल निश्चित रूप से मिलेगा, आज न मिल पाये तो कल मिलेगा, पर मिलेगा वह निश्चित है।

आत्मा का अस्तित्व-अमान्य न किया जाय

आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म, दृष्टा, चेता, विचार रूप, प्रसन्नता स्वरूप है, ऐसी भारतीय दर्शन की मान्यता है। पर स्थूल दृष्टि से दिखाई न देने के कारण आजकल के पढ़े-लिखे लोग और भौतिकवादी प्रतिपादनों से प्रभावित व्यक्ति उसके अस्तित्व को नहीं मानते और न उसे प्राप्त करने की, जानने की उत्कंठा उन्हें होती हैं। अनात्म मान्यता ने इस विश्व का इतना अहित किया है, जितना कई विश्व-युद्ध मिलकर भी नहीं कर सकते। क्योंकि उससे तो जीवन की सम्पूर्ण दिशायें ही उलट जाती हैं। स्वार्थ, दम्भ, अहंकार, छल-कपट यह वर्तमान अस्त्र-शस्त्रों की अपेक्षा मनुष्य समाज का अधिक दुःख देकर नाश करते हैं।

एक बार राजा वृहद्रथ को ऐसा अनुभव हुआ कि शरीर नाशवान् है, इसलिए उन्हें वैराग्य हो गया। राज्य का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ज्येष्ठ पुत्र को देकर वे वन चले गये। वहाँ उन्होंने उग्र तपश्चर्या की। कई वर्षों तक उन्होंने भगवान सूर्य देव की उपासना की। उनके तप से प्रसन्न होकर एक दिन शकामन्य नाग के महामुनि उनके पास आये। उन्होंने वृहद्रथ के तप की प्रशंसा की और कहा-वत्स ! तेरी जो इच्छा हो मुझसे कह।

बृहद्रथ ने कहा- देव ! आप आत्म-तत्व ज्ञाता और आत्म-वेता हैं, मुझे आत्मा का बोध कराइये। महामुनि शकामन्य ने मुस्कराते हुए कहा- तात ! यह बड़ा दुस्कर और कठिनाई से समझ में आने वाला विज्ञान है, इसलिए तुम उसकी अपेक्षा कोई और वर माँग लो।"

बृहद्रथ कहते हैं- हे भगवन् समुद्र सूख जाते हैं, कल तक जहाँ पर्वत खड़े थे, वही आज मैदान है, वृक्ष गिर जाते हैं पृथ्वी डूब जाती है, ध्रुव जो स्थिर है, उसे भी एक दिन गतिशील होना पड़ता है, ऐसे परिवर्तनशील और नाशवान् संसार में विषय भोगों से क्या लाभ ? मैं अमरत्व और शाश्वत शांति की कामना से प्रार्थना करता हूँ कि आप कृपा कर मुझे आत्म-विद्या का ही उपदेश दीजिये।"

वृहद्रथ की प्रगाढ़ जिज्ञासा देखकर शकामन्य ने उन्हें आत्मा के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान कराया। मैत्रेथ्युपनिषत् में उसकी विस्तृत व्याख्या की गई है। वहाँ पर महामुनि ने एक स्थान पर कहा है, मैं ज्ञान रूप हूँ, मैं विचार रूप हूँ, परम् और शाश्वत् मैं ही हूँ।"

उपरोक्त विशेषणों के माध्यम से आत्मा के अस्तित्व को आसानी से अनुभव किया जा सकता है। अचेतन अवस्था में भी इन्द्रियातीत ज्ञान की अनुभूति और विचार की योग्यता उस सूक्ष्म सत्ता का प्रमाण नहीं तो और क्या हो सकता है ?

सर्वप्रथम उन बच्चों का इतिहास लेते हैं, जो सामान्य परिस्थितियों में ही जन्म धारण करते हैं, किन्तु उनकी बौद्धिक प्रतिभा ऐसी विलक्षण होती है, जो इस जीवन का विकास कदापि नहीं मानी जा सकती। मोजार्ते सात वर्ष का था, तब वह विद्यालय में मुश्किल से पहली कक्षा में सबक याद कर पाया था, पर संगीत में उसने अनेक नई रचनायें कीं, जिन्हें देखकर लोग कहा करते थे कि मोजार्ते पूर्व जन्म का कोई निपुण संगीत साधक रहा है, वह ज्ञान उसे विस्मृत नहीं हुआ। जन्म के बाद तो उसने उन्हें

सीखा नहीं वरन विकास किया है। हर व्यक्ति के जीवन की एक मुख्य दिशा होती है, वह इस जन्म में भी वेगवान् रहती है तो उससे आत्मा की शाश्वत् विकास प्रक्रिया की ही बात पुष्ट होती है।

यह बात तो वैज्ञानिक भी मानते हैं कि मनुष्य का शरीर कोशिकाओं से बना है। यह कोशिकायें प्रोटोप्लाज्म नामक जीवित अणुओं से बना होती है, यदि प्रोटोप्लाज्म को भी खण्डित किया जाय, जो जीवन पदार्थ का अन्तिम टुकड़ा होती है और जिसमें चैतना का स्पन्दन होता है, तो उसके भी साइटोप्लाज्म और न्यूक्लिअस नामक दो खण्ड हो जाते हैं। साइटोप्लाज्म कोशिका से काट देने पर मृत हो जाता है पर न्यूक्लिअस अर्थात् नाभिक अपनी सत्ता को पुनः विकसित कर लेने की क्षमता रखता है। इस नाभिक के बारे में विज्ञान अभी कोई अन्तिम निर्णय नहीं कर सका। यहाँ से भारतीय तत्व ज्ञान प्रारम्भ हो जाता है, जिसकी यह सुनिश्चित मान्यता है कि स्थूल सत्ता के विनाश हो जाने मात्र से ही मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व का नाश नहीं हो जाता वह फिर भी बना रहता है। अब तक के शोध अनुसंधान भी इसी सच्चाई को प्रमाणित करते हैं।

इटली की नायिका जुलियट का उदाहरण इस तथ्य को साबित करने के लिए पर्याप्त है। कहते हैं कि जिसकी मृत्यु के बाद भी उसके पास आने वाले हजरारों पत्रों के उत्तर लोगों के पास पहुँचते रहे। जिनके पास पत्र पहुँचे उनके पत्र पूर्व पत्रों की बिल्कुल संगति में थे। कई में पूर्व पत्रों का उल्लेख भी होता था। यह कहानी भी बड़ी विचित्र है। कहते हैं, जूलियट की जहाँ समाधि थी वहीं पर दो लैटर बॉक्स टाँगे गये थे, एक में पत्र आते थे, दूसरे में डाले जाते थे, जिन्हें डाकिया नियमित रूप से ले जाता था, पत्र यद्यपि समाधि का रक्षक इटोरे सोलोमिनी लिखता था पर वह जो कुछ लिखता था, स्वयं भी नहीं जानता था। वह सारी बातें उसे निद्रावस्था में मालूम होती थीं। वह जानता था कि जूलियट की आत्मा आती हैं और प्रत्येक पत्र का उत्तर उसे बता देती है। वह तो केवल लेखक मात्र है, बताने वाली जूलियट होती थी इटोरे की मृत्यु के साथ ही यह क्रम भी टूट गया।

अमरीका के डाक्टर पेनफील्ड ने एक बार एक प्रयोग किया। उन्होंने एक अफ्रीकी युवक के मस्तिष्क के सेल में इलेक्ट्रोड से विद्युत-प्रवाह दिया। वह युवक अचेतन सा हो गया। जब दुबारा होश आया तो उसने बताया कि इतनी देर में वह अपने घर अफ्रीका हो आया। उसने वहाँ की सब वस्तुयें देखीं और सबसे बातचीत भी कीं। उसने अपने भाइयों से बातचीत का ब्योरा भी दिया और जब उसके द्वारा बताये गये व्यक्तियों, स्थानों तथा घटनाओं का पता लगाया गया तो उसके बताये गये तमाम दृश्य और सम्वाद अक्षरशः सत्य पाये गये।

मैडम डी० माइगोलन हालैण्ड सरकार की ओर से स्वीडन में राजदूत की धर्मपत्नी थीं। उनके पति को अपने देश के एक महाजन को २५ हजार पौंड का ऋण भुगतान करना था, सो उन्होंने कर भी दिया और उसकी रसीद लेकर किसी सुरक्षित स्थान में रख दी। यह बात माइगोलन को मालूम थी कि ऋण चुका दिया गया है किन्तु रसीद की उन्होंने कोई परवाह नहीं की। इसी बीच पति की मृत्यु हो गई। उसके कुछ दिन बाद वह महाजन आया और उसने श्रीमती माइगोलन से २५ हजार पौंड का ऋण भुगतान करने को कहा। वह जानती थीं कि ऋण दे दिया गया है किन्तु रसीद न होने के कारण वे कोई पुष्ट प्रमाण न दे सकीं। तब यह लगभग निश्चित सा हो गया कि भुगतान करना ही पड़ेगा। माइगोलन की बात किसी ने नहीं मानी।

एक सप्ताह बाद माइगोलन सो रही थीं, तब उन्हें ऐसा लगा जैसे पति की आत्मा उनके पास आई हो और बतायां हो कि रसीद अमुक स्थान पर रखी है। ठीक उसी समय नींद टूट गई। माइगोलन ने उस स्थान में जाकर देखा तो रसीद सुरक्षित रखी थी। आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है ?

यह सब आत्मा की परावाणी के अन्तर्गत घटित घटनायें हैं, इसलिए उन पर शंका की जा सकती है। पर अब वैज्ञानिक यन्त्रों से भी आत्मा के अस्तित्व की बात सिद्ध होने लगी है और लोग यह मानने लगे हैं कि वह कोई अत्यन्त सूक्ष्म चेतना तत्व है। भौतिक विज्ञान के जानने वाले लोगों को पता होगा कि मस्तिष्क असंख्य सेल्स की सक्रियता को कहते हैं, प्रत्येक सेल में विशिष्ट प्रकार की विद्युत-शक्ति का प्रवाह होता रहता है। वह विद्युत उत्पति सोडियम और पोटैशियम के आयतों के उलट-पुलट के कारण होती है। देखना, विचार करना आदि इन्हीं विद्युत तरंगो के कारण होता है लीग फार स्प्रिचुअल डिस्कवरी के अमरीकी वैज्ञानिकों ने इसी आधार पर एक प्लास्टिक की आँख बनाई है, इसमें ऐसी प्रकाश व्यवस्था की गई है कि वह दर्शक को घूरने लगती है। फिर उसके प्रकाश को यन्त्रों के माध्यम से इस क्रम को मन्द या तीव्र किया जाता है कि दर्शक के विचार अस्त-व्यस्त हो जाते हैं और मस्तिष्क के सेल्स शिथिल पड़ जाते हैं और वह सम्मोहित हो जाता है।

इन्होंने कुण्डलिनी को भी ज्योति किरणों का रूप प्रदान करने की चेष्टा की है। इससे भी साधकों को ध्यानावस्था में तुरन्त चले जाने की सुविधा मिली है। इस अवस्था में मन अचेतन हो

जाता है, पर एक चेतन तत्व तब भी काम करता है। उसकी अनुभूतियाँ और ज्ञान कई बार इतने सत्य पाये गये हैं कि उन्हें विश्वास हो गया है कि आत्मा कोई अदृश्य जीवन सत्ता है, जीव की जब मृत्यु होती है तो वह उसी में परिणत हो जाता है, उसका नाश नहीं होता वरन् यह क्रम अनादिकाल तक चलता रहता है।

इतने उद्दरण और विवेचन से स्पष्ट ही महामुनि शकामन्य का वह आत्म-विश्लेषण सत्य सिद्ध हो जाता है, जिसे पाकर राजा बृहद्रथ धन्य हो गये और उन्होंने इस जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

संस्कार और अमुक्त वासना

पकाये माँस की पहली कटोरी जैसे ही बच्चे के सामने रखी गई, उसने भोजन करने का वह स्थान ही छोड़ दिया। फिर माँ के लाख प्रयत्न करने पर भी बच्चे ने उस दिन भोजन नहीं किया। उसने दृढ़तापूर्वक बताया- माँस वैसे ही घृणित खाद्य है पर वह जिस तरह जीवों का उत्पीड़न करके निकला जाता है, उस कारण तो किसी भी दृष्टि से स्पृश नहीं रह जाता। उससे दुर्गुण बढ़ते हैं। मेरे लिए दूध और फल ही काफी हैं। फिर मेरे आगे माँस लाया गया तो मैं तुम लोगों के साथ नहीं रहूँगा।"

अमेरिका जहाँ छोटी आयु से ही बच्चों को माँस खाना होता है। वहाँ बिना किसी पूर्व शिक्षा और ज्ञान के बच्चे माँस के दुर्गुण के प्रति यह व्याख्यान आश्चर्यजनक ही था। माँ ने यह बात लड़के के पिता से भी कही। पर पिता ठहरे वैज्ञानिक-सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक। उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। सोचा लड़के जिद्दी प्रकृति के होते हैं, कोई बात हो गई होगी। बच्चा अपने आप पारिवारिक साँचे में ढल जायेगा। इस आत्म-आश्वासन के साथ ही वे अपने काम में जुट गये।

जिस घटना-क्रम का विकास इन पक्तियों में हो रहा है, वह कोई कहानी नहीं वरन् एक ऐसी घटना है, जिसने अमेरिका के लब्ध-प्रतिष्ठ जीव शास्त्री डा० ह्यूम वॉन एरिच जैसे वैज्ञानिक को भी चक्कर में डाल दिया। प्रथव अवसर था जब उन्हें यह विश्वास करना पड़ा कि पुनर्जन्म सिद्धान्त कोरी कल्पना नहीं। डा० ह्यू म वॉन एरिच को संस्कार कोषों (जीन्स) के अध्ययन में और भी प्रगति हुई होती।पर एक अप्रत्याशित घटना ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। अब तक की शोध के आधार पर उनका विश्वास था कि शरीर रचना की तरह गुण और संस्कार भी अनुवांशिक होते हैं अर्थात् उनमें कोई अतिवाहिकता नहीं होती, ये भी जीन्स के द्वारा माता-पिता अथवा ऊपर की, ही किसी पीढ़ी से आये हुए होते हैं,

लेकिन यहाँ जो हुआ उसने तो इस सिद्धान्त को ही काट कर रख दिया। यही लड़का जिसने एक दिन माँस को घृणित और पशु-प्रवृत्ति कहकर ठुकरा दिया था, आज पिता ह्यूम के सामने एक विचित्र भाषा में भाषण करने लगा। पहले तो पिता ने समझा कि लड़का अनर्गल प्रलाप कर रहा है। पर जब लड़का कई दिन तक उसी प्रकार टेढ़ी भाषा में बोलता रहा तो उन्होंने भाषाविदों की सहायता ली। एक भाषाविद ने बताया कि लड़का शुद्ध संस्कृत में बोलता है। लड़के द्वारा बोले गये वाक्यांशों का टेप-रिकार्ड कराकर उनका भाषान्तर कराया गया तो पता चला कि लड़के ने जो कुछ कहा वह अनर्गल प्रलाप न होकर प्रवाहमान भावाभिव्यक्ति थी। ऐसी अभिव्यन्जना जो किसी बहुत ही शिक्षित और समझदार द्वारा की गई हो। ह्यूम एक बार तो चक्कर खा गये, बच्चे में यह प्रतिभा कहाँ से आ गई, यह विचार क्षमता कहाँ से उत्पन्न हो गई।

उन्होंने अपनी पत्नी और पत्नी के सब सम्बन्धियों से पत्र डालकर पूछा, कोई भी ऐसा न निकला जो संस्कृत भाषा जानता हो। जिन कई पीढ़ियों तक उन्होंने पता लगाया, संस्कृत तो क्या हिन्दी जानने वाला भी कोई भी नहीं हुआ था। ह्यूम स्वयं इटैलियन थे। उनकी धर्मपत्नी भी इटैलियन थीं, आजीविका की दृष्टि से वे अमेरिका में आकर बस गये। संस्कृत जो उनके वंशजों में कोई जानता ही नहीं था, फिर इस बालक में यह संस्कार कहाँ से आ गये ? क्या सचमुच पुनर्जन्म होता है। क्या सचमुच चेतना का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व भी है? जो मृत्यु के बाद भी अमर रहता हो इस तरह के अनेक प्रश्नों ने उनके मस्तिष्क में तूफान खड़ा कर दिया।

समाधान उनके लड़के ने कर दिया। उसने बताया "मैं पूर्वजन्म का एक भारतीय योगी हूँ। मेरा सम्बन्ध 'नाथ' नामक एक सम्प्रदाय से था, जो उत्तरीय पर्वतीय अंचल में पाया जाता है।" अपने निवास के बारे में बच्चे ने बताया- "मैं काँगड़ा के समीप कुटी बनाकर एकान्त साधना किया करता था।"

योग साधना करते हुए भी मैं इच्छाओं के प्रवाह में बहता रहता। कभी भावनायें निष्काम हो जातीं तो भक्ति का आनन्द मिलता पर दूसरे ही क्षण धूप-छाँह की तरह परिस्थिति बदलती और कोई इच्छा आ खड़ी होती। एक दिन की बात है, दो अमेरिकन यात्री उस पहाड़ी पर चढ़ते हुए मेरी कुटी के पास तक आ गये, पूछने पर उन्होंने अमेरिका की रंगीनी के समाचार बताये। मैं बड़ा प्रभावित हुआ। मुझे लगा वहाँ जीवित स्वर्ग है। एकाएक इच्छा हुई कि अमेरिका जाऊँ और वहाँ का आनन्द लूँ। मेरी यह इच्छा मुझे बलात् अमेरिका के रंगीन जीवन की ओर खींचती रही। जब मेरी मृत्यु हुई, तब भी वह मन में इच्छा बनी रही।

डा० ह्यूम अपने पुत्र की बातें सुनकर स्तब्ध और अवाक् रह गये। पर वे इतनी शीघ्र इन बातों पर विश्वास करने वाले न थे। लड़के के बताये काँगड़ा नाथ सम्प्रदाय, पहाड़ियों के नाम, उस क्षेत्र के रीति-रिवाज आदि के सम्बन्ध में उन्होंने विस्तृत खोज की तो उन्हें अक्षरशः सत्य पाया। लड़का कभी भारत गया नहीं, पुस्तकों में उसने भारतवर्ष का नाम भी नहीं पढ़ा, रीति रिवाजों का तो कहना ही क्या, फिर यह बातें, उसके मस्तिष्क में कहाँ से आई, वे यह कुछ समझ न सके।

बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक, भाषाविद आये। सबने लड़के की बातचीत टेप की, अलग-अलग अध्ययन किये पर निष्कर्ष निकालते समय वे सब के सब माथे पर हाथ धरे सिर खुजलाते रह गये।

एक दिन लड़के ने कहा-" पिताजी! अमेरिका दर्शन की मेरी आकांक्षा पूर्ण हो गई है। अब मुझे मेरी मातृभूमि पहुँचा दीजिये। मैं अमेरिका में नहीं रह सकता।"

किसी तरह माँ उसे लेकर भारत जाने को तैयार हुई। विदेश यात्रा के लिए उन्होंने आवेदन पत्र भी भर दिया। किन्तु एक दिन प्रातःकाल उठकर जब वे अपने पुत्र के निजी कक्ष में गईं तो देखा कि मौत-मुद्रा में उस लड़के का पार्थिव शरीर पद्मासन लगाये बैठा है। उसके प्राण तो कहीं और जा चुके हैं।

जबलपुर में १८ मील दूर कालादेव जी के शिव मन्दिर के पुजारी श्री कन्हैयालाल जी चौबे के घर एक बालक ने जन्म लिया। नाम रखा गया दामोदर प्रसाद। बालक ६ वर्ष का हुआ तभी से वह रामायण, गीता बाल्मीकि रामायण, भोज प्रबन्ध, भर्तृहरि शतक आदि आर्ष ग्रन्थों के श्लोक और उनके अर्थ उच्चारण करने लगा। बालक को विद्यालय में प्रवेश कराया गया तो उसकी इस विलक्षण योगयता से अध्यापक बहुत प्रभावित हुये। उन्होंने पूछा- उसे यह ज्ञान किस तरह प्राप्त हुआ? इसका वह कुछ उत्तर नहीं दे पाया पर लड़का हमेशा हरिद्वार जाकर पढ़ने का आग्रह करता और कहता कि उसने वहाँ से पढ़ाई छोड़ी।

२८ वर्ष पूर्व प्रकाशित पुस्तक पूर्व-जन्म स्मृति में एक दिलचस्प घटना श्री कैकई नन्दन सहाय की छपी है और बताया है कि उनके चचेरे भाई श्री नन्दन सहाय बी० ए० को हैजा हो गया। उस समय उनकी आयु १९ वर्ष की थी। मृत्यु के समय उनकी पत्नी को २ मास का गर्भ था। पति की मृत्यु के बाद से ही पत्नी को खराब-खराब स्वप्न आने शुरू हुए। एक दिन उन्होंने स्वप्न में अपने मृत पति को देखा। वह कह रहे थे- मैं तुम्हारे ही पास रहूँगा (मृत्यु के समय वे पत्नी वियोग से बहुत दुखी थे) तुम्हारे ही पेट से जन्म लूँगा लेकिन तुम्हारा दूध नहीं पिऊँगा। मेरे लिए दूध का अलग से प्रबन्ध रखना। मेरी बात की सत्यता यह होगी कि जन्म से ही मेरे सिर पर चोट का निशान होगा।"

कुछ दिन बाद पुत्र जन्मा तो घर वाले कौतूहल में रह गये कि वह लड़का हूबहू अपने पिता जैसा ही था। हमशक्ल होना आनुवांशिक कारणों से हो सकता है किन्तु सिर में चोट का निशान? इस बात का प्रतीक था कि बच्चा निरा आनुवांशिक ही न होकर स्वप्न का सत्य भी था उसमें अपनी चेतना लौटी थी। बच्चा छोटे से ही पत्नी का दूध नहीं पीता था अतएव उसके लिए एक धाय रखी गई। वही उसे दूध पिलाती थी।

लड़का किसी और स्त्री के स्तनों से दूध पी लेता था किन्तु कोई उसकी स्त्री (वर्तमान में माँ). के स्तनों का दूध निकालकर चम्मच से भी पिलाता तो वह नहीं पीता था, मुँह से उगला देता था। बच्चे की वासना पत्नी में थी सो उसने उसी के गर्भ से जन्म लेना स्वीकारा पर उसे अलग रहना नहीं।

अपनी पुस्तक "रिइन्कार्नेशन" में विलियम वाकर एटकेन्सन ने बहुत सी ऐसी घटनायें दी हैं जो पुनर्जन्म के साथ-साथ जीव की इच्छा-शक्ति की प्रबलता को भी प्रमाणित करती हैं।

जीन्द (हरियाणा) का कालेज। एक विद्यार्थी के साथ उसकी छोटी बहिन भी कालेज चली आई। एक अध्यापक ने प्रयोगशाला में खड़ी उस बालिका से पूछा, बेटी यह शीशी में क्या रखा है जानती है इसे छूना मत, नहीं तो जल जायेगी। अध्यापक ने कोई परीक्षा लेने के लिए नहीं पूछा था। उसने तो साधारण हिदायत भर दी थी। किन्तु लड़की बोली हाँ-हाँ सर यह "कन्सन्ट्रेटेड नाइट्रिक एसिड" है, मैं इसे नहीं छूऊँगी उसने और भी शीशियों में रखे हुए घोलों (सोलूशन्स) को सही-सही बताकर अध्यापकों और छात्रों को विस्मय में डाल दिया- इस आयु के बच्चे तो अच्छी तरह बोल भी नहीं सकते फिर इस बालिका में अँग्रेजी और विज्ञान का यह असाधारण ज्ञान कहाँ से आया?

जो बात और अधिक विस्मय में डालती है वह यह है कि उक्त बालिका बिना किसी शिक्षा के पुस्तकें पढ़ लेती है उसे हिन्दी, उर्दू और अँग्रजी का एक एम० ए० के विद्यार्थी के जितना ज्ञान है? यह ज्ञान कहाँ से उपलब्ध हुआ? क्या ऐसी कोई परम्परा भी है जिसमें बच्चों की जन्म-जात प्रतिभा को विकसित किया जाता हो। इन प्रश्नों पर विचार करने बैठते हैं तो उस सिद्धान्त की ही पुष्टि होती है जिसमें यह बताया जाता है कि मृत्यु के बाद ही जीवन का अन्त नहीं हो जाता है।

जीन्द की यह घटना तो स्पष्टतया भारतीय दर्शन की उस मान्यता का ही उल्लेख है। ११ वर्षीया बालिका के बारे में यह

माना जा सकता है कि बौद्धिक प्रतिभा के कारण उसने अन्य समवयस्कों की अपेक्षा थोड़ा अधिक ज्ञान अर्जित कर लिया होगा पर जो वस्तु उसने कभी पढ़ी भी नहीं, वह इस जन्म का विकास कैसे हो सकता है: दूसरे उसे धर्म के गूढ़ रहस्यों का कोई पता भी नहीं फिर भी वह बताती है कि मैं अर्विन अस्पताल दिल्ली के एक डाक्टर की पुत्री थी। हम अग्रवाल जाति के थे। मेरी जीप और कार थीं। मेरा नाम सुमन था । मुझे खूब अच्छे-अच्छे मीठे पकवान आदि खाने को मिलते थे 'मैंने इण्टर तक पढ़ाई की थी।

पिछले जन्म के कई संस्कार इस जीवन में अपने आप परिलक्षित हो रहे हैं- एक तो यही कि उसने बिना पढ़े अंग्रेजी आदि का ज्ञान पाया। दूसरे उसका डील-डौल सामान्य गति से अधिक तेजी से बढ़ रहा है। उसकी वर्तमान माँ यह बताती है कि बालिका को कोई अतिरिक्त खुराक नहीं दी जाती तो भी उसका शरीर असाधारण रूप से बढ़ रहा है। डाक्टर भी उसका कोई कारण समझ नहीं पाते। तीसरे अब चूँकि वह निर्धन घर में है इसलिए अच्छा खाना कभी-कभी मिलता है वह उसका अधिकांश अपनी बहिनों-भाइयों को दे देती है और कहती है कि यह वस्तुएँ मैंने भरपेट खाई हैं इसलिए मेरी उसमें कोई बहुत रुचि नहीं है। चौथे वह दिल्ली, अमृतसर, डलहौजी, शिमला आदि स्थानों के कई रोचक वर्णन सुनाती है, जिसे उसने देखा भी नहीं। यह चारों बातें पूर्व जन्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को ही पुष्ट करती है।

इस घटना का सबसे आश्चर्यजनक पहलू तब सामने आया जब उसकी माँ के पेट से एक और कन्या जन्मी और उसके जन्म लेते ही बड़ी बहिन फूट-फूट कर रोने लगी- उसने कहा अरी ! पूनम तू जीजाजी को और दोनों बच्चों को किसके सहारे छोड़ आई ? लोग कहते थे यह क्या पागलपन है। किन्तु इस बालिका ने बताया कि यह कि यह छोटी बहिन पहले जन्म में मेरी बहिन थी। इसका नाम पूनम था। इसकी शादी भिवानी के अध्यापक के साथ हुई थी। पूनम का रंग कुछ साँवला था इसलिए जीजाजी उसे चिढ़ाते रहते थे। पूनम ने उससे दुःखी होकर एक दिन आत्म-हत्या करली और इस तरह पूर्व जन्म की दो सगी बहनें फिर इस जन्म में सगी बहनें हुईं।

आश्चर्य यह है कि आत्मा की सूक्ष्मता के कारण किसी विशिष्ट व्यक्ति की पहचान सम्भव नहीं है फिर बालिका ने जन्म लेते ही अपनी बहिन को कैसे पहचान लिया जबकि इस जन्म में उसका शरीर उसकी मुखाकृति सब कुछ अलग अलग है। अब यह बालिका भी ४-५ वर्ष की है और जब इस जन्म की बड़ी बहिन किसी को पूर्व जन्म की बातें बताने लगती है, तो छोटी बहिन उसे रोकती है और कहती है अब यह सब बातें करने से क्या लाभ ? उनकी यह गम्भीरता यह सोचने को विवश करती है कि क्या सचमुच हमारे मर जाने के बाद भी जीवन बना रहता है।

बहुत छोटी आयु में असाधारण प्रतिभाओं का होना पुनर्जन्म का प्रामाणिक आधार है। मनुष्य का स्वाभाविक विकास एक साथ जुड़ा है। तीव्र मस्तिष्क कितना ही क्यों न हो उसे क्रमबद्ध प्रशिक्षण की आवश्यकता तो रहेगी ही। यदि बिना किसी प्रशिक्षण अथवा उपयुक्त वातावरण के छोटे बालकों में आसाधारण विशेषताऐं देखी जायँ तो उसका समाधान भी उनके पूर्वजन्म के संग्रहीत ज्ञान के ही कारण मानने से हो सकता है।

मरणोत्तर जीवन की मान्यता और संस्कार का दूरगामी प्रभाव-परिणाम अध्यात्म दर्शन का एक बड़ा आधार है। चिन्तन की शैली, आकांक्षा और दिशा का प्रभाव न केवल इस जीवन में विविध हलचलों की केन्द्रीय प्रेरणा के रूप में क्रियाशील रहता है, अपितु अगले जीवन में भी यह प्रभाव बना रहता है। व्यक्तित्व को विकसित एवं परिवर्तित कर सकने की वास्तविक शक्ति इन्हीं संस्कारों की प्रखरता में सन्निहित है। संस्कार किसी ग्रह-नक्षत्र की कृपा से नहीं बनते-बिगड़ते। मनुष्य अपने मनोबल, विवेक और पुरुषार्थ से ही उन्हें निखारता है। अत: सत्संस्कारों को ही जन्म-जन्मान्तर तक साथ देने वाले अभिन्न-मित्र समझकर उनकी संख्या और शक्ति बढ़ाने के लिए सदा सजग रहने में ही बुद्धिमानी है। यात्रा का पाथेय और प्रगति के सुनिश्चित आधार सत्कर्म तथा संस्कार ही हैं।

अध्यात्म के सिद्धान्त व्यक्तिगत जीवन को अधिक पवित्र एवं शालीन बनाने की भूमिका सम्पादित करते हैं। उनसे सामाजिक सुव्यवस्था की आधारशिला भी रखी जाती है। और सर्वजनीन एवं सुख-शान्ति का पथ-प्रशस्त होता है।

१. शरीर की नश्वरता, २. आत्मा की अमरता, ३. कर्मफल का सुनिश्चित होना तथा परलोक पुनर्जन्म की सम्भावना । यह चार सिद्धान्त ऐसे हैं जो किसी न किसी रूप में प्राय: अध्यात्म की सभी शाखाओं में प्रतिपादित किये गये हैं। यों कई धर्मों में पापों के क्षमा हो जाने मरणोत्तर जीवन की स्थिति में भिन्न मान्यताएँ भी हैं, पर वे लोच-लचक के रूप में ही हैं। इतनी कठोर नहीं कि उनसे उपरोक्त चार सिद्धान्त जड़-मूल से ही कट जाते हों। मरणोत्तर जीवन किसी न किसी रूप में बना ही रहता है। कर्म को भले ही नैतिक रूप में न मानकर साम्प्रदायिक विश्वासों की परिधि में लपेट लिया गया हो तो भी

यह नहीं कहा गया कि कर्म का कोई फल नहीं मिलता। इस प्रकार छोटे मतभेदों के रहते हुए मूल सिद्धान्तों के प्रति प्राय: सहमति ही पाई जाती है।

वर्तमान जीवन में शुभ कर्म करने पर भले ही इसमें जन्म उसका सुखद प्रतिफलन मिले पर मरणोत्तर जीवन में उसका मंगलमय परिणाम उपलब्ध हो जायेगा । इस विश्वास के आधार पर लोग त्याग और बलिदान के बड़े-बड़े साहसपूर्ण कदम उठाते हैं, इस जन्म में किये गये पापों के दण्ड से भले ही इस समय किसी चतुरता से बचाव कर लिया जाय पर आगे चलकर उसका दण्ड भुगतना ही पड़ेगा। यह सोचकर मनुष्य दुष्कर्म करने से अपने हाथ रोक लेता है और कुमार्ग पर पैर बढ़ाने से डरता, झिझकता है। यदि मान्यता को हटा दिया जाय तो तत्काल शुभकर्म का सत्परिणाम न मिलने की स्थिति में कोई उसके लिए उत्साह प्रदर्शित न करेगा। इसी प्रकार पाप दण्ड से सामाजिक बचाव कर लेने की उपलब्ध तरकीवें ढूँढ़कर फिर कोई अनीति अपनाने पर मिलने वाले लाभों को छोड़ने की इच्छा न करेगा, ऐसी दिशा में व्यक्ति और समाज में अनैतिक, अवांछनीय तत्वों की बाढ़ आजायेगी और मर्यादाओं के बाँध टूट जायेंगे। मानसिक नियन्तत्रण न रहने की स्थिति में भयंकर स्वेच्छाचार फैल जायेगा और उस उच्छूंखलता से समूची मानव जाति का-समस्त संसार का भारी अहित होगा।

यह मान्यता विश्वव्यापी धार्मिक विश्वासों अत्युच्च कोटि के प्रतिभाशालियों तथा तत्वदृष्टाओं द्वारा कहे- बताये एवं लिखे गये प्रामाणिक ग्रन्थों एवं विज्ञान की अधुनूतन मान्यताओं के भी सर्वथा विपरीत है। पुनर्जन्म न केवल एक लोककल्याणकारी सिद्धान्त है, अपितु वह एक ईश्वरीय, व्यवस्था अटल नियम एवं सुनिश्चित सुनियोजित प्रक्रिया है। आवश्यकता उस प्रक्रिया को, कर्मफल की अनिवार्यता एवं संस्कारों की महत्ता को समझने तथा जीवन लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ने के लिए सम्पूर्ण शक्ति से प्रयास करने की है। मानव-जीवन का हेतु तथा महत्त्व भी यही है।

****

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवन काल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युगनिर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्रनिर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़ पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद कांग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रंगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका-मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोबा जी के चले जाने के बाद अस्तित्त्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि. संवत् २०६८ में जन्में राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराम मत्त कहलाने वाले, आचार्य श्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रांति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माता जी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका-अपनी लेखनी से लिखी ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उनने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाब लाये कोई क्रांति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्व दर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में संपन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरु सत्ता को देखकर त्याग करने की यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उनने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेघ के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से संपन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक आँवल खेड़ा से अपनी जन्मभूमि से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी 12 वर्ष पूर्व आरंभ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतः स्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा

हवेली कहा जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जोकि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ बनाई गई। १९५३ में एवं क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों- प्रज्ञा संस्थानों भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों-चरणपीठों का महत्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्य पूर्ण था। ***परम पूज्य गुरुदेव की महत्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ, इस प्रकार हैं-***

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शांतिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष जन्मा संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन ब्राह्म मुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर १९११ के दिन आती थी। एक श्री मंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित-पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थी। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुआँ जिसे पूरे गाँव का एक मात्र मीठे जल वाला कुआँ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीर धारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशा धारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इंटर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धन राशि द्वारा विनिर्मित्त है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ-एवं कन्या इंटर कालेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा एवं एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित संस्कारवान आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव निर्माण की सांस्कृतिक-भावनात्मक क्रांति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीया मण्डी, मथुरा में स्थित हैं। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रांतिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरंभ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तंभ व अन्यान्य

लेखों की पंक्तियों के माध्यम से संपन्न होने लगी । व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतस्तल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा । यहीं पर अगणित दुखी, तनाव ग्रसित व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परम वंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये । हाथ से बने कागज पर छोटी टेण्ड्रिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था । बगल की एक छोटी सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजा घर विनिर्मित है । पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में_1942-43 में रही होगी । तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता । तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ सहस्त्र कुण्डीयज्ञ की आधार शिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया । रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परम वंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना । हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया । गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं संपन्न हुआ । जन सम्मेलनों छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन विस्तार डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परम वंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है ।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था । इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया । चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है । पू० गुरुदेव की साधना स्थली व प्रातः काल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी । यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी । यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्त्रकुण्डी यज्ञायोजन संपन्न हुए । श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा संपन्न हुआ । हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्य श्री ने युग निर्माण योजना के शत सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युगनिर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरंभ होने की घोषणा की । यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है । भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युगनिर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शांतिकुंज, हरिद्वार- ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये । गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने,

सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया । इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने 24 कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़ गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था । पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्त्तन सत्र जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े । यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का तांता लगा रहता है । पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं ।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्त ऋषियों की मूर्त्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को संपन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार संपन्न होते हैं। इस बीच परम वंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ संपन्न करना आरम्भ रखा । देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया । इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा ।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक अकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थ स्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया ।यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी ।स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है ।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परम-पूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवी स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है।इसे १९७९ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था । वर्तमान शांतिकुंज-गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्त्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फल-श्रुतियों सहित स्थापित हैं । द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्त्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये । इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है । यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों-जैव विद्युत आदि पर पड़ा यह देखा जाता है । विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं । तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित हैं, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं । यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं । यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता ।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीला संदोह रचकर चली गयी । प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान २४००० से अधिक प्रज्ञा मण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जायें तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है ।

□□□

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाड्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाड्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
 समग्र वाड्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
 (सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाड्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवनः एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

□□□

वंदनीया माताजी का हर निमिष उनका साथ रहा। अंतिम बीस वर्ष शांतिकुंज, हरिद्वार या सूक्ष्मशरीर से हिमालय में बीते। ऋषि परंपरा का बीजारोपण, सिद्ध तीर्थ गायत्री तीर्थ का निर्माण एवं वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के लिए संकल्पित ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान व समर्थ साहित्य का लेखन इसी अवधि में हुआ। जीवन भर उनने लिखा, हर विषय को स्पर्श किया एवं जीवनमूरि की तरह भाव-संवेदना को अनुप्रमाणित करने वाली अपनी लेखनी साधना की। स्वयं के बारे में वे कहते थे—"न हम अखबार नवीस हैं, न बुक सेलर, हम तो युगद्रष्टा हैं। हमारे ये विचार, क्रांति के बीज हैं। ये फैल गए तो सारी विश्व-वसुधा को हिलाकर रख देंगे।"

गद्य ही नहीं, पद्य पर भी उनकी उतनी ही पकड़ थी। हजारों को प्रेरित कर उनने सृजनात्मक काव्य लिखवाया। लेखनी उनकी पन्नों के माध्यम से करोड़ों व्यक्तियों के जीवन को बदलती चली गई। प्राय: श्रेष्ठ लेखक, श्रेष्ठ वक्ता नहीं होते, किंतु उनकी ओजस्वी अमृतवाणी ने लाखों का कायाकल्प कर दिया। उनके उद्बोधनों को, जो उनने भारत के कोने-कोने व मथुरा-हरिद्वार की पावन भूमि में दिए, इस वाङ्मय में देने का प्रयास किया गया है। करुणा छलकाती उनकी वाणी, अंत: को स्पर्श करती हुई जीवनशैली बदलने को प्रेरित रहती प्रतीत होती है।

सत्तर खंडों में जो लगभग पाँच-पाँच सौ पृष्ठ के हैं, प्राय: वह सब कुछ समा गया है, जो ऋषियुग्म के माध्यम से प्रकट हुआ। जो कमियाँ हैं, वह संपादन मंडल की हैं। जो कुछ भी श्रेष्ठ है, वह सब उसी गुरुसत्ता का है, उन्हीं का है, उन्हीं को समर्पित है।

प्रज्ञा पुराण
अथर्ववेद संहिता
सामवेद
यजुर्वेद संहिता
ऋग्वेद संहिता
अखण्ड ज्योति
प्रज्ञा अभियान